जगन्नाथ सैठ

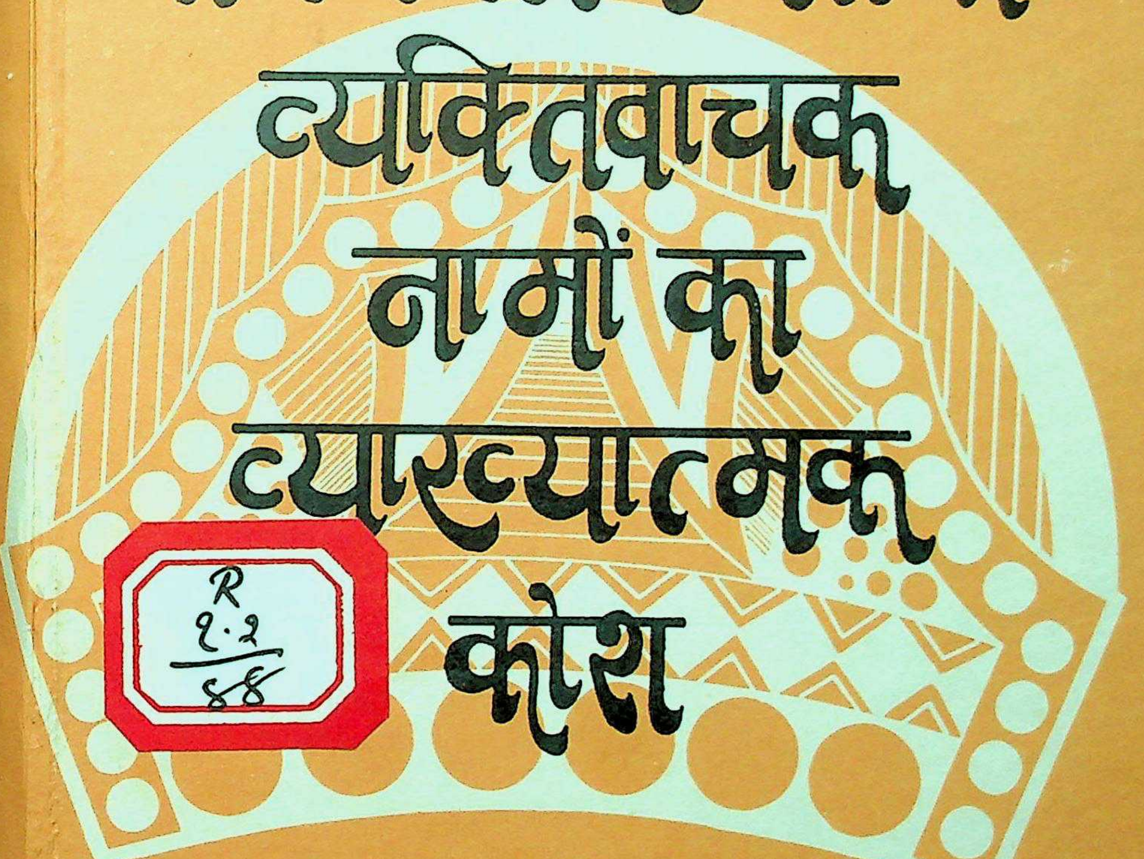

रामचरितमानस के व्यक्तिवाचक नामों का व्याख्यात्मक कोश

R
९·२
४४

R
१.२
४८

119198

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

Stock Verification-2024

119198

R
१.२

४४

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ....   आगत संख्या 119198

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

Stock Verification-2024

रामचरितमानस
के
व्यक्तिवाचक नामों
का
व्याख्यात्मक कोश

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

भारतीय प्रकाशन संस्थान
24 अंसारी रोड नई दिल्ली-110002

R 1.2/44
119198

रामचरितमानस के व्यक्तिवाचक नामों का व्याख्यात्मक कोश

119198

जगन्नाथ सेठ

R
9.2
88

© जगन्नाथ सेठ

प्रकाशक
भारतीय प्रकाशन संस्थान
4855/24, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण
1996

आवरण
चेतनदास

मूल्य
पाँच सौ रुपये

मुद्रक
एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

RAMCHARITMANAS KE VYAKTIVACHAK NAMON KA
VYAKHYATMAK KOSH (Hindi)
by JAGAN NATH SETH
Price : Rs. 500.00

जो इस ग्रंथ के प्रेरक रहे
इसके रचनाकाल में बाधाओं-विघ्नों के कौतुकी सर्जक बने
जिनके अनुग्रह से यह पूर्ण हो सका
उन्हीं लीलामय कृपाधाम श्रीराम को
पूज्य-बुद्धि से समर्पित

भूमिका

तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ रामकाव्य है। भारतीय संस्कृति से इसका इतना गहरा सम्बन्ध है, मानव-मन को आकर्षित करने की इसमें ऐसी अद्भुत क्षमता है कि रचना के चार सौ वर्ष बाद भी यह पुराना नहीं पड़ा। इसके विभिन्न पात्र, सर-सरित्-शैल-वन-तीर्थ आदि भारतीय संस्कृति के अंगभूत हैं। इन सबका प्रत्येक प्रसंग के साथ आद्योपान्त आकलन करके इनके धारावाहिक विवरण को स्मरण रखना मानस के गम्भीर अध्येताओं के लिए भी कठिन होता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए, मानस के प्रत्येक व्यक्तिवाचक नाम का व्याख्यात्मक वर्णन, उसके प्रसंग और सन्दर्भ के साथ, एक स्थान पर उपस्थित करने के उद्देश्य से, इस कोश की रचना हुई है।

इस तरह के कार्य का महत्व इसी बात से प्रकट हो जाता है कि मानस के अध्येता दीर्घकाल से इसकी आवश्यकता का अनुभव करते रहे हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति के छिटपुट प्रयास भी होते रहे हैं, किन्तु उन प्रयासों द्वारा प्रयोजन की सम्यक् पूर्ति नहीं हो पायी। इस दिशा में जो सामग्री उपलब्ध हो सकी है, या जिसकी सूचना मिली है, उसकी संक्षिप्त दिग्दर्शिका यहाँ प्रस्तुत है—

(१) निराला द्वारा रचित रामायण की अन्तर्कथाएँ।[१] इसमें संवादसहित लिखी गयी २४ अन्तर्कथाएँ संकलित हैं।

(२) कल्याण का मानसांक[२]। इसमें पाठकों की जानकारी के लिए 'मानस के प्रासंगिक चरित्र' शीर्षक से ५५ चरित्रों का साधारण परिचय समाविष्ट किया गया है।

(३) रामदास गौड़ का रामचरितमानस की भूमिका[३]। इसके तीसरे खण्ड में मानस के लगभग ५० पात्रों के सम्बन्ध में अन्तर्कथाएँ दी गयी हैं।

(४) रामचरितमानस की अन्तर्कथाओं का आन्तरिक अध्ययन—बी० डी० पाण्डेय।

(५) गोस्वामी तुलसीदास के नाम-संकेतों एवं कथा-संकेतों का अध्ययन—प्रेमलता दुबे।

उपर्युक्त दोनों शोध-प्रबन्धों की सूचना[४] मिली है, किन्तु वे उपलब्ध नहीं हो सके।

(६) डॉक्टर भ० ह० राजूरकर का शोध-प्रबन्ध रामकथा के पात्र[५]। इसमें वाल्मीकीय 'रामायण', तुलसी के 'रामचरितमानस' और मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के सन्दर्भ में सीमित पात्रों का चरित्रांकन है।

(७) राजेन्द्रप्रसाद वर्मा की 'रामचरितमानस की नामानुक्रमणिका'[६]। यह एक साधारण पुस्तक है जिसमें मानस के २६८ पात्रों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय दिया गया है और राम-सम्बन्धी सूचना डेढ़ पृष्ठों में समाप्त हो गयी है।

(८) डॉक्टर भ० ह० राजूरकर का 'मानस चरित्र कोश'[७]। इसमें मानस के लगभग १५० चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, किन्तु चरित्रों में मानस के सब प्रसंगों का समावेश नहीं हुआ और सन्दर्भ-संकेत भी बहुत कम हैं। फिर भी यह पुस्तक महत्वपूर्ण है।

इन समस्त पूर्ववर्ती प्रयासों के प्रति मैं ऋणी हूँ। अपने पूर्वसूरियों की प्रचेष्टा को अधिक वैज्ञानिक, अधिक व्यापक रूप से पूर्ण करने की चेष्टा मैंने इस कोश के द्वारा की है।

प्रस्तुत कोश में शब्द-चयन का आधार

प्रस्तुत कोश में शब्दों का चयन व्याकरणिक आधार पर हुआ है। संस्कृत व्याकरण में संज्ञा के जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक उपभेद नहीं हैं।[८] वहाँ धातु और प्रत्यय को छोड़कर जो शब्द अर्थयुक्त हो, उसे प्रातिपदिक कहते हैं। उसमें कृदन्त, तद्धितान्त और समास भी सम्मिलित हैं। कृत्तद्धितसमासाश्च।[९] गुरु के मत से

प्रातिपदिक में संज्ञा, गुणवाचक (विशेषण) और सर्वनाम का समावेश होता है।[१०] वस्तुतः संज्ञा के उपभेद अंगरेजी व्याकरण में अर्थ के अनुसार किये गये हैं। रूपान्तर और व्युत्पत्ति की दृष्टि से उपयोगी होने के कारण अंगरेजी व्याकरण के ये उपभेद हिन्दी व्याकरण में भी स्वीकार कर लिये गये हैं।[११]

गुरु के अनुसार जिस संज्ञा से किसी एक ही पदार्थ (जड़ या चेतन) या पदार्थों के एक ही समूह का बोध होता है, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, राम, काशी, गंगा, महामंडल, हितकारिणी इत्यादि;[१२] ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्माण्ड, परब्रह्म आदि।[१३] कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के समान होता है, जैसे संवत् = विक्रमी संवत्, गुसाईंजी = गोस्वामी तुलसीदास आदि।[१४] 'गुप्तों की शक्ति क्षीण होने पर यह स्वतंत्र हो गया था।' इस वाक्य में 'गुप्तों' शब्द से अनेक व्यक्तियों का बोध होने पर भी वह नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा है, क्योंकि इससे किसी व्यक्ति के विशेष धर्म का नहीं, अपितु कुछ व्यक्तियों के एक विशेष समूह का बोध होता है। कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ जातिवाचक संज्ञाओं के रूप में प्रयुक्त होती हैं; यथा, 'कहु रावन, रावन जग केते', 'कलियुग के भीम' आदि।[१४]

गुरु की मान्यताएँ अंगरेजी व्याकरण से पुष्ट होती हैं। कुर्मे[१५] (पृ० १-२) एवं क्वर्क आदि[१६] (पृ० १६०-१६१) के मत से विशेष व्यक्ति, स्थान, दिन, महीने, पर्व, झील, पर्वत, नगर आदि के नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत आते हैं। क्वर्क आदि के अनुसार नाम का किसी से अनन्य सम्बन्ध (युनिक रेफरेन्स) होने पर वह नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा के अधिक निकट होता है, बशर्ते कि अंगरेजी में उसका पहला अक्षर बड़ा हो—जैसे स्वर्ग, नरक, भाग्य आदि (पृ० १६०)। अनन्य सम्बन्ध रूढ़ होने और पहला वर्ण बड़ा होने पर नाम की व्यक्तिवाचकता पुष्ट हो जाती है; यथा, दि विल्सन्स (अर्थात् विल्सन परिवार) (पृ० १६४)। इसी को कुर्मे सामान्य से विशिष्ट, अनन्य होने की प्रक्रिया मानते हैं। उनके अनुसार भी दि वुड्स कहने से वुड परिवार के सदस्यों का बोध होता है और बहुवचन होने पर भी यह शब्द जातिवाचक नहीं है (पृ० २)। पेन्स[१७] के मत से कोई संज्ञा अर्थ की दृष्टि से जातिवाचक होने पर भी, व्यक्तिवाचक नाम से व्युत्पन्न होने पर, व्यक्तिवाचक मानी जाती है और उसका प्रथम अक्षर बड़ा होता है; जैसे, ए रिपब्लिकन (अर्थात् रिपब्लिकन पार्टी का कोई सदस्य) (पृ० २६)।

कुर्मे (पृ० २) एवं क्वर्क आदि (पृ० १६०) के अनुसार व्यक्तिवाचक नाम जातिवाचक रूप में भी प्रयुक्त होते हैं; यथा, शेक्सपियर्स (शेक्सपियर जैसे लेखक)। पेन्स (पृ० २६) और क्वर्क आदि (पृ० १६१) के मत से माता और पिता जैसे पारिवारिक सम्बन्धसूचक शब्द भी, यदि उनका पहला वर्ण बड़ा हो तो, व्यक्तिवाचक नाम के अन्तर्गत आयेंगे, क्योंकि यहाँ वक्ता का संकेत विशेष की ओर है।

उपर्युक्त व्याकरण-पुस्तकों के अतिरिक्त सोरेनसेन[१८] के महाभारत-सम्बन्धी और स्टोक्स[१९] के शेक्सपियर-सम्बन्धी कोश-ग्रन्थों से भी प्रस्तुत कोश के शब्द-चयन में सहायता मिली है।

प्रस्तुत कोश में शब्दों का चयन

प्रस्तुत कोश में समाविष्ट अधिकांश शब्द— राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि तथा अन्य मनुष्यों के अतिरिक्त वानर, देवता, दानव, यक्ष, अप्सरा, नाग, नगर, देश, नदी, सरोवर, पर्वत, ग्रह, नक्षत्र, मास, वार, ऋतु आदि के नाम— असंदिग्ध रूप से व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं। अनेक शब्द जातिवाचक और भाववाचक होने पर भी इस कोश में सीमित अर्थ में, व्यक्तिवाचक नाम के रूप में, गृहीत हुए हैं; यथा, काम (कामदेव), रति (कामदेव की पत्नी), बराह, बामन आदि (अवतार), अंकुस, कंज आदि (भगवान के चरण-तल के चिह्नविशेष), मनि (कौस्तुभ मणि), कुंडल मकर आदि (भगवान के आभूषण), बिप्रचरन (राम के वक्ष पर भृगु-चरण-चिह्न) आदि। अनेक ऐसे जातिवाचक शब्दों का भी ग्रहण हुआ है जो मानस में व्यक्तिवाचक नाम के स्थान पर प्रयुक्त हैं; यथा, असुराधिप नारी (वृन्दा), नारि तपपुंज (स्वयंप्रभा), चिरजीवी मुनि (मार्कण्डेय), मकरी (धान्यमाली अप्सरा), निसिचरि एक (सिंहिका), गिरिबर कंदरा (निकुम्भिला पर्वत की योगिनी गुहा जहाँ मेघनाद की यज्ञशाला), गज, केवट, गनिका, सबर, स्वपच आदि।

कालकूट, बारुनी, सुधा शब्द केवल 'छीरसागर'-मन्थन से प्रकट होनेवाले रत्नों के रूप में यहाँ लिये गये हैं। गगन, जल, पवन, पावक और भूमि तत्व या भूत के अर्थ में गृहीत हुए हैं, अन्तिम तीन पात्र भी हैं। सागर से

वह विशेष समुद्र अभिप्रेत है जिस पर सेतु-निर्माण हुआ; वह मानस का एक चरित्र भी है। 'अखय बटु' प्रयाग का एक वृक्षविशेष है, भोगावति, रसातल, रौरव नरक के अतिरिक्त स्वर्ग, नरक, पाताल भी मानस में एकवचन में प्रयुक्त हैं और प्रस्तुत कोश में लोकविशेष के अर्थ में लिये गये हैं। इंद्रकुलिस (वज्र) आदि आयुधों और कृतजुग, त्रेतायुग आदि युगों के नामों के अतिरिक्त सांख्य सास्त्र, सजीवनि मूरि आदि नामों को ग्रहण करने की यौक्तिकता सोरेनसेन के ग्रन्थ से भी पुष्ट होती है। बेद शब्द को केवल पात्ररूप में लिया गया है।

बालकाण्ड आदि काण्डविशेष के नाम हैं, सोरेनसेन के ग्रन्थ में भी रामोपाख्यान और रामोपाख्यान पर्व बिना कोष्ठक के गृहीत हुए हैं। सप्तरिषि और सनकादि क्रमशः सात और चार ऋषियों के समूह के लिए प्रसिद्ध हैं। अनिमादिक में अणिमा के अतिरिक्त अन्य सात सिद्धियों का भी समाहार होता है। उपमा अलंकार, सिंगार आदि रस, चौपाई आदि छन्द का ग्रहण विशेष की दृष्टि से हुआ है। सत्व आदि गुण, तुरीय (अवस्था) और साजुज्य मुक्ति भाववाचक होने पर भी गृहीत हुए हैं। अप्सरा, यक्ष, राक्षस आदि देवजातियों का परिशिष्ट २ में परिचय दिया गया है। परिशिष्ट १ में मानस में आये संस्कारों और यज्ञों तथा परिशिष्ट ३ में विभिन्न रामायणों की चर्चा है। परिशिष्ट ४ में इस कोश में प्रविष्ट मूल नामों की सूची है।

कहीं-कहीं यह वैयक्तिक अभिरुचि पर भी निर्भर करता है कि कोई शब्द व्यक्तिवाचक नाम है अथवा प्रशंसात्मक विशेषण। इसमें मतभेद की गुंजाइश हो सकती है कि कुछ विशिष्ट प्रशंसात्मक विशेषणों को नाम का पर्यायवाची माना जाये या नहीं। किन्तु ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि राम जैसे कुछ बड़े चरित्रों के लिए प्रयुक्त कुछ विशिष्ट गुणबोधक, चरित्रबोधक आदि शब्द विशेषण होते हुए भी वस्तुतः विशेष प्रसंगों में नाम के लिए ही साभिप्राय व्यवहृत किये गये हैं। अतः इस कोश में मूल नाम के पर्यायवाची के रूप में उन्हें भी वर्गीकृत कर दिया गया है। इसी तर्क के आधार पर उपमानरूप में प्रयुक्त कुछ प्रमुख शब्दों को भी ले लिया गया है। व्यक्तिवाचक नामों के जातिवाचक रूप भी गृहीत हुए हैं और अन्त में नामों के सन्दर्भ-संकेतों के साथ कोष्ठकों में 'जाति०' कहकर उनका उल्लेख कर दिया गया है।

इस कोश में कुछ ऐसे शब्द भी अन्तर्भुक्त हैं जो व्यक्तिवाचक नहीं हैं या जिनकी व्यक्तिवाचकता संदिग्ध है। फिर भी उनकी व्याख्या के द्वारा मानस के कई प्रसंग पाठकों के लिए अधिक बोधगम्य हो सकेंगे, इस मान्यता के कारण उनका भी संयोजन किया गया है, जैसे रस, गुन, धुनि, अवरेब आदि।

प्रस्तुत कोश में शब्दों के रूप

इस कोश में नामों का चयन गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित श्रीरामचरितमानस (सटीक, मझला साइज, संस्करण सं० २०१३) से किया गया है। इसमें नामों की वर्त्तनी संस्कृत श्लोकों के कुछ शब्दों को छोड़कर वही है जो मूल ग्रन्थ में, किन्तु विभक्तियाँ छोड़ दी गयी हैं और बहुवचन में प्रयुक्त शब्दों को एकवचन में लिया गया है; जैसे तुलसीक (१।२९ ख), अवधपुरीं (१।३४।५), सतीं (१।५६।१), सिवँ (१।७९।८), रामहि (१।३२६), जगदंबिके (१।८१।८), रघुबंसिन्ह (१।२३१।५) आदि क्रमशः तुलसी, अवधपुरी, सती, सिव, राम, जगदंबिका, रघुबंसी आदि के रूप में गृहीत हुए हैं। सामासिक शब्द होने पर बहुव्रीहि में पूरा समस्तपद लिया गया है; यथा, नीलकंठ (१।१०६), चंद्रमौलि (१।६४।७), बृषकेतु (१।३५), मृगाधीशचर्माम्बर (७।१०८।छं०४) आदि। बहुव्रीहि से इतर सामासिक शब्दों में केवल व्यक्तिवाचक पद का ग्रहण हुआ है, यथा; हरिजन (१।७।३) में हरि, बालपतंग (१।२५४) में पतंग, रामभगत (१।४७।३), रामकथा (१।४७।७), रामनाम (१।१९) में राम का इत्यादि। किन्तु प्रसिद्ध व्यक्ति का बोध होने पर वहाँ भी पूरा पद गृहीत है, यथा सिंधुसुता प्रियकंता (१।१८६। छं० १), भूधर सुता (२।१। श्लो०१), छीरसागर सयन (१।१। सौ० ३) आदि। सन्धि में केवल व्यक्तिवाचक पद लिया गया है; जैसे—सरदातप (४।१७।६) में सरद, नारदादि (४।३०।छं०) में नारद, रंभादिक (१।१२६।४) में रंभा आदि। सनकादि, अनिमादिक अपवाद हैं। विवरण के अन्त में मूल नामों के सन्दर्भ-संकेतों के साथ कोष्ठकों में अंगदादि, नारदादि का उल्लेख कर दिया गया है।

टंकण की असुविधा के कारण इस कोश में हलन्त ङ की जगह भी अनुस्वार व्यवहृत हुआ है। अतः शंकर (१।१।श्लो०२) रघुपुंगव (५।१।श्लो०२) आदि की वर्त्तनी श्लोकों में आये शब्दों के अनुरूप नहीं हो सकी। श्लोकों

से भी विभक्ति को छोड़कर शब्द लिये गये हैं; यथा, हरिम् (१।१।श्लो०६) का हरि, रघुनन्दनस्य (२।१।श्लो० २) का रघुनन्दन आदि। 'रघुवरौ' (४।१।श्लो०१) से राम, लक्ष्मण दोनों अभिप्रेत हैं, अतः 'रघुवर' शब्द उन दोनों नामों में प्रविष्ट किया गया है। द्वन्द्व समास होने पर दोनों पद पृथक्-पृथक् नाम के रूप में लिये गये हैं; यथा, भवानीशंकरौ (१।१।श्लो०२) में भवानी और शंकर।

प्रस्तुत कोश में मूल नाम मानने के आधार

इस कोश में निम्नलिखित आधारों पर मूल नाम का चयन किया गया है—

(१) वह शब्द मूल नाम है, अधिक परिचित है, उसका मानस में अनेकशः प्रयोग हुआ है।

मानस के अधिकांश नाम इसी कोटि में आते हैं।

(२) वह शब्द मूल नाम है, परिचित है, उससे अधिक प्रसिद्ध नाम होते हुए भी मानस में उसका प्रयोग अधिक स्थानों पर हुआ है और प्रसिद्ध नाम का कम स्थानों पर। इसीलिए अजोध्या और ब्रह्मा की जगह क्रमशः अवध और विधि नाम गृहीत हुए हैं। लेकिन अधिक स्थलों पर प्रयुक्त नाम दुर्बोध होने पर सुबोध नामों को ही स्वीकार किया गया है; जैसे, कमठ के स्थान पर कच्छपु, महि की जगह भूमि। लक्ष्मी के लिए लच्छि की अपेक्षा रमा नाम का प्रयोग अधिक है, किन्तु वह सीता के लिए भी व्यवहृत हुआ है, अतः उसे मूल नाम नहीं माना गया।

(३) गृहीत नाम के पर्यायों में उस नाम के अतिरिक्त दूसरा मूल नाम नहीं है। सक्र, परसुराम, विष्नु, बिस्वामित्र, गंगा आदि की अपेक्षा क्रमशः सुरपति, भृगुपति, हरि, कौसिक, सुरसरि आदि अधिक स्थानों पर प्रयुक्त हैं, किन्तु ये मूल नाम नहीं। अतः सक्र, परसुराम, बिष्नु, बिस्वामित्र, गंगा आदि को ही मूल नाम के रूप में ग्रहण किया गया है।

(४) एक भी मूल नाम न होने पर सम्बन्धसूचक आदि नामों में सर्वाधिक प्रयुक्त नाम को ही मूल नाम माना गया है; जैसे, सुरगुरु।

(५) संगति की दृष्टि से, दो या अधिक भेदों का द्योतन करने के कारण भी; मूल नाम माना गया है; यथा, भवानी। इसमें पार्वती के पूर्वजन्म (सती) और उत्तरजन्म (पारबती) का एक साथ परिचय मिल जाता है, सती और पारबती के पृथक् परिचय का प्रयोजन नहीं। इसी तरह माया शब्द है। इसमें विद्या, अविद्या, दोनों का परिचय आ जाता है।

प्रस्तुत कोश को व्याख्यात्मक कहने का कारण

इस कोश के निर्माण में आद्योपान्त व्याख्यात्मक दृष्टि रही है। किसी नाम के सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञातव्य है, वह सब यथासम्भव एक स्थान पर प्रस्तुत कर दिया गया है। इसके अधिकांश नामों में दो प्रकार की सामग्री है—मानसेतर और मानस पर आधारित। मानसेतर सामग्री पहले और मानस पर आधारित सामग्री बाद में दी गयी है।

(१) **मानसेतर सामग्री**—यह सामग्री वेदों, उपनिषदों, पुराणों, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, आनंद रामायण, अध्यात्म रामायण, भुशुंडि रामायण, योगवाशिष्ठ, हिन्दी विश्वकोश (नगेन्द्रनाथ वसु), हिन्दी विश्वकोश (नागरी प्रचारिणी सभा), पुरानिक इन्साइक्लोपीड्य (वेट्टम मेनी), भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश (महामहो० चित्रेश्वर शास्त्री चित्राव), धर्मशास्त्र का इतिहास (महामहो० डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे), नारद भक्ति दर्शन, भक्तमाल तथा अन्यान्य अनेक ग्रन्थों से संगृहीत है। इसमें एक भी ऐसा प्रसंग नहीं जिसका पूरा-पूरा सन्दर्भ न दिया गया हो। नामों की प्रविष्टि में सर्वप्रथम परिचय-संकेत है; जैसे, अमरावति में 'इन्द्रपुरी। महा० वन० ४२।४२। देवताओं का आवास स्थान। आ० को०। आदि।' अनेक प्रविष्टियों में परिचय-संकेत के साथ (उससे पहले या बाद में) व्युत्पत्तिगत अर्थ भी दिया गया है; यथा, अगस्ति' (अगस्त्य) में '(१) अग (पर्वत) विन्ध्याचल को स्तंभित, नियंत्रित, राशीभूत करनेवाले, (२) अग (कुम्भ) में संहत, राशीभूत। आ० को०। एक महर्षि। किसी पात्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एकाधिक पौराणिक मत होने पर यथासंभव सभी मतों का समावेश किया गया है; यथा, ससि, सारदा, लच्छि, नारद, सुरगुरु आदि में। अनेक पात्रों का वंश-परिचय भी है; जैसे, अस्विनीकुमार, जम, चिरजीवी मुनि,

बिस्वामित्र, बसिष्ठ, मैना आदि का। दिनकर कुल, पुलस्ति, जनक, रावन, दच्छ आदि की वंशावली विस्तृत और एकाधिक स्रोतों से संकलित है।

इसके बाद ही बड़ा कोष्ठक आरम्भ होता है। इसमें अलग-अलग नामों के अन्तर्गत अलग-अलग तरह की सामग्री है। अवध, कासी आदि में उन स्थानों का माहात्म्य-निरूपण है। लंका, अमरावति आदि विस्तार से वर्णित हैं। ब्रह्म, माया, सांख्य सास्त्र जैसे जटिल विषय बोधगम्य रूप में प्रस्तुत हुए हैं। केवट, निषाद आदि में उन जातियों का भी परिचय दे दिया गया है। मवानी, रबि, गनेस आदि में उनके स्वरूप का भी वर्णन है। किन्तु प्रधानता कथाओं की है। इनके दो प्रकार हैं— (क) जिनका मानस में किसी न किसी रूप में संकेत है, तथा (ख) जिनका मानस में कोई संकेत नहीं। (क) सर्वाधिक कथाएँ इसी कोटि में हैं। गज, गनिका, ब्याध, स्वपच आदि का रामनाम से उद्धार, गंगा का अवतरण, उनके ब्रह्मद्रव या विष्णुपदी नाम का कारण, दण्डकवन का शापग्रस्त होना, असुराधिप नारी (वृन्दा) का विष्णु द्वारा शील-हरण, जय-विजय को विप्रशाप, निमि का पलकों में निवास, परसुराम, रावन, बलि आदि से सम्बन्धित अनेक कथाएँ इस कोश में समाविष्ट हैं। इनके साथ ही गंगा, गनेस, जजाति आदि के अन्तर्गत ऐसी कथाएँ भी हैं जिनका मानस में संकेत नहीं, किन्तु जिनकी जानकारी से उन पात्रों के सम्बन्ध में मानस के पाठकों की धारणा सुस्पष्ट होती है। (ख) इस कोटि में अस्विनीकुमार, देवहूति, मैनाक आदि से सम्बन्धित कथाएँ आती हैं, किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इन सब प्रसंगों के बाद बड़ा कोष्ठक बन्द होता है।

(२) **मानस के प्रसंग**— प्रस्तुत कोश में चरित्रों का धारावाहिक विवरण प्रस्तुत किया गया है और इस बात का ध्यान रखा गया है कि यथासम्भव क्रमबद्धता बनी रहे तथा वर्णन सुपाठ्य हो। केवल इस कोश को देखकर पाठक किसी चरित्र या नाम के सम्बन्ध में मानस में दी गयी पूरी जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसमें छोटा-बड़ा प्रत्येक कथन या प्रसंग सन्दर्भ-संवलित है, ऐसी कोई बात नहीं कही गयी जो संदर्भ से पुष्ट न होती हो। इस कोश में किसी मूल नाम के अन्तर्गत मानस के उन सब भिन्न-भिन्न स्थलों के प्रसंगों का समावेश किया गया है जिनमें वह मूल नाम या उसके पर्याय प्रयुक्त हुए हैं। धारावाहिक विवरण में जिन स्थलों या प्रसंगों को समाविष्ट करना उचित नहीं प्रतीत हुआ, उन्हें बाद में दिया गया है। फिर भी जो नाम बच गये, वे 'कथन' और 'उल्लेख' के रूप में अन्त में गृहीत हुए हैं। तात्पर्य यह कि इस कोश में सर्वत्र यह चेष्टा रही है कि कोई भी मूल नाम या उसका कोई भी पर्याय छूट न जाये। इसके बाद 'मूल शब्द' के अन्तर्गत उसके सब सन्दर्भ-संकेत हैं, फिर 'पर्याय' या 'इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द' में सब शब्द (नाम) और उनके सब सन्दर्भ-संकेत दे दिये गये हैं।

अनेक नामों में किसी कथन के स्पष्टीकरण के लिए कोष्ठक में कहीं उस कथन को व्याख्यायित किया गया है, कहीं तत्सम्बन्धी श्लोक उद्धृत हैं, कहीं किसी प्रसंग के सम्बन्ध में अन्य ग्रन्थों में दी गयी सामग्री कोष्ठक में प्रस्तुत की गयी है। ऐसे प्रसंगों के आधारों का भी सन्दर्भसहित उल्लेख हुआ है। हनुमान, भरद्वाज, राम, दशरथ, भरत, सागर, कैलास, कुंभकरन आदि की प्रविष्टियों को देखने पर यह बात स्पष्ट हो जायेगी। [विजया टीका और मानस-पीयूष पर आधृत ऐसी व्याख्याओं में कहीं-कहीं सन्दर्भ-संकेत (जैसे काण्ड, दोहा, चौपाई) नहीं दिये गये। वहाँ उन प्रसंगों या कथनों के संदर्भ ही मानने चाहिए जिनकी वह व्याख्या है; जैसे दसरथ में १।३२५ के बाद की कोष्ठकबद्ध व्याख्या आदि।] भवानी के अन्तर्गत सती और पारबती में बड़े कोष्ठकों में दिये गये शिवपुराण के प्रसंगों से यह समझ में आ जायेगा कि उपर्युक्त दोनों पात्रों के चित्रण में शिवपुराण का कितना प्रभाव है। रामचरितमानस की प्रविष्टि में रामचरितमानस और मानस-सर के रूपक को विभागों-उपविभागों में विभाजित करके उनकी व्याख्या की गयी है और कोष्ठकों में चारों घाट, संवादों की भूमिका और विस्तार, मानस की विभिन्न प्रतियों में सोपानों के नाम आदि का व्याख्यात्मक विवरण प्रस्तुत हुआ है। सिव और पारबती, काकभुसुण्डि और गरुड़, जागबलिक और भरद्वाज के संबंध में संवादों की दृष्टि से लिखा गया है, ताकि मानस को समझने का सूत्र पाठक को मिल जाये। निषाद, सुमंत्र आदि के विवरण में बीच-बीच में कथा के छूटे हुए प्रसंगों का कोष्ठकों में संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

चरित्रों के विरुदों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जा सके, इस दृष्टि से जिन विरुदों का एक से अधिक पात्रों के लिए प्रयोग हुआ है, उनके आगे कोष्ठकों में प्रतिनिर्देश (क्रॉस रेफरेंस) भी दे दिये गये हैं। प्रतिनिर्देश अनेक मूल नामों के भी हैं; यथा, मूल नाम है, 'सिव'। कोश में जहाँ शंकर या हर या महेश है, वहाँ उसके आगे लिख

दिया गया है— दे० 'सिव'। इसमें केवल एक व्यतिक्रम किया गया है। एकतनु के लिए प्रतापभानु द्वारा कृपानिधान, कृपासिंधु और दीनदयाल विरुद प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु अन्य पात्रों के लिए प्रयुक्त इन विरुदों के प्रतिनिर्देश में एकतनु का नाम नहीं दिया गया। एकतनु में ये विरुद गृहीत भी नहीं हुए, कारण, एकतनु कपटमुनि है और इन विरुदों से उसके सम्बन्ध में मिथ्या धारणा हो सकती है।

तुलसी की पर्याय-पद्धति

संस्कृत काव्य-परम्परा का अनुसरण कर तुलसीदास ने रूढ़, यौगिक, योगरूढ़ नामों में पर्यायवाची शब्दों का व्यापक रूप से प्रयोग किया है, कभी छन्द के अनुरोध से, कभी नाद-सौन्दर्य की दृष्टि से, कभी अर्थ-गाम्भीर्य के लिए और कभी पुनरावृत्ति से बचने के लिए। सामासिक शब्दों में :--

(१) कहीं प्रथम पद का पर्याय है और द्वितीय पद अपरिवर्तित है,
(२) कहीं द्वितीय पद का पर्याय है और प्रथम पद अपरिवर्तित है,
(३) कहीं पद-विपर्यय है, अर्थात्, प्रथम पद को द्वितीय स्थान पर रखा गया है और द्वितीय पद को प्रथम स्थान पर,
(४) कहीं दोनों पदों के पर्याय दिये गये हैं।
(५) तीन पदों का शब्द होने पर भी प्रक्रिया यही है, किन्तु उसमें दो पदों का-सा पद-विपर्यय नहीं होता।

निम्नलिखित उदाहरणों में उपर्युक्त पाँचों प्रकार के पर्यायों का समावेश हुआ है—

कुंभज
घटज
घटजोनी
घट संभव

प्रतापभानु
प्रताप दिनेसा
प्रताप रबि
भानु प्रतापा

नील सैल
नील गिरि
नील महीधर
गिरि नीला

कामतरु
कल्पतरु
कल्पद्रुम
देवतरु
बिबुधतरु
सुरतरु
सुर रूख

कामधेनु
कामद गाई
काम दुहा
काम सुरभि
सुरधेनु, धेनू
सुर सुरभी

अनंग, अनंगा
असम सर
बिषमबान
जलचर केतू
झषकेतू
बारिचर केतू

कलिजुग
कलिकाल, काला
काल कलि

सप्तरिषि, रिषीसा
रिषिसप्त

बिप्रचरन
धरासुर पद

रामचरितमानस
रघुबरचरितमानस
रामचरितसर
हरिचरित्रमानस आदि

पात्रों की दार्शनिक या चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने के लिए तुलसीदास ने जिन पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया, उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर दिया गया है—

(१) सम्बन्धबोधक —

(क) व्यक्तिसम्बन्धी— जानकिनाथू (राम), रामवल्लभा (सीता), तुलसीस (राम), उमानाथ (सिव), सुरेस सखा (दसरथ), कैकइ सुअन (भरत) आदि।

(ख) समष्टिसम्बन्धी—सुरस्वामी (राम), सर्वाधिप (सिव) आदि।

(ग) वंशसम्बन्धी— दिनकर कुल केतु (राम), भानुकुल केतू (दसरथ), रघुकुलमनि (दसरथ, राम) आदि।

(घ) स्थानसम्बन्धी— कोसलपुर भूपा (राम), अवनिकुमारी (सीता), बिस्वनाथ (सिव), नाकपति (सक्र), अवध भुआल (दसरथ) आदि।

(२) गुणबोधक — आसुतोष (सिव), कृपानिधि (राम, बिष्नु, सिव, जागबलिक, लोमस, काकभुसुंडि), हरि (राम, बिष्नु, ब्रह्म, कृष्न), दीनदयाला (सिव, बिष्नु, नारद, कपिल, राम) आदि।

(३) चरित्रबोधक — खरारी (राम, बिष्नु), असुरारी (राम, बिष्नु), अनँग आराती (सिव), पुरंदर (सक्र) आदि।

(४) रूपबोधक — सारँगपानी (राम, बिष्नु), चंद्रमौलि (सिव), बृषकेतु (सिव), सहसनयन (सक्र) आदि।

(५) स्वरूपबोधक — अंतरजामी (राम, सीता, सिव), भगवान (राम, ब्रह्म, सिव, बिष्नु, लोमस), अमल (ब्रह्म, राम), आदिसक्ति (सीता), अजा (पारबती), सिवधाम (सिव) आदि।

इतने प्रकार के नामों का प्रयोग राम, सिव जैसे बड़े चरित्रों में ही हुआ है। जहाँ नामों के प्रकार कम हैं, वहाँ उनके वर्ग भी कम हैं; यथा, भरत, लखन आदि में। अनेक पात्रों के नामों का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया। उनके लिए प्रयुक्त नामों को मूल नाम के बाद 'पर्याय' या 'इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द' कहकर एक साथ दे दिया गया है; जैसे, भवानी, रबि, सारदा आदि में।

प्रस्तुत कोश के सन्दर्भ-संकेत समझने की विधि

(१) **मानस के संदर्भ-संकेत**—ये अधिकांशतः तीन संख्याओं के हैं और एक संख्या दूसरी संख्या से खड़ी पाई द्वारा पृथक् की गई है। इनमें प्रथम संख्या काण्ड के लिए है। मानस में सात काण्ड हैं— बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड, जिनके लिए क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, और ७ का प्रथम संख्या के रूप में व्यवहार हुआ है। दूसरी संख्या उसी काण्ड के दोहे के लिए प्रयुक्त है और तीसरी संख्या उस दोहे के अन्तर्गत (अर्थात् उस दोहे से पहले) आयी हुई चौपाई के लिए। (मानस में चौपाई दो पंक्तियों की है, किन्तु इस कोश में मानस-पीयूष के आधार पर एक पंक्ति या दो चरणों की एक चौपाई मानी गयी है।) निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

सिव के अन्त में मूल शब्द के अन्तर्गत चौथा संदर्भ है १।१६।८। इसका तात्पर्य हुआ बालकाण्ड के उन्नीसवें दोहे से पहले की आठवीं चौपाई 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको'। इसी तरह ७।५५।६ का तात्पर्य है उत्तरकाण्ड के पचपनवें दोहे से पहले की छठी चौपाई 'बोले सिव सादर सुख पाई'। कई स्थानों पर चौपाई की जगह बिना संख्या के छन्द हैं; जैसे, १।१०२। छं०, और कितने ही स्थलों पर संख्यायुक्त छन्द हैं; यथा, १।२११।छं० ४। इन्हें पहले की तरह ही देखना चाहिए।

अरण्यकाण्ड और लंकाकाण्ड के कुछ स्थलों पर एक साथ दो बार छन्दों का (जिसे मानस में छं० कहा गया है) प्रयोग हुआ है— पहले दो पंक्तियों का छन्द है, फिर चार पंक्तियों का। ऐसे स्थलों के संदर्भ-संकेत देते समय पहले प्रयुक्त होने वाले छन्द का नाम — तोमर — इस कोश में दे दिया गया है; यथा, ३।२०।तोमर १, ६।१०१। तोमर ६ आदि। उपर्युक्त दोनों सन्दर्भ राम के लिए प्रयुक्त हैं। मानस में देखें, तो अरण्यकाण्ड के दोहा संख्या २० के पहले तोमर १ में तथा लंकाकाण्ड के दोहा संख्या १०१ के पहले तोमर ६ में राम शब्द मिल जायेगा।

चौपाई या छन्द की जगह जहाँ श्लोक आये हैं, वहाँ तीसरी संख्या में श्लो० १, श्लो० २ आदि व्यवहृत हुए हैं। राम के मूल शब्द में २।१। श्लो० ३ का तात्पर्य हुआ अयोध्याकाण्ड के पहले दोहे के अन्तर्गत दिया गया तीसरा श्लोक।

सुन्दरकाण्ड को छोड़कर अन्य छहों काण्डों में दोहा १ से पूर्व और मंगलाचरण या श्लोकों के बाद दोहे या सोरठे का प्रयोग हुआ है। यह तीसरी संख्या में आने वाले छन्द या चौपाई या श्लोक के स्थान पर व्यवहृत है। मानस के बालकाण्ड में सोरठों की संख्या दे दी गयी है, किन्तु अन्य काण्डों में दोहों या सोरठों की संख्या नहीं है। जहाँ एक ही दोहा या सोरठा है, वहाँ संख्या का प्रयोजन भी नहीं। एक से अधिक होने पर इस कोश में पाठकों की सुविधा के लिए क्रम से उनकी संख्या का निर्देश कर दिया गया है; जैसे, ६।१। सो० १ या ७।१। दोहा ४ आदि।

सन्दर्भ-संकेत की तीन संख्याओं में कई जगह दूसरी संख्या दोहे की जगह सोरठा है। इसके लिए कोई पृथक् संकेत नहीं है। राम के मूल शब्द में ३।२।५ और ३।३।२ को मानस में देखें, तो अरण्यकाण्ड के सोरठा संख्या २ के पहले पाँचवीं चौपाई में एवं उसी काण्ड के सोरठा संख्या ३ से पूर्व दूसरी चौपाई में राम शब्द मिल जायेगा।

कई स्थलों पर केवल दो संख्याएँ हैं। इनमें पहली संख्या काण्ड की और दूसरी दोहे या सोरठे की है।

सन्दर्भ-संकेत स्पष्ट हो जाने पर किसी मूल नाम के लिए आये विवरणों को समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये। उदाहरण के लिए अंगद को लें। उसमें छोटे कोष्ठक में दिये गए ४।२३ - ४।२५।६ के अन्तर्गत जो कथन है, वह किष्किन्धाकाण्ड के दोहा २३ से लेकर दोहा २५ से पहले की छठी चौपाई तक की बात का, अंगद के सन्दर्भ में, संक्षिप्त रूप है। इसी तरह ६।२२ क- ६।२४ में उन दोनों सन्दर्भों के बीच आये अंगद-रावण-संवाद का सार दिया गया है। यहाँ एक बात द्रष्टव्य है। किसी प्रसंग में आया कोई नाम किसी विशेष सन्दर्भ में न होने पर भी कथन को समझने की सुविधा के लिए उस सन्दर्भ विशेष में भी दे दिया गया है। जैसे, अंगद के सन्दर्भ (५।४४) में विभीषन नाम नहीं है, किन्तु प्रसंग उन्हीं से सम्बन्धित है, अतः इस सन्दर्भ में उनका नाम भी दे दिया गया है। इसी तरह अन्य मूल नामों के विवरणों को भी समझना चाहिए। इतने सन्दर्भ-संकेत जान लेने पर कहीं किसी तरह की असुविधा की गुंजाइश नहीं रह जाती।

(२) **मानसेतर सन्दर्भ-संकेत**— मानसेतर ग्रन्थों की संख्याएँ अनेक हैं और उनके सन्दर्भ-संकेत भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। कई ग्रन्थों में मानस की तरह ही तीन संख्याएँ हैं; जैसे, वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म रामायण में काण्ड/सर्ग/श्लोक, श्रीमद्भागवत में स्कन्ध/अध्याय/श्लोक, श्री विष्णुपुराण में अंश/अध्याय/श्लोक आदि। इन्हें देखने की पद्धति मानस की पद्धति जैसी ही है। कई ग्रन्थों में संख्याएँ केवल दो हैं। उनमें ग्रन्थ-नाम के बाद उसके पर्व (महाभारत) या खण्ड (स्कन्दपुराण, पद्मपुराण) का नाम या पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध (लिंगपुराण) का उल्लेख है और उसके बाद अध्याय/श्लोक का। इस कोश में ऐसे ग्रन्थों से सम्बन्धित पहली संख्या अध्याय के लिए है और दूसरी श्लोक के लिए। पर्व, खण्ड, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध आदि का संकेत अक्षरों में दे दिया गया है।

जिन ग्रन्थों के सन्दर्भ में तीन संख्याएँ अपेक्षित हैं, उनमें दो संख्याएँ होने पर समझना चाहिए कि तीसरी संख्या अर्थात् श्लोक का संदर्भ नहीं है; जैसे, गंगा में वा० रा० १।४३-४४। इसका अर्थ हुआ कि संदर्भ बालकाण्ड के सर्ग ४३ एवं ४४ के हैं। जिन ग्रन्थों के सन्दर्भ में दो संख्याएँ होनी चाहिए, किन्तु है एक ही, वहाँ समझना चाहिए कि दूसरी संख्या (श्लोक) का सन्दर्भ नहीं है; जैसे, 'असुराधिप नारी' में प०पु०उ० ४, १५-१६। इसका तात्पर्य हुआ कि सन्दर्भ पद्मपुराण के उत्तरखण्ड अध्याय ४ और अध्याय १५ एवं १६ के हैं। इसी पद्धति पर अन्य सन्दर्भ-संकेतों को भी सरलता से समझा जा सकता है। स्पष्टीकरण की जरूरत संख्या के लिए होती है, अक्षरों के संकेत तो ग्रन्थों की संदर्भ-सूची में मिल जाते हैं। इस कोश के किसी सन्दर्भ-संकेत के आधार पर मूल ग्रन्थ को देखने पर बात स्वतः स्पष्ट हो जायेगी। गद्य-ग्रन्थों के सन्दर्भ-संकेतों में पृष्ठ संख्या दी गयी है, अतः उनमें कुछ न समझने का कोई प्रश्न नहीं।

मित्रवर श्री विष्णुकान्त शास्त्री इस ग्रन्थ के प्रेरक और निर्देशक रहे हैं। गहरी निष्ठा और कठिन श्रम से पुत्रवत् राजेन्द्र शर्मा ने पाण्डुलिपि की पूरी सामग्री को मूल ग्रन्थों से मिलाया, अनुज-तुल्य मृत्युंजय उपाध्याय ने टंकित प्रतियों को परिश्रमपूर्वक पाण्डुलिपि से मिलाकर संशोधित किया। ये सब मेरे इतने अपने हैं कि इनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन भी अनावश्यक और अशोभन प्रतीत होता है।

आज मुझे याद आ रही है अपनी ममतामयी माँ, मुझसे बड़ी-बड़ी आशाएँ करनेवाले और मेरी अकर्मण्यता पर स्नेहातिरेक से कभी-कभी क्षुब्ध हो जाने वाले भाई बद्रीनाथ, पितृतुल्य बैजनाथ भैया, अमरनाथ भैया और अग्रज-सदृश संवेदनशील मित्र श्यामसुन्दर शुक्ल, जो आज इस कृति को प्रकाशित रूप में देखकर भाव-विह्वल हो जाते।

इस ग्रन्थ के निमित्त आर्थिक सहयोग देने के लिए मैं श्रीमती मृदुला गुप्ता का कृतज्ञ हूँ।

यह ग्रन्थ दीर्घ काल-खण्ड और अनेकानेक व्यवधानों के बीच पूरा हुआ है। इसमें कई त्रुटियाँ सम्भव हैं। वे मेरी सीमाएँ हैं। इसके गुण और उपलब्धियाँ उनकी हैं, जिन्होंने इस रचना का श्रेय मुझे दिया। सचमुच, मुझे अनुभव हो रहा है कि मैं केवल साधन ही रहा हूँ, केवल निमित्त; कर्ता वे हैं जिनके चरित से यह ग्रन्थ जुड़ा है।

कलकत्ता

—जगन्नाथ सेठ

भूमिका में संकेतित ग्रन्थों की सूची

१. निराला ग्रन्थावली, खण्ड ३ में संकलित 'रामायण की अन्तर्कथाएँ'—सम्पादक, ओंकार शरद, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्र० सं० स० २००३। अन्तर्कथाओं का रचनाकाल अनुमानतः १९२५-१९३० ई० है।

२. कल्याण का 'मानसांक', ग्रीताप्रेस, गोरखपुर, स० १९३८।

३. रामचरितमानस की भूमिका— रामदास गौड़, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, प्र० सं०, स० २०००।

४. विष्णुकान्त शास्त्री एवं जगन्नाथ सेठ द्वारा सम्पादित 'तुलसीदास—आधुनिक सन्दर्भ में' (बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, प्र० सं० १९७६ ई०) नामक ग्रन्थ में संकलित कृष्णाचार्य के लेख 'गोस्वामी तुलसीदास-सम्बन्धी शोध-प्रबन्धों का संक्षिप्त सर्वेक्षण' के अन्तर्गत—रामचरितमानस की अन्तर्कथाओं का आन्तरिक अध्ययन—बी०डी० पाण्डेय (आगरा वि०, १९९२); गोस्वामी तुलसीदास के नाम-संकेतों एवं कथा-संकेतों का अध्ययन—प्रेमलता दुबे (आगरा वि०, १९९५)।

५. रामकथा के पात्र—डॉक्टर म० ह० राजूरकर, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, प्र० सं० १९७२।

६. रामचरितमानस की नामानुक्रमणिका—राजेन्द्रप्रसाद वर्मा, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० १९७६ ई०।

७. मानस चरित्र कोश — डॉक्टर म० ह० राजूरकर, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र० सं० १९८०।

८. हिन्दी व्याकरण — पण्डित कामताप्रसाद गुरु, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम सं०, स० २०१४, पृ० ७१।

९. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका — बाबूराम सक्सेना, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, तृ० सं० १९५५, प्राक्कथन पृ० च, पृ० ५१।

१०. हिन्दी व्याकरण — पण्डित कामताप्रसाद गुरु, पृ० ७०।

११. --- वही --- पृ० ७१, ७२।

१२. --- वही --- पृ० ६५।

१३. --- वही --- पृ० ६६।

१४. --- वही --- पृ० ६६।

१५. ए ग्रैमर ऑव इंग्लिश लैंग्विज, वाल्युम २ — जॉर्ज ओ० कुर्मे, डी०सी० हीथ ऐण्ड कं०, बोस्टन, लण्डन आदि, कॉपीराइट १९३५।

१६. ए ग्रैमर ऑव कंटेम्पररि इंग्लिश— रैण्डल्फ क्वर्क, सिडनी ग्रीनबाम एवं ज्याफ्री लीच, सेमिनार प्रेस, न्यूयार्क, लण्डन, प्र० सं० १९७२।

१७. ए ग्रैमर ऑव प्रेजेण्ट-डे इंग्लिश— आर० डब्लू० पेन्स, दि मैकमिलन कं०, न्यूयार्क, तेरहवाँ मुद्रण १९६०।

१८. ऐन इण्डेक्स टु दि नेम्स इन दि महाभारत— एम० सोरेनसेन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली आदि, प्र० सं० का पुनर्मुद्रण, १९७८।

१९. ए डिक्शनरि ऑव दि कैरिक्टर्स ऐण्ड प्रॉपर नेम्स इन दि वर्क्स ऑव शेक्सपियर — फ्रैंसिस ग्रिफिन स्टोक्स, जॉर्ज जी० हैरप ऐण्ड कं० लि०, लण्डन, प्र० प्रकाशन १९२४।

सन्दर्भ-संकेत और संदर्भ-ग्रन्थ सूची

अ०पु० – अग्निपुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
अ०रा० – अध्यात्म रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
अमर० – अमरकोश, प्रकाशक बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी, १९४८।
आ०को०– संस्कृत-हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, द्वि० सं० का पुनर्मुद्रण, दिल्ली, १९७७।
क० – कवितावली – टीकाकार लाला भगवान दीन एवं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, द्वि सं० २००२।
का० द०– काव्य-दर्पण– पं० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, तृ० सं०, १९५५।
का०प्र० – काव्य-प्रकाश– अनु० पं० हरिमंगल मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० सं०, २०००।
काव्य० – काव्य-प्रदीप– पं० रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १६वाँ सं०, १९६९।
काशि० – रामचरितमानस, काशिराज संस्करण– सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र०सं०, १९६२।
कुमार० – कुमारसंभव, कालिदास ग्रन्थावली – पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, तृ० सं० २०१९।
केन० – केनोपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
ग०अ० – श्री गणेश अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
गी० – गीतावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, नवम सं० २०१७।
गीता० – श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, ४६वाँ सं०, २०१७।
छा० – छान्दोग्योपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
दु०स० – दुर्गासप्तशती, गीता प्रेस, गोरखपुर, १३वाँ सं०, २०३२।
दे०भा० – श्री देवीभागवत, मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, काशी, २००६।
दो० – दोहावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, १३वाँ सं०, २०१४।
ध०इ० – धर्मशास्त्र का इतिहास, महामहोपाध्याय डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
  – प्र०–प्रथम भाग, तृ० सं०, १९८०
  – द्वि०–द्वितीय भाग, द्वि सं०, १९७३
  – तृ०–तृतीय भाग, द्वि० सं०, १९७५
  – च०–चतुर्थ भाग, प्र० सं०, १९७३
  – प०–पंचम भाग, प्र० सं०, १९७६।
न० पु० – नरसिंह पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
नारद० – नारदभक्ति - दर्शन अंक, 'परमार्थ' मासिक पत्रिका का १८वाँ विशेषांक (स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के प्रवचन), मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर।
प०पु० – पद्मपुराण, प्र० मनसुखराय मोर, कलकत्ता
  – सृ०–सृष्टिखण्ड, प्र० सं०, १९५७
  – भू० – भूमिखण्ड, प्र० सं०, १९५७
  – स्व० – स्वर्गखण्ड, प्र० सं०, १९५७
  – ब्र० – ब्रह्मखण्ड, प्र० सं०, १९५७

— पा० — पातालखण्ड, प्र० सं०, १९५८
— उ० — उत्तरखण्ड, प्र० सं०, १९५९
— क्रि० — क्रियायोगसार खण्ड, प्र० सं०, १९५८।
पा० — पार्वती मंगल, गीता प्रेस, गोरखपुर, १०वाँ सं०, २०३२।
प्रा० च०— भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश, महामहोपाध्याय सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मंडल, पूना, १९६४।
बृ० उ० — बृहदारण्यकोपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
बृ० को०— बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लि०, च० प० सं०, २०३०।
ब्र० पु० — ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, सं० १९८८
— ब्रह्म० — ब्रह्मखण्ड
— प्र० — प्रकृतिखण्ड
— गण० — गणपतिखण्ड
— कृ०— श्रीकृष्णजन्मखण्ड।
भक्त — भक्तमाल, श्री प्रियादासजी प्रणीत टीका, भक्तिसुधा-स्वाद तिलक सहित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, तीसरी बार, १९३७।
भा० — श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सप्तम सं०, २०३३
— मा० — माहात्म्य (स्कन्ध १ से पूर्व)
— माहा० — माहात्म्य (स्कन्ध १२ के बाद)।
भा० द०— भारतीय दर्शन, पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, पं० सं०, १९५७।
भु० रा०— भुशुण्डि रामायण, सं० डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं०, १९७५।
— पूर्व — पूर्वखण्ड
महा० — महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर
— आदि० — आदिपर्व
— सभा० — सभापर्व
— वन० — वनपर्व
— वि० — विराटपर्व
— उद्यो० — उद्योगपर्व
— भी० — भीष्मपर्व
— द्रोण० — द्रोणपर्व
— कर्ण० — कर्णपर्व
— शल्य० — शल्यपर्व
— सौ० — सौप्तिकपर्व
— शा० — शान्तिपर्व
— अनु० — अनुशासनपर्व
— आश्व० — आश्वमेधिकपर्व
— मौ० — मौसलपर्व
— महाप्र० — महाप्रस्थानिकपर्व
— स्वर्ग० — स्वर्गारोहणपर्व
— दा० पा० — दाक्षिणात्य पाठ।
मा० उ०— माण्डूक्योपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
माता० — श्री रामचरितमानस, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६।

मा० पी०— मानस-पीयूष, पं० अंजनीनन्दन शरण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
मा० पु०— मार्कण्डेय पुराण, लाला श्यामलाल हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, प्रथम बार, १६४१।
योग० — पतंजलिकृत योगदर्शन, गीता प्रेस, गोरखपुर।
यो० वा०— श्री योगवाशिष्ठ भाषा, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सातवीं बार, १६२८।
रघु० — रघुवंश, कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, तृ० सं०, २०१६।
रा० उ० ता०— श्री रामोत्तरतापनीयोपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
रा० पू० ता०— श्री रामपूर्वतापनीयोपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
रा० प्र० — रामाज्ञा प्रश्न, गीता प्रेस, गोरखपुर, ष० सं०, २०२८।
लि० पु०— लिंगपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, प्र० सं०, १६६०।
व० पु० — वराह पुराण, लक्ष्मीवेंकटेश्वर मुद्रणालय; कल्याण, मुंबई, संवत् १६८०।
वा० रा०— श्री वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, तृ० सं०, २०३३।
वा० वि०— वाङ्मय विमर्श, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पूर्णा प्रकाशन, प्र० सं०, २०१४।
वि० — श्री रामचरितमानस विजया टीका, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, इण्डियन डवलपमेंट ट्रस्ट, कलकत्ता, १६८०।
वि० अ०— श्री विष्णु अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
वि० को०— हिन्दी विश्वकोष, नगेन्द्रनाथ बसु।
वि० प० — विनय पत्रिका, लाला भगवानदीन एवं पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
वि०पु० — श्री विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, अष्टम सं०, २०३३।
शि० पु०— श्री शिव महापुराण, लाला श्यामलाल हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, प्र०सं०, १६६६
    — रु०सृ० — रुद्रसंहिता सृष्टिखण्ड
    — रु० स० — रुद्रसंहिता सतीखण्ड
    — रु० पा० — रुद्रसंहिता पार्वतीखण्ड
    — रु० कु० — रुद्रसंहिता कुमारखण्ड
    — शत० — शतरुद्रसंहिता
    — उ० — उमासंहिता
    — वा०पू० — वायवीयसंहिता पूर्वखण्ड
    — वा० उ० — वायवीयसंहिता उत्तरखण्ड।
श्वेता० — श्वेताश्वतरोपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सं०आ० — संस्कृत आलोचना, बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्र० सं०, १६५७ ।
सं० दे० भा०—संक्षिप्त देवीभागवत अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सं०ना०पु०—संक्षिप्त नारद-विष्णु पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सं०ब्रह्मपु०—संक्षिप्त ब्रह्मपुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर
सं०ब्र०पु०— संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर (खण्डों के नामों के लिए दे०ब्र०पु०)।
सं०मा०पु०—संक्षिप्त मार्कण्डेय पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सं०व०पु०— संक्षिप्त वराह पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सं०शि०पु०— संक्षिप्त शिव पुराण अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सर० — सरस्वतीरहस्योपनिषद्, उपनिषद् अंक (कल्याण), गीता प्रेस, गोरखपुर।
सा०को०— हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी
    — १— भाग १, प्र०सं० २०१५
    — २— भाग २, प्र०सं० २०२०।

सू०अ० — सूर्य अंक (कल्याण), गीताप्रेस, गोरखपुर।
सू०सा० — सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
स्क० पु०— स्कन्द पुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता
— मा० — माहेश्वरखण्ड, द्वि० सं०, १९६५
— कौ० — कौमारखण्ड, द्वि० सं०, १९६५
— वै० — वैष्णवखण्ड, प्र० सं०, १९६०
— ब० — श्री बदरिकाश्रममाहात्म्यारम्भ
— ब्रह्म० — ब्रह्म खण्ड, प्र० सं०, १९६१
— ब्र० — ब्रह्मोत्तरखण्ड
— का० — काशी खण्ड, प्र० सं०, १९६१।
स्तो० — स्तोत्र रत्नावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०वाँ सं०, २०२८।
ह० को०— हलायुध कोश, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, द्वि० सं०, १९६७।
ह० पु० — हरिवंश पुराण, सर्वहितैषी कं०, रामघाट, बनारस सिटी।
हि० — हिन्दुत्व, रामदास गौड़, प्र० शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी, प्र० सं०, १९९५।
हि० अ०— हिन्दी साहित्य का अतीत, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं०, २०१५।
हि० क० को०—हिन्दी कथा कोश, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९५४।
हि० ध० — हिन्दू धर्मकोश, डॉ० राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्र० सं०, १९७८।
हि०वि०को०— हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हि०श०सा०— हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हि०सा०द्वि०— हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्र०सं०, १९५६।
हि०सा०भू०— हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथम बार, १९४०।
आइ०एम०—ऐन इण्डेक्स टु दि नेम्स इन दि महाभारत, एस० सोरेनसेन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली प्र०सं० का पुनर्मुद्रण, १९७८।
पी०ई० — पुरानिक इन्साइक्लोपीड्य, वेट्टम मनी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पं०सं० का पुनर्मुद्रण, १९७६।

अक्षर-चिह्न संकेत

उ०	उल्लेख
जाति०	जातिवाचक
दे०	देखिए
दो०	दोहा
द्र०	द्रष्टव्य
पाद०	पाद-टिप्पणी
व्या०	व्याख्या
श्लो०	श्लोक
सो०	सोरठा
[ ]	मानसेतर प्रसंग
~	से विवाहित
>	सन्तान

R
९.१
४४

अंकुस — प्रभु के चरण-तल के चिह्नों में एक।

[प्रभु-चरण-तल के चिह्न मंगलदायक। इनके ध्यान, स्मरण से भक्तों के मन को सुख, आश्वासन, अभय आदि। इनकी महिमा अपार। (सन्तनि सहाय काज धारे राम नृपराज, चरण-सरोज में चिह्न सुखदाइये। मन ही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं ताके लिए 'अंकुश' लै धार्‌यो, हिये ध्याइये।। सठता सतावै शीत, ताही में 'अम्बर' धर्‌यो, हर्‌यो जन शोक ध्यान कीन्हें सुख पाइये। ऐसे ही 'कुलिश' पाप-पर्वत के फोरिबे को, भक्तिनिधि जोरिबे को 'कंज' मन ल्याइये।। छिनु में सभीत होत कलि की कुचाल देखि 'ध्वजा' सो विशेष जानो अभय को विश्वास है। आदि। भक्त, पृ० ६१-६२)

'महाभाष्य', 'तपस्वीभाष्य' आदि के अनुसार चरण-तल के चिह्न वस्तुतः अड़तालीस। चौबीस दक्षिण पद-कंज में और चौबीस वाम में। प्रभु के दक्षिण पद-कंज के चिह्न ही जानकी के वाम पद-कंज में, वाम पद-कंज के चिह्न जानकी के दक्षिण पद-कंज में। भक्त०, पृ० ५५, ६०। यामुनाचार्य के आलवन्दार स्तोत्र में इनकी संख्या सात-शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, अरविन्द, अंकुश, वज्र (कदा पुनः शंखरथांगकल्पकध्वजारविन्दांकुशवज्रलांछनम्। त्रिविक्रम! त्वच्चरणाम्बुजद्वयम्मदीय मूर्द्धामनलं करिष्यति।।३१)

मानस १।१९९।३ में तीन चिह्न—ध्वज, कुलिश, अंकुश ।७।१३।छं० ४, ७।७६।७ में ये तीन और चतुर्थ कंज। भा० के धरणी-धर्म-संवाद में भी इन्हीं चार चिह्नों का उल्लेख (तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृतांगी। भा० १।१६।३३।)]

इसका उल्लेख शिशुरूप प्रभु के चरण-शोभा-वर्णन में (१।१९९।३), वेदों द्वारा पदकंज-वन्दना में (७।१३।छं० ४)।

मूल शब्द — १।१९९।३, ७।१३।छं० ४।

अंगद — किष्किंधा के वानरराज वाली और तारा के पुत्र। इन्द्र के पौत्र। वा० रा० १।१७।१०, ६।[illegible]।२५। प्रा० च० के अनुसार वृहस्पति के अंश से उत्पन्न। अतः भाषण-कला में निपुण। युवराज।

कीस-समाज-वंदना में इनका उल्लेख (१।१८।१)। मरण पूर्व वाली द्वारा इनके विनय, बल का बखान। इन्हें राम को समर्पित कर दास बनाने का अनुरोध (४।१०।छं० २)। [न चात्मानमहं शोचे — यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमंगदं कनकांगदम्। तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः। वा० रा० ४।१८।५०, ५२।] राम-आज्ञा से लक्ष्मण का इन्हें युवराज बनाना (४।११)। इनके सहित राज्य करने का सुग्रीव से राम-कथन (४।१२।६)। कुपित लक्ष्मण के पास आ इनकी विनती और अभय-प्राप्ति (४।१९-४।२०।१)। अंगदादि कपियों के साथ सुग्रीव का राम से मिलने जाना (४।२०)। हनुमानादि के साथ इन्हें बुलाकर सीता की खोज के लिए दक्षिण दिशा में जाने का सुग्रीव-आदेश। प्रस्थान (४।२२-४।२३।८)। वन-पर्वतों में सीता की खोज। तृषा-व्याकुल सबके साथ इनका विवर-प्रवेश। स्वयंप्रभा-दर्शन। मज्जन, फलाहार। आँखें मूँदने पर स्वयं को सागर-तीर पर पाना (४।२३-४।२५।६)। अवधि बीतने पर भी सीता की सुधि नहीं। इन्हें विशेष चिंता—सुधि पाये विना लौटने पर सुग्रीव मारेंगे। वालि-वध के बाद ही प्राण लेते, पर राम के कारण रक्षा। मरण में अब संशय नहीं। सबका इन्हें आश्वासन। सागर-तट पर अनशन। जामवंत द्वारा उपदेश (४।२६।१-४।२६)। संपाति के आने पर सबको भीत देख इनका जटायु-प्रसंग छेड़ना (४।२७।७-८)। सागर-पार जाने के अपने सामर्थ्य पर इन्हें विश्वास, पर लौटने में संशय। जामवंत द्वारा इनकी योग्यता की सराहना, पर ये नायक, अतः इन्हें भेजना संभव नहीं (४।३०।१-२)।

सीता की सुधि पाने के बाद मधुवन में इनकी सम्मति से सबका फल खाना (५।२८।७)। विभीषण को लाने के लिए राम का हनुमान के साथ इन्हें भेजना (५।४४)। सुबेल पर्वत पर इनका और हनुमान् का राम के चरण-कमल दबाना (६।११।७)। जामवंत के परामर्श से राम का इन्हें दूत बनाकर लंका भेजना। इनके द्वारा विनती। राम-चरण-वंदना कर, उनकी प्रभुता को हृदय में रख, प्रस्थान। लंका-प्रवेश करते ही रावण-सुत से विवाद, संघर्ष और उसका वध। राक्षसों को भय। विना पूछे मार्ग दिखाना। इनका रावण को अपने आने का समाचार भेजना। रावण-सभा में प्रवेश। सभासदों का उठ खड़े होना। इनकी दृष्टि में रावण-रूप—'सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे'। रावण-सभा में विराजना (६।१७।३-६।१९)। रावण के पूछने पर अपना परिचय देकर आने का प्रयोजन बताना। अत्यन्त दीन-हीन बन, जानकी को आगे कर, परिजन-सहित प्रणतपाल राम के पास जा, अपने समस्त

110164

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

अपराधों को क्षमा कराने का रावण को इनका परामर्श। रावण को क्रोध। उसके पूछने पर व्यंग्यपूर्वक इनका वालि-पुत्र-रूप में अपना परिचय देना। रावण द्वारा वाली के कुशल प्रश्न पर इनके द्वारा रावण के भी शीघ्र वाली के निकट पहुँचने और राम-विरोध का प्रत्यक्ष फल देखने का कथन। शूर्पणखा के कर्ण-नासिका-छेदन का स्मरण कराके रावण की निर्वीर्यता का संकेत करना (६।२०।१-६।२२।८)। रावण की गर्वोक्ति के उत्तर में इनका कथन कि 'कोउ न हमारे कटक अस तो सन लरत जो सोह'। रावण-वध राम के लिए लघुता की बात। इनके वचनों से विद्ध रावण द्वारा लज्जा-क्षोभ को उपहास में भुलाने की चेष्टा। इनका उसे अपमानजनक पराजयों की याद दिलाना—पाताल में उसका बलि के हाथों बँधना, सहस्रार्जुन के यहाँ बंदी होना, वाली की काँख में दबे रहना (६।२२ क-६।२४)। भुजबल तपोबल के अहंकार के साथ राम को नर कहकर लघु बनाने की रावण की चेष्टा पर इनका रोषपूर्ण कथन—सहस्रार्जुन-हंता परशुराम का गर्व खर्व करने वाले राम को मनुष्य कहना वैसा ही जैसा कामदेव को केवल धनुर्धर, गंगा को साधारण नदी, कामधेनु को पशु, कल्पवृक्ष को केवल वृक्ष, गरुड़ को खग, शेषनाग को साधारण नाग, चिन्तामणि को पत्थर कहना। आदि। अपने मस्तकों को रीछ-वानरों के खेलने की गेंद बनाने की अपेक्षा राम को भजने का इनका रावण को परामर्श (६।२५।१-६।२७।७)। रावण की गर्वोक्तियों के उत्तर में इनकी व्यंग्योक्तियाँ। राम-अपमान का भय न होने पर रावण को पटक, उसकी स्त्रियोंसहित सीता को ले जाने की अपनी क्षमता का कथन। किन्तु इसमें भी बड़ाई नहीं, क्योंकि रावण उन चौदह प्रकार के प्राणियों में जो जीते-जी मृत समान। मरे को मारने में पुरुषत्व नहीं (६।२७।८-६।३१।५)। रावण के मुख से राम की निंदा सुन इनको क्रोध। दोनों भुजाओं को धरती पर पटकना। भूकम्प। सभासदों का गिरना, भागना। रावण का गिरते-गिरते सँभलना। उसके मुकुटों का गिरना। चार मुकुटों को उठाकर इनका राम के पास फेंकना (६।३१।६-६।३२।६)। क्रुद्ध रावण की इनको पकड़कर मारने की आज्ञा। सुनकर इनका मुसकराना। पृथ्वी को रीछ-वानर-विहीन करने और राम-लक्ष्मण को जीते-जी पकड़ने की उसकी आज्ञा सुन उनको कोप। रावण को धिक्कारना। राम-प्रताप का और तत्प्रेरित अपने सामर्थ्य का वर्णन करना (६।३२ख-६।३४।४)। अपने लिए 'लबार' शब्द का प्रयोग सुन इनका प्रण करके सभा में पैर रोपना। रावण पैर हटा दे, तो सीता को ये हार जायेंगे, राम-लक्ष्मण लौट जायेंगे। मेघनाद और अनेक सुभटों के हटाने पर भी पैर अटल। इनका रावण को पचारना। पैर पकड़ते समय उसे राम-चरण पकड़ने का इनका उपदेश। रावण को हतगर्व, लज्जित, श्रीहीन कर, राम-यश-वर्णन कर, रणभूमि में उसे खेला-खेलाकर मारने की चेतावनी दे, इनका प्रभु-आश्रय में लौटना (६।३४।५-६।३५क)।

मन्दोदरी द्वारा इनके प्रताप का उल्लेख (६।३७।३-४)। इन्हें पास बैठाकर मुकुटक्षेपण के संबंध में राम की जिज्ञासा। इनका उत्तर—चारों मुकुट साम-दाम-दण्ड-भेद, नीति-धर्म के चार चरण, जो रावण को छोड़ प्रभु के पास आ गये। इनका लंकागढ़ के समाचार सुनाना (६।३८।३-६।३८ख)। रण में व्याकुल वानरों का हनुमानादि के साथ इन्हें पुकारना (६।४३।२)। पवनसुत गढ़ पर अकेले गये, यह सुन इनका वहाँ पहुँचना। हनुमान् के साथ रावण-महल को गिराना। कपि-लीला कर नारि-वृंद को डराना। राम-सुयश सुनाना। गर्जन करते हुए निशाचर-संहार करना। उनके सिर तोड़ रावण के आगे फेंकना। प्रधान सेनापतियों के पैर पकड़ प्रभु के पास उछाल देना। प्रभु के शब्दों में हनुमान् के साथ इनकी शोभा—'मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे'। इनका प्रभु के पास लौटना। प्रदोष-बल पा राक्षसों के लौटने पर प्रभु का हनुमान् के साथ इन्हें बुलाना और युद्ध के लिए भेजना। इनकी हुंकार से राक्षसों का भागना (६।४३-६।४७।६) दूसरे दिन के युद्ध में मेघनाद का अन्य वानर-वीरों के साथ इन्हें ललकारना (६।५०।२)। अंगदादि के साथ लक्ष्मण का युद्ध के लिए जाना (६।५२)। अंगदादि को कुंभकर्ण का मूर्च्छित करना (६।६५)। मायामय रथ पर चढ़ मेघनाद का इन्हें विकल करना (६।७३।८)। मेघनाद के यज्ञ-विध्वंस के लिए राम का अंगदादि को बुलाकर लक्ष्मण के साथ भेजना। हनुमान्-अंगद पर मेघनाद का त्रिशूल-प्रहार। इनका उठकर पुनः आक्रमण (६।७५।६-६।७६।८)। लक्ष्मण के हाथों मरते हुए मेघनाद की जननी को धन्य कहना (६।७६)। अंगद-हनुमान् का रावण को पचारना (६।८०ग)। भागते हुए वानरों का इन्हें रक्षा के लिए पुकारना (६।८२।६)। अंगद हनुमानादि का रावण-यज्ञ-ध्वंस के लिए प्रस्थान। रावण-भवन में प्रवेश कर इनके द्वारा रावण को 'बक-ध्यानी' कह तिरस्कार और पद-प्रहार। यज्ञ-ध्वंस (६।८५।४-६।८५)। माया-रावणों से युद्ध और उन्हें मसलना (६।९६।छं०)। देवताओं को विकल देख रावण के पैर पकड़, भूमि पर गिरा, पद-प्रहार करना। प्रभु के पास लौटना

(६।९७।८-छं०)। रावण पर वृक्षों-पर्वतों का प्रहार करना (६।९८।३-४)।

विभीषण के राजतिलक के लिए सबके साथ इनका भी जाना (६।१०६।२-३)। अवधागमन के समय इन्हें भी राम का पुष्पक पर चढ़ाना (६।११८ख-६।११९।१)। सीता को रणभूमि दिखाते हुए राम का इनके द्वारा हत निशिचरों की ओर संकेत (६।११९।१०)। अयोध्या-दर्शन (७।४।२)। मनुज-शरीर धर हनुमानादि के साथ इनका भरत के स्नेह-शील की सराहना करना (७।८।१-३)। रामाभिषेक के समय प्रभु की ढाल-तलवार धारण करना (७।१२।छं०१)। सब की विदाई के समय इनका अपनी जगह से न हिलना (७।१७।८)। सबके जाने के बाद शरण के लिए प्रभु से इनकी आर्त्त प्रार्थना (असरन सरन ...... जलजाता) (७।१८।३-४)। निज उरमाल बसन-मनि पहनाकर, समझाकर, प्रभु का इन्हें विदा करना। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का इन्हें पहुँचाने जाना। प्रभु को अपनी याद दिलाते रहने की हनुमान् से इनकी प्रार्थना (७।१७ख-७।१९ख)। भुशुंडि-कथित मूल मानस-कथा में इनके सम्बन्ध में उल्लेख (७।६७क)।

मूल शब्द– १।१८।१ (अंगदादि), ४।१०।छं० २, ४।११, ४।१२।९,४।२० (अंगदादि), ४।२२, ४।२३।१, ४।२६।३, ४।२६।६, ४।२६।७, ४।२६।११, ४।२७।७, ४।३०।१, ५।२८।७, ५।४४, ६।११।७, ६।१७।५, ६।१७क, ६।१८।१, ६।१८।५, ६।१९।४, ६।२१।३, ६।२१।४, ६।२१।५, ६।२१।७, ६।२३।१, ६।२४।३, ६।२६।१, ६।२९।५, ६।३२।६, ६।३२ख, ६।३५।१३, ६।३७।४,६।३८।३, ६।४३।२, ६।४३, ६।४५।७, ६।४६।३, ६।४७।१, ६।४७।६, ६।५०।२, ६।५२ (अंगदादि), ६।५४, ६।६५, (अंगदादि); ६।७३।८, ६।७५।६ (अंगदादि), ६।७५, ६।७६।६, ६।७६, ६।८०ग, ६।८२।६, ६।८५।४, ६।८५।८,६।९९।छं०, ६।९७।८, ६।१०६।२, ६।११८ख, ६।११९।१०, ७।४।२, ७।८।१, ७।१२।छं०१, ७।१७।८, ७।१७ख, ७।१८क, ७।१९।२, ७।१९।१०

पर्याय– **जुबराज** – ४।२६।६, ५।२८, ६।१७ख, ६।१०८।३। जुबराजा – ६।३३।३, ६।७६।८।

बालिकुमार – ४।१९, ६।३८ ख, ७।६७क। बालिकुमारा – ६।१७।४, ६।२३।६, ६।३५।२।

बालितनय – ६।१७।६, ६।१९।७, ६।३२।१०, ६।३५क, ६।३८।५, ६।९८।३, ७।१८ख।

बालिसुत – ६।१८।२, ६।४३, ६।९७छं०, ७।१९ख।

अंबरीष – परम ज्ञानी भक्त राजर्षि।

वैवस्वत मनु ~ श्रद्धा > नभग > नाभाग > अंबरीष > विरूप, केतुमान्, शंभु। भा० ९।१।११; ९।४।१, १३; ९।६।१।

[एक बार इनके द्वारा द्वादशीप्रधान एकादशी व्रत का पालन। तीन रात के उपवास के बाद व्रत-पारण के समय ऋषि दुर्वासा का आगमन। राजा की भोजन करने की प्रार्थना स्वीकार कर ऋषि का यमुना-स्नान के लिए गमन। आने में विलम्ब। द्वादशी घड़ीभर शेष। राजा का धर्मसंकट—ऋषि को बिना भोजन कराये खाना पाप, द्वादशी रहते पारण न करना भी पाप। अतः विप्रों के परामर्श से इनका केवल जल से पारण करना। ऋषि का आना। स्थिति-अनुमान कर क्रोध। उनका अपनी जटा उखाड़कर उससे प्रलयकालीन अग्नि-सी कृत्या उत्पन्न करना। हाथ में तलवार ले कृत्या का राजा पर टूटना। राजा की रक्षा के लिए पहले से ही परमात्मा द्वारा नियुक्त सुदर्शन चक्र का कृत्या को भस्म करना। ऋषि की ओर बढ़ना। ऋषि का पलायन। किसी लोक में उनका कोई रक्षक नहीं। अंत में शिव के उपदेश से ऋषि का वैकुंठ जा प्रभु के चरणों में गिरना। प्रभु का उनकी रक्षा करने में असमर्थता प्रकट करना – भक्त उनके हृदय और वे भक्तों के हृदय (साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि। भा० ९।४।६८। राजा से क्षमा माँगने का भगवान का परामर्श। आकर ऋषि का अंबरीष के चरण पकड़ना। राजा का लज्जित हो चक्र की स्तुति करना। चक्र की शान्ति और दुर्वासा की मुक्ति। भा० ९।४-५। इनके द्वारा कथित आत्मराज्य-गाथा में राजा वही जो ज्ञानपूर्वक सबसे प्रबल शत्रु लोभ और तज्जन्य वृत्तियों-गुणों का दमनकर आत्मराज्य पर अधिकार करे, आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे। महा० आश्व० ३१।७-१३।]

चित्रकूट-सभा में भरत-निर्णय मानने का राम-कथन सुन, इनका स्मरण कर, देवताओं को निराशा (२।२६५।४)।

अकंपन – महासमर में देवताओं द्वारा भी जिसे कंपित करना संभव नहीं। वा० रा० ६।५५।८। एक निशिचर। रावण का एक सुभट।

अकेले जग जीतने में समर्थ कुमुख, कुलिसरद, धूमकेतु, अतिकाय के साथ इसका उल्लेख (१।१८०)। रण में अपनी सेना को विचलित देख इसका माया करना (६।४६।१०)। रावण का कुंभकर्ण को अन्य सुभटों के साथ इसकी मृत्यु का समाचार सुनाना (६।६२।११)।

मूल शब्द – १।१८०, ६।४६।१०, ६।६२।११।

अखय बट (अक्षय वट) – दीर्घायु सघन छायादार वृक्ष विशेष।

[पुराण-मत से यह कल्पान्तस्थायी (प्रलय में भी नाश नहीं)। श्रीकृष्ण के अंग से प्रकट। ब्रह्मतेजोमय। (अमरत्वं सदा कल्पे हरेश्चायतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते।।) इसकी परिक्रमा, पूजन आदि से महत्तम पापों से मुक्ति, वैकुंठ प्राप्ति। आदि। सं० ब्रह्मपु० ३१, पृ० ३६७। स्क० पु० में 'हिरण्यगर्भ' रूप इस वृक्ष का मूल सप्तपाताल में। का० ५१-५२। प्रलय-जल के साथ इसका बढ़ना। मानस २।२८६।६। माया-प्रलय में भटकते हुए मार्कण्डेय मुनि को इस वृक्ष के पत्र-पुट में लेटे, दोनों हाथों से चरणकमल को पकड़कर चूसते शिशुरूप भगवान के दर्शन। शिशु के अदृश्य होते ही प्रलय-दृश्य और वटवृक्ष भी अदृश्य। भा० १२।६। दे० 'चिरजीवी मुनि'। मृत्यु-विजय, विवाह और पुत्रोत्पत्ति के बाद मार्कण्डेय मुनि का प्रयागस्थित अक्षयवट के नीचे तप। न० पु० १०।१-४। गया तीर्थ में भी एक अक्षयवट। वहाँ पितरों के लिए दिया गया सब कुछ अक्षय। महा० वन० ८४।८३, ६५।१४।]

तीर्थराज प्रयाग में अक्षय वट, संत-समाज में अचल स्वधर्म-निष्ठा (१।२।११)। प्रयाग-कल्पवास में इसके स्पर्श से हर्ष (१।४४।५)। तीर्जराज की राजसी शोभा में संगम-सिंहासन पर इसका छत्र (२।१०५।७)। 'सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा।।' (२।२८६।६)।

मूल शब्द – १।४४।५, २।१०५।७। बटु – १।२।११, २।२८६।६।

अगस्ति' (अगस्त्य) – (१) अग (पर्वत) विन्ध्याचल को स्तम्भित, नियन्त्रित, राशीभूत करनेवाले, (२) अग (कुम्भ) में संहत, राशीभूत। आ० को०। अगस्त्य। एक महर्षि।

(१) पुलस्त्य और हविर्भू के पुत्र। दूसरे जन्म में जठराग्नि। भा० ४।१।३६। (२) मित्रावरुण के पुत्र। भा० ६।१८।५-६। (३) मित्र के पुत्र। वा० रा० ७।५७।५-६।

[जन्म – (१) ऋग्वेद के अनुसार आदित्य-यज्ञ में उर्वशी को देखकर वासतीवर नामक यज्ञीय कुंभ में मित्र और वरुण का रेतःस्खलन। मुहूर्त्तभर में उससे अगस्त्य और वसिष्ठ की उत्पत्ति। अगस्त्य की संज्ञा 'मान'। सायणाचार्य द्वारा ऋग्वेद के एक ऋक् की व्याख्या में वृहद्देवता से कई श्लोक उद्धृत, जिनके अनुसार स्खलित रेत का कलश में, जल में, स्थल में, कई जगह गिरना। उससे क्रमशः अगस्त्य, द्यूतिमान् मत्स्य और वसिष्ठ का जन्म। अगस्त्य का आकार हल की माची जैसा; इस आकार की परिमिति के कारण ये 'मान' नाम से प्रसिद्ध। वि० को०।]

(२) निमि के शाप से विदेह हो जाने पर (दे० 'निमि') देह प्राप्ति के लिए वसिष्ठ का अपने पिता ब्रह्मा के पास जाना। ब्रह्मा का उन्हें मित्रावरुण-वीर्य में प्रविष्ट होने का आदेश। इसी समय वरुण का उर्वशी की ओर प्रबल आकर्षण। उर्वशी का मित्र द्वारा पहले ही वरण। यह सुन उसके समीप एक देवनिर्मित कुंभ में वरुण द्वारा अपने तेज (वीर्य) का आधान। उर्वशी के निमित्त मित्र का तेज उस कुंभ में पहले ही स्थापित। (उर्वशी को दुराचारिणी कह मर्त्यलोक में राजा पुरूरवा की पत्नी होने का मित्र का शाप।) उस कुंभ से अगस्त्य की उत्पत्ति—मित्र-तेज से। किंतु मित्र से 'नाहं सुतस्तव' कहकर इनका प्रस्थान। कुछ काल बाद वसिष्ठ का प्रादुर्भाव—मित्रावरुण-तेज से। वा० रा० ७।५६, ७।५७।१-८। भा० ६।१८।५-६ में अगस्त्य-वसिष्ठ के इस प्रकार जन्म का उल्लेख।

(३) इंद्र के आदेश से वायु और अग्नि द्वारा दैत्यों का नाश। कुछ दैत्यों का समुद्र में छिपना और रात्रिकाल में देवों-ऋषियों का संहार करना। सागर-शोषण का इंद्र-आदेश वायु-अग्नि द्वारा अस्वीकृत, क्योंकि इससे कोटि-कोटि जीवों का नाश निश्चित। अपनी अवज्ञा देख इंद्र का उन्हें शास्त्ररहित योनि में जन्म लेने और समुद्र को 'गण्डुष (चुल्लू)-शोषित' न करने तक मर्त्यलोक में मुनिरूप में रहने का शाप। इसके बाद की कथा कुछ परिवर्तन सहित वा० रा० की कथासदृश। इसमें जलकुंभ से पहले वसिष्ठ का जन्म, फिर अगस्त्य का। 'ततो जातश्चतुर्बाहुः

साक्षसूत्रकमण्डलुः। अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः।'

मलयाचल के एक स्थान पर इनका तप। जगत् को तारक आदि दैत्यों से पीड़ित देख समुद्र-पान। इन्हें वर देने के लिए त्रिदेव उपस्थित। इनकी याचना—इनका विमान दक्षिण दिशा में उदित हो। उस समय उसकी पूजा करनेवाला सप्तलोक का स्वामी बने। प०पु० सृ० २२।३-४८। इनके द्वारा बढ़ते हुए विन्ध्य पर्वत का स्तम्भन। दे० 'विंधि'।

दंडकारण्य के अतिरिक्त इनका निवास मलय पर्वत पर। इनके द्वारा सागर में सुवर्णमय महेंद्र गिरि की स्थापना। लंका द्वीप से दक्षिण चतुर्थ पर्वत कुंजर पर विश्वकर्मा-निर्मित इनका रत्नजटित स्वर्ण-महल। वा० रा० ४।४१।१५।१६, २०-२१, ३४-३६। समुद्र में छिपे दैत्यों के देवताओं द्वारा वध के लिए इनका सागर-पान करना। महा० वन० १०५।१-३। वातापि-इल्वल दानवों का दमन। वा० रा० ३।११।५५-५६। महा० वन० ९९। १-१०, १८। अन्य महर्षियों के साथ इनका नहुष (इंद्र)-वाहन बनना। उसके पद-प्रहार से क्रुद्ध हो उसे सर्प बनने का शाप देना। महा० शांति० ३४२।५०-५१। महा० में अन्यत्र इनकी जटा में छिपे भृगु द्वारा नहुष को शाप। महा० अनु० १००।२२-२५। पितरोद्धार के लिए संतान-प्राप्ति की इच्छा से इनके द्वारा प्रत्येक जन्तु के उत्तमोत्तम अंगों का भावना से संग्रह, उनसे एक सुंदरी स्त्री का निर्माण और विदर्भराज को दान। पश्चात् उस स्वनिर्मित स्त्री लोपामुद्रा का वरण, उसके लिए धनसंचय। उससे तेजस्वी दृढ़स्यु का जन्म। महा० वन० ९६।१६-९९।२५।

रोगनाश के बीजरूप 'द्वैधनिर्णय' तंत्र के ये रचयिता। ब्र० पु० ब्रह्म० १६। दक्षिण भारत में इनका सम्मान विज्ञान एवं साहित्य के सर्वप्रथम उपदेशक के रूप में। ये प्रथम तमिल व्याकरण के रचयिता। वहाँ मान्यता कि ये साधारण नेत्रों से अदृश्य रहकर अब भी जीवित। त्रावनकोर की अगस्त्य पहाड़ी पर शाश्वत निवास। हि० ध०।]

सत्संग-महिमा-कथन में वाल्मीकि और नारद के साथ इनका उल्लेख (१।३।३)। रामचरित-चिंतामणि के रूपक में लोभ-उदधि के शोषक रूप में उल्लेख (१।३२।६)। एक बार त्रेता युग में शंभु का सतीसहित इनके पास आना। इनके द्वारा शंभु की पूजा। उन्हें रामकथा सुनाना। इनकी जिज्ञासा पर शंभु द्वारा हरिभक्ति-निरूपण। कुछ दिन निवास (१।४८।१-६)। इस प्रसंग का सती-मोहभंग के लिए शंभु द्वारा उल्लेख (१।५१।७)। रामबल के संबंध में सीय-मातु को आश्वस्त करने के लिए सखियों द्वारा इनका दृष्टांत प्रस्तुत (१।२५६।७)। राजमद-गोपद-जल के लिए भरत इनके सदृश (२।२३२।२)। चित्रकूट-सभा में भरत का अपने उमड़ते प्रेम को उसी तरह संयत करना जिस तरह इनका विंध्य को (२।२९७।१-२)। भगवद्भक्त सुतीक्ष्ण इनके शिष्य (३।१०।१)। उनके साथ राम-लक्ष्मण-सीता का इनके आश्रम की ओर आना (३।१२।१)। उनका आगमन सुन इनका उठकर दौड़ना। 'हरि बिलोकि लोचन जल छाए'। चरणों में गिरे राम-लक्ष्मण को हृदय से लगाना। उनकी पूजा कर स्वयं को भाग्यवान समझना। राम का इनसे मुनिद्रोही राक्षसों को मारने का मंत्र पूछना। इनका राम-महिमा-वर्णन कर अविरल भक्ति का वरदान माँगना (बसहु हृदय ···· प्रीति अभंगा ।३।१३।१०-११)। निर्गुण ब्रह्म के रूप में प्रभु का वर्णन करने पर भी उनके सगुण रूप में रति मानने का इनका कथन। दंडक वन को शापमुक्त, पवित्र करके पंचवटी में वास और मुनियों पर दया करने की प्रभु से विनती (३।१२।५-३।१३।१७)। इनके शाप से ज्ञानी मुनि (दे० शुक) के निशाचर बनने का शिव-कथन (५।५७।११)। [(लंकायुद्ध में विजय के लिए राम को आदित्य हृदय-स्तोत्र सुनाकर तीन बार जपने का इनका परामर्श। वा० रा० ६।१०५।)] रावण-वध के बाद लौटते समय राम का दंडक वन में कुंभजादि के आश्रम में जाना, उनका आशीर्वाद पाना (६।१२०।२-३)। सनकादि का इनके यहाँ आना। इनके द्वारा रामकथा-वर्णन (७।३२।७-८)। भव-वारिधि के लिए ये राम के उपमान (७।३५।३)। भुशुण्डि-कथित मूल मानस-कथा में प्रभु-अगस्त्य-सत्संग का उल्लेख (७।६५)।]

मूल शब्द— ३।१०।१, ३।१२।६, ५।५७।११, ७।६५।

पर्याय— **कुंभज**— १।३२।६, १।४८।१, १।५१।७, १।२५६।७, ३।१२।१, ६।१२०।२, (कुंभजादि), ७।३५।३।

घटज— २।२९७।२।

घटजोनी— १।३।३, २।२३२।२।

घटसंभव— ७।३२।७।

अगस्ति[२] (अगस्त्य) — दक्षिणी आकाश में स्थित एक तारा। पीताभ श्वेतवर्ण। स्थिर तारों में लुब्धक के बाद

सर्वाधिक प्रकाशवान। इसका उदय सूर्य के हस्त नक्षत्र में आने पर, जब वर्षाऋतु समाप्तप्राय।

[तपस्या कर मलय देश से लौटते समय अगस्त्य के सागर-पान करने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्राकट्य। अगस्त्य की वर-याचना—वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाम्बरवर्त्मनि। मद्विमानोदयात्कुर्याद्यः कश्चित् पूजनं मम।। सः सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति। प० पु० सृ० २२।४४-४५। महर्षि अगस्त्य ही नक्षत्ररूप (वैमानिक)। इनके विंध्य-स्तंभन और सागर-शोषण का विरुद (सागर-जल से बननेवाले मेघों के अभाव में) वर्षा के अंत का, निर्बाध मुक्त सूर्यालोक और धरती के जल के सूखने का प्रतीक। पूजन-माहात्म्य भी तदनुरूप।]

शरद् ऋतु में इसके उदित हो पंथ-जल सोखने का उल्लेख (४।१६।३)।

अगहनु (अगहन) — अग्रहायण या मार्गशीर्ष। चान्द्र वर्ष का नवाँ मास। यह भगवान की विभूति (मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। गीता १०।३५)।

इसी मास में राम-विवाह (१।३१२।५)। [अगहन के पूर्व हिम ऋतु का भी उल्लेख जिससे स्पष्ट कि अगहन में वृश्चिक के सूर्य थे, तुला के नहीं। तुला में विवाह नहीं होता। मा० पी० १।३१२।५ टि० १)।]

अच्छ (अक्ष) — रावण-पुत्र। लघुवयस्क वीर। वा० रा० ५।४७।१, २७।

अशोक वाटिका में हनुमान् द्वारा रक्षकों-भटों के वध के बाद रावण का इसे भेजना। हनुमान् द्वारा इसका वध (५।१८।७-८)। इसका निधन सुन रावण और मेघनाद को क्रोध (५।१९।१,३)। रावण को समझाते हुए मंदोदरी द्वारा राम-प्रताप-वर्णन में इसके वध का उल्लेख (६।३६।५)।

मूल शब्द — ५।१८।७, ६।३६।५।

अज— दे० 'विधि'।

अजामिल — कान्यकुब्ज का एक ब्रह्मचारी, मंत्रवेत्ता ब्राह्मण।

[एक दिन पिता के आदेशानुसार वन से फल-फूल, समिधा, कुश लेकर लौटते समय एक मदमत्त शूद्र और वेश्या की चेष्टाएँ देख इसमें कामोद्दीप्ति। वेश्या-मुग्ध हो पिता की सम्पत्ति और अपना सर्वस्व उसको अर्पण। पत्नी और वृद्ध माता-पिता का परित्याग कर उसके साथ विलास-निवास। बटोहियों को लूटना, लोगों को जुए में छल से हराना आदि निंदनीय वृत्ति से इसके द्वारा कुटुम्ब-पालन। अट्ठासी वर्ष की आयु तक इसके दस पुत्र। सबसे छोटे पुत्र 'नारायण' के प्रति अत्यधिक मोह। मृत्यु-काल उपस्थित होने पर पाश लिये तीन यमदूतों को अपने पास आते देख इसका जोर से 'नारायण' को पुकारना। यह नाम सुन भगवान के चार पार्षदों का आगमन। अजामिल के सूक्ष्म शरीर को खींचते हुए यमदूतों को उनका बलपूर्वक रोकना। दोनों पक्षों में वाद-विवाद। यमदूतों द्वारा वेदोक्त सगुण धर्म का निरूपण। पार्षदों द्वारा भागवत धर्म का सार-कथन। उनका अजामिल को यमदूतों के पाश से मुक्त करना। अजामिल का हृदय-परिवर्तन। पश्चात्ताप और वैराग्योदय। हरिद्वार-गमन। भगवत्स्वरूप में इसकी बुद्धि स्थिर। उन्हीं चार पार्षदों के दर्शन। गंगातट पर जा इसका शरीर-त्यागना। पार्षद-स्वरूप पा वैकुंठ-गमन। भा० ६।१।२०-६।२।४४।)]

नाम-महिमा-वर्णन-प्रसंग में नाम-प्रताप से गति पानेवाले खलों के साथ इसका नामोल्लेख (१।२६।७, ७।१३०।छं०१)।

मूल शब्द — ७।१३०।छं० १। अजामिलु — १।२६।७।

अजोध्या — दे० 'अवध'।

अतिकाय — विंध्य, अस्त, महेंद्र पर्वतों के समान विशालकाय। रावण-पुत्र। वा० रा० ६।५९।१६, ६।६९।१०-११।

अकेले जग जीतने में समर्थ कुमुख, अकम्पन, कुलिसरद, धूमकेतु के साथ इसका उल्लेख (१।१८०)। रण में अपनी सेना को विचलित देख इसका माया करना (६।४६।१०)। रावण का कुंभकर्ण को अन्य सुभटों के साथ इसकी भी मृत्यु का समाचार सुनाना (६।६२।११)।

मूल शब्द — १।१८०, ६।६२।११। अतिकाया—६।४६।१०।

अत्रि — स्वायम्भुव मन्वन्तर एवं वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में एक। दे० 'सप्तरिषि'। ब्रह्मा के नेत्रों से उत्पन्न। भा० ३।१२।२४। इनकी गणना ब्रह्मा द्वारा सृष्ट नवब्रह्मा में (वि० पु० १।७।४-६), इक्कीस प्रजापतियों में (महा०शा० ३३४।३५)।

ब्रह्मा > अत्रि ~ अनसूया (देवहूति-कर्दम-कन्या) > चन्द्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासा। भा० ३।१२।२१,२२,५६; ३।२४।२१-२२; ४।१।१५।

['अ' विष्णु के अर्थ में प्रयुक्त, 'त्रि' त्रिगुणमयी प्रकृति के अर्थ में। उन दोनों के प्रति इनकी समान भक्ति, अतः ये अत्रि। सं० ब्र० पु० ब्रह्म० पृ० ६७। महा० में परमात्मतत्व-संबंधी अज्ञान, अविद्या (रात्रि) से सर्वथा मुक्त होने के कारण इनका यह नाम (अरात्रिः अत्रिः)। महा० अनु० ६३।८२।

ऋग्वेद में ये लोकशासित राज्य के लिए प्रयत्नशील। जनता का पक्ष लेकर राजा से लड़ाई करने के कारण इन्हें कारावास-दण्ड। इनके अग्नि से झुलसने पर अश्विनों (अश्विनीकुमारों) द्वारा इनकी ताप-शान्ति। ग्रहण के संबंध में इन्हें सर्वप्रथम ज्ञान। इसीलिए यह मान्यता कि ग्रहण लगने पर ये सूर्य को वापस लाते हैं। प्रा० च०।

ये ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ। ब्रह्मा की इन्हें सृष्टि रचने की आज्ञा। कुलपर्वत ऋक्ष पर सपत्नीक इनका कठोर तप। जगदीश्वर का ध्यान, इस कामना से कि वे इन्हें अपने ही समान संतान प्रदान करें। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्राकट्य, क्योंकि तीनों ही जगदीश्वर। उन तीनों के अंशों से क्रमशः चन्द्रमा, दत्तात्रेय एवं दुर्वासा इनके पुत्ररूप में उत्पन्न। भा० ४।१।१७-३३। पृथु के अश्वमेध यज्ञ के समय दो बार पाखंडवेशधारी इन्द्र को यज्ञ-अश्वहरण करते देख इनका दोनों बार पृथु-पुत्र विजिताश्व को सूचित करना। भा० ४।१६।१२-१३, २०-२१।

देवासुर-संग्राम में राहु-शरों से सूर्य-चन्द्र के घायल और मंदप्रभ हो जाने पर देवता इनके शरणागत। उनकी प्रार्थना पर अपने तप के प्रभाव से इनका युद्धक्षेत्र को प्रकाशित करना। अपने तेज से असुरों को दग्ध करना। सूर्य को तेजस्वी बनाना। महा० अनु० १५६।५-१२।

ये प्राचीन धर्मशास्त्रकार। डेकन कॉलेज के संग्रह में आत्रेय धर्मशास्त्र की हस्तलिखित प्रति भी। अत्रिस्मृति या अत्रिसंहिता नामक एक अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध। जीवनानन्द के संग्रह में अत्रिसंहिता का प्रकाशन। उसमें एक लघु-अत्रि एवं एक वृद्धात्रेयस्मृति भी प्राप्त। ध० इ० प्र०, पृ० ३५-३६।]

चित्रकूट को राम के वास के लिए उपयुक्त बताते हुए वाल्मीकि द्वारा वहाँ अत्रि आदि मुनिवरों के निवास का कथन (२।१३२।७)। भरत को इनकी आज्ञानुसार भ्रमण करने और तीर्थों का जल रखने का राम-आदेश (२।३०८।५-८)। शैल-समीप पावन कूप में तीर्थजल रखने के लिए भरत को इनकी आज्ञा। जलपात्र मिजवाकर इनके साथ भरत का कूप के पास जाना। इनके द्वारा उस अनादि सिद्धपीठ की महिमा का वर्णन और सर्वतीर्थमय उस तीर्थ का नामकरण– 'भरतकूप'। राम के निकट आ पुनः तीर्थ-महिमा-वर्णन। इनकी आज्ञा से दूसरे दिन समाजसहित राम-वन की यात्रा। भरत के प्रश्न पर इनके द्वारा जलाशय, खग-मृग आदि के हेतु, नाम, गुण, प्रभाव का कथन। भरत का प्रत्येक आचरण इनसे आज्ञा लेकर (२।३०९-२-३१२।६)। चित्रकूट में सब मुनियों से विदा ले प्रभु का इनके आश्रम में आना। इनका पुलकित हो दौड़कर दोनों भाइयों को हृदय से लगा अश्रुप्रवाह। आश्रम में लाकर प्रभु की पूजा, ब्रह्मरूप में स्तुति और वर-याचना – 'चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि' (३।३।४-३।४)। इनसे आज्ञा माँगते हुए प्रभु द्वारा इनका स्नेह-अनुग्रह पाने की कामना व्यक्त। इनके द्वारा उनके शील-गुण की प्रशंसा। उन्हें देखते हुए ये प्रेमानन्द-विभोर। इनके चरणों में नमन कर प्रभु का वन-गमन (३।६।२-३।६।छं०, ३।७।१)। भुशुंडिकथित मूल मानसकथा में प्रभु से इनकी भेंट का वर्णन (७।६५।८)।
मूल शब्द – २।३०८।५, २।३०९, २।३१०।१, २।३१०।२, २।३१०।३, २।३१०, २।३११।२, ३।३।४, ३।३।५, ७।६५।८, अत्रि आदि – २।१३२।७।

पर्याय – **रिषिनायकु** – २।३०८।७। रिषिराऊ – २।३१२।४।

अदिति – देवताओं की माता।

प्राचेतस दक्ष (ब्रह्मापुत्र) ~ असिक्नी > अदिति ~ कश्यप > द्वादश आदित्य – विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इंद्र, त्रिविक्रम (वामन)। भा० ६।४।५१, ५२; ६।६।१, २, २५, ३८, ३९।

[ऋग्वेद में ये मित्रावरुण आदि आठ पुत्रों की माता। एक स्थान पर विश्व-सृष्टि की मूर्ति। आदित्य-जननी होने के कारण तेजप्राप्ति के लिए इनकी प्रार्थना। उषा अदिति-मुख। संहिताओं में ये विष्णु-पत्नी। प्रा० च०।

दैत्यराज बलि द्वारा देवताओं के पराभव से ये दुखी। उन्हें हारा हुआ वैभव पुनः प्राप्त कराने के लिए पति

के आदेशानुसार इनके द्वारा 'सर्वयज्ञ', 'सर्वव्रत' नामक तपोमय व्रत का पालन। इनके गर्भ से वामनावतार। वटुवामन को इनके द्वारा कौपीन और कटिवस्त्र-प्रदान। भा० ८।१६।१६-१७, ६०, ६२; ८।१७।३-४, १८; ८।१८।५, १५। देवकी-स्तुति पर चतुर्भुज भगवान का तीन बार उनके गर्भ से जन्म-ग्रहण का कथन। दूसरे जन्म में देवकी-वसुदेव ही अदिति-कश्यप और भगवान का अवतार वामन। भा० १०।३।३२-४३। कृष्ण-स्तुति करते हुए युधिष्ठिर द्वारा इनके गर्भ से भगवान के सात बार प्रकट होने का उल्लेख। महा० शा० ४३।६।]

सद्‌गुणरूपी देवताओं के लिए रामकथा के अदिति-सी अंब होने का उल्लेख (१।३१।१४)। एक कल्प में ये कौसल्या, इनके गर्भ से रामावतार (१।१२३।३)। एक दूसरे कल्प में पतिसहित इनके कठोर तप, वर-प्राप्ति, कौसल्यारूप में जन्म और पूर्व प्रतिज्ञानुसार अंशोंसहित इनके यहाँ अवतरित होने की भगवद्‌वाणी (गगनगिरा) (१।१८७।३-५)। (प्रत्येक कल्प के रामावतार में माता-पिता सदैव कौसल्या-दशरथ ही। किसी कल्प में कश्यप-अदिति द्वारा, किसी कल्प में स्वायंभुव मनु-शतरूपा द्वारा दशरथ-कौसल्या के रूप में जन्म-ग्रहण और पुत्ररूप में भगवान की प्राप्ति।)

मूल शब्द — १।३१।१४, १।१२३।३, १।१८७।३।

अनंग — दे० 'काम'।

अनिमादिक (अणिमादिक) — अणिमा आदि अष्ट महासिद्धियाँ (अतिमानव शक्तियाँ) — अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः।। अमर० १।४१ टिप्पणी।

[१ : अणिमा—अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेना, कठिन से कठिन पदार्थ में प्रवेश कर जाना। (यथा हनुमान्, सुरसा के मुख में और लंका में प्रवेश करते समय — मानस ५।२।१०, ५।४।१; वा० रा० ५।१।१६६-१६७, ५।२।४६)। २ : महिमा — अपने शरीर को बहुत बड़ा बना लेना। (यथा हनुमान्, सुरसा के सामने — मानस ५।२।७-८; वा० रा० ५।१।१६०-१६५)। ३ : गरिमा— शरीर को इच्छानुसार भारी बना लेना। (यथा रावण-सभा में अंगद का पाँव—मानस ६।३४।८-१३, ६।३४क। भीमसेन के मार्ग में हनुमान् की पूँछ — महा० वन० १४७।१६-२१)। ४ : लघिमा — शरीर को जितना चाहे हल्का बना लेना। (इससे जल, कंटक आदि की बाधा से मुक्ति। सिद्ध उन पर चल सकता है, आकाश-गमन कर सकता है)। ५ : प्राप्ति — इच्छित पदार्थ की संकल्पमात्र से प्राप्ति। ६ : प्राकाम्य— इच्छा की निर्बाध पूर्णता। ७ : ईशित्व — भूत और भौतिक पदार्थों पर शासन का सामर्थ्य। ८ : वशित्व — पंचभूतों और तज्जन्य पदार्थों का वश में होना।

बृ० को०, वि०, मा० पी०, योग० ३।४५ की व्या० में उपर्युक्त आठ नाम। भा० ११।१५।४-५, मा० पु० ४०।२६-३०, ब्र० पु० ब्रह्म० ६।१८, आ० को० में 'गरिमा' को छोड़ सात नाम वे ही; 'गरिमा' के स्थान पर 'कामावसायिता'। अष्टसिद्धियों के अतिरिक्त और भी सिद्धियों का उल्लेख प्राप्त। ब्र० पु० में — सर्वज्ञ दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम्।। वाक्‌सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्तुमीशता।। अमरत्वं च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादशा स्मृताः।। ब्रह्म० ६।१६-२०। भा० में — शरीर में भूख-प्यास आदि ऊर्मियों का न होना, दूरश्रवण, दूरदर्शन, मन के समान शरीर का शीघ्रगामी होना, अभिलषित रूप धारण करना, परकायप्रवेश, स्वेच्छा-मृत्यु, देवताओं की क्रीड़ा के दर्शन, संकल्पसिद्धि, आज्ञा की अप्रतिहत गति (उसका उल्लंघन न हो सके)। ११।१५।६-७। इनके अतिरिक्त पाँच सिद्धियाँ और—त्रिकालज्ञता, शीतोष्ण आदि द्वंद्वों के वशीभूत न होना, दूसरे के मन की वात जान लेना, अग्नि-सूर्य-जल आदि की शक्ति को स्तम्भित कर देना, किसी से पराजित न होना। भा० ११।१५।८।

गोरूप पृथ्वी-दोहन के समय सिद्धों का कपिल देव को वत्स (बछड़ा) बनाकर आकाशरूप पात्र में अणिमादि अष्टसिद्धि-दोहन। भा० ४।१८।१६।]

एकाग्रचित्त हो नाम जपने से उन सिद्धियों की प्राप्ति का उल्लेख (१।२२।४)। भरत-सत्कार के संबंध में भरद्वाज मुनि का सोच देख ऋद्धि के साथ इनका आगमन। मुनि की आज्ञा पाकर धन्य हो ऐश्वर्य-सृष्टि करना (२।२१३।८-२।२१४)। राम-राज्य में इनका निवास (७।२६)। काकभुशुंडि को मनचाहा वरदान देने के प्रसंग में इनका भी उल्लेख (७।८३ख)। 'सिद्धि' भी देखिए।

मूल शब्द — १।२२।४, २।२१३।८, ७।२६, ७।८३ख।

अनुसुइया (अनसूया) — अत्रि ऋषि की पत्नी।

ब्रह्मा > स्वायंभुव मनु ~ शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम > अनसूया ~ अत्रि > चंद्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासा। भा० ३।१२।५३-५६, ३।२४।२२, ४।१।१५।

[इनके संबंध में राम से अत्रि-कथन — एक समय दस वर्षों तक वृष्टि न होने पर इनकी उग्र तपस्या से फल-फूल उत्पन्न और मंदाकिनी-प्रवाह। इनके द्वारा दस हजार वर्षों तक कठोर तप-व्रत और देवताओं का विघ्न-निवारण। देवकार्य के लिए इनका एक ही रात्रि को दस रात्रियों के बराबर बनाना। वा० रा० २।११७।९-१२। एक बार इन पर कृपा कर गंगा का अत्रि के तपोवन में आना। वहाँ सदैव रहने की उनसे इनकी प्रार्थना। उनकी शर्त — एक वर्ष तक की हुई शिव-पूजा और पति-सेवा का फल ये उन्हें दें, तो वे वहाँ रहेंगी। इनके द्वारा उन्हें एक वर्ष का पुण्य-दान। इससे प्रसन्न शिव का प्राकट्य। इनकी वर-याचना — वे भी वहाँ निवास करें। फलतः गंगा और शिव, दोनों वहाँ प्रतिष्ठित। वहाँ शिव का नाम अत्रीश्वर। सं० शि० पु० पृ० ३४०। इनके पुत्र चंद्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासा क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अंश। भा० ४।१।१५, ३३। एक बार पति से रुष्ट हो शंकर की प्रसन्नता के लिए इनका तीन सौ वर्षों तक तप-साधन और पति-सहयोग बिना यज्ञ-चरु-द्रव पीने मात्र से पुत्रप्राप्ति का वरदान पाना। महा० अनु० १४।९६-९८।]

राम की चित्रकूट-महिमा बताने के प्रसंग में इनका अपने तपोबल से वहाँ मंदाकिनी नामक सुरसरि-धारा लाने का वाल्मीकि-कथन (२।१३२।५-६)। चित्रकूट में अत्रि-आश्रम से विदा होते समय सीता का इनके चरण पकड़ना। इनका सीता को निकट बैठाकर आशिष देना। दिव्य वसन-भूषण पहनाना (३।५।१-३)। नारिधर्म-उपदेश देना (३।५।४-३।५क)। तुलसी के हरिप्रिय होने का इनका कथन। आशिष—सीता का नाम ले स्त्रियों द्वारा पातिव्रत-पालन होगा। सीता का पुनः इनके चरणों में सिर झुकाना (३।५क-३।६।१)

मूल शब्द — ३।५।१।
पर्याय — **अत्रिप्रिया** — २।१३२।५
रिषिपतिनी — ३।५।२।
रिषिबधू — ३।५।४

अभिजित (अभिजित्) — विजयी। उत्तरायण के चौदह नक्षत्रों में एक। इसमें तीन तारे मिल सिंघाड़े का आकार बनाते हैं। एक मुहूर्त्त। ज्योतिष में इस मुहूर्त्त के दो प्रकार, दोनों प्रकारों में यह ठीक मध्याह्न समय लगता है। इसमें जन्म का अर्थ राजा होना (जातोऽभिजित् राजा स्यात्)। मा० पी० १।१९१।१—नोट १।

[भगवान् का वामनावतार अभिजित् मुहूर्त्त में। भा० ८।१८।५। इसी मुहूर्त में धर्मरथ पर आरूढ़ हो शंकर द्वारा बाण-संधान और त्रिपुर-दाह। भा० ७।१०।६७-६८। हिरण्याक्ष के साथ युद्ध-लीला करते हुए वराह भगवान से शीघ्र दैत्य-वध करने की ब्रह्मा-प्रार्थना, क्योंकि उस समय इस मंगलमय मुहूर्त का योग। भा० ३।१८।२७। भगवान की योगमाया के आधार पर स्थित ज्योतिश्चक्र के शिशुमार (सूँस)-रूप में शिशुमार के दाहिने नथुनों में इसकी स्थिति। भा० ५।२३।६।]

यह 'हरिप्रीता' — हरि का प्रिय मुहूर्त। इसी में इनका दशरथ के यहाँ रानी कौसल्या के गर्भ से रामरूप में आविर्भाव (१।१९१।१)। (वा० रा० में राम-जन्म के समय पुनर्वसु नक्षत्र। १।१८।६। अ० रा० में भी पुनर्वसु। १।३।१४)

अमरावति (अमरावती) — इंद्रपुरी। महा० वन० ४२।४२। देवताओं का आवासस्थान। आ० को०।

[यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित। यहाँ नंदनवन, अनेक उद्यान और उपवन। कल्पवृक्ष, पक्षियों का कलरव, फुल्ल कुसुमों की सुगन्धि। सुरभित मंद समीर। सरोवरों में जल-पक्षी, देवांगनाओं की क्रीड़ा। पुरी के चारों ओर ज्योतिर्मयी आकाशगंगा का घेरा। इसके चतुर्दिक् सोने का परकोटा। स्फटिक मणि के बाहरी द्वार। पुरी में प्रशस्त राजमार्ग, रथमार्ग, मणियों के चौराहे, मूँगे की वेदियाँ, स्वर्ण-पताकाएँ। दस करोड़ स्वेच्छागामी विमान सदा विद्यमान। यहाँ की स्त्रियाँ नित्य षोडशी, स्थिर सौन्दर्य यौवना, रूपछटा से उद्दीप्त। देवांगनाओं के मधुर संगीत से सदा मंगल। वाद्य-यंत्रों के साथ गंधर्वों का गान, अप्सराओं का नृत्य। सब कुछ दिव्य, मोहक, रमणीय। यहाँ अधर्मियों का प्रवेश नहीं। भा० ८।१५।१२-२२।

यह मानसोत्तर पर्वत पर, मेरु के पूर्व की ओर स्थित। भा० में इसका नाम 'देवधानी'। ५।२१।७। वि० पु०

में 'वस्वौकसारा' ।२।८।६-१०। दे० 'स्वर्ग'।]

भगवदादेश से मनु-शतरूपा का यहाँ वास (१।१५१।८, १।१५२।८)। यहाँ इन्द्र-निवास। सागर-मध्य त्रिकूट पर्वत पर स्थित दुर्ग इससे भी अधिक सुन्दर (१।१७८।७)। यह राम-चरणों से पवित्र स्थलों के समकक्ष नहीं (२।११३।३)। सीता-लक्ष्मण-सहित पर्णकुटी में राम की शोभा, जैसे शची-जयंत के साथ इस पुरी में इंद्र की (२।१४१)। दशरथ के इस पुरी में होने का राम-कथन (२।२४८।७)। बहुरंगी कंगूरे लगे परकोटे से शोभित अयोध्या की शोभा, मानो नवग्रहों की सेना से घिरी यह पुरी (७।२७।५)।

मूल शब्द — १।१५२।८, १।१७८।७, २।११३।३, २।२४८।७, ७।२७।५।

पर्याय — **अमरपुर** (स्वर्ग भी) — २।१४१।

सक्रनिवासा — १।१७८।७।

सुरपति रजधानी — १।१५१।८।

अमृत — दे० 'सुधा'।

अयोध्याकांड — मानस का द्वितीय कांड। द्वितीय सोपान। कुल दोहा संख्या ३२६। इस कांड में सारी घटनाएँ अयोध्या के राज्य से संबंधित होने के कारण यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध कांडों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह कांड द्वितीय सोपान। भक्तों की मान्यता — मानस के सप्तकांड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह कांड मथुरापुरी। (दे० 'रामचरितमानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)।'

मंगलाचरण — शंकर राम और गुरु की वंदना। राम-विवाह के बाद से अयोध्या में सुख-सम्पत्ति-ऐश्वर्य। 'श्रवन समीप भए सित केसा' देख दशरथ के मन में राम को युवराज-पद देने का विचार। गुरु के अनुमोदन और आज्ञा से तैयारी। रानियों, पुरवासियों में हर्षोल्लास। राम को पछतावा (बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।)। सब के मन में भरतागमन की कामना। विघ्न डालने के लिए देवताओं द्वारा सरस्वती की विनती। 'गई गिरा मति फेरि'। मंथरा का कपट। कैकेयी का उस पर विश्वास। स्वभाव-परिवर्तन। कोपभवन। राजा का कैकेयी-महल में आगमन। कैकेयी की वरदान-याचना— भरत का राजतिलक और राम का चौदह वर्षों के लिए वनवास। राजा का शोक। प्रातःकाल सुमंत्र का आगमन। रानी का राम को बुलाने का आदेश। राम-कैकेयी-संवाद। दशरथ का मूर्च्छा-त्याग— मौन अश्रुधार। उन्हें समझाकर राम का माता कौसल्या के पास जाना। समाचार सुन सब व्याकुल। कैकेयी के प्रति दुर्वचन। पुर-स्त्रियों का कैकेयी को समझाने का निष्फल प्रयास। विषाद। कौसल्या-राम-संवाद। मर्माहत माँ का आशीर्वाद। सीता-आगमन। राम-सीता-संवाद। सीता को माँ की आशिष। प्रस्थान। लक्ष्मण-आगमन। राम-लक्ष्मण-संवाद। लक्ष्मण को सुमित्रा की अनुमति, उपदेश। राम-लक्ष्मण-सीता का दशरथ के पास जाना। मुनि-वेश धारण कर, विदा हो, गुरु वसिष्ठ के द्वार पर ठहरना। सबको समझाना। वन के लिए प्रस्थान। (२।१।श्लो० १-२।८१।२)।

दशरथ-प्रेषित सुमंत्र का उन्हें रथ पर बैठाना। विकल प्रजा द्वारा अनुसरण। तमसातीर पर निद्रालीन अयोध्यावासियों को छोड़ सुमंत्रसहित तीनों का शृंगवेरपुर पहुँचना। गंगा में मज्जन, पान। निषादराज गुह का आगमन। कन्द-मूल-फल-आहार। सिंसुपा तरुतले वास। राम-शयन के बाद वीरासन में लक्ष्मण का पहरा देना। विषादग्रस्त गुह को उनका ज्ञान-विराग-भक्तिभरा उपदेश— लक्ष्मण-गीता— दुःख-सुख सब कर्म फल-भोग, जग-जाल भ्रम-फंद, व्यावहारिक जगत् में सब मोह-निद्रा में डूबे स्वप्नदर्शी, मोहमुक्त विवेकी योगी परमार्थी ही जाग्रत, राम परमार्थरूप ब्रह्म, अवतार 'भूमि भुसुर सुरभि सुर हित', काम्य केवल रामचरण-रति। राम-लक्ष्मण का जटा धारण करना। सुमंत्र का दशरथ-संदेश सुनाना। राम के प्रबोधन के बाद उनकी बिदाई (२।८१।३ - २।१००।२) सुरसरि-तट। केवट की राम के पाद-प्रक्षालन की लालसा पूरी होने के बाद सिय-राम-लक्ष्मण का गंगा-पार करना। केवट की बिदाई। (यह केवट या गुह निषादराज केवट या गुह से भिन्न)। गंगा-स्नान। पार्थिक पूजन। गंगा द्वारा सीता की मनोरथ-पूर्ति की आशिष। निषादराज गुह (सखा) के साथ वन-गमन। तरु-तले वास। प्रयाग-महिमा। त्रिवेणी-स्नान। भरद्वाज-आश्रम में निवास। उनके चार शिष्यों के साथ यमुना-तट पर पहुँचकर शिष्यों की बिदाई। यमुना-स्नान। तापस-आगमन। निषादराज की बिदाई (२।१००।२-२।१११)। पथिकों-ग्रामवासियों का प्रेम। सीता-ग्रामतिय-संवाद। पथिकरूप में राम-लक्ष्मण-सीता। वाल्मीकि-आश्रम। निवास-योग्य स्थान पूछने पर वाल्मीकि का

चौदह प्रकार के भक्तों के हृदयों का उनके निवास-स्थान के रूप में वर्णन। उस समय के लिए सुखदायक स्थान चित्रकूट गिरि बतलाना। चित्रकूट-महिमा। लक्ष्मण द्वारा चुने गए स्थान पर देवताओंसहित विश्वकर्मा का किरात-वेश में आकर दो पर्ण-कुटीरों का निर्माण करना। मुनियों-कोल-किरातों का आकर मिलन। चित्रकूट का पुण्य-सौंदर्य-वर्णन। तीनों का निवास, प्रसन्नता। बीच-बीच में अवध की सुधि आने पर राम का दुखी होना। सीता-लक्ष्मण का तद्‌वत् भाव। तब राम द्वारा पुनीत कथा-कथन और सबकी प्रसन्नता (२।११२।१-२।१४२।३)।

लौटकर निषादराज की विरह-व्याकुल सुमंत्र से भेंट। चार सेवक साथ कर उन्हें लौटाना। तमसा-तीर पर निषाद-सेवकों की बिदाई। सुमंत्र का अँधेरे में नगर-प्रवेश। सबकी विकलता। राजा से भेंट। राजा और रानियों की विकलता। राजा का अंध तापस की कथा कहना। उनका प्रेमोन्माद, सुरधाम-गमन (२।१४२।४-२।१५५)। चतुर्दिक् विलाप। कैकेयी के प्रति सबके दुर्वाद। गुरु वसिष्ठ का प्रबोधन। राजा के तन को तेल-नाव में रखना। भरत के पास दूत भेजना। भरतागमन। अपशकुन। कैकेयी से सब समाचार सुन उन्हें शोक। कैकेयी का तिरस्कार। शत्रुघ्न द्वारा मंथरा का कूबर भंग। कौसल्या-भरत-शत्रुघ्न-मिलन। भरत की ग्लानि, शपथ लेना। कौसल्या का समझाना। वामदेव, वसिष्ठ का उपदेश। भरत का रानियों को सती होने से रोकना। सरयू-तट पर दाह-क्रिया। स्नान। तिलांजलि। दशगात्र विधान। दान आदि (२।१५६।३-२।१७१।१)। वसिष्ठ के आदेश से राजसभा में सब उपस्थित। पूर्व प्रसंगोल्लेख के बाद वसिष्ठ द्वारा शोचनीयों का वर्णन। राजा दशरथ अशोच्य। उनका भरत-राज्याभिषेक का प्रस्ताव, सचिव एवं माता का अनुमोदन। भरत का ग्लानिभरा उत्तर। राम के पास जाने की व्याकुलता। अनुमति-याचना। सबकी प्रसन्नता। सबके चलने की तैयारी। 'संपति सब रघुपति कै आही' सोच, समुचित व्यवस्था कर, राम के राजतिलक की सामग्री ले, प्रस्थान (२।१७१।२-२।१८७)।

सानुज पैदल चलते भरत का माता के कहने से रथ पर बैठना। तमसा, गोमती, सई के तटों पर निवास करते हुए चौथे दिन शृंगवेरपुर के निकट पहुँचना। भरत को सेनासहित देख निषादराज को संशय। उनकी युद्ध की तैयारी। भेद लेने के लिए भरत के पास जाना। 'भरत लीन्ह उर लाइ'। निषाद को देख सबको सुख। रामघाट को प्रणाम। गंगा-स्नान। भरत का शिंशुपा-दर्शन। व्याकुलता। निषादराज का समझाना। पुरवासियों का प्रेम। प्रातःकाल गंगा पार करना। भरत का पैदल चलना। त्रिवेणी-स्नान, भक्ति-याचना। त्रिवेणी के आशीर्वचन। भरद्वाज से भेंट। भरद्वाज का प्रबोधन, प्रशंसा। सत्कार। दूसरे दिन प्रातःकाल चित्रकूट के लिए प्रस्थान। भरत की प्रेम-मग्नता देख इंद्र को मोह। वृहस्पति का प्रबोधन। यमुना-तट पर वास। प्रातः यमुना-पार। यात्रा। ग्रामवासियों का प्रेमभरा वार्तालाप। रात्रि-विश्राम। दूसरे दिन (यात्रा के नौवें दिन) चित्रकूट पर्वत के दर्शन। प्रेम-शिथिल हो केवल दो कोस गमन (२।१८८।१-२।२२६।२)

सीता का स्वप्न। स्वप्न-दोष-निवारण। भरतागमन-समाचार। राम की चिंता। लक्ष्मण की नीति-वाणी, भरत पर क्रोध। आकाशवाणी। लक्ष्मण-संकोच। राम-सीता द्वारा उनका सम्मान और भरत-प्रशंसा (२।२२६।३-२।२३३।२)। भरतादि का मंदाकिनी-स्नान। सबको वहीं ठहराकर अनुज और निषादराजसहित भरत का आगे बढ़ना। मार्ग में सोच। शुभ शकुन। वन-पर्वतों को देख भरत का हर्ष। अरण्य-वर्णन। भरत का वट-वृक्ष-दर्शन। राम-पद-चिह्नांकित रज को मस्तक पर रखना। प्रभु-आश्रम के दर्शन, फिर प्रभु-दर्शन। 'पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।।' राम-भरत-मिलन 'मन बुधि चित अहमिति बिसराई।' भाइयों का मिलन। केवट द्वारा अवध-समाज-आगमन की सूचना। शत्रुघ्न को सीता के पास छोड़ प्रस्थान। वसिष्ठ-राम-लक्ष्मण-मिलन। गुरु द्वारा केवट का आलिंगन। राम का सर्वप्रथम कैकेयी से मिल उनका परितोष करना। फिर माताओं से, और सबसे भेंट। चुने हुए व्यक्तियों के साथ आश्रम आना। सीता की सबसे भेंट। दशरथ-सुरपुर-गमन का संवाद और विलाप। निर्जल व्रत। पिता की क्रिया कर शुद्धि। दो दिन बाद अवध लौटने के लिए गुरु से विनती। गुरु का अनुरोध। आगतों का राम-शैल-वन-भ्रमण। कोल-किरात-भीलों द्वारा सत्कार। सीता की सास-सेवा। कैकेयी की आत्मग्लानि। भरत की चिंता (२।२३३।३-२।२५३।७)।

गुरु का भरत को बुलवाना। सभासदों का एकत्र होना। वसिष्ठ का प्रस्ताव— राम-लक्ष्मण-सीता को अवध लौटाया जाये और भरत-शत्रुघ्न बन जायें। और भी विकल्प। सबको सुख। सबका राम के पास आना। चित्रकूट की प्रथम सभा — वसिष्ठ का राम से उपाय पूछना। राम के अनुसार गुरु-आज्ञा-पालन ही उपाय। गुरु द्वारा भरत

की विनती सुनने का अनुरोध, तब भरत पर सब दायित्व। भरत की प्रेमार्ति, दुःख-निवेदन। वसिष्ठ द्वारा प्रबोधन। राम द्वारा सान्त्वना, प्रशंसा और भरत की बात मानने की प्रतिज्ञा। देवताओं का भय और समाधान। राम के अवध लौटने, स्वयं वन जाने आदि के प्रस्ताव के बाद भरत का रामाज्ञा-पालन का निश्चय। राम का संकोचवश मौन रहना। सभा समाप्त। ससमाज जनक के आने का संवाद ले दूतों का आगमन। वसिष्ठ-दूत-संवाद और दूत-विदाई (२।२५३।८-२।२७२।८)। राम का संकोच। इंद्र का सोच। कैकेयी की ग्लानि। अवध-समाज का हर्ष। पंचदेवोपासना, अभिलाष। समाजसहित जनक की अगवानी के लिए राम का जाना। कामदनाथ शैल के दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ-त्याग। सबका मिलन। आश्रम की ओर गमन। 'सोक बिकल दोउ राज समाजा'। मुनियों का उपदेश। सबका रामघाट में स्नान। निर्जल रहना। दूसरे दिन वसिष्ठ, शतानन्द, कौशिक का समझाना। जनक का अन्यत्र निवास। सत्कार। दोनों राजकुलों की रानियों की भेंट। सीता को साथ ले सिय-मातु का लौटना। सीता की जनक से भेंट। बिदाई। जनक-सुनयना-संवाद (२।२७२-२।२९०।१)।

राम का वसिष्ठ के पास, वसिष्ठ का जनक के पास जाना। समाजसहित जनक का भरत के पास जाना। जनक-भरत-संवाद। सबका राम के पास आना। सबकी प्रेम-विह्वलता देख देवताओं को भय। भरत-मति फेरने की उनकी प्रार्थना का सरस्वती द्वारा तिरस्कार। दूसरी सभा – पूर्व-प्रसंग कहकर वसिष्ठ का राम से आज्ञा माँगना। राम का गुरु और जनक के आदेश-पालन की शपथ ग्रहण करना। राम-शपथ से संकुचित सबको उबारने के लिए भरत का सरस्वती को स्मरण करके आत्मनिवेदन और आज्ञा माँगना। राम-पद-आश्रय। राम का उन्हें हाथ पकड़कर पास बैठाना। दोनों समाज को दुखी देख इंद्र का संशय। देवमाया, उच्चाटन। प्रजा की द्विविध मनोगति। तरनि कुल-रीति, गुरु-प्रभाव और प्रीति की रीति समझाते हुए राम द्वारा भरत-कर्तव्य का संकेत। भरत का संतोष। अवधि पार करने के लिए अवलंब माँगना। भरतकूप में सब तीर्थों का जल-स्थापन। रामवन-भ्रमण (२।२९०।३-२।३१२)।

तीसरी सभा – बिदाई और सीख देने के लिए भरत की प्रार्थना। राम का उपदेश। अवलंब के लिए 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं'। राम-भरत-मिलन। इंद्र द्वारा उच्चाटन। भाइयों का मिलन। बिदाई। प्रस्थान। निषादराज को विदा करना। राम-सीता-लक्ष्मण का प्रिय-वियोग से दुखी होना। दुखी देवताओं को राम का आश्वासन। पर्णकुटी में निवास (२।३१३।१-२।३२१)।

दुखी जनक-अवध-समाज का चौथे दिन अयोध्या-प्रवेश। चार दिन अवध में रहकर सब व्यवस्था कर जनक का प्रस्थान। राम-दरस के लिए लोगों का नेम-उपवास। सब यथायोग्य व्यवस्था कर भरत का गुरु से सनेम रहने की आज्ञा माँगना। राजसिंहासन पर प्रभु-पादुका स्थापन। नंदिग्राम में पर्णकुटी-निवास। मुनि-वेश, तप। नित्य पाँवरी-पूजन, उनकी आज्ञा से राज्य-कार्य-संचालन। भरतचरित की फलश्रुति (२।३२२।१-२।३२६)।

अरण्यकाण्ड – मानस का तृतीय काण्ड। तृतीय सोपान। कुल दोहा-संख्या ४६। राम के वनवास का सबसे अधिक समय दण्डकारण्य में व्यतीत, अतः इस काण्ड का यह नाम। मानस सरोवर के रूपक में विविध कांडों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह कांड 'विमल वैराग्य-सम्पादन' नामक तृतीय सोपान। भक्तों की मान्यता—मानस के सात कांड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह कांड मायापुरी या हरिद्वार। (दे० 'रामचरित मानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण – शंकर या शंकररूप ब्रह्मकुल की और राम की वंदना (३।१।श्लो० १,२)। राम द्वारा सीता का पुष्प-भूषण से शृंगार। इन्द्र-सुत जयन्त का काक-वेश धर सीता के चरणों में चोंच मारकर भागना। राम का ब्रह्मशर चलाना। जयन्त को ब्रह्मलोक, शिवलोक में भी आश्रय न मिलना। नारद के समझाने पर राम की शरण में आना। राम का कृपाकर उसे एकनयन कर छोड़ देना (३।१।३-३।२)। मुनियों से विदा ले राम का चित्रकूट से प्रस्थान। अत्रि के आश्रम में अत्रि द्वारा सत्कार, पूजा-स्तुति। अनसूया द्वारा सीता को नारि-धर्म का उपदेश। राम का अत्रि से अनुमति माँग दूसरे वन की ओर गमन। राम-लक्ष्मण के बीच सीता की शोभा। विराध-वध। तीनों का शरभंग मुनि के पास जाना। मुनि का राम को पुण्य-कर्म समर्पित कर भक्ति का वरदान लेना। चिता रचकर योगाग्नि से उनका शरीर-त्याग। मुनियों द्वारा स्तुति। आगे गमन करते हुए मुनियों से निशाचर-उत्पात का समाचार सुन और अस्थि-समूह देख राम की प्रतिज्ञा – 'निसिचर हीन करउँ महि' (३।२।३-३।९)। प्रभु का आगमन सुन अगस्त्य के

शिष्य सुतीक्ष्ण की प्रेम-विह्वलता, समाधि। चतुर्भुज रूप दिखाकर राम का उन्हें जगाना, भेंटना। राम को आश्रम में लाकर मुनि द्वारा उनकी पूजा-स्तुति। वरदान पाना। मुनि के साथ राम का अगस्त्य-आश्रम में जाना। अगस्त्य द्वारा उनका स्वागत। राम का उनसे मुनि-द्रोही-वध का मंत्र पूछना। अगस्त्य द्वारा स्तुति और अभीप्सित वर प्राप्ति। मुनिशाप-ग्रस्त दंडक वन को शापमुक्त और पवित्र करने तथा वहाँ वास करने की उनकी विनती (३।६।१-३।१३।१७)।

राम का पंचवटी की ओर प्रस्थान। गीधराज से भेंट। गोदावरी के पास पर्णकुटी बनाकर रहना। मुनियों की त्रास-मुक्ति। वन-प्रकृति की शोभा-वृद्धि। लक्ष्मण के प्रश्नों के उत्तर में राम द्वारा उपदेश— राम गीता— माया, ज्ञान, परम वैराग्य और ईश्वर-जीव-भेद का निरूपण। ज्ञान-बीज धर्म, ज्ञान मोक्षप्रद। प्रभु का शीघ्र द्रवीकरण भक्ति से। भक्ति स्वतंत्र, ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन, सतसंगति से उसकी प्राप्ति। भक्ति के साधन— विप्र-चरण-रति, स्वधर्माचरण। उससे विषय-विराग, भगवद्धर्म में अनुराग। नवधा भक्ति की दृढ़ता। प्रभु-लीला में रति। संत-चरण-प्रेम। भजन में दृढ़ता। प्रभु को सर्वस्व अर्पित करनेवाले के हृदय में प्रभु का वास। भक्तियोग सुन लक्ष्मण को सुख (३।१३।१८-३।१७।२)। शूर्पणखा का पंचवटी में आगमन। भाइयों के रूप पर मुग्ध होना। प्रेम-प्रस्ताव। उसका दो बार क्रमशः राम और लक्ष्मण के पास जाना। लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार। राम के संकेत पर उसका नाक-कान काटना। खर-दूषण के पास जाकर उसका विलाप। उन्हें धिक्कारना। खर-दूषण का ससैन्य आक्रमण। राम का सीता को लक्ष्मण के साथ गिरि-कंदरा में भेजना। राम-रूप पर मुग्ध हो खर-दूषण का दूत भेजना। राम का उत्तर। युद्ध-वर्णन। रिपुदल-वध। देवों का हर्ष, स्तुति। लक्ष्मण का सीता को लेकर आना (३।१७।३-३।२१।४)।

शूर्पणखा का रावण की सभा में जाकर क्रोध और विलाप करना। निज दोष छिपाकर नासा-कर्ण-छेदन का प्रसंग सुनाना। खर-दूषण-त्रिशिरा-वध का समाचार सुन रावण का क्रोध और चिंता। विचार— खर-दूषण को भगवान के अतिरिक्त कौन मार सकता है! उसका निश्चय— यदि भगवान अवतीर्ण, तो वैर ठानकर वह भव तरेगा। यदि वे राजपुत्र, तो उन्हें मारकर उनकी नारी का हरण करेगा। उधर लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम के आदेश से अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीता का अग्नि-प्रवेश (३।२१।५-३।२४।५)। रावण का मारीच के पास जाना। सब वृत्तांत कहकर, सीता-हरण के लिए उससे कपट-मृग बनने का अनुरोध करना। मारीच का उसे समझाना। रावण का क्रोध। मारीच ने 'उभय भाँति देखा निज मरना'। रावण के साथ रामवन के निकट जा मारीच का कनक-मृग बनना। सीता द्वारा उसका वध करके चर्म लाने का राम से अनुरोध। सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़ राम का मायामृग के पीछे दौड़ना। उसका वध। मारीच का राम के स्वर में लक्ष्मण कहकर पुकारना। सीता की व्याकुलता। उनके मर्म-वचन सुन विवश लक्ष्मण का प्रस्थान। रावण का यति-वेश में आगमन। रावण-सीता-संवाद। सीता-हरण। सीता का आर्त्त विलाप। सुनकर जटायु का रावण पर झपटना। युद्ध। रावण द्वारा जटायु का पक्षच्छेदन। रावण का सीता को ले जाना। हरिनामोच्चार करते हुए सीता का गिरि पर बैठे बंदरों के बीच वस्त्र गिराना। रावण का सीता को अशोक-वृक्ष के नीचे रखना। सीता के हृदय में प्रभु-छवि, मुख से नामोच्चार (३।२४।६-३।२९ख)।

अनुज को आते देख राम का बाह्य रूप में चिंता व्यक्त करना। आश्रम में सीता को न देख उनका विलाप। 'लता तरु पाँती' से पूछते चलना। सीता का नख-शिख-वर्णन। गीधपति से भेंट। जटायु-राम-संवाद। जटायु की गति। चतुर्भुज हरि रूप से उनके द्वारा राम-स्तुति। उन्हें अविरल भक्ति का वर प्राप्त। राम द्वारा उनका दाह-क्रियादि-संस्कार (३।३०।१-३।३२)। सीता को खोजते हुए मार्ग में कबंध-वध। कबंध द्वारा दुर्वासा के शाप का उल्लेख। राम द्वारा ब्राह्मण-महिमा-कथन। भागवद्धर्म का उपदेश। उसे गति देकर शबरी के आश्रम में जाना। शबरी की प्रेम-मग्नता। राम द्वारा नवधा भक्ति का उपदेश। जनकसुता की सुधि पूछने पर शबरी का पंपा सरोवर जाने का अनुरोध और भविष्यवाणी। योगाग्नि से उनका देह-त्याग (३।३३।४-३।३६)। राम का विरही की तरह विलाप करते हुए जाना। वसंत के ब्याज से कामसेना का वर्णन। पंपा सरोवर पहुँचना। सरोवर-प्रकृति-वर्णन। सर-स्नान। प्रसन्न मन से तरु-छाया में बैठना। देव-मुनि-आगमन (३।३७।१-३।४१।४)। नारद का सोच। प्रभु के पास आकर स्तुति। अन्य नामों से 'राम' नाम के श्रेष्ठ होने का वरदान पाना। (विश्वमोहिनी से) विवाह न होने देने का कारण पूछना। राम का उत्तर — उनका माँ की तरह भक्त की रखवाली करना। 'मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत

सम दास अमानी।। जनहि मोर बल निज बल ताही।' मोह की सेना में मायारूपी नारी का दारुण दुखद होना। नारी में छहों ऋतुओं की विशेषताएँ। 'नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।' बुद्धि, बल, शील, सत्य रूपी मछलियों के लिए नारी वंशी के समान। 'अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुखखानि' — इसीलिए प्रभु का नारद को विवाह से वंचित करना। नारद का संतों के लक्षण पूछना। प्रभु का उत्तर। नमन कर नारद का ब्रह्मलोक-प्रस्थान। फलश्रुति। नारि-संग से बचने के लिए मन को प्रबोधन (३।४१।५-३।४६ ख)।

अरिमर्दन — कैकयनरेश सत्यकेतु के पुत्र, प्रतापभानु के अनुज। इनकी संग्राम-वीरता और प्रतापभानु के प्रति निश्छल प्रेम का उल्लेख (१।१५३।६-७) प्रतापभानु को दिये गये विप्रशाप से इनके कुंभकर्ण होने का कथन (१।१७६।३)। (विप्रशाप के लिए दे० 'प्रतापभानु')।

मूल शब्द — १।१५३।६, १।१७६।३।

अरुंधती — किसी कारण से भी धर्म का अवरोध न करने के कारण यह नाम। सं० शि० पु० पृ० ११६।

ब्रह्मा > मनु-शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम (ब्रह्मापुत्र) > अरुंधती ~ वसिष्ठ > चित्रकेतु आदि। भा० ३।१२।२७, ५२।५६; ३।२२।१५; ३।२३।४८; ३।२४।२३; ४।१।४०-४१।

[इनका एक नाम ऊर्जा भी। भा० ४।४१।४०। भोर का एक तारा। आ० को०। उत्तर दिशा में सप्तर्षियों के साथ प्रकाशित। महा० उद्यो० १११।१४। ब्रह्मा की सभा में शची, पृथ्वी आदि देवियों के साथ इनका भी स्थान। महा० सभा० ११।४०। अग्निदेव से समागम के लिए छः सप्तर्षि-पत्नियों का रूप धरने में समर्थ होकर भी इनके तप-तेज-पातिव्रत के कारण इनका रूप धारण करने में स्वाहा की असमर्थता। महा० वन० २२५।१३-१५। इनसे धर्म-रहस्य सुन निरंतर इनकी तपोवृद्धि का ब्रह्मा-वरदान। महा० अनु० १३०।१३। इनके नाम पर 'अरुन्धती दर्शन न्याय' (अरुन्धती तारा-दर्शन का सिद्धांत, ज्ञात से अज्ञात का पता लगाने के अर्थ में)। आ० को० 'न्याय'।

शि० पु० के अनुसार पूर्वजन्म में ये ब्रह्मापुत्री संध्या। एक बार इनके मन में कामभाव का उदय। अतः तप करके अग्नि में आत्माहुति देने का इनका निश्चय। वसिष्ठ का इन्हें शंकर-मंत्र देना, तपस्या करने की विधि बताना। इनका कठोर तप। महेश्वर से वर-याचना— जन्म लेते ही प्राणी कामभावयुक्त न हों; इन्हें अत्यन्त सुहृद् पति प्राप्त हो; पति के अतिरिक्त जो भी इन्हें कामभाव से देखे, उसका पुरुषत्व नष्ट हो। वांछित वर पाकर शिव के आदेश से इनका अदृश्य होकर मेधातिथि के यज्ञ में जाना। तप का उपदेश करनेवाले वसिष्ठ का पतिरूप में स्मरण कर यज्ञाग्नि में इनका प्रवेश। यज्ञ की समाप्ति पर सुवर्ण-सी कान्तिमती पुत्री के रूप में मेधातिथि को ये प्राप्त। इनका नामकरण अरुन्धती। वसिष्ठ से विवाह। सं० शि० पु० पृ० १११-११६।

महा० आदि० १७३।५ में वसिष्ठ-पत्नी का नाम अरुन्धती, महा० उद्यो० ११७।११ में अक्षमाला। आइ० एम० में अक्षमाला की इनसे अभिन्नता का संकेत।]

चित्रकूट-यात्रा में इनको साथ ले वसिष्ठ के प्रथम रथ में आरूढ़ होकर जाने का उल्लेख (२।१८७।५)।

अलंकृति — अलंकार। काव्य का एक अंग।

[यह रसात्मकता का उत्कर्षक। काव्य में रमणीयता और चमत्कार के उद्रेक के लिए आवश्यक। अर्थ-सौन्दर्य-सम्पादन की दृष्टि से रस, ध्वनि, गुण, रीति के बाद इसका महत्व। शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने के कारण इसके दो भेद — शब्दालंकार और अर्थालंकार। दोनों के आश्रित रह दोनों को चमत्कृत करने पर उभयालंकार। इनके अनेक भेदोपभेद। सा० को०]

इसके नाना प्रकार होने का कथन (१।६।६)।

अलच्छि (अलक्ष्मी) — लक्ष्मी की बड़ी बहन। ज्येष्ठा। दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी।

[सागर-मंथन में विष के बाद, लक्ष्मी से पहले उत्पन्न, इसलिए ज्येष्ठा। ये अशुभा। दुःसह नामक विप्र से इनका विवाह। दुःसह दुखी। मार्कण्डेय मुनि से उनका दुःख-निवेदन। मुनि-उपदेश— ये अमंगलमयी, अकीर्त्तिकारिणी, अतः इनके लिए उन स्थानों में जाने का निषेध जहाँ विष्णु अथवा शिव का नामोच्चार अथवा उनके भक्तों का वास, जहाँ संध्या-वंदन, देवार्चन आदि मांगलिक कार्यों का अनुष्ठान। वे ही स्थान इनके योग्य, जो हर तरह से पाप-कर्म-संकुल। एक दिन इन्हें तालाबवाले आश्रम में अश्वत्थ वृक्ष तले रख दुःसह का पाताल-गमन। फिर न लौटना। इनके पूछने पर विष्णु का इनके भरण-पोषण का उपाय बताना— विष्णु और शिव, इन दोनों में किसी

एक के प्रति भी द्वेषभाव रखनेवाले का संपत्ति-हरण। इनका दृष्टि-दोष दूर करने के लिए विष्णु और लक्ष्मी द्वारा रुद्र मंत्र-जाप। लिं० पु० उ० ६। प० पु० उ० २३२।२३-२४ में भी ये 'कलिवल्लभा'। इनके पूछने पर देवताओं द्वारा इनके निवासयोग्य अमंगलमूलक स्थानों का निर्देश। प० पु० उ० ११६ में उद्दालक से विवाह। इनका रूप विकृत। मद्य, द्यूत आदि ही प्रिय। अतः उद्दालक द्वारा अश्वत्थ तले इनका परित्याग। विष्णु का इन्हें अपने अंशरूप अश्वत्थ के नीचे ही वास का आदेश और प्रति शनिवार को लक्ष्मी के वहाँ आने का आश्वासन। इनका पूजन करनेवाले गृहस्थ के घर लक्ष्मी के स्थिररूप से वास का विष्णु-कथन। (प्रत्येऽहं येऽर्चयिष्यन्ति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः। तेष्वियं श्रीः कनिष्ठा ते भगिनी निश्चलास्तु वै।। प० पु० उ० ११६।२७।) दीपान्विता अमावस्या की रात में संध्योपरांत पहले गृह में लक्ष्मी-पूजन। उसके बाद घर के बाहर जा गोबर की पुतली बना काले फूल से अलक्ष्मी की पूजा। तदुपरांत मुँह फेरकर कृष्णवर्ण-पुष्प द्वारा प्रणाम। वि० को०। ब्र० पु० ब्रह्म० ८ में ये अधर्म से उत्पन्न उसकी पत्नी। श्रीसूक्त में ये क्षुधा, पिपासा से मलिन, क्षिणिकाय। भीतरी-बाहरी अलक्ष्मी को दूर करने की प्रार्थना। ऋचा ५-६, ८।]

'बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना' के प्रमाण-स्वरूप द्वंद्वों के उल्लेख-क्रम में लक्ष्मी के साथ इनका उल्लेख (१।६।७)।

अवध -- किसी से जिसका वध (नाश) न हो, वह अवध। सात मोक्षदायिनी पुरियों में प्रथम – अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। द्वारावती तथा ज्ञेया सप्तपुर्यश्च मोक्षदाः। रुद्रयामल अयोध्यामाहात्म्य। ३०।५४।[१]

[सप्तपुरियाँ भगवान् विष्णु की अंगस्वरूपा, इनमें अवध मस्तक – विष्णोः पादमवन्तिकां गुणवतीं मध्यं च कांचीपुरीं, नाभिं द्वारवतीं वदन्ति हृदयं मायापुरीं योगिनः। ग्रीवा मूलमुदाहरन्ति मथुरां नासा च वाराणसीं, एतद्ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यां पुरीं मस्तकम्।। रु० अ० २।५८।[१] यह सर्वाधिक फलप्रद – कल्पकोटिसहस्राणां काशीवासस्य यत्फलम्। तत्फलं क्षणमात्रेण कलौ दाशरथीं पुरिम्।।[१] यह त्रिदेव का स्वरूप; पातकादि इससे युद्ध नहीं कर सकते, अतः अयोध्याः, यह विष्णु की आद्यपुरी, उनके चक्र पर स्थित, पृथ्वी से अस्पृष्ट– अकारो वासुदेवः स्याद्यकारस्ते प्रजापतिः।। उकारो रुद्ररूपस्तु तां ध्यायन्ति मुनीश्वराः। सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः।। न योध्या सर्वतो यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः। विष्णोराद्या पुरी चेयं क्षितिं न स्पृशति प्रिय।। विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्याकरा सदा। (शिवकथन पार्वतीप्रति) रु० अ० १।६१-६४।[१] यह पुरी एक भूतल पर है, दूसरी ब्रह्मांड से परे। दोनों अखंड, एकरस, दोनों के तत्व, स्वरूप, नाम, नित्यता में अभेद। भेद यही कि एक भोगस्थान, दूसरा लीलास्थान–भोगस्थानं परायोध्या लीलस्थानं परं भुवि। भोगलीलापतीरामो निरंकुशविभूतिकः। शिवसंहिता २।१८।[२] इसके अन्य नाम – रामधाम, साकेत, अपराजिता, संतानक आदि।]

इस 'अतिपावनि' पुरी की, और इसकी अंगस्वरूपा 'कलि कलुष नसावनि' सरयू की वंदना। इसके रामप्रिय वासियों को प्रणति (१।१६।१-२)। [अयोध्या च परं ब्रह्म सरयूः सगुणः पुमान्। तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। रु० अ० २।६७।[३]] सिय-निंदकों का पाप-नाश कर, उन्हें शोकरहित कर, प्रभु के अवध में बसाने का कथन (१।१६।३)। यह राजा राम की राजधानी (१।२५।६)। यहाँ राम का अवतरित होना। (हर कल्प में रामावतार इसी पुरी में होता है।) उस दिन सब तीर्थों का, असुर-नाग-खग-नर-मुनि-देव आदि का यहाँ आना और राम-जन्म-महोत्सव मनाना (१।३४।५-८)। यह 'अतिपावनि', शोभाशालिनी, 'रामधामदा'। यहाँ शरीर त्यागने पर पुनर्जन्म नहीं। [अस्यां मृताश्च बैकुंठमूर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः। ·· यद्गत्वा न पतन्त्यस्मिन्लोके मृत्युमुखे नराः। सत्योपाख्यान पू० सर्ग १९[४]।] यह 'सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी'। अतः यहीं काम-मद-दंभ-निवारक मानस-कथा का आरंभ (१।३५।३-६)। मानस-सर-रूपक में 'संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल' (१।३९)। 'राम सो अवध नृपति'? उमा-जिज्ञासा शिव से (१।१०८।८)। स्वायंभुव मनु से अवध-भुआल होने का अवतार-पूर्व राम-कथन (१।१५१)। कश्यप-अदिति का दशरथ-कौसल्या रूप में यहाँ प्राकट्य (१।१८७।४)। दशरथ यहाँ के राजा (१।१८८।७)। राम और भाइयों के जन्म पर पुरशोभा-वर्णन (१।१९४।१-२, १।१९५।१-८)। उस समय शिव-भुशुण्डि का मनुजरूप में आकर मग्न हो यहाँ की वीथियों (गलियों) में घूमना (१।१९६।४-५)। शिवधनुभंजन के बाद कौशिक के आदेश से जनक का यहाँ दूत भेजना। दूतों का यहाँ की शोभा देख हर्षित होना (१।२८७।१, १।२९०।१)। जनक-पत्रिका आने के बाद पुर-शोभा-हर्षोल्लास का वर्णन (१।२९६।१-१।२९७)। जनकपुर से राम-बरात का

अवधपुर के लिए लौटना, पुर-समीप पहुँचना। पुर-सज्जा, ऐश्वर्य, उल्लास। देवों का सिहाना (१।३३९, १।३४३-१।३४५।८)। नित्य नव मंगल मोद उछाह देख वे 'अवध जन्म जाचहिं बिधि पाही'। राम-विवाह के बाद से यहाँ आनंद का निवास (१।३५९, १।३६०।२, १।३६१।५)। 'रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।।' वैभव अवर्णनीय (२।१।३, ५)।

राम-अभिषेक के समाचार से अवधभर में बधावे बजना। कुचाली देवताओं को यह न सुहाना। अपने कार्य के लिए उनका सरस्वती से यहाँ आने का अनुरोध। सरस्वती का दुखद ग्रहदशा की तरह आगमन (२।७।३, २।११।७, २।१२।४,८)। दशरथ-चिंता – 'अवध उजारि कीन्हि कैकेईं' (२।२९।६)। इसके फिर बसने का दशरथ-कथन कैकेयी प्रति (२।३६।३)। रघुकुल-गुरु रवि से उदित न होने की उनकी प्रार्थना, क्योंकि 'अवध बिलोकि सूल होइहि उर' (२।३७।३)। राम-वनगमन-समचार से 'मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ' (२।४६)। प्रभु बिना इसके निर्जीव शोभाहीन होने का कथन कैकेयी से उनकी प्रिय स्त्रियों द्वारा (२।५०।छं०)। कौसल्या-कथन – यदि पिता-माता की आज्ञा, 'तौ कानन सत अवध समाना'। 'बड़भागी बनु अवध अभागी'। (२।५६।२, ५)। पति-संग रहने पर सीता के लिए वन के पर्वत महलों जैसे। उनके बिना अवध में रहने पर अवधि-समाप्ति तक प्राण नहीं रहेंगे (२।६६।३-२।६६)। राम-कथन– लक्ष्मण को साथ ले जाने पर 'होइ सबहि बिधि अवध अनाथा' (२।७१।३)। सुमित्रा-कथन लक्ष्मण प्रति – 'अवध तहाँ जहँ राम निवासू'। सीता-राम के वन जाने पर लक्ष्मण का यहाँ कोई काम नहीं (२।७४।३, ४)। सबको समझाकर राम-गमन। अवध में शोक। इस पुरी को सिर नवाकर लक्ष्मण-सीता-सहित राम का प्रस्थान। अवध अनाथ। इसकी भयावह स्थिति का वर्णन (२।८१।४, २।८३।२,३, २।८३।५–२।८४।३)। पुरवासियों का विचार – 'बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू' (२।८४।६)। संताप-भरे उसका लौटना (२।८६।७)। सीता-विनय पर प्राणनाथ, देवरसहित सकुशल यहाँ लौटने की गंगा की आशिष (२।१०३)। सीता के लिए चित्रकूट-वन 'अवध सहस सम' (२।१४०।४)। इसकी याद कर राम की आँखों में आँसू (२।१४१।३)। सुमंत्र का अँधेरे में अवध-प्रवेश (२।१४७।५)। अंतःपुर में क्रंदन सुन अवध में कोलाहल (२।१५३)। कौसल्या-शब्दों में दशरथ 'अवध-जहाजू' (२।१५४।६)। 'अनरथ अवध अरंभेउ जबतें' (२।१५७।५)। तीर्थराज-मुनिसमाज में, राम के लौटने से ही अवध के बसने का, भरत-कथन (२।२१२।६)। चित्रकूट में अवधवासियों की विष्णु से प्रार्थना–राम अवध के राजा हों (२।२७३।६, २।२७३)। अवध में राम के अचल राज्य का सुनयना-कथन कौसल्या से (२।२८५।६)। भरत का राम से अवधिभर अवध-सेवन की आज्ञा माँगना। राम का तदनुरूप आदेश (२।३१३।८, २।३१५।६)। भरत-समाज का चित्रकूट से चौथे दिन अवधपुर-आगमन। गुरु-शिक्षा मान सबका यहाँ सुखपूर्वक निवास (२।३२२।५,८)। जिस पुर को देख सुरराज को ईर्ष्या, उसी में भरत का अनासक्त भाव से वास (२।३२४।६,७)।

राम के कोसलपुर-राजा होने का लक्ष्मण-कथन शूर्पणखा से (३।१७।१४)। रण में मूर्च्छित लक्ष्मण के लिए औषध-पर्वत लेकर हनुमान् का यहाँ के आकाश-पथ से लौटना (६।५८।८)। लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-विलाप – जैहउँ अवध कौन मुहु लाई (६।६१।११)। राम-स्तुति करने के बाद उनके राजतिलक पर यहाँ आने का शिव-कथन (६।११५)। विभीषण की विनय– प्रभु यहाँ उन्हें साथ लेकर आयें (६।११६।७)। लौटते समय पुष्पक से राम का सीता को 'अतिपावनि, त्रिविध ताप भवरोग-नसावनि' अवधपुरी दिखाना। सीतासहित प्रणाम करना। इसे देख राम को हर्ष – पुलक, उनके नयनों में जल (६।१२०।९-६।१२०क)। प्रभु का हनुमान् को वटुरूप में यहाँ भेजना (६।१२१।१)। हनुमान् से राम के लौटने का समाचार सुन भरत का नंदिग्राम के यहाँ आना। इस संवाद से पुरी का शोभा-सम्पन्न होना। 'राका ससि रघुपति पुर' (७।३।१, ९-७।३ ग)। वानरों को जन्मभूमि दिखाते हुए इसके प्रति अपने अतिशय प्रेम का, वैकुंठ से भी इसके अधिक प्रिय होने का (यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ), यहाँ के वासियों के प्रिय होने का, अंगस्वरूपा सरयूसहित इसकी महिमा का (पावन, सुखरासी, 'मम धामदा') राम द्वारा कथन। इसके धन्य होने का वानर-कथन (७।४।१-८)। अवध-सर का रूपक (७।९क)। रामकथा श्रवण-गान से रघुपतिपुर-प्राप्ति का भुशुण्डि-कथन (७।१५।४)। राम के राजतिलक के बाद यहाँ नित नव मंगल। राम-निवास। पुरवासियों की संपदा अतुलित (७।१५।८, ७।२२।१, ७।२६)। नारद-सनकादि का राम-दर्शन के लिए नित्य प्रति यहाँ आगमन। नगर देख उनका वैराग्य-विस्मरण। नगर के अंतर्बाह्य का शोभा-वर्णन (देखत पुरी अखिल अघ

भागा)। अणिमादिक सुख-संपदा का यहाँ विस्तार (७।२७।१-७।२९)। अवधवासी कृतार्थस्वरूप (७।४७)। भुशुण्डि-कथित मूलमानसकथा में इसका उल्लेख (७।६५।७, ७।६८।४)। भुशुण्डि द्वारा अवध-प्रभाव-कथन (अवध प्रभाव जान तव प्रानी, जब उर बसहिं रामु धनुपानी) (७।९७।५-७)। कलिकाल में अनेक वर्षों तक यहाँ रहने का उनका कथन (७।१०४ ख)। जब-जब रामावतार, तब-तब उनका यहाँ आकर निवास और शिशुलीला-दर्शन (७।७५।२-३, ७।११४।१२-१३)।

सुमंत्र-प्रसंग में इसका उल्लेख (२।९५।१, २।९६।७, २।९८।५, २।१४२।४, २।१४४।२, २।१४५।७, २।१४६।५)। चित्रकूट-प्रसंगों में उल्लेख (२।२५२।८, २।२५५।२, २।२७०।२, २।२७०, २।२७१।६-७, २।२७१, २।२७२, २।२७८।१)। काकभुशुण्डि-प्रसंग में उल्लेख (७।८०।१, ७।८१।६, ७।८२।३, ७।८८क, ७।८९।१, ७।१०९।९)। अन्य उल्लेख (१।२००।१, १।२०४, १।३३४।१, १।३३६।५, २।१३९।५, २।१९५।२, २।१९९।५, २।२२५।८, ७।११।१)।

मूल शब्द — १।२५।६, १।३५।४, १।३९, १।१०८।८, १।१५१, १।२९६।५, १।३४३, १।३५९, १।३६०।२, १।३६१।५, २।१।३, २।७।३, २।११।७,२।१२।४, २।२९।९, २।३६।३, २।३७।३, २।४६, २।५०।छं०, २।५६।२, २।५६।५, २।६६।३, २।६६, २।७१।३, २।७४।३, २।७४।४, २।८१।४, २।८३।२, २।८३।३, २।८३।५, २।८४।६, २।८६।७, २।९५।१, २।९६।७, २।९८।५, २।१३९।५, २।१४०।४, २।१४१।३, २।१४२।४, २।१४४।२, २।१४५।७, २।१४६।५, २।१४७।५, २।१५३, २।१५४।६, २।१५७।५, २।१९५।२, २।१९९।५, २।२१२।६, २।२२५।८, २।२५२।८, २।२५५।२, २।२७०।२, २।२७०, २।२७१।६, २।२७१।७, २।२७१, २।२७२, २।२७३।६, २।२७३, २।३१३।८, २।३१५।६, २।३२४।६, ६।६१।११, ६।१२०क, ७।४।८, ७।९क, ७।२९, ७।४७, ७।६८।४, ७।८२।३, ७।८९।१, ७।९७।५, ७।९७।६, ७।९७।७; ७।१०४ख। अवधपुर— १।२८७।१, १।३३४।१, १।३३६।५, १।३३९, २।२८५।६, २।३२२।५, ६।११६।७, ६।१२१।१, ७।६५।७। अवधपुरी— १।१६।१, १।३४।५, १।१८८।७, १।१९५।३, ६।५८।८, ६।१२०।९, ७।३।९, ७।४।४, ७।११।१, ७।२६, ७।७५।३, ७।८१।६, (जाति०),७।८८क, ७।११४।१२।

पर्याय — **अजोध्या** (अयोध्या — जिसे युद्ध करके जीता न जा सके) — ७।२७।२।

कोसलपुर — १।२००।१, १।२०४, ३।१७।१४, ७।३।१, ७।८०।१, ७।९७।१। कोसलपुरी — १।१८७।४, ६।११५, ७।१५।८। कोसला — २।१०३, ७।२२।१।

दशरथपुर — २।१२।८। दसरथपुर — २।२७८।१।

रघुपतिपुर (रामधाम भी) — ७।३ग। रघुपतिपुरी — ७।१०६।६।

रघुबरपुरी — १।३४४।

राम धामदा पुरी — १।३५।३।

राम्पुर — १।२९०।१, ७।११४।१३। रामपुरी — १।२९६।५।

राम रजधानी — २।३२२।८।

[१—मा० पी० १।१६।१ नोट २। २— मा० पी० १।३५।३ टिप्पणी १। ३— मा० पी० १।१६।२ टिप्पणी १। ४— मा० पी० १।३५।४ अर्थ के बाद।]

अवरेब (अवरेव) — काव्य का एक अंग।

[हि० अ० पृ० २५९ में इसका अर्थ वक्रोक्ति। मा० पी० १।३७।८ नोट २ के अनुसार इसके अर्थ के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत :— १. अव = विरुद्ध, रेव = गति। तिरछी या टेढ़ी चाल। इसे 'खंडान्वय' भी कहते हैं। काव्य में शब्द जैसे रखे हैं, वैसे ही अर्थ करने से उपयुक्त आशय न निकले, शब्दों का उलट-फेर करने से उपयुक्त अर्थ निकले, तो उस काव्य की संज्ञा 'अवरेव' काव्य।

२. वक्र गति, व्यंग्य, उक्ति की वक्रता। बृ० को०।

३. दो भेद। (क) अर्थ-अवरेव — जहाँ दूषण भी किसी कारण से भूषण। यथा, 'श्यामतन सोनित कनी'। (ख) शब्द-अवेरव — यह एक प्रकार का अन्वय।

४. यह फारसी शब्द जिसका अर्थ टेढ़ा या फेरफार। जहाँ कोई बात फेरफार से कही जाये, वहीं अवरेव।

काव्य में यही 'पर्यायोक्ति'।

५. यह फारसी शब्द जिसका अर्थ तिरछा, टेढ़ा, पेचीदा। अतः यह 'लक्षणा-वृत्ति'।

६. गुणीभूत व्यंग्य, जहाँ वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य गौण।

७. अवर + इव। अवर = अधम, इव = की तरह। मम्मट के अनुसार काव्य के तीन भेद — उत्तम (ध्वनि), मध्यम (गुणीभूत व्यंग्य) और अवर (शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यमिति त्ववरं स्मृतम्। का० प्र० १।५। अतः अवरेव का अर्थ 'अधम काव्य सदृश' काव्य, पूर्णतः अधम नहीं।]

मानस-सर के रूपक में काव्य के अंग ध्वनि, अवरेब, गुण, जाति का मछलियों के रूप में कथन (१।३७।८)।

असुरसेन — एक राक्षस जिसके शरीर पर गया नगरी स्थित। बृ० को०। गयासुर।

[यह महापराक्रमी। सवा सौ योजन इसकी ऊँचाई, साठ योजन मोटाई। इसका घोर तप। वर देने के लिए त्रिदेवादि उपस्थित। इसकी याचना — यह देव, द्विज, तीर्थ, यज्ञ आदि से भी अधिक पवित्र हो जाये। इसके दर्शन या स्पर्श करनेवाले भी पवित्र हों। इसकी ऊँचाई के कारण दूर-दूर के लोगों को इसके दर्शन। सब पवित्र। यमलोक में हाहाकार। ब्रह्मा का इसके निकट आकर कथन — जगत् में कहीं उनके यज्ञ के लिए पवित्र भूमि नहीं। अतः यह लेट जाये तो इसके शरीर पर वे यज्ञ करें। इसे स्वीकार। अवभृथ-स्नान के बाद इसके कुछ हिलने पर ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता इसके शरीर पर आसीन। (इस प्रकार दूर से इसके दर्शन संभव नहीं।) देवताओं के कहने पर इसकी वर-याचना — जब तक संसार की स्थिति, तब तक देवगण यहीं वास करें। यह क्षेत्र इसके नाम से (गया नाम से) प्रसिद्धि हो। यहाँ पिण्डदान देने से लोगों का पितरोंसहित उद्धार हो। मा० पी० १।३१।६ नोट २ के अनुसार वायुपुराण, गया-माहात्म्य १-२। किंचित् परिवर्तनसहित यही कथा अ० पु० ११४ में। वहाँ असुरसेन का नाम गयासुर।]

रामकथा इसकी तरह नरक-निकन्दिनी (१।३१।६)।

असुराधिप नारी — वृन्दा। ईशान कल्प में क्रौंच-कन्या, स्वर्णा अप्सरा से उत्पन्न। प० पु० उ० ४।४२। एक अन्य कल्प में कालनेमि-पुत्री। प०पु०उ० ६६।३२। जालन्धर-पत्नी।

[पार्वती को मोहित करने के लिए शिव का रूप धरे जालन्धर की चेष्टाओं से (दे० जलंधर) विष्णु को अवगत करा, इनके रूप की प्रशंसा कर, इनके हरण का विष्णु को गरुड़-परामर्श। हर-पार्वती के उपकार और अपनी देह-तुष्टि के लिए इनके हरण का विष्णु का निश्चय। (जालन्धरस्त्रियं रम्यां हरिष्ये हरकारणात्। पार्वत्याश्चोपकाराय संछाद्य स्वात्मनस्तनुम्। १५।२८।)

सर्पराज शेष को साथ ले इनके निवास-स्थान के पास ही यतिवेशधारी विष्णु का आश्रम बनाना। सिंह, व्याघ्र, वराह, वानर आदि मनुष्यवेश में उनके शिष्य।। उनका माया फैलाना। ये तरह-तरह के वैधव्यसूचक दुःस्वप्नों से पीड़ित। विप्रों को दान आदि देकर भी शान्ति न मिलने पर अपनी दासी स्मरदूती के साथ रथारूढ़ हो इनका उपवन की ओर गमन। वहाँ के रमणीय दृश्य से जालन्धर की स्मृति, मन अशान्त। वन की ओर गमन। वहाँ भीषण दृश्य। दिशा का विस्मरण। एक दूसरे वन में प्रवेश। वह योगियों की साधना-भूमि। वायु-जल-आलोक-शब्द-हीन। पत्ते भी स्तब्ध। घोड़े भयभीत। त्रिपाद, पंचहस्त, सप्तनेत्र एक भयंकर राक्षस का प्राकट्य। उसका रथ को फेंक देना। घोड़ों का भक्षण। इनका हाथ पकड़ स्वयं को इनका पति बनाने का, जालन्धर के वध का, इनसे कथन। उसी समय यतिवेशधारी विष्णु का आना। उनके नेत्रों की क्रोधाग्नि से राक्षस भस्म। उनके आश्रम में जा तप करने का इनका आग्रह। आगे यति (विष्णु), पीछे ये और इनके पीछे स्मरदूती। मार्ग में व्याध की माया से त्रस्त हो इनके द्वारा विष्णु का आलिंगन। फिर चित्रशाला में जाना। वहाँ जालन्धर रूपधारी विष्णु का इनसे समागम। सुखपूर्वक कई दिनों तक वास। एक दिन आलिंगनबद्ध जालन्धर की जगह द्विभुज पुरुषोत्तम को देख, सारी माया समझ, उन पर कोप। विष्णु के समझाने पर भी पातिव्रत भंग करने के कारण उन्हें शाप — 'अहं मोहं यथा नीता त्वयाा माया तपस्विना। तथा तव वधूं मायातपस्वीकोऽपि नेष्यति' (१६।५४)। इनका कठोर तप और देह-त्याग। उसी स्थान पर काष्ठाग्नि प्रज्वलित कर उसमें स्मरदूती का प्रवेश। अप्सराओं द्वारा पुष्पवृष्टि। वह स्थान वृन्दावन। प० पु० उ० ४, १५, १६।

उपर्युक्त कथा ईशान कल्प की। प०पु०उ० ६६, १०३-१०५ में एक अन्य कल्प की वृन्दा-कथा। इसमें दो राक्षस जिन्हें देख ये भयभीत। मुनि (विष्णु) की हुंकार से राक्षसों का आकाश-गमन। युद्ध में जालन्धर के

सम्बन्ध में इनकी जिज्ञासा। मुनि का ऊपर की ओर देखना। सामने दो वानर उपस्थित। विष्णु के भ्रू संकेत से उनका आकाश में जाना। हाथों में जालन्धर का मस्तक और कबन्ध ले आना। देखकर इन्हें मूर्च्छा। मुनि के कमण्डलु-जल के स्पर्श से पुनः चेतना प्राप्त। जालन्धर को जीवित करने की प्रार्थना। विष्णु-अनुग्रह से जालन्धर जीवित। उसके साथ वहाँ इनका सुखपूर्वक वास। एक दिन आलिंगनबद्ध जालन्धर की जगह विष्णु को देख इनका कोप और सर्पराज शेष-सहित शाप— 'यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम। तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः।। त्वं चापि भार्यादुःखार्त्तो वने कपि सहायवान्। भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्तेशिष्यत्वमागतः।।' १०३।२९ ३०। योगाग्नि से इनका आत्मदाह। इन पर मुग्ध शोकाकुल विष्णु का इनकी भस्म में लोटना। वह स्थान वृन्दावन। विष्णु को मोहित देख व्याकुल देवताओं द्वारा महामाया के आदेश से वहाँ सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी के बीज रोपित। उन बीजों से धात्री (आँवला), मालती, तुलसी की उत्पत्ति। धात्री और तुलसी में स्त्रीरूप देख, उनको वृन्दा का रूप मान, उन्हें साथ ले, विष्णु का वैकुंठ-गमन।

इन्हें तुलसीवृन्दा भी कहते हैं। कई जगह तुलसी का पर्याय माना गया है। दे० 'तुलसी'।

इन कथाओं से यह स्पष्ट नहीं कि वृन्दा का पातिव्रत-भंग ही जालन्धर-वध का कारण।]

ये जालन्धर-पत्नी। परम सती। इनके पातिव्रत-बल के कारण शिव के लिए भी जालन्धर अजेय। सुर-कार्य के लिए छल से प्रभु द्वारा इनका पातिव्रत-हरण। मर्म समझकर इनका कोप से प्रभु को शाप देना। प्रभु द्वारा इनका शाप प्रमाणित (१।१२३।७-१।१२४।१)।

मूल शब्द — १।१२३।७।

असोक (अशोक) — जिसे कोई शोक न हो। लाल फूलों और लहरदार पत्तियोंवाला एक प्रकार का वृक्ष। (कविसमय कि स्त्रियों के चरण-स्पर्श से इसमें फूल खिल जाते हैं।) आ० को०; बृ० को०)। वृक्षविशेष जिसके नीचे रावण का सीता को रखना। —उपवन, —बाटिका, जिसमें इस वृक्ष की स्थिति। —वन, विस्तृत सीमा जहाँ हृत सीता को प्रथम ले जाया गया।

सीता-हरण कर रावण का उन्हें लंकापुरी के अशोक वन में ले जाना। भय-प्रीति दिखा हारकर अशोक-वृक्ष के नीचे रखना (३।२९।२६, ३।२९क)। (वा० रा० में पहले अन्तःपुर में (३।५४।१३), फिर अशोक वाटिका में (३।५६।३०, ३२)। रामदूत वानरों को यदि सम्पाति अशोक उपवन में सोच-मग्न बैठी सीता को दिखा देंगे, तो उनके पंख जम जायेंगे—चन्द्रमा मुनि के इस आश्वासन का सम्पाति द्वारा कथन (४।२८।१२)। विभीषण द्वारा बताये गये उपाय से हनुमान् का अशोक वन में जाना (५।८।६)। सीता की अशोक वृक्ष से विनय —'सत्य नाम करु हरु मम सोका' (५।१२।१०)। हनुमान् के अँगूठी गिराने से सीता का हर्ष — 'जनु असोक अंगार दीन्ह' (५।१२)। एक बानर के अशोक वाटिका उजाड़ने का समाचार रावण को भीत राक्षसों से प्राप्त (५।१८।३)। (जिस वृक्ष के नीचे सीता, केवल वही अक्षत। अ० रा० ५।३।७१-७२)।

[रावण ने अन्य स्थानों को छोड़कर अशोक-वाटिका में ही सीता को क्यों रखा, यह बताना कठिन। इस प्रसंग के आधार पर 'अशोकवनिकान्याय' (अशोक वृक्षों के उद्यान का न्याय) निर्मित — अनेक साधन उपलब्ध होने पर स्वेच्छा से किसी एक को ग्रहण करने के अर्थ में। आ०को०। 'न्याय'; बृ० को०।]

मूल शब्द — ५।१२। असोक उपवन — ४।२८।१२। असोक पादप — ३।२९क। असोक बाटिका — ५।१८।३। बन असोक — ३।२९।२६, ५।८।६। बिटप असोका — ५।१२।१०।

अस्त गिरि —(अस्ताचल) — पश्चिम दिशा में एक काल्पनिक पर्वत। यह मान्यता कि इसके पीछे सूर्य अस्त होता है।

[आठ प्रधान पर्वतों में इसकी गणना। (सुमेरुं चैव कैलासं मलयं च हिमालयम्। उदयं च तथाऽस्तं च सुवेलं गन्धमादनम्। ब्र० पु० ब्रह्म० ७।३।)

पश्चिम में इसका अपने प्रीतिपात्र सूर्य को प्रतिदिन ग्रहण करना। यहीं से पश्चिमी संध्या का प्रसार। महा० उद्यो० ११०।६। वा० रा० के अनुसार यह पश्चिम में मेरु पर्वत से दस हजार योजन की दूरी पर स्थित। इसके शिखर पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित महद्दिव्य भवन। यहाँ विचित्र तरह के वृक्ष, नाना प्रकार के पक्षी। पाशधारी वरुण का यह निवास-स्थान। इसके आगे न सूर्य का प्रकाश, न किसी देश आदि की सीमा।—पश्चिम दिशा का उपर्युक्त

परिचय देते हुए इस पर्वत तक जाकर रावण के स्थान और सीता का पता लगाने के लिए पश्चिमगामी वानरों को सुग्रीव का आदेश। वा० रा० ४।४२।४३-४५, ५१।५२।]

उदयाचल, कैलास आदि उन पर्वतों में एक जहाँ देवताओं का वास और जिनके द्वारा राम के चित्रकूट आने पर चित्रकूट-यश-गान (२।१३८।६-७)।

मूल शब्द — २।१३८।६।

अस्विनीकुमार (अश्विनीकुमार) — देवताओं के वैद्य।

प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > अदिति ~ कश्यप > विवस्वान् ~ (१) संज्ञा (विश्वकर्मा-पुत्री) > वैवस्वत मनु, यम-यमी (यमज); (अश्विनी रूपसे) अश्विनीकुमार; (२) छाया > शनैश्चर, सावर्णि मनु, तपती (कन्या)। भा० ६।४।५१; ६।६।२५, ३९-४१; ८।१३।८-१०।

[सूर्य को जब ज्ञात कि संज्ञा अश्विनीरूप धारण कर वन में विचरणशील (दे० जम), तब अश्वरूप में उनका संज्ञा के निकट गमन। दोनों के नासिका-संयोग से नासत्य और दस्र की उत्पत्ति। ये ही अश्विनीकुमार। मा० पु० ७८; न० पु० १८; वि० पु० ३।२।५-७; महा० अनु० १५०।१७-१८।

ऋग्वेद में ये एक ही नाम के दो द्युस्थानीय देवता। जुड़वाँ, कभी विलग नहीं। इनकी माता सरण्यु। (निरुक्त में ये अलग-अलग। एक निशा के, दूसरे उषा के पुत्र।) ये सूर्य-कन्या सूर्या के पति। देवों से छोटे, सदा तरुण। देवताओं के धन्वन्तरि। प्रा० च०।

महर्षि दधीचि द्वारा उपदिष्ट 'प्रवर्ग्यविद्या' एवं 'मधुविद्या' के प्रभाव से ये जीवन्मुक्त। दे० 'दधीचि'। विश्वरूप त्वाष्ट्र को यह विद्या इन्हीं से प्राप्त। बृ०उ० ब्राह्मण ६।

सुतपा मुनि का इन्हें पूर्व अपराध के कारण यज्ञभाग से वंचित, अपूज्य, अकीर्तिमान्, व्याधिग्रस्त आदि होने का शाप। इनके साथ सूर्य द्वारा की गयी स्तुति से प्रसन्न हो मुनि का इन्हें रोगमुक्त करना, आगे चलकर यज्ञभाग के अधिकारी होने का भी कथन। ब्र० पु० ब्रह्म० ११। सुकन्या-पति वृद्ध च्यवन मुनि को इनके द्वारा यौवन प्राप्ति। इंद्र के निषेध के बावजूद उनका इन्हें यज्ञ में सोमपान का अधिकारी बनाना। महा० वन० १२३।१६-१८, २३; १२४।६, १२; १२५।३। शिकार खेलते हुए युवनाश्व द्वारा पिया गया यज्ञ-मण्डप के पात्र का अभिमंत्रित जल उनके उदर में पुत्ररूप में परिणत। इनका उस पुत्र को पिता-गर्भ से बाहर निकालना। महा० द्रोण० ६२।२-४। इनके तेज से पाण्डु-पत्नी माद्री के गर्भ से नकुल, सहदेव का जन्म। महा० आदि० ६५।६३। रामावतार के समय देवों के अंश से वानरों के जन्मग्रहण-क्रम में इनसे मैन्द और द्विविद का जन्म। वा० रा० १।१७।१४। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में देवताओं के प्रधान सात गणों में ये भी। भा० ८।१३।४। ज्योतिश्चक्र के शिशुमार (सूंस) रूप में शिशुमार के स्तनों में नक्षत्ररूप में इनकी स्थिति। भा० ५।२३।७।

ऋग्वेद के एक सूक्त के भाष्य में केरल के महाकवि वल्लथोल का कथन कि अश्विनीकुमार और चन्द्र-सूर्य एक एवं अभिन्न। पी०ई० पृ० ७१। इनके छः नाम — ··· स्वर्वैद्यावश्विनीसुतौ। नासत्यावश्विनौ दस्रावाश्विनेयौ च तावुभौ। अमर० १।५७-७८।]

राम-शर से रावण के छत्र-मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल गिरने पर चिंतित मन्दोदरी द्वारा रावण को प्रबोधन और राम के विश्वरूप का वर्णन जिसमें अश्विनीकुमार उस विराट् पुरुष की घ्राणेन्द्रिय (६।१५।३)। (यह भा० २।६।२, ३।६।१४ के अनुरूप)।

अहल्या — गौतम ऋषि की पत्नी। भरतवंशी अजमीढ़ की वंश-परम्परा में मुद्गल > यमज पुत्र दिवोदास, कन्या अहल्या। अहल्या ~ गौतम > शतानंद। भा० ६।२१।३४।

[हल का अर्थ कुरूपता, हल्य से तात्पर्य निन्दनीयता। जिस नारी में हल्य नहीं, वह अहल्या। प्रजाओं के प्रत्येक अंग की अद्भुत विशिष्टता एवं सारभूत सौन्दर्य से ब्रह्मा द्वारा इनकी सृष्टि। पहले धरोहर के रूप में, फिर पत्नीरूप में ये ब्रह्मा द्वारा गौतम को समर्पित। वा० रा० ७।३०।२१-२८। इन्हें न पा इन्द्र कुपित, कामाधीन। वा० रा० ७।३०।२६। गौतम-वेश में ऋषि की अनुपस्थिति में इंद्र का इनसे समागम। उनको पहचानकर भी ये कृतार्थ। गौतम-आगमन। उनका इंद्र को विफल (अण्डकोशरहित) होने का शाप। इनको सर्वभूतों से अदृश्य रहकर सहस्रों वर्षों तक 'वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी' हो आश्रम में पड़े रहने का शाप। राम के प्रवेश से दोषमुक्त

पवित्र होने का शापानुग्रह। वा० रा० १।४८।१७-३३। इनके जिस अनुपम रूप के कारण इंद्र में विकार उत्पन्न, वह रूप समस्त प्रजाओं को प्राप्त होने का गौतम-कथन। वा० रा० ७।३०।३६-३८।

सं० ब्रह्मपु० पृ० ३६७-३६६ में इन्हें सूखी नदी होने का शाप। पुनः अनुग्रह — नदी होकर गौतमी गंगा से मिलने पर इन्हें अपने पूर्व स्वरूप की प्राप्ति होगी। वह तीर्थ अहल्या-संगम नाम से विख्यात होगा। अ० रा० में इन्हें शिला में निवास करने और आश्रम के जीव-जंतु-रहित होने का शाप। अ० रा० १।५।२६-२६।]

विश्वामित्र के साथ धनुषयज्ञ देखने जाते हुए मार्ग में पशु-पक्षी-विहीन आश्रम और एक पाषाण-शिला देख उसके संबंध में राम की जिज्ञासा। विश्वामित्र का गौतम-शाप की कथा सुनाना। पाषाणरूप अहल्या रामचरण-रज के लिए प्रतीक्षारत। उस पर कृपा करने का राम से विश्वामित्र-कथन (१।२१०।१२-१।२१०)। प्रभु-चरण-स्पर्श से इनका प्रकट होना। करबद्ध हो सम्मुख प्रभु को देखते हुए प्रेम-पुलक, नयनाश्रु-प्रवाह। कंठ अवरुद्ध। प्रभु-चरणों में गिरना। उनकी कृपा से भक्ति-प्राप्ति। प्रभु-स्तुति। शाप को अनुग्रह मानना। वर-याचना — 'पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।' बार-बार हरि-चरणों में गिर अभीष्ट वर पा सानन्द पतिलोक-गमन (१।२११।छं० १-१।२११।छं० ४। जनकपुर की स्त्रियों को इनके उदार-प्रसंग का स्मरण कर दोनों भाइयों के धनुष भंग के सामर्थ्य पर विश्वास (१।२२१, १।२२३।५-६)। इनकी गति का स्मरण कर जयमाल डालने के बाद सखियों के कहने पर भी सीता का राम-चरण न छूना (१।२६५)। जनक द्वारा रामचरण-स्पर्श-प्रसंग में इनका उल्लेख (१।३२४।छं० २)। राम के अन्य अमानवीय कार्यों के साथ इनको तारने का भी स्मरण कर माताओं का धन्य होना (१।३५७।३)। राम-चरण-रज से इनके उद्धार का उल्लेख कर पग धोये बिना नाव पर चढ़ाने को केवट का किसी तरह तैयार न होना (२।१००।६)। इनका कल्याण करनेवाले राम-पद-दर्शन की विभीषण-अभिलाषा (५।४२।६)। वेद-स्तुति में इनके तरने का कथन (७।१३।छं० ४)

मूल शब्द — १।२२३।५।
पर्याय — **गौतम तिय** — १।२६५।
गौतम नारि — १।२१०।
गौतम नारी — १।२११।छं०४।
मुनि घरिनी — २।१००।६।
मुनितिय — १।३५७।३।
मुनि पतिनी — ७।१३।छं०४।
मुनिबधू — १।१२१।
मुनि बनिता — १।३२४।छं०२।
रिषिनारी — ५।४२।६।

इंद्र*

इंद्रकुलिस (इन्द्रकुलिश) — वज्र। इन्द्र का प्रमुख आयुध।

[यह दधीचि की अस्थियों से निर्मित(१) विश्वकर्मा द्वारा। भा० ६।६।५४। (२) प्रजापति त्वष्टा द्वारा। महा० वन० १००।२०-२४। (३) धाता द्वारा। महा० शान्ति० ३४२।४१। इसके निर्माण का आदेश (१) भगवान् का। भा० ६।६।५४। (२) ब्रह्म का। महा० वन० १००।७-१२। इसमें विष्णु के तृतीयांश का प्रवेश। वा० रा० ७।८५।७। इससे सर्वप्रथम वृत्रासुर-वध। महा० वन० १०१।१४-१५। वा० रा० ७।८५।१४-१५। पहले विश्वरूप का, फिर वृत्रासुर का वध। महा० शान्ति० ३४२।४१।

यह आठ धारवाला, पैना, अमोघ। भा० ८।११।१२,२८। यह षट्कोण (षडस्रं) घोर शत्रुनाशक, भयानक ध्वनि करनेवाला। महा० वन० १००।११। कालाग्नि-सा भयंकर, ज्वालामय (कालाग्निनेव घोरेण दीप्तिनेव महार्चिषा) वा० रा० ७।८५।१४। भगवान् की विभूति (आयुधानामहं वज्रं। गीता० १०।२८)। इंद्र द्वारा उड़नेवाले पर्वतों का इससे पक्षच्छेदन। वा० रा० ५।१।१२२-१२४। बाल-हनुमान् पर इसका प्रयोग। पश्चात् इससे भी अवध्य होने का उन्हें

---

* इस शब्द का मानस में केवल सामासिक प्रयोग। सुरपति के लिए दे० 'सक्र'।

इंद्र-वरदान। वा० रा० ७।३५।४६, ७।३६।१२। इससे महापराक्रमी दानवराज बलि की मृत्यु। भा० ८।११।१२। वरप्राप्त नमुचि पर इसका कोई प्रभाव न देख इंद्र द्वारा इसका तिरस्कार और इसके त्याग का निश्चय। भा० ८।११।३२, ३६।

यह कामरूप। इंद्र-आदेश से व्याघ्ररूप में इसके द्वारा राजर्षि सृंजय-पुत्र की हत्या। महा० शान्ति० ३१।२७-३४। ह० को० में इसके बारह नाम– पविरशनिः शतधारं वज्रं कुलिशं च भवति दम्भोलिः। गौर्भिदुरं व्याधामः स्वरुरिन्द्रप्रहरणं तथा शम्बः।। १।५६।)]

शंकर-त्रिशूल, काल-दण्ड, हरि-चक्र– इन अमोघ आयुधों के साथ इसका उल्लेख। विप्रद्रोह इनसे भी भयानक। इनसे न मरनेवाला भी विप्रद्रोह से भस्म (७।१०६।१३-१४)।

मूल शब्द – ७।१०६।१३।

इंद्रजित (इंद्रहित्) – दे० 'मेघनाद'।

इंद्रधनुष – कभी-कभी आकाश में दिखायी देनेवाला विशालाकार सतरंगा अर्द्धवृत्त। इसके सात रंग क्रमशः लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी (बाहर से भीतर की ओर)।

[दर्शक की पीठ के पीछे सूर्य होने पर ही यह दृष्टिगोचर। वर्षा के बाद सन्ध्या समय पूर्वी आकाश में और प्रातःकाल पश्चिमी आकाश में इसके दर्शन संभव।

वर्षा अथवा बादल में जल की सूक्ष्म बूँदों अथवा कणों पर पड़नेवाली सूर्य-किरणों का विक्षेपण (डिस्पर्शन) ही इसके सुन्दर रंगों का कारण। कभी-कभी एक इंद्रधनुष के नीचे की ओर अनेक अन्य रंगीन अर्द्धवृत्त इंद्रधनुष जैसे दिखायी देते हैं। ये जल की बूँदों से बनने पर भी वास्तविक इंद्रधनुष नहीं, इनके बनने का कारण किरणों का विवर्त्तन (डिफ्रैक्शन)।

ऐसा भी इंद्रधनुष सम्भव जिसमें बाहरी रंग बैंगनी और भीतरी रंग लाल हो। इसे द्वितीयक (सैकेण्डरी) इंद्रधनुष कहते हैं।

इंद्रधनुष की क्रिया को सर्वप्रथम वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर समझानेवाले फ्रांसीसी वैज्ञानिक 'दे कार्ते'।

दो व्यक्ति एक ही इन्द्रधनुष नहीं देखते। प्रत्येक दर्शक को भिन्न इन्द्रधनुष दिखायी देता है। हि० वि० को०।

काव्य में शोभा-सौन्दर्य। रंगों की सुषमा के लिए उपमानरूप में इसका प्रयोग। अमर० में इसके नाम – इन्द्रायुध, शक्रधनु। १।६४।]

उपमान – परछन के समय मणिमय बन्दनवार के (१।३४७।३), रणभूमि के आकाश में छायी वानरों की पूँछों के (६।८७।५)। माया-सृष्ट वानरों की पूँछों के बीच राम-तन की शोभा इन्द्रधनुषों की बाड़ में तमालवृक्ष की-सी (६।१०१।छं०१)।

मूल शब्द – ६।१०१।छं०१ (जाति०)। इंद्रधनु – ६।८७।५ (जाति०)

पर्याय – **पाकरिपुचाप** – १।३४७।३ (जाति०)।

ईश – ईश्वर। स्वामी, सर्वोपरि। आ० को०।

[विशुद्ध सत्वप्रधाना विद्यामाया में ब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब, वह पूर्ण, उसी की संज्ञा सर्वज्ञ ईश्वर। वि० ३।१५।६ व्या०। गीता० १८।६१ में भगवान् का अर्जुन से कथन – शरीररूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को ईश्वर (अन्तर्यामी परमेश्वर) अपनी माया से (उनके कर्मानुसार) भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियों के हृदय में स्थित (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।)। दे० 'भगवान', 'बासुदेव', 'ब्रह्म'। (मा० पी० १।१।श्लो० ६ नोट ११ के अनुसार यह शब्द विशेषतः शिव का वाचक।)

ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नहीं। उसमें केवल भक्तों के भाव की छाया, और भाव सत्तारूप अविनाशी। अतः ईश्वर के नाम-रूप आदि नित्य। यह समझ लेने पर ईश्वर के नाम-रूप में ईश्वर का भाव सधना सम्भव। वि० १।२१।२ व्या०)।]

सृष्टि के कर्त्ता, शासक, रक्षक, नियन्त्रक आदि रूपों में मानस में कई स्थानों पर ईश्वर, ईश आदि शब्दों के प्रयोग। यथा, 'ईस्वर राखा धरम हमारा' (१।१७४।२), 'माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव। बंध मोच्छप्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव।।' (३।१५), 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी' (७।११७।२) आदि। दे० 'सिव',

'राम', 'ब्रह्म'; मानस में उनके लिए इस शब्द का प्रयोग।

उजेनी (उज्जयिनी) — वर्तमान नाम उज्जैन। प्राचीन मालव की राजधानी। विक्रमादित्य, कालिदास की भूमि।

[प्राचीन उज्जयिनी भूगर्भलीन। उसके उत्तर पार्श्व में बसी नगरी ही अब इस नाम से प्रसिद्ध। महा० के समय तक इसका नाम अवन्ती या अवन्तिका। इसे विशाला और पुष्करण्डिनी भी कहते हैं। यि० को०।

यह सात मोक्षदायिनी पुरियों में एक। ये सात पुरियाँ विष्णु की अंगस्वरूपा, इनमें यह चरण। दे० 'अवध'।

स्कन्दपुराण के अवन्तिखण्ड में इसका विस्तृत विवरण। यहाँ 'महाकाल' नामक शिवलिंग। उसका दूसरा नाम 'अनन्त कल्पेश्वर' भी। उसी के कारण यह पीठस्थान। अलतमस द्वारा उसके रत्नों की लूट। लिंगमूर्ति को गुप्तरूप से अन्यत्र हटा पण्डों द्वारा उसकी रक्षा। बाद में वह पुनः स्थापित। शिप्रा नदी के तट पर भैरवगढ़ जिसमें एक बृहत् देवालय में काल भैरव की मूर्ति प्रतिष्ठित। इसके दशाश्वमेध घाट पर 'अंकपात' नामक तीर्थ जहाँ, उपख्यान के अनुसार, सन्दीपन मुनि द्वारा कृष्ण-बलराम का शिक्षण। यहाँ विष्णु की विश्वमूर्त्ति। सरस्वती के अति प्राचीन विशाल मन्दिर में आकर विक्रमादित्य द्वारा पूजन की कथा प्रचलित। किंवदन्ती कि नगर के दक्षिण-पूर्व में 'जोग-शहीद पर्वत' के नीचे विक्रमादित्य के बत्तीस सिंहासन प्रोथित। नगर के पार्श्व भाग की 'भर्तृहरि की गुहा' के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा कि संसार-त्याग कर उन्होंने वहीं आश्रय लिया था। वि० को०।]

पूर्व-कल्प में जब भुशुण्डि का शूद्रयोनि में जन्म और अवध-वास, तब वहाँ अकाल पड़ने पर उनका यहाँ आना (७।१०५।१)।

उत्तरकाण्ड — मानस का सप्तम काण्ड। दोहा-संख्या १३०+२ श्लोक। इस काण्ड में राम के राज्याभिषेक के बाद की कथाएँ होने के कारण यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध काण्डों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह काण्ड 'अविरल हरिभक्ति सम्पादन' नामक सप्तम सोपान। भक्तों की मान्यता — मानस के सप्त काण्ड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह काण्ड द्वारावती (द्वारिकापुरी)। (दे० 'रामचरितमानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण — पुष्पकारूढ़ राम की वन्दना। ध्याता की कामना कि प्रभु के युगल चरण-कमल के ध्यान में मन लगा रहे। शंकर की वन्दना (७।१।श्लो० १-७।१ श्लो० ३)। अवधि का एक दिन शेष। भरत की विरहमग्नता। हनुमान् का आकर राम का समाचार सुनाना। भरत का भेंटना। हनुमान् का जाकर राम से कुशल-संवाद कहना। भरत का कोसलपुर आ राम-आगमन की सूचना देना। सबका उछाह। राम का कपियों को अवधपुरी दिखाना। उनका जन्मभूमि-प्रेम। पुष्पक से उतर उसे कुबेर के पास भेजना। सब की सब से यथायोग्य भेंट। राम द्वारा सखाओं का परिचय। अवध में नवजीवनोल्लास। प्रभु का पहले कैकेयी के भवन में, फिर अपने घर जाना (७।१।दो०-७।१०।३)। गुरु वसिष्ठ का उसी दिन राम-राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त्त बताना। विप्रों द्वारा अनुमोदन। तैयारी। अवधपुरी-शोभा। मज्जन-शृंगार। 'राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।' ब्रह्मा, शिव आदि देवों का दर्शनार्थ आगमन। राजतिलक। देवों और वेदों के बाद शिव द्वारा राम की स्तुति। छः महीनों तक ब्रह्मानन्दमग्न सखाओं का निवास। तदुपरान्त सत्कारपूर्वक विदाई। अंगद का प्रेम और आर्ति। निषादराज की विदाई (७।१०।४-७-२०।६)।

रामराज्य। सबके द्वारा वर्णाश्रम धर्म-पालन। त्रिविध ताप-मुक्ति। चारों चरण से धर्म की परिपूर्णता। काल-कर्म-स्वभाव-गुण-जन्य दुःख का अभाव। सारी पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य। साम-दाम-दण्ड-भेद की प्रयोजनहीनता। सर्वत्र वैदिक मर्यादा का पालन। प्रकृति की अनुकूलता। सबमें परस्पर आदर-प्रेम। लव-कुश-जन्म। सब भाइयों के दो-दो पुत्र। सबकी वेद-पुराणों में तल्लीनता। राम-प्रीति। प्रभु-दर्शनार्थ नारदादि सनकादि मुनियों का नित्य अवध-आगमन। सनकादि को अनपायनी प्रेमा-भक्ति का वर प्राप्त। सन्त-असन्त के सम्बन्ध में भरत की जिज्ञासा। राम द्वारा संत लक्षण, असंत स्वभाव, धर्माधर्म, अपने फलदातृत्व और दोष-गुण का कथन। राम के नित नव चरित की नारद द्वारा ब्रह्मलोक में कथा। गुरु-विप्र-पुरजन-सभा में राम द्वारा मनुष्य-जीवन की सार्थकता, स्वभक्ति और संत की महिमा, शंकर-भजन की अनिवार्यता आदि का उपदेश। सबकी कृतार्थता। वसिष्ठ की आत्मकथा। प्रभु-पद-भक्ति की याचना। नारद द्वारा प्रभु-स्तुति (७।२०।७-७।५१)।

काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़ से कही गयी कथा सुनाकर शंकर की जिज्ञासा कि 'अब का कहौं सो कहहु भवानी।'

उमा की शंका और प्रश्न (सो हरिभगति काक किमि पाई। आदि। ७।५४।७-७।५५।५)। शिव की प्रसन्नता-काकभुशुण्डि से गरुड़ के भी ऐसे ही प्रश्न। सब कहने की शिव की प्रतिज्ञा। (७।५२।१-७।५६।१)। सती-विरह से दुखी शिव का घूमते-घूमते कनकशिखर नीलशैल पर जाना। वहाँ हरिभक्तिनिरत काकभुशुण्डि का निवास। नित्य कथा-प्रसंग। मरालरूप में शिव का कथा-श्रवण। फिर कैलास-आगमन (७।५६।२-७।५७)। रणभूमि में प्रभु को नागपाश-मुक्त कर गरुड़ को मोह-विषाद। उनका नारद के पास जाना। नारद का उन्हें चतुरानन के पास भेजना, चतुरानन का शंकर के पास। शंकर का काकभुशुण्डि के पास भेजना, क्योंकि 'समुझइ खग खगही कै भाषा'। वहाँ गरुड़ का यथोचित सत्कार। उनकी कथा-श्रवण की निष्ठा। भुशुण्डि का मूल राम-कथा कहना। गरुड़ का मोह-नाश, कृतकृत्यता। अपने भ्रम को हितकर मानना, क्योंकि वह सत्संग का कारण। भुशुण्डि को हर्ष। उनकी विनय। माया-कटक-वर्णन। उसकी प्रवलता। उसके मिथ्यात्व के बावजूद बिना रामकृपा के उससे मुक्ति नहीं। मायाप्रेरक राम का स्वरूप, उनका भक्तहेतु अवतार और नटसदृश चरित। मोहग्रस्त द्वारा राम पर अपने मोह का आरोप। निर्गुणरूप सुलभ। सगुणरूप सुगम-अगम। सुनकर मुनियों को भी भ्रम (७।५८।२-७।७३ ख)।

जब-जब राम का अवतार, भुशुण्डि का अवधपुरी जा बाललीला-दर्शन। एक अवतार में प्रभु का प्राकृत शिशुचरित देख भुशुण्डि को मोह। अपनी मोह-ग्रस्तता और प्रभु-कृपा से मोह-मुक्ति का उनके द्वारा विस्तृत वर्णन। राम से अविरल भक्ति तथा अन्य वरदानों की प्राप्ति। राम द्वारा अपने सिद्धान्त का उपदेश। नीच होने पर भी भक्त उन्हें विज्ञानी से भी अधिक प्रिय। भुशुण्डि का अपने आश्रम में आगमन। तब से माया का न व्यापना। उनका स्व-अनुभव-कथन। राम-महिमा की अगाधता। गरुड़ की कृतज्ञता (७।७४।१ - ७।६३।८)।

गरुड़ के प्रश्न। सुनकर भुशुण्डि को अनेक जन्मों की सुधि आना। काक-देह से राम-भक्ति की प्राप्ति, अतः उसका प्रिय होना। इच्छा-मरण होने के कारण उस देह को न छोड़ना। पूर्वकाल के मोह का कथन। अनेक जन्मों में अनेक योनियों में नाना कर्म करना, पर सुख का अभाव। प्रथम जन्म की कथा। एक पूर्व-कल्प में कलियुग में अवध के एक शूद्र के यहाँ जन्म। तब वे शिवभक्त, पर अन्य देवों के निंदक। कलियुग-धर्म-निरूपण। कलियुग के गुण। केवल नाम से गति। हरि-गुण-गान से भव-तरण। मानस पुण्य का होना, मानस पाप का न होना। दान से कल्याण। चारों युग-धर्मों का वर्णन। चारों की सबके हृदय में नित्य स्थिति। युग-धर्म का हरि-भक्तों को न व्यापना (७।६३ क - ७।१०४ क)। अयोध्या में अकाल पड़ने पर भुशुण्डि का उज्जैन-गमन। एक ब्राह्मण से शिव-मंत्र लेना। गुरु द्वारा उपदेश—विष्णु-द्रोह का वर्जन। भुशुण्डि द्वारा उपेक्षा। मन्दिर में गुरु-अवमानना। शिव का शाप। गुरु का हाहाकार, उनकी शिव-स्तुति। अपने लिए शिव-भक्ति और शिष्य के लिए परम कल्याण का वरदान माँगना। शापोद्धार। वरलाभ (७।१०४ख-७।१०६क)

कई जन्मों के बाद विप्रदेह-प्राप्ति। राम-चरण-रति। ईश्वर के सर्वभूतमय होने के सम्बन्ध में मुनियों में मतैक्य। भुशुण्डि को निर्गुण मत न सुहाना। मेरु-शिखर पर लोमश मुनि की शरण में जाना। विज्ञानी मुनि का ब्रह्मोपदेश। षोडश लक्षण युक्त सुखराशि का निरूपण (अज अद्वैत ··· सुखरासी ।। ७।१११।३-७।१११।५)। भुशुण्डि की सगुणोपासना और रामदर्शन की लालसा। मुनि का बार-बार सगुण-खण्डन कर निर्गुण का उपदेश और भुशुण्डि का बार-बार स्वपक्ष-स्थापन। मुनि को क्रोध। भुशुण्डि के मन में तर्क-वितर्क। श्रवण में अश्रद्धा। स्वपक्ष का हठ। मुनि का चाण्डाल पक्षी होने का शाप। काग बनकर मुनि-पद में नत हो भुशुण्डि का उड़ना। राम का मुनि की मति बदलना। भुशुण्डि को बुलाकर मुनि का राममंत्र देना। बालकरूप राम का ध्यान बताना। रामचरितमानस की कथा सुनाना। अभक्त को कथा न सुनाने का आदेश। अविरल राम-भक्ति, राम-प्रेम-भाजनता, कामरूपत्व, इच्छा-मरण, काल-कर्म-गुण-दोष-स्वभाव-जन्य दुखों की अव्याप्ति, राम-रहस्य-ज्ञान, इच्छा-पूर्ति एवं वासस्थल के एक योजन तक अविद्या न व्यापने का मुनि का आशीर्वाद। आकाशवाणी से इसकी पुष्टि। जब-जब रामावतार, अवधपुरी जा भुशुण्डि का बाललीला-दर्शन (७।१०६ख-७।११४क)।

भक्ति विहीन ज्ञान की निन्दा। गरुड़ के प्रश्न पर भुशुण्डि का उत्तर। फल की दृष्टि से ज्ञान-भक्ति में अभेद। भेद अति सूक्ष्म। ज्ञान विराग आदि पुरुष वर्ग। भक्ति, माया नारी वर्ग। माया द्वारा पुरुष के पतन की आशंका। प्रभु प्रिया भक्ति से नर्तकी माया का संकोच। इस रहस्य-ज्ञान से मोहनाश। दूसरा भेद। माया के कारण जड़-चेतन में ग्रंथि। छूटने से ही कल्याण। ज्ञानदीप-निरूपण। उससे ग्रंथि के खुलने में अनेक विघ्न। भक्ति का सुगम सुखदायी

होना। सेवक-सेव्य-भाव की अनिवार्यता। भक्ति-चिन्तामणि का स्वरूप। प्रकट होने पर भी रामकृपा बिना उसकी प्राप्ति संभव नहीं। सत्संगति से सुलभता (७।११४ख-७।१२०ख)।

गरुड़ के सप्त प्रश्न और भुशुण्डि के उत्तर। मानस-रोगों का उपचार—रघुपति-भक्ति। देवों-मुनियों-वेदों का यह मत। 'बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।' (७।१२१।१-७।१२२ग)। गरुड़-भुशुंडि-संवाद का उपसंहार। भुशुण्डि की विनय। गरुड़ की कृतकृत्यता। उमा-शंभु-संवाद का उपसंहार। राम-कथा के गान-श्रवण की फलश्रुति। गिरिजा की कृतकृत्यता। भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद का उपसंहार। ग्रन्थ का उपसंहार। श्रीरामचरितमानस में भक्तिपूर्वक अवगाहन का फल (७।१२३।१-७।१३० के बाद श्लो०२)।

उत्तानपाद — ब्रह्मा > मनु-शतरूपा > (कन्या) आकूति, देवहूति, प्रसूतिः, (पुत्र) प्रियव्रत; उत्तानपाद ~ (१) सुनीति > ध्रुव, (२) सुरुचि > उत्तम। भा० ३।१२।५२-५५; ४।८।८-९। निखिल भूमण्डल के अधिपति। भा० ४।९।६६।

[सुनीति की अपेक्षा सुरुचि इन्हें अधिक प्रिय। एक दिन इन्हें उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार करते देख ध्रुव की भी इनकी गोद में बैठने की इच्छा। इनके द्वारा उसकी अवज्ञा। सुरुचि द्वारा मर्मबेधी शब्दों में उसका तिरस्कार। क्षोभ-क्रोध में उसका रुदन। देखकर भी ये मौन। उसके गृहत्याग के बाद नारद के सामने ग्लानि-पीड़ित हो इनकी आत्म-भर्त्सना और पश्चात्ताप। राजपाट से उदासीनता। ध्रुव-आगमन के समाचार से आनन्द-विह्वल हो उसे लेने के लिए नगर से बाहर आना। भुजाओं में भर आनन्दाश्रु बरसाना। नारद से सुने ध्रुव के अद्‌भुत प्रभाव को प्रत्यक्ष देख इन्हें विस्मय। पश्चात् उसे राज्य पर अभिषिक्त कर, आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए संसार से विरक्त हो इनका वन-गमन। भा० ४।८।८-१४, ६५-७०; ४।९।३७-४४, ६५-६७।]

ये स्वायम्भुव मनु और शतरूपा के पुत्र। इनके पुत्र ध्रुव हरिभक्त। प्रियव्रत इनके छोटे भाई (१।१४२।१-४)। [भा० ३।१२।५५; ४।८।७ में 'प्रियव्रतोत्तानपादौ' जिसके अनुसार ये कनिष्ठ।]

मूल शब्द — १।१४२।३।

उदयगिरि — उदयाचल। एक काल्पनिक पर्वत जिसके पीछे से सूर्य के उदित होने की मान्यता।

[आठ प्रधान पर्वतों में इसकी गणना (दे० अस्तगिरि)। इसके विस्तृत स्वर्णशिखरों के ऊपर सौमनस नामक स्वर्णशिखर, जिस पर भूमि नापते समय भगवान् वामन का पहला चरण पड़ा (दूसरा चरण मेरु पर)। यह तेजोमय दिव्य साल, ताल, तमाल, कनेर आदि सुवर्णमय वृक्षों से शोभित। इसमें अनेक घाटियाँ, झरने, गुफाएँ। बालखिल्यगण नामक ऋषियों का वासस्थल। पृथ्वी एवं ब्रह्मलोक का द्वार। सूर्य का उदय-स्थान। सर्वपूर्व-निर्मित, अतः इस दिशा का नाम पूर्व। इससे आगे पूर्व दिशा अगम्य—सूर्य-चन्द्र-प्रकाशहीन अन्धकारमय। उस ओर 'देवताओं' का वास। —सीता की खोज में पूर्वगामी वानरों को उस दिशा का परिचय देते हुए सुग्रीव-कथन। वा० रा० ४।४०।५४-६७।

चन्द्रमा का उदय भी इसके पीछे से। विक्रमोर्वशीयम् ३।६।]

यह धनुषयज्ञ के उस मंच का उपमान जिस पर विश्वामित्र के आदेश से राम उठकर खड़े हुए (१।२५४)। यह कैलास आदि उन पर्वतों में एक जिन पर देवताओं का वास और जिनके द्वारा राम के चित्रकूट आने पर चित्रकूट-यश-गान (२।१३८।६-७)।

मूल शब्द — १।२५४। उदय — २।१३८।६।

उपमा — समता, तुलना। सादृश्यमूलक अर्थालंकार का एक भेद।

[दो पदार्थों में उपमान-उपमेय-भाव से समान धर्म का कथन होने पर, अर्थात्, वस्तुओं में भिन्नता रहते हुए भी उनके धर्म, रूप, गुण, रंग, स्वभाव आदि की समता का वर्णन होने पर यह अलंकार। इसके चार अंग — (१) उपमेय (वर्ण्य या प्रस्तुत), (२) उपमान (अप्रस्तुत), (३) धर्म या साधारण धर्म, (४) वाचक। इसके मुख्य दो भेद — (१) पूर्णोपमा, जिसमें उपमा के चारों अंग स्पष्ट, (२) लुप्तोपमा, जिसमें उपमा के चार अंगों में से एक, दो या तीन का लोप। इनके अतिरिक्त इसके कुछ अन्य भेद भी।

यह अर्थालंकारों का प्राण। अनेक सादृश्यमूलक अलंकारों का मूल। अप्पय दीक्षित के 'चित्रमीमांसा' में — 'उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्। रंजयन्ती काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।' का० द०।]

मानस-सर में लहरों का विलास ही उपमाएँ (१।३७।३)। अधिकांश स्थलों पर 'उपमा' शब्द का प्रयोग करते

समय उपमेय (सीता, राम, राम-लक्ष्मण, लक्ष्मण-शत्रुघ्न, जनक-दशरथ, चारों जोड़ियाँ) को समस्त उपमानों से श्रेष्ठ बताया गया है। कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग के बाद ही अनन्वयोपमा। 'पटतर' शब्द का ऐसा प्रयोग उपमेय सीता एवं राम-लक्ष्मण के लिए।

मूल शब्द – १।३७।३, १।२३०।८, १।२४३।१, १।२४७।२, १।२४७।३, १।३११।८, १।३११।छं०, १।३२०।२, १।३२०।३, १।३२५।२, १।३४६।७, २।१२३।४, ७।५।छं०१, ७।६२।छं०।

पर्याय – **पटतर** –१।२३८।३, २।६०।७, २।१२०।५, २।१९९।६, (क्रियारूप में)– १।२२०।८, १।२३०।८, १।२४७।४।

उमा– दे० 'भवानी'।

उरमिला (उर्मिला) – जनक-तनया। लक्ष्मण की पत्नी।

ये जानकी की छोटी बहन। 'सकल सुंदरि सिरोमनि'। श्यामवर्णा। (हिरण्यवर्णां सीतां च माण्डवीं पाटलप्रभाम्। उर्मिलां श्यामवर्णाभां श्रुतकीर्तिं समप्रभाम्। मा०पी० १।३२५।छं० ४ व्या० के अनुसार नारद पंचरात्रे।)

विवाह के लिए माण्डवी, श्रुतकीर्ति के साथ इन्हें जनक का बुलवाना। लक्ष्मण से इनका विवाह (१।३२५।छं० २, ३)। एक ही मण्डप में ये और इनकी तीनों बहनें अपने-अपने पति के साथ इस तरह शोभित जैसे जीव की चारों अवस्थाएँ अपने-अपने विभु के साथ (१।३२५।छं०४)। [चार अवस्थाएँ – जाग्रत (उर्मिला), स्वप्न (श्रुतकीर्ति), सुषुप्ति (माण्डवी), तुरीय (सीता)। इनके विभु क्रमशः विश्व (लक्ष्मण), तैजस (शत्रुघ्न), प्राज्ञ (भरत), ब्रह्म (राम)। रा० उ० ता० पृ० ५४३। वि० में चारों विभु क्रमशः विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, ब्रह्म।] इन वधुओं के साथ पुत्रों को देखकर दशरथ को ऐसा सुख जैसे क्रियाओं के साथ चारों फलों की प्राप्ति हुई हो। (१।३२५)। [वि० के अनुसार चारों फलों में साधनरूप अर्थ (शत्रुघ्न) और धर्म (लक्ष्मण), फलरूप काम (भरत) और मोक्ष (राम)। इनकी क्रियाएँ क्रमशः व्यापृति अर्थात् उद्योग (श्रुतकीर्ति), सुकृति (उर्मिला), रति (माण्डवी) और भक्ति (सीता)। मा० पी० में चारों क्रियाओं के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत।]

मूल शब्द – १।३२५।छं०२।

पर्याय – **जानकी लघु भगिनी** – १।३२५।छं०३।

एकतनु – प्रतापभानु द्वारा पराजित एक राजा का छद्म नाम।

अपने देश पर प्रतापभानु का अधिकार देख इसका पलायन। अभिमानी होने के कारण प्रतापभानु से न मिलना। अपना कुसमय जानकर वन में दरिद्र की भाँति तापस-वेश में निवास। भटके हुए प्रतापभानु को अपने आश्रम के निकट देख इसका तुरत पहचानना (१।१५८।१-६)। क्लान्त राजा को सरोवर दिखाना। उनके मज्जन-पान के बाद आश्रम में ला आसन देना। उनमें चक्रवर्ती के लक्षण बताकर वन में घूमने का कारण पूछना (१।१५८-१।१५९।४)। अँधेरा हो जाने के कारण राजा को उस रात वहीं रह जाने का आदेश (१।५९।८-१।१५९क)। अपने अतीत का स्मरण कर इसके हृदय में दाह। छलपूर्वक प्रतिशोध लेने की इसकी योजना। अत्यन्त विनयपूर्वक राजा के नाम पूछने पर कथन – अब इसका नाम भिखारी, क्योंकि यह निर्धन और अ-निकेत (१।१६०।५-१।१६०)। सुदीर्घ काल से इसका अप्रकट रहकर वहाँ वास। किसी से भेंट नहीं। हरि को छोड़ किसी से प्रयोजन नहीं। राजा को मन, कर्म, वचन से वशीभूत कर कथन–इसका नाम 'एकतनु'। आदिसृष्टि में यह उत्पन्न। तब से दूसरी देह नहीं धारण की। यह तपोबल का प्रभाव। इसके द्वारा ज्ञान-वैराग्य-निरूपण, उद्भव-पालन-संहार के सम्बन्ध में कथन (१।१६१।७-१।१६३।६)। राजा अपना नाम कहने को प्रस्तुत, तब पितासहित उनका नाम बताकर अपनी सर्वज्ञता को गुरु का प्रसाद कहना। राजा के नाम-गोपन को नीतिसम्मत मान, उनकी प्रशंसा कर, अपनी प्रीति-प्रसन्नता व्यक्त कर, वरदान माँगने का कथन (१।१६३।७-१।१६४।५)। राजा की इच्छानुसार इसका वरदान–ब्राह्मण-शाप के बिना उनका किसी काल में नाश नहीं। किन्तु एक शर्त – अपने मार्ग भटकने और इनसे मिलने की बात वे किसी से न कहें। कहने पर विनाश (१।१६५।१-१।१६६।४)। ब्राह्मणों को वश में करने का उपाय पूछे जाने पर इसका कथन – युक्ति इसके हाथ में, किन्तु एक असमंजस। राजा का काम बनाने को यह प्रस्तुत, किन्तु उनके नगर में जाना कठिन। राजा की भक्ति और आर्त्ति से इसका कपटपूर्वक द्रवित होना (१।१६६-१।१६८।३)। उपायकथन। (दे० 'प्रतापभानु'– अनुच्छेद तीन – १।१६७।१ से १।१६९।२;

१।१६६।३ से १।१६६)। राजा के शयन करने पर यह आसनस्थ, चिन्तित। इसके मित्र मायावी कालकेतु राक्षस का आगमन (१।१७०।१-४)। इसी की तरह उसकी भी राजा से पुरानी शत्रुता। उसके साथ मिलकर इसका षड्यन्त्र। राजा से हुई सब बातों से उसे अवगत कराना। उसका इसे आश्वासन। चौथे दिन मिलने का वचन (१।१७०।७-१।१७१।६)। प्रतापभानु को दिये गये ब्रह्मशाप की सूचना इसे कालकेतु से प्राप्त। इसके द्वारा सब (शत्रु) राजाओं को पत्र प्रेषित (१।१७५।३-४)।

मूल शब्द — १।१६२।७, १।१६२।

कंज — प्रभु के चरण-तल के मंगलदायक चिह्नों में एक। इसके ध्यान, स्मरण से भक्ति-निधि की प्राप्ति। दे० 'अंकुस'।

वेदों द्वारा राम की पद-कंज-वन्दना में ध्वज, कुलिश, अंकुश के साथ इसका उल्लेख (७।१३।छं०४)।

कच्छपु (कच्छप) — भगवान् के दशावतार में द्वितीय अवतार। शेष और पृथ्वी को धारण करनेवाले।

[देवासुर द्वारा समुद्र-मन्थन के समय वासुकि नाग की नेती और मन्दराचल पर्वत की मथानी (दे० अमृत)। किन्तु नीचे कोई आधार न होने के कारण पर्वत का सागर में डूबना। भगवान् को ज्ञात कि यह विघ्नराज का कार्य। अतः उसके निवारण के लिए अत्यन्त विचित्र विशाल कच्छप का रूप धर इनका सागर में प्रवेश और मन्दराचल को अपने ऊपर उठाना। अपनी पीठ पर मन्दराचल के घूमने से इनको ऐसा प्रतीत मानो इनकी पीठ खुजला रही हो। भा० ८।७।६-१०।

लक्ष्मी की उत्पत्ति के बाद देवताओं का इनके दर्शनार्थ आगमन और स्तुति। उनकी वर-याचना—शेष और दिग्गजों के सहायतार्थ ये पृथ्वी को धारण करें। इनकी स्वीकृति। (शेषस्य दिग्गजानां च सहायार्थं महाबल। धर्तुमर्हसि देवेश सप्तद्वीपवतीं महीम्।। एवमस्त्विति हृष्टात्मा भगवांल्लोकभावनः। धारयामास धरणीं सप्तद्वीपसमावृताम्।। १७।१८)। प० पु०उ० २३३।१३-१८।

शतपथब्राह्मण (७।५।१।५) में इनका उपाख्यान प्राप्त। ध०इ०च० पृ० ४८२।

इनका एक मन्त्र — ॐ नमो भगवते कुं कूर्माय धराधरधुरन्धराय नमः। इनका ध्यान—… शङ्खचक्रगदाधरम्। पीताम्बरं कूर्मपृष्ठं लसल्लांगूलशोभितम्। दीर्घग्रीवा महाग्राहं गिरन्तं रक्तलोचनम्।। —स्वामी अखण्डानन्दजी के अनुसार 'मेरुतंत्रम्' २६, सत् कथा अंक, कल्याण, पृ० ६५३।]

'राम' नाम के दोनों अक्षर 'कमठ सेष सम धर बसुधा के' (१।२०।७)। इन्हें लक्ष्मण द्वारा सम्बोधन (१।२६०।१)। इनका विचलित होना— शिव-धनु-भंजन पर (१।२६१।छं०), राम के हाथ में धनुष-बाण लेने पर (६।८६।छं०), राम-धनुष की प्रचंड ध्वनि से (६।६१।छं०)। वानर-सेना का भार असह्य होने पर शेष का इनकी कठोर पीठ को बार-बार दाँतों से पकड़ना, मानो राम-प्रस्थान-कथा लिख रहे हों (५।३५।छ०२)। उल्लेख— सागर-मन्थन के रूपक में (१।२४७।७), मन्दोदरी-विलाप में (६।१०४।६), अवतार-प्रसंग में (६।११०।७)।

मूल शब्द — १।२४७।७।

पर्याय — **कमठ** — १।२०।७, १।२६०।१, ५।३५।छं०२, ५।३५।छं० २, ६।८६।छं०, ६।६१।छं०, ६।१०४।६, ६।११०।७। कुरुम (कूर्म) — १।२६१।छं०।

कद्रू — दक्ष प्रजापति > कद्रू ~ कश्यप > एक हजार नाग। महा० आदि० १६।५,६,१३,१५; ६५।११,१३।

[ये विनता की बहन और सपत्नी। एक बार उच्चैःश्रवा अश्व के रंग के सम्बन्ध में दोनों बहनों में शर्त—जो हारे, वह दूसरे का दासत्व स्वीकार करे। (विनता-कथन— अश्व पूर्णतः श्वेतवर्ण, इनका कथन— उसकी पूँछ काली।) दूसरे दिन जाकर देखने का निश्चय। छल से जीतने के लिए अपने सहस्र पुत्रों को काले बाल बन अश्व की पूँछ में लग जाने का इनका आदेश। आज्ञा-उल्लंघन करनेवालों के लिएं जनमेजय के सर्प-यज्ञ में भस्म होने का शाप। भयवश नागों का आज्ञापालन। इस तरह इनका विनता को दासी बनाना। उनकी पीठ पर बैठकर यात्रा करना। महा० आदि० १६।६, २०।१-८, २२।१-५, २३।१-४, २५।३-५। आदि० ३५ में इनकी प्रमुख सन्तानों की नामावली।]

जैसे इन्होंने विनता को दुःख दिया, वैसे ही कौसल्या कैकेयी को दुःख देंगी। —मन्थरा-कथन (२।१६)।

कनककसिपु — हिरण्यकशिपु। महाप्रतापी दैत्यराज।

कश्यप ~ दिति > हिरण्यकशिपु ~ कयाधु (जम्भकन्या) > संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद, सिंहिका (कन्या)। भा० ६।१८।१०-१३।

[हिरण्याक्ष का यमज भ्राता (दे० 'हिरन्याच्छ')। विष्णु द्वारा भाई के वध पर इसे शोक और क्रोध। उनसे द्वेष। यज्ञ और धर्म ही उनके स्वरूप, जहाँ भी तप, यज्ञ, दान, गो, विप्र, वेद आदि हों, धर्म-कर्म हों, उन स्थानों को ध्वस्त करने का इसका आदेश। अजर-अमर-अजेय होने के लिए मन्दराचल पर जाकर कठोर तप। ब्रह्मा से वर-याचना –उनके द्वारा बनाये गये अथवा अन्य किसी भी तरह के प्राणी या अप्राणी से, अस्त्र या शस्त्र से, पृथ्वी या आकाश में, भीतर या बाहर, इसकी मृत्यु न हो। कोई इसका सामना न कर सके। तपस्वियों-योगियों का अक्षय ऐश्वर्य और ब्रह्मा की-सी महिमा इसे प्राप्त हो। वर पाकर इसकी त्रिलोक-विजय। यह इन्द्रासन पर प्रतिष्ठित। इन्द्र के महल में निवास। त्रिदेव के अतिरिक्त सब देवता इसके सेवक। इसके द्वारा शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन। शुक्राचार्य इसके पुरोहित। उनके पुत्र शण्ड और अमर्क इसके पुत्रों के गुरु। प्रह्लाद को अपने शत्रु विष्णु की भक्ति करते देख इसे क्रोध। उन्हें मार डालने के लिए इसके अनेक प्रयत्न व्यर्थ (दे० 'प्रह्लाद')। गुरु-आश्रम के अन्य बालक उनके अनुगत, यह सुन अपने ही हाथ से उनके वध का इसका निश्चय। क्रोध से इसका कथन- इसके अतिरिक्त यदि कोई जगदीश्वर है और सर्वत्र है, तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं? (यस्त्वा मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः। क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते।। ७।८।१३) स्तम्भ पर इसका मुष्टिका-प्रहार। उसमें से नृसिंह भगवान् का प्राकट्य। उन पर इसका आक्रमण। भगवान् का इसे पंजों में पकड़ना। द्वार पर ले जाकर, अपनी जाँघों पर गिरा, नखों से इसे विदीर्ण करना। भगवान् के अंग-स्पर्श से यह शुद्ध। प्रह्लाद के कारण इसे उत्तम लोकों की प्राप्ति। भा० ७।२-५, ८; ७।१०।२२।]

यह कलिकाल का उपमान (१।२७)। नारद के उपदेश से इसके विनाश का सप्तर्षि-कथन पार्वती से (१।७६।२)। यह 'सुरपति-मद-मोचन' (१।१२२।६)।

मूल शब्द — १।२७, १।७६।२, १।१२२।६।

कपिल – भगवान् के चौबीस अवतारों में एक। सांख्यशास्त्र के रचयिता। भा० ३।२१।३२।

कर्दम ~ देवहूति > कपिल। भा० ३।२४।६।

[उपनिषदों में संकेतित सांख्य-सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवेचन कर स्वतंत्र दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करने का इन्हें श्रेय। अतः ये 'आदि विद्वान्' की उपाधि से विभूषित। इनकी ज्ञात रचनाएँ — 'तत्व समास' एवं 'सांख्य सूत्र'। भा० द०, पृ० ३२३-३२४। भा० के अनुसार मुमुक्षुओं के लिए प्रकृति आदि तत्वों के विवेचन और लुप्त आत्मज्ञान के पुनः प्रवर्त्तन के लिए इनके रूप में स्वयं भगवान् का अवतार (एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात्। प्रसंख्यानाय तत्वानां सम्मतायात्मदर्शने।। एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा। तं प्रर्वतयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम्।। ३।२४।३६-३८।)। इनके द्वारा देवहूति को भक्तियोग, अष्टांगयोग, सांख्यशास्त्र आदि का उपदेश। (दे० 'सांख्यसास्त्र')। माता से आज्ञा ले इनका ईशानकोण (उत्तर-पूर्वी दिशा) की ओर गमन। इनका पूजन कर समुद्र का इन्हें स्थान देना। वहाँ ये समाधि में स्थित। भा० ३।२५-३३।

सगर के अश्वमेध यज्ञ का अश्व हरण कर इन्द्र का इनके निकट छोड़ना। उसकी खोज में आये साठ हजार धृष्ट सगर-पुत्र इनकी देहाग्नि से भस्म। अंशुमान् की स्तुति से ये प्रसन्न। केवल गंगाजल से उनके चाचाओं के उद्धार का इनका कथन। भा० ६।८। हुगली नदी और सागर के संगम पर 'गंगासागर' में इनका मन्दिर। वहाँ प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के दिन विराट् मेला।]

ये देवहूति-कर्दम के पुत्र। आदिदेव, दीनदयाल। तत्व-विचार से निपुण। सांख्यशास्त्र के प्रवर्त्तक (१।१४२।६-७)।

मूल शब्द — १।१४२।६।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **आदिदेव** — १।१४२।६।

दीनदयाला (विष्णु, राम, शिव, नारद भी) — १।१४२।६।

भगवाना (राम, ब्रह्म सगुण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी) — १।१४२।७।

कबन्ध — एक असुर।

[यह विशालकाय, भयानक। मस्तकविहीन। कबन्ध (धड़मात्र) ही इसका स्वरूप। पेट में ही मुँह। एक-एक योजन लम्बी भुजाएँ। इसके बाहुपाश में पड़े राम-लक्ष्मण द्वारा इसकी भुजाओं का उच्छेद। उनका परिचय पाकर इसका कथन— पूर्व जन्म में यह रूप-बल-तेज-सम्पन्न। राक्षस-रूप धारण कर वनवासी ऋषियों को डराने के कारण इसे स्थूलशिरा ऋषि का शाप — यह राक्षस हो जाये। इसकी प्रार्थना पर शापानुग्रह— राम द्वारा इसका भुजोच्छेद और दाहन होने पर इसे पुनः पूर्वरूप-प्राप्ति हो।

असुर-योनि में घोर तप करके इसे ब्रह्मा से दीर्घजीवी होने का वर प्राप्त। मदमत्त हो इन्द्र पर आक्रमण। उनके वज्र-प्रहार से इसकी जाँघें और मस्तक शरीर में प्रविष्ट। इसके जीवन-यापन के लिए इन्द्र का इसके पेट में मुख बनाना, भुजाएँ लम्बी करना। राम के हाथों शापमुक्त होकर स्वर्ग-गमन का भी उनका कथन।

राम द्वारा इसका दाह-संस्कार। इसे तेजस्वी पूर्वरूप प्राप्त। सीता की खोज के लिए सुग्रीव से मित्रता करने का इसका राम को परामर्श। वा० रा० ३।६९-७३।

अ० रा० में पहले यह गन्धर्वराज। (इसका नाम विश्वावसु। महा० वन० २७९।४२।) अष्टावक्र का उपहास करने के कारण शापग्रस्त हो राक्षस। शेष कथा वा० रा० जैसी। अ० रा० ३।९, ३।१०।१-३। मानस में इसे राक्षस होने का शाप दुर्वासा का। इस संबंध में मा० पी० में तीन मतों का उल्लेख — (१) दुर्वासा ऋषि का भयंकर स्वरूप देख, अपने रूपसौन्दर्य के अभिमान से, इसका उन पर हँसना। (२) इन्द्र-सभा में नाच-गान करते हुए उन्हें देखकर हँसना। (३) इसके गान पर दुर्वासा के प्रसन्न न होने पर, उन्हें अनभिज्ञ कहकर हँसना। तब मुनि का इसे शाप। मा० पी० ३।३३।६-७, 'तेहि सब कही…'।]

लक्ष्मणसहित सीता की खोज में जाते हुए राम द्वारा इसका वध। दुर्वासा के शाप और प्रभु-पद-दर्शन से पाप-मुक्ति का इसका कथन (३।३३।६-७)। यह गन्धर्व। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का, विप्र-सेवकों के प्रभु-प्रिय होने का, भागवत-धर्म का इसे राम द्वारा उपदेश। अपनी गति पाकर इसका आकाश-गमन (३।३३।८-३।३४।५)। इसके वध का उल्लेख (६।३६, ७।६६।७)।

मूल शब्द — ३।३३।६, ६।३६, ७।६६।७।

करमनास (कर्मनाशा) — शाहाबाद जिले की एक नदी जिसके सम्बन्ध में यह मान्यता कि उसके जलस्पर्श से समस्त पुण्य का नाश। बृ० को०।

[राजा त्रिशंकु के शरीर से जो स्वेद और मुख से लार गिरा, वही कर्मनाशा नदी के रूप में परिणत। (दे० 'त्रिसंकू'।) प्राचीन काल के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण इसे पार कर कीकट (मगध) और वंग देश नहीं जाते थे, इसीलिए यह अपवित्र। शाहाबाद जिले के कैमोर पहाड़ से इसका उद्गम। चौसा के पास गंगा से संगम। मा० पी० १।६।८ नोट ४।]

यह खल-कोटि में (१।५।८)। द्वन्द्व-सृष्टि में सुरसरि के साथ इसका उल्लेख (१।६।८)। सुरसरि से मिल जाने पर इसका जल भी शिरोधार्य (२।१९४।७)।

मूल शब्द — २।१९४।७। क्रमनासा — १।६।८।

पर्याय — **कलिमल सरि** — १।५।८।

करुन रस (करुण रस) — काव्य के नौ रसों में एक।

[इष्ट वस्तु की हानि, अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति, प्रेमपात्र का चिरवियोग आदि से जहाँ शोक-भाव की परिपुष्टि, वहाँ करुण रस। इसके आलम्बन — बन्धु-विनाश, प्रिय-वियोग, पराभव आदि। उद्दीपन—प्रिय वस्तु के प्रेम, यश या गुण का स्मरण, वस्त्राभूषण, चित्र आदि के दर्शन। अनुभाव— रुदन, उच्छ्वास, प्रलाप आदि। संचारी भाव-व्याधि, ग्लानि, चिन्ता, विषाद, उन्माद आदि। स्थायी भाव— शोक।

भवभूति के अनुसार यही एकमात्र रस जो निमित्त-भेद से अन्यान्य रसों के रूप ग्रहण करता है। भरत के अनुसार इसके देवता यमराज, वर्ण-कपोत-सदृश। सा० को०१।]

राम-वन-गमन सुन अवधवासियों की दशा — 'मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ।' (२।४६)। चित्रकूट में — सासुओं से सीता के मिलन के समय पृथ्वी इस रस से व्याप्त (२।२४६।८)। जनक-समाज मानो इस रस की नदी (२।२७५)। जनक समाज और अवध समाज 'सब सिय राम प्रीति कि-सि मूरति। जनु करुना बहु

बेष बिसूरति।।' (२।२८१।७)। कौसल्या-कथन सुन सुनयनासहित सब रानियाँ इस रस में निमग्न (२।२८४।५)। लक्ष्मण की मूर्च्छा पर रामप्रलाप और वानरों की विकलता। संजीवनी लेकर आये हनुमान 'जिमि करुना महँ बीर रस' (६।६१)।

मूल शब्द – २।४६, २।२८४।५।

पर्याय – **करुना** – २।२४६।८, २।२७५, २।२८१।७, ६।६१।

कर्दम – एक महर्षि। प्रजापति।

ब्रह्मा > कर्दम ~ देवहूति (मनुपुत्री) > नौ कन्याएँ, भगवदावतार कपिल।

भा० ३।१२।२७, ३।२३।४८, ३।२४।१६।

[ब्रह्मा की छाया से ये उत्पन्न। भा० ३।१२।२७। ब्रह्मा के आदेश से सन्तानोत्पत्ति के लिए बिन्दुसर तीर्थ में तप। देवहूति से विवाह करने की इन्हें भगवान् की आज्ञा। इनकी नौ कन्याओं की उत्पत्ति के बाद भगवान् का अपनी अंश-कला से इनके पुत्ररूप में जन्म लेने का कथन।

देवहूति की सेवा से ये प्रसन्न। दिव्य विभूतियों के दर्शन के लिए उन्हें दिव्य दृष्टि-दान। उनकी सन्तान-कामना पूर्ण करने के लिए सर्वसाधन-सम्पन्न अद्भुत विमान रचकर उसमें उनके साथ मेरु की घाटियों में विहार। विश्व-भ्रमण। उनके आग्रह पर कन्याओं के विवाह और एक पुत्र उत्पन्न होने तक संन्यास ग्रहण न करना। ब्रह्मा इनसे प्रसन्न। कपिल रूप में भगवान् के प्रकट होने पर उनकी आज्ञा से इनका वन-गमन। संन्यास-धर्म पालते हुए भगवद्स्वरूप में लीन रहकर इन्हें परमपद-प्राप्ति। भा० ३।२१-२४।]

इनकी पत्नी देवहूति (१।१४२।५)।

कलपबेलि (कल्पबेल) – क़ल्पलता। सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली पौराणिक लता। बृ० को० के अनुसार कल्पवृक्ष की लता।

कौसल्या द्वारा जानकी का इस बेल की तरह दुलार। स्नेह-जल से सींचकर पालन। अब फूलने-फलने के समय विधाता वाम (२।५६।३-४)। शोक-विकल कौसल्या की दशा, मानो वन में लहलहाती सुनहरी कल्पलता को पाला मार गया हो (२।१६३)।

मूल शब्द – २।५६।३।

पर्याय – **कलप बर बेलि** – २।१६३।

कलिजुग – 'कलते कलेराश्रयत्वेन वर्तते इति'। ह० को०। चार युगों में अन्तिम।

[ऋग्वेद में विख्यात युग के रूप में इसका नाम नहीं। 'कलि' ऋग्वेद के ८।६६।१५ मन्त्र का लेखक। बढ़े कलि का अश्विनौ द्वारा कायाकल्प (ऋ० १०।३६।८)। अश्विनौ से इसे एक पत्नी प्राप्त (ऋ० १।११२।१५)। अथर्ववेद (७।११४।१) में कलि का पासा फेंकने के अर्थ में प्रयोग। पश्चात्कालीन साहित्य में कलि को 'तिष्य' कहा गया। शतपथ ब्राह्मण (५।४।४।६) में कलि 'अभिभू' (हरानेवाला)–- कलि वह पाँच उत्क्षेपण जो अन्यों को हरा देता है।

इस युग के धर्मों की उद्घोषणा पराशर द्वारा (पराशर-स्मृति १।२४)। मेधातिथि (मनु० ९।३०१) की व्याख्या के अनुसार कलि-काल कोई ऐतिहासिक भाग नहीं जो 'कृत' नहीं हो सकता; राजा अपने आचरण द्वारा प्रजाजनों में कतिपय युगों की परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण के रूपक में 'कलिः शयानो भवति'। दे० 'कृतजुग'। ध० इ० द्वि० पृ० ६८२, ६८५।

इस युग में अधर्म के चारों चरणों (असत्य, हिंसा, असन्तोष, द्वेष) की अत्यन्त वृद्धि। उनके कारण धर्म के चारों चरण (तप, सत्य, दया, दान) क्षीण, उनका चतुर्थांश ही शेष। मनुष्य लोभी, दुराचारी, निर्दय, द्वेषी, अकारण शत्रु। शूद्र आदि की प्रधानता। भगवान् का श्रीविग्रह कृष्णवर्ण (काला)। वे हृदय आदि अंग, कौस्तुभ आदि उपांग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्द आदि पार्षदों से संयुक्त। ऐसे यज्ञों द्वारा उनकी आराधना जिनमें नाम, गुण, लीला आदि के कीर्त्तन की प्रधानता। भृत्यार्त्तिहर, भवाब्धिपोत, शरणागतरक्षक आदि रूपों में उनकी स्तुति। इस युग की महिमा—केवल संकीर्त्तन से स्वार्थ-परमार्थ-सिद्धि। सत्य, त्रेता, द्वापर की प्रजा के मन में इस युग में जन्म-ग्रहण की कामना, क्योंकि इसमें भगवत्परायण भक्तों का प्रादुर्भाव। भा० ११।५।३२-३८; १२।३।२४-२५।

भा० में 'कलि' का मूर्त्तन। (वि०प० २२० आदि में भी)। यह राजवेशधारी शूद्र। इसके अत्याचार से चतुष्पाद वृषभरूप धर्म का केवल एक पाद शेष। गौरूप पृथ्वी पीड़ित। इसे मारने को राजा परीक्षित उद्यत। यह राजचिह्न उतारकर उनकी शरण में। इसकी प्रार्थना पर परीक्षित का इसे पाँच स्थानों में रहने का निर्देश— द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग, हिंसा एवं स्वर्ण। इनमें क्रमशः असत्य, मद, काम, वैर एवं रजोगुण का वास। भा० १।१६-१७।]

यह युग पापों का मूल। इसका नाश करनेवाले—कर्मकथा यमुना (१।२।९,६।१२०।५), रामकथा (१।१०।छं०, १।३१।५, १।३१।६, १।११४।२, १।१४१, ७।१२९।१), हरियश (१।११।६, १।२९ग, ३।६क), सरयू नदी (१।१६।१, १।३९।१३), सरयू-जल (१।४३।३, १।४३।७), रामनाम (१।२४।८, १।२७।८, १।२७, ३।११।१५, ७।५१।९), राम-गुणग्राम (१।३२।७,१।३२क), राम-चरण-स्मरण (१।३२४।छं०१), रामचरित मानस (१।३५।१०), रामचरित (५।६०।छं०, ७।१३०।छं०२), चित्रकूट (२।१३३।३), भरत-चरित्र (२।३२६।६), शिव (४।१।श्लो० २, ६।१।श्लो० २)। इसके पाप सरयू का कीचड़ (१।४१)। कलिमल ग्रसित मूढ़ होने का, 'कलिमल भाँड़े' होने का तुलसी का आत्मकथन (१।१२।१-२, १।३०ख)। 'कलि के कबिन्ह करउँ परनामा' (१।१४।४)। इस युग को देख शिव-पार्वती द्वारा शाबर मन्त्र-समूह की रचना (१।१५।५) कलि-मल-रहित होने का उपाय 'कलि कामद गाई' रामकथा का श्रवण-कथन (१।१५।११, १।३१।७)। कर्म-ज्ञान-भक्ति-रहित इस युग में एकमात्र नाम का आधार। वह कल्याण-निवास कल्पतरु (१।२२।८, १।२६, १।२७।४-७, ६।१२१ख, ७।१३०।५-६)। [वि०प० १७३, १८४ आदि, क० ७।८५ तथा उसके बाद के अनेक छन्दों में इसके प्रभाव का और नाम से कल्याण का कथन।]

इस युग में अधम खलों का बाहुल्य। उनका लक्षण-कथन राम द्वारा भरतादि से (७।३९।१-७।४०)। भुशुण्डि द्वारा कलि-वर्णन—तामस का प्राधान्य। सब अधर्म-रत। काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-द्वेष आदि से ग्रस्त। वर्णाश्रम धर्म का लोप। शूद्रादि की प्रधानता। सब देव-विप्र-श्रुति-सन्त-विरोधी। ब्राह्मण और राजा स्वधर्म-च्युत। पाखण्ड, मिथ्याचार, परपीड़न, निरकुंश कामाचार। पुरुष नारिपरायण। स्त्रियाँ व्यभिचारिणी। सब वर्णसंकर। मर्यादाच्युत। अल्पायु। सम्पूर्ण मूल्यों का क्षय। बार-बार अकाल। रोग-शोक-पाप-दुःखभोग (७।९६ख, ७।९७।८-७।१०२।छं०३)।

फिर भी, इस युग में अनेक गुण। नाम का प्रभाव प्रत्यक्ष। कृत, त्रेता और द्वापर में जो गति क्रमशः योग, यज्ञ और पूजन से, वही इस युग में हरि-नाम-स्मरण से। हरि-गुण-गान से भव-सन्तरण (७।१०२क, ख, ७।१०३।४-७, ७।१०३क)। [कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्।। भा० १२।३।५२।] 'कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा।।' (७।१०३।८)। [कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि। मानसं च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम्।। ब्र० पु० कृ० ६०।२९। कुशलान्याशु सिद्धयन्ति नेतराणि कृतानि यत्।। भा० १।१८।७।] धर्म के चार चरणों में केवल एक—दान—ही इस युग में प्रधान। [दानमेकं कलौ युगे। प०पु० सृ० १८।४४१।] जिस किसी विधि से दान करने पर कल्याण (७।१०३ख)। राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। तामस की प्रधानता, उसमें स्वल्प रजोगुण का योग एवं चतुर्दिक् विरोध इस युग-धर्म के सूचक (७।१०४।१,५)। युगों के लक्षण-ज्ञान से साधक को ज्ञात कि उसके हृदय में किस युग का संचरण। उसके द्वारा तदनुकूल धर्माचरण। रामभक्तों को युग-धर्म नहीं व्यापता (७।१०४।६-७)।

अन्य उल्लेख (२।३२६।छं०, ४।१५।९, ७।९७।१, ७।१०४ख)।

मूल शब्द – ७।४०, ७।९६ख, ७।९७।१, ७।९८।६, ७।९८।७, ७।९८क, ७।१००।२, ७।१०२क, ७।१०३।४, ७।१०३।५, ७।१०३क।

पर्याय – **कलि** – १।२।९, १।१०।छं०, १।११।६, १।१२।२, १।१४।४, १।१५।५, १।१५।११, १।१६।१, १।२२।८, १।२४।८, १।२६, १।२७।४, १।२७।६, १।२७।७, १।२७।८, १।२९ग, १।३०ख, १।३१।५, १।३१।६, १।३१।७, १।३२।७, १।३२क, १।३५।१०, १।३९।१३, १।४१, १।४३।३, १।११४।२, १।१४१, १।३२४।छं०१, २।१३३।३, २।३२६।६, ३।६क, ३।११।१५, ४।१।श्लो०२, ४।१५।९, ५।६०।छं०, ६।१।श्लो०२, ६।१२०।५, ७।५१।९, ७।९७क, ७।९७ख, ७।१००क, ७।१०१।छं०१, ७।१०१।छं०४, ७।१०१।छं०५, ७।१०१क, ७।१०२क, ७।१०२ख, ७।१०३।७, ७।१०३।८, ७।१०३ख, ७।१०४।५, ७।१२९।१, ७।१३०।छं०२।

कलिकाल – १।१२।१, १।२७, १।४३।७, २।३२६।छं०, ६।१२१ ख, ७।९७।८, ७।९८ख, ७।१०२।छं०३, ७।१०४ख, ७।१३०।५।

कलिकाला -- ७।६८।८।

कालकलि – ७।१०२क।

कल्पतरु – इच्छानुरूप फल देनेवाला काल्पनिक वृक्ष। स्वर्गीय वृक्षों में से एक। आ० को०।

[बृ० को० के अनुसार यह समुद्र-मन्थन से निकले चौदह रत्नों में एक। भा० ८।८।६, वि० पु० १।६।६५, महा० आदि० १८।३७, प०पु०सृ० ४।५०, प०पु०उ० २३२।३८ में सागर-मन्थन से निकले रत्नरूप वृक्ष का नाम पारिजात। उपर्युक्त प्रथम तीन की टीकाओं में पारिजात का अर्थ कल्पवृक्ष। आ० को० एवं बृ० को० में पारिजात स्वर्ग के पाँच वृक्षों में एक। अमर० १।५६-५७ में पाँच स्वर्गीय वृक्षों के नाम--मन्दार, पारिजातक, सन्तान, कल्पवृक्ष, हरिचन्दन। रघु० ६।६ में 'कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः]

'नामु राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु' (१।२६)। 'जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई।।' – पार्वती-कथन शिव से (१।१०८।३)। जनकपुरवासियों के लिए चारों भाइयों के दर्शन, जैसे 'सुरतरु लहै जनम कर भूखा' (१।३३५।५)। जिस तरुतले राम का विश्राम, उसकी इसके द्वारा प्रशंसा (२।११३।७)। 'रूख कल्पतरु···' – ग्रामवासियों का कथन (२।११६।४)। भरद्वाज के आतिथ्य में सबके पास यह वृक्ष (२।२१५।६)। भरत-दर्शन से ग्रामवासियों का आनन्द-आश्चर्य, 'जनु मरुभूमि कलपतरु जामा' (२।२२३।८)। यह किसी के अनुकूल या प्रतिकूल नहीं। अपने स्वरूप में स्थित। इसके निकट जाकर, इसे पहचानकर, इसकी छाया का आश्रय लेने पर शोच-नाश। राजा-रंक, भले-बुरे, सबके मनोरथ पूर्ण। राम-स्वभाव इसके सदृश (२।२६७।८ २।२६७)। [येषां तु यादृशी बुद्धिः फलदाता तथैव सा। न हि विषमता तस्य कल्पवृक्षोपमो हरिः।। सत्योपाख्यान। मा० पी० २।२६७।८ नोट २, पाद०।] 'कल्पतरु रूखा'! अंगद-कथन रावण से (६।२६।६)।

वांछित फल देने के गुण के कारण इसके सदृश – रामनाम (१।२७।५), राम-गुण-ग्राम (१।३२।११), प्रणत के लिए शिव (१।१०७), सेवक के लिए राम (१।१४६।१), प्रणत के लिए राम (७।३५।२), राम के लिए माता-पिता का आज्ञा-पालन (२।४२।३), राम-वन के वृक्ष (२।१३७।७), शंकर कल्याण-कल्पद्रुम (६।१।श्लो०२)। यह निम्नलिखित का उपमान--राम (१।१४६।५), दशरथ-सुकृत (१।३२५।छं० १), दशरथ-मनोरथ (२।२६।८), दशरथ (२।३५।१), कौसल्या-स्नेह (२।५३।३)। जनक-वाटिका के वृक्षों की सम्पत्ति के आगे यह लज्जित (१।२२७।५)। बबूल के साथ उसके विपरीतार्थ में इसका प्रयोग (१।६६।छं०, ४।१०।छं०१)। देवताओं द्वारा वृष्टि इसके फूलों की (१।३२४, २।३०८), इसकी सुमन-मालाओं की (१।३४७।२)।

मूल शब्द – ६।२६।६। कलपतरु – १।२६, १।१०७, २।३५।१, २।४२।३, २।११३।७, २।११६।४, २।२२३।८, ७।३५।२।

पर्याय – **कल्पद्रुम** – ६।१।श्लो० २।

कामतरु – १।२७।५।

देवतरु – १।३२।११, २।२६७।८।

विबुधतरु – १।१४६।५।

सुरतरु – १।६६।छं०, १।१०८।३, १।१४६।१, १।३२४, १।३२५।छं०१, १।३३५।५, १।३४७।२, २।२६।८, २।५३।३, २।१३७।७, २।२१५।६, २।३०८, ४।१०।छं०१।

सुररूख – १।२२७।५।

कस्यप (कश्यप) – ये प्रजापति। महा० आदि० ३१।२१-२२। वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षि में एक। भा० ८।१३।५।

मनु > देवहूति ~ कर्दम > कला ~ मरीचि > कश्यप ~ प्राचेतस दक्ष की तेरह कन्याएँ – (१) अदिति > द्वादश आदित्य (दे० 'अदिति'), (२), दिति > हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष एवं उनंचास मरुद्गण, (३) दनु आदि।

भा० ३।१२।५६, ३।२४।२२, ४।१।१३, ६।६।२, ६।६।२५-२६, ६।१८।११, ६।१८।६७।

[दक्ष के पूछने पर उनकी तेरह पुत्रियों द्वारा इन्हें पति बनाने की कामना व्यक्त। अतः उनका इनसे विवाह। भा० ३।१४।१२-१३। अदिति से देवता और दिति से दानव उत्पन्न (दे० 'अदिति' एवं 'दिति')। दनुपुत्र वैश्वानर की कन्याएँ पुलोमा और कालका इनकी पौत्रियाँ। ब्रह्मा की आज्ञा से उनके साथ इनका विवाह और क्रमशः पौलोम एवं कालकेय नामक दानवों का उनसे जन्म। भा० ६।६।३३-३५। इनकी अन्य दस पत्नियों से राक्षस, गन्धर्व, अप्सराएँ,

पशु-पक्षी, जलचर जन्तु, वनस्पति आदि उत्पन्न। भा० ६।६।२६-२६।

महा० में इनसे विवाहित तेरह दक्ष-कन्याओं में एक विनता। बालखिल्यों के प्रसाद के फलस्वरूप उनके गर्भ से अरुण और गरुड़ का जन्म। अरुण सूर्य-सारथि। गरुड़ का पक्षियों के इन्द्र-पद पर अभिषेक। महा० आदि० ३१।२२-३५। एक यज्ञ में ब्रह्मा द्वारा इन्हें दक्षिणारूप में पृथ्वी का दान। कुपित पृथ्वी का रसातल में जाना। इनकी तपस्या से प्रसन्न हो पुनः ऊपर जाना। महा० वन० ११४।१८-२२। राजा अंग द्वारा दान किये जाने पर पृथ्वी का भूमित्व-त्याग और ब्रह्मलोक-गमन। तब योग द्वारा अपने शरीर को त्याग इनका भूमि के स्थूल विग्रह में प्रवेश। इनके प्रभाव से पृथ्वी पहले की अपेक्षा अधिक समृद्धिशालिनी। पृथ्वी का ब्रह्मलोक से आगमन। इन्हें प्रणाम कर इनकी पुत्री बनना। तब से उनका नाम काश्यपी। महा० अनु० १५४।१-७। क्षत्रिय-संहार के बाद परशुराम द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न और दक्षिणारूप में इन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी का दान। कुछ क्षत्रियों को बचाने के उद्देश्य से इनका परशुराम को अपनी सीमा (पृथ्वी) से निष्कासित करना। महा० शा० ४६।६३-६६। वा० रा० १।७६।१३-१४। कठिन तप करके इनका शिव-जटा से निकली गंगा को लाना। उसका नाम 'काश्यपी' गंगा। प०पु०उ० १६४।५-६। इनका दूसरा नाम अरिष्टनेमि। महा० शा० २०८।८। ये मूलभूत कश्यप गोत्र के प्रवर्त्तक। महा० शा० २९६।१७-१८। कुबेर के सात गुरुओं में एक। इनका उत्तर दिशा में निवास। महा० अनु० १५०।३८-३६।]

एक कल्प में ये दशरथ। इनके पुत्ररूप में राम का अवतार (१।१२३।३)। पृथ्वी और देवताओं की प्रार्थना पर आकाशवाणी — (एक दूसरे कल्प में) पत्नीसहित इनके द्वारा कठोर तप और वर-प्राप्ति। अयोध्या में दशरथरूप में इनका जन्म। इनके पुत्ररूप में प्रभु अवतरित होंगे (१।१८७।३-५)। [अ०रा० १।२।२५-२८ में इनको दिये गये वरदान के फलस्वरूप योगमाया एवं अंशो सहित अवतार-ग्रहण करने का प्रभु-कथन ब्रह्मा से।]

मूल शब्द — १।१२३।३, १।१८७।३।

काकभुसुंडि — अनन्य राम-भक्त काक।

[भु० रा० में ये काल-भगिनी कालकण्टका (अथवा कालकण्टकिका) के सूर्य-संयोग से उत्पन्न पुत्र। पूर्व० ४।१,३। मधु-सागर-स्थित एक द्वीप में विशाल पर्वत के महाघोर वन में निवास। पूर्व० ४।१७-१८। ब्रह्मा से वर पाकर इनका गरुड़ को परास्त करना। इनके प्रचण्ड पौरुष से सप्तपाताल और त्रिभुवन पीड़ित। सूर्य, चन्द्र, देवता त्रस्त। देवों की विनती पर ब्रह्मा का इन्हें समझाना — ये वैष्णवों में अग्रणी। साधुओं को दुःख देने पर राम के कोपभाजन होंगे। इनकी जिज्ञासा—बलदेव, कृष्ण आदि राम के सहस्रों रूपों में मुख्य कौन? गरुड़-हनुमान्-संवाद कहकर ब्रह्मा द्वारा स्पष्टीकरण। राम के दिव्य जन्म-कर्म-सम्बन्धी कथामृत-पान की इनकी लालसा। पूर्व० ४-८। ब्रह्मा से राम के महाप्रयाण तक सम्पूर्ण रामायण सुनकर ये धन्य। इनका मोह दूर। कथन—इन्हें पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त। अनेक जन्मों से ये रामभक्त। अब ब्रह्मा के अनुग्रह से भक्ति सुदृढ़। उस पर्वत पर रामभक्त्यामृत पान कर अहर्निश आत्म-विभोर। पूर्व० कथावस्तु, पृ० ३७-३८। इनका दाल्भ्य को और दाल्भ्य का लोमश को रामायण सुनाना। — राम का भविष्य-कथन। भु० रा० पूर्व० १३६।७२-७३।

यो० वा० के भुशुण्डि अलम्बसा-वाहन काक और ब्रह्माणी-वाहन हंसिनी के पुत्र। चिरंजीवियों में श्रेष्ठ। सुमेरुस्थित कल्पवृक्ष पर निवास। ब्रह्माणी के अनुग्रह से जीवन्मुक्त, ज्ञातज्ञेय। प्राणसमाधि द्वारा आत्मपद पाकर उपशमरूप। प्रलयोपरान्त पुनः पुनः काकदेह-प्राप्ति। इन्हें अनेक कल्पों, अवतारों और सृष्टियों का स्मरण। किन्तु इनके रामभक्त होने का उल्लेख नहीं। इनके उपाख्यान का वसिष्ठ द्वारा राम से कथन। यो० वा० भुशुण्डोपाख्यान १३-२३।]

इन्हें रामभक्त और अधिकारी समझकर शिव का रामचरितमानस देना। वह इनसे याज्ञवल्क्य को प्राप्त। 'मानस' के वक्ता और श्रोता — ये एवं याज्ञवल्क्य — समशील, सर्वज्ञ। हरिलीला के ज्ञाता (१।३०।४ - ७)। इनके द्वारा गरुड़ को कही गयी 'मानस' कथा सुनने की पार्वती को शिव-आज्ञा। इनके संवाद को बाद में कहने की प्रतिज्ञा (१।१२० ख-ग)। 'जो भुसुंडि मन मानस हंसा' (१।१४६।५)। राम-जन्म पर ये प्रेम-पुलकित। शिव के साथ मनुष्यरूप में, प्रेममग्न हो, अवध-वीथियों में घूमना (१।१९६।४-५)। राम-स्वभाव का ज्ञान शिव-पार्वती को, और इन्हें। —राम-कथन (५।४८।१)। इनके द्वारा गरुड़ से कही गयी सम्पूर्ण रामकथा शिव ने पार्वती को सुना दी। — शिव कथन (७।५२।६)। काक-शरीर में इनके वैराग्य-ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न रामभक्त होने में पार्वती को सन्देह

(७।५३।८, ७।५३)। इनसे सम्बन्धित पार्वती के प्रश्न — (१) 'सो हरिभगति काग किमि पाई'। (२) ये 'राम परायन ग्यानरत गुनागार मति धीर।' इन्हें काक-शरीर क्यों मिला? (३) पवित्र रामचरित्र इन्हें कहाँ मिला? (४) इनके द्वारा कही गयी रामकथा शिव ने कैसे सुनी? (५) गरुड़ ने मुनियों को छोड़ इनसे क्यों कथा सुनी? (६) इनका और गरुड़ का संवाद किस प्रकार हुआ? (७।५४।८ - ७।५५।५)। इनसे किये गये गरुड़ के प्रश्न भी ऐसे ही। —शिव-कथन (७।५५)।

कल्पान्त में भी इनका नाश नहीं। सुमेरु के उत्तर में नील गिरि पर इनका वास। इनके प्रभाव से वह पर्वत और उसका निकटवर्ती परिवेश मायाजन्य गुण-दोषों से मुक्त (७।५७।१-३)। इनकी दिनचर्या राममय। पीपलवृक्ष के नीचे अपने इष्ट बालरूप राम का ध्यान। पाकर-तरुतले जप-यज्ञ। [यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। गीता० १०।२५।] आम्रवृक्ष की छाया में मानसी पूजा। वट के नीचे राम-कथा-प्रसंग (७।५७।४-७)। [ये चारों वृक्ष चार शृंगों पर। दे० 'नील सैल'। ध्यान, जप, पूजा, हरिकथा का सम्बन्ध दिन के चारों प्रहरों से। चारों युगों से भी — 'ध्यानु प्रथम जुग मखविधि दूजें। द्वापर परितोषन प्रभु पूजें। कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।' १।२७।३, ७।१०३।४।] इनके द्वारा रामचरित का अनेक प्रकार से प्रेम-आदरपूर्वक गान। सुनने के लिए आये अनेक पक्षियों के साथ पर्वतस्थित सरोवर-वासी निर्मलबुद्धि हंस भी। यह कौतुक देख आनन्दित शिव का वहाँ कुछ काल तक वास और राम-गुण-श्रवण (७-५७।७-७।५७)। इनके निकट अपने आने का प्रसंग कहकर शिव का पार्वती को गरुड़ के आने की कथा सुनाना (७।५८।१-२)।

ये 'राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना।।' सत्संग के लिए शिव का गरुड़ को इनके पास भेजना। उनका कथन— इनसे राम-कथा और राम-गुण-श्रवण करने से उनका मोह-नाश होगा (७।६२।२-५)। 'गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा।।' इनसे रामचरित सुनने के लिए वटतले बड़े-बूढ़े पक्षियों का समावेश। कथा आरम्भ करते समय गरुड़ को आते देख पक्षियोंसहित ये हर्षित (७।६३।१-६)। उनका आदर-सत्कार-पूजन। आने का कारण पूछना। गरुड़ कथन — ये सदा कृतार्थरूप। 'जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस'। इनके आश्रम के दर्शन से ही उनका मोह-भ्रम नष्ट। कथा में प्रेम। उनके विनीत आग्रह से उत्साहपूर्वक इनका रामकथा सुनाना (७।६३।७ - ७।६४।६)। रामचरितमानस-सर के रूपक से आरम्भ करके रामाभिषेक और अयोध्यापुरी के एवं अनेक प्रकार की राजनीति के वर्णन तक — 'कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।' (७।६४।७ - ७।६८।७)। [वि० के अनुसार यह मूल मानस चौरासी प्रसंगों में।] ये विशुद्ध सन्त। राम-कृपा से गरुड़ को इनके दर्शन। इनके अनुग्रह से संशय नष्ट, राम-चरणों में प्रीति (७।६८क, ७।६६।५,७,८)। गरुड़ के ये वचन सुन इनका शरीर पुलकित, नेत्र सजल, मन में हर्ष। गरुड़ के प्रति अतिशय प्रेम। इनका शील — वे इनके पूज्य। उनमें संशय-माया-मोह नहीं। उन्हें भेजकर रघुपति ने इन्हें महत्व दिया (७।६६क, ७।७०।१-४)।

इनके द्वारा गरुड़-मोह-समाधान— शिव, ब्रह्मा, नारद, सनकादि के उदाहरण देकर इनका कथन — 'मोह न अंध कीन्ह केहि केही'। प्रचण्ड माया— कटक-काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा, मान, मद, मत्सर, दम्भ, त्रिगुण आदि— एवं उसके प्रभाव का वर्णन (७।७०।५ - ७।७१क)। माया मिथ्या। उसके प्रेरक राम। रामकृपा बिना उससे मुक्ति नहीं (७।७१ ख, ७।७२।१-२)। राम के निर्गुण स्वरूप का कथन। भक्तहेतु अवतार। नट की तरह 'प्राकृत नर अनुरूप' चरित्र, लीला (७।७२।३ - ७।७३।१)। उनमें अज्ञान का लेश भी नहीं, किन्तु मायासक्त मूर्ख 'निज अग्यान राम पर धरहीं' (७।७३।२-७।७३ क)। उनका 'निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।' सगुण के सुगम-अगम चरित्र-श्रवण से मुनियों को भी भ्रम (७।७३ख)।

आत्ममोह की कथा सुनाने की इनकी प्रतिज्ञा (७।७४।१-२)। राम का सहज स्वभाव — भक्त के मन में अभिमान-व्याधि उत्पन्न होने पर उसका नाश करना। इससे भक्त का हित (७।७४।३ - ७।७४ ख)। बालक राम इनके इष्टदेव। जब-जब उनका अवतार, तब-तब इनका अवधपुरी जाना। जन्म-महोत्सव और बालचरित देख हर्षित होना। लघु काक-देह धर उनके साथ इधर-उधर घूमना। उनकी जूठन से तृप्त होना। वहाँ पाँच वर्षों तक वास करना (७।७५।१ - ७।७५क)। एक बार प्रभु-चरित्र की अतिशयता। बालक राम का नख-शिख-वर्णन। इनके साथ उनकी नानाविध क्रीड़ा। उनकी 'प्राकृत सिसु इव लीला' देख इन्हें मोह। तत्काल राम-प्रेरित माया का व्यापना, किन्तु

वह इनके लिए दुःखद नहीं। इसका कुछ और कारण (७।७५ख - ७।७८।३)। अखण्ड एकरस ज्ञानरूप केवल राम। वे स्वतन्त्र। माया उनके वश में। जीव माया के वशीभूत, परतन्त्र। ईश्वर एक, जीव अनेक। दोनों का यह भेद मिथ्या, फिर भी रामकृपा बिना अच्छेद्य। हरिभजन बिना जीवन के क्लेशों से मुक्ति नहीं। [अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। योग० साधनपाद २।३।] हरि-सेवक को अविद्या का नहीं, प्रभु-प्रेरित विद्या माया का व्यापना। इसलिए उसका नाश (अर्थात् पतन) नहीं। भेद-भक्ति का बढ़ना (७।७८।४ - ७।७९।३)।

इन्हें भ्रम से चकित देख राम का हँसना। इन्हें पकड़ने के लिए घुटनों के बल दौड़ना। इनका भागना। राम का हाथ बढ़ाना। उड़ते हुए जहाँ-जहाँ इनका जाना, प्रभु की भुजा इनके पीछे। (भूलोक से ऊपर क्रमशः भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक पार कर) इनका ब्रह्मलोक (या सत्यलोक) तक गमन, किन्तु इनके और राम की भुजा के बीच केवल दो अंगुल का अन्तर। सातों आवरणों को भेद जहाँ तक इनकी गति, वहाँ तक जाना, पर वहाँ भी प्रभु की भुजा देख ये व्याकुल (७।७९।४ - ७।७९ ख)। [सप्तावरण और उनका भेदन — महत्तत्व, अहंकार एवं पंचतत्व (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी जिनके गुण क्रमश शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) — यह भा० २।५।२२-२९ के अनुसार विकास-प्रक्रिया। भा० २।२।२८-३० में भेदन-प्रक्रिया अन्त से आरम्भ की ओर— भा० ११।२४।२२-२६, १२।४।१४-१८ में वर्णित प्रलय-प्रक्रिया के अनुरूप।] त्रस्त होकर इनका आँखें मूँदना। खोलने पर पुनः अवधपुरी में। राम का मुसकाना। उनके हँसते ही ये उनके मुख में प्रविष्ट। उनके उदर में अगणित ब्रह्माण्ड-समूहों के दर्शन। एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ वर्षों तक वास। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भिन्न सृष्टि, भिन्न त्रिदेव। सूर्य, चन्द्र पृथ्वी आदि, और स्वयं ये भी भिन्न। प्रति ब्रह्माण्ड में रामावतार। अवधपुरी, सरयू, कौसल्या, दशरथ, भरत आदि सब भिन्न, किन्तु रामरूप प्रति ब्रह्माण्ड में एक ही। वही शेशव, वही शोभा। ब्रह्माण्ड में भटकते हुए इन्हें मानो एक सौ (कुछ के मत से एक सौ एक) कल्प व्यतीत। घूमते हुए अपने आश्रम में आना। राम-जन्म सुन अवध गमन। जन्म-महोत्सव-दर्शन। वहाँ भी वे ही राम। ब्रह्माण्ड-समूहों के दर्शन में केवल दो घड़ी का समय व्यतीत। मोह से इन्हें विकल देख राम का हँसना। ये उनके मुख से बाहर। पुनः इनके साथ प्रभु की वही बाल-क्रीड़ा (७।८०।१ - ७।८२ ख)। [माया-प्रलय में भटकते हुए मार्कण्डेय मुनि भी मुसकाते हुए शिशुरूप भगवान् के श्वास के साथ उनके अन्तश्शरीर में प्रविष्ट। वहाँ अद्‌भुत विश्व-दर्शन। पुनः प्रभु के श्वास के साथ बाहर। शिशु-प्रभु के अधरों पर वही मन्द मुसकान। शीघ्र ही माया विलीन। प्रभु अन्तर्धान। मार्कण्डेय पूर्ववत् अपने आश्रम में। भा० १२।९।२०-३४।]

यह लीला, और वह प्रभुता! 'त्राहि त्राहि आरत जन त्राता' कहकर इनका भूमि पर गिरना। राम का माया को रोकना। इनके मस्तक पर हाथ रख मोह-दुःख हरण। भक्ति का उल्लेख तक न कर ऋद्धि, सिद्धि, ज्ञान, मोक्ष आदि माँगने का प्रभु-कथन। इनकी याचना अविरल विशुद्ध भक्ति की (७।८३।१ - ७।८४ ख)। दुर्लभ 'निज भक्ति' के साथ प्रभु के अन्य वरदान — उनकी कृपा से इनमें सब शुभ गुणों का वास; भेदोपभेदसहित भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, चरित्र एवं अनेक प्रकार के रहस्यों का इन्हें सहज ज्ञान; मायाजन्य भ्रमों से मुक्ति (७।८५।१ - ७।८५ क)। इनके प्रति प्रभु का सिद्धान्तोपदेश। ज्ञानी-विज्ञानी की अपेक्षा निश्छल-भाव से भजन करनेवाला 'निज दास' उन्हें अधिक प्रिय। निरन्तर उनका स्मरण-भजन करने की इन्हें राम-आज्ञा। 'कबहुँ काल न व्यापिहि तोही' (७।८५ ख - ७-८८।१)। इन्हें अनिवर्चनीय सुख। पुनः प्रभुकी वही बाललीला। कुछ काल बाद इनका आश्रम में लौटना। तब से ये मायामुक्त (७।८८।२ - ७।८९।४)। इनके अनुभव का सार — 'बिनु हरि भजन न भव भय नासा'। अतः गरुड़ को राम-भजन का उपदेश (७।८९।५ - ७।९० ख)। प्रभु के नाम, रूप, गुण, महिमा और भाववश्यता का कथन (७।९१।१ - ७।९२ ख)। गरुड़ का कृतज्ञता-ज्ञापन (७।९३। १-८)।

गरुड़ के प्रश्न — इन्हें काकदेह क्यों मिली? (२) रामचरितसर कहाँ मिला? (३) काल क्यों नहीं व्यापता? (४) इनके आश्रम में आने पर उनके मोह-नाश का कारण? (७।९३ क - ७।९४ ख)। सुनकर इन्हें हर्ष। आदर की वीप्सा। पूर्व जन्मों का स्मरण। काक-देह में रामभक्ति दृढ़ हुई, अतः उसके प्रति ममत्व। स्वेच्छा-मरण होने पर भी उसका त्याग नहीं (७।९५।१ - ७।९६।५)। पहले मोह-पीड़ित और राम-विमुख हो इनका अनेक योनियों में भ्रमण, किन्तु ऐसी सुखानुभूति का सदा सर्वथा अभाव (७।९६।६-१०)। एक बार कलियुग में अयोध्या के एक शूद्र-परिवार में इनका जन्म। ये उग्रबुद्धि, वाचाल, धनमद-मत्त। शिवभक्त, किन्तु अन्य देवों के निन्दक। अवध में

रहते हुए भी उसके प्रभाव से अनभिज्ञ। अब उस प्रभाव का ज्ञान। इनका मत— किसी भी जन्म में अवध-वास करने पर व्यक्ति का राम-परायण होना निश्चित। हृदय में धनुष्पाणि राम के आने पर अवध-प्रभाव का ज्ञान (७।९६ क - ७।९७।७)। कलि-धर्म-वर्णन (७।९७।८ - ७।१०२।छं० ५)। चारों युगों की विशेषताओं का कथन (७।१०२ क - ७।१०४।५)। (दे० कृतजुग, कलिजुग, त्रेताजुग, द्वापर।) पण्डितों को युग-धर्म का ज्ञान। वे अधर्म को त्याग धर्म में प्रवृत्त। 'हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं'। हरि-भक्तों में काल-धर्म की अव्याप्ति (७।१०४।६ - ७।१०४ क)। उस कलिकाल में एक बार अकाल। तब ये दरिद्र। वहाँ से इनका उज्जैन-गमन। शंकराराधन। एक शम्भु-भक्त विप्र की सेवा। उनसे शिव-मन्त्र और उपदेश की प्राप्ति (७।१०४ ख - ७।१०५।७)। हरिभक्त, द्विज और विष्णु के प्रति इनके द्वेष से गुरु दुःखी। उनकी शिक्षा— शिव हरि-सेवक। उनकी भक्ति का फल राम-भक्ति-प्राप्ति। अतः हरि-द्रोह से कल्याण नहीं। सुनकर इनके मन में दाह (७।१०५।८ - ७।१०६।५)। स्वयं को 'मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती' कहकर इनके द्वारा अधम-स्वभाव-वर्णन (७।१०६।६-१५)। एक बार मन्दिर में इनके द्वारा शिवनाम-जप। गुरु के आने पर उनकी अवज्ञा। आकाशवाणी में इन्हें शिव-शाप— कोटि युगों तक रौरव नरक-वास। फिर तिर्यक् योनियों में दस सहस्र वर्षों तक दुःख-भोग। (यह वैदिक विधानानुसार अवश्य विहित दण्ड। इसके अतिरिक्त) महावृक्ष के खोखले में सर्प होकर निवास (७।१०६।१६ - ७।१०७।८)। गुरु-प्रार्थना से प्रसन्न शिव का शापानुग्रह एवं आशीर्वाद — (रौरव नरक में नहीं पड़ेंगे। मा० पी० ७।१०९।६, पं० रामवल्लभाशरण।) (क) दस सहस्र के स्थान पर केवल एक हजार जन्म। (ख) जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति। (ग) किसी भी जन्म में (त्रिकाल के) ज्ञान का न मिटना। (घ) रामभक्ति की प्राप्ति —(अ) अवध-वास के प्रभाव से, (आ) उनके (शिव के) अनुग्रह से। (ङ) जग में कुछ भी दुर्लभ नहीं। (च) अप्रतिहत गति (७।१०७ क - ७।१०९।५, ७।१०९।६-१६)।

काल-प्रेरणा से प्रथम विन्ध्य गिरि में जाकर इनका सर्प होना। फिर तिर्यक्, देव, मनुष्य आदि योनियों में बिना क्लेश के अनेक देह धारण करना। सब जन्मों में इनका ज्ञान अखण्ड। राम-भजन में प्रवृत्ति। केवल एक शूल—गुरु-अवज्ञा का (७।१०९क-७।११०।२)। अन्त में विप्रदेह-प्राप्ति। बाल-क्रीड़ा में भी राम की लीलाएँ करना। एक राम-प्रेम को छोड़ सब ओर से विरक्ति। माता-पिता के देह-त्याग के बाद भजन हेतु वन-गमन। मुनियों को नमन, हरिगुण-श्रवण। राम-दर्शन की लालसा (७।११०।३-१४)। ईश्वर के सर्वभूतमय होने के सम्बन्ध में सब मुनि एकमत। ये मेरु-शिखर पर वट-छायातले आसीन लोमश मुनि की शरण में। सगुण ब्रह्म की उपासना कहने की प्रार्थना। इन्हें अधिकारी समझ, कुछ रघुपति-गुण-गाथा सुनाकर मुनि का ब्रह्म-उपदेश करना। वह इन्हें रुचिकर नहीं। सगुण-कथन का आग्रह। मुनि द्वारा सगुणोपासना का खण्डन, निर्गुण-मत का उपदेश। इनका निर्गुण को खण्डित कर सगुण की स्थापना करना। तर्क-वितर्क। मुनि द्वारा बार-बार क्रोधसहित ज्ञान-निरूपण (७।११०।१५ - ७।१११क)। इनकी श्रवण में अश्रद्धा। बार-बार सगुण-स्थापन। कुपित मुनि का शाप — 'सपदि होहि पच्छी चंडाला'। तत्काल काक होकर, मुनि को नमन कर, राम-स्मरण करते हुए, इनका उड़ जाना (७।१११ख - ७।११२ख)। (गरुड़ के प्रथम प्रश्न का उत्तर)।

वस्तुतः इनकी प्रेम-परीक्षा के लिए राम का मुनि-बुद्धि को भ्रमित करना। पुनः उनकी मति फेरना। मुनि का इन्हें बुलाना। राममन्त्र देना। बालरूप राम की ध्यान-विधि बताना। रामचरितमानस सुनाना (१।११३।१-१३)। (गरुड़ के द्वितीय प्रश्न का उत्तर)। मुनि को इनका नमन। उनका आशीर्वाद — इनके हृदय में अविरल रामभक्ति बनी रहे। ये सदा रामप्रिय, शुभ गुणधाम, मानरहित, कामरूप, ज्ञान-वैराग्य-निधान, सफल मनोरथ, काल-कर्म-गुण-स्वभाव-जन्य दुःखों से मुक्त हों। इन्हें राम-रहस्यों का सहज ज्ञान, राम-चरणों में नित नव नेह, स्वेच्छामृत्यु प्राप्त हो। (तृतीय प्रश्न का उत्तर)। इनके आश्रम से एक योजन के विस्तर तक अविद्या माया न व्यापे। (चतुर्थ प्रश्न का उत्तर।) इसी समय आकाश में ब्रह्मवाणी — 'एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी।।' सुनकर इन्हें हर्ष (७।११३।१४ - ७।११४।७)। मुनि की विनती कर, उनके चरणों में बार-बार सिर नवाकर, अपने नीलगिरि के आश्रम में आगमन। यहाँ निवास करते हुए सत्ताईस कल्प व्यतीत। सदा रघुपति-गुण-गान। चतुर पक्षियों द्वारा श्रवण। रामावतार पर अवध जाकर प्रभु-शिशुलीला-दर्शन। उस रूप को हृदय में रख प्रत्यागमन (७।११४।८-१४)। काक-देह से भक्ति-प्राप्ति, निज-प्रभु-दर्शन, अतः यह तन इन्हें अति प्रिय। इनका भक्ति-महिमा-कथन (७।११४।१५ - ७।११५।४)।

गरुड़ का पाँचवाँ प्रश्न — ज्ञान और भक्ति में अन्तर कितना? (७।११५।५-११)। इनका उत्तर — (क) दोनों में अभेद, क्योंकि दोनों से संसारजनित दुःख दूर। (ख) दोनों में भेद भी। ज्ञान, विज्ञान, योग, वैराग्य — ये पुरुषवर्ग। 'नारि विष्णु माया प्रगट'। उसके कारण पुरुष का पतन। भक्ति और माया स्त्रीवर्ग। भक्ति का माया के प्रति मोह नहीं। इसके अतिरिक्त भक्ति रामप्रिया, माया नर्त्तकी। भक्ति से माया भीत। यह राम-रहस्य। इसके ज्ञान से मोह-मुक्ति (७।११५।१२ - ७।११६क)। (ग) अन्य भेद — चेतन ईश्वर का अंश जीव भी चेतन, किन्तु माया में पड़कर बद्ध, संसारी। उसकी ग्रन्थि मिथ्या, किन्तु मोहान्धकार के कारण दुर्भेद्य। विज्ञानरूपिणी बुद्धि से ग्रन्थि-भेदन और कैवल्य-प्राप्ति सम्भव। ज्ञानदीप का रूपक। विघ्न अनेक। 'ग्यान पंथ कृपान कै धारा' (७।११९ ख - ७।११९।२)। राम-भजन से मुक्ति सुगम। भक्ति से अनायास अविद्या का नाश। 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि' (७।११९।३ - ७।११९ ख)। भक्ति-चिन्तामणि का रूपक। विघ्नों का अभाव (७।१२०।१-१०)। यह मणि प्रकट होने पर भी रामकृपा के विना अप्राप्य। इसकी प्राप्ति का उपाय-कथन (७।१२०।११-१५)। सत्संगति से भक्ति-लाभ (७।१२०।१६-१९)। समुद्र-मन्थन और युद्ध के रूपक से हरिभक्ति का निरूपण (७।१२०।क,ख)।

गरुड़ के सप्त प्रश्न — (१) सबसे दुर्लभ शरीर कौन-सा? (२) सबसे बड़ा दुःख कौन? (३) सबसे बड़ा सुख कौन? (४) सन्त-असन्त का स्वभाव कैसा? (५) सबसे बड़ा पुण्य कौन? (६) कराल पाप कौन? (७) मानस-रोग कौन-से? (७।१२१।१-७)। प्रश्न-क्रम से इनके उत्तर — (१) नर-तन। (२) दरिद्रता। (३) सन्त-मिलन (७।१२१।८-२३)। (४) सन्त तन-मन-वचन से परोपकारी। भोजवृक्ष की भाँति दूसरों के हित के लिए उनका दुःख-सहन। असन्त पर-दुःख के हेतु। निःस्वार्थ भाव से पर-अपकार में प्रवृत्त। सन की तरह स्वयं विपत्ति सहकर दूसरों के अनिष्ट-साधन में तत्पर। सन्त-उदय सूर्य-चन्द्र की भांति सुखद। दुष्ट का उदय अधम केतु ग्रह की तरह दुःखद (७।१२१।१४-२१) (५) वेद-मत से अहिंसा। (६) पर-निन्दा। इसका फल भीषण (७।१२१।२२-२७)। (७) मानस-रोगों का मूल मोह। इससे काम-क्रोध-लोभ, विषय-मनोरथ, ममता-ईर्ष्या, अहंकार-दम्भ-कपट आदि उत्पन्न। जप-तप-ज्ञान-यज्ञ आदि से उनका निवारण सम्भव नहीं। सद्‌गुरु-उपदेश, संयम, श्रद्धा और भक्ति के संयोग से रोग-मुक्ति सम्भव। (७।१२१।२८ - ७।१२२।८)। नीरोग होने का लक्षण वैराग्य की दृढ़ता। सुमति-विकास, विषय-आशा-नाश और ज्ञानोदय से हृदय में रामभक्ति। शिव, सनकादि, वेद, पुराण आदि का मत राम-चरण-रति के पक्ष में। इनका निश्चित मत — 'हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते' (७।१२२।९ - ७।१२२ग श्लो०)। राम को एकमात्र सेव्य और रामभक्ति को भव-सन्तरण का एकमात्र उपाय कहकर इनकी विनय और सुशीलता (७।१२३।१ - ७।१२४क) कृतकृत्य गरुड़ द्वारा इनकी चरण-वन्दना, नमन, प्रस्थान। (७।१२४ख - ७।१२५क)

मूल शब्द — १।३०।४, १।१९६।४, ७।५३।८, ७।६२।२। काकभसुंड — ७।७०।१। काकभसुंडि — ७।८३ ख।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **काग** — ७।५४।८, ७।५५।१, ७।५५।४, ७।५५।५, ७।५५, ७।५८।२, ७।६९ क, ७।८५ ख, ७।८६, ७।९३।४, ७।११२ क, ७।११४।१५, ७।११५।१२। कागा — ७।५७।४, ७।६३।८, ७।९५।१।

खग (गरुड़, जटायु, सम्पाति भी) — ७।५७।१, ७।५८।१, ७।८७ ख।

बायसतिलक — ७।६८ क।

भसुंड — ७।७६।१। भुसुंड — ७।६८।७। भुसुंडा — ७।६३।१। भुसुंडि — १।१२० ख, १।१४६।५, ५।४८।१, ७।५२।६, ७।९३।१, ७।११५।५, ७।१२४।१, ७।१२४ ख।

कृपानिकेता (शिव भी, मुख्यतः राम के लिए) — ७।११५।११।

कृपानिधि (राम, शिव, हरि, लोमस, याज्ञवल्क्य भी) — ७।११५।८।

कृपासिंधु (राम, लक्ष्मण, शिव, विष्णु भी) — ७।९३ ख।

काम — कामदेव। कामरूप होने के कारण यह नाम।

प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > संकल्पा ~ धर्म > संकल्प > काम। भा० ६।६।१,२,४,१०।

[कामस्तु वासुदेवांशो। भा० १०।५५।१(१) ये कृष्ण के मानस से प्रकट। तप्त सुवर्ण-से कान्तिमान्। इनके

वामपार्श्व से रति उत्पन्न। सं० ब्र० पु० पृ० २६।(२) ये ब्रह्मा के मन से प्रकट। ब्रह्मा द्वारा इनका कर्त्तव्य-निर्देश — अपने पंचबाणों से स्त्री-पुरुषों को मोहित कर, अदृश्य रूप से उनके हृदय में प्रवेश कर, उनके सुख का हेतु बन, ये सृष्टि-प्रवर्त्तन करें। (गीता० में धर्म से अविरुद्ध होने पर ये वासुदेव के स्वरूप, उनकी विभूति। ७।११, १०।२८।) ऋषियों द्वारा इनका अर्थमूलक नामकरण — मन्मथ, काम, मदन, दर्पक, कन्दर्प। देवताओं के सम्मिलित बल से भी ये अधिक बलशाली। सर्वव्यापी। दक्षकन्या रति से इनका विवाह। सं० शि० पु० पृ० १०६-११०। चन्द्र और वसन्त इनके प्रिय मित्र। कुमार० ४।१३, २४।

कई बार पृथ्वी पर ऋषियों का कठोर तप देख शंकित इन्द्र द्वारा ये तप भंग करने के लिए प्रेरित। उस समय इनके साथ वसन्त, मलयानिल, लोभ, मद, गन्धर्व और अप्सराएँ। इनके माया-विस्तार से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धमयी मोहक सृष्टि की रचना। लोभ-मद का लक्ष्य के मन में प्रवेश। 'पंचमुख' बाण-निक्षेप कर लक्ष्य को कामोद्वेलित करने का इनका प्रयास। भा० १२।८।२०-२८। तपोलीन शिव पर इनके अमोघ बाण व्यर्थ। कुपित शिव के तृतीय नेत्र से निकली प्रज्वलित अग्नि से ये भस्म। विलाप करती रति को अभय देते हुए इनकी कुछ भस्म सुरक्षित रखने का उन्हें देवताओं का परामर्श। इन्हें जीवित करने की देवताओं की प्रार्थना से शिव प्रसन्न। कृष्णावतार में इनके प्रद्युम्नरूप में जन्म, शम्बर द्वारा हरण, रति को इनकी प्राप्ति आदि की उनकी भविष्यवाणी। द्वापर तक अनंगरूप में जीवित रहने का कथन। सं० शि० पु० पृ० १८४-१८७।

कुमार० में विलपती रति का काम के भस्म से अपना शृंगार कर चिता में आत्मदाह करने का निश्चय। इसी समय आकाशवाणी — काम का भस्म होना पूर्व-निश्चित। सरस्वती की सृष्टि होने पर उनके प्रति ब्रह्मा को इन्होंने काममोहित किया। अतः ब्रह्मा का इन्हें शिव-नेत्र से भस्म होने का शाप। धर्म की प्रार्थना पर शापानुग्रह— पार्वती से विवाह होने पर इन्हें अपना सहायक मान शिव पूर्ववत् शरीर देंगे। तब ब्रह्मा-शाप से भी मुक्ति। कुमार० ४।३४-४३।

द्वापर में रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्नरूप में इनका जन्म। मायावती के रूप में रति को इनकी प्राप्ति। दे० 'कृष्नतनय'।

इनके धनुष में रुक्म, वज्र, इन्द्रनील, चन्द्रकान्त एवं विद्रुम मणियाँ। शिव द्वारा इनके भस्म होने पर धनुष पाँच खण्डों में विभक्त हो पृथ्वी पर गिरा। ये पाँच खण्ड ही चम्पा, बकुल, पाटल, जाती एवं मल्ली पुष्पों के रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न। तब से इनका धनुष पुष्पमय होकर विराजमान। इनके पुष्पमय पाँच बाणों में अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल। पंचशर के सम्बन्ध में अन्य मत—ये (१) द्रावण, शोषण, तापन, मोहन, उन्मादन। (२) स्तम्भन, शोषण, तापन सम्मोलन, उन्मादन। (सं० ब्र० पु० पृ० २६ में — स्तम्भन, शोषण, मारण, जृम्भन, उन्मादन।) (३) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। आदि।

भारतीय शिल्प में काम और रति की मूर्तियाँ सर्वत्र साथ ही उत्कीर्ण। एलोरा आदि में मकरध्वज के साथ। मकरकेतन और झषकेतन एकार्थवाचक। हि० सा० भू०, परिशिष्ट, कवि-प्रसिद्धि ७।)]

समाधिलीन शिव के मन में क्षोभ उत्पन्न करने के लिए इन्हें भेजने का ब्रह्मा कथन देवताओं से (१।८३।५)। देवताओं की स्तुति से इनका प्राकट्य। उनकी विपत्ति सुनकर इनका कथन — शिव-विरोध से कुशल नहीं। फिर भी, ये देव-कार्य करने के लिए प्रस्तुत। अपना मरण निश्चित जान, पुष्प-धनु लेकर सहायकों के साथ गमन (१।८३।८-१।८४।४)। इनका प्रभाव-विस्तार। जगत् इनके वशीभूत। वेद-मर्यादा का लोप। ब्रह्मचर्य, संयम, धर्म, सदाचार, योग, वैराग्य, विवेक आदि सब नष्ट। त्रिलोक के चर-अचर सब नर-मादा काम-विकल। राम के कृपापात्र ही इनके प्रभाव से मुक्त (१।८४।५ - १।८५)। दो घड़ी तक जगत् की यह स्थिति। तब तक शिव के निकट पहुँच उन्हें देखकर ये भीत। जगत् पुनः पूर्ववत्। रुद्र को विचलित करने में अपनी असमर्थता और लौटने में लज्जा का बोध। अतः उपाय — साधन। बसन्त को प्रकट करना। कामोद्दीपन प्रकृति के मोहक रूप का विस्तार। अप्सराओं का नृत्य-गीत (१।८६।१-१।८६।छं०)। ससैन्य सब उपाय कर ये विफल। इन्हें क्रोध। आम्र-विटप की एक शाखा पर चढ़ अपने पुष्प-धनु पर बाण-सन्धान। (अन्तिम अमोघ अस्त्र)। पाँच बाणों से शिव का हृदय-वेधन। उनके मन में क्षोभ। समाधि से जागृत। आम्र-पल्लवों में इन्हें देख क्रोध। तृतीय नेत्रोन्मीलन। ये भस्म। (१।८६-१।८७।६)। जगत्

में हाहाकार (१।८७।७)। रति की विनती पर शिव-कथन — अब से इनका नाम अनंग। बिना शरीर के ही सबको व्यापेंगे। कृष्णावतार में उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में उत्पन्न होंगे (१।८७-१।८८।२)।

नारद-तप से भीत इन्द्र का इन्हें बुलाना। उनकी समाधि भंग करने के लिए ससैन्य जाने का आदेश (१।१२५-५-६)। नारद-आश्रम में जाकर इनका माया रचना। बसन्त, रम्भा आदि अप्सरागण, अनेक काम-कलाएँ, सब व्यर्थ। [कारण, नारद की तपोभूमि वही जो पहले शिव की (गंगावतरण तीर्थ)। शिव-प्रसाद से उस भूमि से दृष्टि-पथ में आनेवाला सम्पूर्ण क्षेत्र इनके प्रभाव से मुक्त। सं० शि० पु० पृ० ७३)।] हारकर ये आर्त्तभाव से मुनि-चरण-शरण। मुनि द्वारा इनका परितोष। उन्हें नमन कर, इन्द्र-सभा में जा सब निवेदन (१।१२६।१-१।१२७।३)। नारद के मन में इनको जीतने का अहंकार। शिव को इनका चरित सुनाना। यह प्रसंग हरि से न कहने का शिव का आग्रह (१।१२७।५-८), फिर भी नारद का हरि को सुनाना (१।१२८।७)। 'तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा' — हरि-कथन नारद से (१।१२९।२)।

'मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही···' (१।२३०।२)। '···मथै पानि पंकज निज मारू' (१।२४७।८)। राम धनुर्भंजन में समर्थ, इस कथ्य की पुष्टि के लिए इनके कुसुम-धनु से विश्व-विजय का उदाहरण (१।२५७।१)। मणि-स्तम्भों में सिय-राम के प्रतिबिम्ब, मानो रतिसहित अनेक रूप धर ये सिय-राम-विवाह देख रहे हों (१।३२५।३-४)। कुलिश आदि का आघात सहनेवाले दशरथ इनके पुष्प-बाणों से मृत (२।२५।३-४)। राम-कथन लक्ष्मण से — उन्हें विरह-विकल एकाकी जान इनका खग-वन-भ्रमर-सहित उन पर आक्रमण। अपने दूत पवन से उनके भ्राता के साथ (अकेले नहीं) होने का समाचार सुन इनका सेना को रोक डेरा डालना (३।३७ क, ख)। वृक्ष-लता-पुष्प-भ्रमर-वन-खग-गिरिशिला-निर्झर-मयी इनकी चतुरंगिणी सेना का राम द्वारा वर्णन। उसको साथ लिये सबको चुनौती देते हुए इनका विचरण (३।३८।१-१०)। जग में उन्हीं की प्रतिष्ठा जो इनकी सेना को देखकर भी धीर। इनकी परम शक्ति नारी (३।३८।११-१२)। 'धन्वी कामु'! अंगद-कथन रावण से (६।२६।५)। ये भील और मनुष्य मृग जो इनके कुभोगरूपी बाणों से निहत। इन्हें मारकर जीवों को विषय-मुक्त करने की शिव-विनय राम से (७।१४।छं०४)। राम 'मनसिज-करि हरि' (७।३०।६)।

शिव के कोप से इनके दहन का उल्लेख — ब्रह्मा द्वारा शिव से (१।८९।२), सप्तर्षि द्वारा उमा से (१।८९), उमा द्वारा सप्तर्षि से (१।९०।२, १।९०।६, १।९०।८), सप्तर्षि द्वारा हिमवान् से (१।९१।१)। उपमान रूप में प्रयोग— सौन्दर्य की दृष्टि से राम इनके समान (२।१२३।३, २।१३३, २।२३६।७), राम से ये हीन (१।२६६।८, २।९१।२)। उपमान — मायानगर-वासियों के (१।१३०।१), राम-अश्व के (१।३१६।८, १।३२६।छं०), इनका धनुष राम-भृकुटि का (१।१४७।४)। गज, मीन, कोकिल आदि रूपों में उपमान (१।२३३।७, १।२५८, १।३१८।४, १।३२२।छं०, १।३४६।६)। उपमेय की अतिशय शोभा की व्यंजना के लिए इनका उपमान रूप में जातिवाचक प्रयोग — निम्नलिखित उपमेय कहीं इनके समान, कहीं उनकी तुलना में ये हीन — राम (१।१४६, १।१९६।१, १।१९६।७, १।२८५।४, १।३२७।१, २।११५।६, ३।३२।छं० ३, ४।३०ख, ५।४५।५, ६।१०३।छं० १, ६।१११।छं० २, ६।११३।छं०, ७।११।८, ७।१२।छं०२, ७।७५।५, ७।७६।५, ७।९१।७), राम-लक्ष्मण (१।२२०।५, १।२२०, १।२३३।६, १।२४३।१, १।३१०, २।११७।१), शिव (७।१०८।छं० ३)। अन्य उल्लेख (१।२१३।५, १।२४३।३, १।२८९।१, १।३४५।१, १।३५०।१, २।६६।२, २।९०।८, २।१४०।७)।

मूल शब्द — १।८५।छं०, १।१२५।५, १।१२६।७, १।१२७।१, १।१२७।५, १।१२८।७, १।१४६ (जाति०), १।१९६।१ (जाति०)। १।२२०।५ (जाति०), १।२२० (जाति०), १।२३३।६ (जाति०), १।२३३।७, १।२४३।१ (जाति०), १।२५७।१, १।३१० (जाति०), १।३१६।८, १।३१८।४, १।३२२।छं०, २।२५।३, ३।३८।११, ४।३० ख (जाति०), ६।१११।छं० २ (जाति०), ६।११३।छं० (जाति०), ७।१२।छं० २ (जाति०), ७।९१।७ (जाति०)। कामा — २।२३६।७, ७।७५।५ (जाति०), ७।७६।५ (जाति०)। कामु— १।८३।५, १।८६।१, १।८७।६, १।८९।२. १।८९, १।९०।२, ६।२६।५।

पर्याय — **अनंग** — ३।३२।छं० ३ (जाति०), ६।१०३।छं० १ (जाति०), ७।११।८ (जाति०)। अनंगा — १।२८५।४ (जाति०), अनंगु — १।८७।

असमसर (पंचशर) — १।१२६।४।

जलचरकेतू (मकरकेतु) -- १।१२५।६।

झषकेतू (झष = मत्स्य = मकर। झषाणां मकरश्चास्मि। गीता० २०।३१) १।८३।८।

बारिचरकेतू — १।८४।६।

बिषमबान (पाँच बाणोंवाले) — १।८३।८।

मदन (मदमत्त बनानेवाले) — १।८६।४, १।९१।१, १।१२६।१, १।१२६।६, १।१२७।२, १।१९९।७ (जाति०), १।२३०।२, १।३२५।४, १।३४५।१ १।३४६।६, २।११५।६ (जाति०), २।१२३।३, ३।३७ क, ५।४५।५ (जाति०)।

मदन — १।८७।१, १।८७।५, २।१३३।

मनजात (मन में या मन से प्रकट) — ३।३७ ख, ७।१४।छं० ४।

मनसिज (मन में उत्पन्न) — १।८५, १।८६।८, १।१३०।१, १।२५८, ७।३०।६। मनसिजु — १।३१६।छं०

मनोज — १।१४७।४, १।३२७।१ (जाति०), १।३५०।१, २।६६।२, २।९१।२, २।११७।१ (जाति०), ३।३८।७।

मंनोभव — १।८६।छं०, १।१२६।७, १।१२९।२, १।२८९।१

मनोभूत — ७।१०८।छं० ३ (जाति०)।

मन्मथ (सबको मथ डालनेवाले) — १।९०।८।

मयन (मदन) — २।१४०।७। मैन (मयन=मदन) — १।१२६।

मार (मारण — पंचबाणों में एक) — १।८३, १।८४।४, १।१२७।६, १।२४३।३, १।२६९।८। मारा — १।९०।६। मारू — १।८६।२, १।२४७।८।

रतिनाथ — १।८४।छं०, १।२१३।५, २।२५।४।

रतिपति — २।९०।८।

हृदयनिकेत — १।८६।

कामधेनु — समृद्धि की गौ। सब इच्छाओं को पूरा करनेवाली स्वर्गीय गाय। आ० को०।

[यह सागर-मन्थन से उत्पन्न। सुरपूजिता। अग्निहोत्र की सामग्री उत्पन्न करनेवाली। यज्ञ के लिए उपयोगी पवित्र घृत-दुग्धादि प्राप्त करने के लिए ब्रह्मवादी ऋषियों द्वारा इसका ग्रहण। भा० ८।८।१-२, वि० पु० १।९।९२, महा० आदि० १८।३७, प० पु० सृ० ४।४५। प० पु० उ० २३२।३८ में यह 'सर्वकामधुक्'। यह भगवान् की विभूति। गीता० १०।२२। भा० ११।१६।१४।

वसिष्ठ की नन्दिनीनामक कामधेनु प्रसिद्ध। इसके प्रभाव से वसिष्ठ द्वारा मन्त्रियोंसहित विश्वामित्र का अपूर्व आतिथ्य। राज्य के बदले भी इसे पाने में असमर्थ विश्वामित्र द्वारा इसका अपहरण। यह कातर। पुनः वसिष्ठ से उनके पास रहने की इसे अनुमति मिलने पर इसके अंगों से विभिन्न जातियों की असंख्य सेना उत्पन्न। उसके द्वारा विश्वामित्र की सेना का पराभव। महा० आदि० १७४।८-४४।

भा० ९।१५ में इसी तरह जमदग्नि की कामधेनु के प्रभाव से लुब्ध सहस्रार्जुन द्वारा इसका हरण। यही परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन-वध का कारण।

एक बार स्वर्ग से लौटते हुए राजा दिलीप द्वारा मार्ग में कामधेनु की परिक्रमा और पूजा न होने पर इसका शाप— इसकी पुत्री नन्दिनी की सेवा किये बिना उन्हें सन्तान-प्राप्ति नहीं होगी। इक्कीस दिनों तक उनकी सपत्नीक सेवा से नन्दिनी प्रसन्न। बाईसवें दिन परीक्षा। तब वे सफल मनोरथ। रघु० १-२।]

विधि-वन्दना में भवसागर से (देवसर्ग के अन्तर्गत) इसकी उत्पत्ति का कथन। यह सन्त-कोटि में (१।१४च)। 'रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।' इसका वास सुरलोक में (१।११३)। भरद्वाज-आतिथ्य में सबके पास यह गौ (२।२१५।६)। राम-सेवक की सेवा शत-शत कामधेनुओं के समान सुन्दर (२।२६६।१)। 'पसु सुरधेनु'! —अंगद-कथन रावण से (६।२६।६)। 'कामधेनु सत कोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना।।'—भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (७।९२।४)। कामना-पूर्त्ति की सामर्थ्य के कारण इसके सदृश—रामकथा (१।३१।७), राम—सेवक के लिए (१।१४६।१), प्रणत के लिए (७।३५।२), प्रतापभानु के राज्य में पृथ्वी (१।१५५।१), दहेज में जनक द्वारा दी गयी गायें (१।३२६।४), जनक द्वारा मुनियों को दान में दी गयी गायें (१।३३१।२), सेवक के लिए सुरसरि-रेणु

(२।१६७।७)। यह राम-भक्ति की उपमान (७।११०।७, ७।११५।२)।

मूल शब्द – १।१५५।१, २।२६६।१ (जाति०), ७।६२।४ (जाति०), ७।११५।२।

पर्याय – **कामद गाई** – १।३१।७।

काम्दुहा – १।३२६।४।

कामसुरभि – १।३३१।२।

धेनु – १।१४ च।

सुरधेनु – १।११३, ६।२६।६, ७।३५।२, ७।११०।७। **सुरधेनू** – १।१४६।१, २।१६७।७।

सुरसुरभी – २।२१५।६।

काल – कलयति आयुः। यद्वा कालयति सर्वाणि भूतानि। ह० को०।

[(१) पुरुषरूप भगवान् ही काल। भा० ३।२६।१७-१८। (२) पूर्वावस्था में माया द्वारा परमात्मा से इनकी उत्पत्ति। वा० रा० ७।१०४।२, अ०रा० ७।८।२१-२३। (३) दक्षकन्या धूम्रा और धर्मपुत्र ध्रुव (एक वसु) से उत्पन्न। सर्वलोकग्रासी भगवान्। महा० सभा० ६६।१७-२१। (४) ये नारायण के अंशभूत। इनकी आकृति विकराल। रूप अत्यन्त उग्र, विकट। सूर्य की भाँति प्रचण्ड तेज से युक्त। इनके छः मुख, सोलह भुजाएँ, चौबीस नेत्र, छः पैर। शरीर का रंग काला। वस्त्र लाल। परम ब्रह्म श्रीकृष्ण के नाम-जप में मग्न। सं० ब्र० पु० पृ० ४८।]

१) ये अष्ट लोकपालों में एक। (यम इनसे पृथक् लोकपाल।) रावण द्वारा पराभूत (१।१८२।१०, ७।८०।६)।

२) रावण द्वारा विजित नैर्ऋत्यकोण के दिक्पाल (६।८।३)। (यम दक्षिण दिशा के दिक्पाल)।

३) यम के अर्थ में प्रयुक्त (काल कर दण्ड। ६।९३। दे० 'कालदण्ड')।

४) दो रूप – खण्ड काल (लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष, कल्प – छोटे-बड़े काल-खण्ड) एवं अखण्ड काल (खण्ड काल का प्रेरक)। अखण्ड काल राम का धनुष (दण्डायमान, स्थिर, इसके प्रेरक राम), खण्ड काल इससे निकले अमोघ बाण जिनसे बचना असम्भव। ब्रह्मा से लेकर अति सूक्ष्म जीव तक खण्ड काल के वशीभूत (६।१।दो०)। [भा० में कालचक्र विष्णु का निरन्तर गतिशील आयुध। परमाणु से लेकर द्विपरार्धपर्यन्त क्षण, घटी आदि उसके अवयव। बाल्य, यौवन आदि अवस्थाएँ उसका वेग। आब्रह्मतृणस्तम्बपर्यन्त सर्वभूतों का उसके द्वारा निरन्तर संहार। ५।१४।२९ ।]

५) यह खण्ड काल अदृश्य । इसके द्वारा किसी आयुध का प्रयोग नहीं – 'काल दंड गहि काहु न मारा।' (विद्वानों के मत से यहाँ दंड का अर्थ 'कालदंड' नहीं)। व्यक्ति के धर्म-बल-बुद्धिविचार का हरण और मतिभ्रम इसके आगमन के सूचक लक्षण (६।३७।७-८)। भक्त पर इसका वश नहीं –(७।८८।१, ७।९४क।)। [महा० में जीवों के प्राण-हरण का निष्ठुर कार्य करने को अप्रस्तुत तपोमयी कान्तिमती मृत्यु को ब्रह्मा का वरदान जिसके फलस्वरूप गतायु प्राणियों का काम-क्रोध-मोह-रोग, अधर्म-असत्य-मिथ्याचार ही उनकी मृत्यु का कारण। द्रोण० ५४।३७।४५, शा० २५८।३०-३७।)]

६) खण्ड काल का दुर्धर्ष, सर्वसंहारक शक्ति अथवा मृत्यु के रूप में :

(क) मूर्त्तन या उल्लेख – १।१६५।२, १।२४५।७, १।२७१, १।२७४।३, १।२८४।२, ३।१३।८, ३।१६।१०, ४।७।२६, ४।१८।२, ५।३।६, ५।२२।६, ५।५५ (जाति०), ६।१५।२, ६।३३।६, ६।३७।६, ६।६६।२, ६।१०२।३, ६।१०४।८, ७।९४।७, ७।९४।८।

(ख) साम्यमूलक अलंकारों में उपमानरूप में प्रयोग – १।२४१।७, ३।२२।६, ६।१।श्लो०१, ६।१।श्लो०२, ६।४३।५, ६।४८ख, ६।५१।१, ६।६२।७, ६।६७।१, ६।७१।३, ६।७६।१०, ६।८१।८ (जाति०), ६।८२।७, ६।९४, ७।४१।५, ७।९१ ख (जाति०)।

(ग) अन्य आलंकारिक प्रयोग – २।४७, ५।३६।१।

मूल शब्द – १।१६५।२, १।१८२।१०, १।२४१।७, १।२४५।७, १।२७१, १।२७४।३, ३।१६।१०, ३।२२।६, ४।७।२६, ४।१८।२, ५।३।६, ५।२२।६, ५।३६।१, ५।५५ (जाति०), ६।१।श्लो० १, ६।१।श्लो०२, ६।३३।६, ६।३७।६, ६।३७।७, ६।३७।८, ६।४३।५, ६।४८ख, ६।६६।२, ६।६७।१, ६।७१।३, ६।८१।८ (जाति०), ६।८२।७, ६।९३, ६।९४, ६।१०२।३, ६।१०४।८, ७।४१।५, ७।८८।१, ७।९१ ख (जाति०), ७।९४।७,

७।६४क। काला — ३।१३।८, ५।३६।१, ६।८।३, ६।१५।२, ६।५१।१, ६।७६।१०, ७।८०।६ (जाति०)। कालु — १।२८४।२, २।४७, ६।६२।७, ६।१दो०, ७।६४।८।

कालकूट — हालाहल। एक प्रकार का अत्यन्त उग्र विष। भा० ८।७।१८, ३७।

[यह क्षीरसागर-मन्थन से प्रकट, जल का पाप-मल। दिशा-विदिशा में इसके उड़ने से सम्पूर्ण प्रजा त्रस्त। शंकर द्वारा इसका पान। इसके प्रभाव से उनका कण्ठ नील। भा० ८।७।१८-१९, ४२-४३। दे० 'छीरसागर'।

यहाँ केवल समुद्र-मन्थन से निकले विष के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों का ग्रहण।]

विष्णु के प्रति नारद की कटूक्ति—देवताओं को प्रेरित करके उनका शिव को विषपान कराना (१।१३६।८, १।१३६)। राम-नाम के प्रभाव से उन पर इसका अमृत का-सा असर (१।१९।८)। वे गरलकंठ (१।९२।४, २।१।श्लो० १)। 'जरत सकल सुरबृंद विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।' (४।१।सो० २)। सागर से उत्पन्न होने के कारण यह वारुणी, रमा और चन्द्रमा का प्रिय बन्धु। प्रभु-कथन—इसीलिए चन्द्रमा का इसे अपने हृदय में स्थान देना। अपनी विषभरी किरणों से वियोगियों को दग्ध करना (१।२३७, १।२४७।६, ६।१२।९-१०)। भवसागर से 'संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी' (१।१४च)।

मूल शब्द — १।१९।८।

पर्याय — **गरल** — १।९२।४, २।१।श्लो०१, ४।१।सो०२, ६।१२।९।

बिष — १।१४च, १।१३६।८, १।१३६, १।२४७।६, ६।१२।१०। बिषु — १।२३७।

कालकेतु — एक मायावी निशिचर।

इसके सौ पुत्र और दस भाई। सब दुष्ट, विप्र-सन्त-सुर-पीड़क। राजा प्रतापभानु द्वारा उनका वध। अतः प्रतापभानु से इसकी शत्रुता। प्रतिशोध लेने के लिए प्रतापभानु द्वारा पराजित तापस नृप (दे० 'एकतनु') से इसकी मित्रता। उसके साथ मिलकर इसका षड्यन्त्र (१।१७०।३-८)। विन्ध्य-वन में शिकार करते हुए राजा प्रतापभानु को प्रवंचित करने के लिए यह वहाँ विशाल सूअर का रूप धारण कर प्रकट। छलपूर्वक राजा के बाणों से बचते हुए उन्हें गहन वन में ले जाना। वहाँ एक अगम गिरि-गुहा में छिपना (१।१५६।५-१।१५७।७)। राजा के शयन करने पर इसका कपटी मुनि के पास आना (१।१७०।३)। इसकी सलाह के अनुसार उसने जो कुछ किया, वह सब सुनकर इसका आश्वासन — कुलसहित शत्रु का नाश कर यह चौथे दिन उससे मिलेगा (१।१७१।१-६)। क्षणभर में इसका प्रतापभानु को अश्वसहित घर पहुँचाना। उन्हें रानी के पास सुलाकर घोड़े को घुड़साल में बाँधना। राजा के पुरोहित का हरण कर, माया से उनकी बुद्धि भ्रमित कर, उन्हें गिरि-खोह में रखना। स्वयं उनका रूप बनाकर उनकी सेज पर विश्राम करना (१।१७१।७ - १।१७२।१)। दूसरे दिन राजा का इसे देखना, किन्तु स्वयं को इसका प्रकट न करना (१।१७२।६)। निश्चित समय पर इसका राजा से मिलना। (राजा को कपटी मुनि के) गुप्त परामर्श के अनुसार सब समझाना। राजा का इसे गुरु (एकतनु) समझना (१।१७२।८-१।१७२)। पशु-मांस में विप्र-मांस मिलाकर इसके द्वारा षड्रस व्यंजन तैयार (१।१७३।१-३)। पुरोहित को घर पहुँचाकर राजा को दिये गये विप्रशाप से एकतनु को अवगत कराना (१।१७५।३)। [एक वीर नायक हैहय राजा द्वारा इसका वध। हि० क० को०]

मूल शब्द — १।१७०।३।

कालदंड — यम का प्रधान आयुध। अमोघ, दिव्य।

[ब्रह्मा द्वारा निर्मित। अमित तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित। इसके एक ओर छिद्ररहित कालपाश प्रतिष्ठित और दूसरी ओर तेजोद्दीप्त मुद्गर मूर्त्तिमान। इसके दृष्टि-पथ में आते ही प्राणान्त। ब्रह्मा के अनुसार तीनों लोकों के लिए यह भयंकर, रौद्र। समस्त प्रजा के संहार में समर्थ। रावण पर इसका प्रहार करने को उद्यत यम को ब्रह्मा का रोकना (दे० 'जम')। वा० रा० ७।२२।५-६, ३४-४४।]

इन्द्र-कुलिश, शंकर-त्रिशूल, कराल हरि-चक्र के साथ शिव द्वारा इसका भी उल्लेख और इनसे भी न मरनेवाले का विप्र-द्रोह-पावक से जलने का कथन (७।१०९।१३)। रावण द्वारा विभीषण पर फेंकी गयी शक्ति मानो 'कालकर दंड' (६।९३)।

मूल शब्द — ७।१०९।१३। कालकर दंड — ६।९३।

कालनेमि — एक मायावी असुर। रावण का मामा। मा० पी० १।२७।८ व्या०।

छद्म साधुवेश का भी जगत् में पूजन, किन्तु कपट का अन्ततः उद्घाटन। — इसके उदाहरणस्वरूप रावण, राहु के साथ इसका उल्लेख (१।७।५-६)। यह कपट-निधान कलियुग, इसके नाश के लिए हनुमान् समर्थ रामनाम (१।२७।८। ओषधि लाने के लिए हनुमान्-प्रस्थान की सूचना पा रावण का इसके घर आना। सब मर्म कहना। [माया से मुनिवेश बनाकर यह हनुमान् को मोहित करे जिसे ओषधि-प्रयोग का समय निकल जाये—रावण-कथन। अ०रा० ६।६।४०-४१।] इसका सिर धुनना। रावण को रामभक्ति का उपदेश। रावण का क्रोध देख, उसके हाथ से मरने की अपेक्षा रामदूत के हाथ से मरना श्रेयस्कर समझ, इसका माया रचना (६।५६।२-६।५७।१)। मायामय आश्रम में इसे मुनिवेश में देख हनुमान् का नमन। इसके द्वारा रामगुणगाथा और अपनी ज्ञानदृष्टि के बल का कथन। हनुमान् को कमण्डलु देना। उन्हें सरोवर में स्नान कर शीघ्र लौटने का परामर्श। तब यह दीक्षा और ज्ञान देगा (६।५७।२-८)। हनुमान् द्वारा निहत मकरी (अप्सरा धान्यमाली) का उन्हें इसकी वास्तविकता बताना। इसके निकट आ, इसका मस्तक अपनी पूँछ में लपेट, हनुमान् का इसे पछाड़ना। मरते समय इसका राक्षसी शरीर प्रकट। राम-राम कहकर प्राण-त्याग (६।५८।२-६)। [अ० रा० में इसका प्रसंग विस्तृत — ६।६।३६ से ६।७।३३ तक। वा० रा० ७।६।३४ में विष्णु द्वारा इसके वध का उल्लेख। महा० आदि० ६७।६७ में यही कंस नाम से उत्पन्न।]

मूल शब्द — १।७।६, १।२७।८, ६।५६।२, ६।५६।३।

कालिका^{१}— महिषासुरमर्दिनी। भद्रकाली। भगवती देवी का एक अवतार।

[पूर्वकाल में देवासुर-संग्राम में देवताओं को परास्त कर महिषासुर इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित। देवगण स्वर्ग से निष्कासित। वे ब्रह्मा के साथ विष्णु और शंकर के शरणागत। सब सुनकर विष्णु, शिव को क्रोध। विष्णु के मुख से महान् तेज प्रकट। अन्य देवताओं के शरीर से भी तेज निःसृत। सबका तेज मिलकर जाज्वल्यमान् पर्वतसदृश। यह नारी (देवी) रूप में परिणत। भिन्न-भिन्न देवताओं के तेज से इनके भिन्न-भिन्न अवयव प्रकट। देवताओं द्वारा इन्हें अस्त्र-शस्त्र-भूषणादि-प्रदान। हिमालय-प्रदत्त सिंह पर आरूढ़ रण-सज्जिता देवी का सिंहनाद। महिषासुर-सेना से विकट युद्ध। सिंह एवं देवी के निःश्वासजन्य गणों का पराक्रम। चिक्षुर, चामर, उदग्र आदि प्रमुख दैत्यों का वध हुआ देख महिषासुर का युद्ध-प्रवेश। महिष, सिंह, खंगधारी पुरुष, गजराज और पुनः महिष का वेश धर उसका पौरुष-प्रदर्शन। चण्डिका का उसे पैर से दबाकर शूलाघात। महिष-मुख से दूसरे रूप में बाहर निकलते-निकलते उसका देवी द्वारा शिरश्छेद। दु० स० २,३। दे० 'महिषेसा'।

ये ही लक्ष्मी, गौरी और मेधाशक्ति। दुर्गा, जगदम्बिका, चण्डिका कहकर देवताओं द्वारा इनकी स्तुति और पूजा। वर-याचना — जब-जब वे इनका स्मरण करें,. तब-तब ये दर्शन देकर उनके महान् संकट दूर करें। 'तथास्तु' कहकर ये अन्तर्धान। दु० सं० ४। वि० प० १५-१६ में तुलसीदास द्वारा इनकी स्तुति।]

ये कराला। महामोहरूपी महिषासुर के लिए रामकथा इनके सदृश (१।४७।६)।

कालिका^{२} — महिषासुर-मर्दिनी अथवा चण्ड-मुण्ड-नाशिनी (काली, चामुण्डा) से भिन्न। ये कालिकारूपधारिणी योगिनियाँ। मातृकाओं की सेना में करोड़ों की संख्या में उपस्थित। इनका जिह्वा फैलाकर नहीं, बल्कि खप्परों में रोपकर रक्तपान। मा० पी० ६।६२। छं० व्या०।

हाथों में मुण्डमालाएँ लिये ये झुण्ड-की-झुण्ड मिलकर चलती हुईं ऐसी प्रतीत होती हैं मानो रुधिरनदी में स्नान कर संग्रामरूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों। (६।६३।छं०)। (यह प्रविष्टि कालिका' से भिन्नता दिखाने के लिए।)

कासी (काशी) — (काशते शिवत्रिशूलोपरि, अथवा, काशयति प्रकाशयति इदं सर्वं या। ह०को०।)

सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में एक।

[इसका दूसरा नाम वाराणसी, क्योंकि इन्द्रियकृत दोषों का वारण करने वाली 'वरणा' और इन्द्रियजनित पापों का नाश करनेवाली 'नाशी' नदियों के मध्य में यह प्रतिष्ठित। रा० उ० ता० पृ० ५४५, अ० पु० ११२। (प० पु० स्व० ३३।५० में 'नाशी' की जगह 'असी'।) शिव का यहाँ नित्य निवास। उनसे कभी मुक्त न होने के कारण यह 'अविमुक्त' क्षेत्र। अ० पु० ११२। शिव के साथ नारायण का भी वास। अतः त्रिकाल में यह सर्वाधिक पवित्र (वाराणस्यां परं स्थानं न भूतं न भविष्यति। यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः।। प० पु० स्व० ३३।५१)। यह परम ज्ञान, परम पद, परम तत्व, परम शिव—परम कल्याणस्वरूप। यहाँ निष्ठापूर्वक आमरण वास करनेवाले को

शिव द्वारा तारक मन्त्र का उपदेश, परमपद प्रदान। यहाँ के सब वर्ण-जाति के मनुष्य, कीट-पतंगादि तक मुक्त। —मेरु-शिखर पर पार्वती से शिव-कथन। प० पु० स्व० ३३। यहाँ पापकर्म करने पर काय-व्यूहों की प्राप्ति। सहस्रों वर्षों तक भैरवी यातना का भोग। तब मोक्ष। सं०शि०पु०पृ० ३५४।

एक समय यहाँ सहस्र मन्वन्तर तक शिव द्वारा हवन-पूजन आदि से रामाराधन, राम-मन्त्र-जप। प्रसन्न राम का उन्हें मनोवांछित वरदान—यहाँ देह-त्याग करनेवाले अधमाधम योनि के जीव का भी उद्धार। यहाँ भक्तिपूर्वक षडक्षर तारक मन्त्र द्वारा राम-पूजन करनेवाला ब्रह्महत्यादि पातकों से भी मुक्त। जिस मरणासन्न प्राणी के दाहिने कान में शिव राम-मन्त्र का उपदेश करेंगे, उसकी निश्चित मुक्ति। इस अविमुक्त क्षेत्र में लोगों की सिद्धि-मुक्ति के लिए स्वयं राम का पाषाण-प्रतिमा आदि में सदा निवास।

तारक (तारनेवाला) मन्त्र का स्वरूप — 'रां रामाय नमः'। इसके अतिरिक्त 'राम' पद के साथ 'चन्द्राय नमः' और 'भद्राय नमः', ये दो मन्त्र भी तारक। ये तीन क्रमशः ओंकारस्वरूप, तत्स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप। इन्हीं का नाम क्रमशः सत्, चित्, आनन्द।

अविमुक्त क्षेत्र का आध्यात्मिक स्थान नासिका और भौहों का सन्धि-स्थल (जहाँ इड़ा और पिंगला नाड़ियों का मिलन)। यहाँ द्युलोक तथा परमधाम की सन्धि। इस सन्धि की 'सन्ध्या' रूप में ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा उपासना। आधिभौतिक अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में रहकर आध्यात्मिक अविमुक्त की उपासना अभिप्रेत। — वृहस्पति, भरद्वाज एवं अत्रि को दिये गये याज्ञवल्क्य के उत्तर। रा० उ० ता० पृ० ५४५, ५४६, ५५०।

वि० प० २२ में इसका कामधेनु से सांगरूपक बाँधकर इसके सेवन का कथन।]

द्वन्द्व-सृष्टि के उल्लेख-क्रम में मगध के साथ इसका उल्लेख (१।६।८)। शिव द्वारा राममन्त्र का उपदेश यहाँ मुक्ति का कारण (१।१६।३) — चारों प्रकार के (स्वेदज, उद्भिज, अण्डज, पिण्डज) जीवों के लिए (१।४६।४, १।११६।१, ४।१०।४)। रामकथा इसकी तरह मुक्तिदायिनी (१।३१।११)। 'मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर। जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।।' (४।१।सो०१)।

मूल शब्द — १।६।८, १।१६।३, १।३१।११, १।४६।४, १।११६।१, ४।१।सो०१, ४।१०।४।

किष्किन्धाकाण्ड — मानस का चतुर्थ काण्ड। दोहा-संख्या ३०। इस काण्ड की सारी घटनाएँ किष्किन्धा में घटित होने के कारण यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध काण्डों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह काण्ड 'विशुद्धसन्तोष-सम्पादन' नामक चतुर्थ सोपान। भक्तों की मान्यता — मानस के सात काण्ड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह काण्ड काशीपुरी। (दे० 'रामचरितमानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण — पथिकरूप राम-लक्ष्मण से भक्तिप्रद होने की प्रार्थना। रामनामामृत पान करनेवाले सुकृतियों को धन्य कहना। काशी-सेवन और शंकर-भजन का मन को उपदेश (४।१।श्लो० १-४।१ सो०) राम का ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचना। सुग्रीव का भय — कहीं वाली ने तो उन्हें नहीं भेजा। भेद जानने के लिए हनुमान् को भेजना। विप्ररूप में जाकर हनुमान् के प्रश्न। राम के उत्तर सुन, 'प्रभु पहचानि परेउ गहि चरना।' हनुमान् की बिनती। राम द्वारा अनन्य भक्ति का उपदेश (सो अनन्य···भगवंत।। ४।१।१-४।३)। सुग्रीव की कथा सुनाकर हनुमान् का दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले जाना। अग्नि को साक्षी करके उनकी मित्रता कराना। लक्ष्मण से सारी कथा सुन सुग्रीव का आकाश-पथ से जाती विवश सीता के सम्बन्ध में बताना और वस्त्र देना। राम का सोच। सीता को खोजने का सुग्रीव द्वारा आश्वासन। राम की जिज्ञासा पर वाली के बैर की कथा सुनाना। राम की प्रतिज्ञा — 'सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।' राम द्वारा मित्र-धर्म का उपदेश। बल-प्रदर्शन। सुग्रीव की राम-कृपा-याचना। सुग्रीव को साथ ले राम का किष्किन्धा जाना। वाली के निकट जा सुग्रीव का गरजना। तारा का वाली को समझाना। वाली के प्रहार से सुग्रीव की विकलता। उसे माला पहनाकर राम का पुनः भेजना। नानाविध युद्ध। सुग्रीव का भय देख राम का वाली पर बाण चलाना। वाली का प्रश्न और राम का उत्तर। राम-पद-अनुराग का वरदान माँगकर, पुत्र अंगद को राम के सुपुर्द कर, वाली का देह-त्याग। विलाप करती तारा को राम का ज्ञानोपदेश। वाली की अन्त्येष्टि। राम के आदेश से लक्ष्मण का सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज-पद देना। सुग्रीव को राम का राजनीति-उपदेश और अपना काम न भूलने की चेतावनी। राम का प्रवर्षण गिरि पर वास (४।४।१-४।१२)।

वन-वर्णन। राम का लक्ष्मण को भक्ति, वैराग्य, राजनीति, ज्ञान का उपदेश देना। राम द्वारा वर्षा एवं शरद-वर्णन और उसके मिस अपनी मनःस्थिति, नीति, व्यवहार, ज्ञान आदि का कथन (४।१३।१-४।१७)। सीता का कोई समाचार न पाने और सुग्रीव के सुधि बिसारने से राम को क्रोध। भय दिखाकर सुग्रीव को लाने के लिए लक्ष्मण को आदेश। इधर हनुमान् का सुग्रीव को समझाना। वानर-समूहों को एकत्र करने के लिए सर्वत्र दूत भेजना। लक्ष्मण का क्रोध। अंगद का उनके पास जाना और अभय पाना। भयभीत सुग्रीव का तारा और हनुमान् को भेज लक्ष्मण को महल में बुलाना, पाँव पड़ना। दूतों को भेजने का समाचार देना। सबका राम के पास आना। सुग्रीव की विनय। विशाल वानर-सेना का आगमन। प्रत्येक से राम का कुशल पूछना। वानरों को सुग्रीव की आज्ञा – एक मास के भीतर सीता का पता न लगाने पर वध निश्चित। प्रधान योद्धाओं को दक्षिण दिशा में जाने का आदेश। हनुमान् को अँगूठी देकर राम का सीता को समझाने के लिए शिक्षा देना। सबका प्रस्थान। सीता की खोज आरम्भ (४।१८।१-४।२३)।

वानरों का मार्ग में निशाचरों को मारना। मुनियों से सीता के सम्बन्ध में पूछना। वानरों का तृष्णा से व्याकुल होना। गिरि-शिखर पर चढ़ हनुमान् का एक विवर में पक्षियों को प्रवेश करते देखना। सबके साथ उस विवर में जाना। वहाँ एक मन्दिर में बैठी तपस्विनी स्त्री (स्वयंप्रभा) की आज्ञा से जल-पान, स्नान, फलाहार करना। स्वयंप्रभा द्वारा सीता को पाने का आश्वासन। सबका आँखें मूँदना, खोलने पर स्वयं को सागर-तीर पर पाना। स्वयंप्रभा का राम के पास जाना। अनपायिनी भक्ति पाकर प्रभु-आज्ञा से बदरिकाश्रम-गमन (४।२४।१-४।२५)। वानरों का सोच। अंगद को विशेष चिन्ता। सागर-तट पर अनशन। जामवंत का उपदेशमूलक कथाएँ कहना। सुनकर गिरि-कंदरा से सम्पाति का आना। वानरों का आहार देख उसकी प्रसन्नता। अंगद का जटायु के हरिपुर-गमन का प्रसंग छेड़ना। सम्पाति का वानरों को अभयदान और जिज्ञासा। उनका सिन्धु-तट पर जटायु को तिलांजलि देना, अपने पंख जलने की कथा और चन्द्रमा मुनि की भविष्यवाणी सुनाना। सीता का समाचार देना। वानरों को उत्साहित कर प्रस्थान। वानरों द्वारा निज-निज बल-सीमा-कथन। जामवंत द्वारा हनुमान् की प्रशंसा। सुनते ही हनुमान् का पर्वताकार हो निज पराक्रम-कथन। जामवंत की शिक्षा। फलश्रुति (४।२६।१-४।३० ख)।

कुंडल मकर – मकराकृत कुण्डल। राम (या विष्णु) का कर्णाभूषण। [भा० १२।११।१२ के अनुसार यह सांख्य और योगरूप।]

यह सगुण ब्रह्म राम (१।१४७।५) और दाशरथि राम (१।२४३।४, १।३२७।८) के कानों में शोभित।

मूल शब्द – १।१४७।५।

पर्याय – **कुंडल** – १।२४३।४, १।३२७।८।

कुंभकरन (कुम्भकर्ण) – कुम्भ के सदृश कानवाला। आ०को०। विश्रवा का पुत्र, रावण का अनुज। (वंश-परम्परा के लिए दे० 'रावन'।)

[वा० रा० में – सायंकाल के समय पुत्रप्राप्ति की कामना से अपने निकट आयी कैकसी से विश्रवा का कथन – उसके पुत्र क्रूरकर्मा राक्षस होंगे। फलतः रावण के बाद उत्पन्न यह भी राक्षस। महाबली, उद्वेगकारी। जगत् में इससे अधिक विशाल शरीरवाला कोई दूसरा प्राणी नहीं। त्रिलोक में घूम-घूमकर इसका महर्षियों को खाना। भोजन से कभी तृप्ति नहीं। ७।६।१६-२४, ३४, ३७-३८।

तपस्या करने के लिए भाइयों के साथ इसका गोकर्ण के आश्रम पर जाना। सन्मार्ग में स्थित और धर्म के लिए प्रयत्नशील हो दस हजार वर्षों तक तप। इसे वर देने के लिए ब्रह्मा को प्रस्तुत देख देवताओं का कथन – अब तक इसके द्वारा नन्दनवन की कितनी ही अप्सराओं, इन्द्र के सेवकों और ऋषियों का भक्षण; वर प्राप्त कर यह त्रिलोक का भक्षण करेगा। तब ब्रह्मा का सरस्वती को प्रेरित करके इसे मोहित करना। इसकी वर-याचना– यह अनेकानेक वर्षों तक सोता रहे। (अ०रा० ७।२।२१ में छः महीने सोने और एक दिन भोजन करने का वर माँगना।) सरस्वती के प्रभाव से मुक्त होते ही इसे चेत और अपनी याचना पर पश्चात्ताप। ७।१०।३-५, ३६-४८।

विरोचन-कुमार बलि की दौहित्रि वज्रज्वाला (अ०रा० ७।२।४१ में वृत्रज्वाला) से इसका विवाह। ७।१२।२३-२४। इसके भीतर निद्रा का प्रवेश। कई हजार वर्षों तक शयन। ७।१३।१-७। कुम्भ और निकुम्भ इसके पुत्र। ६।७५।४६।]

एक कल्प में जय-विजय (शापवश दूसरे जन्म में) रावण-कुम्भकर्ण के रूप में उत्पन्न किन्तु भगवान् के हाथों मरने पर भी मुक्त नहीं, क्योंकि विप्रशाप तीन जन्मों के लिए (१।१२२।४, १।१२२, १।१२३।१)। (दे० 'जय'।) अन्य कल्प में नारद द्वारा अभिशप्त शिव के दो गणों का विश्वविजयी असुर (रावण-कुम्भकर्ण) होना। ये प्रभु के हाथों मुक्त (१।१३६।३-७)। एक और कल्प में राजा प्रतापभानु के अनुज अरिमर्दन का कुम्भकर्ण के रूप में जन्म (१।१७६।३)। [अन्य एक कल्प में जलन्धर के रावण होने पर कुम्भकर्ण कौन हुआ, इसका मानस में संकेत नहीं।] इसकी कठिन तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा का इसके निकट आना। इसे देख विस्मित हो सोचना — यदि यह नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार उजड़ जाएगा। अतः सरस्वती को प्रेरित कर इसकी बुद्धि फेरना। वररूप में इसका छः महीनों की नींद माँगना (१।१७७।१, ६-८)। यह अत्यन्त बलशाली अप्रतिद्वन्द्वी योद्धा। मद्यपान कर इसका छः महीनों तक शयन। इसके जागने पर त्रिलोक में हलचल (१।१८०।३-६)।

सुषेण की चिकित्सा से लक्ष्मण की मूर्च्छा छूटने का समाचार सुन व्याकुल रावण का इसे अनेक उपाय करके जगाना। इसका रूप साक्षात् काल-सदृश। [रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ। युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः। वा० रा० ६।६०।६०।] सीता-हरण और युद्ध आदि का समाचार सुन यह दुखी। इसके द्वारा रावण की भर्त्सना। अब भी अभिमान त्याग भगवद्रूप राम को भजने का परामर्श। रावण पहले ही इसे जगाता, तो नारद से प्राप्त ज्ञान की बात यह उससे कहता। [अ०रा० में एक रात्रि को नारद का इससे कथन — इन दोनों भाइयों के अत्याचार से पीड़ित देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु रामरूप में अवतीर्ण। उनके द्वारा इन सब असुरों का वध निश्चित। अ०रा० ६।७।५६-६५।] उससे अन्तिम बार गले लगकर मिलने के लिए कहकर यह राम के रूप-गुण-स्मरण में मग्न (६।६२।५-६।६३)। महिष खाकर, मद्यपान कर, इसका गर्जन। उन्मत्त हो, सेना साथ लिये बिना अकेले ही दुर्ग से बाहर निकलना। विभीषण का आकर इससे मिलना। इसका रावण को कालवश और उन्हें धन्य मानना। मन-कर्म-वचन से छल छोड़ उन्हें राम-भजन करने का उपदेश देना। फिर जाने के लिए कहना, क्योंकि कालवश इसे अपने-पराये का अब ज्ञान नहीं (६।६४।१-६।६४)।

विभीषण का राम को इसके आने का समाचार देना। कपियों का इस पर गिरि-शिखरों से आक्रमण। यह अविचल (६।६५।१-६)। हनुमान् के मुष्टिकाघात से इसका व्याकुल होकर भूमि पर गिरना। इसके मुष्टि-प्रहार से हनुमान् का चक्कर खाकर गिरना (और मूर्च्छित होना। मा० पी० ६।६४।७ नोट १ ख।)। नल-नील को धरती पर पछाड़कर इसका अंगदादिसहित सुग्रीव को भी मूर्च्छित करना। उन्हें (सुग्रीव को) काँख में दबाना (६।६५।७-६।६५)। मूर्च्छा छूटने पर सुग्रीव का इसकी काँख से गिरना। इसका उन्हें मृतक समझना। इसके नाक-कान काट उनका आकाश की ओर जाना। उन्हें पकड़कर इसका पुनः पछाड़ना। लाघव से उठकर, इस पर आघात कर, उनका गमन (६।६६।५-८)। नाक-कान कट जाने पर इसे ग्लानि। इसका वह रूप देख वानर त्रस्त। इसके हाथों उनकी दुर्दशा। उनका पलायन। यह सुन राक्षस-सेना का आगमन (६।६६।९-६।६७।७)। सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण को सेना की सँभाल के लिए कहकर राम का इससे युद्ध करने के लिए प्रस्थान (६।६७।८-६।६८।१)।

राम द्वारा क्षणभर में राक्षस-सेना का संहार देख इसका क्रोध से सिंहनाद करना। पर्वत उखाड़-उखाड़कर वानर-योद्धा-समूहों पर फेंकना। राम-बाणों का इसके शरीर में प्रवेश कर दूसरी ओर से निकल जाना। इसकी देह से रुधिर-प्रवाह, 'जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे'। यह व्याकुल। कपि-भालुओं के निकट आने पर इसका कोटि-कोटि वानरों को धरती पर पटकना (६।६८।२ - ६।६९। वानरों की दृष्टि में यह दुर्भिक्ष के समान जो वानर-कुल-देश में पड़ना चाहता है (६।७०।३)। पुनः राम के बाणों से यह विद्ध। क्रोध से इसके दौड़ने पर पर्वतों का डगमगाना, धरती का हिलना। प्रहार के लिए इसका (दाहिने हाथ से) एक पर्वत उखाड़ना। राम का इसकी उस भुजा को काटना। इसके बायें हाथ से पर्वत उखाड़ने पर वह भुजा भी राम-शर से छिन्न। भुजाहीन होने पर इसका रूप पक्षहीन मन्दराचल-सा। राम को ग्रसने के लिए इसका मुँह फैलाकर दौड़ना। यह देख आकाश में सुर-सिद्ध भी त्रस्त। राम का बाणसमूह से इसके मुख को भरना। तब भी इसका दौड़ना। तीक्ष्ण शर से प्रभु द्वारा इसका मस्तक छिन्न। उसका रावण के आगे गिरना (६।७०।७ - ६।७१।५)। इसके प्रचण्ड धड़ का दौड़ना। धरती का धँसना। प्रभु का इसके दो टुकड़े करना। भालु-वानर-निशिचरों को दबाते हुए दोनों खण्डों का पर्वत की तरह भूमि पर

गिरना। इसका तेज प्रभु-मुख में समाहित (६।७१।६-८)। [यह सायुज्य-मुक्ति। वि०। महा० वन० २८७।१८-१९ में इसका वध लक्ष्मण द्वारा ब्रह्मास्त्र से।] प्रभु द्वारा इसको परमधाम दिये जाने का शिव-कथन (६।७१)। [परमधाम-प्राप्ति सालोक्य-मुक्ति। कल्पभेद होने से मुक्ति में भेद। वि०।] इसके मस्तक को हृदय से लगाकर रावण का विलाप। इसके तेज-बल का बखान कर स्त्रियों का रुदन (६।७२।४-५)। इसके वध का उल्लेख — रावण द्वारा (६।९०।६), राम द्वारा (६।११९।११)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में (७।६७ख)। अन्य उल्लेख (१।४।६, ६।२७)।

मूल शब्द — १।४।६, १।१२२, १।१७६।३, १।१७७।६, १।१८०।३, ६।२७, ६।६२।६, ६।६२।८, ६।६२, ६।६४।२, ६।६५।२, ६।६७।१, ६।६७।७, ६।६९।१, ६।९०।६, ६।११९।११, ७।६७ ख।

कुंभज — दे० 'अगस्ति''।

कुबेर — उत्तर दिशा के लोकपाल। अमर० १।८५। धनेश्वर। विश्रवा के पुत्र, पुलस्त्य के पौत्र, रावण के सौतेले भाई। दे० 'पुलस्ति'।

[इनकी तीन टाँगें, आठ दाँत, एक आँख के स्थान में पीला चिह्न। ऐसा कुत्सित बेर (वेर) अर्थात् शरीर होने के कारण ये कुबेर। आ० को०। 'कुदेह' इनका एक विशेषण। आ० को० दे० 'कु'।

जन्म से ही ये ब्राह्मणोचित गुणों से सम्पन्न। ये विश्रवा के सदृश, अतः पुलस्त्य द्वारा इनका नामकरण 'वैश्रवण'। धर्म को ही परम गति मानकर इनके द्वारा सहस्रों वर्षों तक कठोर तप। प्रसन्न होकर ब्रह्म का इन्हें इन्द्र, वरुण और यम के साथ चतुर्थ लोकपाल बनाना। धनेश्वर का पद प्रदान कर पुष्पक विमान देना। पिता की आज्ञा से इनका लंकापुरी में जाकर रहना। शीघ्र ही वह पुरी सहस्रों राक्षसों से पूर्ण। उनके राजा होकर देव-गन्धर्व-अप्सराओं से सेवित हो आनन्दपूर्वक वहाँ इनका वास। वा० रा० ७।३,अ० रा० ७।१।३७-४५। प्रहस्त से रावण का सन्देश सुनकर, पिता की आज्ञा से इनका लंका-त्याग और कैलास-गमन। वा० रा० ७।११।२६-४६।

कैलास पर इनके लिए विश्वकर्मा द्वारा 'अलका' नाम्नी दिव्य पुरी का निर्माण। अ० रा० ७।२।३६। इनका रमणीय भवन भी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित। उसके निकट ही सौगन्धिक कमलों से युक्त, हंसों, अप्सराओं से सेवित पुष्करिणी। चित्ररथ (अमर० १।७७) अथवा चैत्ररथ नामक वन। वहाँ गुह्यकों (यक्षों) के साथ इनका विहार। वा० रा० ३।३२।१५, ४।४३।२१-२३। ये नरवाहन। वा० रा०३।४८।५। गदाधारी। धन के अधिष्ठातृ देवता शंख, पद्म इनके साथ। वा० रा० ७।१५।१६।

एक बार 'रौद्रव्रत' का पालन करने के लिए इनका हिमालय के एक शिखर पर गमन। वहाँ बायीं दृष्टि से पार्वती-रूप को देखने के कारण इनका वह नेत्र दग्ध। दूसरा नेत्र पिंगलवर्ण। तब अन्य शिखर पर जाकर इनके द्वारा रौद्रव्रत का पालन। प्रसन्न महेश्वर के दर्शन। इन्हें मित्र बनाकर शंकर का कथन — इनका 'एकाक्षपिंगली' नाम चिरस्थायी रहेगा। वा० रा० ७।१३।२१-३१।

कैलास-स्थित इनके राज्य पर रावण का आक्रमण। इनकी सेना पराजित। स्वयं ये आहत। पद्म आदि का इन्हें उठाकर नन्दनवन ले जाना। विजय-चिह्न के रूप में इनका पुष्पक विमान लेकर रावण का प्रस्थान। वा० रा० ७।१४, ७।१५।

राजा मरुत्त के यज्ञ में रावण को देख भयवश ये कृकलाश (गिरगिट) के रूप में परिणत। रावण के चले जाने पर कृकलाश को इनका वरदान। ७।१८।५, ३४,३५। रम्भा के प्रति तुम्बुरु गन्धर्व की अत्यधिक आसक्ति होने के कारण उसे राक्षस होने का इनका शाप। राम द्वारा निहत होने पर स्वर्गप्राप्ति का शापानुग्रह। वा० रा० ३।४।१६-१९। दे० 'विराध'। हनुमान् को अपनी गदा से अवध्य होने का, युद्ध में विषाद-मुक्त रहने का वरदान। वा० रा० ७।३६।१६-१७।

महा० में — इनकी माता का नाम गौ। पिता पुलस्त्य को त्याग ये पितामह ब्रह्मा की सेवा में लीन। इससे पुलस्त्य को क्रोध। प्रतिकार के लिए उनके अर्धशरीर से विश्रवा उत्पन्न। विश्रवा सदा इन पर रुष्ट, किन्तु ये ब्रह्मा के प्रियभाजन। उनसे इन्हें अमरत्व, धनेशत्व, लोकपालत्व प्राप्त। महादेव से इनकी मैत्री कराके ब्रह्मा का इन्हें नलकूबर नामक पुत्र एवं पुष्पक नामक विमान देना। यक्षों का आधिपत्य और 'राजराज' का पद प्रदान करना। राक्षसों से भरी लंका को इनकी राजधानी बनाना। वन० २७४।१२-१७। इनकी पालकी को वहन करनेवाले मनुष्य,

अतः ये नरवाहन नाम से प्रसिद्ध। वन० २७५। ३।

पिता विश्रवा को प्रसन्न रखने के लिए इनके द्वारा पुष्पोत्कटा, मालिनी एवं राका नाम की राक्षस-कन्याएँ उनकी परिचारिका रूप में नियुक्त। उन कन्याओं से इनके रावणादि भाइयों का जन्म। वन० २७५। १-८। रावण द्वारा पराजित और लंका से निष्कासित होने पर इनका उसे शाप— उसका शीघ्र नाश होगा। इनसे छीना गया पुष्पक विमान उसका नहीं, उसके वधकर्ता का वाहन बनेगा। वन० २७५। ३२-३५।

महा० में इनकी पत्नी का नाम भद्रा। (आइ० एम० के अनुसार भद्रा ही ऋद्धि।) आदि० १९८। ६। भा० में इनके दो पुत्र — नलकूबर एवं मणिग्रीव। भा० १०। ६। २२-२३।]

ये यक्षपति। इन्द्र की प्रेरणा से इनके द्वारा एक करोड़ यक्ष लंका की रक्षा के लिए नियुक्त। उनका रावण-सेना को देख पलायन (१। १७६। २, ४)। एक बार रावण का इन पर आक्रमण। जीतकर इनका पुष्पक विमान ले जाना (१। १७६। ८)। अन्य लोकपालों — देवताओं के साथ ये भी रावण के अधीन (१। १८२। १०-१२; ६। ८। ३)। मन्दोदरी-विलाप में रावण द्वारा इनके विजित होने का कथन (६। १०४। ७)। अवध के निकट पुष्पक से उतरकर उसे इनके पास जाने का राम का आदेश (७। ४ख)। इनके यहाँ शिव के जाने का उल्लेख (७। ६०)।

उपमानरूप में प्रयोग — (१। २१३। ३, १। ३०६। ५, २। ५२। ५, २। ३२४। ६, ७। २८। छं०), जातिवाचक प्रयोग (७। ६२। ७)।

मूल शब्द — १। १७६। ८, ६। ८। ३, ६। १०४। ७, ७। ४ख, ७। २८। छं०, ७। ६०।

पर्याय — **जच्छपति** (यक्षपति) — १। १७६। २।

धनद — १। २१३। ३, २। ५२। ५, ७। ६२। ७ (जाति०)। धनदु — १। ३०६। ५, २। ३२४। ६।

धनधारी — १। १८२। १०।

कुलिस — प्रभु के चरण-तल के मंगलदायक चिह्नों में एक। इसके ध्यान-स्मरणादि से भक्तों का पाप-नाश। दे० 'अंकुस'।

इसका उल्लेख शिशुरूप राम के शोभा-वर्णन में (१। १९९। ३), वेदों द्वारा पदकंज-वन्दना में (७। १३। छं० ४)। 'ललित अंक कुलिसादिक चारी' (७। ७६। ७)।

मूल शब्द — १। १९९। ३, ७। १३। छं० ४। कुलिसादिक — ७। ७६। ७।

कुलिसरद (वज्रदंस्ट्र या वज्रदन्त) — निशाचर। रावण-सेना का एक योद्धा।

अकेले जग जीतने में समर्थ दुर्मुख, अकम्पन आदि राक्षस-योद्धाओं के साथ इसका उल्लेख (१। १८०)। [युद्ध में अंगद द्वारा इसका वध। वा० रा० ६। ५४। ३४।]

कुस (कुश) — राम और सीता के पुत्र।

[वा० रा० में — वाल्मीकि-आश्रम में इनका जन्म। ये और लव यमज। ये पहले उत्पन्न। भूत-बाधा-निवारण और रक्षा के लिए कुश से इनका मार्जन होने के कारण वाल्मीकि द्वारा यह नामकरण। ७। ६६।

ये और लव वाल्मीकि के शिष्य। महान् तपस्वी। दुर्धर्ष वीर। संगीत-शास्त्र में निपुण। रामायण का निर्माण कर वाल्मीकि का इन्हें अध्ययन कराना। इन्हें वह महाकाव्य कण्ठस्थ। इनके द्वारा मुनि-मंडली में उसका गान कर अभिनन्दित होना। १। ४, ७। ९६। १८। राम के अश्वमेध-यज्ञ में वाल्मीकि के साथ इनका भी आगमन। उनके आदेश से इनका भरी सभा में राम के सम्मुख रामायण का गायन। ७। ९४। वाल्मीकीय रामायण की सम्पूर्ण कथा के ये गायक और समाजसहित राम श्रोता।

राम द्वारा इनका और लव का क्रमशः दक्षिण कोसल और उत्तर कोसल के राज्य पर अभिषेक। ७। १०७। १७।

रघु० में — ये कुशावती के और लव शरावती के राजा। १५। ९७। एक रात्रि को अयोध्या की नगरदेवी का इनके कक्ष में प्रवेश। अयोध्या के उजड़ने का समाचार देकर उनका अनुरोध कि ये वहीं चलकर रहें। कुशावती वेदपाठी ब्राह्मणों को सौंपकर इनका अयोध्या-गमन। १६। ४-२५।

इनकी अनेक रानियाँ। पत्नी कुमुद्वती से उत्पन्न अतिथि इनके उत्तराधिकारी। युद्ध में इन्द्र की सहायता करते हुए इनके द्वारा दुर्जय नामक राक्षस का वध और स्वयं भी वीरगति-प्राप्ति। १६। ८४; १७। १, ५, ८।]

ये और लव सीता के पुत्र। वेद-पुराणों में वर्णित। दोनों विजयी, विनयी, गुणवान्। अत्यन्त सुन्दर, मानो प्रभु की प्रतिमूर्त्ति हों (७।२५।६-७)। [उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ। वा० रा० ७।६४।१४।]

मूल शब्द — ७।२५।६।

कुसकेतु (कुशध्वज) — ह्रस्वरोमा के कनिष्ठ पुत्र। जनक के अनुज। वा० रा० १।७१।१३। माण्डवी, श्रुतकीर्त्ति के पिता। (वंश-परम्परा के लिए दे० 'जनक')।

[ये महातेजस्वी, पराक्रमी, धर्मात्मा। जनक द्वारा सांकाश्य नगर के राज्य पर अभिषिक्त। सीता-राम-विवाह के समय जनक का इन्हें बुलवाना। वा०रा० १।७०।२,४; १।७१।१६।]

इनकी ज्येष्ठा कन्या माण्डवी का भरत से विवाह (१।१२५।छं०२)।

कृतजुग — चार युगों में प्रथम। 'क्रियते सत्यमेवानुष्ठीयतेऽस्मिन्'। ह०को०। सत्ययुग।

[ऋग्वेद के मन्त्रों में युग के कई अर्थ, किन्तु कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नामक विख्यात युगों के नाम नहीं। वहाँ 'कृत' का अर्थ कदाचित् द्यूतक्रीड़ा में पासा फेंकना अथवा विभीतक के बीजों का उत्क्षेपण (ऋ० १०।३४।६, १०।४३।५)। अथर्ववेद (७।५२।२,५,६) में भी 'कृत' का यही अर्थ। इस युग के धर्मों की उद्घोषणा मनु द्वारा (पराशरस्मृति १।२४)। उनके मत से युग काल का बँधा-बँधाया भाग नहीं। राजा अपने आचरण से एक युग की विशेषताओं को दूसरे में प्रवाहित कर सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण (३३।३) में चारों युगों का प्रयोग मानव-क्रिया के अपेक्षाकृत अधिक उपादेय स्वरूपों के रूपक के अर्थ में — 'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।' (सोया हुआ व्यक्ति कलि, उठने के लिए सन्नद्ध होते समय वह द्वापर, उठने पर त्रेता और इधर-उधर चलने पर कृत।) ध०इ०द्वि० पृ० ६८२, ६८५।

इस युग में धर्म अपने चारों चरण — तप, सत्य, दया, दान — से प्रतिष्ठित। मनुष्य धर्मनिष्ठ, शान्त, द्वेषरहित, सर्वहितैषी, समदर्शी। मन और इन्द्रियों को वश में रख ध्यानरूप तप द्वारा भगवदाराधन। इस युग में भगवान् चतुर्भुज। उनके श्रीविग्रह का रंग श्वेत। वे जटा-वल्कल-कृष्णमृगचर्म-यज्ञोपवीत-रुद्राक्षमाला-दण्ड-कमण्डलु-धारी। हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर आदि नामों से उनके गुण-लीला आदि का गान। भा० ११।५।२१-२३, १२।३।१८-१६। यह भगवान् की विभूति (अहं युगानां च कृतं। भा० ११।१६।२८।]

राम-राज्य में 'त्रेता भइ कृतजुग कै करनी' (७।२३।६)। इस युग में कलियुग के-से अधम मनुष्यों का अस्तित्व नहीं (७।४०)। सब योगी, विज्ञानी। हरि के ध्यान और योग से भव-सन्तरण (१।२७।३, ७।१०२ ख, ७।१०३।१)। [तपः कृते प्रशंसन्ति। प० पु० सृ० १८।४४०।)] राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। शुद्ध सत्वगुण, समता, विज्ञान और प्रसन्नता इस युग के प्रभाव के सूचक (७।१०४।१-२)। [सत्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः। कालसंचोदितास्ते वै परिवर्त्तन्त आत्मनि।। प्रभवन्ति यदा सत्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च। तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद् रुचिः।। भा० १२।३।२६-२७।] नाम-जप से इस युग में भी शोक-नाश (१।२७।१)।

मूल शब्द — ७।२३।६, ७।४०, ७।१०२ख, ७।१०३।१।

पर्याय — **कृत** — ७।१०४।२।

कृतांत — दे० 'जम'।

कृस्न (कृष्ण) — भगवान् के दस अवतारों में अष्टम। आ०को०। कृष्णवर्ण होने के कारण यह नाम। भा० १०।८।१३।

यदुवंश में शूरसेन ~ मारिषा > वसुदेव ~ देवकी > कृष्ण। भा० ६।२४।२७, २८,५३,५५।

[धर्म-ह्रास और पाप-वृद्धि होने पर, पृथ्वी का भार उतारने के लिए, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए बलराम-सहित इनका अवतार। इनकी आत्मस्वरूपिणी योगमाया ही इनके जन्म-कर्म का कारण। भा० ६।२४।५६-६१। वर्षाऋतु में भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को (कंस के कारागृह में) रात्रि के समय इनका प्राकट्य। वि० पु० ५।१।७७। रोहिणी नक्षत्र में। भा० १०।३।१। ('बुध-रोहिनी-अष्टमी-संगम'। सू० सा० १०।४।) इन्हें ले जाकर वसुदेव का यशोदा के पास रख आना। बलराम के साथ नन्दसुत के रूप में इनका गोकुल में लीलाएँ करना। फिर मथुरा-गमन और कंस-वध। इनके द्वारा अनेक दुष्ट राजाओं और दैत्यों का संहार। ये पाण्डवों के सहायक।

महाभारत-युद्ध में इनकी प्रधान भूमिका। उसमें अर्जुन के सारथी, गीता के उपदेशक। भा०, सू० सा०, महा० तथा अन्य कई पुराणों में इनकी मानवी लीलाएँ वर्णित। घ०इ०च० पृ० ४८२ के अनुसार छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६) में इनका उपाख्यान प्राप्त।

इनकी आठ पटरानियाँ — रुक्मिणी (लक्ष्मी-अवतार), जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी (यमुना), मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा एवं लक्ष्मणा। इनके अतिरिक्त रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ अन्य रानियाँ। प्रत्येक पत्नी के गर्भ से दस-दस पुत्र उत्पन्न। भा० १० के अन्तर्गत ५२।१६, १७; ५६।३२, ३६, ४३, ४४; ५८।२९-३२, ४७, ५६-५८; ६१।१,; वि०पु० ५।३१।१८।]

भक्तों की जिह्वा को राम-नाम के दो अक्षर उसी तरह प्रिय जिस तरह यशोदा को ये और बलराम (१।२०।८)। महि-भार-हरण के लिए यदुवंश में इनका अवतार होने पर इनके पुत्ररूप में कामदेव के जन्म-ग्रहण करने का शिव-कथन रति से (१।८८।१-२)। (दे० 'कृष्नतनय'।)

मूल शब्द — १।८८।१

पर्याय — **हरि** (राम, विष्णु, ब्रह्मा भी) — १।२०।८।

कृष्नतनय — कामावतार प्रद्युम्न। 'प्रकृष्टं द्युम्नं (कान्ति) बलं यस्य'। ह० को०।

कृष्ण ~ रुक्मिणी > प्रद्युम्न ~ (१) मायावती, (२) रुक्मी-कन्या रुक्मवती > अनिरुद्ध। भा० १०।५२।१६-१७, १०।६१।१८-१९, १०।९०।३५-३६।

[रुद्र की कोपाग्नि से भस्म कामदेव द्वारा शरीर-प्राप्ति के लिए अपने अंशी कृष्ण का आश्रय-ग्रहण। प्रद्युम्नरूप में जन्म। दस दिन के होने से पहले ही शम्बरासुर द्वारा इनका हरण। सागर में निक्षेप। ये विशाल मत्स्य के उदर में। पकड़े गये मत्स्य शम्बर के यहाँ। काटने पर एक मत्स्य के पेट में इन्हें देख रसोइये द्वारा ये दासी मायावती को समर्पित। (वि० पु० ५।२७।७ में मायावती शम्बर-पत्नी। सर्वगृहेश्वरी।) मायावती वस्तुतः रति। पति-प्राप्ति के लिए अब तक शम्बर के यहाँ रहकर प्रतीक्षारत। इन्हें पाकर प्रसन्न। रति का इन्हें आत्म-परिचय देना। इन्हें 'महामाया' नामक विद्या सिखाकर उससे शम्बरासुर को नष्ट करने का आग्रह। इनका शम्बर को ललकारना। युद्ध। अपनी महाविद्या से शम्बर की माया नष्ट कर उसका वध। रतिसहित द्वारका-गमन। इनका कृष्ण-सदृश वर्ण-रूप-वेश देख अन्तःपुर की स्त्रियों को कृष्ण का भ्रम। रुक्मिणी को अपने खोये हुए पुत्र की स्मृति। उनका वात्सल्य उमड़ना। सब कुछ जानते हुए भी कृष्ण मौन। नारद से शम्बर-सम्बन्धी वृत्तान्त सुन कृष्ण-रुक्मिणी-सहित सबको हर्ष। इन्हें और रति को हृदय से लगा सब आनन्द-मग्न। भा० १०।५५।]

कृष्णावतार में कृष्ण के पुत्ररूप में अनंग के जन्म-ग्रहण करने का शिव-कथन रति से (१।८८।२)।

केतु — सैंहिकेय राक्षस का कबन्ध। सौरमण्डल का नवाँ ग्रह। आ०को०, बृ० को०।

[विष्णु द्वारा राहु का शिरश्छेद होने पर अमृत के प्रभाव से उसके दोनों खण्ड जीवित। कबन्ध का नाम केतु। ब्रह्मा के वरदान से दोनों की गणना ग्रहकोटि में। हि० वि० को०। भा० के अनुसार राहु के सौ भाइयों का सम्मिलित नाम केतु। दे० 'राहु'।

स्क० पु० में देवरूप धारण का राहु और केतु दोनों का देवताओं के साथ अमृत-पान के लिए बैठना। विष्णु द्वारा राहु का शिरश्छेद। धूमरूप केतु का आकाश में विलयन। चन्द्रमा को सुधा समर्पित कर तिरोधान। स्क० पु० मा० १२।६२।७०। प० पु० ब्र० १० में राहु के भूमि पर गिरे मस्तक का नाम केतु।

सब ग्रहों का उदय पूर्व में, केतु का पश्चिम में। इसकी संख्या भी अनेक। ग्रहों का उदय किसी न किसी नक्षत्र पर (अश्विनी, कृत्तिका आदि) और तदनुसार उनका शुभाशुभ फल, किन्तु केतु चाहे किसी भी नक्षत्र पर उदित हो, इसका फल अशुभ। मा०पी० ७।१२१।२० व्या०। हि० वि० को० के अनुसार इसका शुभाशुभ फल इसकी स्थिति पर निर्भर। इसकी संख्या के सम्बन्ध में मतभेद। नारद-मत से केतु एक ही, किन्तु इसके रूप अनेक। धूमकेतु भी एक विशेष प्रकार का केतु (दे० 'धूमकेतु²')। हि० वि० को०।]

'लूक न असनि केतु नहिं राहू' —रावण के अंगद-प्रेरित मुकुटों के सम्बन्ध में राम-कथन (६।३२।९)। यह दुष्ट का उपमान (७।१२१।२०)। जाति० प्रयोग— राम-शर से कटी, आकाश में कहीं छायी हुई, कहीं दौड़ती हुई रावण की भुजाओं के उपमान (६।९२।१४, ६।९२।छं०)।

मूल शब्द — ६।३२।६, ६।६२।१४ (जाति०), ६।६२।छं० (जाति०)। केतू — ७।१२१।२०।

केवट¹ — नाव चलानेवाली एक जाति। वि० को०। इस जाति का एक रामभक्त जिसकी नाव पर प्रभु का गंगा पार करना।

[वि०को० के अनुसार ब्र०पु० में यह क्षत्रिय पिता और वैश्या (वैश्य की स्त्री) से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति (क्षत्रवीर्येन वैश्यायां कैवर्तः परिकीर्तिते)। वृहत्व्याससंहित में इसके दो प्रकार — (१) हालिक — हल चलाकर जीविका निर्वाह करनेवाले, उत्तम कैवर्त। (२) जालिक — मछली मारनेवाले, अन्त्यज, पतित। ये तीवर (मछुआ) के संसर्ग के कारण धीवर, नीच कर्म करने के कारण अधम। स्थानभेद से इन्हीं का नाम खेवट या मल्लाह। वि० को०।]

सुमन्त्र को लौटाकर, गंगा पार करने के लिए राम का सिय-लक्ष्मण और गुह के साथ गंगातट पर आना। [वि० के अनुसार उन्हें देखकर इनका नाव को किनारे से कुछ दूर छलका ले जाना।] उनका इनसे नाव माँगना। [अ० रा० १।६।२ में प्रभु को नाव पर चढ़ने से इनका रोकना।] इनका निवेदन — उनके मर्म से ये परिचित। उनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि कि उनके चरण-कमल की रज मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी। उस रज के स्पर्श से पाषाण भी नारीरूप में परिणत। काठ की नाव तो कोमल। उसके मुनि-पत्नी बन जाने पर ये अपने परिवार का पालन-पोषण कैसे करेंगे। जीविका का कोई दूसरा साधन भी उन्हें ज्ञात नहीं। राम और दशरथ की सौगन्ध खाकर इनका सत्य-कथन कि प्रभु के पद-प्रक्षालन किये विना ये उन्हें नाव पर नहीं चढ़ायेंगे, चाहे लक्ष्मण इन्हें वाण ही क्यों न मार दें। उनसे उतराई पाने की इन्हें चाह नहीं (२।१००।२-२।१००।छं०)। [क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्। मानुषीकरचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी।। पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि। नोचेत्तरी सत्-युवती मलेन स्याच्चेद्विमो विद्धि कुटुम्बहानिः।। अ० रा० १।६।३-४। (दृषद् = पत्थर।)] इनके प्रेमपगे वचन सुन राम का सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँसना। उनका निवेदन — ये वही करें जिससे इनकी नाव की रक्षा हो। शीघ्र उनके पाँव पखारकर पार उतार दें (२।१००-२।१०१।२)। (अपने उत्पत्ति-स्थान) प्रभु के पद-नख देख गंगा को हर्ष, उनका निहोरा सुन किंचित् मोह, किन्तु इनमें मोह का लेश भी नहीं। कठौते में जल भरकर इनका (परिवार-सहित) प्रेमानन्द-उमंग से प्रभु का पद-प्रक्षालन करना। देवताओं का इन्हें पुण्य-पुंज कहकर पुष्प बरसाना, इनके भाग्य से ईर्ष्या करना। प्रभु के पाँव धोकर इनका परिवार-सहित चरणोदक-पान करना। इस तरह पितरों का उद्धार कर प्रभु को पार ले जाना (२।१०१।५ - २।१०१)। [क० २।५-१० में इस प्रसंग की अत्यन्त हृदयग्राही व्यंजना।] उतरकर दण्डवत् करना। उतराई के रूप में सीता की मणि-मुद्रिका ग्रहण करने की प्रभु की बात सुन इनका आकुल होकर उनके चरण पकड़ना। कथन — आज इनके दोष-दुःख-दारिद्रय-दावानल का (ऐहिक-पारलौकिक दुःखों का) नाश। प्रभु के अनुग्रह से ये पूर्णकाम, कृतकृत्य। अब इन्हें कुछ नहीं चाहिए। लौटते समय प्रभु जो भी देंगे, इन्हें शिरोधार्य होगा। सीता, लक्ष्मण और फिर राम के प्रयत्न करने पर भी मुद्रिका लेना इन्हें किसी तरह स्वीकार नहीं। [वि० २।१०२ व्या० के अनुसार महात्माओं का कथन कि उस अँगूठी का मूल्य तीनों लोक। प्रभु का संकल्प भी अमोघ। इनके अस्वीकार करने पर, इन्हें निस्पृह जान] प्रभु का इन्हें निर्मल भक्ति का वरदान (२।१०२।१ - २।१०२)। [वि० २।१०२ पाद० के मत से इनमें गुण-माहात्म्य-आसक्ति, अर्थात् भगवान् के गुण और महिमा के श्रवण-कीर्तन में ऐसी आसक्ति कि अपनी सुध-बुध न रहे। यह नारद-भक्ति-सूत्र ८२ में कथित ग्यारह प्रकार की भक्तियों में प्रथम।]

इनके राम को पार ले जाने का सुमन्त्र द्वारा दशरथ से कथन (१।१५३।१)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इनके अनुराग का उल्लेख (७।६५।३)। [वा०रा० में इनका उल्लेख नहीं। राम को पार ले जानेवाले निषादराज गुह के सेवक। अ०रा० में इनका प्रसंग विश्वामित्र के साथ राम के जनकपुर जाने के समय का।]

मूल शब्द — २।१००, २।१०१।४, २।१०१।६, २।१०२।२, २।१०२।४, २।१५३।१, ७।६५।३, केवटु — २।१००।३, २।१०२।

केवट² — निषादराज गुह। दे० 'गुह'।

केहरि (केसरी) — एक वानर-यूथपति। वृहस्पति के पुत्र, हनुमान् के पिता। वा० रा० ४।३६।१८, ६।३०।२१।

[वा० रा० में — ये वानरों में श्रेष्ठ। अत्यन्त बुद्धिमान्। प्रातःकालीन सूर्य-सा इनका मुख। कमल-केसर-सदृश

देह। ४।३९।१७-१८। वानरराज कुंजर की पुत्री अंजना इनकी पत्नी। (वह पहले पुंजिकस्थला नाम्नी अप्सरा जो शापवश कपियोनि में अवतीर्ण)। हनुमान् इनके क्षेत्रज पुत्र। ४।६६।८-१०, २९। देवर्षियों की आज्ञा से इनके द्वारा शम्बसादन नामक दैत्य का संहार। ५।३५।८२। इनका निवास सुमेरु पर्वत पर। ७।३५।१९।]

रावण-दूत शुक द्वारा जाम्बवान् आदि द्वादश वानर-वीरों में इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से अतुल बल-सम्पन्न। त्रिलोक को तृण-तुल्य समझनेवाले (५।५४ - ५।५५।२)।

मूल शब्द — ५।५४।

कैकय (केकय) — एक प्राचीन जनपद, आधुनिक कक्का (कश्मीर); इस देश के एक राजा जो रानी कैकेयी के पिता। बृ० को०।

इस विश्व-विख्यात देश के राजा सत्यकेतु (१।१५३।२)।

कैकेई — दशरथ की अत्यन्त प्रिय रानी। भरत की माता।

[ये कैकयराज अश्वपति की पुत्री। युधाजित् की बहन। वा० रा० १।७३।१-२; २।९।२२। दशरथ की छोटी रानी। प० पु० उ० २४२।३६। (वा० रा० ३।१६।३७ में ये मध्यमा, वा० रा० २।७०।९ में सुमित्रा मध्यमा।) इनसे उत्पन्न पुत्र को राज्य देने की इनके पिता की शर्त को स्वीकार करने के बाद ही दशरथ का इनसे विवाह। मा० पी० १।१९०।१-४ नोट १ (३) के अनुसार सत्योपाख्यान पू० अ० ८।१३-२०। राम उस शर्त से अवगत। वा० रा० २।१०७।३। (मानस में उसका कहीं संकेत नहीं।) देवासुर-संग्राम में इन्द्र की सहायता के लिए दशरथ के स्वर्ग जाने पर ये भी उनके साथ। युद्ध में इनके द्वारा पति के प्राणों की रक्षा और उनसे वरप्राप्ति। दे० 'दशरथ'।]

दशरथ और अन्य रानियों के साथ ये पुण्य-मंगल-मूर्ति। राम की माता होने के कारण महिमा की अवधि। इनकी रचना कर विधाता को भी बड़प्पन प्राप्त। इन्हें प्रणति। इनसे कृपा-याचना (१।१६।६-८)।

अन्य रानियोंसहित ये पुनीत-आचरणा। सदा पति के अनुकूल और उनकी प्रिय। प्रभु-चरणों में इनका दृढ़ प्रेम (१।१९८)। राजा का तीनों रानियों को बुलाना। अग्निदेव से प्राप्त चरु का आधा भाग कौसल्या को देकर, आधे के दो अंश करके उनमें से एक अंश दशरथ का इन्हें देना। शेष के दो भाग करके एक कौसल्या के और एक इनके हाथ पर रखकर सुमित्रा को देना। इस तरह तीनों रानियाँ गर्भवती, आनन्दमग्न। शोभा, शील, तेज से सम्पन्न (१।१९०।१-५,७)। (राम-जन्म के बाद) इनका और सुमित्रा का सुन्दर पुत्रों को जन्म देना (१।१९५।१)।

दशरथ से जनक का पत्र तथा (धनुष-भंजन, सीता-वरण आदि की) दूसरी बात सुनकर ये अन्य माताओं सहित आनन्दमग्न। माताओं का पत्र को हृदय से लगाना (१।२९५।४-६)। (विवाहोपरान्त वधुओंसहित चारों भाइयों के अयोध्या लौटने पर राजमहल में) 'कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं।।' (१।३४५।८)। [राम को सब माताएँ कौसल्यासम प्रिय, एवं सब माताओं को भी राम वैसे ही प्रिय जैसे कौसल्या को, अतः सब माताओं के लिए 'राम महतारी' शब्द का प्रयोग। यहाँ से १।३६०।८ तक के पूरे प्रसंग में इन्हें सक्रिय पात्र मानना चाहिए, यद्यपि इनका नामोल्लेख कहीं नहीं। इस प्रसंग के लिए दे० 'कौसल्या'।]

इनकी मन्थरा नाम की एक मन्दमति दासी। सरस्वती का उसकी बुद्धि भ्रष्ट करना (२।१२)। (राम के तिलक का संवाद सुन विघ्न उपस्थित करने के विचार से) उसका रोनी सूरत बनाकर इनके निकट आना। इनके द्वारा उदासी का कारण पूछे जाने पर उसका नारिचरित्र कर आँसू बहाना। इनका हँसते हुए कथन — सम्भवतः वह लक्ष्मण द्वारा दण्डित। तब भी उसके कुछ न बोलने पर ये आशंकित। भीत होकर इनके द्वारा राम, दशरथ और लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न के सम्बन्ध में कुशल-जिज्ञासा (२।१३।५ - २।१३)। इन्हें राम के युवराज होने का संवाद देकर, (इनके मन में सपत्नी-ईर्ष्या उत्पन्न करने के लिए) मन्थरा का कथन — ये राजा को अपने वश में समझकर निश्चिन्त, किन्तु उनके कपट-चातुर्य से अनभिज्ञ। भरत के विदेश में होने का इन्हें सोच नहीं। विधाता कौसल्या के अनुकूल (२।१४।१-६)। राम के युवराजत्व का समाचार इन्हें प्रिय। इनका मन्थरा को मलिनमन जानकर ऊपर से डाँटना, तिरस्कृत करना। फिर मुसकराकर, उसे सखी कहकर, इनका कथन — यदि सचमुच दूसरे ही दिन राम का तिलक, तो ये उसे मुँहमाँगी वस्तु देंगी। राम को सब माताएँ कौसल्या-सम प्रिय, पर इन पर उनका विशेष प्रेम। इन्होंने परीक्षा करके देख लिया। इन्हें भी राम प्राणाधिक प्रिय। इनकी कामना कि विधाता पुनः जन्म दें, तो राम-सीता को इनके पुत्र-पुत्रवधू बनाने की कृपा करें। भरत की शपथ दिलाकर इनका मन्थरा से आग्रह कि वह

कपट-दुराव त्यागकर अपने क्षोभ का सच्चा कारण बतायें (२।१४।७ - २।१५)। मन्थरा का स्वयं को सत्यवादिनी प्रमाणित करते हुए गूढ़ और कपटपूर्ण वचन कहना (२।१६।१ - २।१६)। अधरबुद्धि स्त्री होने के कारण और देवमायावश इनका उसे सुहृत् समझना। उस पर विश्वास करके बार-बार आदरपूर्वक पूछना। भवितव्यतावश इनकी बुद्धि फिरना (२।१६ - २।१७।२)। [अ०रा० २।२।४५ में देवताओं का सरस्वती से कथन कि वे पहले मन्थरा में प्रवेश करें, फिर इनमें। मानस २।२०६ के 'गई गिरा मति धूति' का भी यही आशय।] अपने प्रति इनमें पूर्ण विश्वास उत्पन्न करके, इनकी मनोवृत्ति को अपने अनुकूल बनाकर, उसका कथन — अब पहले की-सी बातें नहीं। राजा इनके वशीभूत, इस गर्व के कारण ये अन्य रानियों की तरह कौसल्या की सेवा में संलग्न नहीं, अतः उनके मन में इनके प्रति सपत्नी-भाव। षड्यन्त्र रचकर उनका राजा को वश में करना। भरत को ननिहाल भिजवाकर रामाभिषेक का लग्न निश्चित कराना। मन्थरा का इन्हें अनेक सौतों की कुटिलता की कथाएँ सुनाकर, आगे की बात सोचकर अपनी चिन्ता व्यक्त करना (२।१७।१ - २।१८)। भावीवश इनका उस पर विश्वास करना। शपथ दिलाकर आगे की बात पूछना (२।१९।१)। उसका कथन — राम के तिलक की तैयारियाँ होते पन्द्रह दिन व्यतीत, पर इन्हें समाचार आज प्राप्त और वह भी उससे। [वस्तुतः आज ही सब तैयारियाँ आरम्भ और समाप्त।] दूसरे ही दिन राम का अभिषेक हो जाने पर ये कौसल्या द्वारा उसी तरह पीड़ित होंगी जैसे कद्रू द्वारा विनता। (दे० 'कद्रू', 'विनता'।) भरत बन्दीगृह में रहेंगे (२।१९।२-२।१९)। सुनकर इनका सहमना, भय से सूख जाना। वाणी मूक। शरीर में प्रस्वेद, कम्प। मन्थरा का इन्हें भाँति-भाँति की कपट-कथाएँ सुनाकर धीरज देना। इनके भाग्य का फेर! उसकी कुचाल इन्हें प्रिय। इनके द्वारा उसकी प्रशंसा। कथन— उसकी बात सत्य। इनकी दाहिनी आँख का नित्य फड़कना। प्रतिदिन रात को इन्हें दुःस्वप्न। अज्ञानवश इनका उसे न बताना (२।२०।१-६)। [स्त्रियों के दक्षिण अंग का फड़कना अपशकुन। दुःस्वप्न अनिष्ट समाचार-श्रवण का सूचक। इनका अपशकुनों के फल का मन्थरा के अनुकूल अर्थ लगाना। वि० व्या०। वस्तुतः अपशकुनों का फल अपयश और वैधव्य। मा० पी० टिप्पणी १।] उसे सखी कहकर सम्बोधित करते हुए कथन — इनका स्वभाव सीधा। मित्र-शत्रु की इन्हें पहचान नहीं। अपनी समझ में इनका अब तक किसी का अनिष्ट न करना, फिर भी न जाने किन पापों का यह फल। भले ही जीवन-भर मैके में रहना पड़े, किन्तु सौत की गुलामी ये नहीं करेंगी (२।२०।७-२।२१।२)। इनके अनेक प्रकार के दीन वचन सुन कुबरी का त्रियाचरित्र फैलाना। निवेदन — गुणी सज्ञानियों का निश्चयपूर्वक यह कथन कि भरत सत्य ही राजा होंगे। ये कहें, तो वह उपाय बतायें। उसे हितेच्छु समझकर उसके कहने से ये कुछ भी करने को, पुत्र और पति को त्यागने को भी प्रस्तुत (२।२१।३-२।२१)। उसका इन्हें वरदान-सम्बन्धी उस कथा का स्मरण कराना जो इन्होंने कभी उससे कही थी। इनके दोनों वर राजा के पास धाती के रूप में रक्षित। ये उन्हें माँग लें। एक वर भरत का राजतिलक, दूसरा राम का वनवास। किन्तु वर-याचना राजा द्वारा राम के शपथ-ग्रहण के बाद ही करें। उन पर सहसा विश्वास न कर लें। कोपभवन में जायें। रात बीत जाने पर कार्य-हानि निश्चित (२।२२।१-२।२२)। मन्थरा को प्राणप्रिय मानकर इनके द्वारा उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा। मनोरथ पूर्ण होने पर उसे आँखों की पुतली बनाने का कथन। कोपभवन में जाकर कोप का साज सजना। आभूषणों को फेंककर, मोटे पुराने वस्त्र धारण कर, भूमि पर शयन (२।२३।१-४, ७-८; २।२५।६-७)।

राजा का इनके महल में आना। इनके कोपभवन में होने का संवाद सुन सूख जाना। निकट आकर इनकी दशा देख उन्हें दारुणदुःख। इन्हें मनाने के लिए पाणिस्पर्श करना। उनका हाथ झटककर इनका क्रुद्ध दृष्टि से देखना। बार-बार 'सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि गजगामिनि' कहकर इनके रोष का कारण पूछते हुए, राम की शपथ लेकर उनका कथन कि उनका सर्वस्व इनके वश में। ये कोप और कुवेश त्यागकर भूषण धारण करें, हँसते हुए मनचाहा माँग लें। मन-ही-मन शपथ पर विचार करके इनका हँसना, उठकर आभूषणों से सजना (२।२४-२।२५।५, २।२५।८ - २।२६)। राजा से राम के युवराज होने का संवाद सुन इनके हृदय का दलकना, इन्हें असह्य पीड़ा, किन्तु इनका उसे हँसकर छिपाना। कपट-स्नेह बढ़ाकर, नेत्र-मुँह मोड़कर, कथन— उनके दिये दो वर तो अब तक इन्हें प्राप्त नहीं (२।२७।१-२।२७)। राजा का दो के बदले चार माँगने का आग्रह (२।२८।१-७)। उनकी सौगन्ध से वर पाने का निश्चय हो जाने पर इनकी याचना — वे एक वर यह दें कि भरत का राजतिलक हो, दूसरा वर यह कि राम चौदह वर्षों तक तापस वेश में विरक्त मुनियों की तरह वनवास करें (२।२८।८-२।२९।३)। राजा का

सहमना, विकल होना। वे शोच-मग्न। (२।२६।४-२।२६)। उनकी दशा देख क्रुद्ध होकर कटूक्ति करते हुए उनके सत्यसन्ध होने की प्रसिद्धि पर इनका आक्षेप करना। शिव, दधीचि, बलि के उदाहरण देना (२।३०।१-८)। उनकी दृष्टि में ये मानो खिंची हुई क्रोध की तलवार। कराल कठोर। उनका इन्हें विनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न। राम की शपथ लेकर भरत को युवराज बनाने का वचन देना, कौसल्या को निर्दोष कहना। दूसरे वरदान के सम्बन्ध में उन्हें असमंजस। इनके द्वारा उसकी याचना क्रोध में, परिहासवश अथवा सत्य? विवेकपूर्वक दूसरा वर माँगने की इनसे उनकी विनती, क्योंकि राम के बिना उनका जीना सम्भव नहीं (२।३०-२।३३।३)। सुनकर इनका और भी जलना। उनके वचनों को माया और प्रपंच कहकर इनका निर्मम निर्णय — सवेरा होते ही राम के वन न जाने पर इनका मरण और उनका दुर्यश निश्चित। यह कहकर इनका रोष से खड़े हो जाना। राजा का समझ लेना कि इनके निमित्त से उनकी मृत्यु सन्निकट। इनके चरण पकड़कर, विनय करके, उनका बैठाना। कथन — ये उनका मस्तक माँग लें, किन्तु राम के विरह से उन्हें न मारें। इनका किसी तरह न मानना। राम-राम की पुकार करते हुए उनका धरती पर गिरना (२।३३।४-२।३४)। उनकी व्याकुलता से ये अप्रभावित। इनकी मर्मभेदी उक्ति — वे या तो अपने वचन से विमुख हों, या धीरज धरें। स्त्रियों की भाँति रुदन न करें। सुनकर उनका कथन — ये उनके कालरूपी पिशाच से ग्रस्त। इनकी उक्ति वस्तुतः उस पिशाच की ही वाणी। सब कुछ पूर्ववत् हो जायेगा, किन्तु इनका कलंक और उनका पश्चात्ताप कभी नहीं मिटेगा। ये उनकी आँखों से ओझल हो जायें। जो चाहें करें। उनके जीते-जी उनसे कुछ न कहें। अन्त में इन्हें पछताना होगा। अनेक प्रकार से समझाकर उनका पृथ्वी पर गिरना, लेकिन ये कपट-चतुर होने के कारण मौन, मानो मसान जगा रही हों (२।३५।१-२।३६)। [वा०रा० २।१४।१४,१७ में राजा द्वारा भरतसहित इनका त्याग और कथन — उनके मरने पर ये और भरत उन्हें जलांजलि न दें। वा०रा० २।४२।६-८ में उनकी उक्ति — ये न उनकी भार्या, न बान्धवी। इस लोक और परलोक के लिए भी ये उनके द्वारा परित्यक्ता।]

सुमन्त्र के आने पर उनसे इनका कथन — राजा न जाने क्यों राम-राम रटते हुए रातभर अनिद्रित। सुमन्त्र शीघ्र राम को लेकर आयें, तब समाचार पूछें। सुमन्त्र का इनकी कुचाल को लक्ष्य करना (२।३८।५-२।३९।२)। ये मानो साक्षात् मृत्यु जो राजा को मारने के लिए घड़ियाँ गिन रही हों। राम का इनसे पिता के दुःख का कारण पूछना। इनका कथन — राजा के कहने पर इनका दो मनोवांछित वर माँगना, किन्तु वर देने में राजा को राम के प्रति प्रेम-संकोच छोड़ना होगा। एक ओर प्रतिज्ञा, दूसरी ओर राम-प्रेम। इस धर्मसंकट में ही उनकी यह स्थिति। राम से हो सके, तो वे आज्ञा को शिरोधार्य कर पिता को क्लेश-मुक्त करें। (देव-दानव-युद्ध से लौटते हुए वरप्राप्ति, उसे धरोहर के रूप में रखने और फिर माँगने का) सारा प्रसंग बिना संकोच के राम को सुना देना (२।३९-२।४१।४)। माता-पिता के आदेश-पालन का अवसर मिलने के कारण राम का स्वयं को भाग्यशाली समझना। अपने ही किसी अपराध को पिता के दुःख का कारण मानना। इन्हें अपनी शपथ दिलाकर सच-सच कहने का उनका अनुरोध (२।४१।५-२।४२।८)। उनकी सहज सरल बातों में भी इन्हें कुटिलता की गन्ध, किन्तु वन जाने का उनका रुख देखकर ये प्रसन्न। कपट-स्नेह व्यक्त करते हुए, उनकी और भरत की शपथ लेकर इनका कथन कि राजा के दुःख का अन्य कोई कारण इन्हें ज्ञात नहीं। राम को अपराध के अयोग्य और पितृ-मातृ-वचन-अनुरागी कहकर इनका आग्रह कि वे पिता को समझायें जिससे वृद्धावस्था में अपयश न हो (२।४२-२।४३।८)। इनसे सब प्रसंग ज्ञात होने का राम का पिता से कथन (२।४५।७-८)।

नगरवासियों द्वारा इनकी निन्दा। इन्हें वर देने के कारण किसी-किसी का राजा को दोषी ठहराना (२।४७।१-६, २।४८।२-३)। इनकी परम प्रिय विप्रवधुओं और कुलमान्य वृद्धाओं का इनके शील की सराहना करते हुए इन्हें शिक्षा देना, किन्तु उनके वचन इनके लिए बाणसम। उनका समझाना — इनका सदा यही कथन कि राम के समान इन्हें भरत भी प्रिय नहीं। तब किस अपराध के कारण राम को बनवास की आज्ञा? इनके मन में कभी सौतियाडाह नहीं। फिर कौसल्या के किस अपराध के कारण उनके साथ सारी प्रजा पर ऐसा वज्रपात? राम के जाने पर क्या सीता और लक्ष्मण (अवध में) रहेंगे? भरत राज्य करेंगे? राजा जीयेंगे? यह सब सोचकर ये शोक और कलंक की भागी न बनें। भरत को युवराज-पद अवश्य दें, किन्तु राम को वन भेजने के बदले उनके गुरु-गृह में रहने का वर माँग लें। शीघ्र शोक-कलंक-नाश का उपाय करें। राम को वन जाने से रोकें। किन्तु मन्थरा की शिक्षा के फलस्वरूप इनका सुनी-अनसुनी करना। उत्तर न देना। क्रोधभरी दृष्टि से देखना। रोग को असाध्य समझ,

इन्हें मतिमन्द अभागी कहकर, सबका गमन (२।४६।३-२।५१।२)। पुर-नर-नारियों का विलाप करना – ये राज्य करते हुए दैव द्वारा विनष्ट। उनका इन्हें गालियाँ देना (२।५१।३-४)। कौसल्या का राम से कथन – 'जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।' (२।५६।२)।

(कौसल्या से आज्ञा लेकर सिय-लक्ष्मण-सहित राम का आना। मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ भी कोपभवन में उपस्थित। राजा के बाद उनका भी सीता को वन जाने से विरत करने का प्रयत्न।) संकोचवश सीता का उत्तर न देना। यह देख इनका क्रोधावेश में उठना। मुनिपट-भूषण-भाजन (वल्कल-मालामेखलादि-कमण्डलु) लाकर राम के आगे रखकर कथन – पुण्य-सुयश-परलोक नष्ट होने पर भी राजा उन्हें वन जाने को नहीं कहेंगे। अतः स्वयं उन्हें जो अच्छा लगे, वे करें। इनके वचन राम के लिए सुखप्रद, दशरथ के लिए बाणसम (२।७९।१-६)। मुनिवेश धारण कर इन्हें और पिता को नमन कर राम का प्रस्थान (२।७९।८)।

(ननिहाल से) भरत के आने का संवाद सुन ये मुदित। द्वार पर ही आरती करके उन्हें भवन में लाना। पुत्र को शोचवश देखकर अपने नैहरवालों का कुशल पूछना। भरत के अपने कुल के कुशल-प्रश्न पर इनका नेत्रों में कपट-अश्रु भरकर कथन – इनके द्वारा सब कुछ साधित। उसमें मन्थरा सहायक। किन्तु बीच में विधाता का कुछ काम बिगाड़ना– राजा का सुरलोक-गमन (२।१५९।२-२।१६०।२)। भरत का विलाप करना। फिर धीरज धरकर पिता के मरण का हेतु पूछना। इनका प्रसन्न मन से आदि से अन्त तक अपनी करनी सुनाना। स्वयं को सारे अनर्थ का कारण समझकर भरत स्तम्भित। इनका समझाना– राजा शोकयोग्य नहीं। उनके द्वारा यथेष्ट पुण्य-यश का अर्जन और भोग। अन्त में इन्द्रपुर-प्राप्ति। अतः भरत शोक त्यागकर समाजसहित राज्य करें (२।१६०।४-२।१६१।४)। भरत का सहम जाना। इन्हें पापिनी, कुलनाशिनी कहकर धिक्कारना। सूर्यवंश में जन्म, दशरथ-से पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई उन्हें मिले, और ये उनकी माता हुईं! दुर्बुद्धि उत्पन्न होने पर इनका हृदय खण्डित नहीं हुआ! वर माँगने में पीड़ा नहीं हुई! जीभ नहीं गली! उसमें कीड़े नहीं पड़े! राजा ने इनका विश्वास कैसे किया! सबके प्राणप्रिय राम इनके शत्रु हो गये! ये सच-सच कहें, ये हैं कौन। [उनकी माँ ये नहीं, क्योंकि उनकी माँ को राम प्राणाधिक प्रिय। माँ का रूप धरे ये कोई राक्षसी या पिशची। वि० व्या०।] ये जो भी हों, मुख में कालिख लगाकर उनकी आँखों की ओट हो जायें। आत्मग्लानि से भरकर भरत के उद्गार कि (उनके पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप) विधाता द्वारा राम-विरोधी के उदर से उनका जन्म। वे स्वयं पातकी, अतः इनसे कुछ कहना व्यर्थ (२।१६१।५-२।१६२)। भरत का कौसल्या से कथन – 'कैकेयी' का जन्म ही क्यों हुआ? जनमीं तो बाँझ क्यों न हुईं? इन्हीं से उनके जैसा कुल-कलंक उत्पन्न (२।१६४।४-५)। इनकी कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न रोष-दग्ध (२।१६३।१)।

चित्रकूट में राम का माताओं में सबसे पहले इनसे मिलना। इनके चरणों में गिरकर समझाना। काल-कर्म-विधाता को दोष देना (२।२४४।६-८)। इन्हें तथा अन्य सासों को देखकर सीता का सहमना। फिर पाँव पड़कर प्रेम से मिलना। इन सबका स्नेह-विकल हृदय से आशीर्वाद देना (२।२४६।४-२।२४७।१)। ये सीता की सेवा से वशीभूत (२।२५२।२,४)। सीता और दोनों भाइयों की सरलता देखकर इन्हें अत्यधिक पश्चात्ताप। इनकी पृथ्वी और यम से याचना, किन्तु धरनी का न फटना (जिससे ये उसमें समा जायें), विधाता का मृत्यु न देना (२।२५२।५-६)। जनक का आगमन सुन इनका ग्लानि से गलना। (अपना दुःख) ये किससे कहें! किसे दोष दें! (२।२७३।१)। इनके चरणों की वन्दना करके राम का इनसे प्रेमपूर्वक मिलना। इनके संकोच और सोच को मिटाकर, पालकी सजाकर, विदा करना (२।३१९)। [अ० रा० में राम को परमात्मा और स्वयं को मायामोहित कहकर इनकी क्षमा-याचना। रक्षा की प्रार्थना। राम का समझाना– उनकी प्रेरणा से ही देवकार्य-सिद्धि के लिए इनके मुख से वैसी वाणी निःसृत। ये निर्दोष। उनके तत्वोपदेश से ये मुदित। अ० रा० २।९।५५-६९।]

चौदह वर्षों की अवधि के अन्तिम दिन शुभ शकुन। अन्य माताओंसहित इनके हृदय में स्वतः आनन्द का उद्रेक। ऐसा आभास कि अभी कोई सिय-राम-लक्ष्मण के आने की सूचना देगा (७।१।दो०३)। उनके अवध लौटने पर उनसे मिलने के लिए अन्य माताओं के साथ वात्सल्य-प्रेरित होकर इनका दौड़ना। राम से मिलते हुए इन्हें संकोच। लक्ष्मण का इनसे बार-बार मिलना, किन्तु इनके (कुछ विद्वानों के मत से लक्ष्मण के) मन का क्षोभ न मिटना। सीता द्वारा इनकी तथा अन्य सासों की चरण-वन्दना। अन्य माताओं के साथ इनका राम को निहारना।

मंगल समय जानकर नयनाश्रु रोकना। आरती उतारकर निछावर करना। ये सब परमानन्द-मग्न (७।६।९-७।७।५)। राम को ज्ञात कि ये लज्जित, अतः गृह-गमन करते हुए उनका सर्वप्रथम इनके महल में आना। इनका प्रबोध करके इन्हें अतिशय सुख देना (७।१०।१-२)। राम का अभिषेक देखकर हर्षित माताओं का आरती उतारना (७।१२।६)। सीता द्वारा इन तीनों की सेवा (७।२४।८)।

इनकी कुमति मानस-निःसृत कीर्त्तिरूपिणी सरयू नदी की काई (१।४१।८)। वृक्ष के सांगरूपक में इनकी दुर्बुद्धि भूमि (२।२३।५)। रामाभिषेक से इनके हृदय में दाह (२।२४।७)। ये निष्ठुरता की सीमा (२।३७।४)। 'पापिनि दीन्ह कुदाउ' – सुमित्रा की उक्ति (२।७३)। 'बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही।।' (२।८४।३।)। गुह द्वारा इनकी कुटिलता का कथन लक्ष्मण से (२।९१,२।९२।१)। दशरथ की मृत्यु पर सबका इन्हें गालियाँ देना (२।१५६।७)। राजसभा में वसिष्ठ द्वारा इनकी करनी का कथन। उनका भरत को समझाना कि उनके राज्य ग्रहण करने से अन्य माताओंसहित इन्हें भी सुख होगा (२।१७१।५,२।१७५।६)। ग्लानि-पीड़ित भरत द्वारा व्यंग्य से इनकी भर्त्सना (२।१८०।१-२।१८१।१, २।१८१।५, २।१८३)। 'धिग कैकई अमंगल मूला' – भरत-कथन गुह से (२।२०१।४)। शृंगवेरपुर में नर-नारियों का इन्हें दोष देना (२।२०२।३)। भरद्वाज का भरत को समझाना – दोष इनका नहीं, 'गई गिरा मति धूति'। भरत के सुयश को 'ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू' (२।२०६,२।२०८।४)। मगवासियों की उक्ति कि भरत 'कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं' (२।२२३।४)। चित्रकूट में स्वप्न में सीता को इनके तथा अन्य सासों के भिन्न (सौभाग्यहीन) रूप के दर्शन (२।२२६।५)।

मूल शब्द – १।१९०।३, १।१९०।४, २।२२।१, २।२३।४, २।२३।५, २।२९।६, २।३०।८, २।३५।३, २।३८।५, २।४०।२, २।७८।१, २।१५८।५, २।१६०।७, २।१८०।१, २।२४४।७, २।२५२।६, २।२७३।१ कैकइ – २।१२, २।३७।४, २।४७।१, २।१५६।७, २।१६४।४, २।१७१।५, २।१८०।७, २।२०२।३, २।२०६, २।२०८।४, २।२२३।४, ७।६ ख। कैकई – १।४१।८, २।२४, २।४९।३, २।८४।३, २।१८०।५, २।२०१।४, ७।६ क, ७।१०।१।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **कैकयनंदिनि** – २।९१, २।१५८।२।

कैकयसुता – १।१९५।१, २।२०।१, २।२४।७।

भरतमातु – २।१३।५, २।१४, २।१८।३, २।३१८।

राम महतारी – १।३४५।८ (तीनों रानियाँ। इसके अतिरिक्त सर्वत्र कौसल्या।)

रबिकुल जलरुह चंदिनि – २।१५८।२।

कैटभ – एक महाबली दैत्य। मधु का भाई, सहचर। दे० 'मधु'।

प्रभु के हाथों इसके वध का उल्लेख। (६।६।७, ६।४८ क)।

कैलास – हिमालय की एक चोटी। शिव और कुबेर का निवास-स्थान। आ० को०, बृ० को०।

[यह स्फटिक-निर्मित। कुमार० ९।३९। 'पाण्डुर'। वा० रा० ४।४३।२०। शिव का प्रिय धाम। अत्यन्त रमणीय। इस पर सौ योजन ऊँचा एक विशाल वटवृक्ष। इसके शिखर मणिमय। अनेक प्रकार की धातुओं के कारण उनकी छटा विविधवर्णी। यहाँ नाना प्रकार के वृक्ष-लता-गुल्म, निर्झर-कन्दरादि। अनेक कामद तरु भी। पक्षियों का कलरव। देवता-किन्नर-गन्धर्व-अप्सराओं का सदा वास। यह सिद्ध-पत्नियों का क्रीड़ा-स्थल। इसके चारों ओर नन्दा नाम की नदी प्रवाहित। भा० ४।६।८-१३, २२।

रावण के भय से लंका का त्याग कर यक्षराज कुबेर का यहाँ आकर वास। दे० 'कुबेर'। यहाँ उनकी अलका नाम्नी सुरम्य राजधानी। उस पुरी के बाहर की ओर नन्दा और अलकनन्दा नदियाँ जिनमें देवांगनाओं की जलक्रीड़ा। भा० ४।६।२३-२५। इस पर ब्रह्मा के मनःसंकल्प से प्रकट मानस-सरोवर-पावनी सरयू नदी का उद्गम। वा० रा० १।२४।८,९। मानस के निकट इसके शिखर का आकार हिन्दू मन्दिर सदृश। हि० वि० को०।]

यह शिव का 'भवन'। 'एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं' – यह संकल्प कर शिव का सतीसहित यहाँ आना। वटतले अखण्ड समाधि में लीन होना। (१।५७।२-३, १।५८।६-१।५८)। विवाहोपरान्त शिव का उमासहित यहाँ आकर वास (१।१०२।छं०, १।१०३।३-५)। यह पर्वतों में श्रेष्ठ। परम रमणीय। शंकर-पार्वती का नित्य निवास। शिव-सेवा में मग्न योगी-सिद्ध-तपस्वी-मुनि-सुर-किन्नरों का यहाँ वास। इसके ऊपर एक विशाल वटवृक्ष। वह नित्य

नवीन, सब काल में सुन्दर। वहाँ शीतल छाया, त्रिविध समीर का सुख। शिव का प्रिय विश्राम-स्थल (१।१०५।८ - १।१०५, १।१०६।२-३)। एक बार उस वृक्ष के नीचे बैठे शिव के पास पार्वती का जाना। शिव का उन्हें सादर बैठाना। उमा को अपने पूर्वजन्म की कथा का स्मरण (१।१०६।४-५, १।१०७।२-४)। (वटवृक्ष के नीचे ही शिव-पार्वती-संवाद। पार्वती के प्रश्नों के उत्तररूप में शिव द्वारा रामचरितमानस-कथन।)

कौतुक से ही रावण के इस पर्वत को उठाने का कथन (१।१७९, १।२९२।८, ६।२२ ख, ६।२५।१, ६।२८।८)। [इसे उन्मूलित करने के लिए इसके नीचे रावण का अपनी भुजाएँ लगाना। इसका हिलना। शिव का अँगूठे से इसे दबाना। रावण की भुजाओं का दबना। असह्य पीड़ा से उसका भयानक रुदन। सहस्र वर्षों तक शिव-स्तवन। शिव का उसकी भुजाओं को मुक्त कर वरदान। वा०रा० ७।१६।२३-४५। कल्प-भेद से कथा में भेद।] राम के चित्रकूट में आने पर मन्दर, मेरु आदि सहित इसके द्वारा भी चित्रकूट का यशोगान (२।१३८।६-७)। 'हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू' (२।२५३।६)। शिव का यहाँ लौट आना — राम के राज्याभिषेक के समय उनकी स्तुति करके (७।१४ ख), भुशुण्डि से रामचरित-श्रवण कर (७।५७)। शिव के कुबेर-गृह की ओर जाने पर उमा के यहाँ रहने का कथन (७।६०)।

मूल शब्द — १।५८, १।१०३।३, १।१७९, ६।२२ ख, ७।१४ ख, ७।५७, ७।६०। कैलासा — १।५८।६, १।१०३।५। कैलासू — १।१०५।८, २।१३८।६।

पर्याय — **सिव सैलु** - १।२९२।८।

हरगिरि — २।२५३।६, ६।२५।१, ६।२८।८।

कोसलपुर — दे० 'अवध'।

कौसल्या — कोसलराज-कन्या। दशरथ की पट्टमहिषी। राम की माता।

ये प्राची (पूर्व दिशा) जहाँ से रामरूपी (षोडशकलायुक्त) पूर्णचन्द्र का प्राकट्य। इनकी कीर्ति जगत्-प्रसिद्ध। इनकी वन्दना (१।१६।४-५)। दशरथ और अन्य रानियों के साथ ये पुण्य-मंगल-मूर्त्ति। राम की माता होने के कारण महिमा की अवधि। इनकी रचना कर विधाता को भी बड़प्पन प्राप्त। इनसे कृपा-याचना (१।१६।६-८)।

दो भिन्न कल्पों में इनके रूप में अदिति के जन्म और इनके पुत्ररूप में भगवान् के अवतार का कथन (१।१२३।३, १।१८७।३-५)। [१।१८७।२-५ की आकाशवाणी में मनु-शतरूपा को दिये गये वरदान (१।१५१-१।१५२।५) का भी अन्तर्भाव। वि० १।१८७।२ व्या०। प्रत्येक कल्प के रामावतार में माता-पिता सदैव कौसल्या-दशरथ ही। किसी कल्प में कश्यप-अदिति का, किसी कल्प में स्वायम्भुव मनु-शतरूपा का दशरथ-कौसल्या के रूप में प्राकट्य और पुत्ररूप में प्रभु की प्राप्ति। दे० 'अदिति', 'सतरूपा'।]

अन्य रानियोंसहित ये पुनीत-आचरणा। सदा पति के अनुकूल और उनकी प्रिय। प्रभु-चरणों में इनका दृढ़ प्रेम (१।१८८)। राजा का इन तीनों रानियों को बुलाना। अग्निदेव से प्राप्त चरु का आधा भाग इन्हें देना। चौथाई भाग कैकेयी को देकर शेष चौथाई के दो अंश करना। एक अंश इनके और एक कैकेयी के हाथ पर रखकर दोनों अंश सुमित्रा को देना। इस तरह तीनों रानियाँ गर्भवती, आनन्दमग्न। शोभा, शील, स्नेह से सम्पन्न (१।१९०।१-७)।

चैत्र मास, नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष, अभिजित् मुहूर्त्त में मध्याह्न के समय प्रभु का इनके गर्भ से प्राकट्य (१।१९१।१-२, १।१९१)। उनका शंख-चक्र-गदा-पद्म-धारी चतुर्भुज रूप देखकर इनके द्वारा सगुण ब्रह्मरूप में उनकी स्तुति। इनके उदर में उनका वास होने की अघटितघटना से इन्हें विस्मय। फिर ज्ञान। तब प्रभु का मुसकराना। (पूर्वजन्म में शतरूपा और अदिति के रूपों में प्रभु की प्राप्ति के लिए किये गये इनके तप और उनके वरदान की) सुन्दर कथा सुनाकर प्रभु का समझाना जिससे उनके प्रति इनके (ऐश्वर्य-) ज्ञान का लोप और वात्सल्य का उदय। इनकी प्रार्थना कि वे चर्तुभुजरूप छोड़कर आनन्ददायिनी शिशुलीला करें। तुरंत बालरूप होकर उनका रुदन (१।१९२।छं०१-४)। इनके प्रेम और भक्ति के वशीभूत होकर प्रभु इनकी गोद में। इनका दुलारना। उनका शिशुलीला करना। प्रेम में ये समय की गति से अनभिज्ञ (१।१९८।८, १।१९८, १।१९९, १।२००।८, १।२००)। एक बार प्रभु को स्नान कराके इनका पालने में लिटाना। फिर अपने कुल के इष्टदेव (श्रीरंग = विष्णु) की पूजा कर नैवेद्य चढ़ाकर इनका अन्यत्र जाना। लौटकर पुत्र को नैवेद्य खाते देख, भयभीत हो इनका पालने में देखना। वहाँ पुत्र को सोये देख पुनः लौटना। यहाँ भी पुत्र उपस्थित। इनके हृदय में कम्प। वही पुत्र पालने में निद्रित, यहाँ जाग्रत! यह

इनका मतिभ्रम या कुछ और? इन्हें व्याकुल देख प्रभु का मुसकाना (१।२०१।१-८)। अपने अद्‌भुत विराट् रूप के दर्शन कराना। देखकर ये भयभीत। वाणी अवरुद्ध। नेत्र मूँदकर इनका प्रभु के चरणों में नमन। प्रभु का पुनः शिशुरूप धारण करना। भयवश ये स्तुति करने में भी असमर्थ। जगत्-पिता को इन्होंने पुत्र समझ लिया! तब प्रभु का अनेक प्रकार से इन्हें समझाना (जैसे जन्म के समय समझाया था)। उनका कथन — इस बात की (उनके ऐश्वर्य-रूप-दर्शन की) चर्चा ये किसी से न करें। इनकी करबद्ध बिनती — अब कभी उनकी माया इन्हें न व्यापे (१।२०१--१।२०२)।

दशरथ से जनक का पत्र और (धनुष-भंजन, सीता-वरण आदि की) दूसरी बातें सुनकर ये अन्य माताओं सहित आनन्दमग्न। माताओं का पत्र को हृदय से लगाना (१।२९५।४-६)। (विवाहोपरान्त चारों भाइयों के वधुओं-सहित लौटने पर) 'कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं।।' अन्य माताओं के साथ इनके द्वारा गणेश-महादेव का पूजन, दान। बन्धुओंसहित पुत्रों का परछन — आरती। वेदविधि और कुलरीति सम्पन्न कर अर्घ्य पाँवड़े देते हुए पुत्रोंसहित वधुओं को घर लाना (१।३४५।८-१।३४६; १।३४८-१।३४९।४; १।३४९)। चारों जोड़ियों का धूप-दीप-नैवेद्य द्वारा पूजन। आरती, निछावर। इस समय इन तीनों को जो सुख, वह अन्यत्र अलभ्य (१।३५०।१-१।३५० क)। लोकरीति-पालन। देव-पितर-पूजन। आँचल पसारकर अन्तर्निहित देवताओं का आशीर्वाद लेना (१।३५० ख - १।३५१।३)। गुरु-चरण-वन्दना (१।३५२)। राजा के मुख से जनक के गुण-शील आदि का बखान सुन ये तीनों आनन्दित (१।३५४।७-८)। राजा का वधुओं को अतिशय स्नेहपूर्वक रखने और पुत्रों को शयन कराने का इनसे कथन (१।३५५।७ - १।३५५)। राम के अलौकिक कृत्यों को इनका विश्वामित्र की कृपा मानना। अपने जीवन को सफल कहना। राम द्वारा माताओं का परितोष (१।३५६।१-१।३५७) विश्वामित्र के बिदा होने के समय राजा और पुत्रों के साथ माताओं का भी उनके चरणों में गिरना (१।३६८।८)।

राम के युवराज होने का संवाद सुन ये आनन्दमग्न। इनके द्वारा विप्रों को दान। ग्राम के देवी-देवता और नागों का पूजन। पुनः बलिभाग देने की (कार्य सफल होने पर पूजा करने की) मनौती। याचना — वे ऐसा वर दें जिससे राम का कल्याण हो (२।८।४-६)।

मन्थरा का कैकेयी को सिखाना — विधाता इनके अनुकूल। चतुर और गम्भीर होने के कारण इनका अवसर पाते ही काम बनाना। भरत को ननिहाल भेजने में इन्हीं का हाथ। पति-प्रेम के बल पर गर्वित कैकेयी दूसरों की भाँति इनकी सेवा में संलग्न नहीं, अतः सपत्नी-भाव से प्रेरित होकर इनका प्रपंच रचना — रामाभिषेक के लिए लग्न निश्चित कराना। राम का तिलक होने पर ये उन्हें उसी तरह पीड़ित करेंगी जैसे कद्रू ने विनता को किया। सुनकर कैकेयी का निश्चय कि वे जीते-जी इनकी गुलामी नहीं करेंगी (२।१४।३; २।१८।१-६,८; २।१९; २।२१।१)। दशरथ की इन्हें निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा। इस पर कैकेयी का इनकी सज्जनता पर व्यंग्य। इन्हें इनके किये का अविस्मरणीय फल देने का उनका कथन (२।३२।१, २।३३।७-८)। उन्हें विप्रबंधुओं और वृद्धाओं का समझाना — इनके किस अपराध के कारण उनके द्वारा इन पर और सारी प्रजा पर वज्रपात? (२।४९।७-८)।

वन जाने से पूर्व इनके निकट आकर राम का इनके चरणों में नमन। उन्हें आशीर्वाद देकर इनका हृदय से लगाना, गोद में बैठाना। इनके नेत्रों में प्रेमाश्रु, शरीर पुलकित। वात्सल्य का उमड़ना। इनका उनसे तिलक का लग्न पूछना (२।४६।४; २।५२। १-२।५३।२)। राम का विनीत निवेदन — पिता का उन्हें चौदह वर्षों के लिए वनवास का आदेश। ये स्नेहवश भीत न हों। इनके अनुग्रह से वन में भी आनन्द। मुदित मन से ये आज्ञा दें (२।५३।३ - २।५३)। सुनकर इनका सहमना। हृदय में विषाद। शरीर में कम्प। धीरज धरकर वनवास की आज्ञा का कारण पूछना। सचिव-सुत से सब प्रसंग सुनकर ये मूकवत्। राम को रोकने से धर्महानि और बन्धु-विरोध, आज्ञा देने में स्नेह की बाधा। उभयसंकट में धैर्यपूर्वक स्त्री-धर्म का विचार कर (राम और भरत को समान समझ) इनका कथन — पिता की आज्ञा सब धर्मों में श्रेष्ठ, किन्तु राम के बिना भरत, राजा और प्रजा को क्लेश होगा। यदि केवल पिता की आज्ञा, तो माता को पिता से बड़ी जानकार वे न जायें। यदि माता (कैकेयी) - पिता दोनों की आज्ञा, तो वन उनके लिए शत अवध-सम सुखदायी हो। [पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा। वि० २।५६।१-२ व्या०।] वनदेवी-वनदेवता उनकी रक्षा करेंगे (२।५४।१ - २।५६।४)। इनकी दुखभरी उक्ति — उनका वनगमन सुनकर इनका केवल बैठे-बैठे पछताना! (प्राण न निकलना, अतः इनका स्नेह झूठा।

वि०) उनके साथ जाने का आग्रह करने पर उन्हें सन्देह होगा, अतः मिथ्या स्नेह बढ़ाकर हठ करना व्यर्थ। वे माता का सम्बन्ध मानकर इन्हें भूल न जायें। वन में देवता, पितर, ईश्वर उनकी रक्षा करें। वनवास की अवधि सबके जीवन की अवधि; उसके समाप्त होते-होते वे लौटने का उपाय करें। फिर हृदयोद्गार को रोकने में असमर्थ हो आक्षेप के साथ इनकी आज्ञा — वे सबको अनाथ करके सुखपूर्वक वन जायें। आज सबके पुण्यफल समाप्त। काल विपरीत। इनके हृदय में दारुण दाह। इनका स्वयं को परम अभागिन कहना। विलाप करते हुए राम के चरणों में लिपटना। राम का इन्हें उठाकर हृदय से लगाना, समझाना (२।५६।५ - २।५७।८)। इसी समय आकुल सीता का आगमन। इनके चरणों में नमन कर सिर झुकाकर बैठना। उनकी चिन्ता और नयनाश्रु देख इनका समझ जाना कि वे भी राम के साथ जाने को उत्सुक। उनके पिता, श्वसुर, पति की महिमा कहकर इनके द्वारा उनके रूप-गुण-शील की प्रशंसा। कथन — वे सबकी प्रिय, इनकी प्राणप्रिय। संजीवनी बूटी की तरह इनके द्वारा उनकी रक्षा। कल्पलता की भाँति प्रेम से उनका पालन। अब उनके फलने-फूलने के समय विधाता वाम। वे अत्यन्त कोमल, सुकुमार, भीरुस्वभाव। वन के योग्य नहीं। वे घर पर रहें, तो इन्हें सहारा मिलेगा। यह विचारकर राम की जैसी आज्ञा हो, वैसी शिक्षा ये सीता को दें (२।५७ - २।६०।७)। राम का इन्हें परितुष्ट करना। सीता से कथन — 'सुमुखि मातु हित राखउँ तोही'। उनका सीता को प्रबोधन (२।६०।८ - २।६३)। इनके पाँव पड़कर सीता की करबद्ध विनती कि ये उनकी अविनय क्षमा करें। उनकी दृष्टि में पति-वियोग के समान कोई दुःख नहीं (२।६४।१-७)। राम से सीता का पातिव्रत्य-निवेदन। राम का उन्हें साथ चलने की अनुमति देना (२।६४-२।६८।४)। विदा होने के समय राम की इनके चरणों में प्रणति। इनका आशीर्वाद देकर कथन — वे शीघ्र लौटकर प्रजा का दुःख दूर करें। स्वयं को निष्ठुर और विस्मरण-योग्य कहकर इनका आग्रह कि वे इन्हें भूल न जायें। उस सुन्दर जोड़ी के दर्शन के लिए, प्यारभरे नामों से राम को पुनः सम्बोधित करने के लिए, चौदह वर्षों तक ये जीवित रहेंगी। इन्हें स्नेह-कातर, विकल देखकर राम का समझाना (२।६८।५-२।६९।२)। सीता का इनके पाँव पड़कर कथन — इनकी सेवा से वंचित होने के कारण वे अभागी। किन्तु दोष उनका नहीं। कर्मगति प्रबल। व्याकुल होकर इनका बार-बार उन्हें हृदय से लगाना। धीरज धरकर शिक्षा और आशिष देना (२।६९।३-२।६९)।

अवध लौटते हुए मार्ग में सुमन्त्र का सोच — इनके पूछने पर वे कहेंगे कि सिय-राम-लक्ष्मण वन चले गये! (२।१४६।३-४)। उनकी विकलता देख दासियों का उन्हें इनके महल में लाना (२।१४८।३)। [वा०रा० में कैकेयी का परित्याग करके दशरथ का इनके महल में जाना। वा० रा० २।१४।१४, २।४२।६-८, १०, २६-२८।] (सुमन्त्र से सिय-राम-लक्ष्मण के वन जाने का प्रसंग सुनकर दशरथ की स्थिति विषम।) राजा की दशा देख इनका समझ जाना कि उनका अन्तकाल निकट। उनकी मानसिक पीड़ा को कम करने के लिए धीरज धरकर इनका उन्हें समझाना (२।१५४।३-८)। इनके कोमल वचन सुन उनका आँखें खोलना। इन्हें अंधे तापस के शाप की कथा सुनाना। अपने रामरहित जीव को धिक्कारते हुए इनके सामने ही उनका सुरधाम-गमन (२।१५४-२।१५५)।

भरत-शत्रुघ्न का इनके पास आना। ये मलिनवसना, विवर्ण, शोकविकल, कृश। भरत को देख उनसे मिलने के लिए इनका उठकर दौड़ना। दुर्बलता के कारण चक्कर आने से गिरकर मूर्च्छित होना। इन्हें देखकर भरत विकल। उनका इनके चरणों में गिरना। इनसे पिता को दिखा देने का आग्रह। (वि० के अनुसार पिता से तात्पर्य पिता का शव जो इन्हीं के महल में।) राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में उनकी जिज्ञासा। स्वयं को इनके दुःख और सब अनर्थ का कारण कहकर धिक्कारना। इनका सँभलकर उठना। भरत को उठाकर हृदय से लगाना, मानो राम मिल गये हों। फिर शत्रुघ्न से मिलना। इनके सरल स्वभाव की सबके द्वारा प्रशंसा (२।१६३।८-२।१६५।३)। इनका भरत को गोद में बैठाकर उनके आँसू पोंछना। समझाना — वे कुसमय समझकर धीरज धरें। काल-कर्म की गति को अनवरोध्य मानकर शोक और ग्लानि त्यागें। किसी को दोष देना व्यर्थ। वस्तुतः विधाता इनके प्रतिकूल। इनकी आँखों के सामने राम के साथ सीता और लक्ष्मण का वन-गमन, किन्तु इनके प्राणों का न निकलना। आत्म-भर्त्सना करते हुए इनका कथन कि ये राम की माता होने के अयोग्य। इनका हृदय शत कुलिश के समान (२।१६५।४-२।१६६।८)। इनके वचन सुन भरत-शत्रुघ्न का विलपना। इनका उन्हें हृदय से लगाकर समझाना (२।१६६-२।१६७।२)। स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए भरत का अनेक शपथें लेना (२।१६७।४ - २।१६८।८)। इनके द्वारा उनकी निर्दोषता का अनुमोदन। इस तरह विलाप करते रात्रि व्यतीत (२।१६८-१।१६९।६)।

राजसभा में वसिष्ठ का भरत से कथन कि उनके राज्य-ग्रहण करने से अन्य माताओंसहित इन्हें भी सुख

होगा। इनका भरत को गुरु-आज्ञा-पालन करने के लिए समझाना। सुनकर भरत व्याकुल (२।१७५।६; २।१७६।१-२।१७६।छं)। इनकी सरलता और अपने प्रति इनके विशेष प्रेम का उनका कथन (२।१८१)। (चित्रकूट जाने का निश्चय हो जाने पर राज्य की व्यवस्था करके) भरत का इनके पास आना। माताओं को आर्त्त समझकर पालकी आदि सजाने का उनका आदेश (२।१८६।८, २।१८६)। चित्रकूट जाते समय भरत के निकट पालकी ठहराकर उनसे इनका कथन — वे रथ पर सवार हों, उनके पैदल चलने पर सब पैदल चलेंगे। भरत द्वारा आज्ञापालन (२।१८८।४-७)। शृंगवेरपुर में माताओं का गंगा-स्नान। भरत का इनके पास आकर इनके पाँव दबाना। शत्रुघ्न को माताओं की सेवा का भार सौंपना (२।१९७, २।१९८।२-४)। माताओं की पालकियों के आगे निषादराज का चलना (२।२०३।१)।

चित्रकूट में राम-लक्ष्मण का प्रेमाकुल होकर इनके चरणों में गिरना। इनका उन्हें हृदय से लगाना। उस समय का हर्ष-विषाद अकथनीय (२।२४४।६, २।२४५।४-७)। इन्हें तथा अन्य सासों को देखकर सीता का सहमना। फिर पाँव पड़कर प्रेम से मिलना। इन सबका स्नेह-विकल हृदय से आशीर्वाद देना (२।२४६।४-२।२४७।१)। ये सीता की सेवा के वशीभूत (२।२५२।२-४)। भरत का सोच — इनके कहने से राम लौट सकते हैं, पर ये क्या कभी हठ करेंगी! (२।२५३।४)।

(दशरथ की मृत्यु पर समवेदना प्रकट करने के लिए) सुनयना आदि के आने पर इनके द्वारा उनका सम्मान। दोनों पक्ष की रानियों में अत्यधिक शील-स्नेह। सब शोक-मग्न (२।२८१।३-७)। (जो कुछ हुआ, उसके लिए) सुनयना का विधाता पर आक्षेप करना। सुमित्रा द्वारा उनका अनुमोदन (२।२८१।८ - २।२८२।२)। इस पर इनके द्वारा कर्म-विपाक का कथन — दोष किसी का नहीं। सबके ऊपर ईश्वराज्ञा। विधाता तो केवल शुभाशुभ कर्मों के फलदाता। राजा की मृत्यु का सोच स्वार्थ की हानि होने के कारण। सुनयना का इन्हें पुण्य-अवधि कहकर इनकी वाणी को सत्य मानना। (२।२८२।३-८)। इन्हें सिय-राम-लक्ष्मण के वनगमन का सोच नहीं; उसका परिणाम तो शुभ। सोच भरत का। जीवन में पहली बार राम की शपथ लेकर इनका कथन — 'भरत सील गुन विनय बड़ाई भायप भगति भरोस भलाई' सरस्वती द्वारा भी अवर्णनीय। इनके द्वारा सुनयना की प्रशंसा और निवेदन — वे अवसर देखकर अपनी ओर से जनक को समझाकर कहें कि लक्ष्मण के स्थान पर भरत वन जायें। भरत के गूढ़ राम-प्रेम के कारण उनके घर पर रहने में भलाई नहीं। इनकी सरल वाणी सुन सब रानियाँ करुण रस-मग्न। आकाश से पुष्पवर्षा और धन्य-धन्य की ध्वनि। सिद्ध-योगी-मुनि (जिन्हें दूर-श्रवण की सिद्धि) स्नेह-शिथिल (२।२८२-२।२८४।६)। सुमित्रा के संकेत पर इनका पुनः निवेदन — सुनयना अब शीघ्र लौटें। इन्हें तो ईश्वर का भरोसा या मिथिलाधीश का। सुनकर सुनयना का इनके चरण पकड़कर कथन — ऐसी विनय इनके अनुरूप। इनके वास्तविक सहायक तो महेश-भवानी। महाराज मनसा-वाचा-कर्मणा सेवक। उनके अनुरोध पर सीता को साथ ले जाने की इनकी अनुमति (२।२८४।७ - २।२८५)। दुःख-सुख को सम जानकर इनका विषादग्रस्त रानियों को राम के गुण कहकर समझाना (२।३०६।७)। बिदा के समय सीता का इनसे तथा अन्य सासों से मिलना। राम द्वारा प्रबोधन। दोनों भाइयों का पालकी पर चढ़ाकर पहुँचाना (२।३२०।२, ४-५)।

चौदह वर्षों की अवधि के अन्तिम दिन शुभ शकुन। अन्य माताओंसहित इनके हृदय में स्वतः आनन्द का उद्रेक। ऐसा आभास कि अभी कोई सिय-राम-लक्ष्मण के आने की सूचना देगा (७।१।दो० ३)। उनके अवध लौटने पर उनसे मिलने के लिए अन्य माताओं के साथ वात्सल्य-प्रेरित होकर इनका दौड़ना। राम का, फिर लक्ष्मण का इन तीनों से मिलना। सीता द्वारा इनकी तथा अन्य सासों की चरण-वन्दना। अन्य माताओं के साथ इनका राम को निहारना। मंगल-समय जानकर नयनाश्रु रोकना। आरती उतारकर निछावर करना (७।६।६, छं०; ७।६ ख - ७।७।५)। इनके मन में विचार — दोनों भाई अति सुकुमार। उन्होंने महाभट रावण और राक्षसों को कैसे मारा! सिय-लक्ष्मण-सहित राम को देखते हुए ये परमानन्द-मग्न (७।७।६-७।७)। (मनुष्य-शरीरधारी) विभीषण-सुग्रीव-हनुमान् आदि का इनके चरणों में नमन। आशीर्वाद देकर इनका कथन कि वे इन्हें राम के समान प्रिय (७।८ क)। राम का अभिषेक देखकर हर्षित माताओं का आरती उतारना (७।१२।६)। सीता द्वारा इन सबकी सेवा (७।२४।८)।

'तसि पुनीत कौसल्या देवी' — वसिष्ठ-कथन दशरथ से (१।२६४।४)। चित्रकूट में सीता का स्वप्न में इन्हें

तथा अन्य सासों को भिन्न (सौभाग्यहीन) रूप में देखना (२।२२६।५)। चित्रकूट की पहली सभा में भरत-कथन — 'देखि न जाहिं बिकल महतारीं' (२।२६२।२)। 'कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी' (२।१५।५)। शिशुलीला-प्रसंग में इनके सम्बन्ध में कथन (१।२०३।७, ७।८८।६-८)। जातिवाचक रूप में प्रयोग (७।८१।७)।

मूल शब्द — १।१६।४, १।१२३।३, १।१८७।४, १।१९०।२, १।१९०।४, १।१९२।छं०, १।१९८, १।२००, १।२०२, १।२०३।७, १।२९४।४, २।१५।५, २।४९।८, २।१४८।३, २।१५४।३, २।१५५।४, २।१६३।८, २।१६६, २।१६७।१, २।१७६।१, २।२८१।४, २।२८२।३, २।२८३, ७।७।६, ७।८ क, ७।८१।७ (जाति०)। कौसल्यादि (कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी)— १।१८८, १।१९०।१, १।३४५।८, २।१७५।६, ७।१।दो० ३, ७।६।६, ७।२४।८,। कौसिला — २।१९, २।३३।८, २।२८२। कौसिल — २।१४।३, २।१८।४।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **अवधपति रानी** — २।२८२।८।

दसरथ घरिनि — २।२८५।२।

राम जननि — २।७९।५, २।१४६।३, २।२५३।४।

राम महतारी — १।३४५।८ (तीनों माताएँ), २।८।४, २।१८।१, २।५५।७, २।५८।७, २।१५४।४, २।२८५।२।

राम मातु — २।१८।२, २।३२।१, २।३३।७, २।१६५।३, २।१८१, २।१८६।८, २।१८८।४, २।१९८।२, २।२८४।८, २।३०६।७, २।३२४।१।

कौसिक — दे० 'बिस्वामित्र'।

खगेस — दे० 'गरुड़'।

खर — एक महाबली राक्षस। शूर्पणखा, दूषण, त्रिशिरा का भाई।

[यह ब्रह्मद्रोही। धनुर्विद्या में विशेष पराक्रमी। महा० वन० २७५।१२। रावण द्वारा चौदह हजार कामरूप राक्षसों के अधिपति-रूप में नियुक्त। दण्डकारण्य का रक्षक। दूषण इसका सेनापति। वा० रा० ७।२४।३६-४२।]

कर्ण-नासिका छिन्न होने पर शूर्पणखा का इसके और दूषण के पास आकर इनके बल-पौरुष को धिक्कारना। उससे सब वृत्तान्त सुनकर, उसको आगे कर, इनका (चौदह हजार मायावी असुरों की। ३।२०।छं० ४) सेना के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान। उस समय अनेक अपशकुन (३।१८।१-९)। राम के अनुपम रूप को देख इसका और दूषण का उन्हें वध के अनुपयुक्त मानना। सचिव के हाथ सन्देश-प्रेषण — वे अपनी छिपायी हुई स्त्री को देकर सानुज लौट जायें (३।१८ - ३।१९।७)। राम का चुनौतीभरा उत्तर सुनकर इसे और दूषण को क्रोध। राम को पकड़ने का असुरों को आदेश। राम के धनुष की टंकार से राक्षस त्रस्त (३।१९।१४ - ३।१९। छं०)। उनका पलायन देख इसे और इसके दोनों भाइयों (दूषण एवं त्रिशिरा) को क्रोध। रण-विमुख होनेवालों का अपने हाथों वध करने की इनकी चेतावनी। भयंकर युद्ध। सेना को व्याकुल देख ये तीनों भाई राम की ओर अभिमुख। युद्ध में राम की लीला से सेनासहित इनका एम-दूसरे को रामरूप देखकर आपस में लड़कर प्राणान्त। राम-राम (अर्थात् राम है, इसे मारो) कहते हुए शरीर-त्याग। मोक्षपद-प्राप्ति (३।१९ क - ३।२० क)।

इसका और दूषण का नाश देख शूर्पणखा का रावण के पास गमन (३।२१।५)। इन तीनों (खर, दूषण, त्रिशिरा) का वध सुनकर रावण को क्रोध (३।२२।११-१२)। एकान्त में उसका चिन्तन — 'खर-दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।' (३।२३।२)। उल्लेख — इसके और दूषण के वध का (६।३६, ६।९०।५, ७।५१।५, ७।६६।४), इन तीनों भाइयों के वध का (३।२५, ५।२१।६)।

मूल शब्द — ३।१८।२, ३।१९।२, ३।१९।१४, ३।२०।छं० २, ३।२१।५, ३।२२।११, ३।२२।१२, ३।२३।२, ३।२५, ५।२१।६, ६।३६, ६।९०।५, ७।५१।५, ७।६६।४।

गंगा — ('गां गता', अर्थात् जो पृथिवी की ओर गयी हो। ध० इ० तृ० पृ० १३२२।)

हिमवान् और मेना की पुत्री, उमा की बड़ी बहन। वा० रा० १।३५।१५-१६।

द्रव की अधिष्ठात्री देवी, विष्णुप्रिया। विष्णुपदी। ब्र० पु० प्र० १०-१२। [(१) (क) स्कन्द-गणेश-जन्म में सहायिका — देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए, उनकी याचना पर, हिमवान् का गंगा को उन्हें अर्पित करना। **प्रथम**

इनका आकाशमार्ग में गमन, फिर रमणीया देवनदी के रूप में सुरलोक में ये प्रतिष्ठित। वा०रा० १।३५।१७-१८, २३-२४। अग्नि के कहने पर शिव-तेज को धारण करने के लिए इनका दिव्य रूप धरना। अग्नि द्वारा वह तेज इनमें स्थापित। उससे इनके सारे स्रोत परिपूर्ण। किन्तु उस तेजाग्नि को धारण करने में असमर्थ हो, अग्नि के परामर्श से, इनका गर्भ को हिमालय के पार्श्वभाग में स्थापित करना। उससे देवसेनापति स्कन्द का जन्म। वा०रा० १।३७।

पार्वती के शरीर की मैल से बने गणेश का इनके द्वारा पालन-पोषण। इसीलिए उनका एक नाम गांगेय। दे० 'गनेस'।

(ख) देवव्रत (भीष्म)-जननी — एक समय ब्रह्मा-सभा में वायु के झोंके से इनका शशिप्रभा-सा वस्त्र सहसा ऊपर की ओर उठ जाने पर देवताओं का सिर झुका लेना, किन्तु महाभिष का निःशंक देखते रहना। उन्हें ब्रह्मा-शाप — मनुष्य-लोक में जन्म ले वे पुनः पुण्यलोक में आयें; उनका चित्त-हरण करनेवाली गंगा मनुष्य-लोक में उनके प्रतिकूल आचरण करें। महाभिष का निश्चय — राजा प्रतीप के पुत्र-रूप में जन्म लेने का। वसिष्ठ-शाप से मर्त्यलोक की ओर गिरते हुए वसुओं को गंगा का वचन देना — प्रतापी-पुत्र शान्तनु की भार्या बन ये वसुओं की माँ बनेंगी; जन्मते ही उनका जल-प्रवाह कर उनके तेजांश से उत्पन्न एक पुत्र राजा को सौंपिंगी।

पूर्व योजनानुसार एक दिन स्वाध्यायलीन राजर्षि प्रतीप की दाहिनी जाँघ पर इनका जा बैठना और समागम-याचना करना। किन्तु दक्षिण जाँघ पुत्र, पुत्री तथा पुत्रवधू का आसन होने के कारण इन्हें कामिनीरूप में नहीं, पुत्रवधू रूप में स्वीकार करने का राजा का वचन। पश्चात् एक दिन वन में विचरते शान्तनु के समक्ष इनका प्रकट होना, परस्पर आकर्षण और विवाह, इस शर्त पर कि इनके किसी कार्य के सम्बन्ध में उनके पूछने, बाधा देने या अप्रिय वचन कहने पर ये उनका त्याग करेंगी। उनसे इनके क्रमशः सात पुत्रों का जन्म और इनके द्वारा उनका गंगा-प्रवाह। शान्तनु दुखी, पर वचनबद्ध। आठवाँ पुत्र होने पर इस तरह पुत्र-हत्या के सम्बन्ध में इनसे उनकी जिज्ञासा। तब इनके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त-कथन। नवजात शिशु का नामकरण देवव्रत और गंगादत्त। बड़े होने पर बालक को लौटाने का वचन दे उसके सहित ये अन्तर्धान। पश्चात् प्रकट हो पुत्र शान्तनु को समर्पित करना। महा० आदि० ९६-९९; १००।३०-४०।

(ग) विष्णु-पत्नी — लक्ष्मीस्सरस्वतीगंगा तिस्रो भार्या हरेरपि। सरस्वती के शाप से ये नदीरूपा। ब्र०पु०प्र० ६। (दे० 'लच्छि')।

(२) (क) ब्रह्मद्रव, विष्णुपदी, भगवत्पदी — कार्तिक पूर्णिमा को गोलोक में आयोजित राधा-महोत्सव में शंकर के गान से कृष्ण-राधा जलमय। यह जलमय विग्रह ही गंगा। ये द्रव की अधिष्ठात्री देवी। श्वेत चम्पकवर्णा। (मकरारूढ़ा, कलश-कमल-धारिणी। अ०पु० ५०)। कामनाभरी दृष्टि से निर्निमेष कृष्ण की ओर देखने के कारण इन पर राधा का रोष। भय से ये जल में अन्तर्धान। राधा द्वारा अंजलि से जलरूप में इनका पान आरम्भ। ये कृष्ण के चरण-कमल में लीन। राधा के लिए भी अदृश्य। सब लोकों में जल-शून्यता, हाहाकार। विष्णु-महेश के साथ ब्रह्मा का कृष्ण-शरण में जाना। कृष्ण-कथन —राधा से अभय मिलने पर ही इनका प्राकट्य सम्भव। ब्रह्मा द्वारा राधा-स्तुति। राधा की प्रसन्नता। तब कृष्ण के चरणांगुष्ठ के नखाग्र से इनका प्राकट्य। ये 'विष्णुपदी', क्योंकि विष्णु कृष्ण के ही अर्धांग। इनके जल को ब्रह्मा का कमण्डलु में रखना, शिव का मस्तक पर धारण करना। ब्रह्मा द्वारा ये विष्णु को समर्पित। कृष्ण-आदेश से गोलोक, वैकुण्ठ आदि विभिन्न लोकों में इनका स्थान। ब्र०पु०प्र० १०-१२।

भा० में राजा बलि की यज्ञशाला में त्रिलोकी को नापने के लिए यज्ञमूर्ति विष्णु के पैर फैलाने पर उनके वाम-पदांगुष्ठ-नख से ब्रह्माण्डकटाह का ऊपर का भाग फटना। उस छिद्र में होकर ब्रह्माण्ड से बाहर की जलधारा का आना, विष्णु के चरणकमल धोकर धन्य होना। ये ही 'भगवत्पदी' — चरणकमल के केसर से लाल। इनकी धारा से संसार के पाप नष्ट, ये सर्वथा निर्मल। कालान्तर में इनका 'विष्णुपद' ध्रुवलोक में उतरना। 'कुलदेवता का चरणोदक' मानकर ध्रुव का इन्हें मस्तक पर चढ़ाना, 'तपस्या की आत्यन्तिक सिद्धि' मान सप्तर्षियों का जटाजूट पर धारण करना। वहाँ से आकाश में होकर इनका उतरना और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करते हुए मेरुशिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरना। भा० ५।१७।१-४।

सं० ब्रह्मपु० के अनुसार बलि से प्राप्त तीन पग भूमि नापते समय वामन भगवान् का दूसरा पग ब्रह्मलोक

में पहुँचा। वहाँ ब्रह्मा द्वारा अपने कमण्डलु का शंकर-प्रदत्ता पूज्य पवित्र जल भगवान् के चरणों में अर्घ्यरूप में अर्पित। उस अर्घ्यजल का प्रभु-चरणों से मेरु पर्वत पर आना, वहाँ से चारों दिशाओं में गिरना। दक्षिण में गिरे जल को शंकर का अपनी जटाओं में धारण करना, पश्चिम में गिरे जल का पुनः ब्रह्मा के कमण्डलु में प्रवेश, उत्तर के जल का विष्णु द्वारा ग्रहण और पूर्व के जल का देवताओं, पितरों, लोकपालों द्वारा। सं० ब्रह्मपु०, पृ० ३८४-८५।

(ख) भागीरथी, त्रिपथगा— शंकर की जटाओं में स्थित गंगा दो स्वरूपों में विभक्त — (१) गौतम द्वारा आनीत गौतमी गंगा। ये विन्ध्यगिरि के दक्षिणी भाग में प्रवाहित। गोदावरी नाम से प्रसिद्ध। दे० 'गोदावरी'। (२) भगीरथ के साथ आयी भागीरथी गंगा। ये विन्ध्यगिरि के उत्तर में। सं० ब्रह्मपु० पृ० ३९०।

इनका अवतरण ब्र०पु०प्र० ६, १०-१२ के अनुसार सरस्वती-शाप (दे० 'लच्छि') और भगीरथ-तप के युग्म निमित्त से। वा० रा० तथा भा० आदि पुराणों के अनुसार केवल भगीरथ-तप के प्रभाव से (दे० 'भगीरथ')। विशाल रूप धारण कर इनका शिव के मस्तक पर गिरना। उनके सहित पाताल पहुँच जाने के इनके अहंकार से अवगत शिव का इन्हें जटाओं में उलझा देना। पश्चात् बिन्दुसरोवर में छोड़ना। वहाँ से निकली सात धाराओं में एक भगीरथ की अनुगामिनी। इनके प्रवाह से राजा जह्नु का यज्ञ-मण्डप बहने पर उनके द्वारा इनका पान। देयताओं का स्तुतिपूर्वक इन्हें उनकी कन्या बनाना। उनके कर्णछिद्रों से ये पुनः प्रकट। तब से ये 'जाह्नवी'। ब्रह्मा के कथनानुसार ये भगीरथ की ज्येष्ठ पुत्री 'भागीरथी'। स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल — तीनों लोकों में प्रवाहित होने के कारण त्रिपथगा। दिव्या भी। (गंगा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च। त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता।। १।४४।६।)। वा०रा० १।४३-४४। ब्र०पु०कृ० ३४ के अनुसार स्वर्ग में इनका नाम मन्दाकिनी, पृथ्वी पर अलकनन्दा, पाताल में भोगवती। महा० आदि० १६९।२२ में ये देवलोक में अलकनन्दा, पितृलोक में वैतरणी, इस लोक में गंगा। कपिल मुनि के क्रोध से भस्मीभूत सगर के साठ हजार पुत्रों का इनके जल से उद्धार। (दे० 'भगीरथ'।)

भौगोलिक दृष्टि से इनका उद्गम गोमुख की हिमगुहा — नाम भागीरथी। केदार के पहाड़ों से आती मन्दाकिनी का इनसे संगम — रुद्रप्रयाग। बदरीधाम के उत्तर में वसुधारा में प्रकट अलकनन्दा का आकर इनसे संगम — देवप्रयाग। यहाँ से इनका नाम गंगा। इलाहाबाद में यमुना और अन्तःसलिला सरस्वती का इनसे संगम — तीर्थराज प्रयाग। पश्चिम बंगाल के फरक्का के पास इनकी मूल धारा का बांगला देश में प्रवेश। वहाँ नाम पद्मा —गंगोपसागर में मिलन। गौण धारा हुगली का कलकत्ता की पश्चिमी सीमा से होते हुए सागर में प्रवेश। हुगली-सागर-संगम-स्थल पर कपिल मुनि का मन्दिर। यहाँ प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के दिन 'गंगासागर' का विराट् मेला।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदीसूक्त (ऋ० १०।७५।५-६) में सर्वप्रथम गंगा का ही आह्वान। ध०इ०तृ०पृ० १३२०। पुराणों में, वि०प० १७-२० में इनके माहात्म्य का विस्तृत वर्णन। गीता० १०।३१ में ये भगवान् की विभूति। महा० के अनुसार सत्ययुग में सभी स्थल पवित्र, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र, किन्तु कलियुग में सर्वाधिक महत्व गंगा का। वन० ८५।९०। इससे बड़ा कोई तीर्थ नहीं — न गंगासदृशं तीर्थं न देवः केशवात् परः। ····यत्र गंगा महाराज स देशस्तत् तपोवनम्। सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गंगातीरसमाश्रितम्।। वन० ८५।९६-९७। स्क० पु० का० २९ में स्कन्द का अगस्त्य से इनके सहस्रनाम (२९।१७-१६८) का कथन और इस 'स्तवराज' का महत्व-वर्णन।]

'साधु समाज — प्रयाग' के रूपक में ये रामभक्ति (१।२।८)। संत-असज्जन-वन्दना में 'सुधा सुधाकर सुरसरि साधू' (१।५।८)। द्वन्द्वों के उल्लेख-क्रम में कर्मनाशा नदी के साथ इनका उल्लेख (१।६।८)। 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' (१।१४।९)। शारदा के साथ इनकी वन्दना में इनके पुनीत, मनोहरचरिता होने का कथन। इनमें मज्जन करने, इनके जल का पान करने से पाप-हरण (१।१५।१-२)। रामचरित 'पावन गंग तरंग माल से' (१।३२।१४)। ये रामभक्तिरूपा। सुकीर्तिरूपिणी मानस-मूल सरयू का, राम-लक्ष्मण के समर-यशरूप महानद सोन का, इनमें मिलना। 'त्रिविध ताप त्रासक' तिमुहानी गंगा का राम-स्वरूपरूपीं सिन्धु की ओर प्रवाह (१।४०।१-५)। 'समरथ कहुँ नहि दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं।।' शुभ-अशुभ जल के इनमें मिलने पर भी ये अपवित्र नहीं। इनके जल से बनी वारुणी अपावन, पर वही इनके प्रवाह में मिलकर पवित्र। यही भेद ईश-अनीश में (१।६९।७-८; १।७०।१-२)। शिव-मस्तक पर इनका शृंगार (१।९२।३, १।१०६)। रघुपति-कथा 'सकल लोक जग पावनि गंगा' (१।११२-७)। हिमगिरि-गुहा-समीप इनकी धारा के पास देवर्षि नारद का समाधिस्थ होना

(१।१२५।१,४)। अहल्या-स्तुति में इनके हरि-पद से प्रकट होने का कथन (१।२११।छं० ४)। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का इनके जल में स्नान। उनका मुनि से इनके अवतरण की कथा सुनना (१।२१२।१-३)। शंकर-स्तुति में — 'देवापगा मस्तके' (२।१।श्लो० १)। राम को कैकेई के वचन उसी तरह प्रिय 'जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए' (२।४३।८)। 'जब तक गंग जमुन जलधारा', तब तक सीता का सुहाग अचल हो — कौसल्या-आशिष (२।६९।८)।

वन जाते समय इन्हें देख राम का रथ से उतर हर्षित होना। सीता, लक्ष्मण, सुमन्त्र सहित प्रणाम कर इनकी कथाएँ और महिमा सुनाना। ये मंगलमूला, सुखकारी। मज्जन, पान कर सबको प्रसन्नता (२।८७।२-७)। सुमन्त्र को विदा कर, पार जाने के लिए राम का गंगा-तट पर आना। 'पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी।।' इनके जल से केवट द्वारा राम-पद-प्रक्षालन। राम का पार उतरना (२।१००।२; २।१०१।२, ५-७; २।१०२।१)। इनसे सीता की विनय — 'मातु मनोरथ पुरउब मोरी···आइ करौं जेहिं पूजा तोरी'। सीता की महिमा कहकर अपनी वाणी की सफलता के लिए इनका सीता को आशीर्वाद। इनकी अनुकूलता से सीता को प्रसन्नता (२।१०३।१ - २।१०४।१)।

यमुनासहित इनकी तरंगें तीर्थराज प्रयाग के चँवर जिन्हें 'देखि होहिं दुख दारिद भंगा' (२।१०५।८)। चित्रकूट में मन्दाकिनी इन्हीं की धारा (२।१३२।६)। सरस्वती आदि दिव्य नदियों के साथ इनके द्वारा भी मन्दाकिनी का बखान क्योंकि उसे चित्रकूट में राम का सान्निध्य प्राप्त (२।१३८।४)। अपावन कर्मनाशा नदी का जल इनमें गिरने पर भी ये पवित्र (२।१९४।७)। भरत द्वारा इनके दर्शन और रामघाट को प्रणाम। अवधवासियोंसहित मज्जन। माताओं का भी स्नान। इनकी रेणु 'सकल सुखद सेवक सुरधेनू' — भरत-कथन। इनसे वर-याचना —रामचरण-प्रेम की (२।१९७।३ - २।१९७)। भगीरथ-आनीत सुरसरि का स्मरण ही मंगल-खानि (२।२०९।७)। पिता की क्रिया पर राम का शुद्ध होना वैसा ही जैसा तीर्थों के आवाहन से इनका (२।२४८।३)। 'जस मरु धरनि देवधुनि धारा' (२।२५०।७)।

सीता की कीर्त्तिनदी द्वारा ये विजित। इनके केवल तीन ही बड़े तीर्थ (हरिद्वार, प्रयाग, गंगासागर), पर सीता की कीर्त्ति-नदी से अनेक साधु-समाज का बनना। (तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि। वि०।) —जनक-कथन (२।२८७।३-४)। लौटते समय भरत-समाज का दूसरे दिन इनको पार करना (२।३२२।४)। राम-विमुख के लिए ये वैतरणीसदृश (३।२।७)। शिव को ये प्रिय (६।१।श्लो०२)। रामेश्वर पर इनका जल चढ़ाने से सायुज्य मुक्ति (६।३।२)। 'राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा।।' — अंगद-कथन रावण से (६।२६।५)। लंकाविजय के बाद लौटते समय इनके दर्शन, प्रणाम। (६।१२०।६) इनको पार कर तट पर पुष्पक का उतरना। सीता द्वारा इनका पूजन। उन्हें अखण्ड सुहाग की इनकी आशिष (६।१२१।७-९)। 'नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी' — वेदों द्वारा राम-स्तुति (७।१३।छं० ४)। भुशुण्डि-कथित मूल मानस में उल्लेख — 'सुरसरि उतरि निवास प्रयागा' (७।६५।३)। 'स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा' (७।१०८।छं०३)। 'धन्य देस सो जहँ सुरसरी' (७।१२७।५)।

इन्हें प्रणति राम की (२।१०४), भरत की (२।२०३।३)। इनका उल्लेख सुमन्त्र द्वारा (२।९४।७, २।१५०), निषादराज द्वारा (२।१९०।२-३), जनक द्वारा (२।२८८।८)। ये उपमान अरुन्धती तथा अन्य विप्र-स्त्रियों की (२।२४५।२), चारों भाइयों-बंधुओं की (२।२८३।१), कौसल्या-वाणी की (२।२८३।८)।

मूल शब्द — १।९२।३, १।११२।७, १।२१२।१, २।१९७।३, ६।३।२, ६।२६।५, ६।१२१।९, ७।१०८।छं० ३। गंगा — ६।१।श्लो० २। गंग — १।३२।१४, २।६९।८, २।८७।४, २।८७।५, २।१०४।१, २।१०५।८, २।२४५।२, २।२८७।४।

पर्याय— **देवधुनि** — १।४०।३, २।२५०।७।

देवसरि — २।८७।२, २।१०१।५, २।२८३।१, २।३२२।४।

देवापगा — २।श्लो०१।

बिबुध नदी — २।८७।६, ३।२।७।

सुरसरि — १।२।८, १।५।८, १।६।८, १।१४।९, १।४०।५, १।६९।७, १।६९।८, १।७०।१, १।७०।२, १।२१२।२, २।४३।८, २।९४।७, २।१००।२, २।१०२।१, २।१०३।२, २।१०४।१, २।१०४, २।१३२।६,

२।१३८।४, २।१५०, २।१६०।२, २।१६०।३, २।१६४।७, २।१६७।७, २।२०३।३, २।२०६।७, २।२४८।३, २।२८३।८, २।२८७।३, २।२८८।८, ६।१२१।७, ७।६५।३। सुरसरित — १।४०।१, १।१०६। सुरसरिता — १।१५।१, १।२११।छं०४। सुरसरी — १।१२५।१, ६।१२०।६, ६।१२१।८, ७।१३।छं०४, ७।१२७।५।

गगन — पंचमहाभूतों में प्रथम।

[तामस अहंकार में विकार होने पर यह उत्पन्न। इसकी तन्मात्रा और गुण शब्द। शब्द के द्वारा ही द्रष्टा और दृश्य का बोध। इसमें विकार होने पर वायु की उत्पत्ति। भा० २।५।२५-२६। जल-प्रलय में वायु का गुण स्पर्श इसमें लीन। स्पर्शहीन वायु का इसमें विलय। स्वयं इसका गुण शब्द तामस अहंकार द्वारा ग्रस्त। शब्दहीन होकर यह तामस अहंकार में लीन। भा० १२।४।१६-१७।]

पंचमहाभूतों से अधम शरीर-रचना का कथन (४।११।४)।

गजु (गज) — गजेन्द्र।

[क्षीरसागर-स्थित त्रिकूट पर्वत के घने जंगल में इसका वास। इसकी गंधमात्र से हिंस्र जीव भयभीत और क्षुद्र जीव निर्भय। एक दिन अनेक हथिनियों के साथ विचरण करते हुए यह मद-विह्वल, तृषाकुल। वरुण के ऋतुमान नामक उद्यान के विशाल सरोवर में प्रवेश कर इसका जल-पान, स्नान। गृहस्थों की भाँति मोहग्रस्त हो अपनी सूँड़ से जल की फुहारें छोड़-छोड़ कर हथिनियों, बच्चों को नहलाना, उनके मुंह में सूँड़ डाल जल पिलाना। यह उन्मत्त। उसी समय एक बलशाली ग्राह का क्रोध में भर इसका पैर पकड़ खींचना। सारी शक्ति लगाकर भी पैर छुड़ाने में यह असमर्थ।अन्य हाथी-हथिनियों की सहायता निष्फल। एक हजार वर्षों तक ग्राह से संघर्ष। अंततः देहाभिमानी गजेंद्र क्षीणशक्ति, हतोत्साह। जल में खिंचते हुए प्राण-संकट। इसका निश्चय—ग्राह विधाता की फाँसी, उससे मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवान् की शरण। इसके द्वारा निर्विशेषरूप से भगवत-स्तुति।सर्वदेवमय भगवान् का गरुड़-आसीन हो शीघ्रतापूर्वक आगमन। उन्हें आकाश में देख सूँड़ से कमल-पुष्प उठा इसके द्वारा अर्पण। इसे अत्यन्त पीड़ित देख, गरुड़ से उतर, दोनों को जल से बाहर निकाल, चक्र द्वारा ग्राह का मुँह फाड़, भगवान् का इसे मुक्त करना।

ग्राह को दिव्य देह-प्राप्ति। पूर्वजन्म में वह 'हू हू' नामक गन्धर्व जो देवल-शाप से ग्राह। गजेन्द्र को पीताम्बर-धारी चतुर्भुजरूप प्राप्त। इसे अपना पार्षद बना, गरुड़ पर आसीन कर, इसके साथ भगवान् का स्व-लोक-गमन।

पूर्वजन्म में यह द्रविड़ देश का पांड्यवंशी राजा इन्द्रद्युम्न। भगवद्भक्त। राज्य त्याग, जटा धारण कर, तपस्वी वेश में इसका मलय पर्वत पर वास। एक दिन मौन-व्रती हो इसके द्वारा भगवदाराधन। उसी समय वहाँ शिष्योंसहित अगस्त्य-आगमन। उनकी दृष्टि में इसका तपस्वी होना प्रजापालन आदि स्वधर्म से विमुखता का, गुरुशिक्षाभाव, जड़ता, अभिमान, विप्र-अपमान का द्योतक। अतः उनका इसे अज्ञानमयी हाथी की योनि में जन्म लेने का शाप। इसे प्रारब्ध मान इसको संतोष। भा० ८।२।१,६, २०-८।४।१३।भक्त० में गज के पूर्वजन्म की उपर्युक्त कथा के अतिरिक्त एक और कथा (कल्पांत-भेद से) । मरुदेश के राजा के यज्ञ में ब्रह्मा और होता, दोनों भाई। होता को अधिक, किन्तु ब्रह्मा को कम दक्षिणा प्राप्त। ब्रह्मा द्वारा दोनों की दक्षिणा मिलाकर आधा-आधा बाँटने की चेष्टा। होता की असहमति। ब्रह्मा का होता को शाप —गण्डकी में ग्राह होने का। होता का ब्रह्मा को शाप —गज होने का। भक्त० ३७-३८,पृ०१३२-१३४।]

हरि-नाम-प्रभाव से मुक्त होनेवाले अजामिल आदि के साथ इनका उल्लेख (१।२६।७, ७।१३०।छं० १)।

मूल शब्द — १।२६।७। गजादि — ७।१३०।छ०१।

गद — एक वानर-वीर। [वा०रा० में यह नाम नहीं। वा० रा० ७।३६।५० में इससे मिलते-जुलते नाम गज और गवय जिनकी देवताओं द्वारा रामकार्य के लिए सृष्टि।]

रावण-दूत शुक द्वारा केसरी आदि के साथ इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से बली। त्रिलोक को तुच्छ समझनेवाले (५।५४-५।५५।२)।

मूल शब्द — ५।५४।

गनिका (गणिका) — १. जीवन्ती। परशु नामक कुलीन वैश्य की सुन्दरी पत्नी।

२. पिंगला। मिथिला नगरी की रूपवती वेश्या।

[(१. जीवन्ती – यह पूर्ण यौवन में विधवा। व्यभिचार में प्रवृत्त। अतः ससुराल और मायके से निष्कासित। अन्यत्र जा वेश्यावृत्ति-ग्रहण। निःसंतान। इसका एक तोता खरीदना। उसे 'राम-राम' पढ़ाना। रामोच्चार से दोनों का पाप-नाश। एक ही समय दोनों की मृत्यु। यमदूतों का आकर इसे पाशबद्ध करना। विष्णु-पार्षदों का आकर बन्धन छिन्न करना। यमदूतों का क्रोध, सिंहनाद। सुप्रतीक आदि भगवत्-पार्षदों का शंखनाद। दोनों पक्षों में युद्ध। शर-शक्ति-शूल आदि का प्रयोग। यमदूतों के हाथ-पैर-वक्ष आदि छिन्न। उनका पलायन। श्रेष्ठ यमूदत चण्ड का युद्ध-प्रवेश। उसके प्रहारों से पार्षद पीड़ित। तब गदापाणि सुप्रकाश (पार्षद) का युद्धारम्भ। चण्ड-सुप्रकाश-युद्ध। त्रस्त रक्ताक्त चण्ड का मूर्च्छित हो गिरना। पार्षदों का जयघोष। मूर्च्छित चण्ड को उठा क्रन्दन करते यमदूतों का यम-निकट जा शिकायत करना – ऐसे पापियों को भी यदि विष्णुपुर-प्राप्ति, तब धर्मराज का प्रभुत्व क्या! धर्मराज-कथन – दूताः स्मरन्तौ तौ रामरामनामाक्षरद्वयम्। तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः।। संसारे नास्ति तत्पापं यद्रामस्मरणैरपि। न याति संक्षयं सद्यो दृढ़ं श्रणुत किंकराः।। (१५।७३-७४।) प०पु०क्रि० १५।६-७४।

२. पिंगला – यह धन-लोलुप। रात्रि के समय वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर घर के बाहरी द्वार पर इसका खड़े रहना – किसी पुरुष को अपने रमणस्थान में लाने और उससे धन प्राप्त करने के लिए। एक दिन आधी रात तक प्रतीक्षा के बाद भी कोई ग्राहक न मिलना। यह व्याकुल। तब इसमें आत्मग्लानि। भगवद्भक्ति और वैराग्य का उदय। इसका आत्मचिन्तन – सच्चे सुख और परमार्थ-धन के दाता हृदयस्थ भगवान को छोड़, त्रिविध ताप, मोह-शोक देनेवाले मनुष्यों की कामना कितनी बड़ी मूर्खता! प्रभु ही समस्त प्राणियों के सुहृद्, प्रियतम, स्वामी और आत्मा। स्वयं को उन्हें अर्पित कर उनके साथ लक्ष्मी की तरह विहार करने का इसका निश्चय। अपने दुःख-निराशा को भगवान् की अनुकंपा मानना, क्योंकि उससे सुखदायी वैराग्य का जन्म। वेश्या-वृत्ति-त्याग, प्रारब्ध से जो मिले उससे निर्वाह और भगवान् की शरण-ग्रहण का संकल्प कर इसके मन को शान्ति। भा० ११।८।२२-२४।]

अजामिल आदि उन पतित खलों के साथ इसका उल्लेख जिनका नाम-स्मरण से उद्धार (१।२६।७, ७।१३०।छं०१)।

गनेस (गणेश) – एक वैदिक देवता।

[वेदों में इनका नाम 'गणपति' या 'ब्रह्मणस्पति'। ऋग्वेद में इसी नाम से इनकी स्तुति – गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।। (ऋ० २।२३।१)। ब्रह्मन् शब्द वाक्, वाणी के लिए प्रयुक्त, अतः ब्रह्मणस्पति का अर्थ वाक्पति अथवा वाचस्पति। ये 'ज्येष्ठराज' – सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले, देवताओं के अधिपति इन्द्र के भी प्रेरक। पुराणों में वर्णित इनके स्वरूप का भी वैदिक ऋचाओं में आभास। ग०अ०पृ० ८६-८७।

गणपत्यथर्व श्रुति (१) में इनके सम्बन्ध में कथन – 'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि'। कण्ठादिमस्तकपर्यन्त इनका गज-स्वरूप तत्-पदार्थ – सर्वजगत्कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् निरुपाधि परमात्मा, पादादिकण्ठपर्यन्त नर-स्वरूप त्वं-पदार्थ –अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् सोपाधिक जीव। दोनों का सामंजस्य गणपतिरूप 'असि-पदार्थ' में। ग०अ०पृ० २५-२६, ८७-८८।

गणेश पुराण में इनके चार अवतारों की कथा – (१) कृतयुग में दशभुज 'महोत्कट विनायक', (२) त्रेतायुग में षड्भुज, शुभ्रवर्ण, मयूरारूढ़, 'मयूरेश्वर', (३) द्वापर में चतुर्भुज, अरुणवर्ण, मूषकवाहन 'गजानन', (४) कलियुग में द्विभुज, धूम्रवर्ण, अश्वारोही 'धूमकेतु'। कृतयुगमें ये कश्यप-अदिति के और अन्य युगों में पार्वती के पुत्र। प्रथम तीन युगों में इनके द्वारा क्रमशः नरान्तक-देवान्तक, दैत्यराज सिन्धु एवं सिन्दूर का वध। कलियुग में ये म्लेच्छों का नाश करेंगे। ग०अ०पृ० २४६-३३५। मुद्गलपुराण में इनके आठ अवतारों का वर्णन।

प०पु० में – एक बार उबटन लगाकर उसके मैल से पार्वती द्वारा एक पुरुष आकृति का निर्माण। उसका मुख हाथी-सा। फिर क्रीड़ा में उस आकृति का गंगा-प्रवाह। उमा की सखी गंगा की देखरेख में पुरुष (गणेश) का विकसित होना। प्रार्वती और गंगा का इन्हें पुत्र कहना। देवताओं द्वार ये 'गांगेय' संज्ञा से सम्मानित। ब्रह्मा द्वारा इन्हें विनायकों का आधिपत्य प्रदान। प०पु०सृ० ४५।४४४-४४६।

शि०पु० में (श्वेतकल्प की कथा) – पार्वती द्वारा अपने शरीर के मैल से इनका निर्माण। इन्हें अपना दण्डधारी द्वारपाल बनाकर आदेश – उनकी आज्ञा बिना ये किसी को अन्तःपुर में प्रवेश न करने दें। कुछ देर बाद

वहाँ शिव का आगमन। उनका परिचय पाकर भी इनका उन्हें अन्तःपुर में न जाने देना। शिव को क्रोध। उनके आदेश से उनके पराक्रमी गणों का, फिर देवताओं का, विष्णु का इनसे युद्ध। सब परास्त। अन्त में छल से शिव का इन पर त्रिशूल-प्रहार। इनका मस्तक छिन्न। शिवा शोक-क्रोध-व्याकुल। उनकी प्रसन्नता के लिए देवताओं का सिर की जगह गज-मस्तक जोड़कर इन्हें जीवित करना। पूज्य मान सर्वाध्यक्ष घोषित करना। पार्वती और त्रिदेव का इन्हें अग्रपूज्य होने का वरदान, इनकी प्रथम पूजा न करने पर पूजन-फल नष्ट। अपना दूसरा पुत्र मान शिव का इन्हें गणाध्यक्ष बनाना, परम विघ्ननाशक होने का वर देना।

इनमें और स्कन्द में प्रथम विवाह करने की स्पर्द्धा। यह देख शिव-शिवा का कथन — सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले लौटनेवाला ही पहले विवाह करने का अधिकारी। स्कन्द का मयूरासीन हो द्रुत गति से प्रस्थान। इनके द्वारा माता-पिता की पूजा और सात बार प्रदक्षिणा जिससे शास्त्रानुसार पृथ्वी परिक्रमा का फल प्राप्त। अतः इनका विवाह पहले — विश्वरूप-तनया 'सिद्धि' और 'बुद्धि' से। (सं० ब्र०पु०पृ० ८६ में इनकी पत्नी का नाम 'पुष्टि'।) सिद्धि से 'क्षेम' और बुद्धि से 'लाभ' नामक पुत्रों का जन्म। शि०पु०रु०च०कु० १३-२०।

सं०ब्र०पु० में — पार्वती की श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने की कामना। शिव के उपदेश से एक वर्ष तक 'पुण्यक' व्रत का अनुष्ठान। स्वयं परमात्मा कृष्ण उनके पुत्र (गणेश) रूप में आविर्भूत। शनि की दृष्टि पड़ने से इनका मस्तक छिन्न। गज-मस्तक लाकर इनके कबन्ध पर स्थापित कर हरि (कृष्ण) का इन्हें जीवित करना। सर्वप्रथम विष्णु द्वारा इनकी पूजा। इन्हें सर्वपूज्य, योगीन्द्र होने का आशीर्वाद दे, ब्रह्मज्ञान एवं सिद्धियाँ प्रदान कर, विष्णु का इन्हें अपने समान बनाना।

कैलासपुरी में अन्तःपुर स्थित शिव-पार्वती के दर्शन के लिए उत्सुक परशुराम का इनसे विवाद, इन्हें ढकेलना। कुपित हो परशुराम को स्तम्भित कर, अपनी सूँड़ में लपेट, इनका उन्हें सब लोकों में घुमाना, फिर छोड़ देना। शिव-स्तोत्र और कवच का स्मरण कर परशुराम का इन पर परशु-प्रहार। परशु का इनके बायें दाँत को समूल काटकर लौट जाना। पार्वती को क्रोध। परशुराम द्वारा उनकी स्तुति। उन्हें प्रसन्न कर गणेश का स्तवन और पूजन। तब से ये एकदन्त। ब्रह्मकल्प की एक कथा में ये विवाह से पराङ्मुख। पति-प्राप्ति के लिए तपस्या में संलग्न तुलसी के आग्रह पर उन्हें पत्नीरूप में स्वीकार न करने के कारण उनका इन्हें शाप — इनका विवाह अवश्य होगा। इनका भी तुलसी को शाप — असुर-ग्रस्त और वृक्षरूपा होने का। उनकी प्रार्थना पर इनका अनुग्रह — वे पुष्पों की सारभूता और कलांश से नारायण-प्रिया बनेंगी। इसीलिए इनकी पूजा में तुलसी का निषेध। सं० ब्र० पु० गण० पृ० २४७-२७०, ३१८-३२८।

ये व्यास-रचित महाभारत के लिपिकार। महा० आदि १।७५-७६। भारत में भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी को इनके पूजन की परम्परा। ग०अ०पृ० १७।

प०पु० सृ० ४५-४६ एवं स्क० पु० कौ० २७, २६ के अनुसार ये स्कन्द से ज्येष्ठ। शि०पु० में उनके अनुज। सं० ब्र० पु० गण० पृ० २४७, २७१ के अनुसार ये स्कन्द से छोटे, किन्तु पृ० २७१ में स्कन्द की उत्पत्ति और उनके कृत्तिकाओं के भवन में रहने का संवाद इनके जन्म के बाद प्राप्त, अतः पृ० ३२३ में इनका एक नाम 'गुहाग्रज' (गुह=स्कन्द)।]

मानस के मंगलाचरण के आरम्भ में मंगलकर्त्ता के रूप में वाणी के साथ इनकी वन्दना (१।१।श्लो०१)। 'जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन। करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन' (१।१।सो० १)। राम-नाम-प्रभाव से इनके प्रथम पूज्य होने का कथन (१।१९।४)। [इन्हें ज्ञात कि शिव-पार्वती दिन-रात राम-नाम-जप में लीन। अतः उनकी परिक्रमा कर इनका लोक में प्रथम पूज्य होना प्रकारान्तर से नाम-महिमा के कारण। वि०।] ये आदिदेव। विवाह के समय शिव-पार्वती द्वारा इनका प्रथम पूजन (१।१००)। शिव-धनु की गुरुता कम करने के लिए सीता की इनसे विनती (१।२५७।७-८)। इनकी मानस-वन्दना —राम द्वारा (२।८१।२), भरत द्वारा (२।१५७)। उल्लेख — इनके पूजन का (१।३२३।छं० १, १।३४५, २।६।८, २।२७३।४), इनके स्मरण का (१।२५५।८, १।३०१, १।३३८, १।३३९।८, १।३४७।८; २।१०४)। 'मंगलमय' के अर्थ में इनका उल्लेख — 'राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु' — भरद्वाज-कथन भरत से (२।२०८)। अन्य देवतादि के साथ इनके लिए भी भरत-चरितादि श्रवण-सुखद (२।२८८।६-८)। भरत-चरितादि वर्णन में ये भी असमर्थ (२।३२५।८)। जातिवाचक

प्रयोग (१।३५५।५)।

मूल शब्द – १।२५५।८, १।३३८, १।३४५, २।३२५।८। गनेसु – १।३०१, २।१५७, २।२०८। गनेसू – १।३५५।५ (जाति०)।

पर्याय – **करिबरबदन** – १।१।सो० १

गजाननु – १।३३६।८।

गननायक – १।१।सो० १, १।२५७।७।

गनप – २।२७३।४।

गनपति – १।१००, १।३२३।छं० १, २।६।८, २।८१।२, २।१०४, २।२८८।६।

गनराजा – १।३४७।८। खगराऊ – १।१६।४।

विनायक – १।१।श्लो० १।

गया – मगध का एक तीर्थ। 'मगधेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनः पुनः।।' (पाद्म)। वि०।

[गया में श्राद्ध, पिण्डदान करने से पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति, स्वयं के लिए भोग-मोक्ष-सिद्धि। अक्षय लोकों की इच्छा से अपने लिए भी पिण्डदान का विधान। यहाँ के पवित्र तीर्थों में फल्गु तीर्थ (गयाशीर्ष) का सर्वाधिक माहात्म्य। यहाँ लिंगस्वरूप ब्रह्मा का निवास। भगवान् गदाधर उपास्यदेव। अ०पु० ११६। इतना महत्व होने पर भी यह आसुर तीर्थ। देवतीर्थ की भाँति इसकी शोभा नहीं। वि०। 'तीरथ हू को नाम भो गया मगह के पास'।। दो० ३६२। दे० 'असुरसेन', 'मगह'।

राजगृह में पुरुषोत्तम मास में कल्पवास। मासभर मेला (मा० पी० २।४३।७ टिप्पणी १, पादटिप्पणी।]

कैकेयी-मुख के शुभ वचन, जैसे मगध में गया आदि तीर्थ (२।४३।७)।

गरुड़ – भगवान् विष्णु के वाहन।

१. प्रजापति दक्ष > विनता ~ कश्यप > अरुण के अनुज गरुड़।
महा० आदि० १६।५,६,९,१४,२४; ६५।११,१३; ६६।७० के बाद।

२. प्रजापति कश्यप ~ (दक्षकन्या) ताम्रा > कन्या शुकी > पौत्री विनता > गरुड़, अरुण।
वा०रा० ३।१४।९, ११, ३१, ३२।

३. प्राचेतस दक्ष > विनता ~ तार्क्ष्यनामधारी कश्यप > गरुड़, अरुण।
भा० ६।६।२, २१, २२।

[महा० में – ये स्वयं अण्डा फोड़कर पक्षीरूप में प्रकट। (इनका मुख श्वेत, नाक तोते जैसी पर लाल, देह स्वर्णिम। आ०को०।) बिजली-सी चमकनेवाली पिंगलवर्ण आँखें। अद्भुत साहस-पराक्रम। ये कामरूप, कामगति। प्रलयकालीन अग्नि-से प्रज्वलित। कुछ देर में ही विशाल रूप धारण कर इनका आकाश में उड़ना। इन्हें देख देवताओं को अग्नि का भ्रम। अग्निसहित देवताओं के स्तवन के फलस्वरूप इनका अपने तेज को समेटना। आदि० २३।

इनके जन्म से पूर्व एक बार इन्द्र से अपमानित बालखिल्यों का संकल्प – देवताओं के लिए वर्तमान देवराज से शतगुण शक्तिशाली अन्य इन्द्र उत्पन्न हो। कश्यप की विनय पर उन्हें बालखिल्यों द्वारा फलसहित अपने कर्म (संकल्प) अर्पित। फलतः उत्पत्ति से पहले ही इनके पक्षियों के इन्द्र होने का निश्चय। जन्म के बाद इनका उस पद पर अभिषेक। आदि० ३१।

सर्प-भ्राताओं की शर्त के अनुसार माता को दासता-मुक्त करने के लिए देवलोक से अमृत-अपहरण का इनका निश्चय। माता के आदेशानुसर क्षुधा-निरसन के लिए निषादों को भोज्य बनाना। विप्रों को अवध्य मानना। तृप्ति न होने पर पिता-आदेश से देवलोक-सरोवर के एक विशालकाय हाथी और कछुए को पकड़कर उड़ना। वटवृक्ष की विशाल शाखा पर इनके बैठते ही शाखा का टूटना। उस शाखा में अधोमुख लटके तपोलीन बालखिल्यों की रक्षा के लिए हाथी, कछुए और शाखासहित उड़ना। यह देख विस्मित बालखिल्यों द्वारा इनका नामकरण (गुरुं भारं समासाद्योड्डीन एष विहंगमः। गरुडस्तु खगश्रेष्ठस्तस्मात् पन्नगभोजनः।। ३०।७)। कश्यप-विनय से ऋषियों का

शाखा-त्याग। एक पर्वत-शिखर पर बैठ इनके द्वारा हाथी-कछुए का भक्षण। आदि० २७-३०।

देवताओं को त्रस्त कर इनका अमृत के निकट पहुँचना। अमृत-रक्षा के लिए दो भयंकर सर्प नियुक्त। उनसे ऊपर तीक्ष्ण धारवाला भयानक चक्र और चारों ओर प्रज्वलित अग्नि। अपने आठ हजार एक सौ मुख प्रकट कर, उनमें जल भर, इनका अग्नि बुझाना। शरीर को संकुचित कर चक्र के अरों के बीच से भीतर प्रवेश करना। सर्पों की आँखों में धूल झोंक, उनका शरीरश्च्छेन कर, चक्र को ध्वस्त कर अमृत लेकर उड़ना। स्वयं पान न करना। आकाश में विष्णु से भेंट। इनके लोलुपतारहित पराक्रम से उन्हें प्रसन्नता। इनकी वरप्राप्ति— ये उनके ऊपर (उनकी ध्वजा में) स्थित हों। अमृत-प्राशन के विना ही अजर-अमर रहें। इनके आग्रह पर विष्णु की वर-याचना —ये उनके वाहन बनें। आदि० ३२।३३।

इन्हें अमृत-अपहरण कर जाते देख इन्द्र का इन पर वज्र-प्रहार। ये अप्रभावित। दधीचि, वज्र और इन्द्र के सम्मान के लिए इनका एक पंख गिराना। उस सुन्दर पंख के कारण इनका नाम 'सुपर्ण'। इनसे मैत्री के लिए इन्द्र इच्छुक। इनके द्वारा सात्विक भाव से आत्म-पराक्रम-कथन —वन-पर्वत-सागर-सहित पृथ्वी और इन्द्र को अपने एक पंख पर, अथवा सम्पूर्ण चराचर लोकों को अपने ऊपर धारण कर विना परिश्रम के उड़ने में ये समर्थ। इन्द्र की यह याचना इन्हें स्वीकार कि अमृत अन्य किसी को न दिया जाये। इन्द्र से वर-प्राप्ति — महावली सर्प इनके भक्ष्य बनें। अमृत लाकर इनका कुशों पर रखना। स्नान-मंगलकर्म करके अमृत-पान के लिए सर्प-भ्राताओं से कहना। उसी दिन से इनकी माता (विनता) की दास्य-मुक्ति सर्पों को स्वीकार। इसी बीच इन्द्र द्वारा अमृत-अपहरण। आदि० ३२-३४।

सुमुख नाग को इन्द्र के दीर्घायु प्रदान करने पर इन्हें क्रोध। बल का अहंकार। दर्पोक्ति — देवों में सर्वाधिक शक्तिमान् विष्णु को अपने पंख के एक भाग में बैठाकर इनका अनायास वहन करना। इनसे अधिक शक्तिशाली कौन! इनके गर्व-हरण के लिए विष्णु का इनके कन्धे पर अपनी दाहिनी भुजा रखना। भार-पीड़ित हो इनका गिरना, अचेत होना। क्षमा-याचना करना। विष्णु का सुमुख को चरणांगुष्ठ से उठाकर इनके वक्षःस्थल पर डालना। तक से ये सदा उस सर्प के साथ। उद्यो० १०५! भु०रा० के अनुसार रण में भुशुण्डि से इनकी पराजय। पूर्व० ४।६।

इनके द्वारा कार्त्तिकेय को अपना पुत्र मयूर भेंट। शल्य० ४६।५१, अनु० ८६।२१। उद्यो० १०१।२-३ में इनके छः पुत्र — सुमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुच, पक्षिराज सुबल। उद्यो० १०१।६-१६ में इनकी प्रमुख सन्तानों की लम्बी सूची।

भा० में इनके पंख 'वृहत्' एवं 'रथन्तर' नामक सामस्तोत्र। ४।७।१६। इनके उड़ने पर पंखों से साम की आधारभूत ऋचाएँ प्रकट। भगवान् द्वारा श्रवण। ३।२१।३४। अपने वेदमय पंखों से इनके द्वारा भगवत्-स्तुति। ५।२०।८।

इनका निवास शाल्मली द्वीप में —शाल्मली (सेमर) वृक्ष पर। भा० ५।२०।८। कूटशाल्मली नामक वृक्ष के निकट विश्वकर्मा-निर्मित महल में। वा०रा० ४।४०।३६-४०।

भु० रा० पूर्व में एक बार आकाशमार्ग से वेगपूर्वक जाते हुए हनुमान् से इनकी जिज्ञासा — राम कौन? मनुष्य, देव, दैत्य, अथवा गन्धर्व? सुनकर हनुमान् को विस्मय। दाशरथि राम का परिचय बताना। ये भी राम-दर्शन के लिए उत्सुक। हनुमान्-कथन — उन्हें शीघ्रता। उनके-से वेग से जाना इनके लिए संभव नहीं। दूसरे दिन ये अयोध्या आयें।

दूसरे दिन अयोध्या में इन्हें हनुमान् के माध्यम से राधावल्लभ कृष्ण के रूप में राम के दर्शन। उनकी स्तुति। कथन — 'अतः परं नाथ न मेऽस्ति मोहो' (६।६)। राम-रति-प्राप्ति की प्रार्थना। राम की आशिष — 'मद्भक्तिमांस्त्रिभुवने विचर प्रसन्नो न ह्यस्ति तेऽभिलषिताचरणेऽन्तरायः।।' (६।१६)। साकेत-दर्शन से ये कृतार्थ। अयोध्या के दक्षिण में इन्हें रुक्मिणीसहित कृष्ण के दर्शन। रामचरित गाते हुए निकट ही इनका मणिपर्वत पर वास। इनकी भक्ति से प्रसन्न राम का इन्हें आदेश — ये साकेत के उत्तर सरयू के दोनों तटों पर विचरण करें। वहाँ शरीर त्यागकर चतुर्भुजरूप प्राप्त हुए जीवों को उनके निकट ले जायें। ५-७।]

इनका भुशुण्डि से रामचरितमानस-श्रवण (१।१२०ख)। 'बैनतेय बलि जिमि चह कागू' (१।२६७।१)।

राम-तुरंग की गति देख ये लज्जित (१।३१६।७)। जटायु को देख रावण को इनका भ्रम। ये स्वामीसहित उसके बल से परिचित (३।२९।१३)। 'वैनतेय खग'! — सरोष अंगद-कथन (६।२६।७)। नारद का इन्हें नागपाश-बद्ध राम के पास भेजना। इनके द्वारा माया-सर्पों का भक्षण (६।७४।१०, ६।७४क)। भुशुण्डि द्वारा इन्हें सुनायी गयी सब कथा का शिव द्वारा पार्वती से कथन (७।५२।६)। पार्वती की शंका — 'गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।।' इन्होंने मुनियों को छोड़ काक के पास जाकर कथा क्यों सुनी? काक से इनका संवाद किस प्रकार हुआ? (७।५३।८, ७।५५।३-५)। पार्वती के भुशुण्डि-विषयक प्रश्नों के सम्बन्ध में शिव-कथन — इनके भी काक से ऐसे ही प्रश्न (७।५५)। रण में राम स्वेच्छा से नागपाश-बद्ध। उन्हें पाशमुक्त कर इनके मन में विषाद। मोहजन्य तरह-तरह के विचार — मायातीत ब्रह्म के अवताररूप में राम प्रसिद्ध, किन्तु उनके प्रभाव के दर्शन नहीं। भवबन्धन से मुक्त करनेवाले राम एक तुच्छ निशाचर के नागपाश में बद्ध! नाना प्रकार से स्वयं को समझाने में ये असफल। मन में भ्रम, तर्क-वितर्क (७।५८।२ - ७।५९।२)। [वा० रा० में दोनों भाइयों को नागपाश-मुक्त कर उनका अभिनन्दन, आलिंगन। कद्रूपुत्र सर्पों से मुक्त होने के कारण उन्हें सौभाग्यशाली मानना। सावधान रहने का कथन। स्वयं को उनका सखा, बाहर विचरनेवाले उनके प्राण कहना। राम की परिक्रमा कर, हृदय से लगा, प्रस्थान। ६।५०।३७-६०।] व्याकुल होकर इनका नारद के पास जाना। नारद द्वारा प्रबोधन। इनमें राम-माया की व्याप्ति का कथन। महामोह-नाश के लिए उनका इन्हें ब्रह्मा के पास भेजना (७।५९।३-८)। ब्रह्मा का इन्हें शिव के निकट जाने का परामर्श (७।६०।१-८)। कुबेर-गृह जाते हुए शिव से इनकी मार्ग में भेंट। उनके चरणों में नमन। संशय-निवेदन। इनसे शिव-कथन— राह में, अल्पकाल में इन्हें समझाना सम्भव नहीं। संशय-नाश के लिए दीर्घकाल तक सत्संग, मुनियों से रामविषयक कथा-श्रवण आवश्यक। संशय नष्ट हुए बिना राम-पदानुराग सम्भव नहीं, और उसके बिना राम-मिलन असम्भव। अतः मोहजनित दुःख दूर होने का आशीर्वाद देते हुए उनका इन्हें काकभुशुण्डि के पास भेजना। उनके चरणों में सिर नवाकर, हर्षित हो, इनका गमन (७।६०-७।६२।६)। इन्हें स्वयं न समझाने के एक और कारण का शिव-कथन — अतीत में कभी इनके मन में अभिमान का उदय जिसे भंग करने के लिए राम द्वारा मोह की सृष्टि। इसके अतिरिक्त 'समुझइ खग खगही कै भाषा' (७।६२।७ - ७।६२क)।

जिस पर्वत (नीलगिरि) पर भुशुण्डि-निवास, उसे देखकर ये प्रसन्न। माया-मोह-शोच से मुक्ति। सरोवर-स्नान-जलपान। इन्हें आते देख वट-वृक्षतले बैठे पक्षियोंसहित भुशुण्डि हर्षित। उनके द्वारा इनका आदर, पूजन, कृतज्ञताज्ञापन (७।६३।१ - ७।६३क)। इनके द्वारा भुशुण्डि की प्रशंसा। आने का कारण और उनके आश्रम-दर्शन से मोह-संशय-भ्रम-नाश का कथन। राम-कथा-श्रवणेच्छा व्यक्त। सुनकर भुशुण्डि को हर्षोत्साह (७।६३ ख - ७।६४।६)। (वि० के अनुसार चौरासी प्रसंगों में) भुशुण्डि का समस्त रामकथा (मूल रामचरितमानस) कहना (७।६४।७ - ७।६८।६)। आनन्दित होकर इनका कथन — बन्धन में बँधे राम की मनुष्य-लीला देख इनके मन में संशय। अब यह अनुभव कि वह संशय भी राम की ही कृपा से। उसी के कारण इनकी भुशुण्डि जैसे सन्त से भेंट। उनका अनुग्रह प्राप्त। रामकथा-श्रवण। राम-चरणों में अनुराग। संशय-भ्रम-नाश। सबके मूल में राम-कृपा (७।६८।८ - ७।६९।८)। इनकी विनय-अनुरागभरी वाणी से भुशुण्डि पुलकित (७।६९क)। उमा से शिव-कथन की व्यंजना — ये कथा-रसिक, हरि-दास, सुमति-सुशील-पवित्र श्रोता। ऐसे श्रोता के सामने सज्जनों (काकभुशुण्डि) द्वारा गोपन रहस्य भी प्रकट (७।६९ख)। ये भुशुण्डि के अतिशय प्रिय। उनका कथन — ये उनके पूज्य। राम के कृपापात्र। संशय-मोह-माया से मुक्त। मोह के बहाने इन्हें भेजकर राम का उन्हें बड़ाई देना (७।७०।१-४)। उनके द्वारा इनके मोह का समाधान —शिव, ब्रह्मा, नारद, सनकादि के उदाहरण देकर प्रचण्ड माया-कटक और उसके प्रभाव का वर्णन (७।७०।५-७।७१ क)। माया के मिथ्यात्व, उसके प्रेरक राम के निर्गुण स्वरूप, भक्त-हेतु अवतार एवं उनके सुगम-अगम सगुण-चरित्र के सम्बन्ध में कथन (७।७१ ख-७।७३ ख)। आत्ममोह-प्रसंग सुनाने से पूर्व भुशुण्डि-कथन —ये राम के कृपापात्र। हरि-गुणों में इनकी प्रीति। अतः ये परम मनोहर रहस्य-श्रवण के अधिकारी। भक्त-कल्याण राम का स्वभाव। भक्त में अभिमान उत्पन्न होने पर, उसके हित के लिए, राम द्वारा अभिमान-हरण (७।७४।१ - ७।७४ ख)। भुशुण्डि का इन्हें आत्ममोह, प्रभुकृपा, वरप्राप्ति एवं प्रभु के सिद्धान्तों की कथा सुनाना। राम की महिमा, भाववश्यता आदि का कथन। राम-भजन का उपदेश (७।७५।१ - ७।९२ ख)। ये हर्षित। नयनों में आनन्दाश्रु। हृदय में राम-प्रताप की स्थिर धारणा। अपने मोह का स्मरण कर पश्चात्ताप। भुशुण्डि को राम-सम

जानकर प्रेम। उनकी प्रशंसा, नमन। जिज्ञासा (७।९३।१-७।९३ ख)। इनके विनीत प्रश्न — (१) भुशुण्डि को काक-देह क्यों मिली? (२) उन्हें रामचरितसर कहाँ मिला? (३) उन्हें काल क्यों नहीं व्यापता? (४) उनके आश्रम में आने पर इनका मोह-नाश किस कारण से? (७।९४।१-७।९४ ख)। उत्तर में भुशुण्डि द्वारा अपनी शूद्र-योनि में शिव-शाप और अनुग्रह, ब्राह्मण-जन्म में लोमश-शाप और वरदान का वृत्तान्त-कथन (७।९५।१-७।११५।४)। इनका पाँचवाँ प्रश्न — ज्ञान और भक्ति में अन्तर कितना? (७।११५।५-११)। भुशुण्डि द्वारा दोनों के अभेद और भेदों का निरूपण। ज्ञानदीप और भक्ति-चिन्तामणि का रूपक-कथन (७।११५।१२ - ७।१२०।क,ख)। इनके सप्त प्रश्न — (१) सबसे दुर्लभ शरीर कौन-सा? (२) सबसे बड़ा दुःख कौन? (३) सबसे बड़ा सुख कौन? (४) सन्त-असन्त का स्वभाव कैसा? (५) सबसे बड़ा पुण्य कौन? (६) कराल पाप कौन? (७) मानस-रोग कौन-से? (७।१२१।१-७)। सबका उत्तर देकर भुशुण्डि का निष्कर्ष-कथन। उनकी विनय और सुशीलता (७।१२१।८-७।१२४क)। इनकी कृतकृत्यता, विनय, भुशुण्डि-प्रशंसा। उनके चरणों में सप्रेम नमन। हृदय में रघुवीर को धारण कर वैकुण्ठ-गमन (७।१२४ख-७।१२५क)।

गरुड-व्याल-न्याय के दृष्टान्त द्वारा विविध प्रसंगों में, प्रभावशाली बनाने के लिए, इनका प्रयोग— १।२५९।८, ३।११।९, ६।५९।८, ६।६६।१, ६।१११।छं०२, ६।११८।९, ७।३०।५। भुशुण्डि द्वारा सम्बोधन—३।२।६, ३।१७।५, ३।२८।१०, ४।७।२४, ४।२९।५, ५।५।३, ५।५८, ६।३४।१४, ६।७२।११, ६।११४।३, ७।११ग, ७।१२क, ७।१३ख, ७।१५।१, ७।१५।६, ७।१९ग, ७।२१, ७।२२।४, ७।३१।१,

मूल शब्द — १।१२० ख, ४।२९।५, ५।५।३, ६।५९।८, ६।६६।१, ६।७४।१०, ७।५३।८, ७।५५।३, ७।५८।४, ७।६१।३, ७।६३।१, ७।६४।५, ७।९३क, ७।९५।१, ७।११५।५, ७।१२०।२, ७।१२३।७, ७।१२४ख, ७।१२५क। गरुरु — १।२५९।८।

पर्याय — **अंडजराया** —७।८०।३।

उरग आराती — ७।५८।६।

उरगाद — ३।११।९। उरगादा — ७।५५।५, ७।५८।५।

उरगारि — ७।११५।१२, ७।११९ का उरगारी — ३।१७।५, ६।३४।१४, ७।७३।१, ७।७५।६, ७।७९।७, ७।९५।२, ७।९७।८, ७।१०५।१, ७।१२०।१४, ७।१२१।१८, ७।१२३।२।

खग (काकभुशुण्डि, जटायु, सम्पाति भी) — ७।५९।४, ७।५९।७।

खग ईसा — ७।११४।१०।

खगकुलकेतू — ७।५८।२।

खगकेतू — ६।७२।११।

खगनाथ — ६।१११।छं० २, ७।१०६।५। खगनाथा — ७।१११।१। खगनाहा — ७।६३।५, ७।६८।८, ७।११०।११।

खगनायक — १।३१६।७, ७।७६।१, ७।१२२।१३।

खगपति — ३।२९।१३, ६।७४क, ६।११८।९, ७।१५।१, ७।१५।६, ७।५२।६, ७।६०।१, ७।६३।७, ७।७०।४, ७।८९।५, ७।९३।१, ७।१०६।१३।

खगभूपा — ७।११४।१४।

खगराज — ७।३०।५, ७।६३ क, ७।११० ग। खगराजा — ७।६०।५, ७।६३।६, ७।७२।२, ७।८४।६। खगराया — ७।७८।१, ७।१०४।८, ७।१२१।१४, ७।११८।६। खगराई ७।८९।६, ७।९१।१, ७।११९।६। खगराऊ ७।१२१।१।

खग साईं — ७।७०।५।

खगेस — ४।७।२४, ५।५८, ६।११४।३, ७।११ ग, ७।१२ क, ७।१९ ग, ७।२२।४, ७।६३ ख, ७।७४।१, ७।७५।१, ७।८८ ख, ७।६६।८, ७।१०१ क, ७।१०९ घ, ७।११०।७, ७।११३।१, ७।११५।३, ७।११९।१, ७।१२०ख, ७।१२४।४। खगेसा — ३।२८।१०, ७।३१।१, ७।५९।८, ७।७३।४, ७।७९।१, ७।८९।५।

नभगनाथ — ७।७०।१।

नभगेस — ७।२१।

पन्नगारि — ७।९५ क, ७।११६।२।

बिहंगपति — ७।५५, ७।५९।६, ७।६०, ७।६९ क।

बिहगनायक — १।१२० ख।

बिहगेस — ७।९६ क, ७।१०४ ख, ७।११८ क।

बैनतेय — १।२६७।१, ६।२६।७, ७।१३ ख, ७।६०।७।

ब्यालारि — ७।१०२ क।

हरिजान — ७।८१ क, ७।९७ ख, ७।१०९ ग, ७।११५ ख, ७।१२१ ख। हरिजाना — ३।२।६, ७।७८।३, ७।११२।१०, ७।११५।१५।

गालव — विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में एक। महा० अनु० ४।५२। शृंगवान् ऋषि के पिता। महा० शल्य० ५२।१४-१५।

[किसी समय तपस्यालीन विश्वामित्र की परीक्षा लेने के लिए वसिष्ठ-वेश में धर्मराज का उनके निकट आगमन। भोजन की इच्छा व्यक्त करना। विश्वामित्र का चरुपाक बनाने में व्यस्त होना। उसके लिए प्रतीक्षा न कर क्षुधापीड़ित अतिथिदेव द्वारा अन्य मुनियों का दिया हुआ भोजन ग्रहण। भोजन लेकर विश्वामित्र के उपस्थित होने पर उनका अरुचि-प्रदर्शन। सिर पर भोजन का पात्र लिये विश्वामित्र आश्रम के पास निश्चेष्ट होकर स्थित। वायु ही उनका आहार। गालव मुनि द्वारा यत्नपूर्वक उनकी सेवा-सुश्रूषा। सौ वर्ष बाद पुनः वसिष्ठवेश में आकर धर्मराज द्वारा भोजन की इच्छा व्यक्त। विश्वामित्र के सिर का पात्र ग्रहण करना। उसमें भोजन अब भी ताजा और उष्ण। उसे खाकर, विश्वामित्र के प्रति अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर, उन्हें ब्रह्मर्षि कह, उनका प्रस्थान।

गालव की सेवा-भक्ति से प्रसन्न विश्वामित्र का इन्हें आदेश — जहाँ इच्छा हो, ये जायें। इनका गुरुदक्षिणा देने का आग्रह। मना करने पर भी इनके बार-बार के हठपूर्ण आग्रह से विश्वामित्र क्रुद्ध। चन्द्रमा-से श्वेत वर्णवाले आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों की उनकी याचना। ये चिन्ताकुल। प्राण-त्याग का भी विचार। अन्ततः ये विष्णु की शरण। गरुड़ का प्राकट्य। आश्वासन। गरुड़ की पीठ पर बैठ बहुत घूमने पर भी अश्व-प्राप्ति दुष्कर। मार्ग में गुरुदक्षिणा के लिए विश्वामित्र का इन्हें स्मरण कराना। गरुड़ के साथ इनका ययाति के निकट जा प्रयोजन बताना। धन देने में असमर्थ ययाति द्वारा अपनी देवकन्या-सी रूप-सौन्दर्यमती पुत्री माधवी का दान, ताकि उसके शुल्क से ये अपना प्रयोजन सिद्ध करें।

गरुड़ का प्रस्थान। माधवी के साथ इनका हर्यश्व के पास जाना। कन्या चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ, यह लक्षण देख हर्यश्व का कथन — उनके पास केवल दो सौ श्यामकर्ण घोड़े। उनके बदले वे कन्या से केवल एक सन्तान उत्पन्न करेंगे। फिर कन्या इनकी। (माधवी को वरदान कि प्रत्येक प्रसव के अन्त में वह फिर कन्या हो जायेगी)। इसी प्रकार एक-एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए माधवी को शुल्करूप में रख काशिराज दिवोदास और भोजनगर के राजा उशीनर से इन्हें दो-दो सौ घोड़े प्राप्त। देश में उस जाति के और घोड़े ही नहीं। अतः छः सौ श्यामकर्ण घोड़े और माधवी को लेकर गरुड़ के साथ ये विश्वामित्र के समक्ष उपस्थित। गुरु से इनका कथन — शेष दो सौ घोड़ों के बदले वे भी कन्या से एक सन्तान उत्पन्न करें।

गुरुदक्षिणा देकर ये सन्तुष्ट। पुत्र-उत्पन्न होने पर माधवी को उसके पिता (ययाति) को सौंपकर वन-गमन। —दुराग्रह का परिणाम भयंकर, दुर्योधन को यह समझाते हुए नारद द्वारा इनका वृत्तान्त-कथन। महा० उद्यो० १०६-११९।]

'हठबस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस' (२।६१)।

गिरिजा — दे० 'भवानी'।

गिरिबर कंदरा — लंका में निकुम्भिला पर्वत की योगिनी गुहा। यहीं योगिनी वट। कन्दरा के भीतर निकुम्भिला क्षेत्र जहाँ देवी का स्थान और मेघनाद की यज्ञशाला।

[यह यज्ञशाला गुप्त। वटवृक्ष तक पहुँचने का मार्ग भी सर्प, हाथी, अग्नि, वायु और जल के द्वारों से अवरुद्ध। लक्ष्मण द्वारा क्रमशः गरुड़ास्त्र, पर्वतास्त्र, पर्जन्यास्त्र से प्रथम तीन द्वारों का, और हनुमान् द्वारा वायु-पान

के बाद वायव्यास्त्र से पंचम द्वार का भेदन। वटवृक्षतले योगिनी गुहा। उसका पत्थर चूर्ण कर भीतर जा मेघनाद को ललकार। आनन्द रामायण १।११।१८०-१८६। —मा० पी० ६।७५।२, ६।७६।१-२ व्या०।

अ० रा० में निकुम्भिला एक स्थान जहाँ पंचद्वार की जगह राक्षस-सेनाएँ जिनमें श्यामवर्ण सेना के नष्ट होने पर ही मेघनाद-दर्शन सम्भव। ६।६।१३-१५। वा० रा० में यह सुन्दर उपवन। रावण का सेवकों के साथ यहाँ प्रवेश। उशना (शुक्राचार्य) के पौरोहित्य में यहाँ सप्तयज्ञानुष्ठान कर इन्द्रजित् को आकाशचारी रथ, तामसी माया और अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्राप्त। वा० रा० ७।२५।२-१२। मेघनाद को वरदान देते हुए ब्रह्मा-कथन — यहाँ इसके यज्ञ की पूर्णाहुति से पहले इस पर शत्रु-आक्रमण हुआ, तो इसका वध निश्चित। वा० रा० ६।८५।१४।]

युद्ध-काल में 'अजयमख' करने के लिए मेघनाद का यहाँ आना (६।७५।२)। अग्नि में रुधिर, भैंसे की आहुति देना। कपियों द्वारा यज्ञ-विध्वंस। तब भी वह मौन, स्थिर। पदाघात से क्षुब्ध हो उसका आसन-त्याग और युद्ध (६।७६।१-४)। दे० 'मेघनाद'।

मूल शब्द — ६।७५।२।

गुन (गुण) — काव्य का एक अंग।

[जो रस के धर्म और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल, वे गुण। इनके तीन प्रकार — माधुर्य, ओज, प्रसाद। माधुर्य गुण से हृदय का द्रवण। यह मुख्यतः शृंगार में, उसके अतिरिक्त करुण और शान्त रसों में। ओज गुण से हृदय का विस्तार। यह संयत्त भाव से वीर रस में, कुछ तीव्रता के साथ वीभत्स में, प्रखर रूप से रौद्र रस में। प्रसाद गुण में हृदय की साधारण, सुन्दर अवस्था। इसके क्षेत्र सभी रस।

शब्द-अर्थ से साक्षात् सम्बन्ध न होने पर भी वर्णों की कोमलता-कर्कशता का गुणों पर प्रभाव। अतः रसोचित वर्णविन्यास गुणों के मूल। माधुर्य में वर्ग के पाँचवें वर्ण— ङ, ञ, ण, न, म — जब अपने ही वर्ग के भिन्न-भिन्न अक्षरों से जुड़े हुए हों, तो उनमें सहज मिठास। इसमें समास का अभाव या वह नाममात्र का। ओज में ट,ठ,ड,ढ की बहुलता। प्रसाद में साधारणतः सुकुमार वर्णों का प्रयोग और समास का अभाव। इन गुणों में प्रयुक्त होनेवाले वर्णों का विशेष विधान है। का० द०।]

मानस-सर के रूपक में ध्वनि, अवरेव, गुण, जाति का मछलियों के रूप में कथन (१।३७।८)।

गुह — शृंगवेरपुर के निषादराज। राम के सेवक और सखा। अ० रा० २।५।६१-६२, वा० रा० २।५०।३३।

[शिवरात्रि के दिन एक क्षुधातुर भील का मृग मारने के लिए धनुष-बाण और लोटे में जल लेकर बेल के वृक्ष पर चढ़ना। एक मृगी को देख उतावली में बाण चढ़ाना। लोटे के जल और बेल के कुछ पत्तों का नीचे स्थित एक ज्योतिर्लिंग पर गिरना। उसमें से शिव का प्राकट्य। उनका भील को वर-दान —वह शृंगवेरपुर में निषादों का राजा होगा। उसके यहाँ साक्षात् राम पधारेंगे, उससे मित्रता करेंगे। उसका वंश देवताओं से भी अधिक प्रशंसनीय होगा। मा० पी० ७।२०।३-५ नोट के अन्तर्गत श्रीहरिजनजी के मत से शि० पु० रु० च० ४० ।

राम के प्रत्यागमन के समय द्रुमिल नामक राक्षस अयोध्या जाकर वहाँ के निवासियों को दुःख देने को उद्यत। इनका उसे शृंगवेरपुर में रोकना। तीन सहस्त्र धनुर्धरों को साथ लेकर तीन दिनों तक उससे युद्ध करना। फिर ये क्लान्त और हतपराक्रम। उसी समय इन्हें राम के लौटने का समाचार देने के लिए हनुमान् का आगमन। उनकी हुंकार से इनका बल-वर्द्धन। हनुमान् का द्रुमिल के सहायक राक्षसों को लांगूल में लपेट यमलोक पहुँचना। इनका द्रुमिल से मल्लयुद्ध करके उसे पृथ्वी पर पटकना, शस्त्र से उसका वध करना। फिर हनुमान् का भरत के पास जाना। इनका राम से मिलने के लिए भरद्वाज-आश्रम की ओर गमन। भक्त पृ०१८७।]

सिय-लक्ष्मण और सुमन्त्रसहित राम के गंगातट पर आने का समाचार पाकर इनका प्रिय बन्धुओं के साथ फल-मूल लेकर अपार हर्ष से मिलने के लिए जाना। दण्डवत् करके अनुरागपूर्वक प्रभु को देखना। प्रेम-विवश प्रभु का इन्हें निकट बैठाना। (२।१९४।६ में 'यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा।।')। उनके कुशल-प्रश्न करने पर इनका निवेदन — उनके पद-पंकज-दर्शन से ये भी अब उनके भाग्यशाली दासों में गण्य। धरणि-धन-धाम सब उनका। ये परिवारसहित उनके नीच सेवक। इनकी प्रार्थना कि प्रभु नगर में प्रवेश करके इनकी प्रतिष्ठा बढ़ायें (२।८८।१-७)। प्रभु से यह सुनकर इन्हें अतिशय दुःख कि उन्हें मुनि-धर्म-पालन करते हुए चौदह वर्षों के वनवास की आज्ञा (२।८८।८, २।८८)। (ठहरने के लिए) उनको मनोहर सिंसुपा (शिंशपा = शीशम,

अशोक) वृक्ष दिखाना। कुश और कोमल पत्तों की 'साँथरी' बिछाना। फल-मूलादि लाकर, दोनों में जल भरकर, रखना (२।८९।४-५, ७-८)। (राम के शयन करने पर) अपने विश्वस्त प्रहरियों को बुलाकर जगह-जगह नियुक्त करना। स्वयं तरकश बाँधकर, धनुष-बाण ले, लक्ष्मण के पास जा बैठना (२।९०।३-४)। राम-जानकी को भूमि पर शयन करते देख ये विषादग्रस्त। शरीर में पुलक, नेत्रों में अश्रु। इनका लक्ष्मण से कथन— परम शोभा-ऐश्वर्य में रहनेवाले राम-सीता क्या वनवास योग्य! 'करम प्रधान सत्य कह लोगू।' कैकेयी पर दोषारोपण करना। पुनः विषाद में डूब जाना (२।९०।५-२।९२।२)। (इनके मोहापनयन के लिए) लक्ष्मण द्वारा इन्हें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का उपदेश (२।९३।३-२।९४।१)। [यह लक्ष्मण-गीता अ० रा० २।६ के अनुरूप। वा० रा० २।५१ में लक्ष्मण का इनके समक्ष विलाप।] राम-गुण-कथन करते हुए रात्रि व्यतीत (२।९४।२)। राम-सुमन्त्र-संवाद सुन ये परिजन-सहित विकल (२।९९।३)। सिय-राम-लक्ष्मण के साथ इनका भी केवट की नाव पर गंगा पार करना (२।१०२।१)। लौटने के लिए राम के कहने पर इनकी दीनतापूर्वक विनती — वे कुछ दिन इन्हें साथ रखकर चरण-सेवा का अवसर दें। वन में ये उन्हें मार्ग दिखायेंगे। जिस वन में वे रहेंगे, वहाँ पर्णकुटी बना देंगे। फिर वे जैसी आज्ञा देंगे, ये पालन करेंगे। इनका सहज स्नेह देख राम का इन्हें साथ ले चलना। इनका अन्य सब निषादों को परितुष्ट कर विदा करना (२।१०४।२-८)। [अ० रा० २।६।२५-२७ में राम का लौटते समय पुनः यहाँ आने का वचन देकर इन्हें विदा करना। वा० रा० २।५२।८० में विदा की आज्ञा, वचन नहीं।] यमुना पार करने पर राम-दर्शन के लिए आये तेजःपुंज तापस को इनका दण्डवत् करना। उनका इन्हें गले लगाकर मिलना (२।१११।५)।

[तीसरे दिन यमुना पार कर प्रभु का इन्हें विदा करना, चौथे दिन इनका लौटना। मा० पी० २।१४३।५ नोट १ (क)।] लौटकर व्याकुल सुमन्त्र को रथसहित उपस्थित देख ये दुखित। इन्हें अकेले आये देख सुमन्त्र की दशा अत्यन्त करुणाजनक। अश्व विकल। इनका सुमन्त्र को समझाना। विविध कथाएँ कहकर उन्हें जबरदस्ती रथ पर बैठाना। चार उत्तम सेवकों को उनके साथ भेजना। ये भी विरह-विषाद-ग्रस्त (२।१४२।५-२।१४४।१)।

समाजसहित भरत के शृंगवेरपुर के निकट पहुँचने पर इनके मन में विचार — भरत के मन में राम को मारकर अकण्टक राज्य करने की कामना, नहीं तो सेनासहित वन क्यों जाते। किन्तु इस कार्य में उनकी जीवन-हानि निश्चित, क्योंकि देवताओं-दैत्यों की सम्मिलित शक्ति से भी युद्ध में राम को जीतना असम्भव। यह सोचकर सब निषादों को सावधान करना। नावों को डुबाने, घाटों को रोकने और समर में मरने के लिए प्रस्तुत होने का आदेश देना (२।१८९।१ - २।१९०।१)। स्वयं उनसे सम्मुख-युद्ध करने और जीते-जी उन्हें गंगापार न उतरने देने का इनका संकल्प। कथन —समर में मरण, और गंगातट पर, वह भी राम-कार्य के लिए! फिर राम के भाई और राजा के हाथों शस्त्रपूत होकर! ऐसी मृत्यु बड़े भाग्य से मिलती है। इनका लोक-परलोक दोनों बन जायेगा। इस निश्चय से ये विषाद-मुक्त। सबको उत्साहित करके युद्ध के लिए सन्नद्ध होने का आदेश देकर अपना धनुष-तरकश-कवच माँगना (२।१९०।२ - २।१९१।१)। सबको शस्त्रास्त्र-सज्जित होकर उपस्थित देख, सन्तुष्ट हो, सबका नाम ले-लेकर सम्मान करना। [इनकी सेना छोटी, हथियार भी केवटों के अनुरूप, किन्तु छोटे परिमाण में सब कुछ। वि०।] केवटों के उत्साहपूर्ण वचन सुन युद्ध का 'ढोल' बजाने का आदेश देना (२।१९१।२ २।१९२।३) उसी समय बायीं ओर छींक। इसका (युवा) सगुनियों द्वारा यह अर्थ-ग्रहण कि विजय होगी। एक वृद्ध का सगुन विचारकर कथन कि विग्रह (झगड़े) की आशंका नहीं, भरत का वन-गमन राम को मनाने के लिए। ये उनसे मिलें। इनके द्वारा वृद्ध का अनुमोदन। केवटों को एकत्र होकर घाटों पर अधिकार करने का आदेश। स्वयं भरत से मिलकर उनका भेद लेने के लिए भेंट की सामग्री के साथ गमन। उसी समय मंगलसूचक शकुन (२।१९२।४ - २।१९३।४)। दूर से ही वसिष्ठ को देखकर, अपना नाम कहकर, इनका दण्डवत् करना। इन्हें रामप्रिय जानकर मुनि का आशीर्वाद देना। उनसे यह सुनकर कि ये रामसखा, भरत का रथ त्यागकर चलना। भरत को अपनी ओर आते देख, अपना ग्राम, जाति और नाम बताकर, पृथ्वी पर मस्तक टेककर, इनका प्रणाम करना। भरत का इन्हें उठाना, प्रेमानन्द से गाढ़ालिंगन करना, मानो लक्ष्मण से भेंट हो गयी हो (२।१९३-५ - २।१९३)। अवधवासियों का इनके भाग्य से ईर्ष्या करना, देवताओं का मंगलसूचक धन्य-धन्य ध्वनि करते हुए इनकी सराहना करना, फूल बरसाना। उनका कथन — (चण्डाल जाति के होने के कारण) ये लोक और वेद, दोनों दृष्टियों से नीच। (दे० 'निषाद'।) इनकी छाया तक छू जाने से मार्जन का विधान, और इन्हीं को भरत का पुलकित हो हृदय

से लगाना! (इनके प्रेम के कारण) इन्हें तो राम ने पहले ही हृदय से लगाकर कुलसहित पवित्र कर दिया था (२।१९४।१ - ६; २।१९५।२)। [लोक में यह प्रसिद्धि कि राम के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहों की सत्शूद्रों में गिनती। इनका पानी चलने लगा। वि० २।१९४।६ व्या०।]

इनसे मिलकर भरत का कुशल-मंगल-क्षेम पूछना। उनके शील-स्नेह से इन्हें देह-सुधि का विस्मरण। संकोच-प्रेमानन्द से इनका एकटक उनको देखना। फिर धीरज धरकर पद-वन्दना कर विनय — उनके चरण-दर्शन और अनुग्रह से ही सब कुशल-मंगल। ये स्वभाव से कपटी, हृदय से कायर, बुद्धि से तामसी और जाति से लोक-वेद-बहिष्कृत अधम निषाद। किन्तु 'राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें।।' (२।१९५।३ - २।१९६।२)। फिर शत्रुघ्न का इनसे मिलना। (दूर से) अपना नाम कहकर सब रानियों को इनका प्रणाम करना। इन्हें लक्ष्मण-सम जानकर सबका आशीर्वाद देना (२।१९६।३-५)। इन्हें देख अवधवासियों को सुख। उनसे अपने भाग्य की बड़ाई सुन, प्रसन्नचित हो, सबको ले चलना। सेवकों को उनके ठहरने की उचित व्यवस्था करने का संकेत करना (२।१९६।६ - २।१९६)। शृंगवेरपुर के दर्शन से भरत के सर्वांग स्नेह-शिथिल। इनका सहारा लेकर उनका चलना। उस समय दोनों की ऐसी शोभा जैसे मूर्त्तिमान् अनुराग (भरत) और विनय (निषाद) हों। इनके साथ भरत का गंगा और रामघाट के दर्शन करना (२।१९७।१-४)।

अन्य कर्तव्यों से निवृत्त हो भरत का इन्हें बुलाना। सखा मानकर, इनके हाथ से हाथ मिलाये चलना। उनके कहने पर इनका उन्हें राम के विश्राम-स्थल शिंशपा वृक्ष के नीचे ले जाना (२।१९८।४ - २।१९८)। भरत का प्रेम, और ग्लानिभरे उद्गार (२।१९९।१ - २।२०१।६)। सुनकर इनका उन्हें प्रेमपूर्वक समझाना — उनका विषाद व्यर्थ। दोष केवल वाम विधाता का। राम उनके प्रिय और राम को उनके समान और कोई प्रिय नहीं। इनके वचन सुन भरत का धैर्य धारण करना (२।२०१।७ - २।२०२।१)। प्रातःकाल गंगा पार कर भरत-समाज के प्रस्थान करने पर इनका माताओं के आगे-आगे चलना। भरत का शत्रुघ्न को इनके साथ करना (२।२०३।१-२)। प्रयाग से चित्रकूट की ओर जाते हुए भरत का इनके हाथ का सहारा लेना (२।२१६।४)। यमुना-तट पर रातों-रात सब घाटों की नावों को एकत्र करने और प्रातःकाल एक ही खेवे में सबको यमुनापार करने की इनकी व्यवस्था से सब सन्तुष्ट। उस पार जाकर भरत-शत्रुघ्न के साथ इनका स्नान और नदी को प्रणाम कर प्रस्थान (२।२२१।२-४)। इनका सबको शैल-शिरोमणि चित्रकूट दिखाना (२।२२५।५)। (गुरु, माताओं और अवधवासियों को मन्दाकिनी-तट पर ठहराकर) इन्हें और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत का राम से मिलने जाना। मार्ग में उनकी दशा देख, उनके स्नेह और सोच को समझकर ये मग्न (२।२३३।६, २।२३४।८)। मंगल शकुन (= पक्षी, यहाँ पक्षियों की बोली) सुनकर, उन पर विचार कर, इनका कथन कि सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पुनः विवाद होगा (२।२३४)। ऊँचे चढ़कर, भुजा उठाकर, भरत को पाकर (वट-जाति का वृक्ष), जामुन, आम, तमाल के वृक्ष दिखाते हुए इनका कथन — उन वृक्षों के समीप ही नदी जहाँ राम की पर्णकुटी, सीता और लक्ष्मण द्वारा लगाये गये तुलसी के पौधे, जानकी द्वारा बनायी गयी वेदी। यह सुन, विटपों को देखकर भरत के नेत्रों में जल (२।२३७।१ - २।२३८।१)।

राम का भरत और शत्रुघ्न से मिलने के बाद इनसे मिलना। फिर लक्ष्मण का इन्हें हृदय से लगाना (२।२४१, २।२४२।१)। सबको प्रेममग्न देख, धीरज धरकर इनकी करबद्ध विनय कि मुनिनाथ के साथ विरह-विकल माताओं और अवधवासियों का भी आगमन (२।२४२।८, २।२४२)। (गुरु की अभ्यर्थना के लिए प्रस्थित प्रभु के साथ इनका भी गमन। यद्यपि शृंगवेरपुर से चित्रकूट तक की यात्रा में ये वसिष्ठ के साथ ही, फिर भी) गुरु को प्रभु के दण्डवत् करने पर इनका भी प्रेम-पुलकित हो दण्डवत् करना, किन्तु दूर से और अपना नाम कहकर (ताकि प्रेम की उमंग में गुरु का कहीं इनसे स्पर्श न हो जाये।) गुरु का इन्हें जबरदस्ती उठाकर गले से लगाना, मानो धरती पर लुढ़कते स्नेह (प्रेम, घी-तेल) को समेट लिया हो। [शृंगवेरपुर में मुनि का केवल आशीर्वाद देना, मिलना नहीं, क्योंकि उस समय वे रथ पर।] आकाश में देवताओं का फूल बरसाते हुए कथन — इनसे अधिक नीच कोई नहीं, वसिष्ठ से बड़ा कोई नहीं, फिर भी मुनि का इन्हें लक्ष्मण से अधिक मानकर मिलना रामभक्ति के प्रताप का सूचक (२।२४३।३ - २।२४३)। (गुरु का अनुसरण कर) पुरवासियों का भी इनसे मिलना और अपने भाग्य की (अथवा इनके भाग्य की — वि०) सराहना करना (२।२४४।५)। चित्रकूट से सबको विदा करने के बाद प्रभु का इन्हें विदा करना। इनके हृदय में विरह-जन्य विषाद (२।३२१।१)। लौटते समय दूसरे दिन जनक-भरत-समाज के गंगापार

शृंगवेरपुर में ठहरने पर इनके द्वारा उनकी सुविधा की व्यवस्था (२।३२२।४)।

[प्रत्यावर्तन के समय राम का हनुमान् को आदेश कि वे अयोध्या जाते समय मार्ग में इनसे मिलें और उनके आने की सूचना दें। उनके भरद्वाज-आश्रम में ठहरने का संवाद भी इन्हें हनुमान् से प्राप्त। अ० रा० ६।१४।३८-४०, ४७-४८, वा० रा० ६।१२५।२-७, २२-२४।] प्रभु के आगमन का समचार सुन इनका 'नाव-नाव' कहकर लोगों को पुकारना (६।१२१।६) ।(१– स्वयं उस पार जाने के लिए। वि०। २– प्रभु को इस पार लाने के लिए, क्योंकि विमान में उनके आने का इन्हें ज्ञान नहीं। मा० पी० नोट। प्रभु के आने पर इनका प्रेमाकुल होकर दौड़ना, उनके निकट जाना। वैदेहीसहित उन्हें देखकर देह-सुधि भूल धरती पर गिरना। प्रभु का इन्हें उठाकर हृदय से लगाना। 'सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।' अत्यन्त निकट बैठाकर कुशल पूछना। इनकी विनती – उनके पद-पंकज देखकर सब कुशल (६।१२१।१०-१२, ६।१२१।छं० १-२)। [प्रभु का इन्हें भी अपने साथ अवधपुरी ले जाना। मा० पी० ७।२०।१-२ नोट।] अयोध्या से सबकी बिदाई के बाद इन्हें बुलाना। प्रसादरूप में भूषण-वस्त्र देकर कथन – अब ये घर लौटें। उनका स्मरण और मन-वचन-कर्म से धर्म-पालन करें। ये उनके सखा और भरत-सम भाई। सदैव अवधपुरी आते-जाते रहें। सुनकर आनन्दातिरेक से सजलनयन हो इनका प्रभु के चरणों में गिरना। उनके चरण-कमल को हृदय में धारण कर लौटना और कुटुम्बियों को एकत्र कर प्रभु के स्वभाव का वर्णन करना (७।२०।१-५)। [अ० रा० ६।१६।१९ में प्रभु का यह भी कथन कि अन्त में इन्हें उनका सारूप्य प्राप्त होगा। (सारूप्य = भगवान् के समान रूप के होकर उनके पार्षद् बनकर रहना।] (दे० 'निषाद'।)

उल्लेख – शृंगवेरपुर में इनके विषाद का (२।९९), इनकी रामसेवा का (२।१५१।१), 'रामसखा तब नाव मगाई (१।१५१।३)। अवधवासियों द्वारा इनकी सराहना (२।२०२।६)। कथन – इन पर रामकृपा का (२।२५०।८), इनके रामप्रेम का (२।२६२।६)।

मूल शब्द – २।८८, २।८९।७, २।९०।३, २।१०२।१, २।१०४।२, २।१०४।३, २।१०४।७, २।१०४।८, २।१४४।१, २।१८९, २।१९१।७, २।१९२।७, २।१९३।८। गुहँ– २।८८।१। गुहा – ६।१२१।१०।

पर्याय – **केवट** – २।१५१।१, २।२३७।१, २।२४३।५, २।२४४।५। केवटु – २।२४१, २।२४२।८।

निषाद – २।९२।२, २।९९, २।१११।५, २।१९५।४, २।१९६।४, २।१९७।२, २।१९८।४, २।२०२।६, २।२३४।८, २।२५०।८, २।२६२।६, ६।१२१।६, ६।१२१।छं० २। निषादा – २।१८९।२, ७।२०।१। निषादु – २।१४२।५, २।१४३, २।१९६।६, २।१९६।८, २।२३४, २।२४२।१, निषादू – २।९०।५, २।९६।३, २।१४२।६, २।१४३।१, २।१९८।८, २।२०१।७, २।३२१।१।

निषादनाथ – २।१९२।४, २।२२१।४। निषादनाथु – २।२०३।१, २।२३३।६।

निषादपति – २।८९।४, २।१९०।

रामसखा – २।१५१।३, २।१९३।७, २।१९५।३, २।२१६।४, २।२२१।३, २।२२५।५, २।२४३।६, २।३२२।४।

गोदावरी – दक्षिण भारत की एक पुण्य नदी।

[नासिक जिले में त्र्यम्बक गाँव की पृष्ठवर्त्ती पहाड़ियों के विशाल जलागार में उद्गम। दौलतेश्वर के पास डेल्टा बनाते हुए सात धाराओं के रूप में बंगाल की खाड़ी से संगम। प्रति बारहवें वर्ष पुष्करम्-स्नान के लिए राजमुन्द्री के पास बहुत बड़ा मेला। हि० वि० को०।

कैलास गिरि पर गौतम का कठोर तप। लोक-कल्याण के निमित्त जटा-स्थित पावनी गंगा को ब्रह्मगिरि (त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंग के समीप) पर छोड़ने के लिए शंकर से उनकी प्रार्थना। प्रसन्न शंकर का गंगामयी जटा को ब्रह्मगिरि के शिखर पर रखना। गौतम की विनती पर त्रिधा विभक्त हो गंगा का स्वर्ग, मर्त्य, रसातल में फैल जाना। स्वर्ग में इनके चार रूप, मर्त्य में सात धाराएँ, रसातल में चार। इनका पूर्वी सागर से जा मिलना। शंकर द्वारा इनका माहात्म्य-कथन – ये पुण्य तीर्थस्वरूपा, मोक्षदायिनी। पंचभूतों में श्रेष्ठ जल, जलों में तीर्थजल, तीर्थजल में भागीरथी गंगा और उससे भी उत्कृष्ट गौतमी गंगा, क्योंकि ये शंकर की जटा के साथ लायी गयीं। ये ही गोदावरी। इनके नाम – माहेश्वरी, गंगा, गौतमी, वैष्णवी, गोदावरी, नन्दा, सुनन्दा, कामदायिनी ब्रह्मतेजःसमानीता, सर्वपापप्रणाशिनी। (गंगा का एक अंश जटा में अवशिष्ट। वही भगीरथ-आनीत भागीरथी गंगा।) सं० ब्रह्मपु० पृ० ३८५-३८८।]

गंगा आदि पुण्य नदियों के साथ इसके द्वारा मन्दाकिनी की प्रशंसा (२।१३८।४-५)। पंचवटी में इस नदी के निकट पर्णकुटी छाकर प्रभु का वास (३।१३)। 'गोदावरि तट आश्रम जहवाँ' (३।३०।५)।

मूल शब्द — ३।१३। गोदावरि — २।१३८।४, ३।३०।५।

गोमती — उत्तर प्रदेश की एक नदी।

[बनारस और गाजीपुर जिले की सीमा पर इसका गंगा में मिलना। बृ० को०। गंगा की सात धाराओं में एक। इसका जल पीने से पाप-नाश। महा० आदि० १६९।२०।२१। यह आदि गंगा कहलाती है। वि० १।१४३।५ व्या०।]

शतरूपासहित मनु का नैमिषारण्य में इसके तट पर पहुँचना। हर्षित होकर इसके निर्मल जल में स्नान (१।१४३।५)। चित्रकूट जाते हुए समाजसहित भरत का दूसरे दिन इसके तट पर वास (२।१८८।८)। लौटते समय तीसरे दिन दोनों समाज का इस नदी में स्नान (२।३२२।५)।

मूल शब्द — २।३२२।५। गोमति — २।१८८।८।

पर्याय — **धेनुमति** — १।१४३।५।

गौतम — एक ऋषि। वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षि में एक। दे० 'सप्तरिषि'।

(१) गौतम ~ अहल्या > शतानन्द > सत्यधृति > शरद्वान् > कृपाचार्य, कृपी।

भा० ६।२१।३४-३६।

(२) गौतम > शरद्वान्, चिरकारी, एक कन्या।

महा० आदि० १२९।२, शा० २६६।४, आश्व० ५६।२३।

[वा० रा० में — मिथिला के उपवन में इनका आश्रम। १।४८।११, १५, १६। ब्रह्मा द्वारा धरोहर के रूप में दी गयी अहल्या को इनका अनेक वर्षों तक अपने यहाँ रखना, फिर लौटा देना। इनके तप-संयम से प्रसन्न ब्रह्मा द्वारा इन्हें पत्नीरूप में अहल्या प्रदत्त। ७।३०।२६-२८। इन्द्र द्वारा उनका शील-हरण होने पर इनका उन्हें और इन्द्र को शाप। दे० 'अहल्या', 'सक्र'। अपने आश्रम का त्याग। हिमालय-शिखर पर जाकर तप। १।४८।३३। अहल्या के शाप-मुक्त होने पर उन्हें अपने साथ पाकर ये सुखी। इनके द्वारा राम का पूजन। १।४९।२१।

महा० में — पत्नी के व्यभिचार से कुपित हो पुत्र चिरकारी को उनके वध की आज्ञा देकर इनका वन-गमन। पत्नी-वध के अनौचित्य पर विचार कर ये सन्तप्त। इन्हें पश्चात्ताप। लौटकर पत्नी को जीवित पाकर प्रसन्न। चिरकारी को इनका वरदान। शा० २६६।७-८, ४५-६२, ६७।

गौतमगोत्रीय होने के कारण शरद्वान् को भी 'गौतम' कहा जाता है। कृप और कृपी के लिए भी 'गौतम' नाम का प्रयोग। आदि० १२९।२, ४७, आदि० १३०।१४। (आ० को० के अनुसार अहल्या के पति का नाम 'गोतम' और उनके पुत्र शतानन्द 'गौतम'।)

इनका आश्रम पारियात्र पर्वत पर भी। शा० १२९।४।

तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न कर इनका गौतमी गंगा को लाना। दे० 'गोदावरी'।

ध० इ० में — ये सामवेद की राणायनीय शाखा के नौ उपविभागों में से एक के आचार्य, शाखाकार। गौतम-धर्मसूत्र विद्यमान धर्मसूत्रों में सबसे प्राचीन। गौतम एक जातिगत नाम। कठोपनिषद् में नचिकेता एवं उनके पिता, दोनों गौतम नाम से अभिहित प्र० पृ० १०-११।]

राम के दर्शन करते हुए इन्द्र के लिए इनका शाप (सहस्राक्ष होने का) परम हितकर (१।३१७।६)।

गौरि — दे० 'भवानी'।

ग्रीषम (ग्रीष्म) — भारत की छः ऋतुओं में एक। इसके दो मास — ज्येष्ठ और आषाढ़।

रामकथा के अन्तर्गत राम — वनगमन अहस्य ग्रीष्म ऋतु, मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू (१।४२।४)। जप, तप, नियमरूपी जलाशयों को स्त्री का ग्रीष्मरूप होकर सोखना— राम-कथन नारद से (३।४४।२)। 'गत ग्रीषम बरषा रितु आई' (४।१२।८)।

मूल शब्द — १।४२।४, ३।४४।२, ४।१२।८।

घुनाच्छर न्याय (घुणाक्षर न्याय) — लकड़ी में घुणकीटों द्वारा निर्मित अक्षर का न्याय।

[लकड़ी में घुन लगने या पुस्तक में दीमक लगने से कुछ अक्षरों की आकृति से मिलते-जुलते चिह्नों का

अपने-आप बनना। अतः अनायास या अकस्मात् कोई कार्य हो जाने पर इस न्याय का प्रयोग। आ० को० ‘न्याय : १२’।]

ज्ञानमार्ग को कहना, समझना, साधना कठिन। दैवयोगात् घुणाक्षर न्याय से यदि यह सम्भव हो भी जाये, तब भी इसका विवेक होना कठिन, क्योंकि इसमें अनेक विघ्न जिनके कारण साधन की रक्षा दुष्कर (७।११८ ख)।

चंद्रमा^{1} — दे० ‘ससि’।

चंद्रमा^{2} — एक तपस्वी ऋषि।

[दक्षिण सागर के तटवर्ती विन्ध्यगिरि पर इनका पवित्र आश्रम। इनके द्वारा पुराण-कथित भविष्य का साक्षात्कार। पक्षरहित सम्पाति को आश्वासन। उनके द्वारा भविष्य में जगत्-कल्याण होने का निश्चय, अतः तत्काल उन्हें पक्षयुक्त करने में समर्थ होने पर भी ऐसा करने से ये विरत। रामावतार के समय रामदूतों को सीता का सन्धान देने पर उन्हें नये पंख प्राप्त होंगे। देशकाल की प्रतीक्षा करते हुए उसी स्थान पर रहने का उन्हें आदेश। वा० रा० ४।६०, ६२।]

पक्षहीन दग्ध सम्पाति को देख इन्हें उन पर दया। अनेक प्रकार से ज्ञानोपदेश कर उनका देहजन्य अभिमान छुड़ाना (४।२८।५-६)। [अ० रा० ४।८।१२-४७ में विस्तृत ज्ञानोपदेश।] इनका कथन — त्रेतायुग में ब्रह्म के मनुज-अवतार में उनकी पत्नी सीता का निशाचर द्वारा हरण होगा। सीता की खोज में निकले दूतों को उनका पता बताने पर सम्पाति पवित्र होंगे। उनके नये पंख उगेंगे। इनकी वाणी के सत्य होने का सम्पाति-कथन (४।२८।७-१०)।

मूल शब्द — ४।२८।५।

चंद्रहास — (चन्द्रस्येव शुक्लो हासो दीप्तिर्यस्य। ह० को०।) रावण के खंग का नाम।

[यह अत्यन्त दीप्तिमान्। रावण को शिव से वररूप में प्राप्त। इसे देकर शिव-कथन — इसका तिरस्कार होने पर यह पुनः उनके पास लौट जायेगा। वा० रा० ७।१६।४३-४५।]

अशोक-वाटिका में सीता द्वारा तिरस्कृत होने पर इस तलवार से उनका शिरश्छेद करने की रावण की धमकी। सीता के लिए इसकी तीक्ष्ण धार शीतल। उनका कथन कि यह उनके राम-विरह-परिताप का हरण करे (५।१०।१, ४-६)।

मूल शब्द — ५।१०।५।

चिंतामनि (चिन्तामणि) — एक काल्पनिक रत्न।

[यह कौस्तुभमणि के समान द्युतिमान्। सूर्य सदृश। इसके दर्शन, श्रवण, ध्यान से चिन्तित पदार्थ की प्राप्ति। इसकी कान्ति से काँसा (जस्ता), ताँबा, लोहा, पत्थर आदि सुवर्ण में परिणत। स्क० पु० ब्रह्म० ब्र० ५।१५-१७।]

रामचरित इस मणि के समान (१।३२।१)। [तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने। वि० प० २३५।] ‘चिंतामणि पुनि उपल’ (साधारण पत्थर)! —सरोष अंगद-कथन रावण से (६।२६।७)। ‘रामभगति चिंतामनि सुंदर’। इस रूपक में व्यक्त इसके गुण — यह परमप्रकाशरूप, तमनाशक, सुखदायी। इसके प्रभाव से प्रतिकूल भी अनुकूल। मनोयोगपूर्वक खोजने और यत्न करने पर पर्वत-गर्भ से पारखियों को इसकी प्राप्ति (७।१२०।१-१५)। अन्य आलंकारिक प्रयोग (२।११४।५)।

मूल शब्द — १।३२।१, ६।२६।७, ७।१२०।२।
पर्याय — **मनि** — ७।१२०।१, ७, ९, १०, ११, १५।
सुरमनि — २।११४।५।

चित्रकूट — (उत्तर प्रदेश में) बाँदा जिले का एक पर्वत। बृ० को०। मन्दाकिनी-तट पर स्थित। वन-गमन करते हुए राम-सिय-लक्ष्मण का यहाँ प्रथम वास।

[यह गन्धमादन-सा मनोहर। इसके शृंग-दर्शन से मन पाप-विमुख, पुण्यकर्म में संलग्न। वा० रा० २।५४।२६-३०। कामद कामतागिरि इसका एक शृंग (कामदमनि कामता कल्पतरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु। वि० प० २४।) इसके चारों ओर रमणीय वन। यहाँ अत्रि-पुत्रों के रूप में स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश का अवतार (जहँ जनमें जगजनक जगतपति बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंच छलु। वि० प० २४। दे० ‘अत्रि’।)। युधिष्ठिर और नल

यहाँ आकर विपद-मुक्त। वि० प० २४। गी० २।४३-५० में इसका विशद मनोरम वर्णन। भक्तों की मान्यता कि इसकी स्थिति नित्य। सिय-लक्ष्मणसहित प्रभु का यहाँ नित्य वास (चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लषन समेत। दो० ४१)।

इसके मेरु-शृंग होने के सम्बन्ध में एक कथा – एक बार मेरु के गर्व से कुपित वायुदेव का उसे उड़ा देने का निश्चय। उसकी सहायता के लिए भगवान् द्वारा गरुड़ प्रेरित। गरुड़ का उसे अपने डैनों से आच्छादित करना, अतः वायु के प्रचण्ड वेग से वह अनभिज्ञ। स्वयं वायु का सामना करने की उसकी उत्सुकता देख गरुड़ का जरा-सा डैना खिसकाना। इतने में ही उसके दो शृंगों का उड़ना। एक वृन्दावन में गिरकर गोवर्धन नाम से प्रसिद्ध। दूसरा विन्ध्य-शृंखला में गिर चित्रकूट नाम से प्रख्यात। वि० २।१३२ व्या०।]

वाल्मीकि का राम से यहाँ वास करने का कथन। [वा० रा० २।५४।२८-२९ में भरद्वाज-कथन।] यहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ (२।१३२।२-३)। सुहावना पर्वत। सुन्दर वन – पशु-पक्षियों का विहार-स्थल। पापनाशिनी मन्दाकिनी का प्रवाह। जप-तप-लीन योग-साधक अत्रि आदि मुनियों का निवास। यहाँ रहकर उनकी साधना को सफल करने, इस गिरिवर को गौरव देने का वाल्मीकि का राम से आग्रह (२।१३२।४-८)। उनके द्वारा इसकी अमित महिमा का वर्णन। (वि० प० २३ में कल्पवृक्ष के सांगरूपक में अपार महिमा वर्णित।) यहाँ आकर सीता सहित दोनों भाइयों का मन्दाकिनी में स्नान (२।१३२)। राम के आदेश से यहाँ ठहरने का प्रबन्ध करने के लिए लक्ष्मण द्वारा स्थान-निरीक्षण। नदी के उत्तरी तट पर एक नाला – धनुष की तरह मण्डलाकार घूमा हुआ, दोनों ओर नदी से मिला हुआ। लक्ष्मण का रूपक-कथन – नाला धनुष, नदी प्रत्यंचा, शम-दम-दान बाण, सकल कलि-कलुष अनेक लक्ष्य (निशाने), चित्रकूट अचल अहेरी। (अचल, क्योंकि एक स्थान पर स्थिर।) इसका निशाना अचूक (२।१३३।१-४) [चित्रकूट अचल अहेरी बैठ्यो घात मानो, पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै।। क० ७।१४२।] लक्ष्मण का यह कथन सुन, स्थान देख, राम को सुख। यहाँ राम के मन रमने का आभास पाकर विश्वकर्मासहित देवताओं का कोल-भीलों के वेश में आना। एक छोटी और एक बड़ी, दो पर्णशालाएँ बनाना। पर्णकुटी में जानकी-लक्ष्मण-सहित राम की शोभा, जैसे रति और वसन्त के साथ मुनिवेश में कामदेव हों (२।१३३।५ - २।१३३)।

उसी समय देव-नाग-किन्नर-दिक्पालों का यहाँ आना। पुष्पवर्षा। राम को देख वे आनन्दित, सनाथ (२।१३४।१-४)। मुनियों का आगमन। राम को हृदय से लगा आशीर्वाद देना। तीनों की छवि देख अपने सब साधनों को सफल मानना। यथायोग्य सम्मान पा, विदा हो, मुनियों का अपने-अपने आश्रमों में स्वतंत्रतापूर्वक जप-तप-योग-यज्ञ-साधन (२।१३४।५ - २।१३४)। कोल-भीलों का भेंट लेकर आना। उनकी प्रेमानन्द-विह्वलता। स्वयं को, वनवासी पशु-पक्षियों को, यहाँ की प्रकृति को धन्य मानना। उनका विनीत निवेदन – यहाँ छहों ऋतुएँ सुहावनी। सरोवर, निर्झर। बीहड़ वन, पर्वत, गुफाएँ, खोह। शिकार की सुविधा। हाथी, सिंह, बाघ, सर्प। इनसे रक्षा की प्रतिश्रुति। सपरिवार सेवा के लिए वे प्रस्तुत। प्रसन्न राम का उन्हें प्रेमपूर्वक विदा करना (२।१३५।१ - २।१३७।३)। जब से राम का यहाँ (वन में) वास, वन में मंगल। वृक्ष पल्लवित-पुष्पित, लताओं से मण्डित। उनकी शोभा, जैसे नन्दनवन त्यागकर कल्पवृक्ष ही यहाँ आये हों। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर। भ्रमरों का गुंजन। नीलकण्ठ, कोकिल, शुक, चातक, चकवा, चकोर आदि पक्षियों का कलरव। हाथी, सिंह, बन्दर, शूकर, मृग का वैर भूल सह-वास। मृगया के लिए घूमते राम को देख पशुओं को आनन्द (२।१३७।४ - २।१३८।२)। [सकल भुवन सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई। गी० २।४९।] जगत् में देवताओं के जितने वन, उन्हें रामवन को देखकर ईर्ष्या (क्योंकि वे सिय-राम के विहार-स्थल न बन सके) (२।१३८।३)। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि पुण्य-सलिलाओं के साथ सब नदी-नद-सर-सिन्धु द्वारा मन्दाकिनी की प्रशंसा (२।१३८।४-५)। देव-निवास-स्थान उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मन्दराचल, मेरु, हिमालय आदि द्वारा चित्रकूट का यशगान। अनायास अमित महिमा पाने के कारण विन्ध्याचल अति मुदित (क्योंकि चित्रकूट इसका एक शृंग) (२।१३८।६-८)। क्षीरसागर और अयोध्या को त्याग राम-सिय-लक्ष्मण का यहाँ वास। 'सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन।।' इसकी सुषमा और महिमा के वर्णन में शेष भी असमर्थ (२।१३८ - २।१३९।७)। यहाँ राम-सिय-लक्ष्मण की रहनि का वर्णन (२।१३९।८ - २।१४२।३)।

समाज-सहित भरत के चित्रकूट-प्रस्थान का कथन (२।१८७।७, २।२१६।३, २।२७१)। निषादराज का भरत को शैल-शिरोमणि दिखाना (२।२२५।५)। भरतादिका मन्दाकिनी-स्नान (२।२३३।४)। यहाँ के वन-शैल-समाज को देख भरत को अतिशय सुख (२।२३५।१-४)। विवेक-राजा के राज्य का सांगरूपक - यह वन ही पवित्र देश। वन-सम्पत्ति से शोभित। शान्ति और सुमति विवेक राजा की दो रानियाँ। विराग मन्त्री। यम-नियमादि योद्धा। पर्वत राजधानी। सेना-कोषादि सब अंगों से सम्पन्न विवेक राजा रामचरण-आश्रित, अतः सदा प्रसन्न। दलसहित मोह राजा को जीतकर उसका अकण्टक राज्य। इस राज्य में सुख-सम्पदा-सुकाल (ईति-भीति से मुक्ति) (२।२३५।५ - २।२३५)। इस वन-प्रदेश में अनेक मुनियों के आश्रम। वे ही मानो पुर, नगर, ग्राम और खेरे (पुरवा)। अनेक प्रकार के पशु-पक्षी ही मानो प्रजा-समाज। वैर त्यागकर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरण करते हुए गैंडे, हाथी, सिंह, व्याघ्र, शूकर, महिष, वृषभ मानो चतुरंगिणी सेना। निर्झर-रव, मत्त हाथियों का गर्जन, मानो अनेक प्रकार के डंकों की ध्वनि। चकवा-चकोर-चातक-शुक-पिक-मरालों का कूजन, भ्रमरों का गुंजन-गान, मोरों का नर्त्तन, जैसे सुराज में चतुर्दिक् मंगलोत्सव। वेलि-विटपं-तृण फल-फूल-सम्पन्न। इस तरह सारा समाज आनन्द-मंगल-मूल (२।२३६।१-८)। 'राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु' (२।२३६)। मन्दाकिनी-तट पर, पर्णकुटी के निकट, पाँच विशाल वृक्ष — पाकर, जामुन, आम, तमाल और इनसे घिरा हुआ लाल फलोंवाला नील सघन वट, जैसे तिमिर-अरुणिमा की सुषमा-राशि। इसकी छाया में सीता-निर्मित वेदिका। यहाँ मुनियों की सभा। वेद-पुराणादि कथन-श्रवण। अनेक प्रकार के तुलसी के पौधे (२।२३७।१-२।२३७)। राम-चरणांकित धूलि को हर्षित भरत का हृदय और आँखों से लगाना, मस्तक पर धारण करना। उनकी यह गति देख साधक-सिद्ध, पशु-पक्षी, सब प्रेम-मग्न (२।२३८-३-७)। अवध-वासियों द्वारा त्रिकाल मन्दाकिनी स्नान। राम-शैल और राम-वन के दर्शन,'जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं'। चौदह वर्षों तक यहीं सुख-वास की दोनों समाज की लालसा। शैल-वन-वर्णन (२।२४६।३ - २।२४६, २।२८०।६-८)। रामघाट में सबका स्नान (२।२७७।६)। राम-प्रभाव से यहाँ के पर्वत कामद, विषादहारी। वन में उछाह। 'जनु महि करति जनक पहुनाई' (२।२७६।१-५)। 'चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन⋯' (२।३०८।३-४,६)। यहाँ अनादि सिद्धपीठ, भरतकूप (दे० 'भरतकूप')। अत्रि के साथ समाजसहित भरत का राम-वन-दर्शन। यहाँ की भूमि-पशु-पक्षी-वनस्पति-प्रकृति द्वारा उनका अभिनन्दन। वनदेवों का आशीर्वाद (२।३११।३ - २।३१२।८)। 'देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माँझ।।' (२।३१२)। सबको विदा कर प्रिय परिजन-वियोग से राम दुखी। यहाँ के चर-अचर भी उदास (क्योंकि यहाँ के अधिष्ठातृ देवता स्वयं वियोग-व्यथित। वि०।)। (२।३२१।३-६)। 'रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना।।' (३।३।१)। उनके यहाँ निवास के सम्बन्ध में सबको ज्ञात। भीड़ होने का निश्चय। अतः मुनियों से विदा लेकर सिय-लक्ष्मण-सहित यहाँ से उनका प्रस्थान। 'चले बनहि सुर नर मुनि ईसा' (३।३।२-३, ३।७।१)।

[यहीं अवध-समाज और जनक-समाज की राम के साथ सभाएँ, भरत द्वारा पादुका-प्राप्ति, जयन्त-धृष्टता-प्रसंग, अत्रि द्वारा राम-स्तुति, अनसूया का सीता को नारि-धर्म उपदेश।] लौटते समय प्रभु का यहाँ आना। मुनियों को सन्तुष्ट कर प्रस्थान (६।१२०।३)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में प्रभु के यहाँ वास का कथन (७।६५।४)।

भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त इसकी सार्वकालिक भावात्मक सत्ता भी —साधक-सन्त के निर्मल चित्त में। (मन्दाकिनीरूपा) राम-कथा के श्रवण-कथन से चित्त की जो प्रेम-मग्नता, वही वन। इसमें सिय-राम का नित्य विहार (१।३१)।

मूल शब्द — १।३१, २।१३२।३, २।१३२, २।१३३।४, २।१३४।१, २।१३४।५, २।१३८।७, २।१३८, २।१८७।७, २।२१६।३, २।१७१, २।३०८।३, २।३२१।६, ३।३।१, ६।१२०।३, ७।६५।४।

पर्याय — **गिरिबर** — २।१३२।८।

रामगिरि — २।२८०।७।

राम सैल — २।२३६, २।२४६।५।

सैल सिरोमनि — २।२२५।५।

चित्रकेतु — शूरसेन देश के चक्रवर्ती सम्राट्। जितेन्द्रिय और भगवद्भक्त।

[इनकी एक करोड़ रानियाँ, किन्तु सन्तान किसी से नहीं। अंगिरा ऋषि द्वारा प्रदत्त यजन-चरु से बड़ी रानी गर्भवती। उनसे हर्ष और शोक देनेवाला एक पुत्र उत्पन्न। अन्य रानियाँ चित्रकेतु द्वारा उपेक्षित। ईर्ष्यावश उनका बालक को विष देना। बालक की मृत्यु से राजा शोक-सन्तप्त, चेतनाहीन। अंगिरा और नारद का इन्हें प्रबोधन। नारद द्वारा आहूत राजकुमार की जीवात्मा का प्रत्यक्ष होकर सांसारिक सम्बन्धों की अनित्यता और आत्मा की नित्यता प्रतिपादित करना। दोनों ऋषियों का उपदेश। राजा में विवेकबुद्धि जाग्रत। नारद द्वारा उपदिष्ट विद्या का अनुष्ठान करने पर इन्हें विद्याधरों का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त। भगवान् अनन्त के दर्शन और उपदेश से ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न और सिद्ध।

एक दिन भगवान् के दिये हुए तेजोमय विमान पर जाते हुए इन्हें मुनियों की सभा में सिद्ध-चारणों के बीच बैठे शंकर के दर्शन। पार्वती को गोद में बैठाए एक हाथ से उनका आलिंगन किये हुए शंकर के प्रति इनकी व्यंग्योक्ति। इस धृष्टता पर पार्वती का इन्हें शाप — ये असुरयोनि में जन्म लें। शाप सुन, विमान से उतर ये क्षमाप्रार्थी। पार्वती को प्रसन्न कर इनका गमन। शंकर द्वारा इनकी प्रशंसा। शुकदेव-कथन — ये भगवती को बदले में शाप दे सकते थे, पर शाप न दे पार्वती का शाप इन्होंने धारण किया। ये ही दानवयोनि में त्वष्टा की दक्षिणाग्नि से उत्पन्न वृत्रासुर। भा० ६।१४-१७।]

नारद द्वारा इनका घर उजाड़े जाने का सप्तर्षि-कथन पार्वती से (१।७६।२)।

चिरजीवी मुनि — मार्कण्डेय ब्रह्मर्षि।

मनु ~ शतरूपा > देवहूति > कर्दम > ख्याति ~ भृगु > धाता ~ मेरुपुत्री आयति > मृकण्ड > मार्कण्डेय। भा० ३।१२।५४, ५६; ३।२४।२३; ४।१।४३-४५।

[भारतीय परम्परा में यह मान्यता कि कुछ मनीषी चिरंजीवी। इनके नाम — 'अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।। आ० को०, ह० को० 'सप्तैतान् संस्मरेत् प्रातः मार्कण्डेयमथाष्टमम्।' ह० को०। मा० पी० २।२८६।७ शब्दार्थ में उद्धृत 'प्रस्तावचिन्तामणि' के श्लोक में 'कृपः परशुरामश्च' के स्थान पर 'मार्कण्डेयो जैमिनिश्च'। लोमश एवं भुशुण्डि भी चिरजीवी (दे० 'लोमस', 'काकभुसुंडि')। प्रस्तुत प्रसंग में मार्कण्डेय ही अभिप्रेत।

इनके द्वारा विधिपूर्वक वेदाध्ययन, तप-स्वाध्याय। ये जटा-वल्कल-कमण्डलु-दण्ड-यज्ञोपवीत-मेखला-धारी। आजीवन ब्रह्मचारी। कृष्णमृग-चर्म, रुद्राक्ष-माला और कुश ही इनकी सम्पत्ति। दीर्घकालीन तप और भगवदाराधन से मृत्यु पर विजय। परमात्म-ध्यान करते छः मन्वन्तर व्यतीत। सातवें मन्वन्तर में इन्द्र को शंका। इनका तप भंग करने के लिए उनके द्वारा प्रेरित कामदेव आदि सारे प्रयत्न कर विफल। इनके अपरिमित तेज से व्याकुल हो उनका पलायन।

इनके तप से प्रसन्न भगवान् नर-नारायण का प्राकट्य। उनसे भगवन्माया-दर्शन की इनकी वर-याचना।

एक दिन जब ये भगवदुपासना में तन्मय, तभी प्रलय-समुद्र का उद्वेलन। त्रिलोक जल-प्रलय में निमज्जित। केवल ये शेष। क्षुधा-तृषा, जल-जन्तु, भीषण लहरें, प्रचण्ड पवन। प्राणरक्षा के लिए इनका इधर-उधर भटकना। ये श्रान्त-क्लान्त। व्याकुल। दिक्-ज्ञान-शून्य। कभी शोकग्रस्त, कभी मोहमग्न। दीर्घकाल तक भटकते हुए अन्ततः एक टीले पर छोटे-से वटवृक्ष का दर्शन। उस पर पत्ते के दोने में लेटा हुआ, कर-कमलों से चरण-कमल को मुख में डाल चूसता हुआ, एक अतीव सुन्दर दिव्य शिशु। उसके दर्शन से इनकी क्लान्ति दूर। आनन्द-पुलक। जिज्ञासावश उसके निकट जाते ही उसकी श्वास के साथ उसके शरीर में प्रवेश। वहाँ सर्वांगीण सृष्टि के दर्शन। उस विश्व को देखते-देखते शिशु की श्वास के साथ पुनः बाहर आ प्रलय-जल में गिरना। वहाँ वही वटवृक्ष। उसके पत्र-पुट में वही शिशु। उसके अधरों पर प्रेमसुधा-स्मिति। उसके आलिंगन के लिए इनके आगे बढ़ने पर वह अन्तर्धान। वटवृक्ष और प्रलय-जल भी विलीन। ये पूर्ववत् अपने आश्रम में स्थित।

नारायण के योगमाया-वैभव का इन्हें अनुभव। उससे मुक्ति के लिए नारायण के शरणागत। भगवद्भाव में तन्मय। वहाँ आये गौरी-शंकर की उपस्थिति से अनभिज्ञ। शिव का इनके हृदयाकाश में प्रवेश। वहाँ उन्हें देखते ही ये समाधि से जागृत। उनकी स्तुति। भगवान् और उनके शरणागत भक्तों में अविचल भक्ति की वर-याचना। वर-रूप में अजरता-अमरता, त्रिकाल-ज्ञान के अधिष्ठानरूप ज्ञान-वैराग्ययुक्त स्वरूप-स्थिति, एवं पुराण के आचार्यत्व

की प्राप्ति। भा० १२-८-१०।

इनका आश्रम हिमालय के उत्तर की ओर, पुष्पभद्रा नदी के निकट। भा० १२।८।१७। महा० अनु० १४६।४ में इनकी पत्नी धूमोर्णा। न० पु० १०।२ में इनके पुत्र वेदशिरा। भा० १२।८।८, १२।६।३ में ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी।]

जिस प्रकार ये प्रलय-समुद्र में भटकते हुए व्याकुल, पर डूबे नहीं, उसी प्रकार (सीता-) अनुराग-सागर में निमज्जित जनक का ज्ञान विकल, फिर भी डूबा नहीं, अनुराग-सागर पर तैरता रहा। विकलता में ये वट-स्थित बालरूप प्रभु के आश्रित। जनक-पक्ष में उनका सिय-प्रेम ही वट। सागर के साथ वट का, अनुराग के साथ सिय-प्रेम का बढ़ना। सियप्रेम-वट पर आश्रित बालप्रभु-रूप-राम-स्नेह। इस तरह जनक के सिय-प्रेम से उनका रामप्रेम जुड़ा हुआ। राम का आश्रय पाने के कारण उनके ज्ञान की रक्षा (२।२८६।५-७)।

मूल शब्द — २।२८६।७।

चौपाई — एक मात्रिक छन्द।

[इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ। केवल द्विकल और त्रिकल (कल = मात्रा) का प्रयोग। द्विकल के बाद द्विकल और त्रिकल के बाद त्रिकल होना चाहिए। त्रिकल के बाद दो गुरु। चरणान्त में जगण (।ऽ।), अथवा तगण (ऽऽ।), अर्थात् गुरु लघु नहीं, प्रत्युत एक या दो गुरु होने चाहिए। दो गुरु वर्णों से अन्त होनेवाले चरण श्रवण-सुखद। मानस में कहीं-कहीं ऐसी चौपाई जिसके अन्त में एक ही गुरु अथवा दो या तीन लघु वर्ण। काव्य०।

चौपाई में चरणों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद। कुछ विद्वानों के अनुसार चार चरण या पाद, जिनमें चारों का तुकान्त समान। कुछ के अनुसार चौपाई में दो ही चरण जिनके अन्त में तुक मिलना चाहिए। मा० पी० १।३७।४ नोट २। (प्रस्तुत ग्रन्थ में मा० पी० के आधार पर दो चरणों के दल को एक चौपाई माना गया है।)]

यह मानस-सर में सघन कमल-पत्र (१।३७।४)। पाँच-सात (अर्थात् कुछ) चौपाइयों को हृदय में धारण करने पर पंचपर्वा अविद्याजन्य विकार दूर (७।१३०।छं० २)। (पंचपर्वा अविद्या के लिए दे० 'माया', अनुच्छेद १४।)

छंद — अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित, विशिष्ट नियमों से नियोजित, पद्य-रचना। वेद के छः अंगों में एक। सा० को०।

[इसमें मात्रा और वर्ण, दो का विचार। मात्रा की गणना के अनुसार बने छन्द 'मात्रावृत्त' या 'जाति'। वर्णों की गणना के अनुसार बने छन्द 'वर्णवृत्त' या 'वृत्त'। प्रत्येक छन्द में चार चरण या पाद। किसी छन्द के चार चरण दो ही पंक्ति में लिखे जायें, तो प्रत्येक पंक्ति का नाम 'दल'। वा० वि०।

मानस में दोहा, चौपाई और सोरठा के अतिरिक्त प्रायः सोलह प्रकार के छन्दों का प्रयोग — अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीड़ित, वसन्ततिलका, हरिगीतिका, चवपैया, त्रिभंगी, इन्द्रवज्रा, वंशस्थविलम्, नगस्वरूपिणी, तोमर, मालिनी, स्रग्धरा, डिल्ला, तोटक, रथोद्धता, भुजंगप्रयात। मा० पी० १।३७।५ नोट १। इन छन्दों में हरिगीतिका का बाहुल्य।]

छन्दों के कर्त्ता वाणीविनायक की वन्दना (१।१।श्लो०१)। मानस में अनेक प्रकार के छन्द होने का कथन (१।६।६)। सोरठे, दोहे के साथ ये भी मानस-सर के बहुरंगी कमल-समूह (१।३७।५)। रथारूढ़ विप्र-वृन्द 'जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा (१।३००।४)।

मूल शब्द — १।१।श्लो०१, १।६।६, १।३७।५। छंदा — १।३००।४।

छीरसागर (क्षीरसागर) — दुग्ध का समुद्र। सप्तसागरों में पंचम। भा० ५।२०।१८। वि० पु० २।४।७२ के अनुसार षष्ठ।

[यह सुरभि गौ की दुग्धधारा से निर्मित। वा० रा० ७।२३।२१, महा० उद्यो० १०२।४। शुभ्रमेघाभ मुक्ताहार-सी लहरों से शोभित। इसके मध्य में श्वेतवर्णी ऋषभ पर्वत। इसका आश्रय लेकर फेनपायी महर्षियों का जीवन-धारण। वा० रा० ४।४०।४३-४४, ७।२३।२३।

इसका मन्थन — ऋषि दुर्वासा की माला का अनादर करने के कारण त्रिलोक-सहित इन्द्र श्रीहीन, सत्वरहित। वि० पु० १।६।२-३०, भा० ८।५।१६। दे० 'दुरबासा'। दैत्यों का आक्रमण। देवता पराजित। वि० पु० १।६।३४। ब्रह्मा के साथ देवताओं द्वारा भगवत्-स्तुति। दैत्यों से सन्धि करके अमृत-प्राप्ति के लिए क्षीराब्धि-मन्थन की प्रभु-आज्ञा। भा० ८।५।२४ से ८।६।२५, वि० पु० १।६।३८-८१। सागर-मन्थन के लिए कच्छपरूप भगवान् की पीठ पर मन्दराचल की मथानी, वासुकि नाग की नेती। वासुकि के मुख की ओर दैत्य, पूँछ की ओर देवता। प्रभु-कृपा

से क्षीराब्धि-मंथन। सर्वप्रथम हालाहल विष उत्पन्न। उसका शंकर द्वारा पान। फिर क्रमशः कामधेनु, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत गज, कौस्तुभ मणि, पारिजात वृक्ष, अप्सरागण, लक्ष्मी देवी एवं वारुणी देवी का प्राकट्य। कौस्तुभ और लक्ष्मी का भगवान् द्वारा वरण, उच्चैःश्रवा और वारुणी असुरों को प्राप्त, कामधेनु का ऋषियों द्वारा और शेष का देवताओं द्वारा ग्रहण। अन्त में धन्वन्तरि का प्राकट्य। उनके हाथ में अमृत-कलश देख दैत्यों का उसे छीनकर भागना। भगवान् का मोहिनी रूप धर दैत्यों को मुग्ध करना, उनको वंचित कर देवताओं को अमृत-पान कराना। देववेश में राहु को अमृत पीते देख सूर्य-चन्द्र का उसकी वास्तविकता प्रकट करना। प्रभु के चक्र से उसका शिरश्छेद। अमृत-संसर्ग से अमर सिर ब्रह्मा द्वारा ग्रहरूप में परिणत। भा० ८।६।३२ - ८।९।२७।

वा० रा० १।४५।१८-४३, वि० पु० १।९।८२-१०९, प० पु० सृ० ४।४४-५९ में भी इसके मन्थन से अमृत-प्राप्ति। (महा० आदि० १७।१२ में इसके स्थान पर 'महोदधि'।) प० पु० उ० २३१।४५-४८ में इसका मन्थन लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए।

यह प्रसिद्ध कि इसमें से चौदह रत्न निकले, किन्तु विभिन्न ग्रन्थों में रत्नों के नाम, संख्या एवं उत्पत्ति-क्रम में भिन्नता। प० पु० उ० २३२।१०-५६ में चौदह नाम क्रमशः (१) कालकूट, (२) ज्येष्ठा देवी (अलक्ष्मी), (३) वारुणी देवी (उनका नागराज अनन्त द्वारा ग्रहण), (४) सर्वलक्षणशोभिता स्त्री (गरुड़ का उन्हें भार्या बनाना), (५) दिव्य अप्सरागण, (६) गन्धर्व, (७) ऐरावत, (८) उच्चैःश्रवा, (९) धन्वन्तरि, (१०) पारिजात वृक्ष, (११) सुरभि गौ (उपर्युक्त ७-११ का इन्द्र द्वारा ग्रहण), (१२) महालक्ष्मी, (१३) चन्द्र, (१४) हरिप्रिय तुलसी। यहाँ अमृत का उल्लेख नहीं। प० पु० सृ० ४।४४-५९ में उल्लिखित ग्यारह रत्न क्रमशः (१) सुरभि, (२) वारुणी देवी (३) पारिजात, (४) अप्सरागण, (५) शीतांशु, (६) कालकूट विष, (७) धन्वन्तरि, (८) अमृत, (९) अश्व (उच्चैःश्रव), (१०) ऐरावत एवं (११) श्रीदेवी।

जलन्धर को दिये गये वरदान के फलस्वरूप विष्णु का इसमें वास। प० पु० उ० ८।८५-८७। यह विष्णु का प्रिय धाम। इसके उत्तर में स्थित श्वेतद्वीप (महा० शा० ३३५।८) उनका दूसरा प्रिय धाम। भा० ८।४।१८।]

एक बार लक्ष्मीनिवास भगवान् से मिलने के लिए नारद का यहाँ आना (१।१२८।४)। 'कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई' (१।१८५।२)। जैसे इसके द्वारा हरि को श्री समर्पित; वैसे ही जनक द्वारा राम को सीता (१।३२४।छं०४), मूर्त्तिमान् अग्नि द्वारा राम को सत्य सीता (जो ३।२४।२-४ में अपना प्रतिबिम्ब बाहर रखकर अनल में समा गयी थी।) (६।१०९।छं० २)। 'पय पयोधि तजि अवध बिहाई' (२।१३९।५)। 'कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ' (२।२३१)।

मूल शब्द — ६।१०९।छं० २।
पर्याय — **छीरसिंधु** — १।१२८।४, २।२३१।
पयनिधि — १।१८५।२।
पय पयोधि — २।१३९।५।
सागर — १।३२४।छं०४।

जजाति (ययाति) — चन्द्रवंशी धर्मज्ञ नरेश।

नहुष > ययाति ~ (१) देवयानी (शुक्राचार्य-कन्या) > यदु, तुर्वसु, (२) शर्मिष्ठा (दानवराज वृषपर्वा की पुत्री) > द्रुह्यु, अनु, पूरु। भा० ९।१८।१,४,३३।

[अग्रज यति के राज्य स्वीकार न करने पर ये सम्राट्। शासन के लिए इनके द्वारा चारों भाइयों की चारों दिशाओं में नियुक्ति।

एक बार शिकार खेलते हुए तृषाकुल हो इनका एक कुएँ में झाँकना। उसमें शर्मिष्ठा द्वारा ढकेली गयी देवयानी के दर्शन। हाथ पकड़कर उन्हें बाहर निकालना। देवयानी-कथन — अब इनके अतिरिक्त और कोई उनका हाथ न पकड़े। इसे प्रारब्ध मानकर इनका स्वीकार करना। देवयानी से विवाह हो जाने पर शर्मिष्ठा को उनकी दासी के रूप में इन्हें देकर शुक्राचार्य का कथन — शर्मिष्ठा कभी इनकी सेज पर न आये। समयानुसार देवयानी पुत्रवती। यह देख एकान्त में शर्मिष्ठा की भी इनसे पुत्र के लिए सहवास-याचना। यह इनकी दृष्टि में धर्मसंगत। शुक्राचार्य का कथन याद रहने पर भी प्रारब्ध को स्वीकारना। शर्मिष्ठा से इनके तीन पुत्रों का जन्म। यह सब जानकर देवयानी

क्रोधाकुल। उनका पितृगृह-गमन। मनाने के लिए उनके पीछे-पीछे इनका भी जाना। इन्हें शुक्राचार्य का शाप — कुरूप करनेवाली जरावस्था इन्हें प्राप्त हो। शाप से पुत्री का भी अनिष्ट जान उनका अनुग्रह — जो प्रसन्नतापूर्वक इन्हें अपना यौवन देने को प्रस्तुत हो, उससे ये अपना बुढ़ापा बदल लें। इनके चार पुत्रों द्वारा इनका प्रस्ताव तिरस्कृत। (महा० आदि० ८४ में उन चारों को इनका शाप।)। पितृभक्त कनिष्ट पूरु का इनकी वृद्धावस्था को स्वीकारना। उसका यौवन पाकर इनके द्वारा यथावसर यथाप्राप्त विषयों का यथेच्छ उपभोग। देवयानी इनकी प्रियतमा। इनके द्वारा अनेक यज्ञों से भगवान् का यजन।

सहस्त्र वर्षों तक विषयों का उपभोग करने पर भी इन्हें तृप्ति नहीं। तब इनके मन में विराग। देवयानी से मन की बात कहना। पूरु को यौवन लौटाकर अपना बुढ़ापा लेना। चारों पुत्रों को चारों दिशाओं का राज्य देकर (महा० आदि० ८५ में चारों को राज्य से वंचित करके) पूरु को अपने राज्य पर अभिषिक्त करना। तत्पश्चात् वन-गमन। आसक्तियों से मुक्ति। आत्म-साक्षात्कार। इन्हें भागवती गति प्राप्त। भा० ९।१८-१९।

महा० के अनुसार वन में दीर्घकाल की तपस्या के बाद इनका स्वर्ग-गमन। वहाँ इनके मन में मोह, अहंकार। किसी को अपने समान न समझना। फलतः इन्द्रलोक से पतन। साधु पुरुषों के बीच गिरने की कामना के कारण अपनी कन्या माधवी के पुत्रों के बीच पहुँचना। धरती का स्पर्श न करना। चारों दौहित्रों के पुण्यफल से इनका पुनः स्वर्गारोहण। महा० आदि० ८६-९३, उद्यो० १२०-१२३।(आदि० ९३ में स्वर्ग-गमन दौहित्रोंसहित।)

ऋग्वेद में ये प्राचीन यज्ञकर्ता। वेद की ऋचाओं के द्रष्टा (प्रा० च०।]

राम-वियोग से दशरथ की स्थिति— 'सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती' (२।१४८।६)। 'तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ।।'—वसिष्ठ-कथन भरत से (२।१७४।८)।

मूल शब्द — २।१७४।८। जजाती—२।१४८।६।

जटायु (जटायु) — १. प्रजापति कश्यप ~ (दक्षकन्या) ताम्रा > कन्या शुकी > पौत्री विनता > गरुड़, अरुण। अरुण > सम्पाति, जटायु। वा० रा० ३।१४।९, ११, ३१-३३।

२. प्रजापति दक्ष > विनता ~ कश्यप > अरुण (गरुण-अग्रज) ~ (ताम्रापुत्री) श्येनी > सम्पाति, जटायु। महा० आदि० १६।५, ६, ९, १४, २२-२४; ६६।५६, ६९, ७०। दशरथ-मित्र। वा० रा० ३।१४।३। रामभक्त।

[ये कामरूप। पक्षियों के राजा। साठ हजार वर्षों की आयु। वा० रा० ४।६०।१९, ३।५०।२०। दशरथ के मित्र, अतः राम को 'वत्स' कहकर सम्बोधन। पंचवटी जाते हुए राम का इन्हें सीता का संरक्षण सौंपना। वा० रा० ३।१४।३, ३६।

दशरथ से मित्रता की कथा — (१) एक बार संवत्सर सुनाते हुए वसिष्ठ-कथन कि शनि अपना स्थान छोड़कर निकलेंगे जिससे बारह वर्षों तक अनावृष्टि होगी। उनसे शनि का मार्ग पूछ राजा दशरथ का रथारूढ़ हो उसी मार्ग पर जाना। शनि की कड़ी दृष्टि पड़ना। राजा महातेजस्वी, अतः अप्रभावित, किन्तु रथ प्राकृत, अतः भस्म। निराधार राजा का आकाशमार्ग में गिरना। इतने में वहाँ पहुँच जटायु का उन्हें पीठ पर बैठाना। राजा का शनि के प्रति शर-संधान। राजा के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए भयभीत शनि का उन्हें वर माँगने के लिए कहना। — इस कथा के प० पु० में होने का कथन, किन्तु प० पु० उ० ६।३४ की दशरथ-शनि-संबंधी कथा में जटायु का उल्लेख नहीं। (२) कौसल्या से विवाह के लिए दशरथ की बरात का नाव से प्रस्थान। रावण द्वारा विघ्न। नदी में बाढ़। नाव का टूटना। बहते हुए दशरथ का एक टापू से लगना। गुरु वसिष्ठ भी उनके साथ। राजा को चिन्ता। तब उन्हें पीठ पर बैठा जटायु का कोसलपुर पहुँचाना। —कहते हैं, यह कथा आग्नेय रामायण में है। (३) दशरथ का इन्द्र की सहायतार्थ नमुचि-युद्ध में जाना। चटायु-चेष्टा से नमुचि का शिरस्त्राण उड़ जाना। तभी दशरथ के बाण से दैत्य का नाश। —इसके 'भावार्थ रामायण' में होने का कथन। — तीनों कथाएँ मा० पी० ३।१३। नोट २ में।

सूर्य तक पहुँचने की सम्पाति के साथ इनकी शर्त। दे० 'संपाति'।]

अधम-योनि होने पर भी शबरी के साथ 'सुसेवक' रूप में इनके सुगति पाने का कथन (१।२४)। अगस्त्य-आदेश से पंचवटी की ओर जाते हुए प्रभु की इनसे भेंट। प्रभु का प्रीति बढ़ाना (३।१३)। रावण द्वारा हृत सीता का आर्त्त विलाप सुन इनका उन्हें पहचानना। पुत्री कहकर निर्भय होने का आश्वासन और रावण का नाश करने का कथन (३।२९।६-९)। क्रुद्ध होकर वज्र की तरह रावण की ओर बढ़ते हुए उसको ललकारना। इन्हें देख

रावण को यमराज, मैनाक और गरुड का भ्रम। इनके निकट जाने पर उसका पहचानना। उपहास करना। उससे सीता को छोड़कर सकुशल लौट जाने का, अन्यथा राम-रोष-पावक से कुलसहित भस्म होने का, इनका कथन (३।२९।१०-१७)। रावण से कोई उत्तर न पा क्रोध से झपटना। केश पकड़ उसे रथ से पृथ्वी पर गिराना। सीता को एक ओर बैठाकर लौटना और चोंच मार-मारकर उसे विदीर्ण करना। घड़ीभर के लिए उसे मूर्च्छा। तब उसका क्षोभ-क्रोध से भर कराल कृपाण निकाल इनके पंख काट डालना। राम की अद्‌भुत लीला का स्मरण कर इनका धरती पर गिरना। राम के चिह्नांकित चरणों का स्मरण करना। (३।२९।१८-२२)। सीता के लिए विलाप करते हुए राम का इन्हें पड़े हुए देख, इनके सिर पर हाथ फेरना। उनकी मुखछवि देख ये पीड़ामुक्त। रावण द्वारा अपनी ऐसी गति किये जाने का, सीता के हरण और विलाप तथा रावण के दक्षिण की ओर गमन का इनका कथन। राम-दर्शन के लिए ही अब तक इनका प्राण-धारण करना। राम का इनसे जीवित रहने के लिए कहना। इनका मुसकाना। जिनके नाम-स्मरण से अधम को भी मुक्ति प्राप्त, वे ही प्रभु नेत्रों के सामने। अब देह-धारण का प्रयोजन क्या! आंखों में आँसू भर राम का कथन — ये अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण ही दुर्लभ गति के अधिकारी। परहित-निरत के लिए जग में कुछ भी अप्राप्य नहीं। 'तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा।।' जाकर पिता दशरथ से सीता-हरण का समाचार न कहने का अनुरोध (३।३०।१८ - ३।३१)। इनका देह-त्याग। भूषण-पीताम्बर-मण्डित श्यामवर्ण चतुर्भुज रूप धर आँखों में आँसू भर प्रभु के निर्गुण-सगुण रूप की स्तुति। अविरल भक्ति का वरदान पा हरिधाम-गमन। राम का अपने हाथों से इनकी क्रिया करना (३।३२।१-३।३२)।

आमिषभोजी अधम खग होने पर भी राम का इन्हें दुर्लभ गति देना— शिव कथन (३।३३।२)। वानरों को सम्पाति के भय से आतंकित देख अंगद का जटायु-प्रसंग छेड़ना (४।२७।७-८)। भुशुण्डिकथित मूल रामायण में प्रभु की इनसे मैत्री और उनके द्वारा इनकी क्रिया का कथन (७।६६।१,७)। राम-भजन से गति पानेवालों में इनका उल्लेख (७।१३०।छं०१)।

मूल शब्द— जटायू— ३।२९।१४, ४।२७।७।

पर्याय— **खग** (काकभुशुंडि, गरुड़, संपाति भी)—३।२९।१०, ३।२९।२२।

गीध (संपाति भी) — १।२४, ३।२९।१५, ३।२९।१८, ३।२९।१९, ३।३१।१, ३।३२।१, ३।३२, ३।३३।२, ७।६६।७, ७।१३०।छं०१।

गीधपति — ३।३०।१८।

गीधराज — ३।१३, ३।२९।७।

जदुबंस (यदुवंश) — चन्द्रवंशी नहुष-पुत्र ययाति के देवयानी से उत्पन्न प्रथम पुत्र यदु के नाम से चलनेवाला वंश। यह परम पवित्र, सर्वपापहारी। इसी वंश में भगवान् (कृष्ण) का अवतार। भा० ९।१८।१, ३३; ९।२३।१९-२०।

[भा० स्कन्ध ९ के अनुसार — यदु के चार पुत्रों में सहस्रजित् और क्रोष्टा (२३।२०)। सहस्रजित् की सन्तान-परम्परा में हैहयराज सहस्रार्जुन (२३।२४)। क्रोष्टा की परम्परा में सात्वत के दो पुत्र प्रमुख — अन्धक और वृष्णि (२४।६)। अन्धक की परम्परा में देवक और उग्रसेन (२४।२१)। देवक की देवकी आदि सात कन्याएँ जिनसे वसुदेव का विवाह (२४।२२-२३)। उग्रसेन के पुत्रों में प्रथम कंस (२४।२४)। वृष्णि के वंश में देवमीढ़-तनय शूरसेन के मारिषा से दस पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न। इनमें प्रथम वसुदेव। वसुदेव की बहनों में प्रथम पृथा (कुन्ती) जो निःसंन्तान कुन्तिभोज को गोद दे दी गयी (२४।२७-३१)। इस वंश में स्वयं भगवान् और उनके अंश शेष का वसुदेवपुत्र कृष्ण और बलराम के रूप में अवतार (२४।५३-५५)। ऋृषियों के शाप से इस वंश का संहार। भा० ११।१, ११।३०। एकमात्र अवशेष अनिरुद्ध-पुत्र वज्र। भा० १०।९०।३७।]

इस वंश में कृष्ण के अवतार लेने का शिव-कथन (१।९८।१)।

जनक — मिथिला-नरेश। ह्रस्वरोमा के ज्येष्ठ पुत्र। सीता के पिता।

निमि > मिथि (वैदेह, जनक) > उदावसु > नन्दिवर्द्धन > सुकेतु > देवरात > बृहदुक्थ > महावीर्य > सुधृति > धृष्टकेतु > हर्यश्व > मनु > प्रतिक > कृतरथ > देवमीढ़ > विबुध > महाधृति > कृतरात > महारोमा > सुवर्णरोमा > ह्रस्वरोमा > (१) सीरध्वज (जनक) > सीता (यज्ञभूमि जोतते हुए सीरध्वज को हल के अग्रभाग में प्राप्त), (२) कुशध्वज (सांकाश्य-नरेश, सीरध्वज के अनुज)। वि०पु० ४।५।२०-२९। (वा० रा०१।७१।३ में यह

असंगति कि इस कुल के प्रथम 'जनक' मिथि के पुत्र; वा० रा० ७।५७।१९-२० में मिथि और प्रथम जनक एक ही। वा० रा० १।७१ में वंशावली-वर्णन सीता के पिता जनक द्वारा, किन्तु इनका मूल नाम नहीं। भा० ९।१३।१८ में ये 'सीरध्वज'।

(१) जनक (सीरध्वज) > (क) सीता (अयोनिजा) ~ राम, (ख) उर्मिला ~ लक्ष्मण; (२) कुशध्वज > (क) माण्डवी ~ भरत, (ख) श्रुतकीर्त्ति ~ शत्रुघ्न। वा० रा० १।६६।१४-१५, १।७२।४-६, १।७३।२५-३६।

[नाम — (क) जनक—विदेह निमि के शरीर-मन्थन से उत्पन्न मिथि या मिथिल इस कुल के प्रथम जनक। दे० 'निमि'। उनके नाम पर इस वंश के राजा 'जनक' नाम से प्रसिद्ध। (यथा, महा० वन० १३३।१७ में इन्द्रद्युम्न-कुमार जनक को अष्टावक्र का सम्बोधन —भो भो राजंजनकानां वरिष्ठ।) महा० के कुछ प्रसंगों में भिन्न-भिन्न जनकों के नामों का भी उल्लेख, यथा, कराल जनक (शा० ३०२), वसुमान् जनक (शा० ३०९), देवरात-पुत्र जनक जिन्हें सूर्य से यजुर्वेद प्राप्त करनेवाले प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य का उपदेश (शा० ३१०-३१८) आदि। बृ० उ० आदि के प्रसंगों में आये 'जनक' या 'विदेहराज जनक' के मूल नाम का संकेत न होने के कारण यह समझने में कठिनाई कि वे कौन-से जनक। (ख) विदेह —निमि देहपात के बाद विदेह, तुलसी-प्रतिपादित जनक देहाध्यासरहित, निर्लिप्त होने के कारण 'विदेह'। (आ० को० में विदेह का अर्थ प्राचीन मिथिला। दे० 'तेरहुति'।)

परिवार — वि० १।२४२।४ व्या० के अनुसार कालिका पुराण में इनकी चार रानियाँ होने का कथन। पृथ्वी से सीता के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न।

पिनाक को पण बनाने का कारण — एक बार एकान्त में नारद का इनसे कथन — अयोध्या में भगवान् का अंशोंसहित दाशरथि-रूप में अवतार। सीतारूप में उनकी योगमाया अवतरित। ये सीता का विवाह राम से ही करें। तब से इनका सीता को विष्णुभार्या लक्ष्मी समझना। उनका राम से विवाह करने के लिए सबके गर्वनाशक उस शिव-धनुष को पण बनाने का निश्चय जिसे त्रिपुर-दहन के बाद शिव का न्यासरूप में इनके पितामह के पास रखना। —जानकी-विवाह के बाद वसिष्ठ-विश्वामित्र से इनका कथन। अ० रा० १।६।५८-७०।]

राम के प्रति इनका प्रेम गूढ़, भोग और योग में छिपा हुआ। राम को देखते ही वह प्रकट। इनकी परिजन-सहित वन्दना (१।१७।१-२)। जनकपुर में इनका राजमहल अनुपम। वहाँ का विलास-वैभव स्वर्ग से भी बढ़कर (१।२१३।७)। विश्वामित्र के आगमन का समाचार सुन विप्र-गुरु-मन्त्री आदि के साथ उनसे मिलने के लिए इनका जाना। उनके चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करना। (उनके साथ आये) विप्रसमाज की वन्दना करना। स्वयं को भाग्यशाली समझना (१।२१४।८ - १।२१५।३)। इसी समय उपस्थित हुए राम-लक्ष्मण को देखकर इनके साथ सबका उठ खड़े होना। सबके नेत्रों में जल, शरीर पुलकित, हृदय प्रेम-सुख में मग्न। 'भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी'। अपने मन को प्रेममग्न जानकर इनका सावधान होना, विवेकपूर्वक धैर्य धारण करना (१।२१५।४-१।२१५)। मुनि से इनकी जिज्ञासा — वे दोनों बालक मुनिकुल-तिलक या नृपकुल-पालक। अथवा निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही उन दो रूपों में अवतरित, क्योंकि उन्हें देखकर इनका (निस्त्रैगुण्य पथ में विचरण करनेवाला) सहज विरागरूप मन भी मुग्ध, ब्रह्मसुख को छोड़ उनके दर्शन-सुख में मग्न। बिना दुराव के उत्तर देने की मुनि से इनकी प्रार्थना (१।२१६।१-५)। मुनि-कथन — इनकी वाणी अप्रमाण नहीं हो सकती (१।२१६।६)। राम-लक्ष्मण का परिचय पाकर इनका निवेदन — उन दोनों का स्नेह ब्रह्म और जीव की भाँति स्वाभाविक। सुखमग्न पुलकित होकर इनका बार-बार प्रभु की ओर देखना। अत्यन्त आदर-विनय-पूर्वक मुनि को नगर में ठहराकर विदा होना (१।२१६।७ - १।२१७।८)।

(सीता-स्वयंवर में) विश्वामित्र को बुलाने के लिए इनका (अपने पुरोहित) शतानन्द को भेजना (१।२३९।९-१।२३९)। धनुष-यज्ञ में अत्यधिक भीड़ हुई देख समागतों को यथोचित आसन पर बैठाने का इनका सेवकों को आदेश (१।२४०।७-८)। इनके कुटुम्बियों की दृष्टि में राम सगे-सम्बन्धी की तरह प्रिय। रानियोंसहित इनके मन में प्रभु के प्रति ऐसा प्रेमभाव जैसा शिशु के प्रति (१।२४२।२-३)। दोनों भाइयों को देख ये हर्षित। मुनि-पद-वन्दना करके उनसे अपनी सब कथा सुनाना। [धनुष-प्राप्ति की कथा, सीता को पाने की राजाओं की इच्छा, सर्वश्रेष्ठ वीर को सीता अर्पित करने का निश्चय, धनुष को पण बनाने का कारण। वि०।] राम-लक्ष्मण-सहित मुनि को रंगभूमि दिखाना (१।२४४।४-५)। सुअवसर जानकर सीता को बुला भेजना (१।२४६)। इनके वंश की विरुदावली गाते हुए वन्दीगन का प्रवेश। इनकी आज्ञा से सबके समक्ष इनके पण की घोषणा — उस राजसमाज में

शिवधनु को तोड़नेवाले का सीता वरण करेंगी (१।२४६।७ - १।२५०।४)। धनुष को हिलाने में भी राजाओं को असमर्थ देख इनका सरोष कथन — धनुष भंग करके सीता, विजय और कीर्त्ति पानेवाले का मानो विधाता द्वारा अब तक निर्माण नहीं। अब कोई वीरता का दावा न करे। 'बीर बिहीन मही मैं जानी'। [वि० १।२५२।३ व्या० के अनुसार हनुमन्नाटक में भी 'नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः। केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्।।] सीता के भाग्य में विधि ने विवाह लिखा ही नहीं। अब प्रण छोड़ने पर धर्म का नाश। पृथ्वी पर वीरों के अभाव का पहले से ज्ञान होने पर ये ऐसा प्रण ही न करते, उपहास के पात्र न बनते (१।२५१।६-१।२५२।६)। इनके वचन सुनकर सब नर-नारी दुखी, लक्ष्मण को अपमान-जन्य क्रोध। उनका कथन — राम की उपस्थिति से अवगत होते हुए भी इनका ऐसा कहना अनुचित। सुनकर और उनके वचन का प्रभाव देखकर ये संकुचित। विश्वामित्र की राम को आज्ञा कि वे धनुष-भंजन करके इनका परिताप दूर करें (१।२५२।७-१।२५४।२, १।२५४।६)। राम के धनुष तोड़ने पर ये सोच त्यागकर सुखी (१।२६३।४)। [वा० रा० में भी सीता वीर्यशुल्का, किन्तु धनुष-यज्ञ-शाला नहीं। पिनाक को हिलाने में भी असमर्थ राजाओं का मिथिलापुरी को घेरना। दैवी सहायता से जनक का उन्हें परास्त करना। उनका पलायन। विश्वामित्र के कहने पर जनक का उस मंजूषा को मँगवाना जिसके भीतर धनुष। मुनि की आज्ञा से राम का मंजूषा को खोलकर धनुष को देखना। फिर लीलापूर्वक उठाकर प्रत्यंचा चढ़ाना। कान तक खींचते ही वह भंग। वा० रा० १।६६, १।६७। अ० रा० १।६ में भी मुनि के कहने पर इनका धनुष मँगवाना।]

परशुराम के आने पर उनके निकट जाकर इनका नमन। सीता को बुलाकर प्रणाम करवाना। उनके पूछने पर राजाओं के आने का कारण बताना। खण्डित धनु को देख उनका सरोष कथन — ये धनुष तोड़नेवाले को उन्हें शीघ्र दिखा दें, अन्यथा वे इनका सारा राज्य उलट देंगे। ये अत्यन्त भीत, निरुत्तर (१।२६६।४, १।२७०।५)। परशुराम के प्रति लक्ष्मण की व्यंग्योक्तियाँ सुन इन्हें भय। इनका कथन — वे चुप रहें। अनुचित कहना अच्छा नहीं (१।२७८।४)। लक्ष्मण के (कल्पित) अनिष्ट की ओर इनका ध्यान आकर्षित करते हुए, उन्हें आँखों के आगे से हटाने का इनसे परशुराम का कथन (१।२८०।६-७)। [वा० रा० १।७४-७६ एवं अ० रा० १।७ में परशुराम-आगमन विवाह के बाद दशरथ आदि के अयोध्या लौटते समय मार्ग में।] परशुराम के वन-गमन करने पर इन्हें अकथनीय सुख। विश्वामित्र को प्रणाम कर कृतकृत्यता व्यक्त करना। उनकी आज्ञा से दशरथ को बुलाने के लिए अयोध्या दूत भेजना। सबको यथायोग्य आदेश देना (१।२८६।३; १।२८६।५-१।२८७।६)।

दशरथ के आने का समाचार सुन इनका नदियों पर पुल बँधवाना, मार्ग में बीच-बीच में वास-भवन बनवाना (१।३०४।२, ५-६)। (जनवासे में सीता के प्रभाव से निर्मित वैभव से अनभिज्ञ) सबके द्वारा इनकी प्रशंसा (१।३०७।२)। जनकपुरवासियों का कथन— सीता और राम शोभा की अवधि, ये और दशरथ पुण्य की सीमा। सीता इनके सुकृत की ही मूर्त्ति। इनके और दशरथ के समान किसी के द्वारा न तो शिव की आराधना और न फलप्राप्ति। इन दोनों के समकक्ष न कोई हुआ, न है, न होगा (१।३०९ - १।३१०।३)।

जानकी-विवाह के लग्न की गोधूलि-वेला आने पर विप्रों का इन्हें सूचित करना। इनका शतानन्द से विलम्ब न करने का कथन (१।३१२, १।३१३।१)। इनका और दशरथ का मिलन। लौकिक-वैदिक रीति का सम्पादन। उस समय की शोभा की कोई उपमा न पाकर कवि-निश्चय कि इनके समान ये ही (१।३२०।१-३)। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए इनका दशरथ को मण्डप में लाना (१।३२०।८)। (पूज्यों के लिए) अपने हाथों से सिंहासन लाकर रखना। कुल के इष्टदेव की भाँति वसिष्ठ का, प्रेमपूर्वक विश्वामित्र का, तथा वामदेव आदि ऋषियों का पूजन। आशीर्वाद-प्राप्ति। अभीष्टदाता शंकर की भाँति दशरथ की पूजा और विनय। पूजन-दान-मान-विनयपूर्वक विप्रवेशधारी त्रिदेव-लोकपाल-सहित सब बरातियों का सम्मान (१।३२०।छं० - १।३२१।८)।

जानकी-विवाह के समय वामभाग में इनकी पट्टमहिषी सुनयना शोभित (१।३२४।१,४)। वररूप में राम को देखकर ये सुनयनासहित प्रेममग्न। उनके पद-प्रक्षालन करते हुए (ब्रह्म-संस्पर्श-सुख का अनुभव कर) प्रेम-पुलकित। कन्या-दान। इनके द्वारा राम को जानकी उसी प्रकार समर्पित जिस प्रकार हिमालय द्वारा शंकर को पार्वती और सागर द्वारा विष्णु को लक्ष्मी। [इति प्रीतेन मनसा सीतां राम करेऽर्पयन्।। मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे। अ० रा० १।६।५४-५५।] (कन्यादान के बाद विनय की प्रथा, किन्तु) रामरूप देख ये ऐसे आनन्दमग्न कि इन्हें

विनय करने की सुधि ही नहीं (१।३२४।५ - १।३२४।छं० ४; १।३२५।६)। वसिष्ठ की आज्ञा पाकर इनका माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्त्ति को बुलाना। क्रमशः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न से उनका विवाह करना (१।३२५।छं० २-३)। [वा० रा० में इनका स्वयं उर्मिला को लक्ष्मण के लिए देना। माण्डवी, श्रुतकीर्त्ति का विश्वामित्र द्वारा वरण। वा० रा० १।७१।२०-२१, १।७२।४-६।] दायज देने के बाद इनके द्वारा बरातियों का सम्मान, महामुनि-वृन्द का पूजन, दशरथ के प्रति विनय (१।३२६।१-८, छं० १-३)। बरातियों को जेवनार में बुलवाना। दशरथ और फिर राम के चरण धोना। तीनों भाइयों को रामसम जानकर उनका पद-प्रक्षालन। सबको उचित आसन देना (१।३२८।१, ४-७)। भोजनोपरान्त समाजसहित दशरथ को पान देकर पूजन (१।३२६)।

दशरथ द्वारा इनके स्नेह, शील, करनी और वैभव की सराहना। इनसे विदा माँगना। इनका उन्हें प्रेमसहित रोक लेना। इस प्रकार कई दिन बीतने पर विश्वामित्र और शतानन्द का इन्हें दशरथ को (जाने की) आज्ञा देने के लिए समझाना। इनका सचिवों को बुलाकर रनवास में समाचार देने का आदेश (१।३३२।१-२, ६-८; १। ३३२)। पुनः अपरिमित दहेज देना, अवधपुरी भेजना (१।३३३।३ - १।३३४।१)। विदा कराने के लिए चारों भाइयों के साथ राम का इनके महल में आना (१।३३४)। सीता के विदा होने के समय भ्रातासहित इनका आगमन। हृदय में प्रेम, नेत्रों में जल। सीता को देख धैर्य छूटना। उन्हें हृदय से लगाना। इनके ज्ञान-वैराग्य की मर्यादा का लोप। सयाने सचिवों का इन्हें समझाना। तब यह विचार कर कि यह प्रेमप्रकाश का अवसर नहीं, इनका पुत्री को बार-बार हृदय से लगाना। फिर सजी हुई पालकियाँ मँगवाना (१।३३८।४-८)। सब राजकुमारियों को उन पर चढ़ाना। सिद्धिदायक गणेश का स्मरण करना। अनेक प्रकार से सबको समझाना। नारिधर्म और कुलरीति की शिक्षा देना। उनके प्रिय सेवकों को साथ भेजना (१।३३८ - १।३३६।२)। (दशरथ को विदा करने के लिए इनका दूर तक साथ चलना।) दशरथ के बार-बार कहने पर भी प्रेमवश न लौटना। उनका वाहन से उतरकर खड़े होना। इनके द्वारा उनकी करबद्ध विनती। दोनों का परस्पर मिलन। इनका मुनि-मण्डली को नमन और आशीर्वाद-प्राप्ति। सादर दामादों से मिलना। राम के सगुण-निर्गुण स्वरूप का कथन करते हुए उनकी करबद्ध स्तुति। 'बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें।।' (१।३४०।४-१।३४२।५)। इनके प्रेमसिक्त वचन सुन राम परितुष्ट। इन्हें दशरथ, कौशिक, वसिष्ठ के समान समझकर उनके द्वारा इनका विनयपूर्वक सम्मान (१।३४२।६-७)। इनका भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न से मिलकर उन्हें आशिष देना। विश्वामित्र के चरण पकड़ उनकी पद-धूलि को सिर-आँखों से लगाकर, उनकी विनती। आशीर्वाद पाकर इनका लौटना (१।३४२।८ -१।३४३।६)। अयोध्या जाकर दशरथ द्वारा इनके गुण, शील, बड़ाई, प्रीति-रीति, सम्पदा का विशद वर्णन। सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित (१।३५४।७-८)।

चित्रकूट में इनके दूतों का वसिष्ठ से कथन — कैकेयी की कुचाल और दशरथ-मरण का समाचार सुन ये मणिहीन सर्प की भाँति विकल। इनकी उस समय की स्थिति देखनेवालों के मन में इनके 'विदेह' नाम की सत्यता के सम्बन्ध में सन्देह। उस समय अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में इनका विद्वानों-सचिवों से परामर्श, किन्तु सब मौन। अन्ततः धैर्यपूर्वक इनका चार चतुर दूतों को भरत के सद्भाव-दुर्भाव का पता लगाने के लिए भेजना। भरत के चित्रकूट जाने पर दूतों का लौटकर सब समाचार निवेदन करना। घर-पुर-देश की रक्षा का प्रबन्ध करके दुघड़िया मुहूर्त्त में परिजन-सेना-सहित इनका चित्रकूट के लिए प्रस्थान। मार्ग में विश्राम किए बिना दूसरे दिन प्रातः प्रयाग पहुँचना। स्नानोपरा[illegible] पुनः यात्रा। यमुना-पार उतरना। दूतों को चित्रकूट का समाचार लाने के लिए भेजना (२।२७०।४, ६; २।२७० - २।२७२।७)।

इनके आगमन का समाचार सुन अवध-समाज हर्षित, राम को संकोच, कैकेयी ग्लानि-विगलित (२।२७२ - २।२७३।२)। चित्रकूट पर्वत के दर्शन होते ही इनका प्रणाम करना। रथ त्याग पैदल चलना। राम-दर्शन की लालसा-उत्साह में पथ-श्रम का बोध नहीं। भाई-सचिव-गुरु-पुरजन-सहित राम का अगवानी के लिए आना। दोनों समाज की मार्ग में भेंट। इनके द्वारा मुनियों की पद-वन्दना। राम का इनसे मिलना। इनके करुणा-सरित्-सदृश समाज को अपने शान्त रस-सागर आश्रम की ओर ले चलना। ये प्रेमावेग से शोकमग्न। वसिष्ठ का इन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहना, अनेक प्रकार से समझाना (२।२७४ - २।२७६, २।२७७।६)।

इनका ज्ञान रवि-सदृश। उससे भवनिशा का नाश। इनके वचनों से मुनियों को सुख। उस ज्ञान-सूर्य के सामने मोह-ममता-रूप अन्धकार का होना असम्भव। इनमें जिस मोह-ममत्व का आतिशय्य, वह सांसारिक नहीं, सीता-राम

के प्रति, अतः भक्ति के उत्कर्ष का सूचक (२।२७७।१-२)। प्राण-सी प्रिय सीता को पाहुन (अतिथि) के रूप में आयी देख इनका उन्हें हृदय से लगाना (२।२८६।३-४)। मार्कण्डेय-दृष्ट प्रलय और इनके (पुत्री-) अनुराग का रूपक – जिस प्रकार मार्कण्डेय प्रलय-सागर में भटकते हुए व्याकुल, पर डूबे नहीं (दे० 'चिरजीवी मुनि'), उसी प्रकार इनके हृदय में (पुत्री-) अनुराग-समुद्र का उद्वेलन। उसमें (ज्ञान को छोड़ इनकी सब मनोवृत्तियों का डूबना) इनका ज्ञान विकल, पर डूबा नहीं। [इनका सीता में बेटी के अतिरिक्त उपास्य देवतावाला प्रेम भी। मा० पी० २।२८६।५-८ में वि० त्रि० का मत।] इनके मनरूप प्रयाग में (उपास्य देवतारूप) सीता के प्रेम का वटवृक्ष। अनुराग-सागर के साथ सिय-प्रेम-वट का बढ़ना। सिय-प्रेम-वट पर बालप्रभु-रूप राम-स्नेह आश्रित। इस प्रकार इनका सिय-प्रेम राम-प्रेम से जुड़ा हुआ। राम का आश्रय पाने के कारण इनके ज्ञान की रक्षा, जैसे आकुल मार्कण्डेय की वट-स्थित बाल-प्रभु के आश्रित होने पर (२।२८६।५-७)। वस्तुतः इनकी मति मोह-मग्न नहीं। (इनका ज्ञान सोपास्ति ज्ञान)। राम-जानकी के प्रेम की यह महिमा कि वह ज्ञान का बाधक नहीं, साधक (२।२८६।८)।

सीता का तापसी वेश देख इन्हें परितोष। इनका कथन – उन्होंने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया। उनका सुयश सुरसरि से भी अधिक उज्ज्वल। सुनकर सीता को संकोच। उन्हें पुनः हृदय से लगाकर इनका और सुनयना का शिक्षा और आशीर्वाद देना। सीता का मनोभाव समझकर सुनयना का इन्हें सूचित करना (कि उनकी दृष्टि में उनका रात को यहाँ रहना उचित नहीं) (२।२८६, २।२८७।१-६,८)। सीता के बिदा होने पर सुनयना का इनसे भरत की मनःस्थिति के सम्बन्ध में कहना। सुनकर इनके शरीर में पुलक, सजल नेत्र निमीलित। इनका कथन – धर्मशास्त्र, राजनीति, ब्रह्मविद्या में इनकी गति, किन्तु भरत-महिमा-वर्णन में इनकी बुद्धि भी कुण्ठित। उनके लिए राम-चरण-प्रेम ही साधन और सिद्धि। वे रामाज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। भरत और राम के गुणों का कथन करते हुए रात्रि व्यतीत (२।२८७-२।२९०।१)।

चित्रकूट की दूसरी सभा का उपक्रम (पहली सभा इनके पहुँचने से पहले समाप्त) –वसिष्ठ से राम का निवेदन – इन्हें समाजसहित कष्ट सहते हुए अनेक दिन व्यतीत। सबके हित के लिए वे जैसा उचित समझें, करें (२।२९०।५-६)। वसिष्ठ का इनके निकट आना। इन्हें राम के आन्तरिक भावों से परिचित कराकर कथन – ये ज्ञाननिधान, धर्मधीर, शुचि सुजान। तत्कालीन असमंजस (अ-सामंजस्य, द्विधा) को दूर करने में केवल ये ही समर्थ। ये धर्मसहित सबका हित-साधन करें। सुनकर (इस उक्ति का यह निर्गलितार्थ समझकर कि ज्ञानी वसिष्ठ प्रेमवश स्वयं सामंजस्य बैठाने में असमर्थ,) ये स्नेह-शिथिल। इनके ज्ञान-वैराग्य का लोप। मन-ही-मन इनका विचार – दशरथ के वचन की रक्षा के लिए राम ने वन-गमन किया। (धर्म के अनुसार उन्हें वन जाना ही चाहिए, किन्तु स्नेह का आग्रह कि वे न जायें।) अब धर्म-पालन के लिए उन्हें पुनः वन भेजकर, विवेकी होने का बड़प्पन लेकर, ये लौटेंगे। अतः इनका यहाँ आना ही उचित नहीं हुआ। इनकी और वसिष्ठ की मनःस्थिति समझकर तापस मुनि आदि भी प्रेम-विकल। फिर समय का विचार कर धैर्य धारण करके इनका समाजसहित भरत के पास जाना (२।२९१।७-२।२९२।६)। उनसे रघुवीर-स्वभाव कहकर आज्ञा देने के लिए कहना। भरत-कथन कि वे सेवक, पराधीन। राम का रुख देखकर, प्रेम पहचानकर, ये सर्वहित के लिए सर्वसम्मत कार्य करें। समाजसहित इनके द्वारा भरत की सराहना। फिर भरत, वसिष्ठ आदि के साथ राम के पास गमन (२।२९२।७ - २।२९४।४)। वसिष्ठ, भरत और समाजसहित इनकी प्रेम-दशा देखकर चिन्तित देवताओं का (उच्चाटन के लिए) प्रबल माया रचना (२।२९४।६-८; २।२९५)।

चित्रकूट की दूसरी सभा – राम से जनक-भरत-संवाद कहकर वसिष्ठ का आज्ञा करने का अनुरोध। वसिष्ठ की और इनकी आज्ञा को शिरोधार्य करने का राम का शपथपूर्वक कथन। शपथ सुनकर इन सबको संकोच (२।२९६।२ - २।२९६)। भरत द्वारा वसिष्ठ, राम तथा साधु-समाज के साथ इनकी विनती (२।२९७।५)। राम के प्रति उनकी विनय सुनकर ये भी स्नेह-शिथिल। मन-ही-मन भरत के भायप, उनकी भक्ति की महिमा की सराहना (२।३०१।छं०)। देवताओं द्वारा फैलाये गये उच्चाटन का इन पर भी कोई प्रभाव नहीं (२।३०२)। सबके साथ इनकी बुद्धि भी भरत की भक्ति के वशीभूत (२।३०३।१,५)। विधि के उत्पात करने पर (दशरथ की असामयिक मृत्यु होने पर) वसिष्ठ और इनके द्वारा सबकी रक्षा – राम-कथन (२।३०५।८)। भरत के वचन सुन वसिष्ठ आदि

के साथ इन्हें भी सुख। पुलकित होकर इनके द्वारा राम और भरत के गुण-स्नेह-स्वभाव-नेम-प्रेम की प्रशंसा (२।३०६।२-४)।

चित्रकूट की तीसरी सभा में सबका उपस्थित होना। (विदा की बात कहने में संकोच होने के कारण) राम का वसिष्ठ के बाद इनकी ओर देखना (२।३१३।१-३)। वसिष्ठ को और इन्हें सबकी चिन्ता, इनके रहते राम या भरत को कोई क्लेश नहीं— राम-कथन भरत से (२।३१५।१-२)। इनके जैसे धीर, निर्लेप, ज्ञानी भी राम-भरत की प्रीति देख तन-मन-वचन से प्रेम-मग्न (२।३१७।७ - २।३१८।१)। विदा के समय लक्ष्मणसहित राम का इन्हें नमन और अनेक प्रकार से इनकी विनय। धीरज रखकर इनका गमन (२।३१६।१-३)। सीता का इनसे मिलकर लौटना (२।३२०।१)। भरत-समाज और इनके समाज का प्रस्थान (२।३२०।६)। चार दिन अवध में रहकर, राज-काज सँभालकर, वसिष्ठ, मन्त्री, भरत को सौंपकर, इनका तिरहुत की ओर लौटना (२।३२२।६-७)।

'पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही।।'' — भरत-कथन निषादराज से (२।१९६।६)। चित्रकूट में इनका कथन — यहाँ (आश्रम-स्थल पर) अन्न ग्रहण करना उचित नहीं। सबके द्वारा इनका अनुमोदन (२।२७८।७-८)। चित्रकूट के वन की मनोहरता ऐसी 'जनु महि करति जनक पहुनाई' (२।२७९।५)। 'हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय' — चित्रकूट में कौसल्या-कथन सुनयना से (२।२८४)। (सीता के कुमारी रह जाने के) इनके पछतावे का उल्लेख (१।२६०।६)। अन्य उल्लेख (१।२४६।३, १।२६६।५, १।२८६।६, १।२९१।८, १।२९५।१, १।३१०, १।३१२।७, १।३३५।२, २।५८, २।९१।६, २।२७७, २।२७९।६, २।२८१।३, ६।३६।१०)।

मूल शब्द — १।२१३।७, १।२३६।६, १।२३६।१०, १।२३९, १।२४०।७, १।२४२।२, १।२४६, १।२४६।३, १।२४६।७, १।२५२।७, १।२५३।२, १।२५४।६, १।२६०।६, १।२६३।४, १।२६६।४, १।२७०।१, १।२७०।३, १।२८०।६, १।२८६।५, १।२८६।६, १।२९५।१, १।३०४।५, १।३०७।२, १।३१०।१, १।३१०, १।३१२।७, १।३२०।छं०, १।३२१।५, १।३२१।८, १।३२४।४, १।३२४।छं० ४, १।३२५।६, १।३२५।छं० २, १।३२८।१, १।३२८।४, १।३२८।६, १।३२९, १।३३२।१, १।३३३।५, १।३३४।१, १।३३४, १।३४१।१, १।३४३।२, १।३५४।७, २।५८, २।९१।६, २।१९६।६, २।२७०।४, २।२७२।१, २।२७२, २।२७५।७, २।२७९।५, २।२७९।६, २।२८६।३, २।२८६।४, २।२८७।१, २।२९१।६, २।२९२।१, २।२९६।४, २।३१७।७, २।३१८।१, ६।३६।१०। जनकु — १।२४४।४, १।२५१।६, १।२५४।२, १।२७८।४, १।३०४।२, १।३२०।१, १।३२०।८, १।३२४।छं० २, १।३२६।८, १।३२६।छं० २, १।३३२।२, १।३३८।४, १।३४०।४, २।२७५।५, २।२९६।२, २।२९६, २।३०२, २।३३२।६।

पर्याय — **जनकपति** — २।२७५।२।

जनकराज — २।२८१।३।

बिदेह (विदेह) — १।२४२।३, १।२४९, १।२६९, १।२८६।३, १।२९१।८, १।३१२, १।३३२।६, १।३३३, १।३३५।२, १।३४०।७, २।२७०।६, २।२७६।छं०, २।२७६, २।२८६।८, २।२९४।६। बिदेहु — १।२१५।८, १।२६६।५, १।३२४।छं० ४, २।२७७।६। बिदेहू — १।१७।१, १।२१७।४, २।२७१।२, २।३०९।३।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द —

(क) गुणबोधक —

धरमपीर — २।२९१।

(ख) सम्बन्धसूचक —

(अ) कुल से —

निमिराजु — २।२७७।

(आ) स्थान से —

तेरहुति राजू — २।२७८।७, २।२१३।१। तेरहुतिराऊ — २।२९२।८।

मिथिलाधनी — २।३०१।छं०।

मिथिलापति — १।२१४।८।

मिथिलेस — २।२७१।४, २।२८४, २।३०५।८, २।३०९।२। मिथिलेसु — २।२७४। मिथिलेसू —

२।२९०।५, २।२९६।७, २।३०३।५, २।३१५।२।

जम (यम) — संयम करनेवाले, जीवों के फलाफल का नियमन करनेवाले (यमयति नियमयति जीवानां फलाफलमिति)। ह० को०। दक्षिण दिशा के लोकपाल। अमर० १।८५।

कश्यप ~ अदिति > विवस्वान् ~ (१) संज्ञा (विश्वकर्मासुता) > श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु, यम-यमी (जुड़वाँ), नासत्य या अश्विनीकुमार; (२) छाया (विश्वकर्मा-पुत्री) > शनैश्चर, सावर्णिमनु, कन्या तपती। भा० ६।६।३८-४१, ८।१३।८-१०।

[ऋग्वेद में ये वैवस्वत (१०।४८।१)। राजा, लोगों को एकत्र करनेवाले (१०।१४।१)। इन्होंने सर्वप्रथम स्वर्ग के मार्ग का अनुसरण किया जहाँ मानवों के पूर्वपुरुष भी गये (१०।१४।२)। देवों के साथ इनका सोमपान। ये मानवों के अधिपति (१०।१३५।१)। ये ही मृत्यु। उल्लू या कपोत इनका दूत (१०।१६५।४)। इनके दो कुत्ते, जिनकी चार आँखें। वे इनके गुप्तचर। तैत्तिरीय संहिता में ये अग्नि और यह (पृथ्वी एवं वेदिका) यमी (३।३।८।३-४)। ध० इ० तृ० पृ० १०९९-११००।

ऋग्वेद के एक सूक्त का यम-यमी-संवाद प्रसिद्ध। उसमें बाजे-गाजे के साथ विवाह के लिए जाते हुए वर को देख उसके सम्बन्ध में यमी की इनसे जिज्ञासा। इनका उत्तर —वररूप पुरुष का किसी कुमारी स्त्री से विवाह होगा। पति-पत्नीरूप में दोनों गृहस्थ-जीवन व्यतीत करेंगे। तब यमी का इनसे विवाह करने का प्रस्ताव। इनका समझाना — भाई-बहन का विवाह नहीं होता। यमी किसी अन्य श्रेष्ठ पुरुष का वरण करें। न० पु० १२, पृ० ४१ पाद०। इसके आधार पर न० पु० में जो यम-यमी-संवाद, उसमें काम-पीड़िता यमी की इनसे प्रार्थना कि ये उन्हें पत्नी बनाकर उनकी कामना-पूर्ति करें। इनके समझाने पर भी उनकी मोह-व्यग्रता पूर्ववत्। ये धर्म पर अटल। इसलिए इन्हें देवत्व प्राप्त। न० पु० १२।

पुराणों में इनको मिले शाप के सम्बन्ध में विभिन्न कथाएँ प्रचलित। (१) न० पु० में मनु, यम और यमी को जन्म देकर संज्ञा का गृह-त्याग, क्योंकि सूर्य का तेज उनके लिए असह्य। जाने से पहले अपनी छाया-स्वरूपा एक स्त्री को उत्पन्न करना। स्वामी के उपभोग के लिए उसे घर में ही छोड़ जाना। सबका छाया को ही संज्ञा समझना। (भा० में छाया संज्ञा की बहन।) छाया का अपनी सन्तान के प्रति पक्षपात देख यम को संदेह। इनका पिता से कथन — छाया इनकी माता नहीं। यम-यमी का छाया को भला-बुरा कहना। दोनों को छाया का शाप — यम प्रेतराज बनें और यमी, 'यमुना' नामक नदी। न० पु० १८।

(२) मा० पु० ७७ में सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा का आँखें बन्द कर लेना। अतः उन्हें सूर्य का शाप — उनके उदर से प्रजा का संयमन करनेवाले यम का जन्म हो। मायाविह्वला संज्ञा की दृष्टि चंचल। सूर्य का पुनः शाप — विलोला नदीरूपा पुत्री को वे जन्म दें। फलतः यम और यमुना नाम्नी नदी का जन्म। (भविष्यपुराण १४।१८-७३ के अनुसार कार्तिक शुक्ल द्वितीया को यमुना का यम को अपने घर पर भोजन के लिए निमन्त्रित करना। इसीलिए यह तिथि यमद्वितीया या भ्रातृद्वितीया के नाम से प्रसिद्ध। ध०इ०च० पृ० ७८।)

(३) छाया का अपनी सन्तान के प्रति पक्षपात देख, यम का उन्हें मारने के लिए पाँव उठाना, फिर शान्त हो जाना। इस पर इन्हें छाया का शाप — इनके पाँव भूमि पर गिर जायें। व्याकुल हो शाप की बात पिता से कह इनका निवेदन — छाया इनकी माता नहीं। ध्यान करने पर सूर्य को ज्ञात कि वास्तविक संज्ञा वन में अश्विनीरूप में विचरणशील; उनकी पत्नी बनी हुई संज्ञा वस्तुतः संज्ञा की छाया। तब इनको मिले शाप की शान्ति करते हुए सूर्य का कथन — कीड़े इनके पैर का मांस लेकर पृथ्वी पर गिरेंगे। इनके पाँव ठीक हो जायेंगे। इनकी धर्मबुद्धि देख सूर्य का इन्हें प्रजाओं के धर्माधर्म का निर्णय करने के लिए नियुक्त करना। मा० पु० ७७, ७८। दक्षिण दिशा का लोकपाल और पितरों का अधिपति बनाना। धर्मबुद्धि के कारण इनकी संज्ञा धर्मराज। मा० पु० १०८।१५-१८। शमन, कृतान्त, दण्डधर, काल, यम, पुण्यमित्र, धर्मराज नामों से सावित्री द्वारा इनकी प्रार्थना। ब्र० पु० प्र० २८।८-१५।

ये भगवद्भक्त। इनका शासन उन्हीं पर जो विष्णु और गुरु से विमुख। भक्त इनके लिए प्रणम्य। न० पु० ९।२-३। विष्णु की महिमा और भक्त-अभक्त के लक्षणों का इनके द्वारा अपने अनुचरों को उपदेश। वि० पु० ३।७।१४-३४। नारकीय जीवों पर अनुग्रह करके उनका प्रबोधन। नाम-संकीर्तन से उन्हें विष्णुधाम-प्राप्ति।

न० पु० ८। नारायण नामक साध्यदेवता से इन्हें शिव सहस्रनाम का उपदेश प्राप्त। इनका उसे नचिकेता को प्रदान करना। महा० अनु० १७।१७९, १८०।

इनकी अनुपस्थिति से जगत् में तीन बार मृत्यु-प्रक्रिया बन्द -- (१) सत्य युग में जन्म-मरण विष्णु के अधीन। कोई मृत्यु न होने के कारण बढ़ते हुए प्राणियों के भार से त्रस्त, हजार योजन धँसी, पृथ्वी का वराहरूप में विष्णु द्वारा उद्धार। महा० वन० १४२।३६-४७। (२) पूर्वकाल में इनके द्वारा देवताओं के यज्ञ की दीक्षा-ग्रहण। अतः यज्ञकार्य से इनके अलग होने तक मरण स्थगित। महा० आदि० १९६।१-८। (३) अपनी सोलह वर्ष की नियत आयु की समाप्ति पर इन्हें निकट देख मार्कण्डेय मुनि का शिव-प्रतिमा से लिपटना। उन पर फेंके गये इनके पाश से शिव का भी आबद्ध होना। शिव द्वारा इनका वध। जगत् में मृत्यु का अभाव। देवताओं की प्रार्थना पर शिव द्वारा इन्हें जीवन-दान। पी० ई०।

इनकी पुरी का नाम 'संयमिनी'। मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के दक्षिण में स्थित। भा० ५।२१।७; वि० पु० २।८।९-१०; ब्र० पु० प्र० २४। इनका लोक यमलोक जहाँ प्राणियों के कर्मानुसार उनके लिए विभिन्न लोकों की व्यवस्था (दे० 'जमपुर')। गरुड़ पुराण में चित्रगुप्त और स्वर्ग-नरक आदि का विस्तृत वर्णन। इनका वाहन महिष, प्रधान आयुध दण्ड-पाश (दे० 'कालदंड')। रोगनाश के बीजरूप 'ज्ञानार्णव' महातन्त्र के ये रचयिता। ब्र०पु० ब्रह्म० १६। कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर का जन्म इन्हीं के तेज से। महा० आदि० १२२।१-९। माण्डव्य मुनि का इन्हें शूद्रयोनि में जन्म लेने का शाप। फलतः इनका विदुर बनना। महा० आदि० १०७। नक्षत्ररूप में इनकी स्थिति – ज्योतिश्चक्र के शिशुमाररूप में शिशुमार की नीचे की ठोड़ी में। भा० ५।२३।७।]

ये रावण से त्रस्त अष्ट लोकपालों में एक (१।१८२।१०)। [रावण से युद्ध करते हुए ये कालदण्ड-प्रहार के लिए उद्यत। ब्रह्मा का इन्हें रोकना, क्योंकि एक ओर उनके द्वारा निर्मित कालदण्ड अमोघ, दूसरी ओर रावण को अजेय होने का देवताओं का वरदान भी सत्य। दोनों में एक की भी व्यर्थता से तत्सम्बन्धी सत्य का खण्डन। अतः ये युद्ध से विरत हो अदृश्य। इस तरह रावण की विजय। वा० रा० ७।२२।] चित्रकूट में ग्लानि-गलित कैकेयी की इनसे मृत्यु की याचना (२।२५२।६)। अन्य दिक्पालों के साथ ये भी रावण द्वारा विजित। – रावण का मन्दोदरी को आश्वासन (६।८।३)। मन्दोदरी-विलाप में रावण द्वारा इनके पराजित होने का उल्लेख (६।१०४।८)। राम-उदर में काकभुशुण्डि को अगणित यमों के दर्शन (७।८०।६)। साम्यमूलक अलंकारों में करालतासूचक उपमानरूप में प्रयोग (१।४।५, १।९५।७, १।१७५, २।६५।५, ३।२।६, ३।२९।१२, ६।१५।५, ६।८१।छं० १, ६।८४।६, ६।८५।छं०, ७।९२।१।

मूल शब्द – १।९५।७, १।१७५, १।१८२।१०, २।६५।५, २।२५२।६, ६।८।३, ६।१५।५, ६।१०४।८, ७।८०।६ (जाति०)।

पर्याय – **कृतांत** (कर्मानुरूप काल के सहयोग से विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों का अन्त करनेवाले। ब्र० पु० प्र० २८।१०।) – ३।२९।१२, ६।८१।छं०१ (जाति०), ६।८४।६, ६।८५।छं०।

महिषेसा (महिष के देवता = देवता जिनका वाहन महिष) – १।४।५।

समन (शमयति पापिनां कर्म आलोचयतीति। ह० को०। समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमन इति तं प्रणमाम्यहम्।। ब्र० पु० प्र० २८।९।) – ३।२।६, ७।९२।१ (जाति०)।

जमन (यवन) – पापयोनि म्लेच्छ जाति का एक व्यक्ति।

[जरा-जर्जर, अंधा, मूढ़। एक दिन सूअर के ढकेलने से इसका गिरना। हाहाकार करना – 'हराम हो हराम हन्यो' (अपवित्र सूअर ने मार दिया)। आघात से इसकी मृत्यु। 'ह-राम' में 'राम' का उच्चारण होने के कारण अंतकाल में यह 'राम' – स्मरण के पुण्यफल का भागी। इसे वैकुण्ठ-लोक-प्राप्ति। क० ७।७६। (दैवाच्छूकर शावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो हा रामेण हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्। तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवम् .....। मा० पी० २।१९४ व्या० के अनुसार व० पु०।]

नाम-स्मरण से परम पवित्र होनेवाले, जाति से पतित, व्यक्तियों के साथ इसका उल्लेख (२।१९४, ७।१३०।छं० १)।

जमपुर (यमपुर) – यमलोक। पितृलोक।

[लंकाद्वीप से सुदूर दक्षिण में, पंचम पर्वत ऋषभ के बाद, पृथ्वी की अन्तिम सीमा पर, स्वर्ग के अधिकारी पुण्यात्मा पुरुषों का वास। इससे आगे अन्धकाराच्छादित भयानक पितृलोक – यमराज की राजधानी। —सीता की खोज में दक्षिण की ओर जाते हुए वानरों का इस प्रकार पथ-निर्देश करते हुए सुग्रीव द्वारा पितृलोक में जाने का उन्हें निषेध। वा० रा० ४।४१।३४-४४। दिग्विजय करते हुए रावण का पुष्पक-प्रभा से समस्त प्रदेश को अन्धकारशून्य कर यमलोक में पापियों की यमयातना और पुण्यात्माओं का भोग ऐश्वर्य देखना। पापियों को बलपूर्वक मुक्त करना। वा० रा० ७।२१।९-२२।

महा० में उमा-प्रश्न पर शिव द्वारा यमपुर-वर्णन -- दक्षिण दिशा में पितरों, प्रेतों, यमदूतों से व्याप्त, धर्मराज यम का विचित्र, रमणीय, विशाल भवन। उत्तम, मध्यम और अधम व्यक्तियों के लिए वहाँ जाने के मार्ग क्रमशः रमणीय, निराबाध (निर्बाध) और दुर्दश। तीनों प्रकार के व्यक्तियों को ले जाने के लिए तीन प्रकार के यमदूत। सहस्रों सदस्यों से घिरे अपनी सभा में धर्म के आसन पर अपने तेज से प्रकाशित यमराज अध्यक्ष। लाये हुए प्राणी को देखने और उसके शुभाशुभ कर्मों का विस्तृत विवरण सुनने के पश्चात् यमराज द्वारा उत्तम प्राणियों का पूजन और उन्हें नियत पुण्यलोक में भेजना, मध्यम प्राणियों को पुनः मनुष्ययोनि-दान और पाशबद्ध अधमों के लिए नरक-यातना-भोग की व्यवस्था। नरक पाँच— क्रमशः रौरव, महारौरव, कण्टकावन, अग्निकुण्ड और पंचकष्ट। इनके अतिरिक्त अवीचि आदि और भी अनेक नरक। पापों के अनुसार एक लाख वर्ष से महाप्रलय तक प्राणी का यहाँ वास। पाप-नाश के पश्चात् वह कष्ट-मुक्त। महा० अनु० १४५।६४ के बाद दा० पा० १०, पृ० ५६८०-५६८४।]

लक्ष्मण के व्यंग्य-वचनों से क्रुद्ध परशुराम की उन्हें यमपुर भेजने की धमकी (१।२८०।६)। सीता को पातिव्रत धर्म का उपदेश देते हुए अनसूया द्वारा वृद्ध, रोगी, क्रोधी आदि पति का भी अपमान करने पर नरक-दुःख-भोग का कथन (३।५।६)। राम द्वारा असंत-स्वभाव-कथन — उन्हें यमपुर का भी भय नहीं (७।४०।१)। साम्यमूलक अलंकार में इसका उपमान रूप में प्रयोग (२।१४५।६)।

मूल शब्द — १।२८०।६, २।१४५।६, ३।५।६, ७।४०।१।

जमुना (यमुना) — सूर्य-पुत्री, यम की बहन; शापवश नदीरूपा। (दे० 'जम')।

कलिन्द पर्वत से प्रकट (आ० को०), कलिन्द देश में प्रवाह (मा० पु० ७७।२६), अतः कालिन्दी।

[सूर्य द्वारा यमुना-जल में इनके लिए भवन का निर्माण। वहीं इनका वास। पतिरूप में विष्णु की प्राप्ति का संकल्प करके इनका यमुना-तट पर तपस्या करना। कृष्ण का इन्हें साथ ले जाना, इनसे विवाह करना। ये उनकी चतुर्थ पटरानी। उनसे इनके दस पुत्र उत्पन्न। भा० १०।५८।१७-२३, २९ ; १०।६१।१४। कृष्ण के लीला-संवरण के बाद भी ये वियोग-दुःख से मुक्त। उनके साथ नित्यविहार की सुखानुभूति में मग्न। विरहकातरा सोलह हजार कृष्ण-पत्नियों की जिज्ञासा पर इनका उन्हें कृष्ण-राधा की अभिन्नता का गूढ़ तत्व समझाना। कृष्ण के साथ नित्यमिलन की अनुभूति के लिए उद्धव का सत्संग करने का परामर्श। उन्हें सत्संग का उपाय बताना। भा० माहा० २।८-२७।

ये गंगा की सात धाराओं में एक (दे० 'गंगा')। पापभयापहा, महर्षिगणसेविता। अपने तटों पर अनुष्ठित अनेक यज्ञों की साक्षिणी। महा० वन० १२५।२५। शंकराचार्यरचित यमुनाष्टकों में ये श्यामवर्णा। राधा के अंगराग से रंजिता। कृष्ण के दुर्लभ अंगस्पर्श-सुख का उपभोग करनेवाली, उनकी केलि-क्रीड़ाओं की आश्रयभूता, प्रेयसी। वांछितफलदायिनी, सकलभयनिवारिणि। इनसे मानसिक मलमुक्ति की विनती। स्तो० ६८, ६९।

भौगोलिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश के उत्तरकाशी जिले में बन्दरपूँछ पर्वत से आठ मील पश्चिम में उद्गम। हि० वि० को०। हिमालय-स्थित यमुनोत्तरी में इनका मन्दिर। प्रयाग में गंगा से संगम।]

सन्त-समाजरूपी प्रयाग में ये 'कलिमलहरनी' कर्मकथा (१।२।६)। 'जब लगि गंग जमुन जलधारा' (२।६९।८)। गंगासहित इनकी तरंगें तीर्थराज प्रयाग के चँवर (२।१०५।८)। इनका जल राम के शरीर के समान ही श्यामवर्ण। प्रयाग से आगे राम का इनके जल में स्नान (२।१०९)। सियराम-लक्ष्मण द्वारा इन्हें प्रणाम। इनकी बड़ाई करते हुए गमन (२।११२।१-२)। राम के चित्रकूट-वास करने पर अन्य पुण्यमयी नदियों के साथ इनके द्वारा भी मन्दाकिनी की बड़ाई (२।१३८।४)। भरत का इनके तट पर आना। इनका राम-सा श्याम वर्ण देख वे

समाजसहित राम विरह मग्न। तट पर रात विताकर प्रातःकाल पार करना। स्नान और नमन कर प्रस्थान (२।२२०।८-२।२२१।४)। ये 'कलिमलहरनि', सुहावनी। लंका से लौटते समय राम का सीता को इनके दर्शन कराना (६।१२०।५)। ये रामकथा की उपमान (१।३१।११)। इनकी भँवरों की शोभा राम की नाभि की उपमान (१।१४७)। उल्लेख (२।२७२।६, २।३२२।३)।

मूल शब्द — १।३१।११, २।११२।१, २।३२२।३, ६।१२०।५। जमुन — १।१४७, २।६६।८, २।१०५।८, २।१०६, २।२२०।८, २।२२१।१, २।२७२।६।

पर्याय — **दिनकर कन्या** — २।१३८।४।

रवितनुजा — २।११२।२।

रविनंदनि — १।२।६।

जयंत — इन्द्र-पुत्र।

इन्द्र ~ पौलोमी (पुलोमा — कन्या शची) > जयन्त, ऋषभ, मीढ्वान्। भा० ६।१८।७।

[अमरावती में मेघनाद से इसका युद्ध। मेघनाद के माया रचने पर दैत्यराज पुलोमा का इसे युद्धभूमि से हटा ले जाना। इसके साथ सागर में प्रवेश। वा० रा० ७।२८।२०। अमर० १।५२ में इसका दूसरा नाम पाकशासनि।]

यह राम के बल की परीक्षा करने के लिए उत्सुक, अतः इसके लिए 'मूढ़', 'महामन्द-मति', 'अवगुन-गेह' विशेषणों का प्रयोग। चित्रकूट में एक बार पुष्पाभूषणों से सीता का शृंगार करके राम उनके साथ स्फटिक-शिला पर विराजमान। उसी समय छल से काक (चाण्डाल पक्षी) का वेश बनाकर इसका सीता के चरणों में चोंच मारना। [अ० रा० ५।३।५४ में पादांगुष्ठ में, वा० रा० ५।३८।२३-२५ में स्तन में चोंच से आघात करना।] रुधिर बहते देख राम का अपने धनुष पर सींक का बाण चलाना। उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित कर चलाना। भयभीत होकर इसका पलायन (३।१।३-३।२।१)। अपना प्रकृत रूप धारण कर पिता (इन्द्र) के पास जाना। वहाँ शरण न पाकर यह त्रस्त और निराश। इसकी स्थिति वैसी ही जैसी सुदर्शन चक्र के भय से दुर्वासा की। ब्रह्मलोक, शिवलोक, कहीं इसके लिए आश्रय नहीं (३।२।२-४)। इसे श्रमित, व्याकुल, भय-शोक-ग्रस्त देख नारद दया से द्रवित। उनका इसे राम के पास भेजना। 'त्राहि-त्राहि' की पुकार करते हुए इसका राम के चरण पकड़ना। आत्म-भर्त्सना करना (३।२।४, ३।२।६-१३।) इसके द्रोह का मूल कारण मोह, अतः राम का इस पर कृपा करना। वध-दण्ड-योग्य अपराध करने पर भी इसे एकाक्ष (एक आँख का) करके छोड़ देना (३।२।१४-३।२) [वा० रा० ५।३८।१४-३६ एवं अ० रा० ५।३।५३-६० में यह प्रसंग अशोक-वाटिका में सीता का हनुमान् को सुनाना।]

अशोक-वाटिका में सीता का हनुमान् से कथन कि वे राम को जयन्त-प्रसंग सुनायें (५।२७।५)। मन्दोदरी द्वारा इसके इस प्रसंग का संकेत (६।३६।१२)। उल्लेख — इसका (२।१४१), इसकी करनी का (७।६५।८)।

मूल शब्द — २।१४१। जयंता — ३।२।६।

पर्याय — **सक्रसुत** — ५।२७।५।

सुरपति सुत — ३।१।५, ६।३६।१२, ७।६५।८।

जय — भगवान् के एक पार्षद का नाम।

[देवश्रेष्ठ जय और विजय वैकुण्ठधाम में सातवीं ड्योढ़ी के द्वारपाल। समवयस्क। श्यामवर्ण, चतुर्भुज, गदाधारी। केयूर-कुण्डल-किरीटादि से अलंकृत। वनमाला से शोभित। भगवद्दर्शन के लिए निःसंकोच प्रवेश करते हुए सनकादि को इनका बेंत अड़ाकर रोकना। उनके तेज का उपहास करना। मुनियों को क्रोध। भेदबुद्धि के इनके अपराध का उनके द्वारा दण्ड-विधान — वैकुण्ठ से पतित हो ये उन पाप-योनियों में जायें जहाँ प्राणियों के तीन शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ) का वास। शाप सुनकर ये त्रस्त। मुनियों के चरणों में लोटकर इनकी आर्त्त विनय - अधम योनियों में इन्हें भगवत्स्मृति - नाशक मोह न हो। .भा० ३।१५।२७-३६; ७।१।३५-३७।

सनकादि की अवज्ञा भगवान् की दृष्टि में स्वयं उनकी अवज्ञा। अतः इनके दण्ड में भगवान् का भी अभिमत। उनका कथन — एक समय जब वे योगनिद्रालीन, तब द्वार में प्रवेश करती लक्ष्मी को रोकने के कारण उनसे पहले ही यह शाप इन्हें प्राप्त। अब ये शीघ्र दैत्य-योनि में जन्म लेंगे, शीघ्र उनके पास लौट भी आयेंगे। शाप के कारण ये उसी समय श्रीहीन। वैकुण्ठ से पतित। कश्यप-तेज में प्रविष्ट। दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष रूप

में इनका जन्म और नृसिंह एवं वराह अवतार में भगवान् द्वारा इनका वध। भा० ३।१६।२-३, २५-२६; ७।१।३९-४०; ७।१०।३५।

मुनियों का शाप तीन जन्मों के लिए। अतः रावण और कुम्भकर्ण के रूप में इनका द्वितीय जन्म। रामावतार में वध। तृतीय जन्म में ये क्षत्रिय कुलोत्पन्न शिशुपाल और दन्तवक्त्र (क्रमशः पृथा- भगिनी श्रुतश्रवा एवं श्रुतदेवा से उत्पन्न। भा० ९।२४।३७, ३९, ४०।) भगवान् कृष्ण द्वारा इनका उद्धार। वैरभाव से निरन्तर भगवच्चिन्तन की तन्मयता के फलस्वरूप इन्हें भगवत्प्राप्ति। पुनः ये भगवान् के पार्षद। भा० ७।१।३८, ४३-४६; ७।१०।३६-३८।]

विप्रशापवश जय-विजय को कनककशिपु और हिरण्याक्ष की तामस देह-प्राप्ति। नृसिंह और वराह रूप धारण कर भगवान् द्वारा वध (१।१२२।४-८)। पुनः ये रावण-कुम्भकर्ण। इनके वध के लिए राम का अवतार। भगवान् के हाथों मारे जाने पर भी ये मुक्त नहीं, क्योंकि विप्रशाप तीन जन्मों के लिए (१।१२२-१।१२३।२)।

मूल शब्द — १।१२२।४।

जलंधर (जालन्धर) — शंकर के क्रोध का मूर्त्त रूप जो पुनः सागर से उत्पन्न। प० पु० उ० ३।३६,४२। दैत्यराज।

[प०पु० में — एक समय देवताओं-अप्सराओंसहित इन्द्र का कैलास-गमन। वहाँ संगीत-नृत्य। प्रसन्न शिव के वर माँगने के लिए कहने पर, उनके सदृश योद्धा से युद्ध की कामना व्यक्त कर इन्द्र का लौटना। शंकर के ललाट से मूर्तिमान घनअन्धकारमय क्रोध प्रकट। सागर-सुत बन इन्द्र-विजय करने का उसे शंकर-आदेश। सागर और 'नाकसिन्धु'-'महानदी' के संगम से इसकी उत्पत्ति। इसके रुदन से जगत् वधिरप्राय। अस्थिर ब्रह्मा का आगमन। सागर द्वारा उन्हें अपना पुत्र समर्पित। ब्रह्मा के अंक में लेते ही बालक का उनकी दाढ़ी पकड़कर खींचना। छुड़ाने पर भी न छोड़ना। उसकी शक्ति से प्रसन्न ब्रह्मा का प्यार से उसका 'जालन्धर' नाम रख वरदान देना — 'अयं जालन्धरो देवैरजेयश्च भविष्यति।··· पातालसहितं नाकं मत्प्रसादेन भोक्ष्यति।' ३।५२-५३। शुक्राचार्य से इसे शस्त्रास्त्र और संजीवनी विद्या की शिक्षा प्राप्त। स्वर्णा और क्रौंच की पुत्री वृन्दा से विवाह। पाताल के दानव-राज्य का अधिपति।

एक बार मस्तकहीन राहु से इसकी भेंट। अमृत-प्राप्ति के लिए अपने पिता सागर के मन्थन की उससे कथा सुन, इन्द्र से सागर-मन्थन का कारण जान, इसका देवताओं पर क्रोध। शुक्राचार्य की भी प्ररोचना। विशाल सेना ले देवताओं पर आक्रमण। इन्द्र-विजय। अमरावती पर अधिकार। गरुड़ आहत। विष्णु पराजित। इसके पराक्रम से प्रसन्न हो वर माँगने के लिए उनके कहने पर इसकी वर-याचना — वे लक्ष्मीसहित सागर में निवास करें (स्थातव्यं मत्पितुःस्थाने त्वया कमलयासह। ८।८५।)। बाद में शिव के पूछने पर विष्णु का इसे न मारने का कारण बताना — 'यदि तं हन्मि देवेश श्री कथं ममवल्लभा'। १०।१२४। इसके वध के लिए शिव के नर्त्तन से सर्वदेवतेजोमय सुदर्शन चक्र की उत्पत्ति। उसके असह्य तेज से सबकी रक्षा के लिए शिव का उसे कक्षापुट (काँख) में छिपा लेना।

नारद से पार्वती-सौन्दर्य की प्रशंसा सुन, उनको पाने के लिए, पत्नी वृन्दा के मना करने पर भी, इसका कैलास पर आक्रमण। भीषण युद्ध। शिव के पौरुष से असुर सेना त्रस्त। तब इसे पार्वती का स्मरण। उन्हें वहाँ कहीं न देख, सेनापति शुम्भ को माया से जालन्धर-वेश में युद्ध करने का आदेश दे, स्वयं दुर्वारण को साथ ले इसका मानसोत्तर पर्वत की ओर गमन। माया से शिव का रूप धारण कर, दुर्वारण को नन्दी बना उस पर आरूढ़ हो, रक्ताक्त कलेवर सज पार्वती के पास जाना। उनके आगे गणेश-कार्त्तिकेय के छिन्न मस्तक रख मणिभद्र, वीरभद्र आदि के वध का समाचार सुनाना। जया आदि सखियोंसहित पार्वती स्तब्ध। उनका विलाप। इस मायाशिव का आर्त्त होकर पार्वती की संग-कामना व्यक्त करना। पार्वती को अस्वीकार। तब क्षुब्ध हो इसका 'स्वगृह'-गमन।

सिन्धु में विष्णु को अपशकुन-दर्शन। युद्ध-स्थिति जानने के लिए उनका गरुड़ के मुख में सर्वसिद्धा गुटिका रखकर भेजना, ताकि जालन्धर-माया से वे मुग्ध न हों। लौटकर मायाशिव की चेष्टाओं से विष्णु को अवगत करा, वृन्दा के रूप की प्रशंसा कर, उनके हरण का विष्णु को गरुड़ का परामर्श। विष्णु-कथन — वृन्दाहरण से शिव-पार्वती का उपकार और स्वयं उनकी देह-तुष्टि होगी। सर्पराज शेष के साथ उनका गमन और माया से वृन्दा का सतीत्व-हरण। दे० 'असुराधिप नारी'।

पार्वती का आकाशगंगा में जाकर तप। एक दिन मायाशिव की परीक्षा के लिए उनका जया को भेजना। उनका रूप धर जया के जाने पर यदि मायाशिव उसका आलिंगन करे, तो असुर, यदि उससे पार्वती के

सम्बन्ध में पूछे, तो शंकर। जया को उमा समझ इसके द्वारा उसका आलिंगन। वीर्यपात। जया से इसकी वास्तविकता जान भय से उमा का कमल में प्रवेश। जया आदि सखियों का उस पर भ्रमर बन मँडराना।

वृन्दा को महल में न देख चिन्तित रक्षकों का रणभूमि में जाकर शुम्भ से उनके विष्णु द्वारा हरण का सम्वाद कहना। शुम्भ का चण्ड-मुण्ड को मायाशिव के पास भेजना। मायाशिव की द्विविधा – पहले शंकर को जीते या सागर में जा विष्णु को। चण्ड-मुण्ड के समझाने पर पहले शंकर को मारने का निश्चय कर रणभूमि में आना। रोती हुई माया-पार्वती रचकर शंकर को मोहित करना। ब्रह्मा के (प० पु० उ० १०४ में विष्णु के) प्रबोधन से चेतंकर शंकर को क्रोध और उनका भीषण युद्ध। सुदर्शन चक्र से इसका शिरश्छेद। प० पु० उ० ३।१६।

उपर्युक्त कथा ईशान कल्प की। प० पु० उ० ६६-१०४ में एक अन्य कल्प की जालन्धर-कथा। इसमें कैलास पर जा एक भयंकर पुरुष को देख इन्द्र-प्रश्न – वह कौन और शिव कहाँ। बार-बार पूछने पर भी कोई उत्तर न पा क्रोध से इन्द्र का उस पर वज्र-प्रहार करना। उसका कण्ठ नील हो जाना। उसकी कोपाग्नि का प्रज्वलित हो इन्द्र को भस्म करने को उद्यत होना। उन्हें पहचानकर इन्द्र का विनती करना और तुष्ट होकर शंकर का कोपाग्नि को सिन्धुगंगा-सागर-संगम में फेंकना। बालक जालन्धर को रुद्र के अतिरिक्त सर्वभूतों से अवध्य होने का ब्रह्मा-वरदान। वृन्दा कालनेमि-सुता (अ० ६६)। बाद की घटनाएँ पूर्वकथा की-सी।]

एक कल्प में देवता इससे युद्ध में पराजित। शम्भु भी इसे मारने में असमर्थ। अपनी पत्नी के पातिव्रत-बल के कारण यह शिव के लिए भी अजेय (१।१२३।५-७)। इसका रावण होना। रण में इसे मारकर राम का परमपद देना (१।१२४।२)।

मूल शब्द – १।१२३।५, १।१२४।२।

जल – पंचतत्वों में चतुर्थ।

[यह तेज के विकार से उत्पन्न। इसका गुण (और तन्मात्रा) रस। इसमें कारण-तत्व आकाश, वायु, तेज के गुण क्रमश शब्द, स्पर्श, रूप भी विद्यमान। इसके विकार से पृथ्वी की उत्पत्ति। भा० २।५।२८-२६। जल-प्रलय में पृथ्वी का गुण, गन्ध इसके द्वारा ग्रस्त। गन्धहीन पृथ्वी का इसमें विलय। स्वयं इसके गुण, रस का तेजस्तत्व द्वारा ग्रसन। नीरस होकर यह तेज में लीन। भा० १२।४।१४-१५।]

पंचतत्वों से अधम शरीर की रचना का कथन (४।११।४)।

जसोमति – यशोदा। नन्द की पत्नी।

[पूर्व-जन्म में नन्द, द्रोण नामक श्रेष्ठ वसु और ये उनकी पत्नी धरा। उस जन्म में द्रोण द्वारा ब्रह्मा से याचित अनन्य प्रेममयी कृष्ण-भक्ति इस जन्म में दम्पति को प्राप्त। भा० १०।८।४८-५०। भगवान् की योगमाया का इनके गर्भ से कन्यारूप में जन्म। इनकी शय्या पर कृष्ण को सुलाकर, उस कन्या को लेकर, वसुदेव का बन्दीगृह में लौटना। भा० १०।२।६, १०।३।५१। विभिन्न पुराणों में, विशेषतः भा० १० और सू० सा० १० में, कृष्ण और बलराम के प्रति इनके वात्सल्य का वर्णन।]

जिस प्रकार इन्हें कृष्ण और बलराम अतिशय प्रिय, उसी प्रकार भक्तों की जिह्वा को राम-नाम के दो अक्षर (१।२०।८)।

जागबलिक (याज्ञवल्क्य) – श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता। रामभक्त।

[वि० पु० ३।५।२ में ये ब्रह्मरात के पुत्र, भा० १२।६।६४ के अनुसार देवरात-पुत्र। व्यास-शिष्य वैशम्पायन के शिष्य। उनसे यजुर्वेद की शिक्षा प्राप्त। वि० पु० ३।५।१-२, भा० १२।६।६२। उद्दालक आरुणि के शिष्य बनकर उनसे मन्थविद्या का उपदेश ग्रहण। बृ० उ० ६।३, पृ० ५०६। जैमिनि-शिष्य हिरण्यनाम की शिष्यता स्वीकार कर उनसे अध्यात्मयोग की शिक्षा ग्रहण। भा० ६।१२।३-४।

एक समय सब ऋषियों का मिलकर यह नियम बनाना कि महामेरुस्थित उनके समाज में नियत समय पर सम्मिलित न होनेवाले को सात रात्रियों के भीतर ब्रह्महत्या लगेगी। एकमात्र वैशम्पायन द्वारा नियम का अतिक्रमण। उनके चरण-स्पर्श से उनके भानजे की हत्या। उनकी ब्रह्महत्या दूर करनेवाला व्रत करने का शिष्यों को उनका आदेश। इनका कथन– सब ब्राह्मण निस्तेज। ये अकेले ही व्रत का अनुष्ठान करेंगे। इनकी विप्र-अवमानना से गुरु कुपित। इन्हें विद्या त्यागने का आदेश। इनके द्वारा यजुर्वेद का वमन। वमन की हुईं यजुःश्रुतियों का अन्य शिष्यों

द्वारा तीतर होकर ग्रहण, अतः उनकी संज्ञा तैत्तिरीय।

गुरु के लिए भी अज्ञात यजुःश्रुतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इनके द्वारा सूर्य का उपस्थापन। अश्वरूप में प्रकट सूर्य द्वारा इन्हें 'अयातयाम' नामक यजुःश्रुतियों का उपदेश। इनके द्वारा असंख्य मन्त्रों से उसकी पन्द्रह शाखाओं की रचना। वही 'वाजी' अथवा 'वाजसनेय' शाखा के नाम से प्रसिद्ध, क्योंकि वाजीरूप में सूर्य द्वारा उपदिष्ट। उस शाखा के प्रणेता होने के कारण इनकी संज्ञा 'वाजसनेय'। कण्व आदि ऋषियों द्वारा उनका ग्रहण, अतः उन शाखाओं के काण्व आदि नाम। वि० पु० ३।५; भा० १२।६।६१-७४।

ब्र० पु० प्र० ५ में गुरु-शाप से इनकी विद्या नष्ट। लोलार्क-कुण्ड-तीर्थ में जाकर इनके द्वारा सूर्य-स्तवन। सूर्य से वेद-वेदांग का अध्ययन। उनके आदेश से स्मरण-शक्ति-प्राप्ति के लिए वाग्देवी सरस्वती की स्तुति। उनसे वर-प्राप्ति — 'सुकवीन्द्रो भव'।

महा० में इन्हें यजुर्वेद-प्रदान करते समय सूर्य अश्वरूप नहीं। उनके अनुग्रह से सरस्वती का इनके मुख-मार्ग से शरीर में प्रवेश। स्मरण करते ही ओंकार को आगे कर प्राकट्य। शतपथ का प्रणयन कर इनके द्वारा सौ शिष्यों को अध्यापन। वेदान्तज्ञानी गन्धर्व विश्वावसु के चौबीस प्रश्नों के उत्तर में जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य-ज्ञान का प्रतिपादन। आकाश, पृथ्वी और पातालों में जाकर बिश्वावसु द्वारा इनके सम्यक् दर्शन का उपदेश। महा० शा० ३१८।२-८५।

एक समय विदेहराज जनक द्वारा विशाल यज्ञ का अनुष्ठान। कुरु और पांचाल देश के ब्राह्मण एकत्र। जनक का कथन — विप्रों में जो ब्रह्मनिष्ठ हो, वह स्वर्ण-मण्डित सहस्र गौएँ ले जाये। किसी ब्राह्मण का साहस नहीं। तब इनका अपने शिष्य को गायें ले जाने का आदेश। विप्रगण कुपित। एक-एक कर क्रमशः अश्वल, जारत्कारव आर्तभाग, लाह्यायनि भुज्यु, चाक्रायण उषस्त, कौषीतकेय कहोल, वचक्नुपुत्री गार्गी एवं आरुणि उद्दालक इनसे प्रश्न करके इनके उत्तर से मौन। पुनः दो प्रश्नोत्तर के बाद गार्गी द्वारा इनकी अजेयता की घोषणा। फिर शाकल्य विदग्धा का इनसे संवाद। इनका कथन — इनके प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देने पर उनका मस्तक गिर जायेगा। असमर्थ शाकल्य का मस्तक-पात। चोरों का उनकी हड्डियों को कुछ और समझकर उठा ले जाना। इसके बाद किसी में इनसे प्रश्न करने या इनके किसी प्रश्न का उत्तर देने का साहस नहीं। बृ० उ० ३।१-६।

इनका जनक के निकट जाना। उपदेश करने का विचार नहीं, किन्तु पहले कभी जनक को इच्छानुसार प्रश्न करने का वरदान। अतः जनक के प्रश्नों के उत्तर में उन्हें उपदेश। बृ० उ० ४।१-४। महा० शा० ३१०-३१८ में भी देवरात-पुत्र जनक को इनके दार्शनिक उपदेश। ये जनक के गुरु।

इनकी दो पत्नियाँ — मैत्रेयी एवं कात्यायनी। संन्यास लेने से पूर्व दोनों में सम्पति-विभाग की इनकी इच्छा। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी। सम्पत्ति में उनकी आसक्ति नहीं। उनकी जिज्ञासा पर उन्हें अगृतत्व का उपदेश करके इनका परिव्राजक होना। बृ० उ० २।४, ४।५।

इनके नाम से प्राप्त ग्रन्थ — शुक्लयजुर्वेद संहिता, ईशावास्योपनिषद्, सांग शतपथ ब्राह्मण, योगशास्त्र, याज्ञवल्क्य-स्मृति आदि। प्रा० च०।]

इनके द्वारा भरद्वाज को सुनायी गयी कथा — दोनों के संवाद — को विस्तारपूर्वक कहने का कवि-संकल्प (१।३०।१-२)। [वि० १।३०।१-२ व्या० के अनुसार दोनों का संवाद तापनीय श्रुतियों में। वहाँ रामकथा अति संक्षेप में वर्णित।] ये रामचरित के श्रोता और वक्ता, दोनों की परम्परा में। भुशुण्डि से इन्हें रामचरित प्राप्त। भरद्वाज से उसका कथन (१।३०।५)। [वि० १।३०।५ व्या० के अनुसार शिव का, इनके गुरु के माध्यम से, इन्हें रामचरित देना।] वक्ता श्रोता दोनों समशील, सर्वदर्शी, त्रिकालज्ञ। हरिलीला का साक्षात्कार करनेवाले (१।३०।६-७) एक बार प्रयाग में इनका मकरभर स्नान। प्रस्थान से पूर्व भरद्वाज का इन्हें रोकना। पूजन। इन्हें वेद-तत्वज्ञ और गुरु मानकर संशय-निवेदन। राम-कथा कहकर भ्रम-निवारण की इनसे प्रार्थना (१।४५।३ - १।४७।१)। इनके द्वारा भरद्वाज की प्रशंसा। रामकथा कहने की प्रतिज्ञा और सुनने की आज्ञा (१।४७।२-५)। राम-कथा-महिमा-कथन (१।४७।६-७)। समय और हेतु सहित उमा-शम्भु-संवाद कहने की प्रतिज्ञा (१।४७।८ - १।४७)। संवाद-कथन (दे० 'सिव', एवं 'भवानी' के अन्तर्गत 'सती', 'पारबती')। शिवचरित-श्रवण से भरद्वाज को प्रेमानन्द-विभोर हुआ देख इन्हें हर्ष। इनका कथन — उनका जीवन धन्य। शिव-पदानुराग बिना रामप्रिय होना असम्भव। पहले शिवचरित कहकर इन्हें

उनका मर्म ज्ञात। आज उनके समागम से इन्हें अतिशय सुख। उन्हें रामचरित सुनाने की इनकी प्रतिज्ञा (१।१०४।३ - १।१०५।७)। पुनः उमा-शम्भु-संवाद (दे० यथास्थान)। इनकी रामगुण-गाथा-कथन की प्रतिज्ञा (१।१२४ ख) रामजन्म के अपर हेतु-श्रवण की आज्ञा (१।१५२)। राम-वनवास से पूर्व इनका जनक को सम्पूर्ण रामचरित सुनाना। उसे अति संक्षेप में कौसल्या से कहकर, इनकी वाणी के मिथ्या न होने का सुनयना-कथन (२।२८५।६-८)। भरद्वाज से इनके संवाद का उपसंहार – उमा-शम्भु-संवाद का फलश्रुति-कथन (७।१३०।१-२)। रामोपासकों को वह सर्वाधिक प्रिय (७।१३०।३)। इनके संवाद की इति (७।१३०।४)। भरद्वाज द्वारा इन्हें सम्बोधन (१।४६।६)।

मूल शब्द –१।३०।१, १।३०।५, १।४५।४, १।४७।२, २।२८५।८।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **कृपानिधि** (शिव, राम, हरि, लोमश, काकभुशुण्डि भी) – १।४६।६।

सत्यधाम (शिव भी) – १।४६।

जाती (जाति) – एक काव्यांग।

[इसके चार भेद – कौशिकी, भारती, आरभटी और सात्वती (प्रथम कौसिकी भारती, आरभटी भनि भाँति। कहि केसव सुभ सात्वती, चतुर चतुर बिधि जाति। रसिकप्रिया १५।१।)। नाट्यशास्त्र में इसका नाम 'वृत्ति'। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार नाटक के पात्र अथवा काव्य के नायक के तन-मन-वचन की विचित्रता से युक्त चेष्टाएँ ही वृत्तियाँ। भोजराज के मत से चित्त के विकास, विक्षेप, संकोच तथा विस्तार की दशा में पात्रों के जो व्यवहार, व्यापार या वर्त्तन, उन्हीं का सामान्य नाम वृत्ति। शब्द-प्रधान होने के कारण भारती 'शब्दवृत्ति', अन्य तीन अर्थप्रधान होने के कारण 'अर्थवृत्ति'। अभिनय की दृष्टि से वाक्-चेष्टा, वाचिक अभिनय या पाठ्य भारती वृत्ति, मनश्चेष्टा या सात्विक अभिनय सात्वती वृत्ति, उग्र कायचेष्टा आरभटी और सौम्य कायचेष्टा कौशिकी वृत्ति। रस-दृष्टि से भारती का प्रयोग करुण तथा अद्भुत रसों में, सात्वती का वीर, रौद्र, अद्भुत रसों में, आरभटी का भयानक, वीभत्स, रौद्र रसों में तथा कौशिकी का शृंगार और हास्य में। सं० आ० ३।१० 'वृत्ति'। मम्मट के अनुसार वृत्ति वही जो वामन आदि के मत से रीति – एतास्तिस्रो वृत्तयः (उपनागरिका, परुषा, कोमला) वामनादीनां मते वैदर्भीगौडी पांचाल्याख्या रीतयो मताः। का० प्र० ६।सू० १११। हि० अ० पृ० २५६ में जाति से तात्पर्य अलंकार का।]

मानस-सर के रूपक में ध्वनि, अवरेव, गुण, जाति का मछलियों के रूप में कथन (१।३७।८)।

जानकी – दे० 'सीता'।

जाबालि – एक ऋषि। राजा दशरथ के ऋत्विज और मन्त्री। वा० रा० १।७।५-६।

[ये अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्तु मुनि के प्रशिष्य पथ्य के उन तीन शिष्यों में एक जिन्होंने संहिताओं का विभाजन किया। वि० पु० ३।६।६-११। भा० १२।७।३ में 'जाबालि' के स्थान पर अथर्ववेत्ता 'जाजलि'।

दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ के समय भी ये आमन्त्रित। वा० रा० १।८।५-६। वसिष्ठ, वामदेव आदि के साथ इनका राम-विवाह में मिथिला-गमन। वा० रा० १।६९।४-५। राम को वन से अयोध्या लौटाने के लिए इनके द्वारा नास्तिक मत का प्रतिपादन। वा० रा० २।१०८। राम का सरोष उत्तर सुन विनीत कथन – वस्तुतः ये नास्तिक नहीं। लौकिक व्यवहार के समय आवश्यकता देख नास्तिक हो सकते हैं, अवसर देखकर आस्तिक। वा० रा० २।१०९।३७-३९।]

राम आदि के विवाह के उपलक्ष्य में गोदान लेने के लिए वामदेव आदि के साथ इनका आगमन। पूजित हो, गोदान ग्रहण कर, आशीर्वाद (१।३३०-१।३३१।७) कौशिकादि के साथ इन्हें विनय-प्रणाम कर राम-लक्ष्मण का चित्रकूट से विदा करना (२।३१९।६-७)।

मूल शब्द – १।३३०। जाबाली – २।३१९।६।

जामवंत (जाम्बवत्) – जाम्बवान्। ब्रह्मा-पुत्र। उनकी जँभाई से उत्पन्न। वा० रा० १।१७।७। ऋक्षराज। वा० रा० ६।३७।१। राम के सचिवों में एक। मानस ६।१७।१-२।

[वा० रा० ६।३०।२० में ये गद्गद्-सुत, वा० रा० ६।२७।९-११ में रीछों के राजा और यूथपति धूम्र के अनुज। (प्रा० च० के अनुसार ब्रह्माण्डपुराण ३।७।३०१ में प्रजापति तथा रक्षा के पुत्र। इनकी पत्नी व्याघ्री, कन्या जाम्बवती।) ये महाप्राज्ञ, वाक्यविशारद। देवासुर-संग्राम में इन्द्र के सहायक। वा० रा० ४।६५।२०-२८, ६।२७।१२।

परमधाम जाने के समय राम का इन्हें कलियुग तक इस भूतल पर रहने का आदेश। वा० रा० ७।१०८।३६-३७।

कृष्णावतार में इनसे स्यमन्तक मणि प्राप्त करने के लिए कृष्ण का इनकी गुहा में प्रवेश। उनसे इनका अट्ठाईस दिनों तक युद्ध। फिर उनके मुष्टिकाघात से त्रस्त हो इनका उन्हें विष्णु के अवताररूप में पहचानना। इनके द्वारा उनकी स्तुति, उनके रामावतार का स्मरण। मणिसहित कन्या जाम्बवती उन्हें अर्पित। भा० १०।५६।१३-३२।]

सुग्रीवादि-सहित इनकी वन्दना (१।१८।१)। सुग्रीव के आदेश से सीतान्वेषण के लिए अंगद-हनुमदादि-सहित इनका दक्षिण दिशा की ओर गमन (४।२३।१-८)। सागर-तट पर अंगद को दुखी देख इनका उपदेश। कथन — राम मनुष्य नहीं, निर्गुण ब्रह्म। सगुणरूप में अवतरित। उनके सब वानर-सेवक अति भाग्यवान्। सगुणोपासक सब प्रकार के मोक्षों का त्याग कर उपास्य के साथ रहते हैं (४।२६।११ - ४।२६)। [सालोक्य - सार्ष्टि - सामीप्य - सारूप्य-एकत्वम् - अप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।। भा० ३।२९।१३।] गिरि-कन्दरा में सम्पाति द्वारा इनकी वाणी का श्रवण। उन्हें वानरों का भक्षण करने को प्रस्तुत देख इन्हें विशेष शोच (४।२७।१, ६)। शत योजन विस्तृत सागर लाँघने में वानरों की असमर्थता प्रकट करने पर इनका कथन — अब ये वृद्ध। इनमें पहले का-सा बल नहीं। वामनावतार में (तीन पग भूमि नापने के लिए प्रभु के विश्वरूप होने पर) इनका दो घड़ी में प्रभु के विराट शरीर की सात प्रदक्षिणाएँ करना (४।२९।६-४।२९)। [वा० रा० ४।६५।१४-१५ में विष्णु के विराट् शरीर की परिक्रमा का, वा० रा० ४।६६।३२ एवं अ० रा० ४।९।१०-११ में प्रभु के पृथ्वीव्यापी चरणों की इक्कीस बार परिक्रमा का कथन।] अंगद सबके नायक, अतः उन्हें भेजने में इनकी असहमति। हनुमान् के प्रति इनके प्रेरक वचन — रामकार्य के लिए ही उनका अवतार। उनके लिए कुछ भी अशक्य नहीं। सीता को देखकर वे लौट आयें और उनका समाचार कहें। शेष कार्य राम स्वयं करेंगे (४।३०।२-६, १०-छं०)। इनके वचन हनुमान् को प्रिय (५।१।१)।

हनुमान् द्वारा रामकार्य सम्पन्न होने का इनका सुग्रीव से कथन (५।२९।५)। राम से निवेदन — वही विजयी, विनयी, त्रिलोक में यशभागी, जिस पर प्रभु की कृपा। उन्हें हनुमत्-चरित सुनाना (५।३०।१-६)। प्रभु द्वारा सेतु-निर्माण का आदेश होने पर इनका कथन — उनका नाम ही सेतु जिसका आश्रय लेकर प्राणी भवसागर पार करने में समर्थ (६।सो० २)। इनका नल-नील को बुलाकर सब कथा सुनाना। (उन्हें प्राप्त वरदान और सागर-कथन आदि के सम्बन्ध में।) राम-प्रताप का स्मरण कर सेतु-निर्माण के लिए कहना। वानरों से तरु-गिरि-समूहों को लाने की विनती करना (६।१।५-९)।

सुवेल पर्वत पर राम का सचिवों के कर्तव्य के सम्बन्ध में परामर्श। इनका निवेदन — अंगद को दूतरूप में भेजा जाये। इनकी सलाह से सब सहमत (६।१७।१-५)। राम के आदेश से सुग्रीव-विभीषण-सहित इनका लंका के चारों विकट द्वारों को घेरने का मन्त्र निश्चित करना। वानर-सेना के चार विभाग कर उनके यथायोग्य सेनापति नियुक्त करना। सब यूथपतियों को बुलाना। प्रभु-प्रताप कहकर समझाना (६।३९।१-६)।

दूसरे दिन के युद्ध में मूर्च्छित लक्ष्मण की चिकित्सा के लिए लंका से सुषेण को लाने के लिए इनका कथन (६।५५।७)। युद्ध के चौथे दिन राम के नागपाश-बद्ध होने के बाद मेघनाद के दुर्वचन सुन इनका उसे ललकारना। उसके द्वारा इनका तिरस्कार और इन पर त्रिशूल-प्रहार। उस त्रिशूल को पकड़ इनका मेघनाद की छाती में मारना। उसका चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिरना। उसके पैर पकड़, घुमाकर, इनका धरती पर पछाड़ना। वर के कारण उसका न मरना। तब पैर पकड़ उसे लंका में फेंक देना (६।७४।३-९)। उसके वध के लिए जाते हुए लक्ष्मण के साथ सेनासहित रहने का इन्हें और सुग्रीव-विभीषण को राम का आदेश (६।७५।१०)। छठे दिन के युद्ध में कपि-वीरों को मूर्च्छित देख इनका भालुओं के साथ रावण की ओर दौड़ना। अपने दल को घायल देख, कुपित हो, रावण के वक्ष पर पदाघात करना। उसका विकल होकर रथ से नीचे गिरना। उसे मूर्च्छित देख, लात मार, इनका प्रभु के निकट आगमन (६।९८।१२-छं०)।

लक्ष्मण और सुग्रीवादि के साथ इन्हें विभीषण का राजतिलक करने के लिए जाने की प्रभु की आज्ञा। उन्हें सिंहासनासीन करके तिलक और स्तुति कर, उनके साथ सबका प्रभु के पास आना (६।१०६।२-७)। अन्य वानर-भालुओं के विदा हो चले जाने पर हनुमदादिसहित इनका सजल नेत्रों से निर्वाक् निर्निमेष प्रभु की ओर

देखना। अतिशय प्रीति देखकर प्रभु का इन सबको विमान पर चढ़ाना (६।११८ ख - ६।११६।१)। हनुमदादि के साथ ये भी अयोध्या में मनुष्यरूप में उपस्थित। राम के आदेश से सबकी वसिष्ठ के चरणों में प्रणति। कौसल्या के चरणों में नमन। उनसे आशिष-प्राप्ति (७।८।१-७।८क)। सबको विदा करते समय नीलादि-सहित इन्हें प्रभु का स्वयं वस्त्राभूषण पहनाना। प्रभु के रूप को हृदय में धारण कर इन सबका प्रस्थान (७।१७ क)।

कुवेश होने पर भी साधु का सम्मान — इसके उदाहरणरूप में इनका और हनुमान् का उल्लेख (१।७।७)। राम-पक्ष के बलशाली वीरों में इनके नाम का भी उल्लेख — शुक द्वारा रावण से (५।५४)। 'जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा।।' रावण-कथन अंगद से (६।२३।४)।

मूल शब्द — १।७।७, ४।२३।१, ४।२६।११, ४।२७।६, ४।३०।२, ४।३०।१०, ५।१।१, ५।३०।१, ५।३०।६, ५।५४, ६।१।सो० २, ६।१।५, ६।१७।२, ६।२३।४, ६।५५।७, ६।७४।४, ६।७४।६, ६।७५।१०, ६।६८।१२, ६।१०६।२, ७।८।१, ७।१७क।

पर्याय — **भालुपति** — ६।६८।१५, ६।६८।छं०।

रिच्छेस — ६।३६।३। रिछेसा — ४।२६।७। रीछ — १।१८।१। रीछपति — ४।३०।३, ६।११८ ख।

तमसा — एक छोटी नदी। सरयू के पश्चिम में बहती हुई गंगा से मिलनेवाली आधुनिक टोंस। ध० इ० तृ० पृ० १४३८।

[वा० रा० में अयोध्या से चलने पर गंगा को पार करने के बाद तमसा। इसके तट पर वाल्मीकि-आश्रम। यहीं लक्ष्मण का राम-परित्यक्त सीता को छोड़ना। वा० रा० ७।४५।१७-१८। यह तमोपहन्त्री। मुनिसेविता। इसकी रेत में देवताओं को बलि देने से मन के प्रसन्न रहने का वाल्मीकि-कथन सीता से। रघु० १४।७६।]

प्रथम दिन इसके तट पर वास — सिय-लक्ष्मण-सहित वन जाते हुए राम का (२।८४, २।१५०), चित्रकूट जाते हुए भरत-समाज का (२।१८८।८)। लौटते हुए सुमन्त्र का इसके किनारे पहुँचना (२।१४७।१)।

मूल शब्द — २।८४, २।१४७।१, २।१५०, २।१८८।८।

ताड़का (ताटका) — यक्षिणी। ऋषि-शाप से राक्षसी।

[सन्तान-प्राप्ति के लिए सुकेतु नामक यक्ष की तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा का उन्हे ताटका (ताड़का) नाम की कन्या प्रदान करना। कन्या को एक हजार हाथियों का बल देना। रूप-यौवन-सम्पन्न होने पर इसका जम्भपुत्र सुन्द से विवाह। (महा० आदि० २०८।२-३ में सुन्द और उपसुन्द निकुम्भ दैत्य के पुत्र।) इससे मारीच का जन्म।

अगस्त्य के शाप से सुन्द की मृत्यु। रोषदग्ध हो यह पुत्रसहित जाकर अगस्त्य का भक्षण करने को प्रस्तुत। अगस्त्य का इसे भयानक विकृतानना नरभक्षिणी राक्षसी होने का शाप। मारीच भी ऋषि-शाप से राक्षस। इसका क्रोध और भी प्रबल। उस पूरे क्षेत्र को उजाड़ने में यह तत्पर। वा० रा० १।२५।५-१४। डेढ़ योजन तक के मार्ग को घेरकर जिस वन में इसका वास, वह ताटका-वन के नाम से प्रसिद्ध। वा० रा० १।२४।२६-३०, १।२६।७।]

राम के एक ही बाण से इसका प्राणान्त। प्रभु का इसे 'निज पद' देना (१।२०६।५-६)। इसके वध का उल्लेख (१।२४।४, १।३५६।८, ३।२५)।

मूल शब्द — १।२०६।५, १।३५६।८, ३।२५।

पर्याय — **सुकेतुसुता** — १।२४।४।

तापस अंध — श्रवणकुमार के पिता। कथा के लिए दे० 'दसरथ' के अन्तर्गत 'तापस का शाप'।

राम-विरह में देह-त्याग करने से पूर्व राजा दशरथ को इनके द्वारा दिये गये शाप का स्मरण। उनका कौसल्या को उस शाप की कथा सुनाना, व्याकुल होना (२।१५५।४-५)।

मूल शब्द — २।१५५।४।

तामस — तमोगुण से युक्त। गीता० ७।१२। जीवात्मा को देह-बन्धन में बाँधनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न, तीन गुणों में एक तमोगुण। गीता० १४।५। मानस में संज्ञा एवं विशेषण रूप में प्रयुक्त।

[यह अज्ञान से उत्पन्न। प्रमाद-आलस्य-निद्रा-मूलक। सब देहाभिमानियों को मोहनेवाला। मनुष्य में तीनों गुण विद्यमान। इस गुण की वृद्धि होने पर अप्रकाश, कर्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति, प्रमाद, मोह उत्पन्न। गीता० १४।८, १०, १३; भा० ११।२५।१२, १५। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषयों को समझने में चित्त असमर्थ, खिन्न; मन सूना,

अज्ञान-विषाद-वृद्धि। इससे राक्षसों का बलोत्कर्ष। भा० ११।२५।१८, १६। इसकी वृत्तियाँ — क्रोध (असहिष्णुता), लोभ, मिथ्याभाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा, भय, अकर्मण्यता आदि भा० ११।२५।४।]

जय-विजय को विप्रशाप से तामस देह-प्राप्ति (१।१२२।५)। 'होइहिं भजनु न तामस देहा' — रावण-चिन्तन (३।२३।५)। विभीषण-कथन — हनुमान् से — 'तामस तनु कछु साधन नाहीं' (५।७।३), राम से— 'सहज पापप्रिय तामस देहा' (५।४५।८)। राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। सत्वगुण एवं तमोगुण की स्वल्पता, रजोगुण की अधिकता, मन में हर्ष और भय द्वापर के लक्षण (७।१०४।१, ४)। इस गुण की अधिकता, रजोगुण की स्वल्पता, चतुर्दिक् विरोध कलि-प्रभाव के सूचक (७।१०४।५)। कलियुग में लोगों द्वारा तामस धर्म का आचरण (७।१०१ ख)।

मूल शब्द — १।१२२।५, ३।२३।५, ५।७।३, ५।४५।८, ७।१०१ ख, ७।१०४।४, ७।१०४।५।

तारकु (तारक) — (दुःख-महार्णव से तारनेवाला। प० पु० सृ० ४४।४२।) एक दैत्येन्द्र का नाम।

कश्यप ~ दिति > वज्रांग ~ वरांगी (ब्रह्मपुत्री) > तारक। प०पु० सृ० ४४।५, ६, २०, ४८।

[वज्रांग के तपोलीन रहने पर इन्द्र द्वारा वरांगी का उत्पीड़न। पत्नी की आर्त्त प्रार्थना पर तारक (तारनेवाले) पुत्र की कामना से वज्रांग की तपस्या। ब्रह्मा द्वारा 'तारक' नामक पुत्रप्राप्ति का वरदान। सहस्र वर्ष बाद इसका जन्म। तप करके ब्रह्मा से वरप्राप्ति — सात दिन के बालक के अतिरिक्त और कोई इसे न मार सके। इसका दैत्येन्द्र-पद पर अभिषेक। इसके आतंक से देवता त्रस्त। प० पु० सृ० ४४; स्क० पु० कौ० १५। दे० भा० में ब्रह्मा का वरदान कि इसकी मृत्यु केवल शिव के औरस पुत्र द्वारा ही। तब देवताओं की प्रार्थना पर (इसका वध करनेवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिए) देवी की गौरी शक्ति का हिमालय के घर प्राकट्य। दे० भा० ७।३१। गौरीशंकर के पुत्र कार्त्तिकेय के नेतृत्व में देवताओं का इससे युद्ध। कुमार द्वारा इसका वध। प० पु० सृ० ४६।१५६-२१३। मय-निर्मित जिन तीन पुरों (त्रिपुर) का शंकर द्वारा दाह, उनके राजा क्रमशः ताराक्ष (या तारकाक्ष), कमलाक्ष और विद्युन्माली इसी के पुत्र। दे० 'मय'।]

(शिव-पार्वती-विवाह से पूर्व) इसके जन्म का कथन। यह अपूर्व भुजबल-तेज-प्रताप-सम्पन्न। अजर-अमर। समस्त लोक-लोकपालों पर इसकी विजय (१।८२।५-७)। शरण में आये विजित त्रस्त देवताओं से ब्रह्मा-कथन — युद्ध में इसे जीतकर इसका वध करने में केवल शिव के शुक्र से उत्पन्न पुत्र ही समर्थ (१।८२।८-१।८२)। [शिव के शरीर-सम्भूत पुत्र तो वीरभद्रादिक भी, किन्तु वरदान के कारण इसके निधन के लिए शिव का शुक्र-सम्भूत पुत्र चाहिए। वि० १।८२ व्या।] कार्त्तिकेय द्वारा युद्ध में इसका वध (१।१०३।७)।

मूल शब्द — १।८२।५, १।१०३।७।

तारा — वाली की पत्नी।

[वा० रा० में — ये सुषेण की पुत्री। ४।२२।१३। चन्द्रमुखी, प्रियदर्शना, चारुहासिनी। ४।१६।१, ४।१६।१७, ४।३३।३१। सूक्ष्म विषयों के निर्णय और उत्पातों के चिह्न समझने में निपुण। मन्त्रविद्। ४।१६।१२, ४।२२।१३। वाली के अनुसार सर्वज्ञ, तपस्विनी। ४।१७।४१, ४।१८।५५। ये सुग्रीव की अभिप्रेता। वाली-वध के बाद उनका इन्हें पत्नी बनाना। ४।२६।४। पहले भी एक बार वाली को मृत समझ उनका इन्हें पत्नीरूप में भोगना। ४।४६।६। युद्ध-समाप्ति के बाद अयोध्या जाने के लिए इनका भी अन्य वानर-स्त्रियों के साथ पुष्पक पर बैठना। वा० रा० ६।१२३।२३-३७।]

राम-प्रेरित सुग्रीव से लड़ने के लिए जाते हुए वाली को इनका समझाना — राम-लक्ष्मण काल को जीतने में भी समर्थ। वाली का इन्हें भीरु और राम को समदर्शी कहकर गमन (४।२७।७ - ४।७)। पति के वध पर इनका विलाप। केश बिखरे हुए, देह की सुधि नहीं। [राम से अपना वध करने का आग्रह। वा० रा० ४।२४।३३,३६।] इन्हें विकल देख राम द्वारा ज्ञानोपदेश — पंचतत्वरचित शरीर की अनित्यता और जीव की नित्यता समझाकर इनका माया-हरण। ज्ञानोदय होने पर इनका प्रभु के चरणों से लगना। वररूप में इन्हें परम भक्ति की प्राप्ति (४।११।२-६)। सुग्रीव के कहने पर हनुमान् का इनको साथ लेकर क्रुद्ध लक्ष्मण को विनयपूर्वक समझाने के लिए जाना (४।२०।३-४)।

मूल शब्द — ४।११।२, ४।११।३, ४।२०।३, ४।२०।४।

तिसिरा (त्रिशिरा) -- खर, दूषण और शूर्पणखा का भाई। वा० रा० ३।२३।३३ में यह दूषण की सेना का एक राक्षस-वीर।

राम से युद्ध करते हुए राक्षसों का पलायन देख खर-दूषण-सहित इसे क्रोध। उनको चेतावनी (३।२०। तोमर २-३)। सेना को व्याकुल देख ये तीनों भाई राम की ओर अभिमुख। युद्ध में राम की लीला से सेनासहित इनका संहार। राम-राम कहते हुए शरीर-त्याग। मोक्षपद-प्राप्ति (३।२०।छं० २-३।२० क)। शूर्पणखा से इन तीनों का वध सुनकर रावण को क्रोध (३।२२।१२)। तीनों के वध का उल्लेख (३।२५, ५।२१।६)।

मूल शब्द -- ३।२०।छं०२, ३।२२।१२, ३।२५। त्रिसिरा — ५।२१।६।

तुरीय -- आत्मा की चतुर्थ, अविकारी, पूर्ण अवस्था।

[आत्मा को जाग्रत अवस्थाओं में बाह्य वस्तुओं का, स्वप्नदशा में आभ्यन्तर मानस-जगत् का, सुषुप्ति में केवल अपनी आनन्द-स्वरूपता का अनुभव। ये तीनों आत्मा की अपर अवस्थाएँ। इनमें आत्मा की संज्ञा क्रमशः विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ। आत्मा की चतुर्थ या तुरीय अवस्था (पूर्णावस्था) में उन सब गुणों का अभाव जो इन तीनों दशाओं में विद्यमान। ' उस समय न बाह्यचेतना रहती है न अन्तःचेतना, न दोनों का सम्मिश्रण, न प्रज्ञा रहती है न अप्रज्ञा। अदृष्ट, अग्राह्य, अव्यवहार्य, अलक्षण (लक्षण या चिह्न से विरहित), अचिन्तनीय, अव्यपदेश्य (नामरहित), केवल आत्मप्रत्ययसार (केवल एक आत्मा की सत्ता का ही भान), प्रपंचोपशम (समस्त बाह्य जगत् शान्त), शान्त, शिव, अद्वैत -- यह चतुर्थ कहा जाता है। यही आत्मा है, इसे ही जानना चाहिए' (मा० उ० ७)। इस आत्मा को 'तुरीय' (चतुर्थ) कहते हैं। यह जाग्रतादि अवस्थात्रय से पृथक्, कूटस्थ अविकारी है। इसी कूटस्थ आत्मा की एकता निर्गुण ब्रह्म से सर्वतोभावेन सिद्ध मानी जाती है। ओंकार इसी आत्मा का द्योतक अक्षर है। भा० द० पृ० ७३-७४।]

ज्ञानदीप-प्रसंग में तीनों अवस्थाओं और तीनों गुणों को कपास से (स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों से) दूर करके, तुरीयावस्थारूपी रुई को सँवारकर मोटी बत्ती बनाने का कथन (७।११७ ग)।

मूल शब्द – (राम एवं शिव के लिए भी प्रयुक्त)-- ७।११७ ग।

तुलसी^{1}-- दे० 'तुलसीदास'।

तुलसी^{2}-- अति पावन वृक्षविशेष। वृक्षरूप धारण करने से पहले

(१) लक्ष्मी का अंशावतार। दे० 'लच्छि'।

(२) कृष्णप्रिया तुलसी नामक गोपी का अवतार ब्र० पु० प्र० १५।

[पूर्वजन्म में ये गोलोकवासिनी गोपी। कृष्ण की अनुचरी, अर्द्धांगिनी, प्रेयसी सखी।एक दिन रासमण्डल में पधारकर रोष से राधा का इन्हें मानव-योनि में उत्पन्न होने का शाप। तब कृष्ण-कथन-- ये भारत में रह तप करें। ब्रह्मा वर देंगे जिसके फलस्वरूप विष्णु इन्हें पतिरूप में प्राप्त होंगे।

धर्मध्वज-पत्नी माधवी के गर्भ से कार्तिक पूर्णिमा के दिन इनका आविर्भाव। अनुपम सौन्दर्य के कारण यह नाम। सबके मना करनें पर भी स्वामीरूप में नारायण-प्राति के लिए बदरीवन जा कठोर तप। ब्रह्मा का प्राकट्य और कथन– इस जन्म में इनका विवाह दानवेन्द्र शंखचूड़ से होगा (जो पूर्वजन्म में कृष्ण का अंशभूत गोप और राधा-शाप से अब दनु-कुलोद्भव दानव); नारायण-प्राति अगले जन्म में होगी; अपनी एक कला से इनकी भारत में वृक्षरूप में स्थिति होगी। ब्रह्मा-प्रदत्त षोडषाक्षर मन्त्र से राधा की उपासना कर ये राधा की तरह सिद्ध।

शंखचूड़ का बदरीवन-आगमन। ब्रह्मा के आदेश से इन दोनों का गान्धर्व-विवाह। कालान्तर में शंकर-शंखचूड़-युद्ध। इनके पातिव्रत के कारण शंखचूड़ शंकर द्वारा भी अजेय। अतः वृद्ध ब्राह्मण याचक का वेश धर हरि का शंखचूड़ से कृष्णकवच माँग लेना और शंखचूड़ का रूप धारण कर इनके पास आ इनका सतीत्व-भंग करना। तत्क्षण शंकर-त्रिशूल से शंखचूड़ भस्म हो दिव्य गोपरूप में परिणत ।

वास्तविकता जानकर इनके द्वारा प्रभु को पाषाणरूप होने का शाप (पाषाण सदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो। तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना।। प्र० २१।२४)। इनका शोकसंतप्त विलाप। इनसे भगवत्कथन--शरीर को त्याग ये सदा उनके साथ निवास करें। इनकी देह नदी रूप में परिणत हो 'गण्डकी' नाम से प्रसिद्ध हो; (गण्डकी में पाषाण-विग्रह शालिग्राम रूप में भगवान् का नित्य वास) इनके केशकलाप पवित्र वृक्षरूप हो तुलसी नाम से

त्रिलोकविख्यात हों। (त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने।। स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम संनिधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि।।········ तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति।। ········ सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेद्धरेः। या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः।। प्र० २१।३४,३५,३८,४१।) शरीर त्यागकर ये हरि के वक्षःस्थल पर शोभित। इनके साथ हरि का वैकुण्ठ-गमन। लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा के साथ ये भी हरि की पत्नी (लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी चापि नारद।। हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च।। प्र० २१।१०२।)। ब्र० पु० प्र० १५-१६, २०-२१।

सरस्वती को इनका गौरव सह्य नहीं। उनके द्वारा इनका अपमान। इनका अन्तर्धान होना। हरि की विकलता। उनका तुलसीवन में जा कल्पतरु-सदृश दशाक्षर मन्त्र (श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा) का उच्चार कर इनकी पूजा करना। इनका वृक्ष से प्राकट्य। वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी। पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी।। — इन आठ नामों से हरि द्वारा इनकी स्तुति। सरस्वती के साथ इनका पुनः प्रेमभाव। ब्र० पु० प्र० २२।

प० पु० उ० १६ में शंखचूड़ के स्थान पर जालन्धर, तुलसी के स्थान पर वृन्दा। (दे० 'जलंधर', 'असुराधिप नारी'।) जालन्धर वेशधारी प्रभु द्वारा उनकी माया से मोहित वृन्दा का सतीत्व-हरण। उनको वृन्दा-शाप — 'अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना। तथा तव वधूं मायातपस्वी कोऽपि नेष्यति' (उ० १६।५४)। योगाग्नि से वृन्दा का आत्मदाह। वह स्थान वृन्दावन। मुग्ध शोकाकुल प्रभु का उनकी भस्म में लोटना। चिन्तित देवताओं द्वारा महामाया-स्तुति। उनके आदेश से सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी के पास जा, उनके बीज ले, देवताओं द्वारा उस स्थान पर रोपण। उन बीजों से क्रमशः धात्री (आँवला), मालती, तुलसी की उत्पत्ति। धात्री और तुलसी में स्त्रीरूप देख, उनको वृन्दा का रूप मान, उन्हें साथ ले भगवान् का वैकुण्ठ-गमन। प० पु० उ० १०४, १०५। इनका और गणेश का एक दूसरे को शाप। दे० 'गनेस'।

हरि-पूजन के लिए इनकी सागर-मन्थन से उत्पत्ति — ततः प्रिया हरेः पुण्या तुलसी लोकपावनी।। समुत्पन्ना जगद्धात्री पूजार्थं शार्ङ्गिणो हरेः। प० पु० उ० २३२।५४-५५। गोमती-तीर पर कृष्ण द्वारा, सरयू-तट पर राम द्वारा, शंकरार्थ पार्वती द्वारा इनका रोपण। प० पु० सृ० ६३।१६, २१, २४।]

तुलसीदास के तुलसीसदृश पवित्र होने का कथन (१।२६)। [आनन्दकानने कश्चिज्जंगमस्तुलसीतरुः। कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता।।' मधुसूदन सरस्वती।] रामकथा 'रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी' (१।३१।१२)। धनुष-यज्ञ में राम-लक्ष्मण के 'उरन्हि तुलसिका माल' (१।२४३)। राम-बरात के अवधागमन पर 'मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा' (१।३४६।५)। चित्रकूट में राम की पर्णकुटी के निकट 'तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए।।' (२।२३७।७)। पातिव्रत-पालन के कारण 'अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय' (३।५क)। बिभीषण-महल में नये-नये तुलसी के वृक्ष (५।५)। 'नव तुलसीदल मंगल मूला' (७।३।५)। सरयू के 'तीर तीर तुलसिका सुहाई' (७।२९।६)। [तुलसीदास के राम की 'बनमाला' (१।१४७।६, १।१६२।छं०१, ३।३४।७) में भी प्रधानता तुलसी की (··· भ्राजत बनमाल उरसि, तुलसिका प्रसून रचित···। गी० ७।३।]

मूल शब्द — १।२६, १।३१।१२, २।२३७।७, ७।३।५। तुलसि — १।३४६।५। तुलसिका—१।२४३, ३।५क, ५।५, ७।२९।६।

तुलसीदास — हिन्दी के श्रेष्ठ रामभक्त कवि।

[इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में मतभेद। बेनीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईंचरित' एवं महात्मा रघुनाथदास के अनुसार इनकी जन्म-तिथि सं० १५५४। भक्तों की जनश्रुति के आधार पर पं० रामगुलाम द्विवेदी की मान्यता कि इनका जन्म सं० १५८९ में। हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल। सन्त तुलसी साहब की 'घट रामायण' में भी जन्म-तिथि सं० १५८६। सा० को० २। (प्रचलित मान्यता के अनुसार श्रावण शुक्ला सप्तमी को इनकी जन्म-तिथि मनायी जाती है।)

सं० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को इनकी मृत्यु-तिथि मनाने की लोक-परम्परा, किन्तु इनके स्नेही टोडरमल के वंशज का श्रावण कृष्णा तृतीया को इनकी वर्षी मनाना। इसलिए १६८० की श्रावण कृष्णा तृतीया को इनकी निधन-तिथि माना जा सकता है। सा० को० २।

कुछ वर्ष पहले तक राजापुर (जिला बाँदा) ही इनके जन्म-स्थान के रूप में प्रसिद्ध, किन्तु कुछ नवप्राप्त

आधारों पर सोरों (जिला एटा) को इनका जन्म-स्थान प्रमाणित करने का कुछ लोगों का प्रयत्न। ये नवप्राप्त आधार अत्यन्त सन्दिग्ध।

वि० प० १३५ से यह प्रमाणित कि इनका जन्म अच्छे कुल में। इनका ब्राह्मण होना भी कदाचित् निर्विवाद। इनके गोत्र आदि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं। जीवन के उत्तरार्द्ध में काशी में इनकी जाति-पाँति को लेकर वितण्डावाद, जिसका कुछ परिचय क० ७।१०६-१०७ तथा वि० प० ७६ में प्राप्त। कहीं-कहीं इनके माता-पिता के नामों का जो उल्लेख, उसकी प्रामाणिकता सर्वथा सन्दिग्ध।

जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही माता-पिता से इनका बिछोह। भिक्षा माँग-माँगकर उदर-पूर्ति। इस अवस्था का करुण चित्रण क० ७।५७, ७३ तथा वि० प० २२७, २७५ में। किसी हनुमान्-मन्दिर में आश्रय मिलने के बाद इनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था। इस मन्दिर के साथ लगी खोंची माँगकर इनका निर्वाह (हनुमान् बाहुक २६, ३४; वि० प० ३३)। कदाचित् इसके कुछ ही समय पश्चात् इन्हें रामभक्ति की दीक्षा प्राप्त। इनके गुरु कौन, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। कुछ काल बाद कदाचित् इनका विवाह (हनुमान् बाहुक ४०)। फिर विराग और गृह-त्याग।

रा० प्र० २।६।१-३, क० ७।१४१-१४२ से यह प्रकट कि विरक्त होकर इनके द्वारा कुछ समय तक चित्रकूट में रामभक्ति की साधना। फिर तीर्थयात्राएँ (क० ७।१३८-१४०, १४४-१४७, वि० प० ६०)। रामचरितमानस की रचना सं० १६३१ में अयोध्या में आरम्भ (मानस १।३४।४-८, १।३५।५-८), किन्तु उसका कुछ अंश काशी में भी रचित (मानस ४।१।सो०)। (मानस-रचना के अनन्तर इनकी ऐसी प्रतिष्ठा कि ये जीवनकाल में ही वाल्मीकि के अवतार-रूप में मान्य। क० ७।७२।) पश्चात् काशी में ही इनका वास और देहावसान। (हनुमान् बाहुक २१-२२, ३७-४१ के अनुसार जीवन के अन्तिम अंश में ये बाहुपीड़ा, शारीरिक पीड़ा और बरतोड़ के असह्य कष्ट से पीड़ित।) काशी में इनका वासस्थान तुलसीघाट नाम से प्रसिद्ध। इनके द्वारा स्थापित हनुमान्-मन्दिर 'संकटमोचन' नाम से विख्यात।

हिन्दी हस्त-लिखित पुस्तकों के खोज-विवरणों के अनुसार इनकी रचनाओं की संख्या उनचालीस। उनमें निम्नलिखित बारह प्रामाणिक रूप से इनकी कृतियाँ — (१) रामलला-नहछू, (२) रामाज्ञा-प्रश्न, (३) जानकी-मंगल, (४) रामचरितमानस, (५) पार्वती-मंगल, (६) गीतावली, (७) कृष्ण-गीतावली, (८) विनय-पत्रिका, (९) बरवै रामायण, (१०) दोहावली, (११) कवितावली, २१२) हनुमान्-बाहुक। शेष रचनाओं की प्रामाणिकता सन्दिग्ध। इनकी कृतियाँ अवधी और ब्रजभाषा, दोनों में रचित। उनमें तत्कालीन अनेक काव्य-रूपों का प्रतिनिधित्व। सा० को० २।]

मानस में इनका आत्म-कथन —

शम्भुरचित रामायण को स्वान्तःसुखाय भाषा-निबन्ध में लिखने की इनकी प्रतिज्ञा (१।१।श्लो० ७)। महेश-भवानी इनके सच्चे निश्छल हितकारी (१।१५।४)। राम-नाम के दो अक्षर 'राम लखन सम प्रिय तुलसी के' (१।२०।३)। पहले ये भाँग की तरह अग्राह्य। राम-नाम का स्मरण करने से तुलसी-तरु की भाँति पावन और पूज्य (१।२६)। (इनका कण्ठी-छापा-तिलक आदि देखकर) लोगों का इन्हें राम-सेवक कहना। ऐसा कहलाना इन्हें प्रिय। किन्तु वस्तुतः इनमें राम-सेवक होने की योग्यता नहीं (१।२८ख)। राम की भलाई से (सेवक का अपराध न देखने के उनके स्वभाव से) इनका भी कल्याण (१।२९ख)। रामकथा 'तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी' (१।३१।१२)। शम्भु-प्रसाद से इनके हृदय में सुमति का उदय, जिससे ये रामचरितमानस के कवि (१।३६।१)। इनका अपने मन को प्रवोधन (१।२११)। अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए इनके द्वारा राम-यश-वर्णन (१।३६१।छं०)। भरत की स्वाभाविक भक्ति के प्रभाव से इनके मन में सुमति का हुलास, पर अपनी लघुता और भक्ति की महिमा की महानता देखकर, कवि-समाज की मर्यादा को समझकर, बुद्धि संकुचित (२।३०३।६-८)। 'सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।··· कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।।' (२।३२६।छं०)। इनके द्वारा भरत-चरित-श्रवण का माहात्म्य-कथन (२।३२६)। 'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ। पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।' (७।१३०।छं०३)। 'मत्वा तद्रघुनाथनामनिरंत स्वान्तस्तमः शांन्तये भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।' (७।१३० ख के बाद श्लो०१)।

मानस के 'छन्दों' और दोहों में, कहीं-कहीं चौपाइयों में, इनके द्वारा अपना नामोल्लेख (१।१०।छं०, १।१६, १।२०, १।२१, १।२६क, १।३१, १।४८ख, १।१००।छं०, १।१०३, १।१२४ ख, १।१६१ ख, १।१९६, १।२३६।छं०,

१।२६१।छं०, १।३११।छं०, २।२५।छं०, २।५०।छं, २।७५।छं०, २।१५१।छं०, २।१७६।छं, २।२०१।छं०, २।२२६।छं०, २।२२६, २।२५१।छं०, २।२७६।छं०, २।३०१।छं०, २।३०६, २।३१५, ३।६।छं०, ३।३६।छं०, ३।४६।छं०, ४।३०।छं०, ५।३।छं० ३, ५।६०।छं०, ६।७१।छं०, ६।८६।छं०, ६।१०१ क, ६।११५ छं० ५, ६।१२१।छं०२, ७।३०।१०, ७।३५।९, ७।५१।९, ७।७४ ख)।

मूल शब्द — १।२८ ख, २।५०।छं०, २।१००।छं०, ३।४६।छं०, ५।३।छं०, ६।१०१ क, ६।१२१।छं० २, ७।१३०।छं० ३, ७।१३० ख के बाद श्लो० १। तुलसिदास — १।३१।१२, १।१९६, १।२११, ६।११५।छं० ५, ७।३०।१०, ७।३५।९, ७।५१।९, ७।७४ ख। तुलसीदासु — १।२६, १।१०३।

दास तुलसी — ३।६।छं०, ३।३६।छं०, ४।३०।छं०, ५।६०।छं०, ६।७१।छं०, ६।८६।छं०।

तुलसी - १।१।श्लो० ७, १।१०।छं०, १।१५।४, १।१९, १।२०।३, १।२०, १।२१, १।२९क, १।२९ख, १।३१, १।३६।१, १।४८ख, १।१००।छं०, १।१२४ख, १।१५९ख, १।१६१ ख, १।२३६।छं०, १।२६१।छं०, १।३११।छं०, १।३६१।छं०, २।२५।छं०, २।७५।छं०, २।१५१।छं०, २।१७६।छं०, २।२०१।छं०, २।२२६।छं०, २।२२६, २।२५१।छं०, २।२७६।छं०, २।३०१।छं०, २।३०३।६, २।३०६, २।३१५, २।३२६।छं०, २।३२६।

तेरहुति (तिरहुत) — 'तीरभुक्ति' का अपभ्रंश। वि० को०। मिथिला — मुजफ्फरपुर और दरभंगा। बृ० को। मिथिलापुरी, जनकपुर। मा० पी० १।२८९।७ शब्दार्थ। जनक के राज्य और राजधानी का नाम।

[१८७४ ई० तक यह पटना का सर्वोत्तरवर्ती जिला। १८७५ ई० में इस बड़े जिले का मुजफ्फरपुर और दरभंगा नामक दो स्वतंत्र जिलों में विभाजन। यहाँ गंगा, गण्डक आदि नदियाँ प्रवाहित। वि० को०।

मिथिला का दूसरा नाम विदेह। वि० को० 'मिथिला'। विदेह मगध के पूर्वोत्तर में विद्यमान एक देश। इसकी राजधानी मिथिला थी जो अब मधुबनी के उत्तर में नेपाल में जनकपुर नाम से विख्यात। प्राचीनकाल में विदेह के अन्तर्गत, नेपाल के एक भाग के अतिरिक्त वे सब स्थान भी थे जो सीतामढ़ी, सीताकुण्ड अथवा तिरहुत के पुराने जिले का उत्तरी भाग और चम्पारन का उत्तर पश्चिमी भाग कहलाता है। आ० को० परिशिष्ट ३। मानस में 'विदेह' शब्द का प्रयोग मिथिला के लिए नहीं, जनक के लिए।]

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का इस नगर के निकट पहुँचना (१।२१२।४)। यह अत्यन्त रमणीय। यहाँ अनेक वापी-कूप-सरित-सरिताएँ। बहुवर्णी कमल और भ्रमरों का गुंजन, पक्षियों का कलरव। सुखद त्रिविध समीर। नगर के चतुर्दिक् पुष्प-वाटिकाओं, वन-उपवनों की शोभा (१।२१२।५ - १।२१२)। सुन्दर सुगन्धित बाजार, चौराहे, गलियाँ। कुबेर-से वणिक्। मंगलमय भवन मानो कामदेव द्वारा चित्रित। यहाँ के नगरवासी साधु-स्वभाच, धर्मात्मा, ज्ञानी, गुणी (१।२१३।१-६)। जनक के महल और परिपार्श्व का ऐश्वर्य देवताओं को चकित करनेवाला (१।२१३।७-८)। लक्ष्मण के मन में इस नगर को देखने की लालसा। विश्वामित्र का अनुमति-दान (१।२१८।१,५ ; १।२१८)। देवताओं की दृष्टि में उनके लोक इससे हीन (१।३१४।४)। चौदहों भुवन की शोभा इसकी शोभा के आगे तुच्छ (१।२८९।७)। बरात की बिदाई के समय यहाँ करुणा और विरह व्याप्त (१।३३७)। दशरथ की मृत्यु से यह (राज्य) अवध के साथ विशेषरूप से अनाथ — चित्रकूट में जनक-दूतों का कथन (२।२७०)। इसके सम्बन्ध में उल्लेख (१।३१०।४, २।२७१, २।२७८।१, २।३२२।७)।

मूल शब्द — १।२८९।७, २।३२२।७। तेरहूति — २।२७१।

पर्याय — **जनकपुर** — १।२१८।१, १।३१०।४। जनकपुरु — १।३१४।४।

बिदेह नगर — १।२१२।४।

बिदेहपुर — १।३३७।

मिथिला — २।२७०।

मिथिलापति नगर — २।२७८।१।

त्रिकूट — तीन शृंगोंवाला पर्वत। वह पर्वत जिस पर लंका बसी थी।

[लवणसागर (दक्षिणी समुद्र) के उस पार इसकी स्थिति। इसका मेघवर्णी मध्य-शिखर स्वर्गस्पर्शी। सौ योजन विस्तृत। सुन्दर, स्निग्ध, कान्तिमान्। चतुर्दिक् टाँकियों से कटा हुआ। पक्षियों के लिए भी दुर्गम। उस पर इन्द्र के आदेश से विश्वकर्मा द्वारा लंकापुरी का निर्माण। वा० रा० ५।१।१०७, ५।२।१, ६।३९।१७-१९, ७।५।२४-२६।

(महा० वन० २८२।५६ में लंका इस पर्वत की कन्दरा में।) वामन पुराण के अनुसार यह सुमेरु का पुत्र। बृ० को०।

इसके तीनों शिखरों के नामों के सम्बन्ध में मतभेद। मा० पी० १।१७८।५-८ शब्दार्थ के अनुसार इनके नाम सुन्दर, कुम्भिला और सुबेला (सुवेल); मा० पी० ५।१।श्लो० १ नोट २ में रामकुमारजी और वि० त्रि० के मतानुसार (१) नील (इस पर लंका स्थित), (२) सुन्दर (इस पर अशोक-वाटिका), (३) सुवेल (यह मैदान।]

समुद्र में विधि द्वारा निर्मित त्रिकूट अत्यन्त दुर्गम। मय दानव का इसे पुनः सँवारना। इसी पर लंका (१।१७८।५-८)। इसके सम्बन्ध में कथन सम्पाति द्वारा (४।२८।११), हनुमान् द्वारा (४।३०।६)।

मूल शब्द — १।१७८।५, ४।२८।११, ४।३०।६।

त्रिजटा — सीता के संरक्षण के लिए नियुक्त एक राक्षसी।

यह विवेक-सम्पन्न, राम-चरण में अनुरक्त (ज्ञानी और उपासिका)। सीता को त्रास देने का आदेश देकर रावण के जाने पर इसका राक्षसियों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाना — स्वप्न में वानर द्वारा लंका-दहन, राक्षस-सेना का संहार, खरारूढ़ रावण की यमपुर-यात्रा (मरण-संकेत), विभीषण मानो लंकाधिपति, पुरी में राम की दुहाई फिरना, प्रभु का सीता को बुला भेजना। इस स्वप्न के शीघ्र सत्य होने का इसका विश्वासपूर्वक कथन। अतः सीता की सेवाकर अपना कल्याण करने का राक्षसियों को परामर्श (५।११।१-७)। सुनकर राक्षसियाँ भयभीत। उनका सीता के चरणों में गिरना (५।११।८)। इसे माता और विपत्ति-संगिनी कहकर सीता का अनुरोध कि यह उनके प्राण-त्याग के लिए चिता रच दे। इसका उन्हें चरण पकड़कर समझाना, प्रभु के बल-प्रताप-सुयश का वर्णन करना। अन्त में यह बहाना करके कि रात में आग नहीं मिलती, इसका गृह-गमन (५।१२।१-६)।

सीता के पास जाकर इसका छठे दिन के युद्ध के सम्बन्ध में कथन। बार-बार राम-शरों से छिन्न होने पर भी रावण के शीश-भुजाओं के पुनः निकल आने का समाचार सुन सीता को त्रास। उनका इससे रावण-वध का उपाय पूछना (६।९९।१-५)। इसका कथन— रावण के हृदय में बाण लगने पर ही उसकी मृत्यु। किन्तु वहाँ जानकी का वास, अतः प्रभु का उसे न भेदना। बार-बार सिरों के कटने से जब सीता का ध्यान छूट जायेगा, तब प्रभु उसका हृदय-भेदन करेंगे (६।९९।१२ - ६।९९)। सीता को अनेक प्रकार से समझाकर इसका गमन (६।१००।१)।

मूल शब्द — ५।११।१, ५।१२।१, ६।९९।१, ६।९९।३, ६।९९।१२, ६।९९।छं०, ६।१००।१।

त्रिबेनी (त्रिवेणी) — गंगा, यमुना एवं अन्तःसलिला सरस्वती का संगम।

[यह अत्यन्त पुण्यमय एवं पवित्र। महर्षि-सेवित। यहाँ स्नान करने से राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त, चतुर्विद्या-ज्ञान और सत्यवादिता से प्राप्य पुण्योपलब्धि। महा० वन० ८५।८१, ८५; ८७।१८। स्क० पु० में — 'सरस्वती रजोरूपा तमोरूपा कलिन्दजा। सत्वरूपा च गंगात्र नयन्ति ब्रह्मनिर्गुणम्।। इयं वेणी हि निःश्रेणी ब्रह्मणो वर्त्म यास्यतः।' स्क० पु० का० ७।६४-६५। ध० इ० तृ० पृ० १३२६ के अनुसार 'त्रिस्थलीसेतु' (पृ० ८) के उद्धरण में यह ओंकार से सम्बन्धित; 'ओम्' के तीन अक्षर अ, उ, म् क्रम से सरस्वती, यमुना, गंगा के द्योतक और तीनों के जल क्रमशः प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण हरि के प्रतीक।

इसमें माघ-स्नान का विशेष महत्व। पापियों के संग-दोष से काले पड़े तीर्थ यहाँ माघ-स्नान कर शुक्लवर्ण। प० पु० उ० १२६।४४। शिवलोक तक के समस्त ऊर्ध्वलोकों से, पाताल-लोकों से सब 'स्नातुं माघे समायान्ति प्रयागमरुणोदये'।। स्क० पु० का० ७।५५-५७। प० पु० उ० १२६।५३-५६ में भी शक्तियोंसहित त्रिदेव तथा अन्य देवतादि का यहाँ माघ-स्नान के लिए आगमन। 'सन्निमज्जति यो माघे मकरस्थसितासिते। तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं वक्तुं ब्रह्माऽपि न क्षमः।। प० पु० उ० १२६।३६।]

सन्त-समाज और प्रयाग के सांगरूपक में रामभक्ति गंगा, ब्रह्म-विचार-प्रचार सरस्वती, विधि-निषेधमयी कर्मकथा यमुना; तीनों का जहाँ संगम, वह हरि-हर-कथा-रूपिणी त्रिवेणी (१।२।८-१०)। माघ मास में सूर्य के मकर राशि में आने पर देवता-दैत्य-किन्नर-मनुष्य-समाज का इसमें स्नान (१।४४।३-४)। प्रतिवर्ष प्रातःकाल सबका उत्साहपूर्वक मज्जन एवं हरि-गुण-गाथा-कथन-श्रवण। और सबका माघ (चान्द्र मास) -भर स्नान करके प्रस्थान, मुनियों का मकर (सौर मास) - भर स्नान करके तब गमन (१।४४।८, १।४५।१-३)। संगम तीर्थराज प्रयाग का शोभाशाली सिंहासन (२।१०५।७)। यह 'सुमिरत सकल सुमंगल देनी'। सिय-लक्ष्मण-सहित वन जाते हुए राम द्वारा

इसके दर्शन। आनन्दपूर्वक स्नान (२।१०६।५-६)। अवध-समाज के मज्जन के बाद भरत का इसे प्रणाम कर इसमें विधिपूर्वक स्नान। इसके श्वेत-श्याम जल की हिलोरें देखकर पुलक (२।२०४।३-५)। भरत की आर्त्ति और वर-याचना पर इसके मध्य से यह वाणी ध्वनित कि भरत साधु, राम-चरणानुरक्त, राम के सर्वाधिक प्रिय। इसके अनुकूल वचन सुन भरत पुलकित (२।२०५।६-२।२०५)। माता-पिता, गुरु एवं स्वामी की आज्ञा इसके सदृश। इसमें गंगा, यमुना और सरस्वती, आज्ञा-पालन से कीर्त्ति, सद्गति और ऐश्वर्य की प्राप्ति (२।३०६।२,४)। विमान से सीता को त्रिवेणी दिखाते हुए राम-कथन — यह 'हरनि सोक हरि लोक निसेनी' (६।१२०।८)। लौटते समय राम का हर्षित होकर इसमें स्नान (६।१२० ख)।

मूल शब्द — १।४४।४, २।२०४।३, २।२०५।६, ६।१२० ख।

पर्याय — **बेनि** (वेणि — १ — त्रिवेणी; २— दो या अधिक नदियों का संगम; ३ — जलप्रवाह। आ० को०।) २।२०५। बेनी — १।२।१०, २।१०६।५, २।३०६।४, ६।१२०।८।

संगमु — २।१०५।७।

त्रिसंकू (त्रिशंकु) — अयोध्या के सूर्यवंशी राजा। सत्यवादी और जितेन्द्रिय।

इक्ष्वाकु-कुल में त्रिबन्धन > सत्यव्रत (त्रिशंकु) > हरिश्चन्द्र > रोहित। भा० ६।७।५-७,६।

[वा० रा० में ये इक्ष्वाकु-वंशजात पृथु के पुत्र और धुन्धुमार के पिता। १।७०।२४। इनका ऐसा यज्ञ करने का विचार जिससे सशरीर देवताओं की परम गति (स्वर्गलोक) प्राप्त हो सके। इक्ष्वाकुवंशियों के पुरोहित वसिष्ठ द्वारा ऐसा यज्ञ करने का इनका अनुरोध अस्वीकृत। इनका वसिष्ठ-पुत्रों के पास जाना। इनके दुरभिसन्धिपूर्ण वचन सुन, कुपित हो, इन्हें चाण्डाल हो जाने का उनका शाप। फलतः इनका वर्ण नील, रुक्ष अंगों में लोहे के गहने, शरीर पर चिता-भस्म-सा आवरण। प्रजा द्वारा इनका त्याग। ये विश्वामित्र के शरणागत। आर्त्त होकर उनसे सब वृत्तान्त-कथन। इनकी प्रार्थना— विश्वामित्र पुरुषार्थ से इनका दुर्दैव पलट दें। विश्वामित्र का इन्हें आश्वासन। यज्ञ। आवाह्न करने पर भी देवताओं को अनुपस्थित देख उन्हें क्रोध। अपने तपोबल के प्रभाव से इन्हें सशरीर स्वर्ग भेजना।

स्वर्ग में देवताओंसहित इन्द्र द्वारा इनका तिरस्कार और निष्कासन। अधोमुख हो नीचे गिरते हुए इनकी त्राहि-त्राहि की पुकार सुन विश्वामित्र का इन्हें अधर में ही रोकना। इनके लिए दक्षिण में नये सप्तर्षिमण्डल की सृष्टि, नवीन नक्षत्रों का निर्माण करना। नूतन देवताओं की सृष्टि के लिए उनके प्रस्तुत होने पर देवताओं की विनय — गुरु-शाप से नष्ट-पुण्य चाण्डाल होने के कारण ये सशरीर स्वर्ग जाने के अधिकारी नहीं। ऋषि विश्वामित्र और देवता इस बात पर सहमत कि ऋषि-रचित नक्षत्र आकाश में वैश्वानर-पथ से बाहर प्रकाशित होंगे और उन्हीं ज्योतिर्मय नक्षत्रों के बीच सिर नीचा किये ये भी प्रकाशमान् रहेंगे। इनकी स्थिति देवताओंसदृश होगी और सभी नक्षत्र स्वर्गीय पुरुष की भांति इनका अनुसरण करते रहेंगे। वा० रा० १।५७।१०-१।६०। सं० दे० भा० पृ० ३७०-३७४ में यह कथा कुछ परिवर्तन सहित, पृ० ३६७-३७० में इनका अन्य आख्यान।

इनके चाण्डाल हो जाने के बाद एक बार बारह वर्षों तक अनावृष्टि। उस समय विश्वामित्र के स्त्री-बच्चों के पोषणार्थ तथा अपनी चाण्डालता से मुक्ति के लिए, गंगातट के वटवृक्ष पर इनका प्रतिदिन मृगमांस बाँध आना। इससे प्रसन्न हो विश्वामित्र का इन्हें सदेह स्वर्ग भेजना। वि० पु० ४।३।२२-२४।]

'केहि न राजमद दीन्ह कलंकू' के उदाहरण-स्वरूप इन्द्रादि के साथ इनका उल्लेख (२।२२९।१)।

त्रेताजुग — चार युगों में द्वितीय।

[ऋग्वेद में विख्यात युग के अर्थ में इसका उल्लेख नहीं। मुण्डकोपनिषद् (१।२।१) में इसकी ओर संकेत — 'यही सत्य; वे यज्ञ-सम्बन्धी कृत्य जिन्हें ऋषियों ने मन्त्रों में देखा, त्रेता में कई प्रकार से सम्पादित।' इस युग के धर्मों की उद्घोषणा करनेवाले गौतम (पराशर-स्मृति १।२४)। ऐतरेय ब्राह्मण के एक रूपक में '…उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति…'। दे० 'कृतजुग'। ध० इ० द्वि० पृ० ६८२, ६८३, ६८५।

जिस प्रकार धर्म के चार चरण (तप, सत्य, दया, दान), उसी प्रकार अधर्म के भी चार चरण (असत्य, हिंसा, असन्तोष, कलह)। इस युग में अधर्म के प्रभाव से धीरे-धीरे धर्म के चरणों का चतुर्थांश क्षीण। वर्णों में ब्राह्मणों की प्रधानता। मनुष्य धर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) - सेवी। वेदत्रयी (ऋक्, यजु, साम) द्वारा सर्वदेवमय

भगवान् की आराधना। भगवान् चतुर्भुज। उनके श्रीविग्रह का रंग लाल। वे हिरण्यकेश। कटिभाग में तीन मेखला। वेद-विहित यज्ञरूप में रहकर सुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्र धारण। विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त, उरुगाय आदि नामों से उनका गुण-लीलादि-कीर्त्तन। भा० ११।५।२४-२६, १२।३।२०-२१।]

इस युग में एक बार शिव का सतीसहित अगस्त्य के पास जाना (१।४८।१-२) 'त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही' - चन्द्रमा मुनि का कथन सम्पाति से (४।२८।७)। राम-राज्य में 'त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी' (७।२३।६)। इस युग में अधम मनुष्यों का अभाव (७।४०)। यज्ञ से भगवान् प्रसन्न। अनेक प्रकार के यज्ञ करके, कर्म-फल भगवान् को अर्पित कर, (कर्मयोग द्वारा) भव-सन्तरण (१।२७।३, ७।१०२ ख, ७।१०३।२)। [प० पु० सृ० १८।४४०-४४१ में यज्ञ की प्रधानता द्वापर में, त्रेता में ज्ञान की।] राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। इस युग-धर्म की प्रधानता होने पर सत्वगुण की अधिकता, उसमें कुछ रजोगुण का योग और कर्म (यज्ञ-याग आदि) में प्रीति। यह सब प्रकार से सुखद (७।१०४।१,३)। नाम-जप से इस युग में भी शोक-नाश (१।२७।१)।

मूल शब्द – १।४८।१

पर्याय – **त्रेता** – ४।२८।७, ७।२३।६, ७।४०, ७।१०२ख, ७।१०३।२, ७।१०४।३।

दंडक बन – (१) विन्ध्य और नील पर्वत के मध्य का भूभाग। प० पु० सृ० ३६।१६। (२) विन्ध्य और शैवल पर्वत के बीच इसकी स्थिति। वा० रा० ७।७६।१६। इसका यह नाम राजा दण्ड के नाम पर। (३) दक्षिण में एक विख्यात प्रदेश जो नर्मदा और गोदावरी के बीच में स्थित राम के समय यह जंगल। आ० को०।

[१– वैवस्वत् मनु-सुत इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में कनिष्ठ पुत्र दण्ड मूढ़ और विद्याविहीन। पिता द्वारा उसे विन्ध्य और शैवल पर्वत का मध्यवर्ती राज्य प्रदान। भार्गव शुक्राचार्य उसके पुरोहित। एक दिन शुक्राचार्य के आश्रम की ओर जाते हुए वन में विचरण करती हुई उनकी अनन्य रूपवती ज्येष्ठ कन्या अरजा को देख वह काममोहित। अरजा की चेतावनी – स्वेच्छाचार करने पर दण्ड का भयंकर फल भोगना होगा। यदि उसे भार्या बनाने को वह उत्सुक, तो धर्मशास्त्रोक्त रीति से उसके पिता से याचना करे। दण्ड काम से अवश। उसका बलात्कार कर लौटना। बिलखती पुत्री से यह सब सुनकर शिष्यों के समक्ष कुपित शुक्राचार्य का शाप – सात रातों के भीतर वाहन-सेवक-सैन्य सहित दुर्बुद्धि दण्ड का नाश होगा। सात रातों तक इन्द्र भयानक धूलि-वर्षा करेंगे। स्थावर-जंगम जीवसहित सम्पूर्ण दण्ड-राज्य विध्वस्त होगा। अरजा को पिता की आज्ञा – अपराध-निवृत्ति के लिए समय की प्रतीक्षा करते हुए वह उसी आश्रम में रहकर परमात्म-चिन्तन करे। वहाँ उसके उपभोग के लिए एक योजन विस्तृत सरोवर और उसके समीप रहनेवाले जीव धूलि-वर्षा से निरापद रहेंगे। आश्रमवासियों को राज्य-त्याग का आदेश देकर स्वयं शुक्राचार्य का अन्यत्र गमन। तभी से उस भूभाग का नाम दण्डकारण्य। यह उपाख्यान सत्ययुग का। बाद में तपस्वियों के वहाँ बसने पर वह जनस्थान। वा० रा० ७।७९-८१ प० पु० सृ० ३६।१-६०। (वि० ३।१३।१६ व्या० में शुक्राचार्य के स्थान पर भृगु मुनि।]

'दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन' – नाम-महिमा-प्रसंग में (१।२४।७)। सती-मोह से पूर्व राम के इस वन में विचरने का उल्लेख (१।४८।८)। अगस्त्य-कथन – राम मुनियों पर दया कर इस वन के पंचवटी नामक स्थान में वास करें। मुनि-शाप-ग्रस्त इस वन को पवित्र करें (३।१३।१५-१७)। यहाँ राम-वास से मुनि निर्भय, प्रकृति प्रफुल्लित (३।१३।१८-३।१४।४)। [अरण्यकाण्ड की प्रभु-लीला इसी वन में।] राम-चरण 'दंडक कानन पावनकारी' (५।४२।६)। युद्धोपरान्त राम के विमान का यहाँ आना। अगस्त्य आदि ऋषियों का अब यहीं वास (६।१२०।१-२)। भुशुण्डिकथित मूल रामायण में इसके पवित्रीकरण का उल्लेख (७।६६।१)।

मूल शब्द – १।४८।८, ३।१३।१६, ६।१२०।१, ७।६६।१। दंडक बनु – १।२४।७।

पर्याय – **दंडक कानन** – ५।४२।६।

दच्छ (दक्ष) – इक्कीस प्रजापतियों में एक। महा० शा० ३३४।३५। कर्म करने में दक्ष (कुशल) होने के कारण यह नाम। भा० ४।३०।५०।

(१) ब्रह्मा > दक्ष ~ प्रसूति (स्वायम्भुव मनु-शतरूपा-पुत्री) > सोलह कन्याएँ; उनमें श्रद्धा, मूर्त्ति आदि तेरह कन्याएँ ~ धर्म; स्वाहा ~ अग्नि; स्वधा ~ पितृगण; सती ~ महादेव। भा० ४।१।४७-४६, ६०, ६३, ६५।

(२) प्राचीनबर्हि (बर्हिषद्) ~ शतद्रुति (समुद्र-कन्या) > प्रचेता नामक दस पुत्र ~ मारिषा (कण्डु ऋषि — प्रम्लोचा अप्सरा की कन्या) > दक्ष प्राचेतस ~ असिक्नी (पंचजन-कन्या) > हर्यश्व (दस हजार पुत्र), शबलाश्व (एक हजार पुत्र) साठ कन्याएँ। उनमें भानु आदि दस ~ धर्म; दो ~ भूत; स्वधा एवं सती ~ अंगिरा; दो ~ कृशाश्व; विनता, कद्रू आदि चार ~ तार्क्ष्यनामधारी कश्यप; कृत्तिका, रोहिणी आदि सत्ताईस ~ चन्द्रमा (निःसन्तान); अदिति, दिति आदि तेरह (लोकमाताएँ) ~ कश्यप।

भा० ४।२४।११, १३; ४।३०।१३, ४७, ४८; ६।४।१६, १७, ५१; ६।५।१, २४; ६।६।१, २, ४, १९-२५।

[भा० में — ये ब्रह्मा के अंगुष्ठ से उत्पन्न। ३।१२।२३। (महा० आदि० ६६।१०-११ में ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से ये और बायें अँगूठे से इनकी पत्नी उत्पन्न।) ये सूर्य-से तेजस्वी। एक बार प्रजापंतियों के यज्ञ में इनके प्रवेश करते ही ब्रह्मा और शिव के अतिरिक्त अन्य सबका इनके सम्मान में उठ खड़े होना। शिव का बैठे रहना इन्हें असह्य। इनके द्वारा उनका तिरस्कार, भर्त्सना, शाप — उन्हें इन्द्र, उपेन्द्र के साथ यज्ञ-भाग न मिले। कहकर इनका सभा-त्याग। इस पर शिव-पार्षद् नन्दीश्वर का इन्हें तत्वज्ञान-विमुख, गृहस्थाश्रम में आसक्त, स्त्रीगामी, छागमुख आदि होने का शाप। इनके अनुयायी भी उनके द्वारा अभिशप्त। ४।२।४-२६।

ये ब्रह्मा द्वारा प्रजापतियों के अधिपति-पद पर प्रतिष्ठित। अहंकार-दृप्त हो शंकर आदि को यज्ञ-भाग दिये बिना इनके द्वारा वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान। फिर बृहस्पतिसव महायज्ञ का आरम्भ। १।४।३।१-४। यज्ञशाला में सती का अनादर। शिव का अपमान। ४।४।७-९। सती-मरण के बाद पार्षदों-सहित वीरभद्र द्वारा यज्ञ-विध्वंस। इन्हें बाँधकर, इनकी छाती पर बैठ तलवार से इनका शिरश्छेद करने का वीरभद्र का प्रयत्न, किन्तु इनकी त्वचा अस्त्र-शस्त्रों से अच्छेद्य। तब जिस प्रकार यज्ञ-मण्डप में यज्ञपशु को मारा जाता है, उसी प्रकार इनका सिर धड़ से अलग कर वीरभद्र का उसे दक्षिणाग्नि में डालना। ४।५।१२-२६। (सं० शि० पु० पृ० १५६-१५७ में यज्ञ-ध्वंस होते देख इनका (क) मृगरूप धर आकाश की ओर भागना, (ख) अन्तर्वेदी के भीतर छिपना। योग के प्रभाव से इनका मस्तक अभेद्य। वीरभद्र का इनकी गर्दन को मरोड़कर तोड़ना।)

इनके यज्ञ का पुनरुद्धार करने और इन्हें जीवनदान देने की ब्रह्मा की शिव से विनती। शिव के आदेशानुसार इनके धड़ से यज्ञपशु (बकरे) का सिर संयोजित। उनकी दृष्टि पड़ते ही ये जीवित। निर्मल हृदय से इनके द्वारा शिव-स्तुति। उनसे अपना अपराध क्षमा कराके यज्ञकार्य का आरम्भ। यज्ञ के उपसंहार के बाद देवताओं का इन्हें आशीर्वाद — इनकी बुद्धि सदा धर्म में रहे। ४।६।५०-५१; ४।७।३, ८-१६, ५७।

महादेव की अवज्ञा से ग्लानि-पीड़ित हो इनका शरीर-त्याग। प्रचेता-भार्या मारिषा के गर्भ से पुनः जन्म-ग्रहण। जन्मते ही समस्त तेजस्वियों का तेज-हरण। कालक्रम से पूर्वसर्ग के नष्ट हो जाने पर चाक्षुष मन्वन्तर में इनके द्वारा नवीन प्रजा की सृष्टि। ब्रह्मा द्वारा प्रजापतियों के नायक-पद पर इनका अभिषेक। ४।३०।४८-५१। पहले इनके द्वारा सुर-असुर-मनुष्य का संकल्प से सर्जन। इस तरह सृष्टि को बढ़ते न देख विन्ध्याचल के निकट अघमर्षण तीर्थ में तप, भगवदाराधन। प्रसन्न भगवान् द्वारा इन्हें पत्नीरूप में असिक्नी समर्पित। मैथुनी सृष्टि करने का आदेश। (महा० आदि० ७५।६ में इनकी पत्नी का नाम वीरिणी।) इनके द्वारा सृष्ट प्रजा से तीनों लोक आपूर्ण। ६।४।१७-२२, ५१-५३। नारद के उपदेश से हर्यश्व और शबलाश्व के मोक्षमार्गी हो जाने पर इनका नारद को शाप — वे लोक-लोकान्तरों में भटकते रहें। उन्हें ठहरने के लिए कहीं स्थान न मिले। ६।५।४२-४३।

महा० में — पुत्रों के न रहने पर इनका कन्याओं को 'पुत्रिका' बनाना (अर्थात्, यह संकल्प करना कि कन्या के गर्भ से उत्पन्न बालक ही श्राद्धादि कर्म करनेवाला पुत्ररूप हो।) मनुस्मृति के अनुसार ये पुत्रिका-विधि के प्रवर्त्तक। आदि० ६६।१२, ६६।१२ पाद०। इनका चन्द्रमा को समझाना कि वे अपनी सब पत्नियों के प्रति समभाव रखें। उनके न मानने पर इनके द्वारा राजयक्ष्मा की सृष्टि; उसका चन्द्रमा में प्रवेश। दे० 'ससि'। इनका दूसरा नाम 'क'। शा० २०८।७।]

शंकर की समाधि टूटने के समय ये प्रजापति। सब प्रकार से योग्य, अतः ब्रह्मा का इन्हें प्रजापति-नायक बनाना (१।६०।५-६)। इतना बड़ा अधिकार पाकर इनके मन में अभिमान। सब मुनियों को बुलाकर इनके द्वारा महायज्ञ का अनुष्ठान। यज्ञभाग पानेवाले सब देवताओं को सस्त्रीक निमन्त्रण। त्रिदेव को छोड़ सबका यज्ञ में भाग लेने के लिए प्रस्थान (१।६०।७-१।६१।२)। [शिव यज्ञभाग से वंचित। अतः ब्रह्मा और नारायण का भी यज्ञ में

सम्मिलित न होना। भा० ४।६।३। सं० शि० पु० पृ० १४२ में ब्रह्मा और विष्णु यज्ञ में उपस्थित।] यज्ञ देखने के लिए पितृगृह जाने की आज्ञा माँगने पर सती से शिव-कथन — ब्रह्मा की सभा में ये शिव से अप्रसन्न, अतः अब भी इनके द्वारा शिव का अपमान। इनकी सब कन्याएँ आमन्त्रित, किन्तु शिव-द्वेष के कारण इनके द्वारा सती की उपेक्षा (१।६१-१।६२।३)। यज्ञ में सती को देख इन्हें रोष। इनके भय से केवल माता को छोड़ अन्य सबके द्वारा सती का अनादर (१।६३।१-३)। यज्ञ में शिव-भाग न देख क्रुद्ध सती द्वारा इनको तथा सम्मिलित समाज को कठोर चेतावनी और देह-त्याग। यज्ञशाला में हाहाकार (१।६३।४-१।६४।८)। शिव-गणों के आक्रमण से भृगु द्वारा यज्ञ की रक्षा (१।६४)। शंकर-प्रेरित वीरभद्र द्वारा यज्ञ-विध्वंस। सब देवताओं को यथायोग्य दण्ड। इनकी वैसी ही दुर्गति जैसी शंकर-द्रोही के लिए अवश्यम्भावी (१।६५।१-३)। यह कथा जगत्प्रसिद्ध। अतः याज्ञवल्क्य द्वारा इसका वर्णन संक्षेप में (१।६५।४)। इनके यज्ञ का उल्लेख (१।८३।२)। पहले इनके यहाँ 'सती' नाम से पार्वती के जन्म-ग्रहण करने का नारद-कथन (१।९८।५), शिव-कथन (७।५६।२)। इनके यज्ञ में सती के अपमान, देह-त्याग और यज्ञ-ध्वंस का शिव-कथन (७।५६।३-४)।

मूल शब्द — १।६०।५, १।६०।६, १।६०।७, १।६०, १।६२।२, १।६३।१, १।६३।३, १।६४।६, १।६५।३, १।८३।२, १।९८।५, ७।५६।२, ७।५६।३।

दधिमुख — एक महावीर वानर। सुग्रीव के मामा। मधुवन के रक्षक। वा० रा० ५।६१।९। (वा० रा० ४।३३।११, ५।६१।२० आदि में इनके नाम का पर्याय 'दधिवक्त्र'।)

रावण-दूत शुक द्वारा अंगदादि द्वादश वानर-वीरों में इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से अतुलित बल-सम्पन्न। त्रिलोक को तृण-तुल्य समझनेवाले (५।५४-५।५५।२)।

मूल शब्द — ५।५४।

दधीचि — एक उदारचेता महर्षि। इनके नामान्तर— दध्यंच, दध्यङ्, दधीच।

मनु ~ शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम > शान्ति (या चित्ति) ~ अथर्वा > दध्यंच। भा० ३।१२।५३ - ५६, ३।२४।२४, ४।१।४२।

[महा० में ये भृगु के तपस्वी पुत्र। विशालकाय पर्वतसदृश। सूर्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मा के समान कान्तिमान्। लोकमंगलकारी। मानो सम्पूर्ण जगत् के सारतत्व से निर्मित। इनके तेज से इन्द्र सदा उद्विग्न। वन० १००।१९, शल्य० ५१।३२-३४। भगवान् का इन्द्र से कथन — इन्हीं के द्वारा सर्वप्रथम भगवान् के स्वरूपभूत अभेद्य नारायणकवच का त्वष्टा को उपदेश। इन्हें शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान। अश्विनीकुमारों को घोड़े के सिर से उपदेश करने के कारण इनका एक नाम 'अश्वशिर'। इनके द्वारा उपदिष्ट आत्मविद्या के प्रभाव से अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त। भा० ६।९।५२-५३। इन्हें 'प्रवर्ग्य' (यज्ञकर्म-विशेष) और 'ब्रह्मविद्या' का उत्तम ज्ञान, यह जानकर अश्विनीकुमारों की इनसे ब्रह्मविद्या का उपदेश करने की प्रार्थना। ये उस समय कार्य-व्यस्त, अतः दोनों से अन्य किसी समय आने का इनका कथन। दोनों के जाते ही इन्द्र का आगमन और कथन — अश्विनीकुमार वैद्य, उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश ये न करें। यदि करेंगे, तो इन्द्र इनका मस्तक काट लेंगे। अश्विनीकुमारों के आने पर इनके द्वारा सब वृत्तान्त-कथन। उनका निवेदन — पहले इनका सिर काटकर ये अश्व का सिर जोड़ देंगे। उस मुख से उपदेश प्राप्त करेंगे। इन्द्र अश्व-सिर काट देंगे, तो वे इनका असली सिर फिर जोड़ देंगे। मिथ्या भाषण के भय से अश्विनीकुमारों का परामर्श इन्हें स्वीकृत। अश्वमुख से उपदिष्ट होने के कारण ब्रह्मविद्या का नाम 'अश्वशिरा'। भा० ६।९।५२ की पाद-टिप्पणी। बृ० उ० में भी इनके द्वारा अश्वशिर से अश्विनीकुमारों को 'मधुविद्या' (ब्रह्मविद्या) का उपदेश। ब्राह्मण ५। यह विद्या 'अथर्वा दैव' से इन्हें प्राप्त। ब्राह्मण ६।

वि० को० के अनुसार ऋग्वेद की एक ऋचा में यह कथन कि इन्होंने सत्य का पालन करते हुए 'त्वष्टा' से लब्ध मधुविद्या अश्विनीकुमारों को सिखा दी। यह विद्या उन दोनों की 'अपिकक्ष्य' रूप हुई। सायणाचार्य के अनुसार 'त्वष्टा' से अभिप्रेत इन्द्र और 'अपिकक्ष्य' का अर्थ प्रवर्ग्यविद्याख्य रहस्य। इस अर्थ के अनुसार दधीचि को मधुविद्या और प्रवर्ग्यविद्या की शिक्षा इन्द्र से प्राप्त। शिक्षा देकर इन्द्र का कथन कि ये विद्याएँ ये किसी और को सिखायेंगे, तो वे इनका सिर काट लेंगे। इसीलिए अश्वसिर से इनके द्वारा अश्विनीकुमारों को प्रवर्ग्य विद्या (ऋक्, साम और यजु) एवं मधुविद्या-प्रतिपादक ब्राह्मणों का उपदेश। वि० को०।

वृत्रासुर-पीड़ित इन्द्र और सब देवताओं से ब्रह्मा का कथन – इनकी अस्थियों से निर्मित षट्कोण वज्र द्वारा ही वृत्र का वध सम्भव। देवताओं की प्रार्थना पर उन्हें अस्थि-दान करने के लिए इनका प्राण-त्याग। त्वष्टा प्रजापति द्वारा इनकी अस्थियों से वज्र-निर्माण। उससे वृत्र-वध। महा० वन० १००, १०१।१५। भा० ६।१०-१२। स्क० पु० मा० १६।६५-९५। इनकी अस्थियों से गदा, वज्र, चक्र आदि नाना प्रकार के दिव्य आयुधों का निर्माण और इन्द्र द्वारा दैत्य-दानव-वध। महा० शल्य० ५१।३१-३२, ३५-३६। सं० ब्रह्मपु० में इनके अस्थि-दान की एक अन्य कथा। दैत्यों को पराजित कर प्रसन्न देवताओं की इनसे प्रार्थना – अपने आश्रम पर अपनी रक्षा में ये उनके आयुध रख लें। पत्नी प्रातिथेयी के मना करने पर भी इनकी स्वीकृति। एक सहस्र दिव्य वर्षों तक देवताओं का न आना। इन्हें अस्त्र-रक्षा की चिन्ता। तब पवित्र जल से मन्त्र पढ़ते हुए अस्त्रों को नहलाकर वह सर्वास्त्रमय तेजयुक्त जल पी जाना। तेज निकल जाने से अस्त्र शक्तिहीन और नष्ट। तदनन्तर असुर-भय-पीड़ित देवताओं का आकर अस्त्र माँगना। इनका कथन – अस्त्र इनकी हड्डियों में मिल चुके। अतः देवता इनकी अस्थियों का उपयोग करें। इनका शरीर-त्याग। गौओं के मुख को वज्रसदृश कर, उनसे इनकी देह विदीर्ण करवाकर, देवताओं द्वारा अस्थियों की प्राप्ति। विश्वकर्मा द्वारा अस्त्र निर्माण। सं० ब्रह्मपु० पृ० ४१४-१५। पृथ्वी को पुनः असुरों से व्याप्त देख इन्द्र द्वारा इनके अश्व-मस्तक की खोज और शर्य्यणावत् में प्राप्ति। इस मस्तक की हड्डी से उनके द्वारा असुरों का वध। वि० को०।

सरस्वती नदी में देवताओं का तर्पण करते समय इन्द्र-प्रेरित अलम्बुषा अप्सरा को देख इनका वीर्य-स्खलन। सरस्वती का उसे गर्भ में धारण करना। पुत्र उत्पन्न होने पर इन्हें सौंपना। इनके द्वारा उसका 'सारस्वत' नामकरण, सरस्वती की प्रशंसा और उन्हें वरदान। महा० शल्य० ५१।६-२४। स्क० पु० में इनकी पत्नी का नाम सुवर्चा, एक पुत्र का नाम पिप्पलाद। मा० १७।८,११। दक्ष-यज्ञ में शिव का भाग न देख इनका कोप। यज्ञशाला से अलग होना। दक्ष आदि को चेतावनी। महा० शा० २८४।११-२१।]

धर्म और वचन की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग करनेवाले शिबि आदि के साथ इनका उल्लेख (२।३०।७, २।४८।५, २।९५।३)।

मूल शब्द – २।३०।७, २।४८।५, दधीच - २।९५।३।

दनुज – मन्देह नामक दैत्य।

[१. पौराणिक कथा कि नित्य उदयकाल में मन्देह नामक दस सहस्र दैत्यों का सूर्य से युद्ध करने के लिए उन्हें घेरना और सूर्य द्वारा मारे जाना। ब्रह्मदेव के वरदान से ये पुनः जीवित। इस तरह इनका नित्य प्रातःकाल मरना और फिर जीवित होना। वि० ३।१८ व्या०।

२. इन्हें ब्रह्मा का शाप कि इनका शरीर अक्षय रहे, किन्तु मरण नित्यप्रति हो। प्रतिदिन सन्ध्या-समय इनकी सूर्य को खाने की चेष्टा और उनसे भीषण युद्ध। उस समय विप्रों का ओंकार तथा गायत्री मंत्र से अभिमन्त्रित जल छोड़ना। उस वज्रीभूत जल से ये दग्ध। वि० पु० २।८।५०-६३।

३. मा० पी० ३।१८ नोट १ के अनुसार हेमाद्रि आदि ग्रन्थों में उल्लेख कि इनका प्रातःकाल सूर्य को घेरना। गायत्री आदि के अभिमन्त्रित जल से मरण। यह मान्यता कि इनकी संख्या बीस हजार।]

राम को पकड़ने के लिए खर-दूषण के योद्धाओं का उनके निकट जाना, जैसे (उदयकालीन) बालसूर्य को अकेला देखकर दनुजों का घेरना (३।१८)।

दसरथ (दशरथ) – सूर्यवंश के प्रसिद्ध राजा। राम के पिता।

दशरथ ~ (१) कौसल्या (कोसल-नरेश-कन्या) > राम;
(२) सुमित्रा (मगधराज-तनया) > लक्ष्मण, शत्रुघ्न;
(३) कैकेयी (केकय-नृप-दुहिता) > भरत।

प० पु० उ० २४२।३७-४०, ६५, ९४-९६। (वंश-परम्परा के लिए दे० 'दिनकर कुल'।)

[ये सूर्य-से तेजस्वी, यम-से समदर्शी, कुबेर-सदृश दानी, वरुण की तरह दुष्टों को दण्ड देनेवाले। महारथी वीर। आसमुद्र पृथ्वी पर इनकी विजय। युद्ध में इन्द्र के सहायक। रघु० ९।६, १०, १९। ये धर्मपरायण, यज्ञकर्ता, जितेन्द्रिय, उदार, सत्यप्रतिज्ञ। महर्षियों के-से दिव्य गुणसम्पन्न राजर्षि। वा० रा० १।६।२-३, १।७।२।

प० पु० उ० २४२।३७-४० एवं रघु० ९।१७-१८ में इनकी तीन रानियाँ। मानस में भी तीन ही। प० पु० पा० ११६, पृ० ५६१ में चार – कौसल्या, सुमित्रा, सुरूपा, सुवेषा। वा० रा० में प्रधान तीन, किन्तु रानियों की कुल संख्या साढ़े तीन सौ। वा० रा० २।३४।११-१३। गी० १।११०।२ में सात सौ रानियों का उल्लेख। भा० में इनकी शान्ता नाम्नी एक कन्या भी जिन्हें अपने निपुत्री मित्र रोमपाद को इनका गोद में देना। शान्ता का ऋष्यशृंग से विवाह। भा० ९।२३।७-१०।

कौसल्या के पिता से इन्हें दहेज में उत्तरकोसल प्राप्त। तब से सूर्यवंशी 'कोसलपति' नाम से अभिहित। मा० पी० १।३१३।६ टिप्पणी ५ के अनुसार आनन्दरामायण सारकाण्ड १०६९।

कैकेयी को वरदान – (१) एक बार देवासुर-संग्राम में शम्बरासुर को परास्त करने में देवता असमर्थ। इनका इन्द्र की सहायता के लिए जाना। कैकेयी भी इनके साथ। युद्ध में असुरों के अस्त्र-शस्त्र से इनका शरीर जर्जर, चेतना लुप्तप्राय। तब (सारथ्य करते हुए) कैकेयी का इन्हें रणभूमि से दूर हटा लेना। वहाँ भी असुरों का शस्त्राघात होने पर कैकेयी का इन्हें अन्यत्र ले जाकर इनकी रक्षा करना। सन्तुष्ट होकर उनका उन्हें दो वर देने के लिए कहना। उनका निवेदन कि जब इच्छा होगी, वे माँग लेंगी। वा० रा० २।९।११-१८। अ० पु० ६, पृ० १४ में उस युद्ध में कैकेयी द्वारा अपनी विद्या से रात में इनकी रक्षा। अतः उन्हें दो वर देने की इनकी प्रतिज्ञा।

(२) एक समय देव-दानव-युद्ध में किसी पक्ष की विजय न होने पर आकाशवाणी– ये जिसका पक्ष ग्रहण करेंगे, वही विजयी होगा। देवताओं की ओर से वायु का शीघ्र इनके निकट आकर सहायता माँगना। इनका वचन देना। फिर दानवों का आगमन! पहले ही वचनबद्ध हो जाने के कारण उनकी सहायता करने में इनका असमर्थता प्रकट करना।

स्वर्ग में जाकर इनका दानवों से घोर युद्ध। नमुचि के भाइयों के तीक्ष्ण बाणों से इनके रथ की धुरी का टूटना। इन्हें ज्ञात नहीं। रथ पर इनके निकट ही कैकेयी उपस्थित। इन्हें सूचित किये बिना उनका धुरी की जगह अपना हाथ लगा देना। दानवों को जीतकर, देवताओं से अनेक वर पाकर, इनका अयोध्या की ओर लौटना। मार्ग में कैकेयी की ओर दृष्टिपात करना। उनके अद्भुत कार्य को देख इन्हें विस्मय। प्रसन्न होकर इनका उन्हें कई वर देना। उनका कथन – इनके दिये वर इन्हीं के पास रहें (आवश्यकता पड़ने पर वे माँग लेंगी)। सं० ब्रह्मपु० पृ० ४३१। अ० रा० २।२।६६-७३ में कैकेयी का इनके रथ की धुरी की कील में हाथ लगाना। इनके दो वरों को इन्हीं के पास सुरक्षित रखना।

अनिष्ट-ग्रहयोग-निवारण – एक बार ग्रहराज शनि द्वारा रोहिणी-शकट (शकटाकार रोहिणी नक्षत्रमण्डल) का भेदन होने का संकट उपस्थित। ज्योतिषियों के अनुसार उसका फल द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष। इनका वसिष्ठ से उपाय पूछना। उनका कथन कि वह योग ब्रह्मा के लिए भी असाध्य। तब इनका रथारूढ़ होकर रोहिणी के पृष्ठभाग में जाकर स्थित होना। अपने दिव्य धनुष पर भयंकर संहारास्त्र सन्धान करना। उसे देख भयभीत शनि का हँसकर कथन – उनकी दृष्टि पड़ने पर इनका भस्म होना निश्चित, किन्तु वे इनके तप और पौरुष से तुष्ट। ये वर माँगें। इनकी याचना – जब तक सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी की स्थिति, तब तक वे रोहिणी-शकट-भेदन न करें, दुर्भिक्ष न लायें। वर पाकर इनके द्वारा शनि की स्तुति। सन्तुष्ट शनि के पुनः वर माँगने के लिए कहने पर इनका निवेदन – वे किसी के लिए भी पीड़ादायक न बनें। उनका कथन – यह वर अदेय। ग्रहमात्र पीड़ाकर। किन्तु इनके द्वारा कहे गये स्तोत्र का पाठ करनेवाला तत्क्षण पीड़ामुक्त हो जायेगा। वर पाकर कृतार्थ हो इनका अयोध्या लौटना। प० पु० उ० ३४।५-५०।

जटायु से मित्रता – दे० 'जटायु'।

तापस का शाप – एक बार मृगया करते हुए इनका एक नदी-तट पर पहुँचना। वहाँ अर्द्धरात्रि के समय एक मुनि का तृषित माता-पिता के लिए घड़े में जल भरना। घड़ा भरने के शब्द को किसी हाथी के जल पीने का शब्द समझकर इनका शब्दवेधी बाण चलाना। (गजवध शास्त्र-विरुद्ध, अतः इनका कृत्य अनुचित। रघु० ९।७४।) मुनि की आर्त्त पुकार सुनकर विकल हो इनका वहाँ पहुँचना। मुनि का कथन – वे तपोलीन वैश्य। इन्हें ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। ये शीघ्र उनके क्षुधा-तृषा-व्याकुल माता-विता को जल दे आयें, अन्यथा कृपित होकर वे इन्हें भस्म कर देंगे। उन्हें जल देकर, नमन कर, ये अपना कृत्य सुना दें। पीड़ित मुनि के आग्रह पर उनके शरीर से इनका बाण

निकालना। जल लेकर मुनि के वृद्ध माता-पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन करना। शोकाकुल माता-पिता के कहने पर इनका उन्हें मुनि के पास ले जाना, उनके लिए चिता बनाना। तीनों का चिता पर चढ़ना। अग्नि लगाने पर भस्म हो उनका स्वर्ग-गमन। तब वृद्ध पिता का इन्हें शाप —उनकी तरह इनका भी पुत्रशोक से मरण होगा। राम-विरह में देह-त्याग करने से पूर्व इनका कौसल्या को यह कथा सुनाना। अ० रा० २।७।१८-४५। वा० रा० २।६३।४-२।६४।५६ में भी यही कथा। वहाँ मुनि का दिव्य रूप धारण कर, माता-पिता को आश्वासन दे, इन्द्र के साथ दिव्य विमान में स्वर्ग-गमन। तब पिता का इन्हें शाप देना। चितारूढ़ हो माता-पिता का देवलोक जाना। रघु० ६।७८-८० में आँसुओं से अंजलि भरकर पिता का पहले ही शाप। इनका शाप को वरदान मानना, क्योंकि इसी बहाने इन्हें पुत्र-प्राप्ति होगी। आ० को० में मुनि वैश्य संन्यासी। उनका नाम श्रावण। प्रा० च० के अनुसार ब्रह्मपुराण १२३।३७ में वे ब्राह्मण। उनके पिता का नाम श्रवण और उनका श्रावण। अ० पु० ६, पृ० १५ में वे यज्ञदत्त के पुत्र श्रवणकुमार, नदी का नाम सरयू। वा० रा० में भी सरयू। रघु० ६।७२ में नदी तमसा।]

ये सब रानियोंसहित पुण्य-मंगल-मूर्त्ति। राम के पिता होने के कारण महिमा की अवधि। इनकी रचना कर विधाता को भी बड़प्पन प्राप्त। इन्हें प्रणति। इनसे कृपा-याचना (१।१६।६-८)। राम के चरणों में इनका सच्चा प्रेम। उनके बिछुड़ते ही इनके द्वारा शरीर-त्याग। इनकी वन्दना (१।१६)।

एक कल्प में स्वायम्भुव मनु को ब्रह्मरूप राम का वरदान कि उनका 'अवध भुआल' के रूप में जन्म होगा। प्रभु आदिशक्ति और अपने अंशों के साथ उनके यहाँ अवतार-ग्रहण करेंगे (१।१५१-१।१५२।४)। एक दूसरे कल्प में भगवद्वाणी (गगनगिरा)— कश्यप-अदिति के महातप और वरप्राप्ति के फलस्वरूप उनका अयोध्या में दशरथ-कौसल्या के रूप में प्राकट्य होगा। पूर्व प्रतिज्ञानुसार प्रभु अपने अंशोंसहित इनके यहाँ अवतरित होंगे। (१।१८७।२-५)। [इस आकाशवाणी में स्वायम्भुव मनु-शतरूपा को दिये गये वर का भी अन्तर्भाव। वि० १।१८७।२ व्या०।] (प्रत्येक कल्प के रामावतार में ये राम के पिता। किसी कल्प में स्वायम्भुव मनु का और) किसी कल्प में कश्यप का इनके रूप में जन्म (१।१२३।३)। ('दे० 'कस्यप', 'स्वायंभुव मनु'।)

ये अयोध्या के राजा। रघुकुलमणि। धर्म-धुरन्धर, गुणनिधि, ज्ञानी। इनका नाम वेद-विदित। हृदय में प्रभु की भक्ति, बुद्धि प्रभु में लीन। कौसल्यादि रानियाँ इनके अनुकूल (१।१८८।७-१।१८८)। पुत्रहीन होने के कारण एक बार ग्लानि-विकल हो इनका वसिष्ठ से दुःख-निवेदन। उनका आश्वासन — इन्हें 'त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी' चार पुत्रों की प्राप्ति होगी। उनका शृंगीऋषि (ऋष्यशृंग) को बुलाना। पुत्रेष्टि यज्ञ कराना। भक्तिसहित पूर्णाहूति होने पर हाथ में चरु (हवि, हव्यान्न) लिए साक्षात् अग्निदेव का प्राकट्य और इनसे कथन — वसिष्ठ का विचारा हुआ इनका कार्य सिद्ध। ये चरु को यथायोग्य बाँट दें। ये परमानन्द-मग्न (१।१८९।१-१।१८९)। इनका रानियों को बुलाना। हव्यान्न का आधा भाग कौसल्या को देना। आधे के दो भाग करना। एक कैकेयी को देकर दूसरे के पुनः दो भाग करना। इन दोनों में एक कौसल्या के हाथ पर, दूसरा कैकेयी के हाथ पर रखकर, दोनों को सुमित्रा को देना (१।१९०।१-४)। [इस प्रकार के विभाजन का कारण — पहले कौसल्या को, फिर कैकेयी को, एक-एक पुत्र की प्राप्ति हो। इसके बाद सुमित्रा के दो पुत्र हों। सुमित्रा का एक सुत कौसल्या-पुत्र का, दूसरा कैकेयी-तनय का अनुगामी हो। वि० १।१९०।३-४ व्या०। अ० रा० १।३।४२।, ६१, ६२ में — 'लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः।। लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्।। सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा।' प० पु० उ० २४२।९९ में भी राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न के 'युग्म' होने का यही कारण — युग्मं बभूवतुस्तत्र राजानौ रामलक्ष्मणौ। तथा भरतशत्रुघ्नौ पायसांशवशात्स्वतः।।]

कौसल्या के पुत्र होने का संवाद सुन ये जैसे ब्रह्मानन्द में मग्न। शरीर में रोमांच। बुद्धि चंचल। (वसिष्ठ के कथन का स्मरण कर ऐश्वर्य-बोध।) जिनका नाम-श्रवण मंगलकारी, उन्हीं प्रभु का इनके घर में जन्म! ये परमानन्द-पूरित। इनका बाजे बजाने का आदेश। —गुरु वसिष्ठ को बुलाना। नान्दीमुख श्राद्ध और फिर जातकर्म करके दान देना (१।१९३।३-७, १।१९३)। कैकेयी और सुमित्रा के भी सुन्दर पुत्र उत्पन्न (१।१९५।१)। मागध-सूत-वन्दियों द्वारा इनका गुणगान (१।१९४।६)। कुछ दिनों बाद पुत्रों के नामकरण के लिए इनका वसिष्ठ को बुलाना। नाम रखकर वसिष्ठ का कथन — इनके चारों पुत्र वेद के तत्व (१।१९७।२-१।१९८।२)। [वेद का तत्व प्रणव। उसमें चार मात्राएँ — अ, उ, म् एवं अर्धमात्रा। अकार जाग्रत अवस्था के विभु विराट्रूप लक्ष्मण। उकार

स्वप्नावस्था के विभु हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न। मकार सुषुप्ति के विभु ईश्वररूप भरत। अर्धमात्रा तुरीय के विभु ब्रह्मरूप राम। वि० १।१९८।१ व्या०, रा० उ० ता० पृ० ५४३।] प्रभु का इनके आँगन में विचरण। भोजन के समय इनके बुलाने पर न आना (१।२०३।५-६)। धूलि-धूसरित होकर उनके आने पर इनका गोद में बैठाना (१।२०३।६)। चारों भाइयों के कुमार होने पर उन्हें माता-पिता-गुरु का जनेऊ पहनाना (१।२०४।३)। राम का आचरण देख इनके मन में हर्ष (१।२०५।७-८)।

मुनि विश्वामित्र का आगमन सुनकर इनका विप्रसमाज के साथ उनसे मिलने जाना। दण्डवत् और सम्मान करके, उन्हें लाकर अपने आसन पर बैठाना। चरण धोकर पूजा करना। स्वयं को परम धन्य समझना। भोजन कराना। मुनि को हर्षित देख चारों पुत्रों को उनके चरणों में डालना। उनके आने का कारण पूछकर आज्ञा-पालन के लिए तत्परता व्यक्त करना (१।२०६ - १।२०७।८)। मुनि द्वारा निशिचर-वध के लिए राम-लक्ष्मण की याचना। कथन — इससे इन्हें धर्म और यश प्राप्त होगा (१।२०७।९ - १।२०७)। मुनि के वचन इनके लिए अत्यन्त अप्रिय। इनके हृदय में कम्प, मुख-कान्ति मलिन। इनका निवेदन — मुनि ने विचार करके नहीं माँगा। वे इनका सर्वस्व, इनके प्राण भी माँग लें, तो ये निःसंकोच दे देंगे। लेकिन वृद्धावस्था में (वा० रा० १।२०।१० के अनुसार साठ हजार वर्ष की आयु में) प्राप्त चारों पुत्र इन्हें प्राणप्रिय, उनमें भी राम सबसे अधिक। कहाँ घोर क्रूर निशाचर और कहाँ सुन्दर किशोर पुत्र! इनकी प्रेमसिक्त वाणी सुनकर मुनि के मन में हर्ष। (वा० रा० १।२१।३ में कुपित हो मुनि का इन्हें 'मिथ्याप्रतिज्ञ' कहना।) वसिष्ठ के अनेक प्रकार से समझाने पर इनका सन्देह नष्ट (१।२०८।१-८) [वसिष्ठ के वचनों (१।१८६।४) का स्मरण करके पुत्र-जन्म का संवाद सुनने पर इन्हें जो ऐश्वर्य-ज्ञान (१।१९३।५), वह पुत्र का माधुर्य देखकर विस्मृत। मा० पी० १।१९३।५ टिप्पणी १ क। इसीलिए 'गुरु वसिष्ठ समुझाय कह्यो, तब हिय हरषाने, जाने सेष-सयन।' गी० १।५१।२। अ० रा० में वसिष्ठ का एकान्त में इनसे रहस्य-कथन — पूर्वजन्म में ये कश्यप। उस समय विष्णु को पुत्ररूप में पाने की वर-याचना के फलस्वरूप प्रभु का इनके यहाँ जन्म। विश्वामित्र की याचना सीतारूप में अवतरित योगमाया से राम का संयोग कराने के लिए। अ० रा० १।४।१२-२०। वा० रा० १।२१।७ में वसिष्ठ का इन्हें स्वधर्म-पालन करने का, अधर्म का भार न उठाने का उपदेश।] दोनों पुत्रों को हृदय से लगाकर, शिक्षा और आशीर्वाद देकर, इनका विनयपूर्वक मुनि को सौंपना (१।२०८।९ - १।२०८ क)।

जनक के दूतों से पत्र लेकर पढ़ते समय ये अश्रु-पुलक-आनन्द-पूरित। राम-लक्ष्मण के ध्यान से मौन। फिर धीरज धरकर पत्र पढ़ना, सभा को सुनाना। भरत-शत्रुघ्न की जिज्ञासा पर पुनः पढ़ना। सुनकर सबको सुख (१।२८७।१, १।२९०।१ - १।२९१।२)। इनका दूतों को निकट बैठाना। प्रेमविवश हो राम-लक्ष्मण का कुशल पूछते हुए प्रश्न — जनक ने उन्हें पहचाना कैसे? दूत उन्हें पहचानते हैं, तो उनका स्वभाव कहें (१।२९१।३-८)। दूतों का इन्हें धन्य कहना। उनके मुख से दोनों भाइयों के तेज-प्रताप-बल, धनुष-भंजन और परशुराम-प्रसंग सुनकर ये सभासहित प्रेममग्न (१।२९१-१।२९३।८)। गुरु वसिष्ठ के पास जाकर इनका पत्रिका देना। दूतों को बुलाकर गुरु को सब कथा सुनवाना। प्रसन्न गुरु का कथन कि ये और कौसल्या पुण्यात्मा-धर्मात्मा जिनके ऐसे शील-गुण-धर्म-व्रती पुत्र। इनका सर्वकाल में कल्याण। ये शीघ्र बरात सजाकर चलें (१।२९३-१।२९४)। अन्तःपुर में जाकर इनका रानियों को बुलाना। जनक का पत्र पढ़कर सुनाना। (दूतों के मुख से सुनी हुई) अन्य बातें बताना। बार-बार राम-लक्ष्मण की कीर्त्ति और करनी का वर्णन करना। इसे विश्वामित्र की कृपा मानना (१।२९५।१-७)।

इनका भरत को बुलाना। अश्व-गज-रथ सजाकर शीघ्र बरात में चलने का आदेश देना (१।२९८।१-२)। दो रथ सजाकर सुमन्त्र का इनके निकट लाना। एक रथ पर इनका वसिष्ठ को चढ़ाना। स्वयं हर-गुरु-गौरी-गणेश का स्मरण कर दूसरे रथ पर आरूढ़ होना। गुरु के साथ इनकी शोभा वैसी ही जैसी वृहस्पति के साथ इन्द्र की। बरात का साज-सामान देखकर, गुरु की आज्ञा पाकर, शंख-ध्वनि करके इनका प्रस्थान (१।३०१।६ - १।३०२।३)।

इनके आने का संवाद सुनकर जनक द्वारा बरात की सुविधा की व्यवस्था (१।३०४।५)। जनक की ओर से अगवानों का इनके आगे उपहार-सामग्री रखना, पूजा-सम्मान करके बरातसहित इन्हें जनवासे की ओर ले जाना (१।३०६-२-४)। इनके आतिथ्य के लिए सीता का सिद्धियों को भेजना (१।३०६।८)। राम-लक्ष्मण इनके दर्शन के लिए लालायित। उन्हें विश्वामित्र के साथ आते देख आनन्दमग्न होकर इनका आगे बढ़ना। मुनि को दण्डवत् प्रणाम करना। बार-बार उनकी चरण-रज को मस्तक पर धारण करना। मुनि का इन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद देना। कुशल-प्रश्न करना। राम-लक्ष्मण को दण्डवत् करते देख इनका उन्हें हृदय से लगाना (१।३०७।४ - १।३०८।४)।

इनके निकट चारों पुत्र ऐसे शोभित जैसे शरीरधारी चारों पुरुषार्थ। [शत्रुघ्न अर्थ, लक्ष्मण धर्म, भरत काम, राम मोक्ष। वि०। मा० पी० १।३०९।२ टिप्पणी में लक्ष्मण कामरूप और भरत धर्मरूप।] पुत्रोंसहित इन्हें देख जनकपुर के नर-नारी मुदित। आकाश में देवताओं का पुष्पवर्षा करना, नगाड़े बजाना। अप्सराओं का नृत्य-गीत। विप्र-सचिवादि के साथ शतानन्द द्वारा बरातसहित इनका सम्मान (१।३०९।२-६)। पुरवासी नर-नारियों का कथन – ये और जनक पुण्य की सीमा। इनके पुण्य ही राम और सीता के रूप में मूर्त्तिमान्। न तो कोई इनके समान शिव-आराधक, न किसी को इनकी-सी फलप्राप्ति (१।३०९, १।३१०।१-१।३१०।३, १।३११)। विवाह के समय बुलावा आने पर गुरु से पूछकर कुलविधि पूर्ण कर इनका चलना। इनके सामने इन्द्र और उनका समाज भी फीका। इनका भाग्य और ऐश्वर्य देख ब्रह्मादि का इनकी सराहना करना, अपने जन्म को व्यर्थ मानना। देवताओं की दृष्टि में इनके साथ जाता हुआ साधु-विप्र-समाज मानो साक्षात् सुख जो इनकी सेवा में संलग्न, चारों पुत्र मानो शरीरधारी चारों प्रकार के मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि। वि०। दे० 'साजुज्य मुक्ति')। देवों द्वारा इनकी प्रशंसा और पुष्पवृष्टि, जयजयकार (१।३१३।५ - १।३१३, १।३१५।४-८, १।३१७।छं०)

राम के मण्डप में प्रवेश करने पर इनका समाजसहित मण्डप के बाहर विराजमान होना (१।३१९।५)। जनक की इनसे मिलनी। लौकिक-वैदिक रीति का सम्पादन। इन दोनों के उपयुक्त उपमा न मिलने पर कवियों का विचार कि इनके समान ये ही (अनन्वय)। देवताओं का कथन कि उन्हें पहली बार समाज और समधी की समता के दर्शन। जनक का पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए इन्हें मण्डप में लाना (१।३२०।१-८)। (वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेव की पूजा करने के बाद) जनक का इन्हें अभीष्टदाता शंकर के समान जानकर इनकी पूजा और विनय करना, अपने भाग्य को सराहना (१।३२१।१-३)। सीता को देखकर ये पुत्रोंसहित सत्त्वोद्रेक से आनन्दमग्न (१।३२३।४)। वरासन पर राम-जानकी को आसीन देख, अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष में एक नये फल के दर्शन कर, इन्हें मोद और रोमांच (१।३२५।छं०१)। वधुओंसहित चारों पुत्रों को देख ये ऐसे आनन्दित जैसे क्रियाओंसहित चारों फलों की प्राप्ति हुई हो (१।३२५)। [वि० के अनुसार चारों फलों में साधनरूप अर्थ (शत्रुघ्न) और धर्म (लक्ष्मण), फलरूप काम (भरत) और मोक्ष (राम)। इनकी क्रियाएँ क्रमशः व्यापृति अर्थात् उद्योग (श्रुतकीर्त्ति), सुकृति (उर्मिला), रति (माण्डवी) और भक्ति (सीता)। मा० पी० में चारों क्रियाओं के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत।]

दहेज स्वीकार करके इनका याचकों में बँटवाना! जनक की विनय और इनके द्वारा उनका सम्मान। जनवासे की ओर जाना। १।३२६।६-७, १।३२६।छं० २-४)। (कोहबर से) चारों भाइयों का वधुओंसहित इनके निकट आना (१।३२७)। जनक द्वारा जेवनार के समय इनका पद-प्रक्षालन, भोजनोपरान्त पान देकर समाजसहित इनका पूजन (१।३२८।२, ४, १।३२९)। (जनकपुर में कुछ दिन बीत जाने पर) वधुओंसहित चारों पुत्रों को देखकर ये आनन्दित। गुरु वसिष्ठ के पास जाकर उनसे गोदान करने का इनका अनुरोध। वाल्मीकि, कौशिक आदि को बुलाकर अलंकृत गायों का, याचकों को कनक वसन आदि का दान (१।३३०।२-१।३३१।७) बार-बार कौशिक के चरणों में नमन कर अपने सुख को उनका कृपा-प्रसाद मानना (१।३३१)। इनके द्वारा जनक के शील, स्नेह, करनी और वैभव की प्रशंसा। उनसे विदा माँगना। उनका इन्हें प्रेमपूर्वक रोक लेना। प्रतिदिन नूतन आदर और आतिथ्य। इनका जाना किसी को प्रिय नहीं (१।३३२।१-४)। इस तरह कई दिन व्यतीत। मुनियों के समझाने पर जनक इन्हें विदा करने को प्रस्तुत। उनका अन्तःपुर में समाचार भिजवाना (१।३३२।५-१।३३२)। विदा होने के समय इनका विप्रों को बुलाकर दान-मान से परितुष्ट करना। उनकी चरणधूलि शिरोधार्य कर आशीर्वाद प्राप्त करना। गणपति का स्मरण कर अयोध्या के लिए प्रस्थान। (साथ चलनेवाले) 'महाजनों' को विनय करके वापस करना। याचकों को बुलाकर दान देना (१।३३९।६ -१।३४०।२)। जनक का इनके साथ दूर तक चलना। बार-बार इनके लौटाने पर भी उनके न लौटने पर इनका वाहन से उतरना। इनके नेत्रों में प्रेमाश्रु। जनक द्वारा इनकी करबद्ध विनती। दोनों का परस्पर प्रेमसिक्त मिलन (१।३४०।४-१।३४०)।

वसिष्ठ की आज्ञा होने पर शिव-पार्वती-गणेश का स्मरण कर इनका समाजसहित अयोध्या में प्रवेश (१।३४७।७-८)। बारातियों को उपहार देकर विदा करना। यथायोग्य भेंट और दान देकर गुरु और विप्रोंसहित महल में आना (१।३५१।४ - १।३५१)। वसिष्ठ की आज्ञा से लोकरीति-वेदविधि का पालन। विप्रों के विदा होने पर

विश्वामित्र की पूजा करके स्वयं को धन्य समझना। उन्हें अन्तःपुर में ठहराना। गुरु का पूजन कर आशीर्वाद-प्राप्ति। अन्य सबका योग्य सम्मान (१।३५२।१-१।३५३।७)। आनन्दमग्न हो अन्तःपुर में प्रवेश। पुत्रों-पुत्रवधुओं को गोद में बैठाकर दुलार करना। विवाह का, फिर जनक के गुण-शील-बड़ाई-प्रीतिरीति-सम्पदा का विशद वर्णन करना। रानियाँ हर्षित (१।३५४।१-८)। गुरु, विप्रगण, कुटुम्बियों को बुलाकर उनके साथ भोजन करने में कुछ रात्रि व्यतीत। इनके द्वारा उनका सम्मान। रानियों को बुलाकर कथन कि वे पुत्रवधुओं को अतिशय स्नेह से रखें, पुत्रों को सुला दें। स्वयं इनका विश्राम के लिए गमन (१।३५४-१।३५५)।

प्रातःकाल चारों पुत्रों के सभा में उपस्थित होने पर इनका उन्हें हृदय से लगाना। वसिष्ठ-विश्वामित्र को सिंहासन पर बैठाकर पुत्रोंसहित उनका पूजन। वसिष्ठ से रनिवाससहित धर्मोपदेश-श्रवण। विश्वामित्र के चरित का वामदेव द्वारा अनुमोदन होने पर आनन्द (१।३५८।७-१।३५९।८)। इनके प्रेमभाव की विश्वामित्र द्वारा प्रशंसा। उनके विदा होने के समय अत्यन्त अनुरागभरी विनती करके, रानियों और पुत्रों के साथ उनके चरणों में गिरना। आशीर्वाद-प्राप्ति। (वि० के अनुसार सबके साथ इनका भी मुनि को पहुँचाने जाना। आज्ञा पाकर लौटना।) मुनि द्वारा मन-ही-मन इनकी भक्ति की प्रशंसा (१।३६०।४-१।३६०)। पुनः वामदेव और वसिष्ठ से विश्वामित्र की कथा सुनकर इनका मन-ही-मन अपने पुण्य-प्रभाव को बखानना। सबको आज्ञा देकर पुत्रोंसहित गृह-गमन (१।३६१।१-१।३६१।३)।

अयोध्या में सबके हृदय में यह अभिलाषा कि ये जीते-जी राम को युवराज बना दें। राम का सुयश सुनकर ये आनन्दित। ये पुण्यमूर्त्ति। तीनों लोकों में, तीनों कालों में इनके जैसा भाग्यवान् कोई नहीं, क्योंकि राम इनके पुत्र। (ये पृथ्वीपति, अतः) सब राजा इनके कृपाकांक्षी। (ये इन्द्र के मित्र, अतः) इनका रुख रखते हुए लोकपालों की प्रीति (२।१-२।२।५)। एक बार सभा में दर्पण लेकर मुकुट ठीक करते हुए इन्हें श्रवण-समीप श्वेत केशों के दर्शन। वार्द्धक्य का ध्यान आते ही मन में विचार कि ये राम को युवराज-पद देकर जीवन सार्थक करें (२।२।६-८)। शुभ दिन और सुअवसर देखकर इनका गुरु के पास जाना। राम की योग्यता कहकर, गुरु को प्रसन्न जान, अपनी मनोलालसा निवेदित करना (२।३-२।४।५)। प्रसन्न वसिष्ठ का शीघ्र तैयारी करने का आदेश और कथन — वही दिन शुभ और सुमंगल जब राम युवराज बनें (२।४।६-२।४)। महल में आकर इनका सुमन्त्र आदि सचिवों को बुलाना। गुरु का आदेश सुनाना। पंचों को अच्छा लगे तो राम का तिलक करने का इनका कथन। उनके अनुमोदन करने पर गुरु की आज्ञानुसार शीघ्र सब कार्य करने का आदेश (२।५।१-२।५)। इनके द्वारा विप्र-साधु-सुर-पूजन। राम के लिए मंगल-कार्यों का सम्पादन (२।७।२)। वसिष्ठ को बुलाकर राम को शिक्षा देने के लिए उनके महल में भेजना (२।९।१)। इनकी मनोकामना और इनके द्वारा की गयी अभिषेक की तैयारी का राम से वसिष्ठ का कथन (२।१०।२,४)। [वा० रा० में-- राम को युवराज बनाने का निश्चय हो जाने पर इनका जनाधिपतियों को आमन्त्रित करना। शीघ्रता में केकय-नरेश और जनक को न बुलाना। सोच लेना कि वे बाद में यह समाचार सुन लेंगे। २।१।४६-४८। राम को राजसभा में बुलाकर यह संवाद देना। उपदेश करना। २।३।३९-४६। राम को पुनः अपने महल में बुलाकर कथन — इनके ग्रह भयंकर। प्रकृति में अपशकुन, इन्हें दुःस्वप्न। अतः दूसरे ही दिन, पुष्य नक्षत्र में, भरत के लौटने से पहले, वे अभिषिक्त हों। यद्यपि भरत उनके अनुवर्त्ती, किन्तु कभी-कभी धर्मात्माओं के मन में भी राग-द्वेषादि का उदय। २।४।८-९, १६-२७। राम इस तथ्य से अवगत कि कैकेयी से उत्पन्न पुत्र को राज्य वेने की केकय-नरेश की शर्त को स्वीकार करने के बाद ही इनका कैकेयी से विवाह। २।१०७।३।]

कैकेयी द्वारा मन्थरा से इनकी कुशल-जिज्ञासा (२।१३)। उसका कथन — वे इन्हें अपने वश में समझकर इनके कपट-चातुर्य से अनभिज्ञ। ये मुँह के मीठे, मन के मलिन। यद्यपि इनका उन पर विशेष प्रेम, किन्तु प्रपंच रचकर कौसल्या का इन्हें अपने वश में करना (२।१४।५-६, २।१७, २।१८।५-६)। कैकेयी की उक्ति कि वे मन्थरा के कहने पर इन्हें और पुत्र को त्यागने को भी प्रस्तुत। तब मन्थरा का परामर्श — उनके दो वर इनके पास धरोहर के रूप में सुरक्षित। वे उन्हें माँग लें। सहसा इनकी बातों पर विश्वास न करें। जब ये राम की शपथ ग्रहण कर लें, तब वे भरत का अभिषेक और राम के वनवास की वर-याचना करें। (२।२१,२।२२।५-७, २।२२)।

सन्ध्या के समय इनका कैकेयी के महल में गमन। उनके कोपभवन में होने का समाचार सुनकर इनका सूख जाना। डरते हुए प्रवेश करना। उनके रूठने का कारण पूछते हुए पाणि-स्पर्श करना। उनका इनके हाथ को

झटककर क्रुद्ध दृष्टि से देखना। भवितव्यतावश इनका इसे कामक्रीड़ा समझना। बार-बार उनके रोष का कारण पूछना। राम की शत शपथ लेकर इनका कथन कि इनके प्राण, पुत्र, प्रजा, इनका सर्वस्व उनके वश में। वे कोप और कुवेश त्यागकर भूषण धारण करें, हँसते हुए मनचाहा माँग लें (२।२४-२।२६।८)। मन-ही-मन शपथ पर विचार करके कैकेयी का उठकर आभूषणों से सजना। इनका उन्हें सुहृत समझना। राम के युवराज होने का संवाद देना। नीतिनिपुण होते हुए भी ये नारि-चरित्र से अनभिज्ञ। कैकेयी का इन्हें उन दो वरों का स्मरण कराना जो उन्हें अब तक प्राप्त नहीं। इनका कथन — उन्होंने थाती के रूप में रखकर फिर वे वर माँगे ही नहीं। अब वे दो के बदले चार वर माँग लें। 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।' उस पर इनके द्वारा राम का शपथ-ग्रहण (२।२६-२।२८।७)। सौगन्ध से वर पाने का निश्चय हो जाने पर उनकी याचना — ये एक वर यह दें कि भरत का राजतिलक हो, दूसरा वर यह कि राम चौदह वर्षों तक, तापस-वेश में, विरक्त मुनियों की तरह वनवास करें (२।२८।८-२।२९।३)। सुनकर इनका सहम जाना, विवर्ण होना। हृदय में शोक। माथे पर हाथ रख आँखें मूँदकर सोच में डूबना। स्त्री का विश्वास करने के कारण अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजड़ने की मन में विकलता (२।२९।४-२।२९)। इनकी दशा देखकर कटूक्ति करते हुए कैकेयी का इनके सत्यसन्ध होने की प्रसिद्धि पर आक्षेप करना। शिवि, दधीचि, बलि के उदाहरण देना (२।३०।१-८)। धीरज धरकर इनका आँखें खोलना। फिर सिर पीटकर लम्बी साँस लेना। सामने कराल कठोर कैकेयी का रौद्र रूप देखकर सोचना— क्या सचमुच वे इनके प्राण ही लेंगी (२।३०-२।३१।३)। हृदय कठोर करके इनका विनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न — भरत और राम इनकी दोनों आँखें। दूसरे दिन ही ये भरत-शत्रुघ्न को बुलवाकर, शुभ दिन देख, भरत को राज्य दे देंगे। राम को युवराज बनाने का विचार तो केवल उनके ज्येष्ठ होने के कारण। इसमें कौसल्या का कोई हाथ नहीं। अपने वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए इनका राम की शपथ लेना। कथन – कैकेयी से पूछे बिना सब कुछ करने के कारण ही इनका मनोरथ विफल। दूसरा वर इनके लिए दुःखदायक। उसमें असमंजस। उसकी याचना क्रोध में, परिहासवश, अथवा सत्य? आखिर सर्वप्रिय राम का अपराध क्या? कैकेयी विवेकपूर्वक विचार कर दूसरा वर माँगे, क्योंकि इनका 'जीवनु राम दरस आधीना' (२।३१।४-२।३३।३)। [पूर्वजन्म में प्रभु से इनकी वर-याचना —'मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।।' १।१५१।६। वह इस जन्म में फलित।] इनके वचनों को माया और प्रपंच कहकर कैकेयी का निर्मम निर्णय – सवेरा होते ही राम के वन न जाने पर उनका मरण और इनका अपयश निश्चित। यह कहकर उनका खड़े हो जाना। इनका समझ लेना कि उनके निमित्त से इनकी मृत्यु सन्निकट। उनके चरण पकड़कर, विनय करके, बैठाना। निवेदन – वे इनका मस्तक माँग लें, किन्तु राम के विरह से इन्हें न मारें। उनके किसी तरह न मानने पर राम-राम की आर्त्त पुकार करते हुए इनका धरती पर गिरकर व्याकुल होना (२।३३।४-२।३५।२)। पुनः कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर इनका कथन – वे इनके कालरूपी पिशाच से ग्रस्त। उनकी उक्ति वस्तुतः उस पिशाच की वाणी। यह सब इनके पापों का फल। सब कुछ पूर्ववत् हो जायेगा, किन्तु 'तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ।।' अब वे इनकी आँखों से ओझल हो जायें। जो चाहें करें। इनके जीते-जी इनसे कुछ न कहें। अन्त में उन्हें पछताना होगा (२।३५।३-२।३६।८)। अनेक प्रकार से समझाकर इनका पृथ्वी पर गिरना। राम-राम रटना। विकल होना। मनाना कि सूर्योदय न हो। कोई राम से यह समाचार न कहे। विलाप करते हुए सवेरा होना। प्रातःकालीन मंगल इन्हें अप्रिय (२।३६-२।३७।७)।

नित्य इनका ब्रह्ममुहूर्त्त में जागना। आज अब तक न उठने पर सबको आश्चर्य। जगाने के लिए सुमन्त्र को भेजना। कोपभवन में आकर इनकी दशा देख सुमन्त्र कुछ पूछने में असमर्थ। कैकेयी का वास्तविकता को छिपाना। शीघ्र राम को बुला लाने के लिए कहना। इनका रुख जानकर सचिव का गमन। राम को लेकर आना (२।३७-२।३९।३, २।३९।७)। ये मानो मणिहीन सर्प, कैकेयी मानो साक्षात् इनकी मृत्यु। राम के पूछने पर कैकेयी द्वारा सब वृत्तान्त-कथन। राम को आज्ञापालन के लिए प्रस्तुत देख उनसे निवेदन कि वे इन्हें समझायें जिससे वृद्धावस्था में इनका दुर्यश न हो (२।३९-२।४१, २।४२।५-८, २।४३।२-६)। मूर्च्छा छूटने पर सुमन्त्र से राम के आने की बात सुन इनका आँखें खोलना। सचिव का इन्हें सँभालकर बैठाना। चरणों में पड़ते हुए राम को स्नेह-विकल हो इनका हृदय से लगाना। उनको देखते हुए अश्रु-प्रवाह। शोक-विवश कुछ कहने में असमर्थ। विधि

से मनाना कि राम वन न जायें। महेश से प्रार्थना कि वे राम को ऐसी बुद्धि दें जिससे राम शील-स्नेह त्यागकर इनके वचन की अवज्ञा करके घर पर ही रहें। इन्हें अपकीर्त्ति मिले चाहे नरक-भोग, किन्तु राम-दर्शन के सुख से वंचित न हों (२।४३-२।४५।३)। इन्हें प्रेमवश जानकर राम-कथन – ये इतनी-सी बात से दुखी! वे आज्ञापालन करके शीघ्र वन से लौट आयेंगे। माता से विदा माँगने के लिए उनका जाना। शोकवश ये मौन। अतः राम का यह सोच दूर कि ये कहीं उन्हें रोक न लें (२।४५।४-२।४६।५, २।५१।८)।

अवधवासियों में कुछ का इन्हें दोषी मानना। धर्मशास्त्रियों का इन्हें धर्मात्मा कहना (२।४८।२-५)। कौसल्या से राम का निवेदन – 'पिताँ दीन्हि मोहि कानन राजू'। चौदह वर्ष वनवास कर, इनके वचन को सत्य करके वे लौट आयेंगे (२।५३।२, ६; २।५३)। कौसल्या का इनके ऐसे आदेश का कारण पूछना। सचिवसुत से सब सुनकर उनका कथन – यदि केवल पिता की आज्ञा हो, तो माता (कौसल्या) को बड़ी जानकर राम माता का आदेश-पालन करें, वन न जायें। यदि माता (कैकेयी)-पिता दोनों की आज्ञा, तो अवश्य जायें (२।५४।५-२।५४, २।५५।८-२।५६।२)। [पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा।। वि० २।५६।१-२ व्या०, मा० पी० २।५६।१-२ टिप्पणी २ के अनुसार मनुस्मृति।]

सीता और लक्ष्मण के साथ राम का इनके महल में आना। सुमन्त्र का इन्हें उठाकर बैठाना। इनका तीनों को देखकर आकुल होना। बार-बार हृदय से लगाना। शोक-विकलता के कारण इनकी वाणी मूक। राम का इनके चरणों में नमन कर विदा माँगते हुए निवेदन – ये हर्ष के समय शोक न करें। प्रिय-प्रेम-प्रमाद करके दुर्यश के भागी न बनें। आशीर्वाद और आज्ञा दें (२।७६।२, २।७६।७-२।७७।४)। इनका राम को बाँह पकड़कर बैठाना। कर्मफल-भोग और भगवद्‌गति की विचित्रता आदि कहकर निश्छल भाव से राम को रखने के उपाय करना। [वि० के अनुसार निश्छल उपाय यह कि कैकेयी ने जो भी कहा हो, स्वयं इन्होंने वन-गमन की आज्ञा नहीं दी।] राम का रुख देखकर जब इन्हें विश्वास कि वे न रहेंगे, तो इनका सीता को हृदय से लगाकर वन जाने से विरत करने का प्रयत्न करना। संकोचवश सीता का उत्तर न देना (२।७७।५-२।७९।१)। कैकेयी का मुनिपट-भूषण-भाजन (वल्कल-मालामेखलादि कमण्डलु) लाकर राम के आगे रखकर कथन – पुण्य-सुयश-परलोक नष्ट होने पर भी ये उन्हें वन जाने को नहीं कहेंगे। अतः स्वयं उन्हें जो अच्छा लगे, वे करें। ये वचन इनके लिए बाणसम। इनका सोचना –अभागे प्राण निकलते भी नहीं! मूर्च्छित होना। तुरत मुनिवेश धारण करके, इन्हें और माता को नमन कर, राम का प्रस्थान (२।७९।२-८)।

मूर्च्छा छूटने पर सुमन्त्र को बुलाकर इनका व्यथा-निवेदन – राम-विरह से अधिक ऐसा कौन-सा दुःख जिससे प्राण शरीर-त्याग करेंगे। फिर धीरज धरकर कथन – वे रथ लेकर जायें और सिय-राम-लक्ष्मण को वन दिखाकर अल्पकाल में लौटा लायें। दोनों भाई न आयें, और सीता वन देखकर डरें, तो विनय करके, इनका सन्देश कहकर, किसी भी उपाय से केवल सीता को ही लौटा लायें, अन्यथा इनका मरण निश्चित। 'राम लखन सिय आनि देखाऊ' कहकर मूर्च्छित होकर इनका गिरना (२।८१।५-२।८२।८)। सुमन्त्र का राम के पास जाकर इनकी आज्ञा सुनाकर तीनों को रथ पर चढ़ाना (२।८२-२।८३।१)। शृंगवेरपुर में उनका राम से निवेदन – उन्हें इनका आदेश कि वे तीनों को वन दिखाकर गंगा-स्नान कराके लौटा लायें (२।९४।६-२।९४)। राम का विनीत कथन – वे विनयपूर्वक इन्हें समझायें और ऐसा कार्य करें जिससे इन्हें पुत्र-शोच से दुःख न हो। लक्ष्मण का सन्देश वे इनसे न कहें (२।९५-२।९६।१,२,४,५)। सीता के सम्बन्ध में इनका सन्देश और इनकी आर्त्ति-प्रीति सुमन्त्र से सुनकर राम का सीता को समझाना। सीता द्वारा इनके ऐश्वर्य और प्रभाव का वर्णन। इनसे यह विनती करने का सुमन्त्र से अनुरोध कि ये उनकी चिन्ता न करें (२।९६।६-२।९७।३, २।९८।३-२।९९।२)।

अवध की ओर लौटते हुए मार्ग में सुमन्त्र का सोच – इनके पूछने पर वे क्या उत्तर देंगे! कहेंगे कि सिय-राम-लक्ष्मण को वे सकुशल वन पहुँचा आये! सुनते ही ये प्राण त्याग देंगे (२।१४६।६-८)। दासियों का उन्हें कौसल्या-भवन में ले आना (२।१४८।२-३)। [वा० रा० में – इनके द्वारा कैकेयी का (२।४२।६-८), भरतसहित कैकेयी का परित्याग (२।१४।१४)। कथन किं इनके मरने पर कैकेयी और भरत इन्हें जलांजलि न दें (२।१४।१६-१७)। इनका कौसल्या के महल में आना (२।४२।१०, २६-२८।] सुमन्त्र का इन्हें हतप्रभ, असन-शयन-विभूषण-हीन, दग्धपक्ष सम्पाति की-सी स्थिति में देखना। 'जयजीव' कहकर साष्टांग प्रणाम करना। राम

के सम्बन्ध में पूछते हुए इनका उन्हें हृदय से लगाना। निकट बैठाना। राम-लक्ष्मण-वैदेही-सम्बन्धी जिज्ञासा करना। उनके पास पहुँचने की, उनके दर्शन की आकुलता व्यक्त करना (२।१४८।४-२।१५०।२)। सुमन्त्र द्वारा कर्मफल-विपाक और सुख-दुःख की अनित्यता का कथन। विवेकपूर्वक विचार करके सबके हित के लिए शोच-त्याग करने और धैर्य-धारण करने का इनसे अनुरोध (२।१५०।३-८)। राम के गंगा पार करने तक की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त निवेदन करके वे मौन (२।१५०-२।१५३।४)। सुनकर इनका धरती पर गिरना। ये विषम मोह से आकुल। इनके प्राण कण्ठगत। इन्द्रियाँ विकल। मणिहीन सर्प, माँजा खायी मछलियों की-सी इनकी स्थिति। रानियों का विलाप। अवध में हाहाकार (२।१५३।५-२।१५४।२)। इनकी दशा देख कौसल्या का समझ लेना कि इनके जीवन का अन्त निकट। इनकी मानसिक पीड़ा को कम करने के लिए उनका इन्हें आश्वासन देना। इनका धीरज धरकर उठना। दुःख-रात्रि में इन्हें अन्धे तापस के शाप का स्मरण। इनका कौसल्या को सुनाना। अपने रामरहित जीवन को धिक्कारना। प्रेमपण का निर्वाह न करनेवाले शरीर को निरर्थक समझना। सिय-राम-लक्ष्मण की नाम-पुकार करते हुए विलाप करना। छः बार राम-राम कहकर इनका देह-त्याग, सुरधाम-गमन (२।१५४।३-२।१५५)। कई वर्षों तक राम के दर्शन करने के कारण इन्हें जीवन का फल और राम-विरह में प्राण त्यागने के कारण मरण का फल प्राप्त। इनका विमल यश अनेक ब्रह्माण्डों में व्याप्त (२।१५६।१-२)।

इनके रूप-शील-बल-तेज का बखान कर रानियों का विलाप। पुरवासियों का रुदन। रात बीतने पर वसिष्ठ का सबको प्रबोधन। तैलपूर्ण नाव में इनके शरीर को सुरक्षित रखना। भरत-शत्रुघ्न को बुलाने के लिए दूतों को भेजते हुए वसिष्ठ का आदेश कि वे इनकी मृत्यु का समाचार न कहें (२।१५६।३-२।१५७।३)। अयोध्या आकर कैकेयी से इनकी मृत्यु का समाचार सुन भरत का व्याकुल होकर भूमि पर गिरना, विलाप करना। राम-वन-गमन सुनकर इनकी मृत्यु का भी विस्मरण (२।१५९।८-२।१६०)। कैकेयी का समझाना कि ये शोच करने योग्य नहीं। इनके द्वारा यथेष्ट पुण्य-यश का अर्जन और भोग। अन्त में इन्द्रपुर-प्राप्ति। भरत द्वारा उनका तिरस्कार (२।१६१।१-२।१६२।५)। ग्लानि-पीड़ित भरत द्वारा इनके सुरपुर-गमन का कथन (२।१६४।३, ७)। इनका और्ध्वदैहिक कृत्य आरम्भ। शव-स्नान। विमान-निर्माण। भरत का रानियों को सती होने से रोकना। सरयू-तट पर चिता-रचना। दाह-क्रिया। स्नानोपरान्त तिलांजलि देना। भरत द्वारा दशगात्र-विधान सम्पन्न। (वि० के अनुसार ग्यारहवें दिन शुद्ध होकर) वसिष्ठ की आज्ञानुसार सब कार्य सम्पादित। (वा० रा० २।७७।१-३ में बारहवें दिन और वि० के अनुसार ग्यारहवें दिन ही इनकी पारलौकिक तृप्ति के लिए) भरत द्वारा ब्राह्मणों को प्रभूत दान। 'पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।' (२।१६९-२।१७१।१)।

भरत से वसिष्ठ कथन — ये शोचयोग्य नहीं। चतुर्दश भुवनों में इनका प्रभाव प्रकट। तीनों कालों में इनका-सा नृप होना सम्भव नहीं। विधि-हरि-हर-सुरपति-दिक्पालों द्वारा इनका गुण-वर्णन। इन्हें प्राणों की अपेक्षा अपने वचन अधिक प्रिय। अतः भरत इनकी आज्ञा का पालन करें। इससे इन्हें स्वर्ग में परितोष होगा (२।१७१।६, २।१७२।२, २।१७३।५-२।१७५।४)। भरद्वाज द्वारा इनकी प्रशंसा। कथन —(पूर्वजन्म में स्वायम्भुव मनु के रूप में) इनके स्नेह और संकोच से ही राम का प्राकट्य (२।२०९।८-२।२०९)।

चित्रकूट में परमार्थोपदेश करके वसिष्ठ द्वारा इनकी स्वर्ग-यात्रा का कथन। स्वयं को इनकी मृत्यु का हेतु समझकर राम अति विकल। सिय-लक्ष्मण और रानियोंसहित भरत-समाज का विलाप। सबका मन्दाकिनी-स्नान। निर्जल व्रत। सवेरा होने पर गुरु-आज्ञा से पितृ-क्रिया करके राम का शुद्ध होना। दो दिन बीतने पर (वि० के अनुसार एकादशाह की क्रिया समाप्त हो जाने पर) गुरु से समाजसहित अवध लौटने की राम की विनती (२।२४७।२-२।२४८।७)। राम से जनक-दूतों का निवेदन — इनके निधन का समाचार सुन मिथिलावासियोंसहित जनक शोकमग्न (२।२७०-२।२७१।४)।

सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति समाप्त होते ही इनका (स्वर्ग से) आगमन। राम को देख इनके नेत्रों में जल। राम द्वारा अनुजसहित इनकी वन्दना। इनका आशीर्वाद देना। उनके मुख से यह सुनकर कि इनके पुण्य-प्रभाव से ही वे असुर-विजय में समर्थ, इनका प्रेमाधिक्य से रोमांचित होना। ये वात्सल्य में मग्न। राम द्वारा इनके प्रेम का अनुमान। [इनके पूर्वजन्म का प्रेम अब भी स्थिर। स्वायम्भुव मनु के रूप में इनकी वर-याचना थी— 'सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।' १।१५१।५।] (इनकी पुत्र-बुद्धि

के निवारणार्थ और इन्हें अपने सच्चिदानंद-स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए) प्रभु का इनकी ओर देखकर (वि० के अनुसार पश्यन्ती द्वारा) इन्हें दृढ़ ज्ञान देना। ये सगुणोपासक। इनका मन भेदभक्ति में लीन (प्रभु से सम्बन्ध-विशेष की कल्पना करके इनके द्वारा उपासना), अतः इन्हें (कैवल्य) मोक्ष की नहीं, सिद्धाभक्ति की प्राप्ति। (ऐश्वर्य-ज्ञान हो जाने के कारण) इनका प्रभु को बार-बार प्रणाम करके हर्षित होकर सुरधाम-गमन (६।११२।१-८)।

इनके और कौसल्या के प्रेम के वशीभूत होकर प्रभु का शिशुचरित्र करना (१।१९९) राम-लक्ष्मण के दशरथ-पुत्र होने का कथन– विश्वामित्र द्वारा जनक से (१।२१६।८), परशुराम से (१।२६९।७), जनकपुरवासिनियों द्वारा (१।२२१।३), धर्मात्मा राजाओं द्वारा (१।२४५), याचकों द्वारा (१।२९५), शूर्पणखा द्वारा रावण से (३।२२।३), राम द्वारा हनुमान् से (४।२।१)। कथन– इनके ऐश्वर्य और प्रताप का भरत द्वारा गुह से (२।१९९।७), इनकी कीर्त्ति और प्रीति का राम द्वारा चित्रकूट की दूसरी सभा में (२।३०५।१), इनके और जनक के समधी होने का (१।३०४।२), इनके सीता के श्वसुर होने का (२।५८), इनके सुरेश-सखा होने का (२।९१।६), इनके स्वर्ग-गमन का (२।१७७, २।१७९।४, २।१८०।३), इनके सम्बन्ध में भरद्वाज द्वारा (२।२०७।४)। केवट द्वारा इनका शपथ-ग्रहण (२।१००।छं०)। 'दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई' (२।३२४।६)। उल्लेख (१।११२।४, १।२९७, १।३४५।३)। राम के उदर में भुशुण्डि को प्रत्येक ब्रह्माण्ड में इनके भिन्न-भिन्न रूपों के दर्शन (७।८१।७)।

मूल शब्द – १।१६।६, १।११२।४, १।१२३।३, १।१८७।४, १।१८८।७, १।१९३।३, १।२०३।५, १।२१६।८, १।२२१।३, १।२८७।१, १।२९०।२, १।२९७, १।२४५, १।२६९।७, १।३०९।३, १।३१०।१, १।३२३।४, १।३३२।४, १।३३२।७, १।३३९।६, १।३४५।३, २।२।४, २।४।६, २।१००।छं०, २।१५६।१, २।१७३।७, २।२०९।८, २।३२४।६, ३।२२।३, ४।२।१, ६।११२।१, ६।११२।६, ६।११२।८, ७।८१।७ (जाति०)। दसरत्थ – १।२९५। दसरथु – १।३०४।२, १।३०७।८, १।३१५।४, १।३१९।५, १।३२०।१, १।३२५।छं० १, १।३२९, २।१६१, २।१७२।२।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द –

(१) सम्बन्धवाचक –

(क) स्थान से –

अवधनाथु – १।३३२।
अवधपति (राम भी) – १।३२५, १।३२६।६, १।३२८।४, १।३३२।२, १।३३९, २।३७, २।१५१।
अवध भुआल (भुआल=भूपाल) – १।१६, १।१५१।
अवधेस (राम भी) – १।३१३।
कोसलधनी (राम भी) – २।१५१।छं०।
कोसलनाथ (राम भी) – २।२७०। कोसलनाथा – २।९४।६।
कोसलपति (राम भी) – १।३१३।६, १।३२१।१, १।३४०।४, १।३४०, २।२७१।१।
कोसलराऊ (राम भी – राउ = राजा) – २।९८।३, २।१७३।५।
कोसलराय (राम भी – राय = राजा) – १।३२६।छं० २।
कोसलेस (राम भी) – ४।२।१।

(ख) व्यक्ति से –

सुरेस सखा – २।९१।६।

(ग) कुल से –

दिनकर कुल नाथा – १।३३१।७।
भानुकुलकेतू (राम के लिए भानुकुलकेतु) – १।३०४।५।
भानुकुल भानु – २।५८, २।१९९।७। भानुकुलभानू (राम भी) – २।१५६।६।
भानुकुलभूषन (राम भी) – १।३२६।छं० ३।
रघुकुल मनि (राम भी) – १।१८८।७, १।२१६।८, १।३४७।७। रघुकुल मनी (राम भी) – १।३१७।छं०।
रघुनायक (रघुकुल के स्वामी – प्रधानतः राम के लिए) –१।१९४।६।
रघुराऊ (प्रधानतः राम के लिए) – २।९१।६।

रबिकुल नंदन — १।३३१।६।

रबिकुल रबि — २।१५४।३।

(२) चरित्रबोधक —

धरम धुरंधर (राम, भरत, स्वायम्भुव मनु, सत्यकेतु भी) — १।१८८।८, २।३०।

सत्यब्रत (राम भी) — २।२०७।४।

सत्यसंध (राम भी) — २।३०।४, २।३०५।१।

सुधीर धुरंधर — २।१५०।४।

दिति — दानवों की माता।

प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > दिति ~ कश्यप > हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, उनचास मरुद्गण भा० ६।६।१-२, ६।१८।१०-११, १६।

[सपत्नियों को पुत्रवती देख इन्हें ईर्ष्या। एक बार सायं काल पुत्रैषणा से कामातुर हो पति से समागम-याचना। कश्यप के समझाने पर भी इनका आग्रह प्रबल। इच्छापूर्ति होने पर पश्चात्ताप। इनकी कोख से दो अधम, अमंगलमय पुत्रों की उत्पत्ति और भगवान् द्वारा उनके वध का कश्यप-कथन। भा० ३।१४। अतः कश्यप के तेज को इनका सौ वर्षों तक उदर में ही रखना। भा० ३।१५।१। हिरण्याक्ष-वध के समय इनके स्तनों से रक्तपात। भा० ३।१६।२३। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के वध से इन्हें शोक और इन्द्र पर क्रोध। इन्द्र-घातक अमर पुत्र प्राने के उद्देश्य से पतिसेवा और वर-याचना। कश्यप खिन्न। एक वर्ष तक, बिना किसी त्रुटि के, इन्हें 'पुंसवन'-व्रत-पालन का उनका उपदेश। इन्द्र का वेश बदलकर इनके आश्रम पर आ इनकी सेवा करना। व्रत-नियम-पालन में इनकी त्रुटि खोजने के लिए वे सदा सतर्क। एक दिन सन्ध्या समय ये विधाता द्वारा मोहित। इनके आचार में त्रुटि। ये निद्रामग्न। अवसर पा इन्द्र का इनके गर्भ में प्रवेश। वज्र द्वारा इनके हिरण्य-गर्भ के सात टुकड़े, फिर एक-एक के सात-सात टुकड़े करना। फिर भी वे जीवित। इन्द्र का उन्हें भाई मान सोमपायी देवता बनाना। जागने पर अपने उनचास तेजस्वी बालकों को इन्द्र के साथ देख ये प्रसन्न। साथ ही आश्चर्य — इनकी कामना एक पुत्र की, उनचास कैसे हुए? इन्द्र से पूछने पर उनके द्वारा यथार्थ-निवेदन। उनके शुद्ध भाव से ये संतुष्ट। भा० ६।१८।२३-७८।]

प्रभु के हाथों इनके पुत्रों के वध का कथन (६।६।७)।

दिनकर कुल — सूर्यवंश। अत्यन्त तेजस्वी, यशस्वी।

(१) ब्रह्मा > मरीचि > कश्यप > विवस्वान् (सूर्य) > वैवस्वत मनु > इक्ष्वाकु > कुक्षि > विकुक्षि > बाण > अनरण्य > पृथु > त्रिशंकु > धुन्धुमार > युवनाश्व > मान्धाता > सुसन्धि > (प्रसेनजित् के भाई) ध्रुवसन्धि > भरत > असित ~ कालिन्दी > सगर > असमंजस > अंशुमान् > दिलीप > भगीरथ > ककुत्स्थ > रघु > प्रवृद्ध या सौदास (कल्माषपाद) > शंखण > सुदर्शन > अग्निवर्ण > शीघ्रग > मरु > प्रशुश्रुक या प्रशुश्रुव > अम्बरीष > नहुष > ययाति > नाभाग > अज > दशरथ ~ (१) कौसल्या > राम ~ सीता > कुश, लव; (२) कैकेयी > भरत ~ माण्डवी > तक्ष, पुष्कल; (३) सुमित्रा > (क) लक्ष्मण ~ उर्मिला > अंगद, चन्द्रकेतु; (ख) शत्रुघ्न ~ श्रुतकीर्त्ति > सुबाहु, शत्रुघाती।

वा० रा० १।७०।१९-४३; २।११०।५-३५ (यहाँ ययाति का नाम नहीं, २।११०।३३ में नहुष के पुत्र नाभाग); १।१८।१०, १३, १४; १।७३।२५-३६; ७।६६।२, ७-९; ७।१००।१६; ७।१०२।२, १३; ७।१०८।९-१२।

(२) ब्रह्मा > मरीचि > कश्यप > विवस्वान् (सूर्य) > वैवस्वत मनु > इक्ष्वाकु > विकुक्षि > पुरंजय (इन्द्रवाह, ककुत्स्थ > अनेना > पृथु > विश्वरन्धि > चन्द्र > युवनाश्व > शाबस्त > बृहदश्व > कुवलयाश्व (धुन्धुमार) > दृढ़ाश्व > हर्यश्व > निकुम्भ > बर्हणाश्व > कृशाश्व > सेनजित् > युवनाश्व > मान्धाता (त्रसद्दस्यु) > पुरुकुत्स > त्रसद्दस्यु > अनरण्य > हर्यश्व > अरुण > त्रिबन्धन > सत्यव्रत (त्रिशंकु) > हरिश्चन्द्र > रोहित > हरित > चम्प > सुदेव > विजय > भरुक > वृक > बाहुक > सगर > असमंजस > अंशुमान् > दिलीप > भगीरथ > श्रुत > नाम > सिन्धुद्वीप > अयुतायु > ऋतुपर्ण (नल का मित्र) > सर्वकाम > सुदास > सौदास (मित्रसह, कल्माषपाद) > अश्मक > मूलक (नारीकवच) > दशरथ > ऐडविड > विश्वसह > खट्वांग > दीर्घबाहु

> रघु > अज > दशरथ > (१) राम > कुश, लव; (२) लक्ष्मण > अंगद, चित्रकेतु; (३) भरत > तक्ष, पुष्कल; (४) शत्रुघ्न > सुबाहु, श्रुतसेन।

भा० ९।१।९-१२; ९।६।४, १२, २०-२५, ३२-३४, ३८; ९।७।४-९; ९।८।१-४, १५; ९।९।२, १६-१८, ३८-४१; ९।१०।१-२; ९।११।११-१३।

(३) विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत मनु के वंश में दिलीप ~ सुदक्षिणा > रघु > अज ~ इन्दुमती > दशरथ ~ (१) कौसल्या > राम ~ सीता > कुश, लव; (२) कैकेयी > भरत ~ माण्डवी > तक्ष, पुष्कल; (३) सुमित्रा > (क) लक्ष्मण ~ उर्मिला > अंगद, चन्द्रकेतु; (ख) शत्रुघ्न ~ श्रुतकीर्त्ति > शत्रुघाती, सुबाहु।

रघु० १।११-१२, ३१; ३।२१; ५।३६; ६।८३-८४; ८।९४; ९।१; १०।६६-६७, ७०।७१; ११।५४; १५।१३, ३२, ३५-३६, ८९-९०।

[इस कुल के राजा आसमुद्र पृथ्वी के स्वामी। शुद्धचरित्र, नीतिज्ञ, धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ। आश्रम-धर्म के पालक, यज्ञकर्त्ता, तपस्वी। स्वर्ग तक उनके रथ की अबाध गति। रघु १।५-९, वा० रा० ४।१८।६। इच्वाकु इस वंश के पहले राजा। वा० रा० १।७०।२१। अतः उनके नाम पर इस वंश का नाम।

इस कुल में पुरंजय-सदृश पराक्रमी नरेश। देव-दानव-संग्राम में पराजित इन्द्र के सहायता माँगने पर उनकी शर्त —इन्द्र उनके वाहन बनें। इन्द्र प्रस्तुत। वृषरूपधारी देवराज के ककुद् (डिल्ला) पर बैठकर उनके द्वारा दैत्यों का संहार। शत्रु के नगर, धन, ऐश्वर्य को जीतकर इन्द्र को समर्पित करना। तब से वे पुर जीतने के कारण 'पुरंजय', इन्द्र को वाहन बनाने के कारण 'इन्द्रवाह', ककुद् पर बैठने के कारण 'ककुत्स्थ' नाम से प्रसिद्ध। भा० ९।६।१३-१९, रघु० ६।७१-७३। उनके नाम पर इस वंश के राजाओं की संज्ञा 'काकुत्स्थ'।

इसी वंश में दिलीप जैसे राजा जिनके सौवें अश्वमेध यज्ञ के अश्व का इन्द्र द्वारा हरण। उस अश्व को पाने के लिए रघु का उनसे युद्ध करके उनके वज्र-प्रहार को भी सह लेना। दिग्विजय के बाद विश्वजित् यज्ञ करके रघु द्वारा सारी सम्पत्ति का दक्षिणारूप में दान। रघु ४।८५-८६। प्रा० च० के अनुसार 'हरिवंश' में वे अपनी श्रेष्ठता के कारण अयोध्या के प्रथम राजा के रूप में अभिहित। उनके नाम पर यह कुल रघुकुल के नाम से भी प्रसिद्ध।

इसी कुल में त्रिलोकविजयी अतिरथी दशरथ का जन्म। वा० रा० १।६।२। स्वयं भगवान् का आदिशक्ति और अंशोंसहित मनुष्य-रूप में अवतार। मानस १।१५२।१-४।]

(विभिन्न कल्पों में) इस कुल में विष्णु का मनुष्य रूप में अवतरण (१।४८।७, १।१८७।२)। 'भानुबंस राकेस कलंकू' — लक्ष्मण के लिए परशुराम की उक्ति (१।२७४।२)। 'जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।' (२।१५।३)। 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।' (२।२८।४)। 'सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं' — कैकेयी की दशरथ के प्रति व्यंग्योक्ति (२।३०।४)। दशरथ की विनय कि कैकेयी इस कुल के लिए कुठारी न बनें (२।३४।६)। कैकेयी 'भइ रघुबंस बेनु बन आगी', 'भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी' (२।४७।४, २।९२।१)। राम-कथन लक्ष्मण से — 'भरत हंस रबिबंस तड़ागा' (२।२३२।६)। 'भानु बंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे' भरत की उक्ति चित्रकूट में (२।२५५।५)। राम का भरत से कथन— 'जानहु तात तरनिकुल रीती', 'तात तरनिकुल पालक होहू' (२।३०५।१, २।३०६।३)। इसका उल्लेख (२।५४।८, २।१६१, २।२२९)।

मूल शब्द — २।१५।३, २।३४।६, २।५४।८, २।९२।१।
पर्याय — **तरनिकुल** — २।३०५।१, २।३०६।३।
दिनकर बंस — १।१८७।२।
भानुबंस — १।२७४।२, २।२५५।५।
रघुकुल — २।२८।४, २।३०।४, २।२२९।
रघुबंस — १।४८।७, २।४७।४।
रबिबंस — २।२३२।६।
हंसबंसु — २।१६१।

दुंदुभि — एक राक्षस। मय और हेमा का पुत्र, मायावी का अनुज। मन्दोदरी इसकी बहन। वा० रा० ७।१२।५,६,१०,१२,१९।

[यह महिषरूप। भयंकर। इसमें एक हजार हाथियों का बल। मदमत्त हो, किसी बलशाली से युद्ध करने की इसकी कामना। इस उद्देश्य से इसका समुद्र के पास जाना। समुद्र का इसे हिमालय के पास भेजना। हिमालय का वाली के पास जाने का परामर्श। किष्किन्धापुरी में जाकर इसका वाली को ललकारना। दोनों का द्वन्द्वयुद्ध। वाली का इसे मारकर एक योजन दूर फेंकना। वा० रा० ४।११।७-४७।]

सुग्रीव का राम को इसकी अस्थियाँ दिखाना। राम का बिना प्रयास के अस्थियाँ हटा देना (४।७।१२)। (पैर के अँगूठे से दस योजन पर फेंक देना। वि०।]

दुघरी — दुघड़िया या द्विघटिका मुहूर्त्त। दो-दो घड़ियों के अनुसार (१ घड़ी = २४ मिनट) निकाला हुआ मुहूर्त्त।

[इस प्रकार के मुहूर्त का प्रयोजन तब, जब कार्य को दूसरे दिन पर टालना सम्भव नहीं। इसमें दिन-रात की साठ घड़ियों को दो-दो घड़ियों में विभक्त कर राशि के अनुसार शुभाशुभ समय का विचार। कुल सोलह मुहूर्त्त। साधारणतः मुहुर्त्तों के नामानुसार फल — रुद्र मुहूर्त में रौद्रकार्य, रावण में वैर-साधन, विभीषण में शुभ कार्य आदि। मा० पी० २।२७२।५ शब्दार्थ।]

यह मुहूर्त्त शोधकर समाज-सहित चित्रकूट के लिए जनक का प्रस्थान (२।२७२।५)।

दुरबासा (दुर्वासा) — एक महर्षि। शंकर के अंश। भा० ४।१।१५, वि० पु० १।६।२, महा० आदि० २२२।५२।

ब्रह्मा > अत्रि ~ अनसूया (देवहूति-कदर्म-कन्या) > दत्तात्रेय, दुर्वासा एवं चन्द्रमा (क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा के अंश)।

भा० ३।१२।२१, २२, ५६; ३।२४।२१, २२; ४।१।१५।

[ये महातपस्वी। प्रचण्ड तेज से प्रज्वलित। इनका ऊँचा कद, पिंगल देहकान्ति, अनवद्य अंगसमूह। श्मश्रु-दण्ड-जटाधारी, मधुभाषी। दर्शनीय स्वरूप। महा० वन० ३०३।४-५। मुद्गल के आश्रम में जाते समय ये उन्मत्त दिगम्बर, मुण्डितकेश, कटुभाषी। महा० वन० २६०।११-१२। इनके 'उन्मत्तरूप', 'उन्मत्तवृत्ति' का वि० पु० में भी उल्लेख। वि० पु० १।६।४, ६। अपने उग्र स्वभाव और क्रोध के लिए ये प्रसिद्ध। स्वयं इनका कथन— इनके प्रति किये गये जरा-से अपराध से समस्त प्राणियों को अपनी कोपाग्नि से दग्ध करने में ये समर्थ। महा० अनु० १५६।१७। 'ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम्। निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम्।।' वि० पु० १।६।२३।

एक बार एक विद्याधरी के हाथ में सन्तानक पुष्पों की दिव्य सुवासित माला देख ये मुग्ध। उससे माला माँगकर अपने गले में धारण कर विचरण। उसी समय ऐरावत पर इन्द्र को आते देख माला उतारकर उन पर फेंकना। माला लेकर इन्द्र का ऐरावत के मस्तक पर डालना (स्वयं धारण न करना)। उसे सूँघकर ऐरावत का पृथ्वी पर डाल देना। यह देख क्रोधावेश में इनका शाप — इन्द्र का त्रिभुवन श्रीहीन हो जाये। इन्द्र की प्रार्थना पर इनका क्षमा न करना। वि० पु० १।६।२-२४।

द्वादशी रहते अम्बरीष के जल पारण करने पर उन्हें मारने के लिए इनका कृत्या उत्पन्न करना, किन्तु अन्ततः ये स्वयं उनके शरणागत। दे० 'अंबरीष'।

प्रसन्न होने पर ये अयाचित वर देने के लिए भी प्रस्तुत। एक बार एक वर्ष तक नाना प्रकार से पृथा (कुन्ती) की सेवा की परीक्षा कर ये प्रसन्न। उन पर आनेवाले भावी संकट का विचार करके, उनके धर्म की रक्षा के लिए, इनके द्वारा उन्हें वशीकरण मन्त्र (भा० ६।२४।३२ में 'देवहूती विद्या') का उपदेश और कथन — मन्त्र द्वारा वे जिस-जिस देवता का आवाहन करेंगी, उस-उस देवता के अनुग्रह से उन्हें पुत्र प्राप्त होगा। महा० आदि० ११०।४-७, वन० ३०५। (इसी मन्त्र के प्रभाव से कर्ण और बाद में पाँचों पाण्डवों का जन्म।)

दुर्योधन के कूट-आतिथ्य से प्रसन्न हो, उनकी प्रार्थना पर इनका यह वरदान कि ये उस समय पाण्डवों के यहाँ अतिथि रूप में जायेंगे जब द्रौपदी भोजन कर चुकी होंगी। महा० वन० २६२। दस हजार शिष्योंसहित इनके पहुँचने पर द्रौपदी द्वारा कृष्ण-स्मरण। कृष्ण के एक शाकान्न ग्रहण करने पर ये शिष्योंसहित आकण्ठतृप्त। पुनः भोजन करने में असमर्थ। अम्बरीष के प्रभाव का स्मरण कर, वासुदेवपरायण पाण्डवों के तेज से भीत हो, इनका पलायन। महा० वन० २६३।

सं० ब्र० पु० में — पाद्मकल्प में एक बार ये गन्धमादन पर्वत पर कृष्ण-चिन्तन में मग्न। निकट ही

दानवराज बलि के पुत्र साहसिक और अप्सरा तिलोत्तमा का उच्छृंखल अभिसार। इनका ध्यान भंग। साहसिक को उसके ज्ञान-लज्जा-हीन आचरण के कारण गर्दभ-योनि में, तिलोत्तमा को दैत्य के प्रति आसक्ति होने के कारण दानव-योनि में जन्म-ग्रहण करने का इनका शाप। उनकी प्रार्थना पर शापानुग्रह—गर्दभ-योनि में कृष्ण के चक्र से प्राण त्यागकर साहसिक मुक्त होगा। तिलोत्तमा बाणासुर-पत्नी होगी, अनिरुद्ध का आलिंगन पाकर शुद्ध हो जायेगी। पृ० ४२५-४२६।

साहसिक और तिलोत्तमा का शृंगार-प्रसंग देख इनके मन में भी काम-संचार। और्व की कलहकारिणी अयोनिजा कन्या कन्दली की सौ कटूक्तियों को क्षमा करने का वचन देकर उससे विवाह। कन्दली के कोप से ये सदा कम्पित। उसकी शताधिक कटूक्तियाँ सहते हुए मोहमूढ़। आखिर एक दिन उसे भस्मपुंज हो जाने का शाप देकर स्वयं शोकमग्न। विप्र-शिशु-रूप धर हरि का इन्हें प्रबोधन। कालान्तर में शुभदा शान्त कमनीया पत्नी के रूप में कन्दली की, और उससे एक पुत्र की, प्राप्ति का हरि-कथन। ये भ्रममुक्त हो तपस्या में मग्न। पृ० ४२६-४२८। ध्यान से अपनी पुत्री के मरण का वृत्तान्त जानकर, इनके निकट आ और्व का इन्हें शाप — इनका पराभव होगा। फलतः अम्बरीष से इनका पराभव। पृ० ४२८-४३३।

एक समय तीन करोड़ शिष्योंसहित इनका द्वारिका-गमन। वसुदेव-कन्या एकनंशा को पत्नीरूप में ग्रहण कर वहीं वास। फिर पत्नी को त्याग शिष्योंसहित तप के लिए प्रस्थान। कैलास पहुँचकर शिव-शिवा की स्तुति। पार्वती द्वारा इनका तिरस्कार। सन्तानहीना पत्नी के त्याग को धर्मतत्व-सम्बन्धी अज्ञान कहकर उनका इन्हें आदेश — द्वारिका लौटकर ये पत्नी का धर्मपूर्वक पालन और सर्वतपों के फलरूप कृष्ण के चरणों का ध्यान करें। पृ० ५९२-५९४।]

यह सर्वविदित कि भगवद्भक्त का अपराधी भगवान् का कोपभाजन। भक्त की महिमा से दुर्वासा भली-भाँति परिचित। —बृहस्पति-कथन इन्द्र से (२।२१८।५-६)। चित्रकूट में राम को भरत के अधीन देख, अम्बरीष-दुर्वासा-प्रसंग का स्मरण कर, देवता और इन्द्र निराश (२।२६५।३-४)। 'जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा' (३।२।३)। पूर्वजन्म में इनसे प्राप्त शाप और शापानुग्रह का कबन्ध-कथन (३।३३।७)। (दे० 'कबंध')।

मूल शब्द — २।२१८।६, २।२६५।४, ३।३३।७। दुर्बासा — ३।२।३।]

दुर्गा — एक देवी।

(१) दुर्ग + आ। 'दुर्ग' शब्द दैत्य, महाविघ्न, भवबन्धन, कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय और रोग के अर्थ में, 'आ' शब्द 'हन्ता' का वाचक। इन दैत्यों का, महाविघ्न आदि का हनन करनेवाली देवी ही दुर्गा। ब्र० पु० पृ० ५७।६-७। (२) ये दुर्गम भवसागर से पार उतारनेवाली नौकारूप, अतः दुर्गा। दु० स० ४।११। (३) इनके द्वारा दुर्गम नामक दैत्य का वध, अतः यह नाम। दे० भा० ७।२८।

[हिरण्याक्षवंशी दुर्गम दैत्य की ब्रह्मा से वर-याचना — सब वेद उसके पास आ जायें, देवता उससे पराजित हों। ब्रह्मा के 'एवमस्तु' कहते ही ब्राह्मणों को वेद विस्मृत। वैदिक क्रियाएँ नष्ट। हवि का भाग न मिलने पर देवता स-जर। दुर्गम से पराजित। अग्नि में हवन न होने के कारण अनावृष्टि, सूखा। पृथ्वी जलशून्य। मृत्यु का ताण्डव। विप्रों की स्तुति पर पार्वती का दिव्य विग्रह प्रकट। इनके अनन्त नेत्रों से अजस्र जलधाराएँ प्रवाहित, अतः इनकी संज्ञा 'शताक्षी'। शाक आदि से सबकी क्षुधा-तृप्ति करने के कारण 'शाकम्भरी'। इसी समय दुर्गम का इन पर आक्रमण। इनके शरीर से कालिका, त्रिपुरसुन्दरी आदि अगणित शक्तियों का प्रादुर्भाव और युद्ध। दुर्गम की सेना नष्ट। दुर्गम द्वारा शक्तियों का पराभव। तब इनका स्वयं दुर्गम से युद्ध और उसका वध। वेदों का उद्धार। इनका कथन — वेदवाणी इन्हीं के शरीर से प्रकट। दे० भा० ७।२८। दे० 'भवानी' में पारबती'।]

राम अनन्तकोटि दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक (७।९१।७।]

दुर्मुख — राक्षसराज माल्यवान् और गन्धर्व-कन्या सुन्दरी के सात पुत्रों में एक। वा० रा० ७।५।३३, ३५-३७।

अकेले जग जीतने में समर्थ अकम्पन, अतिकाय आदि रावण-सेना के सुभटों के साथ इसका उल्लेख (१।१८०)। युद्ध में महोदर आदि के साथ इसके भी मरण का रावण-कथन कुम्भकर्ण से (६।६२।११-१२)।

मूल शब्द —६।६२।११।

पर्याय — **कुमुख** — १।१८०।

दूषन (दूषण) – एक पराक्रमी राक्षस। शूर्पणखा, खर और त्रिशिरा का भाई। वा० रा० ३।२२।७ में खर का सेनापति भी।

मानस में सर्वत्र इसका खर के साथ उल्लेख। दे० 'खर'।

मूल शब्द – ३।१८।२, ३।१९।२, ३।१९।१४, ३।२०।छं० २, ३।२१।५, ३।२२।११, ३।२२।१२, ३।२३।२, ३।२५, ५।२१।९, ६।३६, ६।९०।५, ७।५१।५, ७।६६।४।

देवहूति – कर्दम मुनि की पत्नी।

स्वायम्भुव मनु ~ शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम > कन्याएँ – (१) कला ~ मरीचि; (२) अनसूया ~ अत्रि; (३) श्रद्धा ~ अंगिरा; (४) हविर्भू ~ पुलस्त्य; (५) गति ~ पुलह; (६) क्रिया ~ क्रतु; (७) ख्याति ~ भृगु; (८) अरुन्धती ~ वसिष्ठ; (९) शान्ति (चित्ति) ~ अथर्वा। पुत्र – भगवदावतार कपिल।

भा० ३।१२।५३-५६; ३।२४।१७-१९, २२-२४।

[रूप-गुण-शील-सम्पन्न। एक बार इन्हें महल की छत पर कन्दुक-क्रीड़ा करते देख मोहित विश्वावसु गन्धर्व का अचेत हो विमान से गिरना। कर्दम के रूप-गुण-शील-विद्या का वर्णन सुन उन्हें पति बनाने का इनका निश्चय। सन्तानोत्पत्ति के बाद कर्दम के संन्यास-ग्रहण की शर्त इन्हें स्वीकार। निश्छल सेवा और मधुर भाषण आदि से इनका पति को प्रसन्न करना। दिव्य विभूतियों के दर्शन के लिए उनसे इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त। बिन्दुसर में डुबकी लगाते ही कर्दम की महिमा से इनके लिए भव्य महल प्रकट। सहस्र विद्याधरियाँ इनकी सेविकाएँ। सर्वसाधन-सम्पन्न विमान में पति के साथ विश्व-भ्रमण, मेरु की घाटियों में विहार। उनसे इन्हें नौ कन्याओं की प्राप्ति।

स्वयं भगवान् का इनके गर्भ से कपिल रूप में अवतार। उनके ज्ञानोपदेश से इन्हें आत्मज्ञान। परमात्मस्वरूप भगवान् की प्राप्ति। इनकी सिद्धि-प्राप्ति का स्थान 'सिद्धपद'। इनके दैहिक मल सिद्ध-सेवित नदीरूप में परिणत। भा० ३।२२-३३।]

इनके मनु-पुत्री, कर्दम-प्रिया और कपिल-जननी होने का कथन (१।१४२।५-६)।

मूल शब्द – १।१४२।५।

दोहा – एक मात्रिक छन्द।

[इसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में तेरह-तेरह तथा सम (दूसरे और चौथे) चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ। इस तरह प्रत्येक दल (पंक्ति) में चौबीस मात्राएँ। इसके विषम चरणों के आरम्भ में जगण (।ऽ।) न रहे, किन्तु सगण (।ऽऽ), रगण (ऽ।ऽ) अथवा नगण (।।।) हो। सम चरणों के अन्त में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।), अर्थात् गुरु लघु या केवल लघु रहना चाहिए। सम चरणों का तुक मिले।

मानस में ऐसे अनेक दोहे जिनमें विषम चरणों में तेरह-तेरह के स्थान पर बारह-बारह मात्राएँ। काव्य।]

छन्द, सोरठा और दोहा मानस-सर के बहुरंगी कमल-समूह (१।३७।५)।

द्वादस अच्छर मंत्र – 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'। भा० ४।८।५४।

[भगवत्– त्याग करनेयोग्य त्रिविध गुण और उनके क्लेश आदि को छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण भगवत् शब्द के वाच्य (ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।। वि० पु० ६।५।७९।)।

वासुदेव – प्रभु समस्त भूतों में व्याप्त और सम्पूर्ण भूतों का उन्हीं में वास; वे ही संसार के रचयिता और रक्षक, अतः वासुदेव (भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः।। वि० पु० ६।५।८२।)।

रा० उ० ता० में यह मन्त्र रामरूप – ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् य ओं नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुर्भर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः।। खण्ड १, ४४। (जो सुप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र, वे अवश्य ही भगवान्, तथा जो 'ॐ' नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र से नमस्कार करनेयोग्य महाविष्णु एवं भूः भुवः स्वः तीनों लोक, वे भी उन्हीं के स्वरूप। उन श्रीराम को निश्चय ही बारम्बार नमस्कार।)

वि० १।१४३ व्या० के अनुसार कालिका-पुराण में भी मनु के तप की कथा और 'वासुदेव' के जप का उल्लेख। द्वादशाक्षर मन्त्र अनेक होने पर भी मानस के मनु-प्रसंग में उपर्युक्त मन्त्र ही अभिप्रेत।

भगवान् के जिस स्वरूप का ध्यान करके इस मन्त्र का जप, उसी स्वरूप के दर्शन। ध्रुव के मन में राज्य की कामना, अतः नारद द्वारा उन्हें चतुर्भुजरूप के ध्यान और इस परम गुह्य मन्त्र का उपदेश। भा० ४।८।४५-५४। मनु के मन में सच्चिदानन्द ब्रह्म के किसी विशेष स्वरूप की धारण नहीं। आकाशवाणी सुनकर शिव और भुशुण्डि के मन में बसनेवाले स्वरूप में दर्शन की वर-याचना और सीतासहित राम के दर्शन।]

नैमिषारण्य में तपोलीन मनु-शतरूपा द्वारा इस मन्त्र का जप (१।१४३)।

द्वापर — चार युगों में तृतीय।

[गोपथ ब्राह्मण (१।२८) में इस युग के आरम्भ की ओर संकेत। इस युग के धर्मों की उद्घोषणा शंख-लिखित द्वारा (पराशर-स्मृति १।२४)। ऐतरेय ब्राह्मण के एक रूपक में 'संजिहानस्तु द्वापरः'। दे० 'कृतजुग'। ध० इ० द्वि० पृ० ६८३, ६८५।

इस युग में अधर्म के चारों चरणों (असत्य, हिंसा, असंन्तोष, द्वेष) की वृद्धि। इनके प्रभाव से धर्म के चारों चरण (तप, सत्य, दया, दान) आधे-आधे क्षीण। वर्णों में ब्राह्मण और क्षत्रिय की प्रधानता। मनुष्य कर्मकाण्डी, वेदों के अध्ययन-अध्यापन में तत्पर। प्रायः धनाढ्य, सुखी, यशस्वी। भगवान् के श्रीविग्रह का रंग श्याम (साँवला)। वे पीताम्बरधारी। अपने आयुधों से शोभित। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, भृगुलता, कौस्तुभमणि आदि। छत्र, चँवर आदि से युक्त। वैदिक और तान्त्रिक विधि से उनकी आराधना। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, ऋषि नारायण, महात्मा नर, विश्वेश्वर आदि रूपों में उनकी स्तुति। भा० ११।५।२७-३०, १२।३।२२-२३।]

इस युग में कुछ अधम मनुष्य भी उत्पन्न (७।४०)। भगवान् पूजन से प्रसन्न। भव-सागर पार करने का वही एकमात्र उपाय (१।२७।३, ७।१०२ ख, ७।१०३।३)। राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। इस युग की प्रधानता होने पर रजोगुण की अधिकता, उसमें किंचित् तामस और सत्व का योग। मन में हर्ष और भय (७।१०४।१,४)। (भा० १२।२।२६ में 'कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद् रजस्तमः'।] इस युग में भी नाम-जप से शोक-नाश (१।२७।१)।

मूल शब्द — १।२७।३, ७।४०, ७।१०२ ख, ७।१०३।३, ७।१०४।४।

द्विबिद (द्विविद) — महाबली वानर-यूथपति। रामावतार में अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न। मंयद (मैन्द) के भाई। वा० रा० १।१७।१४, ४।३६।२५।

[ब्रह्मा से अवध्यत्व का वर पाकर ये और मयंद अभिमान से मत्त। इन दोनों भाइयों द्वारा देवसेना का मन्थन और अमृत-पान। वा० रा० ५।६०।२-४। वा० रा० ६।२८।६-७ में ब्रह्मा की आज्ञा से सुधा-पान।]

रावण-दूत शुक द्वारा अंगदादि द्वादश वानर-वीरों में इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से अतुलित बल-सम्पन्न। त्रिलोक को तृण-तुल्य समझनेवाले (५।५४ - ५।५५।२)। युद्ध के प्रसंग में इनका उल्लेख (६।४३।२, ६।५०।२, ६।६८।३)।

मूल शब्द — ५।५४, ६।५०।२। दुबिद — ६।४३।२, ६।६८।३।

धर्मरुचि — राजा प्रतापभानु के हिताकांक्षी मन्त्री। शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान् (१।१५४।१)। हरि-चरणों में इनकी प्रीति। राजा के हित के लिए इनके द्वारा उन्हें सदा नीति की शिक्षा (१।१५५।३)। राजा को दिये गये विप्रों के शाप के फलस्वरूप इनका रावण के सौतेले भाई विष्णुभक्त विभीषण बनना (१।१७६।४-५)।

मूल शब्द — १।७६।४। धरमरुचि — १।१५४।१, १।१५५।३।

धुनि (ध्वनि) — एक काव्यांग।

[वाच्य से अधिक उत्कर्षक, चारुता-प्रतिपादक, व्यंग्य ही ध्वनि। जहाँ शब्द या अर्थ स्वयं साधन होकर साध्यविशेष किसी चमत्कारक अर्थ को अभिव्यक्त करे, वहाँ ध्वनि-काव्य। इसके दो भेद — (१) लक्षणामूलक और (२) अभिधामूलक।

(१) लक्षणामूलक ध्वनि — जिसके मूल में लक्षणा हो। यही अविवक्षित-वाच्य ध्वनि, क्योंकि इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा (कहने की इच्छा) नहीं। इसमें वाच्यार्थ बाधित या अनुपयुक्त। (क) जहाँ मुख्यार्थ का बाध होने पर वाचक शब्द का वाच्यार्थ लक्षणा द्वारा अपने दूसरे अर्थ में संक्रमण कर जाये, बदल जाये, वहाँ अर्थान्तर-संक्रमित अविवक्षित वाच्य ध्वनि। यह पद में होने से पदगत, वाक्य में होने से वाक्यगत। (ख) जहाँ बाधित वाच्यार्थ का

अर्थान्तर में संक्रमण न हो, बल्कि मुख्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार हो जाये, एक भिन्न अर्थ हो, वहाँ अत्यन्त-तिरस्कृत अविवक्षित वाच्य ध्वनि। यह पद में होने से पदगत, वाक्य में होने से वाक्यगत। (२) अभिधामूलक ध्वनि –जिसके मूल में अभिधा अर्थात् वाच्यार्थ-सम्बन्ध हो। यही विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि, क्योंकि इसमें वाच्यार्थ वांछनीय होकर अन्यपर, अर्थात् व्यंग्यार्थ का बोधक। इसमें वाच्यार्थ का न तो दूसरे अर्थ में संक्रमण, न सर्वथा तिरस्कार, बल्कि वह विवक्षित। (क) जहाँ व्यंग्यार्थ का क्रम लक्षित नहीं होता, अर्थात् यह ज्ञान नहीं रहता कि कब वाच्यार्थ का बोध हुआ और कब व्यंग्यार्थ का, वहाँ असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य (रसादि) ध्वनि। इसके छः भेद – पदगत, पदांशगत, वाक्यगत, रचनागत, वर्णगत एवं प्रबन्धगत। (ख) जहाँ अभिधा द्वारा वाच्यार्थ का स्पष्ट बोध होने पर क्रम से व्यंग्यार्थ संलक्षित हो, वहाँ संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि। जिस प्रकार घण्टा बजने पर मूल शब्द के बाद अनुगामी गुंजन, उसी प्रकार साधारण अर्थ के अनन्तर अलंकार और वस्तुरूप से व्यंग्य की प्रतीति। यह 'अनुरणन ध्वनि'। संलक्ष्यक्रम व्यंग्य के तीन भेद — (अ) शब्दशक्त्युद्भव-अनुरणन-ध्वनि, (आ) अर्थशक्त्युद्भव-अनुरणन-ध्वनि एवं (इ) शब्दार्थोभयशक्त्युद्भव-अनुरणन-ध्वनि। इनमें (अ) के चार भेद, (आ) के छत्तीस भेदोपभेद, (इ) का कोई भेद नहीं। इस प्रकार ध्वनि के शुद्ध भेदों की संख्या इक्यावन। का० द०। आनन्दवर्द्धन आदि अनेक आचार्यों द्वारा ध्वनि ही काव्य की आत्मारूप में स्वीकृत।]

मानस-सर के रूपक में ध्वनि, अवरेव, गुण, जाति का मछलियों के रूप में कथन (१।३७।८)।

धूमकेतु^{1} – रावण-सेना का एक योद्धा।

अकेले जग जीतने में समर्थ कुमुख, अकम्पन आदि के साथ इसका उल्लेख (१।१८०)।

धूमकेतु^{2}– पुच्छल तारा।

[यह सौरमण्डल का गौण सदस्य। सूर्य के आकर्षण के कारण शंक्वाकार (कॉनिकल) मार्ग में भ्रमणशील। सूर्य से दूर रहने पर यह प्रकाशहीन। सूर्य के समीप आने पर इसकी आकृति में सिर का केन्द्र (नाभिक) चमकीला। नाभिक के चारों ओर नीहारिका की आकृति का-सा उजला चमकीला भाग। इससे फूटती हुई पूँछ 'कोमा'। सूर्य-किरणों के प्रभाव से यह पूँछ सदा सूर्य से विपरीत दिशा में। कुछ धूमकेतु पुच्छहीन। धूमकेतुओं के नाम प्रायः आविष्कारक के नाम पर।

प्राचीन काल में मान्यता कि इसके दर्शन पृथ्वीवासियों के लिए अनिष्ट के सूचक। अब इसके द्रव्यमान को देखते हुए यह शंका निर्मूल सिद्ध। इसकी पूँछ के दो सौ घन मील में उतनी भी द्रव्यमात्रा नहीं जितनी पृथ्वी-तल की हवा के एक घन इंच में। १९१० में हैलि के धूमकेतु की पूँछ के पृथ्वी से टकराने पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं। किन्तु प्रो० हॉयल द्वारा एक नयी आशंका व्यक्त। धूमकेतु के विघटित होने पर उसकी उल्काओं के झुण्डों की पृथ्वी के वायुमण्डल से टकराहट। इसके फलस्वरूप पृथ्वी के बहुत ऊँचे लताकुंज-से उस वायुमण्डल के क्षतिग्रस्त होने की आशंका जो सूर्य-किरणों के पृथ्वी तक आने में, और पृथ्वी की ऊष्मा को बाहर जाने से रोकने में, सहायक। हि० वि० को०।]

रावण-वध से पूर्व अमंगलसूचक धूमकेतु प्रकट (६।१०२।८)। 'धूमकेतु सतकोटि सम दुराधरष भगवंत' – भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (७।९१ ख)

मूल शब्द – ७।९१ ख (जाति०)।

पर्याय – **केतु** – ६।१०२।८ (जाति०)।

ध्रुव^{1} – भगवद्भक्त। चक्रवर्ती सम्राट्।

मनु ~ शतरूपा > उत्तानपाद ~ (क) सुनीति > ध्रुव ~ (१) भ्रमि (प्रजापति शिशुमारकन्या) > कल्प, वत्सर; (२) इला (वायुपुत्री) > उत्कल, एक कन्या; (ख) सुरुचि > उत्तम। भा० ४।८।७-९, ४।१०।१-२।

[एक दिन अपने सौतेले भाई उत्तम को पिता की गोद में बैठे देख इनकी भी इच्छा उनकी गोद में बैठने की। किन्तु पिता द्वारा उपेक्षा, सुरुचि द्वारा इनका तिरस्कार। ये क्षुब्ध। माता सुनीति का इन्हें समझाना – दुःख-नाश के लिए ये भगवान् की शरण ग्रहण करें। तब ये केवल पाँच वर्ष के। निःसंकोच इनका नगर-त्याग। मार्ग में नारद से भेंट (वि० पु० में सप्तर्षि से)। उनसे भगवदाराधन का उपदेश और द्वादशाक्षर मन्त्र – ॐ नमो भगवते वासुदेवाय – प्राप्त। मधुवन में जाकर तपस्या। इनके पाँच-छः महीनों के कठोर तप से ही त्रिलोक कम्पित। इन्हें भगवान् के

दर्शन। उनसे ध्रुवलोक (प्रभु का परम पद) की प्राप्ति। संकल्प पूरा होने पर नगर लौटना। इनका राज्याभिषेक कर राजा उत्तानपाद का वन-गमन।

एक यक्ष द्वारा उत्तम के वध का समाचार सुन कुपित होकर इनका यक्ष-देश पर आक्रमण। विचित्र रथ पर आरूढ़ हो इन्हें यक्षों का वध करते देख स्वायम्भुव मनु का ऋषियोंसहित आकर इन्हें समझाना। ये युद्ध से निवृत्त। यक्षराज कुबेर के कहने पर इनकी वर-याचना — हरि की अखण्ड स्मृति बनी रहे। इनका राजधानी लौटना।

ये शील-सम्पन्न, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल, धर्म-मर्यादा के रक्षक। इनके द्वारा अनेक यज्ञों का अनुष्ठान। छत्तीस हजार वर्षों तक पृथ्वी पर शासन कर, उत्कल को राज्य सौंप, इनका बदरिकाश्रम-गमन। भगवान् के ध्यान में आत्म-विस्मृति। हरि-पार्षद नन्द-सुनन्द के साथ इनका भगवद्धाम-गमन। भा० ४।८-१२; वि० पु० १।११-१२।

वि० पु० के अनुसार पूर्वजन्म में ये ब्राह्मण — माता-पिता और भगवान् के भक्त, स्वधर्म के पालक। एक राजपुत्र से इनकी मित्रता। उसके भोगैश्वर्य से प्रभावित हो इनकी भी राजपुत्र होने की कामना। अतः इस जन्म में ये राजपुत्र। — इन्हें वर देते हुए भगवान् का कथन। वि० पु० १।१२।८४-८८।]

हरिनाम-प्रताप से इन्हें अनुपम स्थान-प्राप्ति (१! २६।५)। राजा उत्तानपाद के ये हरिभक्त पुत्र (१।१४२।३)।

ध्रुव^{२}— नक्षत्रलोक; उत्तरी ध्रुव के निकट एक तारा।

[स्वर्लोक में, सब ग्रह-नक्षत्रों से ऊपर सप्तर्षि-मण्डल के बाद इसकी स्थिति। यह ज्योतिश्चक्र का नाभिरूप। स्थिर। सप्तर्षिसहित सब ग्रह-नक्षत्रों द्वारा इसकी परिक्रमा।

यह विष्णु का परम पद। भक्त ध्रुव यहाँ विराजमान। एक कल्प तक इसकी स्थिति। भा० ४।६।२०-२१, ५।२३।१-२। वि० पु० १।१२।६०-६३, २।८।६६-१००।]

भरत के हृदयाकाश में विश्वास ही ध्रुव नक्षत्र (२।३२५।५)।

ध्वज — प्रभु के चरण-तल के चिह्नों में एक। मंगलदायक। इसके ध्यान-स्मरण से कलिजन्य दोषों से मुक्ति। दे० 'अंकुस'।

इसका उल्लेख राम के शिशुरूप-वर्णन में (१।१९६।३), वेद-स्तुति में (७।१३।छं०४)।

नंदिगावँ (नन्दिग्राम) — अयोध्या से पाँच कोस की दूरी पर एक ग्राम। अब भी रमणीक। मा० पी० २।३२४।२ शब्दार्थ।

राम की पादुका की आज्ञा पाकर, कौसल्या और वसिष्ठ के चरणों में नमन करके, यहाँ पर्णकुटी बनाकर भरत का तपस्वी-रूप में निवास, ऋषि-धर्म का पालन (२।३२४।१-५)। हनुमान् का यहाँ आगमन। उनसे राम के लौटने का समाचार सुन भरत का अयोध्या जाना (७।१ क, ७।३।१)। [वा० रा० ६।१२७ में अयोध्या से सबका यहाँ आना। रामाज्ञा से पुष्पक का यहीं उतरना।]

मूल शब्द — २।३२४।२।

नर — नारायण के भाई, भगवान् के अवतार। सदा नारायण के साथ। मानस में भी दोनों का एक साथ उल्लेख। दे० 'नारायन'। [ये ही पाण्डु-पुत्र अर्जुन के रूप में अवतीर्ण। महा० वन० २७२।२६।]

मूल शब्द — १।२०।५, ४।१।१०।

नरक — निषिद्ध कर्मरूप पाप करने पर प्राप्त होनेवाला लोक। भा० ५।२६।३।

[ऋग्वेद में नरक के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत नहीं। ऋ० २।२६।६, ३।५।५, ७।१०४।३, ७।१०४।११, ६।७३।८, १०।१५२।४ में तत्कालीन ऋषियों का यह विश्वास प्रकट करना कि पृथ्वी के नीचे कोई अन्ध गर्त जहाँ देवों द्वारा दुष्टों को फेंक दिया जाता था। अथर्ववेद १२।४।३६ में 'नरक-लोक' का उल्लेख। नरक-यातना का संकेत शतपथ ब्राह्मण ११।६।१।४ में तैत्तिरीय आंरण्यकं १।१९ में चार नरकों की चर्चा — विसर्पी, अविसर्पी, विषादी एवं अविषादी।

निरुक्त में इसकी व्युत्पत्ति — नि + अरक = न्यरक, अर्थात् (पृथ्वी के) नीचे जाना; अथवा, न+र+क = नरक, अर्थात् जहाँ आनन्द के लिए जरा भी स्थान न हो। ध० इ० तृ० पृ० १०९७, ११००।

इसकी पौराणिक स्थिति — वि० पु० २।६।१ में पृथ्वी और जल के नीचे। भा० ५।२६।५ में दक्षिण की ओर, पृथ्वी के नीचे, जल के ऊपर। यहाँ सूर्यपुत्र यम का सेवकोंसहित वास। दुष्कर्म करनेवालों को अपने कर्मों

का फल भोगने के लिए उनके दूतों का इस लोक में लाना। प्राणियों के दुष्कर्मों के अनुसार उनके द्वारा प्राणियों का दण्ड-विधान। भा० ५।२६।६।

वि० पु० १।६।४१ में नरक सात—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, असिपत्रवन, कालसूत्र, अवीचि। वि० पु० २।६।२-५ एवं भा० ५।२६।७ में अट्ठाईस नरकों के नाम। वस्तुतः यमलोक में सैकड़ों-हजारों नरक जहाँ अधर्म-परायण जीवों का यातना-भोग। यहाँ के दुर्भोगों से अधिकांश पाप क्षीण हो जाने पर, शेष बचे हुए पापरूप कर्मों को लेकर जीव का पुनः पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए लौटना। भा० ५।२६।३७, वि० पु० २।६।२८, २९, ३२।

भिन्न-भिन्न पुराणों में नरकों के नामों में अन्तर। किसी नरक-विशेष के वर्णन और उसकी प्राप्ति के कारणरूप पापों के कथन में एकरूपता नहीं। नरकों की संख्या भी अलग-अलग, किन्तु नरकों के अगणित होने के सम्बन्ध में अधिकांश पुराण एकमत। दे० 'बैतरनी', 'रौरव नरक'।]

स्वर्ग के साथ इसका उल्लेख द्वन्द्वरूप में (१।६।९), व्यावहारिक सत्य के रूप में (२।९२।७)। स्वर्ग और अपवर्ग के साथ उल्लेख (२।१३१।७, ७।१२१।१०)। तुलसी के पाप सुनकर 'नरकहुँ नाक सिकोरी' (१।२९।१)। रामकथा 'नरक निकंदिनि' (१।३१।९)। ईश्वर के धर्म-विपरीत कर्मों का अनुसरण करनेवालों के लिए कल्प-पर्यन्त नरक-वास (१।६९) [धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।...नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्।। भा० १०।३३।३०-३१] सीता के लिए पति बिना 'सुरपुर नरक समान' (२।६४)। राम-विमुख के लिए यहाँ भी स्थान नहीं (२।२५२।७)। अवध और जनक-समाज के लिए राम बिना सब सुख इसके समान। — वसिष्ठ-कथन (२।२९०।८)। 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ' — विभीषण-कथन रावण से (५।३८)। दुष्ट-संग इससे भी अधिक कष्टदायी (५।४६।७)। विराट् पुरुष की नीचे की इन्द्रियाँ ही नरक (६।१५।८)। ['अधगो' और नरक दोनों शुद्धि के कारण।] नरक का भागी — भरत पर सन्देह करनेवाला (२।१८४।७), राम और शिव में किसी एक की भक्ति और दूसरे से द्रोह करनेवाला (६।२), शिष्य का धन हरनेवाला गुरु (७।९९।७), वेद-निन्दक (७।१००।४), द्विज-निन्दक (७।१२१।२४)। अन्य उल्लेख (२।४५।१, २।७१।६)।

मूल शब्द — १।६।९, १।२९।१, १।३१।९, १।६९, २।४५।१, २।६४, २।७१।६, २।१८४।७, २।२५२।७, २।२९०।८, ५।३८, ५।४६।७, ६।२, ७।९९।७, ७।१२१।१०, ७।१२१।२४। नरका — ७।१००।४। नरकु — २।९२।७, २।१३१।७।

पर्याय — **जातना** (यम-यातना-लोक) — ६।१५।८।

नरहरि — नृसिंह। भगवान् के दशावतार में चतुर्थ अवतार।

[प्रह्लाद को सुधारने और मार डालने के सब प्रयत्न विफल होने पर (दे० 'प्रह्लाद') हिरण्यकशिपु का अपने हाथ से उनका वध करने का निश्चय। उसका कथन — उसके अतिरिक्त यदि कोई जगदीश्वर है और वह सर्वत्र है, तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं? स्तम्भ पर उसका मुष्टिका-प्रहार। उसी समय स्तम्भ में प्रलयंकर शब्द। ब्रह्मा और प्रह्लाद की वाणी सत्य करने के लिए उसमें इनका प्राकट्य। इनका रूप विचित्र— न पूर्णतः सिंह, न पूर्णतः मनुष्य। स्वर्ग-स्पर्शी देह, तपाये हुए स्वर्ण-सी आँखें, विकराल दाढ़ें, तलवार-सी लपलपाती जीभ, पर्वत-गुहा-सी फूली हुई नासिका और खुला मुँह। चारों ओर फैली सैकड़ों भुजाएँ, नखों के आयुध। हिरण्यकशिपु को पंजों में पकड़, द्वार पर ले जाकर अपनी जाँघों पर गिरा, नखों से विदीर्ण करना। आक्रमणकारी हजारों दैत्यों का इनके द्वारा वध। ब्रह्मादि देवताओं और ऋषियों-मुनियों द्वारा इनकी स्तुति, किन्तु इनका क्रोधावेश शान्त नहीं। स्वयं लक्ष्मी को भी इनके निकट जाने में भय। प्रह्लाद को अपने चरणों में साष्टांग लेटे देख ये प्रसन्न। उन्हें उठाकर, अपने करकमल से उनके मस्तक का स्पर्श करना। उन्हें वर देने को प्रस्तुत। ब्रह्मा से इनका कथन — वे असुरों को ऐसा वर न दिया करें। उनकी पूजा स्वीकार कर ये अन्तर्धान। भा० ७।८-९, ७।१०।१-३१। इस रूप में भगवान् का हरिवर्ष खण्ड में निवास। भा० ५।१८।७।]

ये राम-नाम के उपमान (१।२७)। इस रूप में भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु के वध और प्रह्लाद के सुयश-विस्तार का कथन (१।१२२।८)। 'नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा' (२।२६५।५)। इनका स्मरण कर हनुमान् का

लंका-गमन (५।४।१)। युद्ध में राक्षसों को विदीर्ण करते हुए वानर, मानो अनेक शरीर धारण कर क्रीड़ारत ये स्वयं (६।८१।छं०२) देव-दुःख-दलन के लिए इस रूप में भगवान् का चतुर्थ अवतार (६।११०।७)।

मूल शब्द – १।१२२।८, २।२६५।५। नरहरी – ५।४।१, ६।११०।७।

पर्याय – **नरकेसरी** – १।२७।

प्रस्लादपति – ६।८१।छं० २।

नल – वानर-यूथपति। रामावतार में विश्वकर्मा के अंश से उत्पन्न। वा० रा० १।१७।१२, ३३; महा० वन० २८३।४१।

[मन्दराचल पर विश्वकर्मा का इनकी माता को वरदान – उनके गर्भ से विश्वकर्मा के समान पुत्र उत्पन्न होगा। फलतः ये भी पिता की तरह समस्त शिल्पकला में निपुण। (इनकी सृष्टि राम की सहायता के लिए। वा० रा० ७।३६।४९।) इनसे सेतु-निर्माण कराने का राम को सागर का परामर्श। यह सुनकर इन्हें अपने सामर्थ्य का स्मरण। इनका राम से कथन – पिता की दी हुई शक्ति से ये समुद्र पर सेतु बाँधेंगे। वा० रा० ६।२२।४४-४८, ५१-५३। (महा० में सागर का स्वप्न में राम से कथन – ये अपने हाथ से काष्ठ, शिला आदि जो कुछ भी सागर में डाल देंगे, सागर उसे धारण करेगा, और इस तरह पुल बन जायेगा। महा० वन० २८३।४२।) इनके द्वारा पाँच दिनों में सौ योजन लम्बे और दस योजन चौड़े सेतु का निर्माण। वा० रा० ६।२२।६८-७३, ७६। वह 'नल-सेतु' नाम से विख्यात। महा० वन० २८३।४५। (मानस ६।१।५ में नील इनके भाई, किन्तु वा० रा० १।१७।१३ एवं ६।३०।२४ में नील अग्नि के पुत्र। मा० पी० ६।१।५ नोट में यह अनुमान कि नल और नील की माता एक; एक ही स्त्री से नल विश्वकर्मा-तेज से उत्पन्न और नील अग्नि के तेज से। अतः दोनों भाई।]

सुग्रीव का अंगद आदि के साथ इन्हें और नील को बुलाना। दक्षिण दिशा में जाकर सीतान्वेषण करने का आदेश देना (४।२२-४।२३।२)। ये और नील दोनों भाई। दोनों को बचपन में ऋषियों से आशीर्वाद प्राप्त कि इनके स्पर्श से भारी-भारी पर्वत भी समुद्र पर तैरेंगे। – सागर का राम से पयोधि बाँधने का उपाय-कथन (५।६०।१-४) [मा० पी० ५।६०।१-२ टिप्पणी १ (ख) एवं ६।१।५ नोट के अनुसार आनन्दरामायण १।१०।६५-६८ में यह कथा कि विप्रों के शालग्राम को ये दोनों जल में फेंक देते थे। तब विप्रों का इन्हें शाप कि इनके स्पर्शमात्र से पाषाण जल में डूबेगा नहीं, वरन् तैरेगा। वह शाप ही इस समय वरदान-तुल्य।] जाम्बवान् का इन दोनों को बुलाकर 'सब कथा' सुनाना। (अर्थात् सागर द्वारा राम से कहा गया सेतु-बन्धन का उपाय बताना, क्योंकि उस समय ये अनुपस्थित। मा० पी० ६।१।५ टिप्पणी १।) रामप्रताप का स्मरण कर सेतु-रचना करने का उनका कथन (६।१।५-६)। वानरों द्वारा लाये गये गिरि-पादपों से इन दोनों के द्वारा सुन्दर कलात्मक सेतु का निर्माण। वह राम को प्रिय। राम-कृपा से ही सम्भव। इसमें इनका कृतित्व नहीं, फिर भी राम के अनुग्रह से इन्हें उज्ज्वल यश प्राप्त (६।१, ६।२।१-२, ६।३।७-९, ६।४।१)।

कुम्भकर्ण का इन दोनों को पछाड़ना (६।६५।९)। मेघनाद की माया से ये दोनों विकल (६।७३।८)। उसका यज्ञ ध्वंस करने के लिए इन दोनों का भी लक्ष्मण के साथ गमन (६।७५)। रावण की माया से उत्पन्न कोटि-कोटि रावणों से इन दोनों का भी युद्ध (६।९६।छं०)। वृक्ष-पर्वतों से इनका रावण पर प्रहार। उसके मस्तकों पर चढ़कर उसके ललाटों को नखों से विदीर्ण करना। इन दोनों को पकड़कर रावण का पटकना। इनका पलायन (६।९८।३-४, ६-९)। रावण-वध के बाद विभीषण का राज्यतिलक करने के लिए राम का इन दोनों को भी भेजना (६।१०६।२-३)। राम का इन्हें पुष्पक विमान पर चढ़ाना (६।११८ ख - ६।११९।१)। अयोध्या आकर इन दोनों का मनोहर शरीर धारण करना (७।८।१-२)। विदा करते समय राम का स्वयं 'नीलादि' को भूषण-वस्त्र पहनाना। राम-रूप को हृदय में धारण कर, उनके चरणों में नमन कर, इन सबका विदा होना (७।१७ क)। (यहाँ नल का नाम न होने पर भी 'नीलादि' में इनका अन्तर्भाव; मानस में अन्य सब स्थानों पर नल और नील के नाम साथ-साथ।)। इन दोनों का उल्लेख – रावण-दूत शुक द्वारा (५।५४), रावण द्वारा (६।२३।५), युद्ध के प्रसंग में (६।४३।२, ६।५०।२)।

मूल शब्द – ४।२२, ५।५४, ५।६०।१, ६।१।५, ६।१, ६।२।१, ६।३।७, ६।२३।५, ६।४३।२, ६।५०।२, ६।६५।९, ६।७३।८, ६।७५, ६।९६।छं०, ६।९८।३, ६।९८।६, ६।१०६।२, ६।११८ ख, ७।८।१

नव निधि – कुबेर की नौ निधियाँ। इनसे सम्पूर्ण भोगों की प्राप्ति।

[इनके नाम – महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलश्च सर्वश्व निधयो नव।। आ० को०। सं० मा० पु० में विस्तृत अर्थ-व्याख्यासहित इनकी संख्या आठ – (१) पद्म – यह सात्विक। इसके प्रभाव से सोना, चाँदी आदि धातु-संग्रह और क्रय-विक्रय। यज्ञादि में इसका उत्तम उपयोग। (२) महापद्म – सात्विक। इसके आश्रय में रत्नादि-संग्रह। योगियों की सेवा में इस निधि का उत्तम उपयोग। (३) मकर – तमोगुणी। अस्त्र-शस्त्रादि के संग्रह और प्रयोग में इसका क्षय। (४) कच्छप– तमोगुणी। इसमें रत्नादि-संग्रह कर उनकी रक्षा की व्याकुलता। न उपभोग, न दान। (५) मुकुन्द– रजोगुणी। वाद्य-यन्त्रादि के संग्रह और नृत्य-संगीतादि के संरक्षण में इस निधि का व्यय। (६) नन्द– रजोगुण-तमोगुणयुक्त। धान्य-धातु-मणि आदि का संग्रह और क्रय-विक्रय। बन्धु-बान्धव का भरण-पोषण। इसका स्वामी चाटुकारिता-प्रिय। (७) नील– सत्व-रज-गुणमयी। नाना वस्तुओं का संग्रह। वृक्षारोपण, वाटिका-सरोवर-निर्माण आदि। (८) शंख– रजोगुण-तमोगुणयुक्त। इसका स्वामी महास्वार्थी। अर्जित निधि का अकेले ही उपभोग करनेवाला। उसके परिजन भी वंचित।

ये निधियाँ पद्मिनी विद्या के अधीन। उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी। सं० मा० पु० पृ० १६६-१६८।]

चित्रकूट में रामागमन-समाचार से कोल-भीलों को हर्ष, जैसे नव निधि प्राप्त हुई हो (२।१३५।१)। [अतिशय हर्ष सूचित करने के लिए सम्पत्ति के अर्थ में निधि की प्राप्ति का उत्प्रेक्षारूप में कथन १।२२०।२, १।२८६।३, ७।३६।४ में। अत्यधिक विषाद व्यक्त करने के लिए निधि (सम्पत्ति) पाकर खोने का उल्लेख (२।११८।७ में।]

नहुष – तेजस्वी, धर्मपरायण सम्राट्। इन्द्र बनकर बल-मद-मत्त और पतित।

चन्द्रमा > बुध ~ इला > पुरूरवा ~ उर्वशी > आयु > नहुष > यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति, कृति। भा० ६।१४।१३-१६, ६।१७।१, ६।१८।१। इनकी माता का नाम स्वर्भानुकुमारी। महा० आदि०। ७५।२६।

[त्रिशिरा-वध से लगी ब्रह्महत्या के कारण, विश्वासघात करके वृत्रासुर का वध करने के कारण, तेजहीन अदृश्य होकर इन्द्र का जल में छिपना। स्वर्ग राजाविहीन।इन्हें योग्य मानकर, तप और तेज से आप्यायित कर, ऋषियों-देवताओं द्वारा इनका इन्द्र-पद पर अभिषेक और इन्हें वरदान – देव-दानव-ऋषि-गन्धर्व आदि जो भी इनके सामने आयेंगे, इन्हें देखेंगे, उनका तेज-हरण कर ये बलवान् होंगे। ये सम्पूर्ण लोकों के अधिपति। धर्मपरायण, किन्तु कामासक्त। अप्सराओं, देवांगनाओं के साथ नित्य विलास। देवगण इनकी विष-दृष्टि और भयंकर रूप से सदा भीत (ते चाब्रुवन् नहुषो घोररूपो दृष्टीविषस्तस्य बिभीम ईश। १६।३०)।

एक दिन इन्द्र-पत्नी शची को देख ये मोहित। उन्हें अपने महल में उपस्थित होने का आदेश। शची वृहस्पति की शरणागता। सुनकर ये कुपित। ऋषियों-देवताओं के समझाने पर भी शची को पाने का हठ। वृहस्पति के परामर्श से शची का इनके समक्ष उपस्थित होना। कुछ समय की अवधि माँगना। फिर इन्द्र की सलाह के अनुसार इनसे उनका निवेदन – सप्तर्षि एकत्र होकर शिविका द्वारा इनका वहन करें, तो वे प्रसन्न होंगी; तब ये ही उनके पति होंगे। ये मद-बल से उन्मत्त। इनका उन महर्षियों को वाहन बनाना।

वृहस्पति का जल में छिपे इन्द्र से इनके विनाश का अनुरोध। देवताओं-लोकपालों के साथ बैठकर, इनके वध के उपाय के सम्बन्ध में इन्द्र विचारमग्न। इसी समय वहाँ उपस्थित होकर अगस्त्य द्वारा इनके स्वर्ग-भ्रष्ट होने का वृत्तान्त-कथन – इनका बोझ ढोते-ढोते देवर्षि-ब्रह्मर्षि क्लान्त-पीड़ित। उनका इनसे वेद-मन्त्र-सम्बन्धी एक प्रश्न करना। तमोमय अज्ञान मूढ़चेता होने के कारण वेदमन्त्रों को प्रमाण न मानने का इनका कथन। मुनियों से इनका विवाद और अगस्त्य के मस्तक पर पद-प्रहार। फलतः ये नष्टतेज, श्रीहीन। इन्हें अगस्त्य का शाप – स्वर्ग-भ्रष्ट हो ये पृथ्वी पर गिरें। दस हजार वर्षों तक महान् सर्प के रूप में वहाँ रहकर पुनः स्वर्ग प्राप्त करें। महा० उद्यो० १०।४३-५०, उद्यो० ११-१७। महा० अनु० १००।२२-२५ में अगस्त्य की जटा में छिपे भृगु द्वारा इनको शाप। फिर युधिष्ठिर द्वारा इनके शाप-मुक्त होने का भृगु-कथन।

महाभयानक पर्वताकार अजगर के रूप में इनका एक गिरि-कन्दरा में वास। वहाँ पहुँचे भीमसेन को इनका जकड़ना और मुनि-शाप के सम्बन्ध में बतलाना। स्वर्ग से गिरते हुए इनकी प्रार्थना पर अगस्त्य का अनुग्रहपूर्ण कथन था– इनकी स्मरण-शक्ति बनी रहेगी। इनके पकड़ने पर इनसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति का भी साहस नष्ट होगा। इनके प्रश्नों का विभागपूर्वक उत्तर देनेवाला इन्हें शापमुक्त करेगा। भीमसेन को खोजते हुए युधिष्ठिर का वहाँ

आना। इनके प्रश्नों का समुचित उत्तर देना। ये प्रसन्न। भीमसेन को मुक्त कर, अजगर-देह को त्याग, इनका स्वर्ग-गमन। महा० वन० १७८-१८१।]

'हठबस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस' (२।६१)।' ···नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर ज़ान' — राजमद के कलंक का उदाहरण (२।२२८)।

मूल शब्द — २।६१। नघुषु — २।२२८।

नागपास (नागपाश) — वरुण का शस्त्र या जाल। आ० को०। वरुण का अस्त्रभूत पाश; ढाई फेरों का फन्दा; साँपों का फन्दा। बृ० को०। सर्पमय बाण; बाण जो शत्रु को बेध, सर्प बन उसे जकड़ लेते हैं। वा० रा० ६।४४।३५-३६, ३८; ६।४५।८।

[कम्ब रामायण के युद्धकाण्ड में इसके सम्बन्ध में एक कथा। महापराक्रमी नागासुर के वध के लिए ब्रह्मा द्वारा यज्ञाग्नि से नागपाश नामक पिशाच की उत्पत्ति। इसका नागासुर की वीरमहेन्द्र नगरी में जा उसे ललकारना। मन्त्रियों, सेनाध्यक्षोंसहित उसकी सेना का संहार करना, स्वयं उसको निगल जाना। प्रसन्न त्रिदेव से इसे अनेक वर प्राप्त। शिव का इसे कण्ठ में धारण करना। उनकी निषेधाज्ञा — नागभूमि शाल्मलि द्वीप में यह कभी न जाये। चतुर्दश भुवन भ्रमण करते हुए शिवाज्ञा की अवहेलना कर इसका शाल्मलि द्वीप में भी प्रवेश। वहाँ नागों द्वारा अपनी अवज्ञा से यह क्रुद्ध। नागों का कथन — उनका एक पराक्रमी शत्रु जिसके द्वारा हर मास उनका भक्षण। उससे उनकी रक्षा करने पर इसे वे राजा मान लेंगे। वह प्रबल शत्रु साक्षात् गरुड़। उनके आते ही नागों का पलायन। उनसे जीतने की आशा छोड़ यह भी किसी तरह प्राण बचा शिव का शरणागत। शिव-कथन गरुड़ से—इसे क्षमा किया जाये। भविष्य में गरुड़ के किसी कार्य में बाधक होने पर दण्डित हो। गरुड़ सहमत। तब से पाशग्रथित हो इसका वैकुण्ठ में वास। यही नागपाश या नागास्त्र नामक बाण। पी० ई० 'नागास्त्र'।

इन्द्रजित् को यह वरुण से प्राप्त। मा० पी० ५।२०।२ व्या०।]

इससे मेघनाद का हनुमान् को बाँधना (५।२०।२)। [वा०रा० ५।४८।३६-३७ में ब्रह्मास्त्र से। अ० रा० ५।३।९८। में भी।] अति लघु रूप धर हनुमान् का इससे मुक्त होना (५।२५।८-९)। [वा० रा० ५।५३।४२ में भी इसी तरह बन्धन-मुक्ति। अ०रा० ५।४।४० में भी।] इन्द्रजित् का राम को इससे बाँधना (६।७३।१०,११)। [वा० रा० में राम-लक्ष्मण दोनों को। ६।४४।३५-३६, ३८; ६।४५।८।] प्रभु द्वारा इसका बन्धन-स्वीकार रणशोभा के लिए। देवताओं को भय (६।७३।१३)। यह बन्धन माया-नागों का। नारद-प्रेरित गरुड़ द्वारा नागों का भक्षण (६।७४ क)। [वा० रा० ६।५०।३७ में गरुड़ को देख नागों का पलायन।] जिसका नाम जपकर भव-बन्धन से मुक्ति, वे ही इसके बन्धन में! इस गरुड़-मोह के सम्बन्ध में शिव-कथन उमा से (७।५८)।

मूल शब्द — ५।२०।२, ६।७३।१३, ७।५८।

पर्याय — **व्याल पास** — ६।७३।११।

नारद — (नारं अज्ञानं द्यति खण्डयतीति नारदः, अर्थात्, अज्ञान हरण करनेवाले। वि० १।१२४।५ व्या०।) एक देवर्षि।

(१) भगवान् के अवतार। इनके द्वारा सात्वत तन्त्र (नारद पांचरात्र) का उपदेश। भा० १।३।८।

(२) ब्रह्मा की गोद से उत्पन्न। नैष्ठिक ब्रह्मचारी। भा० ३।१२।२३, ४।८।१।

(३) ब्रह्मा के कण्ठ से उत्पन्न। (नर का दान करने के कारण ब्रह्मा का कण्ठ 'नरद'। ये उससे उत्पन्न, अतः 'नारद'।) सं० ब्र० पु० पृ० ६५, ६७।

[ये ब्रह्मतेज-सम्पन्न शुद्धात्मा। सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्र के ज्ञाता, सब विद्याओं-धर्मों के पारंगत पण्डित। काल-धर्म-तत्वज्ञ। (विरक्तों के शिरोमणि, कृष्णदासों के पथ-प्रदर्शक, भक्तियोग-भास्कर। भा० मा० २।५४।) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, कुतूहली। त्रिलोक की बातों से अभिज्ञ। देव, दानव, मनुष्य, सबको धर्मतः प्राप्त। सबके द्वारा पूजित। सबके कर्तव्यों के ज्ञाता। सबके हित के लिए प्रयत्नशील समदर्शी। इनका कद ऊँचा। वर्ण शुक्ल। कान्तिसम्पन्न देह पर इन्द्र-प्रदत्त दो दिव्योज्ज्वल वस्त्र। मस्तक पर शिखा। (अपनी 'महती' वीणा बजाते हुए सदा नारायण के गुण-गान में लीन। अ० रा० १।६।६१) आकाश-मार्ग से विचरण। अधिकांश समय यात्रा में व्यतीत। महा० आदि० २०७।६ के बाद दा० पा०, शा० ३२८।१७-१८।

भा० में — एक बार कलियुग में इनका पृथ्वी पर आगमन। खिन्ना तरुणी भक्ति से भेंट। उसके साथ उसके जर्जर वृद्ध अचेतन पुत्र ज्ञान और वैराग्य। भक्ति को कलिधर्म समझाकर, भक्ति की श्रेष्ठता बताकर, इनका आश्वस्त करना। ज्ञान-वैराग्य को चैतन्य-लाभ कराने में ये असमर्थ। आकाशवाणी का संकेत — ये 'सत्कर्म' करें। 'सत्कर्म' का अर्थ न समझने के कारण ये खिन्न। विशालापुरी में सनकादि से 'सत्कर्म' का गूढ़ार्थ (भागवत-पारायण) समझकर, उनसे भागवत-महिमा सुनकर, इनका निश्चय — ये भक्ति, ज्ञान, वैराग्य को स्थापित करने के लिए भागवत-कथा द्वारा ज्ञान-यज्ञ करेंगे। भागवत-कथन ये पहले ही ब्रह्मा से सुन चुके थे, किन्तु सप्ताह-श्रवण की विधि इन्होंने सनकादि से सीखी। भा० मा० १-६। (छा० ७ में सनकादि से इन्हें एक के बाद दूसरी उत्तम उपासना का उपदेश प्राप्त। अन्त में भूमा और आत्मदर्शन, एवं आहार-शुद्धि (विषयोपलब्धिरूप विज्ञान की शुद्धि) का उपदेश ग्रहण कर इनके द्वारा अज्ञानान्धकार का अतिक्रमण।)

वेद-विभाजन और महाभारत-रचना के बाद भी व्यास को अशान्त देख इनका उपदेश — वे भगवान् की लीलाओं का स्मरण-गान करें। इस सम्बन्ध में उनसे अपना पूर्वचरित्र-कथन— पूर्वजन्म में ये वेदवाही ब्राह्मणों की दासी के एकमात्र पुत्र। शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, आज्ञानुवर्त्ती। मुनियों के पात्रों में लगा जूठन खाने की इन्हें अनुमति प्राप्त। उससे इनके पाप नष्ट। मुनि-सेवा से हृदय शुद्ध। उनसे कृष्ण-कथा-श्रवण। भक्ति का उदय। जाते समय मुनियों का इन्हें गुह्यतम ज्ञान का उपदेश देना। माँ की मृत्यु होने पर इनका गृह-त्याग। अवस्था पाँच वर्ष। अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे आसन लगाकर ध्यान। कृष्ण-मिलन की उत्कट लालसा। हृदय में कृष्ण का प्राकट्य। आनन्दातिरेक में ध्येय का विस्मरण। भगवान् अदृश्य। आकाशवाणी — इस जन्म में इनके लिए अब भगवद्दर्शन असम्भव। अपनी प्राकृत देह त्यागकर ये भगवान् के पार्षद होंगे। प्रलयोपरान्त भी भगवत्प्राप्ति का इनका निश्चय और भगवान् की स्मृति बनी रहेगी। यह सुनकर ये पूर्णतः अनासक्त और कृष्णपरायण। समय आने पर मृत्यु। भगवत्-पार्षद-शरीर-प्राप्ति का अवसर आने तक प्रारब्ध कर्म समाप्त, पांचभौतिक शरीर नष्ट। कल्पान्त में ब्रह्मा के साथ इनका नारायण-शरीर में प्रवेश। पुनः नयी सृष्टि के समय ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र। तभी से त्रिलोक और वैकुण्ठ में अबाध विचरण। प्रभु से प्राप्त स्वरब्रह्म-विभूषित वीणा (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद — ये स्वर ब्रह्मव्यंजक होने के कारण ब्रह्मरूप) की तान पर भगवल्लीला का गान। हृदय में प्रभु के दर्शन। भा० १।५-६।

प्राचेतस दक्ष के पुत्र हर्यश्व (दस हजार) और शबलाश्व (एक हजार) को अध्यात्म का उपदेश देकर इनका उन्हें सन्तानोत्पत्ति से विरक्त करना। अतः दक्ष का इन्हें शाप — ये लोक-लोकान्तरों में भटकते रहें, कहीं ठहर न सकें। भा० ६।५। दुर्भगानाम्नी काल-कन्या (जरा) का वरण न करने के कारण उसका इन्हें शाप — ये एक स्थान पर अधिक देर न ठहर सकेंगे। भा० ४।२७।२१-२२।

सं० ब्र० पु० में — इन्हें उत्पन्न करके ब्रह्मा की इन्हें सृष्टि करने की आज्ञा। इनके न मानने पर शाप — इनका ज्ञान लुप्त हो। उपबर्हण नामक गन्धर्व के रूप में जन्म लेकर ये शृंगार, गायन, वीणावादन में निपुण और कामिनियों के क्रीड़ामृग बनें। फिर दासी-पुत्र के रूप में जन्म लेकर भगवान् के कृपाभाजन हों। तब वे इन्हें पुनः अपना पुत्र बनायेंगे। इनका भी पिता को शाप — उनके मन्त्र का लोप हो। तीन कल्प तक अपूज्य बने रहें, केवल देवता उनकी वन्दना करें। सं० ब्र० पु० पृ० ३३-३५।

उपबर्हण के रूप में जन्म-ग्रहण कर वसिष्ठ से हरिमन्त्र पाकर इनकी तपस्या। पचास गन्धर्व-कन्याओं से विवाह और भोग-विहार। एक दिन ब्रह्मा के स्थान पर जाकर हरि-यश-गान। वहीं नृत्यरत रम्भा को देख इनका वीर्य स्खलित। ब्रह्मा का इन्हें शूद्र-योनि में जन्म लेने का शाप। अतः कृष्ण-जप करते हुए ये ब्रह्मभाव को प्राप्त। इनकी पत्नी मालावती देवताओं को शाप देने के लिए उद्यत। विष्णु के कहने पर देवताओं की इन्हें जीवन-दान करने की चेष्टा। इनके शरीर में कृष्ण के अधिष्ठित होने पर ये जीवित। आयु का शेष भाग सानन्द बिताकर इनका देह-त्याग और पुनः जन्म— कश्यप मुनि का स्खलित शुक्र ग्रहण करनेवाली गोपराज द्रुमिल की पत्नी कलावती के गर्भ से। यहाँ भी नाम नारद। ब्राह्मण-गृह में पालन-पोषण। एक समय सनकादि के आने पर उनकी जूठन खाने का सौभाग्य। उनसे तत्वज्ञान और कृष्ण-मन्त्र का उपदेश प्राप्त। ध्यान में इन्हें कृष्ण की मनोहर झाँकी के दर्शन। ये ध्यान से विरत। फिर उस झाँकी को न देख व्याकुल। आकाशवाणी— इनके हृदय की वासना अपरिपक्व, अतः उस स्वरूप

के दर्शन असम्भव। इस देह का अन्त और दिव्य देह की प्राप्ति होने पर पुनः गोविन्द के दर्शन होंगे। समय आने पर, कृष्ण-स्मरण करते हुए तीर्थभूमि में शरीर त्याग ये शाप-मुक्त। ब्रह्म-विग्रह में लीन। सं० ब्र० पु० पृ० ४३-४४, ५५-५८, ६४-६७।

पुनः ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र के रूप में उत्पन्न। अरुचि होने पर भी पिता की आज्ञा से विवाह के लिए तैयार। उनके आदेश से इनका शिव के पास जाना। शिव से मन्त्रादि और ब्रह्मतत्व का उपदेश ग्रहण। इनके मन को तृप्ति नहीं। वहाँ से नारायण के आश्रम में आकर इनकी ईश्वर-सम्बन्धी जिज्ञासा। सं० ब्र० पु० पृ० ६८-८०। (इसके बाद का प्रायः सम्पूर्ण पुराण — पृ० ८० से ६२० तक — नारद-नारायण के प्रश्नोत्तररूप में।) नारायण का इन्हें आदेश — ये सृंजय-कन्या स्वर्णवी का वरण करें। (वह पूर्वजन्म में उपबर्हण-पत्नी मालावती जिसने इन्हें पतिरूप में पाने का शिव से वर प्राप्त किया था।) विवाह के बाद इनकी सनत्कुमार से भेंट। मायामयी प्रियतमा को छोड़ कृष्ण-मन्त्र जपने का उनका उपदेश। अतः भार्या को त्यागकर तप के लिए इनका भारतवर्ष-आगमन। शिव से भेंट। उनसे प्राप्त ध्यान-विधि से कृष्ण का भजन करते हुए हरि-चरणों में लीन। सं० ब्र० पु० पृ० ६२०-६२२।

महा० में — इनके द्वारा राजा सृंजय से उनकी पुत्री की याचना — धर्मपत्नी बनाने के लिए। पर्वत मुनि द्वारा पहले ही उसका मन में वरण। उनका इन्हें शाप — ये इच्छानुसार स्वर्ग में नहीं जा सकेंगे। इनका शाप — इनके बिना वे भी स्वर्ग नहीं जा सकते। महा० द्रोण० ५५।७-१७। सृंजय को पुत्र-शोक-मुक्त करने के लिए इनका उन्हें सोलह राजाओं के उपाख्यान सुनाना। द्रोण० ५५-७०। महा० के तीस लाख श्लोकों का देवताओं को श्रवण कराना। महा० आदि० १।१०६-१०७। द्रौपदी को लेकर पाण्डवों में परस्पर विरोध न हो, इस दृष्टि से इनका पाण्डवों को सुन्द-उपसुन्द की कथा सुनाकर द्रौपदी के सम्बन्ध में कोई नियम बनाने की सलाह देना। महा० आदि० २०७-२११।

दुर्लभ-गुण-सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के सम्बन्ध में वाल्मीकि की इनसे जिज्ञासा। उत्तर में इनके द्वारा संक्षेप में सम्पूर्ण राम-चरित्र-वर्णन। वा० रा० १।१। उसका साक्षात्कार कर वाल्मीकि द्वारा रामायण-रचना। वा० रा० १।३।१,८,९। रावण-वध के लिए परमात्मा के 'राम'-रूप में, उनकी योगमाया के 'सीता'-रूप में अवतरित होने का इनका जनक से कथन। राम के अतिरिक्त अन्य किसी से सीता का विवाह न करने का उनको आदेश। अ० रा० १।६।६१-६६। हिरण्यकशिपु की अनुपस्थिति में इन्द्र द्वारा बन्दी बनायी गयी कयाधू को मुक्त कर इनका अपने आश्रम में रखना। उनके गर्भस्थित पुत्र प्रह्लाद को लक्ष्य कर उन्हें भागवतधर्म और विशुद्ध ज्ञान का उपदेश करना। यह उपदेश इन्हें नर-नारायण से प्राप्त। भा० ७।६।२७, ७।७।६-१५। इनके द्वारा उपदेश — ध्रुव को भगवद्भक्ति और द्वादशाक्षर मन्त्र का (भा० ४।८।४०-६१), पुत्रशोक-व्याकुल राजा चित्ररथ को मन्त्रोपनिषद् का (भा० ६।१५-१६), शुकदेव को ज्ञान-वैराग्य आदि का (महा० शा० ३२६-३३१।]

सत्संगति-महिमा-प्रसंग में वाल्मीकि आदि के साथ इनके द्वारा भी आत्मकथा कहे जाने का उल्लेख (१।३।३)। शुक सनकादि के साथ इन्हें भी प्रणति (१।१८।५)। नाम-प्रताप से ये अवगत (१।२६।३)। पार्वती-जन्म का समाचार पाकर कुतूहलवश इनका हिमालय के घर जाना। हिमाचल द्वारा आदर-सत्कार। कथन — 'त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम गति सर्वत्र तुम्हारि'। [सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वत्र च कुतूहली।। त्रिषु लोकेषु यद् भूतं सर्वं तव मते स्थितम्। — व्यास-कथन। महा० शा० ३२८।१७-१८।] उमा को बुलाकर उनके गुण-दोष कहने की इनसे प्रार्थना (१।६६।५-१।६६)। उमा की हस्तरेखा देख इनका उन्हें सर्वगुण-सम्पन्ना बताना। उनके 'अगुन, अमान, जोगी, जटिल' आदि लक्षणों से युक्त पति पाने का कथन (१।६७।१-१।६७)। इनके वचन सुन दम्पति को दुःख। उमा को मन-ही-मन हर्ष, क्योंकि 'होइ न मृषा देवरिषि भाषा'। उमा-हृदय की भावना से ये भी अपरिचित (१।६८।१-७)। कोई उपाय करने की हिमवान् की इनसे प्रार्थना। इनका कथन — उमा-वर के सब लक्षण शिव में। यदि उनसे विवाह हो, तो दोष भी गुण बन जायें (१।६८।८-१।७०।२)। उमा तप करके शिव को प्रसन्न करें, कल्याण होगा। गिरिराज को आश्वस्त कर, पार्वती को आशीर्वाद दे, इनका ब्रह्मलोक-गमन (१।७०।३-१।७१।१)। [यह प्रसंग सं० शि० पु० पृ० १७४-१७५ के अनुरूप।] इनकी वाणी के सत्य होने का कथन (१।७१।८, १।७२।३, १।७३।१, १।७८।६)। पार्वती की परीक्षा लेते हुए सप्तर्षि द्वारा इनकी निन्दा — इनका उपदेश मानकर दक्षपुत्र, चित्रकेतु आदि किसी का घर नहीं बसा। ये ऊपर से सज्जन, मन के कपटी। सबको अपनी तरह बनाने में तत्पर। इनका उपदेश

मानकर किया गया उमा का प्रण अब मिथ्या (१।७८-१।७६।५, १।८६)। 'नारद बचन न मैं परिहरऊँ', 'तजउँ न नारद कर उपदेसू' — पार्वती-कथन (१।८०।७, १।८१।६)। [सं० शि० पु० पृ० १६६ के अनुरूप।] शंकर का रुद्र रूप देखकर मैना का (इनकी अनुपस्थिति में) इन्हें भला-बुरा कहना -- स्वयं ये धन-धाम-स्त्री-रहित, माया-मोह-विहीन (दूसरों का घर उजाड़ना ही इनका काम (१।६७।१-४)। सप्तर्षिसहित इनका आगमन — सबको समझाना — सती ही पार्वती। वे अनादिशक्ति, जगदम्बा, भवानी। सदा शंकर की अर्द्धांगिनी। इनके वचन सुन सब विषादमुक्त (१।६७-१।६८)। [सं० शि० पु० पृ० १७६ में इनका यह कथन हिमालय से— उमा की हस्तरेखा देखने के बाद ही।] ये विष्णुभक्त, ज्ञानी। एक कल्प में इनके शाप से रामावतार सुनकर पार्वती को आश्चर्य। इनका मोह-प्रसंग सुनने की जिज्ञासा (१।१२४।५-८)।

गंगा के समीप हिमालय की पुनीत गुहा, आश्रम, परिवेश देख इनके मन में रमापति-चरणानुराग। हरिनाम-स्मरण (नाम-जप और उसके अर्थ की भावना)। इससे दक्ष-शाप की गति अवरुद्ध। इनका सहज निर्मल मन समाधिलीन (प्रत्यक् चेतन का अधिगम और अन्तराय का अभाव। वि०।) (१।१२५।१-४)। इन्द्र को शंका — इनके मन में कहीं उनके राज्य की कामना न हो। अतः इनकी समाधि भंग करने के लिए उनका सहायकोंसहित कामदेव को भेजना (१।१२५।५-१।१२५)। काम की सब कलाएँ इन पर व्यर्थ। वे भीत होकर इनके शरणागत। निर्विकार मन से उनका परितोष कर इनका उन्हें विदा करना (१।१२६।१-१।१२७।२)। [जिस आश्रम में ये समाधिलीन, उसी आश्रम में पहले शिव भी तपस्यामग्न और उनके द्वारा काम-दहन। उस स्थान से जितनी दूर तक की भूमि दृष्टिगोचर, उतनी दूर तक काम के बाणों का प्रभाव न होने का शिव-कथन देवताओं से। इसीलिए नारद पर काम-चेष्टाएँ विफल। सं० शि० पु० पृ० ७३]। इन्द्र-सभा में काम द्वारा इनकी सुशीलता का वर्णन। सबको आश्चर्य। उनके द्वारा इनकी प्रशंसा (१।१२७-३-४)। इनके मन में काम-विजय का अहंकार। शिव के निकट जाकर उन्हें काम-चरित सुनाना। इन्हें अतिप्रिय मानकर शिव-कथन— इस प्रसंग को ये हरि से न कहें। चर्चा होने पर भी गोपन रखें (१।१२७।५-८)। हरि-इच्छावश इन्हें शिव का उपदेश अरुचिकर। इनका ब्रह्मलोक-गमन (१।१२७-१।१२८।२)। ये गान-विद्या में निपुण। एक बार वीणा लिये हरिगुण-गान करते हुए इनका क्षीरसागर जाना। नारायण द्वारा समादृत होना। उनसे कामचरित कहना (यद्यपि शिव ने मना किया था)। उनके मुख से अपनी प्रशंसा सुन इन्हें अभिमान। इनके कल्याण के लिए इनका अहंकार नष्ट करने का प्रभु का संकल्प (१।१२८।३-१२६।७)।

ये कौतुकी। कुतूहलवश इनका हरिनिर्मित मायानगर में प्रवेश। पुरवासियों से सब वृत्तान्त (विश्वमोहनी-स्वयंवर आदि) जानकर राजमहल में जाना। राजा द्वारा इनका यथोचित पूजन। राजकुमारी को दिखाकर उसके गुण-दोष-विचार की प्रार्थना (१।१३०।७-१।१३०)। उसका रूप देख इनका वैराग्य-विस्मरण, लक्षण देख आत्म-विस्मृति। मन-ही-मन विचार — उसे वरण करनेवाला अमर, अजेय, चराचर-सेव्य। प्रकट रूप से कन्या को सुलक्षणा आदि कहकर इनका प्रस्थान। मन में चिन्ता (१।१३१।१-६)। कन्या-प्राप्ति की प्रबल लालसा। उस समय जप-तप को निरर्थक मान, हरि को अपना सर्वाधिक हितकारी समझ उनकी विनती। हरि का प्राकट्य (१।१३१।७-१।१३२।३)। कन्या-प्राप्ति के लिए हरि से उनके रूप की याचना और प्रार्थना — हरि इनका हित-साधन करें (१।१३२।४-७)। इनका परम हित करने का वचन देकर हरि अन्तर्धान (१।१३२।८-१।१३३।२)। ये मायामूढ़। हरि के गूढ़ वचन समझने में असमर्थ। स्वयंवर-स्थल पर पहुँचकर इन्हें यह विश्वास कि इनका रूप अपूर्व, कन्या इन्हीं को वरेगी (१।१३३।३-६)।

इनके कल्याण के लिए प्रभु का इन्हें अवर्णनीय कुरूपता देना, किन्तु उपस्थित समाज की दृष्टि में ये प्रकृत नारद और यही समझकर सबका इन्हें नमन। वहाँ विप्रवेश में इनके निकट ही बैठे रुद्र के दो गण इनके भेद से परिचित। इनके प्रति उनकी व्यंग्योक्तियाँ। अपने रूपाभिमान और बुद्धिभ्रम के कारण ये समझने में असमर्थ (१।१३३।७-१।१३४।६)। इनका वानर-मुख और भयंकर शरीर केवल कन्या को दृष्टिगोचर। उसे क्रोध। दोबारा इनकी ओर देखा तक नहीं। नृपवेशधारी हरि के गले में जयमाल डालकर कन्या का उनके साथ गमन (१।१३४।७-१।१३५।४)। ये मोह से व्याकुल। हर-गणों की व्यंग्योक्ति — ये दर्पण में अपना मुँह तो देखें। कहकर उनका पलायन। जल में अपना रूप देख इन्हें क्रोध। गणों को शाप —वे निशाचर हों (१।१३५।५-१।१३५)। पुनः जल में अपना प्रकृत (नारद का) रूप देखकर भी इन्हें संतोष नहीं। हरि को शाप देने का, नहीं तो प्राण त्यागने

का इनका निश्चय। (१।१३६।१-३)। मार्ग में ही हरि से भेंट। उनके साथ लक्ष्मी और वही राजकुमारी। क्रोधवश इनके द्वारा उनकी निन्दा, दुर्वचनों का प्रयोग और शाप — जिस (नृप) शरीर को धारण कर उन्होंने इन्हें वंचित किया, उसी शरीर को वे धारण करें। नारी-विरह से दुखी हों। इन्हें कपि की आकृति दी, अतः कपि ही उनकी सहायता करें (१।१३६।४-१।१३७।८)। शाप को सहर्ष स्वीकार कर प्रभु द्वारा इनकी विनती। माया की प्रबलता को खींच लेना। (माया को नहीं। पूरी माया खींच लेने से मोक्ष। वि०।) तब वहाँ न रमा, न राजकुमारी। ये भीत, आर्त्त, हरि के शरणागत। उनके प्रति अपने व्यवहार से पाप-ग्लानि-पीड़ित (१।१३७-१।१३८।४)। मनःशान्ति के लिए हरि का इन्हें शंकर-शतनाम जपने का आदेश। फिर कभी इन्हें माया के न व्यापने का आश्वासन दे, अनेक प्रकार से प्रबोध कर, वे अन्तर्धान। रामगुणगान करते हुए इनका सत्यलोक-गमन (१।१३८।५-१।१३८)। मार्ग में इन्हें प्रसन्नचित्त देख शिव-गणों का आर्त्त होकर आत्मपरिचय देना। इनसे शापानुग्रह की प्रार्थना। इनका कथन— वे निशाचर होकर विश्व-विजय करेंगे। हरि के हाथों उनकी मृत्यु होगी। मुक्त हो जायेंगे (१।१३६।१-८)। [मोह-प्रसंग सं० शि० पु० पृ० ७४-८० के अनुरूप। मुख्य भेद — वहाँ विश्वमोहनी का नाम श्रीमती। विष्णु को शाप उनके लोक में जाकर। शिव-माहात्म्य और शिव-शतनाम समझने के लिए हरि का इन्हें ब्रह्मा के पास भेजना।]

इनका शाप सत्य करने के लिए पराशक्तिसहित हरि के अवतार ग्रहण करने की आकाशवाणी (१।१८७।६)। पुष्पवाटिका में सीता के मन में राम-दर्शन की आकुलता। इनके वचन का स्मरण कर प्रेमोदय (१।२२६)। [पुष्पवाटिका में पति के प्रथम दर्शन होने का सीता से इनका पहले ही कथन। वि०, मा० पी० १।२२६ नोट १।] 'नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा।।' — गिरिजा-आशिष सीता को (१।२३६।८)। सीता-राम-विवाह की लग्नपत्रिका इनके हाथ ब्रह्मा द्वारा प्रेषित (१।३१२।७)। दशरथ द्वारा अन्य श्रेष्ठ मुनियों के साथ ये भी पूजित (१।३३०-१।३३१।१)। जयन्त को विकल देख इनका उसे राम के पास भेजना (३।२।६-१०)।

राम को विरहवश देख इन्हें विशेष सोच — इनके शाप को अंगीकार कर प्रभु दुःख सह रहे हैं। वीणा लेकर रामचरित गाते हुए इनका प्रभु के निकट जाना। इन्हें दण्डवत् करते देख उठाकर प्रभु का हृदय से लगाना। निकट बैठाना। लक्ष्मण द्वारा इनका पद-प्रक्षालन (३।४१।५-११)। प्रभु को प्रसन्न जान इनकी वर-याचना— यद्यपि प्रभु के अनेक नाम, श्रुति के अनुसार सब एक-से-एक बढ़कर, फिर भी 'राम'-नाम सब नामों से श्रेष्ठ और अघनाशक हो। प्रभु-भक्ति राका-रजनी, राम-नाम सोम और अन्य नाम तारागण होकर भक्तों के हृदयाकाश में निवास करें (३।४१-३।४२ क)। प्रभु को प्रसन्न देख जिज्ञासा— उन्होंने इन्हें विवाह क्यों नहीं करने दिया? (३।४२।ख-३।४३।३)। प्रभु-कथन — भक्त शिशु बालक, ज्ञानी प्रौढ़ तनय। भक्त के वे सदैव रक्षक। नारी मोह-सेना में सबसे प्रबल, मायाविनी, अवगुण-मूल, दुख-खानि। इसीलिए उनका उन्हें विवाह से रोकना (३।४३।४-३।४४)। सुनकर ये प्रेम-पुलकित। सन्त-लक्षण-सम्बन्धी इनकी जिज्ञासा (३।४५।१-५)। प्रभु द्वारा सन्त-लक्षण-कथन (३।४५।६-३।४६।८)। प्रभु-चरणों में बारंबार नमन कर इनका ब्रह्मलोक-गमन (३।४६।छं०)।

कुम्भकर्ण का रावण से कथन — इनसे जो ज्ञान प्राप्त, उसकी बात कहने का अब समय नहीं (६।६३।६)। [एक रात्रि को वन में कुम्भकर्ण से इनकी भेंट। इनका कथन — देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य-अवतार ग्रहण करके विष्णु रावणादि का वध करेंगे। अ० रा० ६।७।५६-६५।] कुम्भकर्ण-वध के बाद इनका युद्धस्थल पर आना। आकाशस्थित रहकर प्रभु का वीररसयुक्त गुणगान करना। शीघ्र रावण-वध की विनती कर प्रस्थान (६।७१।१०-१२)। प्रभु को नागपाश-मुक्त करने के लिए इनका गरुड़ को भेजना (६।७४।१०)। रावण-वध के बाद राम को निहार कर सनकादि के साथ ये भी प्रेममग्न (६।१०५।२-३)। राम-राज्य में राम-दर्शन के लिए नारदादि का प्रतिदिन अयोध्या-आगमन। नगर देख वैराग्य-विस्मरण (७।२७।१-२)। अवध में राम के नित नये चरित देख इनका ब्रह्मलोक में जाकर सब कथाएँ कहना। इनसे प्रभुगुणगान सुनकर सनकादि को भी समाधि विस्मृत। उनके द्वारा इनकी सराहना (७।४२।४-८)। पुर के बाहर भरतादि के साथ बैठे राम के पास वीणा लिए, उनका यशोगान करते हुए इनका आगमन। प्रभु-गुण-वर्णन कर, उन्हें हृदय में धारण कर, प्रस्थान (७।५०-७।५१)। इनके द्वारा गरुड़-प्रेषण का शिव-कथन उमा से (७।५८।४)। गरुड़ का संशय सुनकर ये दया-द्रवित। इनका कथन — वे प्रभु-मायावश महामोह के शिकार। उन्हें ब्रह्मा के निकट जाने का इनका परामर्श (७।५६।३-७।५६)। भुशुण्डिकथित मूल रामायण में उल्लेख — इनके मोह का (७।६४।८), प्रभु के साथ इनके संवाद का (७।६६क)। मोह आदि के

वशीभूत होनेवाले आत्मवादी मुनियों के उदाहरण-स्वरूप इनका भी उल्लेख (७।७०-६-८)। शिव सनकादि के साथ इनका भी मत कि 'करिअ राम पद पंकज नेहा' (७।१२२।१२-१३)। नारदादि के प्रभु-यश-वर्णन करने का कथन (४।३०।छं०, ५।१६।५)।

मूल शब्द — १।३।३, १।१८।५, १।२६।३, १।६६।५, १।६८।२, १।७०, १।७१।८, १।७२।३, १।७३।१, १।७८।६, १।७८, १।७९।३, १।८०।७, १।८१।६, १।८९, १।९७।१, १।९७, १।९८।१, १।९८, १।१२४।५, १।१२४।६, १।१२७।१, १।१२७।५, १।१२७, १।१२८।७, १।१२९।३, १।१२९।७, १।१३०, १।१३१।६, १।१३२, १।१३३।८, १।१३४।३, १।१३५।१, १।१३८, १।१३९।२, १।१३९।४, १।१८७।६, १।२२९, १।२३६।८, १।३१२।७, ३।२।९, ३।४१।५, ३।४१।८, ३।४१, ३।४२।६, ३।४२ ख, ३।४३।१, ३।४५।४, ३।४६।छं० (२), ४।३०।छं० (नारदादि), ५।१६।५ (नारदादि), ६।६३।६, ६।१०५।२, ७।२७।१ (नारदादि), ७।४२।४, ७।४२।७, ७।५०, ७।५१, ७।५८।४, ७।५९।४, ७।६४।८, ७।६६क, ७।७०।६, ७।१२२।१२।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **त्रिकालग्य** (त्रिकालज्ञ) — १।६६।

दीनदयाला (राम, शिव, विष्णु, कपिल भी) — १।१३९।४।

देवरिषि (देवर्षि) — १।६८।४, १।६८।७, १।१२५।२, १।१२५।७, १।३३०, ६।७१।१०, ६।७४।१०, ७।५९।३, ७।५९।

रिषिराई (ऋषिराज) — १।१३३।४।

नारायन (नारायण) — भगवान् के अवतार।

[धर्म की पत्नी दक्षसुता मूर्त्ति के गर्भ से भगवान् का ऋषिश्रेष्ठ शान्तात्मा नर और नारायण के रूप में अवतार। दोनों के द्वारा आत्मतत्व का साक्षात्कार करनेवाले भगवदाराधनरूप कर्म का उपदेश। स्वयं तदनुरूप आचरण करते हुए बदरिकाश्रम में तप। भा० ११।४।६। तपस्वी मार्कण्डेय पर अनुग्रह करने के लिए प्रकट दोनों का स्वरूप — चतुर्भुज। एक शुक्लवर्ण, मृगचर्मधारी, दूसरे श्यामवर्ण, वल्कलधारी। हाथों में कुश, कमण्डलु, दण्ड। गले में तीन-तीन सूत के यज्ञोपवीत, कमलगट्टे की माला। विद्युत् की-सी कान्ति। वेद धारण किये हुए। मानो मूर्त्तिमान् तप। भा० १२।८।३२-३४। इनसे याचित वर के फलस्वरूप मार्कण्डेय का माया-दर्शन। भा० १२।९। कृष्ण और अर्जुन के रूप में इन्हीं दोनों का अवतार। भा० १०।८९।५९-६०। महा० का आरम्भ इन्हीं की वन्दना से। आदि० १।१। वि० प० ६० में तुलसी द्वारा वन्दना — नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यानपारायणं ज्ञानमूलम्। अखिल संसार उपकार-कारन सदयहृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम्।। ··· पुन्यवन सैल-सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीनपद्मासनं एकरूपं। ··· दरशनारत दास त्रसित माया-पास त्राहि हरि त्राहि हरिदास कष्टी।। ···]

जिस प्रकार नर-नारायण सदा एक साथ, एक ध्येयनिष्ठ सु-भ्राता, उसी प्रकार राम-नाम के दोनों अक्षर भी सु-भ्राता। नर-नारायण का जग-कल्याण के लिए तप, भक्तों की विशेषरूप से रक्षा, उसी प्रकार राम-नाम के जप से सामान्यतः जगत् का और विशेषरूप से जापक का कल्याण (१।२०।५)। राम-लक्ष्मण का परिचय जानने को उत्सुक विप्र-वेशधारी हनुमान् की जिज्ञासा— वे क्षत्रिय-रूप में नर-नारायण तो नहीं? (४।१।७, १०)।

मूल शब्द — १।२०।५, ४।१।१०।

नारी तपपुंज — तपःपुंज स्वयंप्रभा।

[(१) पूर्वकाल में विश्वकर्मा की हेमानामक एक दिव्यरूपिणी कन्या। उनके नृत्य से प्रसन्न शंकर द्वारा उन्हें रहने के लिए विशाल दिव्य नगर प्रदान। यह विन्ध्यगिरि की एक गुहा में। यहाँ सहस्र वर्षों तक उनका वास। ये (स्वयंप्रभा) उनकी सखी। दिव्यनामक गन्धर्व की पुत्री। ब्रह्मलोक जाते समय हेमा का इन्हें इस निर्जन स्थान में रहकर तप करने का परामर्श। उनका कथन — रामावतार में राम की भार्या को ढूँढ़ते हुए वानरों के यहाँ आने पर ये उनका सत्कार करें। राम की वन्दना और स्तुति करने पर इन्हें विष्णु के नित्य धाम की प्राप्ति होगी। तब से ये यहाँ वल्कल धारण कर, मोक्ष की इच्छा से योगस्थित होकर विष्णु की उपासना में रत। अ० रा० ४।६।३१, ३४, ४०; ४।६।५१-५७।

(२) दानवों के विश्वकर्मा मय का एक सहस्र वर्षों तक तप। ब्रह्मा से वररूप में उसे शुक्राचार्य का शिल्प-वैभव प्राप्त। उसके द्वारा विन्ध्य-गुहा में (वह गुहा ऋक्षविल। वि० को 'लंका'।) विशाल वन और सुवर्णमय

भवन का निर्माण। कुछ काल तक यहाँ वास। फिर नृत्य-गीत-विशारदा अप्सरा हेमा के प्रति उसके आसक्त होने पर इन्द्र द्वारा उसका संहार। ब्रह्मा द्वारा कामभोगोंसहित यह महल और वन हेमा को प्रदान। हेमा इनकी (स्वयंप्रभा की) प्रिय सखी। उनके कहने पर इनके द्वारा विशाल भवन का संरक्षण। ये चीर-कृष्णाजिना तापसी। अपनी प्रभा से दीप्त। अब वृद्धा। वा० रा० ४।५०।३६-४१; ४।५१।१०-१८; ४।५२।१८,३१।)]

एक गिरि-गुहा में प्रवेश करने पर सर-उपवन के निकट एक सुन्दर भवन में हनुमदादि को इनके दर्शन। उनका वृत्तान्त जानकर उन्हें फलाहार और जलपान करने की इनकी अनुमति (४।२४-४।२५।२)। मज्जन-पान-आहार करके निकट आये वानरों को इनका आत्मकथा सुनाना। सीता की प्राप्ति का भविष्य-कथन। शीघ्र राम के निकट जाने की उत्सुकता व्यक्त करना। विवर से निकलने के लिए वानरों को आँखें मूँदने का इनका आदेश (४।२५।३-५)। इनका राम के निकट जाकर उनके चरणों में नमन। नाना प्रकार से विनती कर अविरल भक्ति की प्राप्ति। हृदय में रामचरण रख प्रभु की आज्ञा से बदरिकाश्रम-गमन (४।२५।७-४।२५)। [मानस का यह प्रसंग अ० रा० ४।६।३४-८४ पर आधृत। अन्तर इनता ही कि आँखें खोलने पर वानर समुद्र के किनारे नहीं, गुहा के बाहर पूर्ववर्ती वन में स्थित।] ·

मूल शब्द – ४।२४।

निमि – एक राजर्षि।

वैवस्वत मनु > इक्ष्वाकु > विकुक्षि, निमि, दण्डक आदि सौ पुत्र। भा० ९।६।४।

[इनके द्वारा सहस्र वर्षों में समाप्त होनेवाला यज्ञ आरम्भ। ऋत्विजरूप में गुरु वसिष्ठ का वरण। यज्ञ के लिए इन्द्र द्वारा वसिष्ठ का पहले ही वरण, अतः इन्द्र-यज्ञ-समाप्ति तक प्रतीक्षा करने का इन्हें वसिष्ठ-आदेश। जीवन की क्षणभंगुरता का विचार कर इनके द्वारा वसिष्ठ के आने तक अन्य ऋत्विजों का वरण (वा० रा० एवं वि० पु० में गौतम का)। लौटकर, इनका यज्ञ होते देख, इसे अपनी अवज्ञा मान, वसिष्ठ का इन्हें देहपात का शाप। इनके द्वारा भी वसिष्ठ को वही शाप। दोनों विदेह, वायुरूप।

यज्ञ में आये मुनियों का इनकी देह को सुगन्धित वस्तुओं में सुरक्षित रखना। यज्ञसत्र-समाप्ति पर देवताओं से ऋषियों की इन्हें पुनः जीवित करने की प्रार्थना। मुक्त होकर पुनः देह-बंधन में बँधना इन्हें अस्वीकार। इन्हें देवताओं का वरदान – अशरीरी रहकर ये इच्छानुसार प्राणियों के नेत्रों में निवास करें। पलकों के उठने-गिरने से इनके अस्तित्व का पता चलेगा (विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम्। उन्मेषनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः।। भा० ९।१३।११) राजाविहीन राज्य में अराजकता फैलने के भय से महर्षियों द्वारा इनके शरीर का मन्थन। उस मन्थन से एक कुमार उत्पन्न। ऐसे अद्भुत जन्म का हेतु होने के कारण वह 'जनक', विदेह से उत्पन्न होने के कारण 'वैदेह', मन्थन से उत्पन्न होने के कारण 'मिथिल'। (वि० पु० एवं वा० रा० में 'मिथि'।) उसका मिथिलापुरी बसाना। (जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः। मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता।। भा० ९।१३।१३।) उसके वंशज 'मैथिल'। भा० ९।१३।१-१३; वि० पु० ४।५।१-२३; वा० रा० ७।५५, ७।५७-१०-२१।]

'भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।' (१।२३०।४)।

निषाद – निषद्यते ग्रामसीमायाम्, यद्वा निषीदति पापमत्र। (ग्रामसीमा में निवास करनेवाले, अथवा जिनमें पाप का निवास।) चण्डाल; वेनशरीरोद्भव जाति विशेष; धीवर विशेष। ह० को०।

[(१) मनु के अनुसार इस जाति की सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से। (ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते। निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते।। मनुस्मृति १०।८।) यह जाति 'पारशव' नाम से भी प्रसिद्ध। मिताक्षरा आदि के मत से इस जाति के मनुष्य मत्स्यजीवी, अतः उनका दूसरा नाम धीवर। क्रूरकर्मा, पापी होने के कारण निषाद। वि० को०।

(२) ऋषियों द्वारा राजा वेन के मृत शरीर की जाँघ का मन्थन। दे० 'बेन'। उसमें से एक बौना पुरुष उत्पन्न। वह कौए के समान काला, उसके सभी अंग छोटे, जबड़े बड़े, नाक चपटी, नेत्र लाल, केश ताँबे के-से रंग के। उससे ऋषियों का कथन– निषीद (बैठ जा)। इसी से उसका नाम निषाद। उसका जन्म लेते ही राजा वेन के भयंकर पापों को अपने ऊपर लेना, इसलिए उसके वंशज 'नैषाद' नाम से प्रसिद्ध। उसका वन-पर्वतों में निवास। भा० ४।१४।४३-४६।)]

मानस में यह शब्द केवट का समानार्थक। इसका प्रयोग निषाद जाति एवं निषादराज गुह के लिए। दे० 'गुह'।

निसठ – एक बली वानर। (वा० रा० में यह नाम नहीं)

रावण-दूत शुक द्वारा मयंद (मैन्द) आदि वानर-वीरों के साथ इनका भी नामोल्लेख और कथन – ये सब सुग्रीव के समान। राम-कृपा से बलशाली। त्रिलोक को तृण-तुल्य समझनेवाले (५।५४-५।५५।२)।

मूल शब्द – ५।५४।

निसिचरि एक – दक्षिण समुद्र में रहनेवाली छायाग्राहिणी राक्षसी सिंहिका। वा० रा० ५।१।१८४, अ० रा० ५।१।३५। (वा० रा० ४।४१।२६ में एक अन्य छायाग्राहिणी दानवी का नाम अंगारका।)

हिरण्यकशिपु ~ कयाधु > सिंहिका ~ विप्रचित्ति > राहु। भा० ६।१८।१२-१३।

इसका सागर में वास। आकाशचारी जीवों की जल में छाया देख छाया को पकड़ना, और जीवों को (खींचकर) खा जाना (५।३।१-३)। इसका हनुमान् से भी यही कपट करना। हनुमान् द्वारा इसका संहार (५।३।४-५)।

मूल शब्द – ५।३।१।

नील – वानर-यूथपति।

[ये नीलांजन-राशि-सदृश। महाकाय, तेजस्वी, वीर्यवान्। रामावतार में अग्नि के अंश से उत्पन्न। वा० रा० १।१७।१३, ३२; ४।३९।२२। इनकी सृष्टि राम की सहायता के लिए। वा० रा० ७।३६।४६।]

(मानस में दो स्थानों को छोड़कर सर्वत्र नील और नल के नाम एक ही चौपाई या दोहे में साथ-साथ। दो अपवाद – (१) नील ४।२३।१ में, नल ४।२२ में। (२) ७।१७ क में नल का नाम नहीं, केवल 'नीलादि', लेकिन इसमें नल का भी अन्तर्भाव।) मानस में नील-सम्बन्धी विवरण के लिए दे० 'नल'।

मूल शब्द – ४।२३।१, ५।५४, ५।६०।१, ६।१।५, ६।१, ६।२।१, ६।३।७, ६।४३।२, ६।५०।२, ६।६५।६, ६।७५, ६।६६।छं०, ६।९८।६, ६।११८ ख, ७।१७ क (नीलादि)। नीला– ६।२३।५, ६।७३।८, ६।९८।३, ६।१०६।२, ७।८।१।

नील सैल – एक पर्वत का नाम।

[यह आठ वर्ष-पर्वतों में एक। जम्बूद्वीप के मध्यवर्ती इलावृत्त वर्ष (जिसके मध्य में मेरु पर्वत) के उत्तर में स्थित रम्यक वर्ष का सीमा-पर्वत। दो हजार योजन चौड़ा। पूर्व-पश्चिम में इसका विस्तार। भा० ५।१६।६-८। (भा० ५।१६।१६ में भारतवर्ष के एक पर्वत का नाम भी नील।) महा० में यह सुदर्शन द्वीप (जम्बूद्वीप) के छः वर्ष-पर्वतों में एक। यह वैदूर्यमणिमय। मेरुगिरि के उत्तर में स्थित। महा० भी० ६।३-४, ८-१०। भद्राश्व-वर्ष और रम्यक वर्ष के मध्य में। महा० सभा० २८।६ के बाद दा० पा० पृ० ७४६।]

उत्तर दिशा में सुमेरु गिरि से बहुत दूर इस पर्वत की स्थिति। यह अत्यन्त सुन्दर। इसके चार सुवर्णमय रमणीय शिखर जो शिव के मनभावने। एक शिखर पर वट, दूसरे पर पीपल, तीसरे पर पाकर और चौथे पर आम का विशाल वृक्ष। यहाँ मणिमय सोपानों से युक्त एक सुन्दर सरोवर जिसके निर्मल जल में हंसों का कलरव, विविधवर्णी पद्मों पर भ्रमरों का गुंजन (७।५६-७-७।५६)।

सत्ताईस कल्पों से यहाँ रामभक्त काकभुशुण्डि का आश्रम। उनके प्रभाव से यह पर्वत और यहाँ से एक योजन दूर तक का सम्पूर्ण परिवेश अविद्या-माया-जन्य गुण-दोषों से मुक्त (७।५७।१-३, ७।११३ ख, ७।११४।१०)। पीपल वृक्ष के नीचे भुशुण्डि का ध्यान, पाकर तरु-तले उनका जप-यज्ञ, आम्रवृक्ष की छाया में मानसी पूजा, वट के नीचे हरि-कथा-प्रसंग-चर्चा, राम-चरित्र-गान। अनेक विहंगों और निर्मल-मति हंसों का एकत्र होकर सुनना (७।५७।४-६)। एक बार यहाँ आकर यह कौतुक देख शिव आनन्द-मग्न। मरालरूप में कुछ काल तक यहाँ वास कर उनके द्वारा राम-गुण-श्रवण (७।५७।१०-७।५७)। गरुड़ के मोह-नाश के लिए शिव का उन्हें इस गिरि पर भुशुण्डि के पास भेजना (७।६२।१-५)। गरुड़ का यहाँ आना। इस शैल के दर्शन होते ही मन प्रसन्न, माया-मोह-शोच नष्ट। सरोवर में स्नान, जलपान कर उनका वट-तले भुशुण्डि के पास गमन (७।६३।१-३)। इस पुण्य पर्वत पर गरुड़-भुशुण्डि-संवाद जिससे गरुड़ का मोह-नाश। दे० 'काकभुशुण्डि'। यह राम के श्याम शरीर का उपमान (६।१०३।छं०२)। इसका शिखर शूकर (कालकेतु) की विशालता का उपमान (१।१५६)।

मूल शब्द – ७।५६।७।

पर्याय — **गिरिनीला** — ७।६२।२।

नील गिरि — ६।१०३।छं० २।

नील महीधर — १।१५६।

नैमिष — नैमिषारण्य। प्राची दिशा में एक पवित्र तीर्थ। महा० वन० ८७।६। यहाँ निमिष मात्र में भगवान् द्वारा दानव-सेना का संहार, अतः यह नाम। महा० आदि० १।१ पाद १।

[कलिभय-भीत ऋषियों को एक मनोमय चक्र देकर ब्रह्मा का कथन — वे उस चक्र का अनुसरण करें। जहाँ उसकी नेमि (घेरा) विशीर्ण हो, उस स्थान को पवित्र समझें। वहाँ रहने पर कलिभय-मुक्ति। (जहाँ नेमि विशीर्ण, उस स्थान की आख्या नैमिषारण्य।) मा० पी० १।१४३।२ नोट २। यहाँ महर्षि शौनक द्वारा द्वादश वर्षव्यापी सत्र का अनुष्ठान। यहीं ऋषियों की प्रेरणा से उग्रश्रवा सौति द्वारा महाभारत-कथा का आरम्भ (और सम्पूर्ण कथा सुनाना)। महा० आदि० १।१, १।९-२५।

महा० वन० में — पृथीव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि नैमिषे। ८४।६१। यहाँ ब्रह्मासहित देवताओं का नित्य वास। ८४।५९। पुण्यसलिला गोमती का प्रवाह। ८७।७। मासभर कल्पवास का माहात्म्य। ८४।६१।]

शतरूपासहित स्वायंभुव मनु का इस वन की ओर प्रस्थान। यह श्रेष्ठ तीर्थ। अति पुनीत। साधकों के लिए सिद्धिदायक। मुनि-सिद्ध-समाज का यहाँ वास (१।१४३।२-३)। गोमती-तट पर जाकर मनु-शतरूपा का स्नान (१।१४३।५)। सिद्ध-मुनि-ज्ञानियों का आकर उनसे मिलना। उन्हें सादर सब तीर्थ कराना (१।१४३।६-७)। [यहाँ भिन्न-भिन्न देवताओं के अलग-अलग पुण्य-तीर्थ। देवताओं की यज्ञभूमि, सूर्य का यज्ञपात्र विद्यमान। महा० वन० ८७।६-७।] यहाँ सन्त-समाज में उनके द्वारा पुराण-श्रवण (१।१४३।८)। [उनका तप, द्वादशाक्षर मन्त्र-जप, भगवद्दर्शन, वरप्राप्ति, सब यहीं।]

मूल शब्द — १।१४३।२।

नौमी तिथि — शुक्ल या कृष्ण पक्ष की नवीं तिथि।

[चैत्र शुक्ल नवमी को राम-जयन्ती-दिवस। यह रामनवमी के नाम से प्रसिद्ध। वा० रा० १।१८।८, अ० रा० १।३।१४, भु० रा० पूर्व० १०।२, महा० सभा० ३८।२९ के बाद दा० पा० पृ० ७९४। सू० सा० ६।१७ में भी राम-जन्म की यही तिथि। 'तिथिर्धन्या च नवमी यस्यां जातो हरिः स्वयम्'। वि० १।३४।५-६ व्या०। अगस्त्यसंहिता के अनुसार रामनवमी का व्रत भुक्ति-मुक्ति का साधन। इस सर्वोत्तम व्रत से मनुष्य ऐसा हो जाता है मानो साक्षात् राम हो। ध० इ० च० पृ० ३४। इस दिन वैष्णव तीर्थों में उत्सव, कई तीर्थों में मेला, अयोध्या में विशेष समारोह।]

इस दिन अयोध्या में (१) भगवान् राम का प्राकट्य, (२) तुलसी द्वारा रामचरित-मानस-रचना का (सं० १६३१ में) आरम्भ (१।३४।५-६, १।१९१।१)। [इसके साथ भौमवार होने से सर्वसिद्धिप्रद योग। वि० १।३४।५-६ व्या०।]

मूल शब्द — १।३४।५, १।१९१।१।

पंचबटी — शापग्रस्त दण्डक वन में एक पवित्र स्थान।

[यह अगस्त्यागश्रम से कुछ दूर, गोदावरी के निकट। नित्य पुष्पित, नाना विहंगसेवित वनस्थली से अत्यन्त रमणीय। वा० रा० ३।१३।१७-२२। यहाँ पाँच दिशाओं में पंचवट स्थापित — अश्वत्थ (पीपल), बिल्व (बेल), वट, धात्री (आँवला) और अशोक । वि० ३।१३।१५ व्या०। हनुमन्नाटक ३।२२ में — एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी। गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचंचत्पुटी दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी।। मा० पी० ३।१३।१५ नोट १।]

राम की जिज्ञासा पर अगस्त्य-कथन — यह स्थान परम मनोहर, पावन। राम के निवास-योग्य। मुनियों पर दया कर राम यहाँ रहें और मुनि-शाप-ग्रस्त दण्डक-वन को पवित्र करें (३।१३।१५-१७)। [अपि चात्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि।। वा० रा० ३।१३।२०।] यहाँ गोदावरी के निकट कुटी बनाकर राम का वास (३।१३।१८-३।१३)। राम के यहाँ रहने से मुनि निर्भय और सुखी। प्रकृति प्रफुल्लित (३।१४।१-४)। शूर्पणखा का यहाँ आना (३।१७।४)। 'पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुरमुनि सुखदायक' (३।२१।४)। [यहाँ निवास-काल में शूर्पणखा-कर्ण-नासिका-छेदन, खर-दूषण-त्रिशिरा-वध, सीता-हरण।] भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में

राम के यहाँ वास और मुनियों के त्रास-हरण का उल्लेख (७।६६।२)।

मूल शब्द — ३।१३।१५, ३।१३।१८, ३।१७।४, ३।२१।४, ७।६६।२।

पंपा सर — एक झील का नाम। (पंपा = दक्षिण की एक नदी जो ऋष्यमूक पर्वत के समीप थी; इस नदी के पास का एक पुराना नगर; इस नगर के पास की एक झील।) बृ० को०।

शबरी के कथनानुसार राम का यहाँ आना। यह सर अति सुन्दर। इसमें अगाध निर्मल जल, मछलियाँ। विविधवर्णी कमल। उनके पत्तों से जल आच्छादित। भ्रमरों का गुंजन। राजहंस, चक्रवाक आदि का कलरव। चार सुन्दर घाट। जहाँ-तहाँ भाँति-भाँति के पशुओं का जल-पान (३।३६।११, ३।३९।६ - ३।४०।४)। इसके समीप मुनियों के आश्रम। चतुर्दिक् नव पल्लवों, पुष्पों से शोभित, फल-भार से झुके नाना प्रकार के वृक्षों का वन। भ्रमरों का गुंजन, कोकिलों का कूजन। सदा शीतल मन्द सुगन्ध समीर (३।४०।५-३।४०)। इस मनोहर सर को देख राम का इसमें मज्जन। तरु-छाया-तले अनुजसहित बैठना (३।४१।१-२)।

मूल शब्द — ३।३६।११, ३।३९।६।

पर्याय — **तलावा** — ३।४१।१।

ताल — ३।४०।५।

परसुराम — भगवान् के दशावतार में षष्ठ।

ब्रह्मा > भृगु > च्यवन > और्व > ऋचीक ~ सत्यवती > जमदग्नि ~ रेणुका > परशुराम। महा० आदि० ६६।४१, ४४-४८; वन० ११५।४३, ११६।२-४।

[त्रेता एवं द्वापर के सन्धिकाल में आविर्भाव। महा० आदि० २।३। धनुर्वेद एवं संपूर्ण विद्याओं के पारंगत। गन्धमादन पर्वत पर तप। शिव से अनेक प्रकार के अस्त्र और अकुण्ठ धारवाली तेजस्वी कुठार प्राप्त। अग्नि-सी उद्दीप्त कुठार के कारण ये जगत् के अप्रतिम वीर। महा० शा० ४९।३२-३४। शिव की प्रसन्नता के लिए इनका दानवों से युद्ध करके उन्हें परास्त करना। शिव से इन्हें समस्त दिव्यास्त्रों एवं अन्य मनोवांछित वरों की प्राप्ति। महा० कर्ण० ३४।१४३-१५६।

हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन द्वारा जमदग्नि के आश्रम से कामधेनु का बलात् हरण। सुनकर इन्हें क्रोध। अर्जुन की सेना का संहार और उनका वध। उनके दस हजार पुत्रों का भय से पलायन। कामधेनु को वत्ससहित लौटाकर इनका पिता को सौंपना। सब सुनकर पिता को दुःख। सार्वभौम राजा का वध ब्रह्महत्या-सदृश। अतः पितृ-आदेश से पाप-नाश के लिए भगवान् का स्मरण करते हुए इनके द्वारा एक वर्ष तक तीर्थाटन। उन्हीं की आज्ञा से माता और भाइयों का वध। उनके कहने पर इनकी वर-याचना — माता और भाई जीवित हो जायें, उनके वध का इन्हें स्मरण भी न रहे।

एक दिन इनकी अनुपस्थिति में अर्जुन-पुत्रों का आना और जगदग्नि का सिर काटकर ले जाना। शोक-क्रोध-पीड़ित होकर इनका क्षत्रिय-नाश का अभियान। महिष्मती नगरी में जाकर अर्जुन-पुत्रों का शिरश्छेद। उन शिरों का समूह पर्वत-सदृश। उनसे रक्त की भयंकर नदी प्रवाहित। इक्कीस बार इनके द्वारा क्षत्रिय-संहार। समन्तक क्षेत्र में उनके रक्त से आप्लावित पाँच तालाबों का निर्माण। पिता का मस्तक लाकर धड़ से जोड़ सर्वदेवमय भगवान् का भजन। यज्ञान्त स्नान कर ये पापमुक्त। जगदग्नि को स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर की प्राप्ति। भा० ९।१५-१६। अथर्ववेद में भी कार्तवीर्य से इनके युद्ध और उनके वंश के पराभव का संक्षिप्त निर्देश प्राप्त। प्रा० च०।

समन्तक क्षेत्र में इनके द्वारा रक्तांजलि से पितरों का तर्पण। उनसे क्षत्रिय-नाश के पाप से मुक्त होने की वर-याचना। शेष क्षत्रियों के संहार से विरत होने, उन्हें क्षमा कर देने का इन्हें पितरों का आदेश। महा० आदि० २।३-१०।

इनके द्वारा अश्वनेध यज्ञ का अनुष्ठान। समाप्ति पर सारी पृथ्वी का कश्यप मुनि को दान। कुछ क्षत्रियों को बचाये रखने के उद्देश्य से कश्यप द्वारा ये पृथ्वी से निष्कासित। इनके लिए दक्षिण सागर का स्थान खाली करके 'शूर्पारक' देश का निर्माण करना। महा० शा० ४९।६३-६६। अन्यत्र — समुद्र को पीछे हटाकर इनका महेन्द्रगिरि पर निवास। महा० द्रोण० ७०।१६-२३; वा० रा० १।७५।२५-२६। रात को कभी पृथ्वी पर न रहने की कश्यप से प्रतिज्ञा। वा० रा० १।७६।१४।

कर्ण इनके शिष्य। उनके ब्राह्मण न होने का भेद खुलने पर इनका शाप — ठीक समय पर उन्हें ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं होगा। महा० कर्ण० ४२।४-६।

भीष्म के ये गुरु। बचपन में उन्हें इनसे चार प्रकार के धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त। शरणागत काशिराज-कन्या अम्बा को लेकर कई दिनों तक उनसे इनका घोर द्वन्द्व युद्ध। शक्ति और ब्रह्मास्त्र के प्रयोग के बावजूद, ये उन पर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने में असमर्थ। भीष्म के पास निश्चित विजय का साधन प्रस्वापनास्त्र, जिसके ज्ञान से ये अनभिज्ञ। नारद और देवताओं के कहने पर उन्हें उसके प्रयोग से विरत होते देख सहसा इनका कथन — भीष्म ने इन्हें जीत लिया। पितरों और ऋषियों के उद्योग से युद्ध बन्द। ये भीष्म के पराक्रम से संतुष्ट। पितरों का इन्हें अस्त्र त्यागकर तप करने का आदेश। महा० उद्यो० १७८-१८५। महेन्द्रगिरि पर इनकी तपस्या। महा० आदि० ६४।४; वा० रा० १।७५।२६। वहाँ आये द्रोण की प्रार्थना पर उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र, धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र का ज्ञान प्रदान करना। महा० आदि० १२९-५०।६७, १६५।८-१३।

राम द्वारा शिव-धनु-भंजन का समाचार सुन अपना वैष्णव धनुष लेकर इनका महेन्द्रगिरि से आना। राम को वह धनुष चढ़ाने की चुनौती। (दे० 'पिनाक', अनुच्छेद ३) इनसे धनुष-बाण ले, प्रत्यंचा चढ़ाकर, राम द्वारा इनकी वैष्णवी शक्ति का आहरण। राम की ईश्वरता का इन्हें विश्वास। (उसी समय इन्हें पूर्व वृत्तान्त का स्मरण — बाल्यावस्था में चक्रतीर्थ में इनका तप। प्रसन्न विष्णु का वरदान — ये उनके चिदंश से युक्त हों। कार्तवीर्य का वध करके, इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर, सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप को देकर ये शान्ति-लाभ करें। कल्पान्तजीवी हों। त्रेतायुग में वे अपनी परम शक्ति-सहित 'राम'-रूप में अवतार लेंगे। इन्हें उनके दर्शन होंगे और वे इन्हें दिया हुआ अपना तेज पुनः ग्रहण कर लेंगे। अ० रा० १।७।२०-२८। इनके आग्रह पर राम द्वारा इनकी अप्रतिहत गमन-शक्ति की रक्षा; अमोघ दिव्य वैष्णव बाण से इनके तप-अर्जित पुण्यलोकों का नाश। वा० रा० १।७४-७६।

वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया को मुख्यतः दक्षिण भारत में इनकी जयन्ती मनायी जाती है। इनके कुछ मंदिर भी हैं, विशेषतः कोंकण में। ऋ० (१०।११०) की सर्वानुक्रमणी (पृ० ४२) में जगदग्नि ऋषि या उनके पुत्र राम का उल्लेख। ध० इ० च० पृ० ३७, ४८६।]

इनका क्रोध मानस-निःसृत कीर्त्तिरूपिणी सरयू की घोर धार (१।४१।४)। इनके गर्व का उल्लेख (१।२६०।५)। शिव-धनु-भंग का समाचार सुन इनका आगमन। सब राजा भीत (१।२६८।२-३)। [वा० रा० १।७४-७६, अ० रा० १।७ में जनकपुर से बरात के विदा होने के बाद मार्ग में इनका आगमन।] इनका स्वरूप — गौर शरीर पर विभूति, गले में यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष की माला। सिर पर जटा, उन्नत ललाट पर त्रिपुण्ड। मृगछाला धारण किये हुए। क्रोध से मुख कुछ लाल, नेत्र रक्तिम। कुटिल भृकुटी। कमर में वल्कल और तरकश। हाथ में धनुष-बाण, कन्धे पर कुठार। मुनि-वेश में मानो साक्षात् वीर रस (१।२६८।४-१।२६८)। इनके कराल वेश से भयभीत राजाओं का उठकर दण्डवत्-प्रणाम करना। इनकी स्वाभाविक दृष्टि भी राजाओं के लिए मृत्यु-सूचक। जनक और सीता, विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण द्वारा इनका यथायोग्य सम्मान। सीता-राम-लक्ष्मण को आशीर्वाद-प्राप्ति। राम-रूप देख इनके नेत्र थकित (१।२६९।१-८)। जनक से राजाओं के आगमन का कारण सुन, धरती पर पड़े धनु-खण्ड देख, इनका क्रोध उद्दीप्त। धनु-भंजक को शीघ्र ही न दिखाने पर जनक के राज्य को उलटने की धमकी। भीत जनक मौन। कुटिल नृपों को छोड़ सब त्रस्त (१।२६९-१।२७०।८)। राम की विनीत वाणी सुन इनका कथन — शिव-धनु-भंजक इनका सहस्रबाहु-सम शत्रु। वह राज-समाज से अलग हो जाये, अन्यथा सब राजाओं की मृत्यु (१।२७१।१-१।२७१।५)। लक्ष्मण को बचपन में तोड़ी गयी धनुहियों के साथ शिव-धनु की तुलना करते देख ये रोष-पीड़ित — 'धनुही सम तिपुरारि धनु'! (१।२७१।६-१।२७१)। भोलेपन में छिपी लक्ष्मण की व्यंग्योक्ति से कुपित हो, अपने कुठार की ओर संकेत कर, इनका स्वभाव-कथन। लक्ष्मण इन्हें केवल मुनि न समझें। ये क्षत्रिय-कुल-द्रोही। इनका कुठार सहस्रबाहु — संहारक, गर्भ-शिशु-घातक। अनेक बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर इनके द्वारा ब्राह्मणों को दान। लक्ष्मण को इनकी चेतावनी (१।२७२।१-१।२७२)। लक्ष्मण के उपहास से विचलित हो, विश्वामित्र को सम्बोधित कर इनका कथन — वे 'कुल घातक' लक्ष्मण को मृत्यु से बचाने के लिए इनके बल-प्रताप-क्रोध की दुर्धरता समझा कर रोक दें (१।२७३।१-१।२७४।४)। लक्ष्मण के चुनौतीभरे कठोर वचन सुन, परशु को हाथ में ले, कथन — अब लक्ष्मण की मृत्यु अवश्यम्भावी। विश्वामित्र का शील बाधक, नहीं तो उनका

वध कर 'गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे।' विश्वामित्र का मन-ही-मन इनके अज्ञान पर हँसना (३।२७४।५-१।२७५)। माता-पिता गुरु से इनके उऋृण होने के सम्बन्ध में लक्ष्मण के कटु वचन सुन इनका कुठार सँभालना। सभा में हाहाकार (१।२७६।१-५)। लक्ष्मण की पुनः चुनौती। 'लखन उतर आहुति सदृश भृगुवर कोप कृसानु।' (१।२७६।६-१।२७६)। राम की विनीत कोमल वाणी से ये कुछ शान्त। लक्ष्मण को कुछ कहकर मुस्काते देख पुनः प्रज्वलित— 'नीच मीचु सब देख न मोही' (१।२७७।१-८)। इनके लिए कही गयी लक्ष्मण की उपहासभरी बातों से पुरवासी भय-कम्पित। 'भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी।।' राम-लघु-भ्राता होने के नाते लक्ष्मण का अनिष्ट न कर पाने का इन्हें क्षोभ (१।२७७-१।२७८।८)। राम के विनीत वचन सुन इनका कथन — क्रोध से हृदय में दाह, पर कुठार कुण्ठित। हाथ नहीं चलता। मन में इनके स्वभाव के विपरीत कृपाभाव। इस द्वन्द्व से इन्हें दुःसह दुख (१।२७९।१-१।२८०।३)। पुनः लक्ष्मण की कटूक्ति से क्रोध। राम की विनय अब इनकी दृष्टि में छल। राम को युद्ध की चुनौती, अन्यथा दोनों भाइयों के वध की धमकी। राम का मन-ही-मन मुसकाना (१।२८०।४-१।२८१।४)। उनके मुख से तरह-तरह की विनती, अपने नौ पुनीत गुणों की महिमा और क्षमा-प्रार्थना सुन, उन्हें भी 'बंधु सम बाम' कहना (१।२८३।७-१।२८२)। अपने विप्र-पौरुष का रूपक स्पष्ट करना — धनुष ही इनका स्रुवा, बाण आहुति, क्रोध अग्नि, चतुरंगिणी सेना समिधाएँ, बड़े-बड़े राजा पशु जिनकी कुठार से बलि। ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ का इनके द्वारा अनुष्ठान। इनका प्रभाव राम को अविदित, इसीलिए एक धनुष भंग कर उन्हें इतना अहंकार (१।२८३।१-६)। क्षत्रिय-धर्म, रघुवंशियों की आन और विप्रवंश की प्रभुता के सम्बन्ध में राम के मृदु गूढ़ वचन सुन 'उघरे पटल परसुधर मति के' (१।२८३।७-१।२८४।६)। इनका आग्रह — राम इनका धनुष लेकर खींचें, ताकि इनका संशय दूर हो। देने के लिए इनके प्रस्तुत होने पर धनुष का स्वयं राम के पास चले जाना। इन्हें विस्मय। राम-प्रभाव का ज्ञान। शरीर पुलकित, हृदय प्रेमाप्लुत। करबद्ध हो राम की विनती। क्षमा-प्रार्थना। प्रभु की जयजयकार कर तप के लिए वन-गमन (१।२८४।७-१।२८५।७)। जनक-दूतों का दशरथ को इनका प्रसंग सुनाना (१।२९३।१-२)। पितृ-आदेश से इनके द्वारा माँ के वध का वसिष्ठ-कथन भरत से (२।१७४।७)। देव-दुःख-दलन के लिए इनके रूप में प्रभु के अवतार-ग्रहण का कथन (६।११०।७)।

मूल शब्द — १।२८४।८, २।१७४।७, ६।११०।७। परसुरामु — १।२८०।

पर्याय — **परसुधर** — १।२७१।६, १।२८४।६।

भृगुकुल कमल पतंगा —१।२६८।२।

भृगुकुल केतू — १।२७१।८।

भृगुनाथ — १।४१।४, १।२८३।

भृगुनायक — १।२९३।१।

भृगुपति — १।२६०।५, १।२६६।१, १।२७०।८, १।२६८।६, १।२८१।४, १।२८२, १।२८५।७।

भृगुबंसमनि — १।२७३।

भृगुबर — १।२७६।६, १।२७६।

भृगुसुत — १।२७३।५।

राम (प्रधानतः दाशरथि राम के लिए) — १।२८२।

पवन — एक देवता; दिक्पाल (लोकपाल) — वायुकोण (पश्चिमोत्तर दिशा) के अधिपति। अमर० १।८५। पंचमहाभूतों में द्वितीय।

[देवतारूप — ऋग्वेद में प्रायः सर्वत्र इन्द्र के साथ इनका निर्देश प्राप्त। विश्व-पुरुष की श्वास से ये उत्पन्न (ऋ० १०।९०)। त्वष्टा इनके जामाता। आकाश के गर्भ से इनके द्वारा मरुतों की उत्पत्ति (ऋ० ८।२६, १।१३४)। ये मनोजव, सहस्राक्ष (ऋ० १।२३)। इनकी उपासना से यश, सन्तान, सम्पत्ति की प्राप्ति (ऋ० ७।९०)। प्रा० च० 'वायु'।

इनके द्वारा केसरी-भार्या अंजना का वस्त्र-हरण और मानसिक संकल्प से समागम। फलतः अंजना के गर्भ से हनुमान् का जन्म (वा० रा० ४।६६।१२-२०)। कुन्ती-पुत्र भीमसेन इन्हीं से उत्पन्न (महा० आदि० १२२।११-१४)। इनकी पत्नी का नाम देवी 'स्वस्ति'। वे प्रकृति की कलाओं में एक। सं० ब्र० पु० पृ० ८५-८६।

महाभूत-रूप— आकाश में विकार होने पर इसकी उत्पत्ति। इसका गुण (एवं तन्मात्रा) 'स्पर्श'। इसके कारणभूत आकाश का गुण 'शब्द' भी इसमें समाविष्ट। इन्द्रियों में स्फूर्ति, शरीर में जीवनीशक्ति, ओज और बल इसी के रूप। इसमें विकार होने पर इससे 'तेज' (अग्नि) उत्पन्न। भा० २।५।२६-२७। जल-प्रलय में 'तेज' का गुण 'रूप' इसके द्वारा ग्रस्त। रूपरहित 'तेज' इसमें विलीन। स्वयं इसका गुण 'स्पर्श' आकाश में लीन। स्पर्शहीन होकर यह आकाश में समाहित। भा० १२।४।१५-१६।]

अन्य लोकपालों के साथ ये भी रावण के वशीभूत (१।१८२।१०-१२, ६।८।३, ६।१०४।७)। इनके पुत्र हनुमान् इन्हीं के समान बलवान् (४।३०।४)। पंचमहाभूतों से अधम शरीर-रचना (४।११।४)। जातिवाचक रूप में प्रयोग (७।६१क)।

मूल शब्द — १।१८२।१०, ४।३०।४, ६।८।३।

पर्याय — **मरुत** — ७।६१ क (जाति०)

समीरा — ४।११।४ (महाभूत), ६।२०४।७।

पाताल — (१) पृथ्वी के नीचे के लोकों का सामान्य नाम। वि० पु० २।५।२, ५,१२,१३।

(२) पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में अन्तिम लोक का नाम। वि०पु० २।५।२। (सात लोक—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल। भा० ५।२४।७। वि० पु० में अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल, पाताल। २।५।२।)

[(१) सामान्यतः यहाँ मय दानव द्वारा निर्मित अनेक पुरियाँ। स्वर्ग से भी अधिक विषय-भोग, ऐश्वर्य, आनन्द। सूर्य के स्थान पर नाग-मणियों का प्रकाश। यहाँ गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए दैत्य, दानव, नागों का निवास। सब स्वास्थ्य-सौन्दर्य-शक्ति-सम्पन्न। सुदर्शन चक्र के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से इनका मरण असम्भव। भा० ५।२४।८-१५।

(२) सप्तम लोक पाताल में शंख, कुलिक, धनंजय, देवदत्त आदि महाक्रोधी नागों का वास। इनमें वासुकि प्रधान। इनके पाँच से एक हजार तक मस्तक। फनों की दमकती मणियों से अन्धकार-नाश। भा० ५।२४।३१]

राम के धनुष-भंजन और सीता-वरण का यश स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में व्याप्त (१।२६५।५)। हनुमान् के चरण रखते ही गिरि का पाताल में धँसना (५।१।७)। पाताल विश्वरूप राम के चरण (६।१५।१)। बलि-विजय के लिए रावण के पाताल-गमन का अंगद-कथन (६।२४।१३)। 'प्रभु अगाध सत कोटि पताला'। (७।६२।१)।

मूल शब्द — १।२६५।५, ५।१।७, ६।१५।१ पताला — ६।२४।१३, ७।६२।१ (जाति०)।

पारवती — दे० 'भवानी'।

पारस — एक प्रकार का पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है; स्पर्शमणि। बृ० को०।

'पारस परस कुधात सुहाई' (१।३।६)। 'तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें' (७।११२।१)। अत्यन्त लाभकारी और मूल्यवान् पदार्थ के अर्थ में इसका सर्वत्र अलंकाररूप में प्रयोग।

मूल शब्द — १।३।६, १।३५०।७ पारसु — २।१११।१, २।२१०।२, २।२३८।३।

पर्याय — **परसमनि** — ७।४४।३, ७।११२।१, ७।१२१।१२।

पावक — (१) अग्नि देवता; दिक्पाल (लोकपाल) — अग्निकोण (दक्षिण-पूर्व) के अधिपति। अमर० १।८५।

(क) ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न। महा० द्रोण ५२।४०।

(ख) स्वायम्भुव मनु ~ शतरूपा > प्रसूति ~ दक्ष प्रजापति > स्वाहा ~ अग्नि > पावक, पवमान, शुचि > (तीनों से) पैंतालीस प्रकार की अग्नियाँ। भा० ३।१२।५३-५६, ४।१।६०-६१।

(ग) (अन्य कल्प में) प्राचेतस दक्ष > वसु ~ धर्म > अष्टवसुओं में एक अग्नि ~ धारा > द्रविणक आदि। भा० ६।६।१-१३।

(२) पंचमहाभूतों में तृतीय (तेज-तत्व)।

[(१) देवतारूप — ऋग्वेद में इनका अत्यधिक महत्व। ये देवताओं के पुरोहित। यज्ञों के राजा। ऋत के संरक्षक। सर्वदर्शी। इनके एक सौ या एक हजार नेत्र। मनुष्यों के कर्मों के दर्शक। पापियों के लिए इनका दंड-विधान। हि० ध०।

विराट् पुरुष के मुख में इनकी स्थिति। भा० २।१।२९, ३।६।१२। ये भगवान् की विभूति। गीता १०।२३। हरिवंश के अनुसार शिखाएँ ही इनका भाला, धुआँ ही टोपी। इनके वस्त्र काले। इनके रथ में लाल घोड़े। कभी-कभी मेष इनका वाहन। आ० को० सम्पूरक।

गन्धमादन पर्वत पर पार्वती के साथ समागमरत शिव के कक्ष में इनका कबूतर का रूप धरकर जाना। शिव से असुर-विजयी पुत्र उत्पन्न करने की इन्द्र की प्रार्थना निवेदित करना। शिव द्वारा इन्हें वीर्य-दान। उस वीर्य को ग्रहण करते ही इनकी उज्ज्वल कान्ति मलिन। सम्भोग में बाधक होने के कारण इन्हें पार्वती का शाप — ये पवित्र-अपवित्र के भक्षक, सर्वदाहक और कोढ़ी हों, सदा धूमायित रहें (त्वं सर्वभक्षो भव भीमकर्मा कुष्ठाभिभूतोऽनलधूमगर्भः। कुमार० ९।१६)। शंकर-तेज से ये दग्ध। इन्द्र के परामर्श से इनका आकाश-गंगा में डुबकी लगाना। गंगा द्वारा सादर शिव-तेज का ग्रहण। तब इन्हें शान्ति-लाभ। कुमार० सर्ग ९, १०।

ये पुलोमा नामक राक्षस के इस संकल्प के साक्षी कि उसके द्वारा भृगु-पत्नी पुलोमा का, भृगु से विवाह होने से पूर्व, मानसिक रूप से वरण हुआ था। अतः क्रुद्ध भृगु का इन्हें सर्वभक्षी होने का शाप। कुपित हो इनका अदृश्य होना। इनके अभाव में प्रजा दुखी। तब ब्रह्मा से यह वर पाकर इनका पुनः प्राकट्य कि इनकी ज्वाला से दग्ध होकर सब कुछ शुद्ध हो जायेगा। महा० आदि० ५।३१-३४, ६।१२-१४, आदि० ७।

राजा श्वेतकि के यज्ञ में बारह वर्षों तक निरन्तर हवि-भक्षण करने से ये विवर्ण और तेज-पराक्रम-हीन। ग्लानि-पीड़ित हो ब्रह्मा के शरणागत। उनका कथन — खाण्डव-वन को निगलकर ये पुनः स्वस्थ होंगे। अकेले खाण्डव को दग्ध करने में असमर्थ हो इनकी अर्जुन और कृष्ण से सहायता की याचना। वे प्रस्तुत, किन्तु उनके पास अस्त्र-शस्त्रों का अभाव। अतः वरुण से दिव्य गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तरकस, कपिध्वज रथ और चक्र लेकर इनका उन्हें देना। उनकी सहायता से खाण्डव-वन का दाह। इन्हें पुनः तेज-बल प्राप्त। महा० आदि० २२२-२२७।

दक्षपुत्री स्वाहा इनके प्रति कामासक्त और ये सप्तर्षि की पत्नियों के प्रति। उन पतिव्रताओं के न मिलने पर शरीर-त्याग करने के लिए इनका वन-गमन। इनकी दुर्बलता समझकर स्वाहा का भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न सप्तर्षि-पत्नी का रूप धारण कर वन में इनके पास आकर समागम-लाभ करना। (अरुन्धती का रूप वे न धर सकीं।) महा० वन० २२४।३३-२२५।१५।

रामावतार में इनके अंश से वानर नील का जन्म। वा० रा० १।१७।१३। महाप्रस्थान के समय गांडीव और तरकस वरुण को लौटाने का अर्जुन को इनका आदेश। महा० महाप्र०१।३९-४२। इनके तीन पुत्र, पैंतालीस पौत्र और स्वयं ये मिलकर उनचास अग्नियाँ जिनके नाम से वैदिक यज्ञकर्म की आग्नेयी इष्टियाँ। भा० ४।१।६२। मेरु के पूर्वी देश में चक्रपाद पर्वत पर स्थित इनकी पुरी का नाम 'तेजोवती' सं० व० पु० पृ० १४४।

(२) महाभूत रूप — वायुतत्व में विकार होने पर उससे अग्नि की उत्पत्ति। इसका प्रधान गुण (और तन्मात्रा) रूप। इसके कारणभूत आकाश और वायु के गुण क्रमशः शब्द और स्पर्श भी इसमें समाविष्ट। इसके विकार से जल उत्पन्न। भा० २।५।२७-२८। जल-प्रलय में जल का गुण रस इसके द्वारा ग्रस्त। नीरस होकर जल इसमें समाहित। स्वयं इसका गुण रूप वायु द्वारा ग्रस्त। रूपरहित होकर यह वायु में लीन। भा० १२।४।१५-१६।]

'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं' के दृष्टान्तरूप सूर्य एवं सुरसरि के साथ इनका उल्लेख (१।६९।६,८)। अन्य देवतादि के साथ ये भी रावण के आतंक से त्रस्त (१।१८२।१०)। दशरथ के पुत्रकाम यज्ञ में इनका हाथ में चरु (हव्यान्न) लेकर प्रकट होना। दशरथ को कार्यसिद्धि का आश्वासन और हव्यान्न को यथायोग्य बाँटने का आदेश देना। सबको समझाकर अंतर्धान होना (१।१८९।६-१।१८९)। राम-विवाह के समय शरीर धारण कर इनका आहुति ग्रहण करना (१।३२३)। राम की आज्ञा से अपना प्रतिबिंब रख सीता का अग्नि-प्रवेश (३।२४।२-३)। रावण-प्रताप से सूर्य-चन्द्र के साथ इनके भी तेजहीन होने का मंदोदरी-कथन (६।१०४।५)। राम के दुर्वाद सुन सीता का लक्ष्मण से पावक प्रकट करने का अनुरोध। इनका प्रज्वलित होना। सीता के कथन पर उनका पातिव्रत प्रमाणित करने के लिए इनका श्रीखंडसदृश शीतल हो जाना। सीता का अग्नि-प्रवेश। उनके प्रतिबिंब और लौकिक कलंक का इनके द्वारा दहन। इनका शरीर धारण करना, सीता का हाथ पकड़ राम को समर्पित करना (६।१०९।२-छं० २) महाभूत-रूप में उल्लेख (४।११।४)।

मूल शब्द — १।६९।८, १।१८९, ३।२४।२, ४।११।४ (महाभूत), ६।१०४।५, ६।१०९।२, ६।१०९।५, ६।१०९।६, ६।१०९।छं० १, ६।१०९।छं० २।

पर्याय — **अगिनि** — १।१८२।१०, १।१८९।६।

अनल — ३।२४।३। अनलु — १।३२३।

कृसानु — १।६९।६, ६।१०९।८।

पिनाक — शिव के धनुष का नाम।

[(१) शुक्राचार्य को अपने शूल पर स्थित देख शिव का उसे झुकाना। वह धनुषरूप में परिणत। शिव के हाथ (पाणि) से आनत होने के कारण 'पिनाक'। महा० शा० २८९।१७-१८।

(२) तपस्यालीन कण्व को वर देने के लिए आये ब्रह्मा को उनके निकट ही एक बाँस के दर्शन। जगत् के उपकार के लिए उस बाँस से उनके द्वारा शिव और विष्णु के लिए दो धनुषों का निर्माण। शिव-धनु का नाम पिनाक, विष्णु-धनु शाङ्र्ग। बाँस के अवशेष से तीसरा धनुष गाण्डीव निर्मित। — शिव-कथन पार्वती से। महा० अनु० १४१।८ के बाद दा० पा० पृ० ५९१५।

(३) विश्वकर्मा द्वारा दो श्रेष्ठ, दुर्धर्ष धनुषों का निर्माण। एक धनुष देवताओं द्वारा विष्णु को प्रदत्त, दूसरा त्रिपुर-वध के लिए शिव को। दोनों देवों के बलाबल की परीक्षा के लिए ब्रह्मा द्वारा उनमें विरोध-सृष्टि। दोनों में भयंकर युद्ध। विष्णु के हुंकार से शिव-धनु शिथिल, स्वयं वे स्तम्भित। कुपित शिव द्वारा बाण-सहित धनुष का त्याग, विदेहराज देवरात को प्रदान। अपने पूर्वजों से जनक को प्राप्त। विष्णु का अपने धनुष को भृगुवंशी ऋचीक के पास धरोहर के रूप में रखना। जमदग्नि-वध के बाद परशुराम को उसकी प्राप्ति। — परशुराम-कथन राम से। वा० रा० १।७५।

(४) दक्ष-यज्ञ विध्वंस के लिए शिव का यह धनुष उठाना। फिर शान्त हो देवताओं को अर्पित करना। देवताओं का इसे देवरात के पास धरोहर रूप में रखना। —जनक-कथन। वा० रा० १।६६।९-१३। अ० रा० १।६।६८-६९ में जनक-कथन। — त्रिपुरदाह के बाद शिव का इसे उनके पितामह के पास न्यासरूप में रखना। आठ पहियोंवाले विशाल सन्दूक में सुरक्षित इस धनुष को पाँच हजार मनस्वी वीरों का किसी प्रकार ठेलकर लाना। वा० रा० १।६७।४।

(५) एक दिन एकान्त में नारद का जनक के पास आना। अंशोसहित रामावतार का रहस्य बताकर राम से ही सीता का पाणिग्रहण कराने का आदेश। इसीलिए जनक का धनुष को पण बनाना। —जनक-कथन वसिष्ठ-विश्वामित्र से। अ० रा० १।६।५८-७०।

पिनाक का दूसरा नाम 'अजगव'। आ० को०।]

इसके कठोर होने का कथन (१।२२३।२, १।२३५।१)। यह कच्छप की पीठ, वज्र और पर्वत से भी अधिक कठोर (१।३५७।४, १।२५८।४)। 'सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरें' (१।२२३।६)। राम के इसे तोड़ने का, और न तोड़ने पर भी सीता द्वारा उन्हीं के वरण का, राजाओं को विश्वास (१।२४५।२-३)। 'नृप भुजबलु बिधु सिव धनु राहू'। इसे देख रावण और बाण जैसे महाभटों का भी चुपचाप गमन। इसे तोड़नेवाले का त्रिभुवन-जयलक्ष्मी-सहित सीता द्वारा वरण। — जनक-प्रण (१।२५०।१-४)। विवेकी राजाओं का इसके निकट भी न जाना। अन्य राजा पृथक्-पृथक् और सामूहिक बल से भी इसे उठाने में असमर्थ (१।२५०।७-१।२५१।४)। इसे तोड़कर कन्या, विजय और कीर्त्ति अर्जित करनेवाला मानो विधाता ने रचा ही नहीं! चढ़ाना, तोड़ना तो दूर, इसे तिलभर हिलाना भी किसी के लिए शक्य नहीं। —सरोष जनक-कथन (१।२५१-१।२५२।२)। कुपित लक्ष्मण की उक्ति — 'को बापुरो पिनाक पुराना'। राम-आज्ञा हो, तो उनके प्रताप से क्रीड़ा में ही इसे कमलनाल की तरह चढ़ाकर, सौ योजन ले जाकर कुकुरमत्ते की तरह तोड़ दें (१।२५३।६-१।२५३)। 'उठहु राम भंजहु भव चापा' (१।२५४।६)। पुरवासियों की कामना — राम धनुर्भंग करें (१।२५५।८)। 'रावन बान छुआ नहिं चापा' (१।२५६।३)। 'भंजब धनुषु राम सुनु रानी' (१।२५७।२)। इसकी गुरुता हरने के लिए महेश, भवानी, गणेश से सीता की प्रार्थना (१।२५७।५-८) 'अब मोहि संभु चाप गति तोरी'। अपनी जड़ता लोगों पर डालकर राम को देख यह हल्का हो जाये। — सीता-विनय (१।२५८।६-७)। 'लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु' (१।२५९)। 'राम चहहिं संकर धनु तोरा' (१।२६०।२)। सबके मनोभाव 'संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई'। (१।२६०।७)। राम का इसे लाघव से उठाना। इसका बिजली-सा चमकना। आकाश में मण्डलाकार होना। राम का

इसे मध्य से तोड़ना। इसकी भंजन-ध्वनि से सब लोक व्याप्त। शेष, वराह, कच्छपसहित त्रिलोक व्याकुल। राम-बाहुबल-सागर में यह जहाजरूप। मज्जित। इसके दोनों खण्डों को राम का भूमि पर डालना (१।२६१।५-१।२६२।१) प्रसन्नता से सबका परस्पर कथन — 'भंजेउ राम संभुधनु भारी' (१।२६२।८)। 'राम बरी सिय भंजेउ चापा' (१।२६५।५)। छुद्र राजाओं की 'नाक पिनाकहि संग सिधाई' (१।२६६।७)। इसके टूटने का समाचार सुन परशुराम का आगमन (१।२६८।२)। भूमि पर इसके खण्ड देख इसके भंजक के सम्बन्ध में जिज्ञासा (१।२७०।२-३)। 'नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।' (१।२७१।१)। परशुराम के लिए इसका भंजक सहस्रबाहु-सा शत्रु (१।२७१।४)। 'एहि धनु पर ममता केहि हेतू' — लक्ष्मण-कथन (१।२७१।८)। 'धनुही सम त्रिपुरारि धनु'! — परशुराम की कुपित वाणी (१।२७१)। 'छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू' — लक्ष्मण-उक्ति। (१।२७२।३)। 'संभु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध' - परशुराम-कथन राम से (१।२८०)। 'छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।' (१।२८३।८)। जनक-दूतों का दशरथ को धनुर्भंग-प्रसंग सुनाना (१।२९२।५-१।२९२)। इसके भंजन का उल्लेख — नाम-महिमा-कथन में (१।२४।६), जनक द्वारा (१।२८६।५), माताओं द्वारा (१।३५७।४), मारीच द्वारा (३।२५), हनुमान् द्वारा (५।२१।८), मन्दोदरी द्वारा (६।३६।११)। अन्य उल्लेख (१।२३९।३, १।२४५।६, १।२५६।४, १।२५९।८, १।२६०।३, १।२६३।५, १।२६६।४, १।२७८।२, १।२८३।६, १।२८६।७, १।२८६।८)।

मूल शब्द — १।२५३।६, १।२६६।७, १।२८३।८।

पर्याय — **चाप** — १।२४५।२, १।२५०।८, १।२५१।४, १।२५३।८, १।२५७।६, १।२५७।८, १।२६०।३, १।२७८।२, १।२८६।७, १।२९२। चापा — १।२५६।३, १।२६५।५। चापु — १।२८३।६।

तिपुरारि धनु — १।२७१।

धनु — १।२५०, १।२५१, १।२५६।४, १।२५७।४, १।२५९।८, १।२६१।५, १।२६१।६, १।२६१।८, १।२६३।५, १।२७१।८, १।२८६।५, १।२८६।८। धनुष — १।२३९।३, १।२७०।३, ६।३६।११। धनुषु— १।२४५।६, १।२५७।२, १।२६६।४।

पुरारि कोदंडु — १।२५०।३।

भवचापा — १।२५४।६। भवचापू — १।२४।६।

भव धनुषु — १।२४५।३।

संकर चाप — १।२२३।२, १।२५२।१। संकर चापु — १।२६१।

संकर धनु — १।२६०।२।

संभु चाप — १।२५८।६, १।२६०।७।

संभु धनु — १।२६२।८, १।२७१।१, १।२९२।६।

संभु सरासनु — १।२५१।२, १।२८०, १।२९२।५।

सिवचाप — १।२३५।१।

सिव धनु — १।२२३।६, १।२५०।१, १।२५०।७, १।२५५।८, १।२६८।२, १।२७१।४, १।३५७।४।

हर कोदंड — ३।२५, ५।२१।८। हर कोदंडु — १।२५९।

पुलस्ति (पुलस्त्य) — स्वायम्भुव मन्वन्तर के सप्तर्षि में एक। दे० 'सप्तरिषि'। इनकी गणना नवब्रह्मा में (वि० पु० १।७।५-६), इक्कीस प्रजापतियों में (महा० शा० ३३४।३५)।

(अ) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ तृणबिन्दु-कन्या > विश्रवा ~ (१) भरद्वाज-कन्या > वैश्रवण (कुबेर), (२) कैकसी (सुमाली-केतुमती-कन्या) > दशग्रीव (रावण), कुम्भकर्ण, शूर्पणखा, विभीषण।

वा० रा० ७।२।४, २३-२४, २७, ३१-३२; ७।३।३-८; ७।५।३९, ४१; ७।९।२६-२९, ३३-३५। अ० रा० ७।१।

(आ) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ हविर्भू (देवहूति-कर्दम-कन्या) > (१) अगस्त्य, (२) विश्रवा ~ (क) इडविडा > कुबेर, (ख) दूसरी पत्नी > रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण।

भा० ३।१२।२१, ३।२४।२१-२२, ४।१।३६-३७।

(इ) (१) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ गौ > वैश्रवण (कुबेर)। (२) पुलस्त्य के अर्धशरीर से उत्पन्न विश्रवा ~ (क) पुष्पोत्कटा > रावण, कुम्भकर्ण; (ख) मालिनी > विभीषण, (ग) राका > खर, शूर्पणखा।

महा० वन० २७४।१२, १४; २७५।१-८।

(ई) पुलस्त्य ~ दक्षतनया प्रीति > दत्तोलि (पूर्वजन्म में अगस्त्य)।

वि० पु० १।७।२५-२६; १।१०।८-१०।

['पुल' शब्द का अर्थ तपःसमूह, 'स्त्य' शब्द अस्ति (है) के अर्थ में प्रयुक्त। जिनके पूर्वजन्म के तपःसमूह विद्यमान, जो तपःसंघ-स्वरूप, वे पुलस्त्य। सं० ब्र० पु० ब्रह्म० पृ० ६७। ये ब्रह्मा के कानों से उत्पन्न। भा० ३।१२।२४। वा० रा० एवं अ० रा० के अनुसार सत्ययुग में ब्रह्मा के मानस-पुत्र। देवताओं के प्रिय। मेरु गिरि पर राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रहकर तप और स्वाध्याय। वहाँ नाग, ऋषि आदि की कन्याओं और अप्सराओं की क्रीड़ा से इनके तप में विघ्न। रुष्ट होकर इनका कथन — कल से जो कन्या इनके दृष्टिपथ में आयेगी, यह गर्भवती हो जायेगी। यह शाप-वचन न सुन पाने के कारण दूसरे दिन तृणविन्दु की कन्या का वहाँ आकर विचरण। वेदध्वनि सुनकर इनके निकट आना। इनकी दृष्टि पड़ते ही वह गर्भवती। तृणविन्दु के अनुरोध पर इनका उसे ग्रहण करना। उसके शील और गुणों से प्रसन्न होकर उसे अपने समान पुत्र प्रदान करना। पुत्र के दो नाम रखना — पौलस्त्य एवं विश्रवा (अथवा विश्रवण)। वा० रा० ७।२।७-३४, अ० रा० ७।१।२५-३५।

महा० में इनकी गौ-नाम्नी पत्नी से उत्पन्न वैश्रवण (कुबेर) इनको छोड़ सदा पितामह ब्रह्मा की सेवा में लीन। यह देख इन्हें क्रोध। अपने शरीर के अर्धांश से इनके द्वारा अपने ही समान विश्रवा नामक पुत्र की उत्पत्ति। महा० वन० २७४।१२-१४। इनकी अन्य पत्नी के नाम सन्ध्या एवं प्रतीच्या। महा० उद्यो० ११७।११, १६। इनके पुत्र राक्षस, वानर, किन्नर तथा यक्ष। महा० आदि० ६६।७। सहस्रार्जुन द्वारा रावण के बन्दी बनाये जाने पर इनका महिष्मतीपुरी में जाना। रावण को मुक्त कराके सहस्रार्जुन के साथ उसका मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कराना। वा० रा० ७।३३। महा० में इनके अन्य नाम् — ब्रह्मर्षि, ब्रह्मयोनि, विप्रर्षि। आइ०एम०।

'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका'। उसमें रावण कलंक न बने। — हनुमान्-कथन (५।२३।२)। अपने शिष्य के माध्यम से इनके द्वारा रावण के लिए संदेश-उपदेश-प्रेषण। विभीषण द्वारा अनुनय-विनयपूर्वक रावण से इनका सन्देश-निवेदन (५।३९ख)। (राम मनुष्य नहीं, वे भुवनेश्वर, भगवान्, ब्रह्म। उनसे शत्रुता त्याग, सीता को लौटाकर, रावण उनका शरणागत हो। मान-मद छोड़ उनका भजन करे। — विभीषण का यह कथन ही इनका संदेश। ५।३८।५-५।३९क।) इनका पौत्र होने के नाते रावण उत्तम कुल का (६।२०।३)। सहस्रार्जुन की कैद से एक रावण की मुक्ति इनके द्वारा। — अंगद का व्यंग्य-कथन (६।२४।१६।

मूल शब्द — ५।२३।२, ५।३९ख, ६।२०।३, ६।२४।१६।

पुलस्त्यकुल — महर्षि पुलस्त्य का वंश। दे० 'पुलेस्ति'।

यह कुल निर्मल, पावन, अनुपम। रावणादि इस कुल में उत्पन्न होकर भी विप्रों के शापवश अघरूप (१।१७६)।

पुष्पक — कुबेर के विमान का नाम।

[(१) सूर्य के प्रखर तेज से संज्ञा के सन्तप्त होने पर विश्वकर्मा द्वारा सूर्य-तेज को छाँटने की चेष्टा। छँटे हुए अष्टमांश सूर्य-तेज से उनके द्वारा विष्णु के चक्र, शिव के त्रिशूल, कार्त्तिक की शक्ति और कुबेर के पुष्पक का निर्माण। वि० पु० ३।२।८-१२।

(२) यह स्वर्ग में विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्मा के लिए निर्मित। तप के प्रभाव से कुबेर को ब्रह्मा से प्राप्त। कुबेर को जीतकर रावण का इस पर अधिकार।

यह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित। शरच्चन्द्र-सा निर्मल। रत्न-तरु-पुष्प-पराग-आकीर्ण, लघु शिखरों से शोभित गगनचुम्बी पर्वत-शिखर-सदृश। पाण्डुराभ ध्वज-पताकाओं से अलंकृत। विद्युन्माला-पूजित मेघ-सी इसकी कान्ति। सूर्य और अग्नि-सी प्रभा। इसमें हेमपद्म-विभूषित स्वर्णमयी अट्टालिकाएँ। ऊँचे-ऊँचे गुप्तगृह, मंगल-भवन। पुष्पशोभित पुष्कर, वन आदि। पद्ममय सरोवर में कमलहस्ता लक्ष्मी-प्रतिमा का अभिषेक करते हुए जीवन्त-से गज। सुवर्णमय गवाक्ष। मणियों के फर्श, स्तम्भ, वेदिकाएँ। मणिमय विहंग, सर्प, अश्व। बाह्यान्तर सब

हेम-रत्न-मण्डित। अनेक प्रकार के सुगन्धित पेय, भक्ष्यादि से सम्पन्न।

निर्माण-कला और रचना-सौन्दर्य की दृष्टि से यह अप्रतिम। देव-विमानों में श्रेष्ठ। हंसयुक्त। मनोजव। कामग। स्वामी के मनःसंकल्प से गमन करनेवाला। (इच्छानुरूप छोटा-बड़ा होने में समर्थ। मा० पी० ६।११८।६ नोट १ के अन्तर्गत नोट।) केवल पुण्य-महात्माओं का ही आश्रय। वेगशाली भूतगणों द्वारा इसका भार-वहन।

रावण के विशाल महल के मध्यभाग में यह भवन के रूप में स्थिर। वा० रा० ५।७।५-१५, ५।८।१-८, ५।९।११-२०, ६।१२१।२४-३०, ६।१२२।२६। लंका-युद्ध के बाद सबको इस विमान में बैठाकर राम का अयोध्या के लिए प्रस्थान। नन्दिग्राम में भरताश्रम पर आकर इसे कुबेर के पास लौटने की रामाज्ञा। वा० रा० ६।१२२।२४-२५, ६।१२७। यह वाक्-शक्ति-सम्पन्न। आकाशस्थित रहकर इसका राम से निवेदन कि कुबेर ने इसे राम की सेवा के लिए भेजा है। राम द्वारा इसका पूजन। यह कहकर इसे विदा करना कि उनके स्मरण करने पर यह उपस्थित हो जाये। वा० रा० ७।४१।]

कुबेर को जीतकर रावण के इस विमान को लाने का कथन (१।१७९।८)। लंका-युद्ध के बाद इसे मणियों-वस्त्रों से भरकर विभीषण का राम के सम्मुख उपस्थित करना। राम का कथन — इस पर चढ़कर विभीषण आकाश में जा मणि-वस्त्रों की वर्षा करें। विभीषण का तदनुकूल आचरण (६।११७।३-६)। राम का विभीषण, हनुमदादि कों इस पर चढ़ाना। स्वयं वे सीतासहित एक ऊँचे मनोहर सिंहासन पर विराजमान। उनकी प्रेरणा से इसका उत्तर दिशा की ओर तीव्र गति से गमन (६।११९-१-६)। उनकी इच्छा से दण्डकारण्य, चित्रकूट, त्रिवेणी, गंगातट और अन्त में अयोध्या के निकट उतरना। उनकी आज्ञा से इसका कुबेर के पास गमन (६।१२०।१, ३, ६।१२० ख, ६।१२१।७, ७।४ ख)। पुष्पकारूढ़ राम की वन्दना (७।१।श्लो०१)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में वानरोंसहित इस पर चढ़कर राम के अयोध्या-गमन का कथन (७।६८।४)।

मूल शब्द — १।१७९।८, ६।११७।४, ७।१।श्लो०१, ७।४ख, ७।६८।४।

पृथु — अपने सुयश का प्रथन (विस्तार) करने के कारण इनका यह नाम (भा० ४।१५।४)। सप्तद्वीप के अधिपति। भगवान् के चौबीस अवतारों में एक। उत्तानपाद के वंश में चक्षु, (चाक्षुस मनु) > उल्मुक > अंग > वेन > पृथु ~ अर्चि > विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, वृक। भा० ४।१३।१५-१८; ४।१५।१, ४,५; ४।२२।५३-५४।

[राजा वेन की भुजाओं के मन्थन से स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा प्रकट। स्त्री अर्चि—लक्ष्मी का अवतार। पुरुष पृथु — विष्णु के अंश। इनके दाहिने हाथ में विष्णु की हस्तरेखाएँ और चरणों में कमल-चिह्न। इनके राज्याभिषेक पर पशु-पक्षी, नदी-पर्वत, पृथ्वी-आकाश आदि भेंट लेकर उपस्थित। ब्रह्मा से इन्हें वेदमय कवच, विष्णु से सुदर्शन चक्र, रुद्र से तलवार, अम्बिका से ढाल प्राप्त। अन्य देवी-देवताओं द्वारा भी भाँति-भाँति के दिव्य आभूषण, आयुध आदि का उपहार-प्रदान।

इनके द्वारा, और इनके बाद ऋषि-मुनि, देव-दानव-गन्धर्व आदि के द्वारा गोरूप पृथ्वी का दोहन और दुग्धरूप में समस्त धान्य, वेद, अष्टसिद्धि, अमृत आदि अभीष्ट की प्राप्ति। सर्वकामदुहा पृथ्वी को इनका कन्यारूप में स्वीकारना। धनुष की नोक से पर्वतों को फोड़कर भूमण्डल को समतल बनाना। इनके द्वारा पिता के समान प्रजा-पालन। केवल शासन नहीं, उनकी रक्षा, आजीविका का प्रबन्ध और उनहें अलग-अलग अपनी-अपनी मर्यादा में रखना। सबके यथायोग्य निवास के लिए स्थानों का निर्माण। समस्त लोकों को सुख पहुँचाने और सबका रंजन करने के कारण ही ये प्रजा के लिए 'राजा' (रंजयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः। अथामुमाहू राजानं मनोरंजनकैः प्रजाः।। ४।१६।१५।)।

इनके द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा-ग्रहण। यज्ञ में ब्रह्मा, रुद्र और साक्षात् हरि के दर्शन। कामधेनु रूप में भूमि द्वारा इनकी सारी कामनाओं की पूर्ति। इनका अतिशय उत्कर्ष। इन्द्र को यह असह्य। अन्तिम यज्ञ में इन्द्र द्वारा दो बार यज्ञ-अश्व का हरण और महर्षि अत्रि के संकेत से इनके पुत्र विजिताश्व द्वारा अश्व का उद्धार। सुनकर इन्हें क्रोध। इन्द्र-वध के लिए बाण-सन्धान। ऋत्विजों का रोकना। वे अमोघ आवाहन-मन्त्रों द्वारा अग्नि में इन्द्र का हवन करने को प्रस्तुत। ब्रह्मा का वारण करना। उनके उपदेश से अन्तिम यज्ञ का आग्रह छोड़ इन्द्र से सन्धि। लज्जित, क्षमाप्रार्थी इन्द्र को लेकर विष्णु उपस्थित। इनकी वरयाचना — उनके लीलागुणों के श्रवण के लिए वे इन्हें दस हजार कान दें (न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः। महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो

विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः। ४।२०।२४।)।

'आजगव' धनुष के प्रताप से सप्तद्वीप के सभी मनुष्यों पर इनका अखण्ड-अबाध शासन। ब्राह्मणों और विष्णुभक्तों के ये सेवक (किंकरो ब्रह्मवादिनाम्। ४।१६।१७।)। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती देश में इनका निवास। प्रारब्धवश प्राप्त का ही भोग। एक बार महासत्र की दीक्षा-ग्रहण। इनके पुण्य-बल से पापी वेन का नरक से निस्तार। सनत्कुमारों का आगमन और इन्हें आत्मतत्व का उपदेश। इनके द्वारा ब्रह्मार्पण-बुद्धि से समस्त कार्य-सम्पादन। फिर पुत्रों को पृथ्वी का भार सौंप पत्नीसहित तपोवन-गमन। आत्मस्थ होकर प्राण-त्याग। पत्नी अर्चि इनकी चिताग्नि में प्रवेश कर सती। भा० ४।१५-२३।]

'पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना' (१।४।६)।

प्रतापभानु — सूर्यसदृश प्रतापवान् नरेश।

[अगस्त्य ऋषि द्वारा रचित अगस्त्य-रामायण एवं सुतीक्ष्णकृत मंजुल-रामायण में इनकी कथा प्राप्त। हि० पृ० १३८, १३६।]

ये सत्यकेतु के पुत्र, अरिमर्दन के अग्रज। राज्य के उत्तराधिकारी। भगवद्‌भजन के लिए वन जाते समय पिता का इन्हें राज्य देना (१।१५३।५-८)। इनके राजा होने पर देश में दुहाई फिरना। वेदोक्त विधि से इनके द्वारा प्रजापालन। कहीं पाप का लेश नहीं (१।१५३)। हिताकांक्षी और बुद्धिमान मंत्री, वीर भाई, चतुरंगिणी सेना देखकर ये प्रसन्न। स्वयं ये प्रतापी और रणधीर। इनकी दिग्विजय। सप्तद्वीप इनके अधीन। [राजा प्रियव्रत के रथ-चक्र की लीकों से निर्मित सप्तद्वीप — जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर। भा० ५।१।३१।] राजाओं से कर लेकर उन्हें छोड़ देना (१।१५४।१-८)। धर्म, अर्थ, काम आदि सुखों का इनके द्वारा समयानुसार सेवन (१।१५४)। इनके राज्य में भूमि कामधेनु-सी मनचाही वस्तु प्रदान करनेवाली। प्रजा सुखी और धर्मशील। इनके द्वारा गुरु, देवता, सन्त, पितर और विप्रों की सदा सेवा। प्रतिदिन दान। वेद-पुराण-शास्त्र-श्रवण। विप्र-भवन, देव-मन्दिर आदि का निर्माण। वेद-पुराण-कथित प्रत्येक यज्ञ का अगणित बार अनुष्ठान (१।१५५।१-१।१५५)। ये ज्ञानी, निष्काम कर्मयोगी। मन, कर्म, वचन से किया गया धर्म इनके द्वारा वासुदेव को अर्पित (१।१५६।१-२)। (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि। गीता० २।४७।)

एक बार विन्ध्याचल के घने जंगल में इनके द्वारा अनेक 'पुनीत' मृगों का शिकार। (जिनके वध की आज्ञा शास्त्र से प्राप्त, वे पुनीत।) एक विशाल सूअर का पीछा करते हुए अत्यन्त गहन वन में प्रवेश। सूअर का एक दुर्गम पर्वत-गुहा में छिपना। पछताते हुए इनका लौटना। मार्ग भूल जाना। ये क्लान्त, क्षुधा-तृषा से व्याकुल (१।१५६।३-१।१५७)। वहाँ एक आश्रम के दर्शन। वह एक ऐसे अभिमानी राजा का आश्रम जो इनसे पराजित हो, उस निर्जन वन में जा, तपस्वी के वेश में रहने लगा। उसे महामुनि समझ, अश्व से उतरकर इनका उसे प्रणाम करना। परिचय न देना। उसका इन्हें पहचान लेना। सरोवर में अश्वसहित इनके मज्जन-पान के बाद इन्हें आश्रम में लाकर आसन देना (१।१५८।१-१।१५६।२)। प्रतापभानु के सचिवरूप में इनका आत्मपरिचय देना। अँधेरा हो जाने के कारण कपटमुनि के कहने पर वहीं रात बिताने का निश्चय (१।१५६।३-१।१६०।१)। दोनों का वार्तालाप। उसके प्रति इनकी अतिशय विनय, भक्ति। संसार से विरक्ति और उदासीनताभरी उसकी बातों से, अपने 'एकतनु' नाम की उसकी व्याख्या, तप के प्रभाव-कथन और ज्ञान-वैराग्य के निरूपण से ये उसके वशीभूत। ये अपना नाम बताने लगे, किन्तु कपटमुनि को सब ज्ञात (१।१६०।२-१।१६४।४)। उसके कहने पर इनकी वर-याचना — जरा-मरण के दुःख से रहित देह, समर में अजेयता, शत कल्पों तक शत्रुविहीन अकण्टक राज्य-भोग। कपटमुनि का वरदान — ब्राह्मणों के शाप के बिना किसी काल में इनका नाश नहीं (१।१६४।५-१।१६५।८)। पुनः कपटमुनि का कथन — मार्ग भूलने और उससे मिलने की बात ये किसी से न कहें, कहने पर इनका विनाश निश्चित।

ये ब्राह्मण-शाप की आशंका से भीत। उनको वश में करने का उपाय पूछना (१।१६५-१।१६६)। कपटमुनि का अनुग्रहपूर्वक उपाय-कथन — वह रसोई बनाये और ये परोसें, तो उस अन्न को खानेवाले सब इनके आज्ञाकारी होंगे। उन खानेवालों के घर में जो भोजन करेगा, वह भी इनके अधीन होगा। इस तरह वर्ष-भर भोजन कराने का संकल्प आवश्यक। नित्य नये एक लाख ब्राह्मणों को ये आमन्त्रित करें। भोजन वह बना देगा। उन ब्राह्मणों के हवन-यज्ञ, सेवा-पूजा से प्रसन्न देवता भी सहज ही इनके अधीन होंगे। किन्तु एक शर्त — उसे (कपटमुनि को)

कोई जान न पाये (१।१६७।१-१।१६९।२)। अपनी माया से राज-पुरोहित का हरण कर उसे अपने (एकतनु के) वेश में वह एक वर्ष तक अपने आश्रम में रखेगा। इनकी कार्यसिद्धि के लिए राज-पुरोहित के वेश में तीसरे दिन इनसे एकान्त में मिलकर सब कथा सुनायेगा। तब ये उसे पहचान लें। अपनी योजना बताकर उसका इन्हें शयन का आदेश। निद्रावस्था में ही अश्वसहित इन्हें घर पहुँचा देने का उसका कथन (१।१६९।३-१।१६९)।

ये निद्रामग्न। आसनस्थ कपट-ज्ञानी के पास उसके मित्र प्रपंची कालकेतु राक्षस का आगमन। सूअर बनकर इन्हें भटकानेवाला वही। उसके विप्र-सन्त-देव-पीड़क, अजेय सौ पुत्रों और दस भाइयों का इनके द्वारा वध। अतः प्रतिशोध-भावना से कपटमुनि वेशधारी राजा से मिल इनके विनाश का उसका षड्यंत्र (१।१७०।१-१।१७०)। कपटमुनि से सब सुनकर उसका कथन — इनको समूल नष्ट कर वह चौथे दिन उससे मिलेगा। क्षणभर में उसका इन्हें अश्वसहित घर पहुँचाना। इन्हें रानी के पास सुलाकर घोड़े को घुड़साल में बाँधना (१।१७१।१-८)। (दे० 'कालकेतु')। सवेरा होने से पहले इनका जागना। अपना घर देख आश्चर्य। कपटमुनि की महिमा का अनुमान कर, रानी के अनजाने ही धीरे से उठ, अश्वारूढ़ हो वन-गमन। दोपहर को लौटना (१।१७२।२-५)। इनके लिए तीन दिन युग के समान। निश्चित समय पर पुरोहित का आगमन। वन-आश्रम की बातों का कथन। इनके द्वारा कुटुम्बसहित एक लाख ब्राह्मण निमंत्रित। पशु-मांस में विप्र-मांस मिलाकर पुरोहित द्वारा षड्रस व्यंजन तैयार। इनका परोसना। उसी समय आकाशवाणी-- भोजन में विप्रमांस। सुनकर ये व्याकुल, स्तब्ध (१।१७२।६-१।१७३।८)। क्रुद्ध ब्राह्मणों का इन्हें शाप — ये परिवारसहित निशाचर हों। एक वर्ष के भीतर इनका कुलनाश हो, कोई जल देनेवाला भी न बचे (१।१७३-१।१७४।३)। ये भयाकुल। पुनः आकाशवाणी — ये निरपराध। इनका रसोईघर में जाना। वहाँ न भोजन, न रसोइया। ब्राह्मणों से सब वृत्तान्त कह भयभीत व्याकुल हो इनका पृथ्वी पर गिरना। विप्रशाप अटल, भावी अमिट— यह कह ब्राह्मणों का प्रस्थान। प्रजा चिन्तित (१।१७४।४-१।१७५।२)। कपटमुनि को कालनेमि से सब ज्ञात। उसके षड्यंत्र से शत्रुराजाओं का इन पर आक्रमण, युद्ध और इनका कुलनाश (१।१७५।३-७)। समय पाकर इनका परिवारसहित निशाचर होना। ये ही दस शीश और बीस भुजाओंवाले रावण (१।१७६।१-२)। इनके अनुज अरिमर्दन का कुम्भकर्ण के रूप में, सचिव धर्मरुचि का सौतेले भाई विभीषण के रूप में जन्म (१।१७६।३-५)।

मूल शब्द — १।१५३।५, १।१५४।८, १।१५५।१, १।१५८।३, १।१५९।५।

पर्याय — **प्रतापदिनेसा** — १।१६४।१।

प्रतापरबि — १।१५३, १।१५८।६।

भानुप्रतापा — १।१६६।३, १।१७१।७।

प्रवरषन गिरि (प्रवर्षण गिरि) — किष्किन्धा के निकट एक पर्वत।

[अ० रा० ४।३।५३ में इसका यही नाम। वा० रा० में इसका नाम प्रस्रवण गिरि; माल्यवान् पर्वत के पृष्ठभाग में स्थित। वा० रा० ४।२७।१, ४।२८।१।]

प्रभु के लिए इस पर्वत की एक गुहा को देवताओं का सुन्दर सुखद बनाना। वालिवध के बाद सुग्रीव को राज्य देकर वर्षाऋतु में राम का लक्ष्मण-सहित यहाँ वास। यह शैल अनुपम। यहाँ कुसुमित वन। कन्द-मूल-फल का प्राचुर्य। मधुकर-खग-मृग के शरीर धारण कर देव-सिद्ध-मुनि प्रभु की सेवा में मग्न। प्रभु के निवास से यह मंगलरूप (४।१२।८, ४।१२।१०-४।१३।५)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में राम के यहाँ वास का उल्लेख (७।६६ ख)।

मूल शब्द — ४।१२।१०। सैल प्रबरषन — ७।६६ ख।

प्रयाग — गंगा और यमुना के संगम पर स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ।

[यह प्रजापति-क्षेत्र। तीर्थराज। स्क० पु० का० ७।४५,४७। महा० के अनुसार यहाँ तीन अग्नि-कुण्ड जिनके मध्य से गंगा प्रवाहित। गंगा और यमुना का मध्य-भाग पृथ्वी का जघन (अर्थात्, अत्यन्त समृद्धिशाली भूमि)। प्रयाग जघनों की उपस्थ-भूमि। पूर्वकाल में यहाँ ब्रह्मा का यज्ञ। उस प्रकृष्ट याग के कारण इसका नाम 'प्रयाग'। (स्क० पु० का० ७।४९ में 'प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते।') यहाँ वेद और यज्ञ मूर्त्तिमान्। उनके द्वारा ब्रह्मा की उपासना। देवादिसहित ब्रह्मा और विष्णु का वास। (स्क० पु० में मोक्षोपदेश-रूप में शिव, अक्षय वटरूप में ब्रह्मा और माधवरूप में विष्णु यहाँ उपस्थित। का० ७।५०, ५२, ५३। ध० इ० तृ० पृ० १३२९ के अनुसार मत्स्यपुराण

१११।४-१० में प्रतिष्ठान के उत्तर में गुप्तरूप से ब्रह्मा का, वेणीमाधव-रूप में विष्णु का, अक्षयवट-रूप में शिव का यहाँ वास।) यह त्रिलोक में सर्वश्रेष्ठ एवं पुण्यतम तीर्थ। साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का यहाँ निवास। सदा ब्रह्मर्षि-सेवित। यहाँ आने अथवा इसका नाम-संकीर्त्तन करने से मृत्यु-भय और पापों से मुक्ति। यहाँ दिया गया थोड़ा-सा दान भी महान्। महा० वन० ८५।६६-८०, ८२, ८४; ८७।१६-२०। स्क० पु० में — 'धर्मतीर्थमिदंसम्यगर्थतीर्थमिदं परम्। कामिकं तीर्थमेतच्च मोक्षतीर्थमिदं ध्रुवम्।।' का० ७।६१। गी० ७।१५ के सांगरूपक (रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै···) में इसकी अमित महिमा व्यंजित।]

सन्त-समाज और प्रयाग के सांगरूपक में रामभक्ति गंगा, ब्रह्म-विचार-प्रचार सरस्वती और विधि-निषेधमयी कर्मकथा यमुना। तीनों का हरि-हर-कथा-रूपिणी त्रिवेणी में संगम। सन्त-समाज का अचल स्वधर्म-विश्वास ही प्रयाग का अक्षयवट, सुकर्म ही तीर्थराज का समाज (१।२।८-११)। [त्रिवेणीं माधवं सोमं भरद्वाजश्च वासुकीम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।। — माधव, सोमेश्वर महादेव और शेष यहाँ के प्रधान देव, भरद्वाज, वासुकि आदि गौण देव। वि०।] इसकी तुलना में सन्त-समाज के गुणाधिक्य का कथन (अधिक अभेद रूपक) — यह एक जगह स्थित, सन्त-समाज जंगम। यह केवल अधिकारियों के लिए सुलभ। सब समय सुलभ भी नहीं। सर्वत्र विचरणशील सन्त-समाज सबके लिए सब दिन सुलभ (१।२।७, १।२।१२)। इसका गुणगान सम्भव (दे० मानस २।१०५), सन्तों का गुण-कथन सम्भव नहीं (दे० मानस ३।४६।८)। इसके दर्शन-स्पर्श और त्रिवेणी-मज्जन से चारों फलों की प्राप्ति, किन्तु मरणोपरान्त। सन्त-वचन के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से सद्यःफल, इसी जीवन में चतुष्फल-प्राप्ति, अर्थात्, मोह-अज्ञान-नाश और जीवन्मुक्ति (१।२।१३-१।२)।

यहाँ भरद्वाज मुनि का वास (१।४४।१)। माघ मास में सूर्य के मकर राशि में आने पर सबका यहाँ आगमन। देवता-दैत्य-किन्नर-मनुष्य-समाज का सादर त्रिवेणी-स्नान। माधव के चरण-कमल का पूजन, अक्षयवट का संस्पर्श (१।४४।३-५)। ऋषि-मुनि-समाज का भरद्वाज-आश्रम में ठहरना। प्रातःकाल उत्साहपूर्वक मज्जन, भगवद्गुणों का कथन-श्रवण। उनके द्वारा ब्रह्म-निरूपण और तत्वविभाग-वर्णन, धर्मविधि-निरूपण एवं ज्ञान-वैराग्ययुक्त भगवद्भक्ति का कथन (१।४४।६-१।४४)। प्रतिवर्ष और सबका माघ (चान्द्र मास)-भर स्नान करके प्रस्थान, मुनियों का मकर (सौरमास) - भर स्नान करके तब गमन (१।४५।१-२)। [यहाँ मासव्यापी कल्पवास की यही विधि — 'पूर्णिमायां समारभ्य पूर्णिमायां समापयेत्, मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्।' वि० १।४४।३ व्या०। दे० 'मकर'। यहीं मानस का भरद्वाज-याज्ञवल्क्य संवाद और याज्ञवल्क्य का भरद्वाज को सम्पूर्ण रामचरित सुनाना।]

सिय-लक्ष्मण-सहित वन जाते हुए राम द्वारा इसके दर्शन। यह तीर्थराज—राजा के सब अंगों से पूर्ण। सत्य ही इसका मंत्री और श्रद्धा पट्टमहिषी। माधव-सदृश हितकारी मित्र। चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से भरा-पूरा कोश। अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश) ही राज्य। प्रयाग-क्षेत्र ही शत्रु के लिए अजेय दुर्गम दुर्ग। सब तीर्थ ही वीरों की सेना जो पाप-वाहिनी-दलन में समर्थ (२।१०५।२-६)। संगम इसका श्रेष्ठ सिंहासन। गंगा-यमुना की तरंगें चँवर जिन्हें देखते ही दुःख-दारिद्रय का नाश। अक्षयवट इसका छत्र (उसका प्रलय में भी नाश नहीं)। पुण्यात्मा और साधु इसके सेवक। कामनानुसार उन्हें इससे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति। वेद-पुराण वन्दी। उनके द्वारा इसके निर्मल गुणों का गान (२।१०५।७-२।१०५)। यह पाप-समूह-रूपी हाथियों के लिए सिंहरूप। इसका प्रभाव-वर्णन असम्भव। ऐसे तीर्थपति को देखकर राम को सुख। उनके द्वारा सिय-लक्ष्मण और निषादराज से इसका महिमा-कथन। त्रिवेणी-स्नान। तीर्थ-देवों की पूजा, शिव-सेवा (२।१०६।१-६)। उनके दर्शन के लिए यहाँ के निवासियों का भरद्वाज-आश्रम में आना। प्रातःकाल प्रयाग-स्नान कर सिय-अनुज-सहित राम का प्रस्थान (२।१०८।५-६, २।१०८)। यहाँ स्नान के समय ही उनके भरत-प्रेम का मर्म भरद्वाज को ज्ञात (२।२०८।५)। समाज-सहित चित्रकूट जाते हुए भरत का यहाँ आगमन। त्रिवेणी-स्नानोपरान्त पुलकित होकर इसकी प्रशंसा — 'सकल कामप्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ।।' उनका आर्त्ति-निवेदन और सिय-राम-चरण-रति की वर-याचना। त्रिवेणी-मध्य से भरत के अनुकूल वाणी ध्वनित। (यह प्रयागराज की ही वाणी)। सुनकर भरत पुलकित। यहाँ के निवासियों को हर्ष (२।२०३, २।२०४।३ - २।२०६।१)। भरत-दर्शन से प्रयाग-सहित भरद्वाज कृतार्थ। भरत के प्रति धन्य-धन्य की ध्वनि से यहाँ का आकाश गुंजित (२।२१०।५,८)। यहाँ सच्ची शपथ ग्रहण करने में भी अनर्थ। यदि कुछ बनाकर कहा जाये, तो पाप और नीचता की पराकाष्ठा। — भरद्वाज और मुनि-समाज से

भरत-कथन (२।२११।१-२)। प्रस्थान से पूर्व उनका यहाँ मज्जन (२।२१६।१) 'जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु' (२।२२३)। समाजसहित जनक का यहाँ अवगाहन (२।२७२।६)। 'भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू' (२।२८६।५)। लौटते समय पुष्पक से राम का सीता को प्रयाग दिखाना। इसके दर्शन से कोटि जन्मों के पाप-नाश का कथन (६।१२०।७)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में राम के यहाँ निवास का उल्लेख (७।६५।३)।

मूल शब्द– १।१।२, २।१०६।१, २।१०८।५, २।१०८, २।२०३। पयाग– २।२१०।५, पयागा– २।२१०।८। पयागू– २।२८६।५। प्रयागा– १।४४।१, २।२०८।५, २।२७२।६, ६।१२०।७, ७।६५।३। प्रयागु– २।२२३।

पर्याय – **तीरथपति** – १।४४।३, २।१०६।२, ६।१२०।७।

तीरथराऊ – १।२।१३, २।२०४।६। तीरथराज – १।२।११; २।१०६।३, २।२०६।१। तीरथराजा – १।४४।७; २।२१६।१। तीरथराजु – २।१०५।२। तीरथराजू – १।२।७, २।२११।१।

प्रहलाद (प्रह्लाद) – विश्वविश्रुत भगवद्भक्त। दैत्याधिपति।

हिरण्यकशिपु ~ कयाधु > प्रह्लाद > विरोचन ~ देवी > बलि। भा० ६।१८।१२-१३, १६।

[संह्लाद, अनुह्लाद और ह्लाद इनके बड़े भाई। राहु-जननी सिंहिका इनकी बहन। हिरण्यकशिपु के तप के लिए जाने पर देवताओं का आक्रमण और दैत्यों पर विजय। उस समय ये माँ (कयाधु) के गर्भ में। कयाधु को बन्दी बनाकर ले जाते हुए इन्द्र से इनके सम्बन्ध में नारद-कथन – ये भगवान् के परमप्रेमी भक्त-सेवक, अत्यन्त बली और निष्पाप महात्मा जिन्हें मारना इन्द्र के लिए अशक्य (अयं निष्किल्विषः साक्षान्महाभागवतो महान्। ७।७।१०।)। इनके प्रति सम्मान-भाव से इन्द्र द्वारा कयाधु की परिक्रमा और मुक्ति। नारद द्वारा उनको दिये गये भागवत धर्म के रहस्य और विशुद्ध ज्ञान का उपदेश इन्हें गर्भ में ही प्राप्त। अतः जन्मते ही ये भगवान् के ज्ञानी भक्त। बचपन से ही खेलकूद छोड़कर उनके ध्यान में जड़वत् तन्मय। जगत् से बेसुध। प्रभु के सान्निध्य, संस्पर्श की अनुभूति। कभी आनन्दोद्वेग से हँसना, कभी विरह-भावना से रुदन। शुक्राचार्य के पुत्र शण्ड और अमर्क इनके शिक्षा-गुरु। उनकी शिक्षा में अपने-पराये का मिथ्या आग्रह होने के कारण इन्हें वह अरुचिकर। उसका केवल मौखिक ज्ञान प्राप्त। इनकी हरिभक्ति की बातें सुन हिरण्यकशिपु को क्रोध, क्योंकि स्वयं वह विष्णु-द्वेषी। इन्हें सुधारने की चेष्टा व्यर्थ। जब उसे विश्वास कि इन पर शण्ड-अमर्क या और किसी का प्रभाव नहीं, इनकी भगवद्बुद्धि जन्मजात और स्वाभाविक, तब किसी भी उपाय से इन्हें मार डालने का आदेश। उस समय इनकी अवस्था केवल पाँच वर्ष की।

दैत्यों का इन्हें शूलों से भेदना, मत्त गजराजों से कुचलवाना, विषधर सर्पों से डसवाना, विष पिलाना, कृत्या राक्षसी उत्पन्न कराना, पहाड़ की चोटी से गिराना, माया का प्रयोग करना, अँधेरी कोठरियों में बन्द करना, बारी-बारी से बर्फ, आग और समुद्र में डालना, पर्वतों के नीचे दबाना, किन्तु सर्वत्र अविचलित रहकर ये भगवान् में तन्मय, भगवान् इनके रक्षक। हिरण्यकशिपु को चिन्ता। इनकी अपरिमित शक्ति का विश्वास, इनके विरोध से अपनी मृत्यु की आशंका। शण्ड, अमर्क के परामर्श से इन्हें वरुण-पाश से बँधवाकर पुनः शिक्षा के लिए भेजना।

गुरु-आश्रम में इनका भगवन्मय जीवन विनम्र सेवक-सा। एक दिन गुरु की अनुपस्थिति में असुर-बालकों को अपने पास बैठाकर भागवतधर्म के रहस्य और विशुद्ध ज्ञान का उन्हें उपदेश देना। माँ के गर्भ में नारद से उपदेश-प्राप्ति का प्रसंग सुनाना। निर्दोष असुर-बालक प्रभावित। सब इनके अनुगत। यह सुनकर हिरण्यकशिपु को क्रोध और अपने हाथ से इनके वध का निश्चय। इनका पिता को समझाना – वे असुर-भाव छोड़ मन में सबके प्रति समता का भाव लायें। यह भगवान् की सबसे बड़ी पूजा। भगवान् सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक। हिरण्यकशिपु की चुनौती। इनकी वाणी को सत्य करने के लिए स्तम्भ से नृसिंह भगवान् का प्राकट्य। उनके नखों से हिरण्यकशिपु विदीर्ण।

भगवान् के करकमलों के स्पर्श से इन्हें परमात्म-तत्व का साक्षात्कार। उनकी स्तुति। उनकी सेवा-भक्ति प्राप्त करने का उपाय पूछना. (····वद मे तव दास्ययोगम्। ७।६।१७।) वर-याचना – इनके मन में कभी किसी कामना का बीज अंकुरित न हो (कामानां हृदयसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।। ७।१०।७।) प्रार्थना – इनके पिता दुस्तर दोष से शुद्ध हो जायें। भगवान् का इन्हें आदेश – ये एक मन्वन्तर तक दैत्याधिपति के भोगों को भोगते हुए उनकी आराधना करें। उनके संस्पर्श से इनके पिता पवित्र, इनके कारण वे उत्तम लोकों के अधिकारी। पिता की अन्त्येष्टि

करके, वेदवादी मुनियों की आज्ञा से, ये भगवन्निमित्त सब कार्य करें। नृसिंह भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर ब्रह्मा का इन्हें दैत्याधिपति बनाना। भा० ७।४।३०-४६, ७।५-९, ७।१०।१-३४। भगवान् दत्तात्रेय से इन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्राप्त। भा० ११।३।११। ये भगवान् की विभूति (प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां। गीता० १०।३०।)।

एक बार कुछ मंत्रियों के साथ लोगों के मन की बात जानने की इच्छा से विचरण करते हुए इन्हें दत्तात्रेय मुनि के दर्शन। उनसे परमहंसों के धर्म का श्रवण। भा० ७।१३। बलि के अभिषेक के बाद विश्वजित् यज्ञ के समय इनके द्वारा उन्हें कभी न मुरझानेवाले फूलों की माला प्रदत्त। भा० ८।१५।६। बलि को सुतल लोक में भेज़कर भगवान् का इन्हें भी वहीं जाकर रहने का आदेश। वहाँ गदाधारी भगवान् के नित्य दर्शन से इनके कर्म-बन्धन नष्ट होंगे। भा० ८।२३।९-१०। हरिवर्ष खण्ड में नृसिंहरूप में विराजमान भगवान् की इनके द्वारा उपासना। भा० ५।१८।७-८।]

नाम के प्रताप से इनके भक्त-शिरोमणि होने का कथन (१।२६।४)। नाम-जप करनेवालों के उपमान (१।२७)। भगवान् द्वारा इनके सुयश-विस्तार का कथन (१।१२२।८)। 'नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा' (२।२६५।५)।

मूल शब्द — १।२७, १।१२२।८। प्रह्लादा — २।२६५।५। प्रह्लादू — १।२६।४।

प्रहस्त — रावण का एक सेनापति। मन्त्र-तत्वज्ञ। वा० रा० ५।४९।११, ६।५८।४। सुमाली और गन्धर्वकन्या केतुमती का पुत्र। रावण की माता कैकसी का भाई। वा० रा० ७।५।३९-४२। (मानस ६।१०।२-४ में यह रावण-पुत्र)।

मन्त्रियों की ठकुरसुहाती सुनकर इसका रावण से करबद्ध निवेदन — अल्पबुद्धि मन्त्रियों की बातों में आकर वह नीति-विरुद्ध कार्य न करे! हनुमान् के लंकादहन और राम के सेतुबन्ध का स्मरण कराके इसका मन्त्रियों को फटकारना (६।८-६।९।६)। इसका रावण को नीति-उपदेश और परामर्श—पहले दूत भेजकर, फिर सीता को लौटाकर वह राम से प्रीति करे। इस तरह राम लौट जायें, तो संघर्ष का प्रयोजन नहीं। न लौटें, तो युद्ध किया जाये (६।९।७ - ६।१०।१)। पुत्र की यह सलाह सुन रावण को क्रोध। उसका इसे डाँटना। इसका भी पिता (रावण) को कठोर वचन कहते हुए गृह-गमन (६।१०।२-५)।

मूल शब्द — ६।८।

प्राची — पूर्व दिशा। इसी दिशा में सूर्योदय।

'बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची' (१।१६।४)। इस दिशा में चन्द्रमा का उदय (१।२३७।७, ६।११ ख)। यह गिरि-गुहा का उपमान (६।१२।१)। इसका उल्लेख (१।२२४।१)।

मूल शब्द — १।१६।४, १।२३७।७।

पर्याय — **पूरब दिसा** — १।२२४।१, ६।११ख, ६।१२।१।

प्रियब्रत (प्रियव्रत) — भगवद्भक्त। पृथ्वीपति।

स्वायम्भुव मनु ~ शतरूपा > प्रियव्रत ~ (१) बर्हिष्मती (विश्वकर्मा-पुत्री) > आग्नीध्र आदि दस पुत्र, कन्या ऊर्जस्वती ~ शुक्राचार्य, (२) दूसरी भार्या > उत्तम, तामस, रैवत (तीनों अपने-अपने नामवाले मन्वन्तरों के अधिपति)।

भा० ४।८।७, ५।१।२४-२५,२८, ३४।

[ये आत्माराम। नारद से इन्हें परमार्थ-तत्व का ज्ञान प्राप्त। पृथ्वी का शासन-भार सँभालने की आज्ञा इन्हें अरुचिकर। पुनः ब्रह्मा के आदेश से वह दायित्व स्वीकार करने को विवश।

सुमेरु की परिक्रमा करते हुए सूर्य से पृथ्वी का आधा भाग प्रकाशित, आधे में अन्धकारमयी रात्रि। यह देख इनका संकल्प — 'रजनीमपि दिनं करिष्यामि'। सूर्य के समान ज्योतिर्मय वेगवान् रथ पर चढ़ सूर्य के पीछे-पीछे इनके द्वारा पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ। इनके रथ के पहियों से बनी लीकों से सप्तसागर निर्मित, लीकों के बीच की भूमि से सप्तद्वीप। इन समुद्रों और द्वीपों का पृथ्वी के चारों ओर विस्तार।

इनके तीन पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी। शेष सात पुत्रों को सातों द्वीपों का राजा बनाकर ये जग-प्रपंच से विरक्त। भगवच्चिन्तन करते हुए नारद के बताये मार्ग का पुनः अनुसरण। भा० ५।१।]

ये मनु-शतरूपा के कनिष्ठ पुत्र, वेद-पुराण द्वारा प्रशंसित (१।१४२।४)।

बड़वानल — समुद्रस्थित कालानल। बृ० को०।

[रुद्र के तीसरे नेत्र से प्रकट अग्नि कामदेव को भस्म कर उद्दीप्त हो जगत् को जला देने के लिए उद्यत। शिवकृपा से ब्रह्मा द्वारा यह तत्काल स्तम्भित। अश्व-रूप में परिणत। इस अश्व के मुख से सौम्य ज्वाला प्रकट। प्रलयकाल तक इसे धारण करने का सागर को ब्रह्मा-आदेश और कथन — जल ही इसका आहार होगा। यह सागर में प्रविष्ट। ज्वालमालाओं से इसके द्वारा जलराशि का दहन। शि० पु० रु० तृ० पा० २०।

अत्याचारी क्षत्रियों के प्रति भृगुवंशी और्व की क्रोधग्नि सब लोकों का विनाश करने को उद्यत। पितरों के कहने से और्व का उसे समुद्र में डालना। क्रोधाग्नि का अश्व-मुख धारण करना। मुख से आग उगलना, सागर का जल पीना। महा० आदि० १७९।१७-२२।

इसके दो नाम — बाड़व तथा और्व। अ० पु० पृ० ६४१।]

'तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल' (५।३३)। प्रभु-प्रताप का उपमान (६।१।२)।

बदरीबन — चारों धामों में एक, बदरिकाश्रम का वन।

[प्राचीन काल में यहाँ बदरी (बेर) का एक विशाल वृक्ष। इसकी शाखाओं का दूर-दूर तक विस्तार। स्वादिष्ट दिव्य फल जिनसे मधु-स्रवण। इसकी सघन छाया में महर्षियों का वास। चतुर्दिक् मनोरम वृक्षों का वन। इसके पास ही नर-नारायण का आश्रम। (भा० ११।४ में ये दोनों धर्म और दक्षसुता मूर्त्ति से उत्पन्न। भगवान् के अवतार। यहाँ इनका कठोर तप।) निकट ही विशालापुरी। सब मिलकर बदरिकाश्रम तीर्थ। महा० वन० ९०।२५, वन० १४५। लीला-संवरण से पूर्व भगवान् का उद्धव को यहाँ तप करने के लिए भेजना। भा० ११।२९।४१-४४।

चारों युगों में इसके चार नाम — कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा। विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः॥ स्क० पु० वै० ब० १५७। सत्ययुग में भगवान् का प्रत्यक्ष रहकर यहाँ तप। त्रेता में केवल योगाभ्यासी ऋषियों को उनके दर्शन। द्वापर में मुनियों और देवताओं के लिए भी उनके दर्शन दुर्लभ। मनुष्यों की कुबुद्धि के कारण वे अन्तर्धान। लोक-कल्याण के लिए नारदतीर्थ (नारदकुण्ड) से उनकी मूर्त्ति का उद्धार कर उसे स्वयं स्थापित करने की शिव की प्रतिज्ञा। उस मूर्त्ति के दर्शनमात्र से पापनाश होने का कथन। स्क० पु० वै० ब० ५।३-५, २३-२५।

मन्दिर में कुबेर, नारद, उद्धव, चरण-पादुका-युगल, नर-नारायण, श्रीदेवी, भूदेवी के बीच बदरीविशाल का श्रीविग्रह। प्रांगण में शंकराचार्य की गद्दी। वहाँ शिष्यों-सहित उनकी प्रस्तर-मूर्त्ति स्थित। वहीं नारायण की धातु-निर्मित उत्सव-मूर्त्ति भी। मन्दिर के पीछे नारायण पर्वत, सामने अलकनन्दा, उस पार नर पर्वत। नदी में, समतल और नर पर्वत पर अनेक तीर्थ। दो मील दूर माणा ग्राम। वहाँ से सत्पथ का मार्ग। कहते हैं, सत्पथ से पाण्डवों के महाप्रस्थान का पथ — स्वर्गारोहण पर्वत — दिखायी देता है।]

प्रभु-आज्ञा से तपःपुंज स्त्री (स्वयंप्रभा) का यहाँ आना (४।२५)।

बनमाला — राम या विष्णु के गले की माला।

[यह चरण-कमलों तक लम्बी — पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। वि० १।१९२।छं० १ व्या०। इसमें पाँच पुष्प—तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात एवं कमल। मा० पी० १।१४७।६ नोट १।]

यह माला सगुण ब्रह्म राम (१।१४७।६), चतुर्भुज विष्णु (१।१९२।छं०१), दाशरथि राम (३।३४।७) के गले में शोभित

मूल शब्द — १।१४७।६, १।१९२।छं० १, ३।३४।७।

बरषा रितु (वर्षा ऋतु) — (१) भारत की छः ऋतुओं में एक। इसके दो मास — श्रावण और भाद्रपद। (२) आषाढ़ से आश्विन तक के चार मास (चौमासा) वर्षा के। वि० १।१९ व्या०।

नाम-महिमा-कथन-प्रसंग में 'बरषा रितु रघुपति भगति ...' (राम नाम के दो अक्षर क्रमशः श्रावण और भाद्रपद।) (१।१९)। रामकथा के अन्तर्गत निशाचरों के साथ घोर युद्ध वर्षाऋतु जो देव-समूहरूपी धान के लिए सुमंगलकारी (१।४२।५)। [चारों फाटक की लड़ाई, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध श्रावण की और रावण-वध भाद्रपद की वर्षा। वि० १।४२।५ व्या०।] शिव-धनु के निकट पहुँचकर, सीता की चरम विकलता देख राम के मन में विचार — 'का बरषा जब कृषी सुखाने' (१।२६१।३)। राम के विनीत बचन सुन कौसल्या की स्थिति — 'जिमि जवास परें

पावस पानी' (२।५४।२)। चित्रकूट में अवधवासियों का सुखानुभव, जैसे पहली वर्षा के जल से मेढक और मोर का (२।२५१)। राम द्वारा वर्षा वर्णन — इस ऋतु में आकाश को आच्छादित कर मेघों का उमड़-घुमड़कर गरजना। (यह विरही राम के लिए दुःखद)। बिजली का कौंधना। मोरों का नर्त्तन। वृष्टि। पर्वतों का जलाघात को सह लेना। छोटी-छोटी नदियों में जल-प्लावन। तटों की मर्यादा तोड़ उनका वेग से बहना। सागर में जाकर वे स्थिर। वर्षाजल भूमि पर पड़ते ही गँदला। उससे तालाव पूरित (४।१३।८ - ४।१४।८)। घास से परिपूर्ण भूमि हरी-भरी। पथ अदृश्य। चतुर्दिक् मेढकों की ध्वनि (४।१४ - ४।१५।१)। वृक्षों में नव पल्लव। अर्क (मदार) और जवास पत्रहीन। धूल का लेश भी नहीं। पृथ्वी अन्न-सम्पन्न हो शोभित। अँधेरे में जुगनुओं की चमक (४।१५।२-६)। महावृष्टि से खेतों की क्यारियों का टूटना। चतुर किसानों का खेतों को निराना (घास तृण आदि विजातीय पदार्थों को निकाल फेंकना)। चक्रवाक के कहीं दर्शन नहीं। ऊसर भूमि में वर्षा निष्फल (४।१५।७-१०)। भाँति-भाँति के जीवों से पृथ्वी शोभित। श्रान्त पथिकों का जहाँ-तहाँ ठहरना। कभी प्रवल पवन से मेघ विलीन, कभी दिन में ही गहन अन्धकार, कभी सूर्य का प्राकट्य (४।१५।११ - ४।१५ ख)। इस ऋतु के वीतने पर शरदागमन (४।१६।१, ४।१८।१)।

४।१३ एवं ४।१४।२ से ४।१५ ख तक प्रत्येक दोहे की पहली पंक्ति और प्रत्येक चौपाई के प्रथम चरण में वर्षा या उसके प्रभाव का वर्णन, उसी दोहे की दूसरी पंक्ति और उसी चौपाई के द्वितीय चरण में उदाहरण-स्वरूप मानसिक वृत्ति, नीति, ज्ञान, भक्ति आदि से सम्बन्धित मर्म-कथन।

वर्षा ऋतु उपमान — मन्थरा का (२।२३।५), स्त्री का (३।४४।३)। रावण-युद्ध-वर्णन में वर्षा ऋतु की उत्प्रेक्षाएँ (६।८७।२-१०), आप्लावित नदी का रूपक और उत्प्रेज्ञा (६।८७।छं०, ६'८७)। अन्य उत्प्रेक्षाएँ (४।१६।२, ४।४६।६, ६।७६।३)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इस ऋतु के वर्णन का कथन (७।६६ख)। इसका उल्लेख (४।१२।८)।

मूल शब्द — १।१६, १।४२।५, १।२६१।३, २।२३।५, ३।४४।३, ४।१२।८, ४।१३।८, ४।१६।१, ४।१६।२, ४।१८।१, ७।६६ ख।

पर्याय — **पावस** — २।५४।२, २।२५१।

प्राबिट (प्रावृट्) — ६।४६।६, ६।७६।३।

बराह (वराह) — भगवान् के दशावतार में तृतीय अवतार। कूर्म, शेष और पृथ्वी को धारण करनेवाले।

[प्रलय-जल में डूबी पृथ्वी का रसातल में जाना। उसके उद्धार के लिए ब्रह्मा द्वारा हरि का स्मरण। उनके नासिकाछिद्र से अँगूठे के आकार का एक वराह-शिशु प्रकट। आकाश-स्थित रहकर क्रमशः आकार का विस्तार करते हुए वराह भगवान् पर्वताकार। इनके गर्जन से दिशाएँ प्रतिध्वनित। मुनियों द्वारा इनकी स्तुति। इनका जल में प्रवेश। पृथ्वी को अपनी दाढ़ों की नोक पर धारण कर इनका ऊपर की ओर आना। हिरण्याक्ष के दुर्वचन और चुनौती की उपेक्षा कर, पृथ्वी को जल के ऊपर उपयुक्त स्नान पर स्थित कर, उसमें अपनी आधार-शक्ति का संचार करना। फिर हिरण्याक्ष का वध। भा० ३।१३।१७-५०, ३।१८-१६। मनोहर रूप धारण कर, पृथ्वी को पत्नी बना, उनके साथ एक दिव्य वर्ष तक इनका एकान्त विलास। ब्र० पु० प्र० ८। ये यज्ञपुरुष, यज्ञपति। सम्पूर्ण यज्ञों की इन्हीं में स्थिति। भा० ३।१३।२४-३६, वि० पु० १।४।३२-३४। उत्तर कुरुवर्ष में भगवान् का इसी रूप में निवास। पृथ्वी द्वारा इनकी उपासना। भा० ५।१८।३४-३५। सर्वप्रथम इनका उपाख्यान शतपथब्राह्मण (१४।१।२।११) में। ध० इ० च० पृ० ४८२।

इनका एक मन्त्र— ऊँ भूः वराहाय नमः। ध्यान — कृष्णांगं नीलवस्त्रं च मलिनं पद्मसंस्थितम्। पृथ्वीशक्तियुतं ध्यायेच्छंखचक्राम्बुजं गदाम्। — स्वामी अखण्डानन्द जी, सत्कथा अंक, कल्याण, पृ० ६६६।]

इस अवतार में प्रभु के हिरंण्याक्षं-वध का कथन (१।१२२।७)। लक्ष्मण द्वारा सम्बोधन (१।२६०।१)। शिवधनु-भंजन की ध्वनि से इनका विचलित होना (१।२६१।छं०)। भरत-विवेक के उपमान (२।२६७।४)। देव-दुःख-दलन के लिए इनके रूप में भगवान् का तृतीय अवतार (६।११०।७)।

मूल शब्द — १।१२२।७, २।२६७।४।

पर्याय — **कोल** — १।२६१।छं०। **कोला** — १।२६०।१।

सूकर — ६।११०।७।

बरुन (वरुण) – जल के अधिष्ठातृ देवता। पश्चिम दिशा के लोकपाल। महा० आदि० २२४।१-२, वन० ४१।२७; अमर० १।८५।

(१) कश्यप ~ अदिति > द्वादश आदित्यों में एक वरुण ~ (क) देवी (शुक्र-कन्या। आइ०एम०।) > बल, सुरा, (ख) गौरी। महा० आदि० ६५।११-१६, ६६।५२, उद्यो० ११७।९।

(२) वरुण ~ चर्पणी > भृगु (द्वितीय जन्म)। भा० ६।१८।४।

[ऋग्वेद में – कहीं अकेले, कहीं मित्र के साथ ये देवों, मनुष्यों एवं समस्त संसार के राजा (ऋ० १।१३२, ५।५८)। (ऋ० में यह उपाधि इन्द्र के लिए भी।) ये प्रकृति के नियमों के अधिपति। द्युलोक एवं पृथ्वी के संस्थापक (ऋ ६।७०, ८।४२)। द्युलोक में इनका और मित्र का निवास (ऋ० ५।६७)। वैदिकोत्तर साहित्य में इनके वैदिक गौरव का लोप। प्रा० च०।

महा० में – ये मेघ-सदृश श्यामवर्ण। वन० ४१।२७। आदि कृतयुग में देवताओं द्वारा इनका जलेश्वर-पद पर अभिषेक। शल्य० ४७।५-१०। जल में ही इनका निवास। आदि० २२४।२। (भा० ५।२१।७ एवं वि० पु० २।८।९-१० में इनकी पुरी मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के पश्चिम में स्थित। भा० में उसका नाम 'निम्नलोचनी', वि० पु० में 'सुखा'।) अपनी सभा में ये वारुणी देवी के साथ विराजमान। सभा० ९।६। इनके आयुध पाश और अशनि। आदि० २२६।३२। ब्रह्मा द्वारा निर्मित गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस एवं विश्वकर्मा-निर्मित कपिध्वजयुक्त रथ इन्हें सोम से प्राप्त। अग्नि द्वारा इन सबकी अर्जुन के लिए इनसे याचना और प्राप्ति। आदि० २२४।३-२०। इनका अर्जुन को पाश प्रदान करना। वन० ४१।२९।

वा० रा० में – वरुणालय रसातल में। वहाँ रावण का आक्रमण। घोर युद्ध। सेनाध्यक्षों-सहित इनके पुत्र-पौत्र पराजित। ये उस समय ब्रह्मलोक में संगीत-रस में मग्न। अपनी विजय की घोषणा कर रावण का प्रस्थान। वा० रा० ७।२३।१६-५३। राजा मरुत के यज्ञ में रावण को देख ये भयवश हंसरूप में परिणत। उसके चले जाने पर अपने स्वरूप में प्रकट। इनका हंसों को वरदान। वा० रा० ७।१८।५, २१, ३०-३२। रामावतार में इनके अंश से सुषेण नामक वानर की उत्पत्ति। वा० रा० १।१७।१५। आदिकवि वाल्मीकि इन्हीं के पुत्र। वा० रा० ७।९६।१९। इनके तेज से वसिष्ठ का जन्म। दे० 'अगस्ति'।

अमर० में इनके नाम – प्रचेता, वरुण, पाशी, यादसां (जलजन्तुओं के) पति, अप्पति। १।६८।]

अन्य लोकपालों – देवताओं के साथ ये भी रावण के अधीन (१।१८२।१०,१२,६।८।३)। विराट् पुरुष राम की ये जिह्वा (रसमय होने के कारण। वि०।) – मन्दोदरी-कथन (६।१५।६)। मन्दोदरी-विलाप में रावण द्वारा इनके विजित होने का उल्लेख (६।१०४।७)।

मूल शब्द – १।१८२।१०, ६।८।३, ६।१०४।७।

पर्याय – **अंबुपति** – ६।१५।६।

बरुनपास (वरुण-वाश) – वरुण का दिव्य आयुध।

[यह अप्रतिषेध्य। वरुण द्वारा इसका शस्त्र-रूप में प्रयोग। इसके बन्धन से मुक्त होना स्वयं मृत्यु के लिए भी संभव नहीं। वरुण द्वारा अर्जुन को पाश-प्रदान। महा० वन० ४१।२९।३१।]

यह उपमान, वि० की व्या० के अनुसार सीता के केश का, मा० पी० नोट ३ के अनुसार जानकी के कण्ठ की रेखाओं का (३।३०।१२)।

बलि – प्रतापी दैत्यराज।

प्रह्लाद > विरोचन ~ देवी > बलि ~ (१) अशना > बाण आदि सौ पुत्र; (२) विन्ध्यावली। भा० ६।१८।१६-१७, ८।२०।१७।

[दुर्वासा-शाप से श्रीहीन इन्द्र और देवताओं को पराजित कर ये त्रिलोक-विजयी। भा० ८।५।१५-१६। अमृत-प्राप्ति के लिए समुद्र-मन्थन में सहयोग देने का देवताओं का प्रस्ताव इन्हें स्वीकार। भा० ८।६। भगवान् के मोहिनी रूप से इनका पक्ष प्रवंचित। अमृत-प्राप्ति देवताओं को। भा० ८।९। क्षीरसागर-तट पर देवासुर-संग्राम में इनका इन्द्र से युद्ध। उनके वज्र-प्रहार से प्राणान्त। इनके पक्ष की पराजय। इन्द्र द्वारा इनका सम्पत्ति-हरण। शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या से ये पुनर्जीवित। भा० ८।१०, ११। उनके चरणों में सर्वस्व अर्पित कर उनकी और

भृगुवंशी ब्राह्मणों की सेवा में ये तत्पर। प्रसन्न विप्रों द्वारा इनका ऐन्द्रमहाभिषेक। इनसे विश्वजित् यज्ञ कराना। यज्ञकुण्ड से इन्हें स्वर्ण-पट्ट-मण्डित रथ, इन्द्र के घोड़ों जैसे हरे रंग के घोड़े, सिंहचिह्न-युक्त ध्वजा, सुवर्ण-पट्ट-मण्डित दिव्य धनुष, दो अक्षय तरकश और दिव्य कवच प्राप्त। पितामह प्रह्लाद से कभी न मुरझानेवाले फूलों की माला और शुक्राचार्य से शंख पाकर, पितामह के चरणों में नमस्कार कर, ये दिव्य रथ पर आरूढ़। भृगुवंशियों के तेज से सम्पन्न। कवच और शस्त्रास्त्र से सज्जित हो, माला धारण कर, विशाल सेना के साथ इनका इन्द्रपुरी पर आक्रमण। इन्हें अनवरोध्य समझ, वृहस्पति के परामर्श से, इन्द्रादि देवताओं का स्वर्ग त्यागकर छिपना। अमरावती पर अधिकार कर ये पुनः त्रिलोक-विजयी।

'भृगुकच्छ' नामक स्थान पर भृगुवंशियों का इनसे सौ अश्वमेध यज्ञ करवाना। अन्तिम यज्ञ के समय वामन भगवान् का आगमन। उनके द्वारा इनकी प्रशंसा और अपने पैरों से तीन डग भूमि की याचना। इन्हें स्वीकार। दान का संकल्प करते समय शुक्राचार्य का इन्हें रोकना। वामनवेश में भगवान् का वास्तविक उद्देश्य बताना, फिर भी ये अपने वचन पर अडिग, क्योंकि इनकी दृष्टि में असत्य सबसे बड़ा अधर्म (नह्यसत्यात् परोऽधर्मः। ८।२०।४)। अपनी अवज्ञा देख शुक्राचार्य का इन्हें श्रीहीन होने का शाप। ये सत्य पर अटल। तीन पग भूमि का संकल्प। वामन भगवान् के बढ़ते हुए विराट् विश्वरूप के दर्शन। भगवान् का एक पग से पृथ्वी नापना, शरीर और भुजाओं से आकाश और दिशाओं को घेरना, दूसरे पग से स्वर्ग को नापना (स्वर्ग को नापते हुए महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक तक पहुँचना), तीसरे पग के लिए त्रिलोक में कोई स्थान शेष नहीं। यह देख दैत्यों का उन पर आक्रमण। इनका दैत्यों को समझाना। गरुड़ का इन्हें वरुण-पाश से बाँधना। असत्यभाषी कहकर भगवान् द्वारा इनका तिरस्कार। इनका निवेदन — भगवान् तीसरा पग इनके मस्तक पर रखें। (वा० रा० में इन्हें बाँधकर विष्णु का पृथ्वी को प्राप्त करना। ३।६१।२४। महा० में तीन पगों से त्रिलोक नाप विष्णु का इन्हें यज्ञमण्डप से बाँधना। सभा० ३८।२६ के बाद दा० पा०, पृ० ७६०। भा० ५।२४।२३-२६ में वरुण-वाश-बद्ध हो पर्वत-गुहा में डाल दिये जाने पर इनके द्वारा भगवान् के दास्य का महिमा-कथन। अपनी स्थिति को भगवान् का अनुग्रह मानना।) इसी समय प्रह्लाद को उपस्थित देख ये लज्जित। ब्रह्मा का भगवान् से इन्हें छोड़ देने का आग्रह। भगवान् द्वारा इनके सत्य और धर्म की प्रशंसा। सावर्णि मन्वन्तर में इनके इन्द्र बनने का कथन। तब तक उनकी कृपादृष्टि का अनुभव करते हुए देव-दुर्लभ सुतललोक में परिवारसहित निर्विघ्न निवास करने का इन्हें आदेश। उनके अनुग्रह की स्वीकृति से ये वरुण-पाश-मुक्त। इनका सुतल-गमन। प्रभु की आज्ञा से अन्य ब्रह्मर्षियोंसहित शुक्राचार्य द्वारा इनके यज्ञ की त्रुटियों की पूर्ति। भा० ८।१५, १८-२३।]

सत्य-धर्म पर अटल रहनेवालों के साथ इनका उल्लेख (२।३०।७, २।६५।४)। प्रभु द्वारा इनके बाँधे जाने का उल्लेख (४।२६, ६।६।८)। इनको जीतने के लिए रावण का पाताल-गमन। बालकों का उसे घुड़साल में बाँध रखना, खेलते हुए जा-जाकर मारना। दया करके इनका छुड़ाना (६।२४।१३-१४) [भा० में भगवान् गदा लिए इनके द्वार पर सदा उपस्थित। एक बार दिग्विजय करते हुए अहंकारी रावण का इनके लोक में जाना। अपने पैर के अँगूठे की ठोकर से भगवान् का उसे लाखों योजन दूर फेंकना। भा० ५।२४।२७।] रावण के इनको जीतने की अंगद की व्यंग्योक्ति (६।२६।८)।

मूल शब्द — २।३०।७, २।६५।४, ४।२६, ६।६।८, ६।२४।१३, ६।२४।१४, ६।२६।८।

बसंत — भारत की छः ऋतुओं में एक। ऋतु-राज। इसके दो मास — चैत्र (मधु) और वैशाख। शिशिर-हत प्रकृति का इस ऋतु में नव-जीवनोल्लास। शृंगार के उद्दीपनरूप में इसकी सुषमा का प्रयोग। [यह कामदेव के फूलों का धनुष बनानेवाला उनका प्रिय सखा। कुमार० ४।२४।]

शिव और नारद की समाधि भंग करने के लिए कामदेव का इसे प्रकट करना। फलतः कुसुम, कमल-भ्रमर-हंस, पिक-कोकिल आदि की सम्पदा के साथ चतुर्दिक् तरु, सरोवर, वन-उपवनों की मोहक शोभा का विस्तार। काम-सखा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन का प्रवहन। प्रकृति सुषमा-सौन्दर्यमयी (१।८६।६,७, छं०, १।१२६।१-३)। जनक-वाटिका में छायी इस ऋतु का वर्णन (१।२२७।३-१।२२७)। वन में राम और सीता के साथ लक्ष्मण, जैसे मदन और रति के साथ वसन्त (२।१२३।३, २।१३३)। भरद्वाज-प्रभाव से ग्रीष्म ऋतु वसन्त में परिवर्तित (२।२१५।७)। इस ऋतु में प्रकृति के विभिन्न रूप शृंगार के उद्दीपन; उनका काम की चतुरंगिणी सेना

के रूप में राम द्वारा वर्णन (३।३७।१०-३।३८।१०)।

इस ऋतु के समान — मानस-सर के रूपक में सन्तों की श्रद्धा (१।३७।१२), रामकथा में राम-विवाह-समाज-वर्णन (१।४२।३)। 'मोह विपिन कहुँ नारि बसंता' — राम-कथन नारद से (३।४४।१)। अन्य आलंकारिक प्रयोग (६।७६।५, ७।२८।२)।

मूल शब्द — १।३७।१२, १।१२६।१, १।२२७।३, २।२१५।७, ३।३७।१०, ६।७६।५, ७।२८।२। बसंता — ३।४४।१।

पर्याय — **मधु** (चैत्र मास, वसन्त का उपलक्षण। वि०।)। — २।१२३।३।

रितुराज — २।१३३। रितुराजा — १।८६।६। रितुराजू — १।४२।३।

बसिष्ट (वसिष्ठ) — एक ब्रह्मर्षि। इनकी गणना स्वायम्भुव एवं वैवस्वत मन्वन्तरों के सप्तर्षियों में (ह० पु० ७।८-९, भा० ८।१३।५), सात चित्रशिखण्डियों में (महा० शा० ३३५।२९), इक्कीस प्रजापतियों में (महा० शा० ३३४।३६), मूल गोत्र-प्रवर्त्तक चार ऋषियों में (महा० शा० २९६।१७)।

(१) ब्रह्मा > वसिष्ठ ~ (१) अरुन्धती (ऊर्जा— देवहूति-कर्दम-कन्या) > चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, द्युमान्, (२) अन्य पत्नी > शक्ति आदि। भा० ३।१२।२१, २२, २७; ३।२४।२१,२३; ४।१।४०,४१।

(२) ब्रह्मा > वसिष्ठ > सौ पुत्रों में ज्येष्ठ शक्ति > पराशर > व्यास। महा० आदि० ६०।१, २; १७३।५, १७५।६, १७७।१, ३ ।

[ये ब्रह्मा के प्राण से उत्पन्न। भा० ३।१२।२३। वसिष्ठत्व एवं गृहस्थाश्रम-वास के कारण 'वसिष्ठ', सर्वश्रेष्ठ होने के कारण 'वरिष्ठ'। — यातुधानी से इनका कथन। महा० अनु० ९३।८४। तपस्या से काम-क्रोध को जीतने और इन्द्रियों को वशीभूत करने के कारण 'वशिष्ठ'। महा० आदि० १७३।५-६।

इनका और निमि का एक-दूसरे को शाप। दोनों का देहपात। दे० 'निमि'। इनका पुनर्जन्म कुम्भ से — अगस्त्य के साथ। दे० 'अगस्ति'। इनके जन्म ग्रहण करते ही राजा इक्ष्वाकु द्वारा अपने कुल के पुरोहित-पद पर इनका वरण। वा० रा० ७।५७।७-८। इनको पाने के कारण इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार। महा० आदि० १७३।१०।

महा० में ये वरुण-पुत्र, अतः 'आपव' नाम से भी विख्यात। मेरु के पार्श्वभाग में इनका रमणीय आश्रम। वहीं इनकी तपःसाधना। होमधेनु के रूप में सुरभि-पुत्री कामधेनु की प्राप्ति। अपने भाइयों की सहायता से द्यो नामक वसु द्वारा धेनु का अपहरण। उन सबको मनुष्य-योनि में जन्म लेने का इनका शाप। उनकी प्रार्थना पर शापानुग्रह —द्यो के अतिरिक्त अन्य वसु प्रतिवर्ष एक-एक करके शाप-मुक्त हो जायेंगे। द्यो को दीर्घकाल तक मनुष्य-लोक में रहना होगा। द्यो वसु का गंगा-शान्तनु-पुत्र देवव्रत (भीष्म) के रूप में जन्म। इनका उन्हें अंगोंसहित वेदों का अध्ययन कराना। महा० आदि० ९९।५-९, २७-४१, ४५ के बाद दा० पा०; १००।३५।

एक समय शिकार खेलते हुए इक्ष्वाकु-वंशी राजा सौदास (वे ही मित्रसह, कल्माषपाद) द्वारा एक राक्षस का वध। प्रतिशोध के लिए उसके भाई का राजा के यहाँ रसोइया बनकर रहना। एक बार ये भोजन के लिए वहाँ उपस्थित। रसोइये (राक्षस) का नर-मांस परसना। इनका राजा को अपराधी समझ राक्षस होने का शाप। पुनः उन्हें निर्दोष जानकर शाप को बारह वर्षों की अवधि तक सीमित करना। राजा भी अंजलि में जल लेकर इनको प्रति-शाप देने के लिए प्रस्तुत। रानी मदयन्ती का रोकना। तब राजा का उस जल को अपने ही पैरों पर डालना। उनके पैर जलकर काले। राक्षस बनकर उनके द्वारा पत्नी-सहवास के समय एक ब्राह्मण का भक्षण। ब्राह्मणी का शाप — सम्भोगावस्था में उनकी मृत्यु भी निश्चित। बारह वर्ष बाद राजा इनके शाप से मुक्त, किन्तु ब्राह्मणी-शाप के भय से सन्तानहीन। उनके अनुरोध पर इनका मदयन्ती को गर्भाधान कराना। सात वर्ष तक गर्भ रहने पर भी बालक के उत्पन्न न होने पर इनके द्वारा अश्म (पत्थर) से गर्भ पर आघात। बालक अश्मक का जन्म। भा० ९।९।२०-३९। (वा० रा० ७।६५ की कथा में ब्राह्मण-दम्पति-प्रसंग और गर्भाधान की बात नहीं।) महा० में सौदास को राक्षस होने का शाप इनके पुत्र शक्ति का। विश्वामित्र की प्रेरणा से राक्षस द्वारा शक्तिसहित इनके सब पुत्रों का भक्षण। ये क्रुद्ध, शोकार्त्त। विश्वामित्र के विनाश में समर्थ होकर भी इनका प्रतिशोध न लेना। अपने ही शरीर

का अन्त करने की चेष्टा करना। देह-त्याग के इनके सब प्रयत्न व्यर्थ। शक्ति-पत्नी अदृश्यन्ती के गर्भस्थ शिशु से वेदमन्त्र सुनकर इन्हें वंश-रक्षा का विश्वास, उससे जीने की प्रेरणा प्राप्त। इन्हें खाने के लिए उद्यत कल्माषपाद का इनके द्वारा शाप से उद्धार। अयोध्या जाकर उनकी रानी को नियोग द्वारा पुत्र देना। महा० आदि० १७५, १७६, १८१; १७३।७-८।

इनसे विश्वामित्र के द्वेष और संघर्ष की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध। उनके जितेन्द्रिय हो जाने पर इनका उन्हें ब्रह्मर्षि मानना। दे० 'बिस्वामित्र'।

अपने पौत्र पराशर को और्वोपाख्यान सुनाकर इनका उन्हें सप्तलोकों को भस्म करने की प्रतिज्ञा से विरत करना। क्रोधाग्नि को समुद्र में डालने का परामर्श। पराशर की राक्षससत्र की दूसरी प्रतिज्ञा को न तोड़ने का इनका विचार, किन्तु बाद में पुलस्त्य के कथन का अनुमोदन कर पौत्र के राक्षससत्र को रोकना। महा० आदि० १७७-१८०।

इनका ब्रह्मपुत्री सन्ध्या को तप-विधि का उपदेश। दे० 'अरुंधती'।

प्रा० च० के अनुसार 'वसिष्ठ' नाम के एकाधिक ऋषि-आचार्य]

एक बार सन्तानाभाव से ग्नानि-पीड़ित राजा दशरथ का इनके घर आगमन। दुःख-निवेदन। इनका राजा को धीरज बँधाना, समझाना — उनके त्रिभुवन-विख्यात, भक्तभयहारी चार पुत्र होंगे (१।१८९।१-४)। इनका शृंगी ऋषि को बुलाकर उनसे पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराना। चरु लेकर प्रकट हुए अग्निदेव का कथन — इनके विचारानुसार सब कार्य सिद्ध (१।१८९।५-७)। [वा० रा० में पुत्रप्राप्ति के लिए दशरथ का अश्वमेध यज्ञ करने का विचार। पूर्वकाल में सनत्कुमार द्वारा ऋषियों से कही गयी ऋष्यशृंग की कथा सुनाकर सुमन्त्र का राजा को परामर्श - यज्ञ कराने के लिए वे स्वयं जाकर ऋष्यशृंग को लायें। वा० रा० १।१०, १।११।१-१२। राजा को चार पुत्र प्राप्त होने का वरदान ऋृष्यशृंग का। इन्हीं के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का संकल्प। वा० रा० १।१४।५६, १।१५।१-२।] राम-जन्म होने पर इनका ब्राह्मणों के साथ आना। बालक के दर्शन करना (१।१९३।७-८)। इनके द्वारा विचारपूर्वक चारों भाइयों का नामकरण और राजा से कथन — उनके पुत्र वेद के तत्व, मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व, शिव के प्राण (१।१९७।२-१।१९८।२)। राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने में राजा की आपत्ति देख इनका उन्हें समझाना। राजा का सन्देह-नाश (१।२०८।८)। [अ० रा० में कश्यप-अदिति के तप और वरप्राप्ति का उल्लेख कर इनका कथन — राम भगवान् के, लक्ष्मण शेष के, भरत-शत्रुघ्न क्रमशः शंख-चक्र के अवतार। राम से उनकी योगमाया सीता का संयोग कराने के लिए ही विश्वामित्र का आगमन। अ० रा० १।४।१२-१६।]

इनके पास आकर राजा का इन्हें जनक-पत्रिका देना; जनक के दूतों को बुलाकर उनके मुख से सब वृत्तान्त सुनवाना। इन्हें अत्यधिक सुख। सुकृती, पुण्यात्मा आदि कहकर इनके द्वारा राजा की प्रशंसा। बरात सजाकर शीघ्र प्रस्थान करने का आदेश (१।२९३-१।२९४)। राजा का इन्हें तेजपुंज सुन्दर रथ पर चढ़ाना। इनके साथ राजा की शोभा वैसी ही जैसी वृहस्पति के साथ इन्द्र की। (१।३०१, १।३०२।१, ३)। जनकपुर में राम-लक्ष्मण का इनके चरणों में नमन। प्रेममग्न होकर इनका उन्हें हृदय से लगाना (१।३०८।५)। विवाह-मण्डप में जनक द्वारा कुल के इष्टदेव-सदृश इनका पूजन, विनती और आशीर्वाद-प्राप्ति (१।३२०।छं०)। विवाह का समय देख इनका शतानन्द को सादर बुलाना। कन्या को शीघ्र लाने का उनसे कथन (१।३२२।१-२)। सीता के मण्डप में आने पर शतानन्द के साथ इनके द्वारा वैदिक विधि और लोकाचार सम्पादित। ये गुरु (कुलगुरु), अतः प्रथम पूजा इनकी (१।३२३।७-१।३२३।छं०१)। इनके द्वारा शाखोच्दार (१।३२४।छं०३) इनकी आज्ञा से वर-वधू का एक आसन पर बैटना (१।३२५।१०)। इनका आदेश पाकर जनक का माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्त्ति को बुलाना और क्रमशः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न से उनका विवाह करना (१।३२५।छं० २-३)। दशरथ का इनसे करबद्ध निवेदन — इनकी कृपा से वे पूर्णकाम। अब ये विप्रों को बुलाकर गोदान दें। (१।३३०।४-८)।

शुभ लग्न देखकर, दशरथ को अयोध्या में प्रवेश करने की इनकी आज्ञा (१।३४७।७)। इनके आदेशानुसार दशरथ द्वारा वेद-विधि और लोक-रीति सम्पादित (१।३५२।१)। रानियों-पुत्रों-पुत्रवधुओं-सहित उनके द्वारा इनकी चरण-वन्दना। सुत-सम्पदा आगे रखकर उनकी विनती। माँगकर इनका नेग लेना। सबको अनेक प्रकार से आशीर्वाद देना। सियराम को हृदय में धारण कर हर्षित हो इनका प्रस्थान (१।३५२।८-१।३५३।३)। विश्वामित्र के

साथ इनका सभा में आगमन। इनके द्वारा धर्म-इतिहास का कथन, विश्वामित्र का चरित्र-वर्णन। वामदेव द्वारा इनका अनुमोदन (१।३५६।३-७)। पुनः विश्वामित्र चरित्र-कथन (१।३६१।१)।

राम को युवराज-पद देने का विचार करके दशरथ का इनके पास आकर निवेदन – इनकी पावन चरण-धूलि के प्रभाव से उन्हें सब कुछ प्राप्त। अब राम को युवराज बनाने की अभिलाषा भी ये पूर्ण करें। इनका उन्हें शीघ्रता करने का आदेश। इनका कथन – 'सुदिन सुमंगल तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु' (२।२-२।४)। [ये त्रिकालज्ञ। इन्हें ज्ञात कि अभिषेक तभी होगा जब राम चाहेंगे, अभी नहीं। किन्तु राजा को पहले ही निराश न करने के लिए शीघ्रता करने का कथन। इनके श्लिष्टपद के गूढ़ार्थ की ओर प्रेममग्न राजा का ध्यान नहीं। मा० पी०, 'सुदिन सुमंगल तबहि…' १,३,५,६,७।] रामाभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री-संग्रह और सज्जा-आयोजन का इनका आदेश (२।५-२।७।१)। राम को कर्त्तव्य-शिक्षा देने के लिए राजा का इन्हें राम के महल में भेजना। राम द्वारा पूजित होकर, उनके शील की सराहना कर, इनका राम को संयम् आदि का उपदेश (२।६।१-२।१०।४) (वि० के अनुसार) इनका स्मरण कर दशरथ की प्रार्थना कि ये सूर्योदय न होने दें (२।३७।३)। [मा० पी० में रवि से प्रार्थना कि वे अपना उदय न करें।] वन जाते समय राम का इनके द्वार पर आना। दास-दासियों को इनके सुपुर्द कर इनके चरणों में नमन (२।८०।१,३,५; २।८१।१)।

दशरथ की मृत्यु पर समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर इनके द्वारा सबका शोक-निवारण। राजा की देह को तैलपूर्ण नाव में रखने के बाद भरत-शत्रुघ्न को बुलाने के लिए दूत-प्रेषण (२।१५६-२।१५७।४)। वामदेव-सहित इनका भरत को परमार्थोपदेश। अवसर के अनुकूल कार्य करने की आज्ञा (२।१६६।७-२।१६६, २।१७०।७)। शुभ दिन देख राजसभा में जाकर भरत-शत्रुघ्न और मन्त्री आदि को बुलाना। भरत को अपने पास बैठाकर धर्मनीतिमय उपदेश देना। कैकेयी-वरदान से राम-वनगमन तक का वृत्तान्त कहते हुए ये शोक-स्नेह-मग्न। भरत को प्रबोधन—भावी प्रबल। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश सब विधाता के हाथ। दोष किसे दिया जाये! (२।१७१।२-२।१७२।१)। दशरथ शोच करने योग्य नहीं। शोचनीय तो वह जो धर्म-कर्तव्य-प्रभुप्रेम से च्युत। यह कहकर इनके द्वारा दशरथ की प्रशंसा। परशुराम और ययाति-सुत पूरु के दृष्टान्त देकर इनका कथन – भरत उचित-अनुचित का विचार त्याग पितृ-वचन का पालन करें, ग्लानि छोड़ राज्य करें। राम के लौटने पर उन्हें राज्य सौंप दें (२।१७२।२-२।१७५।८)। कौसल्या और मन्त्रियों का भरत से इनकी आज्ञा मानने का अनुरोध (२।१७५, २।१७६।१,२,६)। इनके उपदेश को हितकारी मानकर भी भरत को परितोष नहीं (२।१७६।७, २।१७७।१,६)। भरत की ग्लानि और रामप्रेम देखकर सबके साथ ये भी स्नेह-विकल (२।१८४।३)।

अग्निहोत्र-सामग्री लेकर अरुन्धती के साथ रथारूढ़ होकर चित्रकूट के लिए इनका सबके आगे प्रस्थान (२।१८७।५)। शृंगवेरपुर में निषादराज का इन्हें नाम बताकर दूर से ही दण्डवत् प्रणाम करना। उसे रामप्रिय जानकर इनका आशीर्वाद देना। भरत को उसके रामप्रेम के सम्बन्ध में समझाना (२।१९३।५-६)। इनके चित्रकूट-आगमन का संवाद सुन लक्ष्मण-सहित राम का वेग से इनके निकट आकर दण्डवत् प्रणाम करना। इनका दौड़कर उन्हें हृदय से लगाना। प्रेम से उमगकर दोनों भाइयों से मिलना। प्रेमपुलकित केवट (निषादराज) को दूर से नामग्रहणपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करते देख इनका उसे रामसखा समझकर जबर्दस्ती गले से लगाना (२।२४२-२।२४३।६, २।२४३।८, २।२४३)। आश्रम में इनके आने पर सीता द्वारा इनका चरण-स्पर्श और आशीर्वाद-लाभ (२।२४५।७-२।२४६।१)। स्नेह-विकल सीता और रानियों को इनके द्वारा परमार्थोपदेश। राम से दशरथ के स्वर्गवास का समाचार-कथन। उन्हें समझाना (२।२४७।१-३,७)। दूसरे दिन इनके आदेशानुसार राम द्वारा सब कार्य (पिता का क्रिया-संस्कार आदि) सम्पादित (२।२४७)। राम की इनसे अयोध्या लौटने की प्रार्थना। इनका कथन – दुःखित अवधवासी दो दिन उनके दर्शन कर शान्ति-लाभ कर लें (२।२४८।४-२।२४८, २।२४६।२)।

भरत की चिन्ता – इनकी आज्ञा से राम अवश्य लौटेंगे, किन्तु ये राम की रुचि के अनुरूप ही कहेंगे (१।२५३।३)। इनका भरत को बुलवाना। अवध-समाज का एकत्र होना। इनके द्वारा राम के ऐश्वर्य-रूप का उद्घाटन और कथन – राम की आज्ञा और रुचि के अनुसार कार्य करने में ही कल्याण। उपस्थित सुजान व्यक्ति कर्तव्य-कर्म का, राम के अयोध्या लौटने का उपाय विचारें (२।२५३।४-२।२५५।२)। इनके नीति-स्वार्थ-परमार्थ-युक्त

वचन सुन सब मौन। भरत का निवेदन — इनका आशीर्वाद दुःखनाशक और कल्याण-साधक। ब्रह्मा की अशुभ-कर्म-विपाक-गति को रोकने में ये समर्थ। इनकी टेक अटल। (अतः ये राम को लौटाने की टेक पकड़ लें। वि०) भरत की दृष्टि में यह उनका दुर्भाग्य कि ये उनसे उपाय पूछ रहे हैं (२।२५५।३, २।२५५।७-२।२५५)। प्रेम, संकोच से इनका कथन — राम-लक्ष्मण अयोध्या लौटें। उनके स्थान पर भरत-शत्रुघ्न वन जायें (२।२५६।१-२।२५६।३)। प्रसन्न भरत की विनती — ये सर्वज्ञ, सुजान। इन्हें भरत-प्रेम का ज्ञान। ये अपने कथन के अनुसार व्यवस्था करें (२।२५६।४, २।२५६।७-२।२५६)। यह सुनकर इन्हें देह-सुधि-विस्मृत। भरत-महिमा-वर्णन में ये असमर्थ। समाज-सहित इनका राम के पास गमन। चित्रकूट की प्रथम सभा — इनका राम से सबके कल्याण का उपाय करने के लिए कहना। राम की विनय — इनके आदेश-पालन में ही सबका हित। इनका कथन — भरत की विनती सुन वे वेद-साधु-लोक-राजनीति की मर्यादा के अनुसार व्यवस्था करें (२।२५७।१-२।२५८)। पुनः भरत के कथनानुसार सब कुछ करने का राम का अनुरोध सुनकर इनका भरत को आदेश — वे संकोच त्याग राम से हृदय की बात कहें (२।२५९।३-२।२५९)। भरत का निवेदन — 'कहब मोर मुनिनाथ निबाहा' (२।२६०।४)। अनेक पुरानी कथाएँ कहकर इनके द्वारा व्याकुल भरत का प्रबोधन (२।२६३।३)।

इनका जनक-दूतों को बुलाना। जनक-सम्बन्धी कुशल-प्रश्न (२।२७०।४,२।२७०।६-८)। सब समाचार सुनकर कुछ भीलों को साथ करके इनका दूतों को विदा करना (२।२७२।७-८)। प्रेममग्न विदेह जनक को इनका अनेक प्रकार से समझाना (२।२७६, २।२७७।६)। शतानन्द आदि के साथ इनका सबको उपदेश (२।२७८।२-३)। सबको फल-मूलादि भिजवाना (२।२७९)। सबके हित के लिए इनसे यथायोग्य उपाय करने की राम की प्रार्थना। राम-प्रशंसा कर इनका जनक के पास जाना। उनसे राम की प्रार्थना निवेदित करना (२।२९०।३ - २।२९२।१)। भरत और जनक-समाज के साथ इनका राम के पास जाना। देवताओं का सर्वप्रथम इनकी स्नेह-शिथिल दशा को लक्ष्य करना (२।२९४।४,६)। चित्रकूट की दूसरी सभा में राम को जनक-भरत-संवाद और भरत-निवेदन सुनाकर इनका कथन — इनके मत से राम की आज्ञा ही सबके लिए पालनीय (२।२९६।३-५)। राम का शपथपूर्वक कथन कि इनकी और जनक की आज्ञा ही शिरोधार्य (२।२९६।८)। तीसरी सभा में भरत को राम की शिक्षा — सबकी चिन्ता तो इन्हें और जनक को। सारा दायित्व इनके चरण-रज पर (२।३१५।१,७)। चित्रकूट से इनके लौटते समय सिय-राम-लक्ष्मण द्वारा अरुन्धतीसहित इनकी चरण-वन्दना (२।३२०)। भरत का इनसे नियमपूर्वक रहने का आदेश माँगना। इनका उन्हें साक्षात्कृतधर्मा कहकर आशीर्वाद देना (२।३२३।७-२।३२३)।

अयोध्या लौटकर राम का सानुज इनके चरण पकड़ना। इनका उन्हें गले से लगाना (७।५।२-४)। सखाओं को (साथ आये विभीषण, हनुमान्, अंगद आदि को) इनकी चरण-वंदना करने का राम का आदेश। उन्हें इनका, और इनको सखाओं का परिचय देना (७।८।५-८)। इनका ब्राह्मणों को बुलाना। उस शुभ मुहूर्त्त के दिन राम-राज्याभिषेक की आज्ञा माँगना। इनसे विलम्ब न करने का विप्रों का अनुरोध। सुमन्त्र को अभिषेक-सामग्री एकत्र करने का इनका आदेश (७।१०।४-७।१०ख)। अभिषेक के समय राम को देख इनके मन में अनुराग। इनका दिव्य सिंहासन मँगवाना (७।१२।१)। राम को पहले स्वयं तिलक करके विप्रों को तिलक करने की इनकी आज्ञा (७।१२।५)।

रामराज्य में प्रातःकाल राजसभा में इनके द्वारा वेद-पुराण का व्याख्यान (७।२६।२)। रामगीता (पुरजनों को रामोपदेश) के समय ये भी उपस्थित (७।४३।१-२)। एक बार एकान्त में इनका राम के पास जाना। राम द्वारा गुरुभाव से इनका आदर, पद-प्रक्षालन, चरणामृत-ग्रहण। परमात्म-भाव से हाथ जोड़कर इनकी प्रभु से विनती—निन्दित पौरोहित्य-कार्य इन्हें स्वीकार न था, किन्तु ब्रह्मा ने कहा कि इससे भविष्य में इन्हें लाभ होगा, स्वयं परमात्मा ब्रह्म रघुकुल में नररूप में अवतार लेंगे। तब इनका विचार कि पौरोहत्य यदि भगवत्प्राप्ति का साधन, तो इनके लिए यह सबसे बड़ा धर्म। [पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम्।। इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते। इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा।। ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकांक्षया। अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये।। ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन। — राम को अभिषेक का संवाद देने से पूर्व इनका कथन। अ० रा० २।२।२८-३१।] इनकी दृष्टि में राम-पद-प्रीति सब साधनों का सुन्दर फल। प्रभु से इनकी वर-याचना — 'जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु' (७।४८।१-७।५०।१)।

इनका उल्लेख (१।३४२।७, २।२८९।३)। इनसे आज्ञा-प्राप्ति, इन्हें नमन, इनके अनुग्रह आदि के सामान्य कथन के लिए, अथवा केवल इनका उल्लेख करने के लिए अनेक स्थानों पर गुर, गुरु, मुनि, मुनिवर आदि शब्दों का इनके लिए प्रयोग।

मूल शब्द — १।१८९।३, १।१८९।५, १।१८९।७, १।९३।७, १।३०१, १।३०२।१, १।३०८।५, १।३२२।१, १।३२५।१०, १।३२५।छं०२, १।३४२।७, २।८०।१, २।१५६, २।१६९।७, २।१७१।४, २।२४३।८, २।२७०।४, २।२७६। बसिष्ट — १।१९७, १।२०८।८, १।२९३, १।३२०।छं०, १।३५२।१, १।३५९।६, ७।५।२, ७।८।६, ७।१०।४, ७।१०।६, ७।१०ख, ७।१२।५, ७।२६।२, ७।४८।१, ७।५०।१। बसिष्ठु — १।३५९।३, १।३५९।५। बसिष्ठु — २।९।१।

पर्याय — **रघुकुल गुर** — १।३६१।१, २।३७।३ (वि० के अनुसार वसिष्ठ, मा० पी० में रवि)।

रघुबंस पुरोधा — २।२६९।३।

रामगुर — २।२७९, २।२८९।३।

हंसबंस गुर — २।२७८।२।

बान (वाण) — दैत्यराज बलि के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ। भा० १०।६२।२।

[यह शोणितपुर का राजा। सदा शिवभक्ति में लीन। उनकी कृपा से इसे एक सहस्र भुजाएँ प्राप्त। इन्द्रादि इसके सेवक। एक बार जब शंकर ताण्डव-नृत्य में मग्न, तब अपने हजार हाथों से बाजे बजाकर इसका उन्हें प्रसन्न करना। उनसे यह वर माँगना कि वे इसके नगर की रक्षा करते हुए वहीं वास करें।

अपनी पुत्री ऊषा और कृष्ण-तनय अनिरुद्ध का प्रणय देख यह क्रोधातुर। अनिरुद्ध को नागपाश में जकड़कर बन्दी बनाना। तब कृष्ण का आक्रमण। इसकी ओर से लड़ते हुए शंकर उनके जृम्भ्रणास्त्र से मोहित। कृष्ण द्वारा इसकी भुजाओं का छेदन। शिव के अनुरोध से इसकी चार भुजाओं को अजर-अमर बनाकर छोड़ देना। प्रह्लाद को दिये गये वर के कारण इसका वध न करना। भा० १०।६२-६३।]

यह महाभट। मेरु पर्वत को उठाने में समर्थ! किन्तु शिवधनु को देख उसका स्पर्श तक न करना। उसकी परिक्रमा करके इसका चुपचाप चले जाना (१।२५०।२, १।२५६।३, १।२९२।७)।

मूल शब्द — १।२५६।३। बानु — १।२५०।२।

पर्याय — **सरासुर** — १।२९२।७।

बामदेव (वामदेव) — एक महर्षि। राजा दशरथ के ऋत्विज। वा० रा० १।७।४।

[कुछ विद्वानों के मत से एकाधिक ऋषियों का नाम 'वामदेव'।

(१) ये गौतम ऋषि के पुत्र। आचार्य एवं वैदिक सूत्रकार। ऋग्वेद के प्रायः समस्त चौथे मण्डल के प्रणेता। माता के गर्भ में ही इन्हें आत्मज्ञान प्राप्त। वैदिक साहित्य के अनुसार — (क) अपनी माता का उदर विदीर्ण कर बाहर आने का इनका निश्चय। माता को यह ज्ञात होने पर उनके द्वारा अदिति का ध्यान। इन्द्र के साथ अदिति उपस्थित। गर्भ में रहकर ही इनकी इन्द्र के साथ तत्वज्ञान-चर्चा। (ख) योग-सामर्थ्य से श्येन पक्षी का रूप धारण कर इनका गर्भ से बाहर आना। (ग) जन्म से पूर्व इन्हें अनेक लौह-कारागारों में बन्द करने के प्रयत्न। सबको तोड़कर श्येन पक्षी की भाँति ये पृथ्वी पर अवतीर्ण।

(२) ये अंगिरा एवं सुरूपा के पुत्र। अंगिरा-कुल के गोत्रकार एवं मन्त्रकार। मनुस्मृति की एक कथा के अनुसार एक बार क्षुधार्त्त होकर इनकी श्वान-मांस-भक्षण की इच्छा। यह पाप आपद्धर्म के रूप में किया गया, अतः इन्हें दोष न लगा।

(३) दाशरथि राम से सम्बन्धित ऋषि।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण प्रा० च० के आधार पर।

वि० में — ये गर्भज्ञानी। श्रीरामयन्त्र के आवरण में जो बारह ऋषि, उनमें पहले वसिष्ठ, वामदेव। दोनों प्रायः एक साथ। काशी में वसिष्ठ वामदेव के नाम से एक ही स्थान में दो लिंग स्थापित। वि० ७।५।२ व्या०।

अ० रा० में — इन्हें रामावतार के रहस्य का ज्ञान। राम-वन-गमन के समय दुःखातुर साधु-समाज को इनका प्रबोधन — राम साक्षात् आदिनारायण विष्णु। सीता उनकी योगमाया लक्ष्मी। लक्ष्मण शेषावतार। भिन्न-भिन्न कालों

में भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से भगवान् का मत्स्यादि रूपों में अवतरण। रामावतार का प्रयोजन — दशरथ के पूर्वजन्म में उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें दिये गये वचन की रक्षा और रावण-वध। अ० रा० २।५।९-२३।]

मण्डप में जनक द्वारा वामदेव आदि ऋषियों का पूजन और आर्शीर्वाद-प्राप्ति (१।३२०)। विवाहोपरान्त वसिष्ठ के बुलाने पर नारद, वाल्मीकि आदि मुनियों के साथ इनका आना। दशरथ द्वारा पूजित हो, गोदान ग्रहण कर, आर्शीर्वाद देना (१।३३०-१।३३१।५)। दशरथ की सभा में वसिष्ठ द्वारा विश्वामित्र-चरित्र-वर्णन। इनके द्वारा अनुमोदन (१।३५९।६-७)। पुनः विश्वामित्र-चरित्र का इनके द्वारा वर्णन। वसिष्ठ द्वारा अनुमोदन (१।३६१।१)। मामा के यहाँ से भरत के लौटने का समाचार सुन प्रातःकाल वसिष्ठ के साथ इनका आगमन। भरत को परमार्थोपदेश (२।१६९।७-८)। कौशिकादि-सहित इन्हें भी यथायोग्य विनय-प्रणाम करके राम का चित्रकूट से लौटाना (२।३१९।६-७)। अयोध्या लौटकर राम को वसिष्ठ-सहित इनके दर्शन (७।५।२)।

मूल शब्द — १।३२०, १।३३०, १।३६१।१, २।३१९।६, ७।५।२। बामदेउ — १।३५९।७, २।१६९।७।

बामन (वामन) — भगवान् के दशावतार में पंचम अवतार।

कश्यप ~ अदिति > इन्द्र आदि द्वादश आदित्य जिनमें कनिष्ठ त्रिविक्रम (वामन) ~ कीर्ति > वृहच्छ्लोक। भा० ६।६।२५, ३८, ३९, ६।१८।८।

[देवताओं को लुप्त ऐश्वर्य की पुनः प्राप्ति कराने के लिए अदिति द्वारा पयोव्रत का अनुष्ठान। शुक्ल पक्ष की श्रवण नक्षत्रवाली द्वादशी (विजया द्वादशी) को भगवान् का अदिति के सामने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज रूप में प्राकट्य। देखते-देखते ये वामन ब्रह्मचारी के रूप में परिणत। इनके उपनयन संस्कार के समय स्वयं सविता का इन्हें गायत्री का उपदेश करना। इन्हें वृहस्पति से यज्ञोपवीत, कश्यप से मेखला, पृथ्वी से कृष्णमृगचर्म, चन्द्रमा से दण्ड, अदिति से कौपीन और कटिवस्त्र, आकाश के अभिमानी देवता से छत्र, ब्रह्मा से कमण्डलु, सप्तर्षि से कुश और सरस्वती से रुद्राक्ष की माला प्राप्त। उपनयन-संस्कार होने पर कुबेर द्वारा इन्हें भिक्षापात्र-प्रदान और भगवती उमा द्वारा भिक्षादान।

बलि के अश्वमेध यज्ञ का समाचार सुन इनका वहाँ उपस्थित होना। बलि की कुल-कीर्ति की प्रशंसा कर अपने पैरों से तीन डग भूमि की याचना करना। बलि के संकल्प करने पर इनका आत्म-विस्तार। ये विश्वरूप। इनके आयुध और पार्षद इनकी सेवा में उपस्थित। इनका एक पग से बलि की पृथ्वी नापना, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाओं को घेरना, दूसरे पग से स्वर्ग को नापना। वहाँ से उस पग का महर्लोक, जनलोक, तपलोक होते हुए सत्यलोक तक पहुँचना और ब्रह्मा द्वारा अर्घ्य-पाद्य से पूजित और प्रक्षालित होना। तीसरा पग रखने के लिए बलि का कोई स्थान शेष नहीं।

इनकी इच्छा से गरुड़ का बलि को वरुण-पाश से बाँधना। असत्यभाषी, विश्वासघाती कहकर इनके द्वारा बलि का तिरस्कार। बलि का निवेदन — तीसरा पग ये उनके मस्तक पर रखें। इनके द्वारा बलि की प्रशंसा। सावर्णि मन्वन्तर में उनके इन्द्र होने का कथन। तब तक इनकी कृपादृष्टि का अनुभव करते हुए सपरिवार सुतल में रहने का उन्हें आदेश। प्रह्लाद को भी अपने गदाधारी रूप के नित्य दर्शन देने का आश्वासन देकर सुतल-निवास के लिए भेजना। बलि के यज्ञ की त्रुटियों को पूरा करने की शुक्राचार्य को इनकी आज्ञा। वेद, समस्त देवता, धर्म, यश, लक्ष्मी, मंगल, व्रत, स्वर्ग और अपवर्ग— सबकी रक्षा और कल्याण के लिए ब्रह्मा द्वारा इनका 'उपेन्द्र' पद पर अभिषेक। भा० ८।१६-२३। (दक्षकन्या मरुत्वती और धर्म के पुत्र, भगवान् के अंश 'जयन्त' को भी 'उपेन्द्र' कहते हैं। भा० ६।६।८।)

शतपथ ब्राह्मण (१।२।५।१) में वामनावतार का उपाख्यान प्राप्त। ध० इ० च० पृ० ४८२।]

इस अवतार के समय जाम्बवान् तरुण और बली (४।२९।८)। देव-दुख-दलन के लिए प्रभु का इस रूप में अवतार (६।११०।७)।

मूल शब्द — ६।११०।७।

पर्याय — **त्रिविक्रम** (त्रिविक्रम) — ४।२९।८।

बारुनी (वारुणी) — सुरा की अभिमानिनी देवी।

(यहाँ केवल समुद्र-मन्थन से निकली वारुणी के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों का ग्रहण।)

[यह क्षीराब्धि-मन्थन से प्रकट। (दे० 'छीरसागर'।) एकवस्त्रा, मुक्तकेशी, मदविह्वला। अहंबलप्रदा। दानवों द्वारा इसका ग्रहण। प० पु० सृ० ४।४७-४९। भा० ८।८।३० में भी यह दैत्यों द्वारा गृहीत। वा० रा० में यह वरुण की कन्या। अनिन्द्य सुन्दरी। दैत्यों का इसे (सुरा को) अस्वीकार करना। इसलिए वे 'अ-सुर'। देवताओं का इसे ग्रहण करना। अतः उनकी संज्ञा 'सुर'। वा० रा० १।४५।३६-३८। इसका देवलोक में जाना। महा० आदि० १८।३७। प० पु० उ० २३२।३५ में नागराज अनन्त द्वारा इसका ग्रहण।]

'सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।' (१।५।६)। भवसागर से 'संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी' (१।१४ च)। विष्णु के प्रति नारद की कटूक्ति — उनका असुरों को कुटिलतापूर्वक सुरा देना (१।१३६)। सागर से उत्पन्न होने के कारण यह और विष दोनों रमा के भाई (१।२४७।६)।

मूल शब्द — १।१४ च, १।२४७।६।

पर्याय — सुरा — १।५।६, १।१३६।

बालकाण्ड — मानस का प्रथम काण्ड। प्रथम सोपान। दोहा-संख्या ३६१। इस काण्ड में चारों कुमारों के बालचरित का वर्णन होने के कारण यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध काण्डों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह काण्ड प्रथम सोपान। भक्तों की मान्यता — मानस के सप्तकाण्ड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह काण्ड अवध या अयोध्या। (दे० 'रामचरितमानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण — वाणी-विनायक, भवानी-शंकर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर, सीता-राम, गणनायक, क्षीरसागरशयन एवं उमारमण की वन्दना (१।१।श्लो०१ - १।१।सो० ४)। गुरु-वन्दना (१।१।सो० ५ - १।२।१)। महीसुर, साधु, खल, संत-असंत-वन्दना (१।२।३-१।६।१)। रामभक्ति-गाथा-वर्णन का मनोरथ। रामभक्तिमयी कविता की महिमा। इससे वाणी का श्रमापहार। कवि की दीनता (१।८।५-१।१२।१२)। व्यास, कलि के कवि, भाषा-कवि, वाल्मीकि, चारों वेद, ब्रह्मा, देवगण, सरस्वती, गंगा एवं शिव-पार्वती की वन्दना (१।१४।२-१।१५)। अवधपुरी, सरयू, पुर-नर-नारी, कौसल्या, रानियोंसहित दशरथ, परिजनसहित विदेह, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान्, सुग्रीव, जामवन्त, विभीषण, अंगदादि समस्त रामभक्तों की, शुक-सनकादि, नारदादि मुनियों की वन्दना। जनकसुता-रघुनायक-वन्दन (१।१६।१-१।१८)। रामनाम की वन्दना, महिमा। चारों प्रकार के भक्तों को नाम का आधार। नाम निर्गुण-सगुण का साक्षी एवं दोनों से श्रेष्ठ। नाम राम से श्रेष्ठ। भक्तों का उदाहरण (१।१९।१-१।२८।१)। राम-गुण-कथन एवं कवि की दीनता (१।२८।३-१।२९ख)।

रामचरित के आदि रचयिता शिव। वक्ता एवं श्रोता — शिव→पार्वती एवं शिव→काकभुशंडि→याज्ञवल्क्य →भरद्वाज (१।३०।३-१।३०।६)। रामकथा की महिमा (१।३१।४-१।३२ख)। रामकथा अलौकिक, मितिहीन। रामायण अनन्त। कल्पभेद से हरिचरित में भेद। शंका न करने की प्रार्थना (१।३३।३-१।३३)। ग्रंथ-निर्माण के देशकाल का और ग्रंथ का नाम। नामकरण का कारण (१।३४।३-१।३५।१३)। मानस-सर का रूपक। यात्रा, स्नान आदि की कठिनाई। रामकृपा से यह सब सम्भव। सरयू, गंगा, षड्ऋतु आदि का रूपक। माहात्म्य (१।३६।१-१।४३।८)। भरद्वाज का प्रयाग-निवास। याज्ञवल्क्य का आगमन। भरद्वाज की राम-विषयक जिज्ञासा (एक राम अवधेस कुमारा ··· प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ। १।४६।७-१।४६।) भवानी (सती) की भी ऐसी ही शंका का याज्ञवल्क्य द्वारा उल्लेख।

उमा-शंभु-संवाद आरंभ (१।४४।१-१।४७)। अगस्त्य मुनि के आश्रम से लौटते हुए शिव-सती को सीता-विरह-व्याकुल राम के दर्शन। शिव द्वारा 'जय सच्चिदानंद जग पावन' कहकर प्रणाम। सती का संशय (ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज ··· खोजइ सो कि अग्य इव नारी। १।५०-१।५१।२) शिव के उपदेश करने पर भी सती के मन में संदेह। सीतारूप धारण कर उनका राम की परीक्षा लेना। उनके मन में पश्चात्ताप, भय। शिव द्वारा उनका त्याग, वे समाधिस्थ। दक्षयज्ञ। सती का अपमान। यज्ञ में शिव का भाग न देख सती का योगाग्नि में भस्म होना। यज्ञ-विध्वंस। हिमगिरि के घर सती का पार्वती-रूप में जन्म। वररूप में शिव की प्राप्ति के लिए कठोर तप। आकाशवाणी (१।४८।६-१।७५।५)। सती-विरह से शिव का विराग। राम का प्राकट्य। शिव से उमा-परिणय का अनुरोध और शिव की स्वीकृति। पार्वती की परीक्षा के लिए शिव द्वारा सप्तर्षि को भेजना। सप्तर्षि-उमा-संवाद। सुनकर शिव की प्रसन्नता, समाधि। तारकासुर का उत्पात। शिवजात पुत्र द्वारा ही उसका वध संभव, अतः शिव की

समाधि भंग करने के लिए देवताओं का कामदेव को भेजना। शिव द्वारा काम-दहन। देवताओं की स्तुति पर विवाह के लिए शिव की स्वीकृति। शिव की बरात देख हिमवान् के यहाँ विषाद। नारद के समझाने पर तुष्टि। विवाह। विदा। शिव का उमासहित कैलास-आगमन। भोगविलास। षन्मुख-जन्म। तारकासुर-वध (१।७५।७-१।१०३।८)।

पूर्व-जन्म की कथा याद कर पार्वती की शिव से मोह-अज्ञान दूर करने की विनती। उनकी जिज्ञासा — (राम सो अवध नृपति सुत सोई··· भ्रमति बुद्धि अति मोरि। १।१०८।८-१।१०८।) निर्गुण ब्रह्म ने सगुणरूप में अवतार क्यों धारण किया? सम्पूर्ण रामचरित, राम सम्बन्धी तत्व-रहस्य एवं अपृच्छित सब कुछ समझाने की प्रार्थना (१।१०७।१-१।१११।५)। शिव की प्रसन्नता। उनके द्वारा हरि-विमुख की निन्दा, रामकथा की महिमा। राम अनंत, उनकी कथा-कीर्त्ति अनंत। निर्गुण-सगुण में अभेद, भेद केवल अवस्थाकृत। राम सच्चिदानंद ब्रह्म, मायाधीश परमात्मा। उनकी सत्यता से माया का सत्य-सा भासना। उनमें सर्वेन्द्रियगुणाभास और सर्वेन्द्रियगुण-विवर्जन भी। वे ही दशरथ-सुत भगवान् राम। अवतार के अनन्त हेतु। धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होने पर अवतार। विप्रशाप से जय-विजय का हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में जन्म। क्रमशः वराह और नृसिंह अवतार द्वारा उनका वध। फिर कुम्भकर्ण-रावण के रूप में उनका जन्म। उनके वध के लिए कश्यप-अदिति (दशरथ-कौसल्या) के पुत्ररूप में भगवान् का अवतार। एक काल में जलंधर की पत्नी के शाप से, एक अन्य काल में नारद के शाप से रामावतार (१।१११।६-१।१२४।५)। समाधिलीन नारद द्वारा काम का पराभव। नारद का अभिमान। उनके दर्प-दलन और कल्याण के लिए विष्णु का माया को प्रेरित करना। विश्वमोहिनी-स्वयंवर। नारद-मोह। उनका कपिरूप। हरगण द्वारा व्यंग्य। राजारूप विष्णु द्वारा विश्वमोहिनी का वरण। नारद का हरगण को शाप। पथ में मिले विष्णु को शाप। विष्णु द्वारा मायापहरण। हरगण का शापानुग्रह (१।१२५।१-१।१३६।८)।

स्वायंभुव मनु और शतरूपा से नर-सृष्टि। पुत्र को राज्य सौंप उनका नैमिषारण्य-गमन और कठोर तप। विधि हरि हर के प्रलोभनों से अविचल रहना। सीयसहित रामरूप में भगवान् के दर्शन। उन्हें पुत्ररूप में पाने का वरदान प्राप्त। इन्हीं का दशरथ-कौसल्या के रूप में जन्म (१।१४२।१-१।१५२।८)। ज्येष्ठ पुत्र प्रतापभानु को राज्य सौंप कैकय-नरेश सत्यकेतु का वनवास। प्रतापभानु की दिग्विजय। विंध्यवन में मृगया करते हुए वराह के पीछे भटक जाना। कपट मुनि के आश्रम में ठहरना। कपट मुनि और वराह का वास्तविक परिचय — कपट मुनि उनसे पराजित एक शत्रु राजा और वराह उसका मित्र कालकेतु निशाचर। कपट मुनि का षड्यंत्र। ब्रह्मभोज का आयोजन। पुरोहित रूप में कालकेतु। भोजन में विप्रमांस। आकाशवाणी। प्रतापभानु को ब्राह्मणों का शाप। कपट मुनि की प्रेरणा से शत्रु राजाओं का आक्रमण। प्रतापभानु का सर्वनाश (१।१५२-१।१७५।८)। काल पाकर उसका रावणरूप में, उसके कनिष्ठ भाई अरिमर्दन का कुम्भकर्ण के रूप में और मन्त्री धर्मरुचि का विभीषणरूप में जन्म। तीनों भाइयों का तप। उन्हें शिव और ब्रह्मा का वरदान। तीनों का विवाह। लंका-विजय। कुबेर पर आक्रमण, पुष्पक उठा लाना। रावण का कैलासा उठाना। यज्ञादि धर्माचरण की हानि। सृष्टि में त्रास। व्याकुल पृथ्वी का देवताओं के पास जाना। सब ब्रह्मा की शरण। हरि-स्तुति। आकाशवाणी। ब्रह्मा के आदेशानुसार देवताओं का वानर-शरीर धारण कर भगवदावतार की प्रतीक्षा करना (१।१७६।१-१।१८८।४)।

पुत्रहीनता के कारण अवधपति दशरथ को ग्लानि। पुत्रेष्टि-यज्ञ। अग्नि का प्राकट्य और हविदान। तीनों रानियों के गर्भ। राम का, फिर क्रमशः भाइयों का जन्म। आनन्दोत्सव। नामकरण (१।१८८।७-१।१९७)। चूड़ाकर्म संस्कार (१।२०३।३)। उपनयन (१।२०४।३)। विद्याध्ययन (१।२०४।४-५)। आखेट (१।२०५।१-३)। वेद पुराण-श्रवण (१।२०५।६)। वन में निशाचरों का उत्पात। विश्वामित्र को प्रभु-अवतार का विश्वास। अयोध्यागमन। यज्ञादि की रक्षा और निशाचर-वध के लिए अनुजसहित रघुनाथ को माँगना। वसिष्ठ के प्रबोधन पर दशरथ का पुत्रों को सौंपना। ताड़का-वध। विश्वामित्र द्वारा विद्यादान, अस्त्र-समर्पण। यज्ञ-रक्षा। मारीच, सुबाहु का वध। धनुष-यज्ञ देखने के लिए प्रस्थान। अहल्या-उद्धार (१।२०६।२-१।२११।छं० ४)।

जनकपुरी की शोभा। जनक द्वारा विश्वामित्र का स्वागत। राम-लक्ष्मण की रूप-माधुरी, प्रभाव। धनुषयज्ञ-भूमि-निरीक्षण। पुष्पवाटिका में राम-सीता का प्रथम साक्षात्कार। प्रेमोदय। मनोरथ-पूर्त्ति के लिए गिरिजा से सीता की प्रार्थना। गौरी की आशिष (१।२१२।५-१।२३६)। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का यज्ञशाला में प्रवेश। सबको अपने-अपने भाव के अनुसार उनके दर्शन। सीता का प्रवेश। वन्दियों द्वारा जनक-प्रतिज्ञा की घोषणा।

राजाओं का धनुष-भंग करने का विफल उद्योग। निराश जनक के अमर्षभरे वचन (वीर विहीन मही मैं जानी। १।२५२।३)। विश्वामित्र की आज्ञा से राम का धनुष तोड़ने के लिए चलना। सिय-माता और सीता की चिन्ता। धनुष-भंग। सीता का जयमाल पहनाना। उत्सव (१।२४०।४-१।२६५।६)। परशुराम का आगमन। शिवधनु को खण्डित देख क्रोध। तोड़नेवाला कौन? राम का विनम्र उत्तर। परशुराम-लक्ष्मण-संवाद। राम के गूढ़ उत्तर से परशुराम का भ्रम-निवारण। स्तुति। परशुराम का प्रस्थान (१।२६८।२-१।२८५।७)। जनक का दशरथ के पास दूत भेजना। जनकपुरी में विवाह का आयोजन। दूत-संवाद सुन दशरथ का हर्ष। वसिष्ट की आज्ञा से बरात की तैयारी। रानियों का हर्ष। पुरी की शोभा, उत्सव। बरात-प्रस्थान। जनकपुर में स्वागत। जनवासा। पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और भाइयों का मिलन। पुरवासियों का मनोरथ। चारों भाइयों का विवाह। कोहबर। जेवनार। विदाई। बरात का अवधागमन। आनन्दोत्सव। परिछन। विश्वामित्र की विदाई। (१।२८७।१-१।३६१)।

बालमीकि (वाल्मीकि) — आदिकवि। रामायण के रचयिता। वल्मीक से निकलने के कारण यह नाम।

कश्यप ~ अदिति > द्वादश आदित्यों में एक वरुण > भृगु (द्वितीय जन्म), महायोगी वाल्मीकि (वल्मीक से उत्पन्न)। भा० ६।६।२५, ३९; ६।१८।४,५।

प्रचेता (वरुण) के दसवें पुत्र वाल्मीकि। अ० रा० ७।७।३१, वा० रा० ७।९६।१९।

[ये जन्म से विप्र, आचरण से शूद्र। किरातों की संगति में बड़े होना। शूद्रा के गर्भ से इनके अनेक पुत्र। चोरी करना, राहगीरों को लूटना इनका कार्य। सदा धनुष-बाण धारण कर जीव-हत्या करना। व्याध-वृत्ति। एक दिन घोर वन में सप्तर्षि को जाते देख उनके वस्त्रादि छीनने के उद्देश्य से उन्हें रोकना। सप्तर्षि के कहने पर कुटुम्बियों में प्रत्येक से इनका प्रश्न — वे इनके पापों के भागीदार होंगे या नहीं? उनके नकारात्मक उत्तर से इन्हें निराशा, वैराग्य। लौटकर सप्तर्षि से रक्षा की प्रार्थना। उनका उपदेश — उसी स्थान पर रहकर एकाग्रचित्त से ये 'राम-राम' का उलटा 'मरा-मरा' मन्त्र का तब तक जप करें, जब तक वे लौटकर न आयें। (एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा। २।६।८०।) इनका तदनुसार तप। सर्वसंगविहीन हो जप करते हुए ये बाह्यज्ञान-शून्य। ये वाल्मीक (दीमकों द्वारा निर्मित मिट्टी का ढेर) से आच्छादित। एक सहस्र वर्ष बाद लौटकर सप्तर्षि का इन्हें निकलने का आदेश। वल्मीक से इनके निकलने पर उनके द्वारा नामकरण 'वाल्मीकि', और कथन कि यह इनका दूसरा जन्म (मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर।! वल्मीकात्सम्भवोयस्माद् द्वितीयं जन्म तेऽभवत्। २।६।८५-८६)। नाम-प्रभाव से इन्हें ब्रह्मर्षि-पद-प्राप्ति। अपने आश्रम में वनवासी राम को इनके द्वारा सुनाया गया पूर्व-जीवन-वृत्त। अ० रा० २।६।६४-८६।

वा० रा० में — ये दशरथ के घनिष्ठ मित्र। ७।४७।१६-१७। इनके द्वारा सदा सत्य-भाषण। (न स्मराम्यनृतं वाक्यं ···। ७।९६।१९।) तपस्या से इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त। (तपसा लब्धचक्षुष्मान् ···। सर्वं च विदितं मह्यं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते। ७।४९।८, १३।) राम द्वारा परित्यक्त सीता के सम्बन्ध में इन्हें सब कुछ ज्ञात। इनका उन्हें अपने आश्रम में स्थान देना। कुश-लव के जन्म पर उनकी भूत-बाधा-निवारण एवं रक्षा की व्यवस्था और उनका नामकरण करना। ७।४९, ६६। इनके द्वारा सीता की शुद्धता प्रमाणित। ७।९६।

इनके आश्रम — (१) गंगापार तमसा-तट पर। ७।४५।१७-१८। (२) चित्रकूट-पर्वत पर। २।५६।१६-१७। 'मानस' में चित्रकूट के निकट···।]

ज्ञान-सम्पन्न सियरामभक्त के रूप में कपीश्वर के साथ इनकी वंदना (१।श्लो० ४)। सत्संगति-महिमा का अपने जीवन में प्रभाव-कथन करनेवाले नारद, घटयोनि के साथ इनका उल्लेख (१।३।३)। इन्हें नाम-प्रताप का ज्ञान। रामनाम का उलटा जाप कर इनके पवित्र होने का कथन (१।१९।५)। राम-विवाहोपरान्त वसिष्ठ के बुलाने पर गोदान लेने के लिए वामदेव, देवर्षि, जाबालि, कौशिक आदि के साथ इनका भी आगमन (१।३३०)। वन-सर-शैल देखते हुए प्रभु का इनके सुन्दर पावन आश्रम में आना। इनके द्वारा उनका स्वागत। उनके दण्डवत् के उत्तार में आशीर्वाद। आश्रम में लाकर कन्द, मूल, फल से आतिथ्य। उनका मंगलरूप देखकर आनन्द-आपूर। प्रभु-कथन — 'तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर ,जिमि तुम्हरे हाथा।।' (२।१२४।५-२।१२५।७)। अपनी वनवास-कथा सुनाकर प्रभु का इनसे सिय-सौमित्रिसहित रहने के लिए स्थान पूछना (२।१२५।८-२।१२६।६)। इनके द्वारा प्रभु के लीलारूप का, ऐश्वर्य और माधुर्य का कथन — राम श्रुतिसेतुपालक। अपनी माया जानकी और शेषावतार लक्ष्मण के साथ निशिचर-नाश का देवकार्य करने के लिए उनका नररूप-धारण करना। पुनः राम के परात्पर रूप का कथन

— वे वचन-अगोचर, बुद्धिपर, अविगत, अकथ, अपार। विधि हरि शम्भु के लिए भी उनका मर्म अज्ञात। 'सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।' राम चिदानन्दमय लीला-विग्रह। 'जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।' (२।१२५।८-२।१२७)। पुनः सीता-लक्ष्मण-सहित राम-निवास के लिए इनका स्थान बताना। (चौदह स्थानों का कथन। ये प्रभु-प्राप्ति के चौदह साधन। इनके ब्याज से चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन। इनमें नवधा भक्ति का अन्तर्भाव।)। राम अनुज-जानकी-सहित उनके हृदय में निवास करें—

(१) जिनके कान प्रभु-कथा-श्रवण से कभी अघाते नहीं। (बाल० में उमा-भरद्वाज ऐसे ही श्रोता।) (२) जिनके लोचन चातक की तरह रूप-दर्शन के अभिलाषी। (बाल० में मनु-शतरूपा आदि)। (३) जिनकी जीभ द्वारा निरन्तर प्रभु-गुण-कथन। (अयो० में अवधवासी आदि।) (४) जिनके द्वारा — अ—प्रसाद-सुवास का सम्मान; आ — केवल प्रभु को निवेदित भोजन आदि ग्रहण, इ—सुर, गुरु, द्विज के प्रति नमन और विनय; ई—नित्य रामपद-पूजा; उ — राम का ही भरोसा; ऊ — रामतीर्थ-सेवन। (अयो० में भरत।) (५) जिनके द्वारा — अ — मन्त्रराज (षडक्षर राममन्त्र ' रां रामाय नमः') का जप; आ— परिवार-सहित प्रभु-पूजन, होम, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन; इ — गुरुसेवा (तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी); ई — रामचरण-रति। (अर० के मुनिगण।) (२।१२८।१-२।१२९)। (६) जिनमें काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्वेष, कपट, दम्भ, माया का अभाव। (अर० में नारद।) (७) जो सर्वहितकारी, अतः सर्वप्रिय, दुःख-सुख में समबुद्धि, प्रिय-सत्य-वादी, प्रभु-शरणागत, एकमात्र प्रभु पर आश्रित। (किष्कि० में सुग्रीव।) (८) जिनकी दृष्टि में परनारि जननीसम, परधन विष से अधिक, जिन्हें पर-सम्पत्ति देख सुख, पर-विपत्ति देख दुःख, जिनके लिए राम प्राणप्रिय (किष्कि० के भक्त वानर।) (९) 'स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।' (सुंदर० में हनुमान्।) (२।१३०।१-२।१३०)। (१०) जिनके द्वारा अवगुण-त्याग, गुण-ग्रहण, विप्र-धेनु के लिए संकट-सहन, जो नीति-निपुण। (सुंदर० में विभीषण।) (११) जिनमें यह बुद्धि कि गुण सब प्रभु के, दोष मेरे, जिन्हें राम का ही भरोसा, रामभक्त प्रिय। (लंका में समुद्र।) (१२) जाति-पाँति-धन-धर्म-बड़ाई और घर-परिवार को त्यागकर जो मन की वृत्तियों को राम में लगायें। (लंका० के वानर सैनिक।) (१३) जिनके लिए स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान, सर्वत्र जिन्हें धनुर्बाणधारी राम के दर्शन, जो मन-कर्म-वचन से प्रभु-दास। (उत्तर० में सनकादि।) (१४) जो निष्काम प्रेमी। (उत्तर० में भुशुण्डि) (२।१३१।१-२।१३१)। [अ० रा० में नौ स्थानों का कथन। २।६।५४-६३। वा० रा० में राम का इनके आश्रम में प्रवेश, इनके द्वारा सम्मान, राम का यथोचित आत्मपरिचय देना। इतना ही। २।५६।१६-१८।]

इस प्रकार इनके मार्ग दिखाने से राम को प्रसन्नता। पुनः चित्रकूट में वास करने का राम से कथन। चित्रकूट-शोभा-महिमा-वर्णन। 'राम देहु गौरव गिरबरहू' (२।१३२।१-२।१३२)। भरत-निषादराज-मिलन प्रसंग में— 'उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।।' (२।१९४।८)। भुशुण्डि-कथित मूल मानस-कथा में इनके प्रभु-मिलन का उल्लेख (७।६५।४)।

मूल शब्द — १।३३०, २।१२४।५, २।१२५।५, २।१२८।२, २।१९४।८। बालमीक — १।३।३, ७।६५।४।
पर्याय — **आदिकबि** — १।१९।५।
कवीश्वर — १।१।श्लो० ४।
त्रिकालदरसी — २।१२५।७।

बाली — एक वानरपुंगव। किष्किन्धा के राजा। सुग्रीव के अग्रज। तारा के स्वामी। अंगद के पिता।

[रामावतार में ये इन्द्र के अंश से उत्पन्न। वा० रा० १।१७।१०। ये और एक दूसरे वानर (सुग्रीव) ब्रह्मा के अश्रुबिन्दुओं से उत्पन्न ऋक्षराज नामक वानर के पुत्र। एक बार जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे प्रतिद्वन्द्वी वानर समझ ऋक्षराज का जल में कूदना। बाहर निकलते ही उन्हें एक लावण्यमयी नारी का रूप प्राप्त, जिसे देख इन्द्र एवं सूर्य कामासक्त। इन्द्र का तेज स्त्रीरूपधारी ऋक्षराज के केश को छूता हुआ पृथ्वी पर पतित। सूर्य-वीर्य का उसकी ग्रीवा पर गिरना। इस प्रकार इन्द्र एवं सूर्य के तेज से क्रमशः इनका और एक दूसरे वानर (सुग्रीव) का जन्म। इन्द्र का इन्हें एक श्रेष्ठ सुवर्णमाला देना।

दोनों पुत्रों को लेकर स्त्री का शयन। दूसरे दिन सुबह उठने पर वह पुनः वानररूप। वानर ऋक्षराज का अपने पुत्रों को लेकर ब्रह्मा की सभा में जाना। ब्रह्मा का एक देवदूत को उनके साथ भेजकर उन्हें किष्किन्धापुरी का राजा बनाना। अ० रा० ७।३।२-२४।

पिता के बाद ये किष्किन्धा के धर्मनिष्ठ राजा। इनके द्वारा चारों वेदों का अध्ययन। अनेकानेक यज्ञ सम्पन्न। इनकी धर्मपरायणता के कारण नारद द्वारा इनकी स्तुति। प्रा० च० के अनुसार ब्रह्माण्डपुराण ३।७।२१४-२४८। इनमें अद्भुत बल, धैर्य और पुरुषार्थ। सूर्योदय से पूर्व ही इनके द्वारा बिना श्रम के चारों समुद्रों का परिभ्रमण। पर्वत-शृंगों पर चढ़कर बड़े-बड़े गिरि-शिखरों को उछालकर उन्हें हाथों में थामना।

ये परम तेजस्वी और प्रतापी। युद्धकला में निपुण। अपराजित। इनके-से कर्म देवताओं के लिए भी दुष्कर। वा० रा० ४।११।३-५, २१-२२, ७४-७५। युयुत्सु रावण को अपनी काँख में दबाकर इनका उड़ना। सब समुद्रों के तट पर जाकर सन्ध्यावन्दन करना। किष्किन्धा में लौटकर उसे मुक्त करना। फिर उसके आग्रह पर उससे मैत्री स्थापित करना। दे० 'रावन'। गोलभनामक गन्धर्व से इनका पन्द्रह वर्षों तक युद्ध। सोलहवें वर्ष उसका वध। वा० रा० ४।२२।२८-३०।

महिषरूपधारी दुन्दुभि दैत्य की चुनौती सुन, गले में इन्द्र से प्राप्त सुवर्णमाला डाल, इनका उसे सींग से पकड़कर बार-बार घुमाना। फिर बलपूर्वक धरती पर दे मारना। दोनों में भीषण युद्ध। इनका पुनः उसे धरती पर पटकना। अपने शरीर से दबा देना। उसका पिसकर प्राणान्त। उसे उठाकर इनका एक योजन दूर फेंकना। उसके मुख से निकले रक्त-बिन्दुओं का मतंग मुनि के आश्रम में गिरना। क्रुद्ध हो मुनि का शाप — उनके वन को अपवित्र करनेघाला उस दिन के बाद से यदि उस वन में, उनके आश्रम के चारों ओर एक योजन तक की भूमि में, पदार्पण करेगा, तो उसका प्राणनाश होगा। वानरों से इस शाप की बात सुनकर इनका मतंग मुनि के पास जाकर क्षमा-याचना करना, किन्तु मुनि का अनुग्रह न करना। इसीलिए इनसे भीत सुग्रीव का इस वन-मण्डल में स्थित ऋष्यमूक पर्वत पर निवास। वा० रा० ४।११।२४-६५।]

ऋष्यमूलक पर्वत के निकट राम-लक्ष्मण को आते देख भयभीत सुग्रीव को सन्देह कि कहीं इन्होंने ही उन्हें न भेजा हो (४।१।१,५)। राम से सुग्रीव-कथन — वे और ये दोनों भाई। दोनों में पहले अत्यधिक प्रेम। एक दिन अर्द्धरात्रि के समय मायावी दानव का आकर इन्हें ललकारना। इनके लिए शत्रु का बल असह्य। इनका उसके पीछे दौड़ना। भय से उसका पलायन। एक गुहा में प्रवेश। इनका सुग्रीव से कथन — एक पक्ष तक वे इनकी प्रतीक्षा करें। यदि ये गुहा से न लौटें, तो इन्हें मृत समझ लें। एक मास तक सुग्रीव द्वारा गुहाद्वार पर इनकी प्रतीक्षा। फिर वहाँ से रक्त-धारा निकलती देख उन्हें विश्वास कि ये निहत। भयभीत हो, गुहाद्वार पर पत्थर रख, उनका लौटना। नगर को राजाविहीन देख मन्त्रियों का उन्हें जबरदस्ती राज्य देना (४।६।१-६)। [अ० रा० ४।१।५१ में भी 'मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु।' वा० रा० में इनका सुग्रीव से तब तक विलद्वार पर प्रतीक्षा करने का कथन जब तक ये शत्रु का संहार न कर डालें। विल के भीतर जाकर इनका एक वर्ष तक उस दानव को खोजना। उसके मिलने पर बन्धु-बान्धवोंसहित उसका वध करना। विलद्वार पत्थर से बन्द होने के कारण इनको निकलने का मार्ग न मिलना। किसी तरह पत्थर को ढकेल इनका बाहर निकलना। वा० रा० ४।१०।१७-२४। इस बीच सुग्रीव द्वारा इनके राज्य और इनकी पत्नी का भोग। वा० रा० ४।४६।६।] नगर में आकर सुग्रीव को (राजसिंहासन पर) देख इन्हें क्रोध। इनका उन्हें मारकर निकाल देना। उनके सर्वस्व का, उनकी पत्नी (रुमा) का भी हरण करना। इनके भय से समस्त लोकों में घूमने के बाद सुग्रीव का ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहना। इनका (मतंग मुनि के) शाप के कारण यहाँ न आना, फिर भी वे इनके भय से भीत (४।६।१०-१३)। राम-कथन — 'सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान' (४।६)। 'बालि महाबल अति रनधीरा'। राम से यह कहकर सुग्रीव का उन्हें दुन्दुभि की अस्थियाँ और ताल के वृक्ष दिखाना। राम का उन्हें आसानी से ढहाना। तब सुग्रीव को इनके वध का विश्वास (४।७।११-१३)। [अ० रा० में सुग्रीव-कथन — ताल के सात वृक्षों में प्रत्येक को हिलाकर ये पत्रहीन कर देते थे। राम यदि एक बाण से सबको भेदकर छिद्र कर दें, तो सुग्रीव को उनके वाली-वध करने का विश्वास हो जायेगा।। अ० रा० ४।१।७२-७३। वा० रा० में ताल वृक्षों की जगह साल-वृक्ष। पूर्वकाल में इनका सातों ताल-वृक्षों को एक-एक कर कई बार बींध डालना। राम उनमें एक वृक्ष को एक ही बाण से छेद डालें तो सुग्रीव को उनके द्वारा वाली-वध का विश्वास हो। वा० रा० ४।११।७०-७१। राम का पैर के अँगूठे से दुन्दुभि की अस्थियों को दस योजन दूर फेंकना। एक ही बाण से सातों ताल-वृक्षों (वा० रा० में साल-वृक्षों) को बेधना। अ० रा० ४।१।७०,७३-७५, वा० रा० ४।११।८४-८५, ४।१२।२-४।]

सुग्रीव का इन्हें परम हितकारी मानना, क्योंकि इनकी कृपा से उनका राम से मिलन। [तात्पर्य कि अब प्रभु इनके वध का विचार छोड़ दें। वि०।] किन्तु राम के लिए (इनके वध के) अपने प्रण को मिथ्या करना असंभव (४।७।१९, २३)। इनसे युद्ध करने के लिए सुग्रीव को भेजना। उनका गर्जन सुनकर इनका क्रोधातुर हो आना। तारा का इन्हें समझाना। इनका कथन – राम समदर्शी। वे इन्हें मारें, तो ये सनाथ हो जायेंगे (४।७।२६-४।७)। दोनों का भिड़ना। इनके वज्रसम मुष्टि-प्रहार से सुग्रीव का भागना। राम से कथन – 'बंधु न होइ मोर यह काला।' राम का उन्हें पुनः भेजना। छल-बल के बावजूद उसका मन में हार मानना, भीत होना। तब राम का वृक्ष की ओट से इनके हृदय में बाण मारना (४।८।१-४।८)। [वि० ४।८ व्या० के अनुसार इनका सुग्रीव को बालि-बंध में बाँधना जो मल्लयुद्ध में निषिद्ध, तब राम का इन्हें मारना।] इनका विकल होकर गिरना। प्रभु को सामने देख उठ बैठना। बार-बार उनके रूप को निहारना। उन्हें पहचानकर अपने जन्म को सफल मानना। इनके हृदय में प्रीति, फिर भी उन्हें कठोर वचन कहना। अपने वध का कारण पूछना। प्रभु द्वारा इनके अपराध का कथन – कन्या-सम अनुज-वधू को इनका कुदृष्टि से देखना। अभिमानवश उनके आश्रित को मारने का इच्छुक होना (४।९।१-१०)। इनका विनीत कथन – 'प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि'। यह कोमल वाणी सुन राम का इनके मस्तक को स्पर्श करना। कथन – ये प्राण धारण करें। (इनमें अभिमान, अतः) वे इनके शरीर को अचल कर देंगे। इनका निवेदन – मुनियों की कामना कि अन्तसमय वे राम कह सकें जिससे मुक्ति प्राप्त हो, काशी में महादेव का अन्त में रामनाम सुनाकर जीवों को मुक्त करना। (इनका भाग्य दोनों से उत्तम।) इन्हें तो ब्रह्म स्वरूप राम के नाम और रूप दोनों की प्राप्ति। अतः अब ये केवल प्रभु की दया-दृष्टि के आकांक्षी। इनकी वर-याचना – कर्मवश जिस योनि में इन्हें जन्म मिले, उसमें प्रभु के चरणों में इनका अनुराग बना रहे। पुत्र अंगद को दास बनाने के लिए इनका प्रभु को अर्पित करना। उनके चरणों में दृढ़ प्रीति कर शरीर त्यागना। प्रभु का इन्हें निज धाम देना (४।९-४।११।१)। नगरवासियों का व्याकुल होना। तारा का विलाप। प्रभु-आदेश से सुग्रीव द्वारा इनका मृतक-कर्म सम्पन्न (४।११।१-२,८)।

'जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली' – कवि-कथन (१।२९।६)। व्यंग्य-कथन रावण से हनुमान् का – 'समर बालि सन करि जसु पावा' (५।२२।२), अंगद का – 'अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा।।' (६।२१।३)। रावण के इनकी काँख में रहने की अंगद की उक्ति (६।२४)। इनके सम्बन्ध में उल्लेख – शिव द्वारा (४।१२।३), राम द्वारा (४।१८।५), अंगद द्वारा (५।२१।९, ७।१८।२), मन्दोदरी द्वारा (६।३६), रावण द्वारा (६।९०।५), अंगद-रावण-संवाद में (६।२१।४, ५,७,८; ६।२४।११, ६।२९।८, ६।३३ क, ६।३४।६), भुशुण्डिकथित मूल रामायण में (७।६६क)। अन्य उल्लेख (६।३५।१०)।

मूल शब्द – १।२९।६, ४।६।३, ४।६।५, ४।६।१०, ४।७, ४।८।२, ४।१८।५, ५।२१।९, ६।२९।८, ७।१८।२। बालि – ४।१।५, ४।६।१, ४।६।४, ४।६।८, ४।६, ४।७।११, ४।७।१३, ४।७।१९, ४।७।२७, ४।८, ४।१०।१, ४।१०।२, ४।१०, ४।११।१, ४।१२।३, ५।२२।२, ६।२१।३, ६।२१।४, ६।२१।५, ६।२१।७, ६।२१।८, ६।२४।११, ६।२४, ६।३३ क, ६।३४।६, ६।३५।१०, ६।३६, ६।९०।५, ७।६६ क।

बासुदेव (वासुदेव) – भगवान्, ईश्वर, ब्रह्म। (यह शब्द अधिकांशतः वसुदेव के पुत्र कृष्ण के लिए प्रयुक्त, किन्तु मानस में इसका प्रयोग ब्रह्म राम और विष्णु के लिए, कृष्ण के लिए नहीं।)

[पूर्वकाल में खाण्डिक्यजनक की जिज्ञासा पर केशिध्वज द्वारा भगवान् अनन्त के वासुदेव नाम की यथार्थ व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत – प्रभु समस्त भूतों में व्याप्त और समस्त भूतों का भी उन्हीं में वास, वे ही जगत् के रचयिता और रक्षक, अतः वे वासुदेव। (सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः।। ··· भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभु।।) वि० पु० ६।५।८०-८२।

महा० में भी वासुदेव का व्युत्पत्तिगत अर्थ इसी प्रकार का – वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः। वासुदेवस्ततो वेद्यो वृहत्वाद् विष्णुरुच्यते।। उद्यो० ७०।३। छादयामि जगद् विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः। सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम्।। –कृष्ण-कथन अर्जुन से। शा० ३४१।४१।

भगवान् शब्द परब्रह्मस्वरूप वासुदेव का ही वाचक, किसी अन्य का नहीं। दे० 'भगवान'। ये ही ईश्वर और

परावरेश्वर। वि० पु० ६।५।७६, ८५, ८६। दे० 'भगवान'। इनका द्वादशाक्षर मन्त्र — ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय। भा० ४।८।५४।

रा० उ० ता० में ये साक्षात् रामरूप — ऊँ यो वै वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत् परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः।। ऊँ यो वैं श्रीरामचन्द्रः स भगवान् य ओं नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुर्भूर्भुवः। स्वस्तस्मै वै नमो नमः।। — ब्रह्मा-स्तुति, मन्त्र १, ४४, पृ० ५४६, ५४७।]

मनु-शतरूपा द्वारा इनके (ब्रह्मरूप राम के) द्वादशाक्षर मन्त्र का प्रेमसहित जप। उनका मन इनके पद-कंज में लीन (१।१४३)। राजा प्रतापभानु का इन्हें (विष्णु को) समर्पित करके सब धर्माचरण करना (१।१५६।२)।

मूल शब्द — १।१४३, १।१५६।२।

विंध्याचल (विन्ध्याचल) — भारत के मध्य में स्थित एक पर्वतश्रेणी जो उत्तर भारत को दक्षिण से अलग करती है। बृ० को०, आ० को०। भारत के सात कुल-पर्वतों में एक। महा० भी० ६।११, न० पु० ३०।१२।

[सूर्य को नित्य मेरु पर्वत की परिक्रमा करते देख उनसे इसका कथन — वे प्रतिदिन इसकी भी परिक्रमा करें। सूर्य द्वारा असमर्थता व्यक्त। यह कुपित। सूर्य-चन्द्र का मार्ग रोकने के लिए इसका बढ़ना। इसका क्रोध शान्त करने में देवता विफल। वे अगस्त्य के शरणागत। अगस्त्य का अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ इसके निकट आना। दक्षिण-यात्रा के लिए मार्ग माँगना। इसे तब तक प्रतीक्षा करने का, न बढ़ने का, उनका आदेश जब तक कि वे लौट न आयें। उनका कभी न लौटना। इसका फिर न बढ़ना। महा० वन० १०४।२-१४।]

राजा प्रतापभानु का इसके गहन वन में मृगया के लिए गमन (१।१५६।४)। राम के चित्रकूट में आने पर इसे अत्यधिक सुख, क्योंकि बिना श्रम के ही इसे बड़ाई मिली (२।१३८।८)। [चित्रकूट इसी का एक शृंग। वि० व्या०, मा० पी० नोट।] 'बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा' (२।२६७।२)। काकभुशुण्डि का पूर्वजन्म में शिव-शापवश इस गिरि में आकर सर्प होना (७।१०६ ख)।

मूल शब्द — १।१५६।४।

पर्याय — **बिंधि** (विन्ध्य) — २।१३८।८, २।२६७।२।

बिंधिगिरि — ७।१०६ख।

विकटासि — एक बलशाली वानर। [वा० रा० ६।८६।१२ में विकट नामक एक राक्षस का उल्लेख। वहाँ इस नाम का कोई वानर नहीं।]

रावण-दूत शुक द्वारा दधिमुख आदि वानर-वीरों के साथ इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के समान। राम-कृपा से बली। त्रिलोक को तुच्छ समझनेवाले (५।५४-५।५५।२)।

मूल शब्द — ५।५४।

बिजय (विजय) — भगवान् के एक पार्षद का नाम। दे० 'जय'।

मूल शब्द — १।१२२।४।

बिदेह — दे० 'जनक'।

बिधि (विधि) — ब्रह्मा। त्रिदेव में एक। सृष्टिकर्ता।

[सृष्टि के आदिकर्त्ता के रूप में इनका निर्देश वैदिक ग्रन्थों में अप्राप्य। उनमें निर्दिष्ट 'प्रजापति' देवता से इनका साम्य। वेदों में कई स्थानों पर 'धाता', 'विधाता' आदि इनके नामान्तर प्राप्त। उपनिषदों में इनका निर्देश तत्वज्ञ एवं आचार्य के रूप में, सृष्टिकर्त्ता-रूप में नहीं। प्रा० च०। पुराणों में वर्णित इनका रूप वैदिक प्रजापति के रूप का विकास। प्रजापति की वैदिक गाथाएँ इन पर आरोपित। ब्राह्म पुराणों में ये ही ब्रह्म। हि० ध०।

(१) इनका जन्म और चतुर्मुख होना— सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण विश्व जल में निमग्न। सब प्राणियों के सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म तत्वरूप में भगवान् के शरीर में लीन। भगवान् नारायण अपनी चित्-शक्ति के साथ शेष शय्या पर एक कल्प (एक सहस्र चतुर्युग) तक योगनिद्रा-मग्न। केवल उनकी कालशक्ति जाग्रत। कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित हो, सृष्टि-रचना के लिए, वह सूक्ष्म तत्व भगवान् के नाभिदेश से कमलकोश के रूप में प्रकट। उस सर्वलोकमय कमल में भगवान् अन्तर्यामी-रूप से प्रविष्ट। उसमें से वेद-मूर्त्ति स्वयम्भू विधाता प्रकट।

कमल-कर्णिका पर बैठे हुए इन्हें किसी भी लोक के दर्शन नहीं। इनका चारों ओर गर्दन घुमाकर देखना

जिससे चारों दिशाओं में इनके चार मुख प्रकट। भा० ३।८।१०-१६।

(२) इनका तप और सृष्टि-रचना का उपक्रम— अपना और कमल का रहस्य जानने के लिए कमल-नाल के छिद्रों में होकर इनका जल में प्रवेश। विफलमनोरथ हो लौटकर ये सौ दिव्य वर्षों तक समाधि में स्थित। तब इन्हें अपने ही अन्तःकरण में नारायण के दर्शन।

ये रजोगुण से व्याप्त, सिसृक्षु, (सृष्टि-निर्माण करने के इच्छुक)। लोकरचना के लिए इनके द्वारा भगवान् की स्तुति। भगवान् का आदेश — ये पुनः एक बार तप और भागवत-ज्ञान का अनुष्ठान करें। तब ये सब लोकों को अपने अन्तःकरण में देख सकेंगे। तदनुसार इनके द्वारा सौ दिव्य वर्षों तक तप। फिर जिस कमल पर ये आसीन, उसी कमल से पूर्वकल्पों में लुप्त हुए लोकों की रचना का विचार कर इनका कमलकोश में प्रवेश। भूः भुवः स्वः, इन तीन लोकों में उस कमल का विभाजन। भा० ३।८।१७-२३, ३२-३३, ३।९।२६-३१, ३।१०।४-८।

(३) सृष्टि-प्रक्रिया— इनके द्वारा रचित सृष्टि तीन प्रकार की — प्राकृत (महत्तत्त्व आदि), वैकृत (स्थावर वृक्ष, तिर्यग्योनि, मनुष्य और देवसर्ग), प्राकृत-वैकृत (सनत्कुमार आदि ऋषि)। भा० ३।१०।१४-२८। अज्ञान की पाँच वृत्तियों के सृजन के बाद सनकादि, रुद्र, मरीचि आदि दस प्रजापतियों की, फिर वाग्देवी सरस्वती आदि की उत्पत्ति। सरस्वती के रूप-लावण्य पर ये काममोहित। मृगीरूप धर उनके भागने पर इनका मृगरूप होकर पीछा करना। मरीचि आदि के समझाने पर ये लज्जित। इनके द्वारा उस शरीर का त्याग।

इनका अन्य शरीर धारण करना। स्वयं अपने और मरीचि आदि ऋषियों के संकल्प से प्रजा की वृद्धि और सृष्टि का समुचित विस्तार न होते देख ये चिन्तित। अकस्मात् इनका शरीर दो भागों में विभक्त और स्त्री-पुरुष का जोड़ा प्रकट। वह पुरुष सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु और स्त्री उनकी महारानी शतरूपा। तब से मिथुन-धर्म से प्रजा की वृद्धि। भा० ३।१२।१-३३, ४९-५४; ३।३१।३६। (भिन्न-भिन्न पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन भिन्न-भिन्न रूपों में।)

(४) इनका काल-निर्णय— इनका एक दिन एक हजार चतुर्युगी या एक कल्प का। (१ चतुर्युगी — १२००० दिव्य वर्ष, १ दिव्य दिन — मनुष्यों का १ वर्ष।) कालक्रम से इनका एक दिन बीत जाने पर इनका तमोगुण को स्वीकार करना, सृष्टि-कार्य को स्थगित करके निश्चेष्ट भाव से स्थित हो जाना। तब भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक का इनमें लय। शेष के मुख से निकली अग्निरूप शक्ति से त्रिलोक परितप्त। महर्लोक में रहनेवाले भृगु आदि मनीषियों का जनलोक में चले जाना। त्रिलोकी का नैमित्तिक प्रलय में निमग्न होना। तब इनका शयन। इनकी रात्रि भी एक कल्प की।

इनके जागने पर एक दूसरे कल्प का आरम्भ। उसमें पुनः सृजन। इस प्रकार सिसृक्षा-शक्ति से युक्त होने के कारण सृज्य शक्ति (सृष्टि का प्रारब्ध) की प्रेरणाा से कल्पों के आरम्भ में इनके द्वारा बार-बार सृष्टि-रचना।

इनके मान से इनकी आयु एक सौ वर्षों की। इनकी आयु का पहला परार्ध (अर्थात् आधा भाग) व्यतीत, दूसरे परार्ध का वाराहनामक पहला कल्प चल रहा है। इस दूसरे परार्ध के समाप्त होने पर, इनकी आयु के एक सौ वर्ष पूरे हो जाने पर, सातों प्रकृतियाँ (महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा) अपने कारण मूलप्रकृति में लीन हो जायेंगी। (दे० 'सांख्य सास्त्र'।) तब प्राकृत प्रलय। भा० ३।११।१२, १८-३६; १२।४।२-६, वि० पु० १।३।१०-२८, १।५।६७। इसके बाद पुनः इनका नया जन्म — कभी भगवान् के नाभि-कमल से, कभी ब्रह्माण्डरूप अण्ड से। भा० २।५।३५, ११।४।३-५, वि० पु० १।२।५२-५३, ६१।

(५) इनके चारों मुखों से चारों वेद, उपवेद आदि प्रकट। भा० ३।१२।३४-३५। (दे० 'बेद'।)

(६) इनका एक नाम 'क'। भा० ३।१२।५२। ऐतरेय ब्राह्मण में यह गाथा कि वृत्र को मारने के बाद इन्द्र प्रजापति का उच्च्व स्थान पाने को उत्सुक। तब प्रजापति का प्रश्न — कोऽहमिति? (यदि तुम बड़े होना चाहते हो, तो मैं क्या होऊँगा?) इसी कारण प्रजापति की संज्ञा 'क'। ध० इ० ५, पृ० ३२५।

(७) ये पीतवर्ण। मा० पी० ४।१।१० टिप्पणी १। सूत्र-कमण्डलु-धारी। इनके वस्त्र, दाँत, केश, सब श्वेत। ये जन्म से बड़े-बूढ़े तपस्वी। इनका वाहन हंस अथवा हंसयुक्त विमान। इनकी शक्ति ब्रह्माणी। पत्नी वाग्देवी सरस्वती। दु० स० ८।१४-१५, ११।१३, दु० स० प्राधानिक रहस्य २६-२७, सं० ब्र० पु० पृ० २३, ४५४। सं० ब्र० पु० पृ० ३०, ३३ में इनकी पत्नी सावित्री। उन्हीं से वेद प्रकट। सरस्वती कृष्ण द्वारा नारायण को समर्पित। प्रा० च० के

अनुसार मत्स्यपुराण ३ में इनकी पत्नी शतरूपा। सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्माणी आदि शतरूपा के ही नामान्तर।

(८) वस्तुतः शतरूपा इनकी अनिन्द्य सुन्दरी पुत्री। निरन्तर उनका रूप-पान करने को ये उत्सुक। एक बार उनके द्वारा इनकी परिक्रमा। मानस-पुत्रों की उपस्थिति में उन्हें घूम-घूमकर देखने में इन्हें संकोच। अतः चारों ओर चार मुख प्रकट करना। शतरूपा के आकाशमार्ग से ऊपर जाने पर उन्हें देखने के लिए इनका जटा पर एक और मुख धारण करना। इस रूप-लिप्सा के कारण इनके जटा-स्थित मस्तक का शंकर द्वारा छेदन। प्रा० च० के अनुसार मत्स्यपुराण ३।

मत्स्यपुराण में शतरूपा या सावित्री को पत्नी बनाकर उनके साथ भोग करने की कथा वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रजापति द्वारा अपनी कन्या उषा से किये गये दुहितृगमन से मिलती-जुलती। प्रा० च०।

(९) अन्य देवताओं की तरह लोक में इनकी पूजा का विधान नहीं। इसके कारण — नारद का शाप (दे० 'नारद'), भृगु-शाप (दे० 'भृगु'), मोहिनी का शाप। अनेक बार मोहिनी की इनसे मिलन की प्रार्थना। इनके द्वारा मुनियों के सामने उसका उपहास। उसका इन्हें शाप — ये दीर्घकाल तक, कल्प-कल्पान्तर तक अपूजनीय बने रहें। भगवान् इनका दर्प-दलन करेंगे।

त्रस्त होकर ऋषियों के परामर्श से ये नारायण के शरणागत। वहाँ विभिन्न ब्रह्माण्डों के शतमुख, सहस्रमुख आदि ब्रह्माओं के दर्शन। उनके अगणित मुखों से अश्रुतपूर्व नारायण-स्तोत्रों का श्रवण। उनके आगे इनका स्वयं को अति तुच्छ समझना। इनका दर्प चूर्ण। इन्हें गंगा में स्नान करके पवित्र होने का आदेश देकर नारायण का कथन — अन्य देवताओं की पूजा में भी इनकी ही पूजा होगी, क्योंकि ये सर्वरूप, समस्त देहों में पूजा-स्वरूप। सं० ब्र० पु० पृ० ४५१, ४५४।

(१०) मनुष्यो के वैदिक ज्ञान और यज्ञकर्म का लोप तथा देवताओं का देव-स्वभाव नष्टप्राय होने पर उनके कल्याण के लिए इनके द्वारा एक लाख अध्यायों का नीतिशास्त्र रचित। महा० शा० ५९।२३-२९। हंसरूप में साध्यगणों को उसका उपदेश जो 'हंसगीता' नाम से प्रसिद्ध। महा० शा० २९९।

(११) इनके दो लोक — एक सत्यलोक जो इनका निजलोक, दूसरा मेरु पर्वत पर सभालोक। मा० पी० १।१८७ नोट ६। (सप्तद्वीपों में अन्तिम) पुष्कर द्वीप का लाखों सुवर्णमय पंखुड़ियोंवाला पुष्कर इनका आसन। भा० ५।२०।२९। वि० के अनुसार इनका वास स्वाधिष्ठान चक्र में। वही ब्रह्मभवन। सरस्वती (परावाणी) वहीं मूलाधार में स्थित। वि० १।११।४ व्या०।]

विष्णु-महेश-सहित ये ब्रह्म राम के अंश से उत्पन्न (१।१४४।६, १।१५०।६)। रामनाम 'विधि-हरि-हरमय' (१।१९।२) राम की पद-रेणु इन तीनों के द्वारा वन्दित (१।१४६।१)। तीनों रामाज्ञा के अनुवर्त्ती (२।२५४।६-८)। देवताओंसहित ये राम की माया के अधीन (१।१।श्लो०६)। रामकृपा के आकांक्षी (३।६।५)। ये विश्वरूप भगवान् राम की बुद्धि (६।१५ क)। [विरिंचो धिषणा। भा० १०।६३।३६।] तपोबल से, राम के भरोसे, इनके द्वारा सृष्टि-रचना (१।७३।३, १।१६३।२, ५।२१।५)।

'बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना'। इनके द्वारा द्वन्द्वों की सृष्टि। दोषों से गुणों को पृथक् करने का विवेक क्रियासाध्य नहीं, वह इनकी देन (१।६।३-१।७।१)। चन्द्रमा के शुक्ल-पक्ष और कृष्ण-पक्ष दोनों में प्रकाश-अन्धकार समान, पर इनके द्वारा उनका नाम-भेद-करण (१।७ ख)। इनकी वन्दना (१।१४ च)। ये शुभाशुभ कर्मों के फलदाता। इस रूप में सती द्वारा इनका स्मरण (१।५९।२-४, २।२५५।६)। इनके द्वारा ललाट पर जो अंक लिखित, उसे मिटाने में कोई समर्थ नहीं (१।६८, १।९७।६,८)। 'बिधि गति अति बलवान' (२।२००)। 'बिधि बिपरीत भलाई नाहीं', 'भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम। धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम।।' (१।५२।६, १।१७५)। भरत के अनुसार वसिष्ठ इनकी गति को भी रोकने में समर्थ (२।२५५।८)।

इनका दक्ष को योग्य समझकर प्रजापति-नायक बनाना। दक्ष-यज्ञ में (आमंत्रित होने पर भी) इनका और विष्णु का न जाना (क्योंकि महेश अनामन्त्रित) [यह भा० ४।६।३ के अनुरूप। सं० शि० पु० पृ० १४२ में ये और विष्णु यज्ञ में सम्मिलित।] इनकी सभा में दक्ष शिव से अप्रसन्न (१।६०।६, १।६१।२-३)।

ब्रह्म (राम) वाणी पर इनकी आकाशवाणी के रूप में टीका। पार्वती के तप की प्रशंसा। सुनकर उन्हें हर्ष (१।७५।१-५)। तारकासुर से पीड़ित देवता इनके शरणागत। इनका कथन — शिव-शुक्र-सम्भूत पुत्र द्वारा ही उसका

वध सम्भव। अतः शिव-पार्वती के विवाह के लिए तपोलीन शिव के पास कामदेव को भेजने का परामर्श (१।८२।७-१।८३।७)। कामदेव का प्रभाव देख सबके द्वारा इनका स्मरण (१।८४।छं०)। शिव द्वारा काम-दहन और रति-वरदान का समाचार सुन देवताओंसहित इनका वैकुण्ठ-गमन। विष्णु के साथ शिव के निकट जाकर उनकी प्रशंसा। पार्वती से विवाह करने की उनसे विनय। प्रसन्न शिव का स्वीकृति-प्रदान (१।८८।४-१।८९।५)। सप्तर्षि के आने पर इनका उन्हें हिमालय के घर भेजना (१।८९।७)। उनसे प्राप्त पार्वती की लग्न-पत्रिका पढ़कर ये प्रेममग्न। इनका देवताओं को सुनाना। वाहनारूढ़ हो विष्णु आदि के साथ शिव-बरात में जाना (१।९१।६-७, १।९२।७)। शिव के बावले-से रूप को सत्य समझ, उन्हें वैसा रूप देने के लिए मेना का इन्हें दोष देना (१।९६।८, छं०, १।९७।छं०)। ज्योनार के समय हिमालय का विष्णु आदि सहित इन्हें सादर बुलाना (१।९९।६)। वर शिव के बैठने का सिंहासन इनके द्वारा विरचित (१।१००।३०)। कन्या के विदा होने के समय पार्वती की माता का कथन कि इन्होंने जग में नारी की रचना ही क्यों की। सीता आदि चारों बहनों की माताओं का भी यही कथन (१।१०२।५, १।३३४।८)।

काम-विजय के बाद नारद का इनके लोक में जाना (१।१२८।२)। उनके द्वारा विश्वमोहिनी की प्राप्ति के लिए इनका स्मरण (१।१३१।८)। स्वायम्भुव मनु-शतरूपा का तप देख इनका विष्णु-महेश-सहित अनेक बार उनके पास जाकर वर माँगने का लोभ दिखाना, पर वे ब्रह्मरूप राम के ध्यान में अडिग (१।१४५।२-३)।

रावणादि तीनों भाइयों की तपस्या से प्रसन्न होकर इनका पहले रावण के पास जाना। इनका और शिव का उसे याचित वर देना। कुम्भकर्ण को देखकर इन्हें विस्मय। उसके नित्य आहार करने पर संसार के उजड़ जाने की इन्हें आशंका। अतः सरस्वती को प्रेरित कर उसकी मति फेरना। [वा० रा० ७।१०।३५-४३ में देवताओं की प्रार्थना पर सरस्वती से उसे मोहित करने के लिए कहना।] उसे छः महीनों तक निद्रामग्न रहने का वरदान। फिर विभीषण को मनोवांछित वर देकर, (अपनी ओर से अमरत्व-प्रदान कर। वा० रा० ७।१०।३५।) इनका प्रस्थान (१।१७७।१-१।१७८।१)। इनसे रावण को शक्ति नामक अस्त्र भी प्राप्त (६।८३।८, छं०)। उसे वर देकर चलते समय इनका लंकिनी को राक्षस-विनाश का लक्षण बताना (५।४।६)। रावण द्वारा इनके और शिव के पूजन और वर-प्राप्ति का अंगद-कथन रावण से (६।२०।३-४)।

समुद्र के मध्य में इनके द्वारा निर्मित दुर्गम त्रिकूट पर्वत। इनकी सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणी रावण के वशवर्त्ती। उसके द्वारा धर्म-नीति की मर्यादा नष्ट होने पर सुर-मुनि-गन्धर्वादि-सहित गोतन-धारी पृथ्वी का इनके लोक में जाना। इन्हें सब ज्ञात, किन्तु ये विवश। इनका पृथ्वी को समझाना कि हरि विपत्ति दूर करेंगे (१।१७८।५, १।१८२।१२, १।१८४।छं०, १।१८४)। इन्हें शिव से यह सुनकर हर्ष कि प्रभु सर्वव्यापी। इनके द्वारा सगुण ब्रह्मरूप में विष्णु की स्तुति (१।१८५।८-१।१८६।छं० ४)। ब्रह्मवाणी सुनकर सबका प्रसन्न-मन लौटना। पृथ्वी को आश्वासन और अभय देकर इनका देवताओं को आदेश कि वे वानर-देह धारण करके पृथ्वी पर प्रभु की पद-सेवा करें (१।१८७।८-१।१८७, १।१८८।२)। प्रभु के रामरूप में अवतीर्ण होने पर देवताओंसहित इनका (अयोध्या की ओर) प्रस्थान (१।१९१।५)।

धनुष-यज्ञ में मन-ही-मन सबकी इनसे विनय कि ये जनक को ऐसी बुद्धि दें जिससे वे प्रण छोड़ राम से सीता का विवाह कर दें (१।२४९।२-४)। ‘सखि बिधि गति कछु जाति न जानी’ — सुनयना-कथन। सखी का उन्हें समझाना — मन्त्र (एकाक्षर प्रणव) परम लघु होने पर भी त्रिदेव उसके वश में (१।२५६।५, १।२५६)। [वि० के अनुसार ये प्रणव की दूसरी मात्रा के वाच्य। राम (ब्रह्म) साक्षात् प्रणव। नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद् ३ में ये प्रथम मात्रा अकार के देवता।] राम के धनुष भंग करने पर अन्य देवताओंसहित इनके द्वारा राम की प्रशंसा, उन्हें आशीर्वाद (१।२६२।५)। विवाह-मण्डप बनानेवाले शिल्पियों द्वारा इनकी वन्दना (क्योंकि ये रचना के मूल स्रोत)। उनकी रचना देखकर ये मुग्ध (१।२८७।८-१।२८७)। सीताराम-विवाह का लग्न निश्चित कर इनका नारद के हाथ भेजना (१।३१२।६-७)। दशरथ का भाग्य, वैभव देख अपने जन्म को व्यर्थ समझना, जनक की सराहना करना। प्रेम-पुलकित हो राम-विवाह देखने के लिए जाना (१।३१३-१।३१४।३)। (इनका प्रपंच गुण-दोषमय, किन्तु जनकपुर में सब कुछ दोषमुक्त। वि०। अतः) कहीं अपनी करनी की झलक न पाकर इन्हें आश्चर्य। राम-रूप के दर्शन कर हर्ष, पर आठ ही आँखें होने के कारण पछतावा। विप्रवेश में राम-विवाह की लीला देख ये आनन्दमग्न (१।३१४।८,

१।३१७।४-५, १।३१९।छं०, १।३२१।६-८, १।३२४।छं० ३)। देवताओंसहित इनके द्वारा अयोध्या की सराहना। उस पुरी में जन्म पाने की देवताओं की इनसे याचना (१।३४४, १।३६०।२)।

विषादग्रस्त वनमार्ग-वासियों का इन्हें दोष देते हुए सोदाहरण कथन कि इनके सब कार्य उलटे (२।११९।१-२।१२०।६)। भरत से वसिष्ठ-कथन – 'हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ' (२।१७१)। भरत द्वारा इनकी विषम गति का उल्लेख (२।२६७।४)। सुनयना का सोदाहरण कथन कि इनकी बुद्धि बाँकी (२।२८१।८-२।२८१)। सुमित्रा द्वारा उनका समर्थन – इनकी गति विपरीत, विचित्र, क्योंकि इनके द्वारा जिसका सृजन-पालन, उसी का फिर संहार (२।२८२।१-२)। [यहाँ 'बिधि' शब्द का प्रयोग ईश्वर (सगुण ब्रह्म = राम) के अर्थ में। मा० पी० नोट २।] कौसल्या का इन्हें निर्दोष बताते हुए कथन कि ये केवल शुभाशुभ कर्मों के फलदाता। इनका स्वातन्त्र्य सापेक्ष। ईश्वरेच्छा सर्वोपरि। 'बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी' (२।२८२।३-६)।

इनके द्वारा रावण के ललाटों पर यह लिखित कि मनुष्य के हाथों उसका वध। होम किये गये जलते हुए मस्तकों पर इनकी लिपि पढ़कर रावण का उसे असत्य मानना, इनका बुद्धिभ्रम समझना (६।२९।१-३)। इनका विमान पर चढ़कर अन्य देवताओंसहित लंका-युद्ध देखना (६।८१।१)। रावण का तेज प्रभु-मुख में समाहित होने पर इन्हें हर्ष (६।१०३।९)। समर-विजयी राम को नेत्र भरकर देख ये अत्यन्त सुखी (६।१०५।२-३)। इनके द्वारा प्रेम-पुलकित हो सगुण-निर्गुण ब्रह्म रूप में राम की स्तुति (६।११०-६।१११)। राम के राज्याभिषेक के समय उनके दर्शन के लिए इनका शिवादि-सहित अयोध्या में उपस्थित होना (७।११ ग)। अपने लोक में नारद से बार-बार रामचरित सुनकर भी इन्हें तृप्ति नहीं (७।४२।६)।

गरुड़ के मोह निरसन के लिए नारद का उन्हें इनके पास भेजना। गरुड़ का सन्देह सुनकर इनका राम को नमन। प्रभु-प्रताप समझकर ये प्रेममग्न। इनका मन-ही-मन विचार – ये सृष्टि के सर्जक, फिर भी अनेक बार प्रभु-माया के वशीभूत। (यथा, सरस्वती पर काममुग्ध)। अन्य किसी से कुछ पूछे बिना शंकर के पास जाने का इनका गरुड़ को परामर्श, क्योंकि शिव को राम-प्रताप का ज्ञान। शिव ही उनका संशय दूर करेंगे (७।५९।८, ७।६०।१-८)।

इन्हें प्रभु (राम)-महिमा का किंचित् ज्ञान (६।९६।८)। रघुकुल में ब्रह्म के अवतार लेने का रहस्य बताकर इनका वसिष्ठ को उस कुल का पुरोहित बनाना (७।४८।७-८)। महेशादिसहित नेति-नेति कहकर इनके द्वारा राम-गुण-गान (१।१२)। ये और शिव भी राम-माया के वशीभूत (६।५१)। राम की माया से इन दोनों के भी मोहित होने का कथन (७।६२ ख)। 'मोह न अंध कीन्ह केहि केही' के उदाहरणरूप में इनका भी उल्लेख (७।७०।६)। माया के परिवार से इन्हें भी भय (७।७१।८)। शिव आदि सहित इनका भी मत कि 'करिअ राम पद पंकज नेहा' (७।१२२।१२)। 'मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन' – भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (७।१२२ ख)।

ये चतुर्भुत, अतः राम के उपमान होने के अयोग्य (१।२२०।७-८)। हिमालय के पुर (ओषधिप्रस्थ। कुमार० ६।३३) की शोभा के आगे इनकी निपुणता तुच्छ (१।९४।८, छं०)। अयोध्या की विभूति इनके रचना-कौशल की इतिश्री (२।१।५)। भरद्वाज द्वारा तपोबल से सृष्ट वैभव इनके लिए भी विस्मयदायक (२।२१४)। राम-भरत का परस्पर प्रेम इनके लिए अगम्य (२।२४१।५)। राम-शिव-सहित ये विप्र-सेवकों के वश में (३।३३)। जो राम-विरोधी या राम जिसके प्रतिकूल, उसकी रक्षा करने में ये असमर्थ (४।६, ५।३६।१०, ५।५६ क, ६।२७।२)। राम और उनके माता-पिता की रचना करके इन्हें भी बड़ाई प्राप्त (१।१६।८)। 'प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा' (१।४९।१)। सीता ब्रह्मादि द्वारा वन्दिता (७।२४।९)। 'लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता' (७।८१।१)।

उल्लेख (कहीं-कहीं सूच्य अर्थ में)– इनकी सर्वज्ञता, प्रभुता (कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं सामर्थ्य), कर्मफलदातृत्व का, अथवा उत्कृष्ट शोभा-सौन्दर्य का वर्णन अपेक्षित होने पर इनके द्वारा उसके रचित होने का, इनसे की गयी याचना, कामना का, या इनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का (१।३।१०, १।१७१।४, १।२१३।२, १।२२२।४, १।२२२।५, १।२२२।७, १।२२३।७, १।२३०।६, १।२३१।४, १।२६६।८, १।२६७।७, १।२७०।७, १।२८०।५, १।३०९।८, १।३१०।८, १।३११।५, १।३११।छं०, १।३२४।२, १।३३५।४, १।३५७।८, २।१०।३, २।११।४, २।१५।७, २।१९।५, २।१९।६, २।२३।३, २।३६।१, २।४४।६, २।४७।१, २।४८।१ २।५८।४, २।६८।७, २।७०।४, २।७३।८, २।७६।३, २।८६।६, २।८९।३, २।१०२।६, २।१०६, २।११८।७, २।१२१।५, २।१६०।२, २।१६१,

२।१६२।३, २।१६२, २।१६७।८, २।१६७, २।१८०।८, २।१८१।१, २।१८१।२, २।२०६।८, २।२५२।६, ४।२७।४, ५।४६।७, ७।२५।५), इनके राम-सेवक होने का (१।२११।छं० ४, ३।४।छं० ५, ४।२५, ५।१ श्लो० १, ५।४७, ६।२२।१, ६।४८ ख, ६।६३।५, ६।१०४।छं०, ६।११३।छं०, ६।१२१।छं० १, ७।१।श्लो० २, ७।५।६, ७।१३।छं० ४, ७।१५।९, ७।३५।७, ७।१०६।३, ७।१०६।४, ७।१२४।३), इनके अनुकूल या प्रतिकूल होने का, अथवा इन्हें दोष दिये जाने का (१।२८०।२, २।८, २।१४।३, २।३६।२, २।४२।१, २।४९।१, २।५५।२, २।५९।४, २।८२।७, २।९१।७, २।१४३।२, २।१६५।७, २।१७६।५, २।१८२।२, २।२०१।८, २।२०१।छं०, २।२०२।४, २।२२३।५, २।२२३, २।२४४।८, २।२४६।५, २।२५३।५, २।२६६।२, २।२७६।छं०, २।२८०।४, २।२९०, २।२९३।६, ५।१२।७, ५।३७।६, ६।९९।५, ६।९९।८, ६।९९।१०), इनके धाम का (३।८।२)। अन्य उल्लेख (१।३।११, १।२२।१, १।६६।४, १।१६१।४, १।१६५।४, १।१६६।६, १।२०४।२, १।२५१, १।२५२।४, १।२५८।५, १।३०४।३, १।३१२।८, १।३२०।५, १।३५५।५, २।३७।४, २।६०।१, २।८४।३, २।१२२।७, २।१२७।१, २।१४६।१, २।१४६, २।१६२।४, २।१७३।७, २।१९५, २।२०१।६, २।२३१।८, २।२३१, २।२३३।५, २।२३७।५, २।२५२।८, २।२६१।१, २।२८८।६, २।२९५।५, २।३०५।८, २।३१७।८, ३।१०।४, ३।१७।८, ३।२२।९, ४।४।८, ६।१२।७, ६।१६ ख, ६।१८।९, ६।३२।७, ६।४०।४, ६।५९।५, ६।६७।५, ६।१०४।११, ७।२७।छं०, ७।८६।९, ७।९३।५, ७।९६।३), जातिवाचक संज्ञारूप में प्रयोग (१।५४।७, १।५४, १।२०२।१, ५।२३।८, ७।८०।५, ७।९२।५)।

मूल शब्द — १।३।१०, १।३।११, १।६।३, १।६।४, १।७ ख, १।१२, १।१४ च, १।१९।२, १।४९।१, १।५२।६, १।५४।७, १।५९।४, १।६०।६, १।६८, १।७५।५, १।८२।८, १।८२, १।८८।८, १।८९।५, १।८९।७, १।९१।६, १।९४।छं०, १।९६।८, १।९६।छं०, १।९७।८, १।९७।छं०, १।१०२।५, १।१३१।८, १।१४५।२, १।१४६।१, १।१६५।४, १।१७१।४, १।१७८।५, १।२१३।२, १।२२०।७, १।२२२।४, १।२२२।७, १।२४९।२, १।२४९।३, १।२५२।४, १।२५६।५, १।२५६, १।२५८।५, १।२६६।८, १।२६७।७, १।२७०।७, १।२८०।२, १।२८७।८, १।३०९।८, १।३१०।८, १।३११।छं०, १।३१२।६, १।३१४।८, १।३१७।४, १।३१७।५, १।३२१।६, १।३२४।२, १।३२४।छं०३, १।३३५।४, १।३६०।२, २।८, २।१०।३, २।११।४, २।१४।३, २।१५।७, २।१६।५, २।१९।५, २।१९।६, २।२३।३, २।३६।१, २।३६।२, २।३७।४, २।४२।१, २।४४।६, २।४७।१, २।४८।१, २।५५।२, २।५८।४, २।५९।४, २।६८।७, २।७०।४, २।७३।८, २।७६।३, २।८२।७, २।८४।३, २।८६।६, २।८९।३, २।९१।७, २।१०२।६, २।१०६, २।११८।७, २।११९।२, २।११९।५, २।११९।६, २।११९।८, २।१२०।२, २।१२०।३, २।१२०।५, २।१२१।५, २।१२७।१, २।१४६, २।१६०।२, २।१६१, २।१६२।३, २।१६२।४, २।१६२, २।१६७, २।१७१, २।१७३।७, २।१७६।५, २।१८०।८, २।१८१।२, २।१८२।२, २।१९५, २।२००, २।२०१।८, २।२०१।छं०, २।२०६।८, २।२१४, २।२२३।५, २।२२३, २।२३१।८, २।२३१, २।२३७।५, २।२४१।५, २।२४४।८, २।२५२।६, २।२५२।८, २।२५४।६, २।२५५।८, २।२६१।१, २।२६६।२, २।२६७।४, २।२७६।छं०, २।२८०।४, २।२८१।८, २।२८२।१, २।२८२।२, २।२८२।६, २।२८८।६, २।२९०, २।२९५।५, २।३०५।८, २।३१०।६, ३।१०।४, ३।१७।८, ३।२२।९, ४।४।८, ४।२७।४, ५।१२।७, ५।३७।६, ६।१२।७, ६।२९।१, ६।२९।२, ६।३२।७, ६।४०।४, ६।५९।५, ६।६७।५, ६।९९।५, ६।९९।८, ६।९९।१०, ६।१०४।११, ६।११०, ७।२५।५, ७।४८।७, ७।६०।६, ७।६०।८, ७।९२।५ (जाति०); ७।९६।३।

पर्याय — **अज** (अजन्मा, अनादि — ब्रह्म, राम, शिव भी) — १।५४, १।९१।७, १।२११।छं० ४, ३।४।छं०५, ३।६।५, ४।२५, ५।२३।८, ५।३६,१०, ५।५६क, ६।१५क, ६।१०५।२, ७।१।श्लो०२, ७।५।६, ७।१३।छं० ४, ७।१५।९, ७।३५।७, ७।१०६।४, ७।१२२।१२, ७।१२२ ख, ७।१२४।३।

करतार (कर्त्ता) — १।६, १।८४। छं०, २।११९, २।२४६।५। करतारा — ६।१८।९।

चतुरानन — १।२०२।१, ६।१०३।९, ६।१११, ७।५९।८, ७।७१।८, ७।८०।५ (जाति०)।

धाता (धारण करनेवाला, रचयिता) — ७।१०६।३।

बिधाता (विधाता — निर्माता, स्रष्टा) — १।७।१, १।१६।८, १।५९।३, १।७३।३, १।९७।६, १।१६३।२, १।१६६।६, १।१७५, १।१७७।२, १।२०४।२, १।२२२।५, १।२३१।४, १।२८०।५, १।३१२।८, २।४९।१,

२।११९।७, २।१४३।२, २।१४६।१, २।१६५।७, २।१६७।८, २।२०१।६, २।२०२।४, २।२३२।५, २।२५३।५, २।२५५।६, २।२८२।४, २।२९३।६, ५।४६।७, ७।६०।३, ७।८१।१ (जाति०)।

बिरंचि — १।२२।१, १।६१।२, १।८२।८, १।८८।५, १।९२।७, १।९४।८, १।९९।६, १।१००।३, १।१२८।२, १।१४४।६, १।१६१।४, १।१८४।छं०, १।१८४, १।१८५, १।१८७, १।१९१।५, १।२२३।७, १।२३०।६, १।२५१, १।२८७, १।३०४।३, १।३११।५, १।३२०।५, १।३३४।८, १।३५५।५, १।३५७।८, २।१।५, २।६०।१, २।१२२।७, २।१८१।१, २।३१७।८, ३।८।२, ३।३३, ५।४।६, ५।२१।५, ५।४७, ६।१६ ख, ६।२०।३, ६।२२।१, ६।२९।३, ६।४८ ख, ६।५१, ६।६३।५, ६।९६।८, ६।१२१।छं० १, ७।२७।छं०, ७।४२।६, ७।६०।१, ७।६०।२, ७।६२ ख, ७।७०।६, ७।८६।९, ७।९३।५, ७।१२२ ख।

ब्रह्म (परात्पर ब्रह्म, राम, शिव, विष्णु के लिए भी) — १।६२।३, १।१७८।१, १।१८२।१२, १।१८५।८, ४।६, ५।४।६, ६।२७।२, ६।८३।८, ६।८३।छं०।

ब्रह्मा — १।१।श्लो० ६, १।६६।४, १।८८।४, १।१५०।६, १।१७७।५, १।१८४।छं०, १।१८७।६, १।१८८।२, १।२६२।५, १।३१३, १।३१४।२, १।३१९।छं०, १।३४४, ५।१।श्लो० १, ६।८१।१, ६।१०४।छं०, ६।११३।छं०, ७।११ ग, ७।२४।९।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **जगदीसा** (सगुण ब्रह्म, राम, शंकर के लिए भी) — १।१७७।३।

भगवाना (सगुण ब्रह्म, राम, विष्णु—श्रीरंगजी, शिव, कपिल भी) — १।१४४।६।

बिधु — दे० 'ससि'।

बिनता (विनता) — कश्यप-पत्नी। कद्रू की बहन एवं सपत्नी। महा० आदि० १६।६। अरुण और गरुड़ की माता। (वंश-परम्परा के लिए दे० 'गरुड़'।)

[कद्रू-पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ दो पुत्रों की प्राप्ति का वांछित वर इन्हें पति से प्राप्त। कद्रू के अण्डों से पुत्र उत्पन्न हो जाने पर भी इनके अण्डे न फूटने से इन्हें लज्जा और ईर्ष्या। इनका स्वयं एक अण्डा फोड़ना। उसमें से उत्पन्न पुत्र (अरुण) का ऊपरी अंग पूर्ण विकसित, नीचे के अंग अधूरे। क्रोध से उनका शाप — जिस सपत्नी के प्रति ईर्ष्या के कारण इन्होंने अरुण को पूर्ण विकसित होने से वंचित किया, उन्हीं सपत्नी की इन्हें पाँच सौ वर्षों तक दासता करनी होगी। दूसरे अण्डे से उत्पन्न पुत्र (गरुड़) उन्हें दासत्व-मुक्त करेगा। आदि० १६।९, १०, १४, १६-२२। कद्रू के छल से ये उनकी दासी (दे० 'कद्रू')। दुःख से सन्तप्त। उनके आदेश से विवश उन्हें पीठ पर बैठाकर इनका सागर-गर्भस्थित नागभूमि में ले जाना। गरुड़ की पीठ पर बैठकर कद्रू-पुत्र सर्पों का जाना। आदि० २५।२-५। गरुड़ की जिज्ञासा पर इनके द्वारा अपनी दासता का कारण-कथन। आदि० २७।१२-१३। गरुड़ के अमृत लाने पर ये दासत्व से मुक्त (दे० गरुड़।]

जिस तरह कद्रू द्वारा ये पीड़ित, उसी तरह भविष्य में कौसल्या द्वारा कैकेयी के पीड़ित होने का मन्थरा-कथन (२।१९)।

बिप्रचरन — भृगुरेखा, भृगुलता। विष्णु के वक्षःस्थल पर भृगु के पद-प्रहार का चिह्न। कथा के लिए दे० 'भृगु'।

राम के रूप-वर्णन में उनके वक्ष पर इस चिह्नविशेष के होने का उल्लेख (१।१९९।६, ६।८६।छं०, ७।१।श्लो०१)। [यह प्रभु के हृदय की अत्यन्त कोमलता का सूचक (उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई। वि० प० ६२।]

मूल शब्द — १।१९९।६।

पर्याय — **धरासुर पद** — ६।८६।छं०।

बिप्रपादाब्जचिह्न — ७।१।श्लो०१।

बिभीषन (विभीषण) — प्रातःस्मरणीय परमभागवतों में एक। वि० ५।७।८ व्या०, मा० पी० ५।७।८ अर्थ। विश्रवा के पुत्र। वा० रा० में रावण और कुम्भकर्ण के सहोदर भाई, मानस में महा० के अनुरूप सौतेले अनुज। दे० 'रावन' — वंश-परम्परा।

[वा० रा० में — सायंकाल के समय पुत्रप्राप्ति की कामना से अपने निकट आयी कैकसी से विश्रवा का कथन — उसके पुत्र क्रूरकर्मा राक्षस होंगे। उसकी प्रार्थना पर मुनि का अनुग्रह — उसका अन्तिम पुत्र धर्मात्मा

होगा। अतः विभीषण राक्षस होते हुए भी धर्म में स्थित। इनके जन्म पर आकाश में देवताओं का दुन्दुभि-वादन, पुष्पवर्षा, अन्तरिक्ष में साधु-साधु की ध्वनि। ७।६।१६-२७, ३६, ३६।

तपस्या करने के लिए भाइयों के साथ इनका गोकर्ण के आश्रम पर जाना। पाँच हजार वर्षों तक तप। फिर स्वाध्यायपरायण होकर पाँच हजार वर्षों तक सूर्य की आराधना। प्रसन्न ब्रह्मा से वर-याचना — इनके विचार धर्मानुकूल हों और उनके पालन में ये समर्थ हों। बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी इनकी बुद्धि धर्म से विचलित न हो, बिना सीखे इन्हें ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाये। यह वर देकर ब्रह्मा का स्वेच्छा से इन्हें अमरत्व प्रदान करना। ७।६।४६-४७, ७।१०।६-६, २७-३५।

गन्धर्वराज शैलूष की धर्मज्ञा पुत्री सरमा इनकी पत्नी। इनकी ज्येष्ठ कन्या का नाम कला। ५।३७।११, ७।१२।२४-२५।]

विप्रशापवश राजा प्रतापभानु के सचिव धर्मरुचि का विभीषण के रूप में जन्म। ये रावण-कुम्भकर्ण के सौतेले भाई। विष्णुभक्त, ज्ञान-विज्ञान-निधान (१।१७६।४-५)। अन्य भाइयों के साथ इनका भी कठिन तप। भगवान् के चरणों में निर्मल प्रेम की ब्रह्मा से वर-याचना (१।१७७।१, १।१७७)।

लंका के अन्य भवनों से इनका भवन विशिष्ट। वह रामायुध (मा० पी० ५।५ अर्थ में धनुष-बाण, वि० ५।५ व्या० के अनुसार धनु-असि-चर्म-शक्ति) के चिह्नों से अंकित। वहाँ तुलसी के हरे-भरे वृक्ष-समूह। घर से पृथक् भगवान् का मन्दिर। राक्षस-पुरी में ऐसी सात्विक शोभा देख हनुमान् के मन में तर्क। इसी समय निद्रा से जागकर इनका राम-नामोच्चार। सुनकर हनुमान् को हर्ष (५।५।८-५।६।३)। विप्रवेशधारी हनुमान् को देख ये प्रेमाप्लुत। उनका परिचय पाकर, उनसे रामकथा सुन, प्रभु के गुण-समूह को याद कर ये मग्न (५।६।४-५।६)। राक्षसों के बीच अपनी स्थिति बताकर, अपने ऊपर रामकृपा के अनुभव का इनका हनुमान् से कथन। राम-गुणों का स्मरण करते हुए दोनों के नेत्र जलपूरित, हृदय में सुख-शान्ति (५।७।१-५।८।२)। इनका हनुमान् को सीता के सम्बन्ध में बताना (५।८।३-५)। त्रिजटा के स्वप्न में 'लंका मनहुँ बिभीषन पाई' (५।११।५)।

रावण के आदेश से जब निशिचर हनुमान् को मारने के लिए उद्यत, उसी समय सचिवोंसहित उपस्थित होकर इनका रावण से विनीत कथन — दूत का वध नीति-विरुद्ध। उसे अन्य कोई दण्ड दिया जाये। सबके द्वारा इनका समर्थन (५।२४।६-८।) लंका-दहन करते हुए हनुमान् का इनके घर को न जलाना (५।२६।६)। राम-सेना के सागर-पार आ जाने पर भी जब सचिवों द्वारा रावण की प्रशंसा, तब सभा में आकर इनका विनीत भाव से रावण को नीति-उपदेश देना। पुलस्त्य-सन्देश के रूप में ब्रह्मरूप राम का गुण-कथन कर सीता को लौटाने और राम को भजने की प्रार्थना करना। माल्यवान् द्वारा इनका अनुमोदन (५।३८।२-५।४०।२)। रावण के रुष्ट होने पर भी इनका हाथ जोड़कर वेद-पुराणादि-सम्मत नीति समझाना। उसके चरण पकड़कर सीता को लौटाने की भिक्षा माँगना (५।४०।३-५।४१।१)। रावण का इन्हें कठोर वचन कहकर इन पर पद-प्रहार करना। इन्हें त्यागना। इनका बार-बार उसके पैर पकड़ राम-भजन को कल्याणकारी कहना। फिर सचिवोंसहित आकाश-मार्ग से राम-शरण के लिए गमन। इनके जाते ही रावण विभवहीन, असुरगण आयुहीन (५।४१।२-५।४२।१,३)।

मन में राम-चरण-दर्शन का मनोरथ करते हुए इनका सागर पार करना। इन्हें रिपु-दूत समझ कपियों का रोकना। भेदिया मानकर सुग्रीव का बाँध रखने का परामर्श (५।४२।४-५।४३।७)। राम द्वारा अपनी शरणागत-वत्सलता का कथन। ये भेदिया हों या भीत शरणागत, इन्हें ले आने का आदेश (५।४३।८-५।४४)। इन्हें दूर से ही राम-लक्ष्मण के दर्शन। एकटक राम-रूप निहार इनके नेत्र सजल, देह पुलकित। धीरज धरकर अपना हीनतापूर्ण परिचय देते हुए इनका दैन्य-निवेदन। फिर 'त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर' कहकर साष्टांग प्रणति (५।४५।१-५।४६।१)। [उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते।। मा० पी० ५।४६।१ टिप्पणी १ (क) के अनुसार आह्निक सू० पृ० १४४। इनकी षड्विध शरणागति — (१) अनुकूल का संकल्प — चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।। (५।४२।४)। (२) प्रतिकूल का त्याग— मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।। अस कहि चला बिभीषनु... (५।४१,५।४२।१)। (३) रक्षा में विश्वास — सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।। (५।३६।७)। (४) गोप्तृत्ववरण— श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन

सुखद रघुबीर।। (५।४५)। (५) आत्मनिवेदन—असकहि (त्राहि-त्राहि ···) करत दंडवत देखा (५।४६।१)। (६) कार्पण्य—नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता।। सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।। (५।४५।७-८)। मा० पी० ५।४७-द्वितीय आवृति — षट्शरणागति।] प्रभु का इन्हें हृदय से लगाना। अनुजसहित मिलकर निकट बैठाना। 'लंकेस' कहकर सम्बोधन। इनकी नीति-निपुणता की प्रशंसा (५।४६।२-७)। राम-भजन से अन्तःकरण के खलों के नाश की बात कहकर इनका राम-दर्शन से स्वयं को कृतार्थ समझना (५।४६।८-५।४७)। प्रभु का इन्हें 'सखा' मानना, कथन -- इनमें सन्तों के सब लक्षण, अतः ये उन्हें अतिशय प्रिय (५।४८।१-५।४९।१)। सुनकर ये प्रेममग्न। इनका निवेदन— पहले इनके हृदय में कुछ वासना थी, अब नहीं रही। [वासना लंकाराज्य की। वि० ५।४९।६ व्या०, मा० पी० ५।४९।६ टिप्पणी २। कुछ अन्य विद्वानों के मत से वासना रामकृपा की। मा० पी० ५।४९।६ नोट ३।] इनके द्वारा राम की पावनी भक्ति की वर-याचना। राम द्वारा इनका अभिषेक। इन्हें अखण्ड राज्य-प्रदान (५।४९।३-५।४९ क)। 'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ। सो संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।' (५।४९ख)। [या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात्। दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे।। मा० पी० एवं वि० के अनुसार हनुमन्नाटक ७।१४।]

राम के पूछने पर इनका सागर से विनय करने का नीति-कथन। राम सहमत, किन्तु लक्ष्मण के लिए इनकी सलाह अरुचिकर (५।५०।५-५।५१।२)। इनके पीछे-पीछे भेजे गये शुक आदि दूतों के लौटने पर शुक से सागर-सम्बन्धी इनके परामर्श की बात सुन रावण का हँसना (५।५१।८, ५।५३।४, ५।५६।२-५,७)।

सुवेल पर्वत पर लेटे हुए राम के कानों से लगकर इनका सम्मति देना (६।११।६)। दक्षिण दिशा में प्रभु को दिखायी देनेवाली घन-घटा, मेघ-गर्जन और विद्युच्छटा का इनके द्वारा रहस्योद्घन (६।१३।१-७)। राम के आदेश से सुग्रीव और जाम्बवान् सहित इनका युद्ध के मन्त्र को दृढ़ करना (६।३९।३-४)। वानरों द्वारा राम के पास फेंके गये राक्षस-महामुखियों के नाम बताना (६।४५।२)। मेघनाद का इन्हें भ्रातृद्रोही कहकर हठपूर्वक मारने का कथन (६।५०।३)। कुम्भकर्ण को देख इनका उसके चरणों में गिरना, रावण के पद-प्रहार के सम्बन्ध में बताना। उसका इन्हें धन्य और 'बंस उजागर' कहकर राम-भजन का परामर्श। इनका राम के पास लौटना। कुम्भकर्ण का परिचय देना (६।६४।३-६।६५।२)। लक्ष्मण-सुग्रीव-सहित इन्हें वानर-सेना की सँभाल करने का राम-कथन (६।६७)। मेघनाद के बाणों से ये जर्जर (६।७३।९)। [वा० रा० में इन्द्रजित् का इनके मुख पर बाण-प्रहार। उसके घोड़ों को इनका गदा से मारना। उसका इन पर शक्ति चलाना। उसे लक्ष्मण का काटना। ६।९०।३९-४३। महा० में इन्द्रजित् के शरों से विद्ध राम-लक्ष्मण को इनका प्रज्ञास्त्र द्वारा चैतन्य-लाभ कराना। कुबेर से प्राप्त वह दैवी जल देना जिससे नेत्र-प्रक्षालन करने पर अदृश्य वस्तुओं को देखने की शक्ति प्राप्त। वन० २८९।५,८-१४।] इनका राम को मेघनाद के अपावन यज्ञ की सूचना देना (६।७५।३-५)। जाम्बवान्-सुग्रीव के साथ इन्हें भी सैन्यसहित लक्ष्मण के साथ जाने का राम का आदेश (६।७५।१०)। रथी रावण के सामने राम को रथरहित देख प्रेमाधिक्य के कारण इनके मन में सन्देह। धर्मरथ के रूपक से प्रभु का उपदेश सुन ये कृतार्थ (६।८०।१-६।८०ख)। राम को रावण के यज्ञ का समाचार देकर शीघ्र यज्ञ-ध्वंस कराने का इनका परामर्श (६।८५।१-३)। [इनके चार मंत्री कबूतर बनकर लंका की गतिविधियों का पता लगाया करते थे। उन्हीं से इन्हें लंका के संवाद मिलते थे। वि० ६।८५।२ व्या०।] रावण का इन पर शक्ति-प्रहार। इन्हें पीछे कर राम का स्वयं उस शक्ति को सहना (६।९३-६।९४।२)। [अ० रा० में नाभिस्थित अमृत-शोषण के बाद रावण का इन पर शक्ति-क्षेपण। प्रभु का बाणों से उसे छिन्न करना। अ० रा० ६।११।५६-५७। वा० रा० में इनका रावण के अश्वों को गदा से मार डालना। उसके द्वारा इन पर शक्ति-निक्षेप। लक्ष्मण का उसे काटना। पुनः मय-निर्मित शक्ति को इन पर चलाने के लिए रावण को प्रस्तुत देख लक्ष्मण का इनके सामने आना। रावण का उन्हीं पर शक्ति-प्रहार जिससे वे मूर्च्छित। वा० रा० ६।१००।१७-३६।] शक्ति लगने से प्रभु को कष्ट हुआ देख इनका गदा लेकर रावण को ललकारते-फटकारते हुए उसकी ओर दौड़ना। उसके वक्ष पर गदा-प्रहार। दोनों का द्वन्द्व-युद्ध। इन्हें क्लान्त देख हनुमान् का रावण पर आक्रमण। इनका राम के पास लौटना (६।९४।४-६।९५।१,३)। रावण के भुज-शीशों को काटने पर भी उसके न मरने पर राम का इनकी ओर देखना। इनका विनीत निवेदन -- उसके नाभिकुण्ड में अमृत जिसके कारण वह अब तक जीवित (६।१०२।२-६)। [नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।। तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्। अ० रा० ६।११।५३-५४।]

रावण-वध से ये दुखी। प्रभु-आज्ञा से इनका देशकालानुसार विधिवत् भाई की क्रिया करना (६।१०५।४-८)।

लक्ष्मण को सुग्रीव, अंगद आदि के साथ लंका में जाकर इनका राजतिलक करने का राम का आदेश। तदनुसार सब प्रवन्ध। इन्हें सादर सिंहासन पर बैठाकर इनका तिलक, स्तुति, प्रणति। फिर इनके साथ सबका प्रभु के पास आगमन (६।१०६।१-७)। हनुमान् के साथ जाकर सीता को सादर लाने की इन्हें और अंगद को राम की आज्ञा। इनका राक्षसियों को यथायोग्य आदेश। सीता को शिविका में नहीं, पैदल ही लाने का राम का इनसे कथन (६।१०८।३-६,११)। राम-स्तुति करके शम्भु के चले जाने के बाद इनका प्रभु के निकट आकर दैन्य-निवेदन। अपने गृह को पवित्र करने की प्रार्थना। सुनकर प्रभु के नेत्र सजल। इन्हें सब प्रकार से अपनाकर, भरत-प्रेम के कारण पुरी-प्रवेश में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए प्रभु की इन्हें आज्ञा और शिक्षा — ये निरन्तर उनका स्मरण करते हुए कल्पभर राज्य करें। तदुपरान्त इन्हें राम-धाम की प्राप्ति होगी (६।११६।१-६।११६घ)। [वि० के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवीं चतुर्युगी में इन्हें राज्य मिला। अतः कल्प पूरा होने तक सात मन्वन्तर और अड़तालीस चतुर्युगी ये राज्य करेंगे। इस बीच सात बार देवताओंसहित इन्द्र बदल जायेंगे। वि० ५।४९ व्या०। वा० रा० में परमधाम जाने से पूर्व राम का इन्हें आशीर्वाद — यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् तिष्ठति मेदिनी। यावच्च मत्कथा लोके तावद् राज्यं तवास्त्विह।। इक्ष्वाकुकुल के देवता जगन्नाथ का निरन्तर आराधन करने का इन्हें आदेश। वा० रा० ७।१०८।२७-३०।] हर्षित होकर इनका रामचरण पकड़ना (६।११७।१)। पुष्पक को मणियों-वस्त्रों से भरकर राम के सम्मुख रखना। उनके आदेश से विमान को आकाश में ले जाकर सब वस्तुओं का वर्षण (६।११७।३-६)। अतिशय प्रीति देखकर राम का सुग्रीव आदि के साथ इन्हें भी पुष्पक पर बैठाना (६।११८ ख-६।११९।१)। विमान से अयोध्या दिखाना (७।४।२)। उस पुरी में ये सब सुन्दर मनुष्यरूप में उपस्थित (७।८।१-२)। राम के अभिषेक के समय इनका धनुष धारण करना (७।१२।छं० १)। विदा के समय प्रभु-प्रेरणा से लक्ष्मण का इन्हें वस्त्राभूषण पहनाना। राम-रूप को हृदय में धारण कर, उन्हें नमन कर, सबके साथ इनका भी प्रस्थान (७।१७।७, ७।१७ क)।

सुग्रीवादिसहित इनकी चरण-वन्दना (१।१८।१-२)। भ्रातृ-वधू को कुदृष्टि से देखने के जिस पाप के कारण राम द्वारा वाली का वध, उसी पाप के ये और सुग्रीव भी अपराधी, किन्तु प्रभु का इनकी करतूत पर विचार न करना (क्योंकि ये भक्त। मा० पी० नोट १) (१।२९।६-७)। [सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर-बंधु-बधू जो। क० ७।५।] उल्लेख — इनके राम-शरण में जाने का (७।६७।८), राम-शरण-प्राप्ति का (१।२५।१), इनके राजतिलक का (६।११८।४), राज्य पाने का (६।१०६।छं०, ६।१०७।८, ६।१११।छं० ४, ७।६८।२)।

मूल शब्द — १।२५।१, १।२९।७, १।१७६।५, १।१७७, ५।६।५, ५।७।६, ५।८।३, ५।८।५, ५।११।५, ५।२६।६, ५।४०।२, ५।४१।१, ५।४२।१, ५।४२।३, ५।४९ ख, ५।५१।८, ५।५३।४, ५।५६।७, ६।१३।१, ६।१३।३, ६।३९।३, ६।६४।८, ६।६५।१, ६।६७, ६।७३।९, ६।७५।३, ६।७५।१०, ६।८०।१, ६।८० ख, ६।८५।१, ६।९३, ६।९४।२, ६।९४।४, ६।१०२।२, ६।१०२।६, ६।१०५।६, ६।१०६।१, ६।१०६।३, ६।१०६।७, ६।१०६।छं०, ६।१०७।८, ६।१०८।३, ६।१०८।६, ६।१११।छं० ४, ६।११७।१, ६।११७।३, ६।११७।५, ६।११७।६, ६।११८।४, ६।११८ ख, ७।१२।छं० १, ७।६७।८, ७।६८।२। बिभीषनु — ५।६।२, ५।२४।६, ५।३८।२, ५।४०।४, ५।४३।२, ५।४९।३, ५।४९ क, ६।४५।२, ६।५०।३, ६।६४।३, ६।९४ छं०, ६।९४, ६।९५।१, ६।९५।३, ६।१०५।४, ६।११६।१।

पर्याय — **दसानन भाई** — ५।४३।४।

निसाचर राजा — १।१८।१।

लंकापति (रावण भी) — ५।५०।५, ७।८।१, ७।१७।१७।

लंकेस (रावण भी) — ५।४६।४, ५।४९।१, ५।५०।७, ६।११।६। **लंकेसा** — ७.४।२।

बिरंचि — दे० 'बिधि'।

बिराध (विराध) — एक असुर।

[यह जव और शतह्रदा का पुत्र। पर्वत-शिखर-सा ऊँचा। महाभयानक, बीभत्स। ब्रह्मा के वरदान के कारण शस्त्रों से अवध्य, अच्छेद्य, अभेद्य। विराध-वन में इसकी राम-लक्ष्मण को चुनौती। सीता को बलात् अंक में लेना।

भार्या बनाने की घोषणा। राम-शरों से घायल हो, सीता को छोड़, दोनों भाइयों पर आक्रमण। उन्हें कन्धे पर बैठाकर प्रस्थान। दोनों भाइयों का इसकी दोनों भुजाएँ तोड़ना। गढ़ा बनाकर, इसके गले पर पाँव रख राम का खड़े होना। व्याकुल हो, उन्हें पहचान कर, इसका आत्म-कथन — यह तुम्बुरु नामक गन्धर्व। रम्भा पर आसक्त, अतः एक बार कुबेर की सेवा में अनुपस्थित। कुबेर-शाप से असुर। राम के हाथों मरकर शापमुक्त। प्राण-त्याग कर इसका स्वर्ग-गमन। वा० रा० ३।२-४। अ० रा० ३।१ में पहले यह विद्याधर। दुर्वासा-शाप से असुर।]

दण्डकवन की ओर जाते हुए राम द्वारा इसका वध। इसे रुचिर रूप-प्राप्ति। दुखी देख राम का इसे निज-धाम भेजना (३।७।६-७)। राम के हाथों इसके वध का उल्लेख (६।३६, ६।९०।५, ७।५१।५, ७।६५)।

मूल शब्द — ३।७।६, ६।३६, ६।९०।५, ७।५१।५, ७।६५।

विष्नु (विष्णु) — त्रिदेव में एक। सृष्टि-पालक।

[व्युत्पत्तिगत अर्थ —

(१) वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वं यः (जो सारे विश्व में व्याप्त हैं)। ह० को०।

(२) वेशति सिंचति आप्यायते विश्वमिति (जो विश्व का सिंचन-आप्यायन, पालन-पोषण करते हैं)। ह० को०।

(३) विष्णाति वियुनक्ति भक्तान् मायापसारेण संसारादिति (जो माया समेटकर भक्तों को संसार से मुक्त करते हैं)। ह० को०।

(४) विशति सर्वभूतानि, विशन्ति सर्वभूतानि यत्र (जो सब भूतों में प्रविष्ट, जिसमें सब भूतों का प्रवेश) ह० को०।

(५) बृहत्वाद् विष्णुरुच्यते (बृहत् अर्थात् व्यापक होने के कारण विष्णु)। महा० उद्यो० ७०।३।

(६) यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः। तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्।। (इनकी शक्ति से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होने के कारण ये विष्णु क्योंकि 'विश्' धातु का अर्थ प्रवेश करना)। वि० पु० ३।१।४५। व० पु० ७२।५ में भी इसी प्रकार का व्युत्पत्तिगत अर्थ।

वैदिक साहित्य में —

ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि, सोम देवताओं के स्तुति-सूक्तों की तुलना में इनके स्तुति-सूक्तों की संख्या बहुत कम। अन्य वेदों में इनके जो स्तुतिपरक मन्त्र, उनमें अधिकांश वे ही जो ऋग्वेद में प्राप्त। इनसे सम्बन्धित अन्य मन्त्रों में दूसरे देवताओं के साथ सामान्यरूप से इनकी स्तुति। अतः स्तुति-मन्त्र-संख्या की दृष्टि से वैदिक देवताओं में ये चतुर्थ कोटि के, फिर भी वहाँ इनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण।

ऋग्वेद में ऋषि द्वारा इनके पराक्रमों का गान — ये महान् यशस्वी। इनका पार्थिव प्रदेशों को मानो अपने विचरण से नाप लेना, ऊपर से द्युलोक को सहारा देना, दूर-दूर पद-निक्षेप करना, तीनों स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में विक्रमण करना। ऋ० १।१५४।१। इनके विस्तृत पाद-विक्रमणों में समस्त भुवन का समा जाना। ऋ० १।१५४।२। इनके मधु (मधुर अमृतरस) से परिपूर्ण और कभी क्षीण न होनेवाले तीनों पद (स्थान) स्वच्छन्द आनन्द में मग्न। अकेले होते हुए भी इनका तीनों स्थानों — पृथ्वी, द्युलोक और समस्त प्राणियों (अथवा भुवनों) — को आधार देना। ऋ० १।१५४।४। इनके उस प्रिय स्थान को प्राप्त करने की ऋषि की कामना जहाँ देवभक्त पुरुषों का आनन्द से विहार।... इनके उस परमपद (परमोच्च दिव्य स्थान) में मधु (मधुर अमृतरस) का निर्झर। ऋ० १।१५४।५। इनके और इन्द्र के इन निवास स्थानों में जाने की ऋषि की कामना जहाँ अनेक सींगोंवाली और कभी न थकनेवाली गायें विद्यमान। वहीं गतिशील वृषभ (रूप विष्णु) का वह उत्कृष्ट पद (स्थान) विशेषतः प्रकाशमान। ऋ० १।१५४।६।

उपर्युक्त मंत्रों में इनसे सम्बन्धित ध्यान देने योग्य ऐसी बातों का संकेत जिनमें इनकी पौराणिक विशेषताओं के सूत्र निहित — (१) सूर्य के रूप में इनके द्वारा प्रतिदिन पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक, तीनों की परिक्रमा। (यहाँ इनके वामनावतार और उस अवतार में तीन पाद-विक्रमणों द्वारा तीनों लोकों को लाँघने का संकेत। इसलिए इनका एक नाम 'त्रिविक्रम'।) (२) परिक्रमा के आधार पर इनकी महान् पराक्रमशीलता की स्थापना। (इसमें इनके द्वारा असुरों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता किये जाने का संकेत। अतः इनका नाम 'इन्द्रावरज' अथवा 'उपेन्द्र'। वि० को०

के अनुसार ऋ० ४।१८।११ में ये इन्द्र के सखा। इनके पराक्रम से ही वृत्र-वध।) (३) इनके सदा प्रकाशमान परमपद या दिव्यलोक का प्रतिपादन जहाँ आनन्द-रस का निर्झर, सदा गतिशील प्रकाशमान किरणरूप गायें। (यहाँ इनके उस माहात्म्य का संकेत जिसका 'विष्णुसहस्रनाम' आदि में गान। इसीलिए 'अनादिनिधन', 'विश्वमूर्त्ति' आदि नामों से इनका स्मरण।)

वेद में किसी देवता के दिव्य स्थान का ऐसा वर्णन नहीं जैसा इनके परमपद का। वस्तुतः 'परमदेव' के रूप में ये तत्वज्ञानियों में सदा से प्रसिद्ध। ऋग्वेद में ऋषि का कथन कि 'इनके उस दिव्य परमपद का, जो द्युलोक में विश्व के चक्षु के रूप में विस्तृत, सूरि (तत्वज्ञानी) द्वारा सदा दर्शन। इनके उस दिव्य परमपद का इनके जागरणशील मेधावी स्तोता द्वारा ही प्रकाशन। (तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्।।) ऋ० १।२२।२०-२१। स्पष्टतः 'परमपद' से इनके रहस्यात्मक आध्यात्मिक रूप की ओर संकेत। यही संकेत उपनिषदों में 'तद्विष्णोः परमं पदम्' (कठोपनिषद् १।३।९) जैसे शब्दों में। यह 'पद' जीवात्मा का सर्वोच्च प्राप्य।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इनकी परम्परा-प्राप्त महत्ता का ही प्रतिपादन। ऐतरेय ब्राह्मण के आरम्भ में ही इनकी श्रेष्ठता की स्वीकृति — अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः। तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। आगे चलकर इनके यज्ञस्वरूप का उद्घाटन— अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुर्यज्ञः। गोपथब्राह्मण २।१।१२। विष्णुर्वै यज्ञः। ऐतरेय-ब्राह्मण १।१५। डॉ० मंगलदेव शास्त्री, वि० अ०, पृ० ८४-८६।

इनके निम्नलिखित अवतारों के स्रोत भी ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त — वामनावतार (शतपथ ब्राह्मण १।२।५, ऐतरेय ब्राह्मण ६।१५), वराहावतार (श० ब्रा० १४।१।२), मत्स्यावतार एवं आद्यजल में भ्रमण करनेवाले कश्यप के रूप में अवतार (श० ब्रा० १।८।१, ७।५।१)। प्रा० च०, पृ० ८८१।

यज्ञ-यागादि कर्मकाण्डों की लोकप्रियता कम होने पर समाज में यह धारणा दृढ़मूल कि कर्मकाण्डों से प्राप्त होनेवाला पुण्य केवल विष्णु की उपासना से ही अर्जित। मैत्री उपनिषद् ६।१६। इसी काल में उत्पत्ति, स्थिति, लय के अधिष्ठातृ देवता के रूप में त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की कल्पना प्रचलित। मै० उ० ४।५। इन्हें ओंकार-उपासना में स्थान प्राप्त। ओंकार में से 'उ' कार के साथ ये समीकृत। नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद् ३। प्रा० च० पृ० ८८३। वि० १।२५६ व्या० में ये प्रणव की पहली मात्रा के वाच्य।

महा० में —

ये ही विश्वमूर्त्ति, विश्वेश, दिभु, परमेश्वर, ब्रह्म। ब्रह्मा द्वारा की गयी इनकी स्तुति में वासुदेव, नारायण, विष्णु, कृष्ण आदि समानार्थक। भी० ६५।४७-७५। ये ही परमपद। भी० ६६।१५। कृष्ण का उत्तंक मुनि को अपना वही विश्वरूप दिखाना जिस रूप के अर्जुन को युद्धारम्भ के समय दर्शन। किन्तु उत्तंक दृष्ट विश्वरूप की अभिधा ' विष्णु का परम रूप'। आश्व० ५५।४-६।

श्वेतद्वीप में नारद द्वारा दो सो नामों से इनकी स्तुति। शा० ३३८। उन्हें इनके विश्वरूप के 'यज्ञपति'- स्वरूप में दर्शन। उस रूप में इनके द्वारा एक मुख से ओंकार एवं गायत्री का जप, अन्यान्य मुखों से चारों वेदों — आरण्यकों का गान। इनके हाथों में यज्ञवेदी, कमण्डलु, मणिरत्न, उपानह, कुशा, मृगचर्म (अजिनं), दण्ड-काष्ठ और अग्नि। शा० ३३९।१-१०।

नारद को अपने चतुर्व्यूह-स्वरूप का परिचय देते हुए इनका कथन — (१) सम्पूर्ण भूतों की आत्मा 'वासुदेव' इनका क्षेत्रज्ञ-स्वरूप। (२) जीवात्मा इनका 'संकर्षण' (या शेष)-रूप। (३) संकर्षण से 'प्रद्युम्न' का प्रादुर्भाव। यह सम्पूर्ण भूतों का मन, मनोमय। (४) प्रद्युम्न से उत्पन्न 'अनिरुद्ध' (एवं ईशान) ही अहंकार और ईश्वर। इसी से जगत् की सृष्टि। शा० ३३९।३३-४१।

सर्वश्रेष्ठ जपसाधन के रूप में इनके सहस्र नामों का भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश। अनु० १४९।१४-१२०।

इनके द्वारा अपने दशावतार का कथन — मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः। रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश।। (तीन राम — परशुराम, दाशरथि राम, बलराम।) शा० ३३९।७६ के बाद। शा० ३३९।१०३-१०४ में कथित दशावतार में बलराम के स्थान पर हंस।

पुराणों में —

वैष्णव पुराणों में ये साक्षात् ब्रह्म। त्रिदेवरूप में इन्हीं की अभिव्यक्ति। (स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च। ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्त्तिर्विष्णर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः।। वि० पु० १।२।७०)। शैव, शाक्त आदि पुराणों में ये त्रिदेव में एक। ब्रह्म के सत्वगुण से उत्पन्न। सृष्टि-पालक। (दे० 'ब्रह्म'।) दुष्टों का प्राबल्य और धर्म की हानि होने पर लोकहित के लिए समय-समय पर कभी इन्द्र के सहायक बनकर, कभी अवतार लेकर इनके द्वारा दुर्वृत्तों का नाश। वा० रा०, महा० एवं पुराणों में इसके प्रभूत प्रमाण। वैदिक साहित्य में भी संकेत। भा० ५।१९।५ में इनके मनुष्यावतार का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को शिक्षण देना (मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः)। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भी अवतार-ग्रहण। वस्तुतः 'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।'

न० पु० में, महा० शा० ३३९।३३-४१ में वर्णित इनके दस अवतारों के अतिरिक्त एक अवतार बुद्ध भी। न० पु० ३६।१-१०। इनके चौबीस अवतार भी प्रसिद्ध। भा० में बाईस अवतारों का उल्लेख। भा० १।३।६-२५। वस्तुतः इनके अवतारों की संख्या अनन्त — अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः। भा० १।३।२६।

इनका शान्त, नयनाभिराम चतुर्भुज रूप — ये जलधर-से श्यामवर्ण, मस्तक पर किरीट, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, गले में कौस्तुभमणि और वनमाला, कानों में मकराकृत कुण्डल, चारों भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म, बाहुओं में केयूर, मणिबन्धों में कंकणादि, कटिप्रदेश में कांचन की करधनी, चरणों में सुवर्णमय नूपुर, शरीर पर रेशमी पीताम्बर। अंग-प्रत्यंग अतीव सुन्दर। सदा प्रसन्नवदन। भा० ४।८।४५-४६। (स्वामी करपात्री जी के अनुसार इनके दक्षिण वक्षःस्थल पर दक्षिणावर्त्त श्वेत रोमराजि श्रीवत्स, वाम वक्षःस्थल पर वामावर्त्त सुवर्णवर्णा रोमराजि श्रीलांछन लक्ष्मी का चिह्न। दोनों के मध्य भृगुचरण-चिह्न। वि० अ०, पृ० ३०।)

अष्टभुज रूप में इनके आयुध — पांचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, नन्दक तलवार, ढाल, शाङ्‌र्ग धनुष, बाण, कौमोदकी गदा, पाश। भा० ६।४।३६। भा० १२।११।१५ में पाश की जगह तरकस। भा० १२।११।१३ में शेष इनकी शय्या। सम्पूर्ण सृष्टि के प्रलयजल में डूब जाने पर ये शेषशय्या पर योगनिद्रा में निमग्न। भा० ३।८।१०।

इनके प्रिय धाम क्षीरसागर एवं श्वेतद्वीप। भा० ८।४।१८। (दे० 'जलंधर'।) बहुचर्चित प्रिय धाम वैकुण्ठ, प्रिया लक्ष्मी। भा० ३।१५।१३, २१। भा० १२।११ एवं वि० पु० १।२२।६८-७६ में इनके अंग, उपांग, आयुधों का रहस्य-कथन। रामरूप में इनके अवतरित होने पर अनन्त (शेष), पांचजन्य शंख और सुदर्शन चक्र के अंशों से क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का अवतार। प० पु० उ० २४२।९४-९६।

मानस में एक कल्प में वैकुण्ठवासी विष्णु का, दो अन्य कल्पों में क्षीरनिधिशायी का रामावतार। और एक कल्प में ब्रह्म का अवतार (जिसका यहाँ उल्लेख नहीं)। किन्तु ब्रह्म, वैकुण्ठवासी विष्णु या क्षीरनिधिशायी में वास्तविक भेद कुछ भी नहीं। उपासकों के भेद से भेद की प्रतीति। वि० १।१४१।१ व्या०, १।१९२।छं०३ व्या०।

मानस में इनके दो रूप चित्रित — ब्रह्मरूप और देवतारूप।]

ये नीलोत्पल-से श्यामवर्ण, लाल कमल-से नेत्रवाले, क्षीरनिधिशायी। इनसे हृदय में वास करने की कवि की विनती (१।१।सो०३)। 'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं' के उदाहरणरूप में इनके शेषशय्या पर शयन करने का कथन (१।९६।५,८)। एक कल्प में अपने भक्त नारद के शाप के कारण इनका अवतार। सुनकर पार्वती को आश्चर्य, उनकी जिज्ञासा — ये किस अपराध के कारण नारद द्वारा अभिशप्त (१।१२४-५-८)। शिव-कथन— हिमालय का प्राकृतिक परिवेश देख नारद का इनके चरणों में अनुराग। इन्हें स्मरण करते हुए उनकी शापगति अवरुद्ध (१।१२५।३-४)। 'सीम कि चाँपि सकइ कोइ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू।।' (१।१२६।८)। नारद को शिव का परामर्श — वे अपनी काम-विजय की कथा इनसे न कहें। चर्चा चलने पर भी छिपायें। किन्तु यह बात नारद को अप्रिय, क्योंकि 'हरि इच्छा बलवान' (१।१२७।८ - १।१२७)। इनका गुणगान करते हुए नारद का इनके निवास क्षीरसागर में आना। उठकर इनका आनन्द से मिलना। अपने साथ आसन पर बैठाना। नारद का इन्हें काम-चरित सुनाना। उनके मन में अहंकार उत्पन्न हुआ देख, उनके हित के लिए, उसका समूल नाश करने का इनका निश्चय, क्योंकि 'पन हमार सेवक हितकारी' (१।१२८।३-७, १।१२८ - १।१२९।७)। लीला रचने के लिए इनका अपनी माया को प्रेरित करना (१।१२९।८)।

स्वयंवर में विश्वमोहिनी को पाने के लिए नारद द्वारा इनकी विनती। इनके प्रकट होने पर इनसे इनका रूप माँगना, हित करने की प्रार्थना करना। उनका हित-साधन करने का वचन देकर ये अन्तर्धान (१।१३२।१ - १।१३३।२)। मायावश नारद इनके गूढ़ वचन समझने में असमर्थ। इनका उन्हें अत्यन्त कुरूप बनाना। (१।१३३।३,७)। स्वयं नृपवेश धारण कर विश्वमोहिनी स्वयंवर में जाना। कन्या का इनके गले में जयमाल डालना। उसे लेकर इनका प्रस्थान (१।१३५।३-४)। इन्हें शाप देने के लिए कुपित नारद का आना। मार्ग में ही इनसे भेंट। इनके साथ लक्ष्मी और विश्वमोहिनी। कटूक्तियाँ करते हुए नारद का इन्हें शाप — ये वही शरीर धारण करें- जिस (नृप) शरीर से इन्होंने उन्हें वंचित किया, ये नारी-विरह में दुखी हों, (उस स्थिति में) कपि ही इनकी सहायता करें (१।१३६।२ - १।१३७।८)। नारद का शाप शिरोधार्य कर, अनेक प्रकार से उनकी विनती करके, इनका माया की प्रवलता को खींचना। (माया को नहीं, पूरी माया खींच लेने से मोक्ष हो जाता। वि०।) रमा और विश्वमोहिनी का अदृश्य होना। भयभीत मुनि का इनके चरण पकड़ना। वस्तुतः इनकी इच्छा से ही मुनि के मन में शाप देने की प्रेरणा। उन्हें शंकर-शतनाम जपने का आदेश देकर इनका कथन — शिव के समान इन्हें और कोई प्रिय नही। जिस पर शिव की कृपा नहीं, उसके लिए इनकी भक्ति दुर्लभ। अनेक प्रकार से प्रबोधन कर ये अन्तर्धान (१।१३७-१।१३८)।

कपिरूप नारद के प्रति हरगण के व्यंग्य-वचन — 'नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई', 'इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी' (१।१३४।३-४)। हरगण के प्रति नारद का शापानुग्रह — इनके मनुष्य-देह धारण करने पर इनके हाथों उनकी मृत्यु और मुक्ति होगी (१।१३९।६-७)। 'एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार। सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुवि भार।।' (१।१३९)।

इनके जन्म-कर्म सुन्दर, सुखद, विचित्र। प्रत्येक कल्प में अवतार-ग्रहण कर इनका लीलाएँ करना। उन लीलाओं का प्रबन्धरूप में मुनीश्वरों द्वारा गान। 'हरि अनंत हरिकथा अनंता' (१।१४०।१-५)। [कालिका पुराण ६१।३९-४१ में — प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः। एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रश·। भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते।। प्रत्येक कल्प के चरित्र में विधि-भेद, ढाँचा एक-सा। इसीलिए एक रामायण की कथा का दूसरे से सर्वत्र मेल नहीं। वि० १।१४०।१-२ व्या०।] इनकी माया से सुर, नर, ज्ञानी मुनि भी मोहित, अतः इनका भजन अपेक्षित (१।१४०।७८ - १।१४०)।

त्रस्त पृथ्वी को ब्रह्मा का परामर्श कि वे इनके चरणों का स्मरण करें। ये ही विपत्ति-नाश करेंगे (१।१८४ छं० -१।१८४)। किसी देवता के मतानुसार इनका वास वैकुण्ठ में, किसी के मत से क्षीरसागर में। इस पर शिव-कथन — 'हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।' '(१।१८५।१-३, ५-७)। ब्रह्मा द्वारा ब्रह्मरूप में इनकी स्तुति (१।१८५-१।१८६।छं० ४)। आकाशवाणी से अभय देते हुए इनका कथन — ये अपनी पराशक्ति और अंशों के साथ रघुकुल में अवतार लेकर भूमि का भार-हरण करेंगे (१।१८६-१।१८७।७)। सुनकर सबको शान्ति। इनकी सेवा के लिए वानर-देह धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होने का देवताओं को ब्रह्मा का आदेश (१।१८७।८-१।१८७)। वानररूप में देवगण को इनके आगमन की प्रतीक्षा (१।१८८।४)। कौसल्या के गर्भ में इनके प्रवेश करने पर सब लोकों में सुख-समृद्धि। अपने प्रिय अभिजित मुहूर्त्त में, भूषण-वनमाला-आयुध-(शंख-चक्र-गदा-पद्म)-धारी चतुर्भुजरूप में इनका प्राकट्य। माता द्वारा निर्गुण-सगुण ब्रह्मरूप में इनकी स्तुति। इनका माता को समझाना। उनकी प्रार्थना पर शिशु (राम)-रूप होकर रुदन करना। इस तरह विप्र-धेनु-सुर-संत-हित स्वेच्छा-निर्मित देह धारण कर इनका (रामरूप में) अवतरण (१।१९०।६, १।१९१।१ - १।१९२)। [१।१९०।६-१।१९२ 'राम' में भी लिया गया है।]

सन्त-समाज-प्रयाग के रूपक में हरि-हर-कथा त्रिवेणी (१।२।१०)। राम-नाम विधि-हरि-हरमय (१।१९।२)। हरि-हर-प्रेमियों के लिए रामकथा मधुर (१।९।६)। सेवा से राम के गुणग्राम इनके और शिव के समान सुखद (१।३२।१७)। ये जगत् को प्रिय और इन्हें शंकर प्रिय (१।२६।३)। इनका नाम जपकर ध्रुव को अचल ध्रुवलोक की प्राप्ति; अजामिल, गज, गणिका की भी मुक्ति (१।२६।५, ७)। रघुवंश में इनके अवतार लेने का कथन (१।४८।७)।

राम के ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में मोह उत्पन्न होने पर सती का चिन्तन — ये ज्ञानधाम, लक्ष्मीपति, असुरारी। देवताओं के हित के लिए इनके द्वारा मनुष्य-शरीर-ग्रहण। ये क्या अज्ञ की तरह पत्नी को खोजते फिरेंगे

(१।५१।१-२)। (आमन्त्रित होने पर भी) इनका और विधि का दक्ष-यज्ञ में न जाना। (१।६१।२)। [यह भा० ४।६।३ के अनुरूप। सं० शि० पु० पृ० १४२ में ये और ब्रह्मा उस यज्ञ में उपस्थित।] विष्णु-शिव-सन्त-निन्दक के जिह्वाछेदन की, और इतना सामर्थ्य न होने पर उस स्थान का त्याग करने की मर्यादा। — सती-कथन दक्ष-यज्ञ में (१।६४।३-४)। ये वेद-वन्दित। 'दूषण रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर-बैकुंठ निवासी।।' इनसे विवाह करा देने का पार्वती को सप्तर्षि का प्रलोभन, किन्तु पार्वती की अस्वीकृति (१।८०।३-४, १।८०)। शिव-विवाह के उद्देश्य से ब्रह्मादि का वैकुण्ठ में आना। इन्हें साथ लेकर शिव के पास जाना। इनके द्वारा भी शिव की प्रशंसा (१।८८।४-६)। ये शिव के प्रिय। उनकी बरात में जाते हुए इनका सहास कथन — बरात वर के अनुरूप नहीं। हँसी होगी। सब दिग्पालों को अपने-अपने समाजसहित अलग-अलग चलने का इनका परामर्श। इनका विनोदभरा व्यंग्य सुनकर देवताओं का हँसना, शिव का प्रसन्न होना (१।९२।७-१।९३।४)। बरात की अगवानी करनेवाले इन्हें देखकर सुखी (१।९५।३)। जेवनार के लिए हिमवान् का इन्हें आदरपूर्वक बुलवाना (१।९९।६)।

(वैकुण्ठ में) जय और विजय इनके द्वारपाल। विप्रशाप से हिरण्याक्ष ('हिरन्याच्छ') और हिरण्यकशिपु ('कनककसिपु') के रूप में उनका जन्म। दोनों के वध के लिए इनका क्रमशः वराह और नृसिंह ('नरहरि')-रूप में अवतार। इनके द्वारा निहत होने पर भी उनकी मुक्ति नहीं, क्योंकि विप्रशाप तीन जन्मों के लिए। उनके रावण-कुम्भकर्ण होने पर ये रामरूप में अवतरित (१।१२२।४-१।१२३।२)। देवकार्य के लिए इनके द्वारा वृन्दा का सतीत्व-हरण। उनसे मिले शाप को सत्य करने के लिए एक कल्प में अवतार-ग्रहण (१।१२३, १।१२४।१)। (दे० 'असुराधिप नारी'।) (पातिव्रत-धर्म का पालन करने के कारण) तुलसी आज भी इनको प्रिय (३।५क)।

महि-भार-हरण करने के लिए इनके अवतार का विश्वामित्र को ज्ञान (१।२०६।५-६)। परशुराम की राम को चुनौती इनका वैष्णव धनुष चढ़ाने की। धनुष का स्वयं राम के पास चले जाना (१।२८४।७-८)। रामरूप देखकर ये रमासहित मोहित (१।३१७।३)। विधि-हर आदि सहित विप्रवेश में राम-विवाह की लीला देख ये आनन्दमग्न। जनक द्वारा पूजित (१।३२१।६-८)। जिस प्रकार इन्हें सागर द्वारा लक्ष्मी समर्पित, उसी प्रकार राम को जनक द्वारा सीता (१।३२४।छं० ४)। ये पंचदेव (गणेश, शिव, गौरी, सूर्य, विष्णु) में एक। चित्रकूट में अवधवासियों द्वारा इनका पूजन और विनय (२।२७३-४-६)।

शिव-ब्रह्मा-सहित ये भी ब्रह्म राम के अंश से उत्पन्न (१।१४४।६)। राम की चरण-रेणु विधि-हरि-हर-वन्दित (१।१४६।१)। तपोबल से, राम के अनुग्रह से, इनके द्वारा सृष्टि का पालन (१।७३।३, १।१६३।२, ५।२१।५)। मन्त्र (एकाक्षर प्रणव) परम लघु होने पर भी त्रिदेव उसके वश में (१।२५६)। शिव-ब्रह्मा-सहित इनका अनेक बार तपोलीन स्वायम्भुव मनु के पास जाना। वर माँगने का प्रलोभन देना (१।१४५।२-३)। ध्रुव, धर्मरुचि, प्रतापभानु, विभीषण, कौसल्यादि तथा अवधवासी इनके भक्त (१।१४२।३, १।१५५।३, १।१५६।२, १।१७६।५, १।१८८।८, १।१८८)। 'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे' (१।१६१।३)। 'हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ' (७।१०६।५)। इनके द्वारा मधु-कैटभ आदि के वध का और इनके रामावतार का माल्यवान्-कथन रावण से (६।४८क)। गरुड़ इनके वाहन और सेवक (७।५५।३, ७।६२ क)। (श्रीरंग के नाम से) ये रघुकुल के इष्टदेव (१।२०१।२)। दे० 'रघुकुल'।

इनका उल्लेख — शिव के साथ (१।४।३, १।१०६।१, १।१६६।४, १।१६७, २।१६८।६, २।३१२, २।३१६।४, ६।३२।२), ब्रह्मा और शिव के साथ (१।३।११, १।१६५।४, २।१२७।१, २।२३१, २।२४१।५, २।२९५।५, ५।५६ क)। अन्य उल्लेख (१।१२७।४, १।१५३।८, १।१६२।१, १।२२०।७, १।२६७।४, १।२७३।६, २।३८, २।१६८।६, २।१७३।४, २।१७३।७, २।२५४।६, ४।१३, ६।३१।३, ७।५५।५, ७।१०५।४, ७।१०५क)। जातिवाचक रूप में प्रयोग (१।५४।७, ५।२३।८, ७।८१।१, ७।९२।६)।

मूल शब्द — १।५१।१, १।५४।७, १।६१।२, १।७३।३, १।८०, १।८८।५, १।९२।७, १।९२, १।९३।२, १।९९।६, १।१२४।६, १।१३९।६, १।१४४।६, १।१६३।२, १।१६५।४, १।१७६।५, १।२२०।७, ४।१३, ५।२३।८, ५।५६ क, ६।३१।३, ७।८१।१ (जाति०), ७।९२।६ (जाति०), ७।१०५ क।

इनके लिए प्रयुक्त विविध शब्द —

(१) सम्बन्धसूचक —

(क) व्यक्ति अथवा समष्टि से —

(अ) **कमलापति** — १।१३६।२।
रमानिकेता — १।१२८।५।
रमापति (राम भी) — १।१२४।७, १।१२५।३, १।१२६।८, १।२८४।७, १।३१७।३।
रमारमन (राम भी) — २।२७३।५।
लच्छिनिवासा — १।१३५।४।
श्रीकंता (राम भी) — १।१६२।छं० २।
श्रीनिवास — १।१२८।४।
श्रीपति — १।५१।२, १।६४।३, १।८०।३, १।१२६।८।
सिंधुसुता प्रियकंता — १।१८६।छं० १।
(आ)**चराचर राया** (राजा) — १।१२८।६।
सुरनायक (इन्द्र भी) — १।१८६।छं० १।
सुरभूपा (राम भी) — १।१६२।छं० ४।
सुरसाईं — १।१३६।५।

(ख) स्थान से —
छीरसागर सयन — १।१।सो०३।
जगदीसु — २।३८।
त्रिभुवनपति — ७।६२ का।

(ग) वस्तु से —
सारँगपानी (शार्ङ्गपाणि) (राम भी) — १।१८८।८।

(२) गुणबोधक —
करुनानिधि (राम भी) — १।१२६।४।
करुना सुख सागर — १।१६२।छं० २।
कृपानिधाना (राम, भरत, शिव, लोमश भी) — १।१३३।७।
कृपानिधि (राम, शिव, लोमश, भुशुण्डि, याज्ञवल्क्य भी) — १।१३७।
कृपासिंधु (राम, शिव, लक्ष्मण, काकभुशुण्डि भी) — ६।४८ का।
कौतुकनिधि — १।१२४।१
कौतुकी (राम भी) — १।१३२।३, १।१४०।८।
गंजन बिपति बरूथा — १।१८६।छं० ३।
गोद्विज हितकारी — १।१८६।छं० १।
जनसुखदायक (राम भी) — १।१८६।छं०१।
दीनदयाला (राम, शिव, कपिल, नारद भी) — १।१३२।८, १।१३८।३, १।१८६।छं०१, १।१६२।छं० १
पालन सुर धरनी — १।१८६।छं० १।
प्रनतपाल (राम भी) — १।१८६।छं० १।
प्रनत हितकारी — १।१४०।८।
प्रनतारति हरना (राम भी) — १।१३८।२।
भंजन भुवि भार — १।१३६।
भव बारिधि मंदर (राम भी) — १।१८६।छं० ४।
भव भय भंजन — १।१८६।छं० ३।
मुकुंदा (मुकुं मुक्तिं ददाति अर्थात् मोक्षदाता। ह० को०। राम भी) — १।१८६।छं० २।
मुनि मन रंजन — १।१८६।छं० ३।
सुरंजन (राम भी) — १।१३६।

हरि (हरति पापानीति अर्थात् पापहर्त्ता। ह० को०। राम, कृष्ण, ब्रह्म भी) – १।२।१०, १।३।११, १।४।३, १।९।६, १।१९।२, १।२६।३, १।२६।३, १।२६।५, १।२६।७, १।३२।११, १।४८।७, १।६६।५, १।९३।३, १।९५।३, १।१०६।१, १।१२२।४, १।१२४।१, १।१२५।४, १।१२७।४, १।१२७।८, १।१२७, १।१२८।३, १।१२९।७, १।१३२।१, १।१३२।२, १।१३३।३, १।१३४।३, १।१३४।४, १।१३८।१, १।१३८।२, १।१३९।७, १।१३९, १।१४०।१, १।१४०।५, १।१४०।५, १।१४२।३, १।१४५।२, १।१४६।१, १।१५३।८, १।१५५।३, १।१६१।३, १।१६२।१, १।१६६।४, १।१८४, १।१८५।५, १।१८७, १।१८८।४, १।१८८, १।१९०।६, १।१९१।१, १।२०६।५, १।२५६, १।२६७।४, १।२७३।६, १।३१७।३, १।३२१।६, १।३२४।छं०४, २।१२७।१, २।१६७, २।१६८।६, २।१६८।६, २।१७३।४, २।१७३।७, २।२३१, २।२४१।५, २।२५४।६, २।२९५।५, २।३१२, २।३१९।४, ३।५ क, ५।२१।५, ६।३२।२, ७।५५।३, ७।५५।५, ७।१०५।४, ७।१०५ क, ७।१०६।५।

(३) चरित्रबोधक –

अघारी – १।१८६।छं० ३।

असुरारी (राम भी) – १।५१।२, १।१८६।छं० १।

खरारी (राम भी) – १।१९२।छं० १। (यहाँ 'खर' राक्षसमात्र का उपलक्षण। वि०।)

दनुजारी – १।१३६।४।

(४) स्वरूपसूचक –

अबिनासी (ब्रह्म, राम, शिव भी) – १।१८४।छं०, १।१८६।छं० २।

अबिगत (अज्ञात। मा० पी०। अव्यक्त। वि०। राम भी) – १।१८६।छं०२।

अमाना (मानरहित, अप्रमेय) – १।१९२।छं० २।

अनंता (राम भी) – १।१९२।छं० २।

गोतीत (१।१८६।छं० २।

परमानंदा – १।१८६।छं०२।

बासुदेव (राम भी) – १।१५६।२।

ब्यापक (राम भी) – १।१८५।५, १।१८६।छं० २।

ब्रह्म (परात्पर ब्रह्म, राम, शिव, ब्रह्मा भी) – १।१८७।८।

भगवान (ब्रह्म, राम, शिव, लोमश भी) —१।१२८, ६।४८ क। भगवाना (ब्रह्म, राम, शिव, ब्रह्मा, कपिल) – १।१२३।१, १।१२४।१, १।१२६।३, १।१४४।६, १।१८६।छं० ४, १।२०१।२१।

भगवंता (राम भी) – १।१८६।छं०१।

महामायापति – १।१४०।

माया गुन गो पार – १।१९२।

माया गुन ग्यानातीत – १।१९२।छं०२।

मायारहित – १।१८६।छं०२।

श्रुतिमाथा – १।१२८।४।

सच्चिदानंद (राम भी) – १।१८६।छं०२।

सब घट बासी – १।१८६।छं२।

बिस्वमोहनी (विश्वमोहिनी) – माया-नगर-नरेश शीलनिधि की कन्या।

(नारद का अहंकार भंग करने के लिए) हरि की माया ही इसके रूप में प्रकट। इसकी शोभा अवर्णनीय। स्वयं लक्ष्मी भी इसका रूप देख मोहित हो जायें। यह स्वयंवर के लिए प्रस्तुत (१।१३०।४-६)। इसके गुण-दोष-विचार के लिए राजा का इसे नारद के सम्मुख उपस्थित करना। इसका रूप और लक्षण (इसे वरण करनेवाला अमर, अजेय, चराचरसेव्य) देख मुनि वैराग्य-च्युत। उनका आत्म-विस्मरण। प्रकट रूप से इसे सुलक्षणा आदि कह देना। इसे रिझानेवाला रूप पाने के लिए वे व्याकुल (१।१३०-१।१३१)। इसकी शक्ति देख हरि का मन में हँसना (१।१३२।८)। हरि से उनका रूप माँगने के बाद नारद को विश्वास कि यह उन्हें छोड़ दूसरे को भूलकर

भी नहीं वरेगी। हर-गणों की भी इसी आशय की व्यंग्योक्ति (१।१३३।६, १।१३४।४)। नारद का वानर-मुख और भयंकर शरीर केवल इसे ही दृष्टिगोचर। देखकर इसे क्रोध। दोबारा उस ओर न देखना। हाथों में जयमाल लिए सखियोंसहित राजाओं को देखते हुए इसका घूमना (१।१३४।७-१।१३५।१)। हरि के गले में जयमाल डालना। उनका इसे ले जाना (१।१३५।३-४)। मार्ग में नारद को विष्णु और लक्ष्मी के साथ इसके दर्शन (१।१३६।४)। माया की प्रबलता खिंच जाने पर नारद की दृष्टि में लक्ष्मी के साथ यह अन्तर्धान (१।१३८।१)। [सं० शि० पु० पृ० ७५ में इसका नाम 'श्रीमती'।]

मूल शब्द – १।१३०।४।

पर्याय – **सीलनिधि कन्या** – १।१३१।४।

बिस्वामित्र (विश्वामित्र) – एक राजा; ऋषि; कालान्तर में ब्रह्मर्षि।

(१) पुरूरवा- उर्वशी के पंचम पुत्र विजय की वंश-परम्परा में गंगापायी जह्नु > पूरु > बलाक > अजक > कुश > कुशाम्बु > गाधि। गाधि > (क) सत्यवती ~ ऋचीक > जगदग्नि, (ख) विश्वामित्र > सौ पुत्र।

भा० ६।१५।१, ३-११, ६।१६।२८-२६।

(२) ब्रह्मा > कुश > कुशनाभ > गाधि > (क) सत्यवती ~ ऋचीक, (ख) कौशिक।

वा० रा० १।३२।१-४, १।३४।५-७।

[व्युत्पत्ति – ऐतरेय आरण्यक (१।२।२) में इनके नाम की व्युत्पत्ति 'विश्व का मित्र'। पाणिनि के अनुसार 'मित्र' शब्द के पहले 'ऋषि' - अर्थबोधक 'विश्व' शब्द का प्रयोग होने पर 'विश्वमित्र' न होकर 'विश्वामित्र' (पाणिनिसूत्र ६।३।१३०)। प्रा० च०। महाभारत में आत्मपरिचय देते हुए यातुधानी से इनका कथन – 'विश्वेदेवाश्च मे मित्रं मित्रमास्मि गवां तथा। विश्वामित्रमिति ख्यातं यातुधानि निबोध माम्। महा० अनु० ६३।६२।

जन्म – ऋचीक मुनि से सत्यवती और उनकी मां, दोनों की पुत्रप्राप्ति के लिए प्रार्थना। ऋचीक का दोनों के लिए अलग-अलग चरु देना। दोनों का चरु बदलना। फलतः सत्यवती के ब्रह्मवेत्ता भाई उत्पन्न। ये ही प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी गाधेय विश्वामित्र। भा० ६।१५।८-१०, ६।१६।२८। ये महापराक्रमी, मुनियों में श्रेष्ठ, तपस्या के मूर्त्तिमान् स्वरूप, उत्तम धर्म के विग्रह। वा० रा० १।६५।२६।

आश्रम – सत्यवती हिमालय के निकट कौशिकी नदी के रूप में प्रवाहित। भगिनी-स्नेह के कारण उस नदी के तट पर इनका आश्रम। यज्ञादि के लिए ताटका-वन के सिद्धाश्रम में वास। यह आश्रम पूर्वकाल में विष्णु की तपोभूमि, भगवान् वामन का स्थान। वा० रा० १।२६।२-४, १।३४।८-१२।

शुनःशेप को पुत्र बनाना – राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में यज्ञपशु के रूप में क्रय करके लाये गये शुनःशेप को (दे० 'हरिचंद') वरुण आदि देवताओं की स्तुति करके इनका पाश-बन्धन से छुड़ाना। यज्ञ में देवताओं द्वारा वह इनको प्रदत्त। अतः 'देवरात' नाम से प्रसिद्ध। इनका उसे पुत्ररूप में स्वीकारना। उसे बड़ा भाई मानने का अपने पुत्रों को आदेश। उनकी अस्वीकृति देख उन्हें म्लेच्छ होने का शाप। उनचास भाइयों के म्लेच्छ हो जाने पर बिचले पुत्र मधुच्छन्दा द्वारा अनुजोंसहित इनकी आज्ञा का पालन, शुनःशेप को अग्रज मानना। प्रसन्न होकर इनका उन्हें आशीर्वाद। इस प्रकार इनकी सन्तानों से कौशिक गोत्र में कई भेद। भा० ६।१६।२६-३७।

इनके द्वारा राजा हरिश्चन्द्र के राजधर्म की परीक्षा – दे० 'हरिचंद'।

वसिष्ठ से संघर्ष – कई हजार वर्षों तक इनके द्वारा पृथ्वी-पालन और राज्य-शासन-संचालन। एक बार अक्षौहिणी सेना लिए इनका पृथ्वी पर विचरना। वसिष्ठ के आश्रम पर जाना। दोनों का वार्त्तालाप। परस्पर प्रेम। कामधेनु के प्रभाव से वसिष्ठ द्वारा इनका दिव्य पदार्थों से सत्कार। मुँहमाँगी स्वर्ण-रत्न-राशि देकर भी कामधेनु को प्राप्त करने का इन्हें लोभ। वसिष्ठ-कथन – वह धेनु ही उनका अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहा, वषट्कार, वही उनका दर्श, यज्ञ, पुण्यकर्म, उनकी समस्त विद्याओं का स्रोत। उसे किसी भी मूल्य पर देना उनके लिए संभव नहीं। इनका बलपूर्वक धेनु-हरण करना। वसिष्ठ की आज्ञा से उनके धर्मबल से परिपुष्ट धेनु द्वारा एक के बाद दूसरी सेनाओं की सृष्टि और इनके द्वारा उनका संहार। अन्ततः कामधेनु के विभिन्न अंगों से उत्पन्न अनेक जातियों की सेनाओं द्वारा इनकी सेना का पूर्णतः विनाश। इनके पुत्र वसिष्ठ की हुंकारमात्र से जलकर भस्म। ये लज्जित, चिन्तित, निस्तेज। बचे हुए अपने एकमात्र पुत्र को राज्यभार सौंप, हिमालय प्रदेश में जाकर इनका शिव की

प्रसन्नता के लिए तप। वररूप में उनसे अंग-उपांग-रहस्यादि सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद, देव-दानवादि के सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्राप्त। अभिमानपूर्वक वसिष्ठाश्रम पर जाकर अपने दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन। कुपित वसिष्ठ अपना कालदण्ड-सा ब्रह्मदण्ड लेकर इनके सामने उपस्थित। इनके द्वारा एक के बाद दूसरे दिव्यास्त्र का प्रयोग। वे सब ब्रह्मदण्ड से शान्त। अन्त में ब्रह्मास्त्र-निक्षेप। ब्रह्मदण्ड से वह भी शान्त। रौद्ररूपधारी वसिष्ठ के रोमकूपों से अग्नि की लपटें प्रकट। उनका ब्रह्मदण्ड कालाग्नि-सा प्रज्वलित। देवताओं द्वारा उनकी विजय की घोषणा। उनसे शान्त होने का अनुरोध। पराभूत होकर इनका क्षत्रिय-बल को धिक्कारना। ब्रह्मतेजार्जित बल को ही श्रेष्ठ बल मानकर ब्राह्मणत्व-प्राप्ति का संकल्प। वा० रा० १।५१।२०-२८, १।५२-५६। (महा० आदि० १७४।६-४५ तक की कथा इसके अनुरूप।

वसिष्ठ से इनकी शत्रुता की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध। वसिष्ठ-द्वेष से प्रेरित होकर त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने के लिए इनका यज्ञानुष्ठान। दे० 'त्रिसंकू'। वसिष्ठ-वध में पूर्णरूप से सहायक न होने के कारण सरस्वती को जल की जगह रक्त-प्रवाह करने का इनका शाप। दे० 'सारदा'। किंकर नामक राक्षस को शापग्रस्त राजा कल्माषपाद के भीतर प्रवेश करने की प्रेरणा देकर उसके द्वारा शक्ति तथा अन्य वसिष्ठ-पुत्रों का भक्षण करवाना। महा० आदि० १७५। भा० के अनुसार हरिश्चन्द्र के लिए ये और वसिष्ठ एक-दूसरे को शाप देकर पक्षी हो गये और अनेक वर्षों तक लड़ते रहे। भा० ९।७।७। दोनों के दीर्घकालीन द्वेष का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त। ऋ० ३।४।१५ में वसिष्ठ-परिवार की भर्त्सना। पी० इ०।

इनके तपोभंग के प्रयत्न— इन्हें मोहित करने के लिए इन्द्र का मेनका को भेजना। उसका नग्न सौन्दर्य देख ये कामाधीन। दीर्घोपार्जित तपस्या से भ्रष्ट होकर इन्हें पश्चात्ताप। मेनका से शकुन्तला का जन्म। वा० रा० १।६३।४-१३, महा० आदि० ७२।२-९। पुनः काम-क्रोध को जीतने के लिए तप। इन्द्र-प्रेरित रम्भा को उपस्थित देख शाप – वह दस हजार वर्षों तक पाषाण-प्रतिमा बनी रहे। एक महातेजस्वी, तपोबल-सम्पन्न ब्राह्मण द्वारा उसका उद्धार होगा। वा० रा० १।६४।८-१३। इन्हें तपोभ्रष्ट करने के लिए कुबेर द्वारा भेजी गयी विद्युत्प्रभा के रूप-सौन्दर्य से ये अप्रभावित। तब उसका विकराल रूप धारण करना। इनका उसे शाप – उसी विकराल रूप में वह राक्षसी की तरह जीवन बिताये। उसकी प्रार्थना पर इनका शापानुग्रह – कालनेमि-पुत्र श्रीदत्त द्वारा उसके केशों का स्पर्श होने पर उसे पूर्वरूप प्राप्त होगा। कथासरित्सागर, कथामुखलम्बक, तरंग २। पी०इ० इन्द्र को मेषवृषण होने का इनका शाप। महा० शा० ३४२।२३।

ब्रह्मर्षि-पद-प्राप्ति – ब्राह्मणत्व-प्राप्ति के लिए दीर्घकाल तक इनके कठिन तप करने पर ब्रह्मा का इन्हें राजर्षि कहना, ऋषियों में श्रेष्ठता प्रदान करना, किन्तु जितेन्द्रिय न होने के कारण इन्हें ब्रह्मर्षि न मानना। वा० रा० १।५७।४-६, १।६३।१७-२२। पुनः इनका दुर्जय तप। इनकी कठोर तपस्या से त्रिलोक त्रस्त। ब्रह्मादि देवताओं का इन्हें ब्राह्मणत्व-प्रदान, किन्तु इससे इन्हें सन्तोष नहीं। इनका कथन – इन्हें दीर्घायु प्राप्त हो। ओंकार, वषट्कार और चारों वेद स्वयं इनका वरण करें। ब्रह्मवेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ वसिष्ठ स्वयं आकर इन्हें ब्राह्मण कहें। देवताओं के अनुरोध से प्रसन्न होकर वसिष्ठ का इन्हें 'ब्रह्मर्षि' मानना और मित्र बनाना। इनके द्वारा वसिष्ठ का पूजन। वा० रा० १।६५।१-२९।

शील-परीक्षण – एक बार इनकी परीक्षा लेने के लिए वसिष्ठ का रूप धारण कर धर्मराज का आगमन। ये क्षुधापीड़ित। उनके लिए सुस्वादु चरुपाक बनाने में ये व्यस्त। इसी बीच उनका अन्य तपस्वी मुनियों से अन्न ग्रहण कर तृप्त होना। उष्ण भोजन लेकर इनके उपस्थित होने पर उनका यह कहकर प्रस्थान कि वे भोजन कर चुके। ये दोनों हाथों से भोजन-पात्र को पकड़ मस्तक पर रख वहीं खड़े रहे। सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर वसिष्ठ रूप में धर्मराज का पुनः आगमन। इन्हें भोजन लेकर खड़े देख उनका इनसे भोजन लेना। वह सद्यःपक्व अन्न की तरह उष्ण। उसे खाकर, अपनी प्रसन्नता प्रकट कर, उनका प्रस्थान। महा० उद्यो० १०६।८-१८।

आपत्काल में इनका धर्म-निर्णय— त्रेता और द्वापर युगों के सन्धिकाल में बारह वर्षों तक अनावृष्टि के फलस्वरूप भयंकर दुर्भिक्ष, धर्म का लोप, मनुष्य द्वारा मनुष्य का भक्षण। उस समय पत्नी-पुत्रों को जनसमुदाय में छोड़ इनका आश्रम-त्याग। क्षुधापीड़ित हो भक्ष्याभक्ष्य में समान भाव रखते हुए विचरण। गिरते-पड़ते चाण्डालों की वीभत्स बस्ती में प्रवेश। आहार की खोज। भिक्षा माँगकर निराश। दुर्बलता से एक चाण्डाल के यहाँ धराशायी।

अन्नाभाव के कारण होनेवाली व्यर्थ मृत्यु से बचने के लिए उपाय-विचार। चाण्डाल को सोया जान उसके घर में पड़ा कुत्ते की जाँघ का मांस चोरी करने का प्रयत्न। उठकर चाण्डाल का इन्हें ललकारना। इनका आत्म-परिचय देना। कथन — अवस्था के अनुसार अग्निदेव की तरह ये भी सर्वभक्षी बनेंगे। इनमें और चाण्डाल में धर्म-सम्बन्धी शास्त्रार्थ। इनका निर्णय — आपत्काल में एक बार किये गये सामान्य पाप से जीवनभर के अर्जित पुण्यों का नाश नही। धर्माचरण और ज्ञानप्राप्ति के साधनभूत शरीर को जीवित रखना ही धर्म। मांस लेकर इनके द्वारा अग्नि-स्थापन। इन्द्र और अग्नि के उद्देश्य से चरु पकाना। देवकर्म, पितृकर्म का आरम्भ कर इन्द्रादि देवताओं का आवाहन। उनके लिए पृथक्-पृथक् चरु-अर्पण। इसी समय इन्द्र द्वारा जल-वर्षण। ओषधियाँ उत्पन्न। यह इनकी सिद्धि। सन्तुष्ट होकर देवताओं-पितरों का इन्हें पवित्र भोजन प्राप्त कराना। — ब्राह्मण के आपद्धर्म-सम्बन्धी युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्म द्वारा इनके 'विज्ञान-बल' का यह उपाख्यान-कथन। महा० शा० १४१।

ये उत्तरी आकाश में ध्रुव और सप्तर्षि के बीच तारारूप में प्रकाशमान। महा० अनु० ३।१५।

प्रा० च० के अनुसार एकाधिक ऋषि 'विश्वामित्र' के नाम से प्रसिद्ध।]

ये महामुनि, ज्ञानी। वनस्थित आश्रम (सिद्धाश्रम) में इनका वास। यहाँ मुनियों के यज्ञादि में मारीच, सुबाहु आदि राक्षसों का उपद्रव। वे हरि के बिना अवध्य। हरि के अवतार का इन्हें ज्ञान। अतः राम-लक्ष्मण को यहाँ लाने और इसी बहाने उनके दर्शन करने का इनका मनोरथ। शीघ्र ही प्रस्थान। दशरथ के दरबार में उपस्थित (१।२०६।२-१।२०६)। विप्रसमाज के साथ दशरथ द्वारा इनका स्वागत। पद-प्रक्षालन, पूजा, सत्कार। चारों भाइयों को इनके चरणों में डालना। राम को देख ये मग्न, देह-सुधि-विस्मरण (२।२०७।१-६)। निशिचर-वध के लिए राम-लक्ष्मण की याचना और कथन — इससे दोनों भाइयों का कल्याण होगा और राजा को धर्म-यश की प्राप्ति (१।२०७।७-१।२०७)। राजा की चिन्ता, विनीत अस्वीकृति। उनका राम-प्रेम देखकर ये हर्षित। [वा० रा० १।२०।२८ में क्रुद्ध।] वसिष्ठ का राजा को समझाना। [वसिष्ठ-कथन—भगवान् के अवतार राम से उनकी योगमाया सीता का संयोग कराने के लिए ही विश्वामित्र का आगमन। अ० रा० १।४।१४-२०।] उनके प्रबोधन से राजा का सन्देह-नाश। दोनों पुत्रों को इन्हें सौंपना (१।२०८।१-१।२०८ क)। दोनों के साथ इनका प्रस्थान। मन में विचार — इनके कारण पिता को भी छोड़नेवालो प्रभु राम ब्राह्मण-भक्त। उन्हें ताड़का को दिखाना। [समझाना — चतुर्वर्ण-रक्षा के लिए स्त्री-हत्या भी नीति-संगत। वा० रा० १।२५।१७-१८।] प्रभु के एक ही बाण से ताड़का का प्राणान्त। उसे प्रभु का 'निज पद' प्राप्त (१।२०८ ख-१।२०९।६)। यह सब देख राम के प्रभु होने की इनकी धारणा दृढ़। उन्हें विद्यादान (गुरु-शिष्य-सम्बन्ध-स्थापन करने और अपनी विद्या को सफल करने के लिए। वि०) विद्या के प्रभाव से क्षुधा-तृषा-मुक्ति, शरीर में अतुलित बल-तेज-सम्पन्नता। प्रभु को समस्त अस्त्र-शस्त्र-समर्पण। (वा० रा० में — अतुलित बल-तेज-सम्पन्नता। प्रभु को समस्त अस्त्र-शस्त्र-समर्पण। [वा० रा० में — विद्याओं के नाम बला और अतिबला। इनका दान ताड़का-वध से पूर्व। १।२२।१३-२२। देव-दुर्लभ दिव्यास्त्रों के अतिरिक्त अन्य अनेक अस्त्रों का दान और उनकी संहार-विधि का उपदेश। १।२७-२८।] उन्हें अपने आश्रम में लाकर भक्तिपूर्वक कन्द-मूल-फल का भोजन कराना (१।२०९।७-१।२०९)। प्रातःकाल राम का निवेदन — ये निर्भय होकर यज्ञ करें। मारीच, सुबाहु तथा असुर-सैन्य से वन को मुक्त कर राम का कुछ दिनों तक इनके आश्रम में वास। फिर धनुषयज्ञ दिखाने के लिए दोनों भाइयों को साथ ले इनका प्रस्थान (१।२१०।१-१०)। मार्ग में एक सूना आश्रम और शिला देख राम की जिज्ञासा। विस्तारपूर्वक गौतम-शाप की कथा कहकर चरण-रज से अहल्या का उद्धार करने का प्रभु से इनका आग्रह (१।२१०।११-१।२१०)। गंगा के निकट पहुँचकर इनका गंगावतरण की कथा सुनाना। स्नानोपरान्त जनकपुर के लिए प्रस्थान (१।२१२।१-४)। [वा० रा० १।३५-४६ में उपर्युक्त कथाओं के अतिरिक्त गंगा, कार्तिकेय और मरुद्गणों की उत्पत्ति-कथा, क्षीरसागर-मन्थन आदि की कथाएँ भी सुनाना।]

जनकपुर के बाहर एक सुन्दर अमराई में ठहरना। समाचार सुन जनक का समाजसहित आना। इनके चरणों में मस्तक रख प्रणाम करना। अपने भाग्य को सराहना। इसी बीच बाहर से आये राम-लक्ष्मण को देख जनक का आत्म-विस्मरण। उनका परिचय देकर उनके रूप-शील-बल की इनके द्वारा प्रशंसा। उनकी असुर-विजय और यज्ञ-रक्षा का वर्णन (१।२१४।५-५।१।२१६)। इनकी और दोनों भाइयों की राजा द्वारा प्रशंसा। इन्हें साथ ले जाकर एक सुन्दर महल में ठहराना (१।२१७।१-८)। दोनों भाइयों को नगर देखने की इनकी अनुमति

(१।२१७-१।२१९।१)। लौटकर राम का इनसे पुष्पवाटिका का वृत्तान्त (सीता-दर्शन, हृद्गत भाव आदि) कहना। पूजनोपरान्त इनका दोनों भाइयों को सफल-मनोरथ होने का आशीर्वाद (१।२३७।१-४)। पुरानी कथाएँ सुनाना। इनकी अनुमति लेकर ही दोनों भाइयों का सन्ध्या के लिए जाना, विश्राम करना (१।२३७।५-६, १।२३८।५)। जनक द्वारा भेजे गये शतानन्द के साथ, दोनों भाइयों को लेकर, इनका धनुष-यज्ञशाला देखने के लिए प्रस्थान (१।२३९।६-१।२४०।४)। सब कथा सुनाकर जनक का इन्हें यज्ञशाला दिखाना (१।२४४।४-५)। (धनुष-कथा के लिए दे० 'पिनाक'।) सब राजाओं के परास्त और जनक के निराश हो जाने पर, शुभ समय देख इनका राम को आदेश – 'उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा।।' राम द्वारा इनकी चरण-वन्दना, प्रणति (१।२५४।६-७, १।२५५।४, १।२६१।५)। धनुष-भंजन होने पर इनकी दशा प्रेमामृतपूर्ण समुद्र-सी। रामरूपी पूर्ण चन्द्र को देख इनमें पुलकरूप तरंगें उद्वेलित। (१।२६२।२-३, १।२६७।६)। इनका परशुराम से आकर मिलना। दोनों भाइयों को उनके चरणों में डालना (१।२६९।६)। लक्ष्मण के वचनों से कुपित परशुराम का इन्हें सम्बोधन। लक्ष्मण के कल्याण के लिए उन्हें रोकने का परामर्श (१।२७४।१-४)। लक्ष्मण को क्षमा करने का इनका अनुरोध। मन-ही-मन हँसना – परशुराम अब भी लक्ष्मण को समझ नहीं सके! (१।२७५।५, ७; १।२७५)। संकेत से राम के वारण करने पर संकुचित हो लक्ष्मण का इनके पास आ जाना (१।२७८)। परशुराम के चले जाने पर जनक की इनको प्रणति। इनका कथन – धनुषाधीन विवाह हो गया। अब वे कुल-रीति और गुरु-विप्रादि से पूछ वंश-व्यवहार और वेदाचार करें। दूत भेजकर अयोध्या से दशरथ को बुलायें (१।२८६।५-१।२८७।१)। राम-लक्ष्मण की विनय देख इन्हें पुलक, नयनाश्रु। उन्हें साथ लेकर दशरथ से मिलने के लिए जनवासे में जाना। दशरथ द्वारा इन्हें दण्डवत्। इनका चरण-रज मस्तक पर धारण करना। इनका उन्हें हृदय से लगाना। आशीर्वाद देकर कुशल पूछना (१।३०७।५-१।३०८।२)। विवाह-मण्डप में जनक द्वारा प्रीतिपूर्वक इनका पूजन (१।३२०।छं०)। कौशिकादि का दशरथ से गोदान ग्रहण करने के लिए आना (१।३३०)। दशरथ का बार-बार इनके चरणों में सिर झुकाकर कथन – केवल इनकी कृपा से पुत्र-विवाह-सुख प्राप्त (१।३३१)। दशरथ को विदा करने के लिए शतानन्द के साथ इनका जनक को समझाना (१।३३२।६-७)। विदा के समय इनका चरण-रज सिर-आँखों से लगाकर जनक की विनय (१।३४३।२-६)। अयोध्या आकर दशरथ द्वारा अनेक प्रकार से इनका पूजन, प्रशंसा। स्वयं को धन्य मानना। रानियोंसहित इनकी चरण-धूलि लेना। इन्हें अन्तःपुर में निवास देना (१।३५२।५-७)। माताओं का राम से कथन – केवल इनकी कृपा से उनके द्वारा अमानवीय कार्य सम्पन्न (१।३५७।१-६)। सभा में वसिष्ठ द्वारा इनके कृतित्व (तपस्या आदि) का अनेक प्रकार से वर्णन। वामदेव द्वारा अनुमोदन (१।३५९।३-८)। चलने के लिए ये नित्य प्रस्तुत, किन्तु राम के स्नेह और विनयवश जाने में असमर्थ। इनके द्वारा दशरथ-भाव की प्रशंसा। अन्ततः इनके विदा लेने पर पुत्रोंसहित इनके आगे खड़े होकर राजा का निवेदन – उनकी सब सम्पदा इनकी। स्त्री-पुत्र-सहित वे इनके सेवक। बालकों पर ये कृपा करें। कभी-कभी दर्शन दें। अनेक प्रकार से आशीर्वाद देकर ये विदा। राम-रूप, दशरथ-भक्ति, विवाहानन्द की भावना में मग्न-प्रसन्न। वामदेव द्वारा इनकी कथाओं का बखान। सुनकर राजा का स्वयं को पुण्यात्मा मानना (१।३६०।३-१।३६१।२)। [वा० रा० १।७४।१ में विवाहोपरान्त जनकपुर में ही दोनों राजाओं से विदा लेकर इनका उत्तरपर्वत की ओर गमन।]

चित्रकूट में पुरानी कथाएँ कहकर इनका सभा को समझाना। [इनका आगमन जनक के साथ। मा० पी० २।२७८।४-५ नोट ३।] राम का इनसे निवेदन – पिछले दिन सब निर्जल रहे (अर्थात्, आज भोजन कर लें)। इनके द्वारा अनुमोदन (२।२७८।४-६)। वामदेव, जाबाली के साथ इन्हें यथायोग्य विनय प्रणाम करके राम-लक्ष्मण का विदा करना (२।३१९।६-७)। इनके नाम का उल्लेख (१।२२१।४, १।२६१।५, १।३४२।७, २।२६३।३)।

मूल शब्द – १।२०६।२, १।२०६।३, १।२१४।८, १।२१५।३, १।२१५।६, १।२५४।५, १।३०७।६। विस्वामित्रु – १।२६९।६, १।३६०।३।

पर्याय – **कौसिक** (कौशिक – 'कुश' अथवा 'कुशिक' वंश के) – १।२१४।६, १।२२१।४, १।२३७।२, १।२३९।६, १।२६२।२, १।२७४।१, १।२७५।५, १।२७५।७, १।२८६।५, १।२६१।५, १।३०८।२, १।३२०।छं०, १।३३० (कौसिकादि), १।३३१, १।३३२।६, १।३४२।७, १।३४३।२, १।३५७।६, २।२७८।४, २।२७८।५,

२।२६३।३ (कौसिकादि), २।३१६।६। कौसिकु — १।३५६।३।

गाधिकुलचंदु — १।३६०।

गाधितनय — १।२०६।५।

गाधिसुत — १।३५२।५, १।३५६।६, १।३६१।१।

गाधिसूनु — १।२१२।२, १।२७५।

महामुनिराऊ — १।३६०।४।

बीरभद्र (वीरभद्र) — शंकर के अंश। उनके पार्षदों के अधिनायक। भा० ४।५।४।

[सती के देह-त्याग और ऋभुओं द्वारा अपने पार्षदों के पराभव का संवाद सुनकर शंकर कुपित। अपनी एक जटा उखाड़ पृथ्वी पर पटकना। उससे इनका प्राकट्य। ये स्वर्गस्पर्शी, अतिकाय, सहस्रबाहु, त्रिनेत्र, करालदंष्ट्र, आयुध-सम्पन्न। अग्निज्वाल-सदृश जटा और मुण्डमाल-धारी। शिव का इन्हें दक्ष-यज्ञ-ध्वंस का आदेश। (महा० में ये शंकर के मुख से प्रकट उनके मूर्त्तिमान् क्रोध। अपने रोमकूपों से इनका रौम्यनामक गणेश्वरों को प्रकट करना। शा० २८४।२६, ३३, ३४, ३५।)। इनके वेग से धरती-आकाश धूलि-आच्छादित। सहस्रों भयंकर उत्पात। विविध वेष-आकृतिधारी पार्षदोंसहित इनके द्वारा यज्ञ-विध्वंस। यज्ञशाला ध्वस्त। पार्षदों का वहाँ उपस्थित ऋषियों-देवताओं को पकड़-पकड़कर त्रस्त करना। इनका भृगु को बन्दी बनाकर उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच लेना, भगदेवता को पृथ्वी पर पटककर उनकी आँखें निकालना, पूषा के दाँत उखाड़ना, यज्ञपशु की तरह दक्ष का मस्तक धड़ से अलग कर उसे यज्ञ की दक्षिणाग्नि में डालना। यज्ञशाला में आग लगाकर पार्षदोंसहित कैलास लौटना। भा० ४।५।

यज्ञ-ध्वंस के बाद शिव की आज्ञा से अपने तेज का कुछ अंश अलग करना। आगे चलकर उसी तेज से आद्य शंकराचार्य का जन्म। प्रा० च०; पी०इ० के अनुसार भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व ४।१०।]

सती-मरण आदि का समाचार पाकर कुपित हो शिव का इन्हें भेजना। जाकर इनका यज्ञ ध्वंस करना, देवताओं को (वहाँ उपस्थित सबको) यथोचित दण्ड देना। (१।६५।१-२)।

मूल शब्द — १।६५।१।

बीर रस (वीर रस) — काव्य के नौ रसों में एक।

[किसी विषय से जहाँ उत्सास का संचार, अर्थात् उत्साह भाव का परिपोष, वहाँ वीररस। इसके प्रधानतः चार भेद — (१) युद्धवीर। इसके आलम्बन — शत्रु। उद्दीपन — शत्रु के कार्य। अनुभाव — वीर की गर्वोक्ति, युद्ध-कौशल आदि। संचारी भाव—हर्ष, आवेग, औत्सुक्य, असूया आदि। (२) दानवीर। इसके आलम्बन — याचक, दानयोग्य पात्र आदि। उद्दीपन — अन्य दाताओं के दान, दानपात्र की प्रशंसा आदि। अनुभाव — याचक का आदर-सत्कार आदि। संचारी भाव — हर्ष, गर्व आदि। (३) धर्मवीर। इसके आलम्बन — धर्मग्रन्थों, सन्तों के वचन आदि। उद्दीपन — धर्मफल आदि। अनुभाव — धर्माचरण। संचारी भाव — धृति, मति, विबोध आदि। (४) दयावीर। इसके आलम्बन— दया के पात्र। उद्दीपन — दयापात्र की दीन दशा आदि। अनुभाव — सान्त्वना के वाक्य। संचारी भाव — धृति, हर्ष, मति आदि।

सबका स्थायी भाव उत्साह। का० द०। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कर्ममात्र के सम्पादन में जो तत्परतापूर्ण आनन्द, वह भी उत्साह। उनके द्वारा 'कर्मवीर' और 'बुद्धिवीर' के सम्बन्ध में भी विचार। चिन्तामणि भाग १, 'उत्साह'। भरत के 'नाट्य शास्त्र' के अनुसार इस रस के देवता इन्द्र; इसका वर्ण स्वर्ण अथवा गौर। सा० को० १।]

जनक-प्रेरित दूत की वाणी में 'प्रेम प्रताप बीररस पागी' (१।२९३।६)। नारद द्वारा हरि का गुणगान वीररसपूर्ण (६।७१।११)। उत्प्रेक्षारूप-प्रयोग में उपमान — रामरूप का (१।२४१।५), परशुराम का (१।२६८), लक्ष्मण का (२।२३०।१), हनुमान् का (६।६१)।

मूल शब्द — १।२९३।६, २।२३०।१, ६।६१, ६।७१।११। बीररसु — १।२४१।५, १।२६८।

बुध — वृहस्पति-पत्नी तारा से उत्पन्न चन्द्रमा के पुत्र (दे० 'ससि')। इनकी बुद्धि गम्भीर होने के कारण ब्रह्मा द्वारा यह नामकरण। भा० ६।१४।१३-१४।

[मेरु-घाटी में शंकर-पार्वती के विहार-वन में प्रवेश करने के कारण स्त्रीरूप में परिणत (वैवस्वत मनु पुत्र)

सुद्युम्न की संज्ञा इला। विचरते हुए एक वन में उनका बुध के आश्रम के निकट आना। दोनों का परस्पर आकर्षण। इला के गर्भ से इनका (बुध का) पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न। भा० ६।१।२४-२५, ३३-३५; ६।१४।१५। यह सौरमण्डल का एक ग्रह, सूर्य के सबसे अधिक निकट।]

वनमार्ग में राम-लक्ष्मण के बीच सीता की शोभा, 'जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही' (२।१२३।४)।

बेद (वेद) — भारतीय वाङ्मय का, सम्भवतः विश्व-वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ। ज्ञानस्वरूप होने के कारण यह नाम।

[अपने हृदयाकाश से प्रकट ओंकार से ब्रह्मा का वर्णमाला रचना। अपने चार मुखों से चारों होताओं अर्थात् ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा) के कार्य बताने के लिए उस वर्णमाला से ओंकार और व्याहृतियोंसहित चार वेदों को प्रकट करना। भा० १२।६।४३-४४। वेद अपौरुषेय, ईश्वररूप। 'हिरण्यगभो वेदानां'। भा० ११।१६।१२। ये परोक्षवादात्मक (शब्दार्थ से तात्पर्यार्थ भिन्न)। इनमें कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्मविधान। भा० ११।३।४३-४४। भा० में अन्यत्र चातुर्होत्र कर्म और यज्ञ-विस्तार के लिए द्वापर के अन्त में वेदव्यास द्वारा एक ही वेद चार विभागों में विभाजित। भा० १।४।१९-२०, १२।६।४६।

वेद में किसी देवता-विशेष की स्तुति में प्रयुक्त होनेवाले अर्थ स्मारक वाक्य 'मन्त्र'। इनका समुदाय 'संहिता'। संहिताएँ चार — ऋक्, साम, यजुः, अथर्व। यज्ञानुष्ठान के लिए आवश्यक चारों ऋत्विजों में होता का कार्य — देवता के प्रशंसात्मक मन्त्रों का उच्चारण कर तत्तद्देवता का आह्वान। हौत्र कार्य के लिए आवश्यक मन्त्र-समुदाय का संकलन ऋग्वेद में। उद्गाता का कार्य ऋचाओं के ऊपर स्वर लगाकर मधुर स्वर में गान। इस कार्य के लिए सामवेद का संकलन। याग के विविध अंग और उपांगभूत अनुष्ठानों का विधिवत् सम्पादन अध्वर्यु का कर्त्तव्य। इस कार्य के लिए यजुर्वेद। ब्रह्मा का कर्त्तव्य समग्र याग का विधिवत् निरीक्षण। वे समग्र वेदों के ज्ञाता। उनके लिए अथर्ववेद।

वेद का 'त्रयी' नाम मन्त्रों के स्वरूप पर आधारित। पाद से युक्त छन्दोबद्ध मन्त्रों की संज्ञा 'ऋक्'। इन ऋचाओं का गान 'साम'। दोनों से पृथक् गद्यात्मक वाक्य 'यजुः'।

वेद के तीन विभाग — संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक। मन्त्रों का समूह संहिता। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञादि के अनुष्ठान का विस्तृत वर्णन। आरण्यक (अरण्य में पठनीय) ग्रन्थों में वानप्रस्थ आश्रम के उपयोगी क्रिया-कलापों का वर्णन, विशेषतः याग-विधान के आध्यात्मिक रहस्य की मीमांसा। आरण्यकों के अन्तिम भाग उपनिषद्। इन्हीं का नाम वेदान्त। संहिता, ब्राह्मण एवं आरण्यक वेद के कर्मकाण्ड, उपनिषद् ज्ञानकाण्ड। भा० द० पृ० ४८-५०।

मानस में बेद, निगम, श्रुति आदि शब्दों से वेदों का उल्लेख मुख्यतः धर्म के नियामक और सत्य एवं लोक-मर्यादा के आदर्श के प्रतिष्ठापक के रूप में। दो स्थलों पर पात्ररूप में इनके सम्बन्ध में कथन। वि० ७।१३क व्या० के अनुसार 'ब्रह्मलोक में ही शरीरधारी वेदों का रहना सुना जाता है।' मा० पी० ७।१२ नोट २ में चारों वेदों का स्वरूप (वर्ण, गोत्र, देवता, छन्द आदि) वर्णित।]

राम-विवाह के समय विप्रवेश धर वेदों का विवाह-विधि बताना (१।३२३)। राम-राज्याभिषेक के समय इनका बन्दी-वेश में राम के निकट आना। राम के सगुण-निर्गुण रूप की स्तुति करना। रामचरण-रति की वर-याचना कर, अन्तर्धान हो, ब्रह्मलोक-गमन (७।१२ ख-७।१३ क)।

मूल शब्द (पात्र) — बेद — १।३२३, ७।१२ ख, ७।१३ क (बेदन्ह)।

बेदसिरा (वेदशिरा) — एक ऋषि।

ब्रह्मा > भृगु ~ ख्याति (कर्दम-देवहूति-कन्या) > विधाता ~ नियति (मेरुपुत्री) > प्राण > वेदशिरा। भा० ३।१२।२२, ४।१।४३-४५।

[स्वारोचिष मन्वन्तर (द्वितीय) में इनकी पत्नी तुषिता के गर्भ से भगवान् का विभु नामक अवतार। भा० ८।१।२१। पाताल-लोक में पहुँचने पर इन्हें सम्पूर्ण विष्णुपुराण की प्राप्ति। इनका उसे प्रमति को सुनाना। वि० पु० ६।८।४७-४८। सं० शि० पु० शत० पृ० ३०३-३०४ के अनुसार पन्द्रहवें द्वापर में 'वेदशिरा' नाम से अवतार ग्रहण करने का शिव-कथन। उस समय महापराक्रमी वेदशिर इनका अस्त्र होगा। इनके चार पराक्रमी पुत्र होंगे — कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक।]

पार्वती के तप के लिए जाने पर सब विकल। तब इनका आकर सबको समझाना। इनसे पार्वती की महिमा (ऐश्वर्य) सुनकर सबको प्रबोध (१।७३)।

बेन (वेन) — एक नृशंस नरेश।

उत्तानपाद के वंश में चक्षु (चाक्षुस मनु) > उल्मुक > अंग ~ सुनीथा (मृत्यु-कन्या) > वेन। भा० ४।१३।१५-१८, ३९।

[राजा अंग द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए यज्ञ। उससे प्राप्त सिद्ध खीर के कारण सुनीथा के गर्भ में इसका जन्म। यह बाल्यावस्था से ही अधार्मिक। वन में भोले-भाले मृगों की हत्या करना, समवयस्क बालकों का वध करना इसके नित्य कर्म। इसे देख 'वेन आया, वेन आया' कहकर भय से पुरवासियों की पुकार। इसे सुधारने की अंग की चेष्टाएँ विफल। अन्त में विरक्त होकर किसी को बताये बिना उनका वन-गमन करना। पृथ्वी पर उनकी खोज व्यर्थ। शासक-विहीन राज्य में उच्छृंखलता। अन्ततः मन्त्रियों के असहमत होने पर भी भृगु द्वारा इसका राज्याभिषेक।

यह ऐश्वर्यमद से उन्मत्त। हर प्रकार के यज्ञ, दान, हवन, धर्म-कर्म के निषेध की इसकी राजाज्ञा। महापुरुषों का अपमान। प्रजा त्रस्त। ऋषियों का इसे समझाना — यज्ञादि बन्द कराके देवताओं का निरादर अवांछनीय। किन्तु इसके द्वारा उन ऋषियों का तिरस्कार और कथन — राजा ही सर्वदेवमय, सब देवता उसके अंशमात्र। सब विप्र कर्मों द्वारा केवल इसका पूजन करें। इसी को बलि समर्पित करें। भगवन्निनन्दा सुन ऋषि कुपित। उनकी हुंकारों से इसका प्राणान्त।

राजर्षि अंग की वंशरक्षा के लिए ऋषियों द्वारा इसके शव की जाँघ का मन्थन। उससे काक-सा काला बौना पुरुष प्रकट। वह 'निषाद'। इसके सब पापों का उसके द्वारा ग्रहण। इसकी भुजाओं के मन्थन से स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा प्रकट जो अर्चि और पृथु के नाम से विख्यात। भा० ४।१३।३५-४।१५।६।]

'लोक बेद तें विमुख भा अधम न बेन समान' (२।२२८)।

बैकुंठ (वैकुण्ठ-धाम) — (विगता कुण्ठा यस्मात्। ह० को०।) भगवद्धाम, विष्णु-लोक।

[ऋग्वेद, कठोपनिषद् आदि में विष्णु के 'परमपद' के रूप में इसका संकेत। दे० 'बिष्नु'। एक सौ आठ वैकुण्ठ पृथ्वी पर, पाँच वैकुण्ठ और — (१) क्षीरसागर वैकुण्ठ जहाँ श्रीमन्नारायण का वास। यह नैमित्तिक प्रलय का कारण; (यहीं ब्रह्मादि की अवतार के लिए प्रार्थना) (२) रमावैकुण्ठ जहाँ सनकादि को जय-विजय का शाप; (३) कारण वैकुण्ठ जहाँ महाप्रलय में प्रकृति-पुरुष साम्यता को प्राप्त; (४) महावैकुण्ठ जहाँ भगवान् चतुर्व्यूह वासुदेव पुरुष प्रकृति पर विराजमान; (५) पदवैकुण्ठ। यह विरजा नदी के उस पार। यह सब वैकुण्ठों का मूल। मा० पी० ७।४।४ नोट में करु० का मत, पृ० ४३-४४।

विरजापार का वैकुण्ठ त्रिपाद्विभूति। इसके अन्तर्गत नारायण लोक, साकेतलोक गोलोक आदि। इन लोकों में कहीं शंख-चक्र आदि आयुधधारी नारायणरूप से, कहीं धनुषबाण-धारी रामरूप से, कहीं मुरलीमनोहर रूप से प्रभु विराजमान। भक्तों की भावना-उपासना के अनुरूप इन लोकों की प्राप्ति। मा० पी० ७।१५।३-४ नोट, पृ० १२२। प० पु० उ० २२८ में इसका विस्तृत वर्णन। वहाँ यह विरजापार परमव्योम में स्थित। यों 'त्रिपाद्विभूतेर्लोकास्तु असंख्याताः प्रकीर्त्तिता'। परमधाम, परमपद, हरिपद आदि इसी के नामान्तर।]

'श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी' (१।८०।३)। शिवद्वारा काम-दहन का समाचार सुन ब्रह्मादि का यहाँ आना (१।८८।४)। राजा शीलनिधि का नगर इससे भी अधिक शोभाशाली (१।१२९)। 'पुर बैकुंठ जान कह कोई' (१।१८५।२)। रामकृपा से शरभंग मुनि को इस लोक की प्राप्ति (३।९।१)। बैकुण्ठ क्या साधारण लोक! — अंगद-कथन रावण से (६।२६।८)। त्रिवेणी 'हरिलोक-निसेनी' — राम-कथन सीता से (६।१२०।८)। यह वेद-पुराण-विदित। जग-विख्यात। सबके द्वारा इसकी प्रशंसा। किन्तु राम को यह उतना प्रिय नहीं जितनी अयोध्या (७।४।३)। हृदय में राम को धारण कर गरुड़ का वैकुण्ठ-गमन (७।१२५ क)। उल्लेख (१।१९२।छं० ४, १।३३५।६)।

मूल शब्द — १।८०।३, १।८८।४, १।१८५।२, ३।९।१, ७।४।३, ७।१२५ क। वैकुंठा — ६।२६।८।

पर्याय — **श्रीनिवासपुर** — १।१२९।

हरिपद — १।१६२।छं० ४। हरिपदु — १।३३५।६।

हरिलोक — ६।१२०।८।

बैतरनी (वैतरणी) — (वितरणेन दानेन लंघ्यते।) नरक की नदी का नाम। आ० को०। पृथ्वी और यमलोक के बीच में एक पौराणिक नदी। बृ० को०।

[आकाश-मार्ग में बहनेवाली गंगा ही पितृलोक में वैतरणी-रूप में प्रवाहित। पापियों के लिए दुस्तर। महा० आदि० १६६।२२। जगत् में श्रेष्ठ कुल में जन्म पाकर भी मर्यादा का उच्छेद करनेवाले इस नदी में डाल दिये जाते हैं। यह नरकों की खाई के समान। मल, मूत्र, रक्त, केश, अस्थि, मांस, मज्जा आदि से भरी हुई। यहाँ पापी को जलजीव नोचते हैं, किन्तु उसका शरीर नहीं छूटता। भा० ५।२६।२२। इसका जल उष्ण एवं तीक्ष्ण धारवाला। शंख-लिखित के अनुसार यह 'तप्तोदका'। ध० इ० तृ० पृ० ११०२ पाद०।)

रामद्रोही के लिए गंगा भी वैतरणी (३।२१७)।

बैदेही — दे० 'सीता'।

ब्याध (व्याध) — १. आदिकवि वाल्मीकि (दे० 'बालमीकि')।

२. पापमूर्त्ति व्याध। फिर धर्मव्याध।

[धर्मव्याध — पहले यह पापमूर्त्ति। कश्मीराधिपति, सर्वधर्मज्ञ राजा वसु के शरीर में इसका निवास। राज्य-भोगेच्छा से निवृत्त हो, सौ पुत्रों में सबसे बड़े विवस्वान् को राज्य सौंप, राजा का पुष्कर तीर्थ गमन। वहाँ पुण्डरीकाक्ष की पूजा, कठोर तप। तभी 'नीलाभ, घनचण्ड, भयंकर, रक्ताक्ष, ह्रस्वकाय, दग्धस्थूणासमप्रभ' पुरुष रूप में राजा की देह से इसका प्राकट्य। पापमूर्त्ति व्याध के रूप में आत्मपरिचय देकर राजा के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाना। पूर्व कलियुग में राजा वसु दक्षिणापथ के राजा। मृगया में उनके द्वारा अनजाने में मृगवेशधारी विप्र का वध। पापमुक्ति के लिए उनका एकादशी व्रत-पालन, यज्ञानुष्ठान आदि करना, पर विष्णु-स्मरण न करने के कारण उनके शरीर से इसका बाहर निकलना संभव नहीं। राजा के विभिन्न जन्मों में उनके शरीर में व्याध होकर इसका चार हजार वर्षों तक वास। अब विष्णु-स्तोत्र के प्रभाव से मुक्त होकर इसका राजा की देह से बाहर आना। पहले यह पापमूर्त्ति, अब इसमें धर्मबुद्धि। पूर्वजन्म का स्मरण कराने के कारण इसे राजा का वरदान—यह धर्मव्याध बने।

मिथिला में धर्मव्याध का निवास। कुटुम्ब-पालन के लिए इनके द्वारा धर्मबुद्धि से केवल हिंसक जीवों की हत्या। नित्य यज्ञ। भृत्य, अतिथि, हुताशन को सन्तुष्ट करना। हर पर्व में पितृश्राद्ध। सदा सत्य-भाषण। पुत्र अर्जुनक, कन्या अर्जुनका। मतंग-पुत्र से कन्या का विवाह। एक दिन 'जीवहन्ता-सुता' की कटूक्ति से सास द्वारा लांछित हो अर्जुनका का इनके निकट आ रुदन। रोष से इनका मतंग-गृह-गमन। भोजन की इच्छा प्रकट करना। मतंग द्वारा सत्कार। खाने के लिए छाज में इनके आगे गेहूँ, चावल रखना। अन्न देख इनकी क्रोधाभिव्यक्ति — वह 'अचैतन्य' नहीं, अपितु असंस्कृत, अभोज्य। इनका श्रुति-कथन — औषध, पौधे आदि 'यज्ञार्थ' भक्षण के लिए। इसीलिए नाना प्रकार के यज्ञों का विधान, किन्तु उस गृह में एक भी यज्ञ का लक्षण नहीं। आचार, देवपूजा, तर्पण आदि का नाम तक नही। अतः यज्ञभाव-शून्य मतंग द्वारा अर्पित चावल का एक-एक दाना एक-एक मृगपक्षी, महामांस। स्वयं मतंग लोकहिंसक। मतंग-भार्या को इनका शाप — अब कोई सास पुत्रवधू का विश्वास न करे, कोई पुत्रवधू सास की जीवन-कामना न करे। (मा स्नुषाभिः समं श्वश्र्वा विश्वासो भवतु क्वचित्। मा च स्नुषा कदाचित्स्याद् वा श्वश्रूं जीवितीमिषेत्।। ८।३६)। वहाँ से लौटकर भक्तिपूर्वक देवों-पितरों का पूजन। फिर अर्जुनक को सारा दायित्व सौंप पुरुषोत्तम तीर्थ-गमन। वहाँ तप। नियम से विष्णु-स्तोत्र-पाठ। व० पु० अध्याय ६,८।

महा० वन अध्याय २०७-२१६ में एक धर्मव्याध की कथा जो पूर्वजन्म में वेदांग-परायण ब्राह्मण, पर राजा के संसर्ग से धनुर्धर। बाण-विद्ध मुनि के शाप से व्याध और शापानुग्रह से धर्मज्ञ, मातृ-पितृ-भक्त, पूर्वजन्म-स्मृति-सम्पन्न। इनके द्वारा कौशिक ऋषि को धर्मोपदेश। किन्तु माता-पिता ही इनके लिए अग्नि, चतुर्वेद, यज्ञ आदि सब कुछ होने के कारण प्रस्तुत प्रसंग में ये अभिप्रेत नहीं।]

भगवद्भजन से तरनेवाले गणिका, अजामिल आदि खलों के साथ इनका उल्लेख (७।१३०।छं० १)

ब्यास (व्यास) — भगवान् के सत्रहवें अवतार। भा० १।३।२१। सात चिरजीवियों में एक। आ० को०। ब्रह्मर्षि। महा० आदि० १।५५। महाभारत के रचयिता। महा० आदि० १।१०-११। यह मान्यता कि अठारह पुराण एवं ब्रह्मसूत्र

इन्हीं के द्वारा रचित। आ० को०।

[वर्तमान चतुर्युगी के द्वापर युग में वसिष्ठ के पौत्र पराशर द्वारा उपरिचर वसु की दाश-पालिता कुमारी कन्या सत्यवती के गर्भ से इनका जन्म। भा० १।४।१४, महा० आदि० ६३।५८-८४, शा० ३४६।४६-५०। काला रंग होने के कारण इनका नाम कृष्ण। भा० ६।२२।२२। बाल्यावस्था में ही यमुना के द्वीप में छोड़ दिये जाने के कारण 'द्वैपायन'। महा० आदि० ६३।८६। ('कृष्णद्वैपायन' नाम से प्रसिद्ध।) जन्म लेते ही इनका इच्छानुसार शरीर-विस्तार करना। ये परब्रह्म और अपरब्रह्म के ज्ञाता, कवि (त्रिकालदर्शी), सत्यव्रत। अंगों-इतिहासोंसहित सम्पूर्ण वेदों का और परमात्मतत्व का ज्ञान इन्हें स्वतः प्राप्त। यज्ञ-विस्तार के लिए इनके द्वारा एक ही वेद का चार भागों में विभाजन। महा० आदि० ६०।३,५। भा० १।४।१६। वेदों का व्यास करने के कारण इनका नाम व्यास (वेदव्यास)। महा० आदि० ६३।८८। वेद-श्रवण के अनधिकारी स्त्री, शूद्र एवं पतित द्विजाति के कल्याण के लिए इनके द्वारा महाभारत इतिहास की रचना। भा० १।४।२५। फिर भी ये असन्तुष्ट, अपूर्णकाम। नारद से प्रेमाभक्ति का उपदेश सुन, श्रीमद्भागवत की रचना कर, इनके मन को शान्ति। भा० १।४।२६ - १।७।८। सरस्वती नदी के पश्चिम तट पर इनका बदरी वन मण्डित आश्रम। भा० १।७।२।

माता सत्यवती की आज्ञा से नियोग विधि के अनुसार इनका अम्बिका, अम्बालिका एवं अम्बिका-दासी के साथ समागम, उनके गर्भ से क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर का जन्म। महा० आदि० १०५. भा० ६।२२।२५। पुत्र-कामना से इनका तप। शिव से वरप्राप्ति। घृताची अप्सरा को देख ये काममोहित। शुकीरूप में उसका इनके निकट आना। अरणि काष्ठ पर इनका वीर्यपात। शुकदेव का जन्म। महा० शा० ३२३।१२, २७; ३२४।१-६।

सर्वप्रथम ये सातवें कल्प के स्वायम्भुव मन्वन्तर में सरस्वती-पुत्र 'अपान्तरतमा' के रूप में उत्पन्न। सभी मन्वन्तरों में धर्मप्रवर्त्तक होने का इन्हें हरि का वरदान। महा० शा० ३४६। वि० पु० के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर में कोई एक महर्षि व्यास। अब तक के व्यासों की संख्या अट्ठाईस। प्रथम व्यास ब्रह्मा, अट्ठाइसवें व्यास कृष्णद्वैपायन। वि० पु० ३।३।६-२०।]

हरि-सुयश वर्णन करनेवाले व्यास आदि कवि-पुंगवों की चरण-वन्दना, उनसे मनोरथ-पूर्त्ति की याचना (१।१४।२-३)।

मूल शब्द -- १।१४।२।

ब्रह्म – सच्चिदानन्दस्वरूप अवाङ्मनसगोचर एकमेवाद्वितीय तत्व।

[अद्वैत वेदान्त में –

लक्षण – ब्रह्म के वास्तव स्वरूप में निर्णय के लिए दो प्रकार के लक्षण स्वीकृत – (१) स्वरूप-लक्षण, जिसमें पदार्थ के सत्य तात्विक रूप का परिचय; (२) तटस्थ लक्षण, जिसमें कुछ देर तक होनेवाले आगन्तुक गुणों का ही निर्देश। यथा, ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है। यहाँ उत्पत्ति, स्थिति और लय आगन्तुक गुण, इनके समावेश के कारण यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।१।१), 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृ० उ० ३।६।२८) -- इन लक्षणों के अनुसार ये सत् (सत्ता), चित् (ज्ञान) और आनन्दरूप, अर्थात् सच्चिदानंद। यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण। किन्तु ये ही ब्रह्म मायावच्छिन्न होने पर सगुण ब्रह्म, अपर ब्रह्म या ईश्वर कहलाते हैं जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण। ब्रह्म के दो रूप – (१) सगुण एवं (२) निर्गुण। दोनों तत्वतः एक ही, किन्तु दृष्टि-भेद से दो रूपों में गृहीत।

सगुण – जिस प्रकार संसार के पदार्थ असत्य और काल्पनिक, उसी प्रकार जीव भी अविद्या पर आश्रित। 'ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है' – इस ज्ञान के अभाव में जीव की सत्ता। उसके द्वारा उपासना के लिए ईश्वर की कल्पना। ईश्वर जगत् के स्वामी तथा नियन्ता, इसीलिए जीव द्वारा इनकी उपासना और दया, दाक्षिण्य, अगाध करुणा आदि गुणों से इनका मण्डन। ये ही सगुण ब्रह्म या ईश्वर। इस प्रकार उपासना के निमित्त, व्यावहारिक दृष्टि से, सगुण ब्रह्म की कल्पना।

निर्गुण – पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण। इनके ऊपर जगत् या जीव का कोई भी धर्म आरोपित करना संभव नहीं। शंकर के मत से ये सजातीय, विजातीय तथा स्वगत, इन तीनों भेदों से रहित, किन्तु रामानुज के मतानुसार इनमें 'स्वगत' भेद की स्थिति। इनमें दो अंश – चित् अंश तथ अचित् अंश – और दोनों आपस में

विरुद्ध, एक-दूसरे से भिन्न, अतः इन५ स्वगत भेद की सिद्धि। शंकर-मत में इनके दो रूप — विश्वग तथा विश्वातीत। विश्वग रूप में ये गुण-सम्पन्न माने जा सकते हैं, पर विश्वातीत रूप में ये अनिर्वचनीय, क्योंकि इनमें गुण की सत्ता मानना संभव नहीं। इसलिए ये निर्गुण। उपनिषदों में 'नेति नेति' शब्दों द्वारा ब्रह्म अभिहित। 'नेति नेति' द्वारा सब गुणों का निषेध। इसके बाद जो तत्व शेष, वही ब्रह्म। ये निर्गुण। यह ब्रह्म का पारमार्थिक रूप।

सगुण ब्रह्म (या ईश्वर) और निर्गुण ब्रह्म में भेद मानना नितान्त भ्रामक। निर्गुण ब्रह्म वास्तविक पारमार्थिक सत्ता जो व्यवहार के लिए, उपासना के लिए, सगुण ईश्वर के रूप में कल्पित। तत्व एक ही, दृष्टि की भिन्नता के कारण इनके दो रूप। भा० द० पृ० ४४२-४४६।

श्रीमद्भागवत में —

ब्रह्म के लिए परमात्मा (१।२।११), भगवान् (१।२।११, २।५।२०, ५।१२।११), वासुदेव (५।१२।११), भगवान् वासुदेव (२।५।१२, १४), नारायण (२।५।१५-१६, ११।४।३), ईश (२।५।१७), हरि (११।४।१) आदि शब्दों का प्रयोग। ये माया के गुणों से रहित, निर्गुण। मायापति। माया में स्थित होने पर त्रिगुण के आवरण से इनका अपने स्वरूप को आच्छादित करना। इनका स्वेच्छा से कार्य, कारण, कर्त्तापन के अभिमान से बँधना, काल, कर्म, स्वभाव को स्वीकारना। इनके द्वारा अपने-आपसे, अपने-आप में महत्तत्व, अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा और अधिष्ठातृ देवताओंसहित दशेन्द्रिय की सृष्टि; व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड की रचना। अपने अंश अन्तर्यामी रूप से (भोक्तारूप से नहीं) जब ये विराट् शरीर ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट, तब इनका नाम 'पुरुष'। यह आदिदेव नारायण का प्रथम अवतार। पुरुष के ब्रह्माण्ड-शरीर में समस्त लोक स्थित।

पहले-पहल जगत् की उत्पत्ति के लिए इनके रजोगुण के अंश से ब्रह्मा हुए, फिर जगत् की स्थिति के लिए इनके सत्वांश से यज्ञपति विष्णु और जगत् के संहार के लिए इनके तमोगुण के अंश से शिव बने। इस प्रकार निरन्तर इन्हीं से परिवर्तनशील प्रजा की उत्पत्ति, स्थिति और संहार। भा० २।५।१८-३६, ११।४।३-५। इस व्यापार में त्रिदेव निमित्त कारण, पुरुष उपादान कारण; ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान कारण। भा० द० पृ० ५६७।

भगवान् का पुरुषरूप अवतारों का अव्यय बीज — इन्हीं से सब अवतार प्रकट। भा० १।३।५। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनके गुणावतार। इस प्रकार कल्पावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार आदि का भा० में विस्तार से वर्णन।

उपनिषदों में ब्रह्म के निर्गुण निराकार और सगुण साकार के बीच एक स्थिति सगुण निराकार के रूप में भी वर्णित। नेति नेति द्वारा निर्गुण निराकार का बोध, लेकिन वहाँ ब्रह्म के गुणों का संकेत करते हुए भी उनके आकार का कथन नहीं, वहाँ सगुण निराकार की स्थिति। यथा, श्वेता० में — 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'। हृदयस्थित परमेश्वर अकेले ही अनेक निष्क्रिय जीवों के शासक। इनका प्रकृतिरूपी बीज को अनेक रूपों में परिणत करना। श्वेता० ६।११,१२। यहाँ ब्रह्म के आकार का कथन नहीं, लेकिन इनके अस्तित्व का सकारात्मक निरूपण। जहाँ गुण के साथ आकार का भी कथन, वहाँ सगुण साकार। यथा, केन० में — ब्रह्म का यक्षरूप में प्राकट्य। इनके द्वारा देवताओं का दर्प-दलन। इन्द्र के उपस्थित होने पर ये अन्तर्धान। फिर (ब्रह्मविद्या-स्वरूपा) हेमवती उमा का उपस्थित होकर इन्द्र को यक्षरूपी ब्रह्म का परिचय देना। केन० ३; ४।१।

मध्ययुग में सगुण निराकार की धारणा पृष्ठभूमि में चली गयी जिससे अव्यक्त या निराकार को ही तुलसी भी निर्गुण कह देते हैं। जैसे, 'जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्बभूतमय अहई।। निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई'। ७।११०।१५-१६।]

सबके हृदय में अन्तर्यामीरूप से ईश्वर का निवास। श्रद्धा-विश्वासरूपी भवानी-शंकर की कृपा बिना सिद्धों के लिए भी इनके दर्शन असम्भव (१।१।श्लो०१)

ईश्वर अंशी और जीव अंश। दोनों 'चेतन अमल सहज सुखरासी।' किन्तु मायावश जीवों का बँधना, जड़ और चेतन में ग्रन्थि पड़ना। गाँठ मिथ्या, किन्तु छूटना कठिन। यदि ईश्वर की कृपा से ऐसा संयोग हो (कि ज्ञान-दीपक जलाया जा सके), तो कदाचित् वह छूटे (७।११७।२-८)। हिमवान् से नारद-कथन — मायाबद्ध जीव अनीश्वर, वारुणी-तुल्य। जैसे गंगा से मिलकर वारुणी पवित्र, वैसे ही ईश्वर के शरणागत होने पर जीव तारण-तरण (१।६८, १।७०।२)।

लक्ष्मण की जिज्ञासा पर राम का तत्वोपदेश — माया, ईश्वर और स्वयं को न जाननेवाला जीव। ईश्वर

बन्ध (मिथ्या ज्ञानकृत कर्त्तृत्वाभिमान) और मोक्ष (तत्वज्ञान द्वारा अज्ञान और कर्तृत्वाभिमान से मुक्ति) प्रदान करनेवाले। ये माया के प्रेरक, सबके परे। इनके बल पर विशुद्ध सत्वप्रधाना विद्यामाया द्वारा जगत् का सृजन-पालन-संहार। हर प्रकार के मान से रहित होकर सबमें समान रूप से ब्रह्म के दर्शन करना ही ज्ञान (३।१४, ३।१५।६-७, ३।१५)।

'ईस्वर सर्व भूतमय अहई' – मुनियों का भुशुण्डि से कथन, किन्तु यह निर्गुण मत भुशुण्डि को रुचिकर नहीं। उनके मन में सगुण ब्रह्म दाशरथि राम के दर्शन की लालसा (७।११०।१५-१६)। लोमश मुनि से सगुण ब्रह्म (राम) की आराधना बताने की उनकी प्रार्थना (७।११० घ)। ब्रह्मज्ञान में निरत मुनि का संक्षेप में रघुनाथ-गाथा-कथन। फिर उन्हें परम अधिकारी समझकर निर्गुण ब्रह्म का उपदेश – ब्रह्म (१) अज (क्योंकि अनादि अपरिच्छिन्न का जन्म असम्भव), (२) अद्वैत (त्रिकालाबाध्य सत्यत्व होने के कारण), (३) निर्गुण (गुणातीत), (४) हृदयेश (सर्वान्तर्यामी), (५) अकल (अवयवरहित, कलाहीन), (६) अनीह (अकाम), (७) अनाम, (८) अरूप (क्योंकि नाम-रूप माया के कार्य, ब्रह्म माया से परे)। फिर भी ये (९) अनुभवगम्य (जिससे इनका अस्तित्व प्रमाणित), (१०) अखण्ड (११) अनुपम (जगत् से विलक्षण), (१२) मन और इन्द्रियों से परे (अर्थात् प्रत्यक्ष के विषय नहीं), (१३) निर्मल (किसी विजातीय द्रव्य का इनमें स्पर्श नहीं), (१४) अविनाशी (अर्थात् सद्रूप), (१५) निर्विकार (एकरस), (१६) निरवधि (निस्सीम), (१७) सुखराशि (आनन्दघन)। जिस तरह जल और तरंग में अभेद, उसी तरह ब्रह्म और जीव में भी भेद नहीं (७।१११।१-६)।

यह निर्गुण मत भुशुण्डि के मन में न बैठना (७।१११।७)। उनके द्वारा इसका खण्डन (७।१११।११-१३)। लोमश के सकोप निर्गुण-ज्ञान-निरूपण करने पर उनके मन में आक्षेपात्मक प्रश्न – जीव माया के वशीभूत, परिच्छिन्न, जड़रूप। उसकी ईश्वर से क्या समानता? (७।१११ ख)। परमात्मा का ज्ञाता क्या-कभी भवकूप में पड़ता है? हरि-निन्दक क्या कभी सुखी? हरिचरित-वर्णन करने पर भी क्या पाप शेष? हरिभक्ति के समान क्या अन्य कोई लाभ? (७।११२।५,६,८)। लोमश द्वारा भुशुण्डि को दिये गये वरदान पर 'ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा' (७।११४।५)

व्याकुल दशरथ का राम से कथन – 'सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी।। … अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु।' (२।७७।७, २।७७)। 'अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु' – चित्रकूट में राम का माताओं को प्रबोधन (२।२४४)। उनका भरत को समझाना – '…ईस अधीन जीव गति जानी' (२।२६३।५)। कौसल्या-कथन सुनयना से– 'ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें।।' (२।२८२।५)। ग्रामवासिनी नारियों की उक्ति – 'जौ जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा।।' (२।१२१।४)। वानरों को देख सम्पाति-कथन – 'मोहि अहार दीन्ह जगदीसा' (४।२७।२)।

ईश्वर 'बिनु हेतु सनेही'। चौरासी लाख योनियों में भटकनेवाले जीव को नर-देह की प्राप्ति उनकी करुणा से ही। यह शरीर अर्थ-धर्म-काम का साधन, मोक्ष का मुख्य अधिकारी। ऐसी सुर-दुर्लभ देह पाकर परलोक न सुधारनेवालों का काल-कर्म-सहित ईश्वर को अपनी दशा के लिए दोषी कहना! – गुरु-द्विज-पुरवासियों से राम-कथन (७।४३।७-७।४३; ७।४४।६)। हिमवान् का मेना को समझाना– वे सोच छोड़ भगवान् का स्मरण करें। ये कल्याण करेंगे (१।७१)। '… ईस्वर करिहि सहाई' – ब्रह्मा-कथन देवों से (१।८३।१)।

सन्त-समाज-प्रयाग के रूपक में ब्रह्म-विचार (ब्रह्मज्ञान) का प्रचार सरस्वती। (जैसे प्रयाग में सरस्वती गुप्त, उसी तरह सन्त-समाज में ब्रह्मविद्या का प्रचार गुप्त, उस समाज तक ही सीमित।) (१।२।८)। मकर संक्रान्ति के समय प्रयाग में ऋषि-मुनियों का मज्जन और ब्रह्म-निरूपण। उनके द्वारा भगवान् की ज्ञान-वैराग्य-युक्त भक्ति और गुणों का कथन-श्रवण (१।४४।८-१।४४)। 'बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू' – भरत-कथन वसिष्ठ से (२।१७८।४)। ब्रह्म-विचार में अपनी गति होने का जनक-कथन सुनयना से (२।२८८।४)। ब्रह्म-सुख अनुभवगम्य। यह अकथ, अनुपम, निर्दोष, नाम-रूप-रहित। मोहनिशा में नाम-जप करते हुए योगियों द्वारा इसका अनुभव (१।२२।२)। शुक-सनकादि द्वारा नाम-प्रताप से ब्रह्मसुख-भोग (१।२६।२)। अहंता और ममता से मलिन व्यक्ति के लिए ब्रह्मानन्द का अनुभव असम्भव (२।२२५)। राम-लक्ष्मण को देख जनक के मन का ब्रह्मसुख को त्यागना (१।२१६।५)। राम के बालचरित-दर्शन के लवलेश के आगे ब्रह्मसुख तुच्छ (७।८८ ख)।

द्वन्द्वों के उल्लेख-क्रम में ब्रह्म का माया के साथ, जगदीश का जीव के साथ उल्लेख (१।६।७)। 'सो सुधारि

हरिजन जिमि लेहीं' (१।७।३)। राजा ईश्वर का अंशावतार (१।२८।८)। काम के प्रभाव से 'देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे' (१।८५।छं०)। प्रतापभानु को शाप देते हुए विप्रों का कथन — 'ईस्वर राखा धरम हमारा' (१।१७४।२)। 'हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ' (१।१७८ ख)। रावण के राज्य में 'नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना' (१।१८३।८)। सीता का विश्वास— यदि मन-कर्म-वचन से उनका चित्त राम-चरणों में अनुरक्त, तो सर्वान्तर्यामी भगवान् उन्हें रघुवीर की दासी बनायेंगे (१।२५९।४-५)। गंगा का जल 'ब्रह्ममय' वारि (२।१९७।५)। शूर्पणखा का रावण को उपदेश — 'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' व्यर्थ (३।२१।८)। [कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्। भा० १।५।१२।]

जैसे (निरन्तर प्रवहमान) सरिता का जल सागर में जाकर अचल, वैसे ही (भव प्रवाह में बहते हुए) जीव को भगवच्चरणों की प्राप्ति होने पर ही विश्राम (४।१४।८)। '··· जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा' (४।१५।१०)। '··· हरिजन इव परिहरि सब आसा' (४।१६।९)। '··· जिमि हरिभगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि' (४।१६)। जैसे अगाध जल में मछलियाँ सुखी, वैसे ही हरि की शरण में आया हुआ भक्त (४।१७।१)। 'पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म।।' 'फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा।।' (३।३९ क, ४।१७।२)। [तालाब का जल निर्गुण ब्रह्म से और कमल सगुण ब्रह्म से उपमित। कमल के पत्ते (पुरइन) माया। जैसे पत्तों से जल आच्छादित, वैसे ही माया से निर्गुण ब्रह्म। (यहाँ गुण की उपमा कमल से, सगुण ब्रह्म की नहीं।) जैसे सर की दो अवस्थाएँ, कमलरहित और कमलसहित, वैसे ही ब्रह्म की भी दो अवस्थाएँ — निर्गुण और सगुण। सगुण अवस्था में भी ब्रह्म तत्वतः वही, किन्तु शोभा वर्द्धित, जैसे कमलयुक्त सरोवर की।]

हरि को पाकर भक्तों का निर्निमेष दृष्टि से उनके दर्शन करना (४।१७।७)। कामी से हरिकथा कहना निष्फल (५।५८।४)। रामकथा का अवलम्ब ग्रहण करनेवाले के लिए विषय फीका, सन्त और भगवान् प्रिय (७।१४।छं० ६)। सन्त-संग और हरि-कथा में असज्जनों की रुचि नहीं (७।४०।६)। 'गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा' सन्त-लक्षण में गण्य (३।४६।३)। कलियुग में प्राणियों द्वारा केवल मुख से ब्रह्मज्ञान-चर्चा। विप्रों की बराबरी करते हुए शूद्रों का कथन — ब्रह्म को जाननेवाला ही ब्राह्मण (जबकि सत्य यह कि ब्रह्म का ज्ञाता 'ब्रह्मज्ञ') (७।९९ क, ७।९९ ख)। शिव का भुशुण्डि को उपदेश — 'जानेसु संत अनंत समाना' (७।१०९।१२)।

मूल शब्द — (इस शब्द का प्रयोग राम, शिव, ब्रह्मा, विष्णु के लिए भी) — १।२।८, १।६।७, १।२२।२, १।२६।२, १।४४, १।८५।छं०, १।२१६।५, २।१७८।४, २।१९७।५, २।२२५, २।२८८।४, ३।१५।७, ७।८८ ख, ७।९९ क, ७।९९ ख, ७।१११।२, ७।१११।३, ७।११४।५।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **अकल** (राम भी) — ७।१११।४।

अखंड (राम, शिव भी) — ७।१११।४।

अगुन (राम भी) — ७।१११।३, ७।१११।१२।

अज (राम, शिव, ब्रह्मा भी)— ७।१११।३।

अद्वैत (राम भी) — ७।१११।३।

अनंत (राम, लक्ष्मण भी) — ७।१४।छं० ६, ७।१०९।१२।

अनाम (राम भी) — ७।१११।४।

अनीह (राम भी) — ७।१११।४।

अनुभवगम्य (राम भी) — ७।१११।४।

अनूपा (राम भी) — ७।१११।४।

अबिनासी (राम, शिव, विष्णु भी) — ७।१११।५।

अमल (राम भी) — ७।१११।५।

अरूपा (राम भी) — ७।१११।४।

ईश्वर (राम भी) — १।१।श्लो० २। ईस्वर (राम, शिव भी) — १।८३।१, १।१७४।२, ३।१४, ७।४३, ७।११०।१५, ७।११७।२,

ईस (राम, शिव भी) — १।२८।८, १।६६, १।७०।२, २।२४४, २।२६३।५, २।२८२।५, २।२८३।१, ३।१५

(विकल्प से शिव), ७।४४।६, ७।१११ ख, ७।११७।८। ईसु (शिव भी) — २।७७।७।

गोबिंद (राम भी) — ३।४६।३।

जगदीस (राम भी) — २।१२१।४। जगदीसा (राम, शंकर, ब्रह्मा भी) — १।६।७, ४।२७।२।

निरवधि (राम भी) — ७।१११।५।

निर्गुन (राम, शिव भी) — ३।३६ क, ४।१७।२, ७।१११।११। ('निर्गुन मत' शब्द नहीं लिया है।) निर्गुन ब्रह्म — ३।३६ क, ४।१७।२।

निर्बिकार (राम के लिए 'निर्विकार') — ७।१११।५।

परमात्मा (राम के लिए 'परमातमा') — ७।११२।५।

बंध मोच्छप्रद — ३।१५ (विकल्प से शिव)।

भगवान (राम, शिव, विष्णु, लोमश भी) — १।७१। भगवानु — १।२५६।५। भगवंत (राम भी) — १।४४, २।७७।

मन गोतीत — ७।१११।५।

माया प्रेरक — ३।१५ (विकल्प से शिव)।

सकल उर बासी (राम भी) — १।२५६।५।

सगुन (राम भी) — ४।१७।२। ('सगुन मत' शब्द नहीं लिया है।)

सर्बपर — ३।१५ (विकल्प से शिव)।

सर्ब भूतमय — ७।११०।१५।

सीव — ३।१५ (विकल्प से शिव)।

सुखरासी (राम, शिव भी) — ७।१११।५।

हरि (पापों को हरनेवाले। राम, विष्णु, कृष्ण भी) — १।७।३, १।४४।८, १।१७८ ख, १।१८३।८, १।२४२।५, ३।२१।८, ४।१४।८, ४।१५।१०, ४।१६।६, ४।१६, ४।१७।१, ४।१७।७, ४।१७।७, ५।५८।४, ७।४०।६, ७।११२।५, ७।११२।६, ७।११२।८।

हृदयेसा — ७।१११।३।

['ब्रह्म' और इनसे सम्बन्धित सर्वाधिक शब्दों का प्रयोग 'राम' में।]

ब्रह्म अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) — ब्रह्मा से अधिष्ठित एक अस्त्र। आ० को०। ब्रह्मशक्ति से परिचालित अमोघ माना जानेवाला एक अस्त्र। बृ० को०। एक मन्त्र जिसके सामर्थ्य से त्रैलोक्य-नाश सम्भव। ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर ही यह सिद्ध। मा० पी० ५।१९ व्या०।

[इस मन्त्र से किसी भी पदार्थ को अभिमन्त्रित करने पर वह तेजोद्दीप्त स्थूल ब्रह्मास्त्र में परिणत (अथवा किसी पदार्थ में मन्त्र द्वारा ब्रह्मास्त्र का चिन्तन या आवाहन करने पर वह ब्रह्मास्त्र में परिणत)। मानस ३।१।८, ३।२।१ में राम द्वारा अभिमन्त्रित सींक ही 'ब्रह्मसर'। महा० सौ० १३।१९ में अश्वत्थामा द्वारा एक सींक में ब्रह्मास्त्र का आवाहन। वि० ३।२।१ व्या० के अनुसार सींक से बने ब्रह्मास्त्र का नाम ऐषीकास्त्र; यह ब्रह्मास्त्र का एक भेद। वा० रा० १।२७।६-७ में विश्वामित्र द्वारा राम को दिये गये अनेक दिव्यास्त्रों में ब्रह्मशिर, ऐषीक, ब्रह्मास्त्र का भिन्न अस्त्रों के रूप में उल्लेख।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेवाले ब्राह्मण अथवा तपस्वी क्षत्रिय द्वारा ही इसकी समुचित ज्ञान-प्राप्ति सम्भव। दूसरा कोई इसे किसी तरह नहीं सीख सकता। (ब्रह्मास्त्रं ब्राह्मणो विद्याद् यथावच्चरितव्रतः। क्षत्रियो वा तपस्वी यो नान्यो विद्यात् कथंचन।।) — द्रोण-कथन कर्ण से। महा० शान्ति० २।१३। अब्राह्मण के हृदय में यह स्थिर नहीं रह सकता। (अब्राह्मणे न हि ब्रह्म ध्रुवं तिष्ठेत् कदाचन।) — परशुराम-कथन कर्ण से। महा० शान्ति० ३।३१। इसका एक भेद 'ब्रह्मशिर'। यह अमोघ, वज्र-सा प्रकाशमान। सम्पूर्ण पृथ्वी को भस्म करने में समर्थ। मनुष्यों पर, और मनुष्येतर प्राणियों में अल्पवीर्य पर, इसके प्रयोग का निषेध। अगस्त्य से अग्निवेश को, उनसे द्रोण को और द्रोण से अर्जुन को प्राप्त। — द्रोण-कथन अर्जुन से। महा० आदि० १३८।९-१३। सौ० १४।३।

यह दिव्यास्त्र जिस संकल्प से छोड़ा जाये, उस संकल्प की सिद्धि निश्चित। अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र समस्त

पाण्डवों के नाश के लिए, अर्जुन का ब्रह्मास्त्र प्रतिपक्षी अश्वत्थामा के वज्रास्त्र को शान्त करने के लिए। महा० सौ० १३।२०, १४।५-६। एक ब्रह्मास्त्र को दूसरे उत्कृष्ट अस्त्र से दबाने पर उस राष्ट्र में बारह वर्ष तक अनावृष्टि। महा० सौ० १५।२३। इसका लक्ष्य बदलना सम्भव। पाण्डव-नाश के लिए छोड़े गये ब्रह्मास्त्र का अश्वत्थामा के संकल्प से पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं पर गिरना। महा० सौ० १५।३२। इसको लौटाना, अर्थात् इसका उपसंहार, केवल जितेन्द्रिय के लिए सम्भव। अजितेन्द्रिय द्वारा लौटाने की चेष्टा होने पर इस अस्त्र से उसका सगे-सम्बन्धियों -सहित शिरश्छेद। अर्जुन द्वारा अपने ब्रह्मास्त्र का उपसंहार, अश्वत्थामा इसमें असमर्थ। महा० सौ० १५।७-११।

इसका बंधन किसी दूसरे बन्धन के साथ नहीं रहता। इसीलिए इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र-बद्ध हनुमान् राक्षसों द्वारा वल्कलादि से बाँधे जाने पर ब्रह्मास्त्र-बन्धन से मुक्त। वा० रा० ५।४८।३६-३७, ४६-४८।

ब्रह्मास्त्र देवता का निवास-स्थान ब्रह्मा, इन्द्र आदि के स्थानों के निकट हिमालय के सर्वोच्च श्रेष्ठ शिखर पर। वा० रा० ६।७४।५६।

यह चरम अस्त्र। छल-बल-पौरुष-माया सब व्यर्थ होने पर ही इसका सन्धान।]

इसका प्रयोग राम द्वारा कामरूप जयन्त पर (३।२।१)। इन्द्रजित् द्वारा अशोक-वन में हनुमान् पर। इसकी महिमा-रक्षा के लिए हनुमान् का इससे मूर्च्छित होना (५।१६, ५।२०।१)।

मूल शब्द – ५।१६। ब्रह्मबान – ५।२०।१। ब्रह्मसर – ३।२।१, ५।१६।

ब्रह्मलोक – सात ऊर्ध्वलोकों में अन्तिम। ब्रह्मा का लोक।

[त्रिलोक (भूः, भुवः, स्वः) के ऊपर, महर्लोक, जनलोक और तपलोक के बाद, इस लोक की स्थिति। यह अभय-लोक। यहाँ ब्रह्मा का नित्य निवास। फिर न मरनेवाले अमरगण का भी वास। विश्वरूप भगवान् के मस्तक में भी इस लोक की स्थिति की कल्पना। वि० पु० २।७।१५, भा० २।५।३६, २।६।१८। तीन पद भूमि नापते हुए वामन भगवान् के दूसरे पद का इस लोक तक पहुँचना। सं० ब्रह्मपु० पृ० ३८४। भा० में मेरु पर्वत पर भी ब्रह्म-सदन के होने का उल्लेख। 'विष्णुपदी' गंगा का यहाँ उतरना और यहाँ से चार धाराओं में विभक्त होकर बहना। भा० ५।१७।४-८। मा० पी० १।१८७।नोट ६ के अनुसार मेरु-स्थित लोक ब्रह्मा का सभालोक।]

यह विश्वरूप भगवान् राम का मस्तक – मन्दोदरी-कथन रावण से (६।१५।१)। [··· मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः। भा० २।५।३६।] भक्ति के लिए सरस्वती का इस लोक को छोड़कर कवि के निकट जाना (१।११।४)। [यह लोक सबके स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित। यहीं मूलाधार में परावाणी सरस्वती का वास। वि०।] नारद का इस लोक में आकर राम के नित नूतन चरित सुनाना (७।४२।५)। काक-भुशुण्डि के यहाँ तक आने पर भी बालरूप राम की भुजा उनके पीछे (७।७९ क)। निम्नलिखित पात्रों के इस लोक में आने का उल्लेख – नारद (१।७१।१, १।१३८, ३।४६।छं०, ७।५१), सरस्वती (२।२९५।८), वेद (७।१३ क), सनकादि (७।३५, ७।३६।१), काकरूप जयन्त (३।२।४)।

मूल शब्द – ७।४२।५, ७।७९ क।
पर्याय – **अजधामा** – ६।१५।१।
बिधिधाम – ७।५१।
बिधिभवन – १।११।४।
बिधिलोक – ७।३६।१। बिधिलोका – २।२९५।८।
ब्रह्म आगार – ७।१३ क।
ब्रह्म धाम – ३।२।४।
ब्रह्मपुर – ३।४६।छं०।
ब्रह्म भवन – १।७१।१, ७।३५।
सत्यलोक – १।१३८।

ब्रह्मांड – अण्डाकार भुवनकोष, विश्वगोलक या सम्पूर्ण विश्व।

[आदि सत्ययुग में ज्ञानस्वरूप निर्विकल्प ब्रह्म या भगवान् दो भागों में विभक्त – ज्ञानस्वरूप पुरुष और उभयात्मिका (कार्य-कारणरूपा) प्रकृति। भगवान् द्वारा प्रकृति क्षुभित। उससे त्रिगुण (सत्व, रज, तम) प्रकट। त्रिगुण

से महत्तत्व और महत्तत्व के विकार से अहंकार व्यक्त। तामस, राजस (तैजस) एवं सात्विक (वैकारिक) अहंकार से क्रमशः पंचतन्मात्राएँ—पंचभूत, इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठातृ देवता प्रकट। भगवान् की प्रेरणा से इन सबका संयुक्त होकर अण्ड उत्पन्न करना। (यह अण्ड ही ब्रह्माण्ड)। जल में इसके स्थित होने पर भगवान् इसमें विराजमान। भा० ११।२४।२-१०। उनकी नाभि से विश्वकमल की उत्पत्ति। उस पर ब्रह्मा का आविर्भाव। तप करके भगवदनुग्रह से ब्रह्मा द्वारा रजोगुण से भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक की रचना। इन्हीं तीन लोकों में त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार विविध गतियाँ प्राप्त। सिद्धों के लिए त्रिलोक से ऊपर और असुर-नागों के लिए पृथ्वी से नीचे के लोकों का सृजन। भा० ११।२४।१०-१३। भा० २।५ में (ब्रह्माण्डरूप) अण्ड को फोड़कर उसमें से विराट् पुरुष प्रकट। उस पुरुष के विविध अंगों में ही सातों ऊर्ध्वलोक एवं सातों अधोलोक की स्थिति की कल्पना। भा० २।५।३५-३६, ३।२६।५१-५२।

सप्त ऊर्ध्वलोक —(१) भूर्लोक (पृथ्वी)। (२) भुवर्लोक — पृथ्वी और सूर्य के मध्य। सिद्ध-मुनि-सेवित। (भा० ३।६।२९ के अनुसार यही अन्तरिक्ष जहाँ रुद्र के पार्षद्‌गण भूत-प्रेतादि का विचरण।) (३) स्वर्लोक — सूर्य और ध्रुव के बीच। (इसमें सब ज्योतिर्लोक। भा० ३।६।२८ में यही देवताओं का निवास स्वर्ग।) यह त्रैलोक्य कृतक (नाशवान्)। (४) महर्लोक — यहाँ भृगु आदि सिद्धगणों का निवास। (५) जनलोक, (६) तपोलोक, (७) सत्यलोक (या ब्रह्मलोक) जहाँ क्रमशः सनकादि, वैराजक नामक देवगण एवं अमरगण का वास। ये तीनों (५,६,७) लोक अकृतक (अविनाशी)। कृतक त्रैलोक्य और अकृतक त्रैलोक्य के बीच में महर्लोक कृतकाकृतक। कल्पान्त (नैमित्तिक प्रलय) में यह जनशून्य, किन्तु नष्ट नहीं। वि० पु० २।७।१२-२०, सं० ब्रह्मपु० पृ० ३१४।

सप्त अधोलोक अर्थात् सप्त पाताल — अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल। दे० 'पाताल'।

यह ब्रह्माण्ड ऊपर-नीचे सब ओर अण्डकटाह से घिरा हुआ। यह अण्ड अपने से दसगुने जल से आवृत्त। जल का सम्पूर्ण आवरण अग्नि से घिरा हुआ। अग्नि वायु से, वायु आकाश से, आकाश तामस अहंकार से, अहंकार महत्तत्व से परिवेष्टित। इस प्रकार ये सातों आवरण उत्तरोत्तर दसगुना विस्तृत। महत्तत्व को आवृत करके प्रधान (प्रकृति) स्थित। वह अनन्त, असंख्येय, अपरिमेय — सम्पूर्ण जगत् का कारण पराप्रकृति। उसमें ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड। काष्ठ में अग्नि की भाँति प्रधान (प्रकृति) में चेतन पुरुष व्याप्त। भगवान् की शक्ति ही (प्रलय-काल में) प्रकृति-पुरुष के पार्थक्य और (स्थिति के समय) उनके सम्मिलन की हेतु। वही सृष्टि के समय प्रकृति के क्षोभ का कारण। वि० पु० २।७।२१-३१, सं० ब्रह्मपु० पृ० ३१४-३१५।]

(यहाँ 'बिस्व' और 'भुवन' शब्द का ग्रहण केवल ब्रह्माण्ड के अर्थ में, त्रिलोक या किसी एक लोक के अर्थ में नहीं।)

'यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं …' (१।१।श्लो०६), 'अखिल बिस्व यह मोर उपाया' — राम-कथन (७।८७।७)। राम के रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिनका निर्माण उनकी माया द्वारा (१।१९२।छं० ३, १।२०१, १।२२५।४, ३।१३।६, ५।२१।४, ७।२२।२)। उनके उदर में काकभुशुण्डि द्वारा ब्रह्माण्ड-समूहों के दर्शन। उनमें अनेक लोक। अगणित त्रिदेव, रवि-शशि-यम-काल-दिक्पाल आदि। प्रत्येक लोक में उन सबके रूप भिन्न। अयोध्या, सरयू, दशरथ, कौसल्या, भरतादि भी भिन्न, किन्तु राम सर्वत्र एकरूप। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उनका अवतार (७।८०।३-७।८१ ख, ६।९९।छं०)। 'उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा।।' (६।३५।७)। 'बिस्व कीन्ह करतार' (१।६) 'अंड कटाह अमित लयकारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी।।' (७।९४।८)।

राम 'बिस्व सुखद' (१।१६।५)। उन्होंने 'करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।' (२।२१९।४)। राम-लक्ष्मण 'अखिल बिस्व कारन करन', 'बिस्व चित चोरा' आदि (१।२०८ ख, १।२१५।५, १।२४२, १।२६१)। सीता की कीर्त्ति-नदी करोड़ों ब्रह्माण्डों तक प्रवाहित (२।२८७।३)। पार्वती 'बिस्व बिमोहनि' (१।२३५।८)। 'बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।' (१।१९७।७)। वाल्मीकि और वसिष्ठ के लिए विश्व बदर (बेर) के समान (२।१२५।७, २।१८२।१)। सम्पूर्ण विश्व काम के वश में (१।८५।छं०)। इसका उल्लेख (१।२५३।४, १।२५६, २।१५६।१, ५।२१।६, ६।८३।छं०, ६।८६।छं०, ६।१०३।१०, ७।८२।१, ७।१०१क)।

मूल शब्द – १।८५।छं०, १।१९२।छं० ३ (जाति०), १।२५३।४, ३।१३।६ (जाति०), ५।२१।४ (जाति०), ६।८३।छं०, ६।८६।छं०, ७।८०।३ (जाति०), ७।८० ख (जाति०), ७।८१।८ (जाति०), ७।८२।१ (जाति०)। ब्रह्मंड – १।२०१ (जाति०), ७।१०१ का। ब्रह्मंडा – ६।१०३।१०, ब्रह्मांडु – १।२५६।

पर्याय – **अंड** – २।१५६।१ (जाति०)।

अंडकटाह – ७।८० ख (जाति०), ७।६४।८ (जाति०)।

अंडकोस (अण्डकोष) – ५।२१।६, ७।८१।५ (जाति०)।

बिधि अंड – २।२८७।३ (जाति०)

भुवन – १।२२५।४ (जाति०), ७।८१।६ (जाति०), ७।८१ क (जाति०), ७।८१ ख (जाति०), ७।८१ ख (जाति०)। भुअन – ६।६६।छं० (जाति०), ७।२२।२ (जाति०)।

विश्व– १।१।श्लो० ६। बिस्व– १।६, १।१६।५, १।१६७।७, १।२०८ ख, १।२१५।५, १।२३५।८, १।२४२, १।२६१, २।१२५।७, २।१८२।१, २।२१६।४, ६।३५।७, ७।८७।७।

ब्रह्म – दे० 'विधि'।

ब्रह्मानी (ब्रह्माणी) – ब्रह्मा की शक्ति; ब्रह्मा की पत्नी; सरस्वती (दे० 'सारदा')।

[देव-शक्तियों का रूप, भूषण, वाहन अपने-अपने देवता के सदृश। (यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्। तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ।। ८।१४।) ब्रह्माणी हंसयुक्त विमान पर आसीन; अक्षसूत्र, कमण्डलु से शोभित। अम्बिका देवी की ओर से युद्ध करते हुए इनका असुरों पर कमण्डलु-जल छिड़कना जिससे उनका ओज-पराक्रम नष्ट। दु० स० ८।१४-१५, ३३।]

राम के पास से लौटती हुई सती को मार्ग में अगणित सती, विधात्री, इन्दिरा के दर्शन। इन सबका वेश अपने-अपने देवताओं के अनुरूप (१।५४)। आदिशक्ति जानकी के अंश से अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणियों की उत्पत्ति (१।१४८।३)।

मूल शब्द – १।१४८।३।

पर्याय – विधात्री – १।५४।

भगति रस (भक्ति रस) – काव्य का एक रस। नवरस में गण्य नहीं।

[भक्ति को रसरूप में प्रतिष्ठित करने का मौलिक श्रेय भा० को। मधुसूदन सरस्वती के 'भक्ति रसायन' नामक ग्रन्थ में भक्ति के रसत्व का विशद निरूपण। उसके अनुसार यह दसवाँ रस। रूप गोस्वामीकृत 'हरिभक्तिसुधामृतसिन्धु' में इस रस का विस्तृत और व्यवस्थित वर्णन। कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार इसका स्थायी भाव – भगवद्विषयक अनुराग; आलम्बन – भगवान राम, कृष्ण आदि के अखिल विश्व-सौन्दर्य-निधि, दिव्य विग्रह; उद्दीपन–उनके अद्‌भुत कार्य, अनुपम गुण, भक्त-सत्संग आदि। अनुभाव – प्रेमजन्य अश्रु, रोमांच आदि; व्यभिचारी भाव – हर्ष, सुख, आवेग, चपलता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य, धृति, स्मृति और मति। सा० को० १।

तुलसीदास में दास्य भाव का परिपाक दास्य रस। यह भक्तिरस का एक भेद। वा० वि० पृ० १०६-११०। काव्य-दृष्टि से तुलसी द्वारा नवरस का ही उल्लेख (१।३७।१०।]

मूल शब्द – १।२२, २।६२।३, २।२०८, ७।१२५।१।

भगवान – भग (षडैश्वर्य) से सम्पन्न।

[इनका स्वरूप – ये अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, हस्त-पादादि-रहित, विभु, सर्वगत, नित्य, सर्वभूतों के आदिकारण, सम्पूर्ण व्याप्य-व्यापक को प्रकट करनेवाले; ये ब्रह्म, मुमुक्षुओं के ध्येय, विष्णु के वेद-प्रतिपादित सूक्षक परमधाम; परमात्मा का यही स्वरूप 'भगवत्' शब्द से वाच्य और उस अनादि, अक्षय आत्मा का 'भगवत्' शब्द वाचक। वि० पु० ६।५।६६-६६। त्याज्य गुण आदि को छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि सद्‌गुण ही 'भगवत्' शब्द के वाच्य। वि० पु० ६।५।७६।

भ, ग, व अक्षरों के सांकेतिक अर्थ – भ = सम्भर्ता (प्रकृति को कार्ययोग्य बनानेवाला। मा० पी० १।१३।४ नोट ६) एवं भर्त्ता (स्वामी या पोषक)। ग = नेता (संचालक), गमयिता (संहर्त्ता) एवं स्रष्टा। व = जो सर्वभूतों में विराजमान और जिसमें सब भूतों का वास। वि० पु० ६।५।७३, ७५।

भगवान् = 'भग' को धारण करनेवाले। भग = सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।)। वि० पु० ६।५।७४।

भगवान् = जीवों के उत्पत्ति-नाश, आगमन-गमन, विद्या-अविद्या को जाननेवाले (उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।)। वि० पु० ६।५।७८।

महान् भगवान् शब्द परब्रह्मस्वरूप वासुदेव का वाचक, किसी अन्य का नहीं। वे ही ईश्वर, परावेश्वर। वि० पु० ६।५।७६, ८५, ८६। दे० 'वासुदेव'। इस शब्द का औरों के लिए प्रयोग गौण। वि० पु० ६।५।७७।]

दे० 'ब्रह्म', 'राम', 'सिव', 'विष्नु', 'लोमस'; मानस में उनके लिए इस शब्द का प्रयोग।

भगीरथ – सूर्य-वंशी राजा। संकल्पनिष्ठता के प्रतीक।

इक्ष्वाकु-कुल में सत्यव्रत (त्रिशंकु) > हरिश्चन्द्र जिनकी वंश-परम्परा में बाहुक > सगर ~ (१) सुमति > साठ हजार पुत्र, (२) केशिनी > असमंजस > अंशुमान् > दिलीप > भगीरथ > श्रुत। भा० ६।७।५,७,६; ६।८।१-४, ६-११, १५; ६।६।२, १६।

[सगर के अश्वमेध यज्ञ के अश्व का इन्द्र द्वारा हरण। सगर-आदेश से उनके साठ हजार पुत्रों द्वारा भूमि-भेदन करते-करते ध्यानस्थ कपिल मुनि के निकट अश्व के दर्शन। अपने धृष्ट आचरण के कारण वे मुनि की देहाग्नि से भस्म। पुनः यज्ञ-अश्व खोजते हुए वहाँ पहुँचे अंशुमान् से प्रसन्न कपिल मुनि का कथन – केवल गंगाजल से उनके चाचाओं का उद्धार संभव। अंशुमान् के अश्व लाने पर यज्ञ सम्पन्न। भा० ६।८।

भस्मसात् पितरों के उद्धार के लिए गंगा को पृथ्वी पर लाने की कामना से अंशुमान् और उनके बाद दिलीप का तप। दिलीप के बाद गोकर्णतीर्थ पर सहस्र वर्षों तक भगीरथ की कठोर तपस्या। ब्रह्मा का प्राकट्य। इनकी वर-याचना – प्रपितामहों को इनके हाथ से गंगाजल की, और स्वयं इन्हें संतान की प्राप्ति हो। ब्रह्मा-आदेश से हिमवान्-पुत्री गंगा को धारण करने के लिए इनके द्वारा शिव की उपासना। वा० रा० १।४२-१।४३।१-३। भा० में इनकी तपस्या से प्रसन्न हो त्रिभुवनपावनी भगवती गंगा का इन्हें दर्शन देना। उनकी शंकाएँ – उनके वेग से धरती रसातल में चली जायेगी। उनके जल में पापियों के पाप धुलने से वे पाप-मलिन होंगी। इनके द्वारा समाधान – उनके वेग को रुद्र धारण करेंगे। लोकपावन ब्रह्मनिष्ठ साधुओं के अंगस्पर्श से उनके पाप धुलेंगे। इनकी तपस्या से शंकर प्रसन्न। उनका गंगा को अपने मस्तक पर धारण करना। गंगा को लेकर आगे-आगे रथ पर चलते हुए भगीरथ का गंगा-सागर-संगम पर पहुँचना। गंगाजल से सगर-पुत्रों का भस्म आप्लावित। उनका स्वर्ग-गमन। भा० ६।६।१-१५। वा० रा० में इनका गंगा को लेकर सागर तक जाना, फिर रसातल में प्रवेश जहाँ इनके पूर्वज भस्म। सबका विधिवत् तर्पण। ब्रह्मा के आदेश से गंगा इनकी ज्येष्ठ कन्या, इनके नाम पर 'भागीरथी'। वा० रा० १।४४।]

'भूप भगीरथ सुरसरि आनी' – भरद्वाज-कथन भरत से (२।२०६।७)।

भरत – (भरणात् भरतो नाम। जगत् के पोषणकर्त्ता होने के कारण इनका यह नाम। अ० रा० १।३।४१) दशरथ और कैकेयी के पुत्र। राम के अनुज।

[स्वरूप – चतुरक्षर-संयुक्त प्रणव में ये मकार, सुषुप्ति के विभु प्राज्ञ (प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः)।

जिस अवस्था में सोये रहने पर किसी भोग की कामना नहीं, स्वप्न-दर्शन नहीं, वह 'सुषुप्ति'। इस अवस्था से यहाँ प्रलयावस्था की ओर संकेत। उस समय समस्त जगत् अपने कारण-तत्व में विलीन। अतः सुषुप्ति अर्थात् कारण-तत्व ही जिनका संस्थान (शरीर), एकरूप, घनीभूत प्रज्ञान ही जिनका स्वरूप, केवल आनन्दमय चैतन्य ही जिनका मुख, जो एकमात्र आनन्द के उपभोक्ता, वे प्राज्ञ – चतुष्पादविभूति परमात्मा के तृतीय पाद अथवा अंश। राम-पक्ष में भरत ही तृतीय पाद। (लक्ष्मण प्रथम और शत्रुघ्न द्वितीय पाद)।

जहाँ इन्द्रियवर्ग और मन दोनों सोये हुए, दोनों के अनियन्त्रित व्यापार बन्द, उस शम-दम से सम्पन्न स्थिरप्रज्ञता की अवस्था ही यहाँ 'सुषुप्ति'। इसमें सुप्त अर्थात् जितेन्द्रिय व्यक्ति की स्थूल या सूक्ष्म भोगों की ओर दृष्टि नहीं। इस जितेन्द्रियता एवं स्थिरप्रज्ञता में स्थित होने के कारण भरत 'सुषुप्त-स्थान'। सदा राम का ही चिन्तन करने के कारण प्रज्ञानघन अर्थात् महाप्राज्ञ। हर्ष-शोकादि से विचलित न होने के कारण आनन्दमय। भगवान् के चतुर्व्यूहों में अनिरुद्ध-स्वरूप होने के कारण आनन्द के भोक्ता। 'प्राज्ञ' इनकी संज्ञा। रा० उ० ता० पृ० ५४३, ५४४।

विष्णु का रामावतार होने पर ये उनके पांचजन्य शंख के अंश से उद्‌भूत। प० पु० उ० २४२।६४।]

इनका मन सदा राम-चरणों में अनुरक्त। नेम-प्रेम अवर्णनीय। रामानुजों में सर्वप्रथम इनके चरणों को प्रणाम (१।१७।३-४)। कीर्त्तिनदी सरयू के रूपक में — इनका चरित अमित-उत्पात-शमनकारी जपयज्ञ (१।४१), इनका स्वभाव नदी की शीतलता — सदा एकरस, अकथनीय (१।४२।८); चारों भाइयों की 'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास' और 'भायप' जल की मधुरता और सुगन्ध (१।४२)।

इनका जन्म हविष्यान्न के उस चतुर्थांश के फलस्वरूप जो कैकेयी को दशरथ से प्राप्त (१।१९०।२-३, १।१९५।१)। (दे० 'दसरथ'।) राजा से वसिष्ठ-कथन — चारों भाई वेद के तत्व (अर्थात् प्रणव)। विश्व का भरण-पोषण करने के कारण उनके द्वारा इनका नामकरण भरत (१।१९७।७, १।१९८।१)। इनमें और शत्रुघ्न में स्वामी और सेवक की-सी प्रीति। इन दोनों की और राम-लक्ष्मण की जोड़ियाँ देख माताओं को सुख (१।१९८।४-६)। [लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः।।… लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्।। सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा। अ० रा० १।३।४२, ६१, ६२।] चारों भाइयों का साथ-साथ चूड़ाकरण और यज्ञोपवीत संस्कार, विद्यार्जन और राजोचित क्रीड़ा (१।२०३।२-३, १।२०४।३, ४।,६)।

(जनक के) पत्र का समाचार सुन खेल छोड़कर इनका शत्रुघ्नसहित सभा में पिता के पास जाना। पत्र सुनकर आनन्दित होना (१।२९०।७-१।२९१।२)। इन्हें दशरथ की आज्ञा कि ये अश्व-गज-रथ सजाकर शीघ्र राम की बरात में चलें। सुनकर दोनों भाई (ये और शत्रुघ्न) पुलकित। इनका विभागाध्यक्षों को बुलाकर तदनुरूप आदेश (१।२९८।१-३)। जनकपुर पहुँचकर इनका सानुज राम को प्रणाम करना। उनका इन्हें हृदय से लगाना। लक्ष्मण का प्रेमसहित मिलना (१।३०८।७-८)।

ये श्यामवर्ण और शत्रुघ्न गौरवर्ण। दोनों राम-लक्ष्मण जैसे। इनमें और राम में ऐसा सादृश्य कि सहसा पहचानना कठिन, मानो स्वयं विधाता ने अपने हाथ से सँवारकर रचा हो। — जनकपुर की सखियों का परस्पर कथन (१।३११।३-६,८)। जनकपुरवासिनियों की आँचल पसारकर विधि से मनौती कि चारों भाइयों का उसी नगर में विवाह हो (१।३११।छं०)। राम-विवाह के बाद इनका माण्डवी से विवाह (लक्ष्मण-शत्रुघ्न भी क्रमशः उर्मिला-श्रुतकीर्त्ति से विवाहित।)। एक ही मण्डप में वधुओंसहित चारों भाई ऐसे शोभित जैसे जीव के हृदय में चारों विभु अपनी-अपनी अवस्था के साथ (१।३२५।छं०२,४)। [माण्डवी सुषुप्ति और ये प्राज्ञ। दे० 'उरमिला'।] वधुओं के साथ पुत्रों को देखकर दशरथ को ऐसा सुख जैसे क्रियाओं के साथ चारों फलों की प्राप्ति हुई हो (१।३२५)। [माण्डवी रतिरूप क्रिया और ये कामरूपी फल। दे० 'उरमिला'।] विदा के समय जनक द्वारा इनकी विनती। इनसे प्रेमसहित मिलकर उनका आशीर्वाद देना (१।३४२।८)।

'रघुबर' (भरत एवं राम) के चतुःफलदायक विमल-यश-वर्णन की कवि-प्रतिज्ञा (२।१।दोहा)। (राज्याभिषेक की तैयारी के समय) शुभ शकुन होने पर राम और सीता का परस्पर कथन — ये उन्हें सर्वाधिक प्रिय। इनको (मामा के घर) गये दीर्घकाल व्यतीत। शकुन इनके आगमन और इनसे भेंट के सूचक। 'रामहि बंधु सोच दिन राती' (२।७।४-८)। अवधवासियों का मनाना कि ये शीघ्र आ जायें, जिससे इनके दर्शन कर उनके नेत्र सफल हों (२।११।२)।

विषादग्रस्त मन्थरा से कैकेयी का अन्य भाइयोंसहित इनकी कुशल पूछना। उसके विषाद का कारण जानने के लिए इनकी शपथ दिलाना (२।१३, २।१५)। उसका कथन— 'पूत बिदेस न सोच तुम्हारे'। इन्हें ननिहाल भेजने में कौसल्या का हाथ। राम का अभिषेक हो जाने पर ये बन्दीगृह में होंगे (२।१४।५, २।१८।२, २।१९)। इसी बीच सज्ञानियों से उसका परामर्श और उनका निश्चित कथन कि ये राजा होंगे। अतः कैकेयी इनके राजतिलक और राम के वनवास का वरदान राजा से माँग ले (२।२१।७, २।२२।६)। राजा के राम-शपथ लेने पर कैकेयी की याचना — 'देहु एक बर भरतहि टीका' (२।२९।१)। राजा को शोकातुर देखकर उनकी कटूक्ति — 'भरतु कि राउर पूत न होहीं' (२।३०।२)। दशरथ-कथन — ये और राम उनकी दो आँखें। राम का भी इन पर विशेष प्रेम। सबेरे ही दूत भेजकर वे इन्हें शत्रुघ्न-सहित बुला लेंगे। शुभ मुहूर्त्त दिखाकर इन्हें राज्य देंगे। दूसरा वर (राम-वनवास) कैकेयी विवेकपूर्वक विचारकर माँगें, जिससे वे नेत्र भरकर इनका राज्याभिषेक देख सकें (२।३१।६-२।३१, २।३२।३-४, २।३२)। 'चहत न भरत भूपतहि भोरें' — राजा का कथन (२।३६।१)। कैकेयी से सब प्रसंग सुनकर राम की

उक्ति — 'भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।' (२।४१।४, २।४२।१)।

अवधवासियों में किसी का (कैकेयी की करनी में) इनकी सम्मति मानना, किसी का चुप रहना, किसी का इस बात को मिथ्या कहना। किसी का मत कि ऐसा कहनेवाले के पुण्य नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि राम इन्हें प्राणप्रिय। 'सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरत राम प्रतिकूल' (२।४८।६-२।४८)। कैकेयी की प्रिय वृद्धाओं का उन्हें समझाना — उनका सदा यही कथन कि ये भी उन्हें राम के समान प्रिय नहीं। वे इन्हें युवराज-पद अवश्य दें, किन्तु राम को वन न भेजें। (उनके वन जाने पर) 'राजु कि भूँजब भरत पुर' (२।४९।५, २।४९-२।५०।२)। कौसल्या के लिए राम और ये, दोनों पुत्र समान। उन्हें चिन्ता कि राम के बिना इन्हें बहुत क्लेश होगा (२।५५।६,२।५५)।

अवध में जब से अनर्थ आरम्भ, तब से इन्हें नाना प्रकार के अपशकुन। भयानक दुःस्वप्न। इनका शान्ति के उपाय करना। वसिष्ठ-प्रेषित दूतों से गुरु के बुलाने का संवाद सुनकर, गणेश का स्मरण कर (शत्रुघ्नसहित) इनका शीघ्र प्रस्थान (२।१५७।१-२।१५७)। इनके मन में दुश्चिन्ता। अवध के निकट पहुँचने पर अपशकुन। पुरजनों का बिना कुछ कहे प्रणाम करके चले जाना। भयवश किसी से कुशल पूछने में भी इन्हें संकोच (२।१५८।१-२।१५९।१)।

इनका आगमन सुन कैकेयी मुदित। द्वार पर ही इनकी आरती उतारकर महल में लाना। उनके पूछने पर ननिहाल का कुशल-समाचार कहकर माता-पिता और सिय-राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में इनकी जिज्ञासा। पितृ-मरण सुन व्याकुल होकर इनका भूमि पर गिरना, विलाप। राम का वन-गमन सुन पिता की मृत्यु का भी विस्मरण। स्वयं को सब अनर्थ का कारण समझ ये मौन, स्तब्ध (२।१५९।२-२।१६०)। कैकेयी का इन्हें समझाना। समाजसहित राज्य करने का उनका परामर्श सुन इनका सहमना। उन्हें पापिनी, कुलनाशिनी कहकर धिक्कारना। सूर्य-वंश में जन्म, दशरथ-से पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई इन्हें मिले, और वे इनकी माता हुई! कुबुद्धि उत्पन्न होने पर उनका हृदय खण्डित नहीं हुआ? वर माँगने में पीड़ा नहीं हुई? जीभ नहीं गली? उसमें कीड़े नहीं पड़े? वे सच-सच कहें, वे हैं कौन? [इनकी माँ वे नहीं, क्योंकि इनकी माँ को राम प्राणाधिक प्रिय। माँ का रूप धरे वे कोई राक्षसी या पिशाची। वि०।] वे जो भी हों, मुख में कालिख लगाकर इनकी आँखों की ओट हो जायें। आत्मग्लानि से भरकर इनके उद्गार कि (इनके पूर्वजन्मों के कर्मों के फलस्वरूप) राम-विरोधी के उदर से इनका जन्म। ये स्वयं पातकी, अतः उनसे कुछ कहना व्यर्थ (२।१६१।१-२।१६२)। [ताते हौं देत न दूषन तोहू। राम बिरोधी उर कठोर तें प्रगट कियो है बिधि मोहू। गी० ६।१।१]

शत्रुघ्न के हाथों से मन्थरा को छुड़ाकर इनका भाई के साथ कौसल्या के पास गमन (२।१६३।८)। इनसे मिलने के लिए उठकर दौड़ने के कारण कौसल्या का चक्कर खाकर मूर्च्छित होना। उन्हें देख विकल हो इनका उनके चरणों में गिरना। पिता को दिखा देने का उनसे आग्रह। [वि० के० अनुसार पिता से तात्पर्य पिता का शव जो कौसल्या के महल में था।] राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में कातर जिज्ञासा। ग्लानि-पीड़ित हो कैकेई का नाम लेकर कथन कि वे जन्मीं तो बाँझ क्यों न हुईं। उन्हीं से इनके जैसा 'अपजस भाजन प्रियजन द्रोही' कुलकलंक उत्पन्न। इनका स्वयं को कौसल्या के दुःख और सब अनर्थ का कारण कहकर धिक्कारना (२।१६३-२।१६४।८)। इनके वचन सुन माता का सँभलकर उठना और इन्हें हृदय से लगाना। गोद में बैठाकर इनके आँसू पोंछना। समझाना — ये कुसमय समझकर धीरज धरें। काल-कर्म की गति को अनवरोध्य मानकर शोक और ग्लानि त्याग दें। वस्तुतः विधाता ही उनके प्रतिकूल (२।१६४-२।१६५।८)। उनसे सिय-राम-लक्ष्मण का वन-गमन और उनकी आत्मग्लानि सुनकर इनका और शत्रुघ्न का विलपना। उनका इन्हें हृदय से लगाकर समझाना। इनका भी समझाना (२।१६५-२।१६७।३)। ग्लानि से इनके द्वारा करबद्ध शपथ-ग्रहण — यदि इस अनर्थ में इनकी सम्मति हो, तो इन्हें (पितृ-मातृ-सुत वध आदि) कर्म-सम्बन्धी, (हरिहर को छोड़ भूत-प्रेतादि-पूजन-जन्य) उपासना-सम्बन्धी और (वेद-विक्रय आदि) ज्ञान-सम्बन्धी अकृत्य-करणवाले सब पाप लगें। यदि इनकी सम्मति हो, तो इन्हें (साधु-संग-विमुखता आदि) कर्म-सम्बन्धी,(हरि-भजन-विमुखता आदि) वचन-सम्बन्धी और (हरिहर-सुयश में अरुचि जैसे) मन-सम्बन्धी कृत्य-अकरण के पाप लगें (२।१६७।४-२।१६८।८)। [गी० ६२ में — जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं। तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं? क्यों हौं आजु होत सुचि सपथानि? कौन मानिहै साँची?] इनके सहज सरल सत्य वचन सुन, इनकी निर्दोषता का अनुमोदन करते हुए माँ का कथन — ये राम के प्राणप्रिय और राम इनके। अनर्थ में इनकी सम्मति माननेवाले को स्वप्न में भी सुख-सुगति नहीं मिलेगी। यह कहकर

वात्सल्याधिक्य से उनका इन्हें हृदय से लगाना। इस तरह विलाप करते रात्रि व्यतीत (२।१६८-२।१६९।६)।

प्रातःकाल वसिष्ठ का इन्हें उपदेश। धैर्य धारण कर अवसर के अनुकूल कार्य करने का आदेश। सुनकर सब तैयारी करने की इनकी आज्ञा (२।१६९।७-२।१६९)। राजा का और्ध्वदैहिक कृत्य—शव-स्नान। इनका रानियों को सती होने से रोकना। दाह-क्रिया। स्नानोपरान्त तिलांजलि देना। इनके द्वारा दशगात्र-विधान सम्पन्न। (वि० के अनुसार ग्यारहवें दिन शुद्ध होकर) वसिष्ठ की आज्ञा से सब कार्य सम्पादित। ब्राह्मणों को प्रभूत दान। 'पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।' (२।१७०।१-२।१७१।१)।

सभा में वसिष्ठ का इन्हें और शत्रुघ्न को बुलाना। कैकेयी की करनी और शोचनीयों का उल्लेख करके, राजा को अशोच्य बताकर उनके वचन के अनुसार इन्हें प्रजा-पालन करने के लिए कहना। इससे राम-जानकी तथा कौसल्यादि को, स्वर्ग में राजा को सुख मिलेगा। इन्हें भी पुण्य और सुयश प्राप्त होगा, दुर्यश नहीं। राम के आने पर ये उन्हें राज्य सौंप दें (२।१७१।२-२।१७५।८)। सचिवों द्वारा अनुमोदन। कौसल्या का समझाते हुए कथन — अब ये ही सबके एकमात्र अवलम्ब, और ये इस तरह संकुचित! गुरु-आज्ञा का पालन कर ये सबका दुःख दूर करें (२।१७५-२।१७६।६)। माता के रससिक्त वचन सुन ये व्याकुल। हृदय में रामं-विरह के अंकुर, नेत्रों में जल। सबके द्वारा इनके सहज स्नेह की सराहना। धीरज धरकर इनकी विनय — गुरु और माता का आदेश उचित। ये पालन करने को इच्छुक, किन्तु इनके हृदय को परितोष नहीं। इनका सच्चा हित तो राम की सेवा में। सिय-राम-लक्ष्मण के चरणों के दर्शन बिना राज्य व्यर्थ। 'बादि मोर सबु बिनु रघुराई।। जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।।' (२।१७६।७-२।१७८।७)। इनका आत्म-भर्त्सनापूर्ण कथन— इन्हें राजा बनाकर यदि सब अपना हित चाहते हैं, तो यह उनकी स्नेहाधिक्य-जन्य जड़ता। ये कैकेयी-पुत्र, कुटिलमति, राम-बिमुख, निर्लज्ज। आज्ञा के बल पर इनके जैसे अधम को राज्य देने पर धरती का रसातल में जाना निश्चित। इन्हीं के कारण राम का वनवास, ये ही अनर्थ के मूल। महल को रामविहीन देखकर भी, जगज् के उपहास का लक्ष्य बनकर भी इनके कुलिश-कठोर हृदय का न फटना। आगे न जाने क्या-क्या भोग शेष (२।१७८।८-२।१८०।२)। [ये राज्य स्वीकार कर लें, इस पर अन्यों द्वारा जितना अधिक बल, उतनी ही प्रबल इनकी वेदना।] इनके द्वारा व्यंग्य से कैकेयी की भर्त्सना (२।१८०।३-२।१८०)। इन्हें वही मिला जो कैकेयी के पुत्र के योग्य और सभी इनका तिलक करने को उत्सुक! ये किन्हें-किन्हें क्या-क्या उत्तर दें? जो परम हानि, उसी में सबको लाभ के दर्शन! माता का राजा होने का आग्रह स्नेहाधिक्य और उनकी दीनता के कारण। विवेकनिधि गुरु का भी यही आदेश! यह इस बात का प्रमाण कि विधाता इनके प्रतिकूल (२।१८१।१-२।१८२।२)। इनका विश्वास कि राम-जानकी की दृष्टि में ये निर्दोष। उन्हें छोड़कर अन्य कोई नहीं कहेगा कि कैकेयी की करनी में इनका मत नहीं। इन्हें लोकापवाद का भय नहीं। असह्य वेदना केवल इस बात की कि इनके कारण सीता-राम दुखी। अब 'देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।' इनका निश्चय कि प्रातःकाल राम के पास जायेंगे। उनके बिना इनके हृदय की बात कौन समझेगा! ये अपराधी, फिर भी शरणागत होने पर वे क्षमा और कृपा करेंगे, शिशु-सेवक और अपना जानकर त्यागेंगे नहीं। इसी में इनका कल्याण समझकर सब पंच आज्ञा और आशीर्वाद दें जिससे राम इनकी प्रार्थना सुनकर लौट आयें (२।१८२।३-२।१८३)। इनके रामप्रेम-सिक्त वचन सुन, इन्हें मूर्त्तिमान् रामप्रेम कहकर सबके द्वारा सराहना। प्रातःकाल चलने के निर्णय से ये सबको प्राणप्रिय। गुरु द्वारा इनके वन जाने के निश्चय का अनुमोदन (२।१८४।१-२।१८५।४)।

घर जाकर इनका विचार — 'संपति सब रघुपति कै आही।' सबकी समुचित व्यवस्था किये बिना जाने पर परिणाम अहितकर। अतः विश्वस्त सेवकों को यथायोग्य कार्य सौंपकर, सब प्रबन्ध कर, इनका कौसल्या के पास गमन। माताओं को राम-दर्शनातुर और दुखी जान पालकी, रथ आदि तैयार करने का आदेश। सबेरा होते ही सचिवों को बुलाकर वन में ही राम का तिलक करने के लिए सब सामग्री साथ लेकर शीघ्र प्रस्थान करने की आज्ञा। पहले रथ पर अरुन्धती, वसिष्ठ और अग्निहोत्र की सामग्री। फिर विप्रवृन्द। नगरवासी। सबके पीछे शिविकाओं में माताएँ। नगर को सेवकों के सुपुर्द कर माताओं के पीछे स्वयं ये और शत्रुघ्न (२।१८६।२-२।१८७)। (राम वन में, अतः सेवक-धर्म की रक्षा के लिए) शत्रुघ्नसहित इनका पैदल चलना। इन्हें देख सबका वाहनों से उतर जाना। कौसल्या के समझाने पर ये सानुज रथ पर आरूढ़ (२।१८८।१-७)। पहले दिन तमसा-तट पर, दूसरे दिन

गोमती-तीर पर, तीसरे दिन सई नदी के किनारे रुककर चौथे दिन इनका शृंगवेरपुर के निकट पहुँचना (२।१८८।८-२।१८९।१)।

इनके आने का समाचार सुन निषादराज गुह का सविषाद विचार — इनके वन जाने का क्या कारण? अवश्य ही इनके मन में कपट, नहीं तो साथ इतनी बड़ी सेना क्यों। सब नाव डुबोने और घाट रोकने का उनका आदेश। जीते-जी इन्हें गंगा पार न करने देने का, स्वयं इनसे सम्मुख युद्ध करने का उनका संकल्प (२।१८९।२ - २।१९०।४)। यह शकुन-विचार सुनकर कि इनका वन-गमन राम को मनाने के लिए, गुह का भेंट की सामग्री लेकर आना। गुरु से 'रामसखा' के रूप में गुह का परिचय पाकर इनका रथ त्यागकर प्रेमोमंग में उनकी ओर बढ़ना। उनकी जाति-पाँति-नाम-ग्राम की ओर ध्यान दिये विना उन्हें उठाकर हृदय से लगाना। इनके मन में ऐसा प्रेमावेग जैसे लक्ष्मण से भेंट हुई हो। देवताओं द्वारा इनकी सराहना — जिसकी छाया का भी स्पर्श होने पर मार्जन का विधान, 'तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।' (२।१९२।३-२।१९४।४)। इनका कुशल-प्रश्न करना। उनका एकटक इनकी ओर देखना, फिर विनय (२।१९५।३-२।१९६।२)।

शृंगवेरपुर के दर्शन कर (राम की स्मृति से) ये स्नेह-शिथिल। निषादराज के कन्धे का सहारा लेकर चलना। रामघाट को प्रणाम करना। ऐसी आनन्दानुभूति जैसे राम मिल गये हों। गंगा से इनकी करबद्ध वर-याचना कि सिय-राम-चरणों में सहज स्नेह हो (२।१९७।१-४, ७-८)। स्नानोपरान्त सबका जहाँ-तहाँ ठहरना। इनका सबकी खोज-खबर लेना। शत्रुघ्नसहित कौसल्या के पास जाना। इनके द्वारा सब माताओं का परितोषण। उनकी सेवा का भार शत्रुघ्न को सौंपना (२।१९७-२।१९८।४)। स्वयं स्नेह-शिथिल हो निषादराज के हाथ में हाथ डालकर चलना। इनके आग्रह पर गुह का शिंशुपा वृक्ष के नीचे वह स्थान दिखाना जहाँ राम ने विश्राम किया था। इनका उस स्थान को दण्डवत् प्रणाम करना। कुश की साथरी को प्रणाम कर प्रदक्षिणा करना। प्रभु की चरण-रेखा की रज को आँखों से लगाना। दो-चार कनक-कण देख, उन्हें सीता के समान समझ मस्तक पर धारण करना। इनके नेत्रों में जल, हृदय में ग्लानि। सिय-राम-लक्ष्मण के गुण और सुकुमारता तथा वन की विपदाओं का कथन कर इनका कैकेयी को और स्वयं को धिक्कारना (२।१९८।५ - २।२०१।६)। गुह का इन्हें समझाना — 'राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि।।' उनका कथन कि उस रात राम द्वारा बार-बार आदरपूर्वक इनकी प्रशंसा। सुनकर, धीरज धरके, राम का स्मरण करते हुए इनका डेरे की ओर गमन (२।२०१।७-२।२०२।१)।

(पाँचवें दिन) प्रातःकाल गंगा पार कर निषादगण के नेतृत्व में सेना को चलने की इनकी आज्ञा। माताओं की पालकियों के साथ शत्रुघ्न। सबसे पीछे इनका सुरसरि को प्रणाम कर, सिय-राम-लक्ष्मण का स्मरण करते हुए पैदल ही चलना। अश्वारूढ़ होने के सेवकों के आग्रह पर इनका कथन — राम पैदल गये और इनके लिए अश्व-गज-स्यन्दन! इनके लिए तो उचित कि (जिस मार्ग पर स्वामी पैदल गये, उस पर इनके पैर न पड़ें,) ये सिर के बल जायें। सेवक-धर्म सबसे कठिन (२।२०२।६-२।२०३।८)।

सीतारामोच्चार करते हुए इनका तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश। पैरों में छाले। इनका पैदल आना सुनकर सब दुखी (२।२०३-२।२०४।२)। इनका त्रिवेणी पर आकर प्रणाम। विधिपूर्वक गंगा-यमुना-संगम पर स्नान और विप्रों को दान। श्वेत-श्याम-वर्णी जल देखकर (सिय-राम का स्मरण हो आने से) शरीर में पुलक। आर्त्ति के कारण (किसी से कुछ न माँगने का अपना क्षत्रिय) धर्म छोड़कर इनकी तीर्थराज से वर-याचना — 'अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान। जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन।।' चातक की-सी अनन्य भक्ति पाने की इनकी प्रार्थना। राम चाहे इन्हें कुटिल समझें, लोग गुरु-स्वामि-द्रोही कहें, किन्तु सीताराम के चरणों में इनका प्रेम नित्य बढ़ता रहे। इनके वचन सुन त्रिवेणी के मध्य से मंगलवाणी गुंजित — ये सब प्रकार से साधु। राम-चरणों में इनका अनुराग अगाध। इनकी ग्लानि व्यर्थ। राम को इनके समान कोई प्रिय नहीं। अनुकूल वाणी सुनकर ये पुलकित। इन्हें धन्य-धन्य कहते हुए देवताओं द्वारा पुष्पवर्षा (२।२०४।३ - २।२०५)।

इनका भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाना। इन्हें साष्टांग प्रणाम करते देख मुनि का समझना कि उनका सौभाग्य ही इनके रूप में मूर्त्त होकर उपस्थित। उनका दौड़कर इन्हें हृदय से लगाना। आशीर्वाद देकर कृतार्थ करना। इन्हें नतमस्तक, संकुचित बैठे देख उनका कथन — उन्हें सब ज्ञात। माता की करनी समझकर ये ग्लानि न करें। कैकेयी का कोई दोष नहीं। (विधि-प्रेरित) सरस्वती का उनकी बुद्धि को ठगना (२।२०६।३ - २।२०६)।

इनका यश अत्यन्त निर्मल। उसके वर्णन से लोक और वेद दोनों को बड़ाई प्राप्त। इनका राज्य करना भी धर्मानुकूल होता, किन्तु उसे त्यागकर 'सकल सुमंगल मूल' अपने जीवन-प्राण राम-चरणानुराग का अवलम्ब ग्रहण करना इन्हीं के अनुरूप। ये महाभाग्यशाली। वे इनके रामप्रिय होने के साक्षी। उनके आश्रम में सिय-राम-लक्ष्मण द्वारा सारी रात इन्हीं की प्रशंसा। 'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू' (२।२०७।१ – २।२०८।८)। उनका कथन – इनका कलंक ही मुनियों के लिए उपदेश। (ये सदा से रामभक्त, किन्तु) कलंक के कारण (राज्य त्यागने और राम को लौटाने के लिए जाने में) इनकी भक्ति रसदशा को प्राप्त। भक्ति-पथानुगामियों के लिए यह समय गणेश की तरह सिद्धिदायक। (इनकी इस समय की रामभक्तिरसमयी मनःस्थिति का स्मरण-ध्यान करने पर सहज ही भक्ति की प्राप्ति।) (२।२०८)। [पारद को गन्धक के साथ घिसते-रगड़ते अन्त में जो रूप प्राप्त, उसका नाम कलंक। इस गुर या रहस्य (उपदेश) को जानने पर ही सिद्ध मकरध्वज बनाना सम्भव। जैसे कलंक से मकरध्वज रस सिद्धि को प्राप्त, वैसे ही भरत के कलंक से भक्ति की सिद्धि का श्रीगणेश। 'तुलसी की साधना' पृ० १५, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।]

इनके यश और नवविधु के रूपक में इनका यश दिन-दिन दूना बढ़नेवाला राम-प्रेमामृत से पूर्ण नवीन चन्द्र। इनके कारण वसुधा पर भी अब प्रेमामृत सुलभ। उसे पान कर रामभक्त तृप्त हों (२।२०९।१-२।२१०।१)। ये व्यर्थ ग्लानि न करें। 'सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा।। तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा।।' यश से इनके द्वारा जगद्विजय। ये धन्य। यह कहकर मुनि प्रेममग्न, मौन (२।२१०।२-६)। सब हर्षित। साधु-साधु कहकर देवताओं द्वारा सुमन-वर्षा। आकाश में, प्रयाग में धन्य-धन्य की ध्वनि। सुन-सुनकर ये प्रेममग्न। इनके शरीर में पुलक, हृदय में सिय-राम, नेत्रों में प्रेमाश्रु। गद्गद् वाणी में इनका कथन – इन्हें माता की करनी या पिता की मृत्यु का सोच नहीं, जग में अधम कहलाने और परलोक बिगड़ने की चिंता नहीं। हृदय में दाह केवल इस बात का कि सिय-राम-लक्ष्मण कठोर मुनि-धर्म का पालन करते हुए वन-वन में विचरणशील। इस शोच से दिन-रात न भूख, न नींद। सारे विश्व में इस कुरोग की दवा नहीं (२।२१०।७-२।२१२।२)। अभिचार-प्रयोग का रूपक (२।२१२।३-६)। मुनि का इन्हें प्रबोधन। आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह। मुनि-आदेश को परम धर्म मानकर इनका स्वीकारना (२।२१२।७-२।२१३।३)। मुनि की आज्ञा से ऋद्धि-सिद्धि द्वारा सुरपुर-दुर्लभ ऐश्वर्य-रचना, क्योंकि 'अतुलित अतिथि राम लघु भाई।' स्वयं मुनि द्वारा तपोबल से विधि-विस्मयकारी वैभव-सृष्टि। इनकी दृष्टि में उस विभव के आगे लोकपालों के लोक भी तुच्छ। किन्तु इनके लिए सम्पत्ति अभोग्य, जैसे रात्रि के समय चकवे के लिए चकवी (२।२१३।४-२।२१५)। (छठे दिन) प्रातःकाल तीर्थराज में स्नान कर, भरद्वाज और ऋषियों को नमन-दण्डवत् करके, आशीर्वाद पाकर, ये विदा (२।२१६।१-२)।

चित्रकूट में चित्त लगाये, रामसखा का सहारा लिये चलते हुए ये ऐसे शोभित जैसे देहधारी अनुराग हों। न पदत्राण, न मस्तक पर छाया। इनका नेम-प्रेम-व्रत-धर्म निश्छल। इनकी जिज्ञासा पर गुह का लक्ष्मण-राम-सीता की पथ-कथा कहते चलना। प्रभु के वास-स्थानों, वृक्षों को देखकर इनके लिए संयत रहना कठिन। इनकी प्रेमदशा देख प्रकृति इनके लिए ऐसी सुखद और मांगलिक जैसी राम के लिए भी नहीं हुई (२।२१६।३-२।२१६)। इनके दर्शन से जड़-चेतन सब 'भवरोग-मुक्त'। हर्षित मुनियों का कथन – यह इनके लिए कोई बड़ी बात नहीं, क्योंकि राम द्वारा मन-ही-मन इनका सदा स्मरण। एक बार भी राम-नाम-स्मरण करनेवाला जब तारण-तरण, तब ये तो राम के प्रिय और अनुज (२।२१७।१-६)।

इनका प्रभाव देख इन्द्र को शोच। गुरु वृहस्पति से उनका अनुरोध कि वे ऐसा उपाय करें जिससे इनकी राम से भेंट न हो, क्योंकि राम संकोची और ये प्रेम-सागर (२।२१७।७-२।२१७)। गुरु का समझाना – मायापति के सेवक के साथ माया करने पर वह करनेवाले के सिर पड़ेगी। भक्त के अपराधी का राम की क्रोधाग्नि से भस्म होना निश्चित। फिर 'भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।' इन्द्र इनके अनिष्ट का विचार त्याग दें। इन पर अपने मोह का आरोप कर वे इनसे डरें नहीं, इनके चरणों में प्रेम करें। सुनकर प्रसन्न इन्द्र द्वारा पुष्पवर्षा और इनके स्वभाव की सराहना (२।२१८।१-२।२१८, २।२१९।७-२।२२०।४)।

(इनकी विरहोत्कण्ठा में उत्तरोत्तर वृद्धि)। इनके राम-नामोच्चार में ऐसी पीड़ा कि वज्र-पाषाण भी द्रवित। बीच में एक स्थान पर निवास करके (सातवें दिन) इनका यमुना-तट पर पहुँचना। रामवर्णी जल देख समाजसहित

विरह-सागर में डूबना (२।२२०।५-२।२२०)। रातों-रात नदी पारकर (आठवें दिन) प्रातःकाल प्रस्थान। मार्ग में राम के निवास और विश्राम-स्थलों को प्रणाम करते जाना (२।२२१।१-८)।

इन्हें देखने के लिए मगवासियों का कामकाज छोड़कर आना। एक स्त्री का शंका व्यक्त करना — ये दोनों राम-लक्ष्मण तो नहीं! उनके और इनके वपु-वय-वर्ण-रूप-शील-स्नेह और चाल में कितना सादृश्य! किन्तु इनके साथ सीता नहीं, बल्कि चतुरंगिणी सेना, और ये विषादग्रस्त। एक दूसरी स्त्री का सब कथा-प्रसंग सुनाकर इनकी प्रशंसा करना। 'भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू।। जो किछु कहब थोर सखि सोई। रामबंधु अस काहे न होई।।' अनुजसहित इनके दर्शन को अपने सबके पुण्यों का प्रभाव कहकर धन्य होना (२।२२१-२।२२३)

इस तरह अपना तथा राम का गुण-श्रवण और राम का स्मरण करते हुए इनका चलना। मार्ग के तीर्थों में स्नान और आश्रमों-मन्दिरों को प्रणाम कर सिय-राम-चरणानुराग की वर-याचना करना। पथ में मिलनेवालों से जिज्ञासापूर्वक प्रभु की वनवास-कथा सुनना। रात्रि को विश्रामोपरान्त (नौवें दिन) राम दरस की लालसा लिये आगे बढ़ना (२।२२४।१-२।२२४)।

सबको मंगल शकुन। समाजसहित इनके मन में उत्साह — राम मिलेंगे, दुःख-दाह मिटेगा। सबके अन्तर में मनोरथ। सब स्नेहोन्मत्त। अंग शिथिल। पाँव डगमग। वचन विह्वल। रामसखा का चित्रकूट पर्वत दिखाना। सबका उसे प्रणाम करना। इनका उस समय का प्रेम अकथनीय। दो कोस चलते-चलते सूर्यास्त। मन्दाकिनी के किनारे रात्रिवास (२।२२५।१-२।२२६।२)।

उधर रात रहते ही राम के जागने पर सीता का उन्हें स्वप्न सुनाना — इनका मानो समाजसहित आगमन। वियोगाग्नि से इनका शरीर तप्त। सब उदास दीन-दुखी (२।२२६।३-५)। इनके आगमन का समाचार सुन राम को हर्ष (इनसे मिलने का), और इनका स्वभाव समझकर (यह समझकर कि इनका आगमन उनका अभिषेक करने, उन्हें लौटाने के लिए) उन्हें शोच। एक ओर पिता के वचन, दूसरी ओर इनका संकोच। फिर यह सोचकर समाधान कि ये साधु, उनके आज्ञानुवर्ती (२।२२६।६ - २।२२७।५)। लक्ष्मण का कथन — यद्यपि ये राम-पदानुरागी, नीतिरत, सुजान साधु, किन्तु राजपद पाकर इनके द्वारा धर्म की मर्यादा का विस्मरण। राम को वन में एकाकी जानकर, अकण्टक राज्य करने का अनुकूल अवसर देख, इनका कुटिलतापूर्वक शत्रुघ्न और चतुरंगिणी सेना को बटोर लाना। वे रण में इन्हें शत्रुघ्न और सैन्यसहित मारकर रामसेवक होने का यश लेंगे (२।२२८।२-२।२३०)। इसी समय उनके विचार के अनौचित्य का संकेत करती हुई आकाश से देववाणी (२।२३१।१-४)। राम का उन्हें समझाना—रघुवंश में ये हंस-से विवेकी। गुणदोषमयी सृष्टि में इनके द्वारा केवल गुणों का ग्रहण, दोषों का त्याग। पंचभूतों में (सृष्टि और प्रलयकाल के अतिरिक्त) कभी विकार नहीं। फिर भी, उनमें भले ही विकार आ जायें, किन्तु इनके सुबन्धुत्व और साधु स्वभाव में परिवर्तन होना असम्भव। 'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।' इनका गुण-शील-स्वभाव कहते हुए राम प्रेम-पयोधि में मग्न (२।२३१।८-२।२३२।८)। देववाणी — 'जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को।।' इनकी कवि-कुल अगम गुणगाथा का ज्ञान केवल राम को ही। सुनकर लक्ष्मण-राम-सीता को सुख (२।२३२।-२।२३३।३)।

(यात्रा का दसवाँ दिन।) प्रातःकाल स्नानोपरान्त सबको नदी-किनारे ठहराकर निषादराज और शत्रुघ्न के साथ इनका राम से मिलने जाना। इनके मन में अनेक कुतर्क। राम या तो इन्हें माता के मत में मानकर त्याग देंगे, या सेवक समझकर सम्मान करेंगे। इनके लिए तो उनकी पादुका ही एकमात्र शरण। चातक और मीन के अनन्य प्रेम का स्मरण करते हुए, शोच और स्नेह में डूबे, इनका संकुचित होते हुए बढ़ते जाना (२।२३३।४-२।२३४।८)। मंगल शकुन देख निषाद द्वारा विचार — सोच मिटेगा, हर्ष होगा, परिणाम पुनः विषादमय। चित्रकूट की शैल-शोभा देख इन्हें सुख (२।२३४-२।२३६)। निषाद द्वारा राम की पर्णकुटी पर छाये वृक्षों की ओर संकेत। इनका सानुज प्रणाम करना। मार्ग में राम के चरण-चिह्न देख, उसकी रज को नेत्रों से लगाकर इन्हें ऐसा हर्ष जैसे राम मिल गये हों। सिद्ध-साधकों का कथन — 'होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।।' (२।२३७।१-२।२३८।८)। भरत-पयोधि के रूपक में राम द्वारा अपने विरह से इनके हृदय का मन्थन। इससे राम-प्रेमामृत प्रकट जिसका साधुओं द्वारा पान (२।२३८)।

सधन वन की ओट में होने के कारण निषादसहित इन्हें और शत्रुघ्न को लक्ष्मण का न देख पाना। इनका आश्रम में प्रवेश। मुनि-मण्डली से घिरे सिय-राम और उनके सामने लक्ष्मण को देखकर ये मग्न। सुख-दुःख, हर्ष-शोक का विस्मरण, और 'पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।।' (२।२३९।१-२।२४०।२)। लक्ष्मण का राम को इनकी प्रणति की सूचना देना। प्रेम-अधीर राम का उठकर इन्हें हृदय से लगाना। दोनों की मिलन-प्रीति अवर्णनीय। 'परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।। ···अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को।।' (२।२४०।३-२।२४१।६)। मिलन देख देवताओं को भय। वृहस्पति के समझाने पर चेत (२।२४१।७-८)। राम-शत्रुघ्न, भरत-लक्ष्मण, लक्ष्मण-शत्रुघ्न का मिलन। शत्रुघ्नसहित सीता की चरण-धूलि को मस्तक पर धारण करके इनका बार-बार प्रणाम करना। सीता का इन्हें उठाना। सिर पर हाथ फेरकर मन-ही-मन आशीर्वाद देना। स्नेहवश उन्हें देह-सुधि का विस्मरण। उन्हें सब प्रकार से प्रसन्न देख इनका सोच दूर (२।२४१ -२।२४२।६)। किसी का न कुछ कहना, न पूछना। प्रेम-विवश मन की स्वाभाविक गति अवरुद्ध (२।२४२।७)।

इसी समय निषाद से अवध-समाज का आगमन सुन राम का शत्रुघ्न को सीता के पास छोड़कर शीघ्र गमन (२।२४२।८-२।२४३।२।) माता, गुरु, विप्रगण और कुछ गिने-चुने व्यक्तियों को लेकर राम का इनके और लक्ष्मण के साथ अपने आश्रम की ओर आना (२।२४५)। ये शोच-विकल—कैकेयी के ब्याज से यह सब काल की ही कुचाल। राम के अभिषेक का कोई उपाय समझ में न आना। गुरु या माता कौसल्या की आज्ञा होने पर उनका लौटना निश्चित, किन्तु गुरु उनकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं कहेंगे, माता कभी हठ नहीं करेंगी। उनके बाद इनका कुछ प्रभाव, किन्तु ये तो सेवक। इनका हठ करना कुकर्म। 'हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू।।' उस पर विधाता इनके प्रतिकूल। इस तरह सोचते हुए रात्रि व्यतीत। प्रातःकाल प्रभु को प्रणाम करके बैठते ही गुरु का बुलाना। वहाँ सभासदों का एकत्र होना (२।२५२-२।२५३)।

इन्हें और सभासदों को सम्बोधित कर वसिष्ठ का राम को भगवान् कहकर उन्हें लौटाने का उपाय पूछना। सबको मौन देख इनका कथन कि इनसे उपाय पूछना ही इनके दुर्भाग्य का सूचक। तब गुरु का परामर्श — राम-लक्ष्मण की जगह ये और शत्रुघ्न वन जायें, सीतासहित उन दोनों को लौटा दिया जाये। सुनकर ये अनुजसहित हर्षित। इन दोनों को ऐसी अनुभूति जैसे राजा जी गये, राम राजा हो गये। ये जन्मभर वनवास के लिए प्रस्तुत। गुरु से इनका अनुरोध कि वे अपने वचन को सत्य प्रमाणित करें (२।२५४।१-२।२५६)। यह सुनकर, इनका स्नेह देखकर, गुरु का विदेह होना। इनकी महिमा की थाह पाने में, प्रशंसा करने में, वे भी असमर्थ। सबके साथ उनका राम के पास गमन (२।२५७।१-५)।

प्रथम सभा — गुरु वसिष्ठ का राम से कथन — वे ऐसा उपाय बतायें जिससे सबके साथ इनका हित हो। राम का गुरु पर ही निर्णय छोड़ना। गुरु-कथन — स्वयं उनकी बुद्धि इनकी भक्ति के वश में। इनकी रुचि रखकर कुछ करने में ही कल्याण। अतः राम इनकी विनय सुन लें। इन पर गुरु का अनुराग देख राम आनन्दित। उनका इन्हें परम भाग्यशाली कहना। इन्हें धर्म-धुरन्धर और मन-वचन-कर्म से अपना सेवक समझ, गुरु और पितृ-चरणों की शपथ लेकर उनका कथन कि 'भयउ न भुअन भरत सम भाई।' इनके कथनानुसार कार्य करने में ही कल्याण। यह कहकर उनका चुप हो जाना (२।२५७।६-२।२५९।८)।

अपने मन की बात कहने के लिए गुरु का आदेश और राम का रुख पाकर, दोनों को अनुकूल जान, इनके शरीर में पुलक, नेत्रों में प्रेमाश्रु। इनकी विनय—इनका निवेदन तो गुरु द्वारा पहले ही कथित। इनके द्वारा राम-स्वभाव का और बचपन में अपने ऊपर उनकी कृपा का स्मरण। स्नेह-संकोच-वश इनका भी कभी इनके सम्मुख मुँह न खोलना। 'दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन।।' किन्तु विधाता को इनका दुलार सह्य नहीं। उनका माता के ब्याज से इनके और प्रभु के बीच अन्तर डालना। लेकिन माता को मन्द और उनसे उत्पन्न स्वयं को साधु कहना भी दुराचरण। वस्तुतः दोष किसी का नहीं। सब इन्हीं का दुर्भाग्य। ये पापी। भरोसा यही कि समर्थ वसिष्ठ इनके गुरु और सियराम इनके स्वामी। अतः परिणाम अच्छा ही होगा। इनके द्वारा अपने प्रेम के सत्य होने का शपथ-ग्रहण (२।२५९-२।२६१)। इन्हें ग्लानि — सिय-राम-लक्ष्मण के विरह में भी इनके जीव का देह-त्याग न करना! उनके असह्य कष्ट सुनकर भी इनके हृदय का टूक-टूक न होना! ये अनर्थमूल। इनकी माता का

राम-सिय-लक्ष्मण को वैरी समझना, इसीलिए विधि द्वारा ये दुःसह दुःख सहने को बाध्य (२।२६२।१ -२।२६२)।

इनकी आर्त्ति-प्रीति-विनय-नीति-पूर्ण वाणी सुन सारी सभा शोकमग्न। गुरु द्वारा इनका प्रबोधन। राम का समझाना — जीव की गति को ईश्वराधीन समझ ये ग्लानि त्याग दें। त्रिकाल और त्रिलोक में इनका-सा पुण्यश्लोक नहीं। इन पर कुटिलता का आरोप या सन्देह करनेवाले के लोक-परलोक का नाश निश्चित। कैकेयी को दोष देना भी जड़ता का सूचक। 'मिटिहहि पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार। लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार।। कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी।।' ये मन में कुतर्क न करें, क्योंकि इन्हें वे अच्छी तरह जानते हैं। वे असमंजस में — उनके सामने एक ओर पिता की वचन-रक्षा का धर्म, दूसरी ओर उससे भी अधिक इनके स्नेह की रक्षा की चिन्ता। उस पर गुरु की आज्ञा। अतः संकोच त्यागकर प्रसन्न मन से ये जो कहें, वही करने को वे प्रस्तुत (२।२६३।१-२।२६४)।

आकाश में चिन्तित इन्द्रादि देवताओं का परस्पर कथन — राम इनके गुण-शील के वशीभूत, अतः सब इन्हीं का स्मरण करें। अब उनका कार्य इन्हीं के हाथ में। इन्हें राम की परछाई कहकर देवगुरु द्वारा इनका प्रभाव-कथन। उनके मन में इनकी भक्ति, अतः वे शोच-मुक्त हों (२।२६५।६-२।२६६।५)।

अपने ऊपर सब दायित्व समझ इनका अनेक प्रकार से विचार करना। अन्त में निष्कर्ष कि निर्णय राम पर ही छोड़कर उनकी आज्ञा का पालन करने में ही कल्याण। इनका करबद्ध निवेदन — गुरु प्रसन्न और प्रभु इनके अनुकूल। अब ये क्या कहें या कहलायें? अब तक ये मिथ्या कल्पना के शूल से पीड़ित। इनका अभाग्य, माता की कुटिलता, विधि की प्रतिकूलता और काल की विषमता, सबका मिलाकर इनका सर्वनाश करना। किन्तु प्रणतपाल प्रभु द्वारा इनकी रक्षा। इनके द्वारा राम-स्वभाव का वर्णन। सेवक के कर्तव्य का कथन। प्रभु से वही करने की विनय जिससे इनके कारण उनके चित्त में क्षोभ न हो। उनके लौटने में सबका स्वार्थ, किन्तु उनके आदेश-पालन में स्वार्थ और परमार्थ दोनों (२।२६६।६-२।२६८।६)। इनकी विनती — उनके राजतिलक की सामग्री भी इनके साथ। वे चाहें, तो तिलक स्वीकार करें। नहीं तो अपनी जगह इन्हें और शत्रुघ्न को वन भेज दें, या लक्ष्मण और शत्रुघ्न को लौटाकर इन्हें अपने साथ ले चलें, अथवा सीतासहित स्वयं लौट जायें और ये तीनों भाई वन-गमन करें। दैन्य-निवेदन करके इनकी विनय कि प्रभु संकोच त्यागकर प्रसन्न मन से जिसे जो आदेश देंगे, उसी का पालन करने में सबका हित (२।२६८।७-२।२६९)। सुनकर देवताओं को हर्ष, अवधवासियों को असमंजस, राम मौन (२।२७०।१-३)। (प्रथम सभा समाप्त।)

इसी समय जनक के दूतों का आकर वसिष्ठ से निवेदन — इनकी राज्य-प्राप्ति और राम के वनवास का समाचार सुन जनक को दुःख। इनके सद्भाव-दुर्भाव का पता लगाने के लिए उनका दूतों को अवध भेजना। इनके भाव समझ, इनके चित्रकूट-यात्रा करने पर दूतों का मिथिलापुरी लौटकर सब संवाद कहना। सुनकर जनकादि द्वारा इनकी बड़ाई (२।२७१।४, २।२७१।७-२।२७२।३)। (समाजसहित जनक के चित्रकूट आ जाने पर) सुनयना के समक्ष कौसल्या द्वारा 'भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई' की सराहना। कथन — उनसे दशरथ का बार-बार कहना कि ये कुलदीपक। उन्हें इनका सोच, क्योंकि इनका रामप्रेम अत्यन्त गूढ़। इनके अवध में रहने में भलाई नहीं। उनका सुनयना से आग्रह कि वे जनक से अनुरोध करें कि यदि राजा उचित समझें, तो लक्ष्मण की जगह इन्हें वन जाने दें (२।२८२, २।२८३।३-५, २।२८४।१-४)।

सुनयना से इनके व्यवहार के सम्बन्ध में सुनकर जनक द्वारा सात्विक भाव से इनकी सराहना — इनकी कथा 'भव बंध बिमोचनि'। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविद्या में गति रखनेवाली उनकी बुद्धि इनकी महिमा का अनुमान तक करने में असमर्थ। विधि-हर-शारदा-गणेश-शेष आदि के लिए भी इनका चरित, कीर्त्ति, करनी, धर्म, शील, गुण, विमल ऐश्वर्य सुनने में सुखद। 'निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।' इनकी अमित महिमा और सबके लिए अगम, केवल राम को उसका ज्ञान, किन्तु उसका वर्णन करना उनके लिए भी सम्भव नहीं (२।२८७-२।२८९।२)। सुनयना की रुचि देख जनक द्वारा उनकी इस बात का समर्थन कि लक्ष्मण की जगह इनका वन जाना सबको रुचिकर और इसमें सबका हित। किन्तु इनकी और राम की प्रीति-प्रतीति बौद्धिक तर्कों से परे। राम समता की सीमा, तो ये स्नेह और ममता की। (अर्थात् राम के साथ ये जायें या लक्ष्मण, उनके लिए दोनों बराबर, किन्तु ये राम को कभी संकोच में न डालेंगे।) इनके मन में स्वार्थ या परमार्थ की स्वप्न में भी कामना नहीं।

इनके लिए भक्ति, रामचरणानुराग ही साधन और सिद्धि। ये भूलकर भी, मानसिक रूप से भी रामाज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। इस तरह दम्पति द्वारा सारी रात सप्रेम इनका और राम का गुणानुवाद (२।२८९।३-२।२९०।१)।

(राम-वसिष्ठ और वसिष्ठ-जनक के संवाद के बाद) वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के साथ इनके निकट आकर जनक का आग्रह कि ये राम-स्वभाव समझकर कोई निर्णय लें। इनकी विनय—उचित तो यह कि इन्हें आज्ञाकारी शिशु सेवक समझकर वे आदेश दें। ऐसे समाज में इनका कुछ कहना अनुचित। ये सेवक, और सेवाधर्म कठिन। स्वामि-धर्म से स्वार्थ का विरोध। प्रेम को ज्ञान नहीं। अतः वे राम के रुख, व्रत, धर्म की रक्षा करते हुए और इन्हें पराधीन जानकर, सबका प्रेम समझकर, सबकी सम्मति से वही करें जो सबके लिए हितकर हो (२।२९२।६-२।२९३)। इनकी यह वाणी सुगम और अगम, कोमल और कठोर, सुन्दर, अर्थगर्भित, अद्भुत। सबके द्वारा इनकी प्रशंसा। सबके साथ जनक का राम के निकट गमन (२।२९४।१-४)।

इन्हें रामभक्ति-रसलीन और वसिष्ठ-जनक को स्नेहमग्न देख देवताओं का सरस्वती से अनुरोध कि वे माया करके इनकी मति फेर दें। सरस्वती का कथन कि विधि-हरि-हर की प्रबल माया भी इनकी बुद्धि के निकट पहुँचने में असमर्थ। इनके हृदय में राम-जानकी का निवास। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति नहीं। उच्चाटन फैलाकर इन्द्र का सोच — काम का बनना-बिगड़ना इन्हीं के हाथ में (२।२९४।६-२।२९६।१)।

दूसरी सभा — राम द्वारा सम्मानित होने के बाद वसिष्ठ का जनक-भरत-संवाद सुनाना, राम पर निर्णय छोड़ना। राम का शपथपूर्वक उनके और जनक के आदेश-पालन का कथन। संकुचित होकर उन दोनों का, सारी सभा का इनकी ओर देखना। कुसमय समझ धैर्य धारण कर इनका अपने बढ़ते हुए स्नेह को सँभालना। इनके विवेक से सबका शोक नष्ट, बुद्धि की जड़ता दूर (२।२९६।२-२।२९७।४)। राम, जनक, गुरु और साधु-समाज से इनकी क्षमा-प्रार्थना। हृदय में शारदा का स्मरण। भरत-भारती का रूपक। विवेक-नेत्रों से सबको स्नेह-शिथिल देख, सियराम का स्मरण कर, राम के अनेक विशेषण कहकर, इनका निवेदन — उत्तमता में राम के समान राम ही, अधमता में इनके समान ये ही। जगत् में रामाज्ञा अनुल्लंघ्य, किन्तु इनका मोहवश प्रभु और पिता के वचनों की उपेक्षा करके समाजसहित यहाँ आगमन। यह इनकी धृष्टता, किन्तु प्रभु का इसे स्नेह-सेवा मानना, अपनी कृपा-भलाई से इनका भला करना। इस तरह इनके दोषों का भूषण बनना, इनके सुयश का चतुर्दिक् फैलना (२।२९७।५-२।२९८)। इनके द्वारा राम-गुण-वर्णन। इनके अक्षम्य अपराधों को न देख उनका इन पर अनुग्रह करना, इनका दुलार रखना। वे इनकी विनय अथवा अविनयपूर्ण वाणी को आर्तिजन्य जानकर इन्हें क्षमा करें। अब आज्ञा देकर इनकी बिगड़ी सुधार दें। यह कहकर ये अतिशय प्रेम के वशीभूत। शरीर में पुलक, नेत्रों में अश्रु। अकुलाकर इनका प्रभु के चरण पकड़ना (२।२९९।१-२।३०१।६)। वाणी से इनका सम्मान कर, हाथ पकड़कर प्रभु का इन्हें निकट बैठाना। इनकी विनय सुन, स्वभाव देख, वे समाजसहित स्नेह-शिथिल। सबका मन-ही-मन इनके भ्रातृत्व और इनकी भक्ति की महिमा की सराहना करना। मलिनमन देवताओं द्वारा इनकी प्रशंसा और पुष्पवर्षा (२।३०१।७-२।३०१।छं०)। इनकी भक्ति के वशीभूत हो सारी सभा का एकटक राम की ओर देखना (२।३०३।२-३)।

इनकी प्रीति-नीति-विनय-बड़ाई सुनने में सुखद, किन्तु उनका वर्णन कठिन। इनकी भक्ति का लवलेश देख मुनिगण और मिथिलेश भी प्रेम-निमग्न। इनकी महिमा, यश और स्वभाव को कवि का अवर्णनीय बताना। इनके सद्भाव के कथन-श्रवण से सिय-राम-चरणों में प्रीति का उदय। इनका स्मरण करने से राम-प्रेम सुलभ (२।३०३।४ २।३०४।३)।

राम का कथन — ये लोक-वेद-विद्, प्रेम-प्रवीण, धर्म-धुरीण। मन-वचन-कर्म से निर्मल। इनके समान ये ही। कुसमय में और बड़ों के सामने वे इनका गुणानुवाद कैसे करें! (तात्पर्य कि ये स्वयं को अपराधी न समझें। इस तरह इनकी अधम, धृष्ट, स्वामिद्रोही होने की भावना का निवारण।) ये सूर्यवंश की रीति, पिता की कीर्त्ति, उसकी रक्षा में उनकी प्रीति से परिचित। समय, समाज, गुरुजनों के संकोच और राजकाज से अवगत। अपने और राम के परम हित और धर्म का इन्हें ज्ञान। उन्हें सब प्रकार से इनका भरोसा, फिर भी इनसे उनका कथन केवल अवसरोचित कर्तव्य के आग्रह से (२।३०४।८-२।३०५।४)। पिता के न रहने पर केवल कुलगुरु की कृपा ने सबको सँभाला। आगे भी राजकार्य, प्रतिष्ठा आदि का पालन गुरु के प्रभाव से ही होता रहेगा। समाजसहित इनकी और

सिय-लक्ष्मणसहित राम की रक्षा गुरु-प्रसाद से होगी। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही धर्म की अवस्थिति। अतः ये स्वयं आज्ञा-पालन करके उनसे भी आज्ञा-पालन करायें और सत्य-धर्म की रक्षा करें। कुसमय में सुबन्धु ही सहायक, अतः ये उनकी विपत्ति बाँट लें और संकट झेलकर अवधिभर प्रजा का पालन करें। उनके द्वारा सेवक-स्वामी की परस्परोपकारक प्रीति-रीति का कथन (२।३०५।५-२।३०६)। स्वामी को अनुकूल जानकर इन्हें परम सन्तोष। इनका दोष-दुःख दूर। इनका प्रेमसिक्त निवेदन — ये कृतकृत्य। इन्हें प्रभु के साथ वन जाने का-सा सुख प्राप्त। अब वे ऐसा अवलम्ब दें, (जिसे उनके चरणों का प्रतीक मानकर,) जिसकी सेवा करते हुए ये अवधि व्यतीत कर सकें। उनके अभिषेक के लिए गुरु-आदेश से लाये गये तीर्थों के जल के सम्बन्ध में वे आज्ञा दें। उनकी अनुमति हो, तो ये चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, प्रकृति और विशेषतः प्रभु-चरण-चिह्नांकित भूमि के दर्शन कर आयें। राम का कथन — ये अत्रि ऋषि की आज्ञा लेकर वन में निर्भय विचरण करें। उनके आदेशानुसार तीर्थ-जल स्थापित करें। इनका अत्रि के चरणों में नमन (२।३०७।१-२।३०८।८)। [अवलम्ब के सम्बन्ध में यहाँ राम का कुछ न कहना। इन्हें उसकी प्राप्ति तीसरी सभा में।] 'सकल सुमंगल मूल' भरत-राम-संवाद सुनकर स्वार्थी देवताओं का इन्हें और राम को धन्य कहना, कल्पतरु के फूल बरसाना। जनक द्वारा इनके और राम के गुणग्राम और स्नेह की प्रशंसा। दोनों समाज में हर्ष और विषाद (२।३०८-२।३०९।८)। (दूसरी सभा समाप्त।)

अत्रि का इनसे कथन — पर्वत के समीप ही कुआँ। वहीं ये तीर्थ-जल को रखें। उनकी आज्ञा से तीर्थ-जल के पात्रों को रवाना करके इनका शत्रुघ्नसहित मुनि और साधुओं के साथ जाकर जल को पुण्य स्थल (कूप) में स्थापित करना। प्रमुदित मुनि द्वारा उस अनादि सिद्धस्थल का 'भरतकूप' नामकरण और महिमा-कथन (२।३०९-२।३१०)।

दूसरे दिन प्रातःकाल राम, गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर इनका शत्रुघ्न और समाज के साथ रामवन की यात्रा के लिए जाना। पृथ्वी का सकुचाकर कोमल होना। इन्हें रामप्रिय जानकर सारी प्रकृति का अनुकूल होकर इनकी सेवा करना। इनका नेम-प्रेम देखकर मुनि को संकोच। प्रकृति के विभिन्न रूपों की अलौकिक शोभा देख इनकी जिज्ञासा और ऋषिराज का उनके सम्बन्ध में विस्तार से कथन। प्रसन्न मन से इनका कहीं स्नान, कहीं प्रणाम, कहीं दर्शन करना। कहीं बैठकर सिय-राम-लक्ष्मण का स्मरण करना। इनका स्वभाव, प्रेम, सेवा देख मुदित वन-देवताओं का आशीर्वाद देना। अढ़ाई पहर दिन बीतने पर लौटकर प्रभु-चरणों के दर्शन करना। फिर हरि-हर-सुयश कहते-सुनते सन्ध्यागम। इस प्रकार पाँच दिनों में सब तीर्थ-स्थलों के दर्शन (२।३११।१-२।३१२)।

तीसरी सभा — (छठे दिन) प्रातःकाल समाज का एकत्र होना। आज प्रस्थान का उत्तम दिन, यह जानकर भी प्रभु को कहने में संकोच। प्रभु का रुख देखकर इनका खड़े होना। सबको दण्डवत् करके विनीत निवेदन — प्रभु द्वारा इनकी रुचि की रक्षा। अब वे आज्ञा दें, ये अवधिभर अवध का सेवन करेंगे। वे अन्तर्यामी, प्रणतपाल। इन्हें पूरा भरोसा कि वे सबका पालन करेंगे। अपनी आर्त्ति और प्रभु की कृपा के युगल कारणों से ये धृष्ट। प्रभु इनका यह दोष दूर करें। इन्हें अवधिभर के लिए शिक्षा दें, जिससे अवधि बीतने पर ये पुनः उनके चरणों के दर्शन करें (२।३१३।१ - २।३१४।८)। इनके निश्छल दीन वचन सुन प्रभु की शिक्षा — स्वयं उनकी, इनकी, परिवार-घर-वन सबकी चिन्ता गुरु और राजा जनक को। उनके और इनके लिए क्लेश का कोई कारण नहीं। उनका और इनका परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म, परमार्थ इसी में कि दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। देश-कोशादि की सार-सँभाल का भार गुरु-चरण-रज पर। ये केवल गुरु-माता-सचिवों की सीख मानकर पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन करते रहें। उनका राजधर्म की सूत्रात्मक शिक्षा देना (२।३१४ - २।३१६।१)।

प्रभु के अनेक प्रकार से समझाने पर भी बिना अवलम्ब के इनके मन को सन्तोष या शान्ति नहीं। इनके शील-स्नेह की रक्षा के लिए, गुरु-सचिव-समाज का संकोच त्याग, प्रभु का कृपा करके इन्हें पादुकाएँ देना। इनका उन्हें आदरपूर्वक मस्तक पर धारण करना (२।३१६।२-४)। [राम का वन-गमन नंगे पाँव — 'बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ।' २।२६२।५। उनके पास खड़ाऊँ नहीं थी। अ० रा० २।९।४९-५१ एवं वा० रा० का साक्ष्य कि पादुकाएँ ये अपने साथ लाये थे। वा० रा० २।११२।२१-२२ में दो सुवर्ण-भूषित पादुकाएँ अर्पित कर इनका राम से अनुरोध कि वे उन पर चरण रखें। वे सम्पूर्ण जगत् का योग-क्षेम वहन करेंगी। तब राम का उन पर चरण रखकर उन्हें भरत को सौंपना।] प्रभु की पादुकाएँ इनके स्नेहरूपी रत्न की रक्षा के लिए सम्पुटरूप। (अवधिभर

उनमें इनका राम-स्नेह स्थिर रहेगा।) उन्हें पाकर इन्हें ऐसा सुख जैसा राम-जानकी के साथ रहने से होता (२।३१६।५-८)।

इनके विदा माँगने पर प्रभु का प्रेम-विह्वल होकर धीरज छोड़ इन्हें भुजाओं में भरकर इनसे भेंटना। उनके नेत्रों से अश्रुप्रवाह। दोनों की अनुपम प्रीति देख निर्लिप्त जनक-वसिष्ठादि विराग-विवेक-सहित उसमें निमग्न। इनके वियोग-वर्णन में कवि की वाणी संकुचित (२।३१६, २।३१७।४-२।३१८।३)। राम का इन्हें समझाना, शत्रुघ्न को हृदय से लगाना। इनका अनुजसहित प्रभु के चरणों में प्रणाम करना। मुनि-तापस-वनदेवों का सम्मान और विनती करना। लक्ष्मण को भेंट-प्रणाम करके, सीता की पगधूलि को मस्तक पर चढ़ाकर उनका आशीर्वाद पाना (२।३१८।४-२।३१८)। सिय-राम-लक्ष्मण को हृदय में धारण कर इनके और जनक के समाज का प्रस्थान (२।३२०।६-७)।

उधर राम द्वारा सीता और लक्ष्मण से इनके स्नेह-स्वभाव-सुवाणी का वर्णन, इधर ये समाजसहित राम के विरह से विह्वल। (लौटते समय सब वाहनारूढ़।) चौथे दिन अवध में प्रवेश (२।३२१।४, २।३२२।१-५)। राजकाज की व्यवस्था कर, गुरु-सचिव सहित इन्हें सौंपकर, जनक का प्रस्थान (२।३२२।६-७)।

इनका सचिवों और सुसेवकों को समझाकर कार्य में नियुक्त करना। शत्रुघ्न को शिक्षा देकर माताओं की सेवा का भार सौंपना। ब्राह्मणों की विनती करके, परिजन-पुरजन-प्रजा का सन्तोष कर; उन्हें सुखपूर्वक बसाना (२।३२३।१-५)। अनुजसहित गुरु के पास जाकर इनकी विनय — उनकी आज्ञा हो, तो ये (राम की तरह मुनि-व्रत-वेष-आहार स्वीकार करके) नियमपूर्वक रहें। गुरु का कथन — ये जो कुछ समझेंगे, कहेंगे, करेंगे, वही जगत् में धर्म का सार होगा। (अर्थात् ये साक्षात्कृतधर्मा। वि०।) इस कथन के रूप में गुरु की शिक्षा और आशीर्वाद पाकर, ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त्त निकलवाकर, इनका राम की पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना (२।३२३।६ - २।३२३)। [इस कार्य में इनका गुरु को सम्मिलत न करना, यह सोचकर कि वे स्वयं राम को सिंहासनारूढ़ करेंगे। मा० पी० २।३२३ नोट ३ (घ)।] कौसल्या और गुरु के चरणों में नमन कर, प्रभु की पादुकाओं की आज्ञा पाकर, इनका नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर वास (२।३२४।१-२)।

इनके मस्तक पर जटाजूट, शरीर पर वल्कल-वसन। धरती खोदकर कुश की साथरी बिछाना। [वि० २।३२४।३ व्या० के अनुसार छिन्नमूल होने से कुश अशुद्ध। अतः इनका पृथ्वी खोदकर कुश निकालना।] इनकी देह दिन-दिन दुर्बल, किन्तु तेज-बल-मुखछवि पूर्ववत्। रामप्रेम का प्रण नित्य नवीन और पुष्ट। धर्म के दल का बढ़ना। इनके हृदय और निर्मल आकाश के सांगरूपक में चौदह वर्षा की अवधि पूर्णिमा की रात्रि, प्रभु-प्रेम नित्य शोभित निश्चल निष्कलंक चन्द्रमा, प्रभु के प्रति अटल विश्वास ध्रुवतारा, शम-दम-नियम आदि नक्षत्र, प्रभु की स्मृति आकाश में फैली नक्षत्र-वीथी (२।३२५।१-६)। [कुल सत्ताइस नक्षत्रों की नौ वीथियाँ, एक वीथी में तीन नक्षत्र। वि०।]

इनकी 'रहनि', समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, गुण, विमल विभूति के वर्णन में शेष-गणेश-शारदा की भी गति नहीं (२।३२५।७-८)। प्रेमाप्लुत होकर इनके द्वारा नित्य प्रभु की पादुकाओं का पूजन। उनसे आज्ञा माँग-माँगकर राजकार्य करना (२।३२५)। [यहाँ स्पष्ट कि प्रभु से प्राप्त पादुकाओं की स्थापना नन्दिग्राम में। यह वा० रा० एवं अ० रा० के अनुरूप। अ० रा० में सबको अयोध्या में बसाकर ये 'नन्दिग्रामं ययौ स्वयम्। तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः। पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः।।' अ० रा० २।६।७१-७२। वा० रा० २।११५।२५ में इनका पादुकाओं पर छत्र लगाना, व्यजन डुलाना। मा० पी० २।३२३ में गौड़जी के मतानुसार अयोध्या में जो पादुकाएँ प्रतिष्ठित, वे प्रभु की महल में रखी हुई पादुकाएँ।] इनके शरीर में पुलक, हृदय में सिय-राम, जिह्वा से नाम-जप, नेत्रों में प्रेमाश्रु। सिय-राम-लक्ष्मण का वन में वास, इनका नन्दिग्राम में रहकर तप से तन को कसना। इनकी दशा देख साधु-मुनीश्वर भी लज्जित (२।३२६।१-४)।

इनके चरित का माहात्म्य — वह मोद-मंगलकारी, कलि-कलुष-क्लेश-हर्ता, महामोह-पाप-सन्ताप-नाशक, भवभार-भंजक, भक्त-आनन्ददाता, राम-प्रेमामृतरूप। 'सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को। मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को।।' इनके सुयश-श्रवण से दुःख-दाह-दारिद्रय आदि दोषों का नाश, कलिकाल में भी शठों की राम-शरणागत होने की प्रवृत्ति। 'भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं। सीय राम

पद पेमु अवसि होइ भवरस बिरति।।' (२।३२६।५-२।३२६)।

रात्रि के समय अवधपुरी के आकाश में पर्वतसहित उड़ते हुए हनुमान् को विशाल निशिचर समझ इनका बिना फल का बाण चलाना। राम-नामोच्चार करते हुए हनुमान् का मूर्च्छित हो गिरना। प्रभु का नाम सुनते ही इनका दौड़कर उनके निकट जाना। उन्हें हृदय से लगाना। अनेक प्रकार से जगाने की चेष्टा करना। उनके न जागने पर स्वयं को भागवतापराधी समझ दुखी होना, विधि को दोष देना। उनको जीवनदान देने के लिए शपथ लेना – यदि मन-बचन-कर्म से इनका राम-चरणों में निष्कपट प्रेम, यदि राम इनके अनुकूल, तो कपि श्रम-शूल-रहित हो जायें। सुनते ही हनुमान् का उठ बैठना। पुलकित हो इनका उन्हें हृदय से लगाना। राम का स्मरण करके ये प्रेम-विभोर (६।५८।८-६।५९)। उनसे सिय-राम-लक्ष्मण का कुशल-समाचार पूछना। (सीताहरण से लक्ष्मण को शक्ति लगने तक का) सब चरित सुनकर इनका पछताना – ये प्रभु के किसी काम न आये। धीरज धरकर हनुमान् से इनका कथन – प्रातःकाल होते ही काम बिगड़ जायेगा। वे इनके बाण पर चढ़ें, ये उन्हें पहुँचा देंगे। उनके मन में अभिमान किन्तु राम-प्रभाव का विचार कर, उनका करबद्ध निवेदन – इनके प्रताप को हृदय में रखकर वे शीघ्र चले जायेंगे। इनकी आज्ञा पाकर, चरण-वन्दना कर, उनका प्रस्थान। मार्ग में मन-ही-मन इनके बाहुबल, शीलगुण, प्रभुपद-प्रीति की प्रशंसा (६।६०।१-६।६० ख)।

चौदह वर्षों की अवधि का एक दिन शेष। इनके दक्षिणांग का फड़कना। शकुन समझ ये हर्षित। फिर यह सोचकर दुखी कि प्रभु अब तक लौटे क्यों नहीं। इन्हें कुटिल समझकर कहीं भुला तो नहीं दिया! इनकी करनी ही ऐसी! किन्तु प्रभु तो सेवक के अवगुणों पर ध्यान नहीं देते। यह सोचकर, शुभ शकुन का विचार कर इन्हें भरोसा कि प्रभु मिलेंगे अवश्य। लेकिन इनके प्रेमी चित्त में पुनः शंका। ये विरह-मग्न। इसी समय प्रभु-प्रेषित हनुमान् का विप्ररूप धर आगमन। इन्हें मुनिवेश में कुशासन पर बैठे नयनाश्रु बहाते, राम-नाम जपते देख वे पुलकित। उनसे रावण-विजय करके सीता के साथ प्रभु के आने का समाचार सुनकर इनके दुख दूर। उनका परिचय पाकर प्रेमसहित उनसे मिलना, जैसे राम मिल गये हों। प्रभु-आगमन का संवाद सुनाने के कारण हनुमान् के प्रति अतिशय कृतज्ञता व्यक्त करना। उत्सुकतापूर्वक प्रभु का सम्पूर्ण चरित सुनना (६।१२१।२, ७।१।दोहा - ७।२।१५)। इनकी उत्कट जिज्ञासा – प्रभु कभी निज दास की भाँति इनका स्मरण करते हैं? सुनकर हनुमान् का इनके चरणों में पड़कर कथन – 'राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।' इनके चरणों में नमन कर प्रभु के निकट जाकर इनकी कुशल कहना (७।२।१६ - ७।२ ख)।

इनका अयोध्या आना। पहले गुरु से, फिर महल में प्रभु के आगमन का समाचार कहना। माताओं को समझाना (७।३।१-३)। गुरु, शत्रुघ्न आदि के साथ प्रभु के स्वागत के लिए चलना। प्रभु के पुष्पक से उतरने पर (उनके द्वारा गुरु, विप्रादि का सम्मान होने के बाद) इनका उनके चरणों में गिरना। प्रभु का इन्हें बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगाना। दोनों के मिलन की शोभा ऐसी जैसे शरीरधारी प्रेम और शृंगार हों। राम के कुशल-प्रश्न करने पर इनके मुँह से वचन न निकलना। उस समय इन्हें जो सुखानुभूति, वह वाणी और मन से परे। (स्वयं को सँभालकर) इनका कथन – प्रभु ने इन्हें आर्त्त समझकर दर्शन दिये, विरह-सागर से उबार लिया, अतः अब सब कुशल (७।३ क, ७।५।१, ७।५।६ - ७।५।छं० २)। शत्रुघ्न से राम के मिलने के बाद इनका लक्ष्मण से मिलना। शत्रुघ्न से लक्ष्मण के मिलने के बाद इनका अनुजसहित सीता के चरणों में नमन (७।५-७।६।२)।

विभीषण, सुग्रीवादि द्वारा इनके स्नेह-शील-व्रत-नेम का सादर वर्णन (७।८।३)। प्रभु का अपने हाथों से इनकी जटाएँ सुलझाना। उनका तीनों भाइयों को स्नान कराना। 'भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई।।' (७।११।४-६)। प्रभु के राज्याभिषेक के समय ये छत्र लिये (पीछे की ओर) विराजमान (७।१२।छं० १)।

राम-सखाओं की बिदाई के समय इनका अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीव को वस्त्र पहनाना (७।१७।६)। लक्ष्मण-शत्रुघ्न-सहित सबको विदा कर लौटना (७।१६।१,६)। अन्य भाइयों के साथ इनके द्वारा सदा अनुकूल रहकर प्रभु की सेवा, उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा। प्रभु की भी इन सब पर अत्यधिक प्रीति। सब भाइयों के दो-दो पुत्र (७।२५।१-३, ८; ७।२६।३)। [इनके पुत्रों के नाम तक्ष और पुष्कल। वा० रा० ७।१००।१६, भा० ६।११।१२।] अपराह्न में शत्रुघ्नसहित हनुमान् के साथ उपवन में जाकर इनका पवनसुत से राम-गुण-गाथाएँ पूछना। ये प्रभु-कथा-रसिक। बार-बार सुनकर भी तृप्ति नहीं (७।२६।४-६)।

एक बार इनके तथा अन्य भ्राताओं और हनुमान् के साथ प्रभु का उपवन देखने जाना। वहाँ सनकादि के आने पर इन तीनों का भी दण्डवत् करना (७।३२।१-२, ७।३२, ७।३३।१)। मुनियों के चले जाने पर प्रभु-मुख से श्रम-नाशक वाणी सुनने की इन तीनों की कामना। पूछने में संकोच, अतः हनुमान् की ओर देखना। हनुमान् का प्रभु से निवेदन कि ये कुछ पूछने को उत्सुक। इस पर प्रभु-कथन – 'भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।' यह सुन प्रभु के चरण पकड़ इनकी विनय – उनकी कृपा से इनके मन में किसी प्रकार का शोक-मोह-सन्देह नहीं। वे सन्तों के लक्षण और सन्त-असन्त के भेद को अलग-अलग समझाकर कहें (७।३६।१-७।३७।५)। प्रभु द्वारा सन्त-लक्षण और असन्त-स्वभाव-कथन (७।३७।६-७।४१)। सुनकर ये तीनों भाई हर्षित। हृदय में प्रेम न समाना। बार-बार विनय करना (७।४२।१-२)। वसिष्ठ की वर-याचना के बाद तीनों भाइयों और हनुमान् के साथ प्रभु का नगर से बाहर जाना। गज-रथादि-वण्टन के बाद शीतल अमराई में आने पर इनका प्रभु के विश्राम के लिए अपना उत्तरीय बिछाना। सब भाइयों द्वारा उनकी सेवा (७।५०।२-६)।

कैकेयी द्वारा इनका शपथ-ग्रहण (२।४३।२)। वाल्मीकि से राम-कथन – इनके ऐसे भाई का राजा होना उनके पुण्य का फल (२।१२५)। चित्रकूट में इनके स्नेह-शील-सेवा का स्मरण कर राम दुखी (२।१४१।४)। सुमन्त्र का दशरथ से कथन – राम का इनके लिए सन्देश कि ये राजपद पाकर नीति न छोड़ें। प्रजा का पालन और माताओं को समान समझकर उनकी सेवा करें। पिता के मन से राम का सोच निकाल दें। अन्त तक भ्रातृत्व का निर्वाह करें (२।१५२।३-६)। शृंगवेरपुर में अवधवासियों द्वारा इनकी सराहना (२।२०२।५)। तीर्थराज में सबका कथन कि इनका स्नेह-शील शुचि सत्य (२।२०६।१-२)। शत्रुघ्नसहित इन्हें और माताओं को देख अपने दुखी होने का राम-कथन वसिष्ठ से (२।२४८।६)। चित्रकूट में अवधवासियों की कामना कि इन्हें युवराज बनायें (२।२७३।७)। जनकादिसहित ये देवमाया से अप्रभावित (२।३०२)। कवि द्वारा इनकी प्रीति के गान का कथन (३।१।१)। 'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई' – सुग्रीव के प्रति राम की उक्ति (४।२१।७)। प्रभु की पादुकाओं में इनके अनुराग का विभीषण द्वारा स्मरण (५।४२)। रावण-वध के बाद विभीषण से राम-कथन – 'भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात' (६।११६ क)। लौटते समय 'सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो' (६।१२१।छं० २)। 'तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता' – अयोध्या से निषाद को विदा करते समय राम की उक्ति (७।२०।३)। विभीषण, सुग्रीवादि के सम्बन्ध में प्रभु का वसिष्ठ से कथन कि वे 'भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे' (७।८।८)। राम के उदर में भुशुण्डि द्वारा भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में भरतादि भ्राताओं के अलग-अलग रूपों के दर्शन (७।८१।७)। उल्लेख – राम-भरत-मिलन का (१।२९।८), राम द्वारा इनके और शत्रुघ्न के अवध में न होने का (२।७१।२), माताओं आदि के साथ इनके वनवास से दुखी होने का (२।२९०।४), भुशुण्डि-कथित मूलरामायण में (मामा के यहाँ से) इनके आगमन और प्रभु के पास (चित्रकूट) गमन का, पादुका लेकर आने के बाद इनकी रहनि का (७।६५।५-८)। कुछ स्थलों पर इनका लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ उल्लेख, कुछ स्थलों पर चारों भाइयों का एक साथ, यथा, अनुजन्ह (तीनों भाई – १।२०५।६), सुत चारी (१।२०७।५, १।३१५।६), कुअँर सब (१।३२७), तीनिउ भाइ (१।३२८।६), भाइन्ह (तीनों भाई – १।३३४, १।३३६।३), पतिन्ह (तीनों भाई – १।३३६।८), कुअँर बर चारी (१।३४८।७), सुत चारी (१।३४९।३), चारिउ जोरी (१।३४९।७), सुत (चारों – १।३४९), कुँअर (चारों – १।३५४।२), लरिका (चारों - १।३५५), चारिउ भाइ (१।३५८), तीनिउ भाई (७।११।५), चारिउ भाई (७।७६।३) आदि। अन्य उल्लेख (१।२९८।७)।

मूल शब्द – १।१७।३, १।२९।८, १।४१, १।४२।८, १।१९७।७, १।१९८।४, १।२९१।२, १।२९८।१, १।२९८।३, १।२९८।७, १।३०८।७, १।३२५।छं०२, १।३४२।८, २।७।५, २।७।७, २।११।२, २।१५, २।२१।७, २।२९।१, २।३१।८, २।३१, २।३२।३, २।३२, २।३६।१, २।४३।२, २।४८।६, २।४८।८, २।४९, २।५०।२, २।५५, २।१२५, २।१४१।४, २।१५२।३, २।१५७।२, २।१५७।३, २।१५७।५, २।१५७, २।१५८।३, २।१५८।५, २।१५८, २।१५९।४, २।१५९।७, २।१५९, २।१६०, २।१६३।८, २।१६४।१, २।१६४, २।१६६, २।१६७।१, २।१६७।३, २।१६७।४, २।१६८, २।१६९।८, २।१६९, २।१७०।२, २।१७०।६, २।१७०, २।१७१।१, २।१७१।३, २।१७१, २।१७३।६, २।१७६।७, २।१८४।१, २।१८४।४, २।१८४।५, २।१८४, २।१८५।३, २।१८५।४, २।१८६।२, २।१८६, २।१८७।२, २।१८७, २।१८८।२, २।१८९।६, २।१९०।२, २।१९०।४,

२।१९२।५, २।१९२।८, २।१९३।६, २।१९३, २।१९५।३, २।१९५।४, २।१९५।५, २।१९७।१, २।१९७।३, २।१९७।७, २।१९८।१, २।१९८।३, २।१९८।८, २।१९८, २।२०२।५, २।२०२।९, २।२०३।४, २।२०३।८, २।२०३, २।२०४।२, २।२०४।५, २।२०५।६, २।२०५।७, २।२०५, २।२०६।२, २।२०६।८, २।२०७, २।२०८।३, २।२०८।८, २।२०८, २।२१०।३, २।२१०।६, २।२१२।७, २।२१३।१, २।२१३।४, २।२१३।५, २।२१४, २।२१५।१, २।२१६, २।२१७।२, २।२१७।३, २।२१७।६, २।२१७।८, २।२१७, २।२१८।७, २।२१९।८, २।२१९, २।२२०।१, २।२२०।२, २।२२०।४, २।२२०।५, २।२२२।८, २।२२२, २।२२३।१, २।२२३।३, २।२२३, २।२२४।६, २।२२४, २।२२५।२, २।२२५, २।२२६।४, २।२२७।१, २।२२७।४, २।२२८।८, २।२२९।२, २।२२९।३, २।२२९।७, २।२३०।३, २।२३०।७, २।२३१।८, २।२३१, २।२३२।३, २।२३२।४, २।२३२।८, २।२३२, २।२३३।१, २।२३३।२, २।२३४।७, २।२३४।८, २।२३५।२, २।२३५।४, २।२३६, २।२३७।१, २।२३८।१, २।२३८।५, २।२३८।८, २।२३९।२, २।२३९।४, २।२४०।३, २।२४०।७, २।२४०, २।२४१।५, २।२४१।७, २।२४१, २।२४२।३, २।२४५, २।२५३।७, २।२५४।१, २।२५५।४, २।२५७।१, २।२५७।२, २।२५७।४, २।२५७, २।२५८।६, २।२५८।७, २।२५८।८, २।२५८, २।२५९।१, २।२५९।२, २।२५९।४, २।२५९।६, २।२५९।७, २।२५९, २।२६३।१, २।२६३।३, २।२६४।१, २।२६५।६, २।२६५।८, २।२६५, २।२६६।२, २।२६६।३, २।२६६।४, २।२६६।६, २।२७०।१, २।२७१।४, २।२७१।८, २।२७१, २।२७२।१, २।२७२।३, २।२७३।७, २।२८२, २।२८३।३, २।२८३।५, २।२८४।३, २।२८४।४, २।२८७, २।२८८।१, २।२८८।३, २।२८८।५, २।२८८।७, २।२८८, २।२८९।२, २।२८९।३, २।२८९।५, २।२८९।७, २।२८९।८, २।२८९, २।२९०।१, २।२९२।६, २।२९२।७, २।२९२।८, २।२९४।१, २।२९५।२, २।२९५।४, २।२९५।५, २।२९५।७, २।२९६।१, २।२९६।४, २।२९६।४, २।२९६, २।२९७।१, २।२९७।४, २।२९७।८, २।३०१।८, २।३०१।छं०, २।३०१।छं०, २।३०३।२, २।३०३।४, २।३०३, २।३०४।१, २।३०४।२, २।३०४।३, २।३०४।८, २।३०७।३, २।३०८।८, २।३०८, २।३०९।१, २।३०९।२, २।३०९।३, २।३०९।६, २।३०९।८, २।३०९, २।३१०।१, २।३११।२, २।३११, २।३१२, २।३१३।१, २।३१३।३, २।३१३।५, २।३१४।८, २।३१६।३, २।३१६।४, २।३१६।६, २।३१६।८, २।३१७।४, २।३१७, २।३१८।२, २।३१८।५, २।३२०।६, २।३२१।४, २।३२२।१, २।३२२।७, २।३२३।१, २।३२३।३, २।३२४।७, २।३२५।४, २।३२५।७, २।३२६।३, २।३२६।५, २।३२६।छं०, २।३२६, ३।१।१, ४।२१।७, ६।५८, ६।५९।२, ६।६० ख, ६।११६ क, ६।१२१।२, ६।१२१।छं० २, ७।१।दोहा ४, ७।१ क, ७।२।६, ७।२।छं०, ७।२ क, ७।२ ख, ७।३।१, ७।३।३, ७।३ क, ७।५।१, ७।५।६, ७।५।छं० २, ७।५, ७।६।२, ७।८।३, ७।८।८, ७।११।६, ७।१२।छं० १ (भरतादि), ७।१७।६, ७।१९।१, ७।१९।६, ७।२०।३, ७।२६।४, ७।३६।६, ७।३६।७, ७।३६।८, ७।३८।४, ७।५०।२ (भरतादिक), ७।५०।६, ७।६५।५, ७।६५।६, ७।६५।८, ७।८१।७ (भरतादिक)। भरतु — १।२९०।७, १।३११।६, २।१३, २।१८।२, २।१९, २।३०।२, २।३१।६, २।४२।१, २।४८, २।४९।५, २।५५।६, २।७१।२, २।१६०।३, २।१६४।२, २।१६५।४, २।१६७।२, २।१६९।५, २।१७१।४, २।१७६।छं०, २।१७६, २।१८५।२, २।१८६।८, २।१८९।३, २।१८९।८, २।१९२।६, २।१९४।१, २।१९७, २।२१०।८, २।२१३, २।२१५, २।२१७।५, २।२२७।५, २।२२८।२, २।२३२।६, २।२३३।४, २।२३३।६, २।२३८, २।२४८।६, २।२५२, २।२५९।७, २।२५७।५, २।२५९।८, २।२६६, २।२७१, २।२८४।२, २।२८८, २।२८९।४, २।२८९।६, २।२९०।४, २।२९३।१, २।२९४।४, २।२९४।७, २।२९७, २।३०२, २।३१२।१, २।३१२।३, २।३१८।४, २।३२४, २।३२६।२, ५।४२, ७।११।४।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द —

(१) सम्बन्धसूचक —

कैकइ सुअन — २।१८९।१। **कैकेई सुअ** — २।१७८।

दसरथ तनय — २।१८९।२।

दसरथ सुअन (राम लक्ष्मण भी) — २।२०८।२।

रघुकुल तिलक (राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी) — १।१८७।५।

रघुबर (राम भी) — २।१। दोहा
राम प्रिय भ्राता — २।२०८।२।
रामबंधु — २।२२३।२, २।२६७।१।
राम लघु भाई — २।१८१।२, २।२१४।२।
राम लघु भ्राता — २।१६४।४।
(२) गुणबोधक —
कृपानिधाना (राम, विष्णु, शिव, लोमश भीं) — ७।२।८।
दयानिधि (राम भी) — २।१६३।८।
धरम धुर धीरा — २।३२४।२।
धरम धुरंधर (दशरथ, राम, स्वायम्भुव मनु, सत्यकेतु भी) — २।२५६।२।
धरम धुरीना (राम भी) — २।३०४।८।
धीर धुरंधर (राम भी) — २।१७६।

भरतकूप — चित्रकूट में शैल-समीप एक कूप।

पहले यह अनादि सिद्धपीठ। काल-प्रभाव से पटकर लुप्त। लोगों के लिए अज्ञात। भरत-सेवकों द्वारा जल के लिए इसका खनन। इसका कूप बनना। रामाभिषेक के लिए लाये गये सब तीर्थों के जल का अत्रि-आदेश से यहाँ स्थापन। अत्रि द्वारा नामकरण 'भरतकूप'। प्रेम-नेम से इसका सेवन करने पर यह मन-कर्म-वचन से प्राणी को निर्मल करने में समर्थ। यह तीर्थ। सबके द्वारा इसका महिमा-कथन। अत्रि का राम को इसका पुण्य प्रभाव सुनाना (२।३०७, २।३०६ - २।३१०)।

मूल शब्द — २।३१०।७।

भरद्वाज — वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षि में एक। भा० ८।१३।५।

[यातुधानी के समक्ष इनके द्वारा अपने नाम की व्याख्या— भरेऽसुतान् भरेऽशिष्यान् भरे देवान् भरे द्विजान्। भरे भार्यां भरे द्वाजं भरद्वाजोऽस्मि शोभने।। महा० अनु० ९३।८८।

विद्वानों के मतानुसार 'भरद्वाज' नाम के कई व्यक्ति। इस बात में मतभेद कि इस नाम के साथ जुड़े अनेक प्रसंगों में किन प्रसंगों का सम्बन्ध किन भरद्वाज से। कुछ विद्वानों की दृष्टि में वृहस्पति और उतथ्य-पत्नी ममता से उत्पन्न 'वितथ' भरद्वाज (भा० ९।२०।३५-३६, वि० पु० ४।१९।१६-१९), वाल्मीकि-शिष्य भरद्वाज (वा० रा० १।२।४-७), द्रोण-जनक भरद्वाज (महा० आदि० १२९।३३-३८) भिन्न-भिन्न व्यक्ति। वि० १।४५।७, १।४७।१-२ आदि की व्या० और मा० पी० १।४७।२ टिप्पणी १ (घ) आदि के अनुसार मानस के भरद्वाज वाल्मीकि-शिष्य।

मा० पी० २।१०६।७-८ नोट २ में ये ही वृहस्पति-पुत्र और द्रोण-पिता। वाल्मीकि द्वारा निषाद के लिए प्रयुक्त शाप-वाक्य के श्लोकरूप होने का इनके द्वारा समर्थन। वा० रा० १।२।१९। तमसा-तट पर वाल्मीकि आश्रम में निवास। वा० रा० १।२।३,४,२०। मानस में इनका प्रसंग रामायण-श्रवण के बहुत बाद का जब प्रयाग-स्थित अपने आश्रम में इनका वास।

इन्द्र से इन्हें वेद-प्राण प्रणव की प्राप्ति। वि० १।३०।१-२ व्या०। तप के प्रभाव से ये त्रिकालज्ञ। वा० रा० २।५४।११]

याज्ञवल्क्य द्वारा इन्हें सुनायी गयी कथा — दोनों के संवाद — को विस्तारपूर्वक कहने का कवि-संकल्प (१।३०।१-२)। [दोनों का संवाद तापनीय श्रुतियों में। वि० १।३०।१-२ व्या०।] ये रामचरित के श्रोताओं की परम्परा में। याज्ञवल्क्य से इनका रामचरित-श्रवण (१।३०।५)। ये और याज्ञवल्क्य समशील, सर्वदर्शी, त्रिकालज्ञ। दोनों के द्वारा हरिलीला का साक्षात्कार (१।३०।६-७)। इनका प्रयाग में वास। राम-चरणों में अनुराग। ये तपस्वी। [वा० रा० में — 'भरद्वाजो महातपाः'। २।९०।४, २।९२।९। 'संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम्'।। २।५४।११। गीता १७।१४-१६ में त्रिविध तप — शारीरिक, वाचिक, मानसिक — का विवेचन।] ये शम-दम-दया-निधान। परमार्थ-पथ में सुजान (१।४४।१-२)। इनका आश्रम अति पावन, परम रमणीय, मुनिवर-मन-भावन। माघ में रवि के मकर राशि में आने पर प्रयाग-स्नान के लिए आये मुनियों-ऋषियों का इनके आश्रम में समाज (जुटाव और सभा)।

उनके द्वारा (१) ब्रह्म और तत्व-विभाग का, (२) धर्म-विधि का एवं (३) ज्ञान-विराग-युक्त भक्ति का निरूपण। मकर-स्नान के बाद सबका प्रस्थान (१।४४।३-१।४५।२)। [सन्त-समाज-प्रयाग के रूपक में (१) सरस्वती-ज्ञानकाण्ड, (२) यमुना — विधिनिषेधमय कर्मकाण्ड, (३) गंगा— रामभक्ति। मानस १।२।७-६। वि० प० २०५ में भक्ति-ज्ञान-वैराग्य की संक्षिप्त व्याख्या।] एक बार सब मुनियों के जाने के बाद इनका याज्ञवल्क्य को विनयपूर्वक रोकना। उनका पूजन-सत्कार (१।४५।३-६)। इनका कथन — मन में संशय। उनसे कहने में लज्जा और भय, पर गुरु से दुराव करने पर ज्ञान नहीं होता। ये राम-नाम-प्रभाव से अवगत। प्रसिद्ध दाशरथि राम के चरित्र से भी परिचित। इनका संशय—शिव के आराध्य राम दाशरथि राम ही, या कोई अन्य? विस्तारपूर्वक कथा कहकर इस भारी भ्रम को दूर करने की इनकी प्रार्थना (१।४५।७-१।४७।१)। याज्ञवल्क्य का मुसकाना (क्योंकि इन्हें अपने मोह और उसके नाश की अचूक ओषधि, रामकथा, का ज्ञान)। उनका कथन — इन्हें राम-प्रभुत्व विदित (क्योंकि वाल्मीकि-शिष्य होने के कारण उनसे पहले ही सुन चुके हैं)। ये मनसा वाचा कर्मणा रामभक्त। इनकी चतुराई से वे परिचित। गूढ़ रामगुण-श्रवण के लिए ही इनका मूढ़ की भाँति प्रश्न करना। सादर राम-कथा-श्रवण की उनकी आज्ञा (१।४७।२-५)। इन्हें राम-कथा-माहात्म्य समझाना। इन्हीं की तरह भवानी को भी संशय। विषाद-नाश के लिए समय और हेतुसहित उमा-शम्भु-संवाद-श्रवण की इन्हें आज्ञा (१।४७।६-१।४७)। उमा-शम्भु-संवाद (दे० 'सिव', 'भवानी' के अन्तर्गत 'सती', 'पारबती')।

शिव के सुन्दर स-रस (नवरसयुक्त) चरित्र-श्रवण से इन्हें अति सुख। रोमांच। नेत्रों में प्रेमानन्दाश्रु। 'प्रेम बिबस मुख आव न बानी'। इनकी दशा देख याज्ञवल्क्य को हर्ष (१।१०४।१-३)। उनका कथन — इनका जीवन धन्य, क्योंकि शिव इन्हें प्राणप्रिय। यही रामभक्त का लक्षण। पहले शिवचरित कहकर उन्हें इनका गुण और शील, इनका मर्म ज्ञात। ये समस्त विकारों से रहित राम के पवित्र सेवक। आज इनके समागम से उन्हें अतिशय सुख (१।१०४।४-१।१०५।२)। [यह सब सुनकर भी ये निर्वाक्। साधारण स्थिति में विनय-निवेदन करते, किन्तु प्रेम-विमुग्धता के कारण वह भी नहीं। याज्ञवल्क्य द्वारा कई बार इन्हें सम्बोधन, पर अन्त तक, संवाद की इति होने पर भी इनकी वाणी मूक।] इन्हें रामचरित सुनाने की उनकी प्रतिज्ञा (१।१०५।३-७)। पुनः उमा-शम्भु-संवाद (दे० यथास्थान)। इन्हें याज्ञवल्क्य की आज्ञा—रामगुण-गाथा-श्रवण की (१।१२४।ख), राम-जन्म के अपर हेतु-श्रवण की (१।१५२)। कथा के बीच-बीच में सम्बोधन (१।१२७, १।१४१।७, १।१७५)।

राम का इनके प्रयाग-स्थित आश्रम में आना। दण्डवत् करते हुए उनको उठाकर इनका हृदय से लगाना। इन्हें अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति, मानो ब्रह्मानन्द-राशि की प्राप्ति। अपने समस्त पुण्यों के मानो फलरूप राम के दर्शन करते हुए उन्हें आशिष देना। उनका पूजन। भोजन के लिए कन्द-मूल-फल-अंकुर-निवेदन (२।१०६।७-२।१०७।२)। इनका कथन — प्रभु-दर्शन से इनका तप-तीर्थ-त्याग, जप-योग-विराग, सम्पूर्ण शुभ साधन-समुदाय सफल। इनकी सब आशाएँ पूर्ण (२।१०७।३-७)। [अ० रा० में — अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव संगमात्।।… किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम।। यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम्। २।६।३६-४०।] राम-चरण-कमल में सहज स्नेह होने की इनकी वर-याचना। इनका कथन — जब तक मन-कर्म-वचन से छल त्यागकर मनुष्य उनका दास नहीं होता, तब तक किसी उपाय से भी सुख-प्राप्ति सम्भव नहीं (२।१०७।८-२।१०७)। इनकी भाव-भक्ति से राम को संकोच और तृप्ति। उनके द्वारा इनका यश-गान। दोनों की परस्पर विनय। अनिवर्चनीय सुख (२।१०८।१-४)। प्रभु-दर्शन के लिए इनके आश्रम में वटु-तापस-मुनि-सिद्ध-उदासी-आगमन (२।१०८।५-८)। इनके आश्रम में राम का रात्रि-विश्राम। प्रातः चलते समय इनसे मार्ग पूछना। इनका मन में हँसना (राम को ऐश्वर्य गोपन करते देखकर)। कथन — उनके लिए सभी मार्ग सुगम। फिर मार्ग-दर्शक-रूप में अपने चार शिष्यों को प्रभु के साथ करना (२।१०८ - २।१०६।६)। [अ० रा० २।६।४१ एवं वा० रा० २।५४।३५ में भी राम का इनके आश्रम में रात्रि-यापन। वा० रा० २।५४-५५ में इनका चित्रकूट-वास का परामर्श और वहाँ का मार्ग बताना।]

भरत का इनके निकट आकर दण्डवत् प्रणाम करना। इनका स्वयं को धन्य मानना, यह समझना कि इनका सौभाग्य ही भरत के रूप में मूर्त्तिमान्। दौड़कर उन्हें हृदय से लगाना। आशीर्वाद देकर कृतार्थ करना (२।२०६।३-५)। भरत का संकोच देख इनका कथन — इन्हें सब ज्ञात। विधाता की करतूत पर किसी का वश

नहीं। वे ग्लानि न करें। कैकेयी दोषी हों या निर्दोष, भरत लोक और वेद की दृष्टि से निष्कलंक। उनका यश निर्मल। अनर्थमूल भरत-राजपद-प्राप्ति नहीं, राम-वनगमन। भरत का राज्य भोगना भी अनुचित न होता। राम-प्रेम के कारण राज्य-त्याग उनके लिए उचित ही (२।२०६।६-२।२०७)। उनके राम-प्रेम की इनके द्वारा सराहना। राम-लक्ष्मण, सीता और विशेषतः राम की उनके प्रति अतिशय प्रीति का आश्वासन। प्रयाग-स्नान के समय प्रभु के भरत-प्रेम का मर्म इन्हें ज्ञात (२।२०८।१-७)। इनके मत से भरत मूर्त्तिमान् प्रेम। जो उनके लिए, उनकी दृष्टि में, कलंक, वही इनके और अन्य सबके लिए उपदेश (उपदेश यह कि रामभक्ति में बाधक सब कुछ त्याज्य)। सिद्धिदायक गणेश की तरह ही भरत की इस समय की भक्ति। उसका स्मरण कर भक्ति-पथानुगमन करने पर भक्तिरस की सिद्धि (अर्थात् पंचरसात्मिका प्रेमलक्षणा रसरूपा भक्ति की प्राप्ति। मा० पी०।) (२।२०८।८-२।२०८)। (इस प्रसंग की विस्तृत व्या० के लिए दे० 'भरत'।) भरत-यश-चन्द्र का रूपक-कथन (२।२०९।१-६, २।२१०।१)। भरत के पूर्वजों का महिमा-वर्णन (७।२०९।७-७।२०९)। इनकी सत्य वाणी—सब साधनों के फलरूप राम-सिय-लक्ष्मण के इन्हें दर्शन। उस फल के फलस्वरूप भरत-दर्शन (अर्थात् भरत-दर्शन से ज्ञात कि भक्ति कैसे करनी चाहिए। मा० पी०)। प्रयागसहित इनका स्वयं को सौभाग्यशाली मानना। भरत को धन्य कहते हुए प्रेममग्न होना (७।२१०।२-६)। इनके वचन सुन सभासद हर्षित। देवताओं द्वारा साधुवाद और पुष्पवर्षा। आकाश और प्रयाग में गुंजित 'धन्य धन्य' की ध्वनि। प्रेम-पुलकित, गद्गद् भरत का कथन – ये सर्वज्ञ (२।२१०।७-२।२११।३)। राम-सिय-लक्ष्मण के कष्टों की चिन्ता से अन्तर्दाह भरे भरत के वचन सुन इन्हें सुख। राम-चरण-दर्शन से उनका शोच मिटने का इनका आश्वासन। उनका प्रबोध कर आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध। सेवकों, शिष्यों को कन्द-मूल-फल लाने का आदेश। इतने बड़े अतिथि को आमन्त्रित करके उनके सत्कार का इन्हें शोच। सेवा के लिए ऋद्धि-सिद्धि उपस्थित (२।२११।४-२।२१३।८)। इनके आदेश से उनके द्वारा सुरपुर-दुर्लभ ऐश्वर्य-रचना। स्वयं इनके द्वारा तपोबल से विधि-विस्मयकारी वैभव-सृष्टि (२।२१३-२।२१५।८)। [मुनियों का सत्कार शिष्य सेवकों के सुपुर्द, राज-समाज का ऋद्धि-सिद्धि के सुपुर्द और सपरिजन भरत का सत्कार स्वयं इनके द्वारा तपबल-सृष्ट त्रिपाद विभूति के विभव से। वि० २।२१४ व्या०। अ० रा० में इनके स्मरण करने पर कामधेनु द्वारा अलौकिक भोग प्रस्तुत। २।८।५५-५८। वा० रा० में भरत-भाव को दृढ़ करने और उनके यश-विस्तार के लिए पहले इनकी कटूक्ति, फिर प्रसन्नता व्यक्त। २।९०। सत्कार का विराट् आयोजन। उस निमित्त से इनके द्वारा विश्वकर्मा त्वष्टा, इन्द्रसहित यम-वरुण-कुबेर, पृथ्वी और आकाश की नदियाँ, विश्वावसु, हाहा, हूहू आदि देव-गन्धर्व, अप्सरागण, देवांगनाएँ, कुबेर-वन, सोम, सबका आवाहन। २।९१।] आतिथ्य स्वीकार करने की इनकी आज्ञा भरत के लिए खेलवाड़, क्योंकि सम्पत्ति उनके लिए अभोग्य (२।२१५)। इनकी आज्ञा और आशीर्वाद पाकर भरत का प्रस्थान (२।२१६।१-२)। लौटते समय राम का इनके आश्रम में आना। इनके द्वारा नाना प्रकार से प्रभु की पूजा-स्तुति। आशीर्वाद देना। इनकी चरण-वन्दना कर प्रभु का प्रस्थान (६।१२१।३-५) इनसे याज्ञवल्क्य के संवाद की इति (७।१३०।४)।

मूल शब्द – १।३०।१, १।३०।५, १।४४।१, १।४४।६, १।४५।४, १।१०४।१, १।१२४ ख, १।१२७, १।१४१।७, १।१५२, १।१७५, २।१०६।७, २।१०७।४, २।१०८।६, २।२०६।३, ६।१२१।३।

भवानी – भव (शिव) – पत्नी। एक जन्म में सती, दूसरे जन्म में पार्वती।

(१) सती—- सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी, प्रत्येक युग में विद्यमान, पतिव्रता एवं सुशीला होने के कारण यह नाम। ब्र० पु० प्र० ५७।१३।

ब्रह्मपुत्र दक्ष ~ मनुपुत्री प्रसूति > सती ~ शिव।

भा० ४।१।४७, ४८, ६५।

(२) पार्वती – (क) 'पर्व' शब्द तिथिभेद, कल्पभेद तथा अन्यान्य भेदों के अर्थ में, 'ती' ख्याति के अर्थ में। उन पर्व आदि में ये विख्यात, अतः पार्वती। (ख) 'पर्वन्' महोत्सव-विशेष के अर्थ में। उसकी अधिष्ठात्री देवी होने के कारण पार्वती। (ग) पर्वत की पुत्री, पर्वत पर प्रकट, पर्वत की अधिष्ठात्री देवी, अतः पार्वती। ब्र० पु० प्र० ५७।२४-२६।

हिमवान् ~ मेरुसुता मेना > (१) गंगा, (२) उमा ~ शिव > गणेश, स्कन्द।

वा० रा० १।३५।१५-१६, प० पु० सृ० ४५।४४८, ४६।१३९-१४४।

(३) मूल प्रकृति आद्याशक्ति, भगवती देवी का अवतार।

ब्र०पु० गण० १।१२-१५, कृ० ४३।१०४।

[(१) स्वरूप –

दे० भा० में दक्ष की प्रार्थना पर देवी-कथन – उनकी 'गौरी' शक्ति दक्ष के घर जन्म लेगी। ७।३०।१४। देवताओं की प्रार्थना पर देवी-कथन – उनकी 'गौरी' शक्ति हिमालय के यहाँ जन्म ग्रहण करेगी ७।३१।६३। पुनः दुर्गम दैत्य को वेद प्राप्त हो जाने से त्रस्त विप्रों द्वारा देवी की स्तुति पर प्राकट्य पार्वती का। ७।२८।३३। अतः देवी, 'गौरी' शक्ति और पार्वती में तात्विक भेद नहीं। जो देवी, वे ही पार्वती। शि० पु० उ० ४९ एवं दु० स० के तीनों चरित्रों और देव-स्तुतियों से ,इसकी पुष्टि।

दे० भा० में ये आद्याशक्ति, ब्रह्म से अभिन्न (सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।। योऽसौ साऽहमहं याऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्। ३।६।२।)। परमात्मा के साथ इनकी एकरूपता (या शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता।। ३।१७।१५।)। परमात्मा निर्गुण, अतः कभी दृष्टिगोचर नहीं। ये सृष्टिरचना के समय सगुण, समाधि के समय निर्गुण। परमात्मा आदिपुरुष, न कारण, न कार्य। ये सदा कारणरूपा, कभी कार्यरूपा नहीं। कारण होने की स्थिति में सगुण, पुरुषोत्तम के निकट निवास निर्गुणरूप में। अखिल जगत् में ये व्याप्त। सम्पूर्ण देवताओं में विभिन्न नामों से विख्यात। शक्तिरूप धारण कर इनके द्वारा पराक्रम। त्रिदेव इन्हीं के प्रभाव से प्रकट (त्वं (विष्णु) च वेधाः शिवस्वेते देवा मद्गुणसम्भवाः।। ३।६।५३।)। इनके द्वारा तीनों की एकता प्रतिपादित (यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः।। एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः।। तथैव दुहिणो ज्ञेयो नाऽत्र कार्यो विचारणा। ३।६।५५,५६ ब्रह्मा, विष्णु, महेश को इनके द्वारा उनकी शक्तियाँ क्रमशः महासरस्वती, महालक्ष्मी, एवं गौरी नाम से विख्यात महाकाली भार्यारूप में समर्पित और उन्हें सृजन, पालन, संहार के अपने-अपने कार्यों में संलग्न होने का आदेश। दे० भा० ३।६।

वैकुण्ठ से परे, अमृत-से मीठे जल के समुद्र में स्थित मणिद्वीप में, शिवमय पर्यंक पर आसीन इनके श्रीविग्रह का त्रिदेव द्वारा दर्शन – रक्तवर्णी माला इनके गले में शोभित। वस्त्र और चन्दन, नेत्र और अधर भी रक्तवर्णी। हाथों में पाश, अंकुश, अभय और वरमुद्रा, आदि। दे० भा० ३।६।

शि० पु० उ० ४९ में देवताओं का गर्व चूर करने के लिए उनके समक्ष तेजपुंजरूप में इनका प्राकट्य। तेज का परिचय पाने के लिए इन्द्र का वायुदेव को भेजना। वायुदेव से एक तिनके पर अपनी शक्ति का प्रभाव दिखाने का इनका कथन। वायुदेव असमर्थ, लज्जित। इसी तरह एक-एककर इन्द्र-प्रेरित सब देवताओं का गर्व नष्ट। स्वयं इन्द्र का आना। तत्काल तेज अदृश्य। पश्चात् तेजपुंज के बीच उमा के करुणामय रूप का प्राकट्य। इनके द्वारा अपने सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार सर्वतत्व-स्वरूप का परिचय।

केन० ३ में परब्रह्म का यक्षरूप धारण कर तिनके के माध्यम से वायुदेव और अग्निदेव का गर्व-हरण। इन्द्र के आते ही यक्ष अदृश्य। यक्ष की जगह साक्षात् ब्रह्मविद्यारूपिणी हैमवती उमा प्रकट। केन० ४।१ में उमा द्वारा इन्द्र को ब्रह्मतत्व का उपदेश।

(२) इनके दिव्य अवतार –

दु० स० के अनुसार प्रथम चरित्र (महाकाली) में मधु-कैटभ दैत्यों से भीत ब्रह्मा की स्तुति पर इनका असुरों को मोहित करना, विष्णु को योगनिद्रामुक्त कर उनमें असुर-वध की बुद्धि उत्पन्न करना। इस प्रकार विष्णु द्वारा मधु-कैटभ-वध में ये सहायिका।

द्वितीय चरित्र (महालक्ष्मी) में देवताओं के तेज से प्रकट हो इनके द्वारा सैन्यसहित महिषासुर-वध। (दे० 'महिषेसा' 'कालिका')।

तृतीय चरित्र (महासरस्वती) शुम्भ-निशुम्भ-वध के लिए। इनके शरीर से प्रकट अम्बिका (शिवा, कौशिकी) की हुंकार मात्र से धूम्रलोचन भस्म। अम्बिका के क्रोध से उत्पन्न नरमुण्ड-खट्वांगधारिणी विकरालमुखी काली द्वारा दैत्यों का भक्षण और चण्ड-मुण्ड-वध। तब से ये चामुण्डा नाम से ख्यात। इसी बीच अपने-अपने देवता के शरीर से ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही एवं ऐन्द्री शक्तियाँ (मातृकाएँ) प्रकट। ये वस्तुतः अम्बिका

(चण्डिका) की ही विभूतियाँ। चण्डिका देवी के शरीर से चण्डिका शक्ति का प्राकट्य। शिव को शुम्भ-निशुम्भ के पास दूत बनाकर भेजने के कारण इनका नाम शिवदूती । ये ही कात्यायनी। इनके आदेश से चामुण्डा (काली) का मुख-विस्तार — रक्तबीज के रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न दैत्यों का भक्षण। देवी के हाथों रक्तबीज-वध। इनके शूल से निशुम्भ का हृदय विदीर्ण। उसकी मृत्यु। दैत्यराज शुम्भ की चुनौती पर अपनी विभूतिरूपा सब शक्तियों को आत्मलीन कर इनका उससे युद्ध और उसका वध।

देवताओं की स्तुति से प्रसन्न देवी द्वारा रक्तदन्तिका, शताक्षी, शाकम्भरी आदि भावी अवतारों का कथन। देवताओं को इनका वरदान — इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।। ११।५४-५५। दु० स० अध्याय १ से ११। (दु० स० के ये चरित्र मा० पु० के देवीमाहात्म्य के अन्तर्गत)। दे० भा०, शि० पु० आदि में भी इनका वर्णन।

(३) दक्ष-सुता और हिमालय-पुत्री —

(क) दक्ष-सुता — एक समय ब्रह्मा से वरप्राप्त हालाहल नामक दैत्यों द्वारा त्रिलोकी पर विजय। कैलास और वैकुण्ठ पर भी आक्रमण। शिव और विष्णु का उनसे युद्ध और अतिशय प्रयत्न के बाद उनका वध। शिव-विष्णु की विजय वस्तुतः शक्ति के प्रभाव से, किन्तु इस सत्य से अनभिज्ञ उनके द्वारा अपनी-अपनी शक्ति — महागौरी और महालक्ष्मी — की उपेक्षा। इस पर इन दोनों शक्तियों का हँसना। हँसी को उपहास समझ दोनों देवों द्वारा इनका तिरस्कार। ये अन्तर्धान। शिव-विष्णु शक्तिहीन। देवी की प्रसन्नता के लिए ब्रह्मा का अपने मुनि-पुत्रों को तप करने का आदेश, जिससे शिव-विष्णु को पुनः शक्ति प्राप्त हो। दे० भा० ७।२६।

प्रसन्न देवी से दक्ष की अपने कुल में जन्म लेने की प्रार्थना। इनकी गौरी नामक शक्ति का दक्ष-गृह में और लक्ष्मी-शक्ति का क्षीरसागर के यहाँ जन्म होने का इनका आशीर्वाद। दे० भा० ७।३०।

सतीरूप में देवी का आविर्भाव। शि० पु० में ये असिक्नी (वीरिणी)- सुता (भा० में प्रसूति-कन्या)। इनका नाम 'उमा'। बचपन से ही शिव के प्रति अनुराग। घर में रहकर शिव की प्रसन्नता के लिए तप, नन्दाव्रत का पालन। ब्रह्मा के अनुरोध पर शिव विवाह करने को प्रस्तुत। विवाह की शर्त — उनकी पत्नी सदा उनके कर्म के अनुकूल चलें। पत्नी का उन पर या उनके वचन पर अविश्वास होते ही उसका त्याग करेंगे।

ध्यानमग्न सती को शिव का प्रत्यक्ष दर्शन। इन्हें अपनी भार्या बनाने का शिव-कथन। विवाह। उनके साथ कैलास-गमन। शि० पु० रु० स० १४-२०।

एक समय दुर्वासा से प्रसन्न देवी द्वारा उन्हें प्रसादरूप में अपने गले की पुष्पमाला प्रदान। दक्ष का मुनि से वह माला माँगना और विलास-शय्या पर रखना। उसी शय्या पर उनके स्त्री-समागम के कारण शंकर और सती के प्रति उनके मन में द्वेष और परिणामतः सती का योगाग्नि से शरीर-दाह। दे० भा० ७।३०। (शि० पु० रु० स० १२ में दक्ष के तप से प्रसन्न होकर उनके घर जन्म-ग्रहण करने का वरदान देते हुए देवी-कथन—दक्ष द्वारा कभी इनका अनादर होने पर ये उसी समय देह-त्याग कर अपने स्वरूप में लीन हो जायेंगी अथवा अन्य शरीर धारण करेंगी।)

ब्र० पु० कृ० ४२-४३ में शिव-अपमान से क्षुब्ध सती का पिता को फटकारकर, माता के पास जा उन्हें भावी घटनाओं से अवगत कराना और योगबल से अदृश्य हो गंगातट पर पहुँचना। वहाँ शिव का ध्यान करते हुए देह-त्याग और गन्धमादन पर्वत की गुहा में विद्यमान अपने दिव्य विग्रह में प्रवेश। इनका प्राणहीन शरीर देख शिव का विलाप — शिवं शिवप्रदं सर्वसम्पद्रूपं च सिद्धिदम्। सर्वात्मानं च सर्वेशं शवतुल्यं त्वया विना।। कृ० ४३।८।

दे० भा० के अनुसार यज्ञस्थल में जलते सती के चिन्मय शरीर को कन्धे पर रख देश-देश में शिव का भटकना। विष्णु द्वारा बाण से सती-अंगों का छेदन। जहाँ-जहाँ सती का अंग-पात, वहाँ-वहाँ अनेक ज्योतिर्लिंग-स्वरूप में शिव का निवास। देवताओं से शिव-कथन — जहाँ सती के अंग, वहाँ जगदम्बा का निरन्तर वास। इन स्थानों में रहकर पुरश्चरण करने पर मन्त्रसिद्धि निश्चित। ये स्थान मायाबीज मन्त्र (ह्रीं) जप के लिए विशेष उपयोगी।

ये देवीपीठ मुक्तिक्षेत्र, सिद्धपीठ इनकी संज्ञा। वाराणसी में सती का मुख गिरा था, अतः उस पीठस्थान में रूप धारण करनेवाली देवी 'विशालाक्षी'। प्रयाग में ललिता, कान्यकुब्ज में गौरी, स्थानेश्वरपीठ में भवानी, शालग्रामपीठ में महादेवी, द्वारका में रुक्मिणी, वृन्दावन में राधा, मथुरा में देवकी, चित्रकूट में सीता, वीरक्षेत्र में

महालक्ष्मी, विनायकक्षेत्र में उमा, किष्किन्धा पर्वत पर तार, वेदवनतीर्थ में गायत्री, शिव के संनिकट पार्वती, देवलोक में इन्द्राणी, ब्रह्मलोक में सरस्वती, मातृकाओं में वैष्णवी। इसी तरह एक सौ आठ सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली उतनी ही देवियाँ। दे० भा० ७।३०।

ब्र० पु० कृ० ४३ में सती के अवशिष्ट अंगों का शिव द्वारा संस्कार। इनकी अस्थियों की माला बनाकर गले में धारण करना, शरीर-भस्म को प्रतिदिन अपने शरीर पर लगाना। शिव के स्तवन से प्रसन्न प्रकृतिदेवी के उन्हें दर्शन। हिमालय-भार्या मेनका के गर्भ से जन्म-ग्रहण कर देवी का शिव-पत्नी बनने का आश्वासन।

दे० भा० में शिव अन्ततः एक स्थान पर स्थिर हो जगदम्बा के ध्यान में लीन। सती के तिरोभाव से चराचर प्राणी सौभाग्य-वंचित। उसी समय तारक नामक असुर को ब्रह्मा का वरदान — उसकी मृत्यु केवल शिव के औरस पुत्र द्वारा ही किन्तु शिव विधुर। अतः व्याकुल देवताओं द्वारा देवी की प्रार्थना। देवी का वरदान — इनकी 'गौरी' शक्ति हिमालय के घर प्रकट होगी। दे० भा० ७।३१। (शि० पु० रु० पा० ४ में उमा का आश्वासन मेना-गर्भ से अवतार ग्रहण करने का।) तदनुसार भगवती सती का हिमालय के घर जन्म-ग्रहण और 'हैमवती' नाम से प्रसद्धि। दे० भा० ७।४०।

महा० में इनकी कथा सबसे भिन्न। दक्ष-यज्ञ में शिव-भाग न होने के कारण इन्हें क्षोभ। इनके क्रोध से प्रकट महाकाली महेश्वरी का यज्ञ-ध्वंस के लिए वीरभद्र के साथ गमन। ये कैलास पर ही स्थित। न इनका पिता के घर जाना, न आत्मदाह। शा० २८४।२३-५०।

सं० व० पु० में ये नारायण के विग्रह से उत्पन्न। नाम गौरी, भारती। ब्रह्मा द्वारा अपने पुत्र रुद्र को प्रदत्त। सृष्टि-कार्य में असमर्थता व्यक्त करने के कारण रुद्र को तप करने की आज्ञा दे ब्रह्मा का इन्हें अपने में अन्तर्हित करना। बाद में दक्ष को पुत्रीरूप में देना। ये दक्ष की पुत्री बन दाक्षायणी। इसी समय दक्ष-यज्ञ। तपस्या से निवृत्त हो, यज्ञ में अपना भाग न देख, महारुद्र द्वारा गणोंसहित यज्ञ-ध्वंस। पुनः यज्ञ में भाग पा, वन्दित हो, शिव प्रसन्न। ब्रह्मा के कहने पर ये दक्ष द्वारा शिव को प्रदत्त। शिव के अपराधी पिता से उत्पन्न शरीर का त्याग करने के लिए इनके द्वारा हिमालय पर दीर्घकाल तक तप और योगाग्नि से शरीर-दाह। पुनः हिमालय के घर जन्म। सं० व० पु० पृ० ६१-६५।

(ख) हिमालय पुत्री— एक कल्प में ये गौरवर्णा (शिव द्वारा काम-दहन से पूर्व — कनककुसुममालां सन्दधे नीलकण्ठे सितकिरणमनोज्ञा दुर्लभा सा तदीनाम्।··· ददर्श गिरिजां देवोऽब्धिर्यथा शशिनः कलाम्।··· सुद्विजामग्निजां तन्वीं विशालवदनोत्सवाम्। गौरीं प्रसन्नमुद्रां च विश्वमोहनमोहनाम्। स्क० पु० मा० २१।६३-६६।)। अन्य कल्प में ये कृष्णवर्णा (नीलोत्पलदलश्यामां सुद्युतिं सुमनोहराम्। शि० पु० रु० पा० ७।७।)। तारकासुर को पार्वती के सम्बन्ध में संशय न हो, इसलिए रात्रि को मेना के गर्भ में प्रवेश करने का ब्रह्मा-आदेश (···मेनागर्भे प्रविश्य च। तस्याश्छविं कुरु कृष्णां यथा काली भवेत्तु सा।। कौ० २२।४६।) मेना के मुखमार्ग से रात्रि का प्रवेश। पार्वती-जन्म। स्क० पु० कौ० २२, प० पु० सृ० ४५। पिता द्वारा काली आदि नामकरण। शि० पु० रु० पा० ७।११।

एक बार 'कृष्णा' कहकर शिव का इनसे परिहास। ये क्रुद्ध। तपस्या द्वारा कृष्ण वर्ण त्याग करने के लिए वल्कल धारण कर हिमालय पर इनका कठोर तप। ब्रह्मा के प्रकट होने पर वर-याचना — ये कंचनवर्णा बनें और शिव का एक ओर का अंग निर्विष हो। ब्रह्मा-कथन — एवं भवत्वं भूयश्च भर्तुर्देहार्द्धचारिणी। प० पु० सृ० ४६।८६। (शि० पु० वा० पू० में — वर्णान्तरं भविष्ये वा न भविष्यामि वा स्वयम्। २४।३८।) इनके कृष्णत्वचा त्याग करते ही उससे त्रिनेत्रा घण्टाहस्ता निशादेवी का प्राकट्य। पार्वती के शरीरकोषों से उत्पन्न होने के कारण वे कौशिकी। (दु० स० ५।८७-८८ में कौशिकी के प्रकट होने पर पार्वती कृष्णवर्णा हो गयीं।) उन्हें एक अंश से स्थिर रहने, पार्वती-रोष से प्रकट सिंह को वाहन बनाने और देवकार्य के लिए विन्ध्याचल जाने का ब्रह्मा-आदेश। प० पु० सृ० ४६; स्क० पु० कौ० २७, २६; शि० पु० वा० पू० २४-२५।

संकल्प पूरा कर पार्वती का शिव के पास लौटना। इन्हें न पहचान वीरक गणेश (दे० 'गनेस') का रोकना। (तप के लिए जाते समय पार्वती का ही अपने शरीर की मैल से निर्मित पुत्र गणेश को द्वार-रक्षक नियुक्त करना; ताकि कोई स्त्री शिव के पास न जा सके और कोई इनकी तपोभूमि में न आये। फिर भी शिव को मारने के लिए दैत्य अद्रि का सर्परूप में भीतर प्रवेश और उमा का छद्मवेश धारण कर प्रणय-निवेदन। शिव द्वारा उसका वध।

वायु द्वारा पार्वती को सब सूचना प्राप्त। पार्वती का गणेश को शाप। इनके मुख से क्रोध का सिंह प्रकट। यही कौशिकी का वाहन।) परिवर्त्तित रूपवाली माता का परिचय पाकर गणेश द्वारा स्तुति। पार्वती द्वारा शापानुग्रह।

शिव का इनके साथ सहस्र वर्षों तक विलास। देव-प्रेरित अग्नि का शुक रूप में इनके विलास-भवन में प्रवेश। इस विघ्न के कारण बाहर रह गये स्खलित तेज का शंकर-आदेश से अग्नि द्वारा पान। ऋभु आदि का अग्नि के पेट से उस तेज को निकालकर उस आश्रम में ही एक स्थान पर डालना। वहाँ कई योजन का सरोवर प्रकट। एक बार उस सरोवर में जलक्रीड़ा कर सखियोंसहित किनारे बैठी पार्वती का छः कृत्तिकाओं को पद्मपत्र में सरोवर-जल ले जाते हुए देखना। पार्वती का जल पीने की इच्छा प्रकट करना। कृत्तिकाओं की जल देने की शर्त — इनके जो पुत्र उत्पन्न हो, वह उनका भी पुत्र माना जाये। इन्हें स्वीकार। उनसे जल लेकर पीते ही इनकी दाहिनी कोख फाड़ एक अद्भुत बालक का जन्म। उसके हाथों में शक्ति, शूल, अंकुश और अग्नि, अतः उसकी संज्ञा कुमार। फिर बाईं कोख फाड़कर एक और बालक प्रकट। अग्नि के शरीर से दोनों को जोड़कर एक बनाया जाना। दोनों मिलकर षड्वदन। प० पु० सृ० ४६। किंचित् परिवर्तन के साथ स्क० पु० कौ० २९ में।

इनकी विलास-क्रीड़ा और पुत्रप्राप्ति में बाधक होने के कारण देवताओं को इनका शाप — अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः। शंकर-तेज को धारण करने के कारण पृथ्वी को शाप — अवने नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि। वा० रा० १।३७।२२, २३।

प्रियतम पति-निमित्तिक फल की प्राप्ति के लिए मार्गशीर्ष महीने में प्रतिदिन 'गौरीव्रत' के पालन का विधान। सर्वप्रथम इस व्रत का पालन वेदवती द्वारा — नारायण को पतिरूप में पाने के लिए। फलतः सीतारूप में उनका अवतार और रामरूप में नारायण-प्राप्ति। कृष्ण को पाने के लिए गोपियों द्वारा प्रतिदिन यमुना-स्नान के बाद पार्वती की बालुकामयी मूर्त्ति बनाकर उसमें देवी का आवाहन और पूजन। ब्र० पु० कृ० २७।

ब्र० पु० में वेद की कौथुमी शाखा में कथित इनके सोलह नाम — दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमाया शिवा सती। नित्या सत्या भगवती शर्वाणी सर्वमंगला।। अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वती च सनातनी। नामानि कौथुमोक्तानि सर्वेषां शुभदानि च।। प्र० ५७।२-३। प्र० ५७।६ से २७ तक इन नामों की व्याख्या। अमर० में इनके सत्रह नाम — उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी।। शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमंगला। अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका।। १।४१-४२। चार नाम प्रक्षिप्त कहकर — भार्या दाक्षायणी चैव गिरिजा मेनकात्मजा। १।४३। दु० स० के तीनों चरित्रों, देव-स्तुतियों और विभिन्न अध्यायों के ध्यान में इनके अनेक नामों-रूपों का उल्लेख।

(मानस में शिव की तरह इनके भी तीन रूपों के दर्शन। जहाँ-जहाँ शिव ब्रह्मरूप, ये उनकी शक्ति, माया, पत्नी (१।८१, १।२३५।६-८, ७।१०८।छं० ५), शिव त्रिदेव में एक, तो ये देवी (१।५४, १।१४८।३, शिव रामभक्त, तो ये राम-चरण-अनुरागिनी (१।११२।८ आदि।]

मानस में —

(१) सती —

त्रेतायुग में एक बार इनके साथ शिव का अगस्त्य ऋषि के पास जाना, रामगुण-गाथा कथन-श्रवण कर लौटना। दण्डकारण्य में तापस राम के दर्शन की लालसा से उत्पन्न शंकर-मन के क्षोभ से ये अनभिज्ञ (१।४८।२, ५-६, १।४८ ख)। राम के दर्शन होते ही 'जय सच्चिदानंद जग पावन' कहकर आनन्द-पुलकित हो शिव का इनके साथ आगे बढ़ना। [जयेत्युक्त्वाऽन्यतो गच्छत्। शि० पु० रु० सं० २४।२८।] उनकी दशा देख इनके मन में सन्देह — शंकर जगतवन्द्य जगदीश, सुर नर मुनि उनके आगे नतमस्तक। उन्होंने राजकुमार को 'सच्चिदानंद' 'परधाम' क्यों कहा? सच्चिदानन्द तो ब्रह्म का स्वरूप। राम क्या ब्रह्म? ब्रह्म तो सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित भेदरहित, वेदों के लिए भी अज्ञात। वह मनुष्य-शरीर क्यों धारण करेगा? (१।५०।४-१।५०)। सुरकार्य के लिए नरतन धारण करनेवाले विष्णु भी त्रिपुरारि की तरह सर्वज्ञ। ज्ञानधाम लक्ष्मीपति होकर वे अज्ञ की तरह स्त्री को क्यों खोजेंगे! किन्तु सर्वज्ञ शिव की वाणी का मिथ्या होना भी असम्भव। अतः इनके मन में संशय, मोह। प्रकट रूप से इनके न कहने पर भी अन्तर्यामी शिव को सब ज्ञात (१।५१।१-५)।[शि० पु० में राम से ये परिचित नहीं। इनके द्वारा संशय व्यक्त — नीलोत्पलश्याम धनुर्धर को देखकर शिव भक्तसदृश विनम्र क्यों? स्वयं सेव्य स्वामी होकर शिव द्वारा प्रणति उचित नहीं। रु० स० २४।] इनसे शिव-कथन— रघुवीर उनके इष्टदेव, वे साक्षात् ब्रह्म।

शिव के बार-बार समझाने पर भी इन्हें प्रबोध नहीं। तब शिव-कथन — ये जाकर स्वयं राम की परीक्षा लें, विवेकपूर्वक वैसा ही करें जिससे इनका सन्देह दूर हो (१।५१।६ -१।५२।३)। [शि० पु० में शिव द्वारा राम-लक्ष्मण का परिचय — गौरवर्णो लघुर्बन्धुश्शेषेशो लक्ष्मणाभिधः। ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः।। रु० स० २४।३९। साधु पुरुषों की रक्षा के लिए राम का अवतार। इन्हें विश्वास न होने पर मोह-नाश के लिए जाकर राम की परीक्षा लेने का इन्हें शिव का परामर्श। रु० स० २४।]

शिव की आज्ञा पाकर इनका गमन। शिव का अनुमान — अब इनका कल्याण नहीं। मार्ग में परीक्षा लेने की विधि सोचते हुए अन्ततः सीता का रूप धारण कर इनका राम के आगमन-पथ पर बढ़ना। नारि-स्वभाव के कारण अन्तर्यामी सर्वज्ञ राम से भी इनका कपट। इन्हें प्रणाम कर, पितासहित अपना नाम बताकर, हँसते हुए राम की जिज्ञासा — वृषकेतु शिव कहाँ? वन में ये अकेले क्यों घूम रही हैं? राम का मृदु गूढ़ वचन सुन इन्हें संकोच। डरते हुए शिव के निकट जाना। मन में चिन्ता — शिव की बात न मान इनके द्वारा राम पर अपने अज्ञान का आरोप। अब शिव को क्या उत्तर देंगी? (१।५२।४-१।५४।२)। [शि० पु० रु० स० में — इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा रामसमीपतः। आगमत्तत्परीक्षार्थ सती मोहपरायणा।। २४।४७। इन्हें सीतारूप में देख, नमस्कार कर, राम की जिज्ञासा — प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शम्भुस्ते नमो नमः। एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना। त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतरूपमिदं सती। २४।४९-५०। ये शिव-कथन का स्मरण कर लज्जित। अपने रूप को प्रकट कर, शिव-चरण-चिन्तन करते हुए, इनका कथन — शिव वट-वृक्ष के नीचे प्रतीक्षारत। अपने राम-विषयक मोह-निवारण के लिए शिव-आज्ञा से ही इनके द्वारा राम की परीक्षा। अब संशय दूर। इनकी जिज्ञासा — राम शिव के लिए वन्दनीय कैसे हुए? रु० स० २४। राम-कथन — विष्णु की पूर्ण भक्ति से प्रसन्न महेश्वर द्वारा ब्रह्माण्डमण्डप में उनका अभिषेक और स्तवन, अपनी पराधीनता (भक्तपरवशता) प्रसिद्ध कर घोषणा — हरि उनके भी वन्दनीय। सती प्रसन्न, किन्तु अपने कर्म को याद कर क्षुब्ध — शिव को क्या उत्तर देंगी! रु० स० २५।] राम को ज्ञात कि ये दुखी। इनके समक्ष उनका प्रभाव प्रकट। मार्ग में इनका देखना — आगे राम-लक्ष्मण-सीता जा रहे हैं। पीछे भी सीतासहित दोनों भाई। जिधर देखें, उधर मुनीश्वर-सेवित राम। अनेक शिव, विधाता, विष्णु, अगणित सती, विधात्री, इन्दिरा। जिस-जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता, उसके अनुकूल रूप में उनकी शक्तियाँ। शक्तियोंसहित वे उतने ही जितने श्रीराम। सीतासहित राम अनेक होने पर भी उनका रूप एक। यह देखकर ये भयभीत। हृदय में कम्प। देह-सुधि विस्मृत। आँखें मूँद इनका मार्ग में ही बैठ जाना। फिर आँखें खोलने पर कहीं कुछ नहीं। राम-चरण में सिर नवाकर इनका शिव के पास लौटना (१।५४।३-१।५५।८)।

शिव का सहास प्रश्न — ये सत्य कहें, किस तरह परीक्षा ली। राम-प्रभाव को समझ, शिव से सत्य को छिपाकर, इनका कथन — इनके मन में विश्वास कि शिव-कथन मिथ्या नहीं। अतः शिव की तरह इनके द्वारा भी राम को केवल प्रणाम, परीक्षा नहीं। ध्यान से शिव को इनके चरित्र के सम्बन्ध में सब ज्ञात। इनके मिथ्या भाषण को राम-माया-प्रेरित मानकर दुखी शंकर का संकल्प—इनके द्वारा सीतावेश धारण किये जाने के कारण अब इनसे प्रीति करना भक्तिमार्ग-विरोधी पातक, अतः 'एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं'। (१।५५-१।५७।२)। [शि० पु० रु० स० २५ में शिव के प्रश्न पर ये विषादग्रस्त, मौन। ध्यान से शिव को सब ज्ञात। उनके द्वारा मन से इनका त्याग।] भवन (कैलास) की ओर चलते समय आकाशवाणी — महेश में भक्ति की दृढ़ता। वे रामभक्त, समर्थ, भगवान। ऐसा प्रण करना उनके अतिरिक्त और किसके लिए सम्भव! सुनकर इनका अनेक प्रकार से पूछना — शिव ने कौन-सा प्रण किया? उत्तर न पा इनका अनुमान कि शिव को सब ज्ञात। अपने छल के कारण इन्हें चिन्ता, ग्लानि। शंकर के रुख से इन्हें विश्वास कि ये अब परित्यक्त। इनके हृदय में दाह। सुन्दर कथाएँ सुनाकर इनका दुःख दूर करने की शिव की चेष्टा (१।५७।३-१।५७क, १।५८।१-५)। [शि० पु० रु० स० २५ में भी आकाशवाणी — शिव धन्य, उनकी प्रतिज्ञा धन्य, त्रिलोक में उनके सदृश महायोगी दूसरा नहीं। इनके पूछने पर भी शिव का प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में न बताना। (प्रतिज्ञा— विवाह की शर्त — अविश्वासो मदुक्तेचेन्मया त्यक्ता भविष्यति। १६।४४।) इन्हें ज्ञात कि अब ये त्यक्त। शिव का इन्हें कथाएँ सुनाना] कैलास पर आकर शिव को अखण्ड समाधि में लीन देख इन्हें सोच और पश्चात्ताप। राम का स्मरण और विनती — शीघ्र इन्हें देह-बन्धन से मुक्ति मिल जाये। सत्तासी हजार वर्षों के बाद समाधि से जागकर शिव का इन्हें सादर हरिकथा सुनाना (१।५८।६-१।६०।५)। [शि० पु० रु०

स० २५ में भी कैलास पर आ शिव की समाधि। ध्यान टूटने पर इन्हें मनोरम कथाएँ सुनाना। इनका शोक दूर कर देना, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा पर वे अटल। वस्तुतः शिव-सती का वियोग लीलामात्र। वाणी और अर्थ की भाँति वे नित्य संयुक्त — वागर्थाविव संपृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ। तयोर्वियोगोऽसम्भाव्यः सम्भवेदिच्छया तयोः।। २५।६६।]

आकाश में देव-विमानों को जाते देख इन्हें जिज्ञासा। अपने पिता द्वारा आयोजित यज्ञ के सम्बन्ध में जानकर प्रसन्नता। विचार — शिव आज्ञा दें तो इसी बहाने जाकर कुछ दिन पितृगृह में रहें। ये पति-परित्याग से दुखी, किन्तु अपराध-भाव के कारण कुछ कहने में संकोच। अन्ततः भयपूर्वक पिता के घर जाने की आज्ञा माँगना। शिव-कथन— अपनी सब कन्याओं को निमन्त्रित करके भी उनके (शिव के) प्रति वैरभाव के कारण दक्ष द्वारा इनकी उपेक्षा। (एक बार ब्रह्मा की सभा में शिव से दक्ष अप्रसन्न)। बिना बुलाये जाने पर शील-स्नेह-सम्मान की हानि। उस पर यदि विरोध, तो कल्याण नहीं। शिव के समझाने पर भी इन्हें बोध नहीं। तब मुख्य गणों के साथ शिव का इन्हें विदा करना (१।६१।३-१।६२)। [शि० पु० रु० स० २८ में इनके कहने पर सखी विजया का चन्द्रदेव से पूछना। उससे उन्हें ज्ञात कि पिता के यहाँ यज्ञोत्सव। शिव से चलने के लिए कहने पर उनका मना करना। इन्हें पिता पर क्रोध। शिव को निमन्त्रित न करनेवाले दुरात्मा दक्ष का अभिप्राय जानने के लिए इनकी वहाँ जाने की इच्छा। नन्दी पर आरूढ़ कर महारानी के अनुरूप राजोपचार के साथ प्रमुख गणोंसहित शिव का इन्हें विदा करना।]

पितृगृह में दक्ष-भय से इनकी सबके द्वारा अवमानना। माता का आदरपूर्वक मिलना, बहनों का मुसकाते हुए। दक्ष का कुशल तक न पूछना। यज्ञ में शिव का भाग न देख पति की बात का मर्म इन्हें ज्ञात। शिव-अपमान का दुःख इनके लिए पति-परित्याग के दुःख से भी अधिक दाहक। इन्हें क्रोध। माता के प्रबोध के बावजूद इनकी रोषपूर्ण वाणी — शिव-निन्दा का कथन-श्रवण करनेवाले दक्ष और अन्य सबको तुरत फल मिलेगा। 'संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा।। काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई।।' सम्पूर्ण जगत् की आत्मा त्रिपुरारि महेश के निन्दक दक्ष के वीर्य से इनका शरीर उत्पन्न, अतः शिव को हृदय में धारण कर तुरत शरीर-त्याग करने का संकल्प। योगाग्नि से इनका शरीर-दाह। यज्ञशाला में हाहाकार। शम्भु-गणों द्वारा यज्ञ-ध्वंस (१।६३।१-१।६४)। [शि० पु० में शिव का यज्ञ में भाग न देख इनका क्रोधपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों और ऋषियों को कटु शब्दों में फटकारना। (मानस में ब्रह्मा और विष्णु यज्ञ में उपस्थित नहीं। १।६१।२।) पुनः शिव के प्रति दक्ष के अपमानपूर्ण कथन से इन्हें रोषावेश — यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा। तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ।। २९।३८। शिव के दाक्षायणी (दक्षपुत्री) कहकर इन्हें पुकारने की कल्पनामात्र से ये क्षुब्ध। अतः दक्ष के अंग से उत्पन्न अपने शवतुल्य घृणित शरीर के त्याग का इनका निश्चय। योगाग्नि से इनका शरीर-दाह। रु० स० २९, ३०।] मरते समय राम से इनकी वर-याचना — 'जनम जनम सिव पद अनुरागा'। इसीलिए हिमालय के घर पार्वतीरूप में इनका जन्म (१।६५।५-६)।

जब से इनका देह-त्याग, तब से शिव के मन में विराग। अकाम होते हुए भी वे भक्त (सती) के विरह से दुखी (१।७५।७, १।७६।२)। शिव का इनसे विवाह करने का और इनका त्यागकर इन्हें मरवा डालने का सप्तर्षि-कथन पार्वती से (१।७९।८)। दक्ष-यज्ञ में देह त्यागकर हिमाचल-गृह में इनके जन्म लेने का ब्रह्मा-कथन देवताओं से (१।८३।२)। १।९८।५ से १।९८।छं० — दे० 'पार्वती' के अन्तर्गत। शिव के रामभक्तिव्रती होने के प्रमाणस्वरूप उनके द्वारा इनके त्याग का उल्लेख (१।१०४।७)। राम-चरित्र देख इनके भ्रमित होने का उल्लेख शिव द्वारा पार्वती से (१।१४१।४)। पार्वती के पूर्वजन्म में दक्ष के घर सती नाम से उनके अवतार का, दक्षयज्ञ में उनके अपमान और देह-त्याग का शंकर द्वारा उल्लेख (७।५६।२-३)।

(२) पारबती (पार्वती) —

शिव के साथ युग्मरूप में — इनकी श्रद्धा-विश्वासरूप में वन्दना (१।१।श्लो० २), इनके द्वारा राम-नाम-जप (१।१०।१-२)। 'दीनबंधु दिन दानी' एवं 'गुरु पितुमातु' रूप में इनकी वन्दना (१।१५।३)। कलि में जगहित के लिए इनके द्वारा 'साबर' मन्त्रों की सृष्टि (१।१५।५-६)। इनका स्मरण कर, कृपा पा, तुलसी द्वारा रामचरित वर्णन। स्वप्न में भी ये प्रसन्न, तो तुलसी-कथित भाषा-कविता का प्रभाव सत्य (१।१५।८, १।१५)।

राम-नाम विष्णु-सहस्रनाम के समान, यह शिव-मुख से सुन इनके द्वारा शिव के साथ नाम-जप [वामदेव से इन्हें वैष्णव मन्त्र की दीक्षा प्राप्त होने के कारण शिव कृतकृत्य। शिव-आदेश से पुनः विष्णु-पूजन का श्रेष्ठ मन्त्र

वामदेव से प्राप्त कर नित्य विष्णुसहस्रनाम का पाठ। एक दिन द्वादशी को भोजन करने के लिए बैठे शिव का इन्हें बुलाना। (तब तक इनका विष्णुसहस्रनाम-जप अपूर्ण। तब शिव-कथन – योगियों का सच्चिदानन्द परमात्मा में रमण, अतः 'राम' शब्द परब्रह्म का बोधक। वह विष्णु-सहस्रनाम के तुल्य। स्वयं शिव का उसमें रमण। अतः 'राम' उच्चारण करके ये उनके साथ भोजन करें। (रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। तेन रामपदेनाऽसौ परंब्रह्माऽभिधीयते।। राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।… रामेत्युक्त्वा महादेवि भुङ्क्ष्व सार्धं मयाऽधुना।। २५४।२१-२३।) प० पु० उ० २५४] इनके हृदय का प्रेम देख शिव का इन्हें भूषण बनाना। ये स्त्रियों में शिरोमणि (१।१९।६-७)। रामचरित-रचना कर शिव का इन्हें सुनाना (१।३०।३, १।३५।११)। साधुरूपी देव-समाज के लिए रामकथा इनके सदृश (१।३१।९)। शंकरसहित उनका स्मरण कर मानस-प्रसंगों के कहने की तुलसी की प्रतिज्ञा (१।३५)। मानस-सर के रूपक में उमा-शिव-विवाह हेमन्त ऋतु (१।४२।२)। इनके राम सम्बन्धी संशय और उमा-शम्भु-सम्वाद का उल्लेख (१।३३।१, १।१४७।८, १।४७)।

'सती का हिमालय के घर पार्वतीरूप में जन्म। इनके जन्म से शैल-गृह में सिद्धि-सम्पत्ति (१।६५।५-७, १।६६।३)। इन्हें नारद के चरणों में डाल हिमालय का इनके दोष-गुण पूछना। इनकी हस्त-रेखा देख नारद द्वारा भविष्य-कथन – ये सब (स्त्रियोचित) गुणों की खान। सुन्दर, सुशील, सयानी। नाम उमा (ओंकारस्वरूपा), अम्बिका (वैदिक नाम, मूल प्रकृति की संज्ञा), भवानी (भवपत्नी, आद्याशक्ति)। ये सदा पतिप्रिया। अखण्ड सौभाग्यवती। जग में पूज्य। इनके कारण माता-पिता को यश। इनकी सेवा से सब कुछ सुलभ। इनका नाम-स्मरण कर स्त्रियों का पातिव्रत-पालन। इनके स्वामी होंगे गुण-मान-रहित (त्रिगुणातीत, निर्गुण), माता-पिता-विहीन (अजन्मा), उदासीन (समदृष्टि, निर्लेप), सर्वसंशयरहित, योगी, जटाधारी, कामभावशून्य (पूर्णकाम), नग्न, अमंगलवेशधारी (१।६६।८-१।६७)। [योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतातविवर्जितः। अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः।। शि० पु० रु० पा० ८।११।] नारद-वचन सुन इनको हर्ष, यद्यपि और सबको दुःख। सबके शरीर पुलकित, नेत्रों में जल। इनके मन का भेद नारद को भी ज्ञात नहीं। उनकी वाणी को सत्य मान इनका शिव के चरण-कमल में स्नेह। यह सन्देह भी कि शिव-मिलन कठिन। अपने भाव को छिपाकर इनका सखी की गोद में जा बैठना (१।६८।१-६)। नारद-कथन – इनके भावी वर के सब दोष शिव में। उनसे विवाह हो जाये, तो दूषण भी भूषण। 'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं।। [तादृशोऽस्ति वरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः। कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः।। प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदोऽत्यप्रभौ हि सः। रविपावकगंगानां तत्र ज्ञेया निदर्शना।। शि० पु० रु० पा० ८।१९-२०।] शिव दुराराध्य, पर ये तप करें, तो आशुतोष। इनके लिए शिव को छोड़ और कोई वर नहीं (१।६९।२-८, १।७०।३-६)। इन्हें नारद का आशीर्वाद (१।७०)। मेना-कथन– ये उन्हें प्राणप्रिय। इनके अनुकूल वर और अनुपम कुल न होने पर ये कुमारी ही रहें (१।७१।३-५)। हिमवान्-कथन – इनके सर्जक ही इनका कल्याण करेंगे। मेना इन्हें महेश-प्राप्ति के लिए तप करने की शिक्षा दें। नारद-वचन गूढ़ – शिव गुणानिधि, अकलंक। इन्हें गोद में बैठाकर मेना गद्‌गद् (१।७१-१।७२।७)।

'जगत मातु सर्बग्य भवानी'। माँ से इनका कथन – इन्हें स्वप्न में एक सुन्दर गौरवर्ण विप्र का तप करने का आदेश। [शि० पु० रु० पा० ९ में इनकी सुकुमारता देख तप का उपदेश देने में माता असमर्थ। तब इनका स्वप्न के सम्बन्ध में कथन।] तप ही शम्भु, शेष का बल, सृष्टि का आधार, यह कहकर इनको तप करने की माँ की शिक्षा (१।७२।८-१।७३।५)। इनका तप के लिए गमन। [शि० पु० में हिमालय के गंगावतरण नामक स्थान में तपोलीन शिव की सेवा में इन्हें रखने की हिमवान् की प्रार्थना शिव द्वारा अस्वीकृत। तब दार्शनिक संवाद से शिव को प्रसन्न कर, सखियोंसहित प्रतिदिन उनके पास जा, भक्तिपूर्वक उनकी सेवा में संलग्न रहने की अनुमति इन्हें प्राप्त। शिव के काम-भस्म से ये दुखी। अपने रूप और जन्म को इनका धिक्कारना (धिक् स्वरूपं मदीयं च तथा जन्म च कर्म च। २१।१५।) नारद से पंचाक्षर शिवमन्त्र (नमः शिवाय) का विधिपूर्वक उपदेश प्राप्त कर इनका तप करने का संकल्प। पिता से आज्ञा प्राप्त, किन्तु माँ का तप के लिए जाने से रोकना – उ – मा (अरी, नहीं, तप के लिए न जा)। तब से इनका नाम 'उमा' (उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा कालिका च सा। पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम भुवने मुने।। ७।१७।) पुनः माँ की आज्ञा प्राप्त कर दोनों सखियों सहित इनका तप के लिए गमन। वस्त्रालंकारों का त्याग कर कटिप्रदेश में मूँज की मेखला और वल्कल धारण। मस्तक पर जटाजूट। (वल्कलानि

धृतान्याशु मौजीबद्धा तु शोभनाम्। २२।२६। चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी। २२।५१।) रु० पा० १२, १३, २१, २२। कुमार० ५।८-११ में इनका तपस्वी-वेश-वर्णन।] इनके माता-पिता व्याकुल। इनकी महिमा कहकर उन्हें वेदशिरा मुनि का प्रबोधन (१।७३।७, १।७३)। हृदय में शिव-चरण का ध्यान कर इनका कठोर तप (१।७४।१-३)। एक हजार वर्षों तक फल-मूल का, सौ वर्षों तक साग का, कुछ दिनों तक जल और वायु का आहार, कुछ दिनों तक कठोर उपवास। फिर तीन सहस्र वर्षों तक. भूमि पर पड़े सूखे बेलपत्रों का आहार और अन्ततः उनका भी त्याग। तब से इनका नाम 'अपर्णा' (१।७४।४-१।७४।७)। [गंगावतरण के शृंगितीर्थ में इनकी तपस्या आरम्भ। इनके तप के कारण उसका नाम 'गौरीशिखर'। ग्रीष्म ऋतु में अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पंचाक्षर मन्त्र का जाप, वर्षा ऋतु में वेदी अथवा पाषाण-शिला पर आसन लगाकर जलधार में भीगना, शीतकाल में निराहार रह शीतल जल में खड़े रहना या हिमशिला पर बैठना। तपकाल के आरम्भ में फलाहार, फिर केवल पत्तों का आहार, पुनः पत्तों का भी त्याग। तब देवताओं द्वारा इनका नामकरण 'अपर्णा' (आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता। तेन देवैरपर्णेति कथिता नामतः शिवा।। २२।४६।) इस तरह तीन हजार वर्षों तक कठोर तप। शि० पु० रु० पा० २१, २२। केदारनाथ के मार्ग में गौरीकुण्ड, कहते हैं वही इनकी तपस्थली 'गौरीशिखर'।] इनका तप और क्षीण शरीर देख आकाश में गम्भीर ब्रह्मवाणी — इनका तप अभूतपूर्व। ये सफलमनोरथ होंगी, त्रिपुरारि मिलेंगे। बुलाने के लिए पिता के आने पर ये हठ त्यागकर लौट जायें। सप्तर्षि मिलने पर ब्रह्मवाणी को सत्य मानें। यह आकाशवाणी सुनकर ये हर्ष-पुलकित (१।७४।८-१।७५।६)।

प्रकट होकर राम का शिव को इनके जन्म और पुनीत करनी के सम्बन्ध में बताना, इनसे विवाह करने का अनुरोध (१।७६।७-१।७६)। सप्तर्षि को इनकी प्रेम-परीक्षा लेने और हिमवान् को भेज इन्हें घर लौटा इनका सन्देह दूर करने का शिव-कथन (१।७७।८-१।७७)। ऋषियों का इन्हें मूर्त्तिमती तपस्या के रूप में देखना। तप का कारण पूछना। अत्यन्त संकोच और विनय के साथ इनके द्वारा कारण-निवेदन। शिव-प्राप्ति की अपनी कामना को जड़ता और अविवेक बताना (१।७८।१-७)। इनके वचन सुन सप्तर्षि द्वारा नारद की निन्दा। नारद के उपदेश से उजड़नेवाले दक्षपुत्र आदि के उदाहरण देना। उनके द्वारा शिव-निन्दा। वररूप में वैकुण्ठवासी श्रीपति को इनसे मिलाने को वे प्रस्तुत (१।७८-१।८०।४)। सुनकर इन्हें हँसी। ये बसें या उजड़ें, नारद-वचन को सत्य मान अपना हठ न छोड़ने का इनका कथन। 'महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुनधाम। जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।' सप्तर्षि पहले मिलते तो उनकी शिक्षा ये ग्रहण करतीं। विवाह की बात किये बिना उनसे रहा न जाये, तो जग में वर-कन्या की कमी नहीं, वहाँ जायें। इनका तो कोटि जन्मों तक शिव को पाने अथवा कुमारी रहने का हठ। [चेच्छिवस्य हि मे विप्रा विवाहं न करिष्यति। अविवाहा सदाऽहं स्यां सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। — इनका कथन सप्तर्षि से। शि० पु० रु० पा० २५।६८।] स्वयं शिव भी कहें, तब भी नारद-उपदेश और अपना संकल्प त्यागने को ये प्रस्तुत नहीं। अन्त में पाँव पड़ सप्तर्षि से गृह-गमन की इनकी विनती (१।८०।४-१।८१।७)। प्रसन्न मुनियों द्वारा इनकी वन्दना — 'जय जय जगदंबिके भवानी।। तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।' (१।८१।८-१।८१)। मुनियों का इन्हें नमन। उनसे प्रेरित हिमवान् का आकर इन्हें घर ले जाना। [शि० पु० में इनकी कठोर तपस्या के बावजूद शंकर अविचलित। तब हिमालय, मेना, मेरु, मन्दराचल आदि का आकर इन्हें समझाना। शिवप्राप्ति को दुष्कर बता घर चलने का अनुरोध। इनका कथन — दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम्। तामानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि।। तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः। २३।१४-१५। इनके तप से जगत् संतप्त। देवताओं के अनुरोध पर शिव विवाह के लिए प्रस्तुत। सप्तर्षि को इनकी प्रेम-परीक्षा के लिए भेजना। सप्तर्षि द्वारा परीक्षा और इनकी दृढ़ता मानस की तरह। पुनः जटाधारी ब्राह्मण के रूप में स्वयं शिव द्वारा परीक्षा, फिर प्रकट होकर इनका हाथ पकड़, पत्नी मान, इनके साथ शीघ्र कैलास-गमन की इच्छा व्यक्त करना। इनका कथन — याचक बनकर शिव हिमवान् से इनकी याचना करें। सती के विवाह में दक्ष ने ग्रहपूजा नहीं की, वह विवाह त्रुटिपूर्ण। अब देवकार्य-सिद्धि के लिए शास्त्रोक्त पद्धति से शिव विवाह-कार्य सम्पन्न करें। याचना करने में शिव का संकोच देख हिमगिरि को दाता बनने का सौभाग्य प्रदान करने का उनसे अनुरोध (याचस्व मां हिमगिरेस्सौभाग्यं देहि शंकर।। २६।३१)। यह अनुरोध मानकर शिव अन्तर्धान। शि० पु० रु० पा० २३-२६। रु० पा० ३०, ३१ में नट और वैष्णव ब्राह्मण के रूप में शिव द्वारा पुनः परीक्षा। अन्य पुराणों में भी कई वेश धारण कर कई रूपों में शिव

द्वारा परीक्षा।]

मुनियों का शिव से इनकी कथा कहना। इनके प्रेम से शिव मग्न (१।८१-१।८२।३)। सती के देह-त्याग, हिमवान्-गृह में जन्म और शिव के लिए तप का ब्रह्मा-कथन देवताओं से (१।८३।२-३)। इनके अपार तप की बात कह इन्हें अंगीकार करने का ब्रह्मा का शिव से आग्रह (१।८६।४)। पितृगृह में सप्तर्षि से शिव के काम-दहन का समाचार सुन इनका कथन — शिव तो सदा ही योगी, 'अज अनवद्य अकाम अभोगी'। यह समझकर मन, कर्म, वचन से यदि इनके द्वारा प्रीतिपूर्वक शिव की उपासना, तो ईश इनका प्रण सत्य करेंगे। शिव के काम-दहन का कथन अविवेक, अनल के निकट जाने पर हिम का नाश अवश्यम्भावी। [सं० ब्रह्मपु० पृ० ३३५ में काम-दहन विवाह के बाद।] इनके प्रीति-विश्वास से प्रसन्न सप्तर्षि का इन्हें नमन (१।८६।८-१।६०)।

परछन के समय रुद्र का रूप देख मेना का इन्हें गोद में बैठा रुदन और विलाप। रुद्र से इनका विवाह न करने का कथन। इनका माँ को समझाना — विधि-अंक अमिट (१।६६।३-१।६७।छं०)। तब नारद का मेना को प्रबोधन — 'जगदंबा तव सुता भवानी।। अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।। जग संभव पालन लयकारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।' (१।६८।१-४)। पूर्वजन्म में ये दक्षकन्या सती। शिव-पत्नी। एक बार शिव के साथ आते हुए इन्हें राम को देख मोह। शिव का कहा न मान भ्रमवश सीय रूप धारण। इस अपराध के कारण शिव द्वारा परित्यक्त। पितृयज्ञ में योगाग्नि से इनका आत्मदाह। अब हिमवान्-गृह में जन्म और शिव के लिए तप। 'अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया।' (१।६८।५-१।६८।छं०)। [भा० में — एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम्। जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम।। तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका। अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम्।। भा० ४।७।५८-५६।] तब माता-पिता द्वारा इनकी चरण-वन्दना (१।६६।१)।

मुनियों के बुलाने पर इनका श्रृंगार कर सखियों का विवाह-वेदी में लाना। इनका रूप देख देवता मोहित। [तत्र तां ददृशुर्देवा निमेषरहिता मुदा। सुनीलांजनवर्णाभां स्वांगैश्च प्रतिभूषिताम्।। त्रिनेत्रादृतनेत्रांतामन्यधारित लोचनाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सकटाक्षां मनोहराम्।। शि० पु० रु० पा० ४६।२४-२५।] फिर जगदम्बा, भव-भामा जानकर मातृबुद्धि से मन-ही-मन प्रणाम। ये सौन्दर्य की मर्यादा। इनके शोभा-वर्णन में श्रुति, शेष, शारदा भी संकुचित। विवाह-मण्डप-मध्य इनका जाना। मन-मधुकर पति-पद-कमल में अनुरक्त। संकोच के कारण देख नहीं पातीं (१।१००।५-१।१००।छं०)। मुनि अनुशासन से शिवसहित इनका गणेश-पूजन। कुश, जल और इनका हाथ ले, इन्हें भवानी मान, हिमवान् का भव का समर्पित करना। हर-गिरिजा-विवाह से सब भुवन उल्लसित (१।१००, १।१०१।२,३,६)। [केदारनाथ के मार्ग में सोनप्रयाग से पाँच-छः हजार फीट ऊपर त्रियुगीननारायण का मन्दिर। वहाँ एक 'धर्म-शिला' (कमल की-सी आकृति)। उसी को शिव-पार्वती का विवाह-मण्डप माना जाता है।] इन्हें गृहदासी बनाने की शिव से मेना की प्रार्थना। इन्हें गोद में ले माँ की नारिधर्म की शिक्षा। इनका सबसे मिलना, विह्वल माँ से लिपटना। सबकी इन्हें आशिष। सखियों का इन्हें शिव के पास लाना। इनको साथ ले शिव का कैलास-गमन (१।१०१-१।१०२।छं०)।

'जगत मातु पितु संभु भवानी'। [वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। रघु० १।१।] इनका शृंगार-वर्णन तुलसी को अभिप्रेत नहीं। गणोंसहित इनका कैलास-वास। दीर्घ काल तक नित नव विहार, भोग-विलास। [तस्यं संक्रीड़मानस्य ··· दिव्यं वर्षशतं गतम्। वा० रा० १।३६।६। गते वर्षसहस्रे तु। प० पु० सृ० ४६।१२२] षडानन कुमार का जन्म। उमा-शिव-विवाह के कथन-गायन का माहात्म्य (१।१०३।४-१।१०३।छं०)।

कैलास पर इनका शिव के साथ सदा निवास (१।१०५।८)। एक दिन इन्हें पूर्वजन्म की कथा का स्मरण। शिव को अनुकूल देख उनकी विनती और उनसे रामकथा के सम्बन्ध में स्नेह-आदरपूर्ण जिज्ञासा (१।१०७।२ - १।१०७) इनकी ज्ञानेप्सापूर्ण प्रार्थना — (१) नाना प्रकार से रामकथा कह शिव इनका अज्ञान-हरण करें (१।१०८।१,२)। (२) इनका मति-भ्रम दूर करें (१।१०८।३,४)। (३) ब्रह्मवादी मुनियों के लिए राम अनादि ब्रह्म। शेष, शारदा, वेद-वुराणों द्वारा भी रघुपति-गुणगान। स्वयं शिव द्वारा रामनाम-जप। वे राम अवध-नृपति-सुत अथवा अज, अगुन, अलक्ष्य गतिवाले कोई और? यदि वे स्त्री-विरहाकुल नृपसुत, तो ब्रह्म कैसे? ब्रह्म तो अवर्णनीय, अनीह, व्यापक, विभु। राम की महिमा और चरित में सामंजस्य न देख इन्हें मतिभ्रम। अतः सब समझाकर कहने की विनती

(१।१०८।५-१।१०९।१)। (४) इनकी रामविषयक शंका से शिव कहीं रुष्ट न हों, इसलिए अज्ञता-प्रदर्शन, विनय और मोह-नाश की प्रार्थना (१।१०९।२)। (५) सतीरूप में वन में राम की प्रभुता देख भय के कारण शिव से नहीं कहा। तब बोध होना चाहिए था, किन्तु मन की मलिनता के कारण ज्ञान नहीं हुआ। उसका फल मिल गया (पति-परित्याग, देह-दाह, पुनर्जन्म, तप)। अब भी कुछ संशय। उसके निवारण की प्रार्थना (१।१०९।३-५)। (६) अब पहले का-सा मोह नहीं। रामकथा में रुचि। रामगुण-गाथा सुनाने का आग्रह (१।१०९।६-८)। (७) धरती पर मस्तक रख शिव-चरणों में इनका प्रणाम, उनसे करबद्ध विनती श्रुति-सिद्धान्त-सार रामकथा-वर्णन की (१।१०९)। (८) स्त्री होने के कारण ये श्रवण की अधिकारिणी नहीं, फिर भी मनसा वाचा कर्मणा वेदस्वरूप शिव की दासी होने के नाते, आर्त्त होने के कारण, ये अधिकारिणी। शिव से रघुपति-कथा कहने की इनकी प्रार्थना (१।११०।१-३)। [गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः। तदप्यहोऽहं तव देवभक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम्।। — इनका कथन शिव से। अ० रा० १।१।८।]

शंका-निवारण के लिए इनके प्रश्न — (१) निर्गुण ब्रह्म के सगुण शरीर धारण करने का कारण? (१।११०।४)। (२) राम किस प्रकार अवतीर्ण हुए? (नृसिंह खम्भे से, वराह ब्रह्मा की नाक से अवतीर्ण हुए थे।) (१।११०।५ - प्रथम चरण)। (३) उदार बालचरित कहने का अनुरोध (१।११०।५-द्वितीय चरण)। (४) जानकी-विवाह-कथन का आग्रह (१।११०।६ - प्रथम चरण)। (५) राज्य में क्या दोष, जिसके कारण राम द्वारा उसका त्याग? (१।११०।६ - द्वितीय चरण)। (६) क — वनवासकाल के अपार चरित कहने की विनती (१।११०।७ प्रथम चरण)। (ख— रावण को किस विधि से मारा? (१।११०।७-द्वितीय चरण)। (७) राजगद्दी पर बैठकर जो सुखद लीलाएँ कीं, उनके कथन का आग्रह (१।११०।८)। (८) प्रजा को साथ लेकर अपने धाम जाने का आश्चर्यजनक कार्य राम ने किस प्रकार किया? (१।११०)। (९) उस तत्व के विस्तारपूर्वक कथन का अनुरोध जिसके विज्ञान में ज्ञानी मुनि मग्न (१।१११।१)। (१०) चारों साधन, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य के स्वरूप को पृथक्-पृथक् कहने की विनती (पृथक् होने पर भी ये परस्पर उपकारी) (१।१११।२)। (११) और भी जो राम-रहस्य हों, उन्हें कहने का अनुरोध (१।१११।३)। (१२) इनके अतिरिक्त जो बातें इन्होंने नहीं पूछीं, अन्य जो गोपनीय बातें हों, उन सबको कहने की प्रार्थना (१।१११।४-५)।

[अ० रा० में — एक समय कैलास-शिखर पर ये शिव के वामांक में विराजमान। भक्तिभाव से इनकी विनम्र प्रार्थना — (१) पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन तत्व जानने की इनकी इच्छा। (२) ये शिवभक्त, शिव इन्हें प्रिय। अतः गोपनीय रहस्य जानने की इनमें योग्यता। (३) शिव विज्ञानसहित भक्ति-वैराग्य-युक्त आत्मज्ञान का वर्णन करें। (४) वर्णन संक्षिप्त और इस प्रकार का, जिससे स्त्री होने पर भी इनके लिए बोधगम्य। (५) इन्हें ज्ञात कि संसार से मुक्ति का प्रसिद्ध उपाय भक्ति, और राम-भक्ति-भव-सागर को तारने के लिए सुदृढ़ नाव। किन्तु राम सम्बन्धी विरोधी मतों से इनके मन में संशय। एक मत — राम त्रिगुणातीत, परम, अद्वितीय, सबके आदिकारण उनके भजन से परमपद-प्राप्ति। दूसरा मत— राम परब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत हो जाने के कारण आत्मस्वरूप से अनभिज्ञ। अन्य (वसिष्ठादि) के उपदेश से उन्हें आत्मतत्व का ज्ञान। इनकी जिज्ञासा — वे आत्मतत्वज्ञाता, परमात्मा, तो सीता के लिए विलाप क्यों? वे सामान्य जीव, तो भजनीय क्यों? इस परम गुह्य रहस्य का शिव वर्णन करें। १।१।६-१५। (६) शिव के समझाने पर रामतत्व का बोध, संक्षेप में रामकथा का परिचय। अब विस्तार से रामकथा-श्रवण की इच्छा। १।२।१-३। (७) राम-राज्याभिषेक तक की कथा सुनने के बाद जिज्ञासा — अभिषेक के बाद राम ने कौन-सा कार्य किया? (८) पृथ्वीतल पर वे कितने वर्ष रहे? (९) मर्त्यलोक का उन्होंने किस प्रकार त्याग किया? (१०) राम-कथामृतास्वाद से इनकी तृष्णा और प्रबल, अतः रामकथा को विस्तार से सुनाने का आग्रह। ७।१।२-५।]

इनके सहज सुन्दर सन्तसम्मत प्रश्नों से शिव को प्रसन्नता। इन्हें धन्य और उपकारी मानना (१।१११।६, १।११२।६, १।११४।६)। शिव-कथन — इनके मन में 'सोक मोह संदेह भ्रम' नहीं। ये रघुवीर-चरण-अनुरागिनी। इनकी जिज्ञासा और शंका लोक-कल्याण के लिए (१।११२।७-१।११३।१)। राम के लीला-श्रवण की शिव-आज्ञा (१।११३।८, १।११४।२)। वेद-वन्दित मुनि-ध्येय राम को दशरथ-नन्दन राम से मोहवश इनका भिन्न मानना शिव को अप्रिय (१।११४।७-८)। ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा कर शिव का इन्हें विचारपूर्वक संशय त्यागने और रामपद-भजन

करने का उपदेश (१।११५)। शिव के भ्रमनाशक वचन सुन इनके कुतर्क, मिथ्या कल्पना और विषाद समाप्त। बार-बार शिव के चरण पकड़, विनती कर, अनुनयपूर्वक इनकी जिज्ञासा — राम ने नर-तन क्यों धारण किया? हर्षित शिव द्वारा इनकी प्रशंसा (१।११६।७ - १।१२० क)। काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद, रामावतार, रामकथा सुनने की आज्ञा (१।१२० ख - १।१२१।१)। एक कल्प में नारद-शाप के कारण रामावतार की बात सुन इन्हें आश्चर्य। जिज्ञासा — रमापति के किस अपराध के कारण नारद ने उन्हें शाप दिया? (१।१२४।६-८)। एक कल्प में राम-चरित देख सतीरूप में इनके भ्रम का शिव द्वारा कथन। अब भी उस भ्रम की छाया शेष। यह सुन इनका संकोचपूर्वक मुसकाना (१।१४१।२-६)।

जनक-वाटिका में सरोवर-समीप इनका अवर्णनीय शोभा-सम्पन्न मन्दिर। इनके पूजन के लिए माता द्वारा प्रेषित सीता का स्नानोपरान्त मन्दिर में जा अनुरागपूर्वक इनकी पूजा करना। अपने अनुरूप सुन्दर वर माँगना (१।२२८।२-६)। राम-दर्शन के पश्चात् पुनः मन्दिर में आ उनके द्वारा भक्ति-प्रेमपूर्वक इनकी चरण-वन्दना और करबद्ध प्रार्थना — ये गिरिबरराज-किशोरी, महेश-मुख-चन्द-चकोरी, गजवदन-षडानन-माता, जगत-जननी। इनका आदि मध्य अवसान नहीं। ये 'भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहिनि स्वबस बिहारिनि।।' 'पतिदेवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख।' इनके अमित महिमा-कथन में सहस्रों शारदा शेष भी असमर्थ। ये वरदायिनी। इनकी सेवा से चारों पुरुषार्थ सुलभ। इनके चरण-पूजन कर सुर-नर-मुनि सब सुखी। सबके हृदय में इनका निवास, अतः सीता का अप्रकट मनोरथ भी इन्हें ज्ञात। यह कह सीता का इनके चरण पकड़ना (१।२३५।४-१।२३६।४)। ये सीता के विनय-प्रेम के वशीभूत। इनकी माला का गिरना। माला को इनका प्रसाद मान सीता द्वारा ग्रहण। इनका मुसकाना। हर्षित होकर आशिष देना — नारद-वचन सत्य होगा। सीता की मनोकामना पूर्ण होगी। जिनमें उनका मन अनुरक्त, वे ही वररूप में मिलेंगे। वे करुणानिधान सुजान सीता के शील-स्नेह से अभिज्ञ। सीता द्वारा इनकी बार-बार पूजा। इन्हें अनुकूल जान वे मुदित (१।२३६।५-१।२३६)। [पाषाण-मूर्त्ति का हँसना अपशकुन—गर्जन्ति कूपाः प्रतिमा हसन्ति तद्देशनाशो मुनयो वदन्ति। मा० पी० १।२३६।५। समाधान— यहाँ प्रतिमा का हँसना नहीं, मुसकाना कहा गया है। इसके अतिरिक्त पार्वती प्रकट होकर बोलती हैं, आशीर्वाद देती हैं। यह मांगलिक। गी० १।७२ में — मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई, पूजो मनकामना भावतो बरु बरिकै। राम कामतरु पाइ, बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ, माँग-कोषि तोषि-पोषि, फैलि फूलि फरिकै। रहौगी, कहौगी तब, साँची कही अंबा सिय, गहे पाँय द्वै, उठाय, माथे हाय धरिकै। २,३।]

ये सीता की उपमान होने के अयोग्य, क्योंकि अर्द्धांगिनी (१।२४७।५)। [अर्द्धनारी नटेश्वर के रूप में इनका आधा अंग स्त्री का, आधा पुरुष अर्थात् शिव का। 'गिरिजा अधंग', 'अर्ध-अंग अंगना'। क० ७।१४६, १५१। तया तु तस्यार्द्धशरीरभाजा पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि। कुमार० ७।२८। प० पु० सृ० ४६।८६ में 'भर्तुर्देहार्द्धचारिणी' होने का ब्रह्मा का वरदान।] महेशसहित इनके प्रसन्न होने और धनुष के भारीपन को हरने की सीता की विनती (१।२५७।५-६)। विवाह के समय राम का नखशिख-रूप देख इनके सहित शिव के गात पुलकित, लोचन सजल (१।३१५)। रमा आदि के साथ इनका लौकिक स्त्रीवेश में जनक के रनवास में मिल जाना। किसी का न पहचानना (१।३१८।६-८)। स्त्रीवेशधारिणी देवांगनाएँ रानी द्वारा 'उमा रमा सारद सम' सम्मानित (१।३२२।५-७)। विवाह-मण्डप में इनकी पूजा (१।३२३।छं० १)। जिस तरह ये हिमवान् द्वारा महेश को समर्पित, उसी तरह सीता जनक द्वारा राम को (१।३२४।छं० ४)। कोहबर में इनका राम को लहकौर सिखाना (१।३२७।छं० २)। डोली लेकर अवध-प्रवेश करते समय दशरथ द्वारा शम्भु-गणेश सहित इनका स्मरण (१।३४७।८)।

ये शिव-अंक में शोभित (२।श्लो०१)। पतिप्रिया स्त्रियों की उपमान (२।११८।१)। सौभाग्यवती पूज्य स्त्रियों की उपमान (२।२४५।२)। चित्रकूट में अयोध्यावासियों द्वारा गणेश, शिव आदि के साथ इनका पूजन (२।२७३।४)। 'सदा सहाय महेसु भवानी' — सुनयना-कथन कौसल्या से (२।२८५।४)। काशी में शिवसहित इनके निवास का कथन (४।१।सो० १)। भुशुण्डि, शम्भु और ये राम-स्वभाव से अभिज्ञ (५।४८।१)। शम्भु-उमा द्वारा राम के पद-पंकज सेवित। — रावण-वधोपरान्त ब्रह्मा-स्तुति (६।१११।छं० ११)।

शिव से रामकथा सुन इनके द्वारा हर्ष-आदर की वीप्सा। ये कृतकृत्य, फिर भी मन को तृप्ति नहीं। इन्हें राम-प्रताप का ज्ञान। इनके द्वारा रामचरित और रामकथा का महिमा-गान। 'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेस

जाना तिन्ह नाहीं।।' [जीवन्मुक्त महामुनियों द्वारा निरन्तर हरिगुण-श्रवण। (जीवन्मुक्त के विस्तृत लक्षण भा० ११।११।८-१७ में।] भवसागर तरने के इच्छुक मुमुक्षुओं के लिए रामकथा दृढ़ नाव। विषयी बद्ध जीवों के लिए हरिगुण श्रवण-सुखद, मनरंजनकारी। जिन्हें रघुपति-कथा अरुचिकर, वे आत्मघाती (७।५२।८-७।५३।७)। [निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छोत्रमनोऽभिरामात्। क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।। भा० १०।१।४।] इनकी शंका – काक का तन पाकर भी भुशुण्डि में वैराग्य-ज्ञान-विज्ञान, राम-प्रेम-भक्ति दृढ़ कैसे? इनका कथन – सहस्रों मनुष्यों में कोई एक धर्मव्रती, करोड़ों धर्मशीलों में कोई एक विषय-विमुख वैराग्यपरायण, करोड़ों विरक्तों में किसी एक को ज्ञान प्राप्त, करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक जीवन्मुक्त। सहस्रों जीवन्मुक्तों में ब्रह्मलीन विज्ञानी और भी दुर्लभ। धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन, इन सबमें भी मद-मायामुक्त, रामभक्तिपरायण दुर्लभ (७।५३।८-७।५४।७)। [द्र० ७।८६।४-७।]

इनके प्रश्न – (१) दुर्लभ रामभक्ति काक को कैसे मिली? (७।५४।८)। (२) भुशुण्डि 'रामपरायन ग्यानरत गुनागार मति धीर'। उन्हें काक-देह क्यों मिली? (७।५४)। (३)। पवित्र रामचरित काक को कहाँ मिला? (७।५५।१)। (४) उनसे शिव ने सुना, यह सुन इन्हें कुतूहल। शिव ने किस प्रकार सुना? (७।५५।२)। (५) 'गरुड़ महाग्यानी गुनरासी। हरिसेवक अति निकट निवासी।।' [भशुण्डि से किसी बात में कम नहीं।] मुनियों से कथा न सुनकर उन्होंने काक के पास जाकर कथा क्यों सुनी? (७।५५।३-४)। (६) उन दोनों में संवाद किस प्रकार हुआ? (७।५५।५)। इनकी सरल सुन्दर वाणी सुन शिव को सुख। इनकी पावन मति और रामचरण-रति देख इन्हें धन्य कहना (७।५५।६,७)। काकभुशुण्डि से गरुड़ द्वारा भी ऐसे ही प्रश्न। जिस प्रकार शिव ने राम-कथा सुनी, उस प्रसंग को सुनने की इन्हें आज्ञा (७।५५-७।५६।१)। प्रथम इनका दक्षगृह में अवतार। नाम सती। दक्षयज्ञ में इनका अपमान और क्रोधवश प्राण-त्याग। शिवगणों द्वारा यज्ञ-विध्वंस। यह सब कथा इन्हें ज्ञात (७।५६।२ - ७।५६।४)। गरुड़ इन्हीं की तरह मोह के वशीभूत। मोह-नाश के लिए जब उनका शंकर के पास आगमन, तब ये कैलास पर (७।५६।२, ७।६०)। सब कथा सुनकर (अपने शंकामूलक सब प्रश्नों के समाधानरूप उत्तर पाकर) ये प्रसन्न, कृतकृत्य। सब सन्देह, क्लेश दूर। इनमें दृढ़ रामभक्ति का उदय (७।१२६।७-७।१२९)। याज्ञवल्क्य-कथन भरद्वाज से – 'यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।। भव भंजन गंजन संदेहा। जनरंजन सज्जन प्रिय एहा।।' यह फलश्रुति (७।१३०।१-२)।

शिव द्वारा इन्हें सम्बोधन – इनकी जिज्ञासाभरी प्रार्थना ३-५ के उत्तर में ज्ञान निरूपण करते हुए (१।११७।४, १।११८।३, १।११९।५), इनके प्रश्नों के उत्तर में रामचरित वर्णन करते हुए (१।१२२।३, १।१४०।७, १।१८४।३, १।१८५।४, १।१९६।३, १।२००।२, ३।१।सो०, ३।२।१४, ३।१०।१०, ३।२३।८, ३।२४।८, ३।३३।३, ३।३६।१, ३।३६।५, ४।२।५, ४।११।७, ४।१२।१, ४।१८।६, ४।२२।१, ५।३।९, ५।२०।३, ५।२६।७, ५।३४।२, ५।३४।३, ५।४१।७, ५।४२।२, ५।५७।११, ६।३।६, ६।३५।७, ६।४०।६, ६।४३।१, ६।४५।४, ६।४५।५, ६।५५।१, ६।६१।१८, ६।६६।१, ६।७०।२, ६।७१, ६।७३, ६।७४।१, ६।८१।२, ६।९४, ६।१०२।३, ६।११२।६, ६।११७ख, ७।५।छं० २, ७।६।७, ७।९।६, ७।१०।१, ७।२४।९, ७।३२।७, ७।४७, ७।५०।९, ७।५२।१, ७।५२।६, ७।५२।७), अन्तिम छ प्रश्नों का उत्तर देते हुए – (७।५७।४, ७।५८।१, ७।६१।२, ७।६२।७, ७।६२।१०, ७।६४।७, ७।६८।७, ७।६९,ख, ७।९५।१, ७।११२ख, ७।११५।५, ७।१२५।१०, ७।१२५ख, ७।१२६।७, ७।१२७, ७।१२९।१)।

उल्लेख – (१।४०।७, १।४३क, १।९४, १।९५।छं०, १।९९।५, १।१५२, १।१५३।१, १।२३१।२, १।२३४।२, १।३०१)। जातिवाचक संज्ञा रूप में प्रयोग –(१।१४८।३)।

१. सती के लिए –

मूल शब्द – १।४८।२, १।५१।५, १।५८।३, १।६२।४, १।६३।१।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **उमा** (मुख्यतः पार्वती के लिए) – १।५३।१।

जग जननि (पार्वती और सीता भी) – १।४८।२।

दच्छकुमारि – १।६२। दच्छकुमारी – १।४८।६, १।५५।७।

दच्छसुता – १।५२।५।

प्रजेसकुमारी — १।६०।१

सती (एक स्थान पर पार्वती के लिए) — १।४८।२, १।४८।ख, १।५०।४, १।५०।५, १।५१।६, १।५२।४, १।५२।८, १।५३।३, १।५३।५, १।५३, १।५४।३, १।५४।४, १।५४, १।५५।५, १।५६।१, १।५६।४, १।५६।५, १।५६।७, १।५६।८, १।५७।२, १।५७।६, १।५७।८, १।५७क, १।५८।५, १।५८, १।५९।१, १।६०।३, १।६१।३, १।६१।८, १।६३।३, १।६३।४, १।६३।८, १।६४, १।६५।५, १।७५।७, १।७९।८, १।८३।२, १।९८।५, १।९८।६, १।९८।छं०, १।१०४।७, १।१४१।४, ७।५६।२।

२. पार्वती के लिए —

मूल शब्द — १।१।श्लो० २, १।१५।३, १।१९।६, १।३३।१, १।४३क, १।४७।८, १।६७।२, १।७२।८, १।७३।५, १।७५।१, १।८०।४, १।८१।८, १।८९।८, १।९०।१, १।९०, १।९७।५, १।९८।२, १।९९।५, १।१००।८, १।१०१।२, १।१०२।८, १।१०३।४, १।१०७।२, १।११४।७, १।११९।५, १।१२२।३, १।१४०।७, १।१४१।४, १।१८४।३, १।२००।२, १।२३५।४, १।२३६।५, १।२३६।छं०, १।२४७।५, १।२५७।५, १।३१८।६, २।२८५।४, ३।२।१४, ३।१०।१०, ३।२४।८, ५।२०।३, ५।३४।२, ५।४२।२, ५।५७।११, ६।४५।५, ६।७०।२, ६।७४।१, ७।१०।१, ७।३२।७, ७।५२।७, ७।६१।२, ७।६२।१०, ७।६४।७, ७।६८।७, ७।११५।५, ७।१२९।७ भवानि — १।१००।छं०, १।१००, १।१२० ख, ४।१।सो०।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **अंबिका** — १।६६।२।

अजा — १।९८।३।

अनादि सक्ति — १।९८।३।

अपरना (अपर्णा — जिसने पत्तों का आहार भी त्याग दिया) — १।७४।७।

अबिनासिनि — १।९८।३।

उमा (एक स्थान पर सती के लिए) — १।१०।२, १।३०।३, १।३५, १।४०।७, १।४७, १।६५।७, १।६७।२, १।६८।१, १।६८।४, १।६९।२, १।७१।४, १।७२।६, १।७३।७, १।७४।१, १।७४।७, १।७४।८, १।७५।६, १।८२।२, १।९५।छं, १।९७।२, १।९७।छं०, १।१००।५, १।१०१, १।१०२।२, १।१०२।छं०, १।१०३।छं०, १।१०५।८, १।१०७।५, १।१११।६, १।११४।६, १।११७।४, १।१२०।८, १।१२०क, १।१२०घ, १।१४१।७, १।१४८।३, १।१५२, १।३१५, १।३२२।७, ३।१।सो०, ३।२३।८, ३।३३।३, ३।३९।१, ३।३९।५, ४।२।५, ४।११।७, ४।१२।१, ४।१८।६, ४।२२।१, ५।३।९, ५।३४।३, ५।४१।७, ६।३५।७, ६।४०।६, ६।४३।१, ६।४५।४, ६।६१।१८, ६।६६।१, ६।८१।२, ६।९४, ६।१०२।३, ६।१११।११, ६।११२।६, ६।११७ ख, ७।६।७, ७।९।९, ७।२४।९, ७।४७, ७।५२।६, ७।५२।८, ७।५५, ७।५७।४, ७।६०, ७।६२।७, ७।६९ख, ७।९५।१, ७।११२ख, ७।१२५।१०, ७।१२७, ७।१३०।१।

गजबदन षडानन माता — १।२३५।६।

गिरिजा — १।१५।५, १।६६।३, १।६८।३, १।७०, १।७१।५, १।७२।५, १।७५।५, १।७६।८, १।८२।१, १।९८।छं०, १।१०१।६, १।१०३।६, १।११३।८, १।११८।३, १।११९, १।१२१।१, १।१२४।६, १।१५३।१, १।१८५।४, १।१९६।३, १।२२८।२, १।२२८।४, १।३२४।छं० ४, १।३४७।८, ५।२६।७, ५।४८।१, ६।३।६, ६।५५।१, ६।७१, ६।७३, ७।५०।९, ७।५२।१, ७।५८।१, ७।१२५ ख, ७।१२९।१, ७।१२९।७।

गिरिनंदिनि — १।३१।९।

गिरिबरराज किसोरी — १।२३५।५।

गिरिराजकुमारी — १।११२।६, १।११४।२। गिरिराजकुमारि — १।७४, १।११५।

गिरीसकुमारी — १।९६।६।

गौरि — १।१५, १।७८।१, १।२२८।५, १।२३१।२, १।२३४।२, १।२३६।६, १।२३६।छं०, १।२३६, १।३०१, १।३२३।छं०१, १।३२७।छं० २, २।२४५।२, २।२७३।४, ७।५५।६।

जग जननि (सती और सीता भी) — १।१००।छं०।

जगतजननि (सीता भी) — १।२३५।६।

जगतमातु – १।७२।८।

जगदंबा (सीता भी) – १।८१।७, १।६४, १।६८।२।

जगदंबिका (सीता भी) – १।८१।८, १।१००।७।

पारबती – १।६५।६, १।७१, १।७३, १।७६।७, १।७७, १।८६।४, १।६६।१, १।१०७।२, २।११८।१।

पारबति – १।११२।

पुरारि पिआरी – १।२३६।१।

भवभामा – १।१००।७।

भूधरसुता – २।१।श्लो०१।

माया (ब्रह्म की शक्ति माया एवं सीता भी) – १।८१।

संकर प्रिया – १।६८।छं०।

संभु अरधंग निवासिनि – १।६८।३।

सती – ७।५५।७।

सिवा – १।१५।८, १।३५।११, ७।५।छं० २।

सैलकुमारी – १।७३।१, १।७८।२, १।१०७।६, १।१४१।१।

सैलजा – १।७६।

हिमसैलसुता – १।४२।२।

भादव – भादों, भाद्र, भाद्रपद। चान्द्र वर्ष के षष्ठ मास का नाम।

यह वर्षाकाल का अंश। रामभक्तिरूपी वर्षाऋतु में 'राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास' (१।१६)।

भुवन – दे० 'ब्रह्मांड'।

भुसुंडि – दे० 'काकभुसुंडि'।

भूमि – भवन्ति भूतान्यस्यामिति। ह० को०। इस पर सबके भवन होने के कारण यह नाम। ब्र० पु० प्र० ६।

[ये ब्रह्मा-पुत्री। महा० अनु० १५४।२। विष्णु-महिषी। ब्र० पु० प्र० ८, भा० ३।१३।४२, वा० रा० १।४०।२। पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी। पात्र। लोक या सम्पूर्ण पृथ्वी। पंचमहाभूतों में अन्तिम।

इनकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के (१।) पैरों से (भा० ३।६।२७), (२) रोमकूपों से (ब्र० पु० प्र० ८)। रामानुज सम्प्रदाय में श्रीदेवी के साथ ये (भूदेवी) भी विष्णु-पत्नी। ब्र० पु० में इनके श्रीविग्रह का वर्ण स्वच्छ कमल-सा उज्ज्वल। मनोहर रूप धारण कर भगवान् वराह का इन्हें पत्नी बनाना। इनके साथ एक दिव्य वर्ष तक एकान्त विलास। इनसे मंगल का और मंगल से घटेश का जन्म। प्रथम वराह द्वारा, फिर देवतादि द्वारा इनका पूजन। ये अम्बुवाची में (सौरमास से आर्द्रा नक्षत्र के प्रथम चरण में) ऋतुमती। ब्र० पु० प्र० ८। भा० में इनका पुत्र भौमासुर (नरकासुर)। कृष्ण द्वारा उसका वध होने पर इनका कृष्ण के पास जाना। भौमासुर द्वारा अपहृत अदिति के कुण्डल और वरुण का छत्र लौटाकर भौमासुर-पुत्र भगदत्त के लिए अभय माँगना। भा० १०।५६। जगत् के समक्ष सतीत्व प्रमाणित करने के लिए सीता की इनसे अपने विवर में स्थान देने की प्रार्थना। एक दिव्य सिंहासनसहित इनका प्राकट्य और सीता का अभिनन्दन कर, उन्हें सिंहासनारूढ़ कर, रसातल में ले जाना। वा० रा० ७।६७।१३-२०। राम के परधाम-गमन के समय ये (भूदेवी) भी उनके वामभाग में विराजमान। वा० रा० ७।१०६।६।

पृथु के राज्याभिषेक के समय इनका अन्न-औषधादि को अपने भीतर छिपाना। पृथु-कोप से भीत हो गोरूप धर भागना। किसी लोक में त्राण न पा अन्ततः पृथु-शरण। रक्षा की प्रार्थना। भा० ४।१७।१३-१८। पृथु एवं ऋषियों, देवों, दानवों द्वारा इनका (इनके गोरूप का) दोहन और अभीष्ट द्रव्य-प्राप्ति। भा० ४।१८।१२-२६। ये सर्वकामदुहा। पृथु का इन्हें कन्यारूप में स्वीकारना। (अतः इनका नाम पृथ्वी।) पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार समतल करना। भा० ४।१८।२८-२६। राजा अंग का इन्हें ब्राह्मणों को दान करने का विचार। क्षुब्ध हो इनका भूमित्व-त्याग और ब्रह्मलोकगमन। इनके स्थूल विग्रह में महर्षि कश्यप का प्रवेश। लौटकर इनकी कश्यप को प्रणति। उनकी पुत्री बनना। तब से नाम काश्यपी। महा० अनु० १५४।१-७। इनमें शिव-तेज की व्याप्ति और अग्नि के सहयोग से कार्त्तिकेय-जन्म। अतः इन्हें बहुतों की भार्या एवं पुत्रहीन्न होने का उमा-शाप। वा० रा० १।३६।२३-२४। यज्ञों में

देवतारूप से इनका भाग लेना। भा० ४।१७।२२। इनके द्वारा इन्द्र की ब्रह्महत्या का चतुर्थांश ग्रहण। इसीलिए कहीं-कहीं ऊसर। भा० ६।६।६। भगवान् वामन ब्रह्मचारी को इनके द्वारा कृष्णमृग-चर्म-दान। भा० ८।१८।१५।

वैदिक साहित्य में द्यौ (आकाश) के साथ 'द्यावापृथिवी' के रूप में इनका उल्लेख। ये देवताओं की जननी। 'सृष्टिज्येष्ठ', 'प्रथम सृष्टि'। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में ये माता और मनुष्य पुत्र। हि० ध० 'पृथिवी'।

पृथ्वी की पौराणिक स्थिति – सबसे नीचे वराह। उनके ऊपर कच्छप। उन पर शेषनाग, पृथ्वी को स्थिर रूप से धारण किये हुए (तथा महीं धारयितास्मि निश्चलां। महा० आदि० ३६।२०।) दे० 'कच्छपु'। विभिन्न दिशाओं में दिग्गज भी सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करते हैं (धारयन्ति महीं कृत्स्नां। महा० अनु० १३२।३।) दिग्गजों की संख्या और नाम के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं। यज्ञ-अश्व की खोज में पृथ्वी खोदते हुए सगर-पुत्रों को चार दिग्गजों के दर्शन– पूर्व में विरूपाक्ष, दक्षिण में महापद्म, पश्चिम में सौमनस और उत्तर में श्वेतभद्र अथवा भद्र। वा० रा० १।४०।१३-२३। भा० के अनुसार सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए ब्रह्मा द्वारा लोकालोक पर्वत (त्रिलोकी से बाहर उसके चारों ओर सीमा के रूप में परमात्मा द्वारा स्थापित पर्वत। भा० ५।२०।३७।) पर चार गजराज नियुक्त – ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन, अपराजित। भा० ५।२०।३६। अमर० में दिग्गजों की संख्या आठ – पूर्व दिशा में ऐरावत, पूर्व-दक्षिण में पुण्डरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिण-पश्चिम में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर में पुष्पदन्त, उत्तर में सार्वभौम और उत्तर-पूर्व में सुप्रतीक। इनकी स्त्रियों के नाम क्रमशः अभ्रमु, कपिला, पिंगला, अनुपमा, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अंगना और अंजनावती। अमर० १।८७-८८। मानस के १।२६०।१ में क्रम-विपर्यय; उपर्युक्त स्थिति का स्पष्टीकरण ५।३५।छं० २ में (गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर…)।

महाभूत-रूप – यह जल के विकार से उत्पन्न। इसका गुण (और तन्मात्रा) गन्ध। इसमें कारण-तत्व आकाश, वायु, तेज, जल के गुण क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस विद्यमान। भा० २।५।२६। जल-प्रलय में इसका गुण गन्ध जल द्वारा ग्रस्त। गन्धहीन होने पर इसका प्रलय, यह जल में मिलकर जलरूप। भा० १२।४।१४।]

पृथ्वी-भय दूर करने के लिए लक्ष्मणावतार का कथन (१।१७।७)। रामनाम के दो अक्षर इसके धारक (१।२०।७)। यहाँ रामकथा 'सुधा तरंगिनि'; वह इसके सदृश विश्व-भार वहन करने में समर्थ (१।३१।८, १०)। इसका भार तपोबल से शेष द्वारा धारण (१।७३।४)। अधर्म-अनीति से विप्र-धेनु-सुर के साथ इसके पीड़ित होने का कथन (१।१२१।७)। 'हरि भंजन भुवि भार' (१।१३६)। इस पर भानुप्रताप के राज्य का उल्लेख (१।१५४।८)। उनके राज्य में इसका कामधेनु-सा होना (१।१५५।१)। इस पर रिपुहीन एकच्छत्र राज्य की कपटी मुनि से उनकी वर-याचना (१।१६४)। रावण-निशिचर-अत्याचार से यह भीत, व्याकुल। गिरि-सरि-सरं का भार इसे सह्य, किन्तु परद्रोही का असह्य। विपरीत धर्माचरण देख रावण-भय से मूक-दीन इसका गोरूप में सुर-मुनियों के पास जाना। [अ० रा० १।२।६ में भी। भागवत में कंस-राजत्व में आक्रान्त हो इसका गोरूप में रोते हुए सीधे ब्रह्मा के पास जा दुःख-गाथा सुनाना। भा० १०।१।१७-१८।] सबके साथ ब्रह्मा की शरण में जाने पर उनका इसे आश्वासन और प्रभु-चरण-स्मरण का उपदेश (१।१८४।४-१।१८४)। सुरसहित इसे भयभीत जान और ब्रह्मा-स्तुति से प्रसन्न हो आकाशवाणी – कोसलपुर में सशक्ति अवतार ले इसके भार-हरण की प्रभु की प्रतिज्ञा। ब्रह्मा का इसे समझाना। अभय पा इसे सन्तोष (१।१८६-१।१८७।६)। वानर-देह धर प्रभुपद-सेवा करने का ब्रह्मा-आदेश पालन कर देवताओं का यहाँ अवतीर्ण होना। इसके मन को शान्ति (१।१८७-१।१८८।३)।

राम के रोम-रोम में कौसल्या को अनेक पृथ्वियों के दर्शन (१।२०२।१)। इसके भार-हरण के लिए प्रभु-अवतार का विश्वामित्र को ज्ञान (१।२०६।६)। विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को धरती पर गंगा के अवतरण की कथा सुनाना (१।२१२।२)। 'बीर बिहीन मही मैं जानी'। पहले जानने पर ऐसा प्रण न करने का जनक-कथन (१।२५२।३, ६)। लक्ष्मण के कोप-वचन से इसका डगमगाना (१।२५४।१)। शिव-धनुष की ओर राम के ताकते ही दिग्गज, कच्छप, शेष, वराह के साथ इसे धीरज धरने और सजग होने का लक्ष्मण-आदेश। धनुष-भंग की भीषण ध्वनि से इसका डोलना (१।२६०।१, १।२६१।छं०)। राम के सीता-वरण का यश व्याप्त (१।२६५।५)। क्रुद्ध परशुराम की जनक-राज्य की पृथ्वी उलटने की धमकी (१।२७०।४)। बहुबार इसे भुजबल से भूपविहीन कर ब्राह्मणों को दान करने का उनका कथन (१।२७२।७)। पुण्यपुरुष के लिए इसके सुखाच्छादित होने का वसिष्ठ-कथन (१।२६४।१)। 'भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी' (१।३५५।६)। पितृमोदकारी पुत्र का जीवन यहाँ धन्य (२।४६।१)।

भक्त, ब्राह्मण, गो, सुर और पृथ्वी के लिए राम की मनुष्य-लीला — लक्ष्मण का निषाद को प्रबोध (२।९३)। इसके शेष-शीश पर रहने तक सीता के सुहागिन होने की ग्रामवधुओं की आशिष (२।११७)। उन्हें राज्य देते ही इसके रसातल में जाने का ग्लानि-विकल भरत का वसिष्ठ से कथन (२।१७६।२)। इसके लिए अ-भक्त भार (२।१९०।८)। भरत के प्रति भरद्वाज-कथन कि उनके यश-चन्द्र से पृथ्वी पर भी अमृत सुलभ (२।२०९।६)। भरत को मोहासक्ति से परे बताने के लिए अलंकार रूप से इसकी क्षमाशीलता का उल्लेख (२।२३२।२)। इस पर धर्म-धुरी-धारक एकमात्र भरत (२।२३३।१)। उनका प्रेम यहाँ जड़ को चेतन, चेतन को जड़ करने में समर्थ (२।२३८।८)। 'भरत भूमि रह राउरि राखी' (२।२६४।१)। विमल गुण-सम्पन्न मति के उपमानरूप में इसका प्रयोग (२।२९७।३)। अत्रि के साथ भरतादि के राम-वन-भ्रमण के समय इसका मार्गों को सुन्दर-कोमल बनाना (२।३११।६)। 'निसिचर हीन करउँ महि' — राम-प्रतिज्ञा (३।९)। 'नौमि राम भंजन महि भारं' — सुतीक्ष्ण-स्तुति (३।११।१२)। इसे निशाचरहीन करने के राम-संकल्प के सम्बन्ध में रावण-सभा में शूर्पणखा-कथन (३।२२।४)। पंचतत्वों में एक (४।११।४)। सुर-महि-गो-द्विज के लिए प्रभु के स्वेच्छया अवतरण का जामवंत-कथन (४।२६)। वानर-सेना-प्रयाण के समय इसका डोलना (५।३५।छं० १)। इसके भार-हरण के लिए प्रभु-अवतार का रावण-प्रति मन्दोदरी-कथन (६।६।८)। इसे वानरहीन करने का रावण-आदेश (६।३३।२)। राम के धनुष-बाण फेरते ही ब्रह्माण्डसहित इसका डगमगाना (६।८६।छं०)। रण में राम के कोप से कच्छप आदि के साथ इसका त्रस्त होना। दिग्गजों का इसे दाँतों से पकड़ना (६।९१।छं०)। इसका काँपना अनेक अपशकुनों में एक (६।१०२।छं०)। रावण-भय से इसके डोलने का विलखती मन्दोदरी द्वारा कथन (६।१०४।५)। राम द्वारा इसके कष्ट-निवारण का शम्भु-स्तुति में उल्लेख (७।१४।छं० २)।

राजा राम इसके एकमात्र स्वामी (७।२२।१)। राम-राज्य में यह कृषि-सम्पन्न। चन्द्र-किरणों से पूर्ण (७।२३।६, ७।२३)। 'भार महि खंडित' (७।५१।५)। भुशुण्डि को राम-मुख में भिन्न-भिन्न प्रकार की पृथ्वियों के दर्शन (७।८१।४)। 'बिनु महि गंध कि पावइ कोई' (७।९०।४)। कलिकाल में यहाँ अनावृष्टि, इस पर धान न उगना (७।१०१ ख)। इसका भूषण रामप्रेमी (७।१२७।१)। सती-वियोगी हरिलीन शिव, माया-मुक्त नारद, सुखमग्न संतों का इस पर विचरण (१।७५, १।१३८।८, ७।१४।छं० ८)। राम का इसके भार-भंजक के रूप में उल्लेख (३।२३।३, ४।१, ६।१११।छं० ३, ६।११३।तो० ३, ७।३०।१०), इसके भूषणरूप में उल्लेख (३।३२।छं०१, ६।१११।११, ६।११५।छं० ५, ७।१४।छं०३, ७।३५।६), इसके पालक रूप में उल्लेख (१।१८६।छं०१)।

मूल शब्द — (लोक) — १।१७।७, १।१५५।१, (पात्र) — १।१८४।छं०, १।१८६, (लोक)—१।१८७।७, (पात्र) — १।१८८।१, (लोक) — १।२७२।७, २।९३, २।२६४।१, ६।१२।५, ७।२२।१, ७।८०।६ (जाति०)।

पर्याय — **अवनि** — (लोक) — १।१५४।८, २।२८७।४।

छमा — (लोक) — १।३१।१०, ६।१११।छं० ११।

छिति — (लोक) — १।१८८।३, (तत्व) — ४।११।४।

छोनी — (पात्र) — २।२३२।२, (लोक) — २।२९७।३।

जगतीतल — (लोक) — २।४६।१।

धरनि — (लोक) — १।१६७।८, (पात्र) — १।१८४, १।१८७।९, (लोक)— १।२६०।१, २।२३३।१।

धरनी — (पात्र) — १।१२१।७, (लोक) — १।१८६।छं० १, १।१।३५५।६, ३।२२।४, ४।१, (तत्व) — ५।५९।२, (लोक) — ६।१०४।५, ७।२३।६, ७।३५।६, ७।१०१ ख, ७।१२५।६।

धरा — (पात्र) — १।१८४।४।

बसुधा — (लोक) — १।२०।७, १।३१।८, २।२०९।६।

भुबि — (लोक) — १।१३६, १।२५२।६।

भू — (लोक) — ६।९१।छं०।

भूतल — (लोक) — २।२३८।८।

महि — (लोक) — १।७३।४, १।७५, १।१३८।८, १।१६४, १।१८७, १।२०२।१ (जाति०), १।२१२।२, १।२५४।१, १।२६०।छं०, १।२६५।५, १।२७०।४, १।२९४।१, २।११७, २।१९०।८, (पात्र) — २।३११।६, (लोक)

– ३।६, ३।११।१२, ३।२३।३, ४।२६, ५।३५।छं० १, ६।३३।२, ६।८६।छं०, ६।१११।छं० ३, ६।११५।छं० ५, ७।१४।छं० २, ७।२३, ७।३०।१०, ७।५१।५, ७।५२।४, ७।८१।४ (जाति०), (तत्व) – ७।६०।४, (लोक) –७।१२७।१ **मही** – (लोक) – १।२५२।३, ३।३२।छं० १, ६।१०२।छं०, ७।१४।छं० ८।

रसा – (लोक) – २।१७६।२।

भृंगी – शिव के एक गण। आ० को०, बृ० को०। एक महर्षि जिनके द्वारा भृंगीरूप में शिव की परिक्रमा। पी० ई०।

[अमर० में नन्दी या नन्दीश्वर का ही एक नाम भृंगी – शृंगी भृंगी रिटिस्तुण्डी नन्दिको नन्दिकेश्वरः। अमर० १।४६। इस दृष्टि से ये ही नन्दीश्वर – शिव के अंश से उत्पन्न शिलाद मुनि के अयोजित पुत्र। पाँचवें वर्ष में इनके द्वारा सांगोपांग सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों का अध्ययन। सातवें वर्ष में मित्रावरुण-कथन—इनकी आयु एक वर्ष से अधिक नहीं। तब मृत्यु – विजय के लिए इनके द्वारा सदाशिव का ध्यान और रुद्र-मन्त्र का जप। प्रसन्न शिव का इन्हें वरदान – ये अजर, अमर, अव्यय, अक्षय होकर सदा उनके गणनायक रहेंगे। शिव-माल्य धारण कर ये त्रिनेत्र और दशमुख। पार्वती के लिए पुत्र-सदृश। गणनायकों के अध्यक्ष-पद पर इनका अभिषेक। मरुतों की कन्या सुयशा से विवाह। शिव का पुनः वरदान – ये ऐश्वर्य-सम्पन्न, महायोगी, महाबली, महान् धर्नुधर, अजेय, सदा पूज्य हों। उनसे (शिव से) कभी विलग न हों। सुयशा को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न और जन्म-मरण से मुक्त होने का उमा का वरदान। सं० शि० पु० शत० पृ० ३०५-३०८।

वा० रा० में '··· भगवान् नन्दी शंकरस्यापरा तनुः'। ७।१६।१५। कुमार० ३।४१, प० पु० उ० २५५।२७ आदि में शिव के द्वारपाल। मा० पी० १।६३।४ शब्दार्थ के अनुसार ये कामरूप; जब जो रूप और जितने रूप चाहें, बन सकते हैं। ये शिव के वाहन भी और द्वारपाल भी।

स० ब्र० पु० कृ० पृ० ४५६ में शंकर के वाहन कृष्ण के ही स्वरूप। शिव-त्रिपुर संग्राम में जब शिव धराशायी, तब कृष्ण का वृषभरूप धर सींगों से उन्हें उठाना। तब से कृष्ण वृषरूप से अपने प्रिय भक्त शंकर के वाहन।]

विष्णु के प्रिय वचन सुन शंकर का इन्हें भेजकर सब गणों को बुलाना (१।६३।४)।

भृगु – एक महर्षि। भगवान् की विभूति। गीता० १०।२५। इनकी गणना चार मूल गोत्रप्रवर्त्तक ऋषियों में (महा० शा० २६६।१७), इक्कीस प्रजापतियों में (महा० शा० ३३४।३५)।

(१.) (क) ब्रह्मा > भृगु ~ ख्याति (कर्दम-देवहूति-कन्या) > (१) धाता ~ आयति (मेरु-पुत्री) > मृकण्ड > मार्कण्डेय, (२) विधाता ~ नियति (मेरु-कन्या) > प्राण > वेदशिरा, (३) श्री नाम की कन्या।

(ख) भृगु > कवि > उशना (शुक्राचार्य)।

भा० ३।१२।२१,२२, ४।१।४३-४५।

(२) नवम आदित्य वरुण ~ चर्षणी > भृगु (पुनर्जन्म)। भा० ६।६।३६, ६।१८।४।

[प्रजापति दक्ष के वृहस्पतिसव महायज्ञ में ये अध्वर्यु। वहाँ सती के देह-त्याग करने पर शंकर-पार्षदों का आक्रमण देख, उनके नाश के लिए, इनका दक्षिणाग्नि में आहुति देना। फलतः यज्ञकुण्ड से प्रकट ऋभु नामक देवताओं द्वारा यज्ञ की रक्षा। भा० ४।४।३१-३४। वहाँ मणिमान पार्षद का इन्हें बाँधना। वीरभद्र का इनकी दाढ़ी-मूँछ नोचना, क्योंकि प्रजापतियों की सभा में मूँछें ऐंठते हुए इन्होंने शिव का उपहास किया था। भा० ४।५।१७, १६। शिव-अनुग्रह से इन्हें बकरे की-सी दाढ़ी-मूँछ की प्राप्ति। भा० ४।६।५१, ४।७।५।

एक बार देवासुर-संग्राम में देवताओं से पीड़ित दैत्य इनकी पत्नी के शरणागत। उनका दैत्यों को अभय देकर अपने आश्रम पर रखना। तब विष्णु द्वारा उनका शिरश्छेदन। अपनी पत्नी का वध हुआ देख इनका विष्णु को शाप – मनुष्य-लोक में जन्म लेकर अनेक वर्षों तक वे पत्नी-वियोग का कष्ट सहें। शाप देकर इन्हें पश्चात्ताप। शाप विफल न हो, इसके लिए विष्णु की आराधना। वा० रा० ७।५१।११-१८। प० पु० में लक्ष्मी का पक्षपात करने के कारण विष्णु को इनका शाप। दे० 'लच्छि'।

एक बार ऋषियों में वाद-विवाद कि त्रिदेव में श्रेष्ठ कौन। तीनों देवों की परीक्षा के लिए ये प्रेरित। पहले ब्रह्मा की सभा में जाकर इनका उन्हें नमस्कार तक न करना। इससे ब्रह्मा मन-ही-मन क्रुद्ध। वहाँ से इनका

कैलास-गमन। खड़े होकर आनन्द से इनका आलिंगन करने के लिए प्रस्तुत शिव का इनके द्वारा तिरस्कार। कुपित शिव इन पर त्रिशूल-प्रहार के लिए उद्यत। सती का उन्हें शान्त करना। वैकुण्ठ में लक्ष्मी की गोद में सिर रखकर विष्णु को लेटे देख उनके वक्ष पर इनका पद-प्रहार। तत्क्षण लक्ष्मी-सहित उठकर विष्णु का इन्हें नमन। अपने अपराध क्षमा कराना। इनके चरणों की वन्दना करना, सहलाना। उनका कथन— इनके चरणों से चिह्नित उनके वक्षःस्थल पर लक्ष्मी सदा निवास करेंगी। (यह चिह्न 'भृगुलता' या 'भृगुरेखा' नाम से प्रसिद्ध। बृ० को०।) ये तृप्त और भक्ति-विह्वल। लौटकर ऋषियों से अपना अनुभव कहना। तब से विष्णु की श्रेष्ठता सबको मान्य। भा० १०।८६।१-१५। प० पु० में ब्रह्मा द्वारा अभिनन्दित न होने के कारण उन्हें सर्वलोक में अपूज्य होने का इनका शाप (...त्वं सर्वलोकानामपूज्यत्वं समाप्नुहि। २५५।४८)! शिव-द्वार पर ही नन्दी का इन्हें रोकना, क्योंकि शिव उस समय शिवा के साथ क्रीड़ारत। क्रोध से इनका शिव को लिंगरूप होने का शाप (योनिलिंगस्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति। २५५।३३)। विष्णु के सत्व-शील से प्रसन्न हो उनकी स्तुति। प० पु० उ० २५५।२०-११४।

महा० में — ये ब्रह्मा द्वारा वरुण-यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न। आदि० ५।७-८। भृग् (अग्नि-ज्वाला) से उत्पन्न होने के कारण भृगु। अनु० ८५।१०५-१०६। इनकी पत्नी पुलोमा। आदि० ५।१३। इनके पुत्र कवि (जो शुक्र के पिता) एवं च्यवन। आदि० ६६।४२, ४४, ४५। अन्यत्र, इनके पुत्र — च्यवन, वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, शुक्र, वरेण्य, सवन। सब भृगुवंशी 'वारुणी' कहलाते हैं। अनु० ८५।१२८-१२६। उमा को पाने में विफल हो जाने पर इनका हिमालय को शाप — वे रत्नों के भण्डार नहीं रहेंगे। शा० ३४२।६२। पत्नी पुलोमा के हरण का रहस्य जानकर इनका अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप। आदि० ६।१४। इनका नहुष को शाप। दे० 'नहुष'।

वैदिक साहित्य में भृगु पुरोहितों का एक गण। ऋग्वेद में अग्नि-पूजकों के रूप में इनका उल्लेख (ऋ० १।५८।६) मन्थन करते हुए इन लोगों ने अग्नि का आवाहन किया (ऋ० १।१२७)। प्रशस्ति-गीतों से अग्नि को लकड़ी में प्रकाशित किया (ऋ० १०।१२२)। अग्नि को पृथ्वी की नाभि तक लाये (ऋ० १।१४३)। व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी भृगु का अर्थ 'प्रकाशमान्' (भ्राज = प्रकाशित होना)। प्रा० च० पृ० ५८४-८५।]

शिव-गणों को दक्ष-यज्ञ-ध्वंस करते देख इनके द्वारा यज्ञ की रक्षा (१।६४)।

भोगावति (भोगावती) — पाताल लोक में नागों की पुरी भोगावती। भोगप्रधान पुरियों में एक। वि० १।१७८।७ व्या०। [वा० रा० ४।४१।३४-३६ में यह कुंजर पर्वत पर स्थित।]

लंकापुरी इससे अधिक सुन्दर और दुर्धर्ष (१।१७८।७)।

भौमबार — मंगलवार। हनुमान् का दिन।

इस दिन (१) राम का प्राकट्य, (२) तुलसी द्वारा रामचरित-मानस-रचना-आरम्भ (१।३४।४-५)। [वि० १।१६० व्या० पाद० में उद्धृत भृगुसंहिता, भृगु-शुक्र-संवाद ३६।२० में भी राम-जन्म इसी दिन।]

मूल शब्द — १।३४।५।

मंथरा—(मन्थर = मन्द, अकर्मण्य, नीच, वक्र। आ० को०।) दुन्दुभी नामक गन्धर्वी के अंश से उत्पन्न। कैकेयी की दासी। महा० वन० २७६।१०।

[देवकार्य-सिद्धि के लिए जिस तरह देव-गन्धर्व आदि के अंशों से रीछ-वानरों का जन्म, उसी तरह इसका भी। वैर पैदा करने के इसके कर्तव्य का ब्रह्मा द्वारा निर्देश। महा० वन० २७६।१५-१६। यह कुबड़ी और त्रिवक्र —तीन स्थानों में टेढ़ी। अ० रा० २।२।४७ कैकेयी के साथ मायके से इसका अवध-आगमन। वा० रा० २।७।१।]

यह मन्दमति। कैकेयी की दासी। इसे अयश की पिटारी बनाकर सरस्वती का इसकी बुद्धि फेरना (२।१२)। यह नीच जाति की, दुर्बुद्धि। राम के राजतिलक और मंगलोत्सव से इसके मन में दाह। रातोंरात विघ्न उपस्थित करने का उपाय-विचार (२।१३।१-४)। कैकेयी के पास जा त्रियाचरित्र करना, बिलखना। हँसकर कैकेयी के पूछने पर यह 'छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि'। चारों भाइयों के सम्बन्ध में रानी के कुशल-प्रश्न से यह पीड़ित (२।१३।५-२।१३)। इसका विष-वपन — विधाता अब केवल कौसल्या के अनुकूल। कैकेयी राजा को वशीभूत समझकर निश्चिन्त, किन्तु राजा के मन में कपट। भरत की अनुपस्थिति में राम के राजतिलक का आयोजन (२।१४।१-६)। समाचार सुन प्रसन्न कैकेयी द्वारा इसका कुबरी, कुटिल, कुचाली कहकर तिरस्कार। उनकी जिज्ञासा —सुख के अवसर पर इसे विषाद क्यों? (२।१४।७-२।१५)। इसके गूढ़, कपटभरे प्रिय वचन सुन रानी को

देवमायावश इस पर विश्वास। [अ० रा० २।२।४५ में सरस्वती का पहले मन्थरा में, फिर कैकेयी में प्रवेश। वा० रा० में सरस्वती के मति फेरने का उल्लेख नहीं।] रानी का इसे सुहृद समझना, किन्तु वस्तुतः यह बैरिन (२।१६)। अपना छल-विस्तार कर, रानी के बार-बार पूछने पर इसका कथन — कैकेयी के प्रति राजा के विशेष प्रेम से कौसल्या को ईर्ष्या। भरत का ननिहाल-गमन और राम का राजतिलक उन्हीं का षड्यन्त्र। राजतिलक की तैयारियाँ होते एक पक्ष व्यतीत और कैकेयी अन्धकार में! (वस्तुतः तैयारियाँ आज ही आरम्भ और समाप्त।) यह दुरभिसन्धि का प्रमाण। अनेक सपत्नियों के अत्याचार की कथा सुनाकर इसकी भविष्यवाणी — लक्ष्मण राम के सहायक होंगे और भरत कारागार में। कैकेयी दासी बनकर कौसल्या के अत्याचार सहने को बाध्य होंगी (२।१७।१-२।१९)। रानी को विकल और पूर्णतः अपने वश में देख इसका परामर्श — रानी कोपभवन में जायें। राजा के पास धरोहर के रूप में रखे दोनों वरदान माँग लें। 'सुतहि राम रामहि बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।' किन्तु वर-याचना वे राजा द्वारा राम के शपथ-ग्रहण के बाद ही करें। कैकेयी का इसे परम हितू समझना। मनोरथ पूर्ण होने पर इसे आँखों की पुतली बंनाने का उनका कथन (२।२०।१-२।२३।४)। यह 'कोटि कुटिल मनि'। कैकेयी की गुरु। कैकेयी-तलवार के रूपक में यह सान (२।२७।६, २।३१।२)। इसकी वचन-प्रेरणा कैकेयी रूपी क्रोध-नदी की भँवर (२।३४।३)। इसके द्वारा कैकेयी के प्रबोध का कथन (२।५०)। 'धै मंथरा सहाय बिचारी' — कैकेयी-कथन भरत से (२।१६०।१)। इसे वस्त्राभूषण-सज्जित देख क्रुद्ध शत्रुघ्न का इसके कूबड़ पर पदाघात। इसका मुँह के बल गिरना। सिर फूटना, दाँत टूटना, मुँह से रक्त-प्रवाह। इसे नख-शिख दुष्ट जान केश पकड़कर शत्रुघ्न का घसीटना। भरत का छुड़ाना (२।१६३।२-८)।

मूल शब्द — २।१२, २।१३।१, १।२०।५, २।१६०।१।

पर्याय — **कुबरी** — २।१३, २।२०।२, २।२१।३, २।२२।१, २।२३।१, २।१६३।२। कूबरी — २।३१।२, २।३४।३, २।५०।

मंदर — मन्दराचल। एक पर्वत का नांम।

[यह मेरु और धरणी का पुत्र। शि० पु० वा० पू० १७।५१। भा० में मेरु पर्वत की आधारभूत थूनियों (स्तम्भों) के समान चार पर्वतों में एक। (महा० वन० १३९।५ में इसकी स्थिति उत्तर में श्वेतगिरि के निकट।) दस हजार योजन ऊँचा। उतना की चौड़ा। इसके ऊपर ग्यारह सौ योजन ऊँचा एक विशाल आम्रवृक्ष। एक दुग्ध-सरोवर जिसका सेवन करनेवाले यज्ञ-किन्नरादि उपदेवों को योग-सिद्धियाँ प्राप्त। इसके नन्दननामक उपवन में प्रधान देवगणों का सुर-सुन्दरियोंसहित विहार। आम्रवृक्ष के स्वादिष्ट फलों के गिरने और फटने से बहनेवाला लाल रस अरुणोदा-नाम्नी नदी में परिणत। भा० ५।१६।७, ११-१७।

यह स्वर्ण-पर्वत। क्षीराब्धि-मन्थन के समय इसे मथानी बनाने के लिए देवासुरों का मिलकर इसे उखाड़ना। (महा० आदि० १८।७-८ में अनन्त द्वारा इसका उत्पादन।) सागर तक ले जाने में असमर्थ हो मार्ग में छोड़ देना। भगवान् का इसे उठाकर गरुड़ पर रखना और सागर-तक पर पहुँचाना। भा० ८।६।२२, ३३-३९। इसमें वासुकि नाग की नेती लपेटकर देवासुरों का सागर-मन्थन का प्रयत्न। भाराधिक्य और निराधार होने के कारण इसका समुद्र में डूबना। कच्छपरूप भगवान् का इसे अपनी पीठ पर धारण करना। इसके घूमने से उन्हें ऐसा आभास जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो। मन्थन-कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रभु का इसे हाथों से दबाकर इस पर स्थित होना। भा० ८।७।१-२, ६-१०, १२।]

भव-सागर-मन्थन के लिए मन्दराचलरूप — विष्णु (१।१८६।छं० ४), राम (३।४।छं० २, ६।११५।छं० ३)। समुद्र-मन्थन के रूपक में यह उपमान — शृंगार का (१।२४७।८), राम-विरह का (२।२३८), ज्ञान का (७।१२० क)। राम के चित्रकूट आने पर मेरु आदि पर्वतों-सहित इसके द्वारा भी चित्रकूट का यशोगान (२।१३८।६-७)। लंका में हनुमान् और अंगद, जैसे दो मन्दर सिन्धु मथ रहे हों (६।४५।७-८)। भुजा कटने पर कुम्भकर्ण 'पच्छहीन मंदर' के समान (६।७०।११)। [इन्द्र द्वारा पर्वतों के पक्षच्छेन की कथा के लिए दे० 'मैनाक'।] अतिशय गुरुता के उदाहरणरूप में इसका प्रयोग (१।२५६।४, २।७२।३, २।१३९।७)। पर्तमात्र के उपलक्षण-रूप में प्रयोग (६।७३।७)।

मूल शब्द — १।२५६।४, २।१३८।६, २।१३९।७, ६।४५।८ (जाति०), ६।७०।११, ६।७३।७ (पर्वतमात्र का उपलक्षण), ७।१२० क। मंदरु — १।२४७।८, २।७२।३, २।२३८।

मंदाकिनी – चित्रकूट की पुण्य नदी।

[इसका उद्‌गम ऋक्षवान् पर्वत में। ध० इ० तृ० पृ० १४६७। यह मुनि-सिद्ध-जनाकीर्ण। हंस-सारस-चक्रवाक-गज-मृग-वानर-सेवित, नानाविध पुष्पों से शोभित, तटवर्त्ती वृक्षों से वेष्टित। कुबेर की नलिनी-सी मनोरम। '… सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां न सोऽस्ति यः स्यान्न गतक्लमः सुखी।।' – स्वयं राम द्वारा सीता से इसकी प्रशंसा। इसे सरयू-सदृश मानने का उनका कथन। वा० रा० २।९५।३-१८। वा० रा० २।५६।३५ में इसका नाम 'माल्यवती'।]

यह पुनीत। पुराण-प्रशंसित। अत्रिप्रिया अनसूया द्वारा तपबल से आनीत गंगा की धारा। (दे० 'अनुसुइया'।) महापातक-नाशिनी (२।१३२।५-६)। [मंदाकिनी मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप त्रय ताप नसाई।। गी० २।४६। महा० में भी 'सर्वपापप्रणाशिनी'। यहाँ अवगाहन, देव-पितरों के पूजन से अश्वमेध यज्ञ-फल एवं परम गति-प्राप्ति। वन० ८५।५८-५९।] सिय-राम-लक्ष्मण का इसमें स्नान (२।१३२)। यहाँ का घाट राम को प्रिय। उनके आदेश से यहाँ ठहरने की व्यवस्था करने के लिए लक्ष्मण द्वारा स्थान-निरीक्षण। इस नदी के उत्तरी तट पर एक नाला—धनुष की तरह मण्डलाकार घूमा हुआ, दोनों ओर इससे मिला हुआ। लक्ष्मण का रूपक-कथन – नाला धनुष, नदी प्रत्यंचा, शम-दम-दान बाण, सकल कलि-कलुष अनेक लक्ष्य (निशाने), चित्रकूट अचल अहेरी जिसका निशाना अचूक (२।१३३।१-४)। [क० ७।१४२ में – मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ बारिधार, धीर धरि सुकर सुधारिहै।] गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि पुण्य-सलिलाओं के साथ सब नदी-नद-सर-सिन्धु द्वारा इसकी प्रशंसा (२।१३८।४-५)। यह शैल-शिरोमणि के समीप। इसके तट पर (पर्णकुटी में) राम-सिय-लक्ष्मण का वास (२।२२५।६)। भरत का समाजसहित इसमें स्नान। इसके तट पर सबको ठहराना (२।२३३।४-५)। राम का समाजसहित मज्जन (२।२४७।७)। इसके दर्शन से पाप-पुंज-नाश। अवध-समाज का इसमें त्रिकाल-स्नान (२।२४९।३)। इसमें अवगाहन-सुख-लाभ करते हुए राम-समीप वन-वास करने की दोनों समाज की लालसा (२।२८०।५-८)।

भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त इसकी नित्य भावात्मक सत्ता भी – भक्तिरसमयी रामकथा के रूप में। इसके श्रवण-कथन से साधक-सन्त का निर्मल चित (चित्रकूट) जब रामप्रेम-रसमग्न, तब उसमें सिय-राम का नित्य विहार-स्थल बनने की योग्यता (१।३१)।

मूल शब्द – १।३१, २।२३३।४, मंदाकिनि – २।१३२।६, २।१३८।५, २।२८०।६।
पर्याय – **पय** (पयस्विनी) – २।१३३।२, २।२२५।६, २।२४९।३।
सरित बर – २।१३२।
सुसरित – २।२४७।७।

मंदोदरी – रावण की महिषी। प्रातःस्मरणीय स्त्रियों में गण्य। मा० पी० ४।११।२ नोट २।
मय ~ हेमा (अप्सरा) > मन्दोदरी ~ रावण > मेघनाद।
वा० रा० ७।१२।५-६, १०, १९-२०, २८।

यह मय-तनया। परम सुन्दरी। मय का इसे रावण को अर्पित करना। ऐसी पत्नी पाकर वह प्रसन्न (१।१७८।२-३)। उसका अन्य रानियों के साथ इसे भी सीता की अनुचरी बनाने का कथन (५।९।४-५)। सीता को मारने के लिए उसके उद्यत होने पर इसका उसे नीति समझाना (५।१०।७)। चार बार इसका रावण को उपदेश – (१) लंकादहन के बाद से सब राक्षसों के आतंकित रहने की बात दूतियों से सुनकर यह व्याकुल। एकान्त में हाथ जोड़ पति के चरणों से लगकर 'नीति रस पागी' वाणी में इसका कथन – वह हरि से वैर-भाव त्याग दे। अपने कल्याण के लिए समय रहते सचिव के साथ सीता को लौटा दे, अन्यथा ब्रह्मा और शम्भु भी उसका हित न कर सकेंगे (५।३६।३ - ५।३६)। दर्पोक्ति के साथ हँसकर, इसे हृदय से लगाकर, रावण का गमन। इसे चिन्ता – 'भयउ कंत पर बिधि बिपरीता' (५।३७।१-६)। (२) सेतुबन्धन और प्रभु के आगमन का समाचार सुनकर, पति का हाथ पकड़, इसका अपने महल में ले जाना। चरणों में नमनकर, आँचल पसार, 'परम मनोहर बानी' में विनती – त्रिलोक-विजयी असुरों का वध करनेवाले प्रणत-अनुरागी भगवान् ही रामरूप में अवतीर्ण। अतः वह सीता को लौटा दे। अपने सुहाग की रक्षा के लिए सजल नयन कम्पित गात हो इसकी पति से राम को भजने की प्रार्थना

(६।६।२-६।७)। अपनी प्रभुता का बखान कर रावण का इसे समझाना। इसका पति को कालवश समझना (६।८।१-६)। (३) इसके कर्णफूल की झलक विद्युत-सदृश। (राम-बाण से) उसके कटकर गिरने के बाद से इसके मन में शोच। भगवान् राम के विराट्रूप का वर्णन कर इसका पति को समझाना। अपनी अहिवात-रक्षा के लिए प्रभु से वैर त्याग प्रीति करने की विनती (६।१३।६, ६।१३क, ६।१४।६-६।१५ ख)। 'नारि वचन' सुन, सामान्य स्त्रियों के व्याज से इसके आठ अवगुणों का उल्लेख कर, विश्वरूप-वर्णन को अपनी ही प्रभुता का वर्णन मान, रावण का इससे परिहास। रातभर विनोद। इसके मन में निश्चय कि 'पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ' (६।१६।१ - ६।१६क)। (४) अंगद-पण से चूर्णमद रावण के महल में आने पर इसका उसे समझाना। कथन — 'अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु।।' शिव-धनु-भंजन-प्रसंग, विराध-खर-दूषणादि-वध, लंकादहन, लक्ष्मण-धनु-रेखा लाँघने में उसकी असमर्थता आदि का स्मरण कराते हुए इसका उपदेश — 'काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा।।' उसका राम-विरोध और मति-भ्रम इस बात का सूचक कि उसका काल निकट। अब भी समय है। वह कृपासिन्धु रघुनाथ का भजन कर यशभागी बने (६।३५ ख - ६।३७)। [इसके प्रथम तीन उपदेशों पर रावण ने जो-जो उत्तर दिये, उनका प्रत्युत्तर इसने न दिया। चौथे उपदेश में इसके द्वारा पति के तीनों उत्तरों का प्रत्युत्तर। पति को काल से बचाने के लिए यह इसका अन्तिम प्रयत्न। मा० पी० ६।३६ नोट ४ के अन्तर्गत।] इसके वचन रावण के लिए 'बिसिष समाना'। (उसका कोई उत्तर न देना।) (६।३८।१)।

मेघनाद-वध का समाचार सुन इसका छाती पीट-पीटकर विलाप (६।७७।७)। लंका-युद्ध के छठे दिन राम के धनुष की टंकार से, सातवें दिन अपशकुन देखकर, इसके हृदय में कम्प (६।९१।छं०, ६।१०२।१०)। रावण के छिन्न भुज-शीशों का इसके आगे गिरना। इसका मूर्च्छित होना। अन्य रानियों का इसे उठाकर (रणभूमि में) रावण के शव के पास लाना (६।१०३।७, ६।१०४।१-२)। (इसका मूर्च्छा-भंग।) पति के प्रताप का वर्णन और अपने प्रबोधन का उल्लेख करते हुए इसका विलाप। रावण को भी निजधाम देनेवाले ब्रह्मरूप राम को नमन। इसके वचनों से सुर-मुनि-सिद्ध आदि को सुख (६।१०४।३ - ६।१०५।१)। अन्य रानियों के साथ पति को तिलांजलि देकर, राम-गुण-वर्णन करते हुए इसका गृह-गमन (६।१०५)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में रावण-वध पर इसके शोक का उल्लेख (७।६८।२)।

मूल शब्द — ५।६।४, ५।३६।४, ५।३७।६, ६।६।२, ६।८।६, ६।१३।६, ६।१४।६, ६।३५ ख, ६।७७।७, ६।९१।छं०, ६।१०४।१, ६।१०५।१, ६।१०५। मंदोदरि — १।१७८।२, ६।१६।८, ६।१०२।१०, ६।१०३।७, ७।६८।२।

पर्याय — **मयतनया** — ५।१०।७।

मयसुता — ६।८।१

मकर — बारह राशियों में दसवीं राशि। इसका मकर का-सा स्वरूप होने के कारण यह नाम।

[इस राशि में सूर्य कभी पौष मास में प्रवेश करते हैं, कभी माघ मास में; कभी सूर्य के इस राशि में रहने पर माघ लगता है। मा० पी० १।४५।१-२ टिप्पणी ४ (ग)। इस तरह मकर संक्रान्ति और माघ में कुछ ही दिनों का अन्तर होने के कारण दोनों को एक ही समझा जाता है। सूर्य इसी राशि में ब्रह्मनक्षत्र अभिजित् पर आते हैं, अतः इसमें प्रयागराज का अत्यधिक माहात्म्य। वि० १।४४।३ व्या०।]

माघ में सूर्य के इस राशि में आने पर देवता-दैत्य-किन्नर-मनुष्य-समूह का प्रयाग-आगमन और त्रिवेणी-मज्जन (१।४४।३-४)। मुनियों का प्रतिवर्ष मकरभर (मकर संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक, सौरमास) स्नान (१।४५।२-३)।

मूल शब्द — १।४४।३, १।४५।२, १।४५।३।

मकरी — धान्यमाली अप्सरा। किसी कारणवश मुनि-शाप से मकरी। अ० रा० ६।७।२४-२५। कपट से मुनि बने कालनेमि के आश्रम के निकटवर्ती जलाशय में इसका वास।

जलाशय में हनुमान् के प्रवेश करते ही इसका अकुलाकर उनके पैर पकड़ना। [अ० रा० में निगलना।] हनुमान् द्वारा इसका वध। [अ० रा० में मुख फाड़ना।] दिव्य देह धारण कर, विमान पर चढ़, इसका आकाश-गमन (६।५७)। कथन— हनुमान् के दर्शन से यह निष्पाप। मुनि का शाप मिट गया। आश्रम का मुनिवेशधारी व्यक्ति

वस्तुतः निशाचर। ये वचन सत्य मानने का हनुमान् से अनुरोध। इसका गमन (६।५८।१-३)। [अ० रा० में कालनेमि का नाम और उसके मुनि बनने का कारण बताकर उसे मारने का अनुरोध। स्वर्गलोक-गमन। यह प्रसंग ६।७।२१-२८ में।]

मूल शब्द — ६।५७।

मगह (मगध) — एक प्राचीन देश। दक्षिणी विहार।

[किसी समय इस देश के राजा बृहद्रथ। उनके बाद पुत्र जरासन्ध। महा० आदि० ६३।३०, सभा १६।१८। जहाँ तक त्रिशंकु के रथ की छाया, वहाँ तक के देश का नाम मगह (मगध)। त्रिशंकु के गुरु-द्रोह के कारण यह अपवित्र। दे० 'त्रिसंकू'। यहाँ मृत्यु होने पर सद्‌गति नहीं। मा० पी० १।६।८ नोट ४, वि०। यहाँ गया आदि पवित्र तीर्थ होने पर भी इसकी अशुद्धि नहीं गयी।]

द्वन्द्व-सृष्टि के उल्लेख-क्रम में काशी के साथ इसका उल्लेख (१।६।८)। कैकेयी-मुख के शुभ वचन, जैसे मगध में गया आदि तीर्थ (२।४३।७)।

मूल शब्द — २।४३।७।

पर्याय — **मग** — १।६।८।

मघा — सत्ताईस नक्षत्रों में दसवाँ नक्षत्र। इसमें पाँच तारे।

[यह चूहे की जाति का माना जाता है। पितृगण इसके अधिपति। सूर्य के इस नक्षत्र में रहने पर अत्यधिक वर्षा जिसका जल शुभ। मा० पी० ६।७२।३ नोट १ (ख)।]

मेघनाद की बाण-वृष्टि इस नक्षत्र की वर्षा के तुल्य (६।७३।२-३)।

मूल शब्द — ६।७३।३।

मदन — दे० 'काम'।

मधु — एक महाबली दैत्य। कैटभ का भाई, सहचर।

[(१) कल्पान्त में शेष-शय्या पर योगनिद्रा-लीन विष्णु के कानों की मैल से मधु और कैटभ नामक दैत्यों की उत्पत्ति। विष्णु के नाभि-कमल पर आसीन ब्रह्मा के वध के लिए ये प्रस्तुत। ब्रह्मा द्वारा योगनिद्रा-स्वरूपा देवी का स्तवन। योगनिद्रा विष्णु के नेत्रादि से निःसृत। जाग्रत हो विष्णु का इनसे युद्ध। देवी द्वारा मोहित ये विष्णु की वीरता से प्रसन्न। उन्हें वर देने को प्रस्तुत। विष्णु की याचना — उनके हाथ से इनका वध हो। इनकी शर्त — जहाँ पृथ्वी जलमग्न न हो, वहाँ इनका वध किया जाये। तत्काल अपनी जाँघ पर इनका मस्तक रख विष्णु द्वारा चक्र से छेदन। दु० स० १, प्रथम चरित्र।

(२) विष्णु के नाभि-कमल-पत्र पर जल की दो बूँदें। उनकी दृष्टि पड़ते ही एक बूँद से कोमल, मधु के-से वर्णमाला, तमोगुणी मधु दैत्य उत्पन्न। दूसरी बूँद कठोर, रजोगुणी कैटभ के रूप में परिणत। ब्रह्मा के पास से वेद-हरण कर इन दोनों का रसातल-प्रवेश। हय-ग्रीव-रूप में विष्णु द्वारा वेदोद्धार। इन दोनों का विष्णु से युद्ध और इनका वध। महा० शा० ३४७।१६-७०। भा० ७।६।३७।]

प्रभु द्वारा इसके वध का उल्लेख (६।६।७, ६।४८ क)।

मधुबन — सुग्रीव का वन।

[सुग्रीव के पूर्वजों को देवताओं से वररूप में प्राप्त। नन्दनवन-सा रमणीय। सुग्रीव के मामा दधिमुख इसके प्रधान रक्षक। इसमें प्रचुर मधु जिसे पान कर वानर मदोन्मत्त। वा० रा० ५।६१।७-६, ५।६२।६-१२, ५।६३।२७।]

हनुमान् के राम-कार्य कर लौटने पर हर्षित वानरों का इस वन में प्रवेश। अंगद की सम्मति से मधु-पान और फल-भक्षण। वन-रक्षकों पर प्रहार (५।२८।७-८)। वानरों द्वारा वन उजाड़े जाने के समाचार से सुग्रीव को कार्य-सिद्धि का विश्वास, अन्यथा 'मधुबन के फल सकहिं कि खाई'। (५।२८ - ५।२६।१)।

मूल शब्द — ५।२८।७, ५।२६।१

मधुमास — चैत्र मास।

[वसन्त ऋतुराज, भगवान् की विभूति (गीता० १०।३५)। उसका प्रथम मास होने के कारण यह अति पुनीत। इसी मास से संवत्सर का आरम्भ।]

इस मास में (१) राम का प्राकट्य, (२) तुलसी द्वारा रामचरित-मानस-रचना-आरम्भ (१।३४।४-५, १।१९१।१)। [वा० रा० १।१८।८, अ० रा० १।३।१४, भु० रा० पूर्व० १०।२ में भी राम-जन्म इसी मास में।]

मूल शब्द — १।१९१।१। मधुमासा — १।३४।५।

मनि — कौस्तुभमणि।

[क्षीरसागर-मन्थन से निकले रत्नों में एक। विष्णु द्वारा इसका ग्रहण। यह उनके वक्षःस्थल पर शोभित। दे० 'छीरसागर'। भा० १२।११।१० में इसका सांकेतिक अर्थ — यह भगवान् की जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योति। इसकी सर्वव्यापिनी प्रभा ही उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स-रूप में विराजमान।]

विष्णु के प्रति नारद की कटूक्ति — उन्होंने देव-दानवों को प्रवंचित करके कुटिलतापूर्वक रमा और इस मणि को ग्रहण किया (१।१३६)।

मनुज अहारी — नरान्तक नामक राक्षस। रावण के पुत्रों में से एक। इन्द्र-सदृश पराक्रमी। माया-विशारद। वा० रा० ६।६९।९-११।

युद्ध में अतिकाय आदि के साथ इसके भी मरण का रावण-कथन कुम्भकर्ण से (६।६२।११-१२)। [इसका वध अंगद द्वारा। वा० रा० ६।६९।९४-९५।]

मूल शब्द — ६।६२।११।

मयंद (मैन्द) — महाबली वानर-यूथपति। रामावतार में अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न। द्विविद इनके भाई। वा० रा० १।१७।१४, ४।३९।२५।

[ब्रह्मा से अवध्यत्व का वर पाकर इन दोनों भाइयों द्वारा देवसेना का मन्थन और अमृत-पान। वा० रा० ५।६०।२-४।]

रावण-दूत शुक द्वारा नल-नीलादि द्वादश वानर-वीरों में इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से अतुल बल-सम्पन्न। त्रिलोक को तृण-तुल्य समझनेवाले (५।५४ - ५।५५।२)। मेघनाद का यज्ञ ध्वंस करने के लिए इनका भी लक्ष्मण के साथ गमन (६।७५)।

मूल शब्द — ५।५४, ६।७५।

मय — दानवेन्द्रों के शिल्पियों में श्रेष्ठ। उनका विश्वकर्मा। वा० रा० ४।५१।११, महा० आदि० २२७।४१, कर्ण० ३३।१६। मायावियों का परम आचार्य। भा० ७।१०।५३।

कश्यप ~ दक्षकन्या दनु > नमुचि। महा० आदि० ६५।११-१२, २१-२२। नमुचि का भाई मय। महा० आदि० २२७।४५, सं० ब्रह्मपु० पृ० ४३४। मय ~ हेमा (अप्सरा) > कन्या मन्दोदरी, पुत्र मायावी, दुन्दुभि। वा० रा० ७।१२।५-६, १०, १२, १६। (वा० रा० ७।१२।३ में यह दिति-पुत्र।)

[(१) इसका सहस्र वर्षों तक घोर तप। ब्रह्मा से वररूप में शुक्राचार्य का समस्त शिल्प-वैभव प्राप्त। विन्ध्य-गुहा में (वह गुहा ऋक्षविल। वि० को० 'लंका'।) विशाल और सुवर्णमय भवन का निर्माण। कुछ काल तक वहाँ वास। फिर अप्सरा हेमा के प्रति इसके आसक्त होने पर इन्द्र द्वारा इसका संहार। — उसी भवन में रहनेवाली हेमा-सखी स्वर्णप्रभा का वानरों से सीता की प्राप्ति का भविष्य-कथन। वा० रा० ४।५०।३९-४१, ४।५१।१०-१८, ४।५२।१८, ३१। महा० कर्ण० ३३।१६ में यह 'अजर'।

(२) देवताओं द्वारा इसे हेमा अर्पित। उसके लिए मणिमंडित स्वर्णपुरी बनाकर उसके साथ इसका सहस्र वर्षों तक निवास। हेमा के स्वर्ग चले जाने पर चौदह वर्षों तक विरह-कातर होकर उसी पुरी में वास। फिर पुत्री मन्दोदरी के साथ उसके विवाह के लिए निकलना। रावण से उसका विवाह करना। रावण को तपःप्राप्त एक अमोघ शक्ति देना। वा० रा० ७।१२। ६-२२।

(३) तारकासुर के तीनों पुत्रों (ताराक्ष या तारकाक्ष, कमलाक्ष, विद्युन्माली) के लिए इसके द्वारा तीन (विमानरूप) पुरों का निर्माण— एक सोने का, दूसरा चाँदी का, तीसरा लोहे का। उन पुरों के निवासियों के लिए अपनी माया से अभीष्ट दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान करना। शंकर-द्वारा त्रिपुर-नाश। महा० कर्ण ३३।४-५, १५-१६-१७, २५-२७; ३४।१११-११५। भा० ७।१०।५३-५४, ६७-६८।

(४) इसके द्वारा सिद्धामृत-रस से पूर्ण एक कूप का निर्माण। शंकर के बाण से त्रिपुरवासियों के निष्प्राण हो

जाने पर इसका उन्हें अमृत-कूप में डालकर पुनर्जीवित करना। तब विष्णु और ब्रह्मा का गो एवं वत्स के रूप में तीनों पुरों में जाना और सिद्धरस-कूप का सारा अमृत पी लेना। भा० ७।१०।६२। महा० के अनुसार तीनों पुरों में अमृत-वापी होने का वरदान तारकाक्ष-पुत्र हरि को ब्रह्मा से प्राप्त। महा० कर्ण० ३३।२७-३०।

(५) इन्द्र द्वारा इसके भाई नमुचि का वध होने पर इन्द्र के विनाश के लिए इसका घोर तप। इसे अनेक प्रकार की भयंकर माया एवं विष्णु का वरदान भी प्राप्त। इसके द्वारा अग्नि और ब्राह्मणों का पूजन, दान आदि। एक दिन विप्रवेश में इन्द्र का इसके निकट आना। मनोवांछित वर के रूप में इसकी मित्रता की याचना करना। तब से यह इन्द्र का मित्र और हितैषी। इसके द्वारा उन्हें माया-प्रदान। सं० ब्रह्मपु० पृ० ४३४-३५।]

इसका रावण से अपनी पुत्री मन्दोदरी का विवाह करना, यह जानकर कि रावण राक्षसराज बनेगा (१।१७८।२-३)। विधि-निर्मित त्रिकूटाचल को इसका पुनः सँवारना (१।१७८।५-६)।

मूल शब्द — १।१७८।२, १।१७८।३, १।१७८।६।

मरु — मारवाड़। राजस्थान का रेगिस्तानी प्रदेश।

द्वन्द्व-सृष्टि-उल्लेख-क्रम में मारव (मालवा) के साथ इसका उल्लेख (१।६।८)। 'जस मरु धरनि देवधुनि धारा (२।२५०।७)।

मलय — भारत के दक्षिण में एक पर्वत-शृंखला जहाँ चन्दन के वृक्षों की बहुलता। आ० को०।

[यह भारतवर्ष के सात कुल-पर्वतों में एक। महा० भी० ६।११, न० पु० ३०।१२। ऋष्यमूक का एक भाग। वा० रा० ४।५।१। यह कावेरी के मुहाने के पास उसके तट पर स्थित। इसकी उपत्यका में एला (इलायची) और सर्पविष्टित चन्दन के वृक्ष। मोतियों के लिए प्रसिद्ध ताम्रपर्णी नदी यहीं से निकलती है। रघु० ४।४५-५१। कविप्रसिद्धि कि यहाँ से चलनेवाली वायु से इधर-उधर चन्दन आदि की सुगन्ध विकीर्ण। उससे कामार्त्त व्यक्ति विशेषरूप से प्रभावित। आ० को०।]

जिस तरह इस गिरि के (चन्दन-वृक्षों के) संसर्ग से सभी वृक्ष (नीम, बबूल आदि भी) सुवासित, उसी तरह राम-यश के संग से अपनी कविता के सर्वप्रिय होने का कवि-कथन (१।१०क)। [किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यत्र स्थिताश्च तरवस्तरवस्त एव। मन्यामहे मलयदेव यदाश्रयेण कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः।। — भर्तृहरि, मा० पी० १।१० क नोट १ में उद्धृत।]

मलय (मलयचन्दन) का स्वभाव सन्तों का-सा (७।३७।७-८)।

मूल शब्द — १।१० क, ७।३७।८।

महान — महत्तत्व।

[एक से अनेक होने की इच्छा होने पर मायापति भगवान् का काल, स्वभाव, कर्म को स्वीकारना। उनकी शक्ति से काल द्वारा तीनों गुणों में क्षोभ उत्पन्न, स्वभाव द्वारा उनमें रूपान्तर, कर्म द्वारा महत्तत्व का जन्म। महत्तत्व के तमःप्रधान विकार से अहंकार उत्पन्न। भा० २।५।२१-२४। जगत् की उत्पत्ति में बीजरूप, सृष्टि के विकास में विशेष महत्वशील होने के कारण यह 'महत्'। भा० द० पृ० ३४५। प्राकृत प्रलय में तन्मात्राओं और तत्वों के लय के बाद अहंकार इसमें विलीन। यह स्वयं गुणों द्वारा ग्रस्त। भा० १२।४।१८।

सत्वगुणमय, स्वच्छ, शान्त, भगवत्प्राप्ति का स्थानरूप चित्त ही महत्तत्व। इसी की संज्ञा 'वासुदेव'। भा० ३।२६।२१। (जो अध्यात्म में चित्त, वही अधिभूत में महत्तत्व। भा० ३।२६।२१ पाद०।]

यह विश्वरूप भगवान् राम का चित्त। — मन्दोदरी-कथन रावण से (६।१५ क)।

महिषेसा — (१) दे० जम।

(२) महिषासुर —[दनु-पुत्र रम्भ और करम्भ की पुत्रप्राप्ति के लिए तपस्या। तपोलीन करम्भ की इन्द्र द्वारा मकररूप में हत्या। क्षुब्ध रम्भ आत्महत्या के लिए तत्पर। प्रकट होकर अग्निदेव का रोकना। उनके कहने पर उसकी वर-याचना — त्रिलोकविजयी पुत्र हो। अग्नि का वरदान — जिस भार्या को देख वह कामप्रेरित हो, उसी से ऐसे पुत्र की प्राप्ति सम्भव। वह एक महिषी पर आसक्त। महिषी उसके तेज से गर्भवती। कुछ काल बाद एक अन्य महिष द्वारा रम्भ की हत्या। रम्भ की चिता पर उसकी भार्या महिषी सती। चिता के मध्य भाग से महाबली महिषासुर प्रकट। रम्भ भी एक दूसरा शरीर धर रक्तबीज के रूप में चिता से बाहर। दानवों द्वारा महिषासुर का राज्याभिषेक।

इसका कठोर तप। ब्रह्मा के प्रकट होने पर देवता, दैत्य, मानव से अवध्य होने की वर-याचना, मरण केवल स्त्री के हाथ से। ब्रह्मा-कथन – यदा कदाऽपि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम्। न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर।। ५।२।१४। दे० भा० ५।२। इसके बाद दे० 'कालिका'।]

दुर्जन-क्रोध और महामोह का उपमान (१।४।५, १।४७।६)।

मूल शब्द – १।४।५ महिषेसु – १।४७।६।

महेश – दे० 'सिव'।

महोदर – रावण का एक भाई। वा० रा० ६।६८।८।

युद्ध में अकम्पन आदि वीरों के साथ इसके भी मरण का रावण-कथन कुम्भकर्ण से (६।६२।११-१२)। [सीता को छलपूर्वक वश में करने का इसका रावण को परामर्श। सुग्रीव द्वारा इसका वध। वा० रा० ६।६४।१९-३४, ६।९७।३२-३४।]

मूल शब्द – ६।६२।१२।

मांडवी – भरत की पत्नी।

ये कुशकेतु (कुशध्वज) की बड़ी पुत्री। 'गुन सील सुख सोभामई'। राम-विवाह के बाद उर्मिला, श्रुतकीर्त्ति के साथ इन्हें जनक का बुलवाना। भरत से इनका विवाह (१।३२५।छं० २)। एक ही मण्डप में ये और इनकी तीनों बहनें अपने-अपने पति के साथ इस तरह शोभित जैसे जीव की चारों अवस्थाएँ अपने-अपने विभु के साथ (१।३२५।छं०४)। (दे० 'उरमिला')

मूल शब्द – १।३२५।छं० २।

माघ – चान्द्र वर्ष का ग्यारहवाँ महीना। इस मास की पूर्णमासी को मघा नक्षत्र होने के कारण यह नाम। आ० को०।

इस मास में सूर्य के मकर राशि में (दे० मकर) आने पर देवता-दैत्य-किन्नर-मनुष्य-समूह का प्रयाग-आगमन और त्रिवेणी-मज्जन (१।४४।३-४)। सबका प्रतिवर्ष माघभर (पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक) स्नान (१।४५।१-२)।

मूल शब्द – १।४४।३, १।४५।१।

मातलि – इन्द्र के सारथि का नाम।

रावण से पैदल ही युद्ध करते हुए राम के पास ये इन्द्र के आदेश से उनका रथ लेकर उपस्थित (६।८९।२)। [महा० वन० २९०।१३-१६ में मातलिसहित इन्द्र-रथ को देखकर राम को सन्देह कि यह सब कहीं रावण की माया न हो। विभीषण के कहने पर उन्हें मातलि की बातों पर विश्वास।] रावण का इन्हें सौ बाण मारना। राम की जय-पुकार करते हुए इनका भूमि पर गिरना। राम का कृपा कर इन्हें उठाना (६।९१।७-८)। [वा० रा० में राम का सारथ्य करते हुए ये दो बार रावण के बाणों से आहत। बार-बार रावण के मस्तकों के छिन्न हो जाने पर भी उनकी जगह नये मस्तक निकलते देख इनका राम को परामर्श कि वे ब्रह्मबाण का प्रयोग करें। वा० रा० ६।१०२।२८, ६।१०७।३९-४०, ५७-५८, ६।१०८।१-२१।] सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद राम की आज्ञा पाकर, उनके चरणों में नमन कर, इनका प्रस्थान (६।११०।१)।

मूल शब्द – ६।८९।२, ६।११०।१।

माधव – मा लक्ष्मी के धव अर्थात् पति, विष्णु। ह० को०। प्रयाग में इसी नाम से विशेष रूप से पूज्य।

त्रिवेणी-स्नानोपरान्त सब 'पूजहिं माधव पद जलजाता' (१।४४।५)। ये तीर्थराज प्रयाग के हितकारी मित्र-सदृश (२।१०५।३)।

मूल शब्द – १।४४।५, २।१०५।३।

मानस – मानस-सरोवर या मानसरोवर। कैलास के पाददेश में स्थित एक पुनीत झील का नाम।

[कैलास पर्वत पर ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से निर्मित सरोवर। इससे सरयू नदी निःसृत। वा० रा० १।२४।८-९। कविप्रसिद्धि कि यह सरोवर ही राजहंसों की जन्मभूमि। प्रतिवर्ष प्रसवकाल के आरम्भ होने के अवसर पर या बरसाती हवाओं के आगमन पर राजहंसों का इसके तट पर आ विराजना। आ० को०। पक्षितत्वज्ञों के साक्ष्य से यह अनुमान कि उक्त प्रसिद्धि नितान्त अमूलक नहीं। इतना अवश्य कि सभी हंस यहाँ नहीं आते।

हिमालय-यात्रियों के अनुसार हिमालय की अन्य झीलों में अनुकूल वास मिलने पर उनका और कहीं न जाना। मेघदूत में यक्ष की वापी में वास करनेवाले हंस मेघों को देखकर भी मानसरोवर के लिए उत्कण्ठित नहीं। हि० सा० भू०, परिशिष्ट, कवि-प्रसिद्धि-२७।

हि० वि० को० के अनुसार यह दक्षिण-पश्चिम तिब्बत में समुद्रतल से पन्द्रह हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित। इसका क्षेत्रफल लगभग दो सौ वर्गमील। इसके उत्तर में कैलास।]

हंसों का वास केवल मानसरोवर में ही। — सुनयना-कथन कौसल्यादि से (२।२८१)। राम के गुणग्राम 'सेवक मन मानस मराल से' (१।३२।१४)। स्वायम्भुव मनु द्वारा राम के उस स्वरूप के दर्शन की लालसा व्यक्त 'जो भुसुंडि मन मानस हंसा' (१।१४६।५)। राम से उनके महेश-मन-मानस-हंस होने का कथन — परशुराम द्वारा (१।२८५।५), जनक द्वारा (१।३४१।४), शरभंग द्वारा (३।८।१), सुतीक्ष्ण द्वारा (३।११।८)। वाल्मीकि का राम से निवेदन— 'जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।··· राम बसहु हियँ तासु।।' (२।१२८)। 'मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।।'— वन के कष्ट बताते हुए सीता से राम का कथन (२।६३।६)।

मूल शब्द — (रामचरितमानस के लिए भी) — १।३२।१४, १।१४६।५, १।२८५।५, १।३४१।४, २।६३।६, २।१२८, २।२८१, ३।८।१, ३।११।८।

माया — ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति।

[अद्वैत वेदान्त में —

स्वरूप--परमेश्वर की बीज शक्ति का नाम माया। अग्नि की दाहिका शक्ति के अनुरूप ही यह ब्रह्म की सदा संग रहनेवाली शक्ति। मायारहित होने पर परमेश्वर में न तो प्रवृत्ति, और न उसके द्वारा सृष्टि। यह आध्यात्मिक बीजशक्ति 'अव्यक्त' नाम से अभिहित, यह परमेश्वर में आश्रित होनेवाली महासुप्तिरूपिणी जिसमें अपने स्वरूप को न जाननेवाले संसारी जीव का शयन।

यह त्रिगुणात्मिका, ज्ञान-विरोधी भावरूप पदार्थ (अभावरूपा नहीं)। यह सत् नहीं, क्योंकि ब्रह्म का ज्ञान होने पर इसका ज्ञान बाधित। (ब्रह्मज्ञानी में माया का ज्ञान नहीं होता।) यह असत् भी नहीं, क्योंकि इसकी हमें सतत प्रतीति। इस प्रकार बाध और प्रतीति, दोनों प्रकार के विरुद्ध धर्मों के रहने के कारण यह अनिवर्चनीय।

जगत् की उपपत्ति के लिए इसको मानना और इसकी अनिवर्चनीयता स्वीकारना नितान्त युक्तिसंगत। इसीलिए इसका स्वरूप दिखाते समय शंकराचार्य का कथन कि यह भगवान् की अव्यक्त शक्ति जिसके आदि का पता नहीं, यह गुणत्रय से युक्त अविद्यारूपिणी। इसका पता इसके कार्यों से चलता है। यही जगत् को उत्पन्न करती है। (अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या। कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।। विवेकचूड़ामणि ११०।) यह सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, उभयरूप भी नही। यह न भिन्न, न अभिन्न, न भिन्नाभिन्न उभयरूप। न अंगसहित, न अंगरहित, न उभयात्मिका। यह अत्यन्त अद्भुत अनिवर्चनीयता — यह ऐसी जो कही न जा सके।

शंकर द्वारा माया एवं अविद्या का समानार्थक रूप से प्रयोग, किन्तु परवर्ती दार्शनिकों द्वारा इन दोनों में सूक्ष्म अर्थ-भेद की कल्पना।

इसकी शक्तियाँ — इसकी दो शक्तियाँ, आवरण तथा विक्षेप। आवरण का अर्थ, असली स्वरूप पर परदा डाल देना, विक्षेप का तात्पर्य, उस पर दूसरी वस्तु का आरोप करना। माया का अपनी 'आवरण' शक्ति से ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को मानो ढक देना; परिच्छिन्न अज्ञान का अनुभवकर्त्ताओं की बुद्धि को ढकना और इस तरह अपरिच्छिन्न असंसारी आत्मा को आच्छादित करना; शरीर के भीतर द्रष्टा और दृश्य के भेद को, शरीर के बाहर ब्रह्म और सृष्टि के भेद को, ढक देना। जिस प्रकार रज्जु का अज्ञान रज्जु में अपनी शक्ति से सर्प पैदा करता है, उसी प्रकार माया भी अपनी 'विक्षेप' शक्ति से अज्ञानाच्छादित आत्मा में आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी आदि जगत्-प्रपंच को उत्पन्न करती है। इन दोनों शक्तियों के सामूहिक बल पर माया द्वारा ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति।

ईश्वर के लिए माया एक इच्छामात्र। वह इससे प्रभावित नहीं। किन्तु हम अज्ञानियों को ईश्वर के बदले नाना प्रकार के पदार्थों के दर्शन। इस तरह माया हमारे लिए भ्रम का कारण, अतः अज्ञान या अविद्या नाम से भी अभिहित। सृष्टि अनादि, इसी तरह यह भी अनादि।

इसकी विभिन्न कल्पना — रामानुज के मतानुसार यह सृष्टि वास्तविक, सच्ची। माया ईश्वर की सर्जक शक्ति जिसके द्वारा इस वास्तव जगत् की रचना। इस प्रकार माया द्वारा ब्रह्म में अवस्थित अचित् तत्व में (और इस तरह ब्रह्म में भी) वास्तव विकार (परिणाम) उत्पन्न। जिस प्रकार अग्नि से दाहकता शक्ति अभिन्न, उसी प्रकार ब्रह्म से मायाशक्ति अभिन्न और अच्छेद्य। इसका वहाँ नित्य निवास।

शंकर के मत में ब्रह्म में कोई वास्तव विकार या परिवर्त्तन नहीं, विकार प्रातिभासिक। उनके अनुसार माया ईश्वर की शक्ति अवश्य, किन्तु नित्य स्वरूप नहीं। यह उसकी इच्छामात्र जिसे वह जब चाहे छोड़ दे। भा० द० पृ० ४४६-४५३।

अ० रा० ३।३।२१-२६ में लक्ष्मण के प्रति राम के तत्वोपदेश में माया के जो दो रूप— आवरण और विक्षेप — वर्णित, वे अद्वैत वेदान्त में कथित माया की दो शक्तियाँ ही। कुछ विद्वानों के मत से मानस की विद्या और अविद्या माया भी क्रमशः विक्षेप और आवरण शक्तियों के ही नामान्तर। किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'विद्या शब्द वेदान्त में ज्ञान के लिए आता है, माया के लिए नहीं। ··· तुलसीदास ने विद्या-अविद्या का उल्लेख अध्यात्मरामायण के आधार पर न करके श्रीमद्भागवत के आधार पर किया है।' हि० अ० पृ० २७६-२७७।

भा० में विद्या और अविद्या ईश्वर की माया की दो शक्तियाँ। विद्या जीव के लिए मोक्षदायक, अविद्या बन्धनकारी। 'योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः।।' भा० ११।११।३, ४, ७।

(मानस-प्रसंग में 'माया' से केवल ब्रह्म की माया अभिप्रेत। त्रिदेवमाया, देवमाया, आसुरी माया, नट की माया, मोहमाया और छल-कपट के अर्थ में प्रयुक्त माया शब्द का यहाँ ग्रहण नहीं।)]

लक्ष्मण की जिज्ञासा पर उन्हें राम का उपदेश — 'मैं' और 'मेरा', 'तू' और 'तेरा' की भावना ही माया। इन्द्रियों और उनके विषयों की तथा मन की जहाँ तक पहुँच, वहाँ तक सब माया। (यह अघटितघटना-पटीयसी।) जीवमात्र इसके वश में। इसके दो भेद — अविद्या माया और विद्या माया। अविद्या माया (शुद्धसत्वप्रधाना न होने के कारण) दुष्ट, दुःखरूपा। इसी के कारण शरीर का अध्यास या भ्रम। (इसी के कारण स्वप्नवत् दृश्य जगत् के सत्य होने की भ्रान्ति।) यह मोहरूपा, बन्धन। इसके कारण जीव भवकूप में पड़ा हुआ दुखी। (जीवकृत द्वैत ही भवकूप।) विद्या माया के वश में गुण (सत्व, रज, तम)। प्रभु की प्रेरणा से इसके द्वारा जगत् का सृजन-पालन-संहार। प्रभु से भिन्न इसका अपना बल नहीं (३।१४।८, ३।१५।२-६)। [विशुद्ध सत्वप्रधाना होने से इसमें जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, वह पूर्ण। उसी की संज्ञा सर्वज्ञ ईश्वर। उन्हीं की यह पराशक्ति। यह ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रमयी होने से रज-सत्व-तम की अधिष्ठात्री देवी। इसके जिस रूप से हम परिचित, वह इसकी वाङ्मयी मूर्त्ति। वि० ३।१५।६ व्या०।]

सीता राम की माया (विद्यामाया), आदिशक्ति, उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी। —मनु-शतरूपा से राम-कथन (१।१५२।४)। वाल्मीकि की विनय — 'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी। जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।' (२।१२६।छं०)। 'माया सब सिय माया माहूँ।।' (२।२५२।३)। [राम की माया होने के कारण सीता महामाया। त्रिदेव, देव आदि सबकी माया उनकी माया के अधीन — 'जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।' (१।१४८।३।] वन-मार्ग में राम-लक्ष्मण के बीच सीता की शोभा— 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसे' (२।१२३।२)। 'उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।' (३।७।३)।

प्रभु-आज्ञा से माया द्वारा पल-निमेष में ब्रह्माण्ड-समूहों की रचना (१।१६२।छं० ३, १।२२५।४)। कौसल्या-दृष्ट प्रभु के अखण्ड विराट्रूप में उनके रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भिन्न-भिन्न त्रिदेव, रवि-शशि, सिन्धु-सरित्-महि आदि। काल-कर्म-स्वभाव-गुण आदि से जीव को नचानेवाली प्रवल माया, जो प्रभु के आगे हाथ जोड़े खड़ी हुई। भक्ति, जो जीव को माया से छुड़ानेवाली। (कौसल्या विद्यामाया से व्याप्त।) उनकी प्रार्थना कि अब कभी उन्हें प्रभु की माया न व्यापे (१।२०१-१।२०२।४, १।२०२)।

मायाधीश राम की सत्यता के कारण ही मोह (अज्ञान) की सहायता से माया का सत्य प्रतीत होना। किन्तु वस्तुतः यह जड़, निस्तत्व, अविद्या, प्रकृति। [मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। श्वेता० ४।१०।] इसका कार्य दृष्टिगोचर, किन्तु अधिष्ठान से पृथक् इसकी सत्ता नहीं। जिस तरह सीप में रजत और प्रखर सूर्य-किरणों

में मृगजल का भासना निस्तत्व, भ्रम, उसी तरह हरि में जगत् का भासना भ्रम। संसार की सत्यरूप में प्रतीति माया के कारण ही। — शिव-कथन पार्वती से (१।११७।७ - १।११८।१)।

अगस्त्य द्वारा यह गूलर के विशाल वृक्ष से उपमित। जिस तरह गूलर के वृक्ष में फलों के गुच्छे, फलों के भीतर के जीव बाह्य जगत् से अपरिचित, उसी तरह माया-वृक्ष में ब्रह्माण्ड-निकाय, किसी ब्रह्माण्ड के चराचर जीवों को अपने ब्रह्माण्ड से बाहर का ज्ञान नहीं (३।१३।६-८)। सुर-असुर-नाग-नर-चर-अचर सब इसके वशीभूत। इसकी प्रेरणा से सब काल-कर्म-स्वभाव-गुण से घिरे हुए भवचक्र में भ्रमित। 'आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।। फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।' स्वयं माया प्रभु से भयभीत। उनकी कृपा-दृष्टि से माया के दुखों से निवृत्ति (१।२००।४-५, ७।१३।छं० २, ७।४४।४-५) [दैवी ह्येषां गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। गीता० ७।१४।]

षड्विकार काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, मोह ही मोह की प्रबल सेना। (पुरुष साधक के लिए) इनमें दारुण दुःख देनेवाली स्त्री माया की साक्षात् मूर्त्ति। उसका स्वरूप षड्ऋतुमय — जप-तप-धर्म-बुद्धि-बल-शील का नाशक, षड्विकार-पाप का वर्द्धक। (इसीलिए प्रभु का नारद को विवाह न करने देना।) — राम का नारद को उपदेश (३।४३-३।४४)। [नारी-साधिकाओं को यह जगत् माया के कारण पुरुषमय दिखता है, मानस में इसका संकेत — 'अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं'। १।८५।छं०।] राम-दिनेश-प्रताप के उदित होते ही अविद्या का सपरिवार नाश, धर्म-ज्ञान-विज्ञान आदि का विकास। — भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (७।३१।१ - ७।३१।८)। राम का हनुमान् और भ्राताओं को उपदेश — माया के गुण-दोष अनेक। (मिथ्या माया के अगणित कार्य भी मिथ्या।) अतः विवेक यही कि माया के अनित्य गुण-दोषों पर दृष्टिपात न किया जाये (७।४१)। [यद्यपि सत्व गुण भी माया का ही, तथापि माया के परिवार या इसकी सेना के वर्णन में काम-क्रोध आदि राजस-तामस गुणों का ही उल्लेख। दया-क्षमा आदि सात्विक गुण माया के होने पर उनका उल्लेख नहीं, क्योंकि वे माया से छुड़ानेवाले। मा० पी० १।११६।१-२ सिद्धान्त २।]

राम को नागपाश-बद्ध देख गरुड़ मोह-संशय-ग्रस्त। उन्हें राम-माया की प्रबलता समझाकर नारद-कथन — वे स्वयं भुक्तभोगी। गरुड़ उसी माया से व्याप्त। वे ब्रह्मा के पास जायें। किन्तु ब्रह्मा भी अनेक बार माया से मोहित। अतः संशय-नाश के लिए उनका गरुड़ को महेश के पास भेजना। शिव का उन्हें उपदेश — 'बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।।' अतः वे भुशुण्डि के पास जाकर रामकथा-श्रवण करें (७।५६।४ - ७।५६।८, ७।६०।१ - ७।६०।८, ७।६१।४ - ७।६२।६)।

मायाकृत गुण-दोषों से मुक्त भुशुण्डि-निवास नीलशैल के दर्शनमात्र से गरुड़ का माया-मोह-सोच दूर (७।५७।२-३, ७।६३।२)। भुशुण्डि से रामकथा सुन गरुड़ का अपने मोह को भी प्रभु का अनुग्रह मानना, क्योंकि उसी के बहाने भुशुंण्डि जैसे सन्त से भेंट और रामकथा-श्रवण (७।६८क - ७।६९ क)। भुशुण्डि की विनय — गरुड़ के मोह छुड़ाने के प्रयत्न से ही यह सिद्ध कि उनका मोह आगन्तुक। भुशुण्डि को बड़ाई देने के लिए ही प्रभु ने मोह के मिस गरुड़ को भेज दिया। शिव, ब्रह्मा, सनकादि, नारद आदि भी कभी-न-कभी मोह से भ्रमित (७।७०।३-६)।

भुशुण्डि द्वारा माया-परिवार का वर्णन। यह परिवार ही प्रचण्ड माया-कटक जो सारे संसार में व्याप्त। कामादि इसके सेनापति, दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि योद्धा (७।७०।७ - ७।७१क)। राम के भ्रू-विलास से समाजसहित इसका नटी की भाँति नर्त्तन, किन्तु जीव ईश्वर से अभिन्न होते हुए भी संसृतिमूल अहंकार के कारण इसके वशीभूत। इससे छूटने का एकमात्र उपाय राम की कृपा (७।७१ख - ७।७२।२, ७।७८।४ - ७।७८।८)।

एक बार राम की 'प्राकृत सिसु इव लीला' देखकर भुशुण्डि को मोह। तत्काल उन्हें प्रभु-प्रेरित विद्यामाया का व्यापना, किन्तु वह अविद्यामाया की तरह दुःखद नहीं। प्रभु-सेवक को प्रभु की प्रेरणा से यदि कभी माया व्याप्त, तो केवल विद्यामाया ही। [कारण, गरुड़ या भुशुण्डि जैसे भक्त को अवतारी राम के चिदानन्द-सन्दोह होने में सन्देह नहीं। कभी संशय, तो केवल यही कि ऐसी नरलीला क्या उनके योग्य! इतने से ही विद्यामाया का प्रवेश।] अविद्यामाया से विनाश, किन्तु विद्यामाया से नाश नहीं। इससे भेदभक्ति का बढ़ना (७।७७ - ७।७८।२, ७।७९।२-३)। इसके प्रभाव से भुशुण्डि को राम के उदर में कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के दर्शन। फिर राम की वही

बाललीला देख वे त्राहि-त्राहि कर शरणागत। राम का माया की प्रभुता को रोकना (७।७९।४ - ७।८३।३)। जब से राम ने अपनाया, तब से भुशुण्डि को माया न व्यापी (७।८९।३-४)। इसका कारण, भक्ति राम की प्रिया और माया (मिथ्या भाव दिखलाने के कारण) नर्त्तकी। माया भक्ति से भीत, उसके आगे अपनी प्रभुता दिखाने में असमर्थ (७।११६।३-७)।

'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ...' (१।१।श्लो० ६)। द्वन्द्वों के उल्लेख-क्रम में ब्रह्म के साथ इसका उल्लेख (१।६।७)। सती राममाया से मोहित। यह देख मन-ही-मन राम द्वारा अपनी माया की प्रशंसा (१।५१, १।५३।६)। इसके प्रभाव से सती को अपने समक्ष मिथ्या भाषण करते देख शिव का इसको नमन (१।५६।५)। 'अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया।।' (१।१२८।८)। उमा से शिव कथन— राम के ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में सन्देह करनेवाले 'हरि माया बस जगत भ्रमाहीं' (१।११५।६)। विष्णु-प्रेरित माया का राजा, राज्य, ऐश्वर्य की सृष्टि कर स्वयं विश्वमोहिनी बनना (१।१२९।८-१।१३०।५)। यह अति प्रबल। विष्णु का इसकी प्रवलता को खींचना (१।१३२।८, १।१३३।३, १।१३६।६, १।१३७, १।१३८।१)। उनका नारद से कथन — 'अब न तुम्हहिं माया निअराई' (१।१३८।८)। उमा से शिव-कथन — 'हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी', 'सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल' (१।१४०।७, १।१४०)।

प्रभु के मायातीत होने और इसके रामाज्ञाधीन होने का कथन (१।१८६।छं०२, १।१९२।छं० २, १।१९२, २।२५४।६)। 'माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव' (३।१५)। '... मायाछन्न न देखिऐ जैसे निर्गुन ब्रह्म' (३।३९क)। '...जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास' (२।२९)। प्रभु-माया की प्रेरणा से अपने मोहित होने का नारद-कथन राम से (३।४३।२)।

'मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ... भक्तिप्रदौ तौ हि नः' (४।१।श्लो०१)। '...मायामनुष्यं हरिं वन्देऽहं...' (५।१।श्लो०१)। हनुमान् का राम से निवेदन— उनकी कृपा बिना जीव की माया से मुक्ति असम्भव। इसीलिए हनुमान् का पहले उन्हें न पहचानना (४।२।९, ४।३।२)। जगत् में शत्रु-मित्र, दुख-सुख आदि मायाकृत, सत्य नहीं। —सुग्रीव का राम से कथन (४।७।१८)। राम द्वारा व्याकुल तारा की माया का हरण (४।११।३)। '...जनु जीवहि माया लपटानी' (४।१४।६)। 'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौ दाया।।' — राम के प्रति सुग्रीव की विनय (४।२१।२)। उनका वानरों को उपदेश — 'तजि माया सेइअ परलोका' (४।२३।५)। हनुमान् उन्हीं राम के दूत जिनके बल पर माया द्वारा ब्रह्माण्ड-समूहों की रचना। —हनुमान् का रावण से कथन (५।२१।४)। सागर की राम से विनय— उनकी प्रेरणा से सृष्टि के लिए माया द्वारा पंचभूतों की रचना (५।५९।३)। माया विश्वरूप राम का हास। — मन्दोदरी का रावण को समझाना (६।१५।५)। राम में मोह-प्रसंग की कल्पना करना मायाग्रस्तों के अज्ञान का सूचक (७।७३।८)। वे 'माया मन गुन पार' (७।२५)। उनकी माया की प्रबलता का कथन (६।५१, ७।५९, ७।६२।१०)। शिव, ब्रह्मा और गरुड़ भी माया-मोहित, अतः मनुष्य का अभिमान व्यर्थ (७।६२ क, ७।६२ख)। 'सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।।' (७।५४।७)।

'मम माया संभव संसारा।' — राम-कथन। उनका भुशुण्डि को मायाजन्य भ्रमों से मुक्ति का वरदान (७।८५ क, ७।८६।३)। गरुड़ से भुशुण्डि-कथन कि राम 'माया कोटि प्रपंच निधाना।।' उनकी माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों का वर्त्तन (७।९२।७, ७।१०४।१)। 'हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं' (७।१०४ क)। 'तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान'।— भुशुण्डि के सन्दर्भ में उनके गुरु की शिव से विनती (७।१०८ ग)। 'माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।।' — लोमश का वरदान कि भुशुण्डि के आश्रम से एक योजन तक अविद्या की व्याप्ति न हो (७।११३ ख)। 'नारि बिष्नु माया प्रगट' (७।११५ ख)। ज्ञान-दीपक-प्रसंग में अविद्या माया के दुस्तर होने का वर्णन (७।११७।३, ७।११८।३, ७।११८।६, ७।११८ क)। भक्ति से अविद्या का नाश (७।११९।८, ७।१२०।५)। भुशुण्डि के प्रति गरुड़ की कृतकृत्यता — उनकी मायाजन्य विपत्ति नष्ट (७।१२५।२)। मानस माया-मोह-नाशक। इसकी 'सतपंच' (सात पाँच अर्थात् कुछ) चौपाइयों को हृदय में धारण करने पर पंचपर्वा अविद्या-जनित विकारों का नाश (७।१३०।छ० २, ७।१३० के बाद श्लो० २)। [पर्व का अर्थ पोर या गांठ। पंचपर्वा अविद्या — (१) तम — अपनी वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाना, (२) मोह — अपनी देह को अपना समझ बैठना, अहंबुद्धि, (३) महामोह — विषय-भोग से वासनाओं को तृप्त करने की इच्छा, (४)

तामिस्र – भोगेच्छा के प्रतिघात से उपजे क्रोधादि विकार, (५) अन्धतामिस्र– भोग-साधन शरीर के छूटने पर उसे मरण समझना। मा० पी० उत्तर० पृ० ७३५, हि० अ० पृ० २८२।]

मानस में चित्रित शिव के तीन रूपों (ब्रह्म, त्रिदेव में एक, रामभक्त) में जहाँ-जहाँ वे ब्रह्मरूप में वर्णित, वहाँ-वहाँ पार्वती माया – 'तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु' (१।८१)। 'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनी।। जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।' (१।९८।३-४)। 'भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि।।' (१।२३५।७-८)।

मूल शब्द – १।१।श्लो० ६, १।६।७, १।५३।६, १।८१, १।११७।८, १।१२६।८, १।१३२।८, १।१३३।३, १।१३६।६, १।१३७, १।१३८।१, १।१३८।८, १।१४०, १।१५२।४, १।१८६।छं० २, १।१९२।छं० २, १।१९२।छं०३, १।१९२, १।२००।४, १।२०२।३, १।२०२, १।२२५।४, २।१२३।२, २।१२६।छं०, २।२५४।६, ३।७।३, ३।१३।६, ३।१४।८, ३।१५।२, ३।१५।३, ३।१५, ३।३९ कं, ३।४३।२, ३।४३, ४।१।श्लो० १, ४।२।६, ४।३।२, ४।७।१८, ४।११।३, ४।१४।१६, ४।२१।२, ४।२३।५, ५।१।श्लो० १, ५।२१।४, ५।५६।३, ६।१५।५, ६।५१, ७।१३।छं० २, ७।२५, ७।४१, ७।४४।५, ७।५४।७, ७।५७।२, ७।६०।३, ७।६२क, ७।६३।२, ७।७०।३, ७।७१।४, ७।७१।७, ७।७१ क, ७।७२।१, ७।७३।८, ७।७८।१, ७।७८।२, ७।७८।४, ७।७८।६, ७।७८।८, ७।८३।३, ७।८५क, ७।८६।३, ७।८६।३, ७।९२।७ (जाति०), ७।१०४।१, ७।१०४।८, ७।१०८ ग, ७।१११ ख, ७।११६।३, ७।११६।४, ७।११६।५, ७।११६।७, ७।११७।३, ७।११८।६, ७।१२५।२, ७।१३० के बाद श्लो०२।

पर्याय – **अबिद्या** – २।२६, ३।१५।४, ७।३१।३, ७।७६।२, ७।११३ ख, ७।११८।३, ७।११६।८, ७।१२०।५, ७।१३०।छं० २।

बिद्या – ३।१५।४, ७।७६।२।

प्रभु माया – ७।६२।१०।

बिष्नुमाया – ७।११५ ख।

रघुपति कै माया – १।१२८।८।

राम कै माया – ७।५६।४।

राममाया – १।५६।५, ७।१०४।१।

सियमाया – २।२५२।३।

हरिमाया – १।५१, १।११५।६, १।१३०।५, १।१४०।७, ७।५६, ७।६०।४, ७।८६।४, ७।१०४ क, ७।११८क।

मायावी – एक राक्षस। मय और हेमा का पुत्र, दुन्दुभि का अग्रज। मन्दोदरी इसकी बहन। वा० रा० ७।१२।५-६, १०, १२, १६।

एक दिन अर्द्धरात्रि को इसका किष्किन्धापुरी के द्वार पर जाना। वाली को ललकारना। वाली को देखते ही इसका पलायन। एक गिरि-गुहा में प्रवेश (४।६।२-५)। एक माह बाद गुहा से प्रवाहित रक्तधारा देख सुग्रीव की धारणा कि इसके द्वारा वाली का वध (४।६।७-८)। किन्तु वस्तुतः वाली द्वारा इसका संहार (४।६।१०)।

[अ० रा० ४।१।५१ में भी एक माह तक गुहा में रहना, किन्तु वा० रा० ४।१०।१६-२० में एक वर्ष तक वाली का इसे विवर में खोजना। फिर देखते ही संहार।]

मूल शब्द – ४।६।२।

मारव – मालवा। एक प्रदेश का नाम। नदियों से सिंचित, हराभरा।

द्वन्द्व-सृष्टि-उल्लेख-क्रम में मरु (मारवाड़) के साथ इसका उल्लेख (१।६।८)

मारीच – एक दैत्य।

हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न निकुम्भ > सुन्द और उपसुन्द। (१) सुन्द ~ ताटकानाम्नी यक्षिणी > मारीच, (२) उपसुन्द > सुबाहु।

महा० आदि० २०८।२-३, वा० रा० १।२०।२५-२६, १।२४।२५-२७।

[यह विशालकाय, भयानक, इन्द्र-सा पराक्रमी। जनपदवासियों को त्रास पहुँचाना ही इसका कार्य। वा० रा०

१।२४।२७-२८। यक्षिणी-पुत्र होने के कारण पहले इसे देवयोनि-रूप प्राप्त, किन्तु अगस्त्य के शाप से यह राक्षस। वा० रा० १।२५।१०-१२। दे० ताड़का।]

सिद्धाश्रम में विश्वामित्र का यज्ञ देखते ही इसका और सुबाहु का भयंकर उपद्रव। मुनि भयभीत। उन्हें ज्ञान कि हरि के बिना इनका मरण असम्भव (१।२०६।३-५)। मुनियों के यज्ञ के समय इसका और सुबाहु का अन्य राक्षसोंसहित उत्पात। [रक्तवर्षा करना। वा० रा० १।३०।११-१३।] राम का बिना फलवाला बाण लगने पर इसका सौ योजन दूर समुद्र में गिरना (१।२१०।३-४)। इसका सागर-तट पर वास। [वहाँ एकान्त आश्रम में जटा और कृष्णमृग-चर्म धारण कर संन्यासी की तरह जीवनयापन। वा० रा० ३।३५।३८।] रावण का इसके आश्रम में आगमन (३।२३।७, ३।२४।६)। उसकी पूजा करके इसका आने का कारण पूछना। सब कथा सुनाकर रावण-कथन — यह छल करनेवाला कपटमृग बने, जिससे वह सीता-हरण कर सके (३।२४-३।२५।२)। इसका रावण को समझाना कि राम साक्षात् ईश्वर। खर, दूषण, ताड़का आदि के वध का स्मरण कराके अपना अनुभव-कथन — अब इसे जहाँ-तहाँ राम-लक्ष्मण दिखायी देते हैं। इसका रावण को लौट जाने का परामर्श (३।२५।३-३।२६।१)। [वा० रा० में इसका कथन — एक दिन दो अन्य राक्षसों के साथ भयानक मृगरूप धारण कर इसका दण्डकवन में सर्वत्र विचरण। धर्मानुष्ठान में लगे मुनियों के रक्त-मांस का भक्षण। वनवासी राम से प्रतिशोध लेने के लिए उनको मार डालने की इसकी कामना। राम का इन तीनों पर बाण-प्रहार। अन्य दोनों असुरों का मरण। इसका किसी प्रकार उछलकर पलायन। नवजीवन पाकर यह संन्यास ले, दुष्कर्मों का त्याग कर, तपस्या में लीन। सर्वत्र इसे यम-सदृश राम के दर्शन। इसके मन में उनका भय समाहित। वा० रा० ३।३९।१-१९।] रावण इस पर कुपित। दोनों तरह अपनी मृत्यु देख इसका राम-शरण में जाने का, उन्हीं के बाण से मरने का निश्चय (३।२६।२-६)। इसका रावण के साथ जाना। राम-चरणों में अखण्ड प्रेम। राम-दर्शन की लालसा से यह हर्षित (३।२६।७-३।२६)। इसका मणि-मण्डित स्वर्णमय कपट-मृग बनना। इसे देखकर सीता मुग्ध। इसका वध करके इसका चर्म लाने का उनका राम से आग्रह (३।२७।१-५)। धनुषधारी राम को देख इसका पलायन। प्रभु का इसके पीछे दौड़ना। अपनी माया से यह कभी निकट, कभी दूर, कभी प्रकट, कभी अदृश्य। राम-शर के लगते ही इसका घोर ध्वनि करके पृथ्वी पर गिरना। पहले लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारना, फिर मन में राम का स्मरण करना। इसका प्रकृत राक्षस रूप प्रकट। इसका प्रेम पहचान राम का इसे मुनि-दुर्लभ गति देना (३।२७।७, १०-१७)।

राम-बाण के प्रताप से इसके अवगत होने का कथन (६।३६।९)। उल्लेख — इसके कपट-मृग-रूप का (१।४९।४, ३।२९ ख, ५।४२।७, ६।९९।७), इसके मद-मोचन और वध का (१।१२१।५, १।३५६), रावण से इसके संवाद का (७।६६।५)।

मूल शब्द — १।४९।४, १।२०६।३, १।२१०।३, १।२२१।५, १।३५६, ३।२३।७, ३।२४, ३।२६।३, ३।२७।१, ७।६६।५। मारीचा — ३।२४।६, ६।३६।९।

पर्याय — **कनकमृग** — ६।९९।७।

कपट कुरंग — ३।२९ ख, ५।४२।७।

मायामृग — ३।२७।११।

माल्यवंत (माल्यवान्) — रावण का नाना और मन्त्री।

सुकेश ~ देववती > माल्यवान्, सुमाली, माली। माल्यवान् ~ सुन्दरी > दुर्मुख आदि सात पुत्र, एक कन्या। वा० रा० ७।५।५-६, ३५-३७।

[अपने दोनों भाइयों के साथ मेरु पर्वत पर जाकर माल्यवान् का तप। अपराजेय, चिरजीवी होने का ब्रह्मा से वर प्राप्त। विश्वकर्मा के परामर्श से लंका में जाकर वास। वा० रा० ७।५।१०-१६, १९-२९। तीनों का स्वयं को त्रिदेव समझना। देवताओं के स्थान छीनना। देवलोक पर आक्रमण। देवताओं का पक्ष ले युद्ध करते हुए विष्णु द्वारा माली का वध। माल्यवान् और सुमाली का पलायन। पुनः लौटना। गरुड़ के पंखों की हवा से माल्यवान् का उड़ जाना। लंका की ओर लौटना। वा० रा० ७।६।६-७, १४, ६०-६१, ७।७।४३, ४६; ७।८।१, २०।]

(लंका-युद्ध से पूर्व) विभीषण की राम-भक्तिपरक बातें सुन इन्हें सुख। उनकी बात मानने का इनका रावण को परामर्श। रावण का इन्हें फटकारना (५।४०।१-४)। ये रावण के मातामह, अत्यन्त वृद्ध, श्रेष्ठ मन्त्री

(६।४८।५)। [रावण इनके अनुज सुमाली की कन्या कैकसी का पुत्र। वा० रा० ७।५।३९-४२, ७।६।२६-२६।] (युद्धकाल में) इनका रावण को नीतिपूर्वक समझाना। सीता-हरण के समय से होनेवाले अपशकुनों का कथन, राम की ईश्वरता का प्रतिपादन। उनसे वैर त्याग, जानकी को लौटाकर, उन्हें भजने का परामर्श (६।४८।६-६।४९।१)। रावण द्वारा इनका तिरस्कार। इनका उसे दुर्वचन कहते हुए गमन (६।४९।२-५)। [वा० रा० ६।३५।६-३७ में राम से सन्धि करने के लिए इनका रावण को समझाना। वा० रा० ६।३६।१-१५ में रावण के आक्षेप और क्रोध से लज्जित होकर उसे जय का आशीर्वाद देना।]

मूल शब्द — ५।४०।१, ५।४०।४, ६।४८।५।

मिथिलेस — दे० 'जनक'।

मीन — मत्स्यावतार। भगवान् के दशावतार में प्रथम अवतार।

[किसी नैमित्तिक प्रलय-काल में सोते समय ब्रह्मा के मुख से वेद निःसृत। हयग्रीव दैत्य का वेद-हरण और पाताल-गमन। उसके वध के लिए भगवान् का मत्स्यावतार।

उस कल्प में सत्यव्रत नामक भगवत्परायण राजर्षि तपस्या में लीन। कृतमाला नदी में तर्पण करते समय एक मछली का उनकी अंजलि में आना। राजा का इन्हें नदी में छोड़ना। नदी के भक्षी जीवों से रक्षा की इनकी प्रार्थना सुन राजा का इन्हें उठाकर कमण्डलु में रखना। इनका बढ़ना। राजा का इन्हें बड़े जल-घट में डालना। इनका पुनः बढ़ना। इस तरह एक के बाद दूसरे सरोवर में डालने पर भी क्रमशः उस सरोवर के समान इनका विस्तार। राजा का इन्हें समुद्र में छोड़ना। पुनः इनकी रक्षा की प्रार्थना। तब राजा का मत्स्यरूप भगवान् को पहचानना। इनका कथन — सातवें दिन त्रिलोक प्रलय-लीन होगा। उस समय एक बड़ी नाव आयेगी। राजा समस्त धान्य, बीज, प्राणियों के सूक्ष्म शरीर और सप्तर्षिसहित उस नाव पर चढ़ें। उसे वासुकि नाग द्वारा इनके सींग से बाँध दें। कहकर ये अन्तर्धान। प्रलय होने पर राजा का इनके आदेशानुसार आचरण। इनकी स्तुति। इनके द्वारा एकशृंगधर महामत्स्यरूप में उन्हें ज्ञान, भक्ति, कर्मयोग के साथ आत्मतत्व का उपदेश, जिसे मत्स्यपुराण कहते हैं। प्रलयान्त पर हयग्रीव का वध और वेदोद्धार। इनकी कृपा से राजा सत्यव्रत वर्तमान कल्प में वैवस्वत मनु। भा० ८।२४। शतपथ ब्राह्मण (१।८।१।१-६) में सत्यव्रत के स्थान पर वैवस्वत मनु। कथा यही।

इनका द्वादशाक्षर मन्त्र— ॐ नमो भगवते मं मत्स्याय। इनका ध्यान — नाभ्यधोरोहितसम आकण्ठं च नराकृतिः। घनश्यामश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः।। शृंगिमत्स्यनिभो मूर्द्धा लक्ष्मीवक्षोविराजितः। पद्मचिह्नित सर्वांगः सुन्दरश्चारुलोचनः।। — स्वामी अखण्डानन्द जी, सत्कथा अंक, कल्याण, पृ० ६३८।]

देव-दुःख-दलन के लिए इनके विभिन्न अवतारों में यह प्रथम (६।११०-७)।

मेकल सुता — मेकल (अमरकण्टक पर्वत) की पुत्री नर्मदा। विन्ध्य-श्रेणी के अमरकण्टक से निकलकर इसका खम्भात की खाड़ी (अरब सागर) में गिरना। बृ० को०। इसी का दूसरा नाम रेवा — 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका'। अमर० १।२८७।

[लोक-कल्याण के लिए यह रुद्र-देह से निःसृत। सर्वपापहारिणी। जड़-चेतन, सर्वभूतों को तारने में समर्थ। इसकी स्तुति से चारों वर्णों की मनोरथ-सिद्धि। स्वयं शिव द्वारा इसका नित्य सेवन। अमरकण्टक से लेकर इसके सागर-संगम तक दस कोटि तीर्थ। 'नर्मदानर्मदाशब्दो येन केनचिदुच्यते। तस्य स्याच्छाश्वती मुक्तिर्यावदाचन्द्रतारकम्।।' प० पु० स्व० १७।१४-२३, २१।४५, २२।६।

स्क० पु० में गंगा के समान महत्व प्राप्त करने के लिए इसके द्वारा तप। प्रकट होकर ब्रह्मा-कथन — यह वर-दान असम्भव। तब इसका वाराणसी-गमन। वहाँ शंकर से उनके चरणों में निर्द्वन्द्व भक्ति की वर-प्राप्ति। गंगा सद्यः पापहरा, शिव-कृपा से इसके दर्शनमात्र से पाप-नाश। उनके वर से इसके तट के प्रस्तर-खण्ड शिवलिंग-स्वरूप। प्रतिष्ठा के बाद वे ही नर्मदेश्वर। स्क० पु० का० ९२।८-२४।]

रामकथा 'सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी' (१।३१।१३)। गंगा आदि के साथ इसके द्वारा भी मन्दाकिनी की प्रशंसा (२।१३८।४-५)।

मूल शब्द — २।१३८।४।

पर्याय — **मेकल सैल सुता** — १।३१।१३।

मेघनाद — रावण का पुत्र। जन्म होते ही मेघ के समान गम्भीर नाद करने के कारण रावण द्वारा यह नामकरण। वा० रा० ७।१२।३०-३१।

[यह रावण के समतुल्य अथवा यह रावण से अधिक पराक्रमी। — ब्रह्मा-कथन। वा० रा० ७।३०।३। इसका रथ चार सिंहों से जुता हुआ। वा० रा० ५।४८।१८। इसका दिव्य रथ सुवर्णमय। उसमें चार घोड़े। वा० रा० ६।८०।१२-१३। उशना (शुक्राचार्य) के पौरोहित्य में इसके द्वारा निकुम्भिला में सात यज्ञों का अनुष्ठान (अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णव तथा माहेश्वर यज्ञ)। फलतः पशुपति से अनेक वरों के साथ दिव्य आकाशचारी रथ, तामसी माया, दो अक्षय तरकश, दुर्जय धनुष, विध्वंसकारी प्रबल अस्त्र प्राप्त। वा० रा० ७।२५।६-१२। गोह के चमड़े के बने दस्ताने, अवध्य कवच और धनुष धारण करने पर यह अदृश्य। अग्निदेव से यह शक्ति प्राप्त। वा० रा० ६।१९।१२-१३। देव-दानव-युद्ध में इसके उतरते ही देवताओं का पलायन। माया रचकर जयन्त और देवताओं को विकल करना। वा० रा० ७।२८।१-२२। इन्द्र के चंगुल में रावण के फँस जाने पर अपनी तपोमयी माया से अदृश्य रहकर इसका युद्ध। माया से इन्द्र को बन्दी बना, रावण से घर लौटने का निवेदन। वा० रा० ७।२९।२२-४२। इसके 'इन्द्रजित्' नाम से विख्यात होने का ब्रह्मा-कथन। वा० रा० ७।३०।५। ब्रह्मा के कहने पर इन्द्र को बन्धनमुक्त करने के बदले इसके द्वारा अमरत्व की वर-याचना। वह न मिलने पर दूसरा वर माँगना — शत्रुविजय की इच्छा से मन्त्रयुक्त हव्य की आहुति देकर अग्निदेव की पूजा करने पर अग्नि से ऐसा रथ प्राप्त हो जिस पर जब तक यह बैठा रहे, तब तक इसे कोई न मार सके। युद्ध के निमित्त किये जानेवाले जप-होम को पूर्ण किये बिना ही यदि युद्ध करे, तभी विनाश हो। वर प्राप्त कर इसका इन्द्र को मुक्त करना। वा० रा० ७।३०।७-१६। तप करके ब्रह्मा से 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्र और कामगति अश्व प्राप्त। वा० रा० ६।८५।१२। वरुण से नागपाश-प्राप्ति। मा० पी० ५।२०।२ व्या०। युद्धभूमि में अग्नि का पूजन कर ब्रह्मास्त्र का आवाहन और धनुष आदि को ब्रह्मास्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित करना। वा० रा० ६।७३।२७-२८। इसके द्वारा मायामयी सीता का निर्माण। राम-सेना को पीड़ित करने के लिए उस पर अत्याचार और उसका वध। वा० रा० ६।८१।]

यह रावण का ज्येष्ठ पुत्र। योद्धाओं में श्रेष्ठ! रण में इसका सामना करने में कोई समर्थ नहीं। स्वर्ग में इसके कारण नित्य भगदड़ (१।१८०।७-८) सभा में बुलाकर इसे रावण की शिक्षा। इसके बल को, देवताओं के प्रति वैरभाव को उत्तेजित कर, उन्हें जीतकर बाँध लाने की रावणाज्ञा। इसके द्वारा पितृ-आदेश शिरोधार्य (१।१८२।१-३)। उसके पालन में जरा भी विलम्ब नहीं (१।१८३।१)। अशोक-वाटिका में हनुमान् द्वारा अक्ष-वध के समाचार से क्रुद्ध रावण का इसे यह कहकर भेजना कि वानर को मारे नहीं, बाँध लाये। बन्धु-वध से इसे भी क्रोध। इसे दारुण भट मान, गर्जन कर, विशाल वृक्ष से प्रहार कर हनुमान् का इसे विरथ करना। सब राक्षस-भटों को मार इससे द्वन्द्व-युद्ध। उनके मुक्के से इसे क्षणिक मूर्च्छा। उठकर माया रचना, पर हनुमान् इसके लिए अजेय। तब इसका ब्रह्मबाण चलाना। ब्रह्मास्त्र की महिमा-रक्षा के लिए हनुमान् का मूर्च्छित होकर गिरना। इसका उन्हें नागपाश से बाँध ले जाना (५।१९।१-५।२०।२)। [वा० रा० मे ब्रह्मा द्वारा दिये गये अस्त्र का सन्धान कर उसी से बाँधना। वहाँ नागपाश नहीं। राक्षसों द्वारा पुनः वृक्षों के वल्कल से बँधने पर हनुमान् ब्रह्मास्त्र-बन्धन से मुक्त, क्योंकि उस दिव्यास्त्र का बन्धन किसी दूसरे बन्धन के साथ नहीं रहता। ५।४८।३६-३७, ४६-४८।]

रावण-सभा में अंगद द्वारा प्रण करके रोपे गये पाँव को हटाने में यह और इसके समान सुभट असमर्थ (६।३४।११-१२, ६।३४क)। लंकागढ़ के पश्चिमी द्वार पर इसका हनुमान् से युद्ध। इसके सारथी को मार, रथ तोड़, हनुमान् का इसकी छाती पर पद-प्रहार। इसे विकल जान दूसरे सारथी का इसे रथ में डाल घर लाना (६।४३।३-८)। प्रथम दिन की युद्ध-समाप्ति पर निराश रावण को दूसरे दिन सवेरे अपना करतब दिखाने का इसका कथन। सुनकर रावण को भरोसा। इसे अंक में बैठाना (६।४९।५-७)। दूसरे दिन वानरों द्वारा लंकागढ़ के घिरने का समाचार सुन राम, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान् आदि का नाम ले-लेकर उन सबको इसकी चुनौती। बाण-वर्षा। सिंहनाद। (६।४९-६।५०)। वानरों को विकल देख हनुमान् का इस पर पर्वत-निक्षेप। इसका आकाश-गमन। रथ, सारथी, घोड़े नष्ट। हनुमान् के पचारने पर भी उनके निकट न जाना, क्योंकि उनके बल के मर्म से अवगत। रघुपति के निकट जा उनको दुर्वचन कहना। उन पर अपने अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ होते देख माया रचना— आकाश से

अंगारों की, विष्ठा, रुधिर, धूल आदि की वर्षा, धरती से जलधाराएँ, पिशाच-पिशाचिनियाँ प्रकट। घोर अन्धकार। वानरों की व्याकुलता। राम के बाण से माया नष्ट (६।५१।१ - ६।५२।७)। इसका लक्ष्मण से युद्ध। छल-बल-अनीति करना। क्रुद्ध लक्ष्मण के प्रहार से इसके रथ, सारथी का नाश। स्वयं यह प्राणावशेष। तब उन पर प्रख्यातपौरुष 'तेजपुंज' शक्ति का प्रहार। लक्ष्मण को मूर्च्छा (६।५४।२-८)। [वा० रा० में यह शक्ति मय-निर्मित। इसका लक्ष्मण पर रावण द्वारा प्रहार। राम-आदेश से इसकी प्राणघातकता नष्ट। ६।३०-३१, ३३।] इसकी तरह अगणित योद्धा लक्ष्मण को उठाने में असमर्थ (६।५४)। कुम्भकर्ण-वध से विकल रावण को इसका समझाना। इष्टदेव से प्राप्त बल-रथ के सहारे दूसरे दिन पराक्रम दिखाने का आश्वासन (६।७२।६-८)।

चतुर्थ दिन के युद्ध में मायामय रथ पर आकाश में जा इसका अट्टहास, गर्जन। स्वयं अदृश्य रहकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से कपि-सेना पर प्रहार। सब मार्गों को बाण-पिंजर बना देना। लक्ष्मण आदि को बाणविद्ध, राम को नागपाश-बद्ध करना (६।७२-६।७३।११)। [वा० रा० में राम-लक्ष्मण, दोनों नागपाशबद्ध। ६।४४।३५, ३८, ६।४५।८। दोनों को कंक-पत्रयुक्त बाणों के जाल में फँसाना ६।४५।१२।] राम-सेना को व्याकुल कर इसका प्रकट होना, दुर्वचन कहना। जाम्बवान् पर त्रिशूल-निक्षेप। त्रिशूल को पकड़ जाम्बवान् का इस पर पद-प्रहार। इसका चक्कर खाकर गिरना। उनका इसे पुनः पटकना। फिर वर-प्रभाव से अवध्य जान इसे उछालकर लंका में फेंकना। नागपाश के माया-नागों का गरुड़ द्वारा भक्षण (६।७४।३ - ६।७४ क)। [वा० रा० में गरुड़ के आते ही नागों का पलायन। ६।५०।३७।]

मूर्च्छा भंग होने पर पिता को देख इसका लज्जित होना। 'अजय-मख' (अजेय होने का यज्ञ) करने के लिए 'गिरिबर-कंदरा' (निकुम्भिला) में जाना। (दे० 'गिरिबर कंदरा'।) इसके यज्ञ के सम्बन्ध में विभीषण का राम से कथन — यह यज्ञ सिद्ध होने पर इसे जीतना कठिन (६।७५।१-५)। रामादेश से यज्ञ-ध्वंस कर इसका वध करने के लिए विभीषणादिसहित लक्ष्मण-गमन (६।७५।६-६।७५)। [अ० रा० में इसके वध के लिए राम स्वयं जाने को उद्यत। उन्हें मना कर विभीषण-कथन — ब्रह्मा-वरदान के कारण इसकी मृत्यु उसी के हाथ निश्चित जिसने बारह वर्षों तक निद्रा-आहार का त्याग किया हो। केवल लक्ष्मण ही ऐसे व्यक्ति ६।८।६४-६६।] यज्ञ में इसके द्वारा रुधिर और भैंसे की आहुति। वानरों द्वारा यज्ञ-विध्वंस। तब भी इसका न उठना। इसके केश पकड़ पदाघात। तब त्रिशूल ले इसका दौड़ना और अंगद-हनुमान् को धराशायी करना। लक्ष्मण पर प्रहार। माया-युद्ध। अन्ततः राम-प्रताप का स्मरण कर छोड़े गये बाण [ऐन्द्रास्त्र। वा० रा० ६।९०।७०-७१; अ० रा० ६।९।४३।] से इसका हृदय विद्ध। मरते समय कपट-त्याग। 'रामानुज कहँ राम कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान'। हनुमान् का इसे उठाकर लंका-द्वार पर रख आना। इसकी मृत्यु से सुर-गन्धर्वों को हर्ष, रावण को मूर्च्छा। मन्दोदरी का विलाप (६।७६।१-६।७७।७)। उल्लेख — इसके मारे जाने का (६।९०।६, ६।११९।९), इसके द्वारा राम के गरुड़-पाश-बद्ध होने का (७।५८।४), भुशुण्डि-कथित मूल मानस में इसके पौरुष और संहार का (७।६७क), रावण द्वारा (६।२७)।

मूल शब्द — १।१८२।१, ५।१९।१, ६।३४ क, ६।४३।४, ६।४३।६, ६।४९, ६।५०, ६।५१।२, ६।५४।२, ६।५४, ६।७२।६, ६।७२, ६।७४।७, ६।७५।१, ६।७५।४।

पर्याय — **इंद्रजित** (इंद्रजित्–इंद्र को जीतनेवाला) — ५।१९।३। इद्रजीत — १।१८३।१, ६।३४।११, ७।५८।४। इंद्रजीता — ६।११९।९।

घननाद — ६।९०।६, ७।६७ ख। घननादा — ६।४९।५, ६।५१।५, ६।७४।३।

बारिदनाद — १।१८०।७।

रावन सुत — ६।५४।६।

लंकेसकुमारा — ५।१९।५।

सक्रारि — ६।२७।

मेरु — एक दिव्य सुवर्ण-पर्वत का नाम।

[वा० रा० १।३५।१५ में यह हिमालय-पत्नी मेना का पिता। शि० पु० में बर्हिषद पितरों की मानसी कन्या धरणी का पति। इसका पुत्र मन्दराचल, कन्याएँ वेला, नियति, आयति। शि० पु० वा० पू० १७।४८, ४९, ५१, ५३। यह पर्वत जम्बूद्वीप के केन्द्रवर्ती इलावृत्तवर्ष के मध्य में, भूमण्डलरूप कमल की कर्णिका की तरह, स्थित।

सर्वतः सुवर्णमय। कुल-पर्वतों का राजा। सोलह हजार योजन भूमि के भीतर प्रविष्ट, चौरासी हजार योजन भूमि के ऊपर उठा हुआ। इसकी आधारभूत थूनियों के समान इसके चारों ओर मन्दर आदि चार पर्वत। कमल-कर्णिका के केसर की तरह त्रिकूट आदि बीस पर्वत इसके मूल देश में स्थित। चतुर्दिक् कैलास आदि आठ पर्वत। (वि० पु० २।२।४०-४४ में आठों 'मर्यादा-पर्वत' नाम से अभिहित।)।

इसके शिखर पर बीचो-बीच ब्रह्मा की सुवर्णमयी पुरी। उसके नीचे पूर्व आदि आठों दिशाओं-उपदिशाओं में इन्द्र आदि आठ लोकपालों की आठ पुरियाँ। भा० ५।१६।६-७, ११, २६-२९। (वि० पु० २।२ में नाम की कुछ भिन्नता, पर वर्णन इसी प्रकार का।)

भगवत्पदी गंगा का ध्रुवलोक और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करते हुए इसके शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरना। यहाँ से वह चार धाराओं में विभक्त हो चारों दिशाओं में प्रवाहित। भा० ५।१७।१-५।]

रावण के आने का समाचार सुन देवताओं का इसकी गुहा में आश्रय लेना (१।१८२।६)। राम के चित्रकूट में आने पर कैलास, मन्दर आदि के साथ इसके द्वारा भी चित्रकूट का यश-गान (२।१३८।६)। 'लोचन सहस न सूझ सुमेरू' (२।२९५।४)। हनुमान् 'हेमशैलाभदेह' (५।१।श्लो०३)। उनका अशोक-वन में अपने 'कनक भूधराकार' शरीर को प्रकट करना (५।१६।७-८)। इसके सुदूर उत्तर में नील पर्वत (७।५६।७)। इसके शिखर पर वट की छाया में लोमश मुनि आसीन (७।११० ख)। (यहीं काकभुशुण्डि का लोमश से संवाद। उन्हें लोमश का शाप और वरदान।) कई स्थलों पर साम्यमूलक अलंकारों में इसका उपमान-रूप में प्रयोग। उपमान — यह लंका का, इसके शिखर लंका-दुर्ग के कंगूरे के, शिखरों पर छाये मेघ निशाचरों के (६।४१।१)। यह पुष्पक का, इसका शृंग सिंहासन का, शृंग पर की दामिनी सीता का, शिखर-स्थित मेघ राम का उपमान (६।११९।४-५)। आकाश में रावण से युद्ध करते हुए हनुमान् का उपमान (६।९५।७)। गुरुता के उदाहरण के रूप में इसका प्रयोग (१।१२।११, १।१७५, १।२९२।७, १।२५३।५, २।७२।३, २।२३२।३, २।२८८, ४।७।२, ५।५।३)।

मूल शब्द — १।१२।११, १।१७५, १।१८२।६, १।२५३।५, २।७२।३, २।२३८।६, २।२३२।३, ४।७।२, ६।४१।१, ६।११९।५, ७।११० ख। मेरू — १।२९२।७।

पर्याय — **सुमेरु** — २।२८८, ५।५।३, ६।९५।७। सुमेर — ७।५६।७। सुमेरु — २।२९५।४।

कनक भूधर — ५।१६।८।

हेमशैल — ५।१।श्लो०३।

मैना (मेना) — हिमालय की पत्नी।

(१) पितर ~ स्वधा (दक्षसुता) > मेना ~ हिमालय > (पुत्र) मैनाक, क्रौंच आदि एक सौ, (कन्याएँ) पार्वती, गंगा। शि० पु० रु० पा० २।२, ५-८, २८, ५।३४, ३६, ४६, शि० पु० वा० पू० १७।४८-५०, वि० पु० १।१०।१८।

(२) सुमेरु > मेना ~ हिमालय > गंगा, उमा। वा० रा० १।३५।१५-१६।

[ये अग्निष्वात्त पितरों की (शि० पु० वा० पू० १७।४८-४९) मानसी कन्या। लोक-व्यवहार से स्वधा-पुत्री। हिमालय की पत्नी बनने से पूर्व ज्ञाननिधि योगिनी। तीनों लोकों में इनकी अबाध गति। एक बार श्वेत द्वीप में जाकर इनके द्वारा विष्णु की स्तुति। उनकी आज्ञा से वहीं निवास। वहाँ सन्तों का समाज एकत्र। सनत्कुमारों का आगमन। सबका खड़े होकर उनको प्रणाम करना, किन्तु इनका चुपचाप बैठे रहना। इस पर सनत्कुमारों का इन्हें शाप और वरदान — ये विष्णु के अंशभूत हिमालय की भार्या हों। जगदम्बा पार्वती उनकी पुत्री होकर तप के प्रभाव से शिव-पत्नी बनेंगी। पार्वती के वरदान से इन्हें सशरीर कैलास नामक परमधाम प्राप्त होगा।

विवाहोपरान्त पति के साथ इनका कठोर तप। शिव-शिवा का चिन्तन और आराधन। प्रसन्न देवी से इन्हें वर-प्राप्ति — इनके सौ पुत्र होंगे। फिर देवी स्वयं इनकी कन्या के रूप में अवतीर्ण होंगी। सं० शि० पु० रु० पा० पृ० १६७-१६८, १७१-१७४।]

नारद के मुख से पार्वती के वर के लक्षण सुनकर हिमालय-सहित ये दुखी (१।६८।१, ३)। नारद के चले जाने पर एकान्त में इनका हिमालय से कथन — ये मुनि के वचन समझने में असमर्थ। उमा इन्हें प्राणप्रिय। उनके अनुरूप घर-वर मिलने पर ही उनका विवाह किया जाये, अन्यथा नहीं। यह कहकर पति के चरणों में सिर रखकर

इनका गिरना (१।७१।२-७)। हिमालय का इन्हें आश्वस्त करते हुए कथन— नारद के वचन सदा सत्य। ये चिन्ता छोड़ भगवान् का स्मरण करें। पार्वती को वररूप में शिव की प्राप्ति के लिए तप करने की शिक्षा दें (१।७१।७-१।७२।४)। सुनकर इन्हें हर्ष। पार्वती के पास जा उन्हें गोद में बैठाकर बार-बार हृदय से लगाना। प्रेम-विह्वलता के कारण कुछ कहने में ये असमर्थ (५।७२।५-७)। पार्वती का स्वप्न सुनकर ये विस्मित। इनका हिमालय को सुनाना (१।७२-१।७३।६)। तप करने के लिए पार्वती के जाने पर परिवारसहित ये विकल। वेदशिरा का सबको प्रबोधन (१।७३।७ -१।७३)। आरती सजाकर शिव का परछन करने के लिए इनका अन्य स्त्रियोंसहित जाना। शिव का विकट वेश देखकर भयभीत हो घर में घुसना। पार्वती को गोद में बैठाकर दुःखाकुलता से इनका विलाप। नारद को भला-बुरा कहना। जीते-जी रुद्र-जैसे वर से पार्वती का विवाह न करने का निश्चय (१।९६।२ - १।९७।४)। पार्वती का इन्हें समझाना (१।९७।५ - १।९७।छं०)। नारद के मुख से उमा के पूर्वजन्म की कथा सुनकर, उनके स्वरूप का परिचय पाकर, ये पतिसहित आनन्दित। इनके द्वारा उमा की पद-वन्दना (१।९७ -१।९९।१) विवाह हो जाने पर शिव के चरण पकड़ प्रेमाप्लुत हृदय से इनके द्वारा उनकी विनती। अपराध क्षमा करने और वर देने की उनसे प्रार्थना (१।१०१।छं०-१।१०१)। पार्वती को इनका नारिधर्म का उपदेश। उन्हें विदा करते हुए इनका उचित आशीर्वाद (१।१०२।१-१।१०२।छं०)। जिस तरह हिमालय के साथ ये शोभित, उसी तरह जनक के साथ सुनयना (१।३२४।४)।

मूल शब्द — १।६८।३, १।७१।२, १।९६।२, १।९६।६। मयना — १।९८।२, १।९९।१, १।१०२।छं०, १।३२४।४।

पर्याय — **गिरिनारि** — १।९६।

मैनाक — सागर-गर्भ में स्थित एक पर्वत का नाम।

[(१) यह हिमालय और मेना के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ। पार्वती और गंगा का भाई। दे० 'मैना'। अत्यन्त पराक्रमी और बलवान्। समुद्र से इसकी मित्रता। यह नाग-वधुओं का उपभोग-स्थल। सं० शि० पु० रु० पा० पृ० १७२।

(२) लवण-सागर के गर्भ में, पाताललोक के द्वार को बन्द करके स्थित। पाताल-वासी असुरों के निकलने के मार्ग को रोकने के लिए इन्द्र द्वारा परिघरूप में स्थापित। यह ऊपर-नीचे, अगल-बगल, सब ओर बढ़ने में समर्थ। इसके तेजपुंज सुवर्णमय शिखरों पर नाग-किन्नरों का निवास।

हनुमान् के समुद्र पार करते समय सागर के आदेश से इसका आकाश की ओर बढ़ना। इसे विघ्नरूप समझ हनुमान् का इसके उच्चतर शिखर को वक्षाघात से गिराना। उनसे इसका विनीत अनुरोध — वे इस पर विश्राम करें। उनके पूजन से पवनदेव का पूजन होगा। पवनदेव के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए इसके द्वारा सत्ययुग की एक घटना का उल्लेख — उस समय पर्वतों के भी पंख। सब दिशाओं में उनको वेग से उड़ते देख, उनके गिरने की आशंका से देवता, ऋषि आदि सब त्रस्त। अतः इन्द्र द्वारा वज्र से पर्वतों का पक्षश्छेदन। उस समय अपने बल से इसे सागर में गिराकर वायुदेव द्वारा इसके पंखों की रक्षा। इसके सम्मान में इसका हाथों से स्पर्श करके कर्त्तव्य-प्रेरित हनुमान् का आगे निकल जाना। वा० रा० ५।१।९१-१३३।

(३) वा० रा० में अन्यत्र इसकी स्थिति उत्तर में, कैलास और क्रौंचगिरि के बाद। यहाँ मयदानव का भवन। अश्वमुखी किन्नरियों का वास। वा० रा० ४।४३।२४-२५, २९-३१।]

जटायु को अपनी ओर आते देख रावण को मैनाक का भ्रम (३।२९।१२-१३)। सागर का इसे हनुमान् का श्रम दूर करने के लिए कहना। हनुमान् का इसे हाथों से स्पर्श करना, फिर प्रणाम करके कथन — राम का कार्य किये बिना उन्हें विश्राम नहीं (५।१।९ - ५।१)।

मूल शब्द — ३।२९।१३, ५।१।९।

रंतिदेव — दानवीर राजर्षि।

दुष्यन्त-पुत्र भरत > वितथ (भरद्वाज) > मन्यु > नर > संकृति > गुरु, रन्तिदेव। भा० ९।२०।३९, ९।२१।१-२।

[इनका वैभव-ऐश्वर्य विपुल। इन्द्र की आराधना कर इनकी वर-याचना — इनके पास बहुत अन्न हो, अतिथि-सेवा का अवसर प्राप्त हो, श्रद्धा कभी कम न हो, किसी से कभी कुछ माँगना न पड़े। कृष्ण और नारद

द्वारा इनकी दानशीलता और यज्ञों का वर्णन। महा० द्रोण ६७, शा० २६।१२०-१२६। ये संग्रह-परिग्रह-ममता-रहित, धैर्यवान्। आकाश-वृत्ति से जीवन-यापन — बिना उद्योग के दैववश प्राप्त वस्तुओं का ही उपभोग। प्राप्त का भी दान। सबमें इन्हें भगवान् के ही दर्शन (हरिं सर्वत्र सम्पश्यन्)। परिवार संकट में। एक बार निरन्तर अड़तालीस दिनों तक इनका परिवारसहित निर्जल अनाहार। उनचासवें दिन प्रातःकाल जल और खीर आदि की प्राप्ति। पर भोजन आरम्भ करने के समय ब्राह्मण-अतिथि का आगमन। श्रद्धापूर्वक उसे भोजन करना। बचा हुआ अन्न आपस में बाँटकर भोजन करने के पहले ही शूद्र-अतिथि का आगमन। कुछ भाग उसे देना। उसके बाद कुत्तों को लिये एक और अतिथि का आना। बचे हुए अन्न का उसे दान कर भगवान् मानकर नमस्कार करना। अब केवल एक मनुष्य के पीने भर का जल शेष। उसे आपस में बाँटकर पीने से पहले ही एक प्यासे चाण्डाल का आगमन। इनका कथन — भगवान् से अष्टसिद्धि या मोक्ष की प्राप्ति इन्हें काम्य नहीं। इनकी एकमात्र कामना कि ये सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हो जायें, उनका सब दुःख ये ही सहन करें। यह कहकर शेष जल का अतिथि को दान! अतिथि वस्तुतः भगवन्माया के ही रूप। त्रिदेव का प्राकट्य। इनकी कुछ भी याचना नहीं। ये भगवान् में तन्मय। इनके अनुयायी भी इनके प्रभाव से योगी। भा० ६।२१।१-१८।]

'रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना।।' (२।९५।४)।

रंभा — एक प्रसिद्ध अप्सरा।

दक्षकन्या प्राधा ~ देवर्षि (कश्यप) > अलम्बुषा, तिलोत्तमा आदि द्वादश अप्सराओं में एक रम्भा। महा० आदि० ६५।१२, ४६, ५०।

[विश्वामित्र को लुभाकर उनका तपोभंग करने के लिए यह इन्द्र द्वारा प्रेरित। विश्वामित्र का इसे दस सहस्र वर्षों तक शिला-प्रतिमा बने रहने का शाप। फिर उनका शापानुग्रह — तपोबल-सम्पन्न ब्राह्मण द्वारा इसका उद्धार होगा। वा० रा० १।६४।१-१५, महा० अनु० ३।११। एक राक्षसी से युद्ध करते हुए श्वेत मुनि के वायु-अस्त्र के प्रभाव से राक्षसी के साथ इसका भी आँधी में फँसकर कपितीर्थ में गिरना। राक्षसी बनी वारांगना के साथ इसकी भी शाप-मुक्ति। प्रा० च० के अनुसार स्क० पु० ३।१।३६।

यह धर्मतः कुबेर-पुत्र नलकूबर की भार्या। एक बार पूर्ण श्रृंगार करके प्रियतम से मिलने के लिए इसे जाते देख कैलास-स्थित रावण काम-मोहित। उसकी पुत्रवधू के रूप में अपना परिचय देकर इसका उसे समझाना। फिर भी कामान्ध रावण द्वारा इसके साथ बलात्कार। अत्यन्त व्याकुल हो नलकूबर के पास जाकर इसके द्वारा सब वृत्तान्त-कथन। नलकूबर का रावण को शाप — भविष्य में किसी अनिच्छुक स्त्री के साथ बलात्कार करने पर उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे। वा० रा० ७।२६।१४-५६, महा० वन० २८०।५९-६०।]

रम्भा आदि अप्सराएँ काम-कला में निपुण। नारद को समाधि-च्युत करने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित कामदेव की सहायिकाएँ। इनके द्वारा मादक तानों में गान और नानाविध कामोद्दीपक प्रदर्शन (१।१२६।४-५)।

मूल शब्द — २।१२६।४ (रंभादिक)।

रघुकुल — दे० 'दिनकर कुल'।

रघुबंस — दे० 'दिनकर कुल'।

रघुबंसी — रघु के वंशज। ये ही सूर्यवंशी। दे० 'दिनकर कुल'।

'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ।।' —राम-कथन लक्ष्मण से (१।२३१।५)। जनक के ये वचन सुनकर कि पृथ्वी वीरशून्य, लक्ष्मण की क्रोधोक्ति — एक भी रघुवंशी की उपस्थिति में इस प्रकार का आक्षेप करना अनुचित (१।२५३।१)। 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी' — राम-कथन परशुराम से (१।२८४।४)।

मूल शब्द — १।२३१।५, १।२५३।१, १।२८४।४।

रजोगुन — (रंजयतीति रजः। ह० को०।) जीवात्मा को देह-बन्धन में बाँधनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न, तीन गुणों में एक। गीता० १४।५।

[यह रागरूप। कामनासक्ति से उत्पन्न। कर्म में प्रवृत्त करनेवाला, फलासक्तिमूलक। मनुष्य में तीनों गुण विद्यमान। अन्य गुणों को दबाकर इसकी वृद्धि होने पर लोभ, अ-शम, स्पृहा उत्पन्न, सांसारिक प्रवृत्ति और (स्वार्थबुद्धि से) कर्मारम्भ। गीता० १४।७, १०, १२। जीव की बुद्धि चंचल, ज्ञानेन्द्रियाँ असन्तुष्ट, कर्मेन्द्रियाँ

विकारयुक्त, मन भ्रान्त, शरीर अस्वस्थ। इससे असुर-बल-वृद्धि। भा० ११।२५।१७,१६। इस गुण की वृत्तियाँ – इच्छा, प्रयत्न, दम्भ, तृष्णा, देवताओं से धन आदि की याचना, भेदबुद्धि, विषयभोग, (युद्धादि के लिए) मदजनित उत्साह, यशःप्रीति, हास्य, पराक्रम, हठपूर्ण उद्योग आदि। भा० ११।२५।३।]

राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। रजोगुण की स्वल्पता, सत्वगुण की अधिकता, कर्म में रति, सब प्रकार से सुख त्रेतायुग के लक्षण (७।१०४।१,३)। द्वापर में इस गुण की अधिकता, सत्व एवं तमोगुण की स्वल्पता, मन में हर्ष और भय (७।१०४।४)। इस गुण की स्वल्पता, तमोगुण की अधिकता, चतुर्दिक् विरोध कलि-प्रभाव के सूचक (७।१०४।५)।

मूल शब्द – ७।१०४।५। रज – ७।१०४।३, ७।१०४।४।

रति – कामदेव की पत्नी।

[काम के वाम पार्श्व से उत्पन्न। परम सुन्दरी कामिनी। समस्त प्राणियों की इनमें रति। अतः मनीषियों द्वारा यही नामकरण। सं० ब्र० पु० पृ० २६। दक्ष के शरीर के पसीने से प्रकट। दक्ष द्वारा पत्नीरूप में काम को समर्पित। सं० शि० पु० पृ० ११०। काम-भस्म होने पर इनका करुण विलाप। पतिविहीन हो क्षणभर के लिए भी जीवित रहना इनकी दृष्टि में कलंक। कुमार० ४। दे० 'काम'।]

काम को भस्म हुआ देख ये मूर्च्छित। विलाप करते हुए इनकी शिव से करबद्ध विनती। शिव का अनुग्रह। काम के अनंग रहकर सबको व्यापने और कृष्णावतार में कृष्ण के पुत्ररूप में जन्म लेने का कथन। इनका प्रस्थान (१।८७।छं० - १।८८।३)। शिव के इन्हें वर देने का कथन ब्रह्मा द्वारा शिव से (१।८६।२), सप्तर्षि द्वारा हिमवान् से (१।६१।२)। इनमें सीता का उपमान होने की योग्यता नहीं, क्योंकि पति के शरीरहीन होने से ये दुखी (१।२४७।५)। विवाह के समय मणि-स्तम्भों में सिय-राम के प्रतिबिम्ब, मानो अनेक रूप धारण कर ये पतिसहित उनका विवाह देख रही हों (१।३२५।३-४)। चन्द्रमा के सार-भाग से विधि द्वारा इनके मुख का निर्माण। – शशि में श्यामता का कारण बताते हुए एक वानर का कथन राम से (६।१२।७)।

उपमान-रूप में प्रयोग -- सौन्दर्य की दृष्टि से इनके समान – मायानगर की स्त्रियाँ (१।१३०।१), सीता (२।१२३।३, २।१३३, २।२३६।७); सौन्दर्य में ये हीन--अवधपुर की स्त्रियों से (१।२६७।२, १।३४५।५), जनक-समाज की स्त्रियों से (१।३१८।१), सीता से (२।६१।२)। सीता पर शत कोटि रति बलिहारी (३।२२।६)।

मूल शब्द – १।८७।छं०, १।८७, १।८८।३, १।८६।२, १।६१।२, १।१३०।१, १।२४७।५, १।२६७।२, १।३१८।१, १।३२५।४ (जाति०), २।६१।२, २।१२३।३, २।१३३, २।२३६।७, ३।२२।६ (जाति०), ६।१२।७।

पर्याय -- **मदन बिलासिनि** – १।३४५।५।

रबि (रवि) – (रूयते स्तूयते इति। ह० को०।) सूर्य-मण्डल के अन्तर्गत सूर्याभिमानी देवता। सू० अ० पृ० ६। इक्कीस प्रजापतियों में एक। महा० शा० ३३४।३६। नवग्रहों में एक। आ० को० दे० 'ग्रहः'। सौर-मण्डल का प्रधान पिण्ड या तारा। बृ० को०।

प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > अदिति ~ कश्यप > द्वादश आदित्यों में प्रथम विवस्वान् ~ (१) संज्ञा (विश्वकर्मा-पुत्री) > वैवस्वत मनु, यम एवं यमी (यमज), (२) छाया > शनैश्चर, सावर्णि मनु, तपती (कन्या)। भा० ६।४।५१, ६।६।२५, ३६-४१, ८।१३।८-१०।

[(१) शास्त्रीय दृष्टि से सूर्य के तीन रूप– (क) अध्यात्म-सूर्य – सब ज्योतियों की ज्योति और ज्योतिष्मती योग-प्रवृत्ति का कारणरूप शुद्ध प्रकाश, (ख) अधिभूत सूर्य – जिस सूर्यमण्डल के हमें नित्य दर्शन, (ग) आधिदैविक सूर्य – सूर्य-मण्डल में परिव्याप्त चेतन देव, अधिदैव शक्ति। तात्पर्य यह कि सूर्य चेतन। यजु० वा० सं० ४०।१७ के 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्' के अनुसार भी आदित्य-मण्डलस्थ पुरुष चेतन। गायत्री-मन्त्र में ये (सवितादेव = सूर्यदेव) ही ध्येय। सू० अ० पृ० ६।

ऋग्वेदसंहिता १।११५।१ में ये सभी स्थावर-जंगमात्मक विश्व की अन्तरात्मा। शतपथ ब्राह्मण १०।५।२।१ के अनुसार त्रयीमय। सू० अ० पृ० १६। सूर्योपनिषद् पृ० ६८४-६८५ में इनकी सर्वव्यापकता और इनके अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ घृणि सूर्य आदित्योम्) के जप का माहात्म्य वर्णित। इस मन्त्र को जपनेवाला ही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता)।

(२) इनका रथ वेदमय। उसका संवत्सर नामक एक चक्र (पहिया)। उसमें (मासरूप) बारह अरे। (ऋतुरूप)

छः नेमियाँ (हाल)। (चौमासेरूप) तीन नाभियाँ (आँवन)। उस रथ की धुरी का एक सिरा मेरु पर्वत की चोटी पर, दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर। उसमें लगा पहिया कोल्हू के पहिये के समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वत का चक्कर लगाता है। उस रथ में गायत्री आदि छन्दों के-से नामवाले सात अश्व। (वस्तुतः अश्व एक ही, सात नाम होने के कारण सात अश्व कहे जाते हैं। सू० अ० पृ० १६।) सारथि अरुण। साठ हजार बालखिल्यादि ऋषि इनके स्वस्तिवाचन के लिए नियुक्त। भा० ५।२१।१२-१७, वि० पु० २।८।२-८।

प्रत्येक मास में इनका भिन्न-भिन्न नाम धारण करना। ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस, देवता, इन सातों का भी जोड़ों में रहकर (सत्पगणों के रूप में) प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नाम ग्रहण करना। इस प्रका प्रत्येक मास में अलग-अलग नामवाले सप्तगण द्वारा भिन्न-भिन्न कर्मों से भिन्न-भिन्न नामवाले सूर्य की उपासना। भा० ५।२१।१८, वि०पु० २।१०।

(३) छल से अमृत-पान करते हुए राहु के भेद का सूर्य-चन्द्र द्वारा उद्घाटन। हरि-चक्र से उसका शिरश्छेद। अमर राहु-शिर का वैरवश अमावस्या और पूर्णिमा को इन पर और चन्द्र पर आक्रमण। भा० ५।२४।२, ८।९।२४-२६, महा० आदि० १९।४-९। इनकी और चन्द्रमा की रक्षा के लिए भगवान् द्वारा अपना सुदर्शन चक्र नियुक्त। उसके तेज से उद्विग्न राहु का मुहूर्त्तभर के लिए इनके सामने रहकर लौट जाना। उसका उतनी देर का ठहरना ही ग्रहण। भा० ५।२४।३। नित्य प्रातःकाल अस्त्र-शस्त्र लेकर मन्देह नामक दैत्यों का इन्हें घेरना। दे० 'दनुज'।

(४) इनका तेज इनकी पत्नी संज्ञा के लिए असह्य। अतः उनका तप करने के लिए वन-गमन। जाते समय छायासंज्ञा को (अपनी छाया से एक स्त्री उत्पन्न कर उसको) पति की सेवा में नियुक्त करना। (भा० में छाया भी विश्वकर्मा-पुत्री, संज्ञा की बहन।) इनका छाया को संज्ञा ही समझना। छाया का यम को शाप देना। (छाया के शाप, संज्ञा को सूर्य के शाप आदि के लिए दे० 'जम'।) तब इन्हें विदित कि छाया संज्ञा नहीं। समाधिस्थ होने पर ज्ञात कि संज्ञा अश्विनीरूप धारण कर वन में तपोलीन। इनका अश्वरूप में संज्ञा के पास जाना। उनसे अश्विनीकुमारों को, फिर रेतःस्राव के अनन्तर रेवन्त को उत्पन्न करना। संज्ञा को लेकर अपने स्थान पर आना।

इनका तेज शान्त करने के लिए विश्वकर्मा का इन्हें भ्रमयन्त्र (सान) पर चढ़ाना। इनके वैष्णव तेज का अष्टमांश ही क्षीण करने में वे समर्थ। छँटे हुए तेज से उनके द्वारा विष्णु के चक्र, शंकर के त्रिशूल, कुबेर के विमान और कार्त्तिकेय की शक्ति का निर्माण, अन्य देवताओं के शस्त्रों की शक्ति का भी वर्धन। वि० पु० ३।२।२-१३।

(५) इनके अंश से रामावतार में सुग्रीव का (वा० रा० १।१७।१०), कृष्णावतार में कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म (महा० आदि० ११०।१७-१८)। रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए राम को आदित्यहृदय-स्तोत्र का अगस्त्य द्वारा उपदेश। उसको तीन बार जपने का परामर्श। वा० रा० ६।१०५।४-२९। महा० वन० ३।१६-३१ में धौम्य मुनि द्वारा युधिष्ठिर को, सं० ब्रह्मपु० ३२९ में ब्रह्मा द्वारा मुनियों को इनके एक सौ आठ नामों का उपदेश।]

'राम' शब्द में 'अ' भानुबीज। (मा० पी० १।१९।१ द्वितीय चरण नोट ग।) (१।१९।१)। माघ मास में इनके मकर राशि में आने पर (मकर संक्रान्ति को) सबका प्रयाग जाना (१।४४।३)। 'भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं' (१।६९।६)। 'अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु' (१।१७०)। शशि, पवन आदि के साथ ये भी रावण के वशवर्त्ती (१।१८२।१०, १२)। रावण के आगे इनके तेजहीन होने का कथन मन्दोदरी-विलाप में (६।१०४।५)। चारों भाइयों के जन्म पर अवधपुरी का विलक्षण रूप निहारकर, सन्ध्या के रूप में रात्रि को देखकर, ये आत्मविस्मृत। अवधपुरी के ऊपर ही एक मास तक रथसहित स्थिर। वहाँ एक महीने का दिन। यह रहस्य सबके लिए अज्ञात। फिर अपने भाग्य की सराहना करते हुए इनका गमन (१।१९५।४, १।१९५।८-१।१९६।१)। इनका उदय कमल, चक्रवाक और लोक के लिए सुखदायी। —रामकथन (१।२३८।७)। धनुषयज्ञ के समय राम का जनकपुर में आगमन अरुणोदय-सदृश। इनका उदय राम-प्रताप का सूचक। —लक्ष्मण-कथन (१।२३८, १।२३९।४-५)। रघुबर और बाल-पतंग का रूपक (१।२५४-१।२५५।३)। धनुष-भंग की कठोर ध्वनि से भीत हो इनके अश्वों का मार्ग छोड़कर चलना (१।२६१।छं०)। राम-लक्ष्मण के प्रताप के आगे इनका प्रताप मन्द। ये रामाज्ञा के पालक (१।२९२।२, २।२५४।६, ८)। 'देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे' (१।२९२।३)। राम-विवाह के समय

हरि-हर आदि के साथ इनका भी छद्म विप्रवेश धारणकर सब कौतुक देखना। जनका द्वारा पूजित होना (१।३२१।६-८)। स्वयं अपने कुल की सब रीतियाँ बताना (१।३२३।छं०२)। 'भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।।' (२।१७।७)। (मा० पी० के अनुसार) ये रघुकुल-गुरु, अर्थात् रघुकुल में श्रेष्ठ, इस कुल के पुरखा। दशरथ की इनसे प्रार्थना कि ये अपना उदय न करें (२।३७।३)। [वि० के अनुसार यहाँ भी 'रघुकुल गुर' वसिष्ठ के लिए।] 'तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई', 'अंधकारु बरु रबिहि नसावै' (२।२३२।१, ७।१२२।१८)। चित्रकूट में सबके द्वारा गणेश-गौरि-शिव-सूर्य का पूजन (२।२७३।४)। 'भानु पीठ सेइअ उर आगी' (४।२३।४)। तरुणावस्था में सम्पाति और जटायु का उड़ते हुए इनके निकट आना। इनका तेज न सह सकने के कारण जटायु का लौटना। सम्पाति का इनके और निकट आना। इनके तेज से उसके पंख दग्ध। उसका भूमि पर गिरना। — सम्पाति का वानरों से कथन (४।२८।२-४)। रावण-वध के समय अमावस्या के बिना ही सूर्य-ग्रहण (६।१०२।९)। राम-राज्य में इनका उतना ही तपना जितने का प्रयोजन (७।२३)। 'बिनु रबि राति न जाइ' (७।७८ख)।

साम्यमूलक अलंकारों में इनका उपमान रूप में प्रयोग (१।सो० ५, १।२०।६, १।२४।५, १।३२।१०, १।४३।८, १।११५, १।११६।४, १।११६।५, १।११७।२, १।११७, १।२६४, १।२९६।४, १।३०१।६, १।३२७।३, २।५०।छं०, २।५९।८, २।६५।३, २।७४।३, २।८६, २।९७।६, २।२०९।३, २।२४४।४, २।२४८।१, २।२६७।३, २।२७७।१, २।२८५।५, २।२९५।६, २।२९५।७, २।३०५।७, २।३२६।६, ३।१।श्लो०१, ३।११।२, ३।११।५, ३।१७।६, ३।१८, ५।६, ५।१५।२, ५।१६।२, ५।४७।४, ६।६।६, ६।१५।२, ६।३२क, ६।४२।२, ६।५२।७, ६।९२।छं०, ६।९३।४, ६।९७।१, ६।१११।छं० ८, ६।११५।छं० २, ७।९क, ७।१२।२, ७।१४।छं० ३, ७।२७।७, ७।३०।४, ७।३०।७, ७।३१।१, ७।३१, ७।७२।८, ७।७३।४, ७।९२।छं०, ७।१२१।२१, ७।१२१।२६, ७।१३० के बाद श्लो० २)। इनका उल्लेख — 'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं' के एवं 'तेजवंत लघु गनिअ न…' के उदाहरणरूप में (१।६९।८, १।२५६।८)। अन्य उल्लेख (१।१५९।२, २।३७, २।२२६।१, ४।१५ख, ६।७९।७)। जातिवाचक रूप में इनका प्रयोग (१।२०२।१, ७।८०।५, ७।९१क, ७।१०८।छं० ५)

मूल शब्द — १।सो० ५, १।२४।५, १।४३।८, १।४४।३, १।६९।८, १।११५, १।१५९।२, १।१७०, १।१८२।१०, १।१९५, १।२०२।१ (जाति०), १।२३६।५, १।२५६।८, १।२६१।छं०, १।२६४, १।२९२।२, १।२९२।३, १।३०१।६, १।३२३।छं०२, १।३२७।३, २।३७।३, २।३७, २।५९।८, २।२०९।३, २।२४४।४, २।२५४।६, २।२६७।३, २।२७७।१, ३।११।२, ३।१७।६, ३।१८, ४।२८।२, ४।२८।३, ५।१६।२, ५।४७।४, ६।७९।७, ६।९७।१, ६।१०२।९, ६।१११।छं० ८, ७।१२।२, ७।२३, ७।२७।७, ७।३०।४, ७।३१, ७।७२।८, ७।७८ख, ७।८०।५ (जाति०), ७।९१ क (जाति), ७।९२।छं०, ७।१२२।१८।

पर्याय— **अरुन** (अरुण = बालसूर्य) — १।२३८।७, १।२३८।

चंडकर (तीक्ष्ण किरणोंवाले) — २।२९५।६।

तमारि (तम + अरि) — २।८६। तमारी — २।२७३।४, ७।१२१।२१।

तरनि (तरणि — तरति पापमनेन इति। ह० को०) — २।६५।३, २।२३२।१, २।२९५।७। तरनी — २।२४८।१, ६।१०४।५,।

दिनकर — १।३२।१०, २।२२६।१, २।२८५।५, ६।६।६, ६।३२क, ६।५२।७, ६।९२।छं०, ६।९३।४।

दिनमनि (दिनमणि) — १।१९६।१।

दिनराऊ (राउ = राजा) — १।३२१।६।

दिनेस (दिनेश) — ७।९क। दिनेसा— १।११६।५, ७।३१।१, ७।७३।४। दिनेसू — २।३०५।७, २।३२६।६।

दिवाकर — ६।१५।२, ६।४२।२, ६।११५।छं० २, ७।१४।छं० ३।

पतंग (पतति आकाशे गच्छति। ह० को०।) — १।१९५।८, १।२५४, ४।१५ख, ७।१३० के बाद श्लो० २। पतंगा — १।११६।४।

पूषन (पूषण = पोषण करनेवाले) — १।२०।६।

भानु (भाति चतुर्दशभुवनेषु स्वप्रभया दीप्यते इति। ह० को०।) — १।१९।१, १।६९।६, १।११७।२, १।११७, १।१९५।४, १।२३६।४, १।२९६।४, २।१७।७, २।५०।छं०, २।७४।३, २।९७।६, ३।११।५, ४।२३।४, ५।६,

७।३०।७, ७।१०८।छं० ५ (जाति०) ७।१२१।२६। भानू — ५।१५।२।

भास्कर (भा : (प्रकाश) करोति इति। ह० को०।) — ३।१।श्लो०१।

रघुकुल गुर — २।३७।३ (वि० में वसिष्ठ के लिए)।

रमा — दे० 'लच्छि', 'सीता'।

रस — काव्य का अंग।

[काव्य-शास्त्र में इसका प्रयोग काव्यास्वाद अथवा काव्यानन्द के लिए। भरत के सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से इसकी निष्पत्ति। आस्वादरूप में एक होने पर भी उपाधि-भेद से इसके आठ प्रकार — शृंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, बीभत्स, भयानक, अद्भुत। नवाँ रस शान्त। कालान्तर में वात्सल्य और भक्ति की भी रसरूप में स्वीकृति। सा० को० १।]

रसों के कर्त्ता वाणी-विनायक (१।१।श्लो०१)। इसके अपार भेद होने का कथन (१।९।१०)। 'जदपि कबित रस एकउ नाहीं' (१।१०।७)। नवरस मानस-सर के जलचर (१।३७।१०)।

रसातल — पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में छठे लोक का नाम। भा० ५।२४।७।

[यहाँ देव-विरोधी पणि नामक दैत्यों-दानवों का वास। वे निवातकवच, कालेय, हिरण्यपुरवासी नाम से भी प्रसिद्ध। एक बार इनका पृथ्वी को रसातल में छिपाना। इन्द्र की दूती सरमा का इन्हें इन्द्र के हाथों मरकर पृथ्वीशायी होने का शाप। तब से ये इन्द्र से भयभीत। भा० ५।२४।३० एवं पाद०।

'रसातल पहुँचाना' एक मुहावरा, बरबाद कर देने के अर्थ में प्रयुक्त। बृ० को०।]

भरत-कथन — उन्हें राज्य देने पर पृथ्वी रसातल में चली जायेगी (२।२७९।२)।

राम — रामचरितमानस के केन्द्रीय तत्व।

[तुलसी ने राम का निरूपण आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं इन तीनों के परे शुद्ध ब्रह्मरूप में भी किया है। आधिभौतिक स्तर पर ये दशरथ-कौसल्या के पुत्र, आधिदैविक स्तर पर विष्णु के अवतार, आध्यात्मिक स्तर पर ज्ञानस्वरूप हैं। तत्वतः इनका स्वरूप वचन-अगोचर और बुद्धिपर है, किन्तु इन्हें सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में तुलसीदास ने स्वीकार किया है।]

ब्रह्मादि सुर और असुर सहित सारा विश्व इनकी माया के वशवर्ती। इनकी सत्ता से ही सारा जगत् सत्तावान्। भवसागर को पार करने के इच्छुकों के लिए इनके चरण ही एकमात्र साधन। ये अशेष कारणों से परे। ब्रह्मावतार रूप में इनकी वन्दना (१।१।श्लो० ६)। (शम्भुकृत) रामायण में कथित इनकी गाथा को भाषा-निबन्ध में रचने की कवि की प्रतिज्ञा (१।१।श्लो०७)। 'करन चहउँ रघुपति गुन गाहा' (१।८।५)। इनसे इनकी कृपा की, सन्तों से इनके चरणों में प्रेम की कवि-याचना (१।१।सो० २, १।३ख)।

इनकी कथा जग-मंगलकारी, कलि-मलहारी (१।१०।१०, १।१०।छं०)। सप्त कुलाचल-सदृश शारदा-शेष-महेश-ब्रह्मा-शास्त्र-वेद-पुराण इनकी प्रभुता की असीमता से परिचित, फिर भी नेति-नेति कहकर इनके गुणों का वर्णन करके उनके द्वारा इनका भजन (१।१२।१२-१।१३।२)। ये एक (अद्वितीय), अनीह (इच्छा या चेष्टारहित), अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानन्दस्वरूप, परधाम, व्यापक, विश्वरूप, भगवान्। इनका भक्तों के हित के लिए देह धारण करके नाना प्रकार के चरित करना (१।१३।३-१।१३।५)। इनके विरुदों को जानकर अपनी वाणी की सफलता के लिए बुद्धिमान् पण्डितों, वेदों और सब काल के सब भाषाओं के कवियों द्वारा इनके यश का वर्णन। पण्डितों के मार्ग का अनुसरण करके कवि द्वारा इनकी गुणगाथा कहने की चिकीर्षा। सबकी वन्दना और कृपा-याचना (१।१३।५-१।१४।६, १।१४।१०, १।१४ ख, ग, ङ)। शिव 'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'। उनकी और पार्वती की कृपा प्राप्त कर कवि द्वारा इनके चरित का वर्णन। इस कथा के वक्ता-श्रोता के राम-चरणानुरागी होने का कथन (१।१५।४, १।१५।८-११)।

कौसल्यारूपी प्राची दिशा में इनका शशिरूप में प्राकट्य। इनके वियोग में प्राण त्यागनेवाले दशरथ के मन में इनके लिए सत्य प्रेम। जनक का गूढ़ प्रेम इन्हें देखते ही प्रकट। भरत सदा इनके चरणों में अनुरक्त। शत्रुघ्न उनके अनुगामी। लक्ष्मण का यश इनकी कीर्त्ति-पताका में दण्ड-स्वरूप। हनुमान् के हृदय में इनका धनुर्बाणधारी रूप सदा विराजमान। स्वयं इनके द्वारा उनकी प्रशंसा। विभीषण, सुग्रीवादि को अधम शरीर से इनकी प्राप्ति। इन सबके साथ इनके अन्य निष्काम भक्तों की वन्दना। अनुग्रह की याचना (१।१६।४ - १।१८।६)।

सीता इनकी प्रिया। दोनों वाणी और अर्थ, जल और लहर के समान कहने में भिन्न, किन्तु तत्वतः अभिन्न। [द्वौ च नित्यं द्विधारूपं तत्वतो नित्यमेकता। राममन्त्रस्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः।। यद्वा शब्दात्मको रामो सीता शब्दार्थ-रूपिणी। यद्वा वाणी भवेत् सीता रामः शब्दार्थरूपवान्।। मा० पी० १।१८ नोट १ (ख) पृ० २८६ के अनुसार बृहद् विष्णुपुराण।] दोनों के चरणों की पृथक्-पृथक् वन्दना करके एक साथ सियराम-पद-वन्दना (१।१८।७-१।१८)। [राम के दक्षिण चरण में जो चिह्न, वे ही सीता के वाम चरण में। राम के वाम पद के चिह्न सीता के दक्षिण पद में। मा० पी० १।१८ नोट ४ (ग), वि० व्या०।]

रामनाम-वन्दना-प्रकरण में – नाम अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का बीजकारण (१।१६।१)। [रकारोऽनल बीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादयः। कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम्।। अकरो भानुबीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम्। नाशयत्येव सद्दीप्त्या याऽविद्या हृदये तमः।। मकारश्चन्द्रबीजंच पीयूषपरिपूर्णकम्। त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च।। मा० पी० १।१६।१ नोट (ग) पृ० ३०० के अनुसार महारामायण ५२।६२-६४। वि० व्या० के अनुसार स्कन्दयामल में राम का र = अग्नि = रुद्र, आ = सूर्य = ब्रह्मा, म = सोम = विष्णु।] यह विधि-हरि-हरमय, वेदप्राण, निर्गुण और सगुण भी (१।१६।२)। [राम = र् + आ + अ + म् । आ, अ, म्, क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सृजन, पालन, संहार की शक्तियों का, रकार साक्षात् ब्रह्म राम का वाचक। रा० पू० ता० २, पृ० ५३२। वेद का प्राण प्रणव = अ + उ + म + अर्द्धमात्रा। अकार ब्रह्मा, उकार विष्णुरूप, मकार शिवरूप, अर्द्धमात्रा स्वप्रकाशात्मक ब्रह्मरूप। अतः राम नाम सगुण भी, निर्गुण भी। वि० १।१६।२ व्या०।] रामनाम महामन्त्र। शिव द्वारा इसका जप। उनके द्वारा इसका उपदेश ही काशी में प्राणत्याग करनेवालों की मुक्ति का कारण (१।१६।३)। (दे० 'कासी'।)। यह सहस्रनाम-तुल्य, शिव से यह सुनकर पार्वती द्वारा भी इसका जप। [राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।। प० पु० उ० २५४।२२। दे० 'भवानी' के अन्तर्गत 'पारबती'।] इसके प्रताप से ही शिव, गणेश और पार्वती को महत्व प्राप्त (१।१६।४-८)।

इनके नाम के दोनों अक्षर भक्ति के आभूषण, भक्तों के प्राण, तुलसीदास के लिए राम-लक्ष्मण-से प्रिय। दोनों अक्षर ब्रह्म और जीव की तरह स्वभाव से ही साथी। दोनों को अलग-अलग मानकर उनका वर्णन करने पर उच्चारण-स्थान, अर्थ आदि की दृष्टि से उनमें पृथक्ता का बोध। ['रा' तत्पदार्थ (ब्रह्म) का बोधक, 'म' त्वंपदार्थ (जीव)। दोनों का संयोजन 'असि'। अतः 'रा' और 'म' के पृथक् वर्णन में महावाक्य अर्थ नहीं। वि० व्या०। मा० पी० १।२०।४ नोट १ के अन्तर्गत रामानुजमन्त्रार्थ में 'र' सगुण राम का, 'म' कैंकर्य-निपुण जीव का और 'आ' राम के प्रति जीव की अनन्यता का बोधक।] दोनों अक्षर जगत् के पालक, भक्तों के त्राता, धर्मरूपी वसुधा को धारण करनेवाले। जिह्वा के लिए अमृत-सम। (स्वरहीन होने पर) 'राम' रेफ के रूप में और 'म' अनुस्वार के रूप में सब अक्षरों के ऊपर शोभित (१।१६ - १।२०)।

नाम (शब्द) और नामी (अर्थ) में सादृश्य। (अर्थात् मानसिक अभेद। यहाँ नामी से रूप का ग्रहण। वि०।) नाम-रूप दोनों ईश्वर की उपाधियाँ– अकथ और अनादि। [जीवों के नाम-रूप कर्मों की छाया पड़ने के कारण, पर ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नहीं। उसमें केवल भक्तों के भाव की छाया और भाव सत्तारूप अविनाशी। अतः ईश्वर के नाम-रूपादि नित्य। वि०।] दोनों समान कोटि के, फिर भी रूप नाम के अधीन। रूप का ज्ञान नाम से ही, नाम विहीन रूप की पहचान सम्भव नहीं। नाम निर्गुण और सगुण के बीच में साक्षी, दोनों का ज्ञान कराने के लिए चतुर दुभाषिया। [नाम के अर्थ से निर्गुण का बोध, यथा, रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि स रामः। उसके अक्षर सगुण के प्रबोधक, यथा, राजते यो मही स्थितः, राक्षसा येन मरणं यान्ति इत्यादि। वि० १।२१।८ व्या०, मा० पी० १२१।८।नोट ४।] वस्तुतः नाम और रूप की गति अकथनीय (१।२१।१-८)।

रामनामरूपी मणिदीप को जिह्वारूपी देहली पर रखने पर (नामोच्चार करने पर) भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश। [भीतर निर्गुण से, बाहर सगुण से। वि०।] नामजप से योगियों को ब्रह्मानन्द-प्राप्ति, साधकों को सिद्धि-लाभ, आर्त्त संकटमुक्त। (आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी) चारों प्रकार के भक्तों का एकमात्र आधार नाम। चारों युगों और चारों वेदों में नाम का प्रभाव प्रसिद्ध, किन्तु कलियुग में नाम के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं (१।२१ - १।२२)।

नाम निर्गुण ब्रह्म से बड़ा। निर्गुण का सर्वान्तर्यामी-रूप से हृदय में वास, फिर भी जीव दुखी। किन्तु

नाम-निरूपण (अर्थात् नाम की अर्थ-भावना) और नाम-यत्न (अर्थात् नामजप) से वही स्वान्तःस्थ ब्रह्म (सगुण रूप में) प्रकट।

नाम सगुण ब्रह्म राम से भी बड़ा। जैसे ब्रह्माण्ड में रामावतार, वैसे ही पिण्ड में नामावतार। रामावतार से साधु सुखी, नामावतार से जापक भक्त मुद-मंगल का निवास, वह जंगम तीर्थराज। नरतनुधारी राम द्वारा दुष्ट-दलन आदि अनेक अद्भुत कार्य सम्पादित, नाम द्वारा कोटि-कोटि खलों का उद्धार और जनों की कुमति, दोष-दुःख-निराशा, भव-भय, कलि-कलुष आदि का नाश। राम द्वारा ससैन्य रावण-वध और आनन्ददायी रामराज्य की स्थापना, नाम-जप से मोह-सैन्य ध्वस्त और जापक का प्रेममग्न हो आत्मानन्द में विचरण। इस प्रकार निर्गुण और सगुण दोनों से नाम बड़ा। यह वरदायक शंकर, ब्रह्मादि को भी वर देनेवाला। यह जानकर शिव द्वारा 'सतकोटि रामचरित' में से राम-नाम का ग्रहण (१।२३।१-१।२५)।

नाम के प्रभाव से ही शिव अविनाशी, अमंगलवेश धारण करने पर भी मंगलराशि। नाम-प्रताप-प्रसंग में शुक, सनकादि, नारदादि तथा अजामिल, गज, गणिका के उदाहरण। नाम का प्रभाव ऐसा कि 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई' (१।२६।१-८)। नाम-जप से ही चारों युगों और तीनों कालों में जीव शोकमुक्त। सत्य, त्रेता और द्वापर में क्रमशः ध्यान, यज्ञ और पूजा से प्रभु प्रसन्न, किन्तु कलियुग में नाम ही एकमात्र अभिमतदाता, इसी से इहलोक में मनोकामना सिद्ध और परलोक में हित। 'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।' (१।२६ - १।२८।१)। ऐसे नाम का स्मरण कर और नामी को प्रणाम करके कवि द्वारा इनकी गाथा की रचना का संकल्प (१।२८।२)।

कवि द्वारा अपने कार्पण्य और इनके शील, कृपालुता, सारग्राहिता, भक्त-वत्सलता आदि गुणों का वर्णन (१।२८।२-१।२६)। इनकी कथा के तीन संवादों (श्रोताओं-वक्ताओं) का उल्लेख। [भुशुण्डि-गरुड़-संवाद का कथन उत्तरकाण्ड में।] गुरु से सुनी गूढ़ कथा को इनकी प्रेरणा से भाषाबद्ध करने की कवि की प्रतिज्ञा (१।३०।१-६, १।३० क - १।३१।३)।

इनकी कथा का माहात्म्य— यह कलिकलुष-निकन्दिनी। सिद्धि-सुख-सम्पत्ति की राशि। पृथ्वी पर अमृत-सलिला-सदृश। इनको अतिशय प्रिय। [स्वयं इनके और जानकी के द्वारा भी पहले के रामावतार की कथाओं का श्रवण। अ० रा० २।४।७७-७८।] सन्त-समाज में इसकी उत्पत्ति। यह साधुओं की हितकारिणी, सद्गुणों की जननी। इसी से विश्व की स्थिति। यह शिव को प्रिय (१।३१।४-१।३१)। इनके चरित का माहात्म्य — सन्तों की सुमति के लिए यह सुन्दर चिन्तामणि-सदृश (१।३२।१)। इनके गुणग्राम का माहातम्य — ये गुण जगत् के लिए मंगलरूप। ये दारिद्रय-शोक-सन्ताप, भवरोग, कलिकाल के विकारों के नाशक, सकल धर्म-व्रत-नेम के बीजरूप, धन-धर्म-मुक्ति-धाम एवं ज्ञान-वैराग्य-योगसिद्धि के दाता, लोक-परलोक को सुधारनेवाले, सिय-राम-प्रेम के जननी-जनक, भक्तों के जीवन-धन, शिव के प्रिय, सब पुण्य-फलों के भोगरूप (१।३२।२ - १।३२ क)। इनके चरितरूपी पूर्णचन्द्र की किरणें सबके लिए सुखदायक, किन्तु भक्तों के लिए विशेष हितकारी (१।३२ ख)।

प्रत्येक कल्प में इनके द्वारा अवतार-ग्रहण। अनन्त कोटि कल्प व्यतीत, अतः अनन्त रामावतार। [प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः। एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः। भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते। वि० १।१४०।१-२ व्या० के अनुसार कालिकापुराण ६१।३६।४१।] भिन्न-भिन्न अवतारों के चरितों में कुछ न कुछ भिन्नता। प्रत्येक कल्प की कथा का ऋषियों द्वारा रामायण के रूप में वर्णन, अतः रामायणें भी असंख्य और भिन्न-भिन्न रामायणों की कथाओं में कुछ न कुछ अन्तर। राम देश-काल-गुण की दृष्टि से अनन्त, इनकी कथा का विस्तार अमित। यह सब जानने के कारण ज्ञानियों को इनके चरित के सम्बन्ध में कोई आश्चर्य नहीं। इनकी अलौकिक कथा से विस्मय न करने का अनभिज्ञ व्यक्तियों से भी कवि का आग्रह। शंकर को नमन कर इनकी गुणगाथा वर्णन करने की कवि की चिकीर्षा (१।३३।३-१।३४।३)। इनके अनन्त अवतारों, चरितों, रामायणों के सम्बन्ध में शिव-कथन पार्वती से (१।१४०।१-६)।

चैत्रमास (के शुक्लपक्ष) में नवमी तिथि, मंगलवार, को अयोध्या में इनका प्राकट्य। यही सं० १६३१ में रचित रामचरितमानस का भी देशकाल। इनके जन्म के दिन सब तीर्थों का अवध में आगमन। (इनके भक्त) असुर-नागादि द्वारा इनकी सेवा। इनके उपासकों द्वारा इनका कीर्त्ति-गान, ध्यान, जप (१।३४।४ - १।३४)।

रामचरितमानस और मानस-सर के रूपक में— साधुरूपी मेघ से इनके सुयशरूपी मधुर, मनोहर (स्वच्छ) मंगलकारी जल की वर्षा। इनकी सगुण लीला इस जल की मल-नाशक निर्मलता। अवर्णनीय प्रेमाभक्ति जल की मधुरता और शीतलता। यह जल इनके भक्तों का जीवन, इससे उनकी पुण्य-वृद्धि (१।३६।३-७)। इनका और सीता का यश मानस-सर का अमृत-तुल्य जल। इनके निर्गुण रूप की अबाध महिमा का वर्णन ही जल की अगाधता। इनके नाम का गुणगान (इस जल में विहार करनेवाले) जल-पक्षियों के सदृश। सन्त-सभारूपी वाटिका में अनेक प्रकार से अनेक प्रकार की भक्तियों का निरूपण वृक्ष; शम, यम, नियम फूल; ज्ञान फल; इनके चरणों में प्रेम फल का रस (१।३७।२-३, ११-१४)। केवल इनकी कृपा से ही मानस-सर के मार्ग की कठिनाइयों का अतिक्रमण करना सम्भव। इनके भक्तों द्वारा इसका कभी त्याग नहीं (१।३८।६, १।३८, १।३६।५, ७)।

रामचरितमानस-काव्य और सरयू नदी के रूपक में— हृदय-चक्षुओं से मानस-सर के स्वरूप-दर्शन, अवगाहन से कवि के मन में जो प्रेमानन्द-प्रवाह, उससे इनके यशरूपी जल से पूरित कविता-नदी सरयू निःसृत (१।३६।६-१२)। कीर्तिरूपिणी सरयू का इनकी भक्तिरूपा गंगा से संगम। लक्ष्मणसहित इनका समर-यश महानद सोन जिसका गंगा से मिलन। सरयू, सोन, गंगा (क्रमशः वैराग्य, ज्ञान, भक्ति) — इस तिमुहानी का इनके स्वरूपरूपी सिन्धु की ओर प्रवाह (१।४०।१-५)। कविता-सरयू के रूपक में इनका जन्म नदी का भँवर और आनन्द-बधाई तरंगों की मनोहरता। चारों भाइयों के बालचरित नदी में खिले रंग-बिरंगे कमल। परशुराम का क्रोध भयानक धारा और इनकी श्रेष्ठ वाणी पक्के घाट। भाइयोंसहित इनके विवाह का उछाह कविता-नदी की मंगलकारी बाढ़। इनके राजतिलक के लिए सजाया गया मंगलसाज ही पर्व के दिन नदीतट पर एकत्र यात्री-समूह (१।४०।८, १।४०, १।४१।४-७)। पुनः, इनके जन्म का उछाह शिशिर ऋतु। इनके विवाह के समय दशरथ-जनक के समाज का वर्णन ऋतुराज। इनका वन-गमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु। वनमार्ग की कथा कड़ी धूप और लू। राम-राज्य का सुख, विनय, बड़ाई शरद् ऋतु (१।४२।२-४,६)। चारों भाइयों का भायप इस जल की मधुरता और सुगन्ध। यह इनके प्रेम का पोषक (१।४२, १।४३।३)। (रूपक समाप्त।)

इनके चरण-कमल को हृदय में धारण कर कवि द्वारा याज्ञवल्क्य-भरद्वाज का मिलन और संवाद कहने की चिकीर्षा (१।४३ख)। शिव द्वारा उपदिष्ट इनके नाम की महिमा कहकर भरद्वाज की याज्ञवल्क्य से जिज्ञासा— शिव के इष्टदेव राम दाशरथि राम ही, अथवा कोई अन्य? यह मोह-भ्रम-संशय दूर करने के लिए विस्तार से इनकी कथा सुनाने की भरद्वाज की प्रार्थना (१।४४।१, १।४५।७, १।४६।१-१।४७।१)। याज्ञवल्क्य-कथन - वे इनके भक्त। उनका मूढ़ की भाँति प्रश्न इनके गूढ़ गुणों के श्रवण के लिए ही। इनकी कथा महामोह-नाशिका और सन्त-प्रिया। इनके सम्बन्ध में भवानी के मन में भी इसी प्रकार का संशय। समय और हेतुसहित उमा-शम्भु-संवाद कहने की याज्ञवल्क्य की प्रतिज्ञा (१।४७।२-१।४७)।

त्रेतायुग में एक बार सती के साथ शिव द्वारा अगस्त्य मुनि से इनकी कथा का श्रवण। मुनि को अधिकारी समझ उनसे इनकी भक्ति का कथन। इस तरह इनकी गुण-गाथा कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिव का मुनि के आश्रम में ही वास (१।४८।३-५)। इसी समय (रावण को दिये गये) विधाता के वचन को सत्य करने के लिए (कि मनुष्य के हाथों ही उसका मरण हो), इनका गुप्त रूप से रघुवंश में अवतार। जब ये दण्डकवन में विचरणशील, तब अगस्त्याश्रम से लौटते हुए शिव के मन में इनके दर्शन की लालसा। शिव का धर्म-संकट— इनके पास जाने पर इनके अवतार का भेद खुल जाने का भय, न जाने पर इनके दर्शन न कर पाने का क्षोभ। यह मर्म सती को भी ज्ञात नहीं (१।४८।६-१।४६।३)। उसी समय सीता-हरण। मारीच-वध करके लौटने पर आश्रम में सीता को न पाकर ये विरह-विकल। सानुज इनका वन-वन में सीता को खोजते हुए घूमना। इनके ऐसे विलक्षण चरित्र का परम सुजानों को ज्ञान, मतिमन्दों को उससे विमोह (१।४६।४-१।४६)। इस रूप में इनके दर्शन पाकर शिव हर्षित। कुसमय जानकर इनके सम्मुख न जाना। 'जय सच्चिदानन्द जगपावन' कहकर उनका आगे बढ़ना। वे बारम्बार पुलकित (१।५०।१-४)। उनकी दशा देख सती को संशय। इनके निर्गुण या सगुण ब्रह्म होने के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह, किन्तु शिव-वाणी के सत्य होने का विश्वास। शिव द्वारा उनका प्रबोधन— ये उनके इष्टदेव। ये ही ब्रह्म जिनका भक्तों के हित के लिए अवतार। किन्तु सती पर अपनी बात का प्रभाव न देख, इसे इनकी माया की प्रबलता समझ, शिव का कथन कि सती स्वयं जाकर इनकी परीक्षा ले लें। सती का प्रस्थान (१।५०।५ - १।५२।४)।

शिव को सती के अकल्याण का निश्चय। 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।' यह सोच शिव द्वारा इनका नाम-जप। (इनकी परीक्षा लेने के लिए) सीता का रूप धारण कर सती का इनके निकट जाना (१।५२।५-१।५२)। उन्हें प्रणाम करके अपना परिचय देकर इनकी जिज्ञासा — शिव कहाँ? वे वन में अकेली क्यों घूम रही हैं? ये गूढ़ वचन सुन सती का लौटना। इन पर अपने अज्ञान का आरोप करने का उन्हें पश्चात्ताप (१।५३।३-१।५४।२)। इनके द्वारा उनके समक्ष अपने विश्वरूप का प्रदर्शन। इनके चरणों में बार-बार नमन कर उनका भयभीत हो शिव के पास लौटना (१।५४।३-१।५५।८)। इनका प्रभाव समझकर भी सती का भयवश शिव से न कहना। [कहने पर शिव पूछते कि क्या परीक्षा ली।] शिव को सब ज्ञात। इसे 'हरि इच्छा भावी बलवाना' समझकर, (धर्मसंकट में पड़कर) उनका इनके चरणों में नमन। इनका नाम-स्मरण करते हुए, अन्तर्यामी की प्रेरणा से उनका मानसिक संकल्प कि अब सती के साथ शारीरिक सम्बन्ध असम्भव। आकाशवाणी द्वारा इनके प्रति उनकी दृढ़ भक्ति की प्रशंसा (१।५६।१-६, १।५७।१-५)। (कैलास पर उनके समाधिस्थ हो जाने पर) सती के मन में इनका अपमान करने की ग्लानि। इनका स्मरण कर उनकी विनती कि यदि ये दीनदयाल और आर्त्तिहरण, तो शीघ्र ऐसा उपाय करें जिससे उनका मरण हो (१।५९।२, १।५९।५ -१।५९)। इनका नाम-स्मरण करते हुए शिव का समाधि से जागना और सती को इनकी कथा सुनाना (१।६०।३,५)। दक्ष-यज्ञ में देह-त्याग करते समय सती की इनसे वर-याचना कि प्रत्येक जन्म में उनका शिव-चरणों में अनुराग बना रहे (१।६५।५)।

सती के शरीर-त्याग के बाद से विरक्त होकर, हृदय में इनको धारण कर, शिव का पृथ्वी पर विचरण। सदा इनके नाम का जप। जहाँ-तहाँ इनके गुणग्राम का श्रवण और कथन। इनके चरणों में नित नवीन प्रेम। अपने प्रति उनकी अविरल भक्ति देखकर इनका प्राकट्य। इनके द्वारा उनकी और उनके सती-त्याग के व्रत की प्रशंसा। पार्वती का दिव्य जन्म-कर्म सुनाकर उनसे विनती और याचना कि वे पार्वती से विवाह करें। उनकी दृष्टि में यह अनुचित। किन्तु इनकी याचना को आज्ञा मानकर शिरोधार्य करना। सन्तुष्ट होकर ये अन्तर्धान (१।७५।७ -१।७७।७)।

शिव-चरित-श्रवण से भरद्वाज को प्रेमविभोर देख याज्ञवल्क्य-कथन कि वे इनके शुचि सेवक, क्योंकि शिव-पद-प्रेमी होना ही इनके भक्त का लक्षण। शिव इनके सबसे बड़े भक्त, इनके सर्वाधिक प्रिय। इनका चरित अमित। धनुष्पाणि, गिरापति के रूप में इनका स्मरण कर याज्ञवल्क्य द्वारा कथा आरम्भ (१।१०४।५-१।१०५।७)।

अपने पूर्वजन्म (सतीरूप) का स्मरण होने पर पार्वती की शिव से इनकी सकल लोक-हितकारी कथा के सम्बन्ध में ज्ञानेप्सापूर्ण प्रार्थना— ब्रह्मवादी मुनियों के लिए ये अनादि ब्रह्म। शेष-शारदा, वेद-पुराणों द्वारा भी इनका गुणगान। स्वयं शिव द्वारा इनका नाम-जप। ये अवध-नृपति-सुत अथवा अज, अगुण, अलक्ष्य गतिवाले कोई और? यदि स्त्री-विरहाकुल नृप-सुत, तो ब्रह्म कैसे? इनकी महिमा और चरित में सामंजस्य न देख उन्हें मतिभ्रम। यद्यपि अब वैसा मोह नहीं, जैसा सतीरूप में था, फिर भी कुछ संशय। अतः सब समझाकर, श्रुति-सिद्धान्त-सार रूप इनकी कथा कहकर शिव उनका मतिभ्रम-अज्ञान-मोह-नाश करें (१।१०७।४-६, १।१०८।१ -१।१०९, १।११०।३)। उनके प्रश्न— निर्गुण ब्रह्म के सगुण शरीर धारण करने का कारण? ये किस प्रकार अयतीर्ण? (नृसिंह खम्भे से, वराह ब्रह्मा की नाक से अवतीर्ण हुए थे।) इनके उदार बालचरित से लेकर रावणवध, राज्याभिषेक और प्रजा के साथ परधाम-गमन तक की सम्पूर्ण लीला सुनाने का उनका आग्रह। तत्व-विज्ञान, चारों साधन, इनके सम्बन्ध में अन्य रहस्य तथा गोपनीय बातें भी कहने का अनुरोध (१।११०।४-१।१११।४)।

इन प्रश्नों से प्रसन्न शिव के हृदय में इनके चरित का उदय, इनके रूप का साक्षात्कार। दो घड़ी तक वे इनके ध्यानरस में मग्न। फिर इनके निर्गुण रूप और सगुण बालरूप के गुण कहकर, कृपा-याचना और प्रणाम कर, उनका उत्तर — पार्वती शोक-मोह-सन्देह-भ्रम से मुक्त इनकी चरणानुगामिनी। उनका प्रश्न जगहित के लिए, क्योंकि इनकी कथा 'सकल लोक जग पावनि गंगा'। इससे संशय एवं संशय के आधार कलि का नाश। हृदय-मस्तक-सहित सब इन्द्रियों की सार्थकता तभी जब उनका सम्बन्ध हरि-गुरु-सन्त से जुड़ जाये। इनकी लीला देवताओं के लिए हितसाधक, दैत्यों के लिए मोहकारी। सन्त-समाज ही सुरलोक जहाँ इनकी सुखदायक कथारूपी कामधेनु। इनके नाम, गुण, चरित, जन्म, कर्म, सब सुन्दर, अगणित और वेद-विहित। इनकी तरह इनकी कथा, कीर्ति, गुण भी अनन्त (१।१११।६-१।११४।६)। वेद-वन्दित मुनि-ध्येय राम दाशरथि राम से भिन्न— ऐसी शंका केवल मोहग्रस्त, विषयासक्त, श्रुति-स्मृति-नेत्र-विहीन, निर्गुण-सगुण-विवेक-शून्य, हरि-गुरु-सन्त-विमुख अधमों द्वारा ही। अतः संशय

त्याग इनके भजन का पार्वती को शिव का आदेश (१।११४।७ - १।११५)।

सगुण-निर्गुण में अभेद। निर्गुण ही भक्त-प्रेमवश सगुण। दोनों में जल-हिम-उपल-सदृश केवल अवस्था-भेद। ये सच्चिदानन्द, सहज प्रकाशरूप भगवान्, व्यापक ब्रह्म। इनमें न मोह-निशा, न विज्ञान-प्रभात। जीव-धर्मों का, अस्मिता का अभाव। ये पुराण पुरुष, शिव के स्वामी (१।११६।१ -१।११६)। जड़ प्राणियों द्वारा अपने अज्ञान का इन पर आरोप। यही इनके विषय में मोह का कारण। विषय, करण (इन्द्रिय), इन्द्रियों के देवता, जीव, जगत्, सबके ये परम प्रकाशक। इनकी सत्यता से जड़ माया में सत्यता का आभास। जैसे सीप में रजत का, मरीचिका में जल का भास, वैसे ही इनमें माया का (१।११७।१-१।११७)। जगत्-सम्बन्धी भ्रम-निवारण इनकी कृपा से ही सम्भव। इन्हीं के नाम-प्रभाव से काशी में मरनेवालों की शिव द्वारा मुक्ति। (दे० 'कासी'।) ये अन्तर्यामी परमात्मा, दाशरथि राम ही शिव के स्वामी। इनके सम्बन्ध में भ्रम-संशय अविहित। संशय से ज्ञान-वैराग्य का नाश (१।११८।१-१।११९।६)।

शिव के भ्रम-नाशक वचनों से संशय-मुक्त पार्वती को इनके स्वरूप का ज्ञान। इनके चरणों में उनकी प्रीति-प्रतीति। पुनः इनके नरदेह धारण करने के हेतु के सम्बन्ध में उनकी जिज्ञासा (१।११९।७ - १।१२०।८)। शिव-कथन— इनके गुण-नाम अपार, कथा-रूप अगणित, अमित। इनके निर्मल चरित्रों का वेद-शास्त्रों द्वारा गान (१।१२० ग, १।१२० घ, १।१२१।१)। इनके अवतारों के हेतुओं का निश्चित रूप से निरूपण संभव नहीं। शास्त्रानुमोदित हेतु — धर्म की हानि और अधर्म का विकास होने पर साधुओं के परित्राण और दुर्जनों के विनाश के लिए इनका अवतार। हेतु अनेक। कुछ के कथन की शिव-प्रतिज्ञा (१।१२१।२ - १।१२२।३)।

इनके अवतार के कुछ हेतु —(क) जय-विजय को सनकादि का शाप (दे० 'जय')। उनके रावण-कुम्भकर्ण के रूप में जन्म लेने पर प्रभु द्वारा (उनके वध के लिए) शरीर-धारण। उस कल्प में कश्यप-अदिति दशरथ-कौसल्या के रूप में इनके पिता-माता (१।१२२।४-१।१२३।४)। (ख) प्रभु को वृन्दा का शाप (दे० 'असुराधिपनारी')। जलन्धर के रावण बनने पर अवतार ग्रहण कर इनके द्वारा उसका वध (१।१२३।५ - १।१२४।३)। (दे० 'जलंधर')। (ग) प्रभु को नारद का शाप (दे० 'नारद')। [उस कल्प में शिव के दोनों गणों के रावण-कुम्भकर्ण होने पर राम अवतीर्ण। उपर्युक्त तीनों कल्पों में रामावतार विष्णु का।] (घ) (मनु-शतरूपा को दिये गये वरदान के कारण) ब्रह्म का रामावतार (१।१४१।१-६, ८)।

इनके चरण-कमलों में अनुरक्त होकर इनके ऐश्वर्य और भक्तवत्सलता का स्मरण करते हुए मनु-शतरूपा द्वारा इनके द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जप (१।१४३-१।१४४।१-८) (दे० 'द्वादस अच्छर मंत्र'।) उनकी अनन्य गति देख इनकी आकाशवाणी— वे वर माँगें। उनकी याचना— इनका जो स्वरूप शिव और काकभुशुण्डि में मन में, जिसकी प्राप्ति के लिए मुनि यत्नशील, वेदों द्वारा जो सगुण-निर्गुण कहकर प्रशंसित, उसी स्वरूप को वे आँखें भरकर देखें (१।१४५।५-१।१४६।६)। यह सुन इनका प्राकट्य। श्याम वर्ण, कानों में मकराकृत कुण्डल। हृदय पर श्रीवत्स-चिह्न, सुन्दर वनमाला, रत्नजटित हार, आभूषण, यज्ञोपवीत। बाहु भूषण-मण्डित, कटि में तरकस, हाथों में धनुष-बाण। शरीर पर पीत वस्त्र। अनुपम छवि। इनके वामभाग में आदिशक्ति सीता शोभित (१।१४६।७ -१।१४८।४)। आनन्दविभोर हो दण्ड की भाँति अपने चरणों में गिरे मनु-शतरूपा के मस्तक का स्पर्श कर इनका उठाना। वर माँगने के लिए कहना (१।१४८।५-१।१४८)। मनु की याचना इनके समान पुत्र-प्राप्ति की। इस पर इनका कथन — 'आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई।।' (१।१४९।३-१।१५०।२)। शतरूपा से वर माँगने के लिए इनका कथन। उनकी याचना पर अपने भक्तों के-से सुख, गति, भक्ति, विवेक, रहनि की प्राप्ति का वरदान। पुनः मनु की याचना पर उन्हें अपने प्रति पुत्र-भाव का वर देकर इनका आदेश— वे अमरावती में जाकर रहें। कुछ काल बाद वे अवध-नरेश होंगे और ये उनके पुत्र। ये अपने अंशोंसहित [अंश = विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर। वि०।) लीला-तन धारण करके भक्तों को सुख देनेवाला चरित करेंगे। (अवतार के तिरोहित होने पर भी वह चरित जगत् के लिए उपयोगी होगा। वि०।] उस चरित को सादर श्रवण करनेवाले भाग्यवान् भव-सागर से तर जायेंगे। इनके साथ इनकी माया आदिशक्ति सीता भी अवतरित होंगी। उन्हें वर देकर ये अन्तर्धान (१।१५०।३ - १।१५२।७)। (इस कल्प में ब्रह्म के) रामावतार के अन्य कारण (भानुप्रताप के रावण होने) का कथन (१।१५२)। (शिव द्वारा पार्वती के एक-एक प्रश्न के उत्तर के लिए दे० 'सिव'।)

[मानस की मूल कथा का उपक्रम — रावण के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी और देवतादि ब्रह्मा के शरणागत। ब्रह्मा द्वारा ब्रह्मरूप में विष्णु की स्तुति। आकाशवाणी से अभय देते हुए ब्रह्मरूप विष्णु का कथन— वे अपनी पराशक्ति और अंशों के साथ रघुकुल में अवतार लेकर भूमि का भार हरण करेंगे। ब्रह्मा के आदेश से पृथ्वी पर वानर-देह धारण कर देवताओं द्वारा रामावतार की प्रतीक्षा।]

इनका अवतार अग्नि द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न के उस अर्द्धभाग के फलस्वरूप जो कौसल्या को दशरथ से प्राप्त। (दे० 'दसरथं'।) गर्भ में इनके प्रवेश करने पर सब लोकों में सुख-समृद्धि। इनके प्राकट्य के समय योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि, सब अनुकूल। चैत्र मास, (मंगलवार। १।३४।५।) नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष, अभिजित् मुहूर्त, मध्याह्न का समय। प्रकृति पुलकित, सारी सृष्टि में उल्लास। काल, पंचतत्व, चराचरमात्र इनकी सेवा में मग्न। यह सब इनके आविर्भाव-काल का द्योतक, यह समझकर ब्रह्मा के साथ देव-गन्धर्व-मुनि-नागों द्वारा स्तुति और पुष्पवर्षा। उनके प्रस्थान करने पर भूषण-वनमाला-आयुध (शंख-चक्र-गदा-पद्म)-धारी चतुर्भुज विष्णुरूप में इनका प्राकट्य (१।१९०।१-२, १।१९०।६ - १।१९२।छं० १)। माता द्वारा निर्गुण-सगुण ब्रह्म-रूप में इनकी स्तुति। इनका माता को समझाना (कि अपने पूर्वजन्म के तीन कल्पों में वे कश्यप-भार्या अदिति थीं और चौथे कल्प में मनुपत्नी शतरूपा। उन कल्पों में इन्होंने उनका पुत्र बनने का वर दिया था। मा० पी० १।१९२।छं० ६ टिप्पणी ४।) उनकी प्रार्थना पर शिशु (राम)-रूप होकर रुदन करना। इस तरह विप्र-धेनु-सुर-सन्त-हित स्वेच्छानिर्मित देह धारण कर इनका अवतरण। (१।१९२।छं०२-१।१९२)। (इनके प्राकट्य का यह प्रसंग 'विष्णु' में भी लिया गया है।)

इनका प्रिय रुदन सुन माताओं का आतुरता से आना। दशरथ ब्रह्मानन्द-मग्न। वसिष्ठ-आगमन। नान्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म संस्कार। स्त्रियों द्वारा आरती और निछावर। घर-घर में मंगलाचार और बधाइयाँ। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का भी जन्म। सारे नगर में आनन्दोल्लास। इनका जन्म-महोत्सव देखने में मग्न सूर्य एक महीने तक अवध के आकाश में ही स्थित। शिव और भुशुण्डि का प्रेमानन्द-विभोर हो अयोध्या की गलियों में विचरण। मनोवांछित दान पाकर सबका आशीर्वाद कि चारों भाई चिरंजीवी हों। कवि द्वारा भी प्रभु के प्रति अपने दासत्व की पुष्टि (१।१९३।१-१।१९६)।

नामकरण के समय वसिष्ठ का कथन — चारों भाइयों के नाम अनेक और सब अनुपम। (किन्तु नाम एक ही रखना है।) ये आनन्दसिन्धु, सुखराशि (सच्चिदानन्द-स्वरूप) अतः इनका अखिल लोक विश्रामदायक सुखधाम नाम 'राम'। तीनों भाइयों का भी नामकरण। चारों भाई मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व, शिव के प्राण। चारों वेद के तत्व (१।१९७।१ - १।१९८।२)। [वेद का तत्व प्रणव। उसमें चार मात्राएँ— अ, उ, म् एवं अर्द्धमात्रा। अकाराक्षर से 'विश्व' रूप लक्ष्मण, उकाराक्षर से तैजसात्मक शत्रुघ्न, मकाराक्षर से 'प्राज्ञ' रूप भरत प्रादुर्भूत। अर्द्धमात्रा स्वयं ब्रह्मरूप राम। रा० उ० ता० पृ० ५४२-४३।] ये और भरत श्यामवर्ण, लक्ष्मण और शत्रुघ्न गौरवर्ण। लक्ष्मण इनके पदानुरागी और शत्रुघ्न भरत के। श्याम-गौर दो जोड़ियाँ देख माताओं को सुख (१।१९८।३-५)। [लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः। ···· लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्।। सेव्यसेवक भावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा। अ० रा० १।३।४२, ६१, ६२।] चारों भाई रूप-शील-गुण-धाम, किन्तु इनका सुख-दातृत्व सबसे अधिक। इनके अनुपम बालरूप का नख-शिख वर्णन। इनके हास में इनके अनुग्रह का प्रकाश। पुरवासियों को सुख। माता का दुलार। इस तरह दशरथ-कौसल्या के प्रेमवश ग्यान-गिरा-गोतीत ब्रह्म का शिशुचरित करना (१।१९८।६ - १।२००।२, १।२००।७ - १।२००)।

एक बार इन्हें स्नान कराके कौसल्या का पालने में लिटाना। फिर कुल के इष्टदेव (श्रीरंग = विष्णु) की पूजा कर नैवेद्य चढ़ाकर अन्यत्र जाना। लौटकर इन्हें नैवेद्य खाते देख, भीत हो उनका पालने में देखना। वहाँ इनको सोये देख पुनः लौटना। यहाँ भी ये उपस्थित। उनके हृदय में कम्प। ये पालने में निद्रित, यहाँ जाग्रत! उन्हें व्याकुल देख इनका मुसकराना। अपने अद्‌भुत विराट् रूप के दर्शन कराना। वे भयभीत। नेत्र मूँदकर इनके चरणों में उनका नमन। इनका पुनः शिशुरूप धारण करना। उनका भय-विस्मय दूर करने के लिए अनेक प्रकार से समझाना (जैसे जन्म के समय समझाया था।) इनका कथन— इस बात की (इनके ऐश्वर्य-रूप-दर्शन की) चर्चा वे किसी से न करें। उनकी विनती— अब कभी इनकी माया उन्हें न व्यापे (१।२०१।१-१।२०२)।

कुछ बड़े होने पर चारों भाइयों का चूड़ाकरण संस्कार। बालचरित। कुमार होने पर चारों का यज्ञोपवीत और

साथ-साथ गुरु-गृह में जाकर अध्ययन। अल्पकाल में सब विद्याएँ प्राप्त। धनुर्बाण धारण कर अवध की गलियों में राजाओं की लीला के खेल खेलना। इनका भाइयों और सखाओं के साथ मृगया और भोजन करना। इनका आचरण सदा ऐसा जिससे सब सुखी हों। सभा में मन लगाकर वेद-पुराण सुनना और भाइयों को समझाना। ये माता-पिता के आज्ञानुवर्ती। प्रातःकाल इनका उन्हें नमन। उनसे आज्ञा माँगकर नगर का कार्य सँभालना। इस तरह नामरूपरहित व्यापक ब्रह्म का अपने भक्तों के लिए चरित करना (१।२०३।१ - १।२०५)।

मारीच आदि के उत्पात से चिन्तित विश्वामित्र को इनके अवतार का ज्ञान। अतः उनके वध के लिए लक्ष्मणसहित इन्हें लाने और इसी बहाने इनके दर्शन करने का मनोरथ करते हुए वे दशरथ के दरबार में उपस्थित (१।२०६।५ - १।२०६)। चारों भाइयों का उनके चरणों में गिरना। इनको देख उन्हें देह-सुधि का विस्मरण। निशिचर-वध के लिए इनकी और लक्ष्मण की याचना करते हुए राजा से उनका कथन कि इससे इन दोनों का भी कल्याण होगा (१।२०७।५-१।२०७)। राजा को चिन्ता। इनके प्रति अतिशय प्रेम के कारण उनकी विनीत अस्वीकृति। तब वसिष्ठ का उन्हें समझाना। [वसिष्ठ-कथन – ये भगवान् विष्णु के अवतार। इनसे इनकी योगमाया सीता का संयोग कराने के लिए ही विश्वामित्र का आगमन। अ० रा० १।४।१४-२०।] राजा का सन्देह-नाश। उनका इन दोनों को ऋषि को सौंपना। (१।२०८।१ - १।२०८ ख)।

दोनों की कमर में तरकस, हाथों में धनुष-बाण। एक ही बाण से ताड़का का प्राणान्त कर इनका उसे 'निज पद' देना। यह देख इनके प्रभु होने की विश्वामित्र की धारणा दृढ़। (गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित करने और अपनी विद्या को सफल करने के लिए) उनके द्वारा इन्हें 'विद्या-दान, दिव्य आयुधों का समर्पण। दूसरे दिन प्रातःकाल इनका विश्वामित्र से निर्भय यज्ञ करने का निवेदन। यज्ञ की रक्षा करते हुए मारीच को बिना फल के बाण से सौ योजन दूर फेंकना, सुबाहु का वध करना। लक्ष्मण द्वारा राक्षस-सेना का संहार। कुछ दिनों तक वहीं वास (१।२०६।१-१।२१०।८)। फिर धनुष-यज्ञ देखने के लिए प्रस्थान। मार्ग में पाषाण बनी अहल्या का पद-रज-स्पर्श से उद्धार। अहल्या द्वारा इनकी स्तुति (१।२१०।६ - १।२११।छं० ४)। इन दोनों का विश्वामित्र के साथ गंगा-तट पर पहुँचकर उनसे गंगावतरण की कथा सुनना। ऋषियोंसहित स्नान। इनके द्वारा दान का संकल्प। प्रस्थान। जनकपुर के निकट पहुँचना (१।२१२।१-४)। जनकपुर-शोभा-वर्णन। पुर की रम्यता देख ये दोनों हर्षित (१।२१२।५-१।२१४।३)। विश्वामित्र और मुनियों के साथ इनका नगर के बाहर एक अमराई में ठहरना (१।२१४।४-७)। (इन दोनों का फुलवाड़ी देखने जाना। इसी बीच सचिवादि सहित जनक का आगमन।) इनके आने पर जनक समाज का खड़े हो जाना। इनके दर्शन से सब प्रेम-पुलकित। 'भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी'। जनक की मुनि से जिज्ञासा– ये दोनों मुनि-कुल-तिलक या नृपकुल-पालक। अथवा निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही इन दो रूपों में अवतरित, क्योंकि इन्हें देखकर उनका सहज विरागरूप मन भी मुग्ध, ब्रह्मसुख को छोड़, इनके दर्शन-सुख में मग्न। परिचय पाकर उनका निवेदन – इन दोनों का स्नेह ब्रह्म और जीव की भाँति स्वाभाविक। सुखमग्न हो उनका बार-बार इनकी ओर देखना। आदर-विनयपूर्वक इन सबको नगर में ठहराना (१।२१५।४-१।२१७।८)।

इनके भय और मुनि के संकोच से जनकपुर देखने की अपनी लालसा व्यक्त करने में लक्ष्मण असमर्थ। यह समझ इनका मुनि से निवेदन करना और उनकी आज्ञा पाकर सानुज नगर देखने जाना (१।२१७-१।२१६।१)। इन दोनों का रूप-वर्णन। अनुरक्त होकर बालक-वृन्द का इनके साथ-साथ चलना। पुरवासियों का दौड़े हुए इनके दर्शन के लिए आना। भवन के झरोखों से अनुरागपूर्वक इन दोनों को देखकर युवतियों की उक्ति कि विधि-हरि-हर भी इनकी शोभा के उपमान होने के योग्य नहीं। एक सखी द्वारा इनका परिचय और आने का प्रयोजन-कथन। दूसरी के अनुसार केवल ये (राम) ही जानकी के वर होने के योग्य। इनकी सुकुमारता देख किसी सखी के मन में इनके पराक्रम के सम्बन्ध में सन्देह होने पर अन्य सखी द्वारा इनकी महिमा का वर्णन। इस तरह मनोरथ करते हुए उन सबका हर्षित होना। जहाँ-जहाँ इनका गमन, वहाँ-वहाँ परमानन्द (१.२१६।२-१।२२३)। बालकों का इन्हें धनुषयज्ञ-रचना दिखाना और इस बहाने इनके स्पर्श-सुख का अनुभव करना। इनके ऐश्वर्य का कथन। मधुर वचन कह इनका बालकों को विदा करना। लौटकर गुरु के चरणों में दोनों का नमन (१।२२४।१-१।२२५)। सन्ध्या-वन्दन। पुण्यकथा-श्रवण। विश्वामित्र के शयन करने पर दोनों का उनके चरण दबाना। उनके आज्ञा देने पर इनका शयन। लक्ष्मण का इनके चरणों को हृदय से लगाकर दबाना। इनके बार-बार कहने पर चरणों को हृदय पर

रखकर ही लेट जाना (१।२२६।१ - १।२२६)।

प्रातःकाल मुनि से आज्ञा लेकर उनकी पूजा के फूल लेने के लिए इन दोनों का भूप-बाग में जाना। उसकी रमणीयता देख इन्हें सुख। मालियों से पूछकर दल-फूल लेना। उसी समय गिरिजा-पूजन के लिए सखियोंसहित सीता का बाग में आना। उनका साथ छोड़ फुलवाड़ी देखने के लिए आई एक सखी इन दोनों को देखकर प्रेममग्न। दूसरी सखियों के आगे इनकी शोभा का वर्णन करने में वह असमर्थ, क्योंकि 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'। इनके सम्बन्ध में चर्चा। सुनकर सीता के मन में इनके दर्शन की लालसा, नारद-वचन का स्मरण कर प्रेमोदय (१।२२७।१- १।२२८।२, १।२२८।७ - १।२२९)। कंकण, किंकिणी, नूपुर की ध्वनि इनके लिए कामदेव के नगाड़े की-सी। उस ओर देखने पर इन्हें सीता के दर्शन। आसक्ति। उनकी अनुपम मुख-छवि की ओर एकटक देखते हुए हृदय में उसका बखान। अपनी प्रेमदशा पर विचार कर लक्ष्मण से अपने मन की स्थिति, शुभांगों के फड़कने और रघुवंशियों के स्वभाव का कथन १।२३०।१ - १।२३१)। सीता को इनके दर्शन की आकुलता। एक सखी का लता की ओट में इन दोनों को दिखाना। उनका निर्निमेष दृष्टि से इनके (राम के) रूप को निहारना। प्रेमवश देह-सुधि का विस्मरण। इनके स्वरूप को हृदय में धारण कर उनका पलकें मूँदना। इसी समय फूलों के दोने लिये लता की ओट से ये दोनों प्रकट। एक सखी द्वारा दोनों की शोभा का वर्णन और कथन कि दोनों में ये अधिक सलोने। दूसरी सयानी सखी के कहने पर सीता का संकोच से आँखें खोलकर इनकी नख-शिख शोभा देखना। उनके मन में एक ओर पिता के प्रण और शिवचाप की कठोरता की चिन्ता, दूसरी ओर इनके प्रति आकर्षण। इनके रूप को हृदय में धारण कर उनका भवानी-मन्दिर की ओर गमन। उन्हें जाते देख इनका प्रेमपूर्वक उनके स्वरूप को मन में धारण करना (१।२३२।१-१।२३५।३)। मनोरथ पूर्ण करने की सीता की विनती पर भवानी का वरदान — ये उनके शील-स्नेह से परिचित। उन्हें ये पतिरूप में प्राप्त होंगे (१।२३५।४-१।२३६)।

गुरु के पास आकर सरल निश्छल भाव से इनके द्वारा (सीता-सम्बन्धी) सब वृत्तान्त-कथन। गुरु से सफल मनोरथ होने का आशीर्वाद सुनकर इन दोनों को सुख। भोजन और प्राचीन कथा-श्रवण के बाद सन्ध्या करने जाना। चन्द्रमा के व्याज से इनके द्वारा (मन-ही-मन) सिय-मुख-छवि का बखान। लौटना (१।२३७।१ - १।२३८।४)। सूर्योदय के व्याज से लक्ष्मण द्वारा इनकी प्रभुता का कथन (१।२३८।५ - १।२३९।८)।

दोनों का मुनि-वृन्द के साथ धनुषयज्ञशाला देखने जाना। (१।२३९।९-१।२४०।६)। वहाँ 'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।' (१।२४१।१-१।२४२।८) दोनों का रूप-वर्णन (१।२४२-१।-२४४।३)। जनक और मुनि के साथ दोनों का यज्ञशाला-परिदर्शन। (अब निकट से) 'निज निज रुख रामहि सबु देखा।' किसी को यह ज्ञात नहीं कि दूसरे को इनके किस रूप के दर्शन। मुनि के साथ दोनों एक श्रेष्ठ मंच पर आसीन। (१।२४४।४-१।२४४)। अविवेकी राजाओं की गर्वोक्ति और धर्मात्मा राजाओं द्वारा इनका स्वरूप-कथन। 'ए दोउ बंधु संभु उर बासी।' देवताओं द्वारा गान और पुष्पवृष्टि (१।२४५।१-१।२४६।८)। जयमाल लिये सीता को विश्वामित्र के निकट सानुज इनके दर्शन। अपनी निधि (इन्हें) पाकर उनके नेत्र स्थिर। फिर संकोचवश इन्हें हृदय में धारण कर उनका सखियों की ओर देखना (१।२४८।६ - १।२४८)। इनके रूप और सीता की छवि को निहारते हुए नर-नारियों का मनोरथ (१।२४९।१ - ६)।

(धनुष को हिलाने में भी सब राजा असमर्थ। यह देख क्षोभ से जनक की उक्ति — 'बीर बिहीन मही मैं जानी।') जनक-वचन सुन क्रुद्ध लक्ष्मण द्वारा इनका प्रताप-कथन और गर्वोक्ति। सुनकर ये मुदित। संकेत से इनका अनुज को मना करके निकट बैठाना (१।२५२ - १।२५३, १।२५४।३-४)। शुभ समय जानकर विश्वामित्र का आदेश — 'उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।' उनके चरणों में नमन कर इनका खड़े होना। हृदय में न हर्ष, न विषाद। गुरु-पद-वन्दना कर, मुनियों से आज्ञा ले, इनका गज-गति से धनुष की ओर बढ़ना। संतों और भिन्न-भिन्न राजाओं पर इसका भिन्न-भिन्न प्रभाव। पुर-नर-नारियों की गणेश से मनौती। सिय-मातु का स्नेहाधिक्य के कारण संशय से आकुल होना। कुंभज आदि का उदाहरण देकर सखी का उन्हें आश्वासन कि 'भंजब धनुषु राम सुनु रानी'। सीता की महेश-भवानी और गणपति से विनती, देवताओं से मनौती। इनकी शोभा देखकर उन्हें चिन्ता। वे शिवचाप की शरणागता। उनके मन में व्याकुलता। फिर विश्वास का उदय— यदि मन-वचन-कर्म से वे इनके चरणों में अनुरक्त, तो सर्वान्तर्यामी अवश्य उन्हें इनकी दासी बनायेंगे। इनकी ओर देखकर उनका प्रेमप्रण

ठानना। इन्हें उसका ज्ञान (१।२५४।५-१।२५६।७)। उनकी ओर देखकर इनका धनुष की ओर देखना। यह लक्ष्य कर लक्ष्मण का अपने चरण से ब्रह्माण्ड को दबाना, दिग्गज, कच्छप, शेष, वराह को सावधान होकर पृथ्वी को सँभालने का आदेश देना (१।२५६।८-१।२६०।२)। राम-बाहुबल-सिंधु और शंभुचाप-बोहित का रूपक (१।२६०।३-८, १।२६१)। सीता की अतिशय विकलता और प्रीति देख इन्हें पुलक। मन-ही-मन इनका गुरु को प्रणाम करना। धनुष को उठाना, उस पर प्रत्यंचा चढ़ाना और तोड़ने के लिए खींचना। यह सब इतनी शीघ्रता और कुशलता से सम्पन्न कि कोई देख ही न सका। सबको केवल बिजली की-सी चमक के दर्शन। धनुर्भंजन। उसकी घोर कठोर ध्वनि से ब्रह्माण्ड विचलित (१।२६०-१।२६१।छं०)। इनका धनुष के दोनों टुकड़ों को भूमि पर डालना। देखकर सबको सुख। विश्वामित्र को पुलकावली। ब्रह्मादि द्वारा इनकी प्रशंसा और आशीर्वाद। आकाश में नृत्य-गीत, धरती पर मंगलगान, वाद्य। जनक-सुनयना-जानकी शोकमुक्त, विह्वल। (१।२६२।१ - १।२६३।७)। शतानन्द की आज्ञा से विश्वविजय की प्रतीक जयमाल लिये सीता का सखियोंसहित इनके निकट आना। इनकी छवि देख वे निश्चेष्ट। सखियों के समझाने पर 'सियँ जयमाल राम उर मेली'। मंगलोत्सव। 'महि पाताल नाक जसु व्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा।।' सखियों का सीता से इनके चरण छूने के लिए कहना, किन्तु अहल्या की गति का स्मरण कर सीता को संकोच। उनकी अलौकिक प्रीति देख इनका मन-ही-मन हँसना (१।२६३।८-१।२६५)।

मूढ़ राजाओं की दर्पोक्ति। उनके प्रति साधु राजाओं की व्यंग्योक्ति और प्रबोधन (१।२६६।१ -१।२६७।४)। सखियों का सीता को रानी के पास ले जाना। इनका गुरु के पास आना। राजाओं पर कुपित लक्ष्मण इनके भय से कुछ कहने में असमर्थ। इसी समय परशुराम का आगमन (१।२६७।५-१।२६८।२)।

इन दोनों को विश्वामित्र का परशुराम के चरणों में डालना, परिचय देना। परशुराम का दोनों को आशीर्वाद। इनका रूप देख उनके नेत्र स्थिर (१।२६९।६-८)। (शिवधनु को खंडित देख उन्हें क्रोध। धनुष-भंजक को शीघ्र ही न दिखाने पर जनक-राज्य उलटने की धमकी।) सीतासहित सबको भयभीत देख इनका निवेदन— 'नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा।।' परशुराम का धनुर्भंजक को अपना घोर शत्रु कहना (१।२७०-१।२७१।४)। (लक्ष्मण-परशुराम-संवाद।) लक्ष्मण का उग्र क्रोध देख इनका उन्हें संकेत से रोकना। विनीत वचनों से परशुराम को कुछ शान्त करना। लक्ष्मण के फिर कुछ कहने पर परशुराम-कथन कि लक्ष्मण इनके अनुरूप नहीं (१।२७६।८-१।२७७।८), इनके लघु भ्राता होने के कारण ही लक्ष्मण को उनका न मारना (१।२७७-१।२७८।८)। लक्ष्मण के हँसने पर इनका नेत्र के इंगित से उन्हें डाँटना, परशुराम से शीतल वाणी में करबद्ध विनय करना। पुनः लक्ष्मण की व्यंग्योक्ति (१।२७८-१।२८०।८)। क्रुद्ध परशुराम की इन्हें चुनौती— ये उनसे संग्राम करें अन्यथा 'राम' कहलाना छोड़ दें। इनकी विनती — वे प्रभु और ये सेवक। संग्राम कैसा? उनके कुठार के आगे इनका मस्तक नत है। वे वैसा ही करें जिससे उनका क्रोध शान्त हो। लक्ष्मण ने जो कुछ कहा, वह अपने वंश-स्वभाव के अनुसार उनका वीर-वेश देखकर। वे विप्र-वेश में आते, तो लक्ष्मण उनकी पद-रज धारण करते। इनमें और उनमें कोई समता नहीं। ये मात्र 'राम' और वे 'परशुराम'। इनमें केवल एक ही गुण (धनुर्विद्या का ज्ञान) और उनमें नौ गुण। [ब्राह्मण के गुण— 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिः आर्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। गीता० १८।४२।) बार-बार 'मुनि', 'विप्रवर' कहकर इनके द्वारा विनय। परशुराम को क्रोध —ये उन्हें केवल विप्र समझकर उनका अपमान कर रहे हैं, उनकी वीरता से परिचित नहीं। इनका कथन — यदि ये विप्र जानकर निरादर करते हैं, तो क्या सुभट जानकर डरेंगे? 'जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ।।' इनके द्वारा विप्रवंश का माहात्म्य-कथन— ब्राह्मणों से डरनेवाले को किसी से भय नहीं। इनके मृदु किन्तु गूढ़ वचन सुन परशुराम की बुद्धि के परदे खुलना। उनका आग्रह कि ये उनसे विष्णु का धनुष लेकर चढ़ायें जिससे उनका सन्देह नष्ट हो। वैष्णव धनुष देने के लिए उनके प्रस्तुत होने पर धनुष का स्वयं इनके पास चले आना। (दे० 'परसुराम'-परिचय) (१।२८०-१।२८४।८)। इनके स्वरूप का उन्हें ज्ञान। इनकी स्तुति करके उनका प्रस्थान (१।२८४-१।२८५।७)।

देवताओं द्वारा इन पर पुष्पवर्षा। जनक और जानकी को सुख। जनक का विश्वामित्र से निवेदन— उनकी कृपा से ही इन्होंने धनुष तोड़ा। इन दोनों भाइयों ने उन्हें कृतार्थ कर दिया। विश्वामित्र-कथन— धनुर्भंजन के साथ ही विवाह सम्पन्न। फिर भी जनक लोकाचार और वेदाचार का आयोजन करें। (१।२८५, १।२८६।३-१।२८६)।

(अयोध्या से दशरथ को लाने के लिए जनक द्वारा दूत प्रेषित।) इन दोनों के सम्बन्ध में दशराथ की दूतों से जिज्ञासा। धनुष-भंजन और परशुराम-प्रसंग कहकर दूतों द्वारा इनके प्रताप तथा लक्ष्मण के तेज की प्रशंसा (१।२९१।४-१।२९३।५)। महल में दशरथ द्वारा इन दोनों की कीर्ति और करनी का कथन (१।२९५।६)। 'भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू।।' (१।२९६।३)। इनका और सीता का नाम ले-लेकर सुन्दरियों द्वारा मंगलगान (१।२९७।७)। शीघ्र बरात सजाकर चलने की भरत को दशरथ की आज्ञा (१।२९८।२)। सब पुलकित। सबके मन में इन दोनों को देखने की लालसा (१।३००)। इनका स्मरण कर दशरथ का बरात के-साथ प्रस्थान। शुभ शकुन (१।३०२।३, १।३०४।१-३)।

पिता का आगमन सुन ये दोनों आनन्दमग्न। विश्वामित्र के साथ जनवासे में गमन। पिता को दण्डवत् करना। उनका हृदय से लगाना। इन दोनों के द्वारा मुनि के चरणों में नमन, विप्रवृन्द की वन्दना, आशीर्वाद-प्राप्ति। चारों भाइयों का मिलन। इन्हें देखकर सब बरातियों का हृदय शीतल। पिता के समीप चारों भाई ऐसे शोभित जैसे शरीर धारी चारों पुरुषार्थ (१।३०७।४-१।३०८।२)। [शत्रुघ्न अर्थ, लक्ष्मण धर्म, भरत काम, राम मोक्ष। वि०। मा० पी० १।३०८।२ टिप्पणी में लक्ष्मण कामरूप और भरत धर्मरूप।] देखकर जनकपुर के मुदित नर-नारियों का कथन — 'रामु सीय सोभा अवधि···।' 'दसरथ सुकृत रामु धरें देही।।' स्वयं वे भी भाग्यशाली। सखियों का मनोरथ— इस विवाह के कारण उन्हें भविष्य में भी इनके और लक्ष्मण के दर्शन हुआ करेंगे। भरत और शत्रुघ्न भी क्रमशः इनके और लक्ष्मण के अनुरूप। चारों रूप-गुण में अनुपम। पुर-नारियों की आँचल पसारकर विधाता से मनौती कि चारों भाइयों का इसी नगर में विवाह हो (१।३०८।३, १।३०९-१।३१२।३)।

इनके विवाह का लग्न— हेमन्त ऋतु, अगहन मास, श्रेष्ठ ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन। शुभ दिन की मांगलिक गोधूलि वेला उपस्थित। चतुर्दिक् मंगल-साज, मंगल-वाद्य, मंगल-गीत, वेद-ध्वनि। (१।३१२।५-१।३१३।४)। (बुलावा आने पर दशरथ का बरात लेकर चलना।)। इनका विवाह देखने के लिए ब्रह्मादि देवताओं का भी आगमन। उन्हें जनकपुर के वैभव-दर्शन से विस्मित देख शिव का समझाना— यह उन्हीं सिय-राम का विवाह जिनके नाम-स्मरण-मात्र से अमंगल-मूल-नाश, चारों पुरुषार्थों की सिद्धि। (१।३१४।२-१।३१५।३)। चारों भाई दशरथ के साथ ऐसे शोभित जैसे शरीरधारी चारों प्रकार के मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि। वि०। मा० पी० १।३१५।६ टिप्पणी २ में सार्ष्टि की जगह सायुज्य। दे० 'साजुज्य मुक्ति'।)। इनकी और भरत की जोड़ी श्यामवर्ण की, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की गौरवर्णी। इनका अलौकिक रूप-सौन्दर्य देख-देखकर उमासहित शिव प्रेम-पुलकित (१।३१५।४-१।३१६।५)। इनका अश्व मानो साक्षात् कामदेव। उसकी गति देख गरुड़ भी लज्जित (१।३१६।७-१।३१७।१)। पंचमुख शंकर, चतुर्मुख ब्रह्मा,, षन्मुख कार्त्तिकेय, सहस्राक्ष इन्द्र को अपने-अपने नेत्राधिक्य की सार्थकता का ज्ञान। रमासहित विष्णु इनका रूप देखकर मुग्ध। मुदित देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि और जयजयकार। (१।३१७।२-१।३१७।छं०)।

(बरात का द्वार पर आना।) अनेक प्रकार की आरती और मंगल द्रव्य सजाकर स्त्रियों का इनके परछन के लिए चलना। उनमें शची, शारदा, रमा, भवानी भी छद्म नारी-वेश में सम्मिलित। इन्हें देखकर सब ब्रह्मानन्द-मग्न। नेत्रों में अश्रु, शरीर में पुलकावली। सुनयना का सुख अवर्णनीय। आँसू रोककर, मुदित मन से उनके द्वारा परछन। वेदाचार कुलाचार तथा अन्य व्यवहारों का सम्पादन। मंगलध्वनि। मंगलगान। नाना प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े। सुनयना द्वारा इनकी आरती, अर्घ्यदान। इनका मंडप में प्रवेश। बीच-बीच में देवताओं द्वारा पुष्पवर्षा, विप्रों द्वारा शान्तिपाठ। दशरथ समाजसहित द्वारा के बाहर ही विराजमान। मण्डप में इन्हें अर्घ्य देकर बैठाना। इनकी आरती। निछावर। कौतुक देखने के लिए ब्रह्मादि देवता विप्रवेश में उपस्थित (१।३१७-१।३१९)।

(द्वार पर दोनों समधियों का मिलन। दशरथ-समाज का मण्डप में आना। जनक द्वारा सबका पूजन-सम्मान।) देवताओं को छद्म विप्रवेश में देखकर इनके द्वारा उनका मानसिक पूजन। सीता को देखकर ये पूर्णकाम। (अर्थान्तर— इन्हें देख सब पूर्णकाम।) (मण्डप में वसिष्ठादि का पूजा कराना।)। इनके और सीता के द्वारा गौरी-गणेश का, फिर देवताओं का पूजन। देवताओं का प्रकट होकर इन दोनों के हाथों से पूजा ग्रहण कर आशीर्वाद देना। सीता का सिंहासन पर बैठना। इन दोनों का एक-दूसरे को अलक्षित रूप से देखना। इनका परस्पर प्रेम मन-बुद्धि-वाणी से परे। अग्निदेव का प्रकट होकर इन दोनों की दी हुई आहुतियाँ ग्रहण करना (१।३२१।६-७, १।३२१।छं० - १।३२१, १।३२३।३, १।३२३।छं० १ - १।३२३)। वेद-मन्त्रोच्चार के बीच जनक-सुनयना द्वारा इनका

पद-प्रक्षालन, चतुर्दिक जयजयकार। इनकी हथेली पर जानकी की हथेली रखकर जनक का दोनों को अपने हाथ से जोड़े रहना। दोनों कुलगुरुओं द्वारा शाखोच्चार। इस प्रकार पाणिग्रहण। वेदविधान और लोकविधान के बाद कन्यादान। जनक द्वारा इन्हें जानकी समर्पित। विधिवत् हवन, गँठबन्धन। प्रमुदित मुनियों का वर-वधू से भाँवर (अग्नि की परिक्रमा) फिराना। [वि० १।३२५।७-८ व्या० के अनुसार चार अर्धालियाँ कहकर चार बार भाँवर फिरना कहा। मा० पी० १।३२५।७ टिप्पणी १ (ग) में सात चौपाइयों में भाँवरी के उल्लेख से सात भाँवरें लक्षित।] नेगसहित सब रीतियाँ पूर्ण। इनका सीता के सिर में सिन्दूर देना। फिर वसिष्ठ की आज्ञा से वर-वधू का एक ही आसन पर बैठना। सब कार्य आनन्दोत्साह से सम्पन्न। 'भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।' (१।३२४।५- १।३२५।छं०१)।

वसिष्ठ की आज्ञा से जनक का माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति को बुलाकर क्रमशः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न से उनका विवाह कराना, उसी विधि से जिस विधि से इनका विवाह हुआ। एक ही मण्डप में वधुओंसहित चारों भाई ऐसे शोभित जैसे जीव के हृदय में चारों विभु अपनी-अपनी अवस्था के साथ। [चार अवस्थाएँ जाग्रत (उर्मिला), स्वप्न (श्रुतकीर्त्ति), सुषुप्ति (माण्डवी), तुरीय (सीता)। इनके विभु क्रमशः विश्व (लक्ष्मण) तैजस (शत्रुघ्न), प्राज्ञ (भरत), ब्रह्म (राम)। रा० उ० ता० पृ० ५४३। वि० में चारों विभु क्रमशः विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, ब्रह्म।] वधुओंसहित पुत्रों को देखकर दशरथ को ऐसा सुख जैसे क्रियाओंसहित चारों फलों की प्राप्ति हुई हो। (१।३२५।छं० २-१।३२६।१) [वि० ३२५ व्या० के अनुसार चारों फलों में साधनरूप अर्थ (शत्रुघ्न) और धर्म (लक्ष्मण), फलरूप काम (भरत) और मोक्ष (राम। इनकी क्रियाएँ क्रमशः व्यापृति अर्थात् उद्योग (श्रुतकीर्ति), सुकृति (उर्मिला), रति (माण्डवी) और भक्ति (सीता)। मा० पी० में चारों क्रियाओं के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत।]

(दशरथ का जनवासे की ओर गमन।) लौकिक रीति पूरी करने के लिए वर-वधुओं को लेकर सुहागिन सुन्दरियों का कोहबर की ओर चलना। विवाह-वेश में इनका नख-शिख वर्णन। सीता का बार-बार इन्हें देखना और सकुचाना। [चारों जोड़ियों के लिए कोहबर अलग-अलग। मा० पी० १।३२७।छं० २ टिप्पणी २ (क)।] कोहबर में इन्हें गौरी का और सीता को शारदा का लहकौरि सिखाना— वर के हाथ से वधू के मुख में और वधू के हाथ से वर के मुख में दही और मिष्टान्न का प्राशन कराना। अपने हाथ की मणि में इनका रूप देखकर सीता का हाथ न हिलाना, वहाँ से दृष्टि न फेरना। कोहबर का कौतुक, विनोद, प्रमाद, प्रेम अवर्णनीय। फिर सखियों का वर-वधुओं को साथ ले जनवासे की ओर जाना। चारों ओर से आशीर्वाद। नगर और नभ में महा आनन्द। वधुओंसहित चारों भाइयों के आने पर ज़नवासे में मंगल-मोद की उमंग। (१।३२६।छं० ४ - १।३२७)।

जेवनार के समय जनक द्वारा इनका, और इनके समान जानकर तीनों भाइयों का, अपने हाथों से पद-प्रक्षालन (१।३२८।५-६)। (जनवासे में) इन चारों को वधुओं के साथ देखकर दशरथ को अपार आनन्द (१।३३०।३)। 'एहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहसमुख जाहू।।' (१।३३१।८)।

भ्राताओंसहित विदा कराने के लिए इनका जनक के महल में जाना। पुर-नर-नारियों का देखने आना। सबको नयनों की फल-प्राप्ति (१।३३४-१।३३५।८)। रूपसिंधु इन भाइयों को देखकर रनिवास में आनन्द। सासुओं द्वारा निछावर और आरती। इनकी छवि देख अत्यधिक अनुराग से उनका इनके चरण पकड़ना। लज्जा का विस्मरण। भाइयोंसहित इन्हें उबटन लगाकर स्नान कराना। भोजनोपरान्त इनका निवेदन कि इनका आगमन विदा होने के लिए। वे मुदित मन से आज्ञा दें। सुनकर सब दुखी। तीनों कन्याएँ तीनों भाइयों को सौंपकर, सीता को इन्हें समर्पित करना। इनके विनती करने पर रानी का इनके चरण पकड़ना। इनका अनेक प्रकार से सास का सम्मान करके, बार-बार प्रणाम कर विदा माँगना। आशीर्वाद पाकर भाइयोंसहित प्रस्थान (१।३३५-१।३३७।५)।

विदा होते समय जनक द्वारा ब्रह्मरूप में इनकी विनती। अपने भाग्य की सराहना। याचना— कभी भूलकर भी उनका मन इनके चरणों को न छोड़े। सुनकर ये परितुष्ट। विनयपूर्वक इनके द्वारा श्वसुर का सम्मान। तीनों भाइयों की विनती कर, उनसे मिलकर, जनक का उन्हें आशीर्वाद देना। इनका भाइयों के साथ प्रस्थान (१।३४१।२-१।३४३।१)। मार्ग में इनके दर्शन कर ग्रामवासियों को नयन-फल-प्राप्ति का सुख (१।३४३।८)।

अवध में इनके प्रवेश करने से पहले ही पुरवासी दर्शन के लिए लालायित (१।३४५।४)। 'कौसल्यादि राम

महतारीं। प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं।।' उनके द्वारा गणेश-महादेव का पूजन, दान। परछन का आयोजन (१।३४५।८-१।३४६)। अयोध्या में पुरुषों द्वारा निछावर। पुर-नारियों द्वारा चारों भाइयों की आरती। वधुओं को देख वे मुदित (१।३४८।५-८)। राजद्वार पर माताओं द्वारा चारों का वधुओंसहित परछन, आरती। निछावर। वेदविधि और कुलरीति सम्पन्न कर अर्घ्य पाँवड़े देते हुए घर लाना। धूप-दीप-नैवेद्य से पूजन। पुनः आरती, निछावर। इस समय माताओं को जो सुख, वह अन्यत्र अलभ्य (१।३४८-१।३५० क)। उनके द्वारा लोकरीति-पालन। देव-पितर-पूजन। आँचल पसारकर अन्तर्हित देवताओं का आशीर्वाद लेना। (१।३५० ख - १।३५१।३)। चारों का वधुओंसहित वसिष्ठ की चरण-वन्दना कर आशीर्वाद पाना। इन्हें और सीता को हृदय में धारण कर गुरु का गृह-गमन (१।३५२-१।३५३।३)। प्रेमपूर्वक इनका यश-वर्णन करते हुए देवताओं का अपने-अपने लोकों में जाना (१।३५३।८-१।३५३)। चारों पुत्रों और बहुओं का राजा द्वारा दुलार (१।३५४।२-४)। गुरु, विप्र, कुटुम्बियों के साथ भोजन। उनका रानियों से कथन कि वे बहुओं को अतिशय दुलार से रखें, पुत्रों को सुला दें (१।३५४-१।३५५)। इनकी आज्ञा से तीनों भाइयों का शयन (१।३५६।५-६)। इनके अलौकिक कृत्यों का स्मरण कर माताओं को विस्मय। सब कुछ को विश्वामित्र की कृपा का फल मानना। इनके द्वारा माताओं का परितोष। शंभु-गुरु-विप्र-चरणों का स्मरण कर इनका शयन (१।३५६।७-१।३५८।१)। माताओं का बहुओं को अपने साथ सुलाना (१।३५८।४)।

प्रातःकाल चारों भाइयों द्वारा विप्र-सुर-गुरु-पिता-माता की वन्दना। चारों के सभा में उपस्थित होने पर राजा का हृदय से लगाना। भाइयों द्वारा वसिष्ठ और विश्वामित्र का चरण-पूजन। इन्हें देख दोनों गुरु अनुरक्त। विश्वामित्र की कृतित्व-गाथा सुनकर इन्हें और लक्ष्मण को विशेष सुख। (१।३५८।५-१।३५९।८)। इनकी प्रेमपूर्ण विनय के कारण विश्वामित्र का बार-बार रुक जाना। अन्ततः विदा के समय इन चारों का उनके चरणों में गिरना। आशीर्वाद-प्राप्ति। उन्हें पहुँचाने जाना। इनके रूप और विवाह के आनन्दोत्सव की मन-ही-मन सराहना करते हुए विश्वामित्र का गमन (१।३६०।३-१।३६०)। पुनः वामदेव और वसिष्ठ से विश्वामित्र का सुयश-श्रवण कर पिता-सहित भाइयों का महल में जाना (१।३६१।१-३)।

त्रिलोक में राम-विवाह का गान। इनका सुयश व्याप्त। (१।३६१।४)। अवध में अवर्णनीय आनन्द-उछाह (१।३६१।५-६, २।१।१, ६)। 'राम सीय जसु मंगल खानी'। यह कवियों का जीवन। अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कवि द्वारा इसका कथन। यज्ञोपवीत और ब्याह-उछाह श्रवण-गान का माहात्म्य— 'बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं।।' केवल विवाह-प्रकरण की फलश्रुति— 'सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु।।' (१।३६१।७-१।३६१)।

कवि की कामना कि इनकी एकरस (सदा आभ्यंतर आनन्द से पूरित) मुखश्री उसके लिए मंगलदायी हो (२।१।श्लो०२)। इनकी शक्तिसहित वन्दना (२।१।श्लो०३)। इनके और भरत के चतुःफलदायक विमल-यश-वर्णन की कवि-प्रतिज्ञा (२।१।दोहा)। ['रघुबर' शब्द से यहाँ राम और भरत दोनों का ग्रहण। वि०। मा० पी० नोट १]

इनका रूप-गुण-शील-स्वभाव देखकर, सुयश सुनकर दशरथ को सुख। सबके मन में अभिलाषा कि वे इन्हें युवराज बना दें। अपने श्रवण-समीप श्वेत केश देखकर राजा के मन में भी यही विचार (२।१।८-२।२।२, ८)। उनका गुरु वसिष्ठ के निकट गमन। इनकी सर्वप्रियता की प्रशंसा करते हुए अपनी कामना व्यक्त करना। गुरु द्वारा अनुमोदन और कथन— वे शीघ्र तैयारी करें। (दिन, मुहूर्त्त देखने का प्रयोजन नहीं, क्योंकि) 'सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु।।' (२।२-२।४)। इनके तिलक के प्रस्ताव से सचिवादि को प्रसन्न देख शीघ्र राज्याभिषेक की व्यवस्था करने का राजा का आदेश (२।५।३-२।५)। उनके द्वारा इनके लिए मंगल-कार्य सम्पादित। नगर में बधाइयाँ बजना। इनके और राजा के शुभांगों का फड़कना। इनका परस्पर कथन— यह भरत के आगमन का सूचक, क्योंकि वे इनके सर्वाधिक प्रिय (२।७।२-८)। रनवास हर्षित। माताएँ आनन्दमग्न। उनके द्वारा देवी-देवताओं की पूजा और मनौती। (२।७-२।८)। अपने महल में गुरु का आगमन सुन इनका द्वार पर ही उनके चरणों में नमन। अर्घ्यदान कर, घर में लाकर, षोडशोपचार पूजन। सीतासहित उनके चरण-स्पर्श करके करबद्ध विनय। सेवा के सौभाग्य-लाभ की प्रार्थना। गुरु द्वारा इनकी प्रशंसा। अभिषेक का संवाद देकर संयमों के अनुष्ठान का उपदेश। गुरु के जाने पर इनका सोच— चारों भाइयों के जन्म से विवाह तक के सब कार्य एक साथ हुए और अब अभिषेक इनका। 'बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।' इसी समय प्रेमानन्द-मग्न लक्ष्मण के आने पर इनके द्वारा

प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान (२।९।१ - २।१०)। [इनका कथन— ये निमित्त मात्र के युवराज होंगे और उस पद के कर्ता-भोक्ता वे, क्योंकि वे इनके बाह्य प्राण। अ० रा० २।२।३७-३८। वा० रा० २।४।४३ में इनकी उक्ति कि वे इनकी द्वितीय अन्तरात्मा। इनके साथ वे पृथ्वी का शासन करें। राजलक्ष्मी उन्हीं को प्राप्त हो।]

देवताओं की सरस्वती से विनती कि वे कोई उपाय करें जिससे ये वन जायें और उनका कार्य सिद्ध हो। इससे सरस्वती को दोष नहीं लगेगा, क्योंकि ये तो हर्ष-विषाद-रहित (२।११, २।१२।३-४)। (सरस्वती का मन्थरा की मति फेरना।) इनके अभिषेक का समाचार सुन मन्थरा के हृदय में दाह। कैकेयी के पूछने पर उसका कथन कि कुशल केवल इनकी, क्योंकि इन्हें युवराज-पद प्राप्ति। सुनकर कैकेयी को अतिशय हर्ष। उनका कथन— इन्हें सब माताएँ कौसल्या के समान प्रिय। किन्तु उन पर इनका विशेष प्रेम और उन्हें भी ये प्राणाधिक प्रिय। विधाता उन्हें जन्म दें तो ये उनके पुत्र बनें और सीता पुत्रवधू। इनके तिलक से मन्थरा को क्षोभ क्यों? (२।१३।२, २।१३, २।१४।२, २।१५।२-८)। मन्थरा के कपट-वचन— उनके प्रति इनके प्रेम की बात पुरानी। इनके अभिषेक का लग्न निश्चित कराने में कौसल्या का षड्यन्त्र। इनका तिलक हो जाने पर भरत को कारागार मिलेगा और कैकेयी को कौसल्या का दासत्व (२।१७।५-६, २।१८।६-७, २।१९।६, २।१९)। उसका रानी को परामर्श — राजा जब इनकी सौगन्ध ग्रहण करें, तो वे इनके वनवास और भरत के राजतिलक के दो वर माँग लें (२।२२।५-७)। उधर इनके बालसखाओं का हर्षित होकर इनके निकट जाना, लौटकर इनकी प्रशंसा करना, पुरवासियोंसहित जन्म-जन्म में इनके सेवक होने की अभिलाषा करना, इधर कोपभवन में कैकेयी को मनाने के लिए राजा का इनकी शपथ लेकर उनसे मनोवांछित वर माँगने के लिए कहना और उनका वर माँगना— भरत का अभिषेक हो और ये तपस्वी वेश में विरक्त मुनियों की तरह १४ वर्षों तक वनवास करें। (२।२४।१-७, २।२६।६, २।२७।३-४, २।२८।७-२।२९।३)। विकल मर्माहत राजा की विनय— ये और भरत उनकी दो आँखें। वे अवश्य भरत को बुलाकर राज्य देंगे। इन्हें राज्य का लोभ नहीं। इनको राज्य देने का विचार तो केवल इनके बड़े होने के नाते। आखिर इनका अपराध क्या? स्वयं कैकेयी द्वारा भी इनकी सराहना। बैरी भी इनके अनुकूल। अतः माता (कैकेयी) के प्रतिकूल आचरण करना इनके लिए सम्भव नहीं। राजा की कातर उक्ति कि 'जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।' (२।३१।६-२।३२।१, २।३२।४-८, २।३३।२-३)। कटूक्ति करते हुए कैकेयी का निर्णय— प्रातःकाल होते ही इनके वन-गमन न करने पर उनका मरण और राजा का अपयश निश्चित। इनको किसी प्रकार भी रखने की दीन प्रार्थना स्वीकृत न होने पर इनका नामोच्चार करते हुए राजा का भूमि पर गिरना (२।३३।७, २।३३, २।३४।७ - २।३४)। कैकेयी के मर्म-वचन सुन राजा का कथन— अयोध्या में पुनः इनकी प्रभुता होगी और त्रिलोक में बड़ाई। सब भाई इनकी सेवा करेंगे। किन्तु उनका पछतावा और कैकेयी का कलंक नहीं मिटेगा। इनका नाम रटते हुए राजा का मनाना कि भोर न हो, कोई इनसे यह बात न कहे (२।३६।३-५, २।३७।१-३)। उस रात भिन्न-भिन्न कारणों से किसी का न सोना (२।३७।८)।

प्रातःकाल सुमंत्र से कैकेयी का कथन— राजा द्वारा रातभर इनके नाम की रट। इन्हें वे शीघ्र बुला लाये। आकर पिता की दशा देख इनका माता से उनके दुःख का कारण पूछना। कैकेयी का वरदान सम्बन्धी सब प्रसंग सुनाना (२।३८-२।४१।४)। मन-ही-मन मुसकराकर इनका कोमल वाणी में कथन— माता-पिता का आदेश-पालन करने का अवसर पाना पुत्र के लिए सौभाग्य की बात। उस पर इन्हें तो ऐसा आदेश जिसमें इनका हित और सुख। वन में मुनियों से मिलन। प्राणप्रिय भरत का राज्याभिषेक। विधाता सब प्रकार इनके अनुकूल। ऐसी स्थिति में भी वन न जाने पर ये महामूढ़ों में गण्य होंगे। इनके लिए यह विश्वास-योग्य नहीं कि पिता इतनी-सी बात से इतने दुखी। अवश्य इनसे कोई बड़ा अपराध हुआ। अपनी सौगन्ध दिलाकर माता से सच-सच कहने का अनुरोध। इनकी और भरत की शपथ लेकर हर्षित कैकेयी का कथन— उन्हें और कोई कारण ज्ञात नहीं। ये तो 'जननी जनक बंधु सुखदाता,' माता-पिता के आज्ञापालक, अपराध-योग्य नहीं। ये पिता को समझायें, जिससे वृद्धावस्था में उन्हें अपयश न मिले (२।४१।५-२।४३।८)। इसी समय इनका नामोच्चार करते हुए राजा का मूर्च्छा से जागना। इनके आने का समाचार सुन आँखें खोलना। इनके प्रणाम करने पर इन्हें निहारना, बार-बार हृदय से लगाना। विधि से मनाना कि ये वन न जायें। शिव से इनकी मति फेरने की उनकी प्रार्थना जिससे शील-स्नेह त्यागकर ये उनके वचन का निरादर कर घर पर ही रहें। भले ही उनका अपयश हो, पर 'लोचन ओट रामु जनि होहीं' (२।४३-२।४५।३)।

इनका पिता को समझाना-- ऐसे मंगल के समय वे सोच न करें, प्रसन्न मन से आज्ञा दें। इनके द्वारा मातृ-पितृ-भक्ति का महिमा-कथन। माता से विदा माँगने जाना (२।४५।४-२।४६।५)।

इस बीच बड़ी-बूढ़ियों की कैकेयी को सीख— इनके प्रति तो उनके मन में सहज स्नेह, अब इनका क्या अपराध हुआ? ये राज्य के भूखे नहीं। वन-योग्य भी नहीं। महल छोड़कर ये गुरु-गृह में रहें, यह वरदान वे राजा से माँग लें। इन्हें बलपूर्वक रोकें। इनके वन जाने पर सीता और लक्ष्मण इनके अनुगामी होंगे। भरत राज्य का और राजा प्राणों का त्याग करेंगे (२।४६।३-६, २।४६, २।५०।२-४, २।५०।७-छं०)। इनके वियोग की आशंका से प्रजा व्याकुल (२।५१।५-६)।

माता (कौसल्या) के पास जाकर उनके चरणों में इनका नमन। माता वात्सल्य-विभोर। तिलक के शुभ लग्न के सम्बन्ध में उनकी जिज्ञासा। इनका निवेदन-- 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।' वे मुदित मन से आज्ञा दें। मन मलिन न करें। चौदह वर्ष बाद लौटकर ये पुनः उनके दर्शन करेंगे (२।५१।७-२।५३)। सुनकर उनका सहमना। फिर धीरज धरकर बनवास की आज्ञा का कारण पूछना। सचिव-सुत से सब प्रसंग सुनकर वे मूकवत्। उनका धैर्यपूर्वक कथन— यदि केवल पिता की आज्ञा, तो माता को पिता से बड़ी जानकर ये न जायें। यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा, तो वन इनके लिए शत-अवध-सम सुखदायी हो। उनका इन्हें आशीर्वाद। अवधि-समाप्ति तक लौटने का उपाय करने का अनुरोध। उनकी दैन्य, ग्लानि, आक्षेपभरी उक्तियाँ। विलाप करते हुए इनके चरणों में लिपटना। उन्हें उठाकर इनका हृदय से लगाना, समझाना (२।५४।१-२।५७।८)। इसी समय सीता का आगमन। इनके साथ जाने की उनकी उत्सुकता समझ माता का समझाना-- वे वन-योग्य नहीं। वे घर पर रहें, तो माँ को सहारा मिलेगा। अब ये जैसा कहें वैसी सीख वे सीता को दें (२।५७-२।६०।७)। इनका माता को परितुष्ट करना। उनके सामने सीता से कुछ कहने में संकोच, किन्तु आपद्धर्म समझकर इनकी शिक्षा— वे घर पर रहकर सास-ससुर की सेवा करें। इसमें इनका और उनका दोनों का हित। 'कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही।।' किन्तु प्रेमवश साथ जाने का हठ करने पर उन्हें दुःख भोगना होगा। इनके द्वारा वन की भयानकता तथा कष्टों का वर्णन और प्रबोधन (२।६०।८-२।६३)। इनके कोमल वचन सीता के लिए दाहक। अविनय के लिए कौसल्या से क्षमा-याचना कर उनका निवेदन-- 'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।' वन के सारे कष्ट इनके वियोग-दुःख के आगे तुच्छ। यह समझकर वे उन्हें साथ ले चलें। [इनके द्वारा अनेक ब्राह्मणों के मुख से अनेक रामायणों का श्रवण। किसी में भी क्या यह उल्लेख कि उनके बिना ही इन्होंने वन-गमन किया? अ० रा० २।४।७७-७८।] अवधि-भर उन्हें अयोध्या में छोड़ने पर उनके प्राण नहीं बचेंगे। ये वनवास-तप के योग्य और वे भोग के! ऐसे कठोर विरहसूचक वचन सुनकर भी उनका हृदय नहीं फटा! उनकी विकलता देख इनका उन्हें साथ चलने की अनुमति देना (२।६४।१-२।६८।४)। माता का चरण-स्पर्श कर शीघ्र लौटने का आश्वासन देकर उन्हें समझाना (२।६८।५-२।६९।२)।

समाचार सुन व्याकुल लक्ष्मण का आकर इनके चरण पकड़ना। इनका उन्हें प्रबोधन। गुरु-पिता-माता-परिवार-प्रजा के लिए घर पर रहने की शिक्षा। उनका दीनतापूर्ण निवेदन — 'नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ।।' उन्हें और किसी प्रकार के सम्बन्ध का ज्ञान नहीं — 'मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।' उनके विनीत वचन सुन इनका उन्हें माता (सुमित्रा) से विदा लेकर शीघ्र आने के लिए कहना (२।७०।१-२।७३।१)। मुदित होकर माता के पास पहुँचकर भी उनका मन इनके और जानकी के साथ। सुमित्रा द्वारा इनके और सीता के रूप-शील-स्वभाव का स्मरण। लक्ष्मण से कथन — ये उनके पिता और जानकी माता। इन दोनों के वन जाने पर उनका अवध में कोई प्रयोजन नहीं। 'अवध तहाँ जहँ राम निवासू।' लक्ष्मण निश्छल भाव से इनके शरणाश्रित, अतः उनको और स्वयं को सुमित्रा का भाग्यशाली मानना। 'सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।' इन दोनों को हर प्रकार से सुखी रखने का उपदेश देकर सुमित्रा का लक्ष्मण को आशीर्वाद कि इन दोनों के चरणों में उनका नित नवीन अविरल प्रेम हो (२।७३।२-२।७५।छं०)।

सिय-लक्ष्मण-सहित इनका पिता के महल में जाना। इन तीनों को देख व्याकुल राजा का बार-बार हृदय से लगाना। इनका विदा माँगना, समझाना। राजा का इनको जाने से विरत करने के उपाय करना। विफल होकर सीता को रोकने की चेष्टा करना। उन्हें निरुत्तर देख कैकेयी का मुनिपट-भूषण-भाजन (वल्कल-मालामेखलादि-कमण्डलु।

मा० पी० शब्दार्थ) लाकर इनके सामने रखकर कथन— राजा इन्हें वन-गमन के लिए कभी नहीं कहेंगे। यह सोच ये जो उचित समझें करें। सुनकर इन्हें सुख, किन्तु राजा मूर्च्छित। (उनकी अचेतावस्था में ही) सिय-लक्ष्मण-सहित मुनिवेश बनाकर, वन के सब साज सजाकर, माता-पिता को नमन और गुरु-विप्र-चरण की वन्दना कर, इनका प्रस्थान (२।७६।१-२।७६)। [वा० रा० में इनका लक्ष्मण को आदेश कि वे (साथ ले जाने के लिए) गुरु के यहाँ सुरक्षित दो दिव्य भयानक धनुष, दो दिव्य अभेद्य कवच, अक्षय बाणों से भरे दो तरकश एवं दो दीप्तिमान् स्वर्णमण्डित खड्ग ले आयें। ये आयुध वरुण से जनक को और जनक से इन्हें प्राप्त। वा० रा० २।३१।२८-३१। कैकेयी के सामने इनका वनवास के लिए चीर (वल्कल) और कुदाल-टोकरी माँगना। २।३७।४-५। वन जाते समय इनके रथ पर आयुध आदि भी। २।४०।१५। चीर धारण करने की विधि सीता को ज्ञात नहीं। अतः इनका स्वयं सीता के कौशेय के ऊपर चीर बाँधना। वा० रा० २।३७।१३-१४; अ० रा० २।५।३६-३७।]

इनका गुरु के द्वार पर आना। विप्रों-याचकों को यथायोग्य दान। दास-दासियों को बुलाकर गुरु के सुपुर्द करना। पुरवासियों को समझाना — वे ऐसा उपाय करें जिससे माता-पिता इनके विरह से दुखी न हों। गुरु के चरणों में नमन कर, आशीर्वाद पाकर, गणपति-गौरी-गिरीश का ध्यान कर इनका आगे बढ़ना। नगर विषाद-शोक-मग्न, लंका में अपशकुन (२।८०।१-२।८१।४)। इस बीच मूर्च्छा छूटने पर राजा का सुमंत्र से कथन — वे रथ लेकर जायें और इन तीनों को वन दिखाकर कुछ दिनों में लौटा लायें। ये दोनों न लौटें, तो केवल सीता को लौटाने की विनती करें। उनके आने से राजा के प्राणों को अवलम्ब मिल जायेगा। 'रामु लखनु सिय आनि देखाऊ' कहकर राजा का पुनः मूर्च्छित होना (२।८१।५-२।८२।८)। सुमंत्र का रथ लेकर नगर के बाहर इनके निकट आना। रथ पर बैठकर अयोध्या को नमन कर इनका सिय-लक्ष्मण-सहित प्रस्थान। लोग व्याकुल। इनके न रहने से उनके लिए घर-नगर सब भयावह। 'राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं।।' यह निश्चय कर बालकों-वृद्धों को घर पर छोड़ सब इनके अनुगामी। प्रथम दिन तमसा-तट पर विश्राम (२।८२-२।८४)। इनका प्रजा को धर्मोपदेश करना, समझाना, किन्तु प्रेमवश किसी तरह कोई लौटने को प्रस्तुत नहीं। सबके निद्रामग्न हो जाने पर आधीरात को इनका सुमंत्र से कथन — वे इस तरह रथ चलायें जिससे पता न चले कि रथ किधर गया। शंभु-चरणों में नमन कर इनका रथ पर आसीन हो गमन (२।८५।१-२।८५)। सबेरे उठकर इन्हें न देख सब व्याकुल। इनका नाम ले-लेकर सबका चारों ओर दौड़ना। रथ की खोज न पाकर सन्ताप-पीड़ित हो अवध लौटना। इनके दर्शन के लिए व्रत-नेम-पालन करना (२।८६।१-२।८६)।

इनका शृंगवेरपुर पहुँचना। गंगातट पर उतरकर सुरसरि को दण्डवत् करना (सीता और लक्ष्मण का केवल प्रणाम करना।) इनके द्वारा गंगा-संबंधी अनेक कथा-प्रसंग और महिमा का कथन। मज्जन पान। (२।८७।१-२।८७)। इनके आगमन का समाचार सुन निषादराज गुह का अपार हर्ष से प्रिय बंधुओंसहित फल-मूल की भेंट लेकर आना। दण्डवत् करना। उनके प्रेम के वशीभूत हो इनका उन्हें निकट बैठाना, कुशल-प्रश्न करना। ग्राम में प्रवेश करने की उनकी प्रार्थना पर इनका उन्हें 'सखा' कहकर सम्बोधन और कथन — पिता का इन्हें आदेश कि मुनि-वेश धारण करके मुनि-व्रत पालन करते हुए, मुनियों का-सा आहार ग्रहण करते हुए, ये चौदह वर्षों तक वनवास करें। अतः इनके लिए ग्राम-वास उचित नहीं (२।८८।१-२।८८)। इन तीनों के रूप निहार ग्राम के नर-नारियों को नेत्र-फल-प्राप्ति। इनके रात्रि-विश्राम के लिए गुह का इन्हें शिंशपा (शीशम, अशोक) वृक्ष दिखाना। इनके पसन्द करने पर उसके नीचे कुश और कोमल पत्तों की 'साँथरी' बिछाना, फल-मूल-जल रखना। आहार-ग्रहण कर इनका शयन। लक्ष्मण का इनके चरण दबाना। इनके सो जाने पर सुमंत्र से शयन करने का अनुरोध कर लक्ष्मण का धनुष-बाण चढ़ाकर वीरासन से बैठकर पहरा देना (२।८९।१-२।९०।२)। श्री लक्ष्मणगीता (विषाद योग, ज्ञान-वैराग्य-भक्तियोग)। इसके अन्तर्गत इनके ऐश्वर्य का कथन (२।९०।३-२।९४।१)।

[मुनिवेश की पूर्त्ति के लिए इनका जटा बनाना अभी शेष। सुमंत्र के साथ आने का कारण इन्हें ज्ञात। उनके प्रति पितृ-भाव होने के कारण साफ-साफ कहने में संकोच। अतः अपना अभिप्राय सुस्पष्ट कर देने के लिए] तीसरे दिन प्रातःकाल इनका वट-क्षीर (बरगद का दूध) मँगाना। अनुजसहित जटाएँ बनाना। देखकर सुमंत्र के नेत्रों में जल। उनका राजा की यह आज्ञा सुनाना कि वे इन्हें वन दिखाकर, गंगा-स्नान कराके सिय-लक्ष्मण-सहित लौटा लायें। विनती करके इनके चरणों में गिरकर उनका रुदन। उन्हें उठाकर इनका प्रबोधन — वे धर्म-सिद्धान्तों के

ज्ञाता। धर्ममार्गी शिवि, दधीचि आदि के उदाहरण देकर इनका कथन — 'धरमु न दूसर सत्य समाना।' वही (पिता के वचन को सत्य करने का धर्म) इन्हें सहजता से प्राप्त। उसे त्यागने पर त्रिलोक में अपयश। अतः पिता के चरण पकड़कर इनका कोटिशः नमस्कार कहकर वे इनकी ओर से करबद्ध विनती करें कि पिता इनके लिए किसी प्रकार चिन्तित न हों। सुमंत्र को पिता-सम कहकर उनसे वही करने की विनती जिससे पिता दुख-मुक्त हों (२।९४।२ - २।९६।३)। लक्ष्मण के कुछ कटूक्ति करने पर इनका उन्हें मना करना। सचिव को अपनी शपथ दिलाकर लक्ष्मण का सन्देश न कहने का अनुरोध करना। (२।९६।४-५)। पुनः सुमंत्र द्वारा राजा का यह सन्देश-निवेदन कि केवल सीता को ही लौटा दिया जाये। इनका सीता को समझाना। सीता की इनसे प्रेमपूर्ण विनय कि वे इनसे अभिन्न। फिर सुमंत्र से उनकी विनती कि इनके बिना उनके लिए कुछ भी सुखद नहीं। सास-ससुर से यह निवेदन करने का अनुरोध कि इनके और लक्ष्मण के साथ वन में भी भय या दुःख की आशंका नहीं। (२।९६।६-२।९९।२)। विकल सुमंत्र को इनका समझाना। इनकी आज्ञा अनुल्लंघ्य। सिय-लक्ष्मण-सहित इनके चरणों में नमन कर उनका रथ की ओर लौटना। अश्व भी इनके वियोग से व्याकुल (२।९९।३-२।१००।१)।

गंगातट पर आकर इनका केवट से नाव माँगना। उनका निवेदन— इनकी चरण-धूलि के संबंध में यह प्रसिद्धि कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी। उसके स्पर्श से जब पाषाण भी मुनि-पत्नी रूप में परिणत, तो काठ की नाव की तो बात ही क्या। इनकी और दशरथ की सौगन्ध खाकर उनका कथन कि इनके पद-प्रक्षालन किये बिना वे इन्हें नाव पर नहीं चढ़ायेंगे, चाहे लक्ष्मण उन्हें बाण ही क्यों न मार दें। उनके प्रेमपगे वचन सुन सीता और अनुज की ओर देख इनका हँसना। शीघ्र पाँव पखारकर पार उतारने का केवट से निवेदन। (अपने उत्पत्ति-स्थान) इनके पद-नख देख गंगा हर्षित, इनका निहोरा सुन उन्हें किंचित् मोह (२।१००।२-२।१०१।५)। प्रेमानन्द-उमंग से केवट द्वारा इनका पद-प्रक्षालन और चरणोदक-पान। सिय-लक्ष्मण और गुह के साथ पार उतरकर इनके मन में केवट को कुछ न दे पाने का संकोच। समझकर सीता का मुद्रिका उतारना। उतराई के रूप में मुद्रिका देने पर केवट का व्याकुल होकर इनके चरण पकड़ना। इनके अनुग्रह से स्वयं को पूर्णकाम, कृतकृत्य मानना। सीता, लक्ष्मण और इनके प्रयत्न करने पर किसी तरह मुद्रिका स्वीकार न करना। इनका उन्हें निर्मल भक्ति का वर देना (२।१०१।६-२।१०२)।

पार्थिव पूजन कर इनका शिव को नमन। सीता का सुरसरि से मनोरथ और आशिष-प्राप्ति (२।१०३।१-२।१०४।१)। इनका गुह को घर जाने को कहना, किन्तु उनका सहज स्नेह देख साथ ले चलना। यहाँ से वन-यात्रा आरम्भ। उस दिन (अयोध्या से चलकर तीसरे दिन) वृक्ष-तले रात्रि-विश्राम। चौथे दिन प्रातःकाल प्रयागराज के दर्शन (२।१०४।२-७, २।१०४-२।१०५।२)। तीर्थराज प्रयाग का रूपक (२।१०५।३-२।१०६।१)। इनके द्वारा उसका माहात्म्य-कथन। वन-बाग देखते, महिमा कहते हुए इनका त्रिवेणी में स्नान। यथाविधि तीर्थ-देवताओं का, फिर शिव का पूजन (२।१०६।२-६)।

इनका भरद्वाज के आश्रम में जाना। इनके दण्डवत् प्रणाम करने पर उनका इन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद देना। उन्हें जैसे ब्रह्मानन्द-राशि की प्राप्ति। ये उनके द्वारा पूजित। इनके द्वारा कन्द-मूल-फल-अंकुर का आहार-ग्रहण। मुनि की सब आशाएँ पूर्ण। इनके चरणों में सहज स्नेह की उनकी वर-याचना (२।१०६।७-२।१०७)। इन्हें उनकी भाव-भक्ति से संकोच और तृप्ति। इनके द्वारा उनका यश-गान। दोनों की परस्पर विनय। अनिवर्चनीय सुख (२।१०८।१-४)। इनके दर्शन के लिए वहाँ वटु-तापस-मुनि-सिद्ध-उदासी-आगमन और सबको नेत्र-सुख-लाभ (२।१०८।५-८)। वहाँ रात्रि-वास कर (पाँचवें दिन) प्रातःकाल प्रयाग-स्नान करके ये चलने को प्रस्तुत। इनके मार्ग पूछने पर (इन्हें ऐश्वर्य छिपाते देख) मुनि का हँसकर कथन— इनके लिए सभी मार्ग सुगम। फिर इनके मार्ग-दर्शन के लिए अपनें चार शिष्यों को इनके साथ करना (२।१०८-२।१०९।६)।

क़िसी गाँव के निकट से इनके निकलने पर ग्रामवासी इनके रूप-दर्शन से सुखी, इनके जाने पर दुखी (२।१०९।७-८)। वटुओं को विनयपूर्वक विदा कर इनका यमुना पार करके स्नान। तटवासी नर-नारियों का सब कार्य छोड़ इन्हें देखने आना। अपने भाग्य को सराहना। इनका परिचय जानने को सब उत्सुक। सयाने वयोवृद्धों का युक्ति से इन्हें पहचानना। (अर्थात्, दशरथ के राम को वनवास देने का कथा-प्रसंग उन्हें ज्ञात। युक्ति से इनके राजलक्षण देख, उनका निश्चय कि ये वही राम।) उनसे वनवास-कथा सुन सब स्नेह-विकल (२।१०९-२।११०।६,

२।१११।७-८)। इसी समय एक तेज-पुंज तपस्वी का आगमन। अपने इष्टदेव को (इन्हें) पहचान कर उनका साक्षात् दण्डवत् करना। प्रेम-पुलकित हो इनका उन्हें इस प्रकार हृदय से लगाना जैसे रंक को पारस मिल गया हो। उनका लक्ष्मण के चरण छूना। सीता की पग-धूलि मस्तक पर धारण करना। उन्हें इनका प्रिय जानकर गुह का दण्डवत् करना। उनके द्वारा इनके सौन्दर्यामृत का पान (२।११०।७-२।१११।६)। गुह को अनेक प्रकार से समझाकर इनका विदा करना (२।१११)।

यमुना को प्रणाम कर, उसकी बड़ाई करते हुए तीनों का प्रसन्नतापूर्वक चलना। मार्ग में पथिकों से भेंट। इन दोनों के सब अंग राजलक्षणयुक्त होते हुए भी इन्हें पैदल चलते देख उनका ज्योतिष को मिथ्या कहना। वन की विभीषिका बताकर स्वयं साथ चलने का आग्रह करना। इनका उन्हें विनयपूर्वक लौटाना (२।११२।१-२।११२)। इनके पथ में पड़नेवाले, इनके चरणों का स्पर्श पानेवाले नगर-ग्राम-सर-सरिता आदि की देवलोक में भी सराहना (२।११३।१-२।११३)। ग्राम के निकट से इनके निकलने पर आबाल-वृद्ध इनके दर्शन से कृतकृत्य। किसी का वट-छाया-तले तृण-पत्र बिछाकर विश्राम करने की प्रार्थना करना। प्रेम देख, सीता को श्रमित जान, इनका रुकना। तीनों को निहारते हुए किसी को तृप्ति नहीं। इन दोनों के सम्बन्ध में ग्राम-स्त्रियों की सीता से विनीत जिज्ञासा। लक्ष्मण का परिचय देकर सीता का संकेत से इन्हें अपना पति बताना (२।११४।१-२।११८।४)। इनका रुख देख लक्ष्मण का लोगों से मार्ग पूछना। सबको प्रिय वचन कह लौटाकर इनका प्रस्थान (२।११८।५-२।११८)। इन जैसों को वनवास देने के लिए सबका विधाता को दोष देना। प्रेमाधिक्य से दुखी होना। जहाँ-जहाँ इनका गमन, वहाँ-वहाँ लोगों की यही दशा (२।११६।१-२।१२१)। इनके दर्शन से गाँव-गाँव में आनन्द। इन दोनों पथिकों की कथा मग-कानन में व्याप्त। इस तरह मार्गवासियों को सुख देते हुए, वन देखते हुए, इनका चलना (२।१२२।१-२।१२२)।

आगे-आगे ये, इनके पीछे सीता, उनके बाद लक्ष्मण। ये तीनों ऐसे शोभित जैसे ब्रह्म, माया और जीव, या कामदेव, रति और वसन्त अथवा चन्द्रमा, रोहिणी और बुध। इनके चरण-चिह्नों को बचाते हुए सीता का उनके बीच-बीच में चरण रखना। इन दोनों के चरण-चिह्नों को बचाते हुए लक्ष्मण का दाहिनी ओर हटकर चलना। इन तीनों की पवित्र प्रीति वाणी का विषय नहीं। शोभा अद्‌भुत। इस प्रसंग की फलश्रुति— पथिकरूप में इन तीनों के दर्शन करनेवालों का भव-सागर-तरण। आज भी इन तीनों का पथिकरूप जिनके हृदय में स्वप्न में भी विराजमान, उन्हें इनके परमधाम की प्राप्ति (२।१२३।१-२।१२४।२)।

वट-वृक्ष-तले रात्रि-निवास कर (छठे दिन) वन-सर-शैल-दर्शन करते हुए इनका वाल्मीकि के रमणीय आश्रम में पहुँचना। मुनि द्वारा इनका स्वागत। कन्द-मूल-फल से आतिथ्य। इनकी मंगल-मूर्त्ति के दर्शन से वे आनन्द-आपूर्ण (२।१२४।३-२।१२५।५)। अपनी वनवास-कथा सुनाकर इनका वनवास और मुनि-दर्शन को अपने पुण्यों का फल मानना। तृण-पर्णशाला बनाकर कुछ काल तक सिय-सौमित्रि-सहित रहने के लिए ऐसा स्थान पूछना जहाँ इनके कारण मुनि-तापसों को कोई कष्ट न हो। इनके द्वारा विप्रों का प्रभाव-कथन (२।१२५।६-२।१२६।६)। मुनि द्वारा इनके लीलारूप का, ऐश्वर्य और माधुर्य का कथन— ये श्रुतिसेतुपालक। अपनी माया जानकी और शेषावतार लक्ष्मण के साथ निशिचर-नाश का देवकार्य करने के लिए इनका नररूप-धारण करना। इनका परात्पर रूप वचन-अगोचर, बुद्धिपर, अविगत, अकथ, अपार। विधि-हरि-शंभु के लिए भी इनका मर्म अज्ञात। इनको जानना क्रिया-साध्य नहीं, कृपा-साध्य। 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।' इनका लीलातन भी पांचभौतिक नहीं, दिव्य चिदानन्दमय। 'नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।' ये अन्तर्यामी, सर्वव्यापक। ये स्वयं ऐसा स्थान बतायें जहाँ ये न हों, तब मुनि इनके रहने के लिए वही स्थान कह दें। सुनकर इन्हें संकोच। इनका मन-ही-मन मुसकराना (२।१२६।७-२।१२८।१)। फिर सिय-लक्ष्मण-सहित इनके निवास के लिए वाल्मीकि का हँसते हुए चौदह स्थान बताना। (ये इनकी प्राप्ति के चौदह साधन। इनके व्याज से चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन। इनमें नवधा का अन्तर्भाव। दे० 'बालमीकि'।) मुनि के वचन इन्हें प्रिय (२।१२८।२-२।१३२।१)। मुनि कथन— (उपर्युक्त स्थान इनके अन्तर्यामी रूप के योग्य।) इस समय के (लीलविग्रह के) लिए सुखदायक स्थान चित्रकूट। वहाँ की शोभा-महिमा का वर्णन। 'राम देहु गौरव गिरिबरहू' (२।१३२।२-८)।

चित्रकूट आकर सीतासहित दोनों भाइयों का मन्दाकिनी में स्नान। इनके आदेश से यहाँ ठहरने का

प्रबन्ध करने के लिए लक्ष्मण द्वारा स्थान-निरीक्षण। चित्रकूट-अहेरी का रूपन-कथन। स्थान देख इन्हें सुख। यहाँ इनके मन के रमने का आभास पाकर विश्वकर्मासहित देवताओं का कोल-भीलों के वेश में आकर एक छोटी और एक बड़ी पर्णशाला बनाना। पर्णकुटी में जानकी-लक्ष्मण-सहित इनकी शोभा ऐसी जैसे रति और वसन्त के साथ मुनिवेश में कामदेव हों (२।१३२-२।१३३)। आकर देव-नाग-किन्नर दिक्पालों द्वारा विनती। प्रस्थान। मुनियों का आगमन। इनके दण्डवत् प्रणाम करने पर उनका इन्हें हृदय से लगा आशीर्वाद देना। इन तीनों की छवि देख अपने सब साधनों को सफल मानना। यथायोग्य सम्मान पाकर विदा होना (२।१३४।१-२।१३४) कोल-भीलों का भेंट लेकर आना। वे आनन्द-विह्वल। इनके आगमन से स्वयं को, पशु-पक्षियों और प्रकृति को धन्य मानना। इनकी सेवा के लिए वे सपरिवार प्रस्तुत। प्रसन्न होकर इनका उन्हें प्रेमपूर्वक विदा करना (२।१३५।१-२।१३७।३) जब से इनका यहाँ वास, वन में मंगल। अनुपम रमणीयता। इनके संसर्ग के कारण उस वन को 'रामवन' कहलाने का गौरव प्राप्त। पशुओं का भक्ष्य-भक्षक-भाव भूलकर सहवास। मृगया करते हुए इनका रूप देख वे मुदित (२।१३७।४-२।१३८।३)। पुण्यलीलाओं द्वारा मन्दाकिनी की प्रशंसा। देव-निवास पर्वतों द्वारा चित्रकूट का यशोगान। चर-अचर सुखी। परमपद के अधिकारी (२।१३८।४-२।१३९।२)। शेष-शारदा भी इस स्थान की महिमा कहने में असमर्थ, क्योंकि क्षीरसागर और अयोध्या को त्यागकर इनका सिय-लक्ष्मणसहित यहाँ वास (२।१३९।३-२।१३९।७)। लक्ष्मण द्वारा मन-वचन-कर्म से इनकी और सीता की सेवा। इनका नित्य बढ़ता प्रेम देख सीता सुखी (२।१३९।८-२।१४०)। इनका उन दोनों को आँखों की पुतली की तरह रखना। इनके सब आचरण उनकी प्रसन्नता के लिए। अवध की सुधि आने पर इनके नेत्रों में जल। अपने दुःख से सिय-लक्ष्मण को विकल देख, इनका पुनीत कथाएँ सुनाना जिससे उनके मन शान्त हों। पर्णकुटी में उनके साथ ये ऐसे शोभित जैसे स्वर्ग में शची और जयंत के साथ इन्द्र (२।१४१।१-२।१४२।४)।

[उधर सुमन्त्र का तीन दिनों तक शृंगवेरपुर में ही रहना, इस आशा से कि घोर वन में सीता डरेंगी, तो ये उन्हें लौटा देंगे।] गुह को अकेले आये देख विकल सुमंत्र का 'राम राम सिय लखन' पुकारकर धरती पर गिरना। उनकी और अश्वों की विरह-दशा का वर्णन। (२।१४२।५-२।१४४।२)। राम-विहीन जीवन को सुमंत्र का धिक्कारना। पछताना। सोच। इनकी माताओं से, राजा से वे क्या कहेंगे! (२।१४४।३-२।१४६)। राजा द्वारा बार-बार इनका स्मरण। इनके संबंध में मंत्री से जिज्ञासा। इनके दर्शन की लालसा। सुमंत्र द्वारा शृंगवेरपुर तक का प्रसंग और इनका सन्देश-निवेदन (२।१४८।४-२।१५३।४)। (दे० 'सुमंत्र'।) इनके वियोग में राजा की विकलता। इनका नामोच्चार करते हुए प्राण-त्याग (२।१५३।५-२।१५६।२)। 'दे० 'दसरथ'।)

(ननिहाल से लौटकर) भरत द्वारा कैकेयी से सिय-लक्ष्मण-सहित इनकी कुशल-जिज्ञासा (२।१५९।८)। पितृ-मरण सुन विकलता— 'तात न रामहि सौंपेहु मोही' (२।१६०।५)। इनका वन-गमन सुन पिता की मृत्यु का भी विस्मरण (२।१६०)। कथन— 'अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं।।' ऐसे राम भी कैकेयी के लिए अहितकर! और राम-विरोधी माता के गर्भ से उनका जन्म! (२।१६२।६-७, २।१६२)। कौसल्या के समक्ष उनका जानकीसहित इन दोनों भाइयों को देखने की व्यग्रता प्रकट करना। ग्लानि। उन्हें हृदय से लगाकर कौसल्या को ऐसी अनुभूति जैसे स्वयं ये लौट आये हों (२।१६४।३, ७, २।१६५।१)। इन तीनों के वन-गमन के समय के मनोभाव और प्रस्थान का कौसल्या द्वारा कथन। उन्हें क्षोभ— इनके-से आज्ञा-पालक पुत्र का वियोग होने पर भी वे जीवित! (२।१६५-२।१६६।५, २।१६६।७)। उनके आगे भरत द्वारा शपथ-ग्रहण— (कैकेयी की वर-याचना के फलस्वरूप) इस अनर्थ में उनकी सम्मति हो, तो उन्हें सब प्रकार के पाप लगें (२।१६७।४-२।१६८।८)। कौसल्या द्वारा उनकी निर्दोषता का अनुमोदन— ये उनके प्राणप्रिय और वे इनके। (२।१६८-२।१६९।३)।

भरत को वसिष्ठ का समझाना— राजा द्वारा इनका त्याग वचन की रक्षा के लिए। (उसी वचन को पालने के लिए) भरत के राज्य-ग्रहण करने से इन्हें और जानकी को सुख होगा। इनके आने पर वे इन्हें राज्य सौंप दें (२।१७४।४, २।१७५।५-२।१७५)। भरत की विनय— इनकी सेवा में ही उनका सच्चा हित। सिय-लक्ष्मणसहित इनके चरणों के दर्शन बिना राज्य व्यर्थ। 'बादि मोर सबु बिनु रघुराई।। जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू।।' (२।१७८।१-७)। उनकी आत्म-भर्त्सना-- वे राम-विमुख। महल को इनसे विहीन देखकर भी उनका हृदय न फटा! (२।१७८, २।१७९।३-७, २।१८०।२, २।१८१।६)। इनकी और सीता की दृष्टि में निर्दोष होने का

उन्हें विश्वास। अब 'देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।' प्रातःकाल इनके पास जाने का उनका निश्चय। इनके बिना उनके मन की बात कौन समझेगा! शरणागत होने पर ये क्षमा और कृपा करेंगे, शिशु-सेवक और अपना जानकर त्यागेंगे नहीं। सब पंच आज्ञा और आशीर्वाद दें जिससे ये उनकी विनती सुनकर लौट आयें (२।१८२।३-२।१८३)। भरत को इनका प्राणप्रिय और इनके प्रेम की मूर्त्ति कहकर सबके द्वारा उनकी सराहना (२।१८४।१-५, २।१८४)। इनके चरण-दर्शन में सहायक न होनेवाले व्यक्तियों-पदार्थों के व्यर्थ होने का कथन (२।१८५)।

'संपति सब रघुपति कै आही'— भरत का विचार (२।१८६।३)। वन में इनका राजतिलक करने के लिए सब सामग्री साथ लेने की आज्ञा देकर, इनके और सीता के चरणों का स्मरण कर, उनका समाजसहित प्रस्थान (२।१८७।३, २।१८७)। इनके दर्शन की सबको लालसा। इनके लिए व्रत-नियम का पालन (२।१८८।१-२, २।१८८)। (शृंगवेरपुर में) निषादराज गुह को भ्रम कि भरत इन्हें सानुज मारकर निष्कलंक राज्य करने के इच्छुक। इनकी अजेयता का गुह को विश्वास। इनके कार्य के लिए, इनके भक्तों में प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए, भरत से संग्राम करने की उनकी तैयारी। निषादों द्वारा इनके चरण-कमल और प्रताप का स्मरण (२।१८६।३-२।१९०, २।१९१।४, २।१९२।१)। 'रामहि भरतु मनावन जाहीं'— एक वृद्ध का शकुन विचारकर कथन (२।१९२।६)। (सुनकर, गुह का भेंट लेकर जाना।) इनका प्रिय समझकर गुह को वसिष्ठ का आशीर्वाद। इनका सखा जानकर भरत का उन्हें हृदय से लगाना (२।१९३।५-२।१९३)। इनके गुण और नाम की महिमा की देवताओं द्वारा सराहना (२।१९४।२-२।१९५।२)। इनके द्वारा अपनाये जाने के कारण गुह का भुवन-भूषण होना (२।१९५-२।१९६।२)।

रामघाट को देख भरत ऐसे मग्न जैसे स्वयं ये मिल गये हों। गंगा से 'सीय राम पद सहज सनेहू' की उनकी वर-याचना (२।१९७।४-८)। शिंशपा वृक्ष-तले इनके विश्रामस्थल को देख उनके द्वारा प्रणाम और प्रदक्षिणा। ग्लानि-पीड़ित हो इनके गुण और सुकुमारता का कथन (२।१९८।६-१।१९९।२,८,, २।२००।५-२।२०१।३)। गुह का समझाना— ये अन्तर्यामी, वे इनके सर्वाधिक प्रिय (२।२०१।८-२।२०२।१)। इनके सेवकरूप में भरत द्वारा अपने सेवा-धर्म का कथन (२।२०३।६-७)। इनके चरणों में चातक की-सी अनन्य भक्ति पाने की तीर्थराज से प्रार्थना। त्रिवेणी के मध्य से वाणी गुंजित— इन्हें उनके समान और कोई प्रिय नहीं (२।२०४।७-२।२०५।८)। यही कथन भरद्वाज का भी। उनके मत से रामप्रेम ही भरत के रूप में मूर्त्त। इनके प्रति उनकी भक्ति कलंक के कारण रस-दशा को प्राप्त। उनके कारण वसुधा पर भी अब राम प्रेमामृत सुलभ। इनका प्राकट्य दशरथ के स्नेह-संकोच के कारण। सिय-लक्ष्मणसहित इनका दर्शन-लाभ सब साधनों का फल और इस फल का फल भरत के दर्शन (२।२०७।५-२।२१०।६)। ये अन्तर्यामी। सीतासहित इनका भरत-हृदय में वास। सिय-लक्ष्मण के साथ कठोर मुनिधर्म का पालन करते हुए इनका वन-वन में विचरण। इसी का भरत के मन में दाह (२।२१०-२।२१२।१)। (अभिचार-प्रयोग के रूपक में) इनके लौटने पर ही कुयोग के मिटने और उजड़ी अयोध्या के पुनः बसने का भरत-कथन। इनके दर्शन से सब दुख दूर होने का भरद्वाज का आश्वासन (२।२१२।६,८)।

गुह से इनकी पथ-कथा सुनते हुए, इनके वास-स्थलों को देख अनुराग-विह्वल होते हुए, भरत का चलना (२।२१६।६-७, २।२१६)। इनके दर्शन से मग के जड़-चेतन सब परमपद के अधिकारी। भरत-दर्शन से भवरोग-मुक्त। 'बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ।।' और स्वयं इनके द्वारा मन-ही-मन भरत का स्मरण (२।२१७।१-५)।

ये संकोची और भरत प्रेम-सागर। यह समझ इन्द्र का गुरु वृहस्पति से ऐसा उपाय करने का अनुरोध जिससे इन दोनों की भेंट न हो। इन्द्र को समझाते हुए गुरु द्वारा इनका स्वभाव-कथन— इन्हें अपना भक्त परम प्रिय। 'अगुन अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत पेमबस।।' सेवक की सेवा से ये सुखी, उससे वैर करने पर इनका स्वयं को वैरी का शत्रु मानना। इनकी क्रोधाग्नि से उसका भस्म होना निश्चित। और 'भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।' अतः इन्द्र भरत के अनिष्ट का विचार त्याग दें। उनसे डरें नहीं। ये सत्यसन्ध, सुर-हितकारी। ['हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।। १।१८७।७। विष्णुरूप में की गयी इस आकाशवाणी को ये सत्य करेंगे।] और भरत इनके आज्ञानुवर्त्ती (२।२१७।७-२।२२०।३)। यमुना से इनका वर्ण-सादृश्य देख भरत विरह-मग्न। इनका नामोच्चार करने में उनकी पीड़ा व्यक्त। इनके वास-स्थलों को

उनका प्रणाम करते जाना (२।२२०।६, २।२२०, २।२२१।८)। इनके, लक्ष्मण के और भरत-शत्रुघ्न के वय-वपु-वर्ण-रूप-शील-स्नेह और चाल में अद्‌भुत साम्य। यह देख ग्राम की स्त्रियों को उनके राम-लक्ष्मण होने का भ्रम, किन्तु इनकी तरह उन्हें प्रसन्न न देख सन्देह। अन्य स्त्री का इनकी कथा सुनाकर समाधान करना (२।२२२।१-२।२२२)। भरत द्वारा इनके और अपने गुणों का श्रवण। तीर्थादि में सियसहित इनके पदानुराग की वर-याचना। मगवासियों से इनकी वनवास-कथा सुनना। इनके दर्शन को सब लालायित (२।२२४।१-२।२२४)। मंगल शकुन से सबको इनके मिलने का विश्वास। चित्रकूट पर्वत के दर्शन कर, इनकी जय-जयकार करते हुए, सबका प्रणाम करना। इनके प्रेम में सब मग्न (२।२२५।१-२।२२६।२)।

चित्रकूट में रात्रि के अन्तिम भाग में इनके जागने पर सीता का इन्हें स्वप्न सुनाना। सुनकर (स्वप्न का फल विचार कर) इनके नेत्रों में जल। लक्ष्मण से इनका कथन कि कोई अशुभ समाचार सुनायेगा। (स्वप्न-दोष-निवारण के लिए) अनुजसहित स्नान करके इनके द्वारा शिव-पूजन और साधुओं का सम्मान। इसी समय ससैन्य भरत के आने का संवाद सुन इन्हें (उनसे मिलने का) हर्ष और उनका स्वभाव समझकर (यह समझकर कि उनका आगमन इनका अभिषेक करने, इन्हें लौटाने के लिए) इन्हें शोच। एक ओर पिता के वचन, दूसरी ओर भाई का संकोच। फिर यह सोचकर समाधान कि भरत इनके आज्ञानुवर्ती (२।२२६।३-२।२२७।५)। इनकी चिन्ता देख लक्ष्मण का कथन— ये सर्वज्ञ-शिरोमणि, फिर भी सरल हृदय, शील-स्नेह-निधान। सबके प्रति इनके मन में प्रीति-प्रतीति। इनका सबको अपने ही समान समझना। किन्तु आज्ञापालक भरत द्वारा भी राजपद पाकर धर्म की मर्यादा का विस्मरण। इन्हें वन में एकाकी जानकर, अकण्टक राज्य करने का अनुकूल अवसर देख, उनका कुटिलतापूर्वक शत्रुघ्न और चतुरंगिणी सेना को बटोर लाना। इस तरह इनका अनादर लक्ष्मण के लिए असह्य। इनके सेवक होने का यश प्राप्त करने के लिए रण में सैन्यसहित भरत-शत्रुघ्न को मारने का उनका निश्चय (२।२२७।६-२।२३०)। उनके विचार के अनौचित्य का संकेत करती हुई आकाश से देववाणी (२।२३१।१-४)। लक्ष्मण के संकुचित होने पर सीतासहित इनके द्वारा उनकी नीति की प्रशंसा। कथन— विधि-हरि-हर-पद पाकर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता। उनका गुण-शील-स्वभाव कहते हुए ये प्रेम-पयोधि में मग्न (२।२३१।५-२।२३२।८)। इनकी और भरत की सराहना करती हुई देववाणी— केवल इन्हीं को भरत की गुणगाथा का ज्ञान। सुनकर सिय-लक्ष्मणसहित इन्हें सुख (२।२३२-२।२३३।३)।

इनसे मिलने के लिए आते हुए भरत के मन में अनेक कुतर्क। इनके स्वभाव का स्मरण कर आशा का संचार (२।२३३।६-२।२३४।६)। पंचवृक्षों के नीचे छायी इनकी पर्णकुटी की ओर गुह का संकेत। इनके चरण-चिह्न की रज को भरत-शत्रुघ्न का हृदय और नेत्रों से लगाना (२।२३७।२-२।२३७, २।२३८।३-४)। सिद्धों-साधकों का कथन— इनके द्वारा साधुरूपी देवताओं के लिए भरतरूपी गहन सागर को विरहरूपी मन्दराचल द्वारा मथकर प्रेमरूपी अमृत का प्राकट्य (२।२३८)।

आश्रम की वेदी में मुनि-साधु-समाज के साथ ये सीतासहित विराजमान। श्याम शरीर पर वल्कल के वस्त्र (वि० के अनुसार पीतवर्णी), मस्तक पर जटा, सहास मुख, हाथों में धनुष-बाण फेरते हुए। सिय संग ये ऐसे शोभित जैसे मुनिवेशधारी रति और काम हों, जैसे शरीरधारी ज्ञानसभा में भक्ति और सच्चिदानन्द विराजित हों। आगे लक्ष्मण इनकी सेवा में निरत। इनके इस रूप के दर्शन करके अनुज और सखासहित भरत हर्ष-शोक-सुख-दुख भूलकर मग्न। और 'पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।।' (२।२३९।२-२।२४०।२)। भरत का आगमन सुनते ही इनका प्रेमाधीर होकर उठाना। कहीं वस्त्र का गिरना, कहीं निषंग, धनुष, बाण का। भरत को बरबस उठाकर इनका हृदय से लगाना। दोनों की मिलन-प्रीति अवर्णनीय। 'परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।···अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को।।' (२।२४०।३-२।२४१।६)। मिलन देख देवताओं को भय। गुरु वृहस्पति के समझाने पर चेत (२।२४१।७-८)। इनका शत्रुघ्न और गुह को गले लगाकर मिलना (२।२४१)। (भरत-लक्ष्मण, लक्ष्मण-शत्रुघ्न, लक्ष्मण-निषाद का मिलना। भरत द्वारा सानुज मुनियों की वन्दना, सीता को प्रणति।) सबका मन प्रेम से परिपूर्ण। चंचलता या संकल्प-विकल्प से शून्य। स्थिर। न किसी का कुछ पूछना, न कहना (२।२४२।७)। केवट से गुरु वसिष्ठ का आगमन सुनकर, शत्रुघ्न को सीता के पास छोड़, इनका तेजी से चलना। गुरु को देख लक्ष्मणसहित

अनुरागमग्न हो साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना। गुरु का दौड़कर प्रेमोमंग से इन दोनों से मिलना (२।२४२।८-२।२४३।४)। गुरु-निषाद-मिलन-प्रसंग में देवताओं द्वारा इनकी भक्ति और भजन के प्रताप का कथन (२।२४३।७-२।२४३)। सबको आर्त्त जानकर, जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी, उससे उसी भाव से इनका मिलना। पलभर में सानुज सबसे मिलकर सबका दुख-दाह दूर करना (२।२४४।१-४)। [७।६।४-७ में भी सबसे इनका इसी प्रकार पलभर में मिलना। यह रहस्य किसी को ज्ञात नहीं।] माताओं को दुखी जानकर, सरल स्वभाव और मातृभक्ति से आर्द्र होकर, इनका सर्वप्रथम कैकेयी से भेंटना। काल-कर्म-विधि को दोष देकर समझाना। अन्य माताओं से मिलकर उनका प्रबोधन करना। विप्र-स्त्रियोंसहित गुरु-पत्नी के चरणों की वन्दना कर आशीर्वाद-प्राप्ति। सुमित्रा के पाँव पड़कर उनकी गोद में ऐसे लिपटना जैसे दरिद्र को सम्पत्ति मिल गयी हो। फिर प्रेमाकुल होकर कौसल्या के चरणों मे गिरना। माता का इन्हें हृदय से लगाकर नयनाश्रु से नहलाना। उस समय का हर्ष-विषाद अकथनीय (२।२४४।६-२।२४५।६)। [हर्ष मिलन का, विषाद इनके वनवास, राजा की मृत्यु के स्मरण, पुनः वियोग आदि का।] गुरु, ब्राह्मण, मंत्री, माता और कुछ गिने-चुने व्यक्तियों को लेकर भाइयों के साथ इनका आश्रम की ओर प्रस्थान (२।२४५।७, २।२४५)।

गुरु से पिता के स्वर्ग-गमन का समाचार सुन, स्वयं को उनकी मृत्यु का हेतु समझकर, ये अति विकल। (सिय-लक्ष्मण और रानियोंसहित सबका विलाप।) गुरु का इन्हें समझाना। सबका मन्दाकिनी-स्नान। इनका (और सबका) निर्जल व्रत। सबेरा होने पर गुरु-आज्ञा से पितृ-क्रिया करके इनका शुद्ध होना (२।२४७।३-२।२४८।३)। दो दिन बीतने पर (वि० के अनुसार एकादशाह की क्रिया समाप्त हो जाने पर) इनका गुरु से निवेदन— समाजसहित भाई और माताएँ यहाँ दुखी और उनका क्लेश इनके लिए दुःसह। उधर अवध अनाथ। गुरु सबके साथ अयोध्या पधारें। गुरु का कथन— ये धर्मसेतु, करुणायतन। इनके वचन उचित, किन्तु सब इनके विरह से दुखी। अतः दो दिन रहकर इनके दर्शन-सुख से विश्राम-लाभ कर लें (२।२४८।४-२।२४६।२)।

इनके अवध लौटने के सम्बन्ध में सबको संशय। इनके अभिषेक का कोई उपाय न देख भरत को शोच— गुरु या माता कौसल्या की आज्ञा होने पर इनका लौटना निश्चित, किन्तु गुरु इनकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं कहेंगे, माता कभी हठ नहीं करेंगी। उनके बाद भरत का कुछ प्रभाव, किन्तु वे तो सेवक। उनका हठ करना कुकर्म (२।२५२।८, २।२५३।२-७)। इन्हें नमन करके बैठते ही भरत को गुरु का बुलाना (२।२५३।८)। उन्हें और सभासदों को सम्बोधित कर गुरु द्वारा इनके माधुर्य एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन और कथन— इनकी रुचि रखने और आज्ञा पालने में ही सबका कल्याण। निःसन्देह इनका अभिषेक मंगल-मूल और सुखप्रद। सब विचारपूर्वक इनके अवध लौटने का उपाय कहें (२।२५४।१-२।२५५।२)। भरत के इस निवेदन पर कि गुरु की टेक अटल, वे विधि के विधान को भी रोकने में समर्थ, गुरु का कथन— वह सिद्धि भी तो इनकी कृपा का ही फल, क्योंकि 'राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं'। उनका ससंकोच प्रस्ताव— सिय-लक्ष्मण-सहित इन्हें लौटा दिया जाये और इनकी जगह भरत-शत्रुघ्न वन जायें। सुनकर भरत सानुज प्रमुदित। उनका आग्रह कि गुरु अपनी बात को प्रमाणित करें (२।२५५।३-२।२५६)।

प्रथम सभा— गुरु का समाजसहित इनके पास आकर कथन— ये सर्वज्ञ, सुजान, धर्म-नीति-गुण-ज्ञान-निधान, अन्तर्यामी। ये ऐसा उपाय करें जिससे पुरजन, जननी और भरत का हित हो। इनका निवेदन— गुरु के आदेश-पालन में ही सबका हित। वे इन्हें आज्ञा दें। उनका आदेश सबको शिरोधार्य होगा (२।२५७।५-२।२५८।५)। गुरु-कथन— उनकी बुद्धि तो भरत की भक्ति के वश में। भरत की रुचि रखकर कुछ करने में ही कल्याण। अतः ये भरत की विनय सुन लें। भाई पर गुरु का अनुराग देख ये आनन्दित। उन्हें मन-वचन-कर्म से अपना सेवक समझ, गुरु और पितृ-चरणों की शपथ लेकर इनका कथन कि 'भयउ न भुअन भरत सम भाई'। उनके कथनानुसार कार्य करने में ही कल्याण। यह कहकर इनका चुप हो जाना। (२।२५८।६-२।२५६।८)। इनका रुख और गुरु का आदेश पाकर भरत पुलकित। उनके द्वारा इनके स्वभाव का और बचपन में अपने ऊपर इनकी कृपा का कथन। इनके सम्मुख उनका भी कभी मुँह न खोलना। इनके दर्शन से उनके प्रेम-तृषित नेत्रों को कभी तृप्ति नहीं। उनका ग्लानि-निवेदन। भरोसा यही कि ये उनके स्वामी और समर्थ वसिष्ठ उनके गुरु। अतः परिणाम के शुभ होने का विश्वास। शपथपूर्वक अपने प्रेम की सत्यता का कथन। उनकी आत्म-भर्त्सना— इनके और सिय-लक्ष्मण के

विरह में भी उनके जीव का देह-त्याग न करना। इनके असह्य कष्ट सुनकर भी उनके हृदय का टूक-टूक न होना। (२।२५९-२।२६२)। इनका समझाना— जीव की गति को ईश्वराधीन समझकर वे ग्लानि त्याग दें। वे पुण्यश्लोक। कैकेयी को दोष देना भी जड़ता का सूचक। 'कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी।।भरत भूमि रह राउरि राखी।।' वे कुतर्क न करें, क्योंकि ये उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। ये असमंजस में— इनके सामने एक ओर पिता के वचन की रक्षा का धर्म, दूसरी ओर उससे भी अधिक भरत के स्नेह की रक्षा की चिन्ता। अतः संकोच त्यागकर प्रसन्न मन से भरत जो कहें, वही करने को ये प्रस्तुत (२।२६३।१-२।२६४)।

आकाश में चिन्तित इन्द्रादि देवता (मन-ही-मन) इनके शरणागत। उनका परस्पर कथन— 'रघुपति भगत भगति बस अहहीं'। इन्हें भरत के गुण-शील के वशीभूत जानकर भरत का स्मरण करने का उनका विचार। देवगुरु द्वारा अनुमोदन और कथन कि भरत इनकी परछाईं। यह सब सुन-समझकर इन्हें संकोच (कि देवताओं को भरोसा स्वयं इन्होंने दिया और अब सब निर्णय भरत पर छोड़े बैठे हैं। वि०) (२।२६५।१-२।२६६।५)।

अपने ऊपर सब दायित्व समझ भरत का मन-ही-मन विचार करके निष्कर्ष—उनके ऊपर इनका इतना अनुग्रह कि अपना प्रण छोड़कर इनके द्वारा उनके प्रण की रक्षा। अब निर्णय इन्हीं पर छोड़कर इनकी आज्ञा का पालन करने में ही कल्याण। उनका निवेदन— ये उनके अनुकूल और गुरु प्रसन्न। उनका कल्पित क्लेश समाप्त। सर्वनाश से इनका उन्हें बचाना। उनके द्वारा इनके स्वभाव का वर्णन। सेवक के कर्तव्य का कथन। इनसे वही करने की विनय जिससे इनके चित्त में उनके कारण क्षोभ न हो। इनके लौटने में सबका स्वार्थ, किन्तु इनके आदेश-पालन में स्वार्थ और परमार्थ दोनों (२।२६६।६-२।२६८।६)। उनकी विनती— इनके राजतिलक की सामग्री उनके साथ। ये चाहें, तो तिलक स्वीकार करें। नहीं तो अपनी जगह उन्हें और शत्रुघ्न को वन भेज दें, या लक्ष्मण और शत्रुघ्न को लौटाकर उन्हें अपने साथ ले चलें, अथवा सीतासहित स्वयं लौट जायें और वे तीनों भाई वन-गमन करें। संकोच त्यागकर प्रसन्न मन से ये जिसे जो आदेश देंगे, उसी का पालन करने में सबका हित होगा (२।२६८।७-२।२६९)। सुनकर ये मौन। यह देख सभा सोचवश (२।२७०।१-३)। (प्रथम सभा समाप्त।)

इसी समय जनक के दूतों का आकर इन्हें प्रणाम करना। इनका मुनिवेश देख उन्हें क्लेश। इनके वनवास का समाचार सुन मिथिलेश के दुखी होने का उनका कथन। उनसे जनक का आगमन सुन इन्हें अत्यधिक संकोच (यह सोचकर कि राजा का स्वयं आना इनको लौटाने के लिए ही।) (२।२७०।५, २।२७१।४, २।२७२)। पंचदेव (गणपति, गौरी, शिव, विष्णु, सूर्य) की उपासना कर अवधवासियों की विनती कि अवध में इनका राज्याभिषेक हो। ये भरत को युवराज बनायें। इनके राजा रहते ही उन सबकी मृत्यु हो। यह उनका नित्य कर्म। इसके बाद इनको प्रणति। अपने-अपने अधिकार के अनुसार इनके दर्शन। इनकी सराहना और गुण-कथन (२।२७३।४-२।२७४।८)।

जनक के आने का संवाद सुन इनका ससंभ्रम उठना। भाई-सचिव-गुरु-पुरजनसहित अगवानी के लिए चलना। मार्ग में भेंट। (उनके साथ आये) ऋषियों को प्रणाम करके उनसे भाइयोंसहित मिलना। उनके करुणा-सरित्-सदृश समाज को साथ लेकर अपने शान्त रस-रूप-आश्रम-सागर में पहुँचना। आश्रम-समुद्र का क्षुब्ध होना (अर्थात् संभ्रम-समादर-समवेदन आदि के उदयोत्कर्ष से यहाँ कोलाहल।) (२।२७४-२।२७५, २।२७६।६) ज्ञानी जनक में भी इनके और सीता के प्रति मोह-ममत्व का आतिशय्य। यह भक्ति के उत्कर्ष का सूचक। प्रेम के बिना ज्ञान की भी शोभा नहीं। इनके प्रेम में सिक्त जीव ही साधु-समाज में विशेष समादृत। (२।२७७।१-५)।

अवध और मिथिला के नर-नारियों की दृष्टि में इनको और सीता को साथ लिए बिना लौटने की अपेक्षा इनके साथ वन में वास करना कोटि स्वर्ग-सा सुखद। त्रिकाल मन्दाकिनी-स्नान और इनके दर्शन करके, रामगिरि-रामवन में घूमते हुए चौदह वर्ष पल के समान बीत जायेंगे। किन्तु उनके भाग्य में इतना सुख कहाँ। (२।२८०।१-२।२८१।१)। (दोनों रनवासों का मिलन।) सब रानियाँ सिय-राम-प्रेम की मूर्त्ति-सदृश। कौसल्या की उक्ति— सीतासहित ये वन जायें। परिणाम शुभ होगा। भरत-महिमा कहते हुए उनके द्वारा इनका शपथ-ग्रहण। सुनयना का निवेदन— ये वन जाकर, देवकार्य करके, अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे। त्रिलोक के निवासी सुखी होंगे। यह याज्ञवल्क्य द्वारा पहले ही कथित (२।२८१।७, २।२८२, २।२८३।२, २।२८५।६-८)। जनक का सुनयना से कथन— केवल इन्हीं को भरत की महिमा का ज्ञान, किन्तु उसका वर्णन करना इनके लिए भी संभव नहीं। इनकी

और भरत की प्रीति-प्रतीति बौद्धिक तर्कों से परे। ये समता की सीमा, तो भरत प्रेम और ममता की। (अर्थात् इनके साथ भरत जायें या लक्ष्मण, इनके लिए दोनों बराबर, किन्तु भरत इन्हें कभी संकोच में न डालेंगे।) इनके चरणों में अनुराग ही भरत के लिए साधन और सिद्धि। इनकी आज्ञा का उल्लंघन वे मानसिक रूप से भी नहीं करेंगे। दम्पति द्वारा सारी रात सप्रेम इनका और भरत का गुणानुवाद (२।२८६।२-२।२६०।१)।

प्रातःकाल गुरु के निकट जाकर इनकी विनती— दोनों राज-समाज को वन के क्लेश सहते बहुत दिन व्यतीत। वे यथायोग्य उपाय करें। कहकर ये संकुचित। इनका शील-स्वभाव देख पुलकित हो मुनि का कथन— इनके प्रेम के बिना सब व्यर्थ। ये प्राणों के प्राण, जीव के जीव, सुख के सुख (क्योंकि इनके आनन्द के कणमात्र से संसार में सुख)। 'तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं।।' इनकी आज्ञा सबके लिए शिरोधार्य। ये अपने आश्रम में पधारें (२।२६०।३-२।२६१।६)। मुनि का जनक को इनका अनुरोध सुनाना। जनक का मन-ही-मन विचार— इनका वनगमन पिता के वचन की रक्षा के लिए। अब धर्म-पालन के लिए इन्हें पुनः वन भेजकर विवेकी होने का बड़प्पन लेकर वे लौटेंगे (२।२६१।७, २।२६२।३-४)। समाजसहित भरत के पास जाकर जनक द्वारा इनका स्वभाव-कथन। स्नेह-शील-संकोच के कारण (सबको लौटने के लिए कहने में असमर्थ हो) इनका कष्ट सहना। अब भरत जो आज्ञा दें, वह इनसे कही जाये। भरत की विनय— स्वामि-धर्म से सेवक के स्वार्थ का विरोध। अतः इनके रुख, व्रत, धर्म की रक्षा करते हुए, उन्हें पराधीन जानकर, जनक सबका प्रेम समझकर सर्वसम्मति से सर्वहित का उपाय करें (२।२६२।८, २।२६२, २।२६३।७-२।२६३)। सबका इनके निकट आना (२।२६४।४)।

इनकी प्रेम-भक्ति में भरतसहित सबको मग्न देख इन्द्र को सोच। माया रचकर भरत-मति फेरने के देवताओं के अनुरोध पर सरस्वती का कथन— इनका और जानकी का भरत के हृदय में वास। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति नहीं (२।२६४।७-२।२६५।८)।

दूसरी सभा— वसिष्ठ का इन्हें जनक-भरत-संवाद सुनाना, इन पर निर्णय छोड़ना। इनका शपथपूर्वक कथन कि उनका और जनक का आदेश सबके लिए शिरोधार्य। सुनकर सभासहित मुनि और जनक संकुचित। सबका भरत की ओर देखना (२।२६६।२-२।२६७।१)। गुरु-जनक-साधु-समाज और इनसे भरत की क्षमा-प्रार्थना। सीता-सहित इनका स्मरण कर, इनके अनेक विशेषण कहकर, उनका निवेदन— उत्तमता में इनके समान ये ही, अधमता में उनके समान वे ही। इनकी आज्ञा जगत् में अनुल्लंघ्य, किन्तु मोहवश इनके और पिता के वचनों की उपेक्षा करके उनका यहाँ आगमन। यह उनकी धृष्टता, किन्तु इनका इसे स्नेह-सेवा मानना, अपनी कृपा-भलाई से उनका भला करना (२।२६७।५-२।२६८)। उनके द्वारा इनके गुणों का वर्णन। उनके अक्षम्य अपराधों को न देख इनका उन पर अनुग्रह करना, उनका दुलार रखना। ये उनकी विनय अथवा अविनयपूर्ण वाणी को आर्त्तिजनक जानकर उन्हें क्षमा करें। अब आज्ञा देकर उनकी बिगड़ी सुधार दें। यह कहकर वे अतिशय प्रेम के वशीभूत। आकुल होकर उनका इनके चरण पकड़ना (२।२६६।१-२।३०१।६)। इनके द्वारा वाणी से उनका सम्मान। हाथ पकड़कर अपने निकट बैठाना। उनकी विनय सुन, स्वभाव देख, ये समाजसहित स्नेह-शिथिल (२।३०१।७-२।३०१।छं०)।

इनके प्रति सबके मन में अतिशय प्रेम, किन्तु देवताओं के उच्चाटन फैलाने के कारण सब इनके विरह से उतने व्याकुल नहीं। सबका मन अस्थिर, द्विधाग्रस्त। (भरत, जनक, मुनिगण, सचिव, सावधान साधुओं पर देवमाया का प्रभाव नहीं।) यह देख इनका मन-ही-मन हँसकर कथन कि श्वान (कुत्ता), मघवा (इन्द्र) और युवा (प्रकृति-वृत्ति-धर्म-स्वभाव में) समान। [व्याकरण शास्त्र में भी श्वान्, मघवन् और युवन् शब्दों की एक ही गति, यथा, 'श्वयुवमघोनामतद्धिते'। वि०।] सबका एकटक इनकी ओर देखना (इनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करना।) (२।३०२।१-२।३०३।१, २।३०३।३)।

इनके द्वारा भरत की प्रशंसा और कथन— कुसमय में और बड़ों के सामने ये उनका गुणानुवाद कैसे करें! वे सूर्यवंश की रीति, पिता की कीर्त्ति, उसकी रक्षा में उनकी प्रीति से परिचित। समय, समाज, गुरुजनों के संकोच और राजकाज से अवगत। इनके और अपने परम हित और धर्म का उन्हें ज्ञान। इन्हें सब प्रकार से उनका भरोसा, फिर भी इनका उनसे कथन केवल अवसरोचित कर्त्तव्य के आग्रह से (२।३०४।४-२।३०५।४)। पिता के न रहने पर केवल कुलगुरु की कृपा ने ही सबको सँभाला। आगे भी राजकार्य, प्रतिष्ठा आदि का कार्य गुरु के

प्रभाव से ही होता रहेगा। सिय-लक्ष्मण-सहित इनकी और समाजसहित उनकी (भरत की) रक्षा गुरु-कृपा से ही होगी। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही धर्म की अवस्थिति। अतः वे स्वयं आज्ञा-पालन करके इनसे भी आज्ञा-पालन करायें और सत्य-धर्म की रक्षा करें। कुसमय में सुबन्धु ही सहायक, अतः वे इनकी विपत्ति बाँट लें और संकट झेलकर अवधिभर प्रजा का पालन करें। इनके द्वारा स्वामी-सेवक की परस्परोपकारक प्रीति-रीति का कथन। इनकी प्रेमामृत-सिक्त वाणी सुन सभा स्नेह-समाधि-लीन (२।३०५।५-२।३०७।२)। इन्हें अनुकूल जानकर भरत को परम सन्तोष। उनका निवेदन— इनके साथ वन जाने का-सा सुख उन्हें प्राप्त। अब ये ऐसा अवलम्ब दें, (जिसे इनके चरणों का प्रतीक मानकर) जिसकी सेवा करते हुए वे अवधि व्यतीत कर सकें। इनके अभिषेक के लिए लाये गये तीर्थों के जल के सम्बन्ध में ये आज्ञा दें। इनकी अनुमति हो, तो वे चित्रकूट के पवित्र स्थल आदि, विशेषतः इनके चरण-चिन्हों से अंकित भूमि के दर्शन कर आयें। इनका कथन— वे अत्रि मुनि की आज्ञा लेकर वन में निर्भय विचरण करें और मुनि के आदेशानुसार ही तीर्थ-जल स्थापित करें (२।३०७।३-२।३०८।७)। [अवलम्ब के संबंध इनका यहाँ कुछ न कहना। भरत को उसकी प्राप्ति तीसरी सभा में।] 'सकल सुमंगल मूल' भरत-राम संवाद सुन स्वार्थी देवताओं का इन्हें और भरत को धन्य कहना, कल्पतरु के फूल बरसाना। जनक द्वारा इनके और भरत के गुणग्राम और स्नेह की प्रशंसा। दोनों समाज में हर्ष और विषाद। इनके गुण कहकर कौसल्या द्वारा अन्य रानियों का प्रबोधन (२।३०८-२।३०६।८) (दूसरी सभा समाप्त।)

अत्रि का इन्हें भरतकूप-तीर्थ की महिमा सुनाना (२।३१०)। इनकी, अत्रि और गुरु की आज्ञा पाकर भरत का समाजसहित रामवन-भ्रमण। उन्हें इनका प्रिय जानकर सारी प्रकृति का अनुकूल होकर सेवा करना। अनुजसहित उनके द्वारा इनका, जानकी और लक्ष्मण का स्मरण (२।३११।२,३,८, २।३११, २।३१२।६,८)।

तीसरी सभा— (छठे दिन) प्रातःकाल समाज का एकत्र होना। आज प्रस्थान का उत्तम दिन, यह जानकर भी इन्हें कहने में संकोच। इनके शील की प्रशंसा कर सभा का सोचना कि 'कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची' (२।३१३।१-४)। इनका रुख देखकर भरत का विनीत निवेदन— इनके द्वारा उनकी रुचि की रक्षा। अब ये आज्ञा दें, वे अवधिभर अवध का सेवन करेंगे। ये अन्तर्यामी, प्रणतपाल। उन्हें पूरा भरोसा कि ये सबका पालन करेंगे। इनकी कृपा और अपनी आर्त्ति के युगल कारणों से वे धृष्ट। उनका यह दोष ये दूर करें। उन्हें अवधिभर के लिए सीख दें (२।३१३।५-२।३१४।८)। इनकी उन्हें शिक्षा— स्वयं इनकी, उनकी, परिवार-घर-वन सबकी चिन्ता गुरु और राजा जनक को। इनके और उनके लिए क्लेश का कोई कारण नहीं। इनका और उनका परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म, परमार्थ इसी में कि दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। देश-कोशादि की सार-सँभाल का भार गुर-चरण-रज पर। ये केवल गुरु-माता-सचिवों की सीख मानकर पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन करते रहें। इनका राजधर्म की सूत्रात्मक शिक्षा देना (२।३१४-२।३१६।१)।

इनके अनेक प्रकार से समझाने पर भी बिना अवलम्ब के भरत के मन को सन्तोष या शान्ति नहीं। उनके शील-स्नेह की रक्षा के लिए, गुरु-सचिव-समाज का संकोच त्याग, इनका कृपा करके उन्हें पादुकाएँ देना। उनका आदरपूर्वक मस्तक पर धारण करना। [इनका वन-गमन नंगे पाँव— 'बिनु पानहिन्ह पयोदेहि पाएँ।' २।२६२।५। इनके पास खड़ाऊँ नहीं थी। अ० रा० २।६।४६-५१ एवं वा० रा० का साक्ष्य कि पादुकाएँ भरत अपने साथ लाये थे। वा० रा० २।११२।२१-२२ में इन्हें दो सुवर्ण-भूषित पादुकाएँ अर्पित करके भरत का अनुरोध कि ये उन पर चरण रखें। वे सम्पूर्ण जगत् का योग-क्षेम वहन करेंगी। तब इनका उन पर चरण रखकर उन्हें भरत को सौंपना।] इनकी पादुकाएँ भरत के स्नेहरूपी रत्न की रक्षा के लिए सम्पुटरूप। पादुकाएँ पाकर उन्हें ऐसा सुख जैसा इनके और जानकी के साथ रहने से होता (२।३१६।२-८)।

उनके विदा माँगने पर इनका प्रेम-विह्वल होकर धीरज छोड़ उन्हें भुजाओं में भरकर भेंटना। इनके नेत्रों से प्रेमाश्रु-प्रवाह। दोनों की अनुपम प्रीति देख निर्लिप्त जनक-वसिष्ठादि विराग-विवेक-सहित उसमें निमग्न। इनके वियोग-वर्णन में कवि की वाणी संकुचित। इन्द्र का उच्चाटन फैलाना। इनकी कृपा से वह कुचाल सबके लिए हितकर, अन्यथा इनके और सिय-लक्ष्मण के वियोग में सब जीवन-धारण न कर पाते (२।३१६-२।३१८।३)। इनका भरत को समझाना, शत्रुघ्न को हृदय से लगाना। उन दोनों भाइयों का इनके चरणों में प्रणाम करना। इनके द्वारा लक्ष्मणसहित जनक की विनय और स्तुति, मुनियों-ब्राह्मणों का सम्मान। सासुओं की पग-वन्दना और

आशीर्वाद-प्राप्ति। कौशिक, वामदेव, मंत्री, जाबालि, परिजन-पुरजन आदि को यथायोग्य प्रणाम कर विनयपूर्वक विदा करना। कैकेयी की पद-वन्दना कर, पवित्र स्नेह से मिल उनका सोच-संकोच दूर करना। माताओं को समझाकर उनसे बार-बार सानुज मिलकर उन्हें पालकियों पर चढ़ाकर पहुँचाना (२।३१८।४, ७, २।३१९।१-२।३१९, २।३२०।४-५)। इनकी, जानकी और लक्ष्मण की मनोमयी मूर्त्तियों को हृदय में धारण किये सबका बेसुध होकर चलना। पशुओं में भी उत्साह नहीं (२।३२०।७-८)। (अन्त में) सिय-लक्ष्मण के साथ इनके द्वारा अरुन्धतीसहित गुरु वसिष्ठ की पद-वन्दना। (भरतादि के आने से संकोच के कारण जो संकट उपस्थित, उससे मुक्त होने के) हर्ष और (वियोगजनित) विषाद के साथ इनका पर्णकुटी में आना। सम्मानपूर्वक निषाद को विदा करके कोल, किरात, भील आदि वनवासियों को लौटाना (२।३२०-२।३२१।२)।

सीता और लक्ष्मण के साथ वट की छाया के नीचे बैठकर ये प्रिय परिजन के वियोग में व्याकुल। प्रेमवश इनके द्वारा भरत के गुणों का वर्णन। चित्रकूट के चर-अचर भी उदास। इनकी दशा देख, पुष्प-वृष्टि कर देवताओं का अपने-अपने दुःख निवेदित करना। उन्हें प्रणाम करके इनका आश्वासन देना (२।३२१।३-८)। पर्णकुटी में सिय-लक्ष्मण के साथ इनकी शोभा, जैसे शरीरधारी भक्ति और वैराग्य के साथ ज्ञान की (२।३२१)।

उधर वसिष्ठ, जनक, भरत, सारा समाज इनके विरह में विह्वल। मन-ही-मन इनके गुणग्राम को गुनते हुए सबका मार्ग में चलना (२।३२२।१-२)। (अवध पहुँचकर) इनके दर्शन के लिए सबका नियम-उपास करना। भूषण और भोग-सुख का त्याग कर अवधि बीतने पर इनके मिलने की आशा से जीवन धारण करना (२।३२२)।

इनकी पादुकाएँ भरत द्वारा शुभ मुहूर्त्त में अवध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित (२।३२३)। पादुकाओं की आज्ञा पाकर उनका नन्दिग्राम में जाकर वास (२।३२४।१-२)। इनके प्रति उनका प्रेम नित्य नवीन। उनके हृदय और निर्मल आकाश के सांगरूपक में उनका राम-प्रेम ही निश्चल निष्कलंक चन्द्रमा, इनके प्रति अटल विश्वास ध्रुवतारा, इनकी स्मृति नक्षत्र-वीथी (२।३२४, २।३२५।२, ५,६)। (नन्दिग्राम में) इनकी पादुकाएँ उनके द्वारा नित्य पूजित। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर उनका राजकार्य करना (२।३२५)। [यहाँ स्पष्ट कि इनसे प्राप्त पादुकाओं की स्थापना नन्दिग्राम में। यह वा० रा० एवं अ० रा० के अनुरूप। अ० रा० में सबको अयोध्या में बसाकर 'नन्द्रिग्रामं ययौ स्वयम्।।··· नियतव्रतः।।' अ० रा० २।९।७१।७२। वा० रा० २।११५।२५ में उनका पादुकाओं पर छत्र लगाना, व्यंजन डुलाना। मा० पी० २।३२३ में गौड़जी के मतानुसार अयोध्या में जो पादुकाएँ प्रतिष्ठित, वे इनकी महल में रखी हुई पादुकाएँ।]

भरत के हृदय में जानकीसहित ये विराजमान। जिह्वा से उनके द्वारा इनका नाम-जप। सिय-लक्ष्मण के साथ इनका वन में वास और भरत का भवन में रहकर कठिन तप। इन दोनों की रहनी-करनी देखकर सबके द्वारा भरत की सराहना। (२।३२६।१-३)। उनका आचरण राम-प्रेमामृत रूप। 'सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।··· कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।।' उनके चरित के नियमपूर्वक सादर श्रवण से जानकीसहित इनके चरणानुराग की प्राप्ति निश्चित (२।३२६।५,८, २।३२६।छं०, २।३२६)।

सीता-लक्ष्मण-संयुत इनके पथिकरूप का ध्यान-वर्णन (३।१।श्लो०२)। (अरण्यकाण्ड की कथा में ही उमा को सती-शरीर में मोह, अतः उन्हें सावधान करते हुए शंकर का कथन—) इनके गुण गूढ़। उनसे पण्डितों, मुनियों को वैराग्य-प्राप्ति, विमूढ़ों को मोह (३।१।सो०)। इनके 'अति पावन' वन-चरित्र कहने की चिकीर्षा (३।१।२)।

चित्रकूट में एक बार अपने हाथों से सुन्दर-सुन्दर फूल चुनकर इनका गहने बनाना, सीता को सादर पहनाना। [वहाँ इनके द्वारा पुष्पाभूषणों से प्रायः सीता का शृंगार—'सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग, तिलक-करनि का कहौं कलानिधान की। माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसिदास, बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की।।' गी० २।४४।] उनके साथ स्फटिक शिला पर बैठना। उसी समय, इनके बल की परीक्षा करने के लिए, जयन्त का काकवेश में सीता के चरणों में चोंच मारकर भागना। रुधिर बहते देख इनका अपने धनुष पर सींक का बाण चढ़ाना। उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर चलाना (३।१।३-३।२।१)। इनसे विमुख होने के कारण जयंत को उसके पिता इन्द्र का भी शरण न देना। ब्रह्मलोक, शिवलोक, कहीं उसके लिए आश्रय नहीं। अन्ततः नारद के परामर्श से 'त्राहि त्राहि' करता हुआ वह इनका शरणापन्न। इनका उसे एकाक्ष (एक आँख का) करके छोड़ देना (३।२।२-५, ३।२।६ - ३।२)।

इस तरह चित्रकूट में बसकर इनका अनेक चरित करना। [यहाँ सूक्ष्मतः संकेत कि ये चरित शृंगाररस के। जिस तरह राधानाथ का विहार-स्थल वृन्दावन, उसी तरह इनका विहार-स्थल प्रमोदवन। वि०।] यहाँ इनका वास-स्थल सबको ज्ञात, अतः भीड़ होने की आशंका से इनका मुनियों से विदा लेकर प्रस्थान (३।३।१-३)। अनुज और सीतासहित अत्रि के आश्रम में आना। पुलकित मुनि का दौड़कर सानुज इन्हें हृदय से लगाकर प्रेमाश्रु से नहलाना। उनके द्वारा इनकी पूजा, ब्रह्मरूप में स्तुति और इनके चरणानुराग की वर-याचना (३।३।४-३।४)। (अनसूया का सीता को नारिधर्म का उपदेश।) मुनि से आज्ञा माँगते हुए इनके द्वारा उनका स्नेह-अनुग्रह पाने की कामना व्यक्त। मुनि द्वारा इनके शील-गुण की प्रशंसा। इन्हें देखते हुए वे प्रेमानन्द-विभोर। उनके चरणों में नमन कर इनका वन की ओर गमन (३।६।२- ३।६।छं०, ३।७।१)।

आगे-आगे ये, पीछे लक्ष्मण, दोनों के बीच में सीता, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया। प्रकृति इनके अनुकूल (३।७।२-५)। मार्ग में विराध का वध कर उसे निजधाम देना (३।७।६-७)। सरभंग मुनि के पास जाना। इनका रूप-पान करते हुए वे धन्य। उनका विनयपूर्वक कथन— जब वे ब्रह्मलोक जाने को प्रस्तुत, तभी समाचार प्राप्त कि ये वन आयेंगे। तब से उन्हें इनकी प्रतीक्षा। उन्हें दीन जानकर अपने विरुद की रक्षा के लिए इनका कृपा करना। इनसे तब तक ठहरने की उनकी प्रार्थना जब तक वे देह त्यागकर इनसे मिल न जायें। अपने सम्पूर्ण शुभ कर्म इन्हें अर्पित करके उन्हें इनसे भक्ति-वर की प्राप्ति। चिता बनाकर, इहलोक-परलोक की वासनाएँ त्यागकर, उनकी वर-याचना कि सिय-लक्ष्मण-सहित ये सगुण रूप में निरन्तर उनके हृदय में निवास करें। योगाग्नि से शरीर-दहन कर इनकी कृपा से उनका वैकुण्ठ-गमन। (योगाग्नि से शरीर त्यागनेवाला हरिपद-लीन, किन्तु) पहले ही भेद-भक्ति का वर प्राप्त करने के कारण उनका इनमें लीन न होना। उनकी गति देख मुनियों द्वारा इनकी स्तुति (३।७।८ - ३।९।४)।

आगे वन में जाते हुए इनके साथ मुनि-वृन्द भी। अस्थि-समूह देख इनकी जिज्ञासा। मुनियों से यह सुनकर कि वे राक्षसों द्वारा भक्षित मुनियों की हड्डियाँ, इनका भुजा उठाकर प्रण कि 'निसिचर हीन करउँ महि'। सब मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उन्हें सुख देना (३।९।५ - ३।९)। [किसी महर्षि के आश्रम में दस महीने वास, कहीं एक वर्ष, कहीं चार मास, कहीं पाँच या छः, कहीं सात, कहीं आठ मास इत्यादि। इसी रीति से ऋषियों के आश्रमों में सुखपूर्वक निवास करते हुए इनके दस वर्ष व्यतीत। वा० रा० ३।११।२२-२७।]

इनका आगमन सुन सुतीक्ष्ण का प्रेमविभोर हो दौड़ना। उनके मन में अनेक मनोरथ। स्वयं को सकलसाधनहीन मानकर भी भरोसा कि 'एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की।।' इनका छिपकर तरु की ओट से उनकी प्रेमोन्मत्त दशा देखना। उनके हृदय में प्रकट होना (द्विभुज भूपरूप में— यह माधुर्य मूर्त्ति)। उनका मार्ग में ही बैठ जाना। अपने ध्यान में उन्हें समाधिस्थ देख इन्हें प्रसन्नता। उन्हें समाधि से जगाने की इनकी चेष्टाएँ असफल। तब अपना भूपरूप अन्तर्धान कर इनका चतुर्भुज रूप (ऐश्वर्य रूप) प्रकट करना। वे विकल। समाधि भंग। सामने सीता और अनुजसहित इनके दर्शन कर प्रेममग्न हो उनका लकुट की भाँति इनके चरणों में गिरना। इनका उन्हें प्रेमपूर्वक हृदय से लगाना। अपलक इनका रूप निहारते हुए वे मग्न (३।१०।१-२४)। आश्रम में लाकर उनके द्वारा इनका पूजन और स्तुति। प्रार्थना— 'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।' इनका उन्हें अविरल भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, सकल गुण-ज्ञान-निधानता का वर-दान। पुनः धनुर्धररूप में सिय-लक्ष्मण-सहित उनके हृदय में स्थिर रूप से निवास करने का अभीप्सित वर देकर इनका अगस्त्य ऋषि के दर्शन के लिए चलना (३।१० - ३।१२।१)। उनकी चतुरता देख अनुजसहित हँसना। उन्हें साथ लेना (३।१२।२-४)।

पथ में अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए इनका अगस्त्याश्रम पर पहुँचना। सुतीक्ष्ण से सीता और लक्ष्मणसहित इनके आगमन का संवाद सुन अगस्त्य का उठकर दौड़ना। इनके दर्शन कर उनके नेत्रों में जल। इन दोनों के साष्टांग प्रणाम करने पर उनका इन्हें हृदय से लगाना। इनकी पूजा कर स्वयं को भाग्यशाली मानना। इन्हें देखकर अन्य मुनिगण भी हर्षित (३।१२।५ - ३।१२।१३)। ये मुनि-समूह के बीच विराजमान। इनका अगस्त्य से मुनिद्रोही राक्षसों को मारने का मन्त्र पूछना। मुसकराकर मुनि द्वारा इनके ऐश्वर्य का कथन— इनके भजन के प्रभाव से उन्हें इनकी महिमा के प्रादेशमात्र का ज्ञान। उनकी वर-याचना— इनकी अविरल भक्ति उन्हें प्राप्त हो,

सिय-लक्ष्मणसहित ये उनके हृदय में निवास करें। यद्यपि निर्गुण रूप से ये ब्रह्म, फिर भी इनके सगुण रूप में ही उनका अनुराग। दण्डक वन को शापमुक्त, पवित्र करके पंचवटी में वास करने और मुनियों पर दया करने की इनसे उनकी विनती (३।१२-३।१३।१७)। उनकी आज्ञा पाकर इनका प्रस्थान। पंचवटी के निकट पहुँचना। जटायु से भेंट। प्रीति-वृद्धि। गोदावरी के पास पर्णकुटी बनाकर इनका वास। इनके आने से वन की शोभा अवर्णनीय (३।१३।१८ - ३।१४।४)।

श्री रामगीता (भक्तियोग) — एक बार ये सुखासन में स्थित (अर्थात् एकान्त में सावकाश, स्थिर)। सब त्याग कर इनकी चरण-रज-सेवा के अधिकारी बनने के लिए लक्ष्मण की विनती— ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति, ईश्वर-जीव-भेद के सम्बन्ध में ये समझाकर कहें, जिससे शोक, मोह, भ्रम का नाश और इनके चरणों में रति हो (३।१४।५ - ३।१४)। संक्षेप में सब समझाकर कहने की इनकी प्रतिज्ञा। मन, बुद्धि, चित्त लगाकर सुनने की आज्ञा। (इनका उत्तर प्रश्न के क्रम से नहीं, समझने की सुकरता की दृष्टि से।) इनके उत्तर— माया और उसके भेद— विद्या एवं अविद्या— का स्वरूप-कथन। (दे० 'माया'।) जहाँ एक भी मान नहीं, सबमें समान रूप से ब्रह्म के दर्शन, वह ज्ञान। सब सिद्धियों और तीनों गुणों को तृण के समान त्यागनेवाला परम वैरागी। जो माया को, ईश्वर को और स्वयं को न जान सके (जो मायावश आत्मस्वरूप को भूल गया), वह जीव। जो बन्धन (मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वाभिमान) और मोक्ष (तत्वज्ञान से अज्ञान और उसके कार्य का अभाव) देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक, वह ईश्वर। (दे० 'ईश'।) (३।१५।१ - ३।१५)। धर्म से वैराग्य और योग से ज्ञान की प्राप्ति। वेदों के अनुसार ज्ञान मोक्ष का दाता। (अन्य साधनों से भी इनका द्रवण) किन्तु इन्हें शीघ्र द्रवित करनेवाली केवल भक्तसुखदात्री इनकी भक्ति ही (३।१६।१-२)। भक्ति किसी पर अवलंबित नहीं, वह स्वतंत्र। ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन (दे० ज्ञान-दीप एवं भक्ति-चिन्तामणि के रूपक-प्रसंग ७।११७।२-७।१२०।१) वह अनुपम, सुखमूल। सन्तों के अनुग्रह से उसकी प्राप्ति (३।१६।३-४)। भक्ति के साधन— दिप्र-चरणों में प्रेम, फलतः वेद का रीति के अनुसार स्वधर्मानुचरण। उसका फल विषयों से विराग। तब इनके धर्म में अनुराग का उदय। [इनके गुणों का श्रवण ही इनका धर्म। भगवद्धर्मश्च भगवद्गुणश्रवणं न तु धर्मबुद्ध्या तदनुष्ठानपर्यन्तं विवक्षितम्। वि० के अनुसार भक्ति रसायने।] इनके भक्तवत्सलता आदि गुणों में अनुरक्ति होने पर नवधा भक्ति की दृढ़ता। [नवधा भक्ति— श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।। भा० ७।५।२३।] उसी के अन्तर्गत इनकी लीलाओं में अतिशय रति। उससे सन्त-चरणों में प्रेम। उनके प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ़ नियम से भजन। इन्हीं से सब प्रिय सम्बन्ध जोड़कर इनकी सेवा में दृढ़ता। गद्गद् वाणी से इनका गुणगान करते हुए शरीर में पुलक, नेत्रों में प्रेमाश्रु। मन वचन कर्म से केवल इन्हीं पर भरोसा करनेवाले, अनन्य निष्काम भक्तों के हृदय में इनका सदा निवास (३।१६।५-३।१६)। यह भक्तियोग सुनकर लक्ष्मण को सुख। इनके चरणों में उनका नमन। इस प्रकार वैराग्य-ज्ञान-गुण-नीति कहते हुए कुछ काल व्यतीत (३।१७।१-२)।

एक बार शूर्पणखा का पंचवटी में आना। इन दोनों को देख वह काम-विकल। सुन्दर रूप धर इनके प्रति उसका आसक्ति प्रकट करना। इनका सीता की ओर देखकर (यह इंगित कर कि वे इनकी पत्नी), उसे अनुज के पास भेजना। लक्ष्मण का स्वयं को इनका दास कहकर उसे इनके निकट प्रेरित करना। इनका उसे पुनः लक्ष्मण के पास भेजना। उनसे तिरस्कृत हो, भयंकर रूप धारण कर उसका इनके निकट आना। सीता को भीत देख इनका अनुज को संकेत। लक्ष्मण का लाघव से उसके नाक-कान-काटना (३।१७।३-४, ३।१७।७-३।१७)।

(उसके साथ उसके भाई खर, दूषण और त्रिशिरा का चौरासी हजार मायावी असुरों की सेना लेकर इनसे युद्ध करने के लिए प्रस्थान।) आकाश को धूलि-धूसरित देख इन्हें खर-दूषण के आगमन का ज्ञान। लक्ष्मण को आदेश कि वे सीता को लेकर गिरि-कन्दरा में चले जायें और सावधान रहें (३।१८।६ - १२)। शत्रुदल के निकट आने पर इनका धनुष चढ़ाना। जटाजूट और तरकश बाँधकर बाण सुधारना। इनका अनुपम सौन्दर्य देख सेनासहित खर-दूषण स्तब्ध। ऐसे सुन्दर पुरुष को वध-योग्य न समझ उनका संदेश कि ये अपनी स्त्री को उन्हें देकर भाई के साथ लौट जायें। इनका उन्हें ललकार-भरा उत्तर (३।१८।१३ - ३।१९।१४)। उनका आक्रमण। घोर युद्ध। सुर-मुनियों को भीत देख इनका कौतुक करना जिससे शत्रु-सेना एक-दूसरे को रामरूप देखकर आपस में ही लड़कर समाप्त। राम-राम (अर्थात् राम है, इसे मारो) कहते हुए शरीर-त्याग करने के कारण सबको मोक्ष-प्राप्ति

(३।१९।छं० - ३।२० क)। देवताओं द्वारा सुमन-वृष्टि और स्तुति (३।२० ख, ३।२१।१)। इस तरह पंचवटी में रहकर इनका 'सुरमुनि सुखदायक' चरित करना (३।२१।२-४)।

शूर्पणखा का रावण के पास जाकर उसे उकसाते हुए इन तीनों का परिचय देना, इनके पौरुष, सौन्दर्य और गुणों का बखान कर इनके द्वारा खर-दूषण-त्रिशिरा-वध का संवाद सुनाना (३।२२।२-१२)। चिन्तित रावण का मन-ही-मन विचार— भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई खर-दूषण को मारने में समर्थ नहीं। इनके रूप में यदि भगवान् अवतरित, तो वह इनसे वैर ठानकर, इनके हाथों मरकर, तर जायेगा। यदि ये भगवान् नहीं, मनुष्य, तो वह इनका वध कर इनकी स्त्री का हरण करेगा (३।२२ - ३।२३।६)। (उसका मारीच के पास जाना।) इधर लक्ष्मण की अनुपस्थिति में इनका सीता से कथन— अब ये कुछ नर-लीला (माधुर्य-लीला) करेंगे। वे निशिचर-वध न होने तक, अग्नि में (एक वर्ष तक। अ० रा० ३।७।३।) निवास करें। इनका उन्हें सब बातें समझाना। अपना प्रतिबिंब (माया सीता) रखकर, इनके चरणों को हृदय में धारण कर, सीता का अग्नि में प्रवेश। यह रहस्य लक्ष्मण को भी ज्ञात नहीं (२।२३।८ - २।२४।५)।

सीता-हरण के लिए मारीच से कपट-मृग बनने का रावण का अनुरोध। इनकी अलौकिक वीरता का प्रसंगोल्लेख कर मारीच द्वारा उसका प्रबोधन। उसके क्रुद्ध होने पर इनके दर्शन करने और इनके बाण से मरने का मनोरथ करते हुए मारीच का गमन (३।२५।१ - ३।२६)। मनोहर मृग (मारीच) को देख उसे मारकर उसका चर्म लाने का इनसे सीता का अनुरोध। लक्ष्मग को सीता की रक्षा का भार सौंप इनका मायामृग के पीछे दौड़ना। इनका बाण लगने पर उसका घोर गर्जन। लक्ष्मण का नाम पुकारकर, उसके द्वारा मन-ही-मन इनका स्मरण। उसका आन्तरिक प्रेम देख उसे मुनि-दुर्लभ गति देकर इनका शीघ्र लौटना (३।२७।३ - ३।२८।१)। मारीच की आर्त्त पुकार सुनकर सीता का (अनुमान कि वह इनकी पुकार और उनका) कथन कि ये संकट में, लक्ष्मण शीघ्र (इनकी सहायता के लिए) जायें। लक्ष्मण द्वारा इनके ऐश्वर्य का कथन। फिर सीता के मर्म-वचन सुन, इनकी प्रेरणा से, उनका मन भी अस्थिर और उनका प्रस्थान (३।२८।२-६)।

हरण के समय सीता द्वारा रावण से इनके सामर्थ्य का कथन। हृत होने पर इनका नामोच्चार करते हुए विलाप— इन्हें उनकी विपत्ति कौन सुनायेगा? उन्हें इनकी पत्नी के रूप में जटायु का पहचानना। इनके रोष-पावक से रावण-कुल के दग्ध होने का उनका कथन। पंख कटने पर इनका स्मरण कर उनका धरती पर गिरना। इनका नाम लेकर गिरि (ऋष्यमूक) पर बैठे कपियों के बीच सीता का वस्त्र डालना। इनके रूप को मन में धारण कर अशोक वृक्ष के नीचे इनका नाम रटते रहना (३।२८।१४-१५, ३।२९।१, २,५,७,१७,२२,२५, ३।२९ ख)।

लक्ष्मण को आते देख इनका बाह्य रूप में चिन्ता व्यक्त करना— इनकी आज्ञा का उल्लंघन कर वे चले आये! लक्ष्मण का स्वयं को निर्दोष कहना। आश्रम में सीता को न देख ये विकल। इन्हें लक्ष्मण का समझाना। खग मृग आदि से सीता के संबंध में पूछने के व्याज से, खंजन शुक आदि के निर्लज्ज होने के कथन के बहाने, इनके द्वारा सीता का नख-शिख-वर्णन। अत्यन्त कामी विरही की तरह सीता को खोजते हुए इनका विलाप। इस तरह इनका 'मनुज चरित' करना (२।३०।१-१७)। आगे जाने पर अपने चरणों का स्मरण करते हुए जटायु को देख उनके सिर पर हाथ फेरना। इनकी मुख-छवि के दर्शन कर वे पीड़ामुक्त। रावण द्वारा अपनी ऐसी गति किये जाने का, सीता के हरण और विलाप तथा उन्हें लेकर रावण के दक्षिण की ओर गमन का उनका कथन। इनके दर्शन के लिए ही अब तक उनका प्राण-धारण करना। इनका उनसे जीवित रहने का अनुरोध। उनका मुसकराना। इनके नाम-स्मरण से अधम को भी मुक्ति प्राप्ति, और ये उनकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष! अब देह-धारण का प्रयोजन क्या। आँखों में आँसू भरकर इनका कथन— वे अपने कर्मों के कारण ही दुर्लभ गति के अधिकारी। वे पूर्णकाम। ये उन्हें क्या दें! शरीर-त्याग कर वे इनके धाम में निवास करें। पिता दशरथ को सीताहरण का समाचार न सुनायें। इनका शपथ-ग्रहण— यदि ये राम तो रावण ही कुलसहित जाकर यह संवाद कहेगा (३।३०।१८-३।३१)। जटायु का देह त्यागकर इनका चतुर्भुज रूप धारण करना। उनके द्वारा सगुण-निर्गुण रूप में इनकी स्तुति, इनसे अविरल भक्ति का वर पाकर इनके धाम में गमन। इनका अपने हाथों से उनकी क्रिया करना (३।३२।१ - ३।३२)। शिव द्वारा इनकी महिमा का कथन (३।३३।१-३)।

दोनों भाइयों का सघन वनों में सीता को खोजना। मार्ग में कबन्ध राक्षस का वध। उसे निजधर्म

(ब्रह्मण्यधर्म, विप्रभक्ति) का उपदेश कर, उसकी गति (गन्धर्व रूप) देकर, शबरी के आश्रम में प्रवेश (३।३३।४-३।३४।५)। प्रेममग्न शबरी का इन दोनों के चरणों में लिपटना। चरण पखारकर कन्द-मूल-फल देना। प्रशंसा करते हुए इनका खाना। स्वयं को अधम, अघारी आदि कहकर उनके विनय करने पर इनके द्वारा उनकी ग्लानि का सम्मार्जन और कथन कि 'मानउँ एक भगति कर नाता'। इनकी भक्ति के बिना जाति-पाँति कुल-धर्म बड़ाई आदि सब व्यर्थ (३।३४।६-३।-३५।६)। इनके द्वारा नवधा भक्ति का उपदेश (३।३५।७ - ३।३६।५)। नौ में एक भी जिसे प्राप्त, वह इनका अतिशय प्रिय। शबरी में तो सब प्रकार की भक्ति दृढ़। योगियों के लिए दुर्लभ गति उन्हें आज सुलभ। 'मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।' (३।३६।६-९) जानकी के सम्बन्ध में इनके पूछने पर उनका कथन कि पम्पा सर में सुग्रीव से इनकी मित्रता होगी, उनसे सब ज्ञात होगा। बार-बार इनके चरणों में नमन कर उनका प्रेमसहित सब कथा सुनाना (जो मतंग मुनि ने इनके आगमन और तदुपरान्त उनके देह-त्याग के सम्बन्ध में कही थी। दे० 'सबरी'।) इनके चरणों को हृदय में धारण कर योगाग्नि से शरीर-त्याग करके उनका हरिपद-लीन होना। (३।३६।१०-३।३६)। अनुजसहित उस वन को त्यागकर इनका आगे बढ़ना (३।३७।१)।

इनका विरही की भाँति विषाद करना, लक्ष्मण को (विरह के) संवाद सुनाना। कथन– वन की शोभा (शृंगार के उद्दीपन) देख इनके मन में क्षोभ। यहाँ के खग-मृग सब नारी (आलम्बन) के साथ, किन्तु ये नारीविहीन, निरालम्ब, अतः ये उनकी निन्दा के पात्र। हाथियों का मानो इन्हें शास्त्रानुमोदित उपदेश करना (३।३७।२-९)। प्रियाहीन होने के कारण वसन्त की शोभा इनके लिए भयोत्पादक। इन्हें विरह-विकल, बलहीन और एकाकी जानकर काम का ससैन्य आक्रमण, किन्तु पवन-दूत से यह सुनकर कि ये (एकाकी नहीं) भ्राता के साथ, उसका सेना को रोककर डेरा डालना (३।३७।१० - ३७ ख)। काम की चतुरंगिणी सेना का रूपक (३।३८।१-१०)। उस सेना को देखकर भी धैर्यवान बने रहनेवालों की धीरों में प्रतिष्ठा। काम का परम बल नारी, लोभ का इच्छा और दम्भ, क्रोध का परुष वचन (३।३८।११-३।३८ ख)। उमा से शिव कथन– वस्तुतः ये विरही नहीं, ये गुणातीत। इनका चरित्र लोकशिक्षा के लिए। विरही बनकर इनका कामियों की दीनता दिखाना और धीरों के मन में वैराग्य को दृढ़ करना। इनके अनुग्रह से काम-क्रोध-मोह-लोभ-मद-माया से मुक्ति। 'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।।' (३।३९।१-५)।

इनका पम्पा सर के तट पर जाना (३।३९।६)। सरोवर की मनोहरता का वर्णन (३।३९।७ - ३।४०)। उसमें स्नान कर ये अनुजसहित तरु-छाया में सुखासीन। देवताओं द्वारा इनकी स्तुति और स्वधाम गमन। नारद को सोच कि इनका दुःख झेलना उनके शाप को सत्य करने के लिए ही। इस समय इनके मन में उनके प्रति विशेष प्रीति, यह समझकर प्रेमपूर्वक इनका गुणगान करते हुए उनका आना। उनके दण्डवत् करने पर उन्हें उठाकर इनका हृदय से लगाना, निकट बैठाना। इनकी विनती करके इन्हें प्रसन्न जानकर इनसे एक वर माँगने का उनका निवेदन। इनका कथन कि वे इनके स्वभाव से परिचित। अपने भक्तों से इनका कोई दुराव नहीं। कौन-सी वस्तु इन्हें इतनी प्रिय जो वे न माँग सकें! 'जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें।।' हर्षित होकर नारद की याचना– यद्यपि इनके अनेक नाम, सब एक से एक अधिक, फिर भी 'राम' नाम सबसे बड़ा, सबसे अधिक पापनाशक हो। [इस कथन से इस मन्त्र के ऋषि नारद सिद्ध। जिसके द्वारा जिस बात का आविर्भाव, वही उसका ऋषि कहा जाता है। मा० पी० ३।४२।६-८ टिप्पणी २ (ख)।] इनकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि। उसमें राम नाम पूर्ण चन्द्र (मायान्धकार का नाशक) हो। इसके साथ और नाम भी तारों की भाँति भक्तों के निर्मल हृदयाकाश में निवास करें। इनके 'एवमस्तु' कहने पर कृतकृत्य होकर इनके चरणों में उनका नमन (३।४१।१ - ३।४२ ख)।

इन्हें अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारद की जिज्ञासा– इनकी माया (विश्वमोहिनी) से मोहित होने पर जब वे विवाह करने के इच्छुक, तब इन्होंने उन्हें विवाह क्यों नहीं करने दिया? इनका सहर्ष कथन– सब भरोसा छोड़कर इनका भजन करनेवाले अनन्य भक्तों की इनके द्वारा उसी प्रकार रक्षा जिस प्रकार माता द्वारा अपने बालक की। बच्चे के इच्छाभिघात की ओर ध्यान दिये बिना माता का उसे अनिष्टकारी वस्तुओं से बलपूर्वक हटाना, किन्तु उस बच्चे के बड़े होने पर, उसमें ज्ञान होने पर, उसके प्रति प्रीति होते हुए भी माता उतनी सजग नहीं। इसी प्रकार ज्ञानी इनके बड़े पुत्र के समान और मानरहित दास छोटे पुत्र के समान। ज्ञानी को अपने बल का भरोसा और इनके दास को इनका। काम-क्रोध दोनों के ही शत्रु। यह विचारकर बुद्धिमानों द्वारा इनका भजन, ज्ञानप्राप्ति होने

पर भी इनकी भक्ति का त्याग नहीं। (३।४३।१-१०)। षट्विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) मोह का प्रबल सैन्य। उसमें नारी मायारूपिणी, अति दारुण, दुखद। उसके मायामयत्व का, उसके संग-दोष का कथन। 'अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि'। इसीलिए इनका नारद को विवाह से वंचित करना (३।४३ - ३।४४)। इनके वचन सुन नारद के शरीर में पुलक, नेत्रों में प्रेमाश्रु। मन-ही-मन उनका विचार— किस स्वामी की ऐसी रीति (जो सेवक के दुर्वचन, क्रोध, शाप आदि को शान्त चित्त से सहन करके सेवक का परमहित करे)? भ्रम त्यागकर ऐसे स्वामी (राम) को न भजनेवाला ज्ञानरंक, अभागा (३।४५।१-३) उनकी प्रार्थना पर इनके द्वारा सन्तों के (कुछ) गुणों का वर्णन और कथन— साधुओं के गुण अनन्त, जिनके कारण ये उनके वशीभूत। (इनके अनुसार सन्त और साधु, लक्षण और गुण पर्याय।) सुनकर नारद का इनके चरण पकड़ना। बार-बार नमन कर उनका ब्रह्मलोक-गमन (३।४५।४ - ३।४६।छं०)।

इनका पावन यश-गान-श्रवण करनेवालों को वैराग्य-जप-योग के विना ही इनकी दृढ़ भक्ति की प्राप्ति का आशीर्वचन (३।४६क)। काम-मद त्यागकर इनका भजन और सत्संग करने का कवि का मन को प्रबोधन (३।४६ख)।

सीता के अन्वेषण में तत्पर पथिकरूप इनसे और लक्ष्मण से भक्ति की याचना (४।१।श्लो०१)। इनके नाम और अमृत के रूपक में नामामृत वेद-अम्बुधि से उत्पन्न, कलि-मल-नाशक, अक्षय, शंकर के मुख-चन्द्र में सदा शोभित, जानकी का जीवन। इसका निरन्तर पान करनेवाले सुकृतियों के धन्य होने का कथन (४।१।श्लो०२)।

इनका अनुजसहित ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचना। इन्हें देख सुग्रीव को भय कि कहीं ये वालि-प्रेषित तो नहीं। इनका मर्म जानने के लिए उनका हनुमान् को भेजना। विप्रवेश में इनके पास आकर, नमन कर, इनका परिचय और वन में घूमने का कारण पूछते हुए हनुमान् की जिज्ञासा— ये त्रिदेव में कोई दो? अथवा नर-नारायण? अथवा महिभार उतारने के लिए मनुष्यरूप में अवतरित अखिल भुवनपति के ही दो रूप? (४।१।१ - ४।१)। इनका आत्म-परिचय देना, सीता-हरण का समाचार कहना। इन्हें प्रभु-रूप में पहचानकर हनुमान् का साष्टांग दण्डवत् करना। सुखातिरेक से उनके शरीर में पुलक, वाणी मूक। फिर धीरज धरकर उनके द्वारा इनकी स्तुति। नियेदन — इनकी माया के वश होने के कारण वे इन्हें पहचानने में असमर्थ। शरणागत हो उनका इनके चरणों में गिरना। अपना वानर-रूप प्रकट करना (४।२।१-४।३।५)। इनका उन्हें उठाकर हृदय से लगाना। नेत्र-जल से सिंचित कर अतिप्रिय कहकर इनके द्वारा अनन्य भक्त का लक्षण-कथन— 'समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेबक प्रिय अनन्यगति सोऊ।। सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।' (४।३।६ - ४।३)। इन्हें अनुकूल देख, सुग्रीव संबंधी सब बातें बताकर, उनसे मित्रता करने की हनुमान् की इनसे विनती। सानुज इन्हें पीठ पर चढ़ाना (और सुग्रीव के निकट ले जाना) (४।४।१-५)। इन्हें देख सुग्रीव का अपने जन्म को धन्य मानना। इनके चरणों में उनका नमन। इनका अनुजसहित उनसे भेंटना। दोनों पक्षों की सब कथा कहकर हनुमान् का दोनों में अग्नि-साक्षिक मैत्री स्थापित कराना (४।४।६ - ४।४)। लक्ष्मण द्वारा इनके चरित का कथन। [चरित— जन्म, कर्म, प्रताप। हनुमान् ने केवल सीता-संबंधी कथा कही थी। मा० पी० ४।५।१ नोट १ (ख)।] इन्हें सुग्रीव का आश्वासन कि जानकी मिल जायेंगी। इनका नाम ले-लेकर आकाश मार्ग से जाती हुई सीता द्वारा फेंके गए वस्त्रों की बात सुन इनका वस्त्र माँगना। उनको हृदय से लगाकर ये शोचमग्न। सुग्रीव का इन्हें समझाना, सीतान्वेषण में सब प्रकार से सेवा करने का वचन देना। सुनकर ये हर्षित। इनका सुग्रीव से वन में रहने का कारण पूछना. (४।५।१-४।५)। उनके द्वारा मायावी-प्रसंग और उसके कारण वाली की शत्रुता का कथन (४।६।१-१३)। उनका दुःख सुनकर इनकी भुजाओं का फड़कना। (इनमें वीरता का आवेश)। एक ही बाण से वाली को मारने की इनकी प्रतिज्ञा (४।६।१४ - ४।६)। (अपने प्रण के औचित्य-ख्यापन और लोक-शिक्षा के लिए) इनके द्वारा मित्र-धर्म एवं कुमित्र के लक्षण का वर्णन। सब प्रकार से कार्य-साधन करने का सुग्रीव को आश्वासन (४।७।१-१०)। उनके द्वारा वाली के महाबल का कथन। (इनके बल की परीक्षा के लिए) इन्हें दुन्दुभी की अस्थियाँ और ताल के (सात) वृक्ष दिखाना। इनका उन्हें आसानी से ढहा देना। (दे० 'सुग्रीव', 'बाली'।) इनका अचिन्त्य पराक्रम देख इनके वालि-वध के सामर्थ्य का उन्हें विश्वास। ईश्वर-बुद्धि से इन्हें पहचानकर इनके चरणों में उनका बार-बार नमन। फिर उनकी विरागयुक्त वाणी सुन इनका कथन कि इनके लिए वालि-वध के अपने प्रण को मिथ्या करना असंभव (४।७।११-२३)।

इनके बल के भरोसे इनके साथ (किष्किन्धा) जाकर सुग्रीव का गर्जन। इन्हें कालजयी कहकर तारा का वाली को समझाना। वालि-कथन— ये समदर्शी, कदाचित् इनके हाथों मरने पर वे सनाथ हो जायेंगे (४।७।२५-४।७)। वाली के मुष्टिकाघात से विकल सुग्रीव का भागकर इनके पास आना। इनका उन्हें आश्वासन देना। अपने कर-स्पर्श से उन्हें पीड़ा-मुक्त कर, उनके कण्ठ में (पहचान और रक्षा के लिए) सुमन-माला पहनाकर, उन्हें विशाल बल देकर, पुनः भेजना। दोनों का युद्ध। उसी समय (विटप की ओट से) इनका वाली के हृदय में बाण मारना (४।८।१ ४।८)। इन्हें पहचानकर वाली के मन में प्रीति, फिर भी कठोर वचनों में प्रश्न— इनका अवतार धर्म-संस्थापना के लिए, तब उनके किस दोष के कारण इनके द्वारा व्याध की भाँति उनका वध? इनका कथन— कन्या-सम अनुज-वधू को कुदृष्टि से देखना, अभिमानवश इनके आश्रित को मारने के इच्छुक होना ही उनका अपराध (४।९।१-१०)। उनकी विनती सुन उनके मस्तक का स्पर्श कर, इनका उन्हें प्राण-धारण करने के लिए कहना; ये उनके शरीर को अचल कर देंगे। उनका निवेदन— इनके नाम (राम) का उच्चार ही अन्त समय में मुनियों का काम्य। इनका नाम सुनाकर ही महादेव द्वारा काशी में जीवों को मुक्ति-दान। उन्हें तो इनके नाम और रूप दोनों की प्राप्ति। अब वे केवल इनकी दया-दृष्टि के आकांक्षी। जन्म-जन्म में इनके चरणानुराग की उनकी वर-याचना। अंगद को दास बनाने के लिए इन्हें अर्पित करना। उनका देह त्यागना। इनका उन्हें निजधाम देना (४।१० - ४।११।१)। विकल तारा को इनके द्वारा ज्ञानोपदेश— पंचतत्वरचित शरीर की अनित्यता और जीव की नित्यता समझाकर माया-हरण। उनकी याचना पर उन्हें परम भक्ति का वरदान (४।११।२-६)।

इनकी आज्ञा से मृतक-कर्म हो जाने पर लक्ष्मण का सुग्रीव को राजा और अंगद को युवराज बनाना (४।११।८ - ४।११)। कपीश को बुलाकर राजनीति का उपदेश देकर इनका कथन— वर्षा-भर ये निकट के पर्वत पर वास करेंगे। इनके कार्य का ध्यान रखते हुए वे अंगदसहित राज्य करें (४।१२।६-९)।

इनके लिए प्रवर्षण गिरि की एक गुहा को देवताओं का पहले ही सुन्दर और सुखद बना रखना। वहाँ अनुजसहित इनके वास करने से पर्वत मंगलरूप। देव-सिद्ध-मुनियों द्वारा भ्रमर-खग-मृग रूप में इनकी सेवा (४।१२।१० - ४।१३।५)। लक्ष्मण के साथ स्फटिक मणि की उज्ज्वल शिला पर बैठकर इनका उन्हें भक्ति, वैराग्य, राजनीति, ज्ञान की कथाएँ सुनाना। इनके द्वारा वर्षा और शरद् ऋतुओं का वर्णन भक्ति-वैराग्यादि के दृष्टान्त के साथ (४।१३।६ - ४।१७)। [वर्षा और शरद् के वर्णन में इनके द्वारा (१) वर्णाश्रम-धर्म, (२) संत-खल-लक्षण, (३) कर्म-ज्ञान-उपासना की विधि, (४) पंचतत्वों के कार्य (५) बुध-अबुध के लक्षण, (६) माया-जीव-ब्रह्म के लक्षण, (७) कर्म-ज्ञान-उपासना के फल का कथन। मा० पी० ४।१७ टिप्पणी २।]

शरदागमन के बाद भी सीता की सुधि न पाने का इन्हें क्षोभ। राज्यैश्वर्य पाकर सुग्रीव द्वारा भी इनका विस्मरण! जिस बाण से इन्होंने वाली को मारा, उसी से कल सुग्रीव का वध करेंगे। यह सुन, इन्हें क्रोधित जान, लक्ष्मण का धनुष चढ़ाना। इनका समझाना— वे सुग्रीव को भय दिखाकर ले आयें (४।१८।१-४।१८)। (कुपित लक्ष्मण का पुर में प्रवेश। अंगद, तारासहित हनुमान्, फिर सुग्रीव की विनय से वे प्रसन्न। हनुमान् का निवेदन कि चतुर्दिक वानर-यूथों को बुलाने के लिए दूत-समूह प्रेषित।) लक्ष्मण को आगे कर अंगदादि के साथ आकर सुग्रीव का इन्हें नमन और करबद्ध विनय— दोष उनका नहीं, क्योंकि 'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया।।' काम-क्रोध-लोभ-रहित होना क्रियासाध्य नहीं, कृपासाध्य। सुनकर इनका मुसकराना। मन लगाकर ऐसा प्रयास करने के लिए कहना जिससे सीता का पता लगे। इसी समय असंख्य वानर-यूथों का आगमन और इनके चरणों में नमन। इनके दर्शन कर सब कृतार्थ। इनका प्रत्येक से कुशल पूछना। यह इनके लिए कोई बड़ी बात नहीं, क्योंकि 'बिस्वरूप ब्यापक रघुराई' (४।२०-४।२२।४) इनका स्मरण कर सब वानरों के विदा होने पर इनका हनुमान् को निकट बुलाना, यह जानकर कि उन्हीं से कार्यसिद्धि होगी। उनके मस्तक पर हाथ फेरकर, उन्हें अपना 'जन' समझकर, सीता की पहचान के लिए मुद्रिका देना। इनका आदेश कि वे इनके बल और विरह का वर्णन कर, अनेक प्रकार से सीता को समझाकर, शीघ्र लौट आयें। इन्हें हृदय में धारण कर उनका प्रस्थान (४।२३।८-१२)। इनका यह व्यवहार राजनीति की रक्षा के लिए (४।२३।१३)।

सागर-तट पर दुखी अंगद को जाम्बवान् का उपदेश— ये निर्गुण ब्रह्म। सुर-महि-गो-द्विज-हेतु सगुण रूप में अवतरित। इनके सेवक होने के कारण वे सब अति भाग्यशाली (४।२६।११ - ४।२६)। उनका हनुमान् से कथन

—'राम काज लगि तव अवतारा।' वे केवल सीता को देखकर उनकी सुधि लेकर लौट आयें। ये कौतुक के लिए कपि-सेना को साथ ले, अपने भुजबल से निशिचर-संहार करके, स्वयं सीता को लायेंगे। इनके त्रैलोक्य-पावन यश का सुर-मुनि वर्णन करेंगे। उसके श्रवण-कथन-गान से परमपद-प्राप्ति होगी (४।३०।६, ४।३०।११ - ४।३०।छं०)। इनका यश भव-रोग की ओषधि। उसके श्रवण से सकल मनोरथ-सिद्धि। इनके नाम-रूप-गुण का माहात्म्य-कथन (४।३० क, ख)।

इनके निर्गुण-सगुण रूप की वन्दना (५।१।श्लो०१)। हृदय को कामादि विकारों से रहित करने और परिपूर्ण भक्ति प्रदान करने की इनसे कवि की याचना (५।१।श्लो०२)।

इनका एक मन्दिर लंका में— विभीषण के महल से कुछ पृथक् (५।५।८) इनका नामोच्चार करते हुए विभीषण का जागना (५।६।२-३)। उनका विप्ररूपधारी हनुमान् से निवेदन— वे इनके दासों में कोई एक, अथवा स्वयं इन्हीं का उनके रूप में आगमन। हनुमान् से इनकी कथा सुनकर विभीषण की विनय— ये उन पर कभी कृपा करेंगे? उनका अनुमान कि ये उन पर कृपालु, इसीलिए उन्हें हनुमान् रूपी सन्त के दर्शन। हनुमान् द्वारा इनकी रीति का कथन। इनके गुणग्राम कहते हुए दोनों को अनिर्वचनीय शान्ति-सुख (५।६।६ - ५।८।२)।

अशोक-वाटिका-स्थित सीता का मन इनके चरण-कमल में लीन। इनके गुणों का उनके द्वारा मन-ही-मन स्मरण (५।८।८, ५।८)। इनके तेज और पराक्रम का उल्लेख कर उनका रावण को तुच्छ कहना। इनके विरहानल-ताप से उन्हें मुक्त करने का उनका चन्द्रहास से आग्रह (५।६।६, ५।६।८, ५।६, ५।१०।५)। इनके चरणों में अनुरक्त त्रिजटा का स्वप्न-कथन— (रावण का नाश, विभीषण का अभिषेक)। नगर में इनकी दुहाई। इनका सीता को बुला भेजना (५।११।१, ६)। इनका प्रताप-बल-सुयश कहकर त्रिजटा का सीता को समझाना (५।१२।२-५)। (त्रिजटा के चले जाने पर, तरु-पल्लवों में से) हनुमान् का इनकी अँगूठी फेंकना। इसे अशोकप्रदत्त वांछित अंगार समझ सीता का हर्षित हो उठाना। इनके नाम से अंकित देख, पहचानकर, उनमें विस्मय-हर्ष-विषाद-व्याकुलता का संचार। (यह मुद्रिका अदेय। इसमें बोलने की शक्ति। वि०। इन्हें जीतकर इसे लाना असंभव, क्योंकि) ये अजेय। इसे माया से रचना सम्भव नहीं। इस तरह उनके मन में अनेक विचार। इसी समय इनके गुणों का हनुमान् द्वारा वर्णन। सीता को मन लगाकर श्रवण करते देख आरम्भ से अब तक की इनकी कथा सुनाना (५।१२-५।१३।६)। सीता के कहने पर वानररूप में हनुमान् के प्रकट होने पर सीता का मुँह घुमा लेना। इनकी शपथ लेकर हनुमान् का स्वयं को इनका दूत बताना, कथन— इनके द्वारा पहचान के लिए उनके हाथ मुद्रिका प्रेषित। लेकिन इनका वानर से संग कैसे हुआ? सीता के इस प्रश्न के उत्तर में हनुमान् का सब कथा कहना। सीता को विश्वास। हनुमान् को इनका दास जानकर उनके मन में प्रीति (५।१३।७ - ५।१४।२)। इनके और लक्ष्मण के संबंध में कुशल-प्रश्न करके उनकी जिज्ञासा— स्वभाव से ये कोमल-चित्त, अब उनके प्रति इतने निष्ठुर क्यों? उनका स्मरण कर कभी ये सजल-नेत्र होते हैं? उनकी विरहाकुलता देख हनुमान् द्वारा इनके प्रेम और विरह का वर्णन। इनके बल और प्रभुता का बखान कर उन्हें भरोसा देना— इन्हें उनकी सुधि नहीं मिली। अब वे कुछ दिन और धीरज धरें। ये वानरोंसहित आकर, निशिचर-संहार कर उन्हें ले जायेंगे (५।१४।३ - ५।१६।५)। (वानरों के सामर्थ्य के संबंध में सीता को भरोसा दिलाने के लिए हनुमान् का विशाल रूप प्रकट करना, फिर लघु रूप होना।) हनुमान् द्वारा इनके प्रताप का कथन। उन्हें इनका प्रिय जानकर सीता का आशीर्वाद— ये उन पर अतिशय कृपा करें (५।१६-५।१७।४)।

रावण की सभा में उसके आगे निर्गुण ब्रह्म और सगुण अवतार के रूप में इनका परिचय देकर हनुमान् का स्वयं को इनका दूत कहना। उनका रावण को उपदेश— वह मोहाभिमान त्याग जानकी को लौटाकर इनका शरणागत हो, तो उसकी प्रभुता बनी रहेगी। इनसे विमुख होने पर रक्षा का कोई उपाय नहीं (५।२१।४ - ५।२१, ५।२२।७ - ५।२३)। (लंका-दहन करके हनुमान् का सीता के पास आना।) हनुमान् को पहचान के रूप में चूड़ामणि देकर इनके लिए सीता का विरह-निवेदन— ये अपने विरुद की रक्षा करते हुए उनका संकट हरें। एक माह तक इनके न आने पर उनके लिए जीवित रहना संभव नहीं। जयंत-प्रसंग कहकर हनुमान् इन्हें इनके बाण के प्रताप का स्मरण करायें। उनसे विदा हो, सागर-पार कर, वानरों के साथ हनुमान् का इनसे मिलने के लिए प्रस्थान (५।२७।१ - ५।२८।६)।

मधुवन के उजाड़े जाने का समाचर सुन सुग्रीव को विश्वास कि इनका कार्य सम्पादित (५।२८)। इनकी कृपा से कार्य सम्पन्न होने का वानरों का उनसे निवेदन (५।२६।४, ५)। सुग्रीव के साथ आनन्दित वानरों को देख इनका अनुजसहित स्फटिक शिला पर बैठना। वानरों का इनके चरणों में गिरना। सबसे मिलकर इनका कुशल-प्रश्न करना। जाम्बवान् से हनुमच्चरित सुनकर इनका हर्षित हो हनुमान् को हृदय से लगाना (५।२६।६ - ५।३०।७)। इनकी जिज्ञासा— (राक्षसों के बीच) जानकी किस प्रकार रहती हैं? प्राणों की रक्षा कैसे करती हैं? हनुमान् का निवेदन— इनके नाम का उनके द्वारा श्वास-निःश्वासात्मक जप। यह उनके प्राणों का पहरेदार, रक्षक। उनके मन में निरन्तर इनका ध्यान। यह कपाट। उनके नेत्र चरणों में स्थिर (क्योंकि चरण में भगवान् का वास)। यह यंत्र। अतः प्राण निकलें कैसे? उनके चूड़ामणि देने पर इनका हृदय से लगाना। इनके नेत्र सजल। इनके पूछने पर हनुमान् द्वारा जानकी का विरह-निवेदन। भुजबल से खल-दल जीतकर उन्हें शीघ्र लाने की इनसे प्रार्थना (५।३०।८ ५।३१)। सीता का दुःख सुनकर ये दुखी। इनका अनन्य चिन्तन करनेवालों के विपत्तिमुक्त होने का कथन इनके और हनुमान् के द्वारा (५।३२।१-४)। हनुमान् के प्रति इनका कृतज्ञता-प्रकाश। 'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।' पुलकित हो सजल नेत्रों से इनका बार-बार उन्हें देखना। हर्षित हनुमान् का 'त्राहि त्राहि भगवंत' कहकर इनके चरणों में गिरना। वे प्रेम-विभोर; इनके बार-बार उठाने पर भी उठने को अनिच्छुक। इस दशा का स्मरण कर शिव मग्न। फिर इनका हनुमान् को उठाकर हृदय से लगाना। हाथ पकड़ निकट बैठाकर लंका-दहन के संबंध में प्रश्न। उनकी विनय— उनका कृतित्व इनके प्रताप का फल। इनकी शक्ति अमोघ। ये जिसके अनुकूल, उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं। उनकी याचना पर इनका उन्हें अविरल भक्ति का वर-दान। (५।३२।५ - ५।३४।३)। वानरों द्वारा इनकी जयजयकार (५।३४।५)। इस संवाद (५।३३।६ से ५।३४।१ तक) की फलश्रुति— इनके चरणों में भक्ति की प्राप्ति (५।३४।४)।

इनकी आज्ञा से सुग्रीव का वानर-यूथों को एकत्र करना। इनकी कृपा-दृष्टि से सबमें अपूर्व बल और नभचारित्व की शक्ति। विशाल कपि-सेना के साथ इनका प्रस्थान। शुभ शकुन। उधर जानकी के शुभांगों का फड़कना। वानरों द्वारा इनके प्रबल प्रताप का जयजयकार। इनके प्रयाण का प्रभाव त्रिलोकव्यापी। इनका सागर-तट पर पहुँचना (५।३४।५ - ५।३५।६, ५।३५।छं० १ - ५।३५)।

मन्दोदरी का रावण को समझाना— इनके द्वारा निशिचर-नाश होने से पहले ही वह उपाय करे। इनसे वैर त्यागकर सीता को लौटा दे, अन्यथा उसका कल्याण नहीं (५।३६।६-५।३६)। विभीषण का निवेदन— ये सामान्य नर या भूपाल नहीं, ये निर्गुण ब्रह्म जिनका गो-द्विज-धेनु-देव-हित के लिए सगुण रूप में अवतार। ये 'प्रनतारति भंजन'— शरण में आये विश्वद्रोही का भी इनके द्वारा त्याग नहीं। अतः मान-मद-मोह त्यागकर रावण जानकी को लौटा दे, इनका शरणागत हो, भजन करे। यह सन्देश पुलस्त्य मुनि का जो उन्होंने रावण तक पहुँचाने के लिए अपने शिष्य से विभीषण को कहलाया (५।३८-५।३९ ख)। (माल्यवान् द्वारा विभीषण के कथन का अनुमोदन।) सीता को इन्हें लौटा देने के लिए विभीषण की पुनः विनती (५।४०)। (रावण के पद-प्रहार करने पर) इनकी शरण में आने के लिए उनका प्रस्थान। इनके चरण-दर्शन का मनोरथ करते हुए सागर-पार आना (५।४१।८-५।४१, ५।४२।४-५।४३।१)।

यह सुनकर कि इनसे मिलने के लिए विभीषण उपस्थित, इनका सुग्रीव से राय पूछना। उनके नीति-कथन की इनके द्वारा प्रशंसा, किन्तु इनका प्रण शरणागत का भयहरण। विभीषण दुष्टहृदय नहीं, शरणागत। दुष्टहृदय का इनके सम्मुख आना सम्भव नहीं। 'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।' भयभीत होकर विभीषण के शरण में आने पर ये प्राण की भाँति उनकी रक्षा करेंगे। यदि उनके मन में पाप भी हो, तो भी भय नहीं। लक्ष्मण क्षणमात्र में समस्त राक्षसों का संहार करने में समर्थ। अतः सुग्रीव विभीषण को ले आयें (५।४३।४-५।४४)। विभीषण को दूर से ही इनके और लक्ष्मण के दर्शन। अपलक इनका रूप देख वे मग्न। अपना परिचय देकर, कार्पण्य सूचित कर उनका आत्म-निवेदन— 'श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।' (५।४५।१-५।४५)। उनके दीन वचन इन्हें प्रिय। उन्हें दण्डवत् करते देख तुरत उठकर इनका उन्हें भुजाओं से पकड़ हृदय से लगाना। अनुजसहित मिलकर निकट बैठाना। इनका कुशल-प्रश्न— लंका में खल-मण्डली के बीच वे धर्म का निर्वाह कैसे करते हैं? उनका निवेदन— इनके चरण-दर्शन

से वे भयमुक्त, सकुशल। हृदय में लोभ-मोहादि खलों का तभी तक वास जब तक इनका निवास न हो। 'तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।।' इनके शिव-विरंचि-सेव्य युगल चरणों के दर्शन से उनका स्वयं को परम भाग्यवान् मानना (५।४६।१-५।४७)। इनके द्वारा भुशुण्डि-शंभु-गिरिजा-ज्ञात अपने स्वभाव का कथन और इस प्रसंग में तीन कोटि के भक्तों का निदर्शन— (१) चराचर-द्रोही के भीत होकर शरण में आने पर, उसके मद-मोह-छल-कपट की उपेक्षा करके इनका उसे साधु-सदृश बनाना। (२) संसार से सब प्रकार की ममता समेटकर इनके चरणों में समर्पित करनेवाला, इन्हीं से सर्वप्रकार ममत्व करते हुए उस ममत्व को दृढ़ करनेवाला भक्त समदर्शी। उसके लिए जगत् राममय। इच्छा-हर्ष-शोक-भय से वह मुक्त। इनके हृदय में उसका वास। (३) विभीषण जैसे सगुणोपासक (जिनकी यह धारणा दृढ़ कि 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।' ४।३। वि०), परहित और नीति में निरत, नेम के पक्के एवं विप्रचरण-प्रेमी संत इन्हें प्राणप्रिय। उन्हीं के लिए इनका अवतार-ग्रहण। सर्वगुणसम्पन्न होने के कारण विभीषण इनके अतिशय प्रिय (५।४८।१-५।४६।२)। सुनकर प्रेममग्न विभीषण का बार-बार इनके चरण पकड़ना। उनकी वासना इनकी चरण-प्रीति-सरिता में प्रवाहित। उनकी याचना पर इनका उन्हें अचल भक्ति का वरदान। विभीषण अब इच्छारहित, किन्तु इनका दर्शन अमोघ। अतः सिंधु-जल से इनके द्वारा उनका राज्याभिषेक। फिर भी इन्हें संकोच कि इनका देय यथेष्ट नहीं(५।४६।३-५।५०।२)।

इनका विभीषण से समुद्र पार करने का उपाय पूछना। विभीषण का कथन— सागर इनका कुलगुरु (पूर्वज। दे० 'सागर'।)। ये विनय करें। वह उपाय बता देगा। उनके नीति-विचार की प्रशंसा करते हुए इनका कथन कि कृतकार्यता दैव की अनुकूलता पर निर्भर। इनके स्वीकारात्मक उत्तर से लक्ष्मण को दुःख। उनके द्वारा दैववाद की निन्दा और पुरुषार्थ से सिंधु-शोषण करने की विनती। हँसकर इनका कथन— ये ऐसा ही करेंगे। लक्ष्मण को समझाकर, सागर के समीप जा प्रणाम कर, इनका कुशासन बिछाकर बैठना। (५।५०।३-५।५१।७)। [इससे इनका निरायुध होना, मौनव्रत ले अनशन करना सूचित। मा० पी० ५।५१।७ टिप्पणी २।]

छद्म वानरवेश-धारी रावण-दूतों (दे० 'सुक') द्वारा मन-ही-मन इनकी शरणागत-वत्सलता की सराहना। कपटवेश भूल प्रकट रूप से इनके स्वभाव का बखान। इनकी शपथ लेने पर उनका वानरों के हाथों से बचना (५।५१।८ - ५।५२।२, ५।५२।६)। इनका गुणगान करते हुए उनका लंका-गमन। विभीषण के राजतिलक का, इनकी सेना के बल और विशालता का, शुक द्वारा रावण से निवेदन। इनके तेज-बल-बुद्धि का वर्णन करके सागर से इनके विनय करने का शुक-कथन (५।५३।२, ५।५४।२, ५।५४।४, ५।५४।५-८, ५।५५।२, ५, ५।५५-५।५६।३)। इनके लिए रावण के तिरस्कारपूर्ण वचन (५।५६।४-७)। लक्ष्मण-पत्रिका में इनके विरोधी के नष्ट होने की चेतावनी (५।५६ क, ख)। जानकी को लौटाकर इनको भजने का शुक का रावण को उपदेश (५।५७।३-७)। इनकी शरण में आने पर शुक को स्वगति (मुनि-स्वरूप) की प्राप्ति। बार-बार इनकी चरण-वन्दना कर उसका गमन (५।५७।६-१२)।

तीन दिन बीत जाने पर भी सागर के विनय न मानने पर ये कुपित। लक्ष्मण से धनुष-बाण माँगकर सागर का तिरस्कार करते हुए इनका आग्नेयास्त्र-सन्धान करना। समुद्र विक्षुब्ध। कनक-थाल में मणियों का उपहार ले वह विप्ररूप में उपस्थित (५।५७ - ५।५८।८)। [वा० रा० में तीन दिनों तक पूजा-सत्कार करने का कोई प्रभाव न देख इनका सिंधु को बाणों से विक्षुब्ध करना। इन्हें पुनः बाण चढ़ाने को उद्यत देख लक्ष्मण का रोकना। पातालसहित समुद्र को सुखा डालने के लिए इनके द्वारा ब्रह्मास्त्र-सन्धान। प्रलय-दृश्य उपस्थित। तब सागर का प्रकृत रूप में प्राकट्य। वा० रा० ६।२१।६-३५, ६।२२।१-२५। महा० वन० में रामोपाख्यान में कुछ वानरों की नाव आदि से समुद्र पार करने की सलाह। इन्हें यह अस्वीकार, क्योंकि इससे व्यापारियों की हानि। इसके अतिरिक्त सेना के दूर तक बिखरने और फैलने से शत्रु द्वारा उसके नाश की आशंका। सिधु के दर्शन के लिए इनके द्वारा उपवास और आराधन। फिर दिव्यास्त्रों से उसे भस्म करने का निश्चय। तब इन्हें स्वप्न में दर्शन देकर वह सहायता के लिए प्रस्तुत। महा० वन० २८३।२६।३५।] इनके चरण पकड़कर भीत समुद्र की विनती। इनका उससे सेना के पार उतरने का उपाय पूछना। उसका कथन— नील-नल को प्राप्त वरदान के कारण उनके स्पर्श से पर्वत समुद्र में तैर-जायेंगे। यथासामर्थ्य वह भी सहायक होगा। सागर बँध जायेगा। उसकी विनय पर अपने धनुष पर चढ़े अमोघ बाण को इनका उत्तर तटवासी पापात्माओं पर छोड़ना। इनके बल-पौरुष से हर्षित समुद्र द्वारा इनकी चरण-वन्दना और

प्रस्थान (५।५६।१-५।६०।८)। [महा० के अनुसार इनका उसे स्वप्न में ही भय दिखाना। नल द्वारा सेतु-निर्माण कराने का उसका परामर्श। 'नलसेतु' से इनका एक महीने में सेनासहित सागर पार करना। महा० वन० २८३।३६-४३, ५०।] माहात्म्य— इनका चरित कलिमल-हर्ता, सुख-भवन, संशय-शमन, विषाद-दमन। इनका गुणगान सकल सुमंगल-दायक। इसके सादर श्रवण से भव-सागर तरना संभव। (५।६०।छं० - ५।६०)।

पृथ्वीपति के रूप में इनकी वन्दना (६।१।श्लो०१)। अखण्ड दण्डायमान् काल इनका धनुष। परिच्छिन्न काल या खण्डकाल— लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष, कल्प जो आब्रह्मतृणस्तंब जीवों की आयु की इयत्ता के मानदण्ड — इनके अमोघ बाण। इन्हें भजने के लिए कवि का मन को प्रबोधन (६।१।दो०)।

इनका सचिवों को शीघ्र सेतु-निर्माण करने का आदेश। जाम्बवान् की विनय—इनका नाम ही सेतु जिस पर चढ़कर जीवों का भवसागर-संतरण। हनुमान् का निवेदन— इनके प्रतापरूपी बड़वानल से समुद्र पहले ही शोषित, किन्तु रिपु-नारियों की अश्रु-धारा से पुनः पूरित और क्षार (६।१।सो०-६।१।४)। सेतु की अति सुन्दर रचना देख, वहाँ की भूमि को परम रम्य, महिमामयी कहकर वहाँ शंभु की स्थापना करने का इनका संकल्प। इस कार्य के लिए मुनियों को बुलवाना (६।२।२-५)। इनके द्वारा शिवलिंग की स्थापना। (उसी के साथ उमा-स्थापना भी, क्योंकि जलन्धरी उमा का प्रतीक। वि०।) उसकी विधिवत् पूजा कर उपदेशरूप स्तुति-- इनका भक्त शिवद्रोह न करे और शिवभक्त इनके प्रति द्वेष न रखे। इनका और शिव का अभेद-दर्शन ही पूर्ण दर्शन (६।२।६-६।२)। उसका 'रामेश्वर' नामकरण करके उसकी और सेतु की महिमा का वर्णन (६।३।१-५)। इनकी रीति और प्रताप का कथन (६।३।६-६।३)। सेतुबन्ध पर चढ़कर इनका समुद्र के विस्तार को देखना। इनके दर्शन के लिए प्रकट जलचर-समूह इनका रूप निहारकर मग्न। इनकी आज्ञा से सेना का प्रस्थान। वानरों के सागर पार करने का कौतुक देखते हुए इनका अनुज और सैन्यसहित पार उतरना (६।४।१ - ६।५।२)। (सुवेल पर्वत पर) डेरा डालना। इनकी सेवा के लिए प्रकृति सब प्रकार से प्रस्तुत। इनका वानर-भालुओं को जाकर फलमूल खाने का आदेश (६।५।३-५)। इनके द्वारा समुद्र-बन्धनरूपी आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न, यह सुनकर रावण चकित और विकल (६।५-६।६।१)। इनका आगमन सुन मन्दोदरी का रावण को उपदेश — इनमें और रावण में उतना ही अन्तर जितना सूर्य और जुगनू में। ये स्रष्टा, पालक और संहारक। (क्रमशः शेषशायी विष्णु, वराह एवं नृसिंह रूप से) इनके द्वारा मधु-कैटभ, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का संहार। (वामनावतार में) इनका बलि को बाँधना। (परशुराम का अवतार लेकर) सहस्रार्जुन का वध। (ये ईश्वर।) इनके हाथ में जीव के काल-कर्म की बागडोर। रावण पर अनुग्रह करने के लिए ही इनका आगमन। इन्हें जानकी लौटाकर वह इनका शरणागत हो, भजन करे। ये आश्रय देंगे (६।६।२-६।७)। प्रहस्त का रावण को प्रबोधन— खेल में ही समुद्र को बाँधकर सुवेल पर उतरनेवाले ये क्या साधारण मनुष्य जिसे खाने को सब उत्सुक? रावण पहले इनके पास दूत भेजे, फिर सीता को लौटाकर मेल कर ले। जानकी को पाकर ये लौट जायें, तो ठीक, नहीं तो वह इनसे सम्मुख युद्ध करे (६।६।५-६, ६।६।१०-६।६)।

वानर-सेना से भरा हुआ सुवेल पर्वत। उसके अति रम्य समतल शिखर पर इनके लिए लक्ष्मण का पत्र-पुष्प की शय्या रचकर मृगछाला बिछाना। उस पर इनका विश्राम। सुग्रीव की गोद में इनका सिर, बाएँ-दाहिने तीर और तरकश। दोनो हाथों से इनका बाण सुधारना। इनके कानों से लगकर विभीषण का सम्मति देना। अंगद और हनुमान् का इनके चरण दबाना। इनके पीछे (सुग्रीव के पीछे) लक्ष्मण कमर में तरकश कसे, हाथों में धनुष-बाण लिए वीरासन में स्थित। इनके इस कृपा-रूप-गुण-धाम स्वरूप में निमग्न होनेवाले धन्य (६।११।१-६।११ क)।

पूर्व दिशा में चन्द्रोदय देख शशि और सिंह का रूपक बाँधकर इनका प्रश्न— चन्द्रमा में श्यामता क्या है? सुग्रीव आदि का अपनी-अपनी मति के अनुसार निवेदन। तब इनका उत्तर। हनुमान् की विनय— शशि इनका प्रिय दास। उसके हृदय में इनकी जो मूर्त्ति, वही श्यामता (६।११।ख - ६।१२ क)। सुनकर इनका हँसना। विभीषण से कथन— दक्षिण दिशा में घन-घटा, मेघ-गर्जन और विद्युच्छटा। कहीं उपल-वृष्टि न हो। विभीषण से उनका रहस्य सुन, मुसकराकर इनका शर-सन्धान। रावण के मेघडम्बर छत्र, मुकुट और मन्दोदरी के विद्युत्-से कर्णफूल को छिन्न कर इनका बाण निषंग में प्रविष्ट (६।१२ ख - ६।१३ ख)। चिन्तित मन्दोदरी का रावण को समझाना — ये मनुष्य नहीं, विश्वरूप भगवान्। इनके चरण पाताल, मस्तक ब्रह्मलोक। (इन दोनों के बीच के) अन्य सब लोक इनके अंग-अंग में स्थित। इनका भ्रूभंग ही भयंकर काल। इनके नेत्र सूर्य, केश घनमाला। नासिका अश्विनीकुमार, पलकों

का खुलना, बन्द होना दिन और रात। दसों दिशाएँ इनके श्रवण, पवन श्वास और वेद इनकी अपनी वाणी। लोभ इनके अधर, यमराज इनके कराल दाँत। इनका हास ही माया। दिक्पाल इनकी भुजाएँ। अग्नि मुख और वरुण जिह्वा। उत्पत्ति-पालन-प्रलय इनकी इच्छा (कर्म या चेष्टा)। इनकी रोमावलि अठारह प्रकार के धान्य (जिनसे विश्व का पोषण)। पर्वत इनकी अस्थियाँ, सरिताएँ नसों का समूह। इनका उदर ही समुद्र, नीचे की इन्द्रियाँ नरक। ये जगन्मय। इनका अहंकार शिव, बुद्धि ब्रह्मा, मन चन्द्रमा, चित्त महत्तत्व (विकल्प से विष्णु)। [इस वर्णन का भा० २।१।१२३-३७ के विराट् रूप-वर्णन से बहुत-कुछ साम्य।] यह समझकर रावण इनसे वैर त्याग इनके चरणों में प्रेम करे (६।१४।६ - ६।१५ ख)।

इनका प्रातःकाल सचिवों को बुलाकर कार्यसिद्धि का उपाय पूछना। जाम्बवान् का निवेदन— ये अंगद को दूत बनाकर (रावण के पास) भेजें। इनका अंगद को आदेश— वे जाकर ऐसी बातचीत करें जिससे इनका कार्य बने और शत्रु का कल्याण हो। स्वयं को इनके द्वारा आदृत समझकर अंगद हर्षित। इनकी चरण-वन्दना कर, इनके प्रताप को हृदय में धारण कर, उनका प्रस्थान (६।१७।१-६।१८।२)। (रावण-सभा में) स्वयं को इनका दूत कहकर उनका रावण को परामर्श— वह अत्यन्त दीन और आर्त रक्षार्थी होकर, सीता को आगे कर इनकी शरण में आये। ये उसे निर्भय करेंगे (६।२०।१, ६।२०।६, ६।२०)। इनसे विरोध करने के दुष्परिणाम का रावण से उनका कथन। वे उसकी भेद-नीति से अप्रभावित, क्योंकि उनके हृदय में इनका वास (६।२१।६-१०)। शिव-विरंचि भी इनकी चरण-सेवा को इच्छुक (६।२२।१-२)। रावण का इन्हें पत्नी-विरह से बलहीन और लक्ष्मण को इनके दुख से मलिन कहना (६।२३।२)। अंगद की वक्रोक्ति— वह इनके आगे तुच्छ, साथ ही अधम ब्राह्मण। उसका वध करने में इनकी लघुता द्योतित, उसमें दोष भी। किन्तु ये क्षत्रिय— क्रुद्ध होने पर इन बातों का विचार नहीं करेंगे (६।२३घ)। इनके लिए अनादरसूचक 'नर' शब्द का प्रयोग सुन अंगद का सकोप कथन— सहस्रार्जुन-हन्ता परशुराम का गर्व-हरण करनेवाले ये क्या मनुष्य! ये नर नहीं, इसकी पुष्टि के लिए बारह दृष्टान्त प्रस्तुत करके अंगद का रावण को उपदेश— इनसे द्रोह करने पर ब्रह्मा और रुद्र भी रक्षा नहीं कर सकेंगे! समर में इनके बाणों से उसके मस्तक भूलुंठित होंगे। वह मिथ्या आत्मश्लाघा छोड़ इनका भजन करे (६।२५-६।२७।७)। इनके द्वारा वे दौत्य-कर्म के लिए नहीं, हितोपदेश करने के लिए प्रेषित। इनके अपमान का भय न होने पर वे रावण को पटककर, उसका सैन्य नाशकर जानकी को ले जाते (६।३०।२ - ६।३०)। इनकी निन्दा सुन उन्हें क्रोध (६।३२।१)। (उनका दोनों भुजाओं को धरती पर पटकना। भूकम्प। रावण का गिरते-गिरते बचना। उसके मुकुटों का गिरना।) रावण के चार मुकुटों को अंगद का इनके पास फेंकना (६।३२।६)। (आकाश से आते मुकुटों की चमक और वेग देखकर वानर भीत)। इनका हँसकर वानरों को निर्भय कर कथन— वह उल्का-वज्र या केतु-राहू नहीं, अंगद-प्रेरित रावण के मुकुट। उन्हें पकड़कर हनुमान् का इनके पास रखना (६।३२।९-६।३२ क)। (रावण-सभा में) इन दोनों भाइयों को जीवित पकड़ने का रावण का राक्षसों को आदेश (६।३३।२)। इनके अपूर्व बल और तत्प्रेरित अपने सामर्थ्य का अंगद-कथन (६।३३।८ - ६।३४।४)। इनके लिए 'लबार' शब्द का प्रयोग सुन, इनके प्रताप का स्मरण कर उनका सभा में पैर रोपना। रावण पैर हटा दे, तो सीता को वे हार जायेंगे, ये लक्ष्मणसहित लौट जायेंगे (६।३४।६-९)। (मेघनाद आदि उनका पैर हटाने में विफल।) रावण के पैर पकड़ने पर उनका उसे इनके चरण पकड़ने का उपदेश। उसका गर्व चूर्ण कर, इनका सुयश सुनाकर, पुलकित हो अंगद का इनके आश्रय में लौटना (६।३५।३, ६।३५ क)।

रावण को समझाते हुए मन्दोदरी द्वारा इनके दूत की करनी का उल्लेख और कथन कि इनसे युद्ध करने की योग्यता उसमें नहीं। इन्हें वह चराचर-स्वामी समझे। इनके अमानुषीय पराक्रम का उल्लेख करते हुए उसका पति से अनुरोध कि वह इनका भजन करके विमल यश का भागी बने (६।३६।१, ३, ६।३६।८-६।३७)।

इनका अंगद को बुलाकर सादर समीप बैठाना। रावण के चार मुकुटों के फेंके जाने के सम्बन्ध में इनकी जिज्ञासा। अंगद का चतुरतापूर्ण उत्तर। उनसे लंका दुर्ग का सब समाचार सुनकर इनका सचिवों को निकट बुलाना। लंका पर आक्रमण करने के उपाय पर विचार करने का आदेश। इनको हृदय में धारण कर विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान् का सैन्य-विभाग करना। वानरों को इनका प्रताप समझाना। इनके चरणों में नमन करके इनके प्रताप से निर्भय वानरों का इनकी जयजयकार करते हुए लंका को घेरना (६।३८।३ - ६।३९)। (रावण-सेना का लंका के कँगूरों पर चढ़ना।) इधर से इनकी, उधर से रावण की जयजयकार (६।४१।७)। युद्धारम्भ। प्रथम दिवस— लंका

के महलों पर चढ़कर वानरों द्वारा इनका यशोगान। इनके प्रताप से वे प्रबल (६।४१।छं०, ६।४२।१)। अंगद-हनुमान् का रावण के महल पर चढ़ इनकी दोहाई बोलना, इनका सुयश सुनाना। राक्षसों को इन्हें न भजने का फल चखाना। बड़े-बड़े मुखियों के पैर पकड़कर इनके पास फेंकना। विभीषण से उनके नाम सुनकर इनका उन्हें निजधाम देना। इस तरह वैर से स्मरण करनेवाले निशिचरों को भी परम गति प्राप्ति (६।४४।१, २, ५, ८, ६।४५।१-६)। लंका को विध्वस्त करते हुए अंगद-हनुमान् की शोभा का इनके द्वारा कथन (६।४५।७-८)। दिवसान्त होने पर उनका इनके निकट आकर नमन। इनकी कृपादृष्टि से वे सुखी (६।४५-६।४६।२)। (प्रदोष-बल पाकर राक्षसों का लौटना। माया से अन्धकार करना। वानर व्याकुल।) इनका हनुमान्-अंगद को बुलाकर सब समझाकर पुनः युद्ध के लिए भेजना। अग्निबाण से मायान्धकार नष्ट करना (६।४७।१-४)। (प्रथम दिन के युद्ध में इनके पक्ष की विजय।) आधी राक्षस सेना का संहार करके रात्रि होने पर वानरों का लौटना। इनका उन्हें कृपादृष्टि से विगतश्रम करना (६।४८।१, २, ४)। इनकी ईश्वरता और प्रभुता कहकर माल्यवान् का रावण को समझाना। तिरस्कृत होने पर उसका अनुमान कि ये रावण का वध करने (और उसे मुक्ति देने) के इच्छुक (६।४८।५-६।४९।४)।

दूसरे दिन का युद्ध— इन दो भाइयों को लोक-विख्यात धनुर्धर कहकर मेघनाद का विभीषण-सुग्रीवादिसहित ललकारना (६।५०।१-३)। इनके निकट आकर, इन्हें दुर्वचन कहकर इन पर अस्त्र-शस्त्र-प्रहार करना। इनका सहज ही सबको काटना। उसका माया रचना। इनका एक ही बाण से माया-हरण कर वानरों को निर्भय करना। इनकी आज्ञा लेकर लक्ष्मण का अंगदादि के साथ मेघनाद से युद्ध के लिए प्रस्थान (६।५१।५-६।५२)। (मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित)। लक्ष्मण की मूर्च्छा लीला, इसका ज्ञान उसी को जिस पर इनकी कृपा (६।५५।३)। (सन्ध्या समय युद्धान्त। वानरों का लौटना।) इनकी लक्ष्मण के संबंध में जिज्ञासा। इसी समय हनुमान् का उन्हें लाना। उनकी दशा देख ये अत्यन्त दुखी (६।५५।५-६)। (हनुमान् द्वारा लंका से लाये गये) सुषेण का इनके चरणों में नमन (६।५५)।

इनका स्वरूप कहकर कालेनेमि का रावण से इनका भजन करने का अनुरोध (६।५६।५-८)। मुनि के कपट वेश में इनकी गुणगाथा कहते हुए उसका हनुमान् से कथन कि युद्ध में इनकी विजय असंदिग्ध (६।५७।४-६)। इनका नाम लेकर उसका प्राण-त्याग करना (६।५८।६)। (अवध के आकाश से ओषधि-पर्वत को लाते हुए हनुमान् पर भरत का बिना फल का बाण चलाना।) इनका नामोच्चार करते हुए हनुमान् मूर्च्छित। व्याकुल भरत द्वारा शपथ-ग्रहण— यदि इनके चरणों में उनका मन-वचन-कर्म से निष्कपट प्रेम, यदि ये उनके अनुकूल, तो हनुमान् श्रम-शूलरहित हों। इनकी जयजयकार करते हुए हनुमान् का उठ बैठना। इनकी कृपालुता का स्मरण कर भरत प्रेममग्न (६।५९।१-२, ६।५९।५ - ६।५९)। इनके सम्बन्ध में भरत का कुशल-प्रश्न। हनुमान् का संक्षेप में इनका सब चरित सुनाना (सीताहरण से शक्ति लगने तक)। भरत को ग्लानि— वे इनके किसी काम न आये। उनका कथन— वे हनुमान् को अपने बाण पर इनके पास पहुँचा देंगे। हनुमान् द्वारा इनके प्रभाव का विचार। इनके चरणों में भरत के प्रेम की प्रशंसा करते हुए उनका लौटना। (६।६०।१ - ६।६० ख)।

लक्ष्मण को देख इनका कथन— आधी रात व्यतीत। अब तक हनुमान् नहीं आये। अनुज को हृदय से लगाकर इनका विलाप-प्रलाप। इनके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह (६।६१।१-१७)। 'उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई।।' (६।६१।१८)। इसी समय हनुमान् का आगमन। ये कृतज्ञ। सुषेण की चिकित्सा से लक्ष्मण का उठ बैठना। इनका अनुज को हृदय से लगाना। सब हर्षित (६।६१ - ६।६२।३)।

कुम्भकर्ण द्वारा रावण की भर्त्सना और इनके शिव-विरंचि-सेव्य स्वरूप का कथन। इनके रूप-गुण का स्मरण कर वह क्षणभर के लिए मग्न (६।६२ - ६।६३)। (बिना सेना के अकेले ही उसका युद्ध के लिए रणभूमि में आना।) इनके भक्त होने के कारण चरणों में पड़े विभीषण उसे प्रिय। विभीषण द्वारा इनकी शरण में आने का कारण-कथन। उसका अनुज को मन-वचन-कर्म से इनका भजन करने का उपदेश। इनके पास लौटकर विभीषण का इन्हें कुम्भकर्ण का परिचय देना (६।६४।१ - ६।६५।२)। तीसरे दिन का युद्ध आरम्भ— (अंगद-हनुमान् मूर्च्छित, सुग्रीव कुम्भकर्ण की काँख में, कपिसेना विकल।) यह इनका नर-नाट्य, जैसे सर्पों से मिलकर गरुड़ का क्रीड़ा-विनोद। इसका अभिप्राय यह कि इनके भक्त इस चरित का गान कर सहज ही (बिना योग-यज्ञ-जप के)

भव-सागर से तर जायें (६।६६।१-३)। लाघव से मुक्त होकर सुग्रीव का इनके पास आना (६।६६।८)। लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव को सेना की सँभाल का दायित्व सौंपकर इनका स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान। इनके धनुष की टंकार से शत्रु-दल वधिर। क्षणभर में राक्षसी सेना को काटकर इनके बाण निषंग में प्रविष्ट (६।६७।८ - ६।६८) क्रुद्ध कुम्भकर्ण का वानर-योद्धाओं पर शैल-प्रहार। इनका पर्वतों को शरों से छिन्न करना। इनके बाणों का कुम्भकर्ण के शरीर को भेदकर निकल जाना। वह रक्ताक्त (६।६६।१-७)। (उसका वानरों को पकड़-पकड़कर पटकना।) रक्षा के लिए वानरों द्वारा इनकी पुकार। तब कपि सेना को पीछे कर इनका कुम्भकर्ण पर तीर चलाना। उसका पर्वत उखाड़कर दौड़ना। इनका बाण से उस भुजा को काटना। फिर दूसरी भुजा में पर्वत लेकर उसके दौड़ने पर उसे भी छिन्न करना। घोर चिक्कार करके इन्हें ग्रसने के लिए मुँह फैलाकर उसका दौड़ना। यह देख आकाश में सिद्ध सुर त्रस्त। शर-समूह से इनका उसके मुख को भरना। फिर भी उसका न गिरना। उसी रूप में इनकी ओर बढ़ना। इनका बाण से उसके मस्तक को छिन्न कर रावण के आगे गिराना। उसके प्रचण्ड धड़ का दौड़ना। इनका तीर से उसके दो खण्ड करना। दोनों का भूमि पर गिरना। उसका तेज इनके मुख में समाहित (६।७०।४-६।७१।८)। (यह सायुज्य मुक्ति। वि०।)

देवताओं द्वारा इनकी स्तुति और पुष्पवर्षा। उनके जाने पर आकाश में स्थित हो नारद द्वारा इनका वीररसपूर्ण गुणगान। इन्हें वह रुचिकर। इनसे शीघ्र खल-वध करने की उनकी प्रार्थना (६।७१।६-१२)। समर-भूमि में इनकी शोभा का वर्णन (६।७१।छं०)। कुम्भकर्ण-से अधम निशाचर को भी निज धाम (सालोक्य मुक्ति। वि०।) देनेवाले राम को न भजनेवाले मंदमति। (६।७१)। (कुंभकर्ण की दो भिन्न प्रकार की मुक्ति दो भिन्न कल्पों में।) दिवसान्त होने पर दोनों ओर की सेनाओं का लौटना। इनकी कृपा से वानरों का बल वर्द्धित (६।७२।१-२)।

चौथे दिन – (मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में अदृश्य रहकर मेघनाद का युद्ध।) शर-वर्षा से लक्ष्मणादि को जर्जर करके मेघनाद का इन्हें नागपाश-बद्ध करना। युद्ध की शोभा के लिए इनका बँध जाना, ऐश्वर्य छिपाकर नर की भाँति अभिनय करना। यह इनकी माया, और इनका सगुण चरित्र मायामय, अतर्क्य। यह विचारकर तत्वज्ञानियों, वैरागियों द्वारा तर्क छोड़ इनका भजन (६।७३।६ - ६।७४।२)। (मेघनाद के दुर्वचन कहने पर जाम्बवान् का उसे पटककर, पाँव पकड़ घुमाकर लंका में फेंकना।) नारद-प्रेरित गरुड़ का इनके पास आकर नागों का भक्षण करना। सब मायामुक्त (६।७४।१० - ६।७४ क)।

इनसे विभीषण का कथन– (निकुम्भिला गुहा में अनुष्ठित) मेघनाद का यज्ञ सिद्ध होने पर उसे जीतना अत्यन्त कठिन। तब इनका लक्ष्मण को मेघनाद-वध करने का और अंगदादि को उनके साथ जाकर यज्ञ-ध्वंस करने का आदेश। जाम्बवान्, सुग्रीव, विभीषण को सेना के साथ रहने की आज्ञा। मेघनाद के संहार की प्रतिज्ञा कर, इनके चरणों में सिर झुकाकर लक्ष्मण का हनुमदादि के साथ प्रस्थान (६।७५।३ - ६।७५)। (मेघनाद-यज्ञ-विध्वंस। युद्ध।) इनके प्रताप का स्मरण कर लक्ष्मण का बाण चलाना। अनुजसहित इनका नाम लेकर दोनों को ललकारते हुए मेघनाद का प्राण-त्याग करना (६।७६।१५ - ६।७६)। (हनुमान् का उसे लंका के द्वार पर रख आना।) देवताओं द्वारा इनका यशोगान। लक्ष्मण की स्तुति (६।७७।२-५)।

पाँचवें दिन के युद्ध में वानरों द्वारा इनकी दोहाई, जयजयकार, बखान (बल-प्रताप-पौरुष का) (६।७६।१३-६।७६)। 'रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।' इनके पास तनत्राण (कवच) और पदत्राण (पादुका) भी नहीं, यह देख विभीषण प्रेम-अधीर। माधुर्य में इनके ऐश्वर्य का उन्हें विस्मरण। उनकी विनती– ये प्रबल शत्रु को किस विधि से जीतेंगे? (६।८०।१-३)। उत्तर में इनके द्वारा धर्मरथ का रूपक-कथन। यह जयप्रद रथ भौतिक नहीं, आध्यात्मिक। (१) शौर्य और धैर्य इस रथ के पहिये। (२) सत्य और शील ध्वजा पताका। (३) बल, विवेक, दम (बाह्य वृत्ति का निग्रह) और परोपकार इसके चार अश्व जो (४) क्षमा-कृपा-समतारूपी (तीन लड़ी की) रज्जु से इस रथ के साथ जोड़े हुए। (जैसे रज्जु से अश्व वश में, वैसे ही क्षमा-कृपा आदि से बल-विवेक आदि।) (५) ईश्वर-भजन इसका चतुर सारथी। (युद्धरथ में ढाल, कृपाण, परशु, शक्ति, धनुष, तरकश, बाण और कवच यथास्थान रखे रहते हैं।) इस रथ में (६) वैराग्य ही ढाल (मोह-मायादि से रक्षा के लिए), (७) सन्तोष कृपाण (काम-क्रोधादि के नाश के लिए), (८) (सात्विक) दान परशु (दानं दुर्गतिनाशनम्। वि०।), (६) बुद्धि शक्ति (जिससे अज्ञान का नाश), (१०) वर विज्ञान (जिसमें भक्ति का आश्रय। दे० ७।१२२।११) कठिन धनुष (जो भगवान् का

मुख्य आयुध), (११) विषयरहित, स्थिरीकृत मन ही तरकश जिसमें (१२) शम-यम-नियम रूपी बाणों को धारण करने की क्षमता। (१३) विप्र-गुरु-पूजा अभेद्य कवच जिसे काटना असंभव। जिसके पास ऐसा त्रयोदश-अंग-पूर्ण धर्मरथ, उसके लिए जीतने को कोई शत्रु रहता ही नहीं। उसके सब शत्रु जीते जिताये। ऐसे वीर के लिए महा अजेय संसार-रिपु भी जेय (६।८०।४ - ६।८० क)। हर्षित होकर विभीषण का इनके चरण पकड़ना। वे कृतकृत्य। उनके रावण-विजय की विधि पूछने पर इनका उन्हें भव-सागर-सन्तरण का उपाय बताना, उपदेश देना (६।८० ख)।

युद्ध देखने के लिए ब्रह्मादि देवता और इनका वीररसपूर्ण चरित देखने के लिए शिव आकाश में उपस्थित (६।८१।१-२)। इनके बल से बली वानर जयशील। (६।८१।३)। रावण के आघात से त्रस्त कपियों द्वारा रक्षा के लिए इनकी पुकार (६।८२।७, छं०)। इन्हें नमन कर लक्ष्मण का रावण से युद्ध के लिए प्रस्थान (६।८२)। (रावण द्वारा चलायी गयी) अमोघ ब्रह्मशक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाकर हनुमान् का इनके निकट लाना। इनका लक्ष्मण को उनके स्वरूप का ज्ञान कराना। उनका उठ बैठना (६।८४।५-७)। (लक्ष्मण के शर-समूह से विद्ध मूर्च्छित रावण को उठाकर उसके दूसरे सारथी का लंका ले जाना।) लक्ष्मण का आकर इनके चरणों में नमन (६।८४।छं०)।

इनसे विभीषण का निवेदन— रावण द्वारा एक यज्ञ का अनुष्ठान जिसके सिद्ध होने पर उसे मारना संभव नहीं। उनके परामर्शानुसार इनका (छठे दिन) प्रातःकाल यज्ञ-ध्वंस करने के लिए हनुमदादि को भेजना (६।८५।१-४)। आदेश-पालन कर वानरों का सकुशल इनके पास आना (६।८५)। देवताओं द्वारा इनकी स्तुति। अपनी विपत्ति सुनाकर सीता के अति दुखी होने का कथन। प्रार्थना— अब ये रावण को अधिक न खेलायें (६।८६।५-६)। मुसकराकर इनका उठना। बाण सुधारना। कसकर जटाजूट बाँधना। उसके बीच-बीच में फूल गूँथे हुए। कटिबन्धन से कसा हुआ तरकश। हाथ में कठिन शाङ्र्गधनुष। अरुणाभ नयन, घनश्याम तन। वक्षप्रदेश पर भृगुचरण चिह्न। हाथों में धनुष-बाण फेरते ही दिग्गज, शेष, कच्छपादि सहित ब्रह्माण्ड का डगमगाना। इनकी वीररस की यह अपूर्व झाँकी देख देवता हर्षित। (६।८६।७ - ६।८६)।

छठे दिन का युद्ध— (वानर-निशिचर-संग्राम।) कोप करके इनका बाणों की झड़ी लगाना। निशिचर-सेना का घायल होकर गिरना। रुधिर-नदी का सांगरूपक—बीभत्स रस का परिपाक। राक्षसों के करोड़ों कटे हुए धड़ों का दौड़ना, पृथ्वी पर पड़े सिरों का रणोत्साह से जय-जय करना। (६।८७।८ - ६।८८।छं०)। इन्हें पैदल (रथहीन) देख देवताओं को क्षोभ। [भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य स रक्षसः। न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्व किंनराः।। वा० रा० ६।१०२।५।) तब इन्द्र के आदेश से उनका दिव्य रथ लेकर मातलि इनकी सेवा में उपस्थित। हर्षित हो ये रथारूढ़। देखकर वानरों को विशेष बल प्राप्त। उनके आघात से विकल हो रावण द्वारा माया-विस्तार— राक्षसी सेना में अनेक राम-लक्ष्मण विराजमान। यह देख लक्ष्मण और वानर-भालू स्तब्ध। तब हँसकर बाण-सन्धान कर इनके द्वारा माया का हरण। वानर-सेना हर्षित (६।८९।१ - ६।८९।छं०)।

राम-रावण-समर – रावण से स्वयं युद्ध करने का निश्चय कर, विप्रचरणों में मानसिक प्रणाम करके इनका मातलि को रथ चलाने का आदेश। गर्जन-तर्जन करते हुए क्रुद्ध रावण का इनके सम्मुख आकर दुर्वचन कहना। उसे कालवश जानकर इनका नीति-उपदेश— तीन प्रकार के पुरुषों का स्वभाव-कथन (६।८९ - ६।९०।छं०)। रावण द्वारा शर-वर्षा। इनके अग्निबाण से उसके शर भस्म। इनके द्वारा उसके अन्य आयुधों का निवारण। उसके तीरों से अपने सारथि (मातलि) को भूपतित देख ये अत्यन्त क्रुद्ध। मातलि को उठाकर इनका धनुष को टंकारना। इनके कराल बाणों से रावण के सारथि और घोड़े निहत, रथ और ध्वजा-पताका ध्वस्त (६।९० - ६।९२।२)। उसके शूलों से इनके चारों घोड़ों के गिरने पर इनका उन्हें उठाना। अपने बाणों से रावण के दसों मस्तकों और बीसों भुजाओं को काटना। पुनः उसके नये सिरों और भुजाओं का उगना। इस तरह इनका अनेक बार उसकी भुजाओं और मस्तकों को छिन्न करना और उनका फिर उत्पन्न होना। उसके कटे हुए सिरों-भुजाओं का आकाश में घूमना, इनके तीर लगने के कारण धरती पर न गिरना। रावण की शर-वर्षा से इनके रथ का ढक जाना। देवताओं में हाहाकार। तब उन शरों का निवारण कर इनका पुनः रावण के नये उगे सिरों को काट-काटकर उनसे धरती-आकाश को आच्छादित करना। लक्ष्मण-सुग्रीवसहित इनका नाम ले-लेकर उन सिरों का पुकारना (६।९२।३-६।९३।छं०)।

रावण द्वारा विभीषण पर छोड़ी गयी शक्ति को इनका आगे होकर स्वयं झेलना। शक्ति की मर्यादा-रक्षा के

लिए कुछ मूर्च्छित होने की लीला करना (६।९३-६।९४।४)। इनके बल से दर्पित विभीषण का रावण को तिरस्कृत कर उससे युद्ध (६।९४।८-६।९४)। (रावण पर हनुमान् के प्रहार करने पर) विभीषण का इनके पास लौटना (६।९५।३)। (हनुमान् की सहायता के लिए) इनका प्रचण्ड वीरों को ललकारना (६।९५)। मायारचित असंख्य रावणों को देखकर वानरों की इनसे रक्षा की पुकार (६।९६।२-४)। (भयभीत देवताओं का पलायन।) इनकी महिमा से परिचित शिव-विरंचि और ज्ञानी मुनि स्थिर (६।९६।८)। (हनुमान्, अंगद, नल, नील द्वारा माया-रावणों का मर्दन।) इनका अपने बाणों से माया हरण करना। भुजा उठाकर वानरों को लौटाना (६।९६ - ६।९७।५)। (देवताओं को विकल देख) रावण को धरती पर गिराकर अंगद का इनके निकट आना (६।९७।८, छं०)। राम-रावण-समर— द्वितीय — इनका रावण की भुजाओं-मस्तकों को अनेक बार काटना (६।९७)। (हनुमदादि के आघातों से विकल रावण का उनको बाणों से मूर्च्छित करना। क्रुद्ध जाम्बवान् के पदाघात से वह धरती पर गिरकर मूर्च्छित। सारथी का उसे लंका में ले जाना।) वानर-भालुओं का मूर्च्छा छूटने पर इनके पास लौटना (६।९८।छं०, ६।९८)।

(उस रात त्रिजटा से रावण के मस्तकों-भुजाओं की वृद्धि की बात सुन सीता को त्रास।) इनका स्मरण करके सीता का विलाप (६।९९।५-११)। उनसे त्रिजटा का कथन— रावण के हृदय में बाण लगने पर ही उसकी मृत्यु, फिर भी इनका उसके हृदय को न भेदना, क्योंकि वहाँ जानकी की मनोमय मूर्त्ति और जानकी के हृदय में इनका वास, इनके उदर में अनेक ब्रह्माण्डों की स्थिति। बाण लगने पर सबका नाश निश्चित। बार-बार सिरों के कटने से जब रावण के मन से सीता का ध्यान छूट जायेगा, तब ये उसका हृदय-भेदन करेंगे (६।९९।१२ - ६।९९)। इनके स्वभाव का स्मरण कर सीता इनके विरह से दुखी। शुभांगों के फड़कने से उन्हें इनके मिलने का विश्वास (६।१००।२-६)।

सातवें दिन का युद्ध— (राक्षस-सेना को विचलित कर वानरों का रावण को घेरना। अन्तर्हित होकर उसका माया फैलाना। लक्ष्मण और सुग्रीव सहित अनेक कपिवीर अचेत।) अवश वानरों द्वारा इनकी पुकार (६।१०१।तोमर६)। इनका अनेक मायामय हनुमानों से घिरना। एक ही बाण से इनके द्वारा माया-हरण (६।१०१।तोमर ७ - ६।१०१।छं० १) राम-रावण-समर— तृतीय— बाण-समूह से इनका रावण के भुज-मस्तकों को भू-पतित करना। राम-रावण-युद्ध-चरित्र का शत शेष-शारदा-वेद-कवि अनेक कल्पों तक गान करें, तब भी उसका अन्त नहीं (६।१०१।छं० २, ६।१०१ क)। [रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव। वा० रा० ६।१०७।५२। प्रत्येक ब्रह्माण्ड और प्रत्येक पिण्ड में यह युद्ध अनेक प्रकार से निरन्तर घटित। वि०। दे० वि० प० ५८ का सांगरूपक जिसमें ज्ञान राम, मोह रावण।] बार-बार इनका रावण के मस्तकों भुजाओं को काटना, उनका बार-बार निकलना। उसे किसी तरह मरते न देख, श्रमित होने की लीला करते हुए इनका विभीषण की ओर देखना— अपने प्रति उनकी भक्ति की परीक्षा करने के लिए। उनका कथन— रावण के नाभिकुण्ड में अमृत जिसके बल पर वह जीवित (६।१०१ ख - ६।१०२।५)। [नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।। तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्। अ० रा० ६।११।५३-५४। वा० रा० में इन्हें युद्ध में विजयी होते न देख मातलि का कथन— अनजान की तरह इनके द्वारा केवल रावण के अस्त्रों का निवारण ही क्यों? देवताओं द्वारा कथित उसका विनाशकाल सन्निकट। ये अगस्त्य से प्राप्त ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करें। वा० रा० ६।१०७।६७-६।१०८।४।] इनके बाण-सन्धान करते ही भयंकर अपशकुन। इनका एकतीस बाण छोड़ना। एक बाण से रावण की नाभि के अमृत-कुण्ड का शोषण। तीस बाण उसके मस्तकों और भुजाओं को छिन्न कर, मन्दोदरी के आगे रख, इनके तरकश में प्रविष्ट। एक शर से इनका रावण के दौड़ते हुए कबन्ध के दो टुकड़े करके गिराना (६।१०२।६-६।१०३।८)। उसका तेज इनके मुख में समाहित (६।१०३।९)। इनकी जय-ध्वनि से ब्रह्माण्ड पूरित। देव-मुनि-वृन्द द्वारा सुमन-वर्षा। संग्राम-भूमि में इनकी शोभा का वर्णन। इनकी कृपा-दृष्टि से देवों को अभय, वानर-भालुओं को हर्ष (६।१०३।१०-६।१०३)।

इन्हें मनुष्य समझकर इनसे विरोध करने के फल का, इनके द्वारा रावण को निज धाम दिये जाने का, मन्दोदरी-विलाप में कथन। नेत्र भरकर इन्हें देख ब्रह्मा आदि प्रेममग्न। विभीषण को भाई की क्रिया करने की इनकी आज्ञा। इनका गुणगान करती हुई मन्दोदरी आदि का गृह-गमन (६।१०४।१०, ६।१०४।१२-६।१०४, ६।१०५।३, ६।१०५।५-६।१०५)। विभीषण का आकर इन्हें नमन। इनका लक्ष्मण को आदेश कि वे सुग्रीवादि के साथ जाकर

विभीषण का राजतिलक करें। इनकी आज्ञा का पालन कर सबका लौटना। इनका वानरों को बुलाकर उनकी प्रशंसा करना– उन्हीं के बल पर इनके द्वारा रावण का वध। इनके साथ उनका कीर्त्ति-गान करनेवाले भव-सागर से तर जायेंगे। कृतकृत्य हो वानरों का इनके चरणों में बार-बार नमन (६।१०६।१ - ६।१०६)।

इनका हनुमान् को आदेश कि वे लंका जाकर सीता का कुशल-समाचार लायें। हनुमान् से इनका सब संवाद सुनकर सीता का उन्हें आशीर्वाद– ये लक्ष्मणसहित उन पर प्रसन्न रहें। इनके दर्शन के लिए सीता आतुर (६।१०७।१ - ६।१०८।१)। उन्हें लाने के लिए इनका हनुमान् के साथ विभीषण-सुग्रीवादि को भेजना। शिविका में आती हुई सीता के दर्शन की कपियों की व्यग्रता देख इनका हँसकर विभीषण से कथन– वे सीता को पैदल ही लायें, जिससे वानर जननी के रूप में उनके दर्शन कर सकें (६।१०८।२-१३)। सीता का हरण होने से पहले ही इनका उन्हें अग्नि में प्रविष्ट करा देना। (रावण द्वारा मायासीता का, वास्तविक सीता के प्रतिबिम्ब का हरण। दे० ३।२४।२-४। वे ही इस समय उपस्थित। अतः प्रतिबिम्ब को बिम्ब में लय करके) बिम्बरूपा सीता को अग्नि से प्रकट करने के लिए (एवं लौकिक कलंक के प्रक्षालन के लिए) इनका उन्हें कुछ दुर्वचन कहना। पातिव्रत की परीक्षा देने के लिए, इनका स्मरण कर, उनका लक्ष्मण द्वारा प्रज्वलित की गयी अग्नि में प्रवेश। प्रतिबिम्ब विम्ब में लीन, लौकिक कलंक भस्म। इनके इस चरित्र से सुर-सिद्ध-मुनि भी अनभिज्ञ (६।१०८।१४ - ६।१०६।छं० १)। मूर्त्त होकर अग्नि द्वारा इन्हें जानकी उसी प्रकार समर्पित, जिस प्रकार क्षीरसागर द्वारा विष्णु को लक्ष्मी। इनका सीता को वामभाग में स्थान देना। उनके साथ इनकी शोभा देख हर्षित रीछ-वानरों द्वारा इनकी जयजयकार। आकाश में नृत्य-गीत-पुष्पवृष्टि (६।१०६।छं० २ - ६।१०६ ख)।

इनकी आज्ञा पाकर मातलि का (रथ लेकर) प्रस्थान (६।११०।१)। देवताओं द्वारा इनकी विनती (६।११०।२-१२)। प्रेम-पुलकित ब्रह्मा द्वारा स्तुति। इनके चरणों में मंगलकारी प्रेम की उनकी वर-याचना (६।११०-६।१११)। उसी समय दशरथ का (स्वर्ग से) आगमन। इन्हें देख उनके नेत्रों में जल। इनके द्वारा अनुजसहित उनकी वन्दना, आशीर्वाद-प्राप्ति। उनके पुण्य से ही असुर-विजय में अपने समर्थ होने का इनका कथन। उन्हें रोमांचित देख इन्हें उनके प्रेम का अनुमान। (उनकी पुत्र-बुद्धि के निवारणार्थ, उन्हें अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए) इनका उनकी ओर देखकर (वि० के अनुसार पश्यन्ती द्वारा) उन्हें दृढ़ ज्ञान देना। उनका मन भेद-भक्ति में लीन। (ऐश्वर्य-ज्ञान हो जाने के कारण) इन्हें बार-बार प्रणाम कर उनका सुरधाम गमन (६।११२।१-८)। इन्द्र द्वारा इनकी स्तुति। भक्ति की याचना (६।११२ - ६।११३।छं०)। इनसे आज्ञा देने की उनकी प्रार्थना। उन्हें बड़ाई देने के लिए इनका आदेश– वे इनके लिए समर-भूमि में निहत वानर-भालुओं को पुनर्जीवित कर दें। उनके द्वारा सुधावृष्टि। राक्षसों का मन रामाकार, अतः उनका जीवित न होना। उन्हें मोक्ष-प्राप्ति। वानर-भालुओं का जी उठना (यद्यपि उनका मन भी रामाकार), क्योंकि यही इनकी इच्छा (६।११३-६।११४।१०)। देवताओं के चले जाने पर शिव का आगमन। गद्‌गद् वाणी से इनकी स्तुति करके उनकी प्रार्थना – ये सिय-लक्ष्मण-सहित नृपरूप में निरन्तर उनके हृदय में वास करें। राज्याभिषेक के समय इनके उदार चरित को देखने वे आयेंगे (६।११४ क - ६।११५)!

शिव के प्रस्थान करने पर विभीषण की विनय– अब ये उनके गृह को पुनीत करें। (इनकी चरण-रज पड़ने से पापमयी लंका पवित्र हो जायेगी।) उनका कोश, सम्पदा देखकर वानरों में वितरण करें। उन्हें सब प्रकार से अपनाकर, उन्हें साथ लेकर अयोध्या जायें। सुनकर इनके नेत्रों में जल। उनके कोश-गृह को स्वीकारते हुए इनका कथन कि भरत की दशा का, उनकी प्रीति और दैन्य का, स्मरण करके ये उनसे शीघ्रातिशीघ्र मिलने को आतुर। (अतः विभीषण के घर जाना इनके लिए संभव नहीं।) इनकी विभीषण से ऐसा उपाय करने की विनती जिससे ये शीघ्र भरत को देख सकें। अवधि बीत जाने पर भरत को जीवित न पाने की आशंका से ये व्यग्र। इनकी विभीषण को आज्ञा और शिक्षा– वे मन में इनका स्मरण करते हुए कल्पान्त-पर्यन्त राज्य करें। फिर उन्हें इनका धाम प्राप्त होगा (६।११६।१-६।११६ घ)। उनका और वानर-भालुओं का इनके चरण पकड़ना (६।११७।१-२)। पुनः घर जाकर, पुष्पक विमान को मणि-वस्त्रों से भरकर, विभीषण का इनके सामने रखना। इनके आदेश से आकाश में जाकर उनकी वर्षा करना। वानरों का मणियों को मुँह में रखकर फेंक देना, वस्त्रों को किसी प्रकार धारण कर इनके सम्मुख आना। इस तरह वानरों के साथ इनका कौतुक-विनोद। उन्हें दया-दृष्टि से देखकर इनका कोमल

वाणी में कथन– उन्हीं के बल पर इनके द्वारा रावण का वध, विभीषण का राज्याभिषेक। अब वे अपने-अपने घर जायें। इनका स्मरण करें, निर्भय हों। यह सुनकर प्रेमाकुल वानरों द्वारा विनती। इनकी प्रेरणा से इनके रूप को हृदय में धारण कर, विनय करते हुए उनका प्रस्थान (६।११७।३-६।११८ क)। प्रेमविवश विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अंगद, नील आदि का सजलनेत्र मौन, स्थिर रहकर निर्निमेष इनकी ओर देखना। उनकी प्रेमातिशयता देख इनका उन्हें विमान पर चढ़ाना। विप्र-चरणों में मानसिक प्रणाम करके विमान को उत्तर की ओर चलने का इनका आदेश। सबके द्वारा इनकी जय-जयकार (६।११८ ख - ६।११६।३)।

पुष्पक में एक ऊँचे सिंहासन पर ये सीतासहित शोभित। (वेगगामी विमान से) इनका सीता को रणभूमि के विभिन्न स्थान, सेतुबन्ध, रामेश्वर और वन के उन स्थलों को दिखाना जहाँ आते समय इन्होंने विश्राम किया था। दण्डकारण्य में इनका अगस्त्य आदि ऋषियों के आश्रमों में जाना। चित्रकूट में मुनियों को सन्तुष्ट करना (कि अब वे निशिचरों के भय से मुक्त)। विमान से जानकी को यमुना, गंगा, प्रयाग, त्रिवेणी के दर्शन कराते हुए अवध के आकाश में पहुँचना। अपनी जन्मभूमि को देखकर इनके नेत्रों में जल, शरीर में पुलक। हर्षित हो, सीतासहित प्रणाम करके, इनका त्रिवेणी में आकर स्नान और वानरोंसहित ब्राह्मणों को दान। हनुमान् को समझाकर इनका आदेश– वे वटुरूप में अवध जाकर भरत को इनका कुशल सुनायें और उनका समाचार लेकर (शृंगवेरपुर में) आ जायें (६।११६।४-६।१२१।२)। इनका भरद्वाज के आश्रम में जाना। नाना प्रकार से इनकी पूजा-स्तुति करके भरद्वाज का इन्हें आशीर्वाद देना। उनकी चरण-वन्दना कर, विमानारूढ़ हो, गंगा पार करके इनका उतरना। सीतासहित इन्हें देख निषादराज गुह का देह-सुधि भूलकर धरती पर गिरना। उनका प्रेम देख, हर्षित हो, इनका उन्हें उठाकर हृदय से लगाना। परम समीप बैठाकर कुशल-प्रश्न करना। उनके द्वारा इनकी विनती (६।१२१।३-६।१२१।छं०१)।

फलश्रुति– रावणारि-रूप में इनका चरित्र पावन, भक्तिप्रद, कामादि विकारों को दूर कर विज्ञान सम्पादन करनेवाला। [वि० के अनुसार 'रावनारि चरित्र' से लंकाकाण्ड की कथा अभिप्रेत, यह फलस्तुति लंकाकाण्ड की।] इनके समर-(सम्बन्धी) विजयचरित्र के सुजान श्रोताओं को इनके द्वारा नित्य विजय, विवेक, विभूति प्रदान। कलिकाल पाप-निवास। इसमें इनके नाम को छोड़ कोई दूसरा आधार नहीं। (६।१२१।छं० २ - ६।१२१ ख)।

वानरों से युक्त, लक्ष्मण-सेवित, इनके पुष्पकारूढ़ रूप की वन्दना (७।१।श्लो०१)। इनके चरण-कमल में चिन्तकों का मन सदा अनुरक्त (७।१।श्लो०२)।

चौदह वर्ष की अवधि का एक दिन शेष। इनके वियोग में अवधवासी आर्त्त। शुभ शकुन देख हर्षित। भरत के मन में तरह-तरह के विचार, ग्लानि। इनके स्वभाव का स्मरण कर उन्हें इनके मिलने का विश्वास, लेकिन पुनः शंका। इनके विरह में मग्न हो, इनका नाम-जप करते हुए उनका नयनाश्रु बहाना। (७।१।दोहा - ७।१ ख)। इसी समय हनुमान् का आगमन। उनसे सीता-सहित इनके आने का समाचार सुन भरत के सब दुख दूर। इनके दास के रूप में हनुमान् का परिचय पाकर भरत का सादर प्रेमसहित उनसे मिलना, जैसे स्वयं ये मिल गये हों। उनसे इनका सम्पूर्ण चरित सुनकर भरत की उत्कंठ जिज्ञासा– ये कभी निज दास की भाँति उनका स्मरण करते हैं? हनुमान् का निवेदन– 'राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम ताता।' (७।२।१ - ७।२ क)। हनुमान् से भरत का कुशल-समाचार सुन इनका पुष्पक पर चढ़कर प्रस्थान (७।२ ख)। भरत का अयोध्या जाकर इनके आगमन का समाचार कहना। अवध में इनके स्वागत की तैयारियाँ। इनसे मिलने के लिए गुरु, शत्रुघ्न आदि के साथ भरत का चलना। इनका विमान देख अवध में हर्षोल्लास (७।३।१-७।३ ग)।

इधर विमान पर से विभीषण और वानरों को अवधपुरी दिखाते हुए इनका कथन– यद्यपि वैकुण्ठ वेद-पुराण-विदित, सर्ववन्दित, किन्तु वह भी इन्हें अवध के समान प्रिय नहीं। यह गुप्त रहस्य केवल अधिकारियों को ही ज्ञात। प्रियता का अन्य कारण यह कि अयोध्या इनकी जन्मभूमि। इसके उत्तर में पवित्र नदी सरयू जिसमें मज्जन करने से इनके सान्निध्य की प्राप्ति। यहाँ के निवासी इन्हें अत्यन्त प्रिय। यहाँ वास करनेवाले इनके धाम के अधिकारी। इनकी वाणी सुन कपियों को हर्ष (७।४।१-८)। (अपने स्वागत के लिए) सबको आते देख इनका पुष्पक को नगर के समीप उतारना। उसे कुबेर के पास जाने का आदेश देना। विमान को इनसे वियुक्त होने का दुःख (७।४ क, ख)।

वसिष्ठ आदि मुनियों को देख धनुष-बाण रख, दौड़कर इनका अनुजसहित उनके चरण पकड़ना। सब

ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें नमन करना। अपने चरणों में गिरे भरत को बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगाना। दोनों के मिलन की शोभा ऐसी जैसे शरीरधारी शृंगार और प्रेम हों। इनका शत्रुघ्न से भेंटना। (भरत-लक्ष्मण, लक्ष्मण-शत्रुघ्न का मिलन। भरत-शत्रुघ्न का सीता के चरणों में नमन।) पुरवासियों की प्रेमातुरता देख, अपने अनेक रूप प्रकट करके इनका सबसे यथायोग्य मिलन। इनकी कृपादृष्टि से सबके दुःख दूर (७।५।१ - ७।६।८)। वात्सल्य - प्रेरित माताओं से प्रेमपूर्वक मिलकर, मृदु वचन कहकर, इनका उन्हें सुखी करना। इनके चरणों में लक्ष्मण को अनुरक्त जानकर सुमित्रा का उनसे भेंटना। कैकेयी इनसे मिलते हुए संकुचित। (लक्ष्मण का माताओं से मिलन। कैकेयी से बार-बार मिलना। सीता का सासुओं की चरण-वन्दना करना।) वात्सल्य-मग्न माताओं का इन्हें निहारना। मंगल-समय जानकर नयनाश्रु रोक आरती निछावर करना। इन्हें बार-बार देखते हुए कौसल्या के मन में विस्मय-- ये और लक्ष्मण अति सुकुमार और राक्षस महाबली। इन्होंने लंकेश्वर रावण को मारा कैसे! सिय-लक्ष्मणसहित इन्हें देख वे परमानन्द-मग्न (७।६।९ - ७।७)।

मनुष्य शरीरधारी विभीषण तथा रीछ-वानरों द्वारा इनके चरणों में पुरवासियों के प्रेम की सराहना। इनका वानर-भालुओं से कुलपूज्य गुरु की चरण-वन्दना कराना। गुरु के आगे सखारूप में उनका परिचय देना, उनकी बड़ाई करना। उनका कौसल्या के चरणों में नमन। इनका महल की ओर चलना। आकाश सुमन-वृष्टि से संकुल। अटारियों पर चढ़े नर-नारियों द्वारा इनके दर्शन (७।८।१ - ७।८ ख)। गृहद्वार-वीथिका-नगर मंगल-रचना से सज्जित। मार्ग में स्त्रियों द्वारा इनकी आरती। निछावर और आशीर्वाद। मंगल शकुन। सबको सनाथ कर इनका महल में प्रवेश (७।९।१ - ७।९ ख)। कैकेयी को लज्जित समझ पहले उन्हीं के महल में जाना। उन्हें समझाकर उनका ग्लानि-संकोच दूर कर इनका अपने भवन में आना (७।१०।१-३)।

इनके अभिषेक के लिए उसी दिन शुभ मुहूर्त्त, यह समझ वसिष्ठ का ब्राह्मणों को बुलाना। सबका मत कि 'जग अभिराम राम अभिषेका।' इसमें विलम्ब का प्रयोजन नहीं। सुमंत्र को सब व्यवस्था करने की वसिष्ठ की आज्ञा। अवधपुर सज्जित (७।१०।४ - ७।११।१)।

इनका सेवकों को आदेश कि वे पहले सखाओं को स्नान करायें। फिर इनका भरत को बुलाना। अपने हाथों से उनकी जटाएँ सुलझाना (क्योंकि इन्हीं के लिए उन्होंने जटाएँ धारण कीं) तीनों भाइयों को मंगल-स्नान कराके तब अपनी जटाएँ खोलना। गुरु की आज्ञा पाकर स्वयं मंगल-स्नान करना, आभूषण धारण करना। सासुओं का जानकी को मंगल-स्नान कराके दिव्य वस्त्राभूषणों से सजाना। इनके वाम भाग में वे शोभित। यह छवि देख माताएँ कृतार्थ। ब्रह्मा, शिव, सुर-मुनि-वृन्द का आगमन (७।११।२ - ७।११ ग)। इन्हें देख अनुराग से भर मुनि वसिष्ठ का दिव्य तेजोमय सिंहासन मँगाना। ब्राह्मणों को नमन कर ये उस पर जानकीसहित आसीन। भरत का इन पर छत्र लगाना, लक्ष्मण का चँवर करना, शत्रुघ्न का पंखा झलना। विभीषण, अंगद, हनुमान् इनके आयुध क्रमशः धनुष-बाण, असि-चर्म और शक्ति धारण किये हुए। हर्षित मुनियों द्वारा वेद-मन्त्रोच्चार। आकाश में देवताओं द्वारा इनकी जयजयकार। पहले वसिष्ठ द्वारा इनका तिलक, फिर उनकी आज्ञा से अन्य सब विप्रों द्वारा। आनन्दित माताओं का बार-बार इनकी आरती उतारना। इन्हें सिंहासनारूढ़ देख आकाश में देवताओं का दुन्दुभि-वादन, गन्धर्व-किन्नरों का गान, अप्सराओं का नर्तन। इनकी शोभा के दर्शन करनेवाले धन्य। इस शोभा, समाज, सुख के कथन में भुशुण्डि असमर्थ; शेष-शारदा-वेदों द्वारा इसका वर्णन, किन्तु इसके रस का ज्ञान-अनुभव केवल महादेव को (७।१२।२ - ७।१२ क)।

देवताओं द्वारा इनकी पृथक्-पृथक् स्तुति, निजधाम-गमन। चारणों के वेश में आकर वेदों द्वारा निर्गुण-सगुण ब्रह्मरूप में इनकी स्तुति, इनके चरणानुराग की वर-याचना। अन्तर्धान हो जाने पर शिव का आगमन। इनकी स्तुति करके अविनाशिनी भक्ति और सत्संग का वर माँग उनका कैलास-गमन। इनके द्वारा वानरों के लिए सुखप्रद वास की व्यवस्था (७।१२ ख - ७।१४ ख)। इनके राज्याभिषेक-प्रसंग की फलश्रुति (७।१२।१-७)।

इनके चरणों में अनुरक्त वानर ब्रह्मानन्द-मग्न। घर की सुधि नहीं। छः मास व्यतीत और उन्हें ज्ञात ही नहीं। इनका उन्हें बुलाना। परम प्रेमपूर्वक निकट बैठाकर मधुर वाणी में उनकी सेवा के लिए प्रशंसा करना। 'अनुज राज संपति बैदेही देह गेह परिवार सनेही' सब इन्हें प्रिय, किन्तु उनके समान नहीं, क्योंकि 'मोरें अधिक दास पर प्रीती।' अब वे घर जायें। इन्हें सर्वव्यापक और सर्वहितकारी समझकर इनसे अतिशय प्रेम करें, दृढ़ नियमपूर्वक

इन्हें भजें। सुनकर सब प्रेम-विह्वल। करबद्ध हो निर्निमेष देखते हुए मौन। इनका उन्हें ज्ञानोपदेश करना। (विदा करने के लिए) विविधवर्णी अनुपम वस्त्राभूषण मँगाना। भरत का सुग्रीव को, लक्ष्मण का विभीषण को पहनाना। जाम्बवान्, नील आदि को इनका स्वयं पहनाना। हृदय में इनका रूप धारण कर, इनके चरणों में नमन कर, उन सबका प्रस्थान (७।१५-७।१७ क)। तब उठकर सजलनेत्र अंगद की करबद्ध विनती— मरते समय वाली द्वारा वे इन्हें समर्पित। अतः 'असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।। मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।' इनके पदावलम्ब के लिए आर्त्त प्रार्थना करते हुए उनका इनके चरणों में गिरना। इनका उन्हें उठाकर हृदय से लगाना। इनके नेत्रों में प्रेमाश्रु। अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि उन्हें पहनाकर, अनेक प्रकार से समझाकर, उनको विदा करना (७।१८।१ - ७।१८ ख)। चलते हुए उनका घूम-घूमकर इनकी ओर देखना, बार-बार दण्ड प्रणाम करना, इस आशा से कि शायद ये रहने के लिए कहें। इनके स्वभाव का स्मरण कर, विनय करके, इनके चरणों को हृदय में धारण कर, उनका प्रस्थान (७।१९।१-५) हनुमान् का सुग्रीव से निवेदन कि कुछ दिन इनकी पदसेवा कर वे उनके दर्शन करेंगे। इनकी सेवा का सौभाग्य पाने के कारण सुग्रीव का उन्हें धन्य कहना। अंगद की हनुमान् से विनय कि हनुमान् इनसे उनका दण्डवत् कहें, इन्हें उनका स्मरण कराते रहें। अपने प्रति उनके प्रेम की बात हनुमान् से सुनकर ये मग्न। इनका चित्त 'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।'— यहाँ मनुष्य की गति नहीं (७।१९।८-७।१९ ग)। निषादराज को बुलाकर इनका प्रसाद रूप में वस्त्राभूषण देना। कथन— वे इनके सखा, भरत के समान प्रिय भाई। अयोध्या में सदा आते-जाते रहें। सुख-मग्न निषाद का इनके चरणों को हृदय में रख गमन। परिजनों को इनका स्वभाव सुनाना (७।२०।१-५)। इनके चरित देखकर पुरवासियों का इन्हें धन्य कहना (७।२०।६)।

इनके राजा होने पर त्रिलोक आनन्दित। इनके प्रताप से वैर-भाव, विषमता नष्ट। सबके द्वारा वर्णाश्रम-धर्म और वेद की मर्यादा का अनुसरण। सब स्वधर्म-पालन में निरत, त्रिताप-मुक्त। जगत् में धर्म अपने चारों चरणों से पूर्ण। [चार चरण— 'तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः। भा० १।१७।२४। नियमतः त्रेता में एक चरण, तप, का ह्रास होना उचित, किन्तु रामावतार में चारों चरण विद्यमान। वि०।] सब इनकी भक्ति में निरत, परमगति के अधिकारी। सब दीर्घायु। दुःख-रोग-दारिद्रय-दैन्य का सर्वथा अभाव। सब गुणी, पंडित, ज्ञानी। कपट का लेश नहीं। सब काल-कर्म स्वभाव-गुण के घेरे में होने पर भी उनके दुःखों से मुक्त (७।२०।७-७।२१)। 'भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।' इनके ऐश्वर्यरूप का जिन्हें ज्ञान, वे भी इनकी माधुर्य लीला में ही अनुरक्त (७।२२।१-५)। इनके राज्य की सुख-सम्पदा अवर्णनीय। आदर्श प्रजा, आदर्श प्रकृति (७।२२।६-७।२३)। इनके द्वारा अनेक अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान (७।२४।१)। परिवारसहित इनका आदर्श व्यवहार। विधाता से नगरवासियों की इनके चरणों में प्रेम की याचना (७।२४।२-७।२५।५)। इनके लव-कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न। दोनों इन्हीं की प्रतिमूर्त्ति (७।२५।६-७)। इस तरह इनका नर-चरित करना (७।२५)।

नित्य प्रातःकाल सरयू-स्नान कर ब्राह्मणों-सत्पुरुषों के साथ ये सभा में विराजमान। गुरु वसिष्ठ से इनका वेद-पुराण-श्रवण। भाइयों के साथ भोजन। उपवन में जाकर भरत-शत्रुघ्न का हनुमान् से बार-बार इनकी गुणगाथा सुनना। घर-घर में पुराण और इनके चरित्र का पाठ और श्रवण। दिनरात प्रजा द्वारा इनका गुणगान (७।२६।१-८)। इनके नगर की सुषमा अवर्णनीय। इनके दर्शन के लिए नारदादि, सनकादि मुनीश्वरों का प्रतिदिन अयोध्या आगमन। नगर देख वैराग्य का विस्मरण। प्रत्येक गृह में चित्रशाला जहाँ इनके चरित्र अंकित। बालकों का शुक-सारिकाओं को इनका नामोच्चार करने की शिक्षा देना (७।२६, ७।२७।१-२, ७।२७, ७।२८।७, ७।२८।छं०, ७।२९)। इनका गुणगान करने में सबको सुख। इनका स्वरूप कहकर इन्हें जानकीसहित भजने का एक-दूसरे को उपदेश (७।३०।१ - ७।३०)। इनके प्रताप-दिनेश के उदय से त्रिलोक में प्रकाश। अविद्यान्धकार का नाश। धर्म और उसके साथ सुख-सन्तोष-विराग-विवेक-ज्ञान-विज्ञान का विकास। हृदय में इनके प्रताप-सूर्य का उदय होने पर भी यही बात (७।३१।१-७।३१)।

एक बार इनका भ्राताओं और पवनकुमार के साथ उपवन देखने जाना। अनुकूल अवसर देख सनकादि का इनके पास आना। इनका हर्षित होकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करना। कुशल पूछकर उनके लिए आसन रूप में अपना उत्तरीय बिछाना, हनुमान्सहित तीनों भाइयों का उन्हें दण्डवत् करना (७।३२।१-७।३३।१)। मुनियों का इनकी छवि

को निर्निमेष निहारना। उनकी दशा देख इनके शरीर में पुलक, नेत्रों में प्रेमाश्रु। हाथ पकड़कर उन्हें बैठाकर उनके दर्शन से स्वयं को धन्य कहना, सन्तरूप से उनकी स्तुति करना (७।३३।२-७।३३)। सनकादि द्वारा सगुण-निर्गुण रूप में इनका स्तवन। इनसे अविचल प्रेमाभक्ति का वर पाकर उनका ब्रह्मलोक-गमन (७।३४।१-७।३५)। तीनों भाइयों का इनके चरणों में नमन। इनसे कुछ पूछने में उन्हें संकोच। उनका हनुमान् की ओर देखना। हनुमान् से यह सुनकर कि भरत कुछ पूछने को उत्सुक, इनका कथन कि 'भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।' भरत की विनय— सन्तों के लक्षण तथा सन्त-असन्त-भेद समझाकर कहने की इनसे प्रार्थना (७।३६।१-७।३७।५)। इनके द्वारा सन्तों और असन्तों के लक्षणों का उपदेश (७।३७।६-७।४०)। उनके भेद का कथन। इनके श्रीमुख की वाणी सुन सब प्रेममग्न। सबके द्वारा बार-बार इनकी विनती। गृह-गमन (७।४१।१-७।४२।३) नारद का बार-बार आकर इनके चरित का गान करना और नित्य नवचरित देख ब्रह्मलोक में जाकर सुनाना। ब्रह्मा का बार-बार सुनने की उत्सुकता प्रकट करना। इनका गुण-गान सुनते हुए सनकादि द्वारा समाधि का विस्मरण (७।४२।४-७।४२)।

एक बार इनका गुरु वसिष्ठ, ब्राह्मणों, पुरवासियों आदि को बुलाना। उपदेश करने से पूर्व इनका स्पष्टीकरण— इनका कथन प्रयोजन-सिद्धि, अनीति अथवा प्रभुता की दृष्टि से नहीं। वे सुन लें और जिसमें अपना हित समझें, करें। किन्तु 'सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जोई।।' यह बात किसी को अनुचित लगे, तो वह इन्हें रोके। इनका उपदेश— माया-प्रेरित काल-कर्म-स्वभाव-गुण से घिरे जीव का चौरासी लाख योनियों में भ्रमण। ईश्वर की करुणा से कभी उसे नर-देह प्राप्त। यह शरीर देव-दुर्लभ। इसी से साधन-चतुष्टय-सम्पादन और मोक्षप्राप्ति सम्भव। भव-सागर-सन्तरण के इच्छुक व्यक्ति पर ये विशेष कृपालु। उसे सद्गुरु भी प्राप्त। इसके बावजूद विषय-रस में डूबकर परलोक न सुधारनेवाला कृतघ्न और आत्मघाती इहलोक-परलोक में दुःख भोगने को बाध्य।

दोनों लोकों में सुख-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग इनकी भक्ति। ज्ञानमार्ग अत्यन्त कठिन। उसमें सफल होनेवाले विरल। वे भी यदि भक्तिविहीन, तो इन्हें प्रिय नहीं। भक्ति सब सुखों की खान, किन्तु उसके लिए सत्संग आवश्यक। पुण्योदय के बिना संतों का मिलना सम्भव नहीं और संसार में सर्वोत्कृष्ट पुण्य मन-वचन-कर्म से विप्रपद-पूजन। और एक गुप्त मत यह कि 'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।' (७।४३।१-७।४५)। इनके द्वारा भक्त के स्वभाव और आचरण का कथन। सांसारिक मोह-मद-ममता त्यागकर इनके गुण-ग्राम-गान और नाम-जप में निमग्न रहनेवाले भक्त को परमानन्द-राशि की अनुभूति। वह सुख अनिर्वचनीय (७।४६।१-७।४६)। इनके सुधासम वचन सुन इनके चरण पकड़कर सबकी विनती— 'जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपानिधान प्रान ते प्यारे।। तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी।।' जगत् में सब स्वार्थ के मीत, परमार्थ-साधन में सहायक कोई नहीं। निःस्वार्थ उपकार करनेवाले तो केवल दो ही— ये और इनके सेवक। उनके प्रेम-रस-सिक्त वचन सुन इन्हें हर्ष। इनकी आज्ञा पाकर, इनके उपदेश की चर्चा करते हुए सबका गृह-गमन (७।४७।१-८)। सच्चिदानन्दघन ब्रह्म राम ही जहाँ के राजा, वहाँ के निवासी भी कृतार्थ— शिव-कथन (७।४७)।

एक बार वसिष्ठ का इनके पास आना। उनके द्वारा गुरुभाव से उनका समादर— पद-प्रक्षालन, चरणोदक-ग्रहण। उनके द्वारा परमात्म-भाव से इनकी करबद्ध विनती— इनके आचरण (चरणोदक-ग्रहण आदि) देख-देखकर उन्हें अपार मोह। पौरोहित्य-कर्म को निन्दित मानकर उनके अस्वीकार करने पर ब्रह्मा का उनको समझाना — भविष्य में इससे लाभ होगा, रघुकुल में साक्षात् ब्रह्म अवतरित होंगे। अतः ध्येय को प्राप्त करानेवाले साधन को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानकर उनका पौरोहित्य-कर्म को स्वीकारना। इनके चरणों में अविच्छिन्न प्रेम-प्राप्ति ही सब साधनों का एकमात्र सुन्दर फल। उनकी वर-याचना कि किसी भी जन्म में इनके चरणों में उनका प्रेम कम न हो। विनती करके उनका गृह-गमन। (इनका मौन वरदान का सूचक) (७।४८।१-७।५०।१)। [पहले गुरु के आने पर 'गहे चरन सिय सहित बहोरी' (२।६।४), किन्तु यहाँ सीता का उल्लेख नहीं। इससे यह संकेतित .कि सीता-त्याग हो चुका। वि० ७।४६। व्या०।]

हनुमान् और भरतादि भ्राताओं के साथ इनका नगर के बाहर जाना। गज-रथ-तुरंग मँगवाकर उचित रूप से उनका वितरण करना (७।५०।२-४)। [विभाजन पुत्रों और भ्रातुष्पुत्रों में। यहाँ गज-रथ-तुरंग उपलक्षण। सम्पूर्ण राज्य का विभाग हुआ। सबको यथेप्सित सेना दे दी गयी। वि०।] श्रमित होकर इनका शीतल अमराई में आना।

भरत द्वारा बिछाये गये उत्तरीय पर बैठना। भाइयों का सेवा करना। हनुमान् का हवा करना (७।५०।५-६)। इसी समय नारद का आगमन। इनका गुणग्राम-गान कर, इन्हें हृदय में धारण कर, उनका ब्रह्मलोक-गमन (७।५०-७।५१)। [इनकी परधाम-यात्रा का कथन नहीं। केवल पार्वती के प्रश्न (बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। प्रजासहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम।। १।११०) द्वारा यह सूचित कि ये परधाम गये। उस प्रश्न का उत्तर शिव ने नहीं दिया। मा० पी० ७।५१ टिप्पणी १। विद्वानों के मत से तत्व-विज्ञान, चारों साधन, इनसे संबधित अन्य रहस्य तथा गोपनीय बातें कहने के पार्वती के अनुरोध का पृथक् रूप से उत्तर नहीं, रामकथा-वर्णन में ही उनका अन्तर्भाव।]

मानसकथा का उपसंहार करते हुए शिव-कथन— 'रामचरित सतकोटि अपारा'। स्वयं ये (इनके अवतार), इनके गुण-समूह, जन्म-कर्म, नाम सब अनन्त। इनका चरित-वर्णन करके उसका पार पाना असंभव। इनकी कथा हरिपद-दायिनी। उसके श्रवण से इनकी अविनाशिनी भक्ति प्राप्त। भुशुण्डि द्वारा गरुड़ से कही गयी सब कथा उन्होंने सुना दी। प्रसंगात् इनके कुछ गुणों का भी बखान किया। अब वे और क्या सुनायें? (७।५२।१-७)। हर्षित और कृतकृत्य होकर पार्वती की विनती— अब इनके प्रताप का उन्हें ज्ञान। उनका मोह नष्ट। उनके द्वारा इनके चरित और महिमा का गान। 'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रसबिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।' इनके गुणों का जीवन्मुक्त महामुनियों द्वारा निरन्तर श्रवण। मुमुक्षुओं के लिए इनकी कथा दृढ़ नाव। विषयी बद्ध जीवों के लिए इनके गुण श्रवण-सुखद, मनरंजनकारी। इनकी कथा जिन्हें अरुचिकर, वे आत्मघाती। (७।५२।८-७।५३।६)। उनकी शंका — काक-देह पाकर भी भुशुण्डि में वैराग्य-ज्ञान-विज्ञान-सहित इनके प्रति प्रेम-भक्ति दृढ़ कैसे? (७।५३।८, ७।५३)। उनका कथन— धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन्मुक्त, और ब्रह्मलीन, इन सब में भी मद-माया-मुक्त रामभक्तिपरायण जीव अत्यन्त दुर्लभ (७।५४।१-७)। उनके प्रश्न — (१) इनकी भक्ति काक को कैसे मिली? (२) भुशुण्डि 'रामपरायन ग्यानरत गुनागार मति धीर'। उन्हें काक-देह क्यों मिली? (३) इनका पावन चरित्र काक को कहाँ मिला? (४) उनसे शिव ने कैसे सुना? (५) गरुड़ ने मुनियों को छोड़कर भुशुण्डि से इनकी कथा क्यों सुनी? (६) उन दोनों भक्तों में संवाद किस प्रकार हुआ? (७।५४।८-७।५५।५)। इनके चरणों में उनका प्रेम देख शिव का उन्हें धन्य मानना। भुशुण्डि से गरुड़ के भी ऐसे ही प्रश्न। वह पुनीत इतिहास सुनने के लिए शिव की आज्ञा जिसके श्रवण से सकल-शोक-भ्रम-नाश, इनके चरणों में विश्वास का उदय, अनायास भव-सागर-सन्तरण (७।५५।६ - ७।५५)।

बालरूप में ये भुशुण्डि के इष्टदेव। उनकी दिनचर्या इन्हीं से सम्बन्धित। पीपल-वृक्ष के नीचे उनके द्वारा इनका ध्यान। पाकर-तरुतले जपयज्ञ। आम्रवृक्ष की छाया में इनकी मानसी पूजा। वट के नीचे इनकी कथा का प्रसंग। इनके चरित का अनेक प्रकार से प्रेम-आदर-पूर्वक गान। श्रोताओं में पक्षियों के साथ निर्मल-बुद्धि हंस भी। मराल-वेश में शिव का भी कुछ काल तक वहाँ वास और इनके गुणों का श्रवण (७।५६।७, ७।५७।४ - ७।५७)।

युद्ध में ये स्वेच्छा से मेघनाद के नागपाश से बद्ध। इन्हें पाशमुक्त कर गरुड़ के मन में विषाद। मोहजन्य तरह-तरह के विचार— मायातीत परमेश्वर ब्रह्म के अवताररूप में इनकी प्रसिद्धि, किन्तु इनके प्रभाव के दर्शन नहीं। इनके नाम-जप से तो भव-बन्धन-मुक्ति और स्वयं ये एक तुच्छ निशाचर के नागपाश में बद्ध। उनके मन में भ्रम, तर्क-वितर्क (७।५८।३-७।५६।२)। (उनका नारद, ब्रह्मा, फिर शिव के पास जाना।) उनसे शिव का कथन— संशय निरसन के लिए आवश्यक दीर्घकालीन सत्संग, इनकी उस कथा का नित्य श्रवण जिसके आदि, मध्य, अन्त में ये ही प्रतिपाद्य। 'बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।।' अतः उनका गरुड़ को इनके भक्त भुशुण्डि के पास भेजना (७।६१।३ - ७।६२।५)। उनके स्वयं न समझाने का एक कारण यह भी कि कभी गरुड़ के मन में अभिमानोदय जिसे दूर करने के लिए इनका उन्हें मोह-मूढ़ करना (७।६२।७-८)।

इनकी अखण्ड भक्ति से सम्पन्न भुशुण्डि से इनकी कथा सुनने के लिए वटतले बड़े-बूढ़े पक्षियों का समावेश। भुशुण्डि कथा आरम्भ करने को प्रस्तुत, उसी समय गरुड़ का पहुँचना (७।६३।१, ४-५)। (उनका आदर-सत्कार, विनय।) कथा सुनाने की विनती करना। भुशुण्डि द्वारा इनकी गुण-गाथा का आरम्भ (७।६४।३-६)। (वि० के अनुसार ८४ प्रसंगों में) मूल रामचरितमानस का कथन (७।६४।७-७।६८।७)। सुनकर आनन्दित गरुड़ का

निवेदन— रण में इनकी बन्धन में बँधने की मनुष्य-लीला देखकर उनके मन में संशय। अब यह अनुभव कि वह संशय भी इन्हीं की कृपा से। उसी के कारण उनकी भुशुण्डि जैसे सन्त से भेंट, इनकी कथा का श्रवण, इनके चरणों में अनुराग। सबके मूल में इनकी कृपा (७।६८।८-७।६६।८)। भुशुण्डि का गरुड़ को इनका कृपापात्र कहना। मोह के बहाने उन्हें भेजकर इनका भुशुण्डि को बड़ाई देना (७।७०।२-४)।

ये माया के प्रेरक, मायापति। यद्यपि वह मिथ्या, किन्तु इनकी कृपा बिना उससे छूटना असम्भव (७।७१ ख - ७।७२।२)। भुशुण्डि द्वारा इनके स्वरूप का वर्णन। इनमें मोह की प्रतीति अपने ही बुद्धि-मालिन्य का सूचक। भक्तों के लिए भूपरूप धारण कर इनका मनुष्योचित चरित्र करना। इनकी नरलीला देख आसुरी वृत्तिवालों को व्यामोह, भक्तों को सुख। अँधेरे भवकूप में पड़े अभागों के लिए इन्हें जानना संभव नहीं (७।७२।३-७।७३ क)। 'निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ।। (७।७३ ख)। [इनका निर्गुण स्वरूप निर्विकार, अनुभवस्वरूप, वृत्तियों का अविषय। उसमें कोई संशय नहीं। सगुण रूप में जहाँ ऐश्वर्य-बोध, वहाँ शंका नहीं, वह सुगम। किन्तु जहाँ माधुर्य, वहीं मोह। सीता-विरह में इन्हें विलाप करते देख सती को मोह, सीता का शृंगार करते देख जयन्त को, इन्हें नागबद्ध देख गरुड़ को, इनकी अतिशय शिशुलीला देख भुशुण्डि को।]

इनमें भक्त के प्रति माता का-सा ममत्व। उसमें अभिमान-व्याधि उत्पन्न होने पर, उसके हित के लिए अभिमान-हरण करना इनका सहज स्वभाव (७।७४।५-७।७४ ख)। गरुड़ को इनका कृपाभाजन जानकर भुशुण्डि द्वारा इनकी प्रभुता, कृपा और अपनी जड़ता, मोह का रहस्य कथन— बालरूप राम भुशुण्डि के इष्टदेव। जब-जब इनका अवतार, तब-तब उनका अवध-आगमन। इनके जन्म-महोत्सव, बालचरित के दर्शन करना। लघु काक-देह धर इनके साथ इधर-उधर घूमना। इनकी जूठन से तृप्त होना। पाँच वर्षों तक अवध में रहना (७।७४।१-४, ७।७५।१ - ७।७५ क)। एक बार इनके बाल-चरित्र में अतिशय माधुर्य। आँगन में चारों भाइयों का खेलना। इनका नख-शिख-वर्णन। काक-रूप भुशुण्डि के साथ क्रीड़ा। इनका उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ना। उनके भागने पर पूआ दिखाकर बुलाना। उनके पास आने पर हँसना, भागने पर रोना। चरण-स्पर्श के लिए उन्हें आते देख डरकर भागना। इनकी 'प्राकृत सिसु इव' लीला देख भुशुण्डि को मोह। तत्काल इनके द्वारा प्रेरित माया का उन्हें व्यापना, किन्तु वह उनके लिए दुखद नहीं। इसका कुछ और कारण (७।७५ ख - ७।७८।३)। ये अखण्ड एकरस ज्ञानस्वरूप। ये सर्वज्ञ ईश्वर, मायापति। जीव माया के वशीभूत, परतंत्र। ईश्वर एक, जीव अनेक। दोनों का यह भेद मिथ्या, फिर भी इनकी कृपा बिना अछेद्य। इनके भजन बिना क्लेशों से मुक्ति नहीं। [अविद्यास्मिता-रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। योग० साधनपाद २।३।] इनके सेवक को अविद्या का नहीं, इनके द्वारा प्रेरित विद्या माया का व्यापना। इसलिए उसका नाश (अर्थात् पतन) नहीं। उसकी भेद-भक्ति का बढ़ना (७।७८।४ - ७।७६।३)।

भुशुण्डि को भ्रम-चकित देख इनका हँसना। माया को प्रेरित करना। (इनका हास माया। ६।१५।५।) माता-पिता-भाई इनके कौतुक से अनभिज्ञ। भुशुण्डि को पकड़ने के लिए इनका घुटनों के बल दौड़ना। उनका भागना। इनका हाथ बढ़ाना। ब्रह्मलोक तक, फिर सप्तावरणभेद कर जहाँ तक उनकी गति, वहाँ तक उनका पलायन, किन्तु इनकी भुजा और उनके बीच केवल दो अंगुल का अंतर (७।७६।४ - ७।७६ ख)। [सप्तावरण-भेदन— महत्तत्व, अहंकार एवं पंचतत्व (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी जिनके गुण क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)। यह भा० २।५।२२-२६ में विकास-प्रक्रिया। भा० २।२।२८-३० के अनुसार भेदन-प्रक्रिया अन्त से आरंभ की ओर — भा० ११।२४।२२-२६, १२।४।१४-१८ में वर्णित प्रलय-प्रक्रिया के अनुरूप।] त्रस्त होकर उनका आँखें मूँदना। खोलने पर वे पुनः अवध में। इनका मुसकाना। इनके हँसते ही इनके मुख में वे प्रविष्ट। इनके उदर में उन्हें अनेक ब्रह्माण्ड-समूहों के दर्शन। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भिन्न सृष्टि, भिन्न त्रिदेव। प्रति ब्रह्माण्ड में इनका अवतार। अयोध्या, सरयू, कौसल्या, दशरथ आदि सब भिन्न, किन्तु ये सर्वत्र एकरूप। वही शैशव, वही शोभा। भुशुण्डि को मोह से विकल देख इनका हँसना। वे इनके मुख से बाहर। पुनः उनके साथ इनकी वही बाल-क्रीड़ा (७।८०।१-७।८२ ख)।

यह माधुर्य, और वह ऐश्वर्य! प्रेमाकुल हो, त्राहि-त्राहि कर उनका भूमि पर गिरना। इनका माया की प्रभुता को रोकना। उनके सिर पर हाथ रखकर मोह-दुःख-हरण। भक्ति का उल्लेख तक न कर ऋद्धि-सिद्धि, ज्ञान-मोक्ष आदि माँगने के लिए उनसे कहना। उनकी याचना पर अपनी अविरल भक्ति देकर उन्हें अन्य अनेक वरदान।

इनका ज्ञान-कथन— इन्हें वे अनादि ब्रह्म, नित्य, निर्गुण होने पर भी गुणों के आकर समझें। (७।८३।१ - ७।८५ क)। इनका सिद्धान्तोपदेश— चराचर जीव इनके द्वारा उत्पन्न, अतः इन्हें प्रिय, किन्तु सर्वाधिक प्रिय मनुष्य। मनुष्यों में द्विज, द्विजों में वेदज्ञ, वेदज्ञों में वेद-धर्म पर चलनेवाले, और उनमें भी वैराग्यवान् इन्हें अधिक प्रिय। विरक्तों से अधिक ज्ञानी, ज्ञानियों से अधिक विज्ञानी और उनसे भी अधिक प्रिय इनके अनन्यगति सेवक। इनकी प्रियता का एकमात्र मानदण्ड भक्ति। अपने कथन के प्रमाणरूप में इनके द्वारा पितृभक्त बालक का उदाहरण प्रस्तुत। इनका भुशुण्डि को उपदेश कि सब आशा-भरोसा छोड़कर वे इनका भजन करें। (७।८५ ख - ७।८८।५)। इनका पुनः शिशु चरित्र करना। कुछ काल अवध में रहकर भुशुण्डि का अपने आश्रम में लौटना (७।८८।५ - ७।८९।२)।

इनका गुप्त चरित्र कहकर भुशुण्डि द्वारा आत्मानुभूत सिद्धान्त का कथन— इनके भजन के बिना क्लेशों का नाश संभव नहीं। इनकी कृपा बिना इनकी प्रभुता का ज्ञान नहीं। प्रभुता को जाने बिना विश्वास, उसके बिना प्रीति और प्रीति के बिना भक्ति का दृढ़ होना असंभव। भक्ति के बिना सहज संतोष और सुख अलभ्य (७।८९।३-७।९०।१)। अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए पाँचों तत्वों और तन्मात्राओं के दृष्टान्त देकर उनका कथन कि 'बिनु हरिभजन न भव भय नासा'। यह समझकर कुतर्क-संशय त्याग इनका भजन करने का उपदेश (७।९०।२-७।९१।२)! स्वयं ये अनन्त। इनकी महिमा, नाम, रूप, गुण-गाथा, सब अमित। मुनियों द्वारा अपनी-अपनी मति के अनुसार इनका गुणगान, किन्तु इनका पार पाने में वेद, शेष, शिव भी असमर्थ। इनकी अपरिच्छिन्न महिमा का भुशुण्डि द्वारा किंचित् दिग्दर्शन। 'निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा'। ये भाव के वश। में। अतः ममत्व-मद-मान छोड़कर इनका भजन अपेक्षित (७।९१।३-७।९२ ख)।

इनके प्रताप और रहस्य का गरुड़ को ज्ञान। अपने मोह का स्मरण कर उन्हें पश्चात्ताप। भुशुण्डि को इनके समान जानकर उनका प्रेम बढ़ाना। कृतज्ञता-ज्ञापन (७।९३।१-८)। (गरुड़ के प्रश्न। सुनकर भुशुण्डि को अपने पूर्वजन्मों का स्मरण।) भुशुण्डि-कथन— जप-तप-यज्ञ-शम-दम-व्रत-दान-विरति-विवेक-योग-विज्ञान सबका साफल्य इनके चरणानुराग में। बिना उसके कल्याण नहीं। काक-शरीर में इनकी भक्ति दृढ़ हुई, अतः वह उन्हें अत्यधिक प्रिय। इच्छामरण होने पर भी उस शरीर का त्याग नहीं, क्योंकि देह के बिना इनका भजन असंभव (७।९५।४-७।९६।५)। पहले वे इनसे विमुख, अतः अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए, योग-यज्ञादि के बावजूद, उन्हें कभी ऐसी सुखानुभूति नहीं (७।९६।६-९)। हृदय में इनका निवास होने पर ही व्यक्ति को यह ज्ञान कि किसी भी जन्म में अवधवास करने पर इनके चरणानुराग की प्राप्ति (७।९७।६-७)।

सत्ययुग में इनके योग-ध्यान से, त्रेता में इनको समर्पित किये यज्ञ से, द्वापर में इनके पूजन से भव-संतरण, किन्तु कलियुग में केवल इनके गुण-गाथा-गान से भव-सागर की थाह का पता लगना। 'नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं' (७।१०२ ख - ७।१०३ क)। (सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्मों का वर्तन, किन्तु) इनके सेवकों को काल-धर्म का न व्यापना। इनके भजन से गुण-दोषों से मुक्ति (७।१०४।७ - ७।१०४ क)।

(शूद्र-योनि में भुशुण्डि शिवभक्त, हरि-निंदक।) भुशुण्डि को गुरु की शिक्षा— शिव इनके सेवक। उनकी भक्ति का फल इनकी अविरल भक्ति की प्राप्ति। इनके प्रति द्रोह करने से कल्याण नहीं (७।१०६।१-५)। (गुरु-अवज्ञा से भुशुण्डि को शिव-शाप। फिर शापानुग्रह।) शिव का आशीर्वाद— अवध-वास के प्रभाव और उनके अनुग्रह से भुशुण्डि के हृदय में इनकी भक्ति उत्पन्न होगी। इनको प्रसन्न करने का व्रत है द्विजसेवा (७।१०९।५, ९-११)। विभिन्न योनियों में इनके भजन में भुशुण्डि की प्रवृत्ति। विप्रदेह मिलने पर बालक्रीड़ा में भी इनकी लीलाओं का अनुसरण। इनके प्रेम को छोड़ सब ओर से विरक्ति। इनके भजन के लिए वन-गमन। मुनियों से इनके गुणों का श्रवण। इनके चरण-दर्शन की मन में लालसा। इनका यश-ज्ञान करते हुए भ्रमण (७।११०।१-७।११० क)। उनकी प्रार्थना पर लोमश मुनि का उन्हें इनकी कथा सुनाना। फिर सगुण का खंडन कर निर्गुण-निरूपण करना (७।११०घ - ७।१११।३, ७।१११।८-१२)। (भुशुण्डि द्वारा तर्क-वितर्क। बार-बार निर्गुण को खंडित कर सगुण स्थापन।) वस्तुतः उनकी मुनि-शाप से काकरूप होकर, इनका स्मरण कर, उनका उड़ जाना (७।११२।१५-७।११२ ख)। मुनि का उन्हें प्रेम-परीक्षा लेने के लिए ही इनका मुनि की बुद्धि को भ्रमित करना। पुनः मुनि की मति फेरना। मुनि का उन्हें बुलाकर इनका मंत्र देना। इनके बालरूप का ध्यान बताकर रामचरितमानस सुनाना। इनकी अविरल भक्ति पाने, इनके प्रिय होने, इनके रहस्यों का ज्ञान होने का आशीर्वाद देना। उन्हें मुनि से और भी आशीर्वाद प्राप्त। इनके

द्वारा आकाशवाणी से मुनि के कथन की पुष्टि। इनकी कृपा से दुर्लभ वर पाकर प्रसन्न मुशुण्डि का नील शैल के आश्रम पर आना। उनके द्वारा सदा इनका गुणगान और सुजान पक्षियों द्वारा श्रवण (७।११३।१-७।११४।११)। इनका अवतार होने पर अवध जाकर उनके द्वारा इनकी बाल-लीलाओं के दर्शन (७।११४।१२-१४)। काक-देह से इनकी भक्ति प्राप्त, अतः वह उन्हें प्रिय (७।११४।१६-७।११४ क)।

(ज्ञान और भक्ति में अभेद और भेद भी।) भक्ति और माया नारिवर्ण, अतः भक्ति का माया के प्रति मोह नहीं। भक्ति इनकी प्रिया और माया नर्तकी। ये सदा भक्ति के अनुकूल, अतः माया उससे भीत। यह इनका रहस्य। इनकी कृपा से जिसे इसका ज्ञान, उसे मोह का भय नहीं (७।११६।३-७११६ क)। (ज्ञान-दीप-प्रसंग)। इनके भजन से मुमुक्षा न होने पर भी दुर्लभ मुक्ति का आना। इसीलिए इनके भक्तों द्वारा भक्ति में अनुराग और मुक्ति का निरादर। भक्ति से संसृति-मूल अविद्या का नाश (७।११९।३-१०)। सेवक-सेव्य भाव से इनकी भक्ति किये बिना भव-संतरण असंभव (७।११९ क, ख)। भक्ति-चिन्तामणि का रूपक— यह परम प्रकाशरूप। कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ। इससे अविद्यान्धकार का नाश। जिसके हृदय में इसका वास उससे काम-लोभ-मोहादि दूर। प्रतिकूल भी उसके अनुकूल। वह मानस रोगों-दुःखों से सर्वथा मुक्त। [भक्तिरूपी चिन्तामणि के हृदय में होने पर कर्तृत्वाभिमान निःशेष। भक्त सर्वात्मना इन पर निर्भर। इनके प्रेरक होने की भावना उसमें दृढ़। अतः दुःख के लवलेश का न होना सिद्ध। वि०।] भक्ति-मणि को पाने के लिए (शास्त्रीय पद्धति से) यत्न करनेवाले ही चतुर शिरोमणि। यह प्रकट होने पर भी इनकी कृपा के बिना अप्राप्य (७।१२०।१-११)। वेद-पुराण ही पावन पर्वत। उनकी रामकथारूपी खानों में इनकी भक्ति गुप्त। सन्त-संग के प्रभाव से रामकथा के स्थलों (खानों) का बोध होने पर भी वहाँ तक पहुँचने के लिए सुमति (कुदाली) आवश्यक। सुमति से इनकी कथाओं तक पहुँचने पर, ज्ञान-वैराग्य के सहारे, भावपूर्वक परखने पर, कथाओं में भक्ति-चिन्तामणि की प्राप्ति (७।१२०।१२-१५)। 'मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा।।' सत्संगति से भक्ति-लाभ। ज्ञान से वेद-मन्थन कर सन्तों का इनके भक्तिमय कथामृत को निकालना। केवल इनकी भक्ति ही ज्ञान-वैराग्य के सहारे लोभ-मोहादि रिपुओं पर विजय पाने में समर्थ (७।१२०।१६-७।१२० ख)।

(गरुड़ के प्रश्न— भुशुण्डि के उत्तर।) सद्गुरु के उपदेश पर विश्वास करके, विषयों से बहिर्मुख होकर, श्रद्धापूर्वक इनकी भक्ति करने से मानस रोगों का नाश संभव। किन्तु इसके लिए इनकी कृपा आवश्यक। विषय-वैराग्य, बुद्धि की निर्मलता, ज्ञानोदय और हृदय में इनकी भक्ति की व्याप्ति ही आरोग्य के लक्षण (७।१२२।५-११)। इनसे विमुख रहकर सुख पाना असंभव। शिव-सनकादि वेद-पुराणादि सबका मत इनकी चरण-रति के पक्ष में। भुशुण्डि का निश्चित मत कि 'हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।' (७।१२२।१२-७।१२२ ग)। इनका स्वभाव कहकर, इन्हें एकमात्र सेव्य और इनकी भक्ति को भव-संतरण का एकमात्र उपाय बताकर, भुशुण्डि की विनय (७।१२३।१-७।१२४ क)। इन्हें हृदय में धारण कर कृतकृत्य गरुड़ का वैकुण्ठ-गमन (७।१२४ ख - ७।१२५।२, ७।१२५ क)।

शिव-पार्वती-संवाद का उपसंहार— (भुशुण्डि-गरुड़-संवाद में वर्णित) इनकी कथा की फलश्रुति का शिव द्वारा कथन। सब साधनों का फल इनकी भक्ति जो इनकी कृपा से विरले को ही प्राप्त। सर्वगुणसम्पन्न और कुलपावन वही जो इनके चरणों में अनुरक्त। इनकी कथा के अधिकारी-अनधिकारी का कथन (७।१२६।१-७।१२७।४, ७।१२७-७।१२९।६)। पार्वती का संशय-नाश। इनके चरणों में उनकी भक्ति दृढ़ (७।१२९।७-७।१२९)। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद का उपसंहार— याज्ञवल्क्य द्वारा उमा-शंभु-संवाद की फलश्रुति का कथन। वह इनके उपासकों को सर्वाधिक प्रिय (७।१३०।१-४)। तुलसीदास द्वारा कथा का उपसंहार— कलिकाल में अन्य साधन न होने के कारण 'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।' इनके विरुदों में 'पतितपावन' बड़ा। इनके नाम-जप-भजन से गज-गणिकादि के तरने के उदाहरण (७।१३०।५-७।१३०।छं०१)। इनके चरित के कथन-श्रवण की फलश्रुति— इनके धाम की प्राप्ति। इनसे संबंधित कुछ चौपाइयों को धारण करने की फलश्रुति — इनके द्वारा भक्त की पंच-अविद्या का हरण (७।१३०।छं०२)। भजनीय केवल ये ही। इनकी कृपा से तुलसीदास को परम विश्राम-लाभ। 'मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर।।' '... तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।' (७।१३०।छं० ३-७।१३० ख)। इनके चरणों में भक्ति

प्राप्त करने के लिए शिव द्वारा मानस-रामायण की रचना। उसे रामनामपरक पाकर, अपने अन्तःकरण का अन्धकार मिटाने के लिए, तुलसी का भाषाबद्ध करना (७।१३० के बाद श्लो० १)।

गुरु 'नर रूप हरि'। उनकी महिमा से इनके भवमोचन चरित्र का ज्ञान (१।१।सो० ५, १।१।८, १।२।२)। संत-समाज-प्रयाग के रूपक में इनकी भक्ति गंगा की धारा (१।२।८)। इनकी कृपा बिना सत्संग सुलभ नही (१।३।७)। साधु-गृह के तोता-मैना द्वारा भी इनका स्मरण (१।७।१०)। जड़-चेतन सबके, सम्पूर्ण जगत् के राममय होने का कवि-कथन (१।७ ग, १।८।२)। सती-मोह-प्रसंग का नारद द्वारा मेना से कथन (१।९८।७-१।९८।छं०)। 'बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ।।' (१।१२४ क)। 'भव भंजन रघुनाथ …' (१।१२४ ख)। रामेच्छा ही सर्वोपरि (१।१२८।१)। 'राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ' (१।१४१)। इनके चरणों में निर्मल भक्ति की विभीषण द्वारा वर-याचना (१।१७७।)। ये ही भजनीय। इनसे विमुख होने पर भव-बन्धन-मुक्ति असंभव (१।२००।३-६, १।२११)। 'सिय महिमा रघुनायक जानी…' (१।३०७।३)। अभिषेक के समय सबके मन में सीतासहित इनके दर्शन का मनोरथ (२।११।५)। अवधवासियों की उक्ति— 'सदा रामु एहि प्रान समाना' (२।४७।६), 'रामु भरत कहु प्रानपिआरे' (२।४८।८), 'सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल।।' (२।४८)। इनका गुण-शील-स्वभाव-कथन— वसिष्ठ द्वारा (२।१७१।७)। गुह को बाहें भरकर इनके भेंटने का कथन (२।१९६।७)। 'लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ।।' (२।२५२।३)। राम-विमुख के लिए नरक में भी स्थान नहीं। उसके लिए अनुकूल वस्तुएँ भी प्रतिकूत, सारा जगत् अग्निसम दाहक (२।२५२।७, ३।२।६-८, ६।३५।६-८, ६।७८, ६।८४, ७।११५ क)। चित्रकूट में जनक के पहुँचने के दूसरे दिन इनका समाजसहित स्नान। पिछले दिन सबके निर्जल रहने का विश्वामित्र से कथन। ऋषि द्वारा अनुमोदन (२।२७७, २।२७८।५-६)। इनकी कृपा से चित्रकूट के पर्वत कामद (२।२७९।१)। भरत का स्मरण करने से इनका प्रेम सुलभ (२।३०४।२-३)। कलिकाल में इनके भजन का ही एकमात्र भरोसा। इनके सुयश-श्रवण से इनकी अनुकूलता प्राप्त (३।६ क, ख)। 'नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत।।' (४।७।२४)। 'उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं।।' (४।११।७)। इनके अति कृपालु स्वभाव का कथन शिव द्वारा (४।१२।१-५)। केवल इनका भजन ही अपेक्षित। इनका भक्त बड़भागी (४।२३।६-७)।

स्वयंप्रभा (दे० 'नारि तपपुंज') का इनके पास आकर नमन और विनय। इनसे अविरल भक्ति की प्राप्ति। इनकी आज्ञा से बदरिकाश्रम-गमन (४।२५।४, ४।२५।७-४।२५)। इनके नरावतार आदि के संबंध में सम्पाति का वानरों को चन्द्रमा मुनि का कथन सुनाना (४।२८।७-८)। इनके वामनावतार और बलि को बाँधने का कथन जाम्बवान् द्वारा (४।२९।८-४।२९)। 'राम काज लगि तव अवतारा'— जाम्बवान् की उक्ति हनुमान् के प्रति (४।३०।६)। इनके बाण-तीर्थ का रूपक (५।३।छं० ३)। ये कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ (६।८१।छं० २)। महेश को इनकी प्रभुता का ज्ञान (७।६०।६)। मायामुक्ति का एकमात्र उपाय इनका भजन (७।६२ ख)। भुशुण्डि इनके प्रिय दास (७।९४।२, ७।१२५।५)। इनकी भक्ति के बिना सुख नहीं (७।११५।३-४)। इनकी कृपा बिना संत-समागम-लाभ असंभव— शिव-कथन (७।१२५ ख)।

उल्लेख— मानस-रचना के सन्दर्भ में— इनके 'भगति भूषित' होने का (१।९।७), इनके चरणों में प्रेम करनेवालों का (१।९।३), इनकी कथा के प्रेमियों का (१।९।६), इनके नाम का (१।१०।३), इनके नाम की महिमा का (१।१०।१, २), इनके नाम के यश का (१।१०।५), इनके प्रताप का (१।१०।७), इनके यश का (१।१०क, १।११।६), इनके और सीता के यश का (१।१० ख), इनके चरित का (१।११।५, १।११, १।१२।१०), इनके गुणों का (१।१२।९), इनके वंचक भक्त का (१।१२।३)। उल्लेख— इनके द्वारा की गयी आकाशवाणी का (१।७४।८, १।७५।२), [मा० पी० आदि के अनुसार यहाँ ब्रह्म का अर्थ ब्रह्मा।] इनके भक्त-प्रेमी-दास का (१।३०।८, २।३२४।८, ५।१।श्लो० ३, ७।६९ ख), इनकी भक्ति का (१।६६।३, १।१४२, ७।१०० ख, ७।११६ ख), इनके स्मरण का (१।७०, १।१००।४, २।२०३।३, २।२०३, २।२२१।७, ५।१।४, ५।१।६, ५।५।४ ६।९५।छं०), इनके गुणगान का भजन का (७।११२।९, ७।१२१।११), इनके ध्यान में शिव के लीन होने का (१।८२।४), इनके (१।१३८, ७।५९), इनके सम्बन्ध में— ब्रह्मवाणी में (१।१८७।५), इनके धनुर्भंग करने का (१।२७२।२-३), इनके विवाह-मण्डप का (१।२८९।५), इनके अवतार का (१।२९७), इनके दशरथ-पुत्र होने का (२।२।५), चारों के

दशरथ-पुत्र होने का (२।१७३), इनके वियोग का (२।१५८।७), इनके वनवास का (२।१७६।३, २।१७७, २।१८०।३), इनके गुणग्राम-श्रवण का (२।२०६।३, ७।११५।७), इनकी महिमा का (४।२७।११), इनकी कृपा का (४।२९।२, ७।११७।९), निषादों पर इनकी कृपा और उनके प्रति इनके प्रेम का (२।२५०।४, २।२५०।६, २।२५०।८, २।२५१।६, २।२५१।छं०), इनके बाणों की अमोघता का (५।१।८), इनके कार्य का (४।१९।१, ४।२२।६, ४।२३।३, ४।२३, ४।२७।८, ४।२९।१, ५।१, ५।२।४, ५।२), इनके दूत का (५।४।८), इनके चरणों का (५।१७, ६।१।८, ६।१८, ६।५६।१), इनके प्रताप का (६।१।६, ६।१।१०, ६।१९), इनके कपटी सेवक का (७।१०१।छं० ४)। इनके संबंध में अन्य उल्लेख (१।८५, १।२९०।५, १।२९४।६, १।३०९।८, १।३४०।३, १।३५१।५, २।१६१, २।२००।२, २।२१३, २।२३५।५, २।२३५।८, २।२७९।६, २।२८६।६, २।२८६।८, ३।१।श्लो०१, ३।५ ख, ४।२६।५, ४।२९।४, ५।५।१, ५।५।३, ५।२५, ६।४२।२, ६।५३।३, ६।६६, ७।१५।९, ७।६०।२)।

[(१) सामान्यतः राम के सन्दर्भ में प्रयुक्त 'ब्रह्म' या उसके वाचक शब्द अथवा विशेषण 'राम' के अन्तर्गत लिये गये हैं। विष्णु, शिव, ब्रह्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। ब्रह्मसूचक जो शब्द इनके अन्तर्गत नहीं, वे, और राम की उक्ति में प्रयुक्त ब्रह्म, निर्गुन, सगुन, हरि आदि शब्द 'ब्रह्म' के अन्तर्गत माने गये हैं। 'सगुन मत' या 'निर्गुन मत' नहीं लिया गया।

(२) 'हरि' शब्द का सामान्यतः विष्णु के अर्थ में ग्रहण हुआ है, राम के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने पर राम के अर्थ में। जहाँ राम या विष्णु अर्थ उचित नहीं लगा, वहाँ इसे ब्रह्म के लिए माना गया। वस्तुतः यह अति व्यापक शब्द है। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जहाँ जिस अर्थ में यह लिया गया, वहाँ उस अर्थ तक ही इसकी व्याप्ति है।

(३) निम्नलिखित नाम या विशेषण राम के लिए हैं, उनके नाम, महिमा, चरित, भक्ति अथवा नेत्र, पदकमल आदि के लिए नहीं।

(४) ऐसे स्थलों में जहाँ एकाधिक राम का उल्लेख और जातिवाचक रूप की प्रतीति, वहाँ वस्तुतः जातिवाचक प्रयोग नहीं, क्योंकि इनमें (और सीता में) बहुभवन (एक से अनेक होने की) शक्ति, काय-व्यूह-रचना का सामर्थ्य। अतः इनके (और सीता के) सन्दर्भ-संकेतों में जाति० का उल्लेख नहीं। जाति केवल वहाँ जहाँ रावण की माया से अनेक राम-लक्ष्मण की प्रतीति।

मूल शब्द — १।१।श्लो०४, १।१।श्लो०६, १।१।८, १।२।२, १।२।८, १।३।७, १।३।ख, १।७।१०, १।७ ग, १।८।२, १।९।३, १।९।७, १।१०।३, १।१०।५, १।१०।७, १।१०।१०, १।१० क, १।१० ख, १।११।५, १।११, १।१२।३, १।१२।९, १।१२।१२, १।१३।९, १।१४।१०, १।१५।८, १।१५।११, १।१६।८, १।१६, १।१७।१, १।१७।२, १।१७।४, १।१७।१०, १।१७, १।१८।२, १।१८।४, १।१८, १।१९।१, १।१९, १।२०।३, १।२१, १।२२।६, १।२२, १।२३।५, १।२३, १।२४।१, १।२४।३, १।२४।४, १।२४।६, १।२५।१, १।२५।३, १।२५।५, १।२५, १।२५, १।२६, १।२७।२, १।२७।६, १।२७।७, १।२७, १।२८।२, १।२८।४, १।२८।११, १।२८ क, १।२८ ख, १।२९।२, १।२९।४, १।२९।७, १।२९ क, १।२९ ख, १।३०।४, १।३० ख, १।३१।५, १।३१।६, १।३१।७, १।३१।१२, १।३१, १।३२।१, १।३२।२, १।३२।४, १।३२।१२, १।३२ क, १।३२ ख, १।३३।५, १।३३।६, १।३३, १।३४।३, १।३४।६, १।३४।८, १।३४, १।३६।४, १।३६।७, १।३७।३, १।३८।६, १।३९।५, १।३९।७, १।३९।११, १।४०।१, १।४०।२, १।४०।४, १।४१।४, १।४१।५, १।४१।७, १।४२।३, १।४२।४, १।४२।६, १।४३।३, १।४४।१, १।४६।२, १।४६।५, १।४६।७, १।४६, १।४७।३, १।४७।४, १।४७।५, १।४७।६, १।४७।७, १।४८।३, १।५०।१, १।५२।७, १।५३, १।५४।१, १।५४।३, १।५५।३, १।५५।८, १।५६।५, १।५७।५, १।५९।५, १।६०।३, १।६६।३, १।७५।८, १।७६।१, १।७६।३, १।७६।७, १।१०४।५, १।१०४।६, १।१०४।८, १।१०४, १।१०५।३, १।१०८।५, १।१०८।७, १।१०८।७, १।१०९।३, १।१०९।७, १।१०९।८, १।११०।५, १।११०, १।१११।३, १।१११।७, १।११२।५, १।११२, १।११३।६, १।११३।८, १।११३, १।११४।१, १।११४।२, १।११४।३, १।११४।४, १।११४।८, १।११५।४, १।११५, १।११६।५, १।११६।८, १।११७।४, १।११७।६, १।११९।५, १।१२०।२, १।१२०।६, १।१२०।८, १।१२० ग, १।१२१।३, १।१२१, १।१२२।२, १।१२४।२, १।१२४।३, १।१२४ ख, १।१२८।१, १।१३८, १।१४१, १।१४८।४,

१।१५२, १।१९०, १।१९६।६, १।१९७।६, १।१९७, १।१९८।३, १।२००।१, १।२०१।८, १।२०४, १।२०५।३, १।२०७।५, १।२०८।५, १।२१०।४, १।२१२।१, १।२१२।५, १।२१८।३, १।२१८।७, १।२२०।४, १।२२१।७, १।२२१।८, १।२२२।१, १।२२५।१, १।२२५।३ १।२२७, १।२३२।७, १।२३४।४, १।२३७।२, १।२४२।६, १।२४४।७, १।२४५।२, १।२४५।३, १।२४५, १।२४८।७, १।२४९।१, १।२४९।४, १।२५२, १।२५४।६, १।२५५।४, १।२५५।६, १।२५५, १।२५७।२, १।२५७।४, १।२५९।७, १।२६०।८, १।२६०, १।२६१।८, १।२६१।छं०, १।२६२।३, १।२६२।८, १।२६३।७, १।२६३।८, १।२६४।४, १।२६४।८, १।२६५।५, १।२६५।७, १।२६६, १।२६७।८, १।२६९।८, १।२७१।४, १।२७२।२, १।२७७।५, १।२७७।६, १।२७८।७, १।२७८, १।२७९।७, १।२८०, १।२८१।७, १।२८२।६, १।२८२, १।२८३।७, १।२८४।७, १।२८४, १।२९२, १।२९३।२, १।२९४।६, १।२९५।६, १।२९७, १।३०४।२, १।३०९।१, १।३१०।५, १।३११।२, १।३११।३, १।३११।६, १।३१२।३, १।३१४।३, १।३१५।८, १।३१५, १।३१६।छं०, १।३१७।२, १।३१७।४, १।३१७।६, १।३१७।८, १।३१८, १।३१९।४, १।३१९, १।३२१।छं०, १।३२३।३, १।३२३।छं० २, १।३२४।६, १।३२४।छं० ४, १।३२५।३, १।३२५।४, १।३२५।८, १।३२५।छं० १, १।३२६, १।३२७।छं० २, १।३२८।५, १।३२८।६, १।३३१।८, १।३३५।७, १।३३६।१, १।३३६।छं०, १।३३६, १।३३७।२, १।३३७।३, १।३४०।३, १।३४१।४, १।३४३।८, १।३४५।४, १।३४६।२, १।३४८।५, १।३४९।४, १।३५१।२, १।३५१।५, १।३५३।३, १।३५३, १।३५५।३, १।३५५, १।३५७, १।३५९।८, १।३६०।३, १।३६०, १।३६१।४, १।३६१।७, १।३६१।छं०, १।३६१।छं०, १।३६१, २।१।श्लो० ३, २।१।८, २।१, २।२।२, २।२।८, २।३।१, २।५।३, २।५, २।७।२, २।७।३, २।७।४, २।७।८, २।८।६, २।८, २।९।१, २।९, २।१०।१, २।१०।३, २।१०।४, २।१२।३, २।१३।२, २।१४।२, २।१५।४, २।१५।५, २।१५।७, २।१७।५, २।१८।६, २।१८।७, २।१९।६, २।१९, २।२२।६, २।२२।७, २।२४।१, २।२४।३, २।२६।६, २।२७।३, २।२८।७, २।३१, २।३२।१, २।३२।६, २।३३।२, २।३३।३, २।३४।७, २।३४।८, २।३४, २।३४, २।३६।३, २।३६।४, २।३७।१, २।३७।१, २।३७।२, २।३७।८, २।३९।१, २।३९।३, २।३९।६, २।४०।३, २।४०।६, २।४३।१, २।४३।४, २।४३।८, २।४३, २।४३, २।४४।४, २।४४, २।४६।५, २।४८, २।४९।५, २।४९।६, २।४९, २।५०।२, २।५०।७, २।५०।छं०, २।५१।५, २।५३।४, २।५४, २।५७।८, २।६९।२, २।७०।६, २।७०।७, २।७३, २।७४।३, २।७४।७, २।७४, २।७५।२, २।७५।४, २।७५।छं०, २।७६।२, २।७८।१, २।७८।२, २।७८।५, २।८१।१, २।८१।३, २।८४।१, २।८४।५, २।८४।८, २।८५।३, २।८५।७, २।८५, २।८६।२, २।८६।२, २।८६।४, २।८६, २।८७।२, २।८९।१, २।८९।५, २।९१।५, २।९२।२, २।९३।६, २।९३।७, २।९४।२, २।९४।३, २।९४।६, २।९५।२, २।९६।५, २।९९।५, २।९९।७, २।९९।८, २।९९, २।१००।२, २।१००।छं०, २।१०१।६, २।१०४।७, २।१०७।३, २।१०७।६, २।१०८।७, २।१०८, २।१०९।१, २।१०९।२, २।१०९।४, २।११०।२, २।११०।८, २।१११।१, २।१११।५, २।१११।८, २।१११, २।११२।१, २।११३।३, २।११३।५, २।११३।६, २।११३।८, २।११४।३, २।११४।७, २।११५।२, २।११६।२, २।१२२।८, २।१२३।६, २।१२३।७, २।१२३।८, २।१२४।६, २।१२५।१, २।१२५।२, २।१२५।४, २।१२६।छं०, २।१२६, २।१२७।७, २।१२८।१, २।१२८।३, २।१२८, २।१२९।४, २।१२९।४, २।१२९।५, २।१२९।५, २।१२९, २।१३०।५, २।१३०।८, २।१३१।४, २।१३१।८, २।१३२।१, २।१३२।८, २।१३३।६, २।१३४।२, २।१३४।८, २।१३५।७, २।१३७।१, २।१३७।२, २।१३८।२, २।१३९, २।१४०।१, २।१४०।४, २।१४०, २।१४२।४, २।१४२।७, २।१४२।७, २।१४३।६, २।१४५।८, २।१४६।४, २।१४६।८, २।१४८।८, २।१४८।८, २।१४८।८, २।१४८।८, २।१४९।३, २।१४९।५, २।१४९।६, २।१५२।७, २।१५३।३, २।१५४।५, २।१५५।१, २।१५५।५, २।१५५, २।१५५, २।१५५, २।१५५, २।१५५, २।१५५, २।१५६।२, २।१५६।२, २।१५८।७, २।१५९।८, २।१६०।५, २।१६०, २।१६१, २।१६२, २।१६५।१, २।१६६।२, २।१६६।७, २।१६८, २।१६९।१, २।१६९।३, २।१७१।७, २।१७३, २।१७४।४, २।१७५।५, २।१७५।७, २।१७५।८, २।१७८।३, २।१७८।७, २।१७९।३, २।१७९।४, २।१७९।७, २।१८०।३, २।१८२।७, २।१८४।१, २।१८४।४, २।१८४।५, २।१८५, २।१८७।३, २।१८७, २।१८८।१, २।१८८, २।१८८।५, २।१८८।७, २।१९०।३, २।१९०।७, २।१९०, २।१९१।४, २।१९२।१, २।१९२।६, २।१९३।६, २।१९४।५, २।१९४।५, २।१९४।६, २।१९५।२, २।१९६।२, २।१९७।८, २।१९९।८,

२।२००।५, २।२००।६, २।२००।७, २।२०१।१, २।२०१।८, २।२०१।८, २।२०१।छं०, २।२०३, २।२०३, २।२०४, २।२०५।२, २।२०५।७, २।२०५।८, २।२०६।३, २।२०७।५, २।२०७।८, २।२०८।४, २।२०८।८, २।२०८, २।२०९।५, २।२०९।६, २।२०९, २।२१०।१, २।२१०।४, २।२११।६, २।२११।७, २।२११।८, २।२१२।६, २।२१२।८, २।२१३, २।२१६।६, २।२१६।७, २।२१६, २।२१७।४, २।२१७।५, २।२१७।८, २।२१८।३, २।२१८।५, २।२१८।७, २।२१८।७, २।२१९।१, २।२१९।७, २।२१९, २।२२०।१, २।२२१।८, २।२२२।१, २।२२२।७, २।२२४।१, २।२२४।३, २।२२४।७, २।२२४।८, २।२२४, २।२२७।३, २।२२८।३, २।२२८।४, २।२२९।४, २।२२९, २।२३०।३, २।२३०।४, २।२३०।८, २।२३१।५, २।२३२, २।२३३।३, २।२३४।२, २।२३४।२, २।२३५।५, २।२३५।८, २।२३८।३, २।२४०, २।२४१, २।२४४।१, २।२४४।४, २।२४४।६, २।२४४।७, २।२४७।७, २।२४८।४, २।२४८, २।२४९।१, २।२५०।४, २।२५०।६, २।२५०।८, २।२५१।छं०, २।२५२।३, २।२५२।७, २।२५२।८, २।२५३।२, २।२५३।३, २।२५३।४, २।२५४।३, २।२५४।५, २।२५४।८, २।२५४, २।२५५।१, २।२५६।१, २।२५६।१, २।२५७।५, २।२५७।८, २।२५८।६, २।२५९।१, २।२५९।८, २।२६०।१, २।२६५।२, २।२६५।८, २।२६६।४, २।२६६।७, २।२७३, २।२७३, २।२७४।२, २।२७४।७, २।२७५।३, २।२७७।२, २।२७७।४, २।२७७।५, २।२७९।१, २।२७९।६, २।२८०।२, २।२८०।३, २।२८०।५, २।२८०।६, २।२८०, २।२८१।७, २।२८३।२, २।२८५।७, २।२८६।६, २।२८९।८, २।२८९, २।२९०।१, २।२९०।८, २।२९०, २।२९१।१, २।२९१।२, २।२९१।७, २।२९२।३, २।२९२, २।२९३, २।२९४।७, २।२९४।८, २।२९५।७, २।२९६।५, २।२९६, २।२९८।७, २।३०२।४, २।३०३।३, २।३०४।२, २।३०४।३, २।३०४।४, २।३०८, २।३०९।१, २।३०९।३, २।३०९।६, २।३०९।७, २।३११।२, २।३११।८, २।३११, २।३११, २।३१३।३, २।३१३।४, २।३१३।५, २।३१६, २।३१७।२, २।३१७।३, २।३१७।४, २।३१८।७, २।३१९।१, २।३२१।५, २।३२२।१, २।३२२, २।३२४।८, २।३२४, २।३२५।२, २।३२५।६, २।३२६।२, २।३२६।८, २।३२६।छं०, २।३२६।छं०, २।३२६, ३।१।श्लो० १, ३।१।श्लो० २, ३।१।सो०, ३।१।३, ३।२।२, ३।२।५, ३।२।१०, ३।३।२, ३।३।७, ३।५ ख, ३।६।६, ३।६ क, ३।६ क, ३।६ ख, ३।७।२, ३।७, ३।८, ३।९।१, ३।१०।२, ३।१०।५, ३।१०।१७, ३।१०।१८, ३।१०।२०, ३।१०।२४, ३।११।८, ३।११।१२, ३।११।१६, ३।११।२०, ३।११।२२, ३।११, ३।१२।८, ३।१३।१८, ३।१४।१, ३।१७।१७, ३।१७।१९, ३।१८।१०, ३।१८।१३, ३।१९।८, ३।१९।८, ३।१९ क, ३।२०।तोमर १, ३।२०।छं० ४, ३।२० क, ३।२० क, ३।२२।८, ३।२३।८, ३।२४।३, ३।२६।७, ३।२७।१४, ३।२९।१७, ३।२९।२२, ३।२९ ख, ३।३०।१७, ३।३०।१८, ३।३०, ३।३१।१, ३।३१।५, ३।३१, ३।३२।छं०१, ३।३२।छं० २, ३।३२।छं० २, ३।३२।छं० ४, ३।३२, ३।३४।५, ३।३४।६, ३।३४, ३।३६।छं०, ३।३७।१, ३।३९।१, ३।३९।३, ३।४१।१, ३।४१।६, ३।४१।९, ३।४२।८, ३।४२ क, ३।४३।२, ३।४५।४, ३।४६ क, ३।४६ ख, ४।१।श्लो० २, ४।२।२, ४।४।६, ४।५।१, ४।५।५, ४।५।५, ४।५।५, ४।५।६, ४।७।१७, ४।७।१९, ४।८, ४।९।४, ४।९, ४।१०।१, ४।१०।३, ४।१०।छं० २, ४।१०, ४।११।१, ४।११।९, ४।१२।१, ४।१२।१०, ४।१२, ४।१९।१, ४।२१।२, ४।२२।२, ४।२२।३, ४।२२।६, ४।२३।६, ४।२३, ४।२५, ४।२६।५, ४।२६।१२, ४।२७।८, ४।२९।१, ४।२९।२, ४।२९।४, ४।३०।६, ५।१।श्लो० १, ५।१, ५।२।४, ५।२, ५।४।८, ५।५।३, ५।६।३, ५।६।३, ५।६, ५।८।२, ५।८, ५।९, ५।११।१, ५।१३।१, ५।१३।९, ५।१३।१०, ५।१४।१०, ५।१५।१, ५।१५।९, ५।१६।२, ५।१६।३, ५।१७।२, ५।२३।१, ५।२३।३, ५।२३।५, ५।२३।७, ५।२३।८, ५।२३, ५।२७, ५।२९।४, ५।२९।७, ५।३४।३, ५।३५।२, ५।३५।३, ५।३५।४, ५।३५।छं० १, ५।३६, ५।३९।१, ५।३९।६, ५।४०, ५।४५।३, ५।४६, ५।४७।५, ५।४७, ५।४९।२, ५।४९।१०, ५।५१।२, ५।५२।१, ५।५३।२, ५।५४।२, ५।५४।४, ५।५४।५, ५।५५।२, ५।५५, ५।५६।१, ५।५६ क, ५।५६ ख, ५।५७।४, ५।५७।१०, ५।५७।१२, ५।५७, ५।६०।६, ५।६०।७, ६।१।श्लो०१, ६।१।दोहा, ६।१।सो० १, ६।१।६, ६।१।८, ६।३।५, ६।३।७, ६।३, ६।५।५, ६।६, ६।१३ ख, ६।१४।८, ६।१५ क, ६।१७ क, ६।१८, ६।१९, ६।२१।९, ६।२३ घ, ६।२६।५, ६।२७।२, ६।२७।३, ६।२७।४, ६।२७।७, ६।३०।८, ६।३२।१, ६।३३ ख, ६।३४।४, ६।३४।८, ६।३५।३, ६।३५।७, ६।३५ क, ६।३७।६, ६।३८।३, ६।३९।१, ६।३९।७, ६।३९, ६।४१।७, ६।४१।छं०, ६।४२।१, ६।४४।१, ६।४४।८, ६।४५।२, ६।४५।४, ६।४६।२, ६।४७।२, ६।४८।८, ६।५२।६,

६।५२, ६।५३।३, ६।५५।३, ६।५५, ६।५६।१, ६।५७।४, ६।५७।५, ६।५७।५, ६।५८।६, ६।५८।६, ६।५९।१, ६।५९।१, ६।५९।५, ६।५९।६, ६।५९, ६।६०।८, ६।६१।१, ६।६१।२, ६।६२।१, ६।६३।२, ६।६३, ६।६४।९, ६।६४, ६।६७।८, ६।७०।४, ६।७०।६, ६।७१।१२, ६।७१, ६।७२।२, ६।७४।१, ६।७४।२, ६।७४।१०, ६।७८, ६।७९।छं०, ६।७९, ६।८० ख, ६।८१।२, ६।८१।३, ६।८१।छं० २, ६।८२, ६।८४, ६।८६।६, ६।८८।छं०, ६।८८।छं०, ६।८९।छं० (जाति०), ६।८९, ६।९०, ६।९१।७, ६।९१।८, ६।९१, ६।९२।११, ६।९४।२, ६।९४।८, ६।१००।२, ६।१००।४, ६।१०१। तोमर ६, ६।१०१।छं० २, ६।१०१।छं०२, ६।१०२।२, ६।१०३।छं०१, ६।१०४।१०, ६।१०४।१२, ६।१०४।छं०, ६।१०७।छं०, ६।१०८।२, ६।१०८।८, ६।१०९।५, ६।१०९।छं० २, ६।१०९।छं० २, ६।१११।छ०१, ६।१११।छं०४, ६।१११।छं० ५, ६।११२।७, ६।११३।तोमर १, ६।११३।तोमर ७, ६।११३।छं०, ६।११३।छं०, ६।११४।७, ६।११४।९, ६।११५।छं० ४, ६।११७।१, ६।११७ ख, ६।११८।१०, ६।११८ क, ६।११८ ग, ६।१२०।५, ६।१२०।६, ६।१२० क, ६।१२१।छं०१, ६।१२१।छं०१, ६।१२१।छं० २, ७।१।श्लो०१, ७।१।दोहा १, ७।१।३, ७।१।७, ७।१ क, ७।१ ख, ७।१ ख, ७।२।११, ७।२ क, ७।२ ख, ७।४।८, ७।४ ख, ७।६ क, ७।६ क, ७।९ क, ७।१०।७, ७।११।२, ७।११।४, ७।११।७, ७।११ ख, ७।१२।२, ७।१२ ख, ७।१३।छं० २, ७।१३।छं० ४, ७।१४।छं० १, ७।१४ ख, ७।१५।६, ७।१५।९, ७।१७ क, ७।१९।२, ७।१९।४, ७।१९ ग, ७।२०।७, ७।२०।८, ७।२१।१, ७।२१।४, ७।२१, ७।२२।६, ७।२४, ७।२५।१, ७।२५।३, ७।२६।२, ७।२६।५, ७।२६।७, ७।२६।८, ७।२६, ७।२७, ७।२८।७, ७।३०।२, ७।३०।५, ७।३०, ७।३१।१, ७।३२।८, ७।३२, ७।३४।८, ७।३४, ७।३६।१, ७।४२।४, ७।४७।१, ७।४७।३, ७।४८।१, ७।४९।३, ७।४९, ७।५०।८, ७।५०, ७।५१, ७।५२।२, ७।५२।३, ७।५२।७, ७।५२।९, ७।५२ क, ७।५३।१, ७।५३।३, ७।५३, ७।५४।७, ७।५४, ७।५५।९, ७।५७।८, ७।५८, ७।५९, ७।६०।२, ७।६०।६, ७।६१।६, ७।६१।८, ७।६१, ७।६२।३, ७।६२।४, ७।६३।४, ७।६४।३, ७।६५।१, ७।६५।२, ७।६६ ख, ७।६८।५, ७।६८।६, ७।६८।८, ७।६८ क, ७।६८ ख, ७।६९।७, ७।६९।८, ७।७१ ख, ७।७२ क, ७।७३।९, ७।७४।३, ७।७४।५, ७।७५।१, ७।७५।२, ७।७६।१, ७।७९।४, ७।७९।७, ७।७९ क, ७।८०।२, ७।८१।८, ७।८१ क, ७।८२।५, ७।८२।६, ७।८२ ख, ७।८३।५, ७।८४ ख, ७।८९।२, ७।८९।६, ७।८९।६, ७।९०।२, ७।९० क, ७।९० ख, ७।९२।छं०, ७।९३।४, ७।९३।८, ७।९५।७, ७।९६।१, ७।९६।३, ७।९६।४, ७।९६।६, ७।९७।६, ७।१०३।५, ७।१०३।६, ७।१०३ क, ७।१०४ क, ७।१०६।२, ७।१०६।३, ७।१०९।१०, ७।११०।१, ७।११०।६, ७।११०।११, ७।११०।१४, ७।११० क, ७।१११।९, ७।११२।९, ७।११२ क, ७।११२ ख, ७।११३।४, ७।११३।६, ७।११३।७, ७।११३।१२, ७।११३।१३, ७।११३।१६, ७।११३ क, ७।११४।२, ७।११४।३, ७।११४।१४, ७।११४।१६, ७।११४ क, ७।११५।७, ७।११६।६, ७।११६ ख, ७।११९।४, ७।११९ क, ७।१२०।२, ७।१२०।९, ७।१२०।११, ७।१२०।१३, ७।१२०।१६, ७।१२०।१६, ७।१२०।१७, ७।१२०।१९, ७।१२२।५, ७।१२२।११, ७।१२२।१३, ७।१२२।१८, ७।१२२।१९, ७।१२२ ख, ७।१२३।२, ७।१२३।५, ७।१२३ क, ७।१२४।१, ७।१२४।७, ७।१२४ ख, ७।१२५।२, ७।१२५।५, ७।१२६।२, ७।१२६।८, ७।१२७।२, ७।१२८।६, ७।१२८, ७।१२९।१, ७।१२९।२, ७।१२९।८, ७।१२९, ७।१३०।३, ७।१३०।६, ७।१३०।६, ७।१३०।६, ७।१३०।८, ७।१३०।छं० १, ७।१३०।छं० १, ७।१३०।छं० ३, ७।१३०।छं० ३, ७।१३० ख, ७।१३० ख के बाद श्लो०१।

रामा— १।१९८।६, १।२८१।२, १।२८६।५, १।३०८।७, २।८७।३, २।१८३।६, २।२२५।७, २।३१९।७, ३।८।२, ३।२७।१५, ४।७।२९, ६।३५।६, ७।६।८, ७।१९।३, ७।७२।३, ७।७५।५।

रामु— १।२५।६, १।२६।८, १।४६।६, १।५१।छं०, १।५३।४, १।५३।६, १।५४।४, १।५७।१, १।७६।५, १।१०५।५, १।१०८।८, १।२१६।७, १।२१६, १।२२१।६, १।२२६, १।२३०।१, १।२३४।८, १।२३७।४, १।२५५।८, १।२६०।२, १।२६०।३, १।२६७।६, १।२६९।७, १।२७९।१, १।२८१।४, १।२८९।५, १।२९०।५, १।२९१, १।२९३।३, १।२९७।७, १।३००, १।३०२।३, १।३०९, १।३१०।१, १।३१५।२, १।३१६।७, १।३१७।१, १।३१७।३, १।३१९।८, १।३२५।छं० १, १।३३४, १।३३६।४, १।३४२।६, १।३५० ख, १।३५६।५, १।३५९।२, १।३५९।४, १।३६०।१०, १।३६१।५, २।१।१, २।२।५, २।३।३, २।४।२, २।४।८, २।४, २।९।४, २।११।५,

२।११, २।१३, २।१५।८, २।१७।५, २।२९।३, २।३१।६, २।३२।६, २।३३।७, २।३३, २।३८, २।३८, २।३९।८, २।४१।५, २।४४।१, २।४४।२, २।४५।२, २।४७।६, २।४८।८, २।५०।३, २।५०।४, २।५१।७, २।५५।६, २।७४।२, २।७४।४, २।७४।६, २।७५।३, २।७५।७, २।७५।८, २।७६।७, २।७७।६, २।७९।८, २।८०।७, २।८१।६, २।८२।८, २।८३।१, २।८३।३, २।८४।६, २।८७।५, २।९१।२, २।९१।३, २।९४।८, २।१०२।१, २।१०७।४, २।१०८।१, २।११०।४, २।११३, २।१२१।६, २।१२१, २।१२३।१, २।१२४।१, २।१३९।५, २।१४१।३, २।१४१, २।१४३।७, २।१४८, २।१४९, २।१५०।२, २।१५४।८, २।१५५।२, २।१६२।७, २।१६४।३, २।१६६।५, २।१७४।४, २।१७७, २।१७८, २।१८१।६, २।१८२।३, २।१८२।६, २।१८३।८, २।१८४, २।१८८।२, २।१९४, २।१९८।७, २।२०१, २।२०३।६, २।२०५।१, २।२१०, २।२१७।३, २।२१७, २।२१८।७, २।२१९।६, २।२२०।६, २।२२४।५, २।२२५।२, २।२२६।३, २।२२९।३, २।२३३।८, २।२३७, २।२४०।८, २।२४३।२, २।२५४।२, २।२५६।५, २।२५६, २।२६५।७, २।२७०।५, २।२७३।६, २।२७३।७, २।२७४।८, २।२७५।८, २।२८०।१, २।२८०।४, २।२८२, २।२८५।६, २।२८९।२, २।२८९।६, २।२९१।६, २।२९४, २।२९७।५, २।३१३।२, २।३१४, २।३१६।८, २।३२०।७, ३।३।५, ३।२७।१०, ३।२७।१६, ३।३२।छं० १, ४।७।२२, ४।७।२४, ४।११।७, ४।३०।छं०, ५।६।८, ५।४१।८, ५।४१, ६।११ क, ६।१२ ख, ६।३३।८, ६।३४।९, ६।३८ ख, ६।७६, ६।९३।छं०, ६।९९, ६।१०१।तोमर ७, ६।१०३।४, ६।११७।८, ६।११९।५, ६।१२०।२, ७।३२।१, ७।९० क, ७।९१।७, ७।९२।छं०, ७।९२ क, ७।९७।७।

रामू— १।२६।६, १।११२।३, १।११७।७, २।१९७।४, २।२०३।३, २।२६१।८।

मूल अलंकृत—

रामचंद्र— १।१४०।६, १।३२१, २।११५।५, २।१९७।६, ४।२३।३, ५।१३।५, ५।२८।४, ६।४४।५, ७।१०।५, ७।२२, ७।२३, ७।२४।६, ७।७८ क। रामचंद— २।१।६। रामचंदु— २।९१।७।

रामभद्र— २।१९६।७

(१) सम्बन्ध बोधक—

(क) व्यक्ति सम्बन्धी—

(अ) **इंदिरापति**— ३।४।छं० ६।

इंदिरारमन— ७।३४।४।

उर्विजापति— ३।४।छं० ११।

जानकिनाथू— २।७६।१।

जानकी जीवन— ४।१।श्लो० २। जानकि जीवन— २।२२५।७।

जानकीश— ७।१।श्लो० १।

रमानाथ— ७।२९।

रमानिवास— ३।३२।छं० ४, ६।११३। तोमर ८, ६।११३।छं०, ७।२८।छं०, ७।८३ का रमानिवासा— ३।१२।१।

रमापति (विष्णु भी)— ४।१३।५। रमापती— ६।१२१।छं १।

रमारमन (विष्णु भी)— ७।१४।छं० १।

रमेस— ७।१३।छं० ४, ७।१४।छं० १।

श्रीकंता (विष्णु भी)— ७।७८।७।

श्रीरंग (श्री का रंजन करनेवाले। इष्टदेव श्री रंग सें भिन्न।)— ७।१४ क।

श्रीरमन— ६।१११।छं० ७, ७।१४।छं० १०।

सियनाहू— २।२४।६।

सियपति— २।१७८।१।

सिय पी— १।१५।४।

सियरवनू— २।२२७।१।

सीतानाथ— १।२८।ख, २।२६६।
सीतापति— २।२४३, २।२६६।१।
सीताबर— ७।७८।४।
सीतरवन— ७।६२ ख।
(आ) **कोसलराज किसोर** (लक्ष्मण भी)— १।२४२।
कोसलाधीस कुमारा— ३।१२।७।
कोसलेस सुत (लक्ष्मण भी)— ४।७।२६।
दसरथ सुत— १।११८। दसरथ सुअन (भरत और लक्ष्मण भी) — २।१०८।६।
(इ) **तुलसीस**— १।३३६।छं०।
(ई) **गिरापति**— १।१०५।४।
बागीसा— ७।५८।७।
(उ) **शचीपति प्रियानुज** (इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र = वामन)— ३।४।छं० ६।
(ख) समष्टि सम्बन्धी—
सुरगुरु (वृहस्पति भी)— ५।१।श्लो०१।
सुरभूपा (विष्णु भी)— ३।१२।५, ४।१३।३, ६।१३।७।
सुर सीसमनि— १।२६७।
सुर स्वामी— १।५३।३।
सुरेश— ६।१।श्लो०१। सुरेस (इन्द्र भी)— ७।१४।छं० १।
(ग) वंश सम्बन्धी–
दिनकर कुल केतु— ३।११।१४। दिनकर कुल केतू— ६।३७।२।
दिनकर कुल कैरव बन चंदू— २।२६३।४।
दिनकर कुल टीका— २।३६।५।
दिनकर कुल भूषन— ६।३६।३।
दिनकर बंस भूषन— ७।१२।छं० २।
दिनेश वंश मंडन— ३।४।छं० ४।
भानुकुल कमल दिवाकर— ७।४।१।
भानुकुल केतु— १।३३४, २८७, ६।१ सो०२।
भानुकुल कैरव चंदू— २।१२२।१।
भानुकुल नाथा— २।६८।३, ५।७।२।
भानुकुल नायक— २।१३२।२।
भानुकुल पंकज भानू— १।२५३।३।
भानुकुल भानू (दसरथ भी)— २।४१।५, २।२५४।२।
भानुकूल भूषन (दसरथ भी)— १।२३३, ६।१०८।३।
रबिकुल कमल दिनेसु— २।२७४।
रबिकुल कैरव बिपिन बिधु— २।५८।
रबिकुल दीपा— २।२६६।२।
हंसबंस अवतंस— २।६।

दसरथ कुल कुमुद सुधाकर— ७।५१।६।
रघुकुल कमल पतंगा— १।६८।७।
रघुकुल कमल बिपिन दिनकर — ७।६।७

रघुकुल कमल रबि— १।३१९।छं०, २।१२२।
रघुकुल कुमुद बिधु— २।६४।
रघुकुल केतु— ७।३५।८। रघुकुल केतू— १।२८५।७, २।१२६।८।
रघुकुल कैरव चंद— २।१०।
रघुकुल चंदा— २।१३४।६। रघुकुल चंदु— १।३५० क।
रघुकल तिलक— १।१८७।५ (चारों भाई), २।५२।१, २।१५३।२, ३।२९।७, ६।५९, ६।७०।९, ७।२।४।
रघुकुल दीप— २।३९।७।
रघुकुल नाथा— १।२१०।१०, २।१०३।१, ७।५।५।
रघुकुल नायक— ६।११५।छं०१, ७।८५।१।
रघुकुल भानु— १।२७६।
रघुकुल भूषन— ७।४८।८।
रघुकुल मनि (दसरथ भी)— १।११६, २।१०४।३। रघुकुल मनी (दसरथ भी) — १।५१।छं०, १।३१७।छं०।
रघुकुल राया— ३।१३।१७।
रघुकुल सरोज दिननायक— ३।२९।२।
रघुबंस तिलक— २।५६।५।
रघुबंस बनज बन भानू— १।२८५।१।
रघुबंस बिभूषन— ६।१११।छं० ४, ७।११३।१।
रघुबंस भूषन— ७।२।छं०, ७।१३०।छं० २।
रघुबंसमनि— १।११०, १।२१७, १।२५९, १।१६५, १।२९२, २।३९, २।८९, २।२००, २।२५१।छं०, ६।१४, ६।२०, ६।६६, ६।९३।छं०, ७।११२ क, ७।१३० क।
रघुवंशनाथ— २।१।श्लो०३।

रघुचंदु— २।२३९।
रघुनंद— ७।१४।छं० १०। रघुनंदु— २।२६३।४।
रघुनंदन— १।२४।८, २।१।श्लो० २, २।७३।४, २।९१, २।९९।६, २।१२७।४, २।१२९, २।१५५।७, २।२४७, २।२५१।६, २।२७२, २।२७५।७। रघुनंदनू— २।१३४।५, २।१४१।७, २।२६२।
रघुनाथ— १।१।श्लो० ७, १।१०।छं०, १।२४, १।२८।२, १।३८, १।१०८।२, १।१११।८, १।१२४ ख, १।२००।२, २।३४, २।४४।६, २।८४, २।८५।२, २।८६।१, २।८९।५, २।९३।५, २।९६।३, २।१०४, २।११८, २।१४१।१, २।१४६।६, २।१६२।६, २।१८२, २।१९०।६, २।१९९।८, २।२१८।४, २।२२४, २।२२६।२, २।२३४।६, २।२४५, २।२४७।३, २।२७०।३, २।२७८।५, २।२९६।२, २।२९६।६, ३।९।५, ३।१०।१६, ३।२१।१, ३।२७, ३।३३।१, ३।४२ख, ३।४३।१, ४।७।१२, ४।७, ४।२०, ४।३० क, ५।४९ ख, ५।५७।७, ६।६, ६।७, ६।३७, ६।७७।३, ६।८९।५, ६।९०।१, ६।१०१।तोमर ६, ६।१०४, ६।१०८।१२, ६।१२१ ख, ७।८ क, ७।१७ क, ७।४३।१, ७।४७।७, ७।५८।३, ७।११६ क, ७।१२६।८, ७।१३० ख, ७।१३० ख के बाद श्लो० १
रघुनाथा— १।१०५।७, १।२०५।७, १।२०७।१०, १।३४२।३, २।९।२, २।५९।७, २।७०।५, २।१६६।३, २।२२१।७, २।२२४।१, २।२३३।२, २।२४०।७, २।२६२।४, २।२७५।१, ४।४।७, ४।७।२५, ४।११।१०, ४।२५।७, ५।१।४, ५।३९।५, ५।४७।२, ५।५५।५, ६।६८।१, ६।१०६।३, ६।११८।८, ७।९१।३। रघुनाथु— २।१४९।३, २।२७५।

रघुनायक (दसरथ भी)— १।१८।९, १।३४।७, १।७५।८, १।८२।४, १।२११।छं० १, १।२३८।६, १।३०७।३, २।१२८।८, ३।१।८, ३।१, ३।२१।४, ३।२६।५, ३।४२।१, ५।१४।५, ५।१७।३, ५।२२, ५।२३, ५।२७।१, ५।२८।६, ५।४२।४, ५।५०।७, ५।५७।९, ५।६०, ६।२७।६, ६।३४।१, ६।४७।१, ६।५९।१, ६।६३।३, ६।६९।५, ६।९२।६, ६।१०२, ६।११२।छं० १, ६।११३।छं०, ७।१९ क, ७।३५।३, ७।४७, ७।४८।२,

७।७०।२, ७।८६।३, ७।९३।७, ७।९४।२, ७।११०।४, ७।११९ ख, ७।१२३ ख। रघुनायकु— २।१३७।५।

रघुपति— १।८।५, १।१०।१, १।१२।१०, १।१३।९, १।१४।१, १।१४।४, १।१६।५, १।१७।६, १।१८।३, १।१९, १।३७।२, १।४३ ख, १।४७।२, १।४८।५, १।४९, १।५५।१, १।५५।४, १।५९।२, १।१०४।७, १।१०४।८, १।१०५।१, १।१०८।६, १।११०।३, १।१११, १।११२।७, १।११९।८, १।१२४ क, १।२००।३, १।२११।छं०२, १।२१५।६, १।२२३।५, १।२४६।३, १।२५४।३, १।२५४।४, १।२५८।७, १।२५९।४, १।२७२।३, १।२७६।८, १।२८४।६, १।३४३।१, २।४१।४, २।४५।४, २।६८।२, २।६८, २।७५।१, २।७७।५, २।८५।१, २।९८।६, २।१६६।४, २।१६९।१, २।१७५, २।१७६।३, २।१८६।३, २।२४३।७, २।२६५।३, २।३२०।४, ३।१।५, ३।३।१, ३।११।२१, ३।२५।५, ३।२६।६, ३।२७।६, ३।३०।१, ३।३४।४, ३।३५।४, ३।४५।१, ४।३।६, ४।७।२६, ४।११।१०, ४।१८, ४।२१।७, ४।२७।११, ५।१।श्लो० २, ५।१।श्लो० ३, ५।१।८, ५।८।८, ५।१०।५, ५।१४, ५।१५।१०, ५।१५, ५।१७, ५।२९।६, ५।२९, ५।३०।६, ५।३१।१, ५।३४।४, ५।३४।६, ५।४५।१, ५।५८।५, ५।६०।छं०, ५।६०।छं०, ६।१।४, ६।३।६, ६।६।६, ६।२६।८, ६।३०।७, ६।३६।१, ६।३६।८, ६।४६।१, ६।५१।५, ६।५६।५, ६।५९।७, ६।६४।४, ६।६४।६, ६।६६।१, ६।७१।छं०, ६।७३।१०, ६।७५।६, ६।७५।१३, ६।७५, ६।८५।१, ६।८५, ६।८७।८, ६।९१।छं०, ६।९३।३, ६।९६।२, ६।९७।३, ६।९७, ६।८९।५, ६।६९।६, ६।१०२।छं०, ६।१०५।३, ६।१०५, ६।१०७।५, ६।१०९ ख, ६।११०।१, ६।११२।५, ६।११४।८, ६।११८।१, ७।१ ख, ७।२।९, ७।२।१५, ७।७।३, ७।८।५, ७।९ क, ७।१६।२, ७।१७।७, ७।१८ क, ७।१९।८, ७।२०।६, ७।२२।१, ७।२८।७, ७।३०।१, ७।३२।६, ७।३३।२, ७।३५।१, ७।४२।३, ७।५२।४, ७।५३।५, ७।५३।६, ७।५३, ७।५५।७, ७।५७, ७।६२।१, ७।६२।७, ७।६४।६, ७।६५।७, ७।६८।१, ७।६८।३, ७।६८ क, ७।७०।४, ७।७३।१, ७।७३ क, ७।७४।१, ७।७४ ख, ७।७८।१, ७।८८।८, ७।९१।६, ७।९३।२, ७।९५।६, ७।१०३।३, ७।१०४।७, ७।११० क, ७।१११।१, ७।११४।११, ७।११६ क, ७।१२२।७, ७।१२२।१४, ७।१२३।३, ७।१२४।४, ७।१२८।२, ७।१२९।३, ७।१३०।४।

रघुपुंगव— ५।१।श्लो० २।

रघुबर— १।९।६, १।१४ ग, १।१४ ङ०, १।१९।१, १।२०, १।२९ ग, १।३१।१४, १।४८।८, १।५५।५, १।१०९, १।११९।२, १।२२६।६, १।२५४, १।२५९।५, १।२६१, १।२६४, २।१।दोहा (भरत भी) २।९, २।४२, २।५४।१, २।६८, २।७३।२, २।८४।४, २।८९।६, २।९६।७, २।१०६।२, २।१०८।२, २।११८।५, २।१२४, २।१२६।७, २।१३३।१, २।१३३।५, २।१३४।७, २।१३९।१, २।१४२, २।१४३।४, २।१५३।१, २।१५५।८, २।१५५, २।१८२।८, २।१८३।१, २।१९८, २।२०७, २।२०८।३, २।२०८।६, २।२०९।१, २।२१८, २।२२०, २।२२२, २।२२६।१, २।२३२, २।२३७।६, २।२३८।४, २।२४१।५, २।२४१।७, २।२४४, २।२६४, २।२७१।४, २।२७४।५, २।२७५।४, २।२८६।८, २।२८९।५, २।३०७।१, २।३१०, २।३१७, २।३१८।२, २।३१८।४, २।३२१।७, ७।१३०।छं० २। रघुवर (लक्ष्मण भी)— ४।१।श्लो० १, ५।१।श्लो० १, ७।१।श्लो०१।

रघुवर केतू— २।१६४।७।

रघुबीर— १।२९।८, १।३१, १।५६।१, १।८५, १।११२।८, १।२१०, १।२१४।६, १।२३४, १।२४८, १।२५२, १।२५७, १।२६६।३, १।२९८।२, १।३१०।६, १।३१४, १।३२१।६, १।३२६।१, १।३५३।८, १।३६१।छं०, १।३६१, २।२४।४, २।५१, २।६०।८, २।७५।छं०, २।७७।२, २।८०।२, २।८४।६, २।८६।५, २।९१।८, २।९४।१, २।१०४।६, २।१०८।४, २।१११, २।१२४।३, २।१३५।४, २।१४२।२, २।१४४।३, २।१६५, २।१७६।६, २।१८३, २।१९५।१, २।१९५, २।२००।२, २।२०८।७, २।२३८, २।२९२।८, २।३०९।८, ३।२।८, ३।२, ३।६।छं०, ३।७।६, ३।८।१, ३।९।८, ३।१३।१, ३।१४।४, ३।१९ ख, ३।२०।छं० १, ३।२०।छं० ३, ३।२७।४, ३।३०, ४।३।३, ४।६।१२, ४।८।४, ४।१२।४, ४।१८।७, ४।२३।७, ४।३०।छं०, ५।१।६, ५।३।छं० ३, ५।७।५, ५।७, ५।९।८, ५।११।६, ५।१६।१, ५।३५।छं० २, ५।३८, ५।४१, ५।४५, ५।५७।५, ६।१।१०, ६।३, ६।७।५, ६।१५ ख, ६।२०।१, ६।२१।१०, ६।३०।२, ६।३९।८, ६।४२।२, ६।६८, ६।७५।११, ६।७५।१४, ६।७९।१३, ६।८२।७, ६।८२।छं०, ६।८४।६, ६।८६।७, ६।८९।७, ६।९२।७, ६।९२।१०, ६।९२।छं०, ६।९३।८, ६।९४।छं०, ६।९४, ६।९५।छं०, ६।९५, ६।१०१।छं०१, ६।१०३।१०, ६।१०६।८, ६।१०८।११, ६।१०९।७,

६।११६।३, ६।११९।६, ६।१२१ क, ७।२।छं०, ७।५।१, ७।६।६, ७।७।६, ७।१३ ख, ७।१४।छं० ९, ७।२५।५, ७।३०।८, ७।५२ ख, ७।६४, ७।६६।६, ७।७१ ख, ७।७५ ख, ७।८१ ख, ७।८२ क, ७।९० ख, ७।११५ क, ७।११६।४, ७।१२३।७, ७।१२५।१, ७।१२५ क, ७।१२७, ७।१३० क, रघुवीर— ३।११।४। रघुबीरा— १।५१।८, १।५७।३, २।७६।३, २।१५१।५, २।२०२।१, ३।१०।१४, ३।२८।१, ३।३६।१२, ३।४५।५, ४।५।७, ४।७।११, ५।१६।४, ५।५१।५, ६।५।२, ६।११।१, ६।८०।१, ६।९१।३, ६।९६।४, ६।१००।६, ७।३३।५, ७।६६।८, ७।६७।७, ७।९२।३, ७।९६।२, ७।११४।१२, ७।१२७।४। रघुबीरु— १।२७०। रघुबीरू— २।१४४।४, २।३२६।१।

रघुराई— १।४६।७, १।१००।४, १।११८।३, १।२००।६, १।२०४।४, १।२१०।१, १।२११।छं० २, १।३३७।४, २।२८।७, २।८१।२, २।८२।१, २।८५।५, २।८८।४, २।१०४।५, २।१०५।२, २।१०९।६, २।११४।१, २।१२४।४, २।१२५।६, २।१३१।६, २।१३५।४, २।१५१।३, २।१७८।६, २।२०८।७, २।२३३।६, २।२५६।३, २।२६६।१, २।२७८।६, २।२९०।३, ३।२।११, ३।११।२५, ३।१३।१४, ३।१७।२०, ३।३१।८, ३।३६।११, ४।८।८, ४।२२।४, ४।२३।८, ४।२५।४, ५।१३।३, ५।१४।४, ५।१६।१, ५।३३।९, ५।४३।४, ५।५१।६, ६।४।३, ६।५।१, ६।७।१, ६।१२।५, ६।१७।१, ६।२७।१, ६।६१।१८, ६।११९।१, ६।१२१।१२, ७।३।२, ७।३।८, ७।११।५, ७।१२।३, ७।३७।२, ७।४९।६, ७।६७।६, ७।७६।४, ७।१२४।३, ७।१२८।८। रघुराउ— २।२६१, २।३०१।छं०, २।३१०। रघुराऊ (दसरथ भी)— २।१२।३, २।१८३।५, २।२११।३, २।२३२।८, २।२४५।७, २।२५३।४, २।२५५।२, २।२५८।२, २।२६६।३, २।२७४।६, २।२९०।७, २।३०१।८। रघुराजु— २।२।१, २।२७७, २।२९७। रघुराजू— १।१३।७, २।२२५।८, २।२३९।६, २।३०४।६, २।३१६।३। रघुराया— १।२१०।७, १।२३९।५, २।१३०।२, ३।७।५, ३।९।६, ३।१०।४, ३।२९।१, ३।४१।२, ३।४३।२, ४।१।१, ४।११।३, ४।२१।५, ५।३०।१, ५।४६।८, ६।७।७, ६।११०।३, ६।११८।३, ७।१११।१०, ७।११६।५।

रघुसिंघ (लक्ष्मण भी)— १।२३४।३।

(घ) स्थान सम्बन्धी —

अखिल भुवन पति — ४।१।

अवध धनी — ३।२०।छं०४।

अवधपति (दशरथ भी) — १।११७।६, ५।९।६।

अवधेस (दशरथ भी) — ७।१४।छं० १। अवधेसा — ६।४५।७, ७।१११।११।

अवधेस कुमारा — १।४६।७।

उर्वीश — ६।१।श्लो०१।

कोसलधनी (दशरथ भी) — ६।७१।छं०, ६।८९।८, ६।८९।छं०।

कोसलनाथ (दशरथ भी) — ५।३५।छं०१।

कोसलपति (दशरथ भी) — १।११८, ३।११।२०, ६।१०७।

कोसल पाल — २।३१३।

कोसलपुर भूपा — १।१४१।२, ६।८९।३।

कोसलपुर राजा — ३।१७।१४, ५।५।१।

कोसल भूप — ६।११३।तोमर ७।

कोसल राज — ६।१०१।तोमर ८, ६।१०१।छं० १। कोसलराय (दशरथ भी) — २।१३५। कोसलराऊ (दशरथ भी) — १।२८।१०, १।२४२।८।

कोसलाधनी — ६।४८।१।

कोसलाधीस — ५।३९ क, ५।५२।६, ६।७।७, ६।३८ क, ६।४४।२, ६।५०।१, ६।७६।१५, ६।९६, ६।११२। कोसलाधीसा — ६।३६।८, ६।५६।८, ६।९२।१३, ६।९३।८, ६।१०७।७, ६।११८।२, ७।२७।१।

कोसलेन्द्र — ७।१।श्लो० २।

कोसलेस (दशरथ भी) — ६।१०६।छं०१।

कौसलनाथ — ७।५।छं० २।

जग कारन (लक्ष्मण भी) — ४।१

जगत आधारा (लक्ष्मण 'जगत आधार') — ३।१२।३।

जगतपति (शिव भी) — १।२२६।

जगतपिता — १।२०२।७, १।२४६।३।

जगदातमा (शिव भी) — ६।३५।६, ७।२३।७।

जगदीश्वर — ५।१।श्लो०१।

जगदीस (ब्रह्म भी) — २।१२६।छं०। जगदीसा (ब्रह्म, शिव, ब्रह्मा भी) — ६।१०३।७, ६।१२०।३, ७।९२।८।

जगद्गुरु — ३।४।छं०९।

जगपावन — १।५०।३, १।२११।छं०२।

जग स्वामी — १।१५०।६, १।२५५।५।

त्रिभुअन साईं — ७।१२।८।

त्रिभुवन धनी — ३।३२।छं० ४। त्रिभुअन धनी (लक्ष्मण भी) — ७।५।छं० १।

त्रिभुवन भूषन — ७।३५।९।

त्रैलोक ईस — ६।११८।८।

त्रैलोक बिभूषन — ६।६५।१।

धरनी धर — ३।३२।छं० ३।

भुवन निकाय पति — १।५१।छं०।

भुवनेस्वर — ५।३९।१, ६।५५।५।

भूधर — ७।३४।४।

सकल लोकपति साईं — ३।१३।९।

(२) गुणबोधक —

अकाम पिआरे — ३।६।६।

अकाम प्रिय — ३।३२।छं० २।

अकाम हित — ७।१३०।छं० ३।

अग्यताभंजन — ७।३४।६।

अघ गंजन — ७।५१।३।

अघ हारी — २।२९८।३।

अघारी (विष्णु भी) — ३।१३।५, ३।३५।३।

अनघ — ५।१।श्लो०१, ६।११०।६, ७।३४।२।

अमोघसक्ति — ६।११०।६, ७।७२।४।

असरन सरन — ७।१८।३, ७।५१।४।

आरत जन त्राता — ७।८३।२।

आरत बंधु — ६।८२।छं०, ७।१८।१।

आरतिहर — ७।९।७। आरति हरन — १।५९।६, ३।२९।२, ५।४५।

ईश (शिव भी) — १।१।श्लो० ६। ईस (शिव, ब्रह्म भी) — १।२१।२, १।१९६ (चारों भाई), ६।१७ क, ७।७८।६। ईसा (शिव भी) — ३।२५।३।

ईश्वर (ब्रह्म भी) — ३।४।छं० ९। ईस्वर (शिव, ब्रह्म भी) —७।७८।५।

करुणाकर — ५।१।श्लो०१। करुनाकर — २।५७।२, २।२४४।१, २।२६८।२, ५।४५।१, ६।४५।४, ६।५५।५, ६।१११।छं० ४, ७।९० ख।

करुनाऐन — २।१००, २।१३६।

करुनाकंद — ३।३२।छं० ३। **करुनाकंदा** — ३।९।४, ६।४।४।

करुना कोमल — ६।११३।छं०।

करुना गुन सागर — १।२८५।३।

करुनानिधान — १।१८।७, १।२३६।छं०, २।३१६।५, ३।१०।८, ५।१३।९।

करुनानिधि (विष्णु भी) — १।१५०।१, १।१५१।७, ५।३१, ६।७१।१, ६।८६, ६।१०८, ७।११।४।

करुनापुंज — ५।२९। **करनापुंजा** — १।१४८।८, ७।१२६।२।

करुना भवन — ७।९२ ख।

करुनामय — २।६६।८, २।८५।२, २।९७।५, ६।१०४।छं०, ६।११०।६, ७।३४।२।

करुनायतन (शिव भी) — १।३३६, २।६४, २।१०२, २।२४८, ७।१३।छं० ६।

करुना सागर — २।२६९।२।

करुनासिंधु — २।७२, ५।२२, ६।८२।छं०।

करुना सींव — ४।१८, ७।१८ क।

कलिमल दहन — १।१।सो०२।

कलिमल मथन — ७।५१।९।

कारुनीक (शिव 'कारुणीक') — ६।३७।२, ६।१०३।छं० १, ७।५१।८।

कृतग्य — १।७६।५, ६।६२।१, ७।३४।६।

कृपा अंबुनिधि — २।२६७।१।

कृपा आगारा — ७।१९।९।

कृपाकंद — ६।१०३।छं० १।

कृपाधाम — ६।११७।१, ७।४७।१।

कृपानंद संदोह — ७।३६।

कृपानिकेत — ३।२६।छं०, ५।४४, ७।३ क। **कृपानिकेता** (शिव, काकमुशुंडि भी) — १।२१४।७, ३।१३।१०, ६।६०।६, ६।१०७।६, ६।११७।८, ७।६८।४। **कृपानिकेतु** — २।२३२।

कृपानिधान (शिव भी) — १।१४८, १।२५९।७, २।१२६।छं०, २।२४०, २।२७४।४, ३।२० क, ६।१२ ख, ६।९९।११, ६।१२१।छं० १, ७।५।छं० २, ७।१२ ग, ७।३०, ७।४७।२, ७।१३०।छं० ३। **कृपानिधाना** (शिव, विष्णु, लोमश, भरत भी) — १।१४६।८, १।१५२।६, २।६६।६, २।९७।२, ३।६।२, ३।३१।४, ४।१०।२, ४।२३।१२, ६।१७।५, ६।४९।४, ६।६६।८, ६।८०।४, ६।९०।९, ७।६२।८, ७।६९।२। **कृपानिधानू** — २।३०२।८।

कृपानिधि (विष्णु, शिव, याज्ञवल्क्य, लोमश, काकमुशुंडि भी) — १।७६।८, १।१२१।८, १।१४९, १।२०५।५, २।३००।५, २।३१९।८, ३।१२।४, ४।१२, ५।३०।७, ५।३५, ६।२।२, ६।४।१, ६।४९।१, ६।११९ क, ७।५।छं० २, ७।३७।१, ७।७४।७।

कृपा बारिधर — ६।७०।४।

कृपायतन (शिव भी) — १।२६०, २।२०१, ७।३४।

कृपावरूथ — ३।११।१०। **कृपावरूथा** — ५।४९।२।

कृपा संदोहा — ७।८३।५।

कृपा सनेह सदन — २।१८३।५।

कृपासिंधु (विष्णु, शिव, लक्ष्मण, काकमुशुण्डि भी) — १।१२२।१, १।१५१।१, १।२०८ ख, २।७२।८, २।८३।४, २।१०१।१, २।११२, २।१४१।५, २।२३८, २।२५६, २।३०१।७, २।३०३।१, ३।३०, ३।४२ ख, ४।५, ५।१३, ५।२३, ५।३९।३, ५।५७।९, ६।२७।१, ६।३७, ६।७७।५, ६।१०४, ६।१०६।१, ६।११५, ६।११७।४, ६।११७ क, ६।११९ ख, ७।४ क, ७।५।७, ७।७।६, ७।१०।३, ७।२४।४, ७।२४।७, ७।३७।४, ७।४८।३,

७।५०।१, ७।८४ ख, ७।११३।२।

कृपा सुख पुंज — ५।४७, ६।८० ख।

कृपा सुख बृंद — ३।२३।

कृपा सुख सिंधु — ७।१८।१।

कौतुकी (विष्णु भी) — ६।९२।१३, ६।११७।८।

गई बहोर — १।१३।७।

गरीब नेवाजू — १।१३।७।

गुन ग्यान निधान — ६।१११।छं० ५। गुन ग्यान निधाना — २।२५७।८।

गो द्विज धेनु देव हितकारी — ५।३९।३।

गो विप्र बृन्द प्रिय (लक्ष्मण भी) — ४।१।श्लो०१।

छमा मंदिर (लक्ष्मण भी) — १।२८५।६।

जन गुन गाहक — १।३३६।

जनत्राता — ६।९५।३, ७।११०।९।

जनपालक — ७।२८।७।

जन मन रंजन — ३।३२।छं० २।

जन रंजन — २।३२६।८, ५।३९।४, ६।१११।छं० ३।

जन रच्छक — ६।८२।छं०।

जन सुखदाई — १।२११।छं०२, ७।३७।१।

जन सुखदायक (विष्णु भी) — १।२११।छं० १, ७।९३।७।

ताप त्रय मोचन (लक्ष्मण भी) — १।२१९।६, ६।६३।८।

तारन तरन — ७।३५।९।

तारन भव — ४।१।

त्रास बिखंडन — ६।११५।छं० ५।

त्रास हरन — ६।११३।छं०।

दयानिधि (भरत भी) — १।२८।४।

दानि सिरोमनि — १।१४६।

दीन जन गाहक — ७।५१।४।

दीन दयाकर — ७।१८।१।

दीन दयाल (शिव भी) — १।१६, १।१०२।७, २।३१३, ५।२७।४, ६।७।१, ६।१११।छं० ६, ६।१११।छं० १०, ६।११३।तोमर ५, ६।११३, ७।३६।५, ७।८३।४। दीनदयाला (शिव, विष्णु, नारद, कपिल भी) — १।२२५।५, २।२४३।२, ३।३३।१, ४।६।१४, ५।३१।९, ६।११६।८। दीनदयालु — १।५९।६।

दीनबंधु — (महेश-भवानी भी) — १।२११, २।६६, २।७२।६, २।३१४, ३।६।६, ३।१०।४, ३।२७, ३।४६।छं०, ४।२, ५।३१।३, ६।११०।३, ६।११५।छं० ४, ७।१।६, ७।२।९, ७।३५।४।

दीन हित — ७।१३० क।

दीन हितकारी — ६।११४।९।

दूषणापह — ३।४।छं० ५।

दूषण हा (दूषण नामक राक्षस को मारनेवाले, दोषहर्ता।) — ६।१११।छं० ४।

देव हितकारी — २।२५४।४।

दोष दलन — १।३३६।

द्वंद्वहर — ३।३२।छं० २। द्वंदहरन — ६।१०३।छं०१।

द्वंदभंजन — ६।११३।छं०।

धरम धुर — २।२४३।२।

धरम धुरीन — २।५०।३, २।५३।५, २।२५४।२, २।३०४।५। धरम धुरीना (भरत भी) — २।५७।२।

धरम सेतु पालक — १।२१८।८।

धर्म धुरंधर — ३।६।४, ७।५।५, ७।२४।२। धरम धुरंधर (स्वायंभुव मनु, सत्यकेतु, दशरथ, भरत भी)—२।७८।२।

धर्म वर्म — ३।११।१६।

धर्म सेतु — २।२४८।

धीर धुरंधर (भरत भी) — २।३१७।५।

धीर धुर धारी — २।२४७।४।

निर्वाणशान्तिप्रद — ५।१।श्लो०१

नीति प्रतिपालक — ५।५०।४।

पतित पावन — ७।१३०।७, ७।१३०।छं०१।

परिपूरन काम — १।३३६, ७।३४।

प्रनत अनुरागी — १।१३।५, ६।७।५।

प्रनत कल्पतरु — ७।१२६।२।

प्रनतकाम सुरधेनु कलपतरु — ७।३५।२।

प्रनतपाल (विष्णु भी) — १।१४६।२, २।२६७।५, २।२९८।२, ५।२२, ५।४६।५, ६।२०, ६।१०२।४, ७।१३।छं० १, ७।३७।५, प्रनतपालु — २।३१४।४।

प्रनत प्रतिपालक — ७।३०।२।

प्रनत भय मोचन — ५।४५।४।

प्रनत सुखकारी — ६।३८।८।

प्रनत हित — ३।२।१०, ३।९।४, ७।८४ ख।

प्रनतारति भंजन (शिव भी) — ५।३९।५, ६।९४।१।

प्रनतारति मोचन — १।१४६।६, ६।११५।छं० ४।

प्रनतारति हरना (विष्णु भी) — ५।३१।३, ७।३६।८।

प्रनतारति हारी — ६।७०।४, ७।४७।३।

बिबुध कुमुद द्विजराजू — २।२९४।४।

बेद धर्म रच्छक — ५।३९।४।

ब्रह्मन्यदेव — १।२०९।४।

ब्रह्मवृन्दैकदेव — ६।१।श्लो०१।

भक्त कल्पपादप आराम — ३।११।१३।

भक्त वत्सल — ३।४।छं० १।

भगत उर चंदन — २।१२७।४। भगत उर चंदनु — २।१४१।७।

भगत कल्पतरु — ७।४८ ख।

भगत कृपाल — ६।६१।१८। भगत कृपाला — १।१५२।७।

भगत बछल — १।१४६।८, ७।११।५।

भगत हितकारी — ७।१८।३।

भव तारन — ६।१११।छं० ६।

भव बारिधि कुंभज — ७।३५।३।

भव बारिधि मंदर (विष्णु भी) — ६।१५५।छं० ३।

भवसागर सेतु — ३।११।१४।

भवांबुनाथ मंदर — ३।४।छं० २।
भावबल्लभ — ३।४।छं० १०।
महादानि — १।१४८।
महि मंडल मंडन — ६।११५।छं, ५, ७।१४।छं० ३।
मुकुंद (मोक्षदाता) — ६।१०३।छं० १, ६।१०३, ७।१३।छं० ४। मुकुंदा (विष्णु भी) — ६।१०३।११।
मुनि पालक — ३।१६।११।
मुनि मन मानस हंस — ७।३५।७।
मुनि रंजन — ६।११५।छं० ५, ७।३०।१०।
मुनि सज्जन रंजन — ७।५१।३
मुनींद्र संत रंजन — ३।४।छं० ४।
योगीन्द्र — ६।१।श्लो०१।
रंजन सुर यूथ — ३।११।१०।
शान्त — ५।१।श्लो०१।
शाश्वत — ३।४।छं० ६, ५।१।श्लो०१।
श्रुतिपथ पालक — ७।२४।२।
श्रुतिसेतु पालक — २।१२६।छं०।
संसृति सागर सेतु — २।८७।
सत्यब्रत (दशरथ भी) — २।२६२।
सत्यसंकल्प — ५।४१।
सत्यसंध (दशरथ भी) — २।८२।१, २।२२०।१, २।२५४।३, २।२६४, ३।२७।५, ६।६८।३।
सद्गुनाकर — ७।१३।छं० ६।
सद्धर्मवर्म (लक्ष्मण भी) — ४।१।श्लो०१।
सबदरसी — १।५३।३, १।५६, ३।६।७, ७।७२।५।
समदरसी (सनकादि भी) — ४।३।८, ४।७।
समन भव ताप — ७।१४।छं० १।
समरूप — ६।११०।५।
सरन सुखद — ५।४५।
सरन सुखदायक — ३।२६।२, ६।११३।छं०।
सरन सुखप्रद — ६।१०३।छं०१।
सरनागत बच्छल — ५।४३।६।
सरनागत भयहारी — ५।४३।८।
सरनागत हितकारी — २।२६८।३।
सर्बग्य सिरोमनि — २।२२७।८।
सील गुन धामा — ७।६।८।
सीलनिधान — १।२६ का। सीलनिधानू — २।२६८।२।
सील सकोच सिंधु — २।२७४।६।
सील सनेह निधान — २।६६, २।२२७।
सीलसिंधु — २।२४३।१।
सुर तापस हितकारी — १।१४२।३।
सुर बिप्र धेनु हितकारी — १।२८५।२।
सुर बृंद रंजन — ६।११३।छं०।

सुर मुनि सुखदाता — ३।२२।७

सुर मुनि सुखदायक — ३।२१।४, ६।१०२।४।

सुरंजन (विष्णु भी) — ३।२३।३, ६।११५।छं०१।

सुर हितकारी — २।२२०।१।

सेतु श्रुति रच्छक — ७।३५।८।

सेवक त्राता — ७।३०।३।

सेवक सुखद — १।२८५।४, ७।८३।५।

सेवक सुखदाता — १।२१८।८, ५।१५।९, ५।४२।५, ७।५०।२।

सेवक सुखदायक — ५।१४।५।

सेवक सुरतरु सुरधेनू — १।१४६।१।

स्वभक्त कल्पपादप — ३।४।छं० १०।

स्वतंत्र — ६।७३।१२।

हरन सब दूषन — ७।३५।६।

हरि (विष्णु, ब्रह्म, कृष्ण भी) — १।१।श्लो०६, १।१।सो० ५, १।११।६, १।१३।८, १।१३।१०, १।१४।२, १।१४।५, १।१४ ख, १।३०।६, १।३०।८, १।३१।३, १।३३।७, १।३४।४, १।३७।१४, १।४८।४, १।४९।६, १।५२।८, १।५६।६, १।६०।५, १।६५।५, १।७०, १।७५, १।११३।२, १।११३।४, १।११३।५, १।११३।७, १।११४, १।११८।१, १।१२० घ, १।१२१।१, १।१२१।२, १।१४२, १।१४४।२, १।१४८।५, १।२०२।८, १।२०३।१, १।२०४।५, १।२११।छं० ३, १।२११।छं० ४, १।२११, १।२४५।८, २।१७८।५, ३।१।सो०, ३।९।२, ३।१२।९, ३।२८।५, ३।२९।२५, ३।२९ ख, ३।३२।१, ३।३३।३, श।३६।छं०, ३।३६।छं०, ३।३९।५, ३।४६।छं०, ५।१।श्लो० १, ५।५।८, ५।६।७, ५।७।४, ५।१४।१, ५।२५, ५।३६।६, ६।४।८, ६।७१।११, ६।८२।छं०, ६।८९।छं०, ६।९९।६, ६।१०४।छं०, ६।१११।छं०१, ६।१११।छं० ९, ६।१२१।छं०२, ७।१०।२, ७।२५।७, ७।४२, ७।५१।२, ७।५२।५, ७।५३।२, ७।५३।४, ७।५४।८, ७।५५।५, ७।५७।४, ७।५७।६, ७।५७।७, ७।६१।५, ७।६१।७, ७।६१, ७।६२।५, ७।६३।१, ७।६९।५, ७।६६ ख, ७।७३।७, ७।७४।३, ७।७५।७, ७।७८।८, ७।७९।१, ७।७९।२, ७।७९।८, ७।८९।५, ७।८९ क, ७।९०।८, ७।९१।४, ७।९२।छं०, ७।१०० ख, ७।१०१।छं०४, ७।१०२ ख, ७।१०३।१, ७।१०३।४, ७।१०४ क, ७।१०९।११, ७।११०।१२, ७।१११।१२, ७।११४।४, ७।११५।३, ७।११७।९, ७।११९।६, ७।११९।७, ७।११९।१०, ७।१२०।१७, ७।१२०।१८, ७।१२० ख, ७।१२१।११, ७।१२२।१६, ७।१२२ क, ७।१२२ ग, ७।१२३।१, ७।१२५ ख, ७।१२६।७, ७।१२६, ७।१२८।३, ७।१२९।४। **हरी** — १।२११।छं० ४, ३।२६।छं०, ७।१३।छं० ३, ७।१४।छं० ९।

(३) चरित्रबोधक —

अजित — ४।२६।१२, ६।३९।२, ६।१।श्लो०१, ६।५५।५, ६।११०।६। **अजीता** — ७।७२।५।

असुरारी (विष्णु भी) — ७।४७।५।

खरारि — ५।२२, ६।११३।तोमर २। **खरारी** (विष्णु भी) — १।२०२।६, ३।११।१८, ४।६।७, ४।२९।८, ५।१४।३, ६।३८।४, ६।७०।४, ६।७३।११, ७।६।४, ७।१०९।५।

खल खंडन — ६।१११।छं० ११।

खल दल बिदारन — ६।१०३।छं० १।

खल दलु दलन — २।२५४।४।

खल बन दहन — ६।४८। ख।

खलवध निरत — ६।१।श्लो०१।

खल सालक — ३।१९।११।

त्रिसिरारि — ४।३० क।

दनुज कुल घालक — ३।१९।११, ५।५०।४।

दूषनारि — ६।११३।तोमर २।
देव मुनि त्राता — ७।२।४।
भंजन खल व्राता— ५।३९।४।
भंजन धरनी भार — ४।१।
भंजन भव भीर — ५।४५, ७।३०।८। भंजन भव भीरा — ३।३१।१।
भंजन महि भार — ३।११।१२, ७।३०।१०। भंजन महि भारा — १।४८।७, ३।२३।३।
भंजन सोक भय — ६।१११।छं० ३।
भगत बिपति भंजन — १।१८।१०।
भगत भय हारी — ५।२२।८, ५।४६।३।
भगत भव भंजन — ७।४३।२।
भव भंजन — १।१२४ ख, ३।११।१०, ७।१३०।२।
भव भंजन भीरा — ३।४५।५।
भव भय मोचन — १।२११।छं० २, ३।३२।छं०१।
भव भय हरण — ६।१।श्लो०१।
भय भय हारी — ७।५२।९।
भव मोचन — १।२११।छं० ३, ३।१०।९, ७।३३।३।
महिभार बिभंजन — ६।१११।छं० ३।
रावनारि — ३।४६ क, ६।११३।तोमर ३, ६।१२१।छं० २, ७।५१।६।
सुरत्राता (लक्ष्मण भी)— ४।२३।१३, ५।२१।७, ५।३२।८, ५।४५।७।
सुरारि बृंद भंजन — ३।४।छं० ४।
हरन धरनी भार — ६।११३।तोमर ३।
हरन भव भीरा — ३।१०।१४।
(४) रूप बोधक —
घनस्याम — २।११३।५।
सारँगपानी (विष्णु भी) — ६।११६।२।
(५) सगुण, निर्गुण एवं स्वरूप बोधक —
अंतरजामी (सीता एवं शिव भी) — १।५३।३, १।१०५।५, १।११९।२, १।१४९।७, १।१५०।६, २।६६।८, २।७२।६, २।२०१, २।२११।३, २।२५६, २।२६६।५, २।२६७।१, २।२९८।१, ३।६।९, ३।९।७, ३।११।१९, ३।३९।१, ३।४२।२, ५।४९।५, ७।३६।४, ७।८४।८।
अंतरसाखी — ६।१०८।१४।
अखिल — ३।११।१२, ७।७२।४।
अदभ्र (अनल्प = सम्पूर्ण) — ७।७२।५।
अनुभवगम्य (ब्रह्म भी) — ३।१३।१२, ७।१३।छं० ६।
अनेक — ७।३४।२।
उरपुरबासी — १।१२०।६।
एक — १।१३।३, ३।४।छं० ९, ३।३२।छं० २, ६।६१।१८, ६।७३।११, ६।७३।१२, ६।१११।छं० ४, ७।३४।२। एकु — १।२३।६।
गुन प्रेरक — ३।३२।छं० १।
गुनरासी — १।३४१।६।
गोबिंद (ब्रह्म भी) — ३।३२।छं० २।
चराचर नायक — ६।१०२।४।

चराचर स्वामी — १।११६।२।

निजतंत्र — १।५१।छं०।

परधामा — १।१३।३, १।५०।७।

परम कारन — ६।१०३।छं० १।

परमीसा — ७।५८।७।

परावर (सर्वश्रेष्ठ) अथवा परावर नाथ — १।११६।

परेस (शिव 'परेश') — १।११६।८।

पालक श्रुति सेतू — २।२५४।३।

पुराना (पुराण पुरुष) — १।११६।८।

पुरुष प्रसिद्ध — १।११६।

बासुदेव (विष्णु भी) — १।१४३।

बिस्त्र कारन करन (लक्ष्मण भी) — १।२०८ ख।

बिस्व निवास — ६।७३।

बिस्वबास — १।१४६।८।

बिस्वरूप — १।१३।४, ४।२२।४, ६।१४।

ब्यापक (बिष्णु भी) — १।१३।४, १।५०, १।५१।छं०, १।१०९।१, १।११६।८, १।१९८, १।२०५, ३।११।१७, ३।३२।छं० ३, ४।२२।४, ५।३६।२, ६।५५।५, ६।७३, ६।१११।छं० ४, ७।५८।७, ७।७२।४। ब्यापकु— १।२३।६, १।३४१।६।

ब्याप्य — ७।७२।४।

भगवान (ब्रह्म, शिव, विष्णु, लोमश भी) — १।११८, ४।२, ५।२३, ६।१५ क, ६।१०४, ६।१२१ क, ७।४ क, ७।९ ख, ७।१८ ख, ७।६२ ख, ७।७२ क, ७।९२ ख। भगवाना (ब्रह्म, विष्णु, श्रीरंगजी, शिव, ब्रह्मा, कपिल भी) — १।१३।४, १।५३।४, १।११४।४, १।११६।६, १।१४६।८, १।१५२।६, १।२०९।४, १।२५३।६, १।२४४।१, ३।१०।१, ३।२४।५, ५।५।४, ५।४३।९, ६।७०।५, ६।७३।१२, ६।१०७।१, ७।६।७, ७।४८।५, ७।६१।६, ७।६५।४, ७।८२।६, ७।९२।४, ७।११३।३, भगवानू — २।२५४।२। भगवंत (ब्रह्म भी) — १।१७७, ३।२३।३, ३।४१।५, ४।३, ५।३२, ६।४५, ७।१९ ख, ७।३४।२, ७।९१ ख, ७।११३ ख। भगवंता (विष्णु भी) — ३।२३।२, ५।३६।२, ७।३६।५, ७।७२।४, ७।७८।७।

मायाधनी — १।५१।छं०।

मायाधीस — १।११७।७।

मायानाथ — ३।२०।छं० ४।

मायापति — २।२१८।२, ७।६२ ख, ७।८२।६।

विभु (समर्थ एवं व्यापक — शिव भी) — ३।४।छं० ९, ५।१।श्लो०१। बिभु — १।१०९।१, ६।१०३।छं० १, ६।१११।छं० १, ६।१११।छं० ५, ६।१११।छं० ९, ७।१४।छं० १।

विषम — ३।११।११।

वेदान्तवेद्य — ५।१।श्लो०१।

संसार बिटप — ७।१३।छं० ५।

सकल उर बासी (ब्रह्म भी) — ६।१७।३।

सगुण — ३।११।११। सगुन (ब्रह्म भी) — १।२१।८, १।२३।१, १।३६।५, १।११०।४, १।११५।५, १।११६।१, १।११६।२, १।११६।३, १।१४६।५, १।३०४।१, २।२१९।६, ३।८, ३।११।१९, ३।१३।१३, ३।३२।छं० १, ४।२६।१३, ४।२६, ५।४८, ६।७४।१, ६।११२।७, ६।११३।तोमर ७, ६।११५।छं० २, ७।१३।छं०१, ७।१३।छं० ६, ७।७३ ख, ७।११०।१६, ७।११० घ, ७।१११।८। ['सगुन मत' नहीं लिया।]

सचराचर नायक — १।१४६।२।

सचराचर रूप — ६।१५ क।

सचराचर स्वामी — ३।३९।१, ५।४९।५, ७।१२८।४। सचराचर साईं — ३।१४।६।

सर्ब (सर्व। विराट्रूप सब अर्थात् व्याप्य) — ७।३४।७।

सर्ब उर बासी — ५।५०।३। सब उर बासी — ७।७२।७।

सर्ब उरालय — ७।३४।७।

सर्बगत (शिव के लिए 'सर्वगत'। व्यापक) — ७।१६, ७।३४।७।

सर्बरूप — ५।५०।३। सब रूप — ६।१११।छं० ८।

सुद्ध — २।८७।

स्वबस — २।२५४।२, ६।७३।११।

अकथ — १।२३।१, २।१२६।

अकल (ब्रह्म भी) — १।५०, १।२०५, ६।११०।६।

अखंड (ब्रह्म एवं शिव भी) — १।२०१, १।१४४।४, ३।१३।१२, ६।६१।१८, ६।१११।छं० ८, ७।७२।४।

अगाध — १।२३।१।

अगुन (ब्रह्म भी) — १।२१।८, १।२३।१, १।१०८।८, १।११५।५, १।११६।१, १।११६।२, १।१४१।२, १।१४४।४, १।१४६।५, २।११९।६, ३।११।१९, ६।११०।६, ६।११५।छं० २, ७।७२।५, ७।८५ क।

अगोचर — १।२०३।५, १।३२३।छं० २, २।१२६, ३।३२।छं० २।

अज (शिव, ब्रह्मा, ब्रह्म भी) — १।१३।३, १।५०, १।१०८।८, १।११६।२, १।१४१।२, १।१९८, १।२०५, ३।३०।१७, ३।३२।छं० २, ३।३२।छं० ३, ४।२६।१२, ५।३९।२, ६।११०।६, ६।१११।छं० ४, ६।१११।छं० ५, ७।१३।छं० ६, ७।२५, ७।३०।९, ७।३४।४, ७।७२।३, ७।८५ क।

अद्वैत (ब्रह्म भी) — ७।१३।छं० ६।

अनंत (ब्रह्म, लक्ष्मण भी) — १।३३, १।११४।४, १।१४०।५, १।१४४।४, ६।७३।११, ७।३४।२, ७।५२।३, ७।९१।३। अनंता (विष्णु भी) — ३।१३।१२, ५।३९।२, ७।७२।४।

अनवद्य (शिव भी) — ३।११।१२, ६।१११।छं० ८, ७।७२।५।

अनादि — १।२३।१, १।११७।६, २।९३।७, ३।३२।छं० २, ५।३९।२, ६।१११।छं० ४, ७।३४।४, ७।८५ क, ७।९३।३। अनादी — १।१०८।५, १।१४४।४।

अनाम (ब्रह्म भी) — ७।३४।६। अनामा — १।१३।३।

अनामय — ५।३९।२, ६।१०७।छं०, ६।११०।६, ७।३४।२।

अनीह (ब्रह्म भी) — १।१३।३, १।५०, १।१०९।१, १।२०५।

अनुपम — ७।३४।४।

अनूप — ३।११।११। अनूपा (ब्रह्म भी) — १।२३।१, १।१४४।५, २।९३।७।

अपार — २।१२६, ३।११।१२।

अप्रमेय — ५।१।श्लो०१।

अबिकारी — १।२३।७, ६।७३।११।

अबिगत (विष्णु भी) — २।९३।७, २।१२६।

अबिनासी (ब्रह्म, विष्णु, शिव भी) — १।२३।६, १।४८।८, १।१२०।६, १।३४१।६, ३।११।१७, ३।३०।१७, ६।११०।५, ७।३०।९, ७।७२।७, ७।१२४।८।

अब्यक्त — ३।३२।छं० २, ६।११३।तोमर ७।

अभेद — १।५०।

अमल (ब्रह्म भी) — ३।११।१२।

अमान (विष्णु के लिए 'अमाना') — २।२१९।६, ६।१११।छं० ५, ७।३४।५।

अरूप — १।१३।३, १।११६।२। अरूपा (ब्रह्म भी) — १।१४१।२।
अलख (१।११६।२, २।९३।७। अलखु — १।३४१।६।
अलखगति — १।१०८।८।
अलेप — २।२१९।६।
अशेषकारणपर — १।१।श्लो०६।
असम — ३।३२।छं० ४।
कारन काज पर — ६।१११।छं० ६।
गतभेदा — २।९३।८।
गिरा गोतीता — ७।७२।५।
गुनरहित — १।११६।३।
गुनातीत — ३।३६।१, ७।२४।२।
गोपर — ३।३२।छं० २।
ज्ञान गिरा गोतीत — ३।११।११। ग्यान गिरा गोतीत — १।१९६, ७।२५।
निरंजन — १।१९८, ३।३२।छं० ३, ७।३४।६, ७।७२।६।
निरमोहा — ७।७२।६।
निरवधि (ब्रह्म भी) — ७।१११।५।
निराकार (शिव भी) — ७।७२।६।
निरामय — ६।१०४।छं०।
निरीह (शिव भी) — ३।४।छं० ९, ७।७२।७।
निरुपम (भरत भी) — ७।९२।८, ७।९२।छं०।
निरुपाधि — १।१४४।५।
निर्गुण (शिव भी) — ३।११।११, ६।१।श्लो० १। निर्गुन (शिव, ब्रह्म भी) — १।११०।४, १।१९८, १।२०५, ३।३२।छं० १, ४।२६।१२, ६।११३।तोमर ७, ७।१३।छं० १, ७।३४।३, ७।७३ ख। निरगुन — १।२३, १।३४१।६। ['निर्गुन मत' नहीं लिया।]
निर्मम — ७।७२।६।
निर्विकार (ब्रह्म के लिए 'निर्बिकार') — ६।१।श्लो०१।
प्रकृति पार — ७।७२।७।
बिकार रहित — २।९३।८।
बिरज — १।५०, ३।११।१७, ३।३२।छं० ३, ६।१११।छं० ५, ७।५८।७, ७।७२।७।
बुद्धिपर — २।२१६।
मन गुन पार — ७।२५।
मन ग्यान गुन गोतीत — ३।६।छं०।
मनपर — ७।१३।छं० ६।
मायातीत — ६।१।श्लो०१।
माया मोह पार — ७।५८।७।
मोहपर — १।१९६।
सर्बरहित — १।१२०।६। सब रहित — ५।५०।३।

आनंदकंदु — १।३१८।छं०, १।३२१।छं०।
आनंद निधानू — २।४१।५।
आनँद रासी — १।२३।६।

आनंद सिंधु — १।१९७।५।

एकरस — १।३४१।८, २।२१९।६, ६।११०।५, ७।३०।९।

ग्यानघन — ६।१११।छं० ३।

ग्यान निधान — २।२९१, ७।३४।५।

चिदानंद संदोह (शिव भी) — ७।५२ क, ७।६८ ख, ७।७७ ख।

चिदानंदु (शिव के लिए 'चिदानंद') — १।३४१।६।

चिनमय — १।१२०।६।

चेतनघन — १।२३।६।

तुरीय (शिव भी) — ३।४।छं० ९।

निजानंद — १।१४४।५।

नित्य — ७।७२।६। नित — १।५१।छं०।

परमातमा (ब्रह्म के लिए 'परमात्मा') — १।११९।५, ७।४८।८।

परमानंद — १।११६।८, ७।३४।

परमारथरूपा — २।९३।७।

परिपूरन काम — १।३३६, ७।३४।

पूरनकाम (शिव भी) — १।३४२।६, ३।३०।१७, ६।१२१।छं० १। पूरनकामा — ५।२७।३।

प्रकासनिधि — १।११६।

बिग्यानघन — ३।३२।छं० २।

बिग्यानरूप — ७।७२।३।

बोधमय — ६।१११।छं० ३।

ब्रह्म (शिव, ब्रह्मा, ब्रह्म, विष्णु भी) — १।२०।४, १।२३।१, १।२३।४, १।२३।५, १।२३।६, १।२५, १।५०, १।५१।छं०, १।७४।८ (वि० के अनुसार), १।७५।२ (वि० के अनुसार), १।१०८।५, १।१०८, १।११०।४, १।११६।८, १।१२०।६, १।१४१।२, १।१४४।१, १।१५०।६, १।१९८, १।२१६।२, १।२१७।४, १।३०४।१, १।३०९।८, २।९३।७, २।१२३।२, २।१९४।८, ३।७।३, ३।१३।१२, ३।१३।१३, ३।३२।छं० ३, ४।२६।१२, ४।२६।१३, ४।२८।७, ५।३९।२, ६।५५।५, ६।१०४।छं०, ६।११०।५, ६।११३।तोमर ७, ७।१३।छं० ६, ७।४२।७, ७।४२, ७।४७, ७।४८।८, ७।५४।५, ७।५४।६, ७।५८।७, ७।७२।७, ७।८५ क, ७।९३।३, ७।११०।१६, ७।११० घ, ७।१२२।१२। ब्रह्मु — १।३१८।छं०, १।३४१।६।

विज्ञानधाम (लक्ष्मण भी) — ४।१ श्लो०१।

सच्चिदानंद — १।१३।३, १।५०।३, १।५०।७, १।११६।५। सच्चिदानंदा (विष्णु भी) — १।१४४।१ सच्चिदानंदु — २।२३९

सच्चिदानंद घन — ७।२५, ७।४७, ७।७२।३।

सच्चिदानंदमय कंद — २।८७।

सत — १।२३।६।

सहज प्रकासरूप — १।११६।६।

सुख अयना — ५।३२।१।

सुखकंद (शिव भी) — ७।८ ख, ७।११ ग। सुखकंदा — ३।१२।१३, ५।३४।५।

सुख खानी — १।२२१।६।

सुखधाम (शिव, लक्ष्मण भी) — १।१९७।६, १।२२०, ६।१०३, ६।१०८।८, ६।१११।छं० १, ६।११३।छं०, ६।१२१।छं० १, ७।४८।१, ७।८४ ख। सुखधामा — १।५२।८, ३।१०।२०।

सुख निधान (लक्ष्मण भी) — १।२१८, ६।६०।१, ७।९२ ख।

सुख भवन — ५।१४।३।

सुख मंदिर — ६।१११।छं० ७, ७।३४।३।

सुख मूल — १।३२४।छं० ३, १।३४१, ३।६ क।

सुखरासी (शिव, ब्रह्म भी) — १।१९७।५, ३।३०।१७, ७।२०।६, ७।६५।६।

सुखरूप — ७।५१।६।

सुख संदोह — १।१९९। सुख संदोहा — ७।७२।६।

सुख सागर — १।१९८।६, २।७०।७, २।१०६।२, २।१३९।४, २।३०४।५, ३।२६।छं०, ६।६४।६।

सुखसार — ६।१०९ ख।

रामगिरि — दे० 'चित्रकूट'।

रामचरितमानस — तुलसीदास-रचित काव्य।

[यह तुलसीदास की प्रमुख कृति। इसकी रचना सं० १६३१ (सन् १५७४) की रामनवमी को अयोध्या में प्रारम्भ (१।३४।४-५)। किष्किन्धाकाण्ड के प्रारम्भ के एक सोरठे (४।१।सो०) की ध्वनि से यह अनुमान कि इसका कुछ अंश काशी में भी निर्मित। इसकी समाप्ति की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इसकी भाषा अवधी। मुख्य छन्द चौपाई और दोहा, यद्यपि बीच-बीच में कुछ अन्य प्रकार के छन्दों का भी प्रयोग। इसमें 'चरित' और 'काव्य', दोनों के गुण उपलब्ध। इसके चरितनायक राम कवि के आराध्य, अतः यह कवि की भक्ति का भी प्रतीक। सा० को०। इसमें कवि के अध्ययन और जीवन-दर्शन का प्रौढ़तम रूप प्रस्तुत। अपने अनेकानेक गुणों के कारण यह हिन्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ। उत्तरी भारत में धर्मग्रन्थ के रूप में पूजित। भक्तों की दृष्टि में यह भगवान् की वाङ्मयी मूर्ति है।

इस रचना की समस्त प्रतियों में पाठ प्रायः एक-सा — परस्पर अन्तर प्रक्षिप्तांशों के कारण। इन प्रतियों के सूक्ष्म अध्ययन से यह स्पष्ट कि तुलसीदास अपनी इस रचना में संशोधन प्रायः करते ही रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न समयों पर मूल प्रति से की गयी प्रतिलिपियों में पाठ के चार स्तर प्राप्त।

'मानस' की सबसे प्राचीन प्रति अयोध्या की। इस पर यद्यपि तिथि सं० १६६१ वि० (सन् १६०४ ई०), किन्तु यह वास्तव में सं० १६९१ (सन् १६३४) की। इसमें केवल 'बालकाण्ड'। अन्य महत्वपूर्ण प्रतियाँ सं० १७०४ (सन् १६४७), सं० १७२१ (सन् १६६४), सं० १७६२ (सन् १७०५) की, जो इस समय काशी में। कहा जाता है कि राजापुर (जिला बाँदा) की 'अयोध्याकाण्ड' की प्रति स्वतः तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई, किन्तु प्रति के अन्त में पुष्पिका का सर्वथा अभाव और पाठ में इस प्रकार की अशुद्धियाँ कि उक्त प्रति का कवि-लिखित होना असम्भव। हि० सा०, द्वि० पृ० ३१५।]

इसमें सात सोपान। दे० 'बालकाण्ड', 'अयोध्याकाण्ड', 'अरण्यकाण्ड', 'किष्किन्धाकाण्ड', 'सुन्दरकाण्ड', 'लंकाकाण्ड', 'उत्तरकाण्ड'। इसके अनुसार प्रत्येक कल्प में राम का अवतार (और रावण-जन्म) तथा उसके अनेक हेतु (१।१२२।२, १।१४०।२)। इसमें चार कल्पों के रामावतार की कथा — (१) जय-विजय को मिले शाप के कारण। उनके रावण-कुम्भकर्ण होने पर उनके उद्धार के लिए भगवदावतार (१।१२२।४ - १।१२३।२)। (२) वृन्दा के शाप के कारण। उस कल्प में जालन्धर रावण (१।१२३।५ - १।१२४।३)। (३) नारद-शाप से। वहाँ शंकर के दो गण रावण-कुम्भकर्ण (१।१२४।५, १।१३७।६-१।१३७, १।१३९)। (४) स्वायम्भुव मनु-शतरूपा को दिये गये वर के फलस्वरूप। उस कल्प में प्रतापभानु रावण (१।१४१।१, ८, १।१५०।२, १।१५२, १।१७३, १।१७६।२-३)।

कवि और कोविद रामचरितरूपी निर्मल मानस-सरोवर के हंस। उनसे विनय और कृपा-याचना करके सकल सिद्धिदायिनी अयोध्यापुरी में तुलसीदास द्वारा रामकथा का आरम्भ (१।१४ ग, १।३५।५-६)। इसका नाम रामचरितमानस। इसके श्रवण से, इसमें निमज्जन करने से, विषय-अनल-दग्ध मन को विश्राम (१।३५।७-८)। यह मुनि-मन-भावन, सुन्दर और पवित्र। त्रिविध दोष-दुःख-दारिद्रय-दलन। कलि की कुचालों और पापों का नाशक। इसके आदि रचयिता शिव। रचकर उनका अपने मानस में रखना, सुअवसर पाकर उमा को सुनाना। (इस तरह यह उनके मानस से प्रकट), अतः उनके द्वारा इसका नामकरण 'रामचरितमानस'। फिर उनका इसे काकभुशुण्डि को देना। (उनके अनुग्रह से लोमश का भुशुण्डि को सुनाना।) भुशुण्डि से (वि० के अनुसार शिव से) यह याज्ञवल्क्य को प्राप्त। उनका भरद्वाज को सुनाना (१।३०।३-५, १।३५।९-१२)। तुलसीदास द्वारा वराहक्षेत्र में अपने गुरु से

इसका श्रवण। सं० १६३१ के चैत्रमास, मंगलवार, नवमी तिथि को अयोध्या में (राम-जन्म के देश-काल में) कवि द्वारा इसकी कथा का प्रारम्भ। इसके श्रवण से काम-मद-दम्भ-नाश, विषयानल की शान्ति। इसकी सुखद कथा कहने की उनकी प्रतिज्ञा। मन लगाकर सादर सुनने का सज्जनों से अनुरोध (१।३० क - १।३१।२, १।३४।४-८, १।३५।५-८, १३)।

रामचरितमानस और मानस-सर (या सरोवर) का रूपक — उमा-महेश का स्मरण करके मानस के निर्माण, स्वरूप और जग-प्रचार के हेतु कहने का कवि का संकल्प (१।३५)।

(१) मानस-सर की निर्माण-प्रक्रिया (जेहि बिधि भयउ) —

शम्भु-प्रसाद से हृदय में सुमति का उदय और तुलसी द्वारा मनोहर रामचरितमानस की रचना। सुमति भूमि। हृदय अगाध स्थान। वेद-पुराण समुद्र। साधु मेघ, जिनके द्वारा वेद-पुराण-उदधि का साररूप अमृततत्व-ग्रहण और राम-सुयशरूपी 'मधुर मनोहर मंगलकारी' जल की वर्षा। यह सर्वसुलभ। [राम-सुयश-जल में निर्गुण लीला, सगुण लीला, प्रेमाभक्ति, तीनों। निर्गुण लीला सर्वजन-सुगम न होने के कारण उसका विस्तृत वर्णन नहीं।] सगुण लीला-वर्णन ही जल की स्वच्छता (मनोहरता)। इससे मल का नाश। प्रेमाभक्ति जल की मधुरता और शीतलता। यह अवर्णनीय। [सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च। अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। नारद० २, ३, ५१। 'ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं। कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं।।' ७।१२० क।] सुकृत (पुण्य) रूपी धान के लिए यह जल हितकारी। इससे पुण्य-वृद्धि। यह रामभक्तों का जीवन। सर की प्रान्तभूमि पर बरसकर बहते हुए संकीर्ण मार्ग बनाकर, उसी से सरोवर में जाकर, यह स्थिर। पुराना होकर शीतल, स्वच्छ, रुचिकर। उसी प्रकार राम-यश भक्त कवि की धारणाशक्ति द्वारा गृहीत और उनके श्रवणरन्ध्र से मानस (अन्तःकरण) में प्रविष्ट, इससे मानस परिपूर्ण। [आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से विषय का इन्द्रियों के माध्यम से मस्तिष्क द्वारा ग्रहण। मा० पी० १।३६।८ में त्रिपाठी जी के अनुसार वेदान्त मत से ज्ञानेन्द्रियों में दो इन्द्रियाँ, चक्षु और नेत्र, ऐसी जो वृत्तियों के साथ बाहर जाकर विषय को ग्रहण करती हैं।] गुरुमुख से सुने रामयश के मनन, निदिध्यासन से इसके गुण प्रकट, भ्रान्ति दूर, आनन्द की प्राप्ति (१।३६।१-९)।

(२) मानस-सर का स्वरूप (जस मानस) —

(क) चार संवादरूपी घाट — संवाद ही इस पावन सुन्दर मानस-सर के चार मनोहर घाट। ये संवाद विचारपूर्वक रचित (जिससे कर्मकाण्डी, ज्ञानी, उपासक और सर्वसाधनहीन दीन, ये सब प्रकार के अधिकारी एक ही रामचरितमानस से उपकृत हों) (१।३६)।

[चार घाट — लौकिक सरोवर में प्रायः चार घाट। (पम्पासर में भी। ३।३९।६-७।) इनमें एक लगभग सपाट — पंगु और पशुओं के लिए भी सुगम। यह प्रायः पूर्व दिशा में। नाम 'गोघाट' या 'गऊ-घाट'। दूसरा 'पंचायती घाट' — सर्वसाधारण के स्नान-पान के लिए। प्रायः दक्षिण में। तीसरा 'राजघाट' — उत्तम वर्णवालों के लिए। प्रायः पश्चिम में। चौथा 'पनघट' या 'स्त्रीघाट' — स्त्रियों के जल भरने और स्नान करने के लिए। प्रायः उत्तर दिशा में। यहाँ पुरुषों को आने का अधिकार नहीं। मा० पी० १।३६ 'घाट मनोहर चारि' इति २।

संवादरूपी घाट — (१) अयोध्या में सन्त-तुलसी-संवाद — यह 'गोघाट'-सदृश, क्योंकि सर्वजन-सुलभ। पूर्वघाट। साधनरूपी अंगों से रहित व्यक्ति के लिए भी यहाँ राम-सुयश-जल सुलभ। दीनता से परिपूर्ण होने के कारण यह संवाद 'दैन्यघाट'। (कवि का दैन्य — १।८।४-७, १।८, १।१३ आदि।) इसे 'प्रपत्तिघाट' भी कहते हैं। (२) प्रयाग में याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद — यह 'पंचायती घाट'- तुल्य। दक्षिण घाट। इसमें कर्म या कर्मकाण्ड की प्रधानता होने के कारण 'कर्मघाट' या 'कर्मकाण्ड घाट'। इसमें रामकथा कहने से पहले शिव, शक्ति, गणेश का चरित और कर्मपूर्वक महत्व-कथन। (शिव-महत्व— १।५०।६, १।८८।५-६ आदि, शक्ति का महत्व — १।९८।२-४ आदि, गणेश का महत्व — १।१०० आदि।) (३) कैलास पर्वत पर उमा-शम्भू-संवाद — यह राजघाट के समान। पश्चिम घाट। यह ज्ञानमय। इसमें उमा की ब्रह्मविषयक शंका (१।१०८, १।११०।४ - १।१११।४, सती का संशय — १।५०, १।५१।१-४ आदि)। शिव के ज्ञान-प्रतिपादक वचन (१।११२।१-२, १।११६।१ - १।११९।६ आदि)। ज्ञान साधारण जन के लिए अगम्य। इसके अधिकारी ज्ञानी, अतः यह 'ज्ञानघाट' या 'ज्ञानकाण्डघाट'। (४) नीलगिरि पर भुशुण्डि-गरुड़-संवाद — यह 'पनघट' के सदृश। उत्तर घाट। इसके अधिकारी अनन्य उपासक। जैसे पतिव्रता स्त्री

के लिए उसका स्वामी ही सर्वस्व, वैसे ही इस घाट के अधिकारी के लिए उसके प्रभु ही सब कुछ। इसमें अनुराग से भर सीधे कथा-आरम्भ (७।६४।६, ७)। इसमें उपासना की प्रधानता (७।११९ क-७।१२४ क), अतः 'उपासनाघाट' या 'उपासनाकाण्ड-घाट'। (भारतीय पद्धति में प्रथम दिशा पूर्व, पूज्य स्थानों की परिक्रमा दक्षिणावर्त्त। इसीलिए घाटों का क्रम पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर।)

संवादों की भूमिका और विस्तार —

(१) तुलसी-सन्त-संवाद— इसकी भूमिका — १।१।श्लो०१ (वर्णानामर्थसंधानां····) से। संवाद-१।२९ ग (बरनउँ रघुबर···· कलुष नसाइ) से ७।१३०।४ (रघुपति कृपाँ···· चरित सुहावा) तक। (२) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद — इसकी भूमिका — १।४४।१ (भरद्वाज मुनि···अति अनुरागा) से १।४५।६ (करि पूजा मुनि··· मृदु बानी) तक। संवाद — १।४५।७ (नाथ एक संसउ···सबु तोरें) से ७।१३०।१ (यह सुभ संभु··· समन बिषादा) तक। (३) उमा-शंकर-संवाद — इस संवाद की भूमिका— १।४७ (कहउँ सो मति अनुहारि··· संभु संबाद) से १।१०७।६ (कथा जो सकल···चह सैलकुमारी) तक। संवाद — १।१०७।७ (बिस्वनाथ मम नाथ ··· बिदित तुम्हारी) से ७।१२९ (मैं कृतकृत्य···सकल कलेस) तक। (४) भुशुण्डि-गरुड़-संवाद— इसकी भूमिका — ७।५५ (ऐसिअ प्रस्न···काग सन जाइ) से ७।६३।८ (करि पूजा··· बोलेउ कागा) तक। संवाद—७।६३ क (आयसु देहु···केहि काज) से ७।१२५ क (तासु चरन सिरु···राखि रघुबीर) तक।

मानसकार तुलसी। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, उमा-शंकर, भुशुण्डि-गरुड़ के संवाद उन्होंने ही सुनाये। इस दृष्टि से सब संवाद तुलसी-सन्त-संवाद।]

(ख) सप्त सोपान— मानस-सर के सप्त सोपान ही रामचरितमानस के सात प्रबन्ध। ये ज्ञान-दृष्टि से दर्शनीय (१।३७।१)। [प्रत्येक की फलश्रुति उस सोपान के नामकरण का आधार, फिर भी उपलब्ध प्रतियों में सोपानों के नामों में कुछ अन्तर।

	काशि०	मा० पी०	वि०	माता०
प्रथम सोपान	+	+	+	+
द्वितीय सोपान	इति भी नही	विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादन	इति भी नही	+
तृतीय सोपान	विमल वैराग्य सम्पादन	विमलवैराग्यसम्पादन	विमलवैराग्यसम्पादन	विमलवैराग्यसम्पादन
चतुर्थ सोपान	विशुद्धसन्तोषसम्पादन	विशुद्धसन्तोषसम्पादन	विशुद्धसन्तोषसम्पादन	विशुद्धसन्तोषसम्पादन
पंचम सोपान	ज्ञान सम्पादन	ज्ञान सम्पादन	विमलज्ञानसम्पादन	विमलज्ञानसम्पादन
षष्ठ सोपान	विमलविज्ञानसम्पादन	विमलविज्ञानसम्पादन	विमलविज्ञानसम्पादन	विमलविज्ञानसम्पादन
सप्तम सोपान	अविरलहरिभक्तिसम्पादन	अविरलहरिभक्तिसम्पादन	अविरलहरिभक्तिसम्पादन	अविरलहरिभक्तिसम्पादन

चारों ग्रन्थों में प्रथम सोपान का नाम नहीं, केवल 'इति श्री····'। काशि० और वि० में द्वितीय सोपान की इति भी नहीं। इसके सम्बन्ध में वि० में कथन कि 'भरत-चरित्र की इति नहीं है, अतः ग्रन्थकार ने इति नहीं दिया।' मा० पी० में पाद-टिप्पणी कि 'यह इति प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है। मा० पी० १।३७।१ नोट ३ में भक्त मानस-मर्मज्ञों की पोथियों में प्रयुक्त सोपानों के विभिन्न नामों की सारिणी। इसमें भागवतदासजी की पोथी में प्रथम सोपान का नाम 'सुखसम्पादन'।

ग्रीताप्रेस के मूल पाठ अथवा सटीक संस्करणों में किसी सोपान का नाम नहीं। सबकी केवल इति।

सोपानों को 'काण्ड' तुलसीदास ने नहीं कहा। 'बालकाण्ड' आदि नाम सुविधा की दृष्टि से बाद में रखे गऐ।

भक्तों की दृष्टि में सातों सोपान सात मोक्षदायिनी पुरियाँ — बालकाण्ड है अवध, अवध मथुरा मनभावन। हरिद्वार आरण्य, काशिका किष्किन्धा भन।। कांची सुन्दर लसत, लंक उज्जैन सुहावन। उत्तर द्वारावती पुरी सातों मनभावन।। लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो रामचरित्र सर। विजयानन्द सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर।। वि० १।३७।१ व्या०।]

(ग) मानस-सर का जल — रामसीय-यश मानस-सर का अमृततुल्य जल। राम के निर्गुण रूप की अबाध महिमा जल की अगाधता। उपमाएँ मनोरम लहरों का विलास। जैसे जल पर सघन कमल-पत्र, वैसे ही

मानस-काव्य में सघन चौपाइयाँ। जल में सीप जिनमें मोती, कविता में युक्तियाँ जो सुन्दर और सार्थक। सुन्दर छन्द, सोरठे, दोहे ही विविध वर्णों के शोभाशाली कमल-कुल। जैसे कमल में पराग स्पष्ट, मकरन्द अन्तर्निहित, केवल भौरों के लिए सुलभ, सुवास दूर तक विकीर्ण, उसी तरह कविता में अर्थ स्पष्ट, भाव अन्तर्निहित, केवल सुकृतपुंज के लिए ही आस्वाद्य, सु-भाषा का प्रसार दूर तक (अर्थात् अर्थ-भाव समझे बिना भी कविता श्रवण-मधुर)। ज्ञान, वैराग्य, विचार मानस-सर के हंस। [ज्ञान राजहंस — 'सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल'। १।१३४। वैराग्य कलहंस — 'बोलत जलकुक्कुट कलहंसा'। ३।४०।२। विचार हंस — 'खीर नीर बिबरन गति हंसी'। २।३१४।८। वि०, मा० पी० १।३७।७ के अन्तर्गत।] कविता के अंग ध्वनि, अवरेव, गुण, जाति ही चार प्रकार की मनोहर मछलियाँ। (दे० धुनि, अवरेब, गुन, जाति।) चारों पुरुषार्थ, विचार करके ज्ञान-विज्ञान का कथन, नवरस, जप, तप, योग, वैराग्य, ये उन्नीस जलचर। (ऊपर ज्ञान अर्थात् ज्ञान का स्वरूप हंस।) इनसे परिचय अपेक्षित, पर सावधान रहना आवश्यक (१।३७।२-१०)।

(घ) मानस-सर का परिवेश — सुकृती (पुण्यात्मा) और साधु जनों द्वारा रामनाम का गुणगान चित्रविचित्र जलपक्षी। सन्त-सभा मानस के चारों ओर की अमराई! श्रद्धा ही वसन्त ऋतु। सन्त-सभा में अनेक प्रकार से अनेक प्रकार की भक्ति का निरूपण वृक्ष, क्षमा, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह), ये वृक्ष के लता-वितान। शम (मनोनिग्रह), यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) — ये फूल जिनसे लता-वितान की शोभा। ज्ञान फल। हरिपद-रति इसका रस। [निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्। पिबत भागवतं रसमालयं मुहरहो रसिका भुवि भावुकाः।। भा० १।१।३।] मानस में और भी अनेक कथा-प्रसंग। ये शुक, पिक आदि बहुवर्णी पक्षी (मानस से दूर न जानेवाले जलपक्षी से भिन्न), जो बाहर से आकर फल-जल खा-पीकर चले जाते हैं (१।३७।११-१५)।

सन्त-सभा में कथाजनित पुलक ही वाटिका, बाग, वन। (भक्ति का पुलक वाटिका, ज्ञान का पुलक बाग, कर्म का पुलक वन—वि०।) सुखानुभव यहाँ के सुन्दर पक्षियों का विहार। निर्मल मन माली जो प्रेम-जल से नेत्रों द्वारा पुलक-वाटिका को सींचता है। मानस को सँभालकर गानेवाले व्यास इस सर के चतुर रक्षक। (इनका कर्तव्य सब घाटों की मर्यादा की रक्षा — दोष-मुक्त सर्वांगशुद्ध पाठ, भक्ति के भिन्न-भिन्न साधनों में श्रोता की रुचि और सामर्थ्य के अनुरूप साधन का निर्देश और उसका मार्ग-दर्शन आदि।) नियमपूर्वक नित्य श्रवण करनेवाले श्रोता ही रामचरित के अधिकारी, जिस प्रकार देवगण मानस-सर के अधिकारी। (यहाँ श्रोता का पद वक्ता से बड़ा) (१।३७-१।३८।२)।

खल और विषयी ही बक और काग। उनके आस्वाद्य विषय-कथा और नाना प्रकार के विषय-रस — घोंघे, मेढ़क और सेवार (शैवाल) — जिनका यहाँ नितान्त अभाव। अतः वे इस सर के निकट नहीं आते (१।३८।३-५)।

(ङ) मानस-सर के मार्ग की कठिनाइयाँ — यहाँ तक आने में अनेक विघ्न जो केवल रामकृपा से ही दूर। कुसंगियों के कुसंग ही भयंकर कुपन्थ। (सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहिं रे। क० ७।३०।) कुसंगियों के वचन बाधास्वरूप सिंह, व्याघ्र और सर्प (विकल्प से हाथी)। गृहकार्य और नाना प्रकार के सांसारिक जंजाल दुर्गम विशाल पर्वत। मोह, मद, मान पथ के अनेक विषम वन। ['जात्रिविद्यामहत्वं च रूपयौवनमेव च। यत्नेन वै परित्याज्यं पंचैते भक्तिकण्टकाः।।'] कुतर्क ही वेगवती भयंकर पहाड़ी नदियाँ (१।३८।६-६)

(च) मानस-सर के अधिकारी-अनधिकारी — ऐसे विकट विषम पथ पर बढ़ने के लिए आवश्यक सम्बल—श्रद्धा, सन्त-संगति, राम-प्रेम। इनके बिना भी यदि कोई कष्ट झेलकर मानस-सर तक पहुँच जाये, तो यहाँ के प्रचण्ड हिम-शीत का प्रकोप उसके लिए असह्य। जड़तारूपी जाड़े और नींदरूपी जूड़ी से विवश वह सर में मज्जन-पान करने में असमर्थ, अतः उसकी अन्तर्बाह्य मलिनता का परिष्कार नहीं। वह अभिमानपूर्वक लौट जाता है। किसी के पूछने पर सर की निन्दा करता है। जिस पर राम की सु-कृपा, वह आदरपूर्वक इसमें स्नान कर भयानक भयताप (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) से मुक्त। (श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ते. संसारपतंगघोरकिणैर्दह्यन्ति नो मानवाः। ७।१३० के बाद श्लो०२।) जिसके मन में रामचरण-रति, उसके द्वारा इस सरोवर का कभी परित्याग नहीं! स्नानार्थी के लिए सत्संग वांछनीय। (बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।। ७।६१) (१।३८-१।३६।८)।

हृदय-चक्षुओं से कवि द्वारा इसके स्वरूप का दर्शन, इसमें अवगाहन (सत्संग, रामचरितमानस का श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रवचन)। उनकी बुद्धि निर्मल (१।३६।९)। (यहाँ मानस-सर का रूपक समाप्त; 'जस मानस जेहि बिधि भयउ' का उपसंहार।)

(३) मानस-सर के जग-प्रचार का हेतु : रामचरितमानस काव्य और सरयू नदी का रूपक –

कवि के मन में आनन्द का उछाह। प्रेमानन्द का प्रवाह। इससे राम के निर्मल यशरूपी जल से पूरित कविता-नदी निःसृत। इस कवितारूपी नदी का नाम सरयू। यह परम पुनीता, मंगलमूला, मानस-नन्दिनि। [कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्।। ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः। तस्मात् सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते।। सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता। तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते। – विश्वामित्र-कथन राम-लक्ष्मण से। वा० रा० १।२४।८-१०।] लोकमत और वेदमत इसके दो सुन्दर किनारे। कलिकाल के क्षुद्र पापरूपी तृणों और महापापरूपी वृक्षों का इसके द्वारा निर्मूलन और प्रवाह। दोनों तटों पर बसे छोटे गाँव, बड़े ग्राम और नगर ही तीन प्रकार के श्रोता। [मुक्त, मुमुक्षु, विषयी – सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु विषई। लहहिं भगति गति संपति नई।। ७।१५।५। अथवा, काष्ठजिह्वास्वामी के अनुसार, उत्तम – सूप की तरह, मध्यम – छलनी की तरह, नीच – खेत के पनारे की तरह। मा० पी० १।३६ नोट १, २।] सन्त इन तीनों से पृथक्। उनकी सभा ही 'सकल सुमंगल मूल' अवध जहाँ से होकर बहती हुई कीर्तिरूपिणी सरयू का भक्तिरूपा गंगा से संगम। (रामभक्ति जहँ सुरसरि-धारा । १।२।८।) कविता-सरिता भी तामस, राजस, सात्विक श्रोतृसमाज में होती हुई सन्त-सभा में, और वहाँ से रामभक्ति में लीन, इस तरह वह भक्ति-स्वरूपा (१।३६।१०-१।४०।१)। रक्तवर्णी महानद सोन राम-लक्ष्मण का समर-यश। दक्षिण से आकर उसका गंगा से मिलना। सरयू विरति, सोन ज्ञान, गंगा भक्ति। सरयू और सोन के बीच गंगा, जैसे विरति और ज्ञान के बीच भक्ति। त्रिविध तापनाशक ज्ञान-भक्ति-वैराग्यमयी तिमुहानी का रामस्वरूप सिन्धु की ओर प्रवाह (१।४०।२-४)।

सरयू नदी के उद्गम और संगम के बीच के तटों पर अनेक वन-बाग। इसी तरह कविता-सरिता के उत्स (सन्त-मानस) और लय (भक्ति) के बीच में विभिन्न विचित्र कथाएँ। (१) उमा-महेश-विवाह के बराती नदी के जलचर। (मानस-सर में जलचर 'नवरस जप तप जोग विरागा'।) (२) राम-जन्म भँवर और आनन्द-बधाई तरंगों की मनोहरता। (३) चारों भाइयों के बालचरित नदी में खिले रंग-बिरंगे कमल। राजा, रानी, परिजन के सत्कर्म भ्रमर और जलपक्षी। (४) सीय-स्वयंवर की सुन्दर कथा नदी की शोभा। (५) उत्तम प्रश्न नाव और विवेकमय उत्तर चतुर केवट। (६) कथा सुनकर अनुकथन करनेवाले नदी के यात्री। (७) परशुराम-क्रोध भयानक धारा।, (८) राम की श्रेष्ठ वाणी पक्के घाट। (९) भाइयोंसहित राम-विवाह का उछाह कविता-नदी की मंगलकारी बाढ़ जो सबके लिए सुखद। (१०) इसके श्रवण-कथन से हर्षित-पुलकित होनेवाले ही पुण्यात्मा, उन्हीं का इस नदी में स्नान (१।४०।५-१।४१।६)। (११) राम के राजतिलक के लिए सजाया गया मंगलसाज ही पर्व के दिन नदीतट पर एकत्र यात्री-समूह। [पर्व – 'चतुर्दश्यष्टमी चैक तथामा चाथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च।।' वि० पु० ३।११।११६।] (१२) कैकेयी की कुबुद्धि नदी की काई जिसके कारण विपत्ति। [इस काई पर दशरथ का फिसलना, फलतः राम-बनवास और दशरथ-मृत्यु। वि०, मा० पी० १।४१।८ नोट ४।] (१३) भरत-चरित्र ही नदी तट पर किया जानेवाला जप-यज्ञ। (१४) कलि के पापों का वर्णन (७।९७ क - ७।१०२ ख। दे० 'कलिजुग'।) एवं दुष्टों के अवगुणों का कथन (१।४।१ - १।६।१, ७।३९।१ - ७।४१।४ आदि) नदी का मल, बक और काक (१।४१।७-१।४१)।

यह कीर्तिनदी छहों ऋतुओं में शोभा-सम्पन्न। सदा पवित्र। इसमें (१५) शिव-पार्वती-विवाह हेमन्त ऋतु। [प्राचीन काल में संवत्सर का आरम्भ मार्गशीर्ष से, और ऋतुओं का हेमन्त से। अमर० १।१३६, १४०।] (१६) राम-जन्म का उछाह शिशिर ऋतु। (१७) राम-विवाह के समय दशरथ और जनक के समाज का वर्णन मुद मंगलमय ऋतुराज। [दशरथ और जनक वसन्त के दो मास मधु (चैत्र) और माधव (वैशाख) – 'मधु माधव दसरथ जनक मिलब राज रितुराज। रा० प्र० १३१।] (१८) राम-वन-गमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु। वन-मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू। (१९) राक्षसों के साथ घोर युद्ध वर्षाऋतु जो देवकुलरूपी धान के लिए मंगलकारी। (२०) राम-राज्य का सुख, विनय, बड़ाई ही निर्मल, सुखद, सुहावनी शरद ऋतु (१।४२।१-६)।

सीय-कथा इस जल का अनुपम गुण। भरत-स्वभाव अवर्णनीय एकरस शीतलता। चारों भाइयों की 'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास' और 'भायप' इस जल की मधुरता और सुगन्धा कवि की आर्त्ति, विनय, दीनता ही जल का हलकापन (१।४२।७-१।४३।१)। इस जल का रसत्व गुप्त। इसके अलौकिक गुण —(१) यह श्रवणमात्र से गुणकारी। (२) इससे आशारूपी प्यास और (३) मनोमल दूर। (४) यह राम-प्रेम का पोषक। (५) कलि के पापों का, (६) ग्लानि का हर्त्ता। (७) संसार के (आवागमन के) श्रम का शोषक। (८) सन्तोष को भी तृप्त करनेवाला। (९) पाप एवं उससे उत्पन्न (१०) दुःख, (११) दरिद्रता, (१२) दोषों का हर्त्ता। यह (१३) काम, (१४) क्रोध, (१५) मद, (१६) मोह का नाशक। (१७) निर्मल ज्ञान और (१८) वैराग्य का वर्द्धक। (१९) आदरपूर्वक स्नान-पान करने से पाप और (२०) परिताप दूर (१।४३।२-१।४३।६)। इस राम-सुयश-जल से मन को न धोनेवाले कायर जीव कलिकाल द्वारा वंचित और विनष्ट। तृषा-व्याकुल मृग की भाँति वे मरीचिका के पीछे भटकते रहेंगे (१।४३।७-८)।

(भक्तों के अनुसार जल के उपर्युक्त बीस गुण कविता-सरिता के रूपक में उल्लिखित चरित के बीस अंशों के गुण या माहात्म्य।) अपनी बुद्धि के अनुसार जल के गुणों को गिनकर, मन को स्नान कराके, शंकर-पार्वती का स्मरण कर, कवि तुलसी का कथा कहना (१।४३ क)। [यहाँ 'जस मानस', 'जेहि बिधि भयउ', 'जग प्रचार जेहि हेतु' (१।३५) का उपसंहार। भवानी-शंकर का स्मरण कर इस प्रकरण का आरम्भ, उन्हीं का स्मरण कर यह सम्पुटित।]

भुशुण्डि द्वारा गरुड़ से कही गयी मानस की जिस मांगलिक कथा को सुनने की शिव की पार्वती को आज्ञा, उसे सुनाने के बाद पार्वती का निवेदन — 'हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुखु पावा।।' (१।१२० ख, ७।५३।७)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में सर्वप्रथम राम-चरितमानस-सर के रूपक का वर्णन। सुनकर गरुड़ की जिज्ञासा — 'रामचरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी।।' (७।६४।७, ७।९४।४)। भुशुण्डि का उत्तर— उन्हें अपना भक्त समझकर लोमश मुनि का सुनाना। स्वयं मुनि को यह शिव-कृपा से प्राप्त (७।११३।९-१२)।

पूर्वकाल में शिव-विरचित रामायण की तुलसीदास द्वारा अपने अन्तःकरण की तमःशान्ति के लिए भाषा में रचना (७।१३० के बाद श्लो०१)। (१।१। श्लो० ७ के 'स्वान्तःसुखाय' में इसका उपक्रम, यहाँ 'स्वान्तस्तमःशान्तये' में उपसंहार। इससे तुलसी ने 'पायउ परम बिश्रामु' (७।१३०।छं० ३)। माहात्म्य — यह पुण्यरूप, पापहारी, कल्याणकारी, विज्ञान-भक्ति-दायक, माया-मोह-पाप-नाशक। यह सुन्दर निर्मल शुद्ध प्रेमजल से परिपूर्ण। इसमें भक्तिपूर्वक अवगाहन करनेवालों को परम शान्ति-लाभ (७।१३० के बाद श्लो०२)।

मूल शब्द — १।३५।७, १।३५।९ (शंभुकृतरामायण), १।३५।१२ (शंभुकृत रामायण), १।३६।१, १।१२० ख, ७।११३।६। रामचरित्रमानस — ७।१३० के बाद श्लो०२।

पर्याय — **मानस** — १।३५, १।३८।२, १।३८, १।३९।६, १।४०।५, ७।१३० ख के बाद श्लो० १। सुमानस — १।३६।६।

रघुबर चरित मानस — १।१४ ग।

रामचरितसर — ७।६४।७, ७।९४।४, ७।११३।११।

हरिचरित्र मानस — ७।५३।७।

रामघाट — गंगा एवं मन्दाकिनी का तटवर्ती स्थान-विशेष जहाँ राम ने स्नान किया था।

[राम-संसर्ग से साधारण स्थान भी तीर्थ; तीर्थ की महिमा का उत्कर्ष।]

शृंगवेरपुर में यह गंगा-तट पर। भरत और अवध-समाज का इसे प्रणाम करना। आनन्दित हो, यहाँ स्नान कर, गंगा से रामचरण-रति-वर माँगना (२।१९७।४ - २।१९७)। चित्रकूट में यह मन्दाकिनी-तट पर। अवध-समाज और जनक-समाज का यहाँ स्नान (२।२७७।६।

मूल शब्द — २।१९७।४, २।२७७।६।

रामधाम — राम का परम धाम।

[यह विरजा नदी के उस पार का पदवैकुण्ठ — साकेतलोक या अयोध्या। (दे० बैकुंठ।) यहाँ सीतासहित राम

का वास। मा० पी० ७। १५। ४ उत्तर, पृ० १२१। यह प्रभु का भोगस्थान, धरती पर की अयोध्या लीलास्थान। (दे० 'अवध'।)

(क) रामधाम साकेत के उत्तर में सरयू, दक्षिण में विरजा गंगा जो सरयू का ही नामान्तर। इसके दक्षिण द्वार पर पार्षदोंसहित हनुमान्। पश्चिम, उत्तर और पूर्व के द्वारों पर क्रमशः विभीषण, अंगद और सुग्रीव। (ख) इसके मध्य में ब्रह्मस्वरूप कल्पतरु। इस तरु के नीचे वेदिका पर सिंहासन। उस पर रत्नमय सहस्रदल कमल जिसमें दो या तीन मुद्राएँ। इनके मध्य में सीताराम विराजमान। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान् आदि षोडश पार्षद छत्र, चमर, व्यज़न आदि लिये हुए सेवारत।

परम अनन्य उपायशून्य प्रपत्तिवाले भक्तों का इस लोक में प्रवेश। सर्वप्रथम उन्हें हनुमान् के दर्शन। हनुमान् का उन्हें सीताराम के पास ले जाना। मा० पी० १। ३५। ३ के अन्तर्गत करुणासिन्धु जी के मत से सदाशिवसंहिता के अनुसार।]

रामधाम का पथ अतीव दुर्लभ। यह कभी किसी मुनि को प्राप्त। किन्तु जिसके मन में पथिक-रूप सिय-राम-लक्ष्मण का वास, उसके लिए यह पथ सुलभ (२। १२४। १-२)। इस धाम की प्राप्ति — सकाम भाव से रामाभिषेक की कथा सुननेवालों को (७। १५। २-४), राम-चरित्र के कथन-श्रवण से (७। १३०। छं०२)। जटायु के इस धाम में जाने का कथन (३। ३२, ४। २७। ८)।

मूल शब्द — २। १२४। २, ७। १३०। छं०२।

पर्याय — **रघुपतिपुर** (अवध भी) — ७। १५। ४।

हरिधाम — ३। ३२।

हरिपुर — ४। २७। ८।

रामबन — चित्रकूट के आसपास के वन जहाँ राम-सीता का विहार। दे० 'चित्रकूट'।

मूल शब्द — २। २४६। ५, २। ३११। ३। रामबनु — २। १३८। ३।

रामसैल — दे० 'चित्रकूट'।

रामायण — शम्भुकृत रामायण।

यह वेद-पुराण-शास्त्र-सम्मत। इसमें कुछ अन्यत्र से भी गृहीत। स्वान्तःसुखाय इस रामायण की रघुनाथ-गाथा को भाषा-निबन्ध में कहने का कवि-कथन (१। १। श्लो० ७)। सुन्दर रामचरित की रचना कर शिव का अपने मानस में रखना। अतः उनके द्वारा इसका नामकरण रामचरितमानस। सुअवसर पाकर उनका उमा को सुनाना। फिर काकभुशुण्डि को देना। भुशुण्डि से (वि० के अनुसार शिव से) यह याज्ञवल्क्य को प्राप्त। उनका भरद्वाज को सुनाना (१। ३०। ३-५, १। ३५। ९-१२)। कवि द्वारा वराहक्षेत्र में अपने गुरु से रामकथा का श्रवण, किन्तु न समझ पाना। गुरु के बार-बार कहने पर अपनी मति के अनुसार कुछ समझना। अपने प्रबोध के लिए उसे भाषा में छन्दोबद्ध करने का उनका कथन (१। ३० क - १। ३१। २)।

पूर्वकाल में शिव द्वारा इसकी रचना निरन्तर रामचरण-भक्ति-प्राप्ति के लिए। इसे रामनामपरक पाकर अपने अन्तःकरण का अन्धकार मिटाने के लिए कवि का इसे भाषाबद्ध करना (७। १३० ख के बाद श्लो १)

मूल शब्द — १। १। श्लो० ७, ७। १३० ख के बाद श्लो०१।

पर्याय — **रामचरितमानस** (मुख्यतः तुलसीकृत मानस के लिए) — १। ३५। ६, १। ३५। १२।

रामायन (रामायण) — आदिकवि वाल्मीकि द्वारा संस्कृत भाषा में रचित आर्ष महाकाव्य। यह आदिकाव्य के नाम से भी प्रसिद्ध।

[वा० रा० में — इसकी प्रेरणा और उपक्रम — जगत् में सर्वगुण-श्रेष्ठ महत्तम पुरुष के सम्बन्ध में नारद से वाल्मीकि की जिज्ञासा। नारद का उनसे रामचरित्र-कथन। १। १। निषाद द्वारा क्रौंच-मिथुन में एक के धर्म-विरुद्ध वध से वे करुणा-विचलित। उनका निषाद को कभी शान्ति न पाने का शाप। (मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।। यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। १। २। १५।) फिर शाप-वाक्य के सम्बन्ध में उनका विचार कि उसके प्रत्येक चरण में बराबर (आठ-आठ) अक्षर, वह वीणा पर गेय, अतः उसे श्लोकरूप होना चाहिए। उसी समय ब्रह्मा का उनके आश्रम में आकर शाप-वाक्य के श्लोकरूप होने का निश्चय कराना। नारद से सुने गये

सम्पूर्ण रामचरित्र का वर्णन करने का आदेश देकर उनका वरदान — वाल्मीकि को राम का सम्पूर्ण गुप्त-प्रकट चरित्र ज्ञात हो जाएगा। उनकी काव्य-वाणी सर्वथा सत्य होगी। पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की स्थिति, तब तक उनकी रामायण-कथा प्रचारित रहेगी। इच्छानुसार वे ऊर्ध्व-अध एवं ब्रह्मलोक में निवास करेंगे। १।२।

इसका निर्माण और गायन — योग-स्थित होकर वाल्मीकि द्वारा रामचरित्र का तत्वतः साक्षात्कार और रामायण की रचना। १।३। इसमें राम का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त — सीता-त्याग से पूर्व तक का अतीत, कुश-लव के जन्म और उनके शिक्षण तक का वर्तमान, उसके बाद राम के परमधाम-गमन तक का अनागत भविष्य। वाल्मीकि का कुश-लव को इस काव्य का अध्ययन कराना। उन्हें यह कण्ठस्थ। साधु-समाज में इसका गान कर वे अभिनन्दित। १।४। लवणासुर-वध करके लौटते हुए शत्रुघ्न द्वारा वाल्मीकि-आश्रम में इसका श्रवण। ७।७१।१४-२४। राम के अश्वमेषयज्ञ में वाल्मीकि के आदेश से कुश-लव द्वारा इसका गायन। राम द्वारा भरी सभा में प्रतिदिन बीस सर्ग करके आरम्भ से सीता के पाताल-प्रवेश तक की कथा का श्रवण। ७।९३, ९४, ९५, ९६, ९७। फिर ब्रह्मा के परामर्श से शेष चरित्र सुनना। ७।९८।१६-७।९९।२।

इसमें सात काण्ड, पाँच सौ सर्ग, चौबीस हजार श्लोक, एक सौ उपाख्यान। १।४।२, ७।९४।२६-२७। जिस प्रकार अध्यात्म रामायण में पूरी कथा के वक्ता शिव, श्रोता पार्वती, रामचरितमानस में चार वक्ता, चार श्रोता, उसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण की कथा के कुश-लव गायक, राम और उनका समाज श्रोता। इसका आरम्भ १।४।२८ से।

इसके विषय — बालकाण्ड — अयोध्यापुरी के वर्णन और दशरथ के अश्वमेध-यज्ञ के बाद पुत्रेष्टि-यज्ञ से राम आदि के विवाहोपरान्त अयोध्या लौटने तक। अयोध्याकाण्ड — दशरथ के राम को युवराज बनाने के विचार और राम के वन-गमन से सीता-लक्ष्मण-सहित उनके अनसूया-आश्रम में जाने और वहाँ से विदा होने तक। अरण्यकाण्ड — विराध-वध आदि और सीता-हरण के बाद से राग-लक्ष्मण के पम्पा सरोवर पहुँचने तक। किष्किन्धाकाण्ड — सुग्रीव की आकुलता और राम-सुग्रीव-मैत्री से हनुमान् द्वारा समुद्र-लंघन की प्रस्तुति तक। सुन्दरकाण्ड — हनुमान् द्वारा सागर-लंघन से उनके लौटने और राम से सीता का सन्देश-निवेदन करने तक। युद्धकाण्ड — सागर पार करने के सम्बन्ध में राम की चिन्ता से राम के अयोध्या लौटने और उनके राज्याभिषेक तक। (६।१२८।१०७ - १२५ में रामायण के श्रवण-पठन का माहात्म्य-कथन।) इन छः काण्डों में प्रसंगवश अनेक कथाएँ। उत्तरकाण्ड — इसका आरम्भ राम-दरबार से। उसके बाद अनेक आख्यायिकाएँ। फिर सीता-सम्बन्धी लोकापवाद के कारण राम के आदेश से लक्ष्मण का उन्हें वन में छोड़ना। वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना। ७।४३ - ७।४९। राम द्वारा मधु नगर के राज-पद पर शत्रुघ्न का अभिषेक। कुश-लव का जन्म। लवणासुर-वध के बाद शत्रुघ्न का मधुपुरी बसाना। लौटते समय वाल्मीकि-आश्रम में रामचरित-श्रवण ७।६३ - ७।७३। राम द्वारा अश्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान। वहाँ वाल्मीकि का गमन। कुश-लव द्वारा रामायण-गान। अपनी शुद्धता प्रमाणित करते हुए सीता का रसातल-प्रवेश। ७।९१ - ७।९७। राम द्वारा रामायण के शेष अंश का श्रवण। उनका कुश-लव के साथ अयोध्या लौटना। अनेक यज्ञों का अनुष्ठान। कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी का परलोक-गमन ७।९८-७।९९। भरत के पुत्रों तक्ष और पुष्कल का राम द्वारा अभिषेक। भरत की गन्धर्वों पर विजय। वहाँ दो नगर बसाकर अपने पुत्रों को सौंप लौटना। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु का भी दो भिन्न राज्यों पर अभिषेक ७।१००-७।१२०। राम से परमधाम जाने का अनुरोध करने के लिए ब्रह्मा-प्रेरित काल का राम के पास आगमन। उनकी शर्त्त कि उनकी वार्ता के बीच किसी के प्रवेश करने पर वह राम द्वारा वध्य हो। दुर्वासा के शाप के भय से उनके आगमन की राम को सूचना देने के लिए लक्ष्मण का प्रवेश। त्याग को वधस्वरूप मानकर राम द्वारा उनका परित्याग। उनका स्वर्ग-गमन। ७।१०३-७।१०६। राम द्वारा कुश का दक्षिण कोसल के, लव का उत्तर कोसल के राज्य पर अभिषेक ७।१०७। अपने पुत्र सुबाहु को मधुरा और शत्रुघाती को विदिशा के राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आगमन। विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद को राम का पृथ्वी पर रहने का आदेश। भाइयोंसहित उनका वैष्णव-रूप में प्रवेश। अन्य वानर-रीछों और अयोध्यावासियों को सन्तानक लोक की प्राप्ति (७।१०८-७।११०)। रामायण की महिमा (७।१११)।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित वा० रा० पर आधारित।

इसकी प्राचीनता — यह महाभारत से प्राचीन। महा० द्रोण० १४३।५४, ६७-६८ में आमरण अनशनरत भूरिश्रवा का शिरश्छेद करके, अपने कृत्य के समर्थन में, वा० रा० का उद्धरण देकर सात्यकि का कथन — अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि। न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।। ६७। सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा। पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्।। ६८। (द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति वा० रा० ६।८१।२८ की।)

विभिन्न पाठ — प्रा० च० पृ० ८३७ के अनुसार सम्प्रति इसके चार संस्करण उपलब्ध जिनमें दस-पन्द्रह से अधिक सर्गों की भिन्नता नहीं। —उदीच्य पाठ, दाक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ और पश्चिमोत्तरीय (कश्मीरी) पाठ।]

यह सुकोमल। इसमें कठोरता नहीं, कठोरता के नाम से केवल खर राक्षस का नाम। यह दोषरहित, दोष के नाम से दूषण राक्षस का नाम। इसके रचयिता वाल्मीकि मुनि की चरण-वन्दना (१।१४ घ)।

रामायुध — राम के आयुध — (१) धनु, असि, चर्म (ढाल), शक्ति। वि० ५।५। व्या०। (२) धनुष और बाण। मा० पी० ५।५। अर्थ।

[धनु (शाङ्‌र्गधनु) — यह कालरूप (भा०) अथवा इन्द्रियों का कारण राजस अहंकार (वि० पु०)। बाण-ज्ञान-कर्ममयी इन्द्रियाँ (भा०, वि० पु०)। असि (नन्दक खंग) — यह आकाशस्वरूप (भा०) अथवा अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान (वि० पु०)। चर्म — यह तमोमय अज्ञानरूप (भा०)। भा० १२।११।१५-१६, वि० पु० १।२२।७०, ७३-७४।

श्रुतियों के अनुसार धनुष-बाण से अंकित होनेवाला मनुष्य ही उत्तम संस्कारयुक्त, वेदों का अधिकारी, काम-क्रोधादि शत्रुओं और पापों से मुक्त, इत्यादि। मा० पी० ५।५ के अन्तर्गत, पृ० ६१।]

लंका में विभीषण का गृह रामायुध से अंकित (५।५)। राम-राज्याभिषेक के समय विभीषण, अंगद और हनुमान् का क्रमशः राम के धनुष (और बाण), ढाल-तलवार और शक्ति को धारण करना (७।१२।छं० १)।

मूल शब्द — ५।५।

रामेस्वर (रामेश्वर) — द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक। राम द्वारा स्थापित।

सेतुबन्ध के निकट की भूमि राम की दृष्टि में परम रम्य, महिमामयी। यहाँ शम्भु-स्थापना का उनका संकल्प। इस कार्य के लिए मुनियों को बुलवाना (६।२।३-५)। राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना। [क्योंकि सावयव मूर्त्ति से लिंग की महिमा अधिक— मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः। रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः।। लिंगवेदी महादेवी लिंगःसाक्षान्महेश्वरः। तयोः सम्पूजयान्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ।। वि० ६।२।६ व्या० पाद० के अनुसार लिंगपुराण। लिंग-स्थापना के अन्तर्गत उमा-स्थापना भी, क्योंकि जलधरी उमा का प्रतीक।] इसकी विधिवत् पूजा। उपदेशरूप स्तुति। शिव के प्रति अपनी प्रियता का कथन (६।२।६-६।२)। उनके द्वारा इसका नामकरण रामेश्वर (६।३।१)। [विद्वानों द्वारा रामेश्वर के विग्रह — (१) राम के ईश्वर (तत्पुरुष), (२) राम ईश्वर हैं जिनके (बहुव्रीहि), (३) जो राम हैं, वे ही ईश्वर हैं (कर्मधारय)। वि० ६।३।१ व्या०।] इसका महिमा-कथन — इसके दर्शन करनेवाले को रामधाम की प्राप्ति (सालोक्य मुक्ति। वि०।)। गंगाजल लाकर चढ़ाने पर सायुज्य मुक्ति (ईश्वर के विग्रह में युक्त। मा० पी० शब्दार्थ।)। निश्छल निष्काम भाव से इसकी सेवा करने पर शिव द्वारा रामभक्ति-प्रदान (६।३।१-३)। [अ० रा० में लोकहित के लिए राम-कथन— इसके दर्शन कर सेतुबन्ध को प्रणाम करने पर ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्ति। यदि कोई सेतुबन्ध में स्नान कर इसके दर्शन करे, फिर संकल्पपूर्वक काशी जाकर वहाँ से गंगाजल लाये, उस जल से इसका अभिषेक कर जल-पात्र को समुद्र में डाल दे, तो ब्रह्मप्राप्ति असन्दिग्ध। अ० रा० ६।४।१-४।]

मूल शब्द — ६।३।१।

रावन (रावण) — रावयति भीषयति सर्वान्। आ० को०। रावणं लोकरावणं। इसके राव (आर्त्तनाद, चीत्कार) से त्रिलोक भयभीत, अतः शिव द्वारा यह नामकरण। वा० रा० ७।१६।३७-३८। लंका का राजा।

(अ) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ तृणविन्दु ~ कन्या > विश्रवा ~ (१) भरद्वाज ~ कन्या > वैश्रवण (कुबेर), (२) कैकसी (सुमाली और केतुमती की कन्या) > (क) दशग्रीव (रावण) ~ मयपुत्री मन्दोदरी > मेघनाद (ख) कुम्भकर्ण, (ग) शूर्पणखा, (घ) विभीषण।

वा० रा० ७।२।४, २३-२४, २७, ३१-३२, ७।३।३-८, ७।५।३९, ४१, ७।६।२६-२९, ३३-३५, ७।१२।१७-२०, २८। अ० रा० ७।१, ७।२।३९-४०, ४३।

(आ) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ हविर्भू (देवहूति-कदर्म-तनया) > (१) अगस्त्य, (२) विश्रवा ~ (क) हडविडा > कुबेर, (ख) दूसरी पत्नी > रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण।
भा० ३।१२।२१, ३।२४।२१-२२, ४।१।३६-३७।

(इ) (१) ब्रह्मा > पुलस्त्य ~ गौ > वैश्रवण (कुबेर)। (२) पुलस्त्य के अर्धशरीर से उत्पन्न विश्रवा ~ (क) पुष्पोत्कटा > रावण, कुम्भकर्ण, (ख) मालिनी > विभीषण, (ग) राका > खर, शूर्पणखा।
महा० वन० २७४।१२, १४, २७५।१-८।

[वा० रा० में — (१) सायंकाल की दारुण वेला में पुत्रप्राप्ति की कामना से कैकसी का विश्रवा के निकट जाना। विश्रवा का कथन — उसके पुत्र क्रूरकर्मा राक्षस होंगे। फलतः रावणादि राक्षस। यह ज्येष्ठ। नीलांजनवर्णी। दस मुख और बीस भुजाओं के साथ इसके उत्पन्न होते ही भयंकर अपशकुन। विश्रवा द्वारा इसका नामकरण 'दशग्रीव'। ७।९।१९-२४, २८-३३।

यह महाबली, उद्वेगकारी। कैकसी की प्रेरणा से कुबेर के समान या उनसे श्रेष्ठ बनने का इसका संकल्प। तपस्या से मनोरथ-सिद्धि के लिए भ्राताओंसहित गोकर्ण के आश्रम पर गमन और तप। ७।९।३७, ४२-४७। दस हजार वर्षों तक उपवास। प्रत्येक सहस्र वर्ष के पूर्ण होने पर अपना एक मस्तक काटकर अग्नि में होम देना। इस तरह एक-एक करके नौ हजार वर्षों में नौ मस्तक अग्निदेव को अर्पित। दसवाँ मस्तक काटने के समय ब्रह्मा उपस्थित। वररूप में इसके द्वारा अमरत्व की याचना। वह न मिलने पर गरुड़, नाग, यक्ष, देव, दानव आदि से अवध्य होने की वर-प्राप्ति। ब्रह्मा के वरदान से अग्नि को अर्पित मस्तक इसे पुनः प्राप्त। इच्छानुसार रूप धारण करने में यह समर्थ। ७।१०।१०-२६। (महा० वन० २७५।२४, २६ में वरदान कि इसमें कुरूपता नहीं रहेगी। मनुष्य को छोड़ यह सबसे निर्भय हो।)

(२) प्रहस्त की प्रेरणा से इसका कुबेर को लंकापुरी लौटा देने का सन्देश। उनके लंका-त्याग के बाद उस पुरी में प्रवेश। इसका राज्याभिषेक। ७।११। मन्दोदरी से विवाह। मय से एक अमोघ शक्ति प्राप्त। ७।१२।१७-२१। मदोन्मत्त होकर उच्छृंखल अनाचार। नन्दनवन को उजाड़ना। इसे समझाने के लिए भेजे गये कुबेर के दूत का वध। अलकापुरी पर आक्रमण। कुबेर को जीतकर उसके पुष्पक विमान पर अधिकार। ७।१३।८-४०, ७।१४, १५।

'शरवण' के निकटस्थ पर्वत पर विराजमान शंकर की इसके द्वारा उपेक्षा। उस पर्वत को उठाने का प्रयत्न। पर्वत का हिलना। शंकर का उसे पादांगुष्ठ से दबाना। उसके नीचे इसकी भुजाओं का दबना। (अ० रा० ७।२।५५ में भुजाओं से कैलास को उठाना।) पीड़ा से इसका भयानक आर्त्तनाद (राव)। सहस्र वर्षों तक शिव की स्तुति। तब यह संकटमुक्त। इसके पराक्रम से शिव प्रसन्न। उनसे वररूप में इसे अपनी 'शेष आयु' और चन्द्रहासनामक खंग प्राप्त। ७।१६।२२-४५।

(३) पृथ्वी के सब राजाओं का बिना युद्ध के इससे पराजय स्वीकार करना। ७।१९।१-६। राजा मरुत के यज्ञ में इसे देख भयभीत देवता तिर्यग्योनि में प्रविष्ट। ७।१८।२-४। चारों लोकपालों को विजित करने की इसकी प्रतिज्ञा। ७।२०।२४-२५। नारद की प्रेरणा से यमलोक पर आक्रमण। यम से युद्ध। यम का कालदण्ड उठाना। उसके प्रयोग से ब्रह्मा का उन्हें विरत करना। तक वे अन्तर्धान। इस तरह यमलोक पर इसकी विजय। ७।२०।१६-१७, ७।२१, २२। रसातल में जाकर कालकेयों का संहार। शूर्पणखा के कालकेय पति का वध। वरुण-पुत्रों से युद्ध और वरुणलोक पर विजय। ७।२३।१७-२०, २५-५४। इन्द्रलोक पर आक्रमण। इन्द्र का इसे युद्ध से विमुख करना। (अ० रा० ७।२।५१ में इन्द्र का इसे बाँधना।) इसे संकट में देख मेघनाद का इन्द्र को माया से बन्दी बनाना। इसका युद्ध से निवृत्त होना। ७।२७।१-२, ७।२९।१९-२१, २८-२९, ३९।

(४) सहस्रार्जुन से युद्ध करते हुए इसका पराजित होना। बन्दी बनना। पुलस्त्य के कहने पर सहस्रार्जुन का इसे मुक्त करना। इससे मित्रता स्थापित करना। ७।३२, ७।३३।१५-१८। दे० 'सहसबाहु'। वाली से युद्ध करने के लिए इसका किष्किन्धापुरी जाना। उन्हें वहाँ न पाकर समुद्र की ओर गमन। उन्हें सन्ध्योपासना में लीन देख पीछे से पकड़ने की चेष्टा। इससे पहले वाली का इसे पकड़ काँख में दबाना और आकाश में उड़ना। सब समुद्रों के तट

पर जाकर सन्ध्यावन्दन करना। फिर किष्किन्धा पहुँचकर इसे काँख से मुक्त करना। इसके अनुरोध पर इसकी मैत्री स्वीकार करना। ७।३४। (भा० के अनुसार दिग्विजय करते हुए इसका सुतल-लोक में जाना। वहाँ बलि के द्वार पर उपस्थित गदाधारी भगवान् का पैर के अँगूठे की ठोकर से इसे लाखों योजन दूर फेंकना। भा० ५।२४।२७।)

(५) (क) इसके द्वारा वानरमुख नन्दीश्वर का उपहास। उनका शाप कि वानर ही इसका दर्प चूर्ण करेंगे। ७।१६।१५-१९ (अ० रा० ७।२।५६।) (ख) वेदवती का अपमान करने के कारण उनका शाप — वे इसके वध के लिए उत्पन्न होंगी (सीता-रूप में) ७।१७।३१-३२। (ग) इक्ष्वाकुवंश को तिरस्कृत करने के कारण इसे पराजित अनरण्यक का शाप — उसी वंश में उत्पन्न होनेवाले दाशरथि राम इसके प्राण लेंगे। ७।१९।२९-३०। (घ) इसके द्वारा अपहृत नाग-राक्षस, देव-दानव, यक्ष-मनुष्य आदि की कन्याओं का शाप — स्त्री के कारण ही इसका वध होगा। ७।२४।१-३, २०-२१। (ङ) कुबेर-पुत्र नलकूबर की प्रेयसी रम्भा के साथ इसका बलात्कार। नलकूबर का शाप — इसे न चाहनेवाली किसी स्त्री से यदि यह बलात्कार करेगा, तो इसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे। ७।२६।४०-४१, ५२-५६। (च) पुंजिकस्थला अप्सरा का धर्षण करने के कारण इसे ब्रह्मा का शाप — किसी नारी के साथ बलपूर्वक समागम करने पर इसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे। इस शाप के कारण यह अशोकवन में सीता पर बल-प्रयोग करने से विरत। ६।१३।४, ६।१५। (महा० वन० २७५।३४-३५ में कुबेर का शाप — पुष्पक इसे नहीं, इसके वधकर्त्ता को वहन करेगा। इसका शीघ्र नाश होगा।)

कुम्भकर्ण-मेघनाद-वध से पूर्व राम से परास्त होकर इसे उपर्युक्त शापों का स्मरण। ब्रह्मा की इस चेतावनी पर भी विचार कि इसे मनुष्यों से भय प्राप्त होगा। ६।६०।५-१२।

(६) इसकी दूसरी पत्नी का नाम धान्यमालिनी। उससे अतिकाय का जन्म। ६।७१।२८, ३०। और भी अनेक पत्नियाँ। ५।१०।३०-५२। इसके अन्य प्रमुख पुत्र अक्ष, नरान्तक, देवान्तक, त्रिशीर्ष। ५।४७।१, १६, ६।६९।९-१०, ६।७०।३८।]

पार्वती की जिज्ञासा — 'कहहु नाथ जिमि रावन मारा' (१।११०।७)। शिव-कथन — एक कल्प में जय और विजय का शापवश (दूसरे जन्म में) रावण और कुम्भकर्ण होना, किन्तु प्रभु के हाथों मरने पर भी इनकी मुक्ति नहीं, क्योंकि विप्रशाप तीन जन्मों के लिए (१।१२२।४-५, १।१२२, १।१२३।१)। (दे० 'जय'।) अन्य कल्प में जलन्धर रावणरूप में उत्पन्न। इसे परमपद प्राप्त (१।१२४।२)। एक और कल्प में नारद द्वारा अभिशप्त शिव के दो गणों का विश्वविजयी असुरों (रावण-कुम्भकर्ण) के रूप में जन्म। ये प्रभु के हाथों मुक्त (१।१३९।३-७)। अन्य एक कल्प में राजा प्रतापभानु का विप्रशाप से रावण होना। इस कल्प में यह कुम्भकर्ण का सहोदर और विभीषण का सौतेला बड़ा भाई (१।१७६।१।५)। तीनों भाई (रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण) पुलस्त्य-कुल में उत्पन्न। तीनों का तप। शिव और विधाता से इसकी वर-याचना — 'हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें।।' दोनों का मिलकर इसे वरदान (१।१७६-१।१७७।५)। 'रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा।।' (१।४९।१)। यह राक्षसराज होगा, यह सोचकर मय का इससे अपनी कन्या मन्दोदरी का विवाह करना। इसके द्वारा दोनों भाइयों का विवाह (१।१७८।२-४)।

(जिस कल्प में जो निशाचरपति, उस कल्प में उसका लंका में वास। १।१७८ ख।) लंका में कुबेर-सेवकों के निवास का समाचार सुन इसका सेनासहित आक्रमण। यक्षों का पलायन। इसका उस पुरी को राजधानी बनाना। सब राक्षसों को यथायोग्य गृह बाँटकर सुखी करना (१।१७९।२-७)। इसका कुबेर पर आक्रमण। पुष्पक विमान छीन लाना। कौतुक में ही कैलास उठाना (१।१७९।८ - १।१७९)।

यह कामरूप, मायावी। इसके बल-वैभव की नित्य वृद्धि। कुम्भकर्ण जैसा भाई। मेघनाद-सा पुत्र। जग जीतने में समर्थ अनेक सुभट। अगणित पुत्र-पौत्र, आदि। एक बार सभा में इसका कथन — देवता इसके शत्रु। उनके मरण के लिए राक्षसगण ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ-हवनादि में विघ्न उपस्थित करें। जो देवता रणवीर, उन्हें मेघनाद जीतकर बाँध लाये। इसका स्वयं गदा लेकर गमन (१।१८०।१-३,७, १।१८० - १।१८२।४)। इसके चलने से पृथ्वी का डगमगाना, देव-रमणियों का गर्भपात। देवताओं का मेरु-कन्दराओं में छिपना। इसका रवि, शशि, पवन, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम, इन अधिकारियों के पीछे पड़ना। [अधिकारी = लोकपाल। मा० पी० १।१८२।१० नोट १ (क)। लोकपाल = दिक्पाल। आ० को। अमर० १।८५ में दिक्पाल — इन्द्र, वह्नि, यम, नैऋृत, वरुण, पवन,

कुबेर, शिव।] दिक्पालों का लोक त्यागकर पलायन। सृष्टि में शरीरधारीमात्र भय से इसके आज्ञानुवर्ती। यह मण्डलीक-शिरोमणि सार्वभौम सम्राट्। देव-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-नर-नाग-कन्याओं को बलपूर्वक जीतकर उनसे विवाह (१।१८२।५-१।१८२ ख)। निशाचरों के उद्योग से सर्वत्र भ्रष्टाचार का प्रचलन, सब धर्म विपरीत (१।१८३।१-२, छं० १।१८४।६)।

शूर्पणखा इसकी बहन (३।१७।३)। लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटना, मानो इसको चुनौती देना (३।१७)। शूर्पणखा का इसके निकट आकर इसे उकसाना। उसके उपदेश और विलाप से यह व्याकुल। खर-दूषण-त्रिशिरा-वध सुनकर क्रुद्ध (३।२१।५-३।२२।२, १२)। इसका शूर्पणखा को समझाना, किन्तु मन में भय। महल में जाकर चिन्तन — खर-दूषण को मारने में भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई समर्थ नहीं। यदि भगवान् अवतरित, तो उनसे वैर ठानकर, उनके हाथों मरकर, यह तर जायेगा, क्योंकि तामस देह से भजन सम्भव नहीं। दशरथ-सुत यदि भगवान् नहीं, मनुष्य, तो उनका वध कर उनकी स्त्री का हरण करेगा (३।२२-३।२३।६)। [यह अ० रा० ३।५।५८-५६ के अनुरूप। अ० रा० ७।३।४०-४१, ५८-६० में सनत्कुमार से यह सुनकर कि विष्णु के हाथ से मरनेवालों को विष्णुपद मिलता है, इसका उनके साथ युद्ध करने का निश्चय।] यह सोचकर इसका मारीच के पास जाना। सब कथा कहकर, सीता-हरण के लिए उससे कपट-मृग बनने का अनुरोध। उसके प्रबोधन पर क्रोध। मारीच द्वारा भयवश इसका अनुगमन (३।२३।७, ३।२४।६, ३।२४-३।२६।७)। इसका उस वन के निकट जाना जहाँ राम का वास (३।२७।१)। शून्य में (लक्ष्मण द्वारा खींची गयी रेखा देख) इसका यति-वेश में आना। [वा० रा० ३।४६।२-३ में यष्टि-कमण्डलु-शिखा-छत्र-उपानह-धारी परिव्राजक-रूप में।] सीता को सुन्दर कथाएँ सुनाना। राजनीति, भय, प्रेम दिखाना। अपना वास्तविक रूप प्रकट करना। मन-ही-मन उनकी चरण-वन्दना कर ऊपर से क्रोधित होना। उन्हें रथ पर बैठाकर आकाश-मार्ग से गमन। इसके मन में भय (३।२८।७-३।२८)। [हनुमन्नाटक ४।६, ६।६ में लक्ष्मण द्वारा खींची गयी धनुष-रेखा का रहस्य इसे ज्ञात। उसका उल्लंघन न करके, सीता से ही उसे पार कर भिक्षा देने का इसका आग्रह। मा० पी० ३।२८।७ टिप्पणी १। मानस ६।३६।२ में लक्ष्मण-रेखा का संकेत।]

सीता का कातर विलाप सुन जटायु का इसे ललकारना। युद्ध। इसके केश पकड़ पृथ्वी पर गिराना। इसके द्वारा उनका पक्षच्छेदन। सीता को पुनः रथ पर चढ़ाकर भय और उतावली के साथ इसका गमन (३।२६।७-२३)। उन्हें अशोक-वन में ले जाना। नाना प्रकार से भय दिखाना, प्रेम व्यक्त करना। अन्ततः विफल होकर एक अशोक-वृक्ष के नीचे रखना (३।२६।२६-३।२६ क)।

सम्पाति का वानरों को सीता का पता बताना (४।२८।११-१२)। सहायकों सहित इसे मारकर त्रिकूट उखाड़ लाने का हनुमान्-कथन जाम्बवान् से (४।३०।६)। लंकिनी का हनुमान् से निवेदन कि इसे वर देने के बाद ब्रह्मा का उससे कथन — जब वह किसी वानर के आघात से विकल हो, तो समझ ले कि राक्षसों का (और इसका) विनाश निश्चित (५।४।५-७)।

इसका रानियों के साथ सीता के पास जाना। साम-दाम-भय-भेद से काम लेना। मन्दोदरी आदि को उनकी अनुचरी बनाने का प्रलोभन देना। उनके द्वारा तिरस्कृत होने पर उनके शिरश्छेद की इसकी धमकी। उनका प्रण सुनकर यह उन्हें मारने के लिए उद्यत। मन्दोदरी का इसे नीति समझाना। तब सीता को त्रस्त करने के लिए इसका राक्षसियों को आदेश। एक माह के भीतर इसकी बात न मानने पर उनका वध करने का कथन (५।६।२ - ५।१०)। [वा० रा० ३।५६।२४-२५ में सीता को बारह महीनों का समय देना। अ० रा० ३।७।६५ में राक्षसियों से घेरकर उनका मातृबुद्धि से पालन।] त्रिजटा के स्वप्न में इसकी मृत्यु का संकेत (५।११।४-५)।

हनुमान् के अशोक-वाटिका उजाड़ने का समाचार सुन इसका पहले योद्धाओं को, फिर अपने पुत्र अक्षकुमार को भेजना। पुत्र-वध से कुपित हो मेघनाद को आदेश कि वह वानर को बाँध लाये, मारे नहीं (५।१८।३-५।१६।२)। नागपाश-बद्ध हनुमान् का इसकी सभा में हाथ जोड़कर खड़े देवों-दिक्पालों को देखना (५।२०।६-७)। हनुमान् को देख इसका हँसना। अशोक-वन उजाड़ने का कारण पूछना (५।२०-५।२१।३)। हनुमान् द्वारा राम की ईश्वरता का प्रतिपादन। सहस्रार्जुन और वाली से इसकी लड़ाई का व्यंग्य-कथन। सुनकर इसका हँसी में टालना (५।२१।४-५।२२।२)। हनुमान् का रामभक्तिमूलक उपदेश सुन अभिमान से हँसना। उनको धमकाना। उनसे

तिरस्कृत होने पर उनके वध का आदेश देना। सचिवोंसहित विभीषण के समझाने पर उनकी पूँछ में आग लगाने की इसकी आज्ञा (५।२२।३ - ५।२५।२)। राक्षसों द्वारा उसका पालन (५।२५।३४)

वानर-सेना के प्रयाण के समय सीता के लिए जो शकुन, वे ही इसके लिए अपशकुन (५।३५।७)। एकान्त में मन्दोदरी का इसे समझाना— सीता को लौटाये बिना शिव और ब्रह्मा भी इसका हित करने में समर्थ नहीं। इसका दर्पोक्ति के साथ उसे हृदय से लगाना, फिर सभा में जा बैठना (५।३६।५-५।३७।६)। सागर के उस पार तक शत्रु-सेना के आ जाने का समाचार सुन मन्त्रियों से सलाह पूछना। सचिवों द्वारा इसकी प्रशंसा (५।३७।७-५।३८।१)। उसी समय उपस्थित होकर विभीषण द्वारा इसे नीति का उपदेश। पुलस्त्य-सन्देश के रूप में जानकी को लौटाने और ब्रह्मरूप राम को भजने का परामर्श। माल्यवान् द्वारा उनका अनुमोदन। इसका दोनों के प्रति क्रोध-प्रदर्शन (५।३८।२ - ५।४०।३)। विभीषण का इसे पुनः समझाना। रोष से उठकर इसका उन्हें लांछित कर उन पर पद-प्रहार करना, उन्हें त्यागना। उनका बार-बार इसके चरण-पकड़ना। फिर राम-शरण में जाना। इसका विभवहीन होना (५।४०।४ - ५।४२।१,३)। उनके पीछे शुक आदि दूतों को भेजना। लक्ष्मण का पत्र लेकर दूतों का लौटना। शत्रु-पक्ष के सम्बन्ध में इसके दर्पपूर्ण प्रश्न (५।५१।८, ५।५२।८, ५।५३।२ - ५।५३)। वानरों का पराक्रम, विभीषण का राजतिलक, उनके परामर्श से राम का सागर से मार्ग माँगना — ये बातें शुक से सुनकर इसका हँसना और शत्रु के बल-बुद्धि को तुच्छ कहना (५।५४।१-५।५६।७)। शुक का इसे लक्ष्मण का पत्र देना। उसका कथ्य सुनकर यह मन-ही-मन भीत, किन्तु प्रकटरूप से उसे रामानुज का वाग्विलास कहकर उपेक्षा करना (५।५६।८-५।५७।२)। जानकी को लौटाने का शुक का अनुरोध सुन उस पर पद-प्रहार करना। उसका राम-शरण में जाना (५।५७।३-९)।

(दसों मुखों से बोलने की शक्ति होने पर भी साधारणतः इसका एक समय एक ही मुख से बोलना। मा० पी० ६।५ नोट। वि० ६।५ व्या०।) समुद्र-बन्धनरूप दुष्कर कर्म का समाचार सुन चकपकाकर एक साथ दसों मुखों से सागर के दस नाम लेकर इसकी जिज्ञासा कि क्या सत्य ही उसे बाँध दिया (६।५।९-६।५)। [सुभाषित रत्न भाण्डागार चित्रप्रकरण श्लो० ६१ में — श्रुत्वा सागरबन्धनं दशशिराः सर्वैर्मुखैरेकदा तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् सचकितो भीत्या परं सम्भ्रमात्। बद्धः सत्यमपांनिधिर्जलनिधिः···।। मा० पी० ६।५ नोट। वि० ६।५ व्या० पाद०।] फिर अपनी व्याकुलता और भय छिपाकर हँसते हुए इसका गृह-गमन। मन्दोदरी का इसे अपने भवन में ले जाकर समझाना कि रामरूप में भगवान् ही अवतरित। अपने सुहाग की रक्षा के लिए उसकी विनती कि यह जानकी को लौटाकर राम को भजे (६।६।१-६।७)। अपनी प्रभुता का बखान कर इसका उसे नाना प्रकार से समझाना। फिर सभा में आ बैठना। मन्दोदरी का इसे कालवश समझना (६।८।१-६)। इसका मन्त्रियों से युद्ध-पद्धति के सम्बन्ध में पूछना। मन्त्रियों का यह कहकर इसे निश्चिन्त रहने का परामर्श कि नर-कपि-भालू तो उनके आहार। यह सुन प्रहस्त का सचिवों को फटकारना। लंका-दहन और सेतु-बन्धन में निहित पराक्रम का संकेत कर इसे उपदेश देना। इसका उसे क्रोध में डाँटना। उसका भी इसे कठोर वचन कहना (६।८।७-६।१०।५)।

सन्ध्या-समय इसका लंका के शिखर-स्थित भवन में जाकर बैठना। वहाँ नृत्य-संगीत का समारोह। अप्सराओं का नर्त्तन। किन्नरों द्वारा इसका गुणगान। शत इन्द्रों के समान इसका विलास। सिर पर प्रबल शत्रु होने पर भी यह निश्चिन्त (६।१०।६-६।१०)। इसके सिर पर मेघडम्बर छत्र इतना विस्तृत कि उसे देख घन-घटा का भ्रम। इसके पास ही बैठी मन्दोदरी के कर्णफूल की झलक विद्युच्छटा-सदृश। ताल-मृदंग की ध्वनि मधुर मेघ-गर्जन की-सी (६।१३।४-७)। इसका अभिमान भंग करने के लिए राम का एक ही बाण से इसका छत्र, मुकुट और मन्दोदरी का कर्णफूल काट गिराना (६।१३।८ - ६।१३ क)। यह अपशकुन देख इसकी सभा में आतंक। इसका युक्तिपूर्वक सबको समझाना — मस्तकों का गिरना भी जिसके लिए शुभ, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा! इसका सबको विदा करना (६।१३ ख - ६।१४।५)। मन्दोदरी के मन में सोच। भगवान् राम के विश्वरूप का वर्णन कर उसका इसे समझाना। उस वर्णन को अपनी ही प्रभुता का वर्णन कहकर इसका परिहास। रातभर विनोद। सबेरे मदान्ध हो सभा में आना (६।१४।६ - ६।१६ क)।

राम के दूत रूप में आये अंगद को इसका सभा में बुलाना। उनकी दृष्टि में यह जीवन्त कज्जलगिरि (६।१९।१-६)। उन्हें देख सभासदों के खड़े होने पर इसे क्रोध (६।१९।८)। दीन-हीन बन राम-शरण में जाने के

उनके परामर्श से यह रुष्ट (६।२०।१-६।२१।२)। उनका परिचय पाकर उन्हें कुलनाशक कहना। वाली के सम्बन्ध में पूछना (६।२१।३-७)। उनके कठोर वचन सुन उन्हें डाँटना। उनके कथन में अपनी निर्वीयता का संकेत पाकर गर्वोक्ति करना। सुग्रीव-सेना में केवल हनुमान् को बलशाली मानना (६।२१।७-६।२३।६)। अंगद की वक्रोक्तियों से इसका हृदय दग्ध। बात को हँसी में भुलाने की चेष्टा (६।२३।७ - ६।२४।४)। अंगद से बलि, सहस्रार्जुन और वाली के हाथों अपनी अपमानजनक पराजयों की व्यंग्योक्ति सुनकर इसका कथन — इसकी भुज-लीला कैलास पर्वत को ज्ञात। इसकी शूरता से शिव परिचित। अगणित बार अपनी भुजाओं से अपने मस्तक काट-काटकर इसके द्वारा उनका पूजन। [यह कथन मा० पी० ६।२५।१-३ नोट के १-२ के अनुसार हनुमन्नाटक ८।३५, ८।५२-५४ पर आधारित।] दिक्पालों और दिग्गजों को इसके भुजबल का कटु अनुभव। इसका राम को नर कहकर लघु बनाना (६।२४।५ - ६।२५)। अंगद का राम-भजन करने का परामर्श सुन इसकी दर्पोक्ति — राम ने एक समुद्र को बाँधा, इसकी बीस भुजाओं में बीस समुद्रों का बल। इन्हीं भुजाओं से इसके द्वारा कैलास-मन्थन, अपने मस्तक अग्नि को अर्पित। जलते हुए मस्तकों के ललाटों पर यह विधि-लिपि पढ़ना कि मनुष्य के हाथों इसका वध। [मा० पी० ६।२६।१-२ नोट २ के अनुसार इसके द्वारा विधि-अंक-वाचन हनुमन्नाटक ८।४३ के आधार पर। वहाँ विधि-लिपि 'रामार्पण' (राम से इसकी मृत्यु होगी।] पढ़कर, उस लिपि को असत्य मान, इसका हँसना। सोचना, बूढ़े ब्रह्मा ने भूल से लिख दिया है (६।२६।१ - ६।२६।४)। अंगद का इसे इन्द्रजाली कहना। उन चौदह प्रकार के प्राणियों में इसे मानना जो जीते-जी मृतक-समान। कुपित हो इसका अंगद को धमकाना। राम को गुणहीन मानहीन कहना (६।२६।५ - ६।३१ ख)। क्रुद्ध अंगद का दोनों भुजाओं को धरती पर पटकना। भूमि-कम्पन। सभासदों का गिरना, भागना। इसका गिरते-गिरते सँभलना। इसके (दसों) मुकुटों का धरती पर गिरना। कुछ को (छः मुकुटों को) उठाकर इसका मस्तकों पर धारण करना। कुछ को (चार मुकुटों को) अंगद का राम के पास प्रेरित करना (६।३२।१-६)। क्रोधवश इसका राक्षसों को अंगद-वध करके, सब वानर-भालुओं का भक्षण कर, पृथ्वी को वानरहीन करने का आदेश। राम-लक्ष्मण को जीवितावस्था में पकड़ने की आज्ञा। अंगद का इसे धिक्कारना। राम-प्रताप का, और तत्प्रेरित अपने सामर्थ्य का वर्णन (६।३२ ख - ६।३४।४)। इसके मुख से अपने लिए 'लबार' शब्द का प्रयोग सुन उनका प्रण करके सभा में पैर रोपना। उनका कथन — यदि यह उनका पैर हटा दे, तो सीता को वे हार जायेंगे, राम-लक्ष्मण लौट जायेंगे। मेघनाद और अनेक सुभटों के हटाने पर भी पैर अटल। अंगद के पचारने पर इसका उठना। उनके पैर पकड़ते समय उनका इसे राम-चरण पकड़ने का उपदेश। तेजहीन, श्रीहीन होकर इसका लौटना। सिर झुकाकर, जैसे सब कुछ खोकर, सिंहासन पर जा बैठना (६।३४।५ - ६।३५।५)। इसका मद चूर्ण कर, इसे रण में खेला-खेलाकर मारने की चेतावनी दे, अंगद का गमन (६।३५।६-११)।

उनके सभा में आने से पूर्व ही उनके द्वारा पुत्र-वध का समाचार सुन यह दुखी। सभा में मान-मर्दन होने के कारण इसका बिलखना। सन्ध्या-समय महल में जाना। मन्दोदरी का इसे समझाना (६।३५।१२, ६।३५ ख)। शिव-धनु-भंजन-प्रसंग, लक्ष्मण-रेखा लाँघने में इसकी असमर्थता आदि का स्मरण कराते हुए रघुनाथ-भजन करने का उपदेश देना (६।३६।१-६।३७)। उसके वचन इसके लिए बाण-सदृश। सभा में जाकर, सब भय भुला अभिमान के साथ इसका सिंहासन पर बैठना (६।३८।१-२)। 'धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस' — अंगद-कथन राम से (६।३८ क)।

लंका पर वानर-सेना का आक्रमण होने पर इसका राक्षसों को वानर-भक्षण का आदेश और अट्टहास (६।४०।१-५)। 'उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।।' (६।४०।६) युद्ध में राक्षसों का पलायन। लंकावासियों का इसे गालियाँ देना। सेना को विचलित देख इसकी चेतावनी — 'जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।।' (६।४२।५-६)। अंगद-हनुमान् द्वारा फेंके गये असुर-मस्तकों का इसके आगे गिरना (६।४४)। प्रथम दिन के युद्ध में अपनी आधी सेना का संहार देख इसका मन्त्रियों से आगे के लिए उपाय पूछना (६।४८।३-४)। राम को भगवदावतार कहकर उन्हें भजने का माल्यवान् का इसे परामर्श। इसका उन्हें डाँटकर निकालना। इसे दुर्वचन कहते हुए उनका गमन (६।४८।५ - ६।४६।५)। मेघनाद की बातों से इसे भरोसा (६।४६।५-७)।

(युद्ध के दूसरे दिन मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित। चिकित्सा के लिए हनुमान् का लंका से सुषेण को

लाना)। रात को एक गुप्तचर से इसे (हनुमान् के सुषेण-कथित ओषधि लाने के लिए जाने का) रहस्य ज्ञात। इसका कालनेमि के पास जाकर उसे रहस्य बताना। उसका उपदेश सुन इसे क्रोध (६।५६।२ - ६।५६)। लक्ष्मण की मूर्च्छा छूटने का समाचार सुन यह विषण्ण। इसका कुम्भकर्ण को जगाना। सब कथा सुनाना। उसका दुखी होना। राम के भगवान् होने का कथन। इससे अन्तिम बार भेंटना (६।६२।५-६।६३)। इसको कालवश समझना (६।६४।७)। तीसरे दिन के युद्ध में कुम्भकर्ण के छिन्न मस्तक का इसके आगे गिरना। इसका विकल हो विलाप करना। मस्तक को बार-बार हृदय से लगाना। मेघनाद का इसे समझाना (६।७१।५, ६।७२।४, ६)। चौथे दिन मेघनाद-वध का समाचार सुन इसका मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिरना (६।७७।६)। पुरवासियों का इसे नीच कहना (६।७७।८)। (मूर्च्छा दूर होने पर) विलाप करती हुई स्त्रियों को इसका ज्ञानोपदेश (६।७७, ६।७८।१)।

इसका प्रथम युद्ध — पाँचवें दिन योद्धाओं को रण-विमुख न होने की चेतावनी देकर इसका स्वयं युद्ध करने के लिए प्रस्थान। उस समय अगणित अपशकुन (६।७८।४-९)। इसकी चतुरंगिणी सेना का वर्णन (६।७९।१-१०)। राक्षसों को वानरों-भालुओं के मर्दन का आदेश दे, स्वयं राम-लक्ष्मण-वध का निश्चय कर, इसका सेना को आगे बढ़ाना (६।७९।११-१२)। 'रावनु रथी बिरथ रघुबीरा' (६।८०।१)। इसका विचलित हुए निशाचरों को लौटाना। स्वयं वानरों को त्रस्त करना (६।८१-६।८२।छं०)। लक्ष्मण का इसे ललकारना। उनकी शर-वर्षा से यह मूर्च्छित। चेत होने पर ब्रह्मा की दी हुई शक्ति चलाना। लक्ष्मण का गिरना। उन्हें उठाने में यह असमर्थ (६।८३।१-छं०)। हनुमान् पर इसका मुष्टिका-प्रहार। उनका घुटने टेकना, पृथ्वी पर न गिरना। उनके मुष्टिका-प्रहार से यह गिरकर मूर्च्छित। इसके द्वारा हनुमान् के बल की सराहना (६।८३-६।८४।३)। लक्ष्मण का इसके सारथी को मार, रथ को चूर्ण कर, इसे बाणों से व्याकुल करना। यह मूर्च्छित। दूसरे सारथी का इसे दूसरे रथ में डाल लंका में ले जाना (६।८४।८-छं०)। वहाँ जागने पर इसका राम पर विजय पाने के लिए यज्ञ करना (६।८४)। [अ० रा० ६।१०।१-१२ में इसका राम के बाणों से व्याकुल हो लंका में लौटना। फिर शुक्राचार्य के पास जाना। उनका इसे एकान्त में हवन करने का आदेश और कथन — उनके दिये मन्त्रों से हवन निर्विघ्न समाप्त होने पर होमाग्नि से रथ, घोड़े, धनुष, तरकश, बाण उत्पन्न होंगे। उन्हें पाकर यह अजेय हो जायेगा। अपने महल में गम्भीर गुहा बनाकर इसके द्वारा हवन।] विभीषण का राम को यह समाचार देना। यज्ञ-ध्वंस के लिए योद्धाओं को भेजने का उनका परामर्श (६।८५।१-३)।

इसका द्वितीय युद्ध — छठे दिन हनुमदादि का इसके महल में प्रवेश कर यज्ञ-ध्वंस करना। मन में हारकर, जीने की आशा छोड़, इसका युद्ध के लिए प्रस्थान। उस समय भयंकर अपशकुन (६।८५।४ - ६।८६।२)। निशिचर-संहार देख, स्वयं को अकेला पाकर, इसका माया फैलाना। माया से अनेक राम-लक्ष्मणों की रचना करना। यह देख वानरोंसहित लक्ष्मण भी विचलित। राम द्वारा माया-हरण (६।८८, ६।८९।६ -छं०)। इसका राम से संवाद (६।९०।१ - ६।९०)। उनसे युद्ध। इसकी शक्ति, चक्र, त्रिशूल आदि राम-शरों के आगे व्यर्थ। तब मातलि पर इसकी बाण-वर्षा। राम का इसके दसों मस्तकों और भुजाओं को काटना। पुनः नये सिरों और भुजाओं का उगना। इस तरह राम-शरों से अनेक बार इसकी भुजाओं, मस्तकों का छिन्न होना अैर फिर उत्पन्न होना। इसके कटे हुए सिरों-भुजाओं से आकाश आच्छादित। उन सिरों का राम, लक्ष्मण, सुग्रीव के नाम ले-लेकर पुकारना (६।९१।१-६।९३ छं०)।

इसका विभीषण पर शक्ति चलाना। राम का आगे होकर उसे झेलना। विभीषण का इसे फटकारना। दोनों का द्वन्द्व-युद्ध। (६।९३-६।९४)। इसका हनुमान् से युद्ध। फिर माया से असंख्य रावण उत्पन्न करना। वानर विकल। राम का माया को काटना (६।९५।१ - ६।९७।२)। देवताओं को राम की स्तुति करते देख इसका उन्हें पकड़ने के लिए आकाश में दौड़ना। उनका पलायन (६।९७।५-७)। पुनः युद्ध। हनुमदादि को अचेत देख जाम्बवान् का इसके वक्ष पर पदाघात। इसका मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरना। (सारथी का इसे लंका में ले जाना।) (६।९७।८-६।९८)। अर्द्धरात्रि को इसका मूर्च्छा से जागना। रणभूमि से इसे अलग करने के कारण सारथी को धिक्कारना। उसका इसे समझाना (६।१००।७-९)।

इसके मस्तकों और भुजाओं की वृद्धि से सीता को त्रास (६।९९।२-६, १०)। उनसे त्रिजटा-कथन — इसके हृदय में बाण लगने पर ही इसकी मृत्यु। किन्तु वहाँ जानकी का वास, अतः प्रभु का उसे न भेदना। बार-बार सिरों

के कटने से जब सीता का ध्यान छूट जायेगा, तब प्रभु इसका हृदय-भेदन करेंगे (६।९९।११-६।९९)।

इसका तृतीय युद्ध — लंका-युद्ध के सातवें दिन इसका पुनः माया रचना। वेताल-भूत-पिशाच-योगिनी आदि को प्रकट करना। रेत की वर्षा करना। लक्ष्मणसहित अनेक वीर अचेत (किंकर्त्तव्यविमूढ़। मा० पी० ६।१००।छं० ५ प० प० प्र०।)। इसका माया से अनेक हनुमान् प्रकट करना (६।१००।९ - ६।१०१।छं० १)। राम का इसके मस्तक और भुजाएँ काटना। किसी तरह इसके न मरने पर विभीषण की ओर देखना (६।१०१।छं० २, ६।१०१ ख - ६।१०२।३)। उनका कथन— इसके नाभिकुण्ड में अमृत जिसके बल पर यह जीवित (६।१०२।४-५)। [नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।। तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्। अ० रा० ६।११।५३-५४। (१) अमृत-वास से तात्पर्य कि रावण संजीवनी-मुद्रा करता था। योग में अमृत-प्रादुर्भाव एक मुद्रा जिससे ब्रह्मरन्ध्र से अमृत का स्रवण होता है और नाभिकुण्ड में आता है। किंचित्-किंचित् भरते-भरते बहुत काल में नाभिकुण्ड भर पाता है। यह अमृत सुखाया जा सकता है, किन्तु समुद्र-मन्थन से प्राप्त अमृत नहीं, क्योंकि वह पान करते ही अमर बना देता है, संचित नहीं होता। मा० पी० ६।१०१।५ नोट। (२) सबके शरीर के भीतर सहस्रार-स्थित चन्द्रमण्डल से अमृत-स्राव, नाभि-स्थित सूर्य द्वारा उसका पान। रावण ने योग के विपरीत क्रिया द्वारा सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर रखा था। अतः इसके अमृत को सूर्य पी नहीं पाते थे। वह नाभिदेश में संचित होता जाता था। वि० ६।१०२।५ व्या०। वा० रा० में मातलि के परामर्श से राम द्वारा अगस्त्य से प्राप्त ब्रह्मास्त्र से इसका वध। वा० रा० ६।१०८।१-४, १६-२३।] भयंकर अपशकुन। राम का एकतीस बाण छोड़ना। एक बाण से इसकी नाभि के अमृत-कुण्ड का शोषण। तीस बाण इसके मस्तकों और भुजाओं को छिन्न कर, मन्दोदरी के आगे रख, राम के तरकश में प्रविष्ट। इसके कबन्ध का वेग से दौड़ना। राम-शर से दो टुकड़े होकर गिरना। [वि० ६।१०२।९ व्या० में इसका वध आश्विन सुदी नवमी को, मा० पी० ६।१०१।९ नोट २ के अनुसार चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को।] इसका तेज प्रभु के मुख में समाहित (६।१०२।६, ६।१०२ - ६।१०३।९)। [यह सायुज्य मुक्ति। मन्दोदरी-विलाप में इसे राम-धाम प्राप्त होने का कथन (६।१०४।छं०)। यह सायुज्य मुक्ति से भिन्न। अतः चारों कल्पों के रावणों की गति में भेद। मा० पी० ६।७०।८ वि० त्रि०।]

मन्दोदरी और अन्य रानियों के विलाप में इसकी प्रभुता और राम-विरोध के फल का कथन (६।१०४।१ - ६।१०४)। इसकी दशा देख दुखी विभीषण का प्रभु-आज्ञा से विधिवत् इसकी क्रिया करना। मन्दोदरी आदि का तिलांजलि देना (६।१०५।५, ७-८, ६।१०५)। 'खल मल धाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न।।' (६।११४।१०)। 'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ…' (५।४९ ख)। [वि० ५।४९ व्या० के अनुसार यह हनुमन्नाटक के एक श्लोक का रूपान्तर।]

इसके सम्बन्ध में कथन या उल्लेख — इन्द्र द्वारा राम-स्तुति में (६।११३।तोमर ४-५), शिव-धनु को स्पर्श किये बिना इसके चल देने का (१।२५०।२, १।२५६।३, १।२९२।८), इसके द्वारा सीता-हरण का (१।४९।३-५, ३।३१।२, ३।३१), इसके विजित होने का (६।१०७।७, ६।११२।३), इसके वध का (१।२५।५, १।४६।८, ६।११६।३, ६।११८।४, ६।११९।११, ७।१३।छं० १, ७।१४।छं० २), भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में (७।६४।८, ७।६६।४, ७।६६।५, ७।६७।५, ७।६८।१, ७।६८।२)। अन्य उल्लेख (१।७।६, १।२११।छं० २, ३।२२।५, ३।२८।६, ३।३२।छं० १, ५।५।६, ५।३३।५, ५।४४।९, ५।४५।७, ५।४९ क, ६।१८।३, ६।३२।८, ६।३२।१०, ६।३८।६, ६।४१।७, ६।४४।२, ६।४४।३, ६।४६।४, ६।५३।२, ६।५७।५, ६।६४।५, ६।६९, ६।७९।छं०, ६।७९, ६।८० ग, ६।८४।५, ६।१११।छं० २, ७।७।७)।

मूल शब्द — १।७।६, १।४९।१, १।११०।७, १।१२२, १।१२४।२, १।१७६।२, १।१७८।३, १।१७९।६, १।१८२।६, १।१८२ क, १।१८४।६, १।२११।छं० २, १।२५६।३, ३।१७।३, ३।१७, ३।२१।५, ३।२८।६, ३।२८।१३, ३।२८, ३।२९।१५, ४।२८।११, ४।३०।९, ५।४।६, ५।१८।५, ५।२१।४, ५।२२।७, ५।२५।४, ५।३३।५, ५।३५।७, ५।३८।१, ५।३९।८, ५।४२।३, ५।४९ क, ५।४९ ख, ५।५१।८, ५।५२।८, ५।५३।२, ५।५४।३, ५।५५, ५।५६।१०, ६।५।९, ६।८।१, ६।१०।८, ६।१३ ख, ६।१८।३, ६।१९।१, ६।१९।८, ६।२३।८, ६।२३।९, ६।२४।१२, ६।२४।१२ (जाति०), ६।२४, ६।२५।१, ६।२५।८, ६।२५, ६।२७।१, ६।२७।८, ६।२८, ६।२९।५, ६।३२।८, ६।३४।५, ६।३५।१२, ६।३५ ख, ६।४०।६, ६।४१।७, ६।४२।५, ६।४४।२, ६।४४,

६।४८।५, ६।५७।५, ६।६३, ६।६४।५, ६।६४।७, ६।७८।१, ६।७९।छं०, ६।७९, ६।८२।४, ६।८३।४, ६।८३।छं०, ६।८५।२, ६।८५।५, ६।८८, ६।८९।६, ६।९०।४, ६।९०।८, ६।९१।६, ६।९२।५, ६।९२।७, ६।९४, ६।९५।४, ६।९५ ।छं०, ६।९६।५ (जाति०), ६।९७, ६।९८।१४, ६।९८, ६।९९, ६।१००, ६।१०१।छं०२, ६।१०१।छं०२, ६।१०४।२, ६।१११।छं० २, ६।११४।१०, ६।११६।३, ६।११९।११, ७।६४।८, ७।६७।५, ७।६८।१, ७।६८।२। रावनु — १।२५।५, १।४६।८, १।२५०।२, ५।९।२, ५।९।४, ६।३८।६, ६।५६।२, ६।८०।१, ६।९५।छं०, ६।९७।२, ६।१००।७, ६।१००।छं०, ६।१०२।५, ६।११८।४।

पर्याय — **दसकंठ** — ५।२३।७, ६।१०।२, ६।२०।१, ६।२३ ख, ६।२३ घ, ६।५६, ६।७७, ६।९३, ६।९७।छं०।

दसकंध — ६।१६ क, ६।३३ क, ६।३६।

दसकंधर — ३।२१ ख, ३।२८।७, ३।२९।१२; ५।१०।३, ५।१०, ५।२४।९, ५।५५।३, ६।१३।४, ६।२०।१, ६।२४।७, ६।३२।५, ६।३२।१०, ६।३५ ख, ६।६२, ६।७२।४, ६।७७।८, ६।८० ग, ६।८२।१, ६।८४।छं०, ६।८५।३, ६।९१।१, ६।९३।३, ६।९६।७, ६।९८।११, ६।१०३।५, ७।१३।छं० १, ७।६६।५।

दसमुख — १।१७९।३, १।१८१।२, १।१८२।१२, ३।२४।५, ३।२५।१, ५।९।७, ५।२०।६, ६।१४।३, ६।३०।२, ६।५६।३, ६।८३।छं०, ६।९३।१।

दसमौलि — ६।२३ च।

दससीस — ३।२२।१२, ३।२८।९, ३।२८।१६, ३।३२।छं० १, ५।३९ क, ६।२१, ६।२३ ङ, ६।२६।४, ६।३८ क, ६।४६।४, ६।६३।३, ६।६९, ६।९६ (जाति०), ६।१०१।तोमर ५, ७।१४।छं० २। दससीसा — १।४९।३, १।१७७।३, १।१८३।छं०, ३।२५।३, ५।११।४, ५।२१।५, ५।४४।६, ५।५५।७, ५।५६।४, ६।१०।६, ६।१९।२, ६।२४।९, ६।३४।१०, ६।९६।३ (जाति०), ६।१०७।७।

दसानन — १।१७९।५, १।१८२।५, १।१८२।७, ३।२२।५, ३।२६।७, ३।२७।१, ३।२९।१८, ३।३१।२, ३।३१, ५।५।६, ५।२०, ५।४१।२, ५।४५।७, ५।५३।३, ५।५७।१, ६।७।३, ६।१९।४, ६।२२।३, ६।२६।७, ६।३२ ख, ६।४०।१, ६।४८।३, ६।५३।२, ६।६२।५, ६।७१।५, ६।७७।६, ६।७८।४, ६।७९।११, ६।८१, ६।८४।५, ६।८४, ६।९६।२ (जाति०), ६।९६।छं० (जाति०), ६।१००।१०, ७।६६।४।

निसाचरपति — ६।४४।३।

निसाचरराऊ — ६।११२।३।

लंकपति — ६।१६ क। लंकापति (विभीषण भी) — ७।७।७।

लंकेस (विभीषण भी)—३।२२।२, ५।१९।१, ५।२१।१, ६।४२।६, ६।९०।२, ६।१०१ ख, ६।११३।तोमर ४।

सुरारी (सुरारि) — ५।२३।४, ६।२१।१, ६।३०।६, ६।९९।१२।

राहु — एक राक्षस का नाम। सौर-मण्डल का आठवाँ ग्रह। आ० को०। नवग्रह में एक छायारूप अन्धकार। बृ० को०।

प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > दनु ~ कश्यप > विप्रचित्ति ~ सिंहिका (हिरण्यकशिपु-पुत्री) > राहु (ग्रह), शेष सौ का नाम केतु। भा० ६।६।१-२, २५, २६, ३०-३१, ३७, ६।१८।१३।

[महा० में यह दक्षसुता सिंहिका से उत्पन्न मरीचिनन्दन कश्यप का पुत्र। आदि० ६५।११।३१। मोहिनी-रूप धारण कर भगवान् का देवताओं को अमृत पिलाना। उसी समय देवता के छद्मवेश में देव-पंक्ति में बैठ इसका अमृत-पान। सूर्य-चन्द्र द्वारा इसका भेद-कथन। तत्काल भगवान् द्वारा चक्र से इसका शिरश्छेद। अमृत-संसर्ग न होने से कबन्ध का गिर जाना। सिर अमर। ब्रह्मा का इसे ग्रह बनाना। पर्व के दिन (अमावस्या और पूर्णिमा को) इसके द्वारा प्रतिशोध-भाव से सूर्य-चन्द्र पर आक्रमण। भा० ८।९।२४-२६, ५।२४।२। महा० आदि० १९।४-९। इसलिए सूर्य-चन्द्र की रक्षा के लिए भगवान् द्वारा सुदर्शन चक्र नियुक्त। निरन्तर घूमते हुए चक्र के असह्य तेज से यह उद्विग्न, अतः मुहूर्त्तमात्र के लिए चन्द्र-सूर्य के सामने टिककर इसका सहसा लौट आना। इस मुहूर्त्तभर के टिकने का नाम ही ग्रहण। भा० ५।२४।३। ग्रहयोगतत्व में यह मलयपर्वतजात; शूद्रवर्ण, बारह अंगुल परिमाण, काला वस्त्र पहने हुए, सिंहवाहन, चतुर्भुज, खड्ग-शूल-चर्म-धारी, सर्पाकृति, अस्थिस्वामी, नैर्ऋतदिगधिपति आदि। वि० को।

ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा पर भूच्छाया पड़ने पर चन्द्रग्रहण, चन्द्रमा से सूर्य के ढक जाने पर सूर्यग्रहण। अमर० में इसके पाँच नाम — तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुंतुदः। १।११०।]

हरि-हर के यशरूप पूर्णचन्द्र के लिए खलगण इसके समान (१।४।३)। उत्तम वेश बनाने के कारण जग द्वारा पूज्य होने पर भी अन्ततः खलगण का भेद प्रकट। इसके उदाहरणरूप में कालनेमि, रावण के साथ इसका उल्लेख (१।७।५-६)। वन में घूमते सूअर का रूप ऐसा जैसे चन्द्रमा को ग्रसकर यह वन में आ छिपा हो (१।१५६।५)। तेजस्वी शत्रु को अकेले होने पर भी छोटा न समझा जाये। उदाहरण — सिर मात्र बचने पर भी इसके द्वारा रवि-शशि पीड़ित (१।१७०)। सीता-मुख से चन्द्रमा की हीनता प्रदर्शित करने के लिए इसके द्वारा उसके ग्रस्त होने का उल्लेख (१।२३८।१)। राजाओं का भुजबल चन्द्र, शिवधनु राहु (१।२५०।१)। टेढ़े व्यक्ति की वन्दना — 'वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू' (१।२८१।६)। 'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू।।' — कौसल्या-सन्ताप (२।५५।२)। भरत के यशरूपी नवचन्द्र को 'ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू' — भरद्वाज-कथन भरत से (२।२०९।१,४)। रावणरूपी चन्द्र के लिए राम राहु (३।२८।६)। चन्द्रमा में काला दाग इसके आघात के कारण — राम-प्रश्न पर किसी एक का कथन (६।१२।६)। 'लूक न असनि केतु नहिं राहू'— रावण के अंगद-प्रेरित मुकुटों के सम्बन्ध में राम-कथन (६।३२।९)। जाति० प्रयोग— रावण की भुजाओं के उपमान (६।२२ क)। राम-शर से कटे आकाश में कहीं छाये हुए, कहीं दौड़ते हुए रक्तारक्त रावण-शिरों के उपमान (६।९२।१४, ६।९२।छं०)। 'जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं' (६।९२।छं०)।

मूल शब्द — १।४।३, १।१७०, १।२३८।१, ६।१२।६, ६।२२ क (जाति०), ६।९२।छं० (जाति०)। राहू — १।७।६, १।१५६।५, १।२५०।१, १।२८१।६, २।५५।२, २।२०९।४, ३।२८।६, ६।३२।९, ६।९२।१४ (जाति०)।

पर्याय — **बिधुंतुद** — ७।९२।छं० (जाति०)।

रिद्धि (ऋद्धि)— कुबेर की पत्नी का नाम। महा० उद्यो० ११७।९। गणेश की एक दासी। बृ० को०। सम्पन्नता। बृ० को०।

[मा० पी० १।९४ टिप्पणी २ एवं ७।८३ ख नोट २ क में ऋद्धि और निधि पर्याय। दे० 'नवनिधि'। मा० पी० २।२१३।८ नोट ४ में ऋद्धि और सिद्धि गणेश की दासियाँ। दोनों का एक ही अर्थ। ऋद्धि के अनेक नाम — सम्पदास्वया, योग्या, सिद्धि, लक्ष्मी आदि।]

समाजसहित भरत का आतिथ्य करने की भरद्वाज को चिन्ता। उत्सुक होकर ऋद्धि-सिद्धि का उनके समक्ष उपस्थित होना। आतिथ्य करने की उनकी आज्ञा पाकर स्वयं को भाग्यवती समझना (२।२१३।७-२।२१४।१)। ऋद्धि-सिद्धि शोभित — पार्वती के अवतरण से ओषधिप्रस्थ में (१।९४), अयोध्या में (१।३४५।२, २।१।३)। काकभुशुण्डि से वररूप में ऋद्धि-सिद्धि आदि माँगने का राम का कथन (७।८३ ख)। ऋद्धि-सिद्धि माया की शक्तियाँ (७।११८।७)। दे० सिद्धि'।

मूल शब्द — १।९४, ७।११८।७। रिधि — १।३४५।२, २।१।३, २।२१३।८, २।२१४।१, ७।८३ ख।

रिष्यमूक (ऋष्यमूक) — भारतवर्ष के सात कुल-पर्वतों में एक। न० पु० ३०।१२। पम्पा सरोवर के पूर्वभाग में स्थित। वा० रा० ३।७३।३१।

[पूर्वकाल में यह ब्रह्मा द्वारा निर्मित। इस पर एक विशाल गुहा। कभी गुहा में, कभी पर्वत-शिखर पर, वानरों-सहित सुग्रीव का वास। वा० रा० ३।७३।३२, ३९-४२। मतंग-शाप के भय से वाली का यहाँ आना सम्भव नहीं। वा० रा० ४।११।६४।]

शबरी के कहने पर सुग्रीव से मिलने के लिए राम का यहाँ आना (३।३६।११, ४।१।१-२)। [वा० रा० ३।७२।२२-२४ में कबन्ध के परामर्श से।]

मूल शब्द — ४।१।१।

रेख — लक्ष्मण-रेखा।

[मा० पी० ३२८/६ टिप्पणी ३ और मा० पी० ६।३५।२ नोट २ के अनुसार आनन्द रामायण और हनुमन्नाटक में लक्ष्मण-रेखा का स्पष्टीकरण— (मरते समय मारीच की आर्त्त पुकार— हा लक्ष्मण—सुनकर, राम को संकट में समझ, सीता विचलित। उनका लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए जाने को बाध्य करना। तब सीता

की सुरक्षा के लिए) लक्ष्मण का अपने धनुष से पर्णशाला के चारों ओर एक रेखा खींचना, जिससे उस रेखा के भीतर आनेवाला निशिचर भस्म हो जाये। उस रेखा को देख और उसका रहस्य समझ रावण का बँधी भिक्षा न लेना, रेखा को न लाँघना। तब सीता का भिक्षा देने बाहर आना। अपहृत होना।]

रावण के पुरुषत्व का तिरस्कार करते हुए मन्दोदरी-कथन – 'रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई।।' (६।३६।२)।

रोहनि (रोहिणी) – चन्द्रमा की अत्यधिक प्रिय पत्नी।

[चन्द्रमा से विवाहित सत्ताईस दक्ष-कन्याओं में सर्वाधिक सुन्दरी। (सीता द्वारा श्रेष्ठ पतिव्रताओं में इनकी गणना। 'वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता। रोहिणी न विना चन्द्रं मुहूर्त्तमपि दृश्यते। वा० रा० २।११८।११) सदा इन्हीं के समीप रहने के कारण चन्द्रमा अन्य पत्नियों के कोप और दक्ष-शाप के भाजन। अपनी अन्य छब्बीस बहनों की तरह ये भी आकाश में नक्षत्ररूप में शोभित। महा० शल्य० ३५।४५-६२। दे० 'ससि'। चतुर्थ नक्षत्रपुंज जिसकी आकृति गाड़ी की-सी। इसमें पाँच तारे। आ० को।]

वनमार्ग में राम-लक्ष्मण के बीच सीता उसी तरह शोभित जिस तरह चन्द्रमा और बुध के बीच रोहिणी (२।१२३।४)।

रौरव नरक – एक नरक का नाम।

[इस नरक के भागी कूटसाक्षी, मिथ्याभाषी, पक्षपातवश कुछ का कुछ बोलनेवाले (वि० पु० २।६।७), उपासना त्याग करनेवाले (सं० ना० पु० पृ० ६३३)। भा० में – 'यह शरीर ही मैं हूँ और ये स्त्री-धनादि मेरे हैं', ऐसी बुद्धि से दूसरे प्राणियों से द्रोह करके निरन्तर अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण में लगे रहनेवाले व्यक्ति के लिए यह नरक। जगत् में उसने जिन जीवों को जिस प्रकार कष्ट दिया, परलोक में यम-यातना के समय वे जीव 'रुरु' (सर्प से भी अधिक क्रूर स्वभाववाले जीव) होकर उसे उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं। इसीलिए इसका नाम 'रौरव'। भा० ५।२६।१०-११।]

इस नरक में पड़ने के योग्य– पति-वंचक, पर-पति-रत स्त्री (३।५।१६), गुरु से ईर्ष्या करनेवाला (७।१०७।५), सुर-श्रुति-निन्दक (७।१२१।२५)।

मूल शब्द – ३।५।१६, ७।१०७।५, ७।१२१।२५।

लंका' – रावण की पुरी का नाम।

(१) भारत के दक्षिण का एक द्वीप; सिंहल। बृ० को०।

(२) सीलोन श्रीलंका का अपभ्रंश-सा लगता है। ध० इ० तृ० पृ० १५०१।

(३) वर्तमान सीलोन टापू या तद्वर्ती राजधानी। रावण का निवास और राजधानी। कुछ विद्वानों के मत से उस समय की लंका सीलोन से कहीं अधिक बड़ी। आ० को०।

(४) सिंहल द्वीप से भिन्न (दे० सिंघल) वर्तमान सुमात्रा द्वीप। वि० को०।

[दक्षिणी समुद्र (लवण-सागर। वा० रा० ५।१।१०७।) के तट पर त्रिकूट नामक पर्वत। उसके मध्यवर्ती शिखर पर इन्द्र के आदेश से विश्वकर्मा द्वारा इस पुरी का निर्माण। (महा० में यह सागर-प्रार त्रिकूट की कन्दरा में स्थित। वन० २८२।५६।) यह सौ योजन लम्बी, तीस योजन चौड़ी। इसके चारों ओर सोने के प्राकार (चहारदीवारी), सोने के द्वार। चतुर्दिक् यन्त्रों-शस्त्रों से सुरक्षित खाई। यह अमरावती-सी दुर्गम और मनोरम। वा० रा० ७।३।२६-२८, ७।५।२३-२८। अलका-सी शोभाशालिनी। वा० रा० ५।३।१२।

यहाँ सुरम्य वन-वृक्ष-सरोवर-उद्यान। पाण्डुराभ ऊँचे मार्ग। शरत्-मेघों-से शुभ्र पर्वत-सदृश भवन। ध्वजा-पताकाएँ। कुछ दूर से देखने पर ऐसी प्रतीति जैसे सम्पूर्ण पुरी आकाश में प्लवमान, मानो विश्वकर्मा के मानसिक संकल्प से रची गयी सुन्दरी रमणी। स्वर्ण-प्राकार ही इसकी जघनस्थली। सागर की विशाल जलराशि और रम्य वन ही इसके वस्त्र। शतघ्नी और शूल इसके केश। अट्टालिकाएँ उज्ज्वल कर्णभूषण। राक्षसों से भरी इस पुरी की निर्माण-कला अचिन्त्य।

भोगावती की तरह रक्षा के लिए यहाँ सर्पों का संचरण। यह अलकापुरी की तरह प्रबल सैन्य द्वारा सुरक्षित। अमरावती की तरह विद्युत्-संकुल मेघों से आच्छादित। यह नक्षत्रों-सदृश विद्युद्दीपों से प्रकाशित। (यहाँ सोने के

महल। वा० रा० ७।५।३०)। रत्न-जटित स्वर्ण के द्वार। भवनों का बाह्यातन्तर सब मणिमय। पुरी सदा प्रचण्ड वायु से ध्वनित। पक्षियों के कलरव, वाद्य एवं आभूषणों के मधुनाद से गुंजित। प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ और समृद्धिशालिनी। वा० रा० ५।२।९-२६, ५।३।२-१३। इसकी अधिष्ठात्री देवी लंकिनी। दे० 'लंकिनी'।

पूर्वकाल में विश्वकर्मा के परामर्श से सुकेश के राक्षस-पुत्रों का यहाँ वास। विष्णु-भय-पीड़ित हो उनके पुरी-त्याग कर रसातल चले जाने पर यह सूनी। तब यहाँ आकर कुबेर का निवास। (रावण के भय और) पिता के आदेश से कुबेर द्वारा इसका त्याग। रावण का इसमें प्रवेश और राज्याभिषेक। वा० रा० ७।३।२९-३२, ७।५।२९, ७।११।५०-५१। अ० रा० ७।२।२६, २७, ३४।

वि० प० ५८ के सांगरूपक में शरीररूपी ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति ही लंकादुर्ग जो मनरूपी दैत्य द्वारा मयरूप होकर रचित। त्रिगुण इसके सेनापति, देहाभिमान समुद्र। मोह रावण, अहंकार कुम्भकर्ण, काम मेघनाद, जीव विभीषण। यम-नियम रावण के वशीभूत देवता-लोकपति।

वा० रा०, ब्रह्माण्डपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित लंकाद्वीप की स्थिति का भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत विवेचन करके वि० को० में यह निष्कर्ष व्यक्त कि सुमात्रा द्वीप को ही उस समय लंकाद्वीप समझा जाता था।]

यह सागर के मध्य में त्रिकूट पर्वत पर स्थित। जगत्-विख्यात। भोगावती और अमरावती से अधिक रमणीय और दुर्धर्ष। इसके चारों ओर खाई की तरह अथाह समुद्र। यहाँ मणिखचित स्वर्ण के अगणित महल, चहारदीवारी (अथवा किले की दीवारें)। भगवत्प्रेरणा से जिस कल्प में जो निशाचरराज, उसी का सैन्यसहित यहाँ निवास (१।१७८।५-१।१७८ ख)। यहाँ रहनेवाले निशिचरों का देवताओं द्वारा वध। इन्द्र की प्रेरणा से कुबेर के एक करोड़ यक्ष-रक्षकों का यहाँ वास। (स्वयं कुबेर का नहीं।) रावण का आक्रमण। यक्षों का पलायन। रावण का इसे अपनी राजधानी बनाना (१।१७९।१-७)। राम के वन-गमन के समय यहाँ अपशकुन (२।८१।४)। यहाँ के अशोक-उपवन में सीता शोकमग्न अवस्था में। —सम्पाति-कथन वानरों से (४।२८।११-१२)। सागर पार कर एक पर्वत पर चढ़कर हनुमान् द्वारा इस नगर के बाह्यान्तर का निरीक्षण। सूक्ष्म रूप धारण कर इसमें प्रवेश (५।३।१० - ५।४।१)। 'लंका निसिचर निकर निवासा' (५।६।१)। 'सपनें बानर लंका जारी', 'लंका मनहुँ बिभीषन पाई' — त्रिजटा का अपने स्वप्न के सम्बन्ध में सीता से कथन (५।११।३, ५)। हनुमान् ने 'उलटि पलटि लंका सब जारी' (५।२६।८)। इसके दाहन के सम्बन्ध में हनुमान् से राम की जिज्ञासा और हनुमान् का उत्तर (५।३३।५, ८)। इसके शिखर पर एक विचित्र महल। सन्ध्या-समय यहाँ रावण का मनोरंजन। नृत्य-संगीत का विलक्षण समारोह (६।१०।७-९, ६।१३।४)। राम का अंगद को यहाँ भेजना (६।१७।६)। राक्षसों को भ्रम— 'आवा कपि लंका जेहिं जारी' (६।१८।८)। यह 'परम दुर्ग'। इसके चार विकट द्वार। इस पर आक्रमण करने की योजना के सम्बन्ध में विचार करने का विभीषणादि से राम का कथन (६।३९।२, ९)। [इस दुर्ग के बाहर राम-रावण-युद्ध।] युद्धोपरान्त राम का हनुमान् को यहाँ भेजना (६।१०७।१)। इसका उल्लेख — हनुमान् द्वारा (५।२३।१), अंगद द्वारा (६।३४।२, ६।३४।३, ६।३६।४), भुशुण्डि-कथित युद्ध के प्रसंग में (६।४३।६, ६।४५।८, ६।५५।७, ६।७४।९, ६।७७।१, ६।८४।छं०, ६।८५।५), मूल रामायण में (७।६७।४), अन्यत्र (५।३६।१, ५।५३।२, ५।५३।५, ५।५५।८, ६।५।६, ६।४०।१)।

मूल शब्द — १।१७८।८, ४।२८।११, ५।३।१०, ५।४।१, ५।६।१, ५।११।३, ५।११।५, ५।२३।१, ५।२६।८, ५।३३।५, ५।३६।१, ५।५३।२, ५।५३।५, ५।५५।८, ६।५।६, ६।१०।७, ६।१३।४, ६।१७।६, ६।१८।८, ६।३४।२, ६।३४।३, ६।३६।४, ६।३९।२, ६।३९।९, ६।४०।१, ६।४५।८, ६।५५।७, ६।७४।९, ६।७७।१, ६।८४।छं०, ६।८५।५, ६।१०७।१, ७।६७।४। लंक — २।८१।४, ६।४३।६।

पर्याय — **हाटकपुर** (स्वर्णनिर्मित पुर) — ५।३३।८।

लंका[२] — लंका की अधिष्ठात्री देवी। दे० 'लंकिनी'।

लंकाकाण्ड — मानस का षष्ठ काण्ड। दोहा संख्या १२१। इस काण्ड की सारी घटनाएँ लंका में घटित होने के कारण यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध काण्डों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह काण्ड 'विमलविज्ञानसम्पादन' नामक षष्ठ सोपान। भक्तों की मान्यता — मानस के सप्त काण्ड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह काण्ड उज्जैनपुरी। दे० 'रामचरितमानस' में '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण— राम-वन्दना। शंकर-वन्दना एवं कल्याण-कामना। रामभजन के लिए मन को प्रबोधन

(६।१।श्लो० १- ६।१।दो०)। राम का सेतुबन्ध के लिए आदेश। जामवन्त का रामनाम-महिमा-स्तवन। हनुमान् का राम-प्रताप-कथन। नल-नील को सेतु-निर्माण करने और वानरों को गिरि-विटप लाने के लिए जामवन्त की आज्ञा। राम द्वारा लिंग (रामेश्वर)-स्थापन। शिवद्रोही वैष्णव और रामद्रोही शैव की निन्दा। रामेश्वर और सेतु का माहात्म्य। सेतु-निर्माण। रामाज्ञा से कटक-प्रयाण। राम-लक्ष्मण का सेनासहित पार उतरना। डेरा डालना (६।१।सो० - ६।५।८)।

निशाचरों का जाकर रावण से सब समाचार कहना। रावण की व्याकुलता। उसे अपने महल में ले जाकर मन्दोदरी का विनय से समझाना। रावण द्वारा निज प्रताप-वर्णन। सभा में मन्त्रियों से परामर्श। मन्त्रियों की चाटुकारिता। प्रहस्त का प्रबोधन। रावण का क्रोध। प्रहस्त का प्रस्थान। रावण का लंका-शिखर पर निर्मित महल में जाकर विलासमग्न होना। (६।५।६-६।१०)। राम का सेनासहित सुवेल शैल पर उतरना। राम के बाण से विलास भवन में बैठे रावण के छत्र-मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल का गिरना। सभासदों को सोच। मन्दोदरी की चिन्ता। राम के विश्व-रूप का वर्णन कर उनसे प्रीति करने की उसकी प्रार्थना। रावण का नारी के आठ अवगुणों का उल्लेख करना। राम-प्रताप-वर्णन को अपने प्रताप का वर्णन मानना। कालवश रावण के मति-भ्रम का मन्दोदरी को विश्वास (६।११।१-६।१६।८)।

मन्त्रियों को बुलाकर राम का परामर्श। दूतरूप में अंगद को भेजना। लंका-प्रवेश करते ही रावण-सुत से झगड़ा और अंगद द्वारा उसका वध। राक्षसों का भय। बिना पूछे मार्ग दिखाना। रावण की सभा। अंगद को देख सभासदों का खड़े हो जाना। रावण का क्रोध। रावण-अंगद-संवाद। अंगद की वक्रोक्तियाँ, प्रबोधन। रावण द्वारा प्रभु-निन्दा सुन क्रोध। दोनों भुजाओं को जमीन पर पटकना। भूकम्प। गिरते-गिरते रावण का सँभलना। उसके मुकुटों का गिरना। कुछ को उठाकर रावण का धारण करना और चार मुकुटों को अंगद का राम के पास फेंकना। अंगद को पकड़कर मारने, धरती को मर्कटहीन करने और दोनों भाइयों को पकड़ने की रावणाज्ञा। अंगद का क्रोध और सभा में प्रण करके पैर रोपना। मेघनाद आदि सुभटों के हटाने पर भी पैर अटल। अंगद की रावण को प्रचारणा। रावण के पैर पकड़ते समय उसे राम-चरण पकड़ने का उपदेश। लज्जित रावण का लौट जाना। अंगद का प्रबोधन और लौटकर प्रभु-चरणाश्रय-ग्रहण (६।१७।१-६।३५ क)। सन्ध्या समय दुखी रावण का गृह-गमन। मन्दोदरी का समझाना। रावण द्वारा उपेक्षा। प्रातःकाल त्रास भूल सभा में जाकर बैठना (६।३५ ख - ६।३८।२)।

राम को अंगद का लंका-गढ़ के सम्बन्ध में बताना। परामर्श के अनन्तर राम का वानर-सेना के चार विभाग कर सेनापति नियुक्त करना। युद्धारम्भ। लंका पर आक्रमण। वानरों द्वारा निशिचर-मर्दन। राक्षसों का पलायन। रावण का क्रोध —'जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।।' निशाचरों का युद्ध। वानरों का पलायन। पश्चिम द्वार पर हनुमान् के प्रहार से मेघनाद को मूर्च्छा। हनुमान् और अंगद का मिलकर रावण-महल गिराना। रिपुदल-मर्दन कर दोनों का राम के पास आना। वानर-सेना का लौटना। प्रदोष-बल पा राक्षसों का पुनः युद्ध। अन्धकार। वानर-सेना में खलबली। राम का अंगद-हनुमान् को भेजना। अग्नि-बाण चलाना। प्रकाश। युद्ध में त्रस्त राक्षसों का गढ़ पर चढ़ पलायन। चारों वानर-सेनाओं का लौटना। राम की कृपा-दृष्टि से श्रमापहार। प्रथम दिवस की युद्ध-विरति (६।३८।३ - ६।४८।२)।

आधी निशिचर-सेना का संहार देख मन्त्रियों से रावण की सलाह। माल्यवन्त का प्रबोधन, रावण का क्रोध और माल्यवन्त का प्रस्थान। मेघनाद का आश्वासन (६।४८।३ - ६।४६।८)। दूसरे दिन क्रुद्ध मेघनाद का दुर्ग से उतर भीषण युद्ध। वानरों को बेहाल देख हनुमान् का क्रोध कर उसे विरथ करना। मेघनाद का राम के पास जा अस्त्र-प्रयोग। विफल हो माया रचना। राम के एक ही बाण से माया भंग। लक्ष्मण का युद्ध-प्रवेश। लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध। मेघनाद का विरथ और त्रस्त हो वीरघातिनी शक्ति चलाना। लक्ष्मण की मूर्च्छा। मेघनाद का उन्हें उठा ले जाने का विफल प्रयास। सन्ध्या समय दोनों ओर की सेनाओं का लौटना। हनुमान् का लक्ष्मण को उठा राम के पास लाना। राम का दुखी होना (६।४६।८-६।५५।६)।

जामवन्त के कहने पर हनुमान् का भवनसहित सुषेण वैद्य को लाना। सुषेण के निर्देशानुसार ओषधि लाने के लिए हनुमान् का जाना। यह भेद जान रावण का कालनेमि को भेजना। कालनेमि का माया रचना। शापग्रस्त मकरी रूप अप्सरा (धान्यमाली) का हनुमान् को सचेत करना। मकरी-उद्धार। कालनेमि-वध। ओषधि न पहचानने के कारण

शैल उखाड़कर हनुमान् का आकाशपथ से गमन। अयोध्या के आकाश में उन्हें राक्षस समझ भरत का बाण मारना। हनुमान् की मूर्च्छा। भरत का उन्हें जगाना। संक्षेप में सब कथा सुनाकर हनुमान् का प्रस्थान। इधर राम का विलाप। हनुमान्-आगमन। वैद्य का उपाय करना। लक्ष्मण का सचेत होना। राम-लक्ष्मण-मिलन। हनुमान् का सुषेण को लंका पहुँचाना (६।५५।७ - ६।६२।४)।

यह समाचार सुन रावण की आकुलता। कुम्भकर्ण को जगाना। सीताहरण और युद्ध का सब वृत्तान्त सुनाना। भक्तहृदय कुम्भकर्ण का दुखी होना। उसे नारद-कथन की स्मृति। रावण का मद-महिष मँगाना। अशन-पान कर कुम्भकर्ण का युद्ध के लिए एकाकी प्रस्थान। विभीषण से भेंट। वानरों का धावा। कोटिकोटि गिरि-शिखर-प्रहार से कुम्भकर्ण अडिग। हनुमान् के मुष्टिका-प्रहार से आकुल हो उसका गिरना। उठकर हनुमान् को मारना। हनुमान् का गिरना। कपि-मर्दन। निशाचर-सेना का आना। वानर-सेना को विकल देख राम का युद्ध में प्रवेश। शत्रु-सेना-संहार। कुम्भकर्ण-वध। रावण के आगे उसका सिर गिरना। उसके तेज का प्रभु-मुख में समाना। नारद का आना और खल-निधन में शीघ्रता करने की विनती। दिवसान्त में दोनों ओर की सेनाओं का लौटना। तृतीय दिवस की युद्ध-विरति। (६।६२।५-६।७२।२)।

रावण का विलाप। इष्टदेव से प्राप्त बल और रथ की बात कह मेघनाद का आश्वासन। चौथे दिन प्रातः चारों द्वारों पर वानरों का धावा। मायामय रथ पर चढ़ मेघनाद का आकाश में जा अस्त्र-वर्षा करना। लक्ष्मण को शर-जर्जर करके राम को नागपाश में बाँधना। प्रकट हो दुर्वाद कहना। जामवन्त का उसे पैर पकड़कर पटकना और लंका में उछाल फेंकना। देवर्षि द्वारा गरुड़-प्रेषण। नागपाश-मुक्ति। मूर्च्छा टूटने पर मेघनाद का गिरि-कन्दरा में जाकर अजयमख करना। विभीषण का प्रभु को यह भेद बताना। राम का लक्ष्मण के साथ अंगदादि को भेजना और मेघनाद-वध का आदेश देना। मख-ध्वंस। युद्ध। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध। हनुमान् का उसे उठाकर लंका-द्वार पर रख आना। देव-स्तुति। चतुर्थ दिवस की युद्ध-विरति। (६।७२।३ - ६।७७।५)।

सुत-वध सुन रावण को मूर्च्छा। मन्दोदरी-विलाप। रावण का उपदेश। रावण का प्रथम युद्ध। पाँचवें दिन प्रातःकाल वानरों का आक्रमण होने पर रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान। राम-लक्ष्मण को स्वयं मारने का दायित्व ले सेना को वानरों के संहार का आदेश। युद्ध। 'रावनु रथी बिरथ रघुबीरा' देख विभीषण की शंका। राम द्वारा जयप्रद धर्मरथ का वर्णन (सौरज धीरज रिपु ताकें।। ६।८०।५ - ६।८०।१२)। विभीषण का हर्ष। घोर युद्ध। निशाचरों को विचलित देख रावण का आगे बढ़ प्रहार। वानरों में विकलता। लक्ष्मण की ललकार और लक्ष्मण-रावण-युद्ध। रावण को मूर्च्छा। जागकर उसका लक्ष्मण पर ब्रह्मदत्त शक्ति चलाना। लक्ष्मण को मूर्च्छा। रावण का उन्हें न उठा सकना। हनुमान् का आगमन, रावण का मुष्टिका-प्रहार। हनुमान् का घुटनों पर गिरना। हनुमान् का मुष्टिका-प्रहार। रावण का गिरकर मूर्च्छित होना। रावण द्वारा कपि-बल-सराहना। हनुमान् का लक्ष्मण को उठाकर राम के पास लाना। राम-वचन से लक्ष्मण का मूर्च्छा-त्याग। प्रचण्ड शक्ति का आकाश-गमन। लक्ष्मण का रावण पर आक्रमण। रावण की मूर्च्छा। सारथी का उसे रथ में डाल लंका-गमन। पंचम दिवस की युद्ध-विरति। (६।७७।६ - ६।८४।छं०)।

लंका में रावण का यज्ञ। विभीषण का राम को समाचार देना। प्रातः राम का सुभटों को भेजना। वानरों द्वारा यज्ञ-ध्वंस। रावण का द्वितीय युद्ध। राम से देवताओं की शीघ्रता करने की विनती। दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध। प्रभु को पैदल देख सुरपति का निज रथ भेजना। राम का उस पर आरूढ़ होना। रावण का माया रचना। राम द्वारा माया-हरण। राम-रावण-युद्ध। राम द्वारा रावण के मस्तक-भुजाओं का बार-बार काटा जाना और उनका बार-बार उगना। रावण का विभीषण पर शक्ति-प्रहार। सम्मुख हो राम का शक्ति को अपने ऊपर लेना। मूर्च्छा। विभीषण-रावण-युद्ध। विभीषण को क्लान्त देख हनुमान् का दौड़ना। हनुमान्-रावण युद्ध। हनुमान् का संकट देख वानरों का आक्रमण। रावण का माया रचना। वानरों, देवताओं का त्रास। राम के एक शर से समस्त मायावी रावणों का नाश। स्तुति करते देवताओं पर रावण का आक्रमण। देवताओं का पलायन। अंगद का रावण के पैर पकड़ भूमि पर गिराना। रावण की बाण-वर्षा से कपि-दल की भयाकुलता। राम का रावण के मस्तक और भुजाएँ काटना। उनका फिर उगना। रावण का कपि-वीरों को घायल और मूर्च्छित करना। जामवन्त के पद-प्रहार से उसका मूर्च्छित होना। रथ पर डाल सारथी का उसे घर ले जाना। कपियों का राम के पास लौटना। षष्ठ दिवस की युद्ध-विरति।

(६।८४-६।९८)। उस रात सीता के पास जा त्रिजटा का युद्ध-समाचार सुनाना। रावण के मस्तक-भुजाओं के बार-बार निकलने के कारण सीता को भय। त्रिजटा का समझाना। राम-स्वभाव का स्मरण कर सीता की विरहाकुलता। शकुन से धीरज (६।९९।१ - ६।१००।६)।

अर्धरात्रि को रावण का जागना। रणभूमि से लाने के लिए सारथी पर क्रोध। प्रातःकाल होते ही युद्ध के लिए प्रस्थान। उसका तृतीय युद्ध। वानरों के प्रहार से निशिचर-सेना का विचलित और रावण का व्याकुल होना। उसका माया-विस्तार करना। लक्ष्मणसहित वानरों का विकल होना। राम-शर से माया का नाश। मस्तक-भुजा काटने पर भी रावण के न मरने से राम का विभीषण की ओर देखना। विभीषण द्वारा रावण के नाभिकुण्ड के पीयूष का मर्म-ज्ञापन। राम का कराल बाण-सन्धान। शत्रु-पक्ष में अपशकुन। रावण-वध। उसके मस्तक और भुजाओं का मन्दोदरी के आगे प्रेषण। उसके तेज का प्रभु-मुख में समाना। जयजयकार। समरभूमि में राम-शोभा। सप्तम दिवस — युद्ध समाप्त (६।१००।७-६।१०३)।

रावण का सिर देख मन्दोदरी को मूर्च्छा। अन्य स्त्रियों का उसे उठा समरांगण में रावण के शव के पास लाना। मन्दोदरी का विलाप। विभीषण को दुःख। लक्ष्मण का उन्हें समझाना। राम के आदेश से विभीषण का विधिवत् क्रिया करना। मन्दोदरी आदि का तिलांजलि देकर प्रस्थान (६।१०४।१-६।१०५)। विभीषण का राम के पास आना। राम के आदेश से वानरोंसहित लक्ष्मण द्वारा उनका राजतिलक। सीता को लाने के लिए राम का अंगद और विभीषण को हनुमान् के साथ भेजना। सीता का शिविका पर आना। वानरों की उन्हें देखने की उत्सुकता। राम के आदेश से उनका पैदल आना। अग्निस्थित सीता को प्रकट करने के उद्देश्य से राम का उन्हें दुर्वाद कहना। सीता की अग्नि-परीक्षा। प्रतिबिम्ब का अग्निदाह। असली सीता साक्षात् अग्नि द्वारा राम को समर्पित। मातलि की बिदाई (६।१०६।१-६।११०।१)।

सुर-सिद्धों के बाद ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति। दशरथ का आगमन, दृढ़ ज्ञान लाभ, सुरधाम-गमन। इन्द्र-स्तुति। वानर-भालुओं को पुनः जीवित करने का उन्हें राम का आदेश। सुधा-वृष्टि। कपि-भालुओं का जीवन-लाभ। सबका प्रस्थान। शम्भु का आगमन और स्तुति। प्रस्थान। प्रभु को भरत की सुधि। वानरों के साथ प्रभु की लीला। वानरों का विभीषण द्वारा पुष्पक से बरसाये गये मणिवसन धारण करना। वानर-सेना की बिदाई। सुग्रीवादि का अतिशय प्रेम देख उन्हें विमान पर चढ़ा राम का प्रस्थान (६।११०।२ - ६।११९।६)। सीता को रणांगन दिखाना। रामेश्वर को प्रणाम। दण्डकवन में अगस्त्य आदि मुनियों के स्थानों में जाना। चित्रकूट में मुनियों से भेंटना। यमुना, गंगा, प्रयाग, त्रिवेधी, अवधपुरी के दर्शन। आकर त्रिवेणी में स्नान। हनुमान् को भरत का कुशल-समाचार लाने के लिए भेजना। भरद्वाज मुनि के पास जाना। सीता द्वारा गंगा-पूजन। राम की निषादराज से भेंट, उसे हृदय से लगाना। फलश्रुति। रामनाम का आश्रय लेने के लिए मन को प्रबोधन (६।११९।६ - ६।१२१ख)।

लंकिनी — लंका की अधिष्ठात्री देवी।

[यह साक्षात् लंकापुरी। सब ओर से अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध। सत्वगुण का आश्रय ले (वा० रा० ५।३।१), सूक्ष्म शरीर धारण कर (अ० रा० ५।१।४३), हनुमान् के लंका में प्रवेश करते समय यह विकृतानना राक्षसी के रूप में प्रकट। (मा० पी० ५।४।२ नोट १ एवं वि० ५।४।२ व्या० के अनुसार यही लंका की अधिष्ठात्री देवी लंकिनी। लंका की उत्पत्ति के साथ ही इसकी भी उत्पत्ति।) इसका कथन — इसकी अवहेलना करके पुरी में प्रविष्ट होना असम्भव। प्रवेश करने के लिए हनुमान् को इसे परास्त करना होगा। हनुमान् के पुनः आग्रह करने पर इसका उन्हें जोर से थप्पड़ मारना। (अ० रा० ५।१।४५ में पदाघात।) उनके मुष्टिका-प्रहार से यह व्याकुल और परास्त। उनसे कृपा-याचना कर इसके द्वारा ब्रह्मा से प्राप्त वरदान का कथन — जब यह किसी वानर के पराक्रम से पराभूत हो, तो समझ लेना चाहिए कि राक्षसोंसहित रावण का अन्त निकट। हनुमान् से पुरी में प्रवेश कर वांछित कार्य पूर्ण करने का इसका अनुरोध। वा० रा० ५।३।२०-५१।

अ० रा० में ब्रह्मा-कथन के अन्तर्गत रामावतार, सीता-हरण, राम-सुग्रीव-मैत्री का भी इसके द्वारा उल्लेख। इसका हनुमान् को सीता का सन्धान देना। स्वयं को धन्य मानना। अ० रा० ५।१।४३-५७।]

सूक्ष्म मशकरूप धारण कर हनुमान् को लंका में प्रवेश करते देख इसका उन्हें रोकना। उनके द्वारा अपनी अवज्ञा देख डाँटना (५।४।१-३)। हनुमान् के मुष्टिकाघात से रक्त वमन करती हुई यह व्याकुल। इसका करबद्ध

निवेदन – रावण को वर देकर चलते समय ब्रह्मा का इससे कथन कि किसी वानर के प्रहार से जब यह विकल हो, तो समझ ले कि राक्षसों का संहार निश्चित (५।४।४-७)। [अग्निपुराण के अनुसार रावण को ब्रह्मा के वर देने पर इसकी उनसे विनती – दुष्टों के वास से इसे दारुण दुःख होगा। धर्मात्मा का राज्य कब होगा? इस पर ब्रह्मा का उपर्युक्त कथन। मा० पी० ५।४।६ टिप्पणी २ (क)।] रामदूत के दर्शन को अपने पुण्यों का फल मानना। उनके सत्संग से कृतार्थ होना (५।४।८ - ५।४)। [तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि। अ० रा० ५।१।५७।] राम को हृदय में धारण करके नगर में प्रवेश कर सब कार्य करने की हनुमान् से इसकी विनती (५।५।१)।

मूल शब्द – ५।४।२।

पर्याय – **लंका** – ५।४।५।

लखन (लक्ष्मण) – (लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्। सुलक्षण सम्पन्न होने के कारण इनका यह नाम। अ० रा० १।३।४१।) दशरथ और सुमित्रा के पुत्र। राम के अनुज।

[स्वरूप – चतुरक्षर-संयुक्त प्रणव में ये अकार, जाग्रत के विभु विश्व (अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः)। जाग्रत अवस्था की भाँति यह सम्पूर्ण स्थूल जगत् जिसका अवयव-संस्थान (शरीर), जो बहिःप्रज्ञ अर्थात् जिसका ज्ञान इस बाह्य जगत् में सब ओर फैला हुआ, भूः भुवः आदि सात लोक जिसके सात अंग, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकारण – ये उन्नीस समष्टि करण ही जिसके मुख, जो इस स्थूल जगत् का भोक्ता अर्थात् इसको जानने और अनुभव करनेवाला – ऐसा वैश्वानर (विश्वरूप पुरुषोत्तम) ही सम्पूर्ण परमेश्वर का पहला पाद। राम-पक्ष में प्रथम पाद लक्ष्मण। (शत्रुघ्न द्वितीय और भरत तृतीय पाद)।

शेषनाग के रूप में अखिल विश्व के आश्रय होने के कारण इनके द्वारा 'विश्व' अथवा 'वैश्वानर' नाम धारण तथा राम की प्राप्ति के लिए प्रथम उपाय इनकी आराधना। अतएव ये प्रथम पाद। ये सदा जागरूक स्थिति में, अतः 'जागरितस्थान'। बाहर की सम्पूर्ण बातों को जानने में सतत सावधान रहने के कारण 'बहिः प्रज्ञ'। भूर्भुवः आदि सात लोक अथवा तल-अतल आदि सात पातालों की स्थिति इनके ही अंगों पर, अतः ये 'सप्तांग'। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प, शिक्षा एवं निरुक्त, ऋक्, साम, यजुः और अथर्व वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र तथा दर्शन – ये उन्नीस विद्याएँ इनके मुख में स्थित, अतएव ये 'एकोनविंशतिमुख'। प्रलयकाल में संकर्षणरूप से अपनी मुखाग्नि द्वारा समस्त स्थूल जगत् को ग्रस्त करने के कारण ये 'स्थूलभुक्'। रा० उ० ता० पृ० ५४३।

विष्णु का रामावतार होने पर ये अनन्त के अंश से उद्भूत। प० पु० उ० २४२।६५।]

ये शेषावतार, 'जगकारन'। इनका यश राम की कीर्ति-पताका में दण्ड-सदृश। इनकी वन्दना, इनकी अनुकूलता की प्रार्थना (१।१७।५ - ८, २।१२६।छं०)। इनका जन्म हविष्यान्न के उस चतुर्थांश के अर्द्धभाग के फलस्वरूप जो सुमित्रा को दशरथ से प्राप्त (१।१९०।२-४, १।१९५।१)। [चतुर्थांश के अन्य अर्द्धभाग से शत्रुघ्न का जन्म। दे० 'दसरथ'। अ० रा० १।३।३८ एवं रघु० १०।७१ के अनुसार ये और शत्रुघ्न यमज।] राजा से वसिष्ठ-कथन – चारों भाई वेद के तत्व (अर्थात् प्रणव)। ये लक्षण-धाम (विशेष धर्मों के निधान। वि०।), रामप्रिय और (जाग्रत के विभु होने से) जगत् के आधार, अतः उनके द्वारा इनका नामकरण लक्ष्मण (१।१९७, १।१९८।१, २)। बचपन से ही राम को अपना स्वामी और हितैषी समझ उनके चरणों में इनका अनुराग। [लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः।। अ० रा० १।३।४२।] राम की और इनकी तथा भरत-शत्रुघ्न की श्याम-गौरवर्णी जोड़ियाँ देख माताओं का (दीठ लगने से बचाने के लिए) तृण तोड़ना (१।१९८।३, ५-६)। चारों भाइयों का साथ-साथ चूड़ाकरण (मुण्डन), यज्ञोपवीत संस्कार, अध्ययन के लिए गुरु-गृह-गमन, राज्य-संबंधी क्रीड़ाएँ, सखाओं के साथ मृगया, भोजन। वेद-पुराण सुनकर राम का इन्हें तथा अन्य भाइयों को समझाना (१।२०३।२-४, १।२०४।३-८, १।२०५।१, २, ४, ६)।

राम के साथ इन्हें लाने के लिए विश्वामित्र का दशरथ के यहाँ आगमन। राजा का चारों पुत्रों को उनके चरणों में डालना। राम-लक्ष्मण को देना राजा को स्वीकार नहीं। अन्ततः वसिष्ठ के समझाने पर उनका इन दोनों भाइयों को मुनि को समर्पित करना (१।२०६।७, १।२०७।५, १०, १।२०७-१।२०८।२, १।२०८।८ - १।२०८ क)।

दोनों का मुनि के साथ गमन। विश्वामित्र को जैसे महानिधि प्राप्त (१।२०८ ख, १।२०९।३)। (सिद्धाश्रम में) इनके द्वारा मारीच-सुबाहु की निशिचर-सेना का संहार (१।२१०।५)।

विश्वामित्र और राम के साथ धनुषयज्ञ देखने जाते हुए मार्ग में गंगा के दर्शन। मुनि से उसके अवतरण की कथा का श्रवण (१।२१०।१०, १।२१२।१-२)। जनकपुर की रमणीयता देख हर्षित (१।२१२।५)। (विश्वामित्र की आज्ञा से नगर के बाहर एक अमराई में ठहरना।) राम के साथ फुलवारी देखकर इनके लौटने पर इन दोनों को देख जनक के साथ सबका उठ खड़े होना। सबके नेत्रों में जल, शरीर पुलकित, हृदय प्रेम-सुख में मग्न! 'भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी'। जनक की विश्वामित्र से जिज्ञासा — ये दोनों बालक मुनि-कुल-तिलक या नृप-कुल-पालक। अथवा निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही इन दो रूपों में अवतरित, क्योंकि इन्हें देख उनका सहज विरागरूप मन भी मुग्ध, ब्रह्मसुख को छोड़ इनके दर्शन-सुख में मग्न (१।२१५।४-१।२१६।५)। मुनि से इनके कुल और कृतित्व का परिचय पाकर जनक का कथन — ये दोनों 'आनँदहू के आनँद दाता'। इनका स्नेह ब्रह्म और जीव की भाँति स्वाभाविक (१।२१६।६ - १।२१७।४)। (राजा का इन्हें नगर में ले जाकर ठहराना।)

इनकी नगर देखने की इच्छा, किन्तु कहने में संकोच। इनके मन की बात जानकर राम का गुरु से निवेदन। उनकी आज्ञा से दोनों भाइयों का नगर-दर्शन के लिए प्रस्थान। बालकों का इनके साथ चलना (१।२१७-१।२१९।२)। दोनों की नख-शिख-शोभा का वर्णन (१।२१९।३ - १।२१९)। इन्हें देख पुरवासियों को नेत्र-फल-प्राप्ति। भवनों के झरोखों से झाँकती हुई युवतियों की दृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और कोटि-कोटि कामदेव भी इन दोनों की शोभा के उपमान होने के योग्य नहीं। इनका परिचय देकर किसी सखी द्वारा इनके आने का प्रयोजन-कथन (१।२२०।१-१।२२१)। जहाँ-जहाँ इनका जाना, वहाँ-वहाँ परमानन्द। बालकों का इन्हें धनुषयज्ञ-शाला की रचना दिखाना और इस बहाने इनके स्पर्श से पुलकित होना। उनका स्नेह रख, उन्हें विदा कर, दोनों का गुरु के पास आना (१।२२३-१।२२५।३, १।२२५।८ - १।२२५)। सन्ध्या-वन्दन, गुरु से प्राचीन कथाएँ और इतिहास-श्रवण। गुरु के शयन करने पर दोनों भाइयों का उनके चरण दबाना। उनकी आज्ञा से राम का शयन। राम के चरणों को हृदय से लगाकर इनका दबाना, उनके बार-बार आज्ञा देने पर उन चरणों को हृदय में धारण कर लेट जाना (१।२२६।१-८)।

प्रातःकाल दोनों भाइयों का फूल लेने जाना। राजा के बाग की रम्यता देख ये हर्षित। इनका दल-फूल एकत्र करना (१।२२६-१।२२८।१)। सीता की एक सखी द्वारा इन दोनों के दर्शन। इनकी शोभा अवर्णनीय — 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'। सीतासहित सब दोनों के दर्शन को उत्सुक (१।२२८।७-१।२२९।७)। सीता का परिचय देकर उनके प्रति अपने आकर्षण का राम द्वारा इनसे कथन (१।२३०।१, २, १।२३०-१।२३१)। सीता को राम के साथ इनके भी दर्शन (१।२३२।३, १।२३४।३)। इन दोनों के सौन्दर्य का वर्णन। राम इनसे अधिक सलोने (१।२३२ - १।२३३।८)। गुरु के पास लौटकर उनसे सफलमनोरथ होने का आशीर्वाद पाकर दोनों को सुख (१।२३७।१, ३,४)। सूर्योदय के मिस इनके द्वारा प्रभु-प्रताप का कथन (१।२३८।६ - १।२३९।७)।

शतानन्द के आने पर विश्वामित्र का इन दोनों को सीय-स्वयंवर देखने जाने के लिए बुलाना। इनका कथन कि यश-भाजन तो वही होगा जिस पर उनकी कृपा होगी (१।२३९।१०-१।२४०।३) दोनों भाइयों के रंगभूमि में आने पर पुर-नर-नारियों की भीड़। राज-समाज में ये ऐसे शोभित जैसे तारों के मध्य युगल चन्द्रमा हों (१।२४०।४-६, १।२४१।१-३)। सबको अपनी-अपनी भावना के अनुसार प्रभु के साथ इनके रूप के दर्शन (१।२४१।४ - १।२४२।५)। राज-समाज में विराजमान दोनों भाइयों की नख-शिख शोभा देख सब सुखी (१।२४२ - १।२४४।४)। जनक का मुनि के साथ इन दोनों को रंगभूमि दिखाना। फिर सर्वसुन्दर मंच पर बैठाना (१।२४४।५-६, १।२४४)।

(राजागण धनुष को हिलाने में भी असमर्थ।) जनक की यह उक्ति सुनकर कि 'बीर बिहीन मही मैं जानी', ये अपमानजन्य क्रोध से विकल। राम के भय से कुछ कहने में असमर्थ, किन्तु अपमान सहन न होने पर उनके चरणों में नमन कर इनका कथन कि किसी रघुवंशी की उपस्थिति में ऐसा कहने का किसी को अधिकार नहीं। और जनक साक्षात् राम के रहते ऐसी बात कह गये! यदि राम की आज्ञा हो तो ये ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठाकर कच्चे घट की तरह फोड़ दें, मेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ दें। उनके प्रताप की महिमा के आगे पुराना धनुष क्या चीज है! वे आज्ञा दें तो उनके प्रताप-बल से ये धनुष को चढ़ाकर सौ योजन दौड़कर कुकुरमुत्ते के डंठल की तरह छिन्न कर दें। और ऐसा न कर सके, तो उनके चरणों की शपथ, 'कर न धरौं धनु भाथ' (१।२५२।३,

१।२५२।८ - १।२५३)। सुनकर धरती का डगमगाना, दिग्गज विचलित। राजागण भीत। सीता के मन में हर्ष, जनक संकुचित। गुरु, राम, मुनिगण मुदित, पुलकित। संकेत से राम का इन्हें रोकना, सप्रेम निकट बैठाना (१।२५४।१-४)। (गुरु-आज्ञा से वे धनुष-भंजन के लिए प्रस्तुत) राम के धनुष की ओर ताकने पर इनका ब्रह्माण्ड को चरणों से दबाकर कच्छप, शेषनाग, वराह को सावधान होने का आदेश देना (१।२५९ - १।२६०।२)। राम के धनुर्भंग करने पर इनका उन्हें इस तरह देखना जैसे चन्द्र को चकोर-किशोर देखे (१।२६३।७)। दुष्ट राजाओं की दर्पोक्तियाँ सुन साधु राजाओं का समझाना कि वे इनके रोष-पावक से बचें। इनका क्रोध से उन राजाओं को देखना, किन्तु राम के भय से कुछ कहने में असमर्थ (१।२६६।३, ५, १।२६६, १।२६७।८, १।२६७)।

विश्वामित्र का इन दोनों भाइयों को परशुराम के चरणों में डालना, इनका परिचय देना। इन्हें आशीर्वाद-प्राप्ति (१।२६९।६-७)। परशुराम की इस उक्ति पर कि धनुष-भंजक उनका घोर शत्रु, इनका मुसकाना। उनका अपमान करते हुए कथन कि बचपन में इन्होंने अनेक धनुहियाँ तोड़ीं, पर वे कभी रुष्ट नहीं हुए। इस धनुष पर इतनी ममता क्यों? शिव-धनु की धनुही से उपमा होते देख मुनि रोष-पीड़ित। इनका हँसना। अपनी दृष्टि में सब धनुष को समान कहना। पुराना धनुष राम के छूते ही टूट गया। इसमें राम का क्या दोष (१।२७१।६ - १।२७२।३)। अपना क्षत्रियहन्ता स्वभाव बताकर मुनि का इन्हें परशु दिखाना, वध की धमकी देना। इनके द्वारा उनके परशु का उपहास। उनके ब्राह्मण होने के कारण अपने क्रोध को दबाने का इनका कथन। इनके उपहास से विचलित हो विश्वामित्र से इन्हें रोकने के लिए परशुराम का कहना। इनकी कटूक्ति। उन्हें स्पष्टतः कायर कहना। कुठार को हाथ में ले इन्हें मारने को वे प्रस्तुत। इनका अपराध क्षमा करने का विश्वामित्र का निवेदन। केवल उनके संकोच के कारण इन्हें न मार पाने का परशुराम का कथन (१।२७२।४ - १।२७५।८)। इनकी कटु व्यंग्योक्ति। मुनि की वीरता को चुनौती। राम का इंगित से इन्हें रोकना (१।२७६।१ - १।२७६)। उनकी मुनि से विनय — ये उनके प्रभाव से अनभिज्ञ। अतः इन्हें अपना शिशु सेवक समझ मुनि इन पर कृपा करें। मुनि के कुछ शान्त होते-होते इनका पुनः कुछ कहकर मुसकाना। यह देख क्रोध से अभिभूत हो मुनि का इन्हें मन का काला, कालकूटमुख, कुटिल कहना। इनका कथन — 'क्रोधु पाप कर मूल'। अतः वे क्रोध त्याग दें। टूटा धनुष तो जुड़ेगा नहीं। यदि वह उन्हें अत्यन्त प्रिय, तो किसी बड़े गुणी को बुलवाकर जुड़वा लें। इनकी उक्ति को अनुचित कहकर भीत जनक का इन्हें रोकना। पुर-नर-नारियों का विचार कि 'छोट कुमार खोट बड़ भारी।' मुनि का कथन कि राम के अनुज होने के कारण उनका इन्हें न मारना। उनके अनुसार ये विषभरे कनकघट सदृश। सुनकर इनका फिर हँसना, किन्तु नेत्रों के संकेत से राम के डाँटने पर संकुचित हो गुरु के पास चले जाना (१।२७७।१ - १।२७८)। राम की विनती कि मुनि बालक के वचनों पर ध्यान न दें, किन्तु इनके टेढ़ी दृष्टि से देखने के कारण मुनि अशान्त। क्रोध से उनके हृदय में दाह, पर कुठार कुंठित। हाथ नहीं चलता। मन में स्वभाव के विपरीत कृपाभाव। इस द्वन्द्व से वे दुखी। इस पर इनका कटु व्यंग्य सुन इन्हें आँखों के आगे से दूर करने का जनक से मुनि का कथन। इनका पुनः हँसना (१।२७९।१-४, १।२७९।७ - १।२८०।८)। राम की सम्मति से ही इनके कटु वचन कहने का मुनि का आरोप। दोनों भाइयों को मारने की धमकी (१।२८१।१, ३)। राम का निवेदन — ये केवल उनके नाम से परिचित, उन्हें पहचान नहीं सके। उनका वीरवेश देख, वीर समझ, वंश-स्वभाव के अनुसार इन्हें क्रोध। मुनि की तरह उनके आने पर ये उनकी चरण-रज मस्तक पर धारण करते (१।२८१-१।२८२।४)। मुनि का राम को भी इन्हीं की तरह वाम कहना (१।२८२)। स्वरूपज्ञान हो जाने पर दोनों भाइयों से मुनि की क्षमा-याचना (१।२८५।६)।

ये दोनों पुरुषसिंह, त्रिलोक के प्रकाश। इनके यश, प्रताप के आगे रवि, शशि मलिन। इनको पुत्ररूप में पाने के कारण दशरथ के धन्य होने का जनकदूतों का कथन (१।२९१ - १।२९२।२)। दोनों की कीर्त्ति और करनी का दशरथ द्वारा रानियों से बार-बार बखान (१।२९५।६)। बरात में जाते हुए सबके मन में इनके दर्शन की लालसा (१।३००)। जनकपुर में पिता का आगमन सुन ये दोनों आनन्दित। विश्वामित्र के साथ इनका जनवासे में आना। पिता को दण्डवत्, वसिष्ठ के चरणों में प्रणाम और विप्रवृन्द की वन्दना करना। भरत-शत्रुघ्न से मिलना (१।३०७।४ - १।३०७, १।३०८।१-६, ८)। दशरथ के पास चारों पुत्र ऐसे शोभित जैसे शरीरधारी चारों पुरुषार्थ हों (१।३०९।२-३)। [शत्रुघ्न अर्थ, लक्ष्मण धर्म, भरत काम, राम मोक्ष। वि०। मा० पी० १।३०९।२ टिप्पणी में लक्ष्मण कामरूप और भरत धर्मरूप।]

सखियों का परस्पर कथन कि सीता का विवाह हो जाने पर जनक बार-बार उन्हें बुलायेंगे और ये दोनों भाई

उन्हें लेने आयेंगे। सबको इनके दर्शन-सुख का लाभ होगा (१।३१०।७ - १।३११।२)। इन दोनों की जोड़ी की तरह ही भरत-शत्रुघ्न की जोड़ी। शत्रुघ्न इनके अनुरूप। पुर-नारियों की आँचल पसार कर विधि से मनौती कि चारों भाइयों का उसी नगर में विवाह हो (१।३११।३-४, १।३११।७ - १।३११।छं०)। चारों की दशरथ के निकट ऐसी शोभा जैसे चारों प्रकार के मोक्ष शरीर धारण किये हों (१।३१५।६)। [सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य। मा० पी० १।३१५।६ टिप्पणी २। वि० में सायुज्य की जगह सार्ष्टि। दे० 'साजुज्य मुक्ति'।] राम-विवाह के बाद इनका उर्मिला से विवाह। (भरत और शत्रुघ्न क्रमशः माण्डवी और श्रुतकीर्ति से विवाहित।) एक ही मण्डप में वधुओं-सहित चारों भाई ऐसे विराजमान जैसे जीव के हृदय में चारों विभु अपनी-अपनी अवस्था के साथ (१।३२५।छं० ३, ४)। [उर्मिला जाग्रत अवस्था और ये विश्व। दे० 'उरमिला'।] वधुओं के साथ पुत्रों को देखकर दशरथ को ऐसा सुख जैसे क्रियाओं के साथ चारों फलों की प्राप्ति हुई हो (१।३२५)। [वि० के अनुसार उर्मिला सुकृति (क्रिया) और ये साधनरूप फल धर्म। दे० 'उरमिला'।] विदा के समय इनसे मिलकर जनक का आशीर्वाद देना (१।३४२)।

राम का अभिषेक सुन प्रेमानन्द-मग्न हो उनके पास इनका आगमन। उनके द्वारा ये प्रिय वचनों से सम्मानित (२।१०)। [अ० रा० में उनके वचन— अगले दिन युवराज-पद पर उनका अभिषेक होगा। वे निमित्तमात्र होंगे और उसके कर्त्ता-भोक्ता ये, क्योंकि ये उनके बाह्य प्राण। अ० रा० २।२।३७-३८। वा० रा० में उनकी उक्ति कि ये उनकी द्वितीय अन्तरात्मा। राजलक्ष्मी इन्हीं को प्राप्त। उनके साथ ये पृथ्वी के राज्य का शासन करें, राज्यफल भोगें। वा० रा० २।४।४३-४४।] राम के वन जाने का समाचार सुन ये व्याकुल। इनके शरीर में कम्प, पुलक, नेत्रों में जल। दौड़कर इनका राम के पास जाकर उनके चरण पकड़ना। कुछ कहने में ये असमर्थ। खड़े-खड़े चुपचाप उनकी ओर देखना। राम इन्हें साथ ले जायेंगे या छोड़ जायेंगे? इनकी दशा देख राम का नीति की शिक्षा देना, समझाना — ये धैर्य न छोड़ें। इन्हें साथ ले जाने पर अवध सब प्रकार से अनाथ हो जाएगा। घर पर रहकर ये माता-पिता की सेवा और सबका परितोष करें (२।७०।१ - २।७१।७)। अति विकल विवर्ण हो प्रभु के चरण पकड़ इनकी विनती— 'नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ।।' ये प्रभु के स्नेह में पले हुए शिशु। ये गुरु-पितु-मातु किसी को नहीं जानते। जहाँ तक प्रीति-प्रतीति स्नेह-संबंध, 'मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।' मन-वचन-कर्म से जो दास, उसे क्या छोड़ा जाता है! सुनकर प्रभु का इन्हें हृदय से लगाकर समझाना। माता से विदा माँगकर शीघ्र आने और वन चलने का कथन (२।७१।८ - २।७३।१)।

प्रसन्न मन से इनका माँ के पास आना, सब बातें बताना। विदा माँगते हुए भय कि स्नेहवश वे कहीं रोक न लें। उनका इन्हें उपदेश — राम इनके पिता और वैदेही माता। जहाँ उनका वास, वहीं अयोध्या। उनके वन जाने पर इनका अवध में कोई प्रयोजन नहीं। ये महाभाग्यवान् जो इनके मन में निश्छल रामानुराग। इनकी माता होने से वे भी महाभाग्यशालिनी। राम का वन-गमन इन्हीं के भाग्य से। ये सब प्रकार के विकारों से दूर रहकर सेवाधर्म का निर्वाह करें, जिससे राम और सीता को कोई क्लेश न हो। इस प्रकार इन्हें शिक्षा और आज्ञा देकर उनका आशीर्वाद — इनकी राम के चरणों में दिन-दिन निर्मल अविरल प्रीति हो (२।७३।२ - २।७५।छं०)।

उनके चरणों में नमन कर इनका सिय-राम के पास आना। उनके साथ राजमहल में जाना। सीतासहित इन दोनों भाइयों को देखकर राजा व्याकुल। मुनि-पट-भूषण-भाजन धारण कर, दशरथ द्वारा भेजे गये रथ पर आरूढ़ हो, अवध को नमन कर, सिय-राम के साथ इनका प्रस्थान (२।७५ - २।७६।२, २।७६।८, २।७६, २।७९, २।८१, २।८२, २।८३।२)। 'राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं' — यह सोचकर अवधवासियों द्वारा इनका अनुगमन। तमसा-तीर पर उन्हें निद्रामग्न छोड़ इन सबका शृंगवेरपुर पहुँचना। इनका गंगा को प्रणाम करना (२।८४।५, २।८५, २।८७।१, ३)। इन तीनों का रूप देख ग्राम-नर-नारी प्रभावित (२।८६।१)। राम के शयन करने पर इनका उनके चरण दबाना। उनके सो जाने पर सुमंत्र से शयन करने के लिए कहना। स्वयं कुछ दूर पर धनुष-बाण ले वीरासन से बैठकर पहरा देना (२।८९ - २।९०।२)। सिय-राम को भूमि पर शयन करते देख इनके निकट बैठे गुह को विषाद (२।९०।२ - २।९२।२)। इनके द्वारा उन्हें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का उपदेश (जो लक्ष्मणगीता के नाम से प्रसिद्ध) (२।९२।३ - २।९४।१)।

राम के साथ इनका भी वट-दुग्ध से जटा बनाना (२।९४।३-४)। सुमंत्र द्वारा सीतासहित इन दोनों भाइयों को लौटाने का राजा का सन्देश-निवेदन (२।९४।७-८)। इनका कुछ कटु वचन कहना। राम का इन्हें मना करना। इनका सन्देश पिता से न कहने का सुमंत्र से आग्रह (२।९६।४-५)। सिय-राम-सहित इनके चरणों में नमन कर

सुमंत्र का लौटना (२।९९।८)। केवट के वचन सुन इनकी और जानकी की ओर देख प्रभु का हँसना। सबका गंगा पार करना। तीनों के बहुत कहने पर भी केवट का कुछ न लेना (२।१००।छं०, २।१००, २।१०२।१, २।१०२)। गुहसहित इनके द्वारा सिय-राम के विश्राम की व्यवस्था (२।१०५।१)। इन सबसे राम द्वारा तीर्थराज का माहात्म्य-कथन (२।१०६।३)। भरद्वाज मुनि का आतिथ्य-ग्रहण। इनको देखने के लिए प्रयाग-निवासी मुनि आदि का आना (२।१०७।२-३, २।१०८।६)। प्रयाग-स्नान कर वहाँ से प्रस्थान (२।१०९)। सिय-रामसहित इनका सौन्दर्य देख यमुना-तटवासियों का अपने भाग्य को सराहना, स्नेह-विकल होना (२।११०।१-२, २।१११।७-८)। तेजपुंज तापस की इनके चरणों में प्रणति। इनका प्रेम से उन्हें उठाना (२।११०।७, २।१११।३)। राम और सीता के साथ यमुना को प्रणाम कर उसकी महिमा कहते हुए आगे बढ़ना (२।११२।१-२)। इन तीनों को आँखे भरकर देखनेवाले मगवासियों की देवताओं द्वारा सराहना (२।११३।४-५)। गाँव के निकट से तीनों के निकलने पर आबालवृद्ध नर-नारियों का दर्शन के लिए दौड़ना। मन-बुद्धि-चित्त लगाकर इनके रूप-सौन्दर्य को देखना। ग्राम-स्त्रियों के पूछने पर सीता का इन दोनों भाइयों का परिचय देना। राम का रुख देख इनका लोगों से मार्ग पूछना। तीनों का प्रस्थान (२।११४।१-४, २।११५।७-२।११६।३, २।११६।८ - २।११७।१, २।११७।५, २।११८।५, २।११८)। 'राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई।।' तापस वेश में आगे-आगे राम, उनके पीछे सीता और सबसे पीछे ये ऐसे शोभित जैसे क्रमशः ब्रह्म, माया और जीव, अथवा मदन, रति और वसन्त, अथवा चन्द्र, रोहिणी और बुध हों। राम और सीता के चरण-चिह्नों को बचाते हुए इनका दाहिने हटकर चलना। तीनों की प्रीति वचन-अगोचर। पथिकरूप में इनके दर्शन करनेवाले भवसागर-मुक्त। अब भी इनके पथिकरूप का ध्यान करने से रामधाम की प्राप्ति (२।१२२।८ - २।१२४।२)।

राम के आदेश से चित्रकूट में ठहरने का प्रबन्ध करने के लिए इनका स्थान-निरीक्षण करना। पयस्विनी नदी के उत्तरी तट को उपयुक्त समझ इनके द्वारा चित्रकूट-अहेरी का रूपक-कथन। राम को वह स्थान प्रिय (२।१३३।१-५)। वहाँ इनके और जानकी के साथ पर्णशाला में प्रभु विराजमान, जैसे वसन्त और रति के साथ मदन हों। तीनों की छवि देख मुनिवृन्द का कृतकृत्य होना (२।१३३, २।१३४।८)। इनके द्वारा मन-वचन-कर्म से राम और सीता की सेवा। उनके चरण-दर्शन कर, अपने प्रति उनका स्नेह देख, इन्हें घर का विस्मरण। राम द्वारा इन दोनों की सँभाल। सदा वही करना जिससे इन्हें और सीता को सुख मिले। प्राचीन कथाएँ सुनाना। माता-पिता-भरत के स्नेह-शील का स्मरण कर उनके दुखी होने पर ये भी विकल। तब पुनीत कथाएँ सुनाकर उनका इन्हे दुख-मुक्त करना। इस तरह पर्णकुटी में राम और सीता के साथ ये शोभित, जैसे अमरपुरी में इन्द्र और शची के साथ जयन्त हों (२।१३९।८, २।१३९, २।१४१।१ - २।१४२।२)।

सीता के अशुभसूचक स्वप्न का दोष-निवारण करने के लिए राम का इनके साथ स्नान, शिव-पूजन, साधुओं का सत्कार (२।२२६।७-८)। उन्हें क्षुब्ध देख इनकी विनय और नीतिपूर्ण कथन — यद्यपि भरत राम-पदानुरागी, नीतिरत, सुजान साधु, किन्तु राजपद पाकर उनके द्वारा धर्म की मर्यादा का विस्मरण। राम को वन में एकाकी जानकर, अकण्टक राज्य करने का अनुकूल अवसर देख, उनका कुटिलतापूर्वक शत्रुघ्न और चतुरंगिणी सेना को बटोर लाना। मन में कपट-कुचाल न होने पर सेना को क्यों लाते? इनके द्वारा राजमद से कलंकित होनेवाले शशि, नहुष, त्रिशंकु आदि का उदाहरण प्रस्तुत। किन्तु राम को असहाय समझकर अनादृत करना भरत के पक्ष में उचित नहीं हुआ। आज युद्ध में क्रुद्ध राम का मुख देखकर उन्हें अपनी भूल ज्ञात होगी (२।२२७।६ - २।२२९।४)। इतना कहते ही इन्हें अपने कथन के अनौचित्य का बोध — इनके (सेवक के) रहते प्रभु को समर में सरोष होना पड़ेगा! इन्हें नीति का विस्मरण, हृदय में वीररस का उद्रेक। प्रभु-पद-वन्दना कर, उनकी चरण-रज को मस्तक पर रख, अपने सत्य बल का बखान। उठकर हाथ जोड़ प्रभु से आज्ञा माँग सिर में जटाएँ बाँधना, कमर में तरकश कसना, धनुष चढ़ाकर हाथ में बाण लेना। घोषणा — आज रण में ये भरत-शत्रुघ्न को सैन्यसहित मारकर रामसेवक होने का यश लेंगे। राम की शपथ लेकर इनका कथन कि शंकर भी उनकी सहायता के लिए आयें तो भी ये बिना मारे न छोड़ेंगे (२।२२९।५ - २।२३०।८)। इनके रोष और प्रामाणिक शपथ से सब लोक भीत। इसी समय इनके बाहुबल और प्रताप-प्रभाव की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी — किसी कार्य के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करके ही वह कार्य करना अपेक्षित। सहसा कुछ करके फिर पश्चात्ताप करना बुद्धिमत्ता नहीं। सुनकर ये संकुचित। राम और सीता द्वारा इनकी नीति की प्रशंसा, इनका सम्मान। राम का इन्हें भरत-चरित्र की महत्ता

समझाना। देवताओं का भरत की गुण-गाथा को अगम कहना। सुनकर इन्हें और सियराम को अत्यधिक सुख (२।२३० - २।२३३।३)।

भरत का इन्हें आश्रम में प्रभु के आगे खड़े हुए उनकी सेवा में निमग्न देखना, किन्तु सघन वन की ओट होने के कारण इनका भरत को न देख पाना। भरत के 'पाहि नाथ...' कहकर प्रभु को दण्डवत् करने पर उनके प्रेमपूर्ण वचन पहचानकर ये उनसे मिलने को आकुल, किन्तु स्वामी की सेवा कैसे छोड़ें! इनके मन में द्वन्द्व, पर सेवा को अपना प्रधान कार्य समझ, मस्तक झुकाकर इनका निवेदन कि 'भरत प्रनाम करत रघुनाथा' (२।२३९।१, ४-६, २।२४०।३-७)। इन्हें प्रणाम करते देख भरत का प्रेमसहित इनसे मिलना। इनका शत्रुघ्न से भेंटना, गुह को हृदय से लगाना (२।२४१-२।२४२।१)। (माता, गुरु आदि के आने का समाचार सुन राम, भरत के साथ जाना।) माता, मंत्री आदि को लेकर आश्रम में आना। पिता की मृत्यु का समाचार सुन इनका विलाप करना (२।२४५, २।२४७।५)।

मुनियों से विदा हो इनके और सीता के साथ राम का चित्रकूट से प्रस्थान (३।३।३)। आगे-आगे वे, उनके पीछे सीता, उनके पीछे ये, जैसे ब्रह्म, माया और जीव हों (३।७।२-३)। पंचवटी में एक बार प्रभु से इनकी जिज्ञासा – वे ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति, ईश्वर-जीव-भेद को समझाकर संक्षेप में इनसे कहें जिससे इनका शोक-मोह-भ्रम दूर हो, सब तजकर ये उनकी चरण-रज की सेवा करें (३।१४।५ - ३।१४)। [इनके प्रश्न अपना सन्देह दूर करने के लिए नहीं, वरंच जीवों के कल्याण के लिए। ये जीवों के आचार्य माते जाते हैं। मा० पी० ३।१४ टिप्पणी १।] प्रभु-मुख से ज्ञान आदि के स्वरूप के साथ भक्तियोग सुनकर इन्हें अत्यधिक सुख। इनका प्रभु-चरणों में नमन। इस तरह ज्ञान-वैराग्य-गुण-नीति के संबंध में कहते हुए कुछ दिन व्यतीत (३।१५।१ - ३।१७।२)।

शूर्पणखा के प्रणय-निवेदन करने पर राम का इन्हें कुमार कहकर उसे इनके पास भेजना। इनका स्वयं को राम का दास और पराधीन कहना। उसके राम के पास जाने पर उनका उसे पुनः इनके पास भेजना। इनके द्वारा उसका तिरस्कार। राम के संकेत से उसके नाक-कान काटना (३।१७।११ - ३।१७)। खर-दूषण के आक्रमण के लक्षण देख प्रभु-आदेश से इनका सीता को लेकर गिरि-कंदरा में जाना (३।१८।१०-१२)। असुरों का वध हो जाने पर सीता को ले आना (३।२१।१-२)। इन दोनों भाइयों को सुरमुनि-सुखदाता कहकर इनके बल-पौरुष का शूर्पणखा द्वारा रावण से बखान। इनके द्वारा अपने कर्ण-नासिक-छेदन का कथन (३।२२।३-७, १०)। मायामृग के पीछे जाते हुए राम का इन्हें सीता की रक्षा करने का दायित्व सौंपना (३।२७।८-९)। प्राण त्यागते समय मारीच द्वारा पहले इनका नामोच्चार। [वा० रा० ३।४४।१९, २४ में राम के-से स्वर में 'हा सीते। हा लक्ष्मण' कहकर उसकी पुकार। अ० रा० ३।७।१८ में राम की-सी वाणी में उसका चीत्कार — महाबाहो लक्ष्मण! मैं मारा गया। मेरी शीघ्र रक्षा करो।] आर्त्त पुकार सुन भीत सीता का इनसे राम की रक्षा के लिए जाने का अनुग्रह। इनका हँसकर कथन कि जगन्नियन्ता राम पर संकट कैसा! किन्तु सीता के मर्म-वचन सुन हरि की प्रेरणा से इनका मन विचलित। सीता को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर इनका प्रस्थान (३।२७।१५, ३।२८।२-६)। इन्हें अपनी ओर आते देख बाह्यरूप से प्रभु का सीता के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करना। ये उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सीता को अकेली छोड़ आये! उनके चरण पकड़ इनका अपनी निर्दोषता बताना। आश्रम में सीता को न देख राम का विलाप करना। इनका समझाना (३।३०।१-८)। सीता को खोजते हुए दोनों का एक वन से दूसरे वन में जाना। विषाद करते हुए प्रभु का इन्हें अनेक कथा-संवाद सुनाना, विपिन-शोभा-वर्णन करते हुए अपनी मनःस्थिति व्यक्त करना (३।३३।४, ३।३७।१ - ३।३८ ख)। पम्पासर के निकट एक वृक्ष की छाया में दोनों भाइयों का बैठना। नारद के आने पर इनके द्वारा उनका चरण-प्रक्षालन (३।४१।२, ११)।

सीतान्वेषण में तत्पर पथिकरूप राम से और इनसे कवि की भक्ति की याचना (४।१।श्लो०१)। राम का हनुमान् को अपना और इनका परिचय देना (४।२।१-३)। राम-सुग्रीव की मैत्री हो जाने पर इनका सब रामचरित्र सुनाना (२।५।१)। 'कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।' — तारा का वाली से कथन (४।७।२९)। राम के आदेश से इनका सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज-पद देना (४।११।९ - ४।११)। दोनों भाइयों का प्रवर्षण गिरि पर वास (४।१३।३)। दोनों स्फटिक शिला पर सुखासीन। राम का इनके आगे वर्षा और शरत् ऋतुओं का वर्णन करना और इस बहाने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, राजनीति कहना (४।१३।६ - ४।१७)। शरत्काल आ जाने पर भी सीता की सुधि न पाने के कारण सुग्रीव पर राम का क्रोध प्रकट करना। यह देख इनका

धनुष चढ़ाकर हाथ में बाण लेना। तब राम का इन्हें समझाना कि ये भय दिखाकर सुग्रीव को ले आयें (४।१८।१-५, ४।१८।८, ४।१८)। पुर में प्रवेश कर इनकी घोषणा कि ये नगर को जलाकर राख कर देंगे। इनके क्रोध से सब व्याकुल। अंगद का इनके चरणों में नमन और विनय। इनसे अभय-प्राप्ति। सुग्रीव-प्रेषित हनुमान् और तारा की विनती। इन्हें महल में ले जाकर चरण-प्रक्षालन कर पलंग पर बैठाना। सुग्रीव का इनके चरणों में नमन। उन्हें उठाकर इनका गले से लगाना, विनती सुन समझाना। हनुमान् का इनसे चारों ओर दूत-प्रेषण का समाचार कहना। इन्हें आगे कर सुग्रीवादि का राम के पास आना (४।१९।८ - ४।२०)।

सागर से विनय करने के परामर्श की राम द्वारा स्वीकृति और दैव पर उनका विश्वास देख इन्हें दुःख। इनका अनुरोध कि वे समुद्र को सुखा डालें। दैव तो आलसी और कायरों का आश्रय। राम का समझाना — ये धीरज धरें। वे ऐसा ही करेंगे (५।५०।८, ५।५१।१-६)। रावण के दूतों (शुक-सारण) को वानरों से छुड़ाकर, उन्हें रावण के लिए पत्र देकर इनका कथन — मौखिक रूप से वे इनका यह संदेश रावण से कहें कि वह सीता को लौटाकर मिले, अन्यथा उसका काल उपस्थित। इन्हें नमन कर, दूतों का गमन (४।५२।७ - ४।५३।१)। उनका रावण को पत्र देना। उसमें इनकी चेतावनी — रावण केवल बातों से मन को बहलाकर अपने कुल का नाश न करे। या तो वह विभीषण की तरह राम के चरणों का आश्रय ले, या उनके शरानल से कुलसहित भस्म हो। पत्र सुनकर रावण मन में भीत, किन्तु ऊपर से उसका कथन कि यह सब इनका वाग्विलास (४।५६।८ - ४।५७।२)। सागर-शोषण के लिए राम का इनसे धनुष-बाण माँगना। कोप करके धनुष चढ़ाना। उनका यह कार्य इनके मन के अनुकूल (४।५८।१, ५)

सुवेल पर्वत पर प्रभु के विश्राम के लिए इनका अपने हाथों से पत्र-पुष्प सजाना, उस पर कोमल मृगछाला बिछाना। स्वयं ये तरकश और धनुष-बाण धारण कर प्रभु के पीछे वीरासन में स्थित (६।११।१-४, ८)। युद्ध के दूसरे दिन राम को और इन्हें लोकविख्यात धनुर्धर कहकर मेघनाद का ललकारना (६।५०।१)। राम की आज्ञा ले इनका अंगदादि के साथ प्रस्थान (६।५२, ६।५३।१)। मेघनाद से युद्ध। उसके माया रचने पर उसके रथ को ध्वस्त कर इनका सारथी को मारना। इनके प्रहार से मेघनाद प्राणावशेष। उसका वीरघातिनी शक्ति चलाना। ये मूर्च्छित। उसके जैसे अनेक योद्धा भी इन्हें उठाने में असमर्थ (६।५४।२ - ६।५४)। वस्तुतः मूर्च्छा इनकी लीला। प्रलयकाल में शेषरूप में इनकी क्रोधाग्नि से चौदहों भुवन भस्म। ये जेय नहीं। इस रहस्य का ज्ञान उसी को जिस पर राम की कृपा (६।५५।१-३)। इन्हें हनुमान् का उठाकर लाना। मूर्च्छित देख राम को दुःख (६।५५।५-६)। उनका विलाप (६।६१।१-१७)। हनुमान् का ओषधि लेकर आना, सुषेण द्वारा चिकित्सा। इनका उठ बैठना। सब हर्षित (६।६२।१-३)। चौथे दिन मेघनाद की शर-वर्षा से ये और सुग्रीवादि जर्जर (६।७३।९)। अंगदादि को इनके साथ जाकर मेघनाद का यज्ञ ध्वंस करने की और इन्हें मेघनाद-वध करने की प्रभु की आज्ञा। प्रभु-प्रताप को हृदय में धारण कर इनका शपथ-ग्रहण— 'जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं।।' शत शंकर भी उसकी सहायता करें, तो भी ये उसे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे। राम के चरणों में नमन कर अंगद, हनुमदादि के साथ इनका प्रस्थान (६।७५।७ - ६।७५)। वानरों द्वारा यज्ञ-ध्वंस। अनेक प्रकार से मारने पर भी उसका न मरना। वानरों का लौटना। उसका चिंघाड़ते हुए दौड़ना। इनका भयानक बाण छोड़ना। वह अन्तर्धान। कभी प्रकट हो, कभी छिपकर, विविध वेश धारण कर, उसका युद्ध। उसे पराजित न होते देख इन्हें क्रोध। राम-प्रताप का स्मरण कर इनका बाण छोड़ना। उसका हृदय विद्ध। इनका और राम का नामोच्चार करते हुए उसका प्राण-त्याग करना (६।७६।१ - ६।७६)। आकाश में सुर-गन्धर्वों द्वारा राम का यशोगान और इनकी स्तुति (६।७७।२-५)।

पाँचवें दिन अपनी सेना को व्याकुल देख इनका रावण को ललकारना। उसके प्रचण्ड आयुधों को इनका खण्ड-खण्ड करना। शर-वर्षा करके उसके रथ और सारथि का नाश करना। उसके प्रत्येक मस्तक और हृदय में सौ-सौ बाण मारना। उसका धरती पर गिरना। मूर्च्छा छूटने पर उसके द्वारा इन पर अमोघ ब्रह्मशक्ति का प्रहार। ये मूर्च्छित। इन्हें उठाने में रावण असमर्थ। हनुमान् का इन्हें उठाकर प्रभु के निकट लाना। प्रभु का इन्हें इनके स्वरूप का ज्ञान कराना। सुनकर इनका उठ बैठना। कराल शक्ति आकाश में लीन। तुरत धनुष-बाण ले इनका रावण पर आक्रमण करना। उसके रथ को खण्डित और सारथि को निहत कर उसके हृदय को सौ बाणों से वेधना। विकल, आहत होकर उसका धरती पर गिरना। दूसरे सारथि का उसे रथ पर डाल लंका ले जाना। इनका राम के पास लौटकर उनके चरणों में नमन करना (६।८२ - ६।८४।छं०)।

छठे दिन रावण की माया से राक्षसी सेना में अनेक राम-लक्ष्मण देख वानरोंसहित ये भी स्तब्ध (६।८९।७ - ६।८९।छं०)। आकाशमार्ग में दौड़ते हुए रावण के मस्तकों का इन्हें और सुग्रीवादि को पुकारना (६।९३।८)। मायारचित असंख्य रावण देख वानरों की इनसे और राम से रक्षा की पुकार (६।९६।३-४)। रावण की माया से ये भी किंकर्तव्यविमूढ़ (६।१०१।तोमर ५)। (सातवें दिन रावण-वध हो जाने पर) राम की आज्ञा से इनका विभीषण को समझाना (६।१०५।५-६)। अग्नि-परीक्षा देने के लिए सीता का इनसे शीघ्र अग्नि प्रकट करने का कथन। सुनकर इनके नेत्रों में जल। इनका करबद्ध खड़े रहना— प्रभु से कुछ कहने में ये असमर्थ। उनका रुख देख, काठ एकत्र कर इनका अग्नि प्रज्वलित करना (६।१०९।२-६)।

राम-पदानुरागी होने के कारण इन्हें भरत का धन्य कहना (७।१।३)। लौटकर इनका भरत, शत्रुघ्न से भेंटना। माताओं से मिलकर, आशीर्वाद पाकर ये हर्षित। कैकेयी से बार-बार मिलना (७।५, ७।६।१, ७।६ ख)। कौसल्या का मन में सोचना— ये दोनों अत्यन्त सुकुमार। इन्होंने महाबली राक्षसों को कैसे मारा! इनके और सीता के साथ राम को देखकर वे परमानन्द-मग्न (७।७।८, ७।७)। राम के राज्याभिषेक के समय इनका चँवर करना (७।१२।छं० १)। उनकी आज्ञा से विभीषण को विदा करते हुए वस्त्राभूषण पहनाना (७।१७।७)। भरत-शत्रुघ्न के साथ सबको पहुँचाने जाना (७।१९।१)। दोनों भाइयों के साथ अनुकूल रहकर राम की सेवा करना। उनका भी इन सब पर प्रेम। इन्हें नीति की शिक्षा देना। साथ-साथ भोजन करना (७।२५।१-३, ७।२६।३)। इनके भी अन्य भाइयों की तरह दो पुत्र (७।२५।८)।

राम-नाम के दोनों अक्षर तुलसी को राम-लक्ष्मण की तरह प्रिय (१।२०।३)। ये राम-प्रभाव से अभिज्ञ। सीता के कपटवेश में सती को देख चकित और गंभीर (१।५३।१-२)। सीय-स्वयंवर में हरिभक्त राजाओं की उक्ति — 'जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे।।' 'सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी।।' (१।२४५, १।२४६।४)। 'तेज निधान लखन पुनि तैसें' — जनक-दूतों का कथन (१।२९३।३)। विश्वामित्र का कृतित्व सुन राम को और इन्हें अत्यधिक आनन्द (१।३५९।८)। मन्थरा-कथन कि राम के युवराज होने पर ये उनके सहायक होंगे (२।१९)। राम के वन जाने पर 'लखनु कि रहिहहिं धाम' — कुल-वृद्धाओं का कैकेयी को समझाना (२।४९)। 'रामु लखनु सिय आनि देखाऊ' — व्याकुल दशरथ की उक्ति (२।८२।८)। दशरथ द्वारा सियराम-सहित इनका स्मरण। सुमंत्र से इन तीनों के संबंध में जिज्ञासा, इनके दर्शन की लालसा, इनके नाम की आर्त्त पुकार (२।१४८।८, २।१४९।३, ५, २।१४९, २।१५०।२, २।१५४।८, २।१५५।२, ८)। भरत द्वारा राम के साथ इनका स्मरण (२।१५९।८, २।१६१, २।१६४।३)। कौसल्या द्वारा इनके वन जाने का, वसिष्ठ द्वारा राम के प्रति इनके प्रेम का कथन (२।१६६।३-५, २।१७१।८)। 'जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा।।' — भरत की उक्ति (२।१८२।७)। इनकी सुकुमारता और सर्वप्रियता का भरत-कथन (२।२००।१, २।२०३।३)। भरद्वाज की उक्ति कि सिय-राम-सहित इनके द्वारा भरत का स्मरण (२।२०८।४)। पर्णकुटी में कहीं-कहीं इनके द्वारा तुलसी के पौधे रोपित (२।२३७।७)। अपने प्रतिबिम्ब (छाया सीता) को रखकर सीता के अग्नि-प्रवेश करने का रहस्य इन्हें भी ज्ञात नहीं (३।२३ - ३।२४।५)। जगत् के समस्त निशाचरों को क्षणभर में मारने में ये समर्थ (५।४४।७)। 'रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई।।' — मन्दोदरी का रावण से कथन (६।३६।२)। वानरों द्वारा इनकी जयजयकार (६।३९)। भुशुण्डिकृत मूलरामायण में इनका प्रसंगोल्लेख (७।६५।२, ७।६६।३)। राम और सीता के साथ उल्लेख (१।५५।५, २।१४२।७, २।१४३।७, २।१४६।४, २।१४६।८, २।१७८।३, २।१८०।३, २।१९८।७, २।२१०।४, २।२११।८, २।२१६।६, २।२२१।७, २।२२४।५, २।२३३।८, २।२५६।३, २।२६२।४, २।२६२, २।२८०।४, २।२८२, २।३१७।२, २।३२०।७, २।३२०, २।३२१।३, २।३२६।२, ३।१।श्लो०२)। अन्य उल्लेख (१।२८१।५, १।२९०।५, २।१३।७, २।१३, २।१२५।४, २।१२६।५, २।१२८।३, २।१३९।५, २।१५१।४, २।१५२।७, २।१५२।८, २।१७३, २।१९३, २।१९९।५, २।१९९।६, २।२११।६, २।२२२।१, २।२२४।७, २।२४३, २।२८४।२, २।२८९।४, २।३१८, ३।२९।३, ४।३।७, ६।९९।८, ६।१०७, ६।११९।९)।

[ये सदा राम के साथ। अनेक स्थानों पर पृथक् रूप से इनका नामोल्लेख, अनेक स्थानों पर अनुज (यथा १।२०७।१०), सानुज (यथा, २।२४४।३), बंधु (यथा, १।५४।५), भ्राता (यथा, १।५४।४), दुहुँ भाई (यथा, १।२८९।६), दोउ बीर (यथा, १।२०८ ख), दोउ भाइ (यथा, १।२१८), दोउ भाई (यथा, १।२२६।३), दोउ भ्राता

(यथा, १।२१५।७), द्वौ भाई (यथा, ३।३।३), द्वौ भ्राता (यथा, ६।५०।१), आदि शब्दों द्वारा राम के साथ इनकी उपस्थिति की सूचना। अनुजन्ह (यथा, १।२०५।६), तीनिउ भाइ (यथा, १।३२८।६), भाइन्ह (यथा, १।३३४) आदि में तीनों रामानुजों के एक साथ होने का, सुत चारी (यथा, १।२०७।५), दूलह (यथा, १।३२६।छं० ४), जामाता (यथा, १।३४१।२), कुअँर (यथा, १।३५४।२) आदि में चारों भाइयों के साथ होने का संकेत। इन प्रसंगों के लिए देखिए 'राम'।]

मूल शब्द — १।२०।३, १।२१८।१, १।२३०।१, १।२४०।२, १।२५४।१, १।२५९, १।२६६, १।२७१।६, १।२७२।१, १।२७४।५, १।२७५।२, १।२७६।१, १।२७६, १।२७७, १।२७८।४, १।२८१।५, १।२९५।६, १।३०८।८, १।३११।२, १।३११।३, १।३२५।छं०३, १।३४२, १।३५९।८, २।१०, २।१३।७, २।७३।५, २।७३।७, २।८४।५, २।८५, २।८७।३, २।८९।१, २।९०।४, २।९०।६, २।९२।३, २।९६।४, २।९६।५, २।९९।८, २।१००, २।१०२।१, २।१०२, २।१०५।१, २।१०६।३, २।१०७।३, २।१०८, २।११०।२, २।१११।३, २।१११।८, २।११२।१, २।११३।५, २।११४।१, २।११४।३, २।११५।७, २।११६।२, २।११८।५, २।११८, २।१२२।८, २।१२३।६, २।१२३।७, २।१२८।३, २।१३३।१, २।१३३।२, २।१३३।५, २।१३३, २।१४१।१, २।१४१, २।१४२।१, २।१४२।७, २।१४६।८, २।१४८।८, २।१४९।५, २।१५१।४, २।१५२।७, २।१५२।८, २।१५५।८, २।१५९।८, २।१६१, २।१७१।८, २।१७३, २।१७८।३, २।१८०।३, २।१८२।७, २।१९३, २।१९६।५, २।२००।१, २।२०३।३, २।२०८।४, २।२१०।४, २।२११।८, २।२१६।६, २।२२४।७, २।२२६।७, २।२२७।६, २।२३१।१, २।२३१।५, २।२३१।८, २।२३२।४, २।२३३।३, २।२३७।७, २।२३९।१, २।२३९।४, २।२४०।३, २।२४०।५, २।२४२।१, २।२४३, २।२४५, २।२४७।५, २।२५६।३, २।२६२।४, २।२८०।४, २।३१७।२, २।३१८, २।३२०।७, २।३२०, २।३२१।३, २।३२६।२।

लखनु — १।२१६, १।२१८।५, १।२२६।७, १।२२६, १।२३७।४, १।२३८।८, १।२५२।८, १।२५४।४, १।२६३।७, १।२६७।८, १।२६९।७, १।२७३।१, १।२७६।८, १।२७७।५, १।२८०।८, १।२९०।५, १।२९१, १।२९३।३, १।३००, १।३११।७, २।१३, २।१९, २।४९, २।७१।७, २।७६।१, २।८२।८, २।९०।१, २।९४।८, २।१००।छं०, २।११७।५, २।१२३।१, २।१२४।१, २।१२६।छं०, २।१३९।५, २।१३९।८, २।१३९, २।१४१।२, २।१४१।६, २।१४१।८, २।१४२।२, २।१४३।७, २।१४६।४, २।१४९।३, २।१४९, २।१५०।२, २।१५४।८, २।१५५।२, २।१६४।३, २।१६६।३, २।१६६।५, २।१९६।६, २।१९८।७, २।२२१।७, २।२२२।१, २।२२४।५, २।२३०, २।२३३।८, २।२६२, २।२८२, २।२८४।२, २।२८९।४।

लछिमन — १।१७।५, १।५३।१, १।१९७, १।१९८।३, १।२१२।१, १।२७८, २।७०।१, २।२११।६, २।२४१, ३।१४।५, ३।१७।१, ३।१७।१२, ३।१७।१७, ३।१७।१८, ३।१७, ३।२१।२, ३।२३, ३।२४।५, ३।२७।८, ३।२७।१५, ३।२८।२, ३।२८।३, ३।२८।५, ३।२९।३, ३।३०।८, ३।३७।३, ३।३८।११, ३।४१।११, ४।२।२, ४।३।७, ४।५।१, ४।७।२९, ४।११, ४।१३, ४।१६।१, ४।१८।८, ४।१९।८, ४।२०।१, ४।२०।२, ४।२०।६, ४।२०।८, ५।५१।२, ५।५२।७, ५।५२।८, ५।५३।१, ५।५८।१, ५।५८।५, ६।११।३, ६।११।८, ६।३९, ६।५२, ६।५४।२, ६।५४।७, ६।५५।५, ६।६१।१, ६।६२।२, ६।७३।९, ६।७५।७, ६।७५।८, ६।७६।१०, ६।७६।१४, ६।७७।५, ६।८२, ६।८३।३, ६।८४।५, ६।८९।७, ६।८९।छं०, ६।८९।छं० (जातिं०), ६।९३।८, ६।९६।४, ६।९९।८, ६।१०१।तोमर ५, ६।१०५।६, ६।१०९।२, ६।१०९।३, ६।१०९।५, ६।११९।९, ७।१।३, ७।५, ७।६।१, ७।६ ख, ७।७, ७।१७।७, ७।६५।२, ७।६६।३। लछिमनु — १।५५।५, १।२२१।८, ५।४४।७। लक्ष्मण — ३।१।श्लो०२।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द —

(१) सम्बन्धबोधक —

(क) व्यक्ति सम्बन्धी —

कोसलराज किसोर — १।२४२।

कोसलेस सुत — ४।७।२६।

दसरथ सुअन (राम, भरत भी) — २।१०८।६।

रघुबीर बंधु — ६।८४।छं०।

रामानुज — ४।२०, ५।५६।९, ६।३६।२, ६।७६।४, ६।७६।

सौमित्रि — १।१७।१८, १।२८०।३, २।१२२, २।१२५।४, २।१२६।५, २।१३४।८, ७।१६।१।

(ख) कुलसम्बन्धी —

रघुकुल तिलक (राम, भरत, शत्रुघ्न भी) — १।१८७।५।

रघुवर (राम भी) — ४।१।श्लो०१।

रघुसिंह — १।२३४।३।

(ग) स्थान सम्वन्धी —

कोसलाधीस (राम भी) — ६।५०।१।

जग कारन (राम भी) — १।१७।७।

जगत आधार (राम के लिए 'जगत आधारा') — १।१९७।

जगदाधारा — ६।७७।४।

त्रिभुवन धनी (राम भी) — ६।८३।छं०।

(२) गुणबोधक —

कृपासिंधु (राम, शिव, विष्णु, काकभुशुंडि) — १।१७।८, १।२०८ ख।

गोविप्र वृन्द प्रिय (राम भी) — ४।१।श्लो०१।

छमामंदिर (राम भी) — १।२८५।६।

तापत्रय मोचन (राम भी) — १।२१६।६।

सद्धर्मवर्म (राम भी) — ४।१।श्लो०१।

(३) चरित्रबोधक —

सुरत्राता (राम भी) — ६।८४।६।

(४) स्वरूपबोधक —

अनंत (राम, ब्रह्म भी) — ६।७५, ६।७६।७, ६।७७।४, ६।८३।छं०, ६।१०७। अनंता (राम, विष्णु भी) — ६।५४।४।

अहीसा (शेष के लिए भी) — ६।७६।१३।

सेष (शेष भी) — ६।५४। सेषा (शेष भी) — ६।५४।५।

बिस्व कारन करन (राम भी) — १।२०८ ख।

सचराचर धनी — २।१२६।छं०।

सुखधाम (शिव, राम भी) — १।२२०।

सुख निधान (राम भी) — १।२१८।

लच्छि (लक्ष्मी) — विष्णु की पत्नी। उनकी शक्ति।

उत्पत्ति — (१) कृष्ण के मन से। ब्र० पु० ब्रह्म ३।
(२) मूल प्रकृति के वामांश से। ब्र० पु० प्र० २।
(३) मूल प्रकृति के दक्षिणांश से उत्पन्न राधा के वामांश से। ब्र० पु० प्र० २, ३५।
(४) क्षीरोदधि से।
(५) ब्रह्मा > मनु-शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम > ख्याति ~ भृगु (ब्रह्मापुत्र) > धाता, विधाता, श्री। भा० ३।१२।५३-५६, ३।२४।२३, ४।१।४३।

[ये पंचप्रकृतियों में एक (गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।। सावित्री वै सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृताः।। ब्र० पु० प्र० १।१) ब्र० पु० में ये गौरवर्णा (आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः।। एका देवी गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता।। ब्रह्म० ३।६५।) श्रीसूक्त एवं भा० में ये हिरण्यवर्णा (हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।। श्रीसूक्त १। विसर्पती हेमलतेव सा बभौ। भा० ८।८।१८।)। राधा द्वारा कृष्ण-वरण के बाद कृष्ण-पत्नी बनने की इनकी कामना। कृष्ण अपने दक्षिणांश से विष्णुरूप में

परिणत और उनके द्वारा ये विष्णु-सेवा में समर्पित। माता की भाँति स्नेह-दृष्टि से विश्व का पालन करने के कारण ये देवियों में महती 'महालक्ष्मी'। शुद्ध सत्वस्वरूपा परिपूर्णा 'महालक्ष्मी' रूप से विष्णु के साथ इनका वैकुण्ठ में वास। स्वर्ग में ये इन्द्र की सम्पत्तिस्वरूपिणी 'स्वर्गलक्ष्मी'। पाताल एवं मर्त्यलोक में राजाओं के यहाँ 'राजलक्ष्मी'। गृहस्थ के यहाँ 'गृहलक्ष्मी', कलांश से गृहिणी। सम्पत् स्वरूपा, सर्वमंगलमंगला आदि। ब्र० पु० प्र० ३५। ये शरीर से सदा नारायण के पास, अन्यत्र केवल भावरूप में। त्रिवर्ग-दात्री। (नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम्। भावेन यस्मिन् निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः।।) — लक्ष्मी-कथन रुक्मिणी से। महा० अनु० ११।२१।

श्रीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त में मुख्यतः धन-धान्य-ऐश्वर्य, पुत्रादि-प्राप्ति के लिए इनसे प्रार्थना। ब्र० पु० प्र० ६ में स्त्रियों की धर्मपरायणता, पातिव्रत, सुशीलता, उनका शान्त स्वरूप इनकी अंश-कला के कारण ही।

धर्म, सत्य, सदाचार और बल के साथ इनका 'शील' में निवास (धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम्। शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः।। १२४।६२। लक्ष्मी-कथन प्रह्लाद प्रति।) विप्रवेशधारी इन्द्र को प्रह्लाद के शीलदान करने पर इनका धर्म आदि के साथ प्रह्लाद को त्याग इन्द्र के पास जाना। महा० शान्ति० १२४।४२-६३। अन्यत्र इनका कथन इन्द्र से — सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म में इनका निवास। सत्य आदि से बलि के विमुख होने पर इनके द्वारा उनका त्याग। महा० शान्ति० २२५।१२। रुक्मिणी के पूछने पर इनके द्वारा अपने निवास के योग्य और अयोग्य स्थानों का सविस्तार कथन। महा० अनु० ११।४-२०।

इन पर धाता-विधाता का नहीं, केवल काल का शासन। महा० शान्ति० २२५।१०।

दुर्वासा ऋषि को दी हुई माला का अनादर करने के कारण त्रिलोकसहित इन्द्र श्रीहीन। स्वर्ग आदि का त्याग कर ये वैकुण्ठ में जा महालक्ष्मी में लीन। फिर प्रभु-आज्ञानुसार अपनी कला से सागर-कन्या बन सागर-मन्थन के समय आविर्भूत। ब्र० पु० प्र० ३६। (दे० 'छीरसागर'।) इनका प्राकट्य द्वादशी के पुण्य प्रभात में। प० पु० ब्र० १०।२, उ० २३२।३९-४१। उस समय ये पद्महस्ता, पद्मस्थिता। वि० पु० १।९।१००।

सागर-मन्थन के बाद भृगु-कन्यारूप में इनका अपने नाम से नगर बसाना, फिर पिता को नगर सौंप, स्वर्ग-गमन। बाद में पिता से नगर की याचना। विष्णु द्वारा इनका पक्ष-समर्थन। स्त्री का पक्षपात करने के कारण विष्णु को मनुष्य लोक में दस जन्म ग्रहण करने और स्त्री-वियोग से दुखी होने का भृगु-शाप। (नृलोके दशजन्मानि लप्स्यसे मधुसूदन। भार्यायास्ते वियोगेन दुःखान्यनुभविष्यसि।। सृ० ४।९८।) भृगु को लक्ष्मी-सुख से वंचित रहने का विष्णु-शाप। (न चापत्यकृतांप्रीतिं प्राप्स्यसे मुनिपुंगव। सृ० ४।१००।) शाप के बाद (लक्ष्मी-सहित) महोदधि में जाकर शयन करने का ब्रह्मा से विष्णु-कथन। (त्यक्तवाचाहमिमंलोकंशयिष्ये च महोदधौ। सृ० ४।१०३।) प० पु० सृ० ४।८८-१०३।

भिन्न रूपों में आविर्भूत होने पर भी वस्तुतः ये विष्णु की कभी न बिछुड़नेंवाली आत्मशक्ति। उनके वक्ष-स्थल में, श्रीवत्स में इनका निवास। भा० ८।८।२५, १०।८९।१२, १२।११।२०। विष्णु के प्रत्येक अवतार में ये उनके साथ। वामनावतार में ये पद्मा, परशुरामावतार में पृथिवी, रामावतार में सीता, कृष्णावतार में रुक्मिणी। इसी प्रकार अन्य अवतारों में भी। वि० पु० १।९।१४२-१४५।

पुराणों के अनुसार इनके पुत्र बल और उन्माद। श्रीसूक्त ११-१२ में पुत्र कर्दम और चिक्लीत। लक्ष्मीसूक्त ११ में कर्दम, चिक्लीत के अतिरिक्त आनन्द और श्रीद भी। ब्र० पु० के अनुसार ये निःसन्तान। कृष्ण की चिन्मयी शक्ति मूल प्रकृति द्वारा गर्भजात शिशु के त्याग के कारण उन्हें कृष्ण-शाप — वे स्वयं और उनकी अंशोद्भवा देवियाँ नित्यतारुण्य-सम्पन्न रहने पर भी सन्तानहीना हों। ब्र० पु० प्र० २।

पुरुषसूक्त २२ में श्री और लक्ष्मी विष्णु की पत्नियाँ, रामानुज सम्प्रदाय में श्रीदेवी और भूदेवी। ब्र० पु० में 'लक्ष्मीस्सरस्वती गंगा तिस्रो भार्या हरेरपि।।' प्र० ६।१७। एक बार सरस्वती को सन्देह कि हरि गंगा के प्रति अधिक अनुरक्त। अतः उनके व्यवहार में कठोरता। इनके मना करने पर उनका इन्हें शाप — ये वृक्षरूपा, नदीरूपा हो जायें। इस पर गंगा का सरस्वती को शाप नदीरूपा होने का। सरस्वती का गंगा को नदी बनने का शाप। शाप-वचन सत्य करने के लिए विष्णु-कथन — सरस्वती अपनी एक कला से भारत में नदी रूप हों, पूर्ण अंश से ब्रह्मसदन जा ब्रह्मा की कामिनी बनें। भगीरथ-तप के फलस्वरूप गंगा एक कला से भागीरथी नदी बन धरातल पर जायें, वहाँ विष्णु-अंश सागर की पत्नी बनें, पूर्ण अंश से शिव के स्थान पर चलें। केवल लक्ष्मी पूर्ण अंश

से वैकुण्ठ में रहें, अपनी कला से सरस्वती-शाप को सत्य करें। यह सुन देवियों को विकलता। तब विष्णु-आदेश से पूर्ण अंश से हरि-समीप रहते हुए तीनों का अपने-अपने कलांशों से भारतवर्ष में अवतरण। सरस्वती एक कलांश से नदी, अर्ध कलांश से ब्रह्म भवन में। एक कला से नदी बन अवतरण-काल में गंगा को शिव-मस्तक पर स्थान पाने का सौभाग्य। लक्ष्मी (पद्मा) अपनी एक कला से पद्मावती नदी, अन्य कला से धर्मध्वज-कन्या 'तुलसी' नाम से लोकप्रसिद्ध। फिर वृक्षरूपा। (दे० 'तुलसी') ब्र० पु० प्र० ६-७। अमर० १।२६।३० में इनके चौदह नाम – लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया।। इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा। भार्गवी लोकजननी क्षीरसागरकन्यका।।]

विधि-निर्मित द्वन्द्वों के उल्लेख-क्रम में अलक्ष्मी के साथ इनका उल्लेख (१।६।७)। सन्त-समाजरूपी क्षीरसागर के लिए रामकथा इनके सदृश (१।३१।१०)। विश्वमोहिनी-रूप देख इनके भी मुग्ध होने का कथन (१।१३०।४)। ये सीता के समतुल्य नहीं (१।२४७।६, १।२४७)। जनकपुर में इनके मानवीरूप में निवास का कथन (१।२८९)। राम को देख इनके सहित विष्णु का मुग्ध होना (१।३१७।३)। राम-विवाह के समय छद्म-स्त्री-वेश में ये भी उपस्थित (१।३१८।६)। 'अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई।।' अत्रि-कथन राम से (३।६।७)। जिस तरह ये विष्णु को समर्पित सागर द्वारा, उसी तरह सीता राम को समर्पित जनक द्वारा (१।३२४।छं० ४), अग्नि द्वारा (६।१०९।छं० २)। इनके साथ अवतार लेने की विष्णु की आकाशवाणी (१।१८७।६)। उल्लेख – विश्वमोहिनी के साथ (१।१३६।४), नारद-मोह-प्रसंग में (१।१३६, १।१३८।१), जातिवाचक संज्ञारूप में (१।५४, १।१४८।३), उपमानरूप में (१।३२२।७), भोगैश्वर्यरूप में (२।३२४।८)।

मूल शब्द – १।६।७, १।१४८।३, १।२४७, १।२८९।

पर्याय – **इंदिरा** – १।५४ (जाति०), ६।१०९।छं० २।

परम सक्ति – १।१८७।६।

रमा (सीता भी) – १।३१।१०, १।१३६।४, १।१३६, १।१३८।१, १।२४७।६, १।३१७।३, १।३१८।६, १।३२२।७, २।३२४।८।

श्री (सीता भी) – १।१३०।४, १।३२४।छं० ४, ३।६।७।

लछिमन – दे० 'लखन'

लव – राम और सीता के पुत्र।

[वा० रा० में – वाल्मीकि आश्रम में इनका जन्म। ये और कुश यमज। ये बाद में उत्पन्न। भूत-बाधा-निवारण और रक्षा के लिए लव से इनका मार्जन होने के कारण वाल्मीकि द्वारा यह नामकरण। ७।६६। इसके बाद दे० 'कुस' के अन्तर्गत 'वा० रा० में' अनुच्छेद दो और तीन।]

मानस में इनसे सम्बन्धित प्रसंग के लिए दे० 'कुस'।

मूल शब्द – ७।२५।६।

लोमस (लोमश) – एक दीर्घजीवी महर्षि। इनके वक्ष पर अत्यधिक लोम (रोम) होने के कारण यह नाम।

[ये ज्ञानवृद्ध, आयुवृद्ध, महायोगी। इनकी कटि में कृष्ण-मृगचर्म, मस्तक पर जटा, ललाट में उज्ज्वल तिलक, वक्षःस्थल पर रोमचक्र, सिर पर चटाई। रोम-मण्डल के बीच के कुछ रोम उखाड़े हुए। इन्द्र और उनका दर्प-भंग करनेवाले विप्र-बालकरूप हरि के बीच आकर इनका ठूँठ की तरह खड़े हो जाना। हरि की जिज्ञासा पर इनका कथन – ये अविवाहित, वासविहीन, भिक्षाटन से जीविका-निर्वाह। वर्षा-धूप के निवारण के लिए सिर पर चटाई। वक्षःस्थल का रोममण्डल इनकी आयु की संख्या का प्रमाण। एक इन्द्र का पतन होने पर वक्षःस्थल का एक रोम उखाड़ दिया जाता है। (एक इन्द्र का अधिकार-भोग एक हजार चतुर्युगी से कुछ अधिक समय तक। एक चतुर्युगी = बारह हजार दिव्य वर्ष। भा० ३।११।१८, २४।) जितने इन्द्रों का पतन हो चुका, उतने रोम उखाड़ दिये गये, फिर भी अभी अनेक रोम शेष। ब्रह्मा का दूसरा परार्द्ध (अर्थात् उनकी परमायु) पूर्ण होने पर इनकी मृत्यु होगी। (ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युगी अर्थात् एक कल्प का, उतनी ही बड़ी उनकी रात। उनकी परमायु एक सौ वर्ष। आयु का आधा भाग परार्द्ध। भा० ३।११।२२-२३, ३२-३३।)

ये हरिभक्त। शंकर इनके गुरु। उनसे इन्हें ज्ञान प्राप्त। भक्ति के बिना सालोक्य आदि मुक्तियाँ भी इनके लिए अग्राह्य। सं० ब्र० पु० कृ० पृ० ४८६।

स्वर्ग-स्थित अर्जुन और इन्द्र का सब वृत्तान्त युधिष्ठिर से कहकर, पाण्डवों को साथ ले इनका तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान। महा० वन० ९१, ९२।१-१३, ९३।२५-२६। मार्ग में पाण्डवों को अगस्त्य (वन० ९६-९९, वन० १०४-१०५), सगर और भगीरथ (वन० १०६-१०९), ऋष्यशृंग (वन० ११०-११३), च्यवन (वन० १२२-१२५) आदि अनेक राजाओं-ऋषियों के चरित्र, उपाख्यान आदि सुनाना।

आरण्यक की जिज्ञासा पर इनके द्वारा संक्षेप में सम्पूर्ण रामचरित का वर्णन। प० पु० पा० ३६। राम की परीक्षा करने के लिए परशुराम के अयोध्या-आगमन और राम द्वारा उनके तेज-हरण के प्रसंग का युधिष्ठिर से कथन। महा० वन० ९९।४०-६५। इनके नाम पर लोमश-संहिता एवं लोमश-शिक्षा नामक ग्रन्थों के अतिरिक्त बत्तीस हजार श्लोकों की लोमश-रामायण भी उपलब्ध। कश्यप-संहिता में प्राप्त ज्योतिष-शास्त्र के प्रवर्त्तक अठारह महर्षियों में इनका भी निर्देश प्राप्त। प्रा० च०।]

ये ब्रह्मज्ञान में लीन रहनेवाले विज्ञानी मुनि। मेरु-शिखर पर वट की छाया में आसीन। इनके चरणों में नमन कर विप्र (काकभुशुण्डि) की इनसे सगुण ब्रह्माराधना का उपदेश करने की प्रार्थना। इनका संक्षेप में रघुपति-गुण-गाथा कहना। विप्र को अधिकारी जानकर निर्गुण ब्रह्म का उपदेश करना (७।११० ख - ७।१११।६)। इनके विविध प्रकार से समझाने पर भी विप्र को निर्गुण मत प्रिय नहीं। वे राम-दर्शन के लिए लालायित (७।१११।७-११)। पुनः हरि की कथा कहकर इनके द्वारा सगुणोपासना का खण्डन और निर्गुण मत का उपदेश। विप्र का हठपूर्वक निर्गुण को खण्डित कर सगुण की स्थापना करना (७।१११।१२-१३)। उनके तर्क-वितर्क से इनमें क्रोध के लक्षण प्रकट। बार-बार इनके द्वारा क्रोधसहित ज्ञान का निरूपण (७।१११।१४ - ७।१११ क)। विप्र की श्रवण में अश्रद्धा। बारंबार सगुण-स्थापन (७।१११ ख - ७।११२।१२)। कुपित होकर इनका उन्हें चाण्डाल पक्षी (काक) होने का शाप (७।११२।१३-१५)। विप्र का काक बनकर उड़ना (७।११२।१६ - ७।११२ क)। वस्तुतः विप्र-परीक्षा के लिए ही इनकी बुद्धि फेरकर प्रभु का इन्हें शाप देने के लिए प्रेरित करना। शापमोचन के लिए प्रभु द्वारा पुनः इनका मति-परिवर्तन। इनके मन में पश्चात्ताप। इनका सादर काक को बुलाना। नाना प्रकार से उनका परितोष कर, राममन्त्र दे, बालरूप राम की ध्यान-विधि बताना (७।११३।१-८)। उन्हें कुछ समय तक अपने पास रखना। रामचरितमानस की कथा सुनाकर इनका कथन — रामचरितसर अत्यन्त गुप्त। इन्हें शिव-कृपा से प्राप्त। काक को अपना भक्त समझकर इन्होंने विस्तारपूर्वक सुनाया। राम-विमुख से यह चरित कभी न कहा जाये (७।११३।९-१४)। इनका काक को रामप्रिय, राम-रहस्य-ज्ञाता, ज्ञान-वैराग्य-निधान आदि होने का आशीर्वाद (७।११३।१५-७।११४।४)। इसी समय आकाशवाणी — 'एवमस्तु तव वच मुनि ग्यानी'। (इस तरह इनके आशीर्वाद की परम सत्यता की पुष्टि।) काक द्वारा इनकी विनती। इनके चरणों में बारंबार नमन कर इनकी आज्ञा पा प्रस्थान (७।११४।५-८)। दे० 'काकभुसुंडि'।

मूल शब्द — ७।११० ख।
इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **कृपानिधाना** (विष्णु, राम, शिव, भरत भी) — ७।११३।७।
कृपानिधि (विष्णु, राम, शिव, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य भी) — ७।११० घ।
भगवान (राम, शिव, विष्णु भी) — ७।११० घ।
महारिषि (महर्षि) — ७।११४ ख।

विश्व — दे० 'ब्रह्मांड'।

शंकर — दे० 'सिव'।

शृंगबेरपुर (शृंगवेरपुर) — शृंग है वेर (शरीर) में जिसके, वह शृंगवेर, अर्थात्, शृंगीऋषि; उनका पुर। वि० २।८७।१ व्या०। प्राचीन उत्तर कोसल की सीमा के बाहर, आधुनिक इलाहाबाद जिले का सिंगरौर नामक स्थान, गंगातट पर स्थित। बृ० को०।

वन जाते हुए राम का दूसरे दिन सिय-लक्ष्मण और सुमन्त्र के साथ यहाँ पहुँचना। गंगा को देखकर उतरना (२।८७।१-२)। [यहाँ निषादराज गुह का राज्य। वा० रा० २।५०।३३। राम की उनसे भेंट। एक रात बिताना।] राम-लक्ष्मण का वट-वृक्ष के दूध से सिर पर जटाएँ बनाना (२।९४।३-४)। राम का सुमंत्र को लौटाना (२।९९।८, २।१००।२)। स्वयं गंगातट पर आना। 'माँगी नाव न केवटु आना…' (२।१००।२, ३)। लौटकर सुमंत्र का दशरथ को यहाँ का प्रसंग सुनाना (२।१५० - २।१५१।५)। अयोध्यावासियों के साथ भरत का चौथे दिन यहाँ पहुँचना। इस

स्थान को देखकर वे स्नेह-शिथिल (२।१८९।१, २।१९७।१)। (यहाँ गुह द्वारा भरत के भाव की परीक्षा। दोनों की भेंट। भरत द्वारा रामघाट और राम से सम्बन्धित अन्य स्थानों के दर्शन।) एक रात रहकर प्रस्थान (२।२०२।७ - २।२०२)।

मूल शब्द — २।१८९।१, २।१९७।१। सृंगबेरपुर — २।८७।१।

पर्याय — **सिंगरौर** — २।१५१।१।

श्रीवत्स — विष्णु के वक्ष पर बालों का घूँघर या चिह्नविशेष। विष्णु का विशेषण। आ० को॰॰॰।

[ह० को० में 'स तु वक्षस्य शुक्लवर्ण दक्षिणावर्त लोमावली'। मा० पी० १।१४७।६ की व्या० में इसके सम्बन्ध में उद्धृत विभिन्न मतों का सार —

(१) यह पीत रोमावली का गुच्छा। दक्षिणावर्त। जानकी का स्वरूप। (२) पीत अथवा श्वेत रोमावली की भ्रमरी। बायीं ओर। जानकी का प्रिय चिह्न। (३) विष्णु के उर में श्रीवत्स लक्ष्मी का चिह्न, राम के वक्ष पर सीता का। (४) यह महासौभाग्यभूत महापुरुष-लक्षण। भगवान् के नित्य विभूषणों में कौस्तुभ के साथ यह भी।

कुछ विद्वानों के अनुसार यह भृगुचरण-चिह्न (भृगुलता)। रघु० १०।१० की टीका में पं० सीताराम चतुर्वेदी द्वारा यही अर्थ ग्रहण। (दे० 'बिप्रचरन')। स्वामी करपात्री जी के मत से विष्णु के दक्षिण वक्षःस्थल पर दक्षिणावर्त श्वेत रोमराजि श्रीवत्स, वाम वक्षःस्थल पर वामावर्त सुवर्णवर्णा रोमराजि श्रीलांछन लक्ष्मी का चिह्न। दोनों के मध्य भृगुचरण-चिह्न। वि० अ०, पृ० ३०। सांकेतिक दृष्टि से श्रीवत्स भगवान् की जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योति (कौस्तुभ मणि) की सर्वव्यापिनी प्रभा। भा० १२।११।१०।]

राम के हृदय पर इस चिह्न के होने का उल्लेख (१।१४७।६)।

श्रुतकीरति (श्रुतकीर्त्ति) — जनक-अनुज कुशकेतु (कुशध्वज) की छोटी पुत्री।

राम-विवाह के बाद माण्डवी, उर्मिला के साथ इन्हें जनक का बुलवाना। ये 'सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी', रूप शील में विख्यात। शत्रुघ्न से इनका विवाह (१।३२५।छं० २, ३)। एक ही मण्डप में ये और इनकी तीनों बहनें अपने-अपने पति के साथ इस तरह शोभित जैसे जीव की चारों अवस्थाएँ अपने-अपने विभु के साथ (१।३२५।छं० ४)। (दे० 'उरमिला')।

मूल शब्द — १।३२५।छं० २, १।३२५।छं० ३।

षटबदन (षड्बदन) — छः मुखवाले देवता कार्त्तिकेय।

[(१) विवाहोपरान्त शिव को पार्वती के साथ शत दिव्य वर्षों तक क्रीड़ारत देख देवताओं की उनसे क्रीड़ा-विरत होने की प्रार्थना। उनका क्षुब्ध तेज स्खलित। उससे पृथ्वी व्याप्त। तदनन्तर अग्नि से व्याप्त होने पर वह श्वेत पर्वतरूप में परिणत। वहाँ दिव्य सरकण्डों का वन प्रकट। वहीं अग्निजात कार्त्तिकेय का जन्म। वा० रा० १।३६।६-१९।

(२) अग्नि का रुद्र-तेज से गंगा को अभिषिक्त करना। उसे धारण करने में असमर्थ गंगा द्वारा हिमालय के पार्श्वभाग में गर्भ स्थापित। उससे कुमार का जन्म। छः मुख प्रकट कर इनका छहों कृत्तिकाओं का एक साथ स्तन-पान। एक ही दिन स्तन्य पीकर दैत्य-सेनाओं पर विजय। देवताओं द्वारा इनका देव-सेनापति-पद पर अभिषेक। वा० रा० १।३७। कुमार०, प० पु० एवं स्क० पु० में इनकी जन्म-कथा भिन्न। दे० 'अगिनि', एवं 'भवानी' के अन्तर्गत 'पार्वती'। देवासुर-संग्राम में इनके द्वारा तारकासुर का वध। दे० 'तारकु'।

इनमें और गणेश में प्रथम विवाह करने की स्पर्द्धा। शर्त्त—सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले लौटनेवाले का विवाह पहले होगा। मयूरारूढ़ हो द्रुतगति से पृथ्वी-परिक्रमा करके इनका लौटना। तब तक वहाँ गणेश का विवाह सम्पन्न। यह देख इन्हें क्षोभ। क्रौंच पर्वत पर जाकर इनकी तपस्या। तब से इनका कुमारत्व (कुँआरापन) प्रसिद्ध। शि० पु० रु० च० कु० २०। सं० ब्र० पु० पृ० ८५ में इनकी पत्नी देवसेना अथवा 'षष्ठी' (प्रकृतिदेवी का षष्ठ अंश होने के कारण)।

इनके नाम — स्कन्दित (स्खलित) तेज से उत्पन्न होने के कारण 'स्कन्द', कृत्तिकाओं के स्तन्य से पोषित होने के कारण 'कार्त्तिकेय', पर्वत-गुहा में निवास करने से 'गुह'। महा० अनु० ८५।८१-८२, वा० रा० १।३७।२५, २७। महा० में स्कन्द की तीन समरूप मूर्त्तियाँ और। उनके नाम — शाख, विशाख, नैगमेय। शल्य० ४४।३७-३८।]

इनका जन्म और युद्ध में इनके द्वारा तारकासुर-वध। इनकी जन्म-कथा लोक और वेद में प्रसिद्ध। इनके

कर्म-प्रताप-पुरुषार्थ से जगत् परिचित, अतः इनके चरित का कथन संक्षेप में (१।१०३।७ - १।१०३।छं०)। राम की शोभा निरख इनके मन में विशेष उत्साह — इन्हें ब्रह्मा से डेवढ़े नेत्र प्राप्त (ब्रह्मा के आठ नेत्र, इनके बारह) (१।३१७।५)।

मूल शब्द — १।१०३।७।
पर्याय — **बृषकेतु सुत** — १।१०३।छं०।
षन्मुख — (षण्मुख) — १।१०३।८, १।१०३।छं०।
सुर सेनप — १।३१७।५।

संपाति — अरुण-पुत्र। जटायु के भाई। गृध्रराज दे० 'जटायू'।

[एक बार ये और जटायु पराक्रम-गर्व-मोहित। सूर्य के अस्ताचल पर जाने से पूर्व ही उनके पास पहुँच जाने की दोनों की शर्त्त (कैलास-शिखर पर मुनियों के सामने)। बहुत ऊँचाई से हिमालय-मेरु आदि का जलाशय में खड़े हाथियों-सा दिखना। दोनों का स्वेद-प्रवाह, क्लान्ति। दोनों भय-मोह-ग्रस्त। दिक्-ज्ञान-शून्य। सूर्य-तेज के कारण दर्शन-शक्ति लुप्त। जटायु का इनसे कहे बिना पृथ्वी की ओर उतरना। ये महान् प्रयास करके सूर्यदेव के दर्शन करने में समर्थ। तब जटायु को पृथ्वी की ओर जाते देख तीव्रता से उनके पीछे आना। उन्हें अपने पंखों से ढके रखना। अतः जटायु का न जलना। ये पंखसहित दग्ध। इनका जड़वत् विन्ध्यपर्वत पर गिरना। जटायु के जनस्थान में गिरने का इनका अनुमान। इस तरह ये राज्य और पंख एवं पराक्रम से हीन, भाई से वियुक्त। केवल मृत्यु की कामना। वा० रा० ४।६१।

छः दिनों तक अचेत रहने के बाद इन्हें संज्ञा प्राप्ति। अत्यन्त कष्ट और कठिनाई से विन्ध्यगिरि से नीचे उतर चन्द्रमा मुनि के आश्रम के पास आना। पहले ये दोनों भाई मनुष्य रूप धारण कर उनका चरणस्पर्श करते थे। मुनि के पूछने पर इनके द्वारा अपने दग्ध होने का वृत्तान्त-कथन। वा० रा० ४।६०। मुनि का इन्हें आश्वासन — रामदूत-वानरों को सीता का पता बताने पर इन्हें नये पंख प्राप्त होंगे। वा० रा० ४।६२।११-१२। अ० रा० ४।८।२-५२ एवं महा० वन० २८२।४६-५० में इसी तरह की कथा।]

'जनु जरि पंख परेउ संपाती' — दशरथ-दशा (२।१४८।७)। गिरि-कन्दरा में बैठे हुए इनका रामदूत वानरों की बातें सुनना। बाहर आकर उन्हें देख कथन — अनेक दिनों से ये निराहार। आज एक साथ इतना आहार विधाता से प्राप्त। ये सबका भक्षण करेंगे (४।२७।१-४)। इनके वचन सुन, इन्हें देख, सबका उठ खड़े होना। मरण निश्चित जान सब भीत। जटायु के सम्बन्ध में अंगद की हर्ष-शोकमयी वाणी सुन इनका सबके निकट जाना। उन्हें अभय-दान कर जटायु-सम्बन्धी वृत्तान्त-श्रवण। रघुपति-महिमा-वर्णन। भाई को तिलांजलि देने के लिए इन्हें सिन्धु-तट पर ले जाने का इनका वानरों से आग्रह। बदले में वचन से उनकी सहायता करने का कथन। सागर-तीर पर अनुज की क्रिया करना (४।२७।५ - ४।२८।१)। [अ० रा० में यही प्रसंग। इनका महेन्द्रगिरि-कन्दरा से निकलना। ४।७।२६-५०। वा० रा० में अपने पंख जलने और रावण के सीता को ले जाने की आँखों देखी घटना कहकर, सीता का पता बताकर, जलांजलि देना। पुनः अपने पुत्र सुपार्श्व से सुना हुआ सीता-हरण का वृत्तान्त-कथन। ४।५६-५९।] इनका आत्म-कथा सुनाना — अपने यौवन में एक बार इन दोनों भाइयों का उड़कर सूर्य के निकट जाना। तेज न सह सकने के कारण जटायु का लौटना। अभिमानी होने के कारण इनका सूर्य के एकदम पास तक जाना। इनके पंखों का जलना। चीत्कार कर इनका भूमि पर गिरना (४।२८।१-४)। इन्हें देख चन्द्रमा मुनि को दया। उनके ज्ञानोपदेश से इनका देहजन्य अभिमान नष्ट (४।२८।५-६) [अ० रा० ४।८।१२-४७ में विस्तृत ज्ञानोपदेश।] इनसे मुनि-कथन — त्रेतायुग में ब्रह्म का मनुज-अवतार होगा। हृत सीता की खोज में आये दूतों से मिलने पर, उन्हें सीता को दिखा देने पर, ये पवित्र होंगे। इनके पंख उग आयेंगे। मुनि की वाणी आज सत्य (अर्थात् इनके पंखों का उगना) (४।२८।७-१०)। इनका कथन — त्रिकूट गिरि पर लंका। वहाँ रावण के अशोक-वन में सीता शोचमग्न। गीध होने के कारण अपनी अपार दृष्टि से सीता को देखने में ये समर्थ। अब वृद्ध, नहीं तो कुछ सहायता करते। (४।२८।११-४।२८)। [चन्द्रमा मुनि के देह-त्याग के बाद विन्ध्य-गिरि पर रहते हुए इनके आठ हजार वर्ष व्यतीत। वा० रा० ४।६०।९।] शत योजन सागर लाँघनेवाले बुद्धिनिधान के लिए ही राम-कार्य-साधन सम्भव। रामकृपा से इनका देह-परिवर्त्तन [नये पंख। यौवन का-सा बल-पराक्रम। वा० रा०

४।६३।६-१३।] देख वानर धैर्य करें। इनके द्वारा राम-महिमा-कथन। वानरों को प्रोत्साहन। प्रस्थान (४।२६।१-५)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में वानरों के इनसे मिलन का कथन (७।६७।२)।

मूल शब्द — ४।२७।११। संपाती — २।१४८।७, ४।२७।१, ७।६७।२।

खग (जटायु, भुशुण्डि, गरुड़ भी) — ४।२७।६।

गीध (जटायु भी) — ४।२७।५, ४।२७।६, ४।२६।५।

संबत (संवत्) — वर्ष, विशेषकर विक्रमादित्य वर्ष। आ० को०।

[कुछ विद्वानों के मत से विक्रम संवत् के प्रवर्त्तक विक्रमादित्य नहीं। वि० को० में इस तरह के विरोधी मतों का खण्डन और सप्रमाण निष्कर्ष — (१) जैन-ग्रन्थों से ज्ञात कि वीर-निर्वाण के ४७० वर्ष बाद (ईसा के ५७ वर्ष पहले) संवत्-प्रवर्त्तक विक्रमादित्य आविर्भूत (पृ० २८१)। (२) शकों को जीतकर 'शकारि' नाम से विभूषित हो उन्होंने मालव में जो अब्द चलाया, वही मालव गणाब्द या विक्रम संवत् नाम से प्रसिद्ध (पृ० २८०)।]

इस संवत् के सौलह सौ एकतीसवें वर्ष में तुलसी द्वारा मानस-रचना-प्रारम्भ (१।३४।४)।

सई — एक छोटी नदी का नाम। यह रायबरेली होकर बेलाप्रतापगढ़ के सामने बहती है। मा० पी० २।१८६।१ शब्दार्थ।

चित्रकूट जाते हुए भरत-समाज का तीसरे दिन इसके किनारे वास (२।१८६।१)। लौटते समय जनक-समाज और भरत-समाज का इसे तीसरे दिन पार करना (२।३२२।५)।

मूल शब्द — २।१८६।१, २।३२२।५।

सक्र (शक्र) - (शक्नोति दैत्यान् नाशयितुम्। ह० को०।) इन्द्र। देवों के स्वामी। वर्षा के देवता। आ० को०। पूर्व दिशा के लोकपाल। अमर० १।८५। भगवान की विभूति। गीता १०।२२।

कश्यप ~ अदिति > द्वादश आदित्यों में एक इन्द्र ~ पौलोमी (पुलोमा-पुत्री शची) > जयन्त, ऋषभ, मीढ्वान्। भा० ६।६।२५, ३६, ६।१८।७।

[ऋग्वेद में ये जगत् के उत्पादक, सृष्टि-क्रम के नियन्ता (ऋ० १०।८६)। इनके द्वारा सूर्य, द्यू एवं उषा की उत्पत्ति, सोम पर विजय (१।३३); द्यू को आधार-प्रदान, हिलनेवाली पृथ्वी का स्थिरीकरण, अन्तरिक्ष की व्यवस्था, विद्युत् की उत्पत्ति, अहि को मार सप्तसिन्धुओं की मुक्ति (ऋ० २।१२); मेघों का भेदन, नदियाँ प्रवाहित (ऋ० १।३३)। इनकी उपासना न करनेवाले ('अनिन्द्र') निन्दनीय (ऋ० ७।१८।१६)। प्रा० च०। इनकी शक्ति 'देवी तविषी' (ऋ० १।५६।४), पत्नी 'इन्द्राणी' (ऋ० १।२२।१२)। ध० इ० प० पृ० १०।

पौराणिक साहित्य में ये भगवदिच्छा से त्रिलोकी के स्वामी। प्रजापालन इनका कर्तव्य। यथेष्ट वर्षा करने का इन्हें अधिकार। भा० ८।१४।७। देवतादि अनुयायियों-सहित इनका शासन-काल एक मन्वन्तर (अर्थात् इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक। एक चतुर्युगी = बारह हजार दिव्य वर्ष)। प्रत्येक मन्वन्तर के इन्द्र अलग। (चौदह मन्वन्तरों में चौदह इन्द्र।) भा० ३।११।१८, १६, २४। इनके नाम भी भिन्न-भिन्न। भा० ८।१।२०, २४, २८ आदि। वर्तमान मन्वन्तर (वैवस्वत) के इन्द्र का नाम 'पुरन्दर'। भा० ८।१३।४।

इनके गुरु वृहस्पति। दे० 'सुरगुरु'। पत्नी का नाम शची या इन्द्राणी। (ऋ० में 'शची' शब्द इन्द्राणी का द्योतक नहीं। ध० इ० प० पृ० १०।) पुत्र जयन्त, नगरी अमरावती (दे० 'अमरावति'), प्रासाद वैजयन्त, वन नन्दन, गज ऐरावत, अश्व उच्चैःश्रवा, सारथि मातलि, आयुध वज्र। अमर० १।५१-५३। इनके धनुष का नाम विजय, जो इनके द्वारा परशुराम को और परशुराम द्वारा कर्ण को प्रदत्त। महा० कर्ण० ३१।४२-४४।

त्रिभुवन का ऐश्वर्य पाकर इन्हें अहंकार। इनके द्वारा धर्म-मर्यादा और सदाचार का उल्लंघन। एक बार सभा में गुरु वृहस्पति की अवज्ञा। गुरु द्वारा इनका परित्याग। उनके बिना ये निर्बल। असुरों का आक्रमण। देवताओं की दुर्दशा। ब्रह्मा के परामर्श से त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप को पुरोहित बनाना। उनसे नारायण-कवच का उपदेश प्राप्त कर इनका असुरों को पराजित करना। भा० ६।७-८। विश्वरूप की माता असुर-कुल की। अतः उन पर इन्हें शंका। इनके द्वारा उनका वध। उससे लगी ब्रह्महत्या का चार भागों में विभाजन। पृथ्वी, जल, वृक्षों और स्त्रियों द्वारा एक-एक भाग का ग्रहण और इनसे वर-प्राप्ति। भा० ६।६।१-१०।

कुपित त्वष्टा द्वारा वृत्रासुर की उत्पत्ति और इनके वध का आदेश। वृत्र के बल से अभिभूत हो ये

युद्ध-विमुख। विष्णु के शरणागत। (दधीचि की अस्थियों से निर्मित आयुध से वृत्र-वध करने का भगवदादेश। भा० ६।६।५१-५५।) उनकी आज्ञा के अनुसार वध से पूर्व वृत्र से इनकी सन्धि। उसकी शर्त्त के अनुसार देवताओं द्वारा दिन या रात में, सूखी या गीली वस्तु से उसके अवध्य होने का इनका वरदान। विष्णु का वज्र में प्रवेश। सन्ध्या-काल में वज्रसहित समुद्र-फेन में प्रविष्ट हो उस फेन से इनके द्वारा वृत्र का नाश। महा० उद्यो० ६।४५-५६, १०।१०-१३, २७-३६। (ऋ० १।३३ में त्वष्टा द्वारा वज्र-निर्माण और वृत्र-वध का वर्णन। प्रा० च०।) वृत्रासुर-वध से लगी ब्रह्महत्या के कारण ये भय-मोहित, अदृश्य। अश्वमेध यज्ञ करके ब्रह्महत्या से मुक्त। वा० रा० ७।८६। महा० में इनके अदृश्य होने का कारण त्रिशिरा (विश्वरूप) वध से लगी ब्रह्महत्या और विश्वासघात के द्वारा किया गया वृत्र का वध। राजा-विहीन देवताओं का नहुष को राजा बनाना। दे० 'नहुष'। नहुष के पतन के बाद इनका स्वर्ग-गमन और राज्य-पालन। महा० उद्यो० १७।२२, १८।१-४। सं० ब्र० पु० कृ० पृ० ४८४-४८६ में इन्हें पुनः अहंकार। तब विप्रबालक-रूप में हरि द्वारा, फिर उनकी इच्छा से वहाँ उपस्थित हुए लोमश द्वारा, इनका दर्प-दलन। दे० 'लोमस'।

एक बार दुर्वासा से प्राप्त सन्तानक पुष्पों की माला को इनका ऐरावत के मस्तक पर डालना। ऐरावत का उसे धरती पर फेंकना। यह देख दुर्वासा का इन्हें त्रैलोक्य-सहित श्रीहीन होने का शाप। श्री-सत्व-हीन होकर ये दैत्यों से परास्त। ब्रह्मा के साथ देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। इनके आदेश से दैत्यों के साथ सन्धि कर क्षीरसागर-मन्थन। देवताओं के अमृतपान करने पर क्रुद्ध दैत्यों का आक्रमण। वे पराजित। (यह प्रसंग बलि के समय का। इनके द्वारा वज्र से बलि का वध। भा० ८।१०।१६, ८।११।१२-१३।) क्षीराब्धि से प्रकट श्रीदेवी (लक्ष्मी) का इनके द्वारा स्तवन। उनका वरदान — त्रिलोकी को वे कभी नहीं छोड़ेंगी। वि० पु० १।६।

शुक्राचार्य की विद्या से पुनः जीवित बलि का अमरावती पर आक्रमण और अधिकार। भा० ८।१५।३, ११, ८।१६।१। भगवान् के वामनावतार में इन्हें अपना सम्पूर्ण अधिकार और वैभव पुनः प्राप्त। दे० 'अदिति', 'बामन'। (असुरों से इनका प्रायः युद्ध। इनके द्वारा उनका मान-मर्दन। कभी-कभी ये पराजित भी। आ० को०।)

इन्द्रतीर्थ में सौ यज्ञों का अनुष्ठान करके ये 'शतक्रतु' नाम से विख्यात। महा० शल्य ४६।२-४। इनकी कामना कि जिस तरह एकमात्र हरि ही 'पुरुषोत्तम', एकमात्र शिव ही 'त्र्यम्बक', उसी तरह एकमात्र ये ही 'शतक्रतु' बने रहें। किसी दूसरे को यह यश न प्राप्त हो। रघु० ३।४६। इसीलिए इनके द्वारा पृथु और दिलीप के सौवें यज्ञ का अश्व-हरण। भा० ४।१६।१-२, १०-११, रघु० ३।३८-३६। राजा सगर के यज्ञ-अश्व का अपहरण। वा० रा० १।३६।५-८। किसी ऋषि को कठिन तप करते देख इन्हें आशंका कि वे इनका धाम छीनने के लिए ही तप कर रहे हैं। अतः उनका तप भंग करने के लिए इनके द्वारा कुचक्र-रचना। नर-नारायण और मार्कण्डेय के पास सहायकों-सहित कामदेव प्रेरित। भा० ११।४।७, १२।८।१५-१६। विश्वामित्र को तपश्च्युत करने के लिए एक बार मेनका को, फिर रम्भा को भेजना। दे० 'बिस्वामित्र'।

गौतम की अनुपस्थिति में उनका रूप धारण कर अहल्या के साथ इनका समागम। इन्हें गौतम का शाप — वा० रा० १।४८।२७-२८ में विफल (अण्डकोश-रहित) होने का, (बाद में पितृदेवों द्वारा मेष के अण्डकोश संयोजित।। वा० रा० १।४६।८।) महा० शा० ३४२।२३ में हरितश्मश्रु होने का, (यहाँ विफल होने का शाप विश्वामित्र का), अ० रा० १।५।२६ एवं सं० ब्रह्मपु० पृ० ३६८ में सहस्रभग होने का। सं० ब्रह्मपु० पृ० ३६८ में गौतम के भय से इनका बिलाव बनना। पृ० ३६६ में गौतम का शापानुग्रह — गोदावरी-स्नान से इनका पापक्षय होगा। ये सहस्रभग से सहस्राक्ष हो जायेंगे। महा० आदि० २१०।२७-२६ में तिलोत्तमा के रूप-दर्शन के लिए ये सहस्राक्ष। सारे शरीर पर छाये ये नेत्र निर्निमेष। रघु० ३।४३।

ब्रह्मा द्वारा कथित गौतम के अन्य शाप — ये शत्रु के हाथ बन्दी बनेंगे। इनके द्वारा प्रवर्त्तित जारभाव मनुष्यलोक में प्रचलित होगा। उस पापाचार के अर्धांश के ये भागी होंगे। ये तथा भविष्य में इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित होनेवाले उस पद पर स्थायी रूप से नहीं रहेंगे। वा० रा० ७।३०।३२-३५।

रामावतार में इनके अंश से वाली का जन्म। वा० रा० १।१७।१०। पाण्डु की तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुत्र देने का वरदान। इनके अंश से अर्जुन की उत्पत्ति। महा० आदि० १२२।२६-३०, ३५। पुलोम-कन्या

इनका पर्वतों के पंख काटना। दे० 'मैनाक'। कबन्ध पर वज्र-प्रहार और अनुग्रह। दे० 'कबंध'।

शची इनके प्रति अनुरक्त। पुलोम की सम्मति से अनुह्लाद द्वारा शची का अपहरण। इनके द्वारा दोनों असुरों का वध। वा० रा० ४।३९।६-७ एवं पाद०। हेमा के प्रति आसक्त होने के कारण मयासुर का वध। वा० रा० ४।५१।१०, १४-१५। राहु को, फिर ऐरावत को खाने के लिए उद्यत बालक हनुमान् की इनके वज्र-प्रहार से मृत्यु। उनके जीवित होने पर इनके द्वारा उनका 'हनुमान्' नामकरण। अपने वज्र से अवध्य होने का वरदान। वा० रा० ७।३५।४५-४७, ७।३६।१, ११, १२। अन्यत्र, अपने वज्र-प्रहार से हनुमान् को अप्रभावित देख उन्हें स्वेच्छामृत्यु का वरदान। वा० रा० ४।६६।२८-२९। जन्म लेते ही कुम्भकर्ण द्वारा प्रजाजनों का भक्षण। उस पर इनका वज्राघात। ऐरावत का एक दाँत उखाड़कर उसी से कुम्भकर्ण का इनके वक्ष पर प्रहार। व्याकुल हो ये ब्रह्मा के शरणागत। वा० रा० ६।६१।१३-१९। इनका रावण से युद्ध। उसे बन्दी बनाने का देवताओं को आदेश। युद्ध से उसे विमुख करना। मेघनाद का अदृश्य होकर इन पर आक्रमण। इनके परिश्रान्त होने पर इन्हें माया से बाँधकर ले जाना। वा० रा० ७।२८।४५-४६, ७।२९।१२-१६, २०, २४-३०। लंका में जाकर, मेघनाद को वर देकर, ब्रह्मा का इन्हें मुक्त करना। इनका देवोचित तेज नष्ट। अहल्या-धर्षण और गौतम-शाप के कारण ही इनके बन्दी बनने का ब्रह्मा-कथन। वा० रा० ७।३०।१-२,७, ११-१७, ३१-३२। राजा मरुत के यज्ञ में रावण को देख भयवश इनका मयूर बनना। उसके चले जाने पर अपने स्वरूप में प्रकट हो मोरों को वरदान। वा० रा० ७।१८।४-५, २१-२४।]

खल-वन्दना में 'सुरानीक' - प्रियता की दृष्टि से ये खलों के उपमान (१।४।१०)। [सुरानीक का अर्थ इनके पक्ष में देव-सेना अथवा सुरा = सोम, खल-पक्ष में सुरा = मदिरा। मा० पी० शब्दार्थ, नोट १।] हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष द्वारा इनके मद-मोचन का उल्लेख (१।१२२।६)। नारद को समाधिलीन देख इन्हें भय कि कहीं वे इनका राज्य न छीन लें। उन्हें विचलित करने के लिए इनका सहायकों-सहित कामदेव को भेजना (१।१२५।५ - १।१२५)। (दे० 'काम'।) इनकी सभा में आकर कामदेव द्वारा नारद का शील-वर्णन (१।१२७।३)। शीलनिधि राजा का वैभव-विलास शत इन्द्रों-सदृश (१।१३०।३)। इनकी प्रेरणा से लंका में यक्षों का वास (१।१७९।२)। 'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।' आकाशवाणी (१।१८७।१)। मिथिलापुरी के निकृष्टतम व्यक्ति की सम्पदा भी इन्हें मोहित करनेवाली (१।२८९।८)। वसिष्ठ के साथ दशरथ की शोभा, जैसे वृहस्पति के साथ इनकी (१।३०२।१)। दशरथ और उनके समाज के आगे ये और इनका समाज फीका (१।३१३।६)। इनका गौतम-शाप को हितकर मानना। (उनके शाप से प्राप्त हजार नेत्रों से) राम-दर्शन करना। सब देवताओं को इनसे ईर्ष्या (१।३१७।६-७)। दशरथ के भुजबल के भरोसे इनका (राक्षसों से निर्भय रहकर) वास (२।२५।२)। इनका महल दशरथ-भवन से हीन (२।९०।७)। इनका आगे बढ़कर दशरथ का स्वागत करना, उन्हें अपने अर्द्ध-सिंहासन पर बैठाना। —सीता-कथन राम से (२।९८।४)। चित्रकूट की पर्णकुटी में सिय-लक्ष्मण-सहित राम का वास, जैसे अमरावती में शची-जयन्त के साथ इनका (२।१४१)। अन्य दिक्पालों के साथ इनके द्वारा भी दशरथ-गुणगान (२।१७३।७)। 'बन रघुपति सुरपति नरनाहू' — कौसल्या-कथन भरत से (२।१७६।३)। [यहाँ सुरपति से तात्पर्य — (१) सुरपति-पुर। वि० व्या०। (२) सुरपति का अर्द्धासन (अन्ते जगाम त्रिदिवे देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः। अ० रा० २।७।९४।) मा० पी० पाद०।] इनके द्वारा दशरथ की, अवध-राज्य की, स्पर्द्धा से सराहना (२।१९९।७, २।३२४।६)। भरत-आतिथ्य के लिए भरद्वाज द्वारा तपोबल से सृष्ट वैभव देख शचीसहित इनके मन में भी अभिलाषा (वैसा वैभव प्राप्त करने की) (२।२१५।६)।

भरत का प्रेम देख इन्हें चिन्ता — राम कहीं लौट न जायें। इनका गुरु से ऐसा उपाय करने का अनुरोध जिससे राम-भरत की भेंट ही न हो। सुनकर वृहस्पति का मुसकाना। मन में सोचना — ये सहस्राक्ष होते हुए भी विवेकशून्य। उनका प्रकट रूप से कथन — रामभक्त पर माया करने से वह उलटकर इन्हीं पर पड़ेगी। पिछली बार जो किया, वह रामेच्छा के अनुकूल था। [यथा, सरस्वती को भेज कुब्जा की मति फेरना। २।११।६-२।१२। तमसा-तट पर अवधवासियों को मायामूढ़ करना २।८५।६।] अब माया रचने पर हानि। दुर्वासा का उदाहरण देकर इन्हें उपदेश। रामभक्त भरत से न डरने का परामर्श। सुनकर इन्हें हर्ष। पुष्पवर्षा कर भरत की सराहना करना (२।२१७।७ - २।२२०।४)।

चित्रकूट में पहली सभा में राम को भरत के वश में देख देवताओंसहित ये भयभीत। इन सबको अनर्थ की आशंका। कुछ उपाय करना भी सम्भव नहीं। मन-ही-मन सब राम के शरणागत। भक्तों के प्रभाव का स्मरण कर

चिन्तित। अन्ततः भरत का ही स्मरण करने का निश्चय। सुनकर वृहस्पति का सबको भाग्यशाली कहना। निश्चिन्त और निर्भय होने का उनका आश्वासन (२।२६५।१-२।२६६।४)। जनक का आगमन सुन इन्हें विशेष चिन्ता (२।२७२)। चित्रकूट की दूसरी सभा में जनक, वसिष्ठ, भरत और सम्पूर्ण समाज की दशा देख, राम को स्नेह-संकोच के वशीभूत जान, इन्हें सोच। देवताओं को माया रचने का आदेश। सरस्वती से भरत की मति फेरने का अनुरोध। सरस्वती की अस्वीकृति और कथन — 'लोचन सहस न सूझ सुमेरू'। माया रचकर, भय-भ्रम, अरति-उच्चाटन फैलाकर इनका विचार — कार्य का बनना-बिगड़ना भरत के हाथ (२।२९४।६ - २।२९६।१)।

ये छली, महामलिन। कपट-कुचाल की सीमा। अपना कार्य साधना और दूसरों का काम बिगाड़ना इन्हें प्रिय। इनकी रीति काक की-सी। किसी पर इन्हें विश्वास नहीं। अवध और जनक का समाज पहले ही दीन-दुखी, उस पर कुमन्त्रणा करके, माया रचकर, इनका उच्चाटन फैलाना। सबको मोहित करना। मरे हुए को मारकर अपना कुशल चाहना (२।३०१-२।३०२।३) भरत, जनक, मुनिजन, मन्त्री और सज्ञान साधुजनों को छोड़ अन्य सब देवमाया से यथायोग्य प्रभावित। उनकी द्विविध मनोगति देख राम का मन-ही-मन हँसकर कहना — श्वान, युवा और इन्द्र (प्रकृति, वृत्ति, धर्म, स्वभाव में) एक-से होते हैं (२।३०२।४-२।३०३।१)। [१।१२५ में भी इनकी उपमा श्वान से।] तीसरी सभा में भरत के बिदा होने के समय इनका पुनः उच्चाटन फैलाना। उसके कारण सबके लिए राम-वियोग उतना प्राणघातक नहीं (२।३१६ - २।३१७।१)।

रावण का भोग-विलास सैकड़ों इन्द्रों के समान (६।१०)। मेघनाद के माया-युद्ध से व्याकुल वानरों की स्थिति, जैसे पर्वत इनकी कैद में पड़ गये हों (६।७३।७)। युद्ध में राम को पैदल देख देवताओं को क्षोभ। [उनका कथन कि यह समान-युद्ध नहीं। यह सुनकर⋯वा० रा० ६।१०२।५-७।] इनका राम के लिए अपना रथ भेजना। दिव्य तेजपुंज रथ अजर-अमर चार घोड़ों से युक्त। मातलि का रथ लेकर आना (६।८९।१-४)। सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद इनके द्वारा सिय-लक्ष्मण-सहित राम की शोभा के दर्शन। राम की स्तुति (६।११२-६।११३)। इन्हें बड़ाई देने के लिए राम का इनसे वानर-भालुओं को जिलाने का अनुरोध। इनके द्वारा सुधा-वृष्टि (६।११४।१-५)।

राम 'गुनातीत अरु भोग पुरंदर' (७।२४।२)। राम का विलास शतकोटि इन्द्रों-सदृश (७।९१।८)। उल्लेख — राजमद से इनके कलंकित होने का (२।२२९।१), रण में रावण द्वारा त्रस्त होने का (६।१०४।७)। अन्य उल्लेख — (२।९२, ७।१२८।५)। [मानस में 'इंद्र' शब्द का प्रयोग केवल सामासिक शब्दों में (यथा इंद्रकुलिस, इंद्रधनुष, इंद्रजीत आदि) अथवा 'स्वामी' के अर्थ में सन्धि में (यथा, कोसलेन्द्र, योगीन्द्र आदि।]

मूल शब्द — १।४।१०, १।१७९।२, ६।११४।४, ७।९१।८ (जाति०)।

पर्याय — (१) सम्बन्धसूचक

(क) **अमरपति**— २।२१८, २।३१६।

देवपति — २।२६६।३।

सुर ईस — ६।११२।

सुरनाथु — २।२२९।१।

सुरनायक (विष्णु भी) — १।२८९।८।

सुरपति — १।१२२।६, १।१२५, १।१२७।३, १।३१७।७, २।२५।२, २।९०।७, २।९८।४, २।१७३।७, २।१७६।३, २।२६५।४, २।३०३।१, ६।७३।७, ६।८९।२, ६।११४।१, ७।१२८।५।

सुरपाल — २।२१९।

सुरबर — २।२२०।३।

सुराऊ — २।२२०।४ **सुरराजु** — २।२७२, २।२९४, २।३२४।६। **सुरराजू** — १।३१३।६, २।२६५।१, २।२९६।१, २।३०२।१। **सुरराया** (शिव भी) — २।२१८।२।

सुरेस (राम भी) — १।१२५।५, १।१३०।३ (जाति०), १।३१७।६, २।२१५।६, २।२१७।७, २।२१८।४, २।२१९।१, ६।१०४।७, ६।११४।२। **सुरेसा** — १।१८७।१।

(ख) **अमरावति पालू** — २।१९६।७।

नाकपति (स्वर्ग के स्वामी) — २।९२।

(२) रूपवाचक —

सहसनयन — २।२१८।४

(३) गुणबोधक —

बासव (वासव। जिनके पास वसु अर्थात् धन-सम्पत्ति है। आ० को०।)। २।१४१।

मधवा (जो पूजित होते हैं। ह० को०।) — २।३०१।

मधवान — २।३०२।८।

(४) चरित्रबोधक —

पाकरिपु (पाक नामक राक्षस के शत्रु। उसके हन्ता। महा० शा० ६८।४६।) — २।३०२।२।

पुरंदर (शत्रु-पुर के दारक, उसका भेदन करनेवाले। ह० को०।)— १।३०२।१, १।३१७।७, ७।२४।२।

सुनासीर (जिनकी अग्रगामी सेना सुष्ठु है। ह० को०।) — १।१२५।७, ६।१० (जाति०)।

सची (शची) — इन्द्र-पत्नी इन्द्राणी।

पुलोमा-पुत्री शची (पौलोमी) ~ कश्यप-अदिति-पुत्र इन्द्र > जयन्त, ऋषभ, मीढ्वान्। भा० ६।६।२५, ३६, ६।१८।७ अ० रा० १।७।५६।

[ऋग्वेद में 'शची' शब्द का अधिकतर प्रयोग बहुवचन में। यह शब्द इन्द्र-पत्नी का द्योतक नहीं। इन्द्र की पत्नी का नाम इन्द्राणी। वरुणानी आदि की तरह इनका महत्व भी गौण। ऋ० (५।४६।८) में इन्हें 'ग्ना' कहा गया है। ऋ० (१।२२।१२, २।३२।८ आदि) में इनका रक्षा के लिए आह्वान। ध० इ० प० पृ० १०-११। इनका इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा बाँधना। उससे समर्थ होकर इन्द्र द्वारा असुर-विजय। ध० इ० च० पृ० ५३।

इन्हें देख देवराज बने नहुष मोहित। इनकी प्राप्ति के लिए व्यग्र। इनके कारण उनका पतन। दे० 'नहुष'। इनके अंश से द्रोपदी की उत्पत्ति। महा० आदि० ६७।१५७।]

शारदा, रमा, भवानी आदि देवियों के साथ इनका भी छद्म नारिवेश में जनक के अन्तःपुर की स्त्रियों में जा मिलना। मंगल-गीत गाना (१।३१८।६-८)। चित्रकूट की पर्णकुटी में सिय-लक्ष्मण-सहित राम का वास, जैसे अमरावती में इनके और जयन्त के साथ इन्द्र का (२।१४१)। भरद्वाज के तपोबल से सृष्ट वैभव देख इनके और इन्द्र के मन में भी अभिलाषा (२।२१५।६)।

मूल शब्द — १।३१८।६, २।१४१, २।२१५।६।

सजीवनि मूरि — संजीवनी बूटी। मृतक को जीवित करनेवाली एक ओषधि। बृ० को०।

गुरु-चरण-रज इसके चूर्ण के सदृश (१।१।२)। इसके सदृश — कौसल्या के लिए सीता (२।५६।६, २।५६), रामकथा (१।३१।७, ७।१२२।७, ७।१२६।२)।

मूल शब्द — १।३१।७, २।५६। सजीवन मूरी — ७।१२२।७, ७।१२६।२।

पर्याय — **अमिअ मूरि** — १।१।२।

जिअन मूरि — २।५६।६।

सठ — एक वानर-वीर। [वा० रा० ५।६।२४ में एक राक्षस का नाम शठ। वहाँ किसी वानर का यह नाम नहीं।]

रावण-दूत शुक द्वारा द्विविद आदि बारह वानर-वीरों में इनका भी नामोल्लेख और कथन — ये सब सुग्रीव के ही समान। राम-कृपा से बलशाली। त्रिलोक को तृणतुल्य समझनेवाले (५।५४-५।५५।२)।

मूल शब्द — ५।५४।

सतरूपा (शतरूपा) — स्वायम्भुव मनु की पत्नी।

[द्विधा विभक्त ब्रह्मा के एक भाग से ये प्रकट। दूसरे भाग से प्रकट स्वायम्भुव मनु इनके पति। इनके दो पुत्र, तीन कन्याएँ। उनकी सन्तान से जगत् आपूर्ण। भा० ३।१२।५२-५६। भोग, भगवद्भक्ति और तप में ये पति की अनुगामिनी। भा० ३।२२।२३, ८।१।७। महा० में शतरूपा के स्थान पर 'सरस्वती' मनु-पत्नी। उद्यो० ११७।१४। दे० 'स्वायंभू मनु'।]

उत्तम धर्माचरण और सन्तानोत्पत्ति के बाद पति के साथ इनका नैमिषारण्यगमन, कठोर तप और भगवद्दर्शन (दे० 'स्वायंभू मनु' — १।१४२।१-७, १।१४३।१-५, १।१४३।७ - १।१४८)। प्रभु का इनसे वरदान माँगने के लिए

कहना। इनका निवेदन — मनु का माँगा हुआ वरदान इन्हें अत्यन्त प्रिय। फिर याचना — 'जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।। सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरण सनेहु। सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।' वर देकर इनके अलौकिक विवेक के कभी नष्ट न होने का प्रभु-कथन (१।१५०।३ - १।१५१।३)। कुछ काल तक आश्रम में रहकर पति के साथ इनका देह-त्याग और अमरावती-गमन (१।१५२।७-८)। इनके पवित्र इतिहास का शिव द्वारा पार्वती से कथन (१।१५२)।

मूल शब्द — १।१४२।१, १।१४८।६, १।१५०।३।

सतानंद (शतानन्द) — एक ऋषि। राजा जनक के पुरोहित।

गौतम ~ अहल्या > शतानन्द > सत्यधृति > शरद्वान् > कृप, कृपी। भा० ९।२१।३४-३६।

[वा० रा० में — ये महातेजस्वी। १।५१।१२। तपस्या से कान्तिमान्। विश्वामित्र के मुख से अपनी माता अहल्या की शापमुक्ति और गौतम से उनके संयोग का वृत्तान्त सुन इन्हें रोमांच १।५१।१-११।]

विश्वामित्र को लाने के लिए ये जनक द्वारा प्रेषित। राम द्वारा इनकी चरण-वन्दना (१।२३९।६-१।२३६)। धनुष-भंग हो जाने पर राम के निकट जाने की (जयमाल डालने की) सीता को इनकी आज्ञा (१।२६३।८)। बरात की अगवानी करनेवालों में ये भी (१।३०९।५-६)। विवाह का लग्न निकट आने पर जनक का इनसे विलम्ब का कारण पूछना। इनके आदेश से मन्त्रीगण सब मंगल-साज सजाकर उपस्थित (१।३१३।१-२)। लग्न का समय देख वसिष्ठ का इन्हें सादर बुलाना। राजकुमारी (सीता) को शीघ्र लाने के लिए कहना। आज्ञा पाकर इनका मुदित मन से अन्तःपुर में जाना (१।३२२।१-३)। [वि० १।३२२।१-२ व्या० के अनुसार ये चिरकारी (महा० में गौतम-पुत्र) मालूम होते हैं। हर काम के सम्बन्ध में विचार करने लगना, उसमें देर लगाना, उनका स्वभाव था। इनका भी यही स्वभाव। इसीलिए इन्हें बार-बार शीघ्रता करने के लिए कहा जाता है।] कौशिक के साथ इनका जनक के पास जाना। दशरथ को विदा करने का उन्हें परामर्श देना (१।३३२।६-८)। चित्रकूट में इनके द्वारा भी धर्म-नीति-वैराग्यपूर्ण उपदेश (२।२७८।२-३)।

मूल शब्द— १।२३६, १।२६३।८, १।३०९।५, १।३१३।२, १।३३२।६। सतानंदु — १।२३९।६, १।३२२।१

पर्याय — **जनक पुरोधा** — २।२७८।२।

सती — दे० 'भवानी'।

सत्यकेतु — (सत्य की ध्वजा धारण करनेवाले।) विश्वविदित केकय देश के राजा।

[भा० में एक चन्द्रवंशी सत्यकेतु — धर्मकेतु के पुत्र, धृष्टकेतु के पिता। ९।१७।८-९। प० पु० भू० ४८ में विदर्भराज। इनकी कन्या पद्मावती। ४।५।]

ये धर्म-धुरन्धर। (धर्म के चार चरण— सत्य, शील, दया, दान। चारों में निपुण।) नीति-निधान। तेज, प्रताप, शील, बल से सम्पन्न। इनके दो पुत्र — ज्येष्ठ का नाम प्रतापभानु और कनिष्ठ का अरिमर्दन (१।१५३।२-६)। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर भगवद्भजन के लिए इनका वन-गमन (१।१५३।८)। विप्रशाप से इनके कुल का नाश (१।१७५।७)। उल्लेख — कपटमुनि द्वारा (१।१६४।१)।

मूल शब्द — १।१५३।२, १।१६४।१, १।१७५।७।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द — **धरम धुरंधर** (दशरथ, राम, भरत, स्वायम्भुव मनु भी) — १।१५३।३।

सत्रुहन (शत्रुघ्न) — ('शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारं'। शत्रुहन्ता या शत्रुघाती होने के कारण इनका यह नाम। अ० रा० १।३।४१।) दशरथ और सुमित्रा के पुत्र।

[स्वरूप— चतुरक्षर— संयुक्त प्रणव में ये उकार, स्वप्न के विभु तैजस (उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः)। मन की सूक्ष्म वासना द्वारा कल्पित मनोमय जगत् ही स्वप्न, अतः स्वप्न पद यहाँ सूक्ष्म जगत् का बोधक। सूक्ष्म जगत् ही जिनका स्थान, जो अन्तःप्रज्ञ, भूः, भुवः आदि सात लोक ही जिनके अंग, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण — ये उन्नीस समष्टि-करण ही जिनके मुख, वे प्रविविक्त — सूक्षम जगत् के भोक्ता तैजस (प्रकाशस्वरूप हिरण्यगर्भ) चतुष्पादविभूति परमेश्वर के द्वितीय पाद या अंश। राम-पक्ष में शत्रुघ्न ही द्वितीय पाद।

भगवान् के चतुर्व्यूहों में प्रद्युम्न अर्थात् काम के अंश होने से शत्रुघ्न सबके मन में स्थित। स्वप्नावस्था में

अन्य इन्द्रियों के सुप्त हो जाने पर भी मन कार्यरत (और ये मन में स्थित), अतः इनकी स्वप्न में भी स्थिति। इस दृष्टि से ये स्वप्नस्थान। अन्तःकरण की बातों के ज्ञाता होने के कारण अन्तःप्रज्ञ। जैसे स्थूल जगत् का भार शेषरूपधारी लक्ष्मण पर, वैसे ही सूक्ष्म लोकों का भार समष्टि-मन में स्थित संकल्पमय प्रद्युम्न (काम) पर, जो इनसे अभिन्न। अतः अपने अंगों पर सातों सूक्ष्म लोकों का भार वहन करने के कारण ये सप्तांग। उन्नीस विद्याएँ इनके मुख में स्थित, इसलिए ये एकोनविंशतिमुख। सूक्ष्म लोकों के अधिष्ठाता और सूक्ष्म तत्वों के भोक्ता होने के कारण प्रविविक्तभुक्। तेजोमय, परम कान्तिवान् होने से ये तैजस। रा० उ० ता० पृ० ५४२-५४४।

विष्णु का रामावतार होने पर ये उनके सुदर्शन चक्र से उद्भूत। प० पु० उ० २४२।९६।]

ये शूरवीर, सुशील, भरत-अनुगामी। इनके चरण-कमलों में नमन (१।१७।९)। इनका जन्म हविष्यान्न के उस चतुर्थांश के अर्धभाग के फलस्वरूप जो सुमित्रा को दशरथ से प्राप्त (१।१९०।२-४, १।१९५।१)। [चतुर्थांश के अन्य अर्धभाग से लक्ष्मण का जन्म। दे० 'दसरथ'। अ० रा० १।३।३८ एवं रघु० १०।७१ के अनुसार ये और लक्ष्मण यमज।] राजा से वसिष्ठ-कथन — चारों भाई वेद के तत्व (अर्थात् प्रणव)। इनके स्मरण से शत्रु का नाश, अतः उनके द्वारा इनका नामकरण शत्रुघ्न (१।१९७।८, १।१९८।१,२)। इनमें और भरत में सेवक और स्वामी की-सी प्रीति। इन दोनों की और लक्ष्मण-राम की जोड़ियाँ देख माताओं का (दीठ लगने से बचाने के लिए) तृण तोड़ना (१।१९८।४-६)। (दे० 'भरत'।)

ये गौरवर्ण और भरत श्यामवर्ण। दोनों लक्ष्मण-राम जैसे। इनमें और लक्ष्मण में एकरूपता। — जनकपुर की सखियों का परस्पर कथन (१।३११।३-४, ७-८)। जनकपुरवासियों की आँचल पसारकर विधि से विनती कि चारों भाइयों का उसी नगर में विवाह हो (१।३११।छं०)। इनका श्रुतकीर्ति से विवाह। एक ही मण्डप में वधुओंसहित चारों भाई ऐसे शोभित जैसे जीव के हृदय में चारों विभु अपनी-अपनी अवस्था के साथ (१।३२५।छं० ३-४)। [श्रुतकीर्ति स्वप्न और ये तैजस। दे० 'उरमिला'।] विदा के समय इनसे मिलकर जनक का आशीर्वाद देना (१।३४२)।

विषादग्रस्त मन्थरा से कैकेयी का अन्य भाइयोंसहित इनकी कुशल पूछना (२।१३)। कैकेयी की कुटिलता सुनकर इनका रोष से जलना, किन्तु विवश। उसी समय वस्त्राभूषण-सज्जित मन्थरा को उपस्थित देख उस पर क्रोध निकालना। उसके कूबड़ पर पद-प्रहार करके, उसे सर्वांगदुष्टा समझ केश पकड़कर घसीटना। भरत का छुड़ाना। दोनों भाइयों का कौसल्या के निकट गमन (२।१६३।१-८)। कौसल्या का इन्हें हृदय से लगाना (२।१६५।२)।

शृंगवेरपुर में निषादराज की प्रीति देख इनका उनसे मिलना (२।१९६।३)। चित्रकूट में राम-लक्ष्मण का इनसे मिलन (२।२४१, २।२४२।१)। सीता की चरणधूलि को भरतसहित मस्तक पर धारण करके इनका बार-बार प्रणाम करना (२।२४२।३-५)। इन्हें सीता के पास छोड़कर राम का अवध-समाज से मिलने के लिए गमन (२।२४३।१)। विदा के समय राम का हर्षित होकर इन्हें हृदय से लगाना (२।३१८।४)।

अयोध्या लौटकर राम, लक्ष्मण का इनसे मिलना (७।५, ७।६।१)। भरत के साथ इनका सीता के चरणों में नमन (७।६।२)। राम के राज्याभिषेक के समय इनका (प्रभु के बायीं ओर खड़े होकर) व्यजन करना (७।१२।छं०१)। इनके और लक्ष्मण के साथ भरत का राम-सखाओं को विदा कर लौटना (७।१९।१, ६)। अन्य भाइयों के साथ इनके द्वारा सदा सानुकूल रहकर राम की सेवा। प्रभु की भी इन सब पर अत्यधिक प्रीति। सब भाइयों के दो-दो पुत्र (७।२५।१-३, ८, ७।२६।३)। [इनके पुत्रों के नाम सुबाहु और शत्रुघाती। वा० रा० ७।१०८।९-१२।] भरत और हनुमान् के साथ उपवन में जाकर इनका भी पवनसुत से रामगुण-गाथाएँ पूछना। ये भी प्रभु-कथा-रसिक। बार-बार सुनकर भी तृप्ति नहीं (७।२६।४-६)। राम द्वारा इनके और भरत के अवध में न होने का कथन (२।७१।२)। वसिष्ठ द्वारा तीनों भाइयों के साथ इनका भी उल्लेख (२।१७३)। आकाशवाणी में उल्लेख (१।१८७।५)।

[ये सदा भरत के साथ। पृथक् रूप से इनका नामोल्लेख बहुत कम। भरत दोउ भाई (यथा, २।१६७।१, २।१७१।३, २।१८७, २।३११।२), दोउ भाई (यथा, २।२५६।४, २।३१८।७), सानुज (यथा, २।१९८।२, २।२२३।३, २।२४२।३, २।२९८, २।३१०।२, २।३२३।६), लघु भाई (यथा, २।२३३।६, २।३२३।२), भाइ लघु (यथा, २।२०३।२), अनुज (यथा, ७।३ क) आदि शब्दों द्वारा स्थान-स्थान पर भरत के साथ इनकी उपस्थिति की

सूचना। तीनिउँ भाई (यथा, ७।३३।१), भरतादिक भ्राता (यथा, ७।५०।२) आदि में तीनों रामानुजों के एक साथ होने का संकेत। इन प्रसंगों के लिए दे० 'भरत'।]

मूल शब्द – १।१९७।८, १।१९८।४, २।१७३, ७।५, ७।२६।४।

पर्याय – **रिपुदमनु** – २।१३। रिपुदवनु – २।३१८।४। रिपुदवनू – २।२४३।१।

रिपुसूदन – १।१७।६, १।३२५।छं० ३, १।३४२, २।२४१। रिपुसूदनु – २।७१।२।

रिपुहन – २।१६३।७।

सत्रुघुन – २।१६३।१।

सत्रुसूदनु – १।३११।७।

इनके लिए प्रयुक्त सम्बन्धसूचक शब्द – **भरत अनुगामी** – १।१७।६।

भरतानुज – ७।६।१।

भरत लघु भाई – २।१९६।३।

रघुकुल तिलक (राम, लक्ष्मण, भरत भी) – १।१८७।५।

लखन लघु भाई – २।१६३।३, २।१६५।२।

सत्व (सत्त्व) – जीवात्मा को देह-बन्धन में बाँधनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न, तीन गुणों में एक। गीता० १४।५।

[यह प्रकाशक, निर्विकार, निर्मल, सुख में प्रवृत्त करनेवाला, ज्ञानाभिमानमूलक। मनुष्य में तीनों गुण विद्यमान। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर इसकी वृद्धि होने पर चेतनता और ज्ञान उत्पन्न। गीता० १४।६, १०, ११, भा० ११।२५।१२, १३। फलतः चित्त प्रसन्न, इन्द्रियाँ शान्त, देह निर्भय, मन अनासक्त। इससे देवताओं का बलोत्कर्ष। भा० ११।२५।१६, १९। सत्त्व गुण की वृत्तियाँ – शम (मनःसंयम), दम (इन्द्रिय-निग्रह), तितिक्षा (सहिष्णुता), विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, लज्जा (पाप करने में स्वाभाविक संकोच) आदि। भा० ११।२५।२।]

राम-माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य चारों युगों के धर्म विद्यमान। शुद्ध सत्त्वगुण, समता और विज्ञान सत्ययुग के प्रभाव के लक्षण (७।१०४।१-२)। त्रेता में इस गुण की अधिकता, रजोगुण की स्वल्पता, कर्म में रति, सब प्रकार से सुख (७।१०४।३)। सत्त्व और तमोगुण की स्वल्पता, रजोगुण की अधिकता, मन में हर्ष और भय द्वापर के सूचक (७।१०४।४)।

मूल शब्द – ७।१०४।२, ७।१०४।३, ७।१०४।४।

सनकादि – सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार। ब्रह्मा के मानस-पुत्र। भा० ३।१२।३-४। भगवान् के संकल्प से उत्पन्न। गीता० १०।६। भगवान् के अवतार। भा० १।३।६।

[(१) सृष्टि के प्रारम्भ में विविध लोक-रचना की इच्छा से ब्रह्मा का तप। उससे प्रसन्न हो, 'तप' अर्थवाले 'सन' नाम से युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार के रूप में भगवान् का अवतार-ग्रहण। प्रलय के कारण पहले कल्प का आत्मज्ञान ऋषियों को विस्मृत। अतः सनकादि के रूप में भगवान् का ऋषियों को आत्मज्ञान का यथावत् उपदेश जिससे ऋषियों को परम तत्व का साक्षात्कार। भा० २।७।५।

(२) प्रजा-सृष्टि करने का ब्रह्मा का आदेश इनके द्वारा अस्वीकृत। ये जन्म से ही वीतराग, विमत्सर, ज्ञान-सम्पन्न, मोक्षमार्गी, वासुदेवपरायण। ऊर्ध्वरिता मुनि। भा० ३।१२।४-५, वि० पु० १।७।८-९। सूर्य-से तेजस्वी, दिव्य कान्ति-सम्पन्न, सिद्धेश्वर। भा० ४।२२।१-२। निरन्तर ब्रह्मानन्द में निमग्न। भा० ३।१५।४३। भगवान् शंकर के भी अग्रज। भा० ४।२२।६। आयु में सर्वज्येष्ठ होने पर भी पाँच वर्ष के बालकों-से। दिगम्बर-वृत्ति-धारी। भा० ३।१५।३०, ७।१।३६, भा० मा० २।४६। अनासक्त रहकर समस्त लोकों में आकाशमार्ग से विचरण। भा० ३।१५।१२।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य को पुनः चैतन्य-लाभ कराने के लिए इनका नारद को श्रीमद्भागवत-पारायण का आदेश। भागवत-महिमा, सप्ताह-श्रवण-माहात्म्य, सप्ताह-यज्ञ-विधि का नारद को उपदेश कर इनके द्वारा एक सप्ताह तक भागवत-कथा का प्रवचन। भा० मा० २-६।

भा० में इन चारों के नामों का एक साथ उल्लेख केवल ३।१२।४ में। चारों प्रायः सदा एक साथ, अतः

चतुष्टय के रूप में इनके सम्बन्ध में कथन, यथा 'कुमारा' (भा० मा० २-४, ६), 'सनकादीन्' (भा० मा० २।४४), 'सनकादयः' (३।१५।१२), 'सनकाद्या' (४।८।१), 'सनन्दनादयः' (७।१।३५)। वि० पु० १।७।८ में भी 'सनन्दनादयः'। (इसी तरह मानस में भी 'सनकादि', 'सनकादिक', 'सनकादी'।) भा० में पृथु के महासत्र में उपस्थिति चारों की, पृथु को आत्मतत्व का उपदेश कुमार (सनत्कुमार) द्वारा (४।२२)। छा० ७ में नारद को क्रमशः एक के बाद दूसरी उत्तम उपासना का उपदेश करते हुए (७।१-२२) अन्त में सनत्कुमार द्वारा भूमा की मीमांसा। नारद को अज्ञानान्धकार का पार दिखाने के कारण उनकी संज्ञा 'स्कन्द' (७।२३-२६)। महा० में सनकादि की संख्या सात – सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल, सनातन। शा० ३४०।७२-७३।]

शुक, नारद आदि ब्रह्मज्ञ भक्त मुनियों के साथ इन्हें भी प्रणति (१।१८।५-६)। नाम-प्रसाद से इनके ब्रह्मसुख-भोगी होने का कथन (१।२६।२)। [ये श्रीरामस्तवराजस्तोत्र के ऋषि जिसमें 'श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।' मा० पी० १।२६।२ नोट ५ ग।] परमार्थवादी होने पर भी ये रामकृपा के आकांक्षी – अत्रि-कथन राम से (३।६।५)। रावण-वध के बाद रघुपति-दर्शन कर ये प्रेममग्न, सुखी (६।१०५।२-३)। राम-राज्य में राम-दर्शन के लिए इनका प्रतिदिन अयोध्या-आगमन। नगर देख विराग-विस्मरण (७।२७।१-२)। ये तेजपुंज, गुण-शील-सम्पन्न, सदा ब्रह्मानन्द में लीन। ब्रह्मा के प्रथम मानस-पुत्र होने पर भी देखने में बालक-सदृश। दिगम्बर। भेदभाव-रहित। ज्ञान-निधान, जैसे मूर्त्तिमान् चारों वेद। रघुपति-चरित-श्रवण ही इनका एकमात्र व्यसन। इसी उद्देश्य से अगस्त्याश्रम में जाना (७।३२।३-८, ७।१२३।५) [सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः। लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः।। हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः। अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते।। – इनके प्रति नारद-कथन। भा० मा० २।४७-४८।] उपवन-दर्शन के लिए राम के जाने पर, उपयुक्त अवसर देख, इनका अगस्त्याश्रम से उपवन में आना। इन्हें देख हर्षित हो राम का दण्डवत् करना। इनके सम्मानार्थ बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछाना। हनुमान्सहित तीनों भाइयों का इन्हें दण्डवत् करना (७।३२।१-३, ७।३२, ७।३३।१)। प्रभु के अनुपम रूप को निहारते हुए इनकी दृष्टि निर्निमेष। आँखों में प्रेमाश्रु, शरीर पुलकित। इन्हें देख स्वयं प्रभु की भी यही दशा। प्रभु का इन्हें हाथ पकड़कर बैठाना। सन्त कहकर सत्संग-प्राप्ति के लिए स्वयं को धन्य मानना (७।३३।२-७।३३)। इनके द्वारा प्रभु की स्तुति। अनपायनी भक्ति की याचना। अभीष्ट वर पाकर, नमन कर, ब्रह्मलोक-गमन (७।३४।१-७।३६।१)। जीवन्मुक्त, ब्रह्मानन्द-मग्न होने पर भी ध्यान छोड़, समाधि को बिसरा कर इनका नारद से रामचरित-श्रवण करना, नारद की सराहना करना। ये रामचरित के परम अधिकारी (७।४२।७ - ७।४२)। 'केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा' के उदाहरण-स्वरूप इनका उल्लेख (७।७०।६, ८)। [इनके द्वारा क्रोधवश जय-विजय को शाप। दे० 'जय'।] शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, नारद आदि ब्रह्मज्ञानियों की तरह इनका भी मत कि 'करिअ राम पद पंकज नेहा' (७।१२२।१२-१३)।

मूल शब्द – सनकादि – १।१८।५, १।२६।२, ७।२७।१, ७।३२।७, ७।३५, ७।१२३।५। सनकादिक – ७।३२।३, ७।३६।१, ७।४२।७, ७।१२२।१२। सनकादी – ३।६।५, ६।१०५।२, ७।७०।६।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **समदरसी** (राम भी) – ७।३२।५।

सप्तरिषि (सप्तर्षि) – सात महर्षियों की समष्टि। सात ताराओं का एक मंडल।

[इनके लक्षण – ऋषियों में जो सप्तगुणसम्पन्न, अर्थात्, जो दीर्घायु, मन्त्रकर्ता, ऐश्वर्यवान्, दिव्यदृष्टियुक्त, गुण-विद्या में वृद्ध, प्रत्यक्षधर्मा (धर्म का प्रत्यक्ष या साक्षात्कार करनेवाले) एवं गोत्रप्रवर्तक, उनकी संज्ञा सप्तर्षि। वायु-पुराण ६१।६३-६४, महा० भी० ३४।६ पाद० के अनुसार।

स्वायम्भुव मन्वन्तर के सप्तर्षि – मरीचिरत्रिर्भगवानंगिरा पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः।। उत्तरस्यां दिशि तथा राजन्सप्तर्षयोऽपरे। यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायम्भुवेऽन्तरे।। ह० पु० ७।८-६। महाभारत में 'सप्तर्षि' शब्द का प्रयोग नहीं, उपर्युक्त सातों का नाम 'चित्रशिखण्डी' (मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः।। शा० ३३५।२६)। ये प्रकृति के सात रूप, प्रवृत्ति धर्म के संचालक, प्रजापति। सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्ता। ये एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, संयमी, सत्यधर्म-परायण। प्रधान वेदवेत्ता, वेदाचार्य। जगत् के हित-साधन और परमात्म-प्राप्ति के लिए इनके द्वारा शास्त्र का प्राकट्य। महा० शा० ३३५।२७-३२, ३४०।६६-७०।

चतुर्युगी (बारह हजार दिव्य वर्ष) के अन्त में समय के उलट-फेर से जब श्रुतियाँ नष्टप्राय, तब सप्तर्षि द्वारा अपनी तपस्या से उनका पुनः साक्षात्कार और सनातन धर्म की रक्षा। भा० ८।१४।४। प्रत्येक मन्वन्तर (इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल) में मनु, देवगण, इन्द्र आदि के साथ सप्तर्षि भी बदलते हैं। इस प्रकार चौदह मन्वन्तर (= एक हजार चतुर्युगी = ब्रह्मा का एक दिन = एक कल्प) में चौदह भिन्न-भिन्न सप्तर्षि। भा० ३।११।२२-२४।

वैवस्वत मन्वन्तर (वर्तमान सातवें मन्वन्तर) के सप्तर्षि — कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः। जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः।। भा० ८।१३।५, वि० पु० ३।१।३२। वटु वामन भगवान् को इनके द्वारा कुश समर्पित। भा० ८।१८।१६।]

आकाश में ध्वनित ब्रह्मवाणी — सप्तर्षि के मिलने पर पार्वती उस वाणी को सत्य समझें (१।७५।४)। इनसे शिव का कथन — ये पार्वती के प्रेम की परीक्षा लें। उन्हें घर जाने के लिए हिमालय को भेजें (१।७७।८ - १।७७)। इनका उमा के पास जाना। उनके तप का कारण पूछना। यह सुनकर हँसना कि वे नारद के उपदेश से शिव-प्राप्ति के लिए तप कर रही हैं (१।७८।१ - १।७८)। इनके द्वारा नारद और शिव की निन्दा (१।७९।१ - १।७९)। वररूप में उन्हें (उमा को) विष्णु की प्राप्ति कराने का प्रलोभन देना (१।८०।१-४)। उमा द्वारा इनका उपहास। इनसे लौट जाने की प्रार्थना (१।८०।४ - १।८१।७)। उनका शिव में अटल प्रेम देखकर इनके द्वारा उनकी जयजयकार। उनके चरणों में नमन कर प्रस्थान (१।८१।८-१।८१)। इनका हिमालय को पार्वती के पास भेजना। स्वयं शिव के पास जाकर उमा-सम्बन्धी सब बातें कहना (१।८२।१-३)। ब्रह्मा का इन्हें हिमालय के घर भेजना। पहले इनका पार्वती से मिलना। उन्हें शिव द्वारा काम-दहन का समाचार देकर कथन — अब उनका प्रण मिथ्या (१।८९।७ - १।८९)। पार्वती की बातें सुनकर ये हर्षित। उन्हें नमन कर इनका हिमालय के पास जाना (१।९०।१ - १।९०)। सब संवाद सुनाना। उनसे लग्न-पत्रिका लेकर ब्रह्मा को देना (१।९१।१-२, ५-६)। रुद्र-वेश देखकर भयभीत मेना के घर में घुस जाने का समाचार सुन हिमालय का नारद और इनके साथ घर जाना (१।९७)।

मूल शब्द — १।७७।८, १।८२।२, १।८२।३, १।८९।७, १।९१।५। सप्तरिषीसा — १।७५।४। रिषि सप्त — १।९७।

सबर (शबर) — कीकट (मगध) देशवासी पुल्कस जाति का एक व्यक्ति।

[यह राग-काम-क्रोधयुक्त। परद्रोह-परायण। जीव-हत्या करने, लोगों का धन लूटने, परस्त्रियों का सतीत्व-हरण करने में सदा प्रवृत्त। इसके अन्तकाल में पाश-मुद्गर के लिये 'ताम्रकेशा दीर्घनखा लम्बदंष्ट्रा भयानक' यमदूतों का दाँत किटकिटाते हुए आना। कोई जीभ खींचने को, कोई आँखें निकालने को, कोई कान काटने, दाँत तोड़ने को प्रस्तुत। कुम्भीपाक और रौरव नरक में ले जाने के लिए उनका इसे लौहपाश से बाँधना। इस पर करुणा कर एक भगवद्भक्त महात्मा का शालग्राम-शिला हाथ में ले इसके पास जाना। भगवान् शालग्राम का तुलसीदलमिश्रित चरणामृत इसके मुख में डाल कान में राम नाम जपना। मस्तक पर तुलसी और हृदय पर शालग्राम-शिला रख कहना — 'यातना देनेवाले यमदूत चले जायें। शालग्राम-शिला-स्पर्श से इसके महत् पातक भस्म हों।' तत्काल विष्णु-पार्षदों का आगमन। उनके द्वारा शालग्राम-शिला, तुलसी, रामनाम-महिमा-वर्णन और इसके पाप-नाश का कथन (तुलसी मस्तके यस्य शिलाहृदि मनोहरा। मुखे कर्णेऽथ वा रामनाम मुक्तस्तदैव सः।। ८१)। एक दिव्य विमान का आकर इसे स्वर्ग ले जाना। वहाँ भोगोपभोग के बाद काशी में इसका जन्म, भगवदाराधन और परमपद-प्राप्ति। पं० पु० पा० २०।४५-९१।]

उन व्यक्तियों के साथ इसका नामोल्लेख जो रामनाम-प्रभाव से मुक्त (२।१९४)।

सबरी (शबरी) — वर्णबाह्य शबर जाति की स्त्री। भगवद्भक्त। 'सिद्धा', विज्ञानी, जटा-चीर-कृष्णमृगचर्म-धारिणी। वा० रा० ३।७४।६, १९, ३२। तेईस हरिवल्लभों में हनुमान्, जामवन्त आदि के साथ इनकी गणना। भक्त० पृ० ७८-७९।

[अपने विवाह के समय भोज के लिए बहुत-से जीव एकत्र देख इनके मन में जग-प्रपंच से विराग। उसी रात भागकर पम्पासर के पास छिपना। सन्त-सेवा की लालसा, पर जाति से नीच। अतः रात रहते मतंग मुनि के आश्रम के पास लकड़ियों का बोझ रख, स्नान-मार्ग के कंकड़ साफ कर, मन को सन्तोष। मतंग मुनि के आदेश से शिष्यों का एक रात इस अज्ञात सेविका को पकड़ना। ये भय-कम्पित, मतंग मुनि प्रेम-पुलकित। उनका कथन— 'कैऊ

कोटि विप्रताई यापै वारि डारियै।' अपने आश्रम में इन्हें वास देना, इनके कानों में महामन्त्र रामनाम सुनाना। अपने इस कार्य से मतंग जाति-वहिष्कृत। इनको सानुज राम के दर्शन और सत्कार करके रामधाम आने का आदेश देकर उनका परलोक-गमन। भक्त पृ० ८७-९० वा० रा०, अ० रा० में मतंग नाम नहीं। वहाँ इनके द्वारा सेवित गुरु महर्षियों का ब्रह्मलोक जाते समय इनसे राम-लक्ष्मण-आगमन के सम्बन्ध में कथन। वा० रा० ३।७४।१४-१६, अ० रा० ३।१०।११-१६।

भक्त० में एक प्रासंगिक कथा — मतंग मुनि के परलोक-गमन के बाद एक दिन इन्हें मार्ग साफ करने में विलम्ब। एक प्रतिपक्षी मुनि का इन्हें देख लेना, स्पर्श हो जाना। कुपित मुनि का पुनः स्नान करने के लिए लौटना। जल का रुधिर बन जाना, उसमें कीड़े पड़ना। मुनि का विश्वास — इनका स्पर्श-दोष ही कारण। इनके आश्रम में प्रभु-आगमन-समाचार से मुनियों का अभिमान-भंग। प्रभु से जल-शुद्धि का उपाय पूछना। प्रभु-कथन — इनके पाँव छूकर, अपराध क्षमा कराके वे सादर इन्हें जल-समीप ले जायें और इनके चरणों से जल का स्पर्श करायें। मुनियों का वैसा ही करना। जल का शुद्ध, सुवासित हो जाना। पृ० ९०-९४।]

अधम-योनि होने पर भी गीध (जटायु) के साथ 'सुसेवक' रूप में इनके सुगति पाने का कथन (१।२४)। जटाजूटधारी राम-लक्ष्मण का इनके आश्रम में प्रवेश। उनके दर्शन कर, मुनि के वचन याद कर, इनका पुलकित होना। प्रभु-चरणों में लिपटना। ये प्रेममग्न, कण्ठ अवरुद्ध। बार-बार पद-सरोज में सिर झुकाना। फिर चरण धोकर सुन्दर आसन पर बैठाना। कन्द-मूल-फल लाकर खिलाना। उसके स्वाद की प्रभु द्वारा प्रशंसा (३।३४।५ - ३।३४)। [भक्त० २१ में प्रभु-प्रतीक्षा में इनका बेर आदि फल लाकर, चखकर, मीठे फल प्रभु के लिए एकत्र करना — 'चाखै धरि राखै फिर मीठे उन जोग हैं'।] प्रेमविह्वल हो अपनी चरम अधमता, मतिमन्दता, स्तुति की अयोग्यता का इनके द्वारा करबद्ध निवेदन। प्रभु-कथन — 'मानउँ एक भगति कर नाता'। भक्तिविहीन की जाति-पाँति-कुल-धर्म-बड़ाई व्यर्थ (३।३५।१-६)। उनके द्वारा इन्हें नवधा भक्ति का उपदेश (३।३५।७-३।३६।५)। नौ में एक भी जिसे प्राप्त, वह प्रभु का अतिशय प्रिय। शबरी में तो सब प्रकार की भक्ति दृढ़। योगियों के लिए दुर्लभ गति इनको आज सुलभ। 'मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।' (३।३६।६-९)। [अ० रा० में प्रभु द्वारा निरूपित नवधा भक्ति और भक्ति संबंधी कथन इसी के अनुरूप ३।१०।२२-३१।] सीता के सम्बन्ध में प्रभु के पूछने पर पम्पा-सर में सुग्रीव से मित्रता होने और उनसे सब ज्ञात होने का इनका कथन। बार-बार प्रभु के चरणों में सिर झुकाकर प्रेमसहित सब कथा सुनाना (जो मतंग मुनि ने प्रभु के आगमन और तदुपरान्त इनके देह-त्याग के सम्बन्ध में कही थी)। हरि-मुख-दर्शन कर, उनके चरण-कमल को हृदय में धारण कर, योगाग्नि से देह त्याग इनका हरिपद में लीन होना (३।३६।१०-छं०) भुशुण्डि-कथित मूल मानस-कथा में प्रभु द्वारा इनकी मुक्ति का उल्लेख (७।६६।७)।

मूल शब्द — १।२४, ३।३४।५, ३।३४।६, ३।३४।८, ७।६६।७।

समन — दे० 'जम'।

सरजू (सरयू) — उत्तरी भारत की एक नदी। ब्रह्मसर से निकलने के कारण इसका नाम सरयू। वा० रा० १।२४।१०।

[ऋग्वेद (४।३०।१८, ५।३३।९, १०।६४।९) में यह सरस्वती और सिन्धु के साथ वर्णित। वहाँ इसकी संज्ञा 'सरयु'। ध० इ० तृ० पृ० १४९६। यह कैलास-स्थित मानस-सरोवर (ब्रह्मसर) से निकलकर गंगा में मिलित। इसके तट पर अयोध्या नगरी। वा० रा० १।२४।८-१०। महा० में कैलास की ओर जाती हुई गंगा को वसिष्ठ का मानसरोवर में लाना। गंगा द्वारा मानस का भेदन। उससे जो स्रोत प्रकट, वह सरयू नाम से प्रसिद्ध। महा० अनु० १५५।२३-२४। राम का इसके जल में प्रवेश कर परमधाम-गमन। वा० रा० ७।११०।७। वह स्थान गोप्रतार तीर्थ के नाम से विख्यात। महा० वन० ८४।७०-७१। सरयू का नाम ही घाघरा या घर्घर। ध० इ० तृ० पृ० १४९६, बृ० को०।]

यह कलि-कलुष-नाशक, अति पवित्र। इसकी वन्दना (१।१६।१)। यह अयोध्या की उत्तर दिशा में प्रवाहित। इसका जल निर्मल और गम्भीर। इसके घाट सुन्दर। दूर, सबसे अलग, लम्बे-चौड़े घाट पर अश्व-गज-समूह द्वारा जल-पान। स्त्रियों के लिए अनेक पनघट जहाँ पुरुषों का प्रवेश नहीं। राजघाट पर चारों वर्णों के व्यक्तियों का स्नान। इसके किनारे देवताओं के अनेक मन्दिर जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन। तट पर कहीं-कहीं ज्ञानरत

उदासियों, मुनियों, संन्यासियों का वास। मुनियों द्वारा रोपित तुलसी-वृक्षों के समूह शोभित (७।२८-७।२६।६)। प्रातःकाल इसमें स्नान करना राम की दिनचर्या में सम्मिलित (७।२६।१)।

इसके दर्शन, स्पर्श, मज्जन, पान से पाप-हरण। इसकी अमित महिमा कहने में शारदा भी असमर्थ (१।३५।१-२) [मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेन यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते।। प्रयागे यो नरो गत्वा माघानां द्वादशं वसेत्। तत्फलादधिकं प्रोक्तं सरयूदर्शने कृते।। मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलादधिकं प्रोक्तं सरयूदर्शने कृते। मा० पी० १।३५।२ नोट २।)] स्वयं राम का अंगदादि से कथन — इसमें स्नान करने से मनुष्य को अनायास उनके समीप निवास (सामीप्य मुक्ति)-प्राप्ति (७।४।५-६)। राम-जन्म के दिन सज्जन-वृन्द का इसके जल में मज्जन (१।३४)।

रामचरित-मानस में अवगाहन करने से निर्मल-बुद्धि कवि के मन में उछाह। प्रेमानन्द का प्रवाह। उससे राम के निर्मल यशरूपी जल से पूरित कविता-नदी निःसृत। इस कविता-नदी का नाम सरयू। (दे० 'रामचरितमानस' के अन्तर्गत '(३) मानस के जग-प्रचार का हेतु : रामचरितमानस काव्य और सरयू नदी का रूपक।')

इसमें विश्वामित्र का मज्जन करना (१।२०६)। इसके तट पर दशरथ का दाह-संस्कार (२।१७०।४)। इसके सम्बन्ध में कथन (७।३।१०)। इसका जातिवाचक रूप में प्रयोग (७।८९।६)।

मूल शब्द — १।१६।१, १।३४, १।३६।१२, ७।३।१०, ७।४।५, ७।२८, ७।८९।६ (जाति०)। सरऊ — १।२०६, ७।२६।१। सरजु — १।४०।१, २।१७०।४।

पर्याय — **सुमानस नंदिनि** — १।३६।१३।

सरद (शरत्)— भारत की छः ऋतुओं में एक। इसमें दो मास — आश्विन और कार्त्तिक।

मानस में इसका प्रयोग प्रधानतः निर्मलता सूचित करने के लिए। इस ऋतु में जल-थल-आकाश, सम्पूर्ण प्रकृति स्वच्छ। चन्द्र विमल, प्रभामण्डित। चन्द्रिका उज्ज्वल। तारे भी स्पष्ट।

सुकवि के मनरूपी शरत्-आकाश में रामचरित तारागण के समान (१।३२।१२)। रामकथा के अन्तर्गत राम-राज्य का सुख, विनय, बड़ाई ही सुखद निर्मल सुन्दर शरद्ऋतु (१।४२।६)। राम-राज्याभिषेक-मुहूर्त्त के लिए सबकी उसी तरह आर्त्त प्रतीक्षा, जिस तरह इस ऋतु की स्वातिवर्षा के लिए तृषित चातक-चातकी की (२।५२)। पति के साथ वन न जाने और घर में ही रहने की ममतामयी सीख सीता के लिए वैसी ही, जैसी चकई के लिए शरच्चन्द्रिका (२।६४।२, २।७८)। भरत-देह का दुबला होना और उनके तेज तथा धर्म की वृद्धि, जैसे शरत् के प्रकाश से जल का घटना और बेंत का बढ़ना। भरत-हृदय ही शरत् का निर्मल आकाश — शम-दम-नियमादि उस आकाश के नक्षत्र, (राम और राम-वचन में) अटल विश्वास ही ध्रुव तारा, चौदह वर्षों की अवधि पूर्णिमा, स्वामी की स्मृति आकाश में फैली सुरवीथी, रामप्रेम ही समाजसहित हृदयाकाश में शोभित निश्चल, निष्कलंक चन्द्रमा (२।३२५।१-६)।

राम द्वारा शरत्-वर्णन — यह ऋतु शोभाशाली। इसमें फूले हुए कास से धरती आच्छादित। सर-सरिता स्वच्छ जल से शोभित। अगस्त्य नक्षत्र का उदय। जल का धीरे-धीरे सूखना। मछलियाँ विकल। आकाश मेघरहित, निर्मल। पंक या धूल का लेश भी नहीं। कहीं-कहीं स्वल्प वृष्टि। वर्षा के कारण रुके हुए राजा, तपस्वी, भिक्षुक, व्यापारी का (क्रमशः विजय, तप, भिक्षाटन, व्यापार के लिए) नगर से प्रस्थान (४।१८।१, ४।१६।१, ४।१६)। अगाध जल में रहनेवाली मछलियाँ सुखी। सुन्दर सरों में कमल विकसित, भ्रमरों का गुंजन। पक्षियों का कलरव। तृषित चातक की रटन। निशि में तापहारी चन्द्रिका। चकोर-समुदाय का शरदिन्दु को अपलक देखना। [कवि-प्रसिद्धि कि ये सन्ध्या समय मुखर। चन्द्रिका-पान कर तृप्त। हि० सा० भू० पृ० २१९-२२०।] रात्रि को चक्रवाक दुखी [कवि-प्रसिद्धि कि दिन में यह सदा चक्रवाकी के साथ, रात को वियुक्त। अग्निवेश रामायण के अनुसार विरह-कातर राम का उपहास करने के कारण वियोग-अभिशाप-भागी। हि० सा० भू० पृ० २२०।] वर्षा में बढ़े हुए जीवों का इस ऋतु में नाश (४।१७।१-४।१७)।

४।१६।२ से ४।१७।२ तक एवं ४।१७।४ से ४।१७ तक प्रत्येक दोहे की पहली पंक्ति और प्रत्येक चौपाई के प्रथम चरण में शरत् या उसके प्रभाव का वर्णन, उसी दोहे की दूसरी पंक्ति और उसी चौपाई के द्वितीय चरण में उदाहरण-स्वरूप जीवन के सत्य, नीति, ज्ञान, भक्ति आदि से सम्बन्धित मर्म-कथन।

भुशुण्डि-कथिल मूल रामायण में इस ऋतु के वर्णन का उल्लेख (७।६६ ख)। सौन्दर्य की दृष्टि से — शरच्चन्द्र के सदृश, राम का मुख (१।१४७।१, १।३१६।३, २।६५।८, २।११६, ३।१२), रघुपति-छवि (१।२३२।६), शरत्-पूर्णिमा-चन्द्र-सदृश राम-लक्ष्मण-मुख (२।११५)। शरच्चन्द्र हीन, शिव-मुख से (१।१०६।८), राम-लक्ष्मण-मुख से (१।२४३।२), सिय-मुख से (३।३०।११)। शरत्-कमल के समान राम-नेत्र (२।११६, २।२२६)। यह उपमान — पार्वती-मोह का (१।१२०।१), मायारूपिणी नारी का (३।४४।४)। अन्य उल्लेख (६।४६।६)।

मूल शब्द — १।३२।१२, १।४२।६, १।१०६।८, १।१२०।१, १।१४७।१, १।२३२।६, १।२४३।२, १।३१६।३, २।५२, २।६४।२, २।६५।८, २।७८, २।११५, २।११६, २।११६, २।२२६, २।३२५।३, ३।१२, ३।३०।११, ३।४४।४, ४।१६।१, ४।१६।६, ४।१७।६, ४।१७, ६।४६।६, ७।६६ ख।

पर्याय — **निर्मल रितु** — ४।१८।१।

सरभंग (शरभंग) — एक ऋषि, भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि की कोटि के। मा० पी० ३।१२।१ नोट १।

[इनका आश्रम दण्डकारण्य में (वा० रा० ३।१।१, ३।५।३), अथवा दण्डकारण्य के निकट (महा० वन० २७७।४०-४१), उत्तराखण्ड में भी (महा० वन० ९०।६।]

(विराध-वध के बाद) सिय-लक्ष्मण-सहित राम का इनके पास आना। ये अति धन्य। इनका नेत्रों से राम-रूप का पान करना (३।७।८-३।७)। विनयपूर्ण कथन— जब ये ब्रह्मलोक जाने को प्रस्तुत, तभी समाचार प्राप्त कि राम वन में आयेंगे। तब से ये प्रतीक्षारत। अब प्रभु के दर्शन कर मन को शान्ति (३।८।१-३)। [वा० रा० में इन्हें ब्रह्मलोक ले जाने के लिए स्वयं इन्द्र उपस्थित, किन्तु रामागमन का ज्ञान होने के कारण प्रभु-दर्शन किये बिना ब्रह्मलोक जाना इन्हें अस्वीकार। वा० रा० ३।५। ४-२४, २८-३०। अ० रा० में इनका राम से कथन — बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः।। तव सन्दर्शनाकांक्षी राम त्वं परमेश्वरः। अ० रा० ३।२।४-५।] इनका निवेदन — ये साधनहीन। दीन जानकर प्रभु ने कृपा की — अपने दीनदयाल आदि होने के प्रण की रक्षा के लिए। इन पर कोई एहसान नहीं किया (३।८।४-५)। प्रभु से तब तक ठहरने की इनकी प्रार्थना जब तक ये देह त्यागकर उनसे मिल न जायें। अपने सम्पूर्ण शुभ कर्म प्रभु को अर्पित कर उनसे भक्ति-वर की प्राप्ति। चिता बनाकर, इहलोक-परलोक की सब वासनाएँ त्यागकर, वर-याचना— सिय-लक्ष्मण-सहित राम सगुण रूप में निरन्तर इनके हृदय में निवास करें (३।८।६-३।८)। योगाग्नि से शरीर-दहन कर प्रभु-कृपा से इनका वैकुण्ठ-गमन। (योगाग्नि से देह त्यागनेवाला हरिपद-लीन, किन्तु) पहले ही भेद-भक्ति का वर प्राप्त करने के कारण हरि में लीन न होना। इनकी गति देख ऋषि-समूह को विशेष सुख (३।९।१-३)। [वा० रा० में इनका ब्रह्मलोक जाना (३।५।४२-४३), अ० रा० में लोकपति-लोक (३।२।१२।] भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इनकी देह-त्याग-विधि का उल्लेख (७।६५)। [सर = शर = चिता। चिता लगाकर शरीर भंग करने के कारण इनका अपने नाम को चरितार्थ करना। मा० पी० ३।७।८ शब्दार्थ।]

मूल शब्द — ३।७, ७।६५। सरभंगा — ३।७।८, ३।८।८।

ससि (शशि) — जिसमें शश अर्थात् खरगोश की आकृति का कलंक हो। आ० को०। पृथ्वी का उपग्रह। वायुविहीन।

(१) मनु-शतरूपा > देवहूति ~ कर्दम > अनसूया ~ अत्रि > चन्द्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासा (क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अंश।) भा० ३।१२।५३-५६, ३।२४।२२, ४।१।१५।

(२) अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न। अमृतमय। ब्राह्मण, ओषधि, नक्षत्रों के अधिपति। भा० ६।१४।३।

(३) क्षीरसागर से जन्म। वि० पु० १।९।९७। महा० आदि० १८।३४।

(४) विराट् पुरुष का मन। भा० २।१।३४, ३।६।२४।

[क्षीरसागर से उत्पन्न होने पर शिव का इन्हें मस्तक पर धारण करना। वि० पु० १।९।९७। इनका देवलोक-गमन। महा० आदि० १८।३७। दक्ष की सत्ताईस नक्षत्राभिमानिनी कन्याओं से इनका विवाह। केवल रोहिणी इनकी हृदयवल्लभा, अतः दूसरों को ईर्ष्या। उनकी दक्ष से शिकायत। दक्ष का इन्हें समझाना — सबके प्रति ये समभाव रखें। इनका आचरण पूर्ववत्। दक्ष के पुनः समझाने पर भी अन्य पत्नियों के प्रति इनका उपेक्षा-भाव। तब दक्ष द्वारा रोषपूर्वक राजयक्ष्मा की सृष्टि। उसका इनमें प्रवेश। अनेक यज्ञ-याग करने पर भी उससे छुटकारा नहीं। धीरे-धीरे इनका क्षीण होना। इनके क्षय से लता, वीरुत् (वीरुध्), ओषधि, बीज और सम्पूर्ण प्रजा भी क्षीण। इससे

देवताओं के, और उनके बिना संसार के, क्षय की आशंका। अतः इनको शाप-मुक्त करने के लिए देवताओं का दक्ष से अनुरोध। दक्ष-कथन — यदि ये सब पत्नियों के प्रति समान व्यवहार करें, सरस्वती के तीर्थ प्रभासक्षेत्र में उन्मज्जन और शिव-आरारधन करें, तो इन्हें अपनी कान्ति पुनः प्राप्त होगी। आधे मास तक ये प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मास तक निरन्तर बढ़ते रहेंगे। इनके द्वारा तद्वत आचरण। अमावस्या को उस तीर्थ में गोता लगा पुनः शीतल किरणें प्राप्त कर जगत् को प्रकाशित करना। प्रत्येक अमावस्या को वहाँ स्नान कर इन्हें कान्ति-पुष्टि-लाभ। महा० शल्य ३५।४५-८६। सं० ब्र० पु० में दक्षशाप से त्रस्त हो शंकर के शरणागत। शिव का इन्हें अपने मस्तक में स्थान देना। दक्ष का शिव से इन्हें माँगना। न मिलने पर वे शिव को शाप देने के लिए प्रस्तुत। फिर भी शिव का इन्हें न लौटाना। तब विप्रवेशधारी हरि का चन्द्रमा से चन्द्रमा को खींचकर दक्ष को देना। आधे चन्द्रमा शिव-मस्तक पर रोगमुक्त रहकर प्रतिष्ठित्। दक्ष को प्राप्त चन्द्र क्षय-ग्रस्त। दक्ष की प्रार्थना पर हरि की व्यवस्था कि ये एक पक्ष तक क्रमशः क्षीण और दूसरे पक्ष में क्रमशः पुष्ट हो परिपूर्णता लाभ करें। सं० ब्र० पु० ब्रह्म० पृ० ३७-३८। उन पत्नियों से इन्हें कोई सन्तान नहीं। भा० ६।६।२३-२४।

ब्रह्मा द्वारा ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रों के अधिपति बनाये जाने के बाद इनका त्रिलोक-विजय कर राजसूय यज्ञ करना। अहंकारवश इनके द्वारा वृहस्पति-पत्नी तारा का बलपूर्वक हरण। वृहस्पति की बार-बार याचना पर भी तारा को न लौटाने पर देव-दानव-संग्राम। असुरों के साथ शुक्राचार्य इनके पक्ष में, महादेव अपने विद्यागुरु अंगिरा के पुत्र वृहस्पति की ओर। इनकी भर्त्सना कर ब्रह्मा का तारा को वृहस्पति के सुपुर्द करना। वे गर्भवती। वृहस्पति के कहने पर गर्भ-त्याग। कनकप्रभ बालक उत्पन्न। उस पर मुग्ध हो उसे प्राप्त करने के लिए इनका और वृहस्पति का दावा। पुत्र इनका है, यह जान ब्रह्मा द्वारा वह इन्हें समर्पित और उसका नामकरण 'बुध'। भा० ६।१४।३-१४। इनमें कलंकरूप मृग-चिह्न (दे० 'मृग')।

देवताओं के अमृत-पान के समय राहु नामक दैत्य का देव-वेष में अमृत पीना। उसके कण्ठ तक अमृत के पहुँचते-पहुँचते चन्द्र-सूर्य द्वारा उसका भेद-ज्ञापन। हरि-चक्र से उसका शिरश्छेद। ब्रह्मा द्वारा ग्रहरूप में परिणत अमर राहु-शिर का वैरवश पूर्णिमा-अमावस्या को इन पर और सूर्य पर आक्रमण। भा० ५।२४।२, ८।६।२४-२६। महा० आदि० १६।४-६। अतः इनकी रक्षा के लिए भगवान् द्वारा अपना सुदर्शन चक्र नियुक्त। उसके असह्य तेज से उद्विग्न राहु का मुहूर्त्तभर के लिए इनके सामने रह सहसा लौट जाना। उसका उतनी देर का ठहरना ही 'ग्रहण'। भा० ५।२४।३।

ये भगवान् की विभूति (नक्षत्राणामहं शशी। गीता० १०।२१) सोलह कलाओं से युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान्। समस्त प्राणियों के पोषक, अतः 'सर्वमय'। भा० ५।२२।१०। वटु वामन भगवान् को इनके द्वारा दण्ड-दान। भा० ८।१८।१५। इनका रथ तीन पहियोंवाला। उसमें सागरगर्भ से निकले दस श्वेत अश्व जो एक बार जुतकर कल्पपर्यन्त रथ को खींचते हैं। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस देवताओं द्वारा इनमें स्थित अमृत का पान। इससे इनकी कला क्षीण और सूर्य द्वारा शुक्ला प्रतिपदा से प्रतिदिन पुनः इनका पोषण। वि० पु० २।१२।१-७। मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के उत्तर में स्थित इनकी पुरी का नाम 'विभावरी'। भा० ५।२१।७, वि० पु० २।८।६-११। ज्योतिश्चक्र के शिशुमार (सूंस)-रूप में शिशुमार के मन में इनकी स्थिति। भा० ५।२३।७।

कवि-प्रसिद्धि कि इंनकी चन्द्रिका का पान कर चकोर को तृप्ति, चक्रवाक-मिथुन (चकवा-चकवी) का रात को वियोग। अग्निवेश रामायण के अनुसार स्त्री-वियोग में कातर राम को देख चक्रवाकों द्वारा उपहास, अतः इस प्रकार वियुक्त होने का उन्हें राम का शाप। हि० सा० भू० कवि-प्रसिद्धियाँ १२, १३, पृ० २२०-२२१।

अमर० में इनके बीस नाम — हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः। विधुः सुधांशुः शुभ्रांशुः ओषधीशो निशापतिः।। अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौः मृगांकः कलानिधिः। द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः।। १।६७-६८।]

शंकर-आश्रय के कारण ये वक्र होने पर भी वन्दित। शंकर-देह कुंद-इंदु-सम (१।१।श्लो० ३, सो० ४)। गुणवत्ता के उदाहरणरूप में सुधा आदि के साथ उल्लेख (१।५।८)। व्यवहारतः शुक्लपक्ष इनका वर्धक और कृष्णपक्ष ह्रासकारी (१।७ ख)। पूर्ण चन्द्र देख समुद्र का बढ़ना सज्जनता का लक्षण (१।८।१४)। 'राम' नाम 'हेतु कृसानु भानु हिमकर को' (१।१६।१)। 'राम' नाम के दो अक्षर जग-हित के लिए सूर्य-चन्द्र (१।२०।६)। 'बरु पावक प्रगटै ससि माहीं' (१।७१।८)। शिव के ललाट पर ये शोभित (१।९२।३)। शिव-मुख-शोभा के सामने फीके (१।१०६।८)।

हरि की हास-छटा के आगे इनकी किरणावली मलिन (१।१४७।२)। राहु द्वारा रवि-शशि को दुख दिये जाने का उल्लेख (१।१७०)। ये अष्ट लोकपालों में एक — रावण के अधीन (१।१८२।१०-१२)। राम के अद्भुत अखण्ड रूप में अगणित रवि शशि आदि (१।२०२।१)। इनके व्याज से व्यतिरेक रूप में राम द्वारा सिय-मुख-छवि-वर्णन। ये सिय-मुख के उपमान, किन्तु 'जनम सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक'। अतः सिय-मुख-समकक्ष नहीं। इनमें ह्रास-वृद्धि, कोक और विरहिणी के लिए ये दुखदायी, राहु के ग्रास। वस्तुतः अवगुण-खानि (१।२३७।७-१।२३८।४)। 'बक्र चन्द्रमहिं ग्रसइ न राहू' (१।२८१।६)। राम बिना अवध नगरी वैसी ही जैसी इनके बिना रात्रि (२।५०।छं०) 'चंद किरन रस रसिक चकोरी' (२।५९।८)। 'जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू' (२।११९।३)। पथिकरूप में राम-सीता-लक्ष्मण मानो विधु-रोहिणी-बुद्ध (२।१२३।४) राम-वियोग में राजा दशरथ वैसे ही जैसे अमृतविहीन चन्द्र (२।१४८।४)। राजमद के दोष-कथन में इनका गुरु-तिय-गामी होने का कथन (२।२२८)। विधि-हरि-हर-रवि आदि के साथ ये भी रामाज्ञाधीन (२।२५४।६)। शंकर विवेक-जलधि के लिए आनन्दकारी पूर्णेन्दु (३।१।श्लो०१)। 'सरदातप निसि ससि अपहरई' (४।१७।६)। इन्हें देख चकोर-समुदाय का निर्निमेष होना (४।१७।७)। 'पावकमय ससि स्रवत न आगी' — विरहिणी सीता की चिन्ता (५।१२।९)। सीता-विरह में राम के लिए ये सूर्य के समान (५।१५।२)। परस्त्री का ललाट चौथ का चन्द्रमा (५।३८।६)। शंख-इन्दु-सी देह-कान्तिवाले शंकर के ये प्रिय (६।१।श्लो०२)। इन्हें पूर्व दिशा में उदित देख सुबेल पर्वत पर विश्रामरत राम-कथन — ये 'मृगपति सरिस असंक'। पूर्व दिशारूपी पर्वत-गुहा में इनका निवास। तेज-प्रताप-बल-राशि। अन्धकाररूप मत्त गज का मस्तक विदीर्ण कर अब सिंह-सदृश आकाशरूपी वन में इनका निर्भय विचरण (६।११ ख - ६।१२।२)। इनके कालेपन के संबंध में सबका मत जानने की प्रभु-इच्छा। सुग्रीव के अनुसार वह पृथ्वी की छाया। अन्य मत — राहु की मार से पड़ा दाग। रति-मुख बनाते समय ब्रह्मा द्वारा इनका सारभाग-हरण जिससे इनके हृदय में छिद्र, उसी छिद्र से आकाश की काली छाया दृष्टिगोचर। राम-कथन — प्रिय बन्धु होने के कारण विष को इनका अपने हृदय में स्थान देना, विषभरी किरणें फैलाकर वियोगी नर-नारियों को जलाना। हनुमान् का निवेदन — ये राम के प्रिय दास। हृदयस्थित श्याम राम-मूर्त्ति की श्याम झलक ही वह कालिमा (६।१२।४ - ६।१२ क)।

ये विराट्पुरुष के मन (६।१५ क)। विरहिणी सीता द्वारा रात्रिसहित इनकी निन्दा (६।१००।३)। शंकर कुन्द-इन्दु शंख से सुन्दर गौरवर्ण (७।१।श्लो०३, १।१०६।६)। राम-राज्य में 'बिधु महि पूर मयूखन्हि' (७।२३)। 'राकापति षोडस उअहिं…' (७।७८ ख)। भुशुण्डि को राम-उदर में अगणित रवि, शीश आदि के दर्शन (७।८०।५)। राम 'ससि सत कोटि सुसीतल' (७।९१ क)। सन्त-उदय इनके और सूर्य के उदय-सा सुखकारी (७।१२१।२१)। उपमानरूप में इनका बहुल प्रयोग। निम्नलिखित के उपमान — राम (१।१६।५, १।२४५।१, १।२६३।७, १।२६४।७, १।३१४।७, ३।११।७, ३।११, ३।१२, ७।३ ग, ७।९ क), राम-छवि (१।२३२।६), राम-रूप (१।२६२।३)। सन्त (१।१४ च), रावण (३।२८।६), राम-लक्ष्मण (१।२१६।३, १।२३२, १।२४१।३), भानुवंश (१।२७४।२), हरिमुख (१।१४७।१), शिवमुख (४।१।श्लो० २, ७।५२ ख), राममुख (१।३१६।३, १।३२१, १।३५७।७, २।१।६, २।६५।८, २।६८।८, २।११५।५, २।१४०।२, २।१५६।२), राममुख-शोभा (१।२०७।६), राम-लक्ष्मण-मुख (१।२१९।६, १।२४३।२ — व्यतिरेक, २।११५, २।११६), सियमुख (१।२३०।३, १।२५८, १।३२५।९, २।११७।६), कैकेयी-मुख (२।२६।४), परशुराम-मुख (१।२६८।५), अवध-सुहागिनों के मुख (१।२९७।२), मृगनयनी-मुख (७।११५ ख), शिव-कृपा (१।१५।९), शिव-गिरा (१।१२०।१), राम-कृपा (१।१९८।७), राम-नाम (३।४२ क), राम-प्रेम (२।३२५।६), राम-अंगुलि-नख (७।७६।६ — व्यतिरेक), राम-लक्ष्मण-हँसी (१।२४३।५— व्यतिरेक), माया-वराह-दन्त (१।१५६।५, ६) हरि-हर-यश (१।४।३), भरत-यश (२।२०९।१, २।२१०।१, २।३०३), पुलस्त्य-यश (५।२३।२), लोकपाल-बल (६।२२ क), नृप-भुज-बल (१।२५०।१), अवध-महल-कलश (१।१९५।६, ७।२७।७ — व्यतिरेक)। उपमान चन्द्र-किरण—राम-हँसी की (७।७७।४), राम-चरित की (१।३२ ख), रामकथा की (१।४७।७)। उदाहरणरूप में प्रयोग — इनके उगने से चकोर त्रासमुक्त (१।२८६।४)। इनकी किरणें चकवे के लिए दुखदायी (२।२६।४, २।६४।२, २।७८)। अन्यत्र उल्लेख (१।११७।३, २।७, २।४८, २।५५।२, २।९७।६, २।१६९।२, ३।३०।११, ६।३५।४, ६।१०४।५, ७।७३।३)।

मूल शब्द — १।७ ख, १।१४ च, १।१५।९, १।१६।५, १।४७।७, १।७१।८, १।९२।३, १।११७।३,

१।१२०।१, १।१५६।५, १।१७०, १।१८२।१०, १।२०२।१ (जाति०), १।२०७।६, १।२३०।३, १।२३२।६, १।२३७।७, १।२६३।७, १।२६४।७, १।२६८।५, १।२९२।२, १।३२५।९, २।२९।४, २।११९।३, २।२२८, २।२५४।६, ३।२८।६, ३।३०।११, ४।१७।६, ५।१२।९, ५।१५।२, ५।२३।२, ६।११ ख, ६।१२।२, ६।१२।४, ६।१२।५, ६।१२।६, ६।१२।७, ६।१२।९, ६।१२ क, ६।१५ क, ६।२२ क, ६।३५।४, ६।१००।३, ६।१०४।५, ७।३ ग, ७।२७।७, ७।५२ ख, ७।७३।३, ७।७६।६, ७।७७।४, ७।९१ क (जाति०)।

पर्याय — **इंदु** — १।१।सो०४, १।१०६।६, १।१९५।६, १।१९८।७, ३।१।श्लो०१, ३।११, ३।१२, ४।१।श्लो०२, ४।१७।७, ६।१।श्लो०२, ६।१२।८, ७।१।श्लो०३, ७।१२१।२।

कुमुदबंधु — १।२४३।५।

चंद — १।१०६।८, १।२१६।३, १।२४३।२, २।२६।४, २।५०।छं०, २।५९।८, २।६४।२, २।७८, २।११५।५, ५।३८।६। चंदु — १।२३७, २।१।६, २।४८, २।९७।६, २।१४८।४। चंद्र — १।१।श्लो० ३, १।३२।

चंद्रमा — १।२३८।२, १।२८१।६।

निशेश — ३।११।७।

बिधु — १।८।१४, १।२०।६, १।१४७।२, १।१५६।६, १।२३२, १।२३८।४, १।२४१।३, १।२५०।१, १।२५८, १।२८६।४, १।२९७।२, १।३१४।७, १।३१६।३, १।३५७।७, २।७, २।६५।८, २।६८।८, २।११५, २।११७।६, २।१२३।४, २।१४०।२, २।१५६।२, २।१६६।२, २।२०९।१, २।२१०।१, २।३०३, २।३२५।६, ६।१२ क, ७।२३, ७।११५ ख।

मयंक — १।१४७।१, १।२१९।६, ६।११ ख। मयंका — ५।२३।२।

रजनीसा — ७।८०।५ (जाति०)।

राकापति — ७।७८ ख।

राकेस — १।४।३, १।३२ ख, १।२४५।१, १।२७४।२, ७।९ क। राकेसु — १।२६२।३।

शशांक — ६।१।श्लो० २।

सर्बरीनाथ — २।११६।

सुधाकर — १।५।८, २।५५।२, ७।५१।६।

सोम — ३।४२ क।

हिमकर — १।१९।१, १।२३७।८।

सहसबाहु — कार्त्तवीर्य अर्जुन। हैहयराज कृतवीर्य के पुत्र।

[श्रेष्ठ क्षत्रिय। भगवान् दत्तात्रेय को प्रसन्न कर उनसे एक सहस्र भुजाएँ और युद्ध में अजेय होने का वर प्राप्त। उनकी कृपा से अष्टसिद्धि और विपुल ऐश्वर्य के स्वामी। योगेश्वर। एक बार नर्मदा नदी में सुन्दरियों के साथ जल-विहार करते हुए अपनी भुजाओं से इनका नदी-प्रवाह को अवरुद्ध करना। जल का विपरीत दिशा में बहना। निकटवर्ती रावण का शिविर आप्लावित। रावण का क्रोध-प्रदर्शन। इनका उसे पकड़ना। राजधानी महिष्मती में ले जाकर बन्दी बनाना। बाद में पुलस्त्य के कहने पर मुक्त करना। भा० ९।१५।१७-२२। देव-यक्ष-ऋषियों पर इनके अत्याचार। एक दिन बल-मद-मत्त होकर शची के साथ प्रमोदरत इन्द्र पर आक्रमण। तब इनके वध के लिए अवतार लेने की प्रभु की प्रतिज्ञा। महा० वन० ११५।१३-१८।

एक दिन शिकार खेलते हुए गहन वन में जमदग्नि के आश्रम पर पहुँचना। कामधेनु के प्रताप से मुनि द्वारा इनका सेनासहित अद्भुत स्वागत। उनका ऐश्वर्य देख इन्हें ईर्ष्या। अभिमानवश वत्ससहित कामधेनु का बलात् हरण। प्रतिशोध के लिए आकुल परशुराम द्वारा अपनी सेना का संहार देख इनका उनसे युद्ध। उनकी कुठार से इनंकी सहस्र भुजाओं और मस्तक का छेदन। इनके दस हजार पुत्रों का पलायन। पश्चात् पुत्रों द्वारा जमदग्नि के शिरश्छेद के फलस्वरूप परशुराम के हाथों उनका वध। इनका कुलनाश। भा० ९।१५।२३-४१, ९।१६।९-१६।]

खलगण 'पर अकाज भट सहसबाहु से' (१।४।३)। परशुराम के लिए शिव-धनु-भंजक इनके समान शत्रु (१।२७१।४)। परशुराम का परशु इनकी भुजाओं का छेदक (१।२७२।८)। राजमद से कलंकित होनेवाले इन्द्र आदि के साथ इनका उल्लेख (२।२२९।१)। इनसे रावण के संघर्ष की हनुमान् की व्यंग्योक्ति (५।२२।१)। राम द्वारा

(परशुराम-रूप में) इनके वध का मन्दोदरी-कथन रावण से (६।६।८)। रावण को देख विशेष प्रकार के जन्तु की तरह इनका पकड़ना और कौतुकवश घर ले जाना। पुलस्त्य का उसे छुड़ाना। — अंगद का व्यंग्य-कथन (६।२४।१५-१६)। इनके भुजा-छेदन का उल्लेख (६।२६।२)। रावण द्वारा इनके और बलि तथा वाली के विजित होने की अंगद की व्यंग्योक्ति (६।२६।८)।

मूल शब्द -- १।४।३, १।२७।१४, १।२७२।८, २।२२६।१, ५।२२।१, ६।२६।२, ६।२६।८।

पर्याय — सहसभुज — ६।६।८, ६।२४।१५।

सांख्यसास्त्र (सांख्यशास्त्र) — षड्दर्शनों में एक।

[यह नितान्त प्राचीन दर्शन। इसके सिद्धान्त बीजरूप से प्राचीन उपनिषदों में प्राप्त। भा० द०, पृ० ७०४। दीर्घकाल तक यह लुप्त। कपिल द्वारा इसका पुनः प्रवर्त्तन। भा० ३।२४।३७।

इस दर्शन में प्रकृति और पुरुष — यह द्वैतमत का प्रतिपादक। इसमें प्रकृति और पुरुष द्विविध मूल तत्व। प्रकृति जड़, कारणरूप। वह अपरिमित, स्वतंत्र, सर्वव्यापक। उसी से जगत् की उत्पत्ति और उसी में विलय। वह अजन्मा — कारण होते हुए भी स्वयं किसी का कार्य नहीं। वह अव्यक्तरूप होने से 'अव्यक्त', प्रधान कारण होने से 'प्रधान', सबकी जननी होने से 'प्रकृति'। उसमें सत्व, रज, तम— तीनों गुण वर्तमान। पुरुष जड़, निष्क्रिय, असंग। न कारण, न कार्य। जगत् की उत्पत्ति और विलय का केवल साक्षी। वह आत्मा। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आत्मा भिन्न-भिन्न, अतः पुरुष अनेक।

तत्व — इस दर्शन में तत्व-संख्या पचीस — (१) केवल कारणरूप — प्रकृति, (२) केवल कार्यरूप — पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पंचमहाभूत और मन, (३) कार्य-कारणरूप — महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएँ, (४) न कारण, न कार्य—पुरुष।

सृष्टि-क्रम — प्रलय-दशा में प्रकृति साम्यावस्था में स्थित। तीनों गुणों में समभाव। पुरुष-संयोग से गुणों में क्षोभ। फलतः भिन्न अनुपातों में गुणों का मिलन और सृष्टि-कार्य आरम्भ। प्रथम उत्पन्न पदार्थ 'महत्-तत्व' — जगत् की उत्पत्ति का बीज। आभ्यन्तरिक दृष्टि से यही 'बुद्धि'। यह प्रकृति का कार्य होने के कारण जड़, किन्तु पुरुष के सन्निकट होने के कारण इस पर उसकी चेतनता का प्रतिबिम्ब, अतः चेतन के समान इसकी प्रतीति।

दूसरा परिणाम अहंकार। यह सत्वगुण की प्रधानता होने पर सात्विक या 'वैकृत', रजोगुण की प्रबलता से 'तैजस', तमोगुण की प्रधानता से तामस या 'भूतादि'। 'तैजस' अन्य अहंकारों का प्रवर्त्तक। सात्विक अहंकार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन उत्पन्न। यह 'प्रत्ययसर्ग' (बुद्धिसर्ग या भावसर्ग)। तामस अहंकार से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति और उनसे पंचमहाभूतों का विकास। यह 'तन्मात्रसर्ग' (भौतिक सर्ग या लिंग सर्ग)। तन्मात्र 'अविशेष'। भौतिक पदार्थ शान्त (सुखद), घोर (दुःखद) तथा मूढ़ (मोह-उत्पादक) होने के कारण 'विशेष'।

दुःख और मुक्ति — सुख-दुःख वस्तुतः बुद्धि या मन के। आत्मा अर्थात् पुरुष इनसे मुक्त। किन्तु व्यवहार-जगत् में पुरुष द्वारा प्रकृति के धर्मों का अपने ऊपर आरोप। इससे प्रकृतिजन्य दुःख का उसमें प्रतिबिम्ब। उसके लिए यही दुःख-भोग। इस आरोप का अन्त होने पर ही दुःख-मुक्ति। यह विवेक-ज्ञान द्वारा सम्भव। इसी का नाम 'विवेक-ख्याति' — प्रकृति से पुरुष को अलग समझने का ज्ञान। यह ज्ञान हो जाने पर पुरुष का प्रकृति से वियोग। वह असंग। यही 'अपवर्ग' या मुक्ति। यह दो प्रकार की — विवेक हो जाने पर लगन के साथ कर्म करते हुए उसके संग या बन्धन से मुक्त रहने का नाम 'जीवन्मुक्ति'। शरीर-नाश होने पर ऐकान्तिक (अवश्यम्भावी) और आत्यन्तिक (अविनाशी) दुःखत्रय के विनाश की शास्त्रीय संज्ञा 'विदेहमुक्ति'। भा० द०, नवम परिच्छेद। भा० ३।२६-२७ में भक्तिपरक मीमांसा।

कपिल के साक्षात् शिष्य आसुरि, और उनके शिष्य पंचशिख से लेकर विज्ञान भिक्षु तक इस दर्शन की परम्परा का विकास। भा० द०, नवम परिच्छेद।]

कपिल द्वारा इस दर्शन का प्रकट रूप से वर्णन (१।१४२।७)।

सांतरस (शान्त रस) — काव्य के नव रसों में एक।

[संसार से अत्यन्त निर्वेद हो जाने पर, या तत्वज्ञान हो जाने पर वैराग्य का उत्कर्ष होने पर इस रस की प्रतीति। इसका आलम्बन — संसार की असारता का बोध या परमात्मतत्व का ज्ञान। उद्दीपन — साधु-संगति,

तीर्थाटन, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि का अध्ययन, सांसारिक दुश्चिन्ताएँ आदि। अनुभाव — दुःखमय जगत् को देखकर कातरता, जीवन-संघर्ष से घबराकर संसार-त्याग की तत्परता आदि। संचारी भाव— धृति, हर्ष, उद्वेग, ग्लानि, दैन्य आदि। स्थायी भाव — निर्वेद या शम।

नाट्य की दृष्टि से भरत ने रस केवल आठ माने। शान्त रस को अष्टरस से अलग रखा। मत-मतान्तरों के बाद काव्य में नवम रस के रूप में इसकी स्वीकृति। विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' में इस रस के देवता श्रीनारायण, वर्ण कुन्देन्दु। सा० को०१।]

यह शिव का उपमान (१।१०७।१)। चित्रकूट-स्थित राम के आश्रम का उपमान (२।२७५)।

मूल शब्द — २।२७५। सांतरसु — १।१०७।१।

सागर — सागरविशेष जिस पर राम के आदेश से सेतु का निर्माण। वा० रा० ५।१।१०७ के अनुसार 'लवणस्तोय'।

[यह वरुणालय। नद-नदियों का स्वामी। वा० रा० ५।१।२९, ६।२२।३०, ६३। व्यक्तिरूप में इसका वर्ण स्निग्ध वैदुर्यमणि-सा श्याम। प्रफुल्ल कमल दल-से नेत्र। रक्तवर्ण वस्त्र। दिव्य सर्वपुष्पमयी माला एवं स्वर्ण-कांचन-रत्नों के आभूषणों से शोभित। वक्ष पर कौस्तुभमणि-सहोदर श्वेतप्रभ रत्न। देवी-स्वरूपा गंगा-सिन्धु आदि नदियों से आवृत। मेघमाला, वायु, चंचल तरंगों से व्याप्त। अगाध अप्लव रहना ही इसका स्वभाव। वा० रा० ६।२२।१७-२४, २७।]

इसके तट पर — वानरों का पहुँचना (४।२५।६), कुश बिछाकर बैठना (४।२६।१०), सम्पाति द्वारा जटायु-क्रिया (४।२८।१)। इसका विस्तार शत योजन (४।२९।१)। 'लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा' — हनुमान्-कथन (४।३०।८)। इसके किनारे एक सुन्दर पर्वत (५।१।५)। हनुमान् को रामदूत समझकर उनका श्रमापहार करने के लिए इसका मैनाक पर्वत को आदेश (५।१।६)। [वा० रा० में भी। ५।१।९१-१००] इसके भीतर एक राक्षसी (सिंहिका) का वास (५।३।१)। उसे मारकर हनुमान् का उस पार जाना (५।३।५)। लंका के चारों ओर इसका विस्तार (५।३।११)। इसके जल से राम द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक (५।४९।८, १०)। राम का सुग्रीव-विभीषण से इसको पार करने का उपाय पूछना (५।५०।५)। विभीषण का परामर्श — राम इससे विनय करें। यह उनका कुलगुरु (अर्थात् कुल का पुरखा)। विचार कर उपाय बता देगा (५।५०।८, ५।५०)। [वा० रा० में — खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः। कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञातेः कार्यं महोदधिः।। — विभीषण-कथन। ६।१९।३१ राजा सगर का खुदाया हुआ होने के कारण यह उनका पुत्र-स्थानीय, अतः सागर (सगर-पुत्र) नाम से विख्यात। इसीलिए यह राम का कुलगुरु, अर्थात् पूर्वज। वि०।] लक्ष्मण की इसे सुखा डालने की सलाह (५।५१।३)। इसके निकट जाकर, सिर झुका प्रणाम करके, कुश बिछा राम का बैठना (५।५१।६-७)। रावण के कथनानुसार यह कोमलचित, वानरों के जीवन का रक्षक (५।५३।७)। इसे सोख डालने, नहीं तो पर्वतों से पाटने का वानर-कथन (५।५५।६)। राम का इससे पथ माँगना रावण की दृष्टि में बालहठ (५।५६।३, ५)। यह जड़। तीन दिन बीत जाने पर भी इसका विनय न मानना। राम को क्रोध। अग्निबाण से इसे सोख डालने के लिए लक्ष्मण से धनुष-बाण माँगना। राम के शर-सन्धान करते ही इसके अन्तर में ज्वाला। जीवों को जलते देख अभिमान त्याग रत्नपूरित कनकथाल ले इसका विप्ररूप में आना (५।५७ - ५।५८।८)। [वा० रा० में इसे अनुकूल करने के लिए तीन दिनों तक राम द्वारा इसका पूजा-सत्कार। तब भी इसके प्रकट न होने पर राम का कुपित हो इसे बाणों से विक्षुब्ध करना। रोष से पुनः शर-सन्धान करने को उद्यत राम को लक्ष्मण का रोकना। पाताल-सहित इसे सुखा डालने के लिए राम द्वारा धनुष पर ब्रह्मास्त्र-सन्धान। प्रलय-दृश्य उपस्थित। तब अपने वास्तविक स्वरूप में इसका मूर्त्तिमान् होना। वा० रा० ६।२१।९-३५, ६।२२।१ - २५। अ० रा० में इसके तट पर आकर भी इसके द्वारा अभिनन्दित न होने पर इसे सुखा डालने के लिए राम का शर-सन्धान। तब 'त्राहि-त्राहि' करते हुए नाना उपहारोंसहित अपने प्रकृत स्वरूप में इसका प्राकट्य। अ० रा० ६।३।६०-७०। महा० वन० के रामोपाख्यान में कुछ वानरों की नाव आदि से इसे पार करने की सलाह। राम को यह अस्वीकार, क्योंकि इससे व्यापारियों की हानि। इसके अतिरिक्त सेना के दूर तक बिखरने और फैलने से शत्रु द्वारा उसके नाश की आशंका। इसके दर्शन के लिए उपवास और आराधना। फिर दिव्यास्त्रों से भस्म करने का निश्चय। तब स्वप्न में राम को दर्शन दे सहायता के लिए इसका प्रस्तुत होना। महा० वन० २८३।२६-३५।] प्रभु के चरण पकड़, इसके द्वारा क्षमा-याचना। इसकी विनय — पंचतत्वों में से एक होने

के कारण जल की करनी स्वभाव से जड़। मर्यादाएँ प्रभु द्वारा ही निर्मित, इसके सूखने से इसकी मर्यादा भंग होगी। प्रभु-आदेश-पालन को यह प्रस्तुत। (५।५९।१-८)। वानर-सेना के पार उतरने का उपाय पूछने पर इसका कथन – नील-नल को प्राप्त वरदान के कारण उनके स्पर्श से पहाड़ समुद्र में तैर जायेंगे। यथासामर्थ्य यह भी सहायक होगा। सागर बँध जायेगा। राम के धनुष पर चढ़े अमोघ बाण को अपने उत्तर तटवासी पापात्माओं पर छोड़ने की विनती। उन दुष्टों का चरित्र प्रभु को सुना, उनके वध और राम के बल-पौरुष से हर्षित हो, प्रभु-चरण-वन्दना कर इसका गमन (५।५९ - ५।६०।छं०)। [वा० रा० में भी इसका मर्यादा-कथन, विनय। अमोघ बाण को उत्तर के द्रुमकुल्यनामक उस पवित्र देश पर छोड़ने की प्रार्थना जहाँ दुष्टात्माओं का वास। विश्वकर्मा-पुत्र नल द्वारा सेतु-निर्माण कराने का कथन। 'नील' का उल्लेख नहीं। वा० रा० ६।२२।२७-४७। अ० रा० ६।३।६८-८४ में भी यही। महा० में स्वप्न में ही राम का इससे कथन – यह सेना के लिए मार्ग दे, अन्यथा वे इसे दिव्यास्त्रों से सुखा देंगे। इसका नल द्वारा सेतु-निर्माण कराने का परामर्श। 'नल सेतु' से राम का एक महीने में सेनासहित सागर पार करना। महा० वन० २८३।३६-४३, ५०।] इसके वचन सुन सेतु-निर्माण के लिए राम का आदेश (६।१।सो० १)। जाम्बवान्-कथन – प्रभु-नाम-प्रभाव से 'यह लघु जलधि तरत किति बारा'। हनुमान्-कथन – प्रभु-प्रताप-बड़वानल ने पहले इसके जल को सोख लिया था, किन्तु रिपु-नारियों के अश्रुजल से यह पुनः भर गया। इसका जल भी खारा हो गया। (६।१।१-३)। पत्थरों के जल में तैरने में महिमा इसकी नहीं (६।३।९)। प्रभु द्वारा इसका विस्तार-दर्शन। (६।४।३)। इसके बँधने से विस्मित रावण का दस मुखों से इसके दस नामों का उच्चारण (६।५।१०, ६।५)। उल्लेख – इसके लाँघे जाने का (५।२८।२, ५।३३।८, ६।९।२, ६।३६।४, ७।६७।३, ७।६७।५), इसके पार किये जाने का (५।३५, ५।३७।७, ५।४३।१, ६।५।३, ७।६७।७), इसके बंधने का (६।६।२, ६।९।५, ६।२८।१, ७।६७।८, ७।६७ क)। अन्य उल्लेख (५।२६।८, ६।३, ६।४७।८)।

निम्नलिखित में (वि०) = विप्ररूप में।

मूल शब्द – ४।२८।१, ४।२९।१, ५।३५, ५।५०।८ (वि०), ५।५०, ५।५६।३ (वि०), ५।५६।५ (वि०), ५।६०।६ (वि)०, ६।४७।८, ७।६७।८, ७।६७ क।

पर्याय – **उदधि** – ५।५८।६, ६।५।

कंपति – ६।५।

जलधि – ५।५०।५, ५।५० (वि०), ५।५७ (वि०), ५।६०।२, ६।१।१, ६।३।९ (वि०), ६।५।

जलनिधि – ४।३०।८, ५।१।९ (वि०), ५।३।११, ५।५८।७ (वि०)।

तोयनिधि – ६।५।

नदीस – ६।५।

नीरनिधि – ६।५।

पयोधि – ५।६०।४, ६।५, ७।६७।३। पयोधी – ७।६७।५।

पयोनिधि – ५।६०।७ (वि०), ६।१।२।

पाथोधि – ५।६०।८ (वि०), ६।६।२।

बननिधि – ६।५।

बारिधि – ५।३।५, ५।५८।१, ६।५।१०, ६।९।२।

बारिनिधि – ७।६७।७।

बारीस – ६।५, ६।९।५।

सिंधु – ४।२५।६, ४।२६।१०, ५।१।५, ५।३।१, ५।२६।८, ५।२८।२, ५।३३।८, ५।३७।७, ५।४३।१, ५।४९।८, ५।५१।३, ५।५१।६, ५।५३।७, ५।५५।६, ५।५९।१ (वि०), ५।६०।छं० (वि०), ६।१।सो० १ (वि०), ६।३, ६।४।३, ६।५।३, ६।५, ६।२८।१, ६।३६।४।

साजुज्य (सायुज्य) मुक्ति – पाँच प्रकार की मुक्तियों में एक।

[मुक्ति के पाँच प्रकार – (१) सालोक्य – भगवान् के लोक में जाकर रहना, (२) सामीप्य – भगवान् के समीप उनकी माला आभूषण आदि बनकर रहना, (३) सारूप्य – भगवान् के समानरूप के होकर उनके पार्षद

बनकर रहना, (४) सार्ष्टि — भगवान् के समान सृष्टि-प्रलय आदि की शक्ति पा लेना, (५) एकत्व अर्थात् सायुज्य — भगवान् के श्रीविग्रह में मिल जाना। नारद पृ० १०३, भा० ३।२९।१३।]

रामेश्वर पर गंगाजल लाकर चढ़ानेवालों को इस मुक्ति की प्राप्ति। — राम-कथन (६।३।२)।

साबर मंत्र — सबर अर्थात् शबर (= भील, पहाड़ी, असभ्य। आ० को०।) भाषा में रचित मन्त्र।

[कलियुग में मन्त्रों की सिद्धि के लिए शास्त्रोक्त अधिकारी और साधन दुर्लभ। अतः शिव-पार्वती का भीलरूप में प्राकट्य और शाबर-मन्त्र-समूह की रचना। गणेश द्वारा लिपिबद्ध। ग्रन्थ का नाम 'सिद्ध शाबरमन्त्र'। ऐसा एक मन्त्र (अँगुली पकने पर बलाय का)— धोबी की गदहिया कन्या न कुमारी दोहाई लोना चमार की। मा० पी० १।१५।६ नोट १, ४।]

कलि-प्रभाव को देख शिव-पार्वती द्वारा इस मन्त्र-समूह की रचना। इनके अक्षर बेमेल (अन्वय का तुक या अन्य कोई नियम नहीं)। न कोई अर्थ, न जप-विधि (तान्त्रिक-मत से साधारण-से विधान और जप का प्रयोजन। मा० पी०।) फिर भी शिव-प्रताप से फलप्रद (१।१५।५-६)।

मूल शब्द — १।१५।५।

सारंग (शार्ङ्गधनुष) — राम (या विष्णु) के धनुष का नाम।

[यह कालरूप (भा० १२।११।) अथवा इन्द्रियों का कारण राजस अहंकार (वि० पु० १।१२।७०)।

लंका-युद्ध में यह राम के हाथों में शोभित (६।६८।१, ६।८६।१०, ६।८६।छं०)। इस पर एक बाण चढ़ाकर उससे राम द्वारा समस्त माया-रावणों का वध (६।९६)।

मूल शब्द — ६।६८।१, ६।८६।छं०, ६।९६। सारंगा — ६।८६।१०।

सारदा (शारदा) — (१) ब्रह्मा की पत्नी और शक्ति। ब्र० पु० कृ० ३५।११, दे० भा० ३।६।३२, दु० स० प्रा० र० २६। वाक्विद्या की अधिष्ठात्री देवी। (२) पुण्यसलिला।

उत्पत्ति — १. कृष्ण के मुख से। ब्र० पु० ब्रह्म० ३।५४।

२. मूल प्रकृति के जिह्वाग्र से। ब्र० पु० प्र०२।

३. ब्रह्मा के मुख से। भा० ३।१२।२६।

[(१) देवी रूप — ये पंचप्रकृतियों में एक (गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।। सावित्री वै सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृताः।। ब्र० पु० प्र० १।१।) शुक्लवर्णा। वीणा-पुस्तक-स्फटिकमालिका अथवा अक्षसूत्र-अंकुश-पाश-पुस्तक-धारिणी। (शुक्लां ब्रह्मविचारसार परमामाद्यां जगद्व्यापिनीं वीणापुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्। हस्ते स्फटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।। स्तो०, सरस्वतीस्तोत्र ६। अक्षसूत्रांकुशधरा पाशपुस्तकधारिणी। मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा। सर०।)

सर० में परासिद्धि के लिए दस बीजमन्त्रों से युक्त ऋग्वेद के मन्त्रों से इनकी स्तुति। इनके नामामंत्र — श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा, वाग्देवता और महासरस्वती। ये ब्रह्म की अद्वैत शक्ति, वेदान्त का अर्थभूत ब्रह्मतत्व ही इनका एकमात्र स्वरूप। वाणी-रूप में इनके चार पद (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी)। प्रथम तीन हृदय-गुहा स्थित, चतुर्थ वैखरी ही प्रकट। यही अभिव्यक्ति का साधन। ये वर्ण, पद, वाक्य तथा उनके अर्थों के रूप में सर्वत्र व्याप्त—अनादि, अनन्त। प्रिय सत्य वचन, कर्म, कर्तव्य की प्रेरिका। नदीरूप में तथा आत्मरक्षा, अन्न, जल आदि के लिए भी इनका स्तवन। माताओं, नदियों, देवियों में ये सर्वश्रेष्ठ ('ऐं' अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि। सर० १०)।

गुरु-शाप से विद्याहीन स्मृतिनष्ट याज्ञवल्क्य द्वारा इनकी स्तुति में इनके व्यापक स्वरूप का निदर्शन। ये 'ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी', सर्वविद्याधिदेवी, ज्ञानाधिदेवी, वर्णाधिदेवी, वागधिष्ठातृदेवी, व्याख्याधिष्ठातृदेवी, विसर्ग-विन्दु-मात्रा की अधिष्ठात्री देवी, भ्रमसिद्धान्तरूपा, कालसंख्यास्वरूपा, 'स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी'। इनके बिना सारा जगत् जीवन्मृत, मूक-उन्मत्तवत्। ज्ञान-स्मृति-विद्या, कविता-प्रतिभा-ग्रन्थकर्तृत्वशक्ति, शुभविचारक्षमता-सुशिष्य-शिष्यप्रबोधिनी शक्ति एवं लुप्त ज्ञान के नवीनीकरण की इनसे याचना। ब्र० पु० प्र० ५। स्वर-व्यंजन वर्णों से विभूषित इनका ऊँकार को आगे कर याज्ञवल्क्य के समक्ष प्रकट होना। महा० शान्ति० ३१८।१४।

दे० भा० में देवी द्वारा और दु० स० प्रा० र० २६ में महालक्ष्मी द्वारा ये ब्रह्मा को प्रदत्त (गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम्। महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम्।। दे० भा० ३।६।३२।) ब्र० पु० कृ० ३५ में नारायण के आदेश से मोहिनी-शाप-ग्रस्त ब्रह्मा का गोलोक में जाकर इन्हें प्राप्त करना। (भा० में ये ब्रह्मा की पुत्री। एक बार इनके रूप-लावण्य पर ब्रह्मा के काममोहित होने पर मृगीरूप धर इनका पलायन। भा० ३।१२।२८, ३।३१।३६।) ब्र० पु० प्र० ४ में उत्पत्ति के वाद कृष्ण को पाने की इनकी कामना, किन्तु राधारमण कृष्ण का इन्हें विष्णु की पत्नी बनने का आदेश (विष्णु की पहली पत्नी लक्ष्मी)। सर्वप्रथम कृष्ण द्वारा इनकी पूजा, फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मुनियों, मनुओं आदि द्वारा। माघ शुक्ल पंचमी को विद्यारम्भ के शुभ अवसर पर सर्वत्र इनके पूजन का कृष्ण द्वारा विधान।

(२) नदी रूप — इनके द्वारा गंगा और लक्ष्मी को नदी बनने का शाप। स्वयं ये गंगा-शाप से नदीरूपा। (दे० 'लच्छि')। ये ओघवती (तीव्र प्रवाहवाली) पुण्यसलिला, आह्लादकारिणी, कल्याणमयी, पापशोक-नाशिनी (एषा सरस्वती रम्या दिव्या चौघवती नदी। महा० वन० १३०।३। सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः सरस्वतीवाससमा कुतो गुणाः। सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम्।।··· बलराम-कथन महा० शल्य० ५४।३८-३६।) ये 'तीर्थमालिनी'। इनके तट पर दधीचि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों के आश्रम। महा० वन० १००।१३, शल्य० ४२।४।

एक बार उग्रस्वभाव विश्वामित्र द्वारा इनका स्मरण और वध हेतु वसिष्ठ को बहा लाने का इनको आदेश। इनका धर्मसंकट। आदेश पालन करने पर ब्रह्महत्या-दोष, न करने पर विश्वामित्र का शाप। अन्ततः वसिष्ठ से विश्वामित्र का आदेश-कथन। वसिष्ठ की स्वीकृति पा उनको बहाना। बहते हुए वसिष्ठ द्वारा इनकी स्तुति (ये ही पुष्टि, कीर्त्ति, द्युति, सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी और स्वाहा। सम्पूर्ण जगत् इनके अधीन। चतुर्विध रूप से इनका प्राणियों में निवास। ४२।३२-३३। ब्रह्मसर से इनकी उत्पत्ति। ४२।३०।)। वसिष्ठ को विश्वामित्र के सामने उपस्थित कर, वधहेतु विश्वामित्र को हथियार खोजते देख, ब्रह्महत्या के भय से इनका वसिष्ठ को पुनः बहा ले जाना। फलतः विश्वामित्र का इन्हें शाप — जल की जगह ये रक्त-प्रवाह करें। पश्चात् तीर्थयात्री मुनियों के अनुग्रह, तप और विश्वनाथ की कृपा से ये शापमुक्त। महा० शल्य० ४२-४३।१६। अलम्बुषा-दर्शन से स्खलित और इनके जल में पतित दधीचि-तेज का इनके द्वारा ग्रहण, रक्षण और पुत्रोत्पन्न होने पर दधीचि को समर्पण। प्रसन्न दधीचि का इन्हें वरदान। इनका वह पुत्र 'सारस्वत' नाम से विख्यात। महा० शल्य० ५१।६-२५। ऋग्वेद के काल में ये यमुना एवं शुतुद्रि (शतद्रु या सतलज) के बीच असुर्या (दैवी सम्पत्तिवाली), ओघवती, विशाल नदी के रूप में प्रवहमान। ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में रेतीले स्थलों में अन्तर्हित। ध० इ० तृ० पृ० १३०३। कालान्तर में अन्तःसलिला-रूप में प्रसिद्ध (नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीम्। रघु० ३।६। गंगा च यमुना चैव मध्ये गुप्ता सरस्वती। तदग्रभागे निःसरति सा वेणी यत्र शोभते।। प्रयाग-माहात्म्य, मा० पी० १।२।८-११, पृ० १०१)। यह मान्यता कि नदीरूप में इनका रंग लाल (स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी। जनु रबिसुता-सारदा-सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी।। गी० ७।१५।)

अमर० १।१७२ में इनके सात नाम — ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती। दु० स० प्रा० र० १६ में इनके दस नाम — महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती। आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी।।]

वर्ण, अर्थसमूह, रस, छन्द, मंगल की कर्त्रीरूप में विनायक के साथ इनकी वन्दना (१।१।श्लो०१)। भक्तिपूर्ण रामकथा के लिए इन्हें स्मरण करते ही इनका ब्रह्मलोक त्यागकर दौड़ते हुए आना और रामचरित-सर में अवगाहन कर श्रमापहार करना। इसीलिए कवि-कोविदों द्वारा हरि-यश-गान। प्राकृत जन का गुणगान करने पर इनका सिर धुनकर पछताना (१।११।४-७)। [यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य। लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः।। —कृष्ण-कथन उद्धव से। भा० ११।११।२०।]

हृदयरूपी सिन्धु में मतिरूपी सीपी के लिए ये स्वाति सदृश। इनकी कृपा से श्रेष्ठ विचाररूपी वर्षा होने पर उत्तम मोती की तरह उज्ज्वल कविता की सृष्टि (१।११।८-६)। इनका शेष महेश आदि के साथ नेति-नेति कहकर हरिगुण-गान (१।१२)। रामचरित-गान के लिए देवी-देवताओं के वन्दन-क्रम में गंगा के साथ इनकी वन्दना। ये अविवेकहर्त्री। (१।१५।१-२)। यमुना की अमित महिमा का कथन इनके द्वारा भी सम्भव नहीं (१।३५।२)। विवाह के

समय उमा-शोभा-वर्णन में ये असमर्थ (१।१००।छं०)। ये सूत्रधर राम की कठपुतली – याज्ञवल्क्य-कथन भरद्वाजप्रति (१।१०५।५)। शेष आदि के साथ इनके द्वारा रघुपति-गुण-गान (१।१०८।६)। वरदान देते समय इनको प्रेरित कर ब्रह्मा का कुम्भकर्ण की मति फेरना -—शिव-कथन (१।१७७।८)। इनके लिए भी भगवान अगम, अज्ञेय (१।१८६।छं० ४)। राम-जन्म के सुख, सम्पत्ति, समय, समाज का वर्णन करने में ये असमर्थ (१।१६५।२)। इनके द्वारा राम के बालचरित का गान (१।२०४।१)। उमा की अमित महिमा का वर्णन इनसे शक्य नहीं – सीता द्वारा पार्वती-स्तुति (१।२३५)। मुखर होने के कारण ये सीता के उपमान होने के अयोग्य (१।२४७।५)। ये वर्णन करने में असमर्थ उस जनकपुर की शोभा का जहाँ छद्म नारीवेश में लक्ष्मी-वास (१।२८९), उन दो रथों का जिनमें एक पर राज-समाज और दूसरे पर वशिष्ठ आसीन (१।३०१।७-८), उस अश्व का जिस पर विवाह के समय राम सवार (१।३१७।१)।

राम-विवाह के समय अन्य देवियों के साथ छद्म स्त्रीवेश में इनका भी रनिवास में मिलकर मंगलगान करना (१।३१८।६-८)। वरवेश में राम-दर्शन से सिय-मातु को जो सुख, उसका कथन शत सहस्र शारदा, शेष द्वारा शत सहस्र कल्पों में भी सम्भव नहीं (१।३१८)। नारीवेशधारिणी सुरस्त्रियों का सुनयना द्वारा उमा, रमा, शारदा का-सा सम्मान (१।३२२।५, ७)। कोहबर में इनका सीता को 'लहकौरि' (लह = लघु, कौर = ग्रास – मा० पी०) सिखाना (१।३२७।छं० २)। दस सहस्र शारदा शेष कोटि कल्प तक लेखा करें, तब भी जनक-भाग्य और रामगुण-गाथा का पूर्ण कथन संभव नहीं। – जनक-कथन राम प्रति (१।३४२।२-३) राम-बरात के अवधागमन के समय आरती सजाये मंगलगान करती हुईं सुहागिनी स्त्रियों की ये उपमान (१।३४५।६)। चारों जोड़ियों के लिए इनका उपमा ढूँढ़ना और सब उपमाओं को तुच्छ जान स्वयं अनुरक्त हो एकटक देखते रहना (१।३४६।७-८)। माताओं का आनन्द – 'मूक बदन जनु सारद छाई' (१।३५०।८)। प्रभु-विवाह के प्रेम-प्रमोद-विनोद-उछाह आदि के वर्णन में ये असमर्थ (१।३५५।५, १।३६१।६)।

राम के युवराज बनने के समय इन्हें बुलाकर इनके पाँव पड़ देवताओं की विनय – ये ऐसा कुछ करें जिससे राम वन जायें और देवकार्य सिद्ध हो। इनका पछताना। देवताओं के बार-बार निहोरा करने और पाँव पड़ने पर इनका संकोच। उनकी मति को पोच मान और भविष्य का विचार कर (कि रामगुण-कथन के लिए कवि इनका स्मरण करेंगे), हर्षित हो इनका दुःखद ग्रहदशा की तरह अवधागमन। 'गई गिरा मति फेरि' (मन्थरा की) (२।११।८ - २।१२)। कोटि-कोटि शत शारदा के लिए भी प्रभुगुण का लेखा अशक्य (२।२००।८)। 'गई गिरा मति धूति' – भरद्वाज-उक्ति भरत से (२।२०६)। भरत-शत्रुघ्न से राम-प्रेम-कथन में इनका संकोच (२।२३८।२)। भरत के शील-गुणादि-कथन में इनकी बुद्धि भी कुण्ठित – कौसल्या-कथन सुनयना से (२।२८३।३-४)। भरत का चरित्र, कर्तृत्व आदि समझने, सुनने में इन्हें सुख। —जनक-कथन (२।२८८।६-८)।

भरत को रामभक्तिमय और राम को भरतप्रेममय देख चिन्तित देवताओं द्वारा इनका स्मरण, प्रशंसा और माया रचकर भरत-मति फेरने की प्रार्थना। देवताओं को जड़ स्वार्थी समझ इनका इन्द्र से कथन— सहस्रनेत्र होकर भी वे नहीं देख पाते कि भरत-मति के आगे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की माया भी विवश। भरत-हृदय में सूर्यरूपी सिय-राम का निवास। वहाँ अन्धकाररूप माया का प्रवेश नहीं। यह कह इनका विधिलोकगमन (२।२९५।१-८)। चित्रकूट-सभा में बोलने से पहले हृदय में भरत द्वारा इनका स्मरण। 'मानस तें मुखपंकज आई'। ज्ञान-धर्म-नीतिमयी 'भरत भारती मंजु मराली' (२।२९७।७-८)। राम की प्रेमामृत-वाणी से समाज को शिथिल, स्नेह-समाधि-लीन देख इनका मौन होना (२।३०७।२)। भरत का सन्तोष – 'भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू' (२।३०७।४)। भरत की रहनी, भक्ति आदि का वर्णन, साधुओं का गुण-कथन इनके द्वारा सम्भव नहीं (२।३२५।८, ३।४६।८, छं०)।

अपनी पूँछ में आग लगाने की बात सुन हनुमान् का इन्हें सहायक मानना (५।२५।३)। राम-रावण के युद्ध-चरित का शत शारदाओं द्वारा अनेक कल्पों तक बखान होने पर भी अन्त नहीं (६।१०१।छं०२)। अवधपुर की सम्पत्ति-शोभा-मंगल का इनके द्वारा बखान, पर रामचरित देख ये भी स्तब्ध (७।६।८-९)। राम के राजतिलक के समय के अकथ शोभा-समाज-सुख का इनके द्वारा वर्णन, पर उस रस का अनुभव केवल महेश को (७।१२ क)। राम-राज्य की सुख-सम्पदा इनके द्वारा अवर्णनीय (७।२२।६)। 'राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा।' शिव-कथन पार्वती से (७।५२।२)। 'सारद कोटि अमित चतुराई' – राम के सम्बन्ध में भुशुण्डि का कथन गरुड़ से (७।९२।५)।

जहाँ सुख-शोभा-हरिगुण आदि की अतिशयता का कथन अभिप्रेत, वहाँ उन्हें इनके द्वारा अवर्णनीय बताना। ऐसे प्रसंगों में इनका उल्लेख अधिकांशतः सहस्रशीश शेष के साथ, कहीं-कहीं श्रुति, महेश, विधि, गणेश, पुराण के साथ। कहीं-कहीं जातिवाचक संज्ञारूप में उल्लेख।

इनका नदी रूप — 'साधु-समाज-प्रयाग' के रूपक में ये ब्रह्मविद्या की प्रकाशिका (१।२।८)। चित्रकूट में बहनेवाली मन्दाकिनी का बखान करनेवाली सुरसरि आदि पुण्य नदियों के साथ इनका उल्लेख (२।१३८।४-५)। 'सरसइ' (सरस्वती) शब्द का प्रयोग केवल नदी के लिए।

मूल शब्द — १।११।८, १।३५।२, १।१०८।६, १।२३५, १।३१८।६ (जाति०), १।३१८, २।२६५।१, २।२६७।७, ७।६।८, ७।२२।६, ७।५२।२। सारद — १।११।४, १।१२, १।१५।१, १।१००।छं०, १।१०५।५, १।१७७।८, १।१८६।छं० ४, १।१६५।२।, १।२०४।१, १।२८६, १।३०१।७, १।३१७।१, १।३२२।७, १।३२७।छं०२, १।३४२।२ (जाति०), १।३४६।७, १।३५०।८, १।३५५।५ (जाति०), २।११।८, २।२००।८ (जाति०), २।२३८।२, २।२८३।४, २।२८८।६, २।२६५।८, २।३०७।२, ३।४६।८, ३।४६।छं०, ५।२५।३, ६।१०१।छं० २ (जाति०), ७।१२ क, ७।६२।५ (जाति०)।

पर्याय — **गिरा** — १।११।७, १।२४७।५, १।३६१।६, २।१२, २।२०६, २।३०७।४, २।३२५।८।

भारती — १।३४५।६, २।२६७।७।

बाणी — १।१।श्लो०१।

सरसइ (सरस्वती) — १।२।८ (नदी), २।१३८।४ (नदी)।

सावन — श्रावण। चान्द्र वर्ष के पाँचवें महीने का नाम। यह वर्षाकाल का अंश।

रामभक्तिरूपी वर्षाऋतु में 'राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास' (१।१६)। सावन-घन-पुंज उपमान— घण्ट-शोभित मत्त गज-समूह के (१।३००।२), धूप-धूम से काले आकाश के (१।३४७।१)।

मूल शब्द — १।१६, १।३००।२, १।३४७।१।

सिंगार (शृंगार रस) — काव्य के नौ रसों में प्रधान। रसराज।

[प्रेमियों के मन में संस्काररूप से वर्त्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँचकर जब आस्वादयोग्य, तब शृंगार रस। इसके आलम्बन या आश्रय — उत्तम प्रकृति के नायक-नायिका। उद्दीपन — सखा, सखी, दूती, चन्द्र, चाँदनी, ऋतु, उपवन आदि। नायक-नायिका की वेशभूषा, चेष्टा आदि पात्रगत एवं ऋतु, चाँदनी आदि बहिर्गत उद्दीपन। अनुभाव — प्रेमपूर्ण आलाप, आलिंगन, रोमांच, स्वेद, कम्प, भ्रूभंग आदि। ये कायिक, वाचिक और मानसिक। संचारी भाव — उग्रता, मरण, जुगुप्सा को छोड़ लज्जा, मोह, चपलता, चिन्ता आदि सभी भाव।

सम्भोग और विप्रलम्भ के भेद से इसके दो प्रकार। नायक-नायिका की संयोगावस्था में पारस्परिक रति और सम्भोग-सुख की प्राप्ति होने पर सम्भोग शृंगार। (जहाँ संयोगावस्था में पारस्परिक रति, किन्तु सम्भोग-सुख-प्राप्ति नहीं, वहाँ संयोग शृंगार)। इसमें आश्रय — नायका या नायिका। आलम्बन— नायिका या नायक। उद्दीपन — रूप, चेष्टा आदि। अनुभाव — अंग-स्पर्श, चुम्बन आदि। संचारी — आवेग, चपलता, मद आदि। स्थायी भाव — रति।

वियोगावस्था में नायक-नायिका का परस्पर प्रेम रहने पर विप्रलम्भ शृंगार। इसके चार भेद — पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण। विप्रलम्भ में दस काम-दशाएँ — अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति। का० द०। इस रस के देवता विष्णु, वर्ण श्याम। सा० को० १]

यह राम-रूप का उपमान (१।२४१)। मन्दराचल का उपमान (१।२४७।८)। सीता-राम की जोड़ी, मानो सुन्दरता और यह रस एकत्र (१।२६५।७)। राम-भरत-मिलन 'जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही' (७।५।छं०१)।

मूल शब्द — १।२४१, ७।५।छं० १। सिंगारु — १।२६५।७। सिंगारू — १।२४७।८।

सिंघल (सिंहल) — (१) लंका द्वीप; वहाँ के निवासी। आ० को० बृ० को०।

(२) भारत के दक्षिण में एक द्वीप, लंका-द्वीप से भिन्न। वि० को०।

[राम के लंका-विजय की कहानी रामेश्वरतीर्थ आदि में परिकीर्त्तित होने पर लोग सिंहल को लंका मानने लगे। प्राचीन ग्रन्थों में दोनों भिन्न। भा० ५।१६।२६-३० में सगर-पुत्रों के पृथ्वी खोदने पर जम्बूद्वीप के जो आ

उपद्वीप बने, उनमें सिंहल और लंका के अलग-अलग नाम (सिंहलो लंकेति)। महा० वन० ५१ के अनुसार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आनेवाले राजाओं में सिंहलवासी और लंकावासी दोनों (सिंहलान्··· लंकानिवासिनः। वन० ५१।२३)। वि० को०।]

भरत-दर्शन से मगवासियों का भाग्योदय, जैसे सिंघलवासियों को प्रयाग सुलभ हुआ हो (२।२२३)।

सिद्धि —(१) प्रजापति विश्वरूप की कन्या। गणेश की पत्नी। इनके पुत्र का नाम 'क्षेम'। (इनकी बहन बुद्धि भी गणेश-पत्नी और उनका पुत्र 'लाभ')। सं० शि० पु० पृ० २५१-२५२।

(२) अणिमा, गरिमा आदि योगशास्त्र में वर्णित अलौकिक शक्तियाँ। बृ० को०। दे० 'अनिमादिक।

गणनायक के स्मरणमात्र से सब सिद्धियाँ प्राप्त। (वि० प० १ में गणेश 'सिद्धिसदन'।) (१।१।सो०१)। रामकथा सब सिद्धियों की राशि (१।३१।१३)। उमा के हिमाचल-गृह आने पर सब सिद्धियों का छा जाना (१।६५।७)। गुरु के वचनों में विश्वास न करनेवाले के लिए स्वप्न में भी यह सुगम नहीं (१।८०।८)। जिस नगर में जगदम्बा (पार्वती) का अवतार, वहाँ नित नवीन ऋद्धि-सिद्धि (१।९४)। उन बालरूप राम की वन्दना जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ (१।११२।३)। नैमिषारण्य साधकों के लिए सिद्धिदाता (१।१४३।२)। जनकपुर में बरात आने पर सीता का सिद्धियों को स्मरण करना। उनकी आज्ञा से सुरपुर के भोग-विलास और 'सकल संपदा' (नवनिधि) ले सिद्धियों का जनवासे में जाना। इस रहस्य से सब अनभिज्ञ। वैभव देख सबका जनक की बड़ाई करना। केवल राम को यह रहस्य ज्ञात (१।३०६।८-१।३०७।३)। शुभ मुहूर्त्त जानकर, सिद्धि और गणेश का स्मरण कर, जनक का कन्याओं को पालकियों पर चढ़ाना (१।३३८)। विश्वामित्र से जनक की विनय — सब सिद्धियाँ मुनि के दर्शन की अनुगामिनी — (१।३४३।५)। विवाह करके रामादि के अवध लौटने पर राजमहल में ऋद्धि-सिद्धि और 'सुख-संपदा' (नवनिधि) शोभित। चौदह भुवनरूपी पर्वतों पर पुण्यमेघ की अतिशय वृष्टि और ऋद्धि-सिद्धि, सम्पत्ति (नवनिधि) रूपी नदियों का उमगकर अवधरूपी समुद्र में मिलना (१।३४५।१-२, २।१।१-३)। कैकेयी की वर-याचना सुन राजा का मन-ही-मन सोच — नारी का विश्वास करके वे नष्ट, वैसे ही जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या द्वारा संन्यासी का नाश (२।२९)। 'तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें' — सीता के करबद्ध मनोरथ करने पर गंगा के वचन (२।१०३।६)। समाजसहित भरत का आतिथ्य करने की भरद्वाज को चिन्ता। यह देख ऋद्धि-सिद्धि का उनके समक्ष उपस्थित होना। आतिथ्य करने की उनकी आज्ञा पाकर स्वयं को भाग्यवती समझना। सिद्धियों का परस्पर कथन — 'अतुलित अतिथि राम लघु भाई'। मुनि-पद-वन्दना कर इनके द्वारा सुरपुर-दुर्लभ वैभव-सृष्टि। सबकी रुचि के अनुकूल यथायोग्य सब व्यवस्था। मुनि के तपोबल से रचा गया वह ऐश्वर्य विधि के लिए भी विस्मयदायक (२।२१३।७-२।२१४)। इनके द्वारा सृष्ट वैभव का वर्णन (२।२१५।१-८)। 'राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।' —वसिष्ठ-कथन (२।२५६।१)। 'साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।' जनक-कथन सुनयना से (२।२८९।८)। पिता की आज्ञापालनरूपिणी त्रिवेणी में कीर्त्ति, सुगति और भूति, तीनों का संगम, और यह साधना सकल सिद्धियों की दात्री (२।३०६।४)। 'सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।' (२।३११)। 'कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।।' — रामगीता (३।१५।८)। काकभुशुंडि के वररूप में ऋद्धि-सिद्धि माँगने का राम-कथन (७।८३ ख)। 'कबनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा'। — भुशुंडि-कथन गरुड़ से (७।९०।८)। ऋद्धि-सिद्धि माया की शक्तियाँ (७।११८।७)। उल्लेख — (२।२५४।७)। ('अनिमादिक' भी देखिए।)

(प्राप्ति, लाभ, मनोरथ-पूर्त्ति या रससिद्धि के अर्थ में इस शब्द का ग्रहण नहीं किया गया।)

मूल शब्द — १।३१।१३, १।६५।७, १।९४, १।३०६।८, १।३३८, २।२९, २।२५४।७, २।२८९।८, २।३११, ३।१५।८, ७।९०।८, ७।११८।७, सिधि — १।१।सो० १, १।८०।८, १।११२।३, १।१४३।२, १।३०६, १।३४३।५, १।३४५।२, २।१।३, २।१०३।६, २।२१३।८, २।२१४।१, २।२१४।२, २।२१४।७, २।२५६।१, २।३०६।४, ७।८३ख।

सिबि (शिबि) — सत्यनिष्ठ दानवीर नरेश।

उशीनर ~ माधवी (ययाति-कन्या) > शिबि। महा० उद्यो० ११८।

ययाति-वंश में महामना > उशीनर > शिबि > वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकेय। भा० ९।२३।१-३।

[एक समय इनकी श्रेष्ठता की परीक्षा लेने के लिए इन्द्र एवं अग्नि द्वारा क्रमशः बाज और कपोत का रूप धारण। बाज के भय से कबूतर का इनकी गोद में गिरना। इनके लिए यह अनिष्टसूचक, किन्तु कपोत शरणागत। कपोत का आत्म-परिचय देना — वस्तुतः वे तपस्वी ऋषि, श्रोत्रिय ब्राह्मण, वेदज्ञ। उनके द्वारा स्वेच्छा से शरीर-परिवर्तन। रक्षा की उनकी प्रार्थना। बाज द्वारा अपने कपोतरूपी आहार की याचना। दोनों की संस्कृत भाषा और उत्तम उच्चारण सुन इन्हें आश्चर्य। बाज को अन्य प्रकार के आहार देने को ये प्रस्तुत, किन्तु उनका कपोत के लिए ही आग्रह। शरणागत कपोत को न देने का इनका निश्चय (त्यजे प्राणान् नैव दद्यां कपोतं। १९७।१८।)। बाज से ऐसा आहार माँगने के लिए कथन जिससे शिबिदेश के निवासी प्रसन्न हो इन्हें साधुवाद दें और बाज का भी कार्य सिद्ध हो। तब बाज की याचना — ये अपनी दाहिनी जाँघ से कबूतर के बराबर मांस काटकर दें। अपनी दायीं जाँघ से माँस काटकर इनका कपोत के साथ तौलना। कपोत भारी। इनके सभी अंगों के मांस से कपोत भारी। तब बिना क्लेश के इनका स्वयं तराजू पर चढ़ना। यह देख, 'कपोत रक्षित हुआ' कहकर बाज अन्तर्धान। कपोत द्वारा अपनी और बाज की वास्तविकता प्रकट। उनका कथन — तलवार से कटा घाव भर जाये। वहाँ की त्वचा हिरण्यवर्ण, पुण्यगन्ध और इनका राजचिह्न हो। इनके दक्षिण पार्श्व से एक प्रजापालक, यशस्वी, देवर्षियों का आदरभाजन पुत्र होगा। उसके शरीर के रोम कपोत सदृश होने के कारण वह 'कपोतरोमा' और इनकी जाँघ का भेदन कर प्रकट होने के कारण 'औद्भिद' कहलायेगा। (इन्हें 'सौरथेय' कहकर अग्नि द्वारा सम्बोधन।) महा० वन०१९७।

अपने सत्य के प्रभाव से ये ययाति के स्वर्गारोहण में सहायक। महा० उद्यो० ११२।८-११। यम-सभा में रहकर इनके द्वारा सूर्यपुत्र यम की उपासना। महा० सभा० ८।१०। भारतवर्ष इन्हें बहुत प्रिय। महा० भी० ९।७,९।]

दधीचि आदि के साथ इनके सत्य-धर्म-पालन का कथन (२।३०।७, २।४८।५, २।९५।३)।

सिव (शिव) — त्रिदेव में एक। सृष्टि के संहारक।

[अर्थ— शिवं कल्याणं विद्यतेऽस्य, श्यति अशुभमितिवा ह० को०। सर्वकर्मों में सबकी उन्नति एवं कल्याण-कामना करने के कारण ये शिव। महा० अनु० १६१।९-१०।)

शकार का अर्थ नित्यसुख एवं आनन्द, इकार का अर्थ पुरुष, वकार का अर्थ अमृतस्वरूपा शक्ति। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव। सं० शि० पु० पृ० ५८।

वैदिक साहित्य में —

ऋग्वेद के अनुसार इनका रंग भूरा (बभ्रु) एवं रूप अति तेजस्वी। ऋ० २।३३। ये सूर्य की भाँति जाज्वल्यमान, सुवर्ण की भाँति प्रदीप्त। ऋ० १।४३। बाद की संहिताओं में ये सहस्रनेत्र। इनकी ग्रीवा एवं केश नीलवर्ण। वाजसनेयसंहिता १६।७, अथर्ववेद २।२७। उदर कृष्णवर्ण एवं रक्तवर्ण। अ० वे० १५।१। ये चर्मधारी। वा० सं० १६।२-४, ५१।

ये भयंकर एवं हिंस्र पशु की भाँति विनाशक। ऋ० २।३३। इनका प्रमुख अस्त्र विद्युत्-शर (विद्युत्)। आकाश से उसके प्रक्षिप्त होने पर पृथ्वी विदीर्ण। ऋ० ७।४६।। इनके धनुष-बाण एवं वज्र आदि शस्त्रों का भी निर्देश प्राप्त। ऋ० २।३३।३, १०, ५।४२।११, १०।१२६।६। अपने प्रभावी शस्त्रों से इनके द्वारा गायों एवं मनुष्यों का वध। अतः इनसे प्रार्थना कि ये क्रोध में आकर अपने स्तोताओं एवं उनके पितरों, सन्तान-सम्बन्धियों आदि का वध न करें। ऋ० १।११४।

परिवार के व्यक्तियों को रोगविमुक्त करने के लिए भी इनकी प्रार्थना। ऋ० ७।४६।२। ये 'जलाष' (व्याधियों का उपशमन करनेवाले) एवं 'जलाषभेषज' (उपशामक ओषधियों से युक्त)। ऋ० १।४।३-४। चिकित्सकों में श्रेष्ठ। ऋ० २।३३।४। इनके पास हजारों ओषधियाँ ७।४६।३।

ये दानवों की भाँति केवल क्रूरकर्मा ही नहीं। प्रसन्न होने पर इनके द्वारा पशुओं का रक्षण और मानवजाति का कल्याण भी। इसीलिए इनकी संज्ञा शिव (ऋ० १०।९२।९) एवं पशुप (ऋ० १।११४।९)। यजुर्वेद में इनके रुद्र-स्वरूप एवं शिव-स्वरूप का विभेद स्पष्ट — या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी। शिवा रुद्रस्य भेषजी तथा नो मृड जीवसे। तैत्तरीयसंहिता रुद्राध्याय २। ये कपर्दी (जटाधारी), शर्व, भव (चर-अचर सृष्टि को

व्यापनेवाले), शम्भु, शिव एवं कृत्तिवसन (पशुचर्म धारण करनेवाले)। वा० सं० ३।६१, १६।५१। इनके द्वारा असुरों के तीन नगरों के विनाश (त्रिपुर-दाह) का निर्देश भी प्राप्त। तै० सं० ६।४।३।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इनकी उत्पत्ति की कथा —प्रजापति द्वारा दुहितृगमन किये जाने पर उन्हें दण्ड देने के लिए (देवों के भयंकर रूपों से) रुद्र उत्पन्न। मृगरूप से भागनेवाले प्रजापति का इनके द्वारा पशुपति-रूप धारण करके वध। प्रजापति एवं उनका वध करनेवाले रुद्र अब भी आकाश में मृग (मृगशीर्ष) एवं मृगव्याध नक्षत्रों के रूप में विराजमान। ऐतरेय ब्राह्मण ३।३३, शतपथ ब्राह्मण १।७।४।१-३। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण प्रा० च० के 'रुद्र-शिव' के आधार पर।

श्वेता० में — जगत्-संचालक ब्रह्म के स्थान पर रुद्र। इन्हीं के द्वारा समस्त लोकों की रचना, रक्षा और प्रलयकाल में संकुचन। ३।२। ये ही हिरण्यगर्भ के सर्जक। ३।४। इनके लिए रुद्र (३।२,४), शिव (३।११), ईशान (३।१२, ४।११), महेश्वर (४।१०) आदि शब्दों का प्रयोग। इस उपनिषद् में प्रकृति का नाम माया और मायापति महेश्वर ४।१०। ये विश्वयोनि (५।५) — प्रत्येक योनि के अध्यक्ष — जगत् के कारण (४।११)।

महा० में —

महा० में ब्रह्म और देवता, दोनों रूपों में इनका वर्णन प्राप्त। (१) ये निर्गुण-सगुण ब्रह्म। योगियों के परमानन्द, अविनाशी, मोक्षस्वरूप। (तण्डि को इस रूप में इनके दर्शन।) अनु० १६।८। ये ही सबकी हृदय-गुहा में स्थित आत्मा, पुराण पुरुष, मूर्त्तिमान परब्रह्म। (इस रूप में कृष्ण द्वारा इनकी स्तुति।) अनु० १४।४२२। उपमन्यु का स्तवन — ये अज, ज्ञानमय, अक्षर, सनातन परम तत्व। इनके दक्षिणांग से ब्रह्मा और वामांग से विष्णु उत्पन्न। प्रलयकाल में इनके द्वारा रुद्र की रचना। जगत् की सृष्टि करके कल्पान्त में सबकी स्मृति-शक्ति मिटाकर ये अपने आप में स्थित। अनु० १४।३४५-३५०।

उपमन्यु की स्तुति में इनके अर्धनारीश्वर और हरिहर-रूप का भी वर्णन। अनु० १४।२६३, २६५, २६८। उनके द्वारा इनकी भगचिह्नित लिंगमूर्त्ति की पूजा। इन्द्ररूपधारी शिव से उनका कथन — पुंलिंगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं विद्धि चाप्युभाम्। द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत्। अनु० १४।२२७, २३५। उनके द्वारा कृष्ण के समक्ष इनके सहस्रनाम का वर्णन। अनु० १७। इसी रूप में दक्ष द्वारा भी इनकी स्तुति। शा० २८४।६६, ६९-१८१।

(२) (क) सृष्टि के आरम्भ में जो महान् दिव्य अण्ड प्रकट, उससे ब्रह्मा तथा स्थाणु नामक शिव का प्राकट्य। आदि० १।२९-३२। (ख) ब्रह्मा को मारने के लिए मधु-कैटभ को उद्यत देख हरि को क्रोध। तब उनके ललाट से शूलपाणि त्रिलोचन शम्भु का प्रादुर्भाव। वन० १२।३९-४०। (ग) ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र। द्रोण० ५२।४५। इनके परम तेजस्वी ग्यारह पुत्र एकादश रुद्र के रूप में विख्यात। उनके नाम — मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु, भव। आदि० ६६।१-३।

एक समय देवताओं के यज्ञ में अपना भाग न देख इन्हें क्रोध। इनके द्वारा लोकयज्ञ और मनुष्य-यज्ञों से एक धनुष का निर्माण। उसे लेकर यज्ञस्थल में उपस्थित हो भयंकर बाण से यज्ञ के हृदय में आघात। मृगरूप धर यज्ञ का पलायन। देवताओं की चेतना लुप्त। इनका धनुष के सिरे से सविता की भुजाएँ काटना, भग की आँखें फोड़ना, पूषा के दाँत तोड़ना। देवता इनके शरणागत। प्रसन्न होकर इनका भग को नेत्र, सविता को भुजाएँ, पूषा को दाँत और देवताओं को यज्ञ प्रदान करना। देवताओं का सब हविष्यों में इनके लिए भाग नियत करना। सौ० १८।

दक्ष के अश्वमेध यज्ञ में इनका भाग न होने के कारण पार्वती को क्षोभ। इनके कोप से वीरभद्र और उमा के रोष से भद्रकाली की उत्पत्ति। उन दोनों के द्वारा रुद्रगणों की सृष्टि और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस। दक्ष इनके शरणागत। ये हवन-कुण्ड से प्रकट। उनके द्वारा अष्टसहस्र नामों से इनकी स्तुति। इनका उन्हें वरदान। शा० २८४। (स्क० पु० मा० ५।४१-४३ में इनका दक्ष को उपदेश — केवलं कर्मणा त्वं हि संसारांत्तर्तुमिच्छसि।।… न शक्नुवन्ति मां प्राप्तं मूढ़ा कर्मवशा नराः।। तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः।)

भगीरथ को दिये गये वरदान के अनुसार इनका गंगा को मस्तक पर धारण करना। वन० १०९।१-२,९। सर्वदेवमय रथ पर आरूढ़ हो इनके द्वारा त्रिपुर-दाह। कर्ण० ३४।

ये चतुर्मुख। (स्क० पु० मा० ८।३५ एवं सं० शि० पु० पृ० ८३ में पंचमुख।) त्रिनेत्र। नीलकण्ठ। गले में सर्पमय यज्ञोपवीत। लोहित अंगभूषण। हरिश्मश्रु। मस्तक पर कपिल जटाजूट। हाथ में पिनाक। वृषभध्वज।

व्याघ्रचर्मधारी। सिंहचर्म इनका उत्तरीय। सदा ब्रह्मचारी वेष। इनका प्रिय स्थान श्मशान। (आचार्य नीलकण्ठ के मत से काशी का महाश्मशान।) अनु० १४०।१८-१९, ४४, ४६-४८, १४१।१६-१७।

हिमालय के पृष्ठभाग में मुञ्जवान पर्वत पर इनका तप और उमासहित वास। रुद्रगण, वसुगण, यमराज, वरुण, कुबेर, भूत, पिशाच, अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष आदि द्वारा प्राकृतिक नेत्रों से अदृश्य रहकर इनकी उपासना। आश्व० ८।१-८। इनके अन्य प्रिय स्थान सुमेरु (भी० ६।२५) और कैलास (वन० १०६।१६-१७)।

कृष्ण द्वारा इनके स्वरूप का कथन — 'द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः। घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः।।' इनका एक स्वरूप घोर, दूसरा शिव। भयोत्पादक घोर मूर्त्ति के अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि अनेक रूप। परम शान्त, मंगलमयी शिवमूर्त्ति के रूप धर्म, जल, चन्द्रमा आदि। शिवमूर्त्ति द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन और घोरमूर्त्ति द्वारा जगत् का संहार। अनु० १६१।१-६।

पुराणों में —

वि० पु० में ब्रह्मा की गोद से नीललोहित बालक के रूप में इनका जन्म। अपने नामकरण के लिए इनका बार-बार रुदन। ब्रह्मा का एक-एक कर इनके आठ नाम रखना -—रुद्र, भव, सर्व (शर्व), ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव। ये ही अष्टरुद्र। इनके स्थान क्रमशः सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, (यज्ञ में) दीक्षित ब्राह्मण, सोम। ये आठों निवास-स्थान 'अष्टमूर्त्ति' शिव के नाम से प्रसिद्ध। वि० पु० १।८।२-८।

भा० में सृष्टि उत्पन्न करने के ब्रह्मा के आदेश की सनकादि द्वारा अवहेलना। इससे प्रजापति को क्रोध। उनके भ्रूमध्य से एक नीललोहित बालक उत्पन्न। जन्म लेते ही रुदन करने के कारण बालक का नाम 'रुद्र'। ब्रह्मा का इनके ग्यारह नाम रखना — मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, धृतव्रत। ये ही एकादश रुद्र। ब्रह्मा द्वारा इनके स्थानों और पत्नियों का भी निर्देश।

प्रजापति का आदेश पाकर भगवान् रुद्र द्वारा अपने ही जैसे रुद्रों की सृष्टि। असंख्य रुद्र-यूथों द्वारा संसार का भक्षण होना देख ब्रह्मा का इन्हें सृष्टि-कर्म से विरत करके तप करने का आदेश। भा० ३।१२।६-१८।

शैव पुराणों में ये ब्रह्म। शिवतत्व लिंगरूप — लिंगरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत्। स्क० पु० मा० ६।५२। शिवलिंग विन्दुनाद-स्वरूप। विन्दु शक्ति, नाद शिव। नाद विन्दु का आधार और विन्दु जगत् का। इस तरह नाद और विन्दु, शिव और शक्ति, अर्थात् शिवलिंग सम्पूर्ण जगत् का आधार। सं० शि० पु० पृ० ५०। यद्यपि लिंग और लिंगी में अभेद, फिर भी लिंग-स्थापना की अपेक्षा मूर्त्ति-स्थापना का महत्व गौण। शिवलिंग के अभाव में सब ओर से स-वेर (मूर्त्तियुक्त) होने पर भी उस स्थान को क्षेत्र की महत्ता प्राप्त नहीं। सं० शि० पु० पृ० ३३।

लिंगस्थापना के लिए सत्वगुण की पीठिका अपेक्षित — पीठिका विष्णुरूपं स्याल्लिंगरूपी महेश्वरम्। रावण द्वारा पीठिकारहित लिंग की पूजा उसके शाप का कारण। स्क० पु० मा० ८।२१, ८३-८४। शिवलिंग पर चढ़ाया हुआ द्रव्य अग्राह्य, किन्तु शालग्राम शिला के स्पर्श से वह ग्रहणयोग्य। सं० शि० पु० पृ० ६६।

प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंग — सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम्।। परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम्। सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने।। वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे। हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये। एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः। सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति।। स्तो० पृ० ३९-४१।

शि० पु० की शतरुद्रसंहिता में इनके अनेक अवतारों का वर्णन।

प्राचीन काल से यह मान्यता कि किसी मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी इनके लिए पवित्र। उसका नाम शिवरात्रि। माघ (फाल्गुन, पूर्णिमान्त) की चतुर्दशी सबसे अधिक महत्वपूर्ण, वह महाशिवरात्रि। उस दिन इनकी उपासना, व्रत-पालन आदि। ध० इ० प्र० पृ० ४०२, च० पृ० ८४।

मानस में इनके तीन रूपों के दर्शन — ब्रह्मरूप (यथा ७।१०८ के रुद्राष्टक में), देवतारूप (यथा १।५४।७, १।६१।२ आदि में), रामभक्तरूप।]

ये विश्वास-स्वरूप, नित्य, ज्ञानमय, गुरुदेवरूप। इनकी वन्दना (१।१।श्लो० २, ३)। 'कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन'। इनसे कृपा-याचना (१।१।सो० ४)। सन्तसमाज-प्रयाग के रूपक में इनकी और हरि की कथा त्रिवेणी (१।२।१०)। सन्त-महिमा-वर्णन में विधि, हरि आदि की तरह इनकी वाणी भी संकुचित (१।३।११)।

हरि-हर-प्रेमियों के लिए रघुनायक-कथा मधुर (१।९।६)। उमासहित इनके द्वारा रामनाम-जप (१।१०।२)। इनके अंग-संसर्ग से श्मशान-भस्म भी पवित्र (१।१०।छं०)। शारदा आदि के साथ इनके द्वारा रामगुणों का नेति-नेति कहकर गान (१।१२)। 'गुरु पितु मातु महेस भवानी'। ये राम के सेवक, स्वामी, सखा, दीनबन्धु, नित्य दानी। तुलसी के निश्छल हितैषी। इनको प्रणति (१।१५।३-४)। कलियुग में जगहित के लिए इनके द्वारा साबर मन्त्र-समूह की रचना। इनकी कृपा से रामकथा आनन्द-मंगलमयी होगी, इस विश्वास के साथ, शिवासहित इनका स्मरण कर, तुलसी द्वारा रामचरित-वर्णन (१।१५।५-१।१५)।

रामनाम विधि-हरि-हरमय महामन्त्र। इनके अनुसार सहस्रनाम-तुल्य (दे० 'भवानी' के अन्तर्गत 'पारबती')। इनके साथ पार्वती द्वारा उसका जप। नाम के प्रति पार्वती की प्रीति देख इनका उन्हें भूषण बनाना। इनके द्वारा काशी में मरनेवालों को राम-नाम का उपदेश जिससे उनकी मुक्ति। (दे० 'कासी'।) नाम-प्रभाव से इनके लिए कालकूट भी अमृत-सदृश (१।१९।२,३ ६-८)। अनन्त, अपार रामचरित्र में से इनके द्वारा राम-नाम का ग्रहण। उसके प्रभाव से ये अमंगलवेशधारी होने पर भी मंगलराशि और नारद इनके प्रिय (१।२५ - १।२६।१, ३)। ये रामचरित के प्रथम रचयिता। रचकर इनका उमा को सुनाना, काकभुशुण्डि को देना (१।३०।३-४)। रामकथा इन्हें नर्मदा के समान प्रिय (१।३१।१३)। राम के गुणग्राम इनके लिए अतिथिसम पूज्य, अतिप्रिय। सेवा से इनके और हरि के समान सुलभ, सुखद (१।३२।८, ११)। भवानी के प्रश्नों के प्रकार और कारण एवं इनके उत्तर की विधि को विस्तृत कथा-प्रसंग में कहने का, इन्हें नमन कर विशद रामगुण-गाथा-वर्णन का, कवि का संकल्प (१।३३।१-२, १।३४।३)।

इनके द्वारा रामचरितमानस की रचना। रचकर उसे मन में रखना। सुअवसर पाकर शिवा से कहना। रामचरितमानस नामकरण। (१।३५।९, ११,१२)। उमासहित इनका स्मरण कर मानस के स्वरूप, निर्माण-विधि और उसके जगप्रचार का हेतु कहने का कवि का संकल्प (१।३५)। 'संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी' (१।३६।१) कीर्त्तिरूपणी सरयू में उमा-महेश-विवाह हिमऋतु, बराती सरयू नदी के जलचर (१।४२।२, १।४०।७)। उमासहित इनका स्मरण कर कथा कहने का कवि-संकल्प (१।४३ क)।

ये अविनाशी, ज्ञानगुणराशि, भगवान्। इनके द्वारा सदा रामनाम का जप और उपदेश जिससे काशी में देह-त्याग करनेवाले को परमपद-प्राप्ति (१।४६।३-५)। (दे० 'कासी')। 'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि'? भरद्वाज के इस प्रश्न और रामविषयक मोह के उत्तर में याज्ञवल्क्य-कथन – भवानी के ऐसे ही संशय का इनके द्वारा समाधान। विषाद-नाशक उमा-शम्भु-संवाद के समय, उसके हेतु और उस संवाद के कथन की याज्ञवल्क्य की प्रतिज्ञा (१।४६, १।४७।८, १।४७)।

त्रेता युग में एक बार इनका सतीसहित अगस्त्य ऋषि के पास जाना। उनसे रामकथा सुनकर, उन्हें अधिकारी जान, हरि-भक्ति का उपदेश। रामगुण-गाथा का कथन-श्रवण करते हुए कुछ दिन रहकर सतीसहित घर के लिए प्रस्थान (१।४८।१-६)। गुप्त रूप से अवतीर्ण हुए प्रभु के दर्शन की इनके मन में लालसा। प्रत्यक्ष रूप से उनसे मिलने पर यह भेद प्रकट होने का भय। न मिलने पर बाद में पश्चात्ताप की आशंका। अतः अनिश्चय की स्थिति (१।४८ क - १।४९।३)। इसी समय सीता-विरह-कातर राम के दर्शन। परिचय न कर, 'जय सच्चिदानंद जग पावन' कहकर पुलकित होते हुए सती के साथ गमन (१।५०।१-४)। राम के प्रति इनकी प्रणति, सम्बोधन, प्रीति-पुलक देखकर सती के मन में संशय – जगत्वन्द्य सर्वज्ञ ईश्वर तो ये स्वयं। अतः एक ओर रामावतार के प्रति उनके मन में अविश्वास, दूसरी ओर इनकी वाणी की सत्यता का अटूट विश्वास (१।५०।५ - १।५१।४)। ये अन्तर्यामी। सती को इनका प्रबोधन – वे संशय न करें। ब्रह्म ही रामरूप में अवतीर्ण। 'सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।' उन पर अपने उपदेश का प्रभाव न देख उनसे राम की परीक्षा लेने या और किसी विवेकपूर्ण युक्ति से अपना भ्रम दूर करने का इनका कथन। सती के जाने पर इन्हें भावी अमंगल का अनुमान। वटवृक्षतले ये नाम-जप में मग्न (१।५१।५ - १।५२।८)। सीतावेशधारी सती से राम की इनके सम्बन्ध में जिज्ञासा। चिन्ताकुल सती का इनके निकट लौटना (१।५३।८ - १।५४।१, १।५५।८)। हँसकर इनका प्रश्न– उन्होंने राम-परीक्षा कैसे ली? सती का दुराव। ध्यान से इन्हें सब ज्ञात। सती के सीतावेश धारण करने से विषाद। अब उनसे प्रेम करना भक्ति की दृष्टि से पाप। परम पुनीत होने के कारण उनका त्याग भी कठिन। अतः मन में सन्ताप। इनका संकल्प – 'एहि तन सतिहि भेट

मोहि नाहीं' (१।५५ - १।५७।२)। भवन (कैलास) जाते समय आकाशवाणी – 'जय महेस भलि भगति दृढ़ाई।। अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना।।' सती के पूछने पर भी इनका प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में न बताना। इनके रुख से सती को ज्ञात कि वे अब परित्यक्त। सुन्दर कथाएँ सुनाकर उनका दुःख दूर करने की इनकी चेष्टा (१।५७।३ - १।५८।५)। [शि० पु० में आकाशवाणी और सती-त्याग-प्रसंग इसी प्रकार का। रु० स० २५। वहाँ इनकी प्रतिज्ञा – सती से विवाह करने की शर्त्त – अविश्वासो मदुक्तेचेन्मया त्यक्ता भविष्यति। रु० स० १९।४४।] कैलास पर आकर, अपने प्रण का स्मरण कर, ये अखण्ड समाधि में लीन (१।५८।६-८)। सतासी हजार वर्षों की समाधि से जागकर इनका सती को सादर हरिकथा सुनाना (१।६०।२-५)।

दक्ष-यज्ञ में त्रिदेव का न जाना। [शि० पु० रु० स० २७, २९ में ब्रह्मा और विष्णु यज्ञ में उपस्थित।] सती-जिज्ञासा पर इनका उन्हें उस यज्ञ के सम्बन्ध में बताना (१।६१।२, ५)। वहाँ जाने के लिए सती को मना करते हुए इनका कथन – एक बार ब्रह्मसभा में दक्ष इनसे अप्रसन्न। उस वैर के कारण दक्ष द्वारा सती की उपेक्षा, यद्यपि अन्य दक्ष-कन्याएँ यज्ञ में आमन्त्रित। अनिमन्त्रित जाने पर शील-स्नेह, मान-मर्यादा की हानि। उस पर यदि विरोध, तो कल्याण नहीं। इनके समझाने पर भी सती को प्रबोध नहीं। तब मुख्य गणों के साथ उन्हें विदा करना (१।६१-१।६२)। दक्ष-यज्ञ में इनका भाग नहीं। इस अपमान से सती को रोष। उनका कथन – सन्त-शिव-विष्णु-निन्दक की जीभ काट लेने की, और वश न चलने पर उस स्थान का त्याग करने की मर्यादा। शिव-निन्दक को शीघ्र किये का फल मिलेगा। 'जगदातमा महेस पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी।।' इन्हें हृदय में धारण कर सती का योगाग्नि से आत्मदाह (१।६३।४ - १।६४।८)। समाचार पा ये कुपित। वीरभद्र को भेजना। यज्ञ-ध्वंस। इनके द्रोहियों की जो गति, वही दक्ष की। मरते समय हरि (राम) से सती की वर-याचना – 'जनम जनम सिव पद अनुरागा।' इसीलिए पार्वतीरूप में उनका जन्म (१।६४-१।६५।६)।

'अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।। जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।' पार्वती के वर के उपर्युक्त दोष भी इनके वर होने पर गुण। – नारद-कथन। पार्वती के मन में इनके प्रति प्रेमोदय (१।६७।८, १।६७, १।६८।५, १।६९।३, ४)। ये सहज समर्थ भगवान्। दुराराध्य, किन्तु तप से शीघ्र तुष्ट होनेवाले, आशुतोष। पार्वती के लिए इन्हें छोड़ दूसरा वर नहीं। ये भावी को मिटाने में भी समर्थ। इनकी आराधना के बिना इच्छित फल-प्राप्ति असम्भव। – नारद की उक्ति (१।७०।३-८)। मैना से हिमवान्-कथन – उमा को इनकी प्राप्ति के लिए तप करने का वे आदेश दें (१।७२।२-४)। 'तपबल संभु करहिं संघारा' (१।७३।४)। इनके चरणों को हृदय में धारण कर उमा का तप (१।७४।१)। पार्वती के लिए आकाशवाणी – 'अब मिलिहहिं त्रिपुरारि' (१।७४)।

सती के देह-त्याग से इनके मन में वैराग्य। हृदय में हरि (राम) को धारण कर, उनका नाम-जप और गुण-श्रवण-कथन करते हुए इनका विचरण। चिदानन्द, सुखधाम, मोह-काम-रहित होने पर भी ये भक्त (सती) के विरह से दुखी (१।७५।६ - १।७६।२)। ('दे० 'भवानी'।) दीर्घकाल तक इनका नेम-प्रेम, अविचल भक्ति देख राम का प्राकट्य। इनकी सराहना कर पार्वती से विवाह करने की उनकी विनय। इनकी दृष्टि में यह अनुचित, फिर भी प्रभु-आज्ञा शिरोधार्य। पार्वती की प्रेम-परीक्षा के लिए इनका सप्तर्षि को भेजना (१।७६।३ - १।७७)। परीक्षार्थ सप्तर्षि-कथन – ये 'निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।।' इन्होंने सती से विवाह कर उन्हें मरवा डाला। अब भीख माँगकर भोजन और निश्चिन्त शयन। इनके यहाँ स्त्री का निर्वाह नहीं (१।७९।५ - १।७९)। पार्वती-कथन– उनका मन इन्हीं में अनुरक्त। इनके लिए वे अपना जीवन हार चुकीं। स्वयं ये भी मना करें, तब भी वे विचलित नहीं होंगी। 'बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी।' (१।८०, १।८१।२, ४, ५, ६)। सप्तर्षि से उमा-प्रसंग सुनकर ये मग्न (१।८२।२-४)। [सं० शि० पु० में सप्तर्षि द्वारा परीक्षा के बाद जटिल ब्राह्मण, नट एवं वैष्णव विप्र के रूप में स्वयं इनके द्वारा पार्वती-परीक्षा। पृ० १९८-२०७।] ब्रह्मा-कथन – इनके तेज से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर को मारने में समर्थ। इनमें क्षोभ उत्पन्न करने के लिए देवता काम को भेजें। तब वे इनका पार्वती से विवाह करा देंगे (१।८२, १।८३।३-६)। इनके विरोध से मरण निश्चित समझकर भी कामदेव का इनके निकट आगमन। वे भयभीत। ये समाधि में निश्चल। उनके विषम बाणों से इनकी समाधि भंग। इन्हें क्रोध। तृतीय नेत्रोन्मीलन। काम भस्म (१।८३, १।८४।४, १।८६।१,२,४, १।८६, १।८७।३-६)। विलाप करती हुई रति को इनकी सान्त्वना। अनंग नाम से काम के सबको व्यापने का, कृष्णावतार में कृष्ण-तनय (प्रद्युम्न) रूप में उनके उत्पन्न होने

का कथन (१।८७।छं० - १।८८।३)। ब्रह्मा-विष्णुसहित देवताओं का इनके पास आना। पार्वती को अंगीकार करने की ब्रह्मा-विनय इन्हें स्वीकार (१।८८।५ - १।८९।५)। 'हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।।' इसी दृष्टि से पार्वती द्वारा इनकी सेवा, तो ये उनका प्रण अवश्य सत्य करेंगे। — पार्वती-कथन (१।९०।३-५)।

बरात के समय गणों द्वारा इनका शृंगार। जटाओं का मुकुट, सर्पों का मौर। मस्तक पर गंगा, ललाट पर चन्द्र, कानों में सर्प-कुण्डल। शरीर पर विभूति और बाघम्बर, सर्पों का यज्ञोपवीत। कण्ठ में विष, व्रक्ष पर नर-मुण्ड-माल। हाथों में डमरू और त्रिशूल। वलद का वाहन। बाजे-गाजे के साथ प्रस्थान। इन्हें देख देवांगनाओं का मुसकाना, कथन — इनके योग्य वधू जगत् में दुर्लभ (१।९२।१-६)। बराती—सुर-समाज—अनुपम। विष्णु-कथन—वर-योग्य बरात नहीं। उनके आदेश से सबका अपने-अपने दलसहित अलग-अलग चलना। [सं० शि० पु० में इनके आदेश से। पृ० २१८-२१९।] विष्णु के व्यंग्य-वचन सुन इनका मुसकाना। भृंगी को भेज सब गणों को बुलाना। सबके नाना वाहन, विचित्र घोर भयानक वेश। प्रेत-पिशाच-योगिनियों का नृत्य-गीत। 'जस दूलह तसि बनी बराता'। (१।९२।७ - १।९४।१)। अगवानी के लिए आये लोग सुरगण को देख प्रसन्न। इन्हें और इनके समाज को देख त्रस्त। 'जम कर धार किधौं बरिआता' (१।९५।३ - १।९५)। आरती सजाकर परछन के समय इनका वेश देख स्त्रियोंसहित मेना को दुःख। इनसे उमा-विवाह न करने का निश्चय। रुदन, विलाप। पार्वती का माँ को समझाना। फिर नारद से सती-प्रसंग सुनकर, उनके समझाने पर, सबको प्रबोध। आनन्द (१।९६।१ - १।९९।२)। विप्रों को नमन कर, राम-प्रभुता का स्मरण कर, ये दिव्य सिंहासन पर आसीन। वैदिक पद्धति से विवाह। उमासहित इनके द्वारा गणेश-पूजन। हाथ में कुश और कन्या का हाथ पकड़ हिमवान् का इन्हें समर्पित करना। इनके द्वारा पार्वती के पाणिग्रहण से भुवन उल्लसित। देवताओं द्वारा जयजयकार। हिमवान्-मेना की इनके चरण पकड़कर विनती। इनका उन्हें समझाना। उमासहित विदा होना (१।९९।३-१।१०२)।

कैलास पर इनका गणोंसहित निवास। 'जगत मातु पितु संभु भवानी।' अतः शृंगार-वर्णन तुलसी को अभिप्रेत नहीं। दीर्घकाल तक इनका उमा के साथ विहार, भोग-विलास। कार्त्तिकेय का जन्म (१।१०३।३-७)। इनका चरित्र सिन्धु-सा अथाह अनन्त, वेदों के लिए भी अगम। उसके वर्णन में तुलसी की असमर्थता। चरित-श्रवण से भरद्वाज को अतिशय सुख। उन्हें ये प्राणप्रिय (१।१०३, १।१०४।१, ४)। याज्ञवल्क्य-कथन — इनके समान राम-व्रती और राम-प्रिय कोई दूसरा नहीं। सती-त्याग का दृष्टान्त। इनके प्रति निश्छल प्रेम राम-भक्त का लक्षण। इनकी पद-रति बिना रामप्रिय होना असम्भव। इनके चरित-कथन से याज्ञवल्क्य को भरद्वाज का यह मर्म ज्ञात कि वे राम-सेवक (१।१०४।५ - १।१०४)।

उमासहित इनका कैलास पर सदा निवास। पुण्यात्म सिद्ध-मुनि-देव आदि द्वारा ये सेवित। इनके विश्राम के लिए वहाँ एक विशाल वटवृक्ष। एक बार उसके नीचे बाघम्बर बिछाकर इनका सुखासन से अवस्थान (१।१०५।८ - १।१०६।५)। इनका मंगल-रूप-वेश – (कोमल, गन्धयुक्त) कुन्द-कुसुम, (प्रकाशक, आह्लादकारी) इन्दु और (दृढ़तासूचक) शंख जैसे उज्ज्वल गौर शरीर पर (उदासीन तपस्वियों के) वल्कल के वस्त्र, (वैराग्यसूचक) भुजग (भुजगराज - १।१०६।८) और विभूति के आभूषण। शरदेन्दु से अधिक कान्तिमान् मुख, (कालकूटपायी) नील कण्ठ, कमल-से विशाल नेत्र। ललाट पर द्वितीया का चन्द्र, सिर पर जटा-मुकुट में शोभित गंगा। प्रलम्ब भुजाएँ, लाल कमल-से चरण, भक्त-हृदय-तम-हारी नखद्युति। नख-शिख लावण्यनिधि। जैसे मूर्त्तिमान् शान्तरस। (यहाँ अमंगल मुण्डमाल का उल्लेख नहीं। सर्पों के स्थान पर केवल 'भुजगराज'।) (१।१०६।६ - १।१०७।१)। पार्वती के निकट आने पर आदरपूर्वक उनको वामभाग में आसन देना। इन्हें अनुकूल देख उनकी विनती और रामकथा के (१।१०८।१- सम्बन्ध में जिज्ञासा (१।१०७।२ - १।१०८।२)। उनकी ज्ञानेप्सापूर्ण आठ प्रार्थनाएँ और बारह प्रश्न रामचरित का स्मरण। १।१११।५ — दे० 'भवानी' के अन्तर्गत 'पारबती')। सहज, निश्छल प्रश्नों से इन्हें प्रसन्नता। [त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः। स्मारितो हृदय में रामरूप का साक्षात्कार। प्रेम-पुलक, नयनाश्रु, परमानन्द। 'मगन ध्यानरस दंड जुग भगवानद्य देवो नारायणो मम।। — वसुदेव-जिज्ञासा पर नारद-कथन। भा० ११।२।१३।] पुनि मन बाहेर कीन्ह। रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह।।' (१।१११।६-१।१११)। राम के निर्गुण रूप और सगुण बाल-रूप के गुण कहकर, कृपा-याचना और प्रणाम कर, ये उत्तर के लिए प्रस्तुत (१।११२।१-५)।

(१) पार्वती की प्रथम प्रार्थना (१।१०८।१-२) का उत्तर — पार्वती धन्य। वे राम-चरण-अनुरागिनी। उनका प्रश्न जगहित के लिए, क्योंकि राम-कथा-प्रसंग 'सकल लोक जग पावनि गंगा'। [धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्वम्। पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढ़म्।। अ० रा० १।१।१६। पुरारिगिरि सम्भूता श्रीराममार्णवसंगता। अध्यात्मरामगंगेयं पुनाति भुवनत्रयम्।। अ० रा० १।१।५।] शोक-मोह-सन्देह-भ्रम से वे सर्वथा मुक्त (१।११२।६-१।११२) फिर भी, उनकी आशंका के कथन-श्रवण से सबका हित। हृदय-मस्तक-सहित सब इन्द्रियों की सार्थकता तभी जब उनका सम्बन्ध हरि-गुरु-सन्त से जुड़ जाये। [भा० २।३।१७-२४ में इस भाव की विशद व्यंजना।] राम की लीला देवताओं के लिए हित-साधक, दैत्यों के लिए मोहकारी। सन्त-समाज ही सुरलोक जहाँ सुखदायक रामकथारूपी कामधेनु (१।११३।१-१।११३)। प्रथम उत्तर समाप्त।

(२) द्वितीय प्रार्थना (१।१०८।३-४) का उत्तर — राम-कथा संशय एवं संशय के आधार कलि का नाश करनेवाली (१।११४।१-२)

(३) तृतीय प्रार्थना (१।१०८।५ - १।१०९।१) का उत्तर— राम के नाम, गुण, चरित, जन्म, कर्म, सब सुन्दर, अगणित और वेदविहित। उनकी तरह उनकी कथा, कीर्त्ति, गुण भी अनन्त। [जन्म कर्म च मे दिव्यं। गीता० ४।९। अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः। भा० १।३।२६।] फिर भी उनके कथन की इनकी प्रतिज्ञा। (यह कथा का उपक्रम)। पार्वती की यह उक्ति इन्हें अप्रिय कि वेद-वन्दित मुनि-ध्येय राम कोई और। ऐसी शंका केवल मोहग्रस्त, विषयासक्त, श्रुति-स्मृति-नेत्र-विहीन, हरि-गुरु-सन्त-विमुख द्वारा ही। [श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे ब्राह्मणानां प्रकीर्त्तिते। एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्ध इतीरितः।। मा० पी० १।११५।१-२ टिप्पणी।] अतः पार्वती को संशय त्याग राम-पद-भजन का आदेश (१।११४।३ - १।११५)।

(४) चतुर्थ प्रार्थना (१।१०९।२) का उत्तर — सगुण-निर्गुण में अभेद। निर्गुण ही भक्त-प्रेमवश सगुण। दोनों में जल-हिम-उपल-सदृश केवल अवस्था-भेद। राम सच्चिदानंद, सहज प्रकाशरूप। वहाँ न मोह-निशा, न विज्ञान-प्रभात। जीव-धर्मों का, अस्मिता का अभाव। वे प्रसिद्ध पुराण पुरुष इनके स्वामी। यह कहकर इनका नमन (१।११६।२ - १।११६)। जड़ प्राणियों द्वारा अपने अज्ञान का राम पर आरोप। यही रामविषयक मोह का कारण। विषय, करण (= इन्द्रिय), इन्द्रियों के देवता, जीव, जगत्, सबके वे परम प्रकाशक। उनकी सत्यता से जड़ माया में सत्यता का आभास। जैसे सीप में रजत का, मरीचिका में जल का भास, वैसे ही राम में माया का (१।११७।१ - १।११७)। जगत्-सम्बन्धी भ्रम-निवारण रामकृपा से ही सम्भव। उन्हीं के नाम-प्रभाव से काशी-मरण से मुक्ति। वे अन्तर्यामी परमात्मा, दाशरथि राम ही इनके स्वामी। उनके सम्बन्ध में भ्रम-संशय अविहित। संशय से ज्ञान-वैराग्य-नाश (१।११८।१ - १।११९।६)। इनके भ्रम-नाशक वचनों से पार्वती संशय-मुक्त। राम-स्वरूप का ज्ञान। राम-चरणों में उनकी प्रीति-प्रतीति। पुनः राम के नर-देह-धारण के हेतु-सम्बन्धी उनकी जिज्ञासा। इनकी प्रसन्नता और उमा-प्रशंसा (१।११९।७ - १।१२० क)।

(५) पंचम प्रार्थना (१।१०९।३-५) का उत्तर — गरुड़-भुशुण्डि-संवाद में वर्णित मानस-कथा सुनने की आज्ञा (१।१२० ख)। (६) षष्ठ प्रार्थना (१।१०९।६-८) का उत्तर — (गरुड़-भुशुण्डि-संवाद बाद में कहेंगे। इस समय) रामावतार सुनने के लिए आज्ञा (१।१२० ग)। (७) सप्तम प्रार्थना (१।१०९) का उत्तर — हरि के गुण-नाम अपार, कथा-रूप अगणित, अमित। कथा कहने की प्रतिज्ञा, सादर सुनने की आज्ञा (१।१२० घ)। (८) अष्टम प्रार्थना (१।११०।१-३) का उत्तर — वेद-शास्त्रों द्वारा हरि के निर्मल चरित्रों का गान (१।१२१।१)।

पार्वती के प्रथम प्रश्न (१।११०।४) का उत्तर प्रश्न प्रार्थना से भिन्न — अवतार-हेतुओं का निश्चित रूप से निरूपण सम्भव नहीं। शास्त्रानुमोदित हेतु — धर्म की हानि और अधर्म का विकास होने पर साधुओं के परित्राण और दुर्जनों के विनाश के लिए प्रभु का अवतार। हेतु अनेक। कुछ के कथन की प्रतिज्ञा। सावधान होकर सुनने की आज्ञा (१।१२१।२ - १।१२२।३)। रामावतार के कुछ हेतु — (क) जय-विजय को सनकादि का शाप (१।१२२।४ - १।१२३।४)। दे० 'जय', 'विजय'। (ख) प्रभु को वृन्दा का शाप (१।१२३।५ - १।१२४।३)। दे० 'असुराधिप नारी', 'जलंधर'। इस प्रसंग में —'जालंधर से इनका युद्ध। वृन्दा के पातिव्रत के कारण उसे जीतने में असमर्थ (१।१२३।६, ७)। (ग) प्रभु को नारद-शाप (१।१२४।५ - १।१२४ क, १।१२५।१ - १।१४०)। दे० 'नारद'। इस प्रसंग में — नारद-मोह से विस्मित पार्वती से इनका कथन — ज्ञानी, मूढ़ कोई नहीं। सब राम की इच्छा पर

अवलम्बित (१।१२४।६ - १।१२४ क)। काम को जीतकर नारद का इनके पास आना। वे इन्हें प्रिय। काम-विजय की बात को हरि से गोपन रखने की इनकी शिक्षा उन्हें रुचिकर नहीं (१।१२७।५ - १।१२७, १।१२८।२)। इन्हें विषपान कराने का हरि से नारद-कथन (१।१३६।८, १।१३६)। मनःशान्ति के लिए इनके शतनाम-जप का नारद को हरि-उपदेश (१।१३८।५)। [शिवलिंगार्चनतन्त्र के शिव-पार्वती-संवाद (५-४३) के अन्तर्गत शिवशतक मा० पी० १।१३८।५ नोट में। वि० में एक अन्य शिवशतक। महा० अनु० १७ में शिवसहस्रनामस्तोत्र।] (घ) मनु-शतरूपा की तपस्या और भक्ति (१।१४१।१-८, १।१४२।१ - १।१५२)। दे० 'मनु', 'सतरूपा'। इस निमित्त से भानुप्रताप को विप्रशाप (१।१५३।१ - १।१७५।८), रावणावतार (१।१७६।१ - १।१८८।५)। दे० 'प्रतापभानु', 'रावन'।

पार्वती के द्वितीय प्रश्न (१।११०।५ - प्रथम चरण) का उत्तर —रामावतार-वर्णन (१।१८८।६ - १।१९६)। राम-जन्म-महोत्सव के समय काकभुशुण्डि के साथ प्रेम-मग्न होकर मनुष्यरूप में इनका अवध-वीथियों में भ्रमण (१।१९६।३-५)। तृतीय प्रश्न (१।११०।५ - द्वितीय चरण) का उत्तर — राम का बालचरित-वर्णन (१।१९७।१ - १।२०५)। शेष-शारदा के साथ इनके द्वारा राम के बालचरित का गान (१।२०४।१)। चतुर्थ प्रश्न (१।११०।६- प्रथम चरण) का उत्तर — विश्वामित्र-आगमन, सीय-स्वयंवर, विवाह (१।२०६।१-१।३६१)। इस प्रसंग में — 'बिकट बेष मुख पंच पुरारी' (१।२२०।७)। 'ईसु काहि धौं देइ बड़ाई' (१।२४०।१)। 'होहु प्रसन्न महेस भवानी' (१।२५७।५)। राम-विवाह देखने के लिए ब्रह्मादि देवताओं के साथ इनका जनकपुर-आगमन। विस्मित देवों को सिय-राम का प्रभाव समझाना। नख-शिख रामरूप निरख उमासहित ये पुलकित, प्रेमाश्रुसिक्त। इस समय अपने पन्द्रह नेत्र इन्हें अत्यन्त प्रिय (१।३१४।२, ३, १।३१४ - १।३१५।३, १।३१५, १।३१७।२)। दशरथ को इनके समान जानकर जनक द्वारा उनकी पूजा (१।३२१।१)। ब्रह्मा आदि के साथ ये विप्रवेश में बरात में सम्मिलित और पूजित (१।३२१।६-८)। 'हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि···दई' (१।३२४।छं० ४)। 'ईस अनेक करवरें टारी' (१।३५७।१)। चतुर्थ प्रश्न का उत्तर समाप्त।

'यस्यांके च विभाति भूधरसुता···शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् (२।१।श्लो०१)। पंचम प्रश्न (१।११०।६ - द्वितीय चरण) का उत्तर — सम्पूर्ण अयोध्यकाण्ड। राम के बालसखाओं की इनसे अनन्य राम-भक्ति की याचना (२।२४।५-६)। ये 'अवढर दानी'। महेश, सदाशिव, आशुतोष कहकर इनसे आर्त्ति-हरण की दशरथ की विनती। सबके हृदय में इन्हें प्रेरकरूप मानकर इनसे राम के मति-परिवर्तन की प्रार्थना, जिससे वे पितृ-वचन का पालन न करें (२।४४।७ - २।४४)। गंगा-स्नानोपरान्त राम द्वारा पार्थिव (मिट्टी का शिवलिंग बनाकर) पूजन और नमन (२।१०३।१)। [अपने आग्नेयास्त्र से कृष्ण-अर्जुन को अप्रभावित देख अश्वत्थामा का व्यास से कारण पूछना। व्यास कथन — अश्वत्थामा द्वारा शिव की प्रतिमा का पूजन और कृष्ण-अर्जुन द्वारा लिंग का। लिंग-पूजक में सनातन आत्मयोग और शास्त्रयोग प्रतिष्ठित। महा० द्रोण० २०१।९२-९३। पार्थिव पूजन का माहात्म्य और भी अधिक।] अनिष्ट-शान्ति के लिए भरत द्वारा इनका अभिषेक। इनसे माता-पिता आदि की कुशल-याचना (२।१५७।७-८)। 'हमरें तौ अब ईस गति' — कौसल्या-कथन सुनयना से (२।२८४)। चित्रकूट में भरत द्वारा हरि के साथ इनके यश का कथन-श्रवण (२।३१२)। उत्तर समाप्त।

ये धर्म-वृक्ष के मूल, विवेक-समुद्र के लिए पूर्णचन्द्र, वैराग्य-कमल के लिए सूर्य, पापान्धकार-नाशक, त्रितापहारी, मोह-मेघ को विच्छिन्न करने में आकाश से उत्पन्न पवनरूप, कल्याणकारी, ब्रह्मकुलोद्भव, कलंकनाशक (अथवा ब्रह्मकुल-कलंकनाशक), रामप्रिय। इनकी वन्दना (३।१।श्लो०१)। [कुछ विद्वानों के अनुसार यह वन्दना इनकी अष्टरूप मूर्त्ति की। अष्टमूर्त्ति— सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात्।। वि० पु० १।८।८।]

षष्ठ (क) प्रश्न (१।११०।७ - प्रथम चरण) का उत्तर— अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दरकाण्ड सम्पूर्ण (मा० पी० १।११०।७ टिप्पणी ३ एवं ३।१।श्लो०१ के नोट १ के अनुसार। वि० के किष्किन्धाकाण्ड की विषयानुक्रमणिका के अनुसार अरण्य और किष्किन्धाकाण्ड। सुन्दरकाण्ड नहीं।) 'बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव' (३।१५)। श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा···श्रीरामनामामृतम् (४।१।श्लो०२)। उमासहित इनके वास के कारण ही काशी मुक्तिक्षेत्र (४।१।सो०१)। इनके द्वारा हलाहल विष के पान का स्मरण कराके तुलसी का मन को प्रबोधन — 'तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस' (४।१।सो०२)। इनके द्वारा काशी में सबको मुक्तिदान

राम-नाम-प्रभाव से। — वाली-कथन राम से (४। १०। ४)। (दे० 'कासी')। त्राहि-त्राहि कर चरणों में गिरे हनुमान् के मस्तक पर प्रभु का कर-कमल — इस स्थिति का स्मरण कर ये प्रेम-मग्न। पुनः सावधान होकर कथा कहना (५। ३३। २, ३)। इन्हें राम-स्वभाव का ज्ञान। —राम-कथन (५। ४८। १)। 'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिए दस माथ' (५। ४९ ख)। प्रश्न षष्ठ (क) का उत्तर समाप्त।

इनकी वन्दना (६। १। श्लो०२)। ये साधु पुरुषों के लिए कैवल्यदाता, खलों के लिए दण्डकारी। इनसे शं (कल्याण)-विस्तार को तुलसी की प्रार्थना (६। १। श्लो०३)। [सुतीक्ष्ण की भी प्रार्थना — 'संतत शं तनोतु मम रामः' (३। ११। १६)। मानस-प्रसंग में 'शं' का तात्पर्य राम-भक्ति।] षष्ठ (ख) प्रश्न (१। ११०। ७ - द्वितीय चरण) का उत्तर — लंकाकाण्ड सम्पूर्ण। (वि० के अनुसार उत्तर आरम्भ ४। ३० ख — द्वितीय पंक्ति से)। सेतुबन्ध के निकट राम द्वारा इनका लिंग-स्थापन और विधिवत् पूजन (६। २। ३-६)। उपदेशमूलक स्तुति — इनके द्वेषी को स्वप्न में भी राम-प्राप्ति नहीं (६। २। ७-८)। शंकर और राम में किसी एक की भक्ति और दूसरे से द्रोह करनेवाले को नरकवास (६। २)। रामेश्वर के दर्शन करने से रामधाम की प्राप्ति। गंगाजल लाकर चढ़ाने से सायुज्य मुक्ति। निष्काम सेवा से इनके द्वारा रामभक्ति-प्रदान (६। ३। १-३)। ये विराट्‌रूप राम के अहंकार (६। १५ क)। रावण द्वारा इनके पूजन का अंगद-कथन (६। २०। ३)। इनके सहित कैलास उठाने का रावण-कथन (६। २२ ख)। रावण की दर्पोक्ति — ये उसकी शूरता से परिचित। अगणित बार उसका इन्हें मस्तक चढ़ाना (६। २५। २-३, ६। २८)। इनकी और हरि की निन्दा सुननेवाला पापभागी (६। ३२। २)। इनका भजन धर्मरथ का सुजान सारथी (६। ८०। ७)। इन्हें सादर मस्तक चढ़ाने के कारण ही रावण को एक-एक के बदले कोटि-कोटि मस्तक प्राप्त। —विभीषण-कथन (६। ९४। ६)। रावण-तेज को प्रभु-मुख में समाहित देख ब्रह्मासहित ये हर्षित (६। १०३। ६)। स्तुति करके सब देवताओं के जाने के बाद इनका राम के निकट आगमन। तन पुलकित, नेत्र अश्रुपूरित। गद्‌गद् वाणी से करबद्ध हो राम की विनती। 'अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।' राम के राजतिलक के समय उनका चरित्र देखने के लिए जाने की प्रतिज्ञा (६। ११४ क - ६। ११५)। अयोध्या लौटते हुए राम का सीता को रामेश्वर दिखाना। स्वयं इनकी स्थापना का कथन। सीतासहित प्रणाम (६। ११९ क)। उत्तर समाप्त।

इनकी वन्दना (७। १। श्लो०३)। सप्तम प्रश्न (१। ११०। ८) का उत्तर — राजतिलक के समय राम-दर्शन के लिए इनका आना। -- भुशुण्डि-कथन (७। ११ ग)। उस समय के रस का ज्ञान केवल इन्हें (७। १२ क)। वेदों के अन्तर्धान होने के बाद इनके द्वारा राम-स्तुति। अनपायनी भक्ति और सत्संग की वर-याचना। कैलास-गमन (७। १३ ख - ७। १४ ख) 'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि'। — राम-कथन (७। ४५)। उत्तर-समाप्ति के साथ रामकथा का उपसंहार (७। ५२। १-७)। अष्टम प्रश्न (१। ११०)— राम के निजधाम-गमन — का स्पष्ट उत्तर नहीं। [कुछ विद्वानों के मत से वसिष्ठ-मिलन, उनकी स्तुति, वर-याचना (७। ४८। १ - ७। ५०। १) में राम के महाप्रयाण का उपक्रम और नारद-आगमन, स्तुति एवं प्रस्थान में उपसंहार (७। ५०। २-७। ५१।] तत्व, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य एवं रामरहस्य सम्बन्धी प्रश्न ९, १०, ११ (१। १११। १, २, ३) के उत्तर इनके द्वारा पृथक् रूप से नही दिये गये। रामकथा-वर्णन में उनके उत्तर आ गये हैं।

भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को सुनायी गयी कथा कहकर इनकी जिज्ञासा — 'अब का कहौं सो कहहु भवानी' (७। ५२। ६, ७)। पार्वती की शंका और भुशुण्डि-गरुड़ सम्बन्धी उनके छः प्रश्न (७। ५३। ८ - ७। ५४। ७, ७। ५४। ८ - ७। ५५। ५ — दे० 'भवानी' के अन्तर्गत 'पारबती')। सुनकर इन्हें सुख। पार्वती को धन्य मानना। गरुड़ द्वारा भी भुशुण्डि से ऐसे ही प्रश्न। सादर उत्तर देने की प्रतिज्ञा, उमा को सुनने की आज्ञा (७। ५५। ६ - ७। ५५)। पार्वती के चतुर्थ प्रश्न (७। ५५। २) का उत्तर— दक्षयज्ञ में सती के आत्मदाह के बाद दुखी और विरक्त होकर इनका भ्रमण और प्रकृति-दर्शन। नीलगिरि पर भुशुण्डि द्वारा पक्षियों की सभा में रामचरित-गान। वहाँ मरालरूप में इनका कुछ काल तक वास। रघुपति-गुण-श्रवण। पुनः कैलास-आगमन (७। ५६। १ - ७। ५८। १)। पंचम प्रश्न (७। ५५। ३-४) का उत्तर — गरुड़ के मोह-निरसन के लिए उन्हें ब्रह्मा का इनके पास भेजना, क्योंकि 'जान महेस राम प्रभुताई'। कुबेर-गृह जाते हुए मार्ग में इनकी गरुड़ से भेंट। इनका कथन — राह में, अल्पकाल में उन्हें समझाना सम्भव नहीं। संशय-नाश के लिए दीर्घकाल तक सत्संग और मुनियों से रामविषयक कथा-श्रवण आवश्यक। संशय नष्ट हुए बिना रामपदानुराग नहीं, और उसके बिना राम-मिलन असम्भव। अतः मोहजनित दुःख दूर होने का आशीर्वाद देते

हुए इनका गरुड़ को काकभुशुण्डि के पास भेजना। स्वयं न समझाने का एक और कारण – कभी उनके मन में अभिमान का उदय जिसे भंग करने के लिए राम द्वारा मोह की सृष्टि। इसके अतिरिक्त 'समुझइ खग खगही कै भाषा' (७।५८।२ - ७।६०।६, ७।६०।७ - ७।६२ क)। (दे० 'गरुड़।')। प्रथम प्रश्न (७।५४।८) का उत्तर – भुशुण्डि को भक्ति की प्राप्ति पाँच योगों से – (क) राम-वरदान (७।८४ क - ख, ७।८५।१, ७, ८), (ख) अवधपुरी-प्रभाव (७।९७।६, ७।१०९।१०), (ग) इनका अनुग्रह (७।१०९।१०), (घ) स्व-भाव (७।११०।४, ६)। (ङ) लोमश-वरदान (७।११३।१६)। द्वितीय प्रश्न (७।५४) का उत्तर – काक-देह-प्राप्ति का कारण लोमश-शाप (७।११२।१३-१५)। तृतीय प्रश्न (७।५५।१) का उत्तर– भुशुण्डि को रामचरित-प्राप्ति (क) इनसे (१।३०।४), (ख) लोमश मुनि से (७।११३।९)। षष्ठ प्रश्न (७।५५।५) का उत्तर – भुशुण्डि-गरुड़-संवाद का उपक्रम – 'गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा···' (७।६३।१), उपसंहार – 'तासु चरन सिर नाइ करि··· गयउ गरुड़ बैकुंठ' (७।१२५ क)।

राम के बालचरित के सुखास्वादन के लिए इनका अशुभ वेश (मुण्डमाल आदि) -धारण, फिर भी ये शिव (कल्याणकारी) और सुखद। –भुशुण्डि-कथन (७।८८ क)। महाप्रलय में भी भुशुण्डि का नाश नहीं – यह बात इनसे ज्ञात होने का गरुड़-कथन (७।९४।५-६)। शूद्र-योनि में भुशुण्डि इनके एकांगी सेवक (७।९७।२, ७।१०५।२)। विप्र (भुशुण्डि के गुरु) इनके उपासक (७।१०५।३, ७।१०५।४)। उनका भुशुण्डि को इनका मन्त्र देना। भुशुण्डि द्वारा इनका मन्त्र-जाप (७।१०५।७-८)। इनकी सेवा का फल अविरल राम-भक्ति-प्राप्ति (७।१०६।२)। इनके मन्दिर में भुशुण्डि द्वारा इनका नाम-जप। उनकी गुरु-अवज्ञा इनके लिए असह्य। इनकी आकाशवाणी – नीति-विरोध इन्हें अप्रिय। उन्हें दण्डित न करने पर इनका वैदिक मार्ग भ्रष्ट होना। अतः दण्ड-विधान (७।१०६ क - ७।१०७।८)। ['खलानां दण्डकृत्' – ६।१।श्लो०३।] गुरु के रुद्राष्टक-स्तोत्र में इनका निर्गुण-सगुण स्वरूप – ये अज, अखण्ड, विभु, व्यापक, ब्रह्म, वेदस्वरूप। निज (स्वतंत्र एवं स्वयं प्रकट होनेवाले, सर्वमय), निरीह (चेष्टारहित, निर्विकार), निराकार, निर्विकल्प, निर्वाणरूप, ओंकारमूल (= अर्धमात्रा = तुरीय – वि०)। चित्-आकाश रूप, आकाशवासी (अनन्त), सर्वभूताधिष्ठान। गिरा-ज्ञान-गोतीत। ईश, परेश, ईशान (दिशा के स्वामी, सर्व-नियन्ता)। कराल, कल्याण-कल्पान्तकारी, महाकाल के काल (महामृत्युंजय, कालातीत)। कैलासपति। इनका हिमाचल-सदृश गौर वर्ण, कोटि काम-प्रभा-युक्त शरीर, सुन्दर भौंहें, विशाल नेत्र, प्रसन्न मुख। जटाजूट आदि। ये कामारि, त्रिपुर-विजेता, सज्जनानन्ददाता। त्रिताप-नाशक-त्रिशूलधारी, मोहहर्त्ता, भावमम्य। चिदानन्द-सन्दोह। (७।१०७ क-ख, ७।१०८।छं० १-८)। रुद्राष्टक की फलश्रुति (७।१०८।श्लो०९)। गुरु की प्रार्थना पर उन्हें वरदान और भुशुण्डि-शापानुग्रह। विप्र-महिमा-कथन (७।१०८ क - ७।१०९ क)। (दे० 'काकभुसुंडि'।) इनके द्वारा वेद-मर्यादा की रक्षा का भुशुण्डि-कथन (७।१०९ घ)। लोमश को इनसे रामचरितमानस की प्राप्ति (७।११३।११)। राम-कथा इनकी 'मन भावनि' (७।१२३।५)।

शिव-पार्वती-संवाद का उपसंहार – इनके द्वारा सत्संग-महिमा और रामकथा की फलश्रुति का कथन। सब साधनों का फल हरिभक्ति जो रामकृपा से विरले को ही प्राप्त। नौ 'धन्यों' का, कथा के अधिकारी-अनधिकारी का कथन (७।१२५ ख - ७।१२९।६)। पार्वती का संशय-नाश, रामभक्ति दृढ़ (७।१२९।७-७।१२९)। शिव-पार्वती-संवाद की फलश्रुति (७।१३०।१-२)। ये सुकवि। रामचरण-भक्ति-प्राप्ति के लिए इनके द्वारा रामायण-रचना का कवि-कथन (७।१३० ख के बाद श्लो०१)।

ये हरि (विष्णु) के सर्वाधिक प्रिय– हरि (विष्णु) कथन (१।१३८।६), राम-कथन (६।२।६)। इनकी कृपा बिना हरिभक्ति न होने की हरि की उक्ति (१।१३८।७)। इनके राम-सेवक होने का, इनके हृदय में राम-निवास का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख अथवा कथन – मनु द्वारा (१।१४६।१, ४), अहल्या द्वारा (१।२११।छं० ३, छं० ४), हरिभक्त राजाओं द्वारा (१।२४६।४), परशुराम द्वारा (१।२८५।५), कवि द्वारा (१।३२४।छं० १, छं० २, १।३२८।५, ४।२५, ६।१।श्लो०१, ७।१।श्लो०२), जनक द्वारा (१।३४१।४), भरद्वाज द्वारा (२।२०९), अत्रि द्वारा (३।४।छं० ५, ३।६।५), शरभंग द्वारा (३।८।१), सुतीक्ष्ण द्वारा (३।११।८), विभीषण द्वारा (५।४२।८, ५।४७, ५।४९।७), कुम्भकर्ण द्वारा (६।६३।५), मन्दोदरी द्वारा (६।१०४।छं०), ब्रह्मा द्वारा (६।१११।छं० ११), इन्द्र द्वारा (६।११३।छं०), निषादराज गुह द्वारा (६।१२१।छं०१), वेदों द्वारा (७।१३।छं०४), भुशुण्डि द्वारा (७।१५।९, ७।१२४।३), सनकादि द्वारा (७।३५।७), नारद द्वारा (७।५१।२), भुशुण्डि के गुरु द्वारा (७।१०६।३, ४, ५)।

इनका स्मरण — दशरथ द्वारा (१।३०१, १।३४७।८, २।४।४, २।३१।६), राम द्वारा (१।३५७, २।१०४)। हिमालय द्वारा इनकी प्रभुता का स्मरण (१।९१।३)। इन्हें राम-सीता-लक्ष्मण द्वारा नमन (२।८५)। इनका पूजन — राम द्वारा (२।१०६।६, २।२२६।८), माताओं द्वारा (१।३४५), सबके द्वारा (२।२७३।४)।

इन्हें साक्षी रखकर कथन — वसिष्ठ का (२।२५८।८), भरत का (२।२६२।५), राम का (२।२६४।१)। इनके दो गणों के सम्बन्ध में कथन (१।१३४।२, ५, १।१३५।२, ६, १।१३६।१, ३)। इनके काम-दहन का उल्लेख — सप्तर्षि द्वारा (१।८९), पार्वती द्वारा (१।९०।२, ६, ८)। इनका उल्लेख — सती द्वारा (१।५९।४, ८, १।६१।६), पार्वती द्वारा (१।७८।७), सप्तर्षि द्वारा (१।८१)।, नारद द्वारा (१।१२८।७), भानुप्रताप द्वारा (१।१६१।४), एकतनु द्वारा (१।१६३।३, १।१६५।४, १।१६६।४), वसिष्ठ द्वारा (१।१९८।२, २।१७२।५, २।१७३।७, २।२५४।६), सीता द्वारा (१।२३५।५), सुनयना-सखी द्वारा (१।२५६), साधु राजाओं द्वारा (१।२६७।२), परशुराम द्वारा (१।२८१।३), जनकपुर-वासियों द्वारा (१।३१०।२, १।३११), जनक द्वारा (१।३४१, २।२८८।६), वाल्मीकि द्वारा (२।१२७।१), भरत द्वारा (२।१६७, २।१६८।६, ८), लक्ष्मण द्वारा (२।२३०।८, ६।७५।१४), राम द्वारा (२।२३१, ३।३३, ४।६, ४।१७।५), कवि द्वारा (२।२४१।५, ३।२७।११, ५।१।श्लो० १), सुनयना द्वारा (२।२८५।४), सरस्वती द्वारा (२।२९५।५), हनुमान् द्वारा (५।२१।५), मन्दोदरी द्वारा (५।३६।१०), लक्ष्मण-पत्रिका में (५।५६ क), अंगद द्वारा (६।२२।१, ६।२७।२), माल्यवन्त द्वारा (६।४८ ख), गरुड़ द्वारा (७।६३ ख, ७।९३।५), भुशुण्डि द्वारा (७।७०।६, ७।७१।८, ७।९१।४, ७।९६।१०, ७।११०।१२, ७।१२१।२३, ७।१२२।१२)। इन्हें सम्बोधन — भरत द्वारा (२।१९९), पार्वती द्वारा (७।५२।९, ७।५२ क, ७।५४।१, ७, ८, ७।५५।२)। अन्य उल्लेख — १।१।३, १।४।३, १।१४५।२, १।२०३।८, १।३५५।५, २।१, २।३१६।४, ६।५१, ६।९६।८, ६।११६।१, ७।५।६। जातिवाचक प्रयोग — १।५४।७, १।१४४।६, १।२०२।१, ५।२३।८, ७।८०।५, ७।८१।१, ७।९२।६।

मूल शब्द — १।१५।८, १।१५।९, १।१६।६, १।१६।८, १।३०।४, १।३१।११, १।३४।३, १।४२।२, १।४६।३, १।४६।५, १।५०।४, १।५१।३, १।५१, १।५२।४, १।५४।७ (जाति०), १।५६।१, १।५६।७, १।५७।२, १।५७।६, १।५८।२, १।५९।८, १।६०।३, १।६१।५, १।६३, १।६५।५, १।६८।५, १।६९।३, १।७०।६, १।७०।८, १।७५।७, १।७५, १।७६।७, १।७६, १।७७।१, १।७७।८, १।७८।७, १।७९।८, १।८१, १।८२।२, १।८२।३, १।८३।३, १।८३।५, १।८३।६, १।८४।४, १।८६।२, १।८६, १।८७।६, १।८७।छं०, १।८८।५, १।९०।३, १।९०।४, १।९२।२, १।९३।५, १।९३।६, १।९५।४, १।९८।७, १।९८।८, १।१००।४, १।१००।छं०, १।१०१।छं०, १।१०२।छं०, १।१०४।५, १।१०४।७, १।१०४।८, १।१०४, १।१०५।८, १।१०५, १।१०६।३, १।१०७।४, १।१०७, १।१११।६, १।११६, १।११९।७, १।१२७।५, १।१२८।७, १।१३८।६, १।१४६।४, १।१६१।४, १।१९८।२, १।२०२।१ (जाति०), १।२०३।८, १।२११।छं०४, १।२६७।२, १।२८१।३, १।३१०।२, १।३१४।२, १।३१४, २।४।४, २।१०४, २।१०६।६, २।१५७।७, २।१७२।५, २।२५८।८, २।२६४।१, २।२८८।६, ३।६।५, ३।३३, ३।२७।११, ५।४७, ५।४९।७, ५।४९ ख, ६।२।६, ६।२।७, ६।२, ६।१५ क, ६।२०।३, ६।२२।१, ६।४८ ख, ६।५१, ६।६३।५, ६।९४।६, ६।१०४।छं०, ६।११९ क, ७।११ ग, ७।१३।छं०४, ७।१५।९, ७।५५।६, ७।६२ ख, ७।७१।८, ७।८१।१ (जाति०), ७।८८ क, ७।९१।४, ७।९४।५, ७।९६।१०, ७।९७।२, ७।१०५।३, ७।१०५।८, ७।१०६।२, ७।१०६।३, ७।१०६।४, ७।१०६क, ७।१०७ क, ७।१०७ ख, ७।१०८ क, ७।१०९ क, ७।१०९ घ, ७।१२२।१२, ७।१२४।३। शिव — २।१।श्लो०१। सीव — ३।१५ (विकल्प से ब्रह्म)।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द —

(१) सम्बन्धवाचक —

(क) व्यक्ति अथवा समष्टि सम्बन्धी —

अम्बिकापति — ७।१।श्लो०३।

उमानाथ — ७।१०८।छं० ७।

उमापति — ६।२५।२, ७।१४ ख।

उमारमन — १।१।सो०४।

उमेस — १।१५।७।

गिरिजापति — ६।१।श्लो०२।

गिरिजारमन — १।१०३।

गौरीस — ६।२८। गौरीसा — ७।८०।५ (जाति०), १।१०४।४, ५।३३।२।

भवानीपति — ७।१०८।छं०५।

रामेस्वर — ६।३।१।

सर्वनाथ — ७।१०८।छं०४।

सर्वाधिप — २।१।श्लो०१।

सुरनाथा — १।१०६।८।

सुरराया (इन्द्र भी) — १।११०।३, ७।५४।७।

(ख) स्थान सम्बन्धी —

काशीश — ६।१।श्लो०२।

गिरिनाथा — १।४८।५।

गिरीश — ७।१०८।छं० २। गिरीसा (हिमाचल भी)— १।५५।८।

जगत जनक — १।६४।५।

जगतपति (राम भी) — १।६०।३।

जगदातमा (राम भी) — १।६४।५।

जगदीसा (राम, ब्रह्म सगुण, ब्रह्मा भी) — १।५०।६।

त्रिभुवन गुर — १।१११।५।

बिस्वनाथ — १।५८।६, १।१०४।६, १।१०७।७, ७।५४।८।

बिस्वेस — ७।१२६।

(२) रूपवाचक —

चंद्र अवतंसा — १।८८।६।

चंद्रमौलि — १।६४।७।

नीलकंठ — १।१०६, ७।१०८।छं० ४।

बृषकेतु — १।३५, १।१०२, १।१५२। बृषकेतू — १।५३।८, १।५८।५, १।६४।७, १।७२।३, १।८८।७, १।१२०।७, १।१४१।८।

भुजग भूति भूषन — १।१०६।८।

भुजगराज भूषन — १।१०६।८।

भूतिविभूषण — २।१।श्लो०१।

मुण्डमाल — ७।१०८।छं० ४।

मृगाधीशचर्माम्बर — ७।१०८।छं० ४।

शार्दूलचर्माम्बर — ६।१।श्लो०२।

शूलपाणि — ७।१०८।छं० ५।

ससिभूषन — १।१०८।४।

(३) गुणबोधक —

आसुतोष (आशुतोष— शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) — १।७०।४, १।८७।छं०, २।४४।८।

ईश (राम भी) — ७।१०८।छं० १, छं० २, छं० ८। ईस (चारों भाई, ब्रह्म भी) — १।८७।४, १।३२।१, १।३५७।१, २।२८४, ३।१५ (विकल्प से सगुण ब्रह्म), ४।२५, ५।५६ क, ६।८०।७। ईसा (राम भी) — १।४६।३, १।६०।५, ५।२१।५। ईसु (ईश्वर भी)— १।२४०।१, १।३४१, २।२४।५। ईस्वर (राम एवं ब्रह्म भी) — ७।६४।६।

ईशान (ईष्टे तच्छील ईशानः — जो समर्थ या ऐश्वर्यवान्, वह ईश, ईशान) — ७।१०८।छं० १।

करुना अयन — १।१।सो०४।

करुनायतन (राम भी) — १।११०।

कल्याणकारी — ७।१०८।छं० ६।

कल्याण-कल्पद्रुम — ६।१।श्लो०२।

कारुणीक (राम 'कारुनीक') — ७।१।श्लो०३।

कृपानिकेता (राम, काकभुशुण्डि भी) — १।५०।४, १।८८।५।

कृपानिधान (राम भी) — १।१२० क। कृपानिधाना (विष्णु, राम, भरत, लोमश भी) — ७।१०९।१।

कृपानिधि (विष्णु, राम, लोमश, भुशुण्डि, याज्ञवल्क्य भी) — १।९०।५।

कृपातायन (राम भी) — १।६१, ७।५२ क।

कृपासागर — १।१०१।छं०।

कृपासिंधु (राम, लक्ष्मण, विष्णु, काकभुशुण्डि भी)— १।५८।२, १।७०।७, १।८८।७, १।८९।२, ७।१०८ ग।

जगतबंध — १।५०।६।

त्रयःशूल निर्मूलन — ७।१०८।छं० ५।

दीनदयाल (राम भी) — ७।१०८ घ। दीनदयाला (राम, विष्णु, कपिल, नारद भी) — १।५७।७।

दीनबंधु (राम, भवानी भी) — १।१५।३।

पूरनकाम — १।१०१।छं०।

प्रनतारति भंजन (राम भी) — १।७०।७।

बंध मोच्छप्रद — ३।१५ (विकल्प से सगुण ब्रह्म)।

महाकाल काल — ७।१०८।छं० २।

महादेव — १।४७।६, १।८०।

महेश — ७।१।श्लो०२। महेस — १।१२, १।१५।३, १।१५।६, १।२५, १।३५।११, १।४०।७, १।४८।३, १।५३, १।५५, १।५७।४, १।८६, १।९०।८, १।९५, १।१११, १।१२४ क, १।१२७।६, १।१३४।२, १।२३५।५, १।२५७।५, १।२८५।५, १।३२४।छं० ४, १।३४१।४, १।३५५।५, २।४४।७, २।१५७।८, ६।१०५।२, ६।१०९।छं०, ७।१२ क, ७।६०।६, ७।६३ ख, ७।१०६ ख। महेसा — १।१०१।३, १।१६५।४। महेसु — १।५१, १।५६, १।६१।२, १।६१।६, १।६४।५, १।९३।३, १।९६।५, २।१, २।२८५।४। महेसू — १।१९।३, १।७०।४, १।७२।२, १।८१।६।

माया प्रेरक — ३।१५ (विकल्प से सगुण ब्रह्म)।

मोहापहारी — ७।१०८।छं० ६।

रुद्र — १।८६।४, १।९६।४, १।१३६।८, ४।६, ६।२७।२, ७।९२।६ (जाति०), ७।१०८।श्लो०९।

वैराग्याम्बुज भास्कर — ३।१।श्लो०१।

शङ्कर (शं या कल्याण करनेवाले) — १।१।श्लो०२, १।१।श्लो०३, २।१।श्लो०१, ३।१।श्लो०१, ६।१।श्लो०२, ६।१।श्लो०३, ७।१।श्लो०३। शंकर — ७।१०८।छं० ४। संकर — १।३३।१, १।४३ क, १।४८ ख, १।५४।१, १।५६।४, १।५७।१, १।५८।३, १।५८।८, १।५९।४, १।६०।४, १।६३।५, १।६४।१, १।६५।१, १।६९।४, १।७६।४, १।७६।६, १।७७।५, १।७७।७, १।८३।५, १।८७।छं० १।८८।३, १।८८, १।९८।६, १।९८।छं०, १।१०१।४, १।१०१।छं०, १।१०२।३, १।११०।८, १।१२० क, १।१२७।६, १।१३६, १।१३८।५, १।१४१।७, १।२११।छं० ३, २।१६८।८, ३।८।१, ४।१।सो०२, ४।१०।४, ४।१७।५, ५।२३।८ (जाति०), ५।३३।३, ६।२।८, ६।२, ६।३।३, ६।७५।१४, ६।११३।छं०, ६।१२१।छं० १, ७।५।६, ७।३५।७, ७।४५, ७।६०।७, ७।६३।५, ७।१०८ घ। संकरु — १।५०।६, १।५७।३, १।७२।४, १।१०२।छं०, १।३१७।२, २।३१।६, २।२३०।८, २।२६२।५।

शम्भु — (शं अथवा मंगल होता है जिनसे)— ४।१।श्लो०२, ५।१।श्लो० १, ६।१।श्लो०३, ७।१०८।श्लो०६, ७।१३० ख के बाद श्लो०१। शंभु — ७।१०८।छं० ८, ७।१०८।छं०८। संभु — १।१।३, १।२६।१, १।३०।३,

१।३५।९, १।३६।१, १।४६।३, १।४७, १।४८।१, १।४८।४, १।५०।१, १।५०।५, १।५१।३, १।५२।५, १।५६।६, १।५७ क, १।५८।७, १।६०।२, १।६०।४, १।६२।७, १।६३।४, १।६४।३, १।६४, १।६५।३, १।७०।३, १।७३।४, १।७५।६, १।८१।२, १।८१।५, १।८२।४, १।८२, १।८३।३, १।८३, १।८६।१, १।८७।३, १।९०।२, १।९१।३, १।९२।१, १।१००, १।१०२।१, १।१०३।३, १।१०३।४, १।१०३।छं०, १।१०४।१, १।१०६।५, १।१०७।२, १।१२३।६, १।१२७, १।१२८।२, १।१३४।५, १।१४४।६ (जाति०), १।१५३।१, १।१६३।३, १।२०४।१, १।२४६।४, १।३१५।३, १।३२४।छं० २, १।३४७।८, १।३५७, २।८५, २।१२७।१, ४।१।सो० १, ५।३६।१०, ५।४८।१, ६।२।४, ६।२२ ख, ६।९६।८, ६।१०३।९, ६।१११।छं० ११, ६।११४क, ६।११६।१, ६।११९ क, ७।१३ ख, ७।१०५।२, ७।१०५।४, ७।१०५।७, ७।१०९ क, ७।११०।१२, ७।११३।११, ७।१२३।५, ७।१३०।१।

सज्जनानन्ददाता — ७।१०८।छं०६।

सदासिव — २।४४।७।

सेवक मन रंजन — १।७०।७।

हर (पापों को हरनेवाले) — १।२।१०, १।३।११, १।४।३, १।९।६, १।१५।५, १।१५, १।१९।२, १।१९।७, १।२६।३, १।३२।११, १।३५।१२, १।४८ क, १।५१।५, १।६२, १।७७।६, १।९०।६, १।९६।३, १।९८।छं०, १।१०१।६, १।१०३।६, १।१०६।१, १।१०७।३, १।१११।७, १।१३५।२, १।१३५।६, १।१३९।१, १।१३९।३, १।१४५।२, १।१४६।१, १।१६६।४, १।२५६, १।३०१, १।३२८।५, २।१६७, २।१६८।६, २।१९९, २।२०९, २।२३१, २।२४१।५, २।२९५।५, २।३१२, २।३१९।४, ३।११।८, ५।४२।८, ६।३२।२, ७।१०६।५, ७।१०९ क, ७।१०८।श्लो० ९, ७।१२१।२३। **हरु** — १।३२१।६, २।१७३।७, २।२५४।६।

(४) चरित्रबोधक —

अनँग आराती — १।१०८।७।

अनङ्गमोचन — ७।१।श्लो०३।

कन्दर्पह — ६।१।श्लो०२।

कल्पान्तकारी — ६।१०८।छं० ६।

काम अरि — ७।५१।२। **कामारि** — १।१२० क, ६।१।श्लो०१, **कामारी** — १।३१५।२।

कामरिपु — १।१०७।१।

त्रिपुर आराती — १।५७।८।

तिपुरारि — २।२७३।४। **त्रिपुरारि** — १।४६, १।६२, १।७४, ६।११४ ख। **त्रिपुरारी** — १।४८।६, १।५१।१, १।७०।५, १।१०६।८, १।११२।५, ६।२५।३।

पुरारि — १।३२।८, १।३११, १।३१५, १।३४५, २।२२६।८, ७।८८ क। **पुरारी** — १।१०।२, १।६४।५, १।१०७।७, १।१२३।७, १।१२४।८, १।१३८।७, १।२२०।७, ७।५२।९, ७।५४।१, ७।१०८।छं० ६।

मदन मद मोचन — १।८९।१।

मदनारी — ७।५५।२।

मनोज अरि — १।३२४।छं० १।

मनोज नसावन — १।५०।३।

मनोज वैरि — ३।४।छं० ५।

मन्मथारी — ७।१०८।छं० ६।

मर्दन मयन — १।१।सो० ४।

शर्व (संहारक — भक्तों के पापों के, प्रलय में प्रजा के। ह० को०, मा० पी०) — २।१। श्लो०१।

(५) स्वरूपबोधक —

अंतरजामी (राम, सीता भी) — १।५१।५, १।८८।८।

अखंड (राम, ब्रह्म भी) — ७।१०८।छं० ५।

अज (राम, ब्रह्म, ब्रह्मा भी) — १।९०।३, ७।१०८।छं० ५।

अनवद्य (राम भी) — १।६०।३।

अबिनासी (ब्रह्म, राम, विष्णु भी) — १।२६।१, १।४६।३, १।६०।२।

आकाशवास — ७।१०८।छं० १।

ओंकारमूल — ७।१०८।छं० २।

कलातीत — ७।१०८।छं० ६।

गिरा ग्यान गोतीत — ७।१०८।छं० २।

चिदाकाश — ७।१०८।छं० १।

चिदानंद — १।७५।

चिदानंद संदोह (राम भी) — ७।१०८।छं० ६।

तुरीय (अवस्थाविशेष। राम भी) — ७।१०८।छं० २।

निज (स्वतंत्र एवं स्वयं प्रकट होनेवाले, सर्वमय) — ७।१०८।छं० १।

निराकार — ७।१०८।छं० २।

निरीह (चेष्टारहित, निर्विकार। राम भी) — ७।१०८।छं०१।

निर्गुण (राम भी) — ७।१०८।छं० १। निर्गुन (ब्रह्म, राम भी) — १।७६।६।

निर्वाणरूप — ७।१०८।छं० १।

निर्विकल्प — ७।१०८।छं० १।

परेस (राम के लिए 'परेश')। — ७।१०८।छं० ५।

ब्रह्म (ब्रह्मा, राम, ब्रह्म भी) — ७।१०८।छं० १।

भगवान (राम, विष्णु, लोमश, ब्रह्म भी) — १।४६।३, १।८१, ७।१०८ ग। भगवाना (राम, ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, कपिल भी) — १।५७।५, १।७०।३, १।७६।२, १।८६।४, १।१४४।६।

भव — १।१०।छं०, १।७६, १।१०१।२, ७।७०।६।

विभु (समर्थ एवं व्यापक — राम भी) — ७।१०८।छं० १।

वेदस्वरूप — ७।१०८।छं० १।

व्यापक (ब्रह्म, राम, हरि के लिए 'ब्यापक') — ७।१०८।छं०१।

सत्यधाम (याज्ञवल्क्य भी) — १।५७।७।

सर्बपर — ३।१५ (विकल्प से ब्रह्म)।

सर्वगत (सर्वव्यापक, राम भी)— २।१।श्लो० १।

सर्वभूताधिवास — ७।१०८।छं० ७।

सिवधाम — १।६२।४।

सुखकंद (राम भी) — १।१०५।

सुखधाम (राम, लक्ष्मण भी) — १।७५, ६।११६ क।

सुखरासी (राम, ब्रह्म भी) — १।१०८।१।

सुखसीला — १।११०।८।

सिवा (शिवा) — दे० 'भवानी'।

सिसिर (शिशिर) — भारत की छः ऋतुओं में एक। इसके दो मास— माघ और फाल्गुन।

रामकथा में प्रभु का जन्मोत्सव ही सुखद शिशिर (१।४२।२)। ममतारूपी (कण्टकाकीर्ण) जवास की वृद्धि के लिए स्त्री शिशिररूपा (३।४४।६)।

मूल शब्द — १।४२।२, ३।४४।६।

सीता — राम की आह्लादिनी शक्ति।

['सीता' नाम 'राम' नाम की तरह अनादि। मनु-शतरूपा को ब्रह्म के दर्शन 'सीताराम' रूप से। जनकपुर में इनके अवतार-ग्रहण करने पर भी वही नामकरण। वि० पु० ४।५।२८ में पुत्रप्राप्ति की कामना से यज्ञभूमि को

जोतते हुए, वा० रा० १।६६।१३-१४ के अनुसार खेत में हल चलाते हुए, जनक को 'सीता' नाम की कन्या प्राप्त। हल से खेत में पड़नेवाली लकीर का नाम 'सीता' और वहीं लकीर से हलाग्र द्वारा ये प्रकट, सम्भवतः इसी से इनका नाम सीता। अयोनिजा, धरापुत्री आदि नामों का भी यही कारण। आ० को०।]

ये उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी। पंचक्लेशों का हरण करनेवाली, सर्वश्रेस्यकरी, रामवल्लभा। इनको नमन (१।१।श्लो०५)। राम के वाम भाग में शोभित ये आदिशक्ति महामाया। जगत् की मूल कारण। इनके अंश से अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणियों की उत्पत्ति। [श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।। सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिका। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।। रा० उ० ता० पृ० ५४३।] इनके साथ अवतार ग्रहण करने का राम का मनु-शतरूपा को वरदान (१।१४८।२-४, १।१५२।४)। इनकी वन्दना करते हुए इनसे निर्मल मति प्रदान करने की कवि की प्रार्थना — 'जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।। ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।' (१।१८।७-८)। [रामभक्तों में ये पंक्तियाँ वैष्णव गायत्री के रूप में विख्यात।] ये और राम दोनों वाणी और अर्थ, जल और लहर के समान कहने में भिन्न, किन्तु तत्वतः अभिन्न। [द्वौ च नित्यं द्विधारूपं तत्वतो नित्यमेकता। राममन्त्रस्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः।। यद्वा शब्दात्मको रामो सीता शब्दार्थरूपिणी। यद्वा वाणी भवेत् सीता रामः शब्दार्थरूपवान्।। मा० पी० १।१८ नोट १ (ख) पृ० २८६ के अनुसार बृहद् विष्णुपुराण।] दोनों की चरण-वन्दना (१।१८)। साधक-सन्त के निर्मल चित्त की प्रेम-मग्नता में रामसहित इनका नित्य विहार (१।३१)। मानस-सर के रूपक में इनका और राम का यश ही अमृतोपम जल (१।३७।३)। इनके स्वयंवर की कथा कीर्तिनदी सरयू में छायी शोभा, इनकी गुणगाथा उसका निर्मल अनुपम जल (१।४१।१, १।४२।७)।

माता की आज्ञा से गौरीपूजन के लिए इनका सखियों के साथ पुष्पवाटिका में आना। सरोवर में स्नान करके मन्दिर में पार्वती की पूजा करना, अपने अनुरूप सुन्दर वर माँगना (१।२२८।२-६)। सखियों से राम-लक्ष्मण की सुन्दरता का बखान सुन इनके मन में उत्कण्ठा, पुरातन प्रीति के कारण राम के दर्शन की लालसा। नारद-वचन का स्मरण कर (कि इन्हें पति के प्रथम दर्शन पुष्पवाटिका में होंगे। मा० पी० नोट १, वि०।) हृदय में पवित्र प्रेम का उदय। चकित होकर इनका चारों ओर देखना (१।२२८।७ - १।२२९)। इन पर दृष्टि पड़ते ही राम के नेत्र स्थिर, निष्पलक। इनकी शोभा की उनके द्वारा मन-ही-मन सराहना — मानो विधाता ने इन्हें रचकर अपनी सारी निपुणता व्यक्त कर दी हो, मानो छविगृह (सखिमण्डल) में दीपशिखा (ये) जल रही हो, मानो सब सुन्दरताएँ इनकी सुन्दरता की उपजीव्य हों। प्रकट रूप से लक्ष्मण को इनका परिचय देकर उनका कथन कि इनकी शोभा देख उनके सहज पुनीत मन में भी क्षोभ। उनके द्वारा इनके रूप-रस का पान (१।२३०।१ - १।२३१।४, १।२३१)। ये उन्हें न देख पाने के कारण चिन्तित। तब सखियों का इन्हें लता की ओट में दोनों कुमारों को दिखाना। राम-रूप को और भी मनोयोग से देखने की इनकी लालसा। इन्हें हर्ष, जैसे अपनी निधि पहचान ली हो। उन्हें अपलक निहारते हुए प्रेमाधिक्य से इन्हें देह-सुधि का विस्मरण। उन्हें हृदय में धारण कर इनका आँखें मूँदना। इन्हें प्रेमवश जान कुछ कहने में सखियों को संकोच (१।२३२।१-८)। (दोनों कुमारों का लताकुंज से बाहर आना।) इनका हाथ पकड़ एक सखी का कथन कि ये (आँखें बन्द कर) पार्वती का ध्यान बाद में करें, पहले भूपकिशोर को देख लें। संकोच से इनका आँखें खोलना। राम की नख-शिख शोभा देख, पिता के प्रण का स्मरण कर, ये क्षुब्ध। इन्हें प्रेमवश देख सखियों का चलने का प्रस्ताव। विलम्ब हुआ जान इन्हें माता का भय। धीरज धर, राम को हृदय में धारण कर, स्वयं को पिता के वशीभूत समझ, इनका लौटना। मृग-विहग-तरु देखने के बहाने बार-बार घूमकर राम की शोभा को निरखना। राम का प्रेमपूर्वक इनके चित्र को अपने हृदय में अंकित करना (१।२३४।१ - १।२३५।३)। इनका पुनः भवानी-मन्दिर में जाना, उनकी वन्दना करना। मनोरथ-पूर्त्ति की कामना करना। मूर्त्ति की माला का खिसकना। इनका उसे मस्तक पर धारण करना। मूर्त्ति का मुसकराना, पार्वती का आशीर्वाद — इनकी मनोकामना पूर्ण होगी। इन्हें वही वर मिलेगा जिसमें इनका मन अनुरक्त। सुनकर सखियोंसहित ये हर्षित। बार-बार पार्वती की पूजा कर इनका लौटना। इनके वामांगों का फड़कना (१।२३५।४ - १।२३६)। राम द्वारा मन-ही-मन इनकी सुन्दरता की सराहना (१।२३७।१)। (अनुजसहित गुरु-समीप गमन।) पुनः चन्द्रमा के मिस इनकी मुख-छवि का वर्णन करना। उसे इनके उपमान होने के अयोग्य ठहराना (१।२३७।६ - १।२३८।४)।

स्वयंवर-मण्डप में इनका राम को ऐसे अलौकिक सुख-स्नेह से देखना जो इनके लिए भी केवल अनुभवगम्य, कथनीय नहीं (१।२४२।६-७)। विवेकी राजाओं का कथन कि ये जगदम्बा (और राम जगत्-पिता)। राम धनुष न भी तोड़ें तब भी ये जयमाल उन्हीं को पहनायेंगी (१।२४५।३ - १।२४६।२)। जनक के कहने से सखियों का इन्हें रंगभूमि में लाना। इनकी शोभा अवर्णनीय। उपमाएँ लौकिक स्त्रियों के लिए, इनके लिए नहीं। गिरा-भवानी-रति-रमा जैसी दिव्य स्त्रियाँ भी इनकी उपमान होने के योग्य नहीं। छवि-सुधा-समुद्र द्वारा इनकी अद्वितीय सुन्दरता का संकेत (१।२४६ - १।२४७)। भूषण-सज्जिता, हाथों में जयमाल लिये इनके रंगभूमि में आने पर नर-नारी मोहित। इनका एकटक राम को निहारना। फिर समाज और गुरुजनों के संकोच के कारण उन्हें हृदय में रख सखियों की ओर देखना (१।२४८।१ - १।२४८)। नर-नारियों की विधाता से विनती कि वे जनक को ऐसी बुद्धि दें जिससे राजा प्रण छोड़कर इनका राम से विवाह कर दें (१।२४९।१-६)। बन्दी-जन की घोषणा कि ये शिव-धनु-भंजक का वरण करेंगी (१।२५०।४)। सब राजाओं के असफल होने पर जनक को क्षोभ — 'लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।' इस पर लक्ष्मण की गर्वोक्ति सुन इन्हें हर्ष (१।२५२।४, ७।, १।२५४।२)। धनुष-भंजन के लिए राम के चलने पर इनका बार-बार उनकी ओर देखना, जिस-तिस देवता की विनती करना। आकुल हो महेश-भवानी-गणपति से इनकी प्रार्थना कि वे इनकी सेवा को सुफल कर धनुष की गुरुता का हरण करें। इनकी आँखों में प्रेमाश्रु, शरीर में पुलक। राम की शोभा को नेत्रभर निहारकर, पिता के प्रण का स्मरण कर इनके मन में क्षोभ — कोई पिता को समझाता भी नहीं! फिर धनुष की शरणागता हो इनकी विनती — वह राम को निहारकर हल्का हो जाये (१।२५७।४ - १।२५८।७)। इनके मन में अत्यधिक परिताप। एक-एक पल युगों के समान प्रतीत। अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता देख इन्हें संकोच। अन्ततः इस विश्वास से धैर्य कि यदि तन-मन-वचन से इनका प्रण सत्य, ये राम के चरणों में अनुरक्त, तो सर्वान्तर्यामी अवश्य इन्हें रघुवर की दासी बनायेंगे। 'जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।।' प्रभु की ओर देखकर इनका प्रेमप्रण ठानना। उन्हें इसका ज्ञान। इनकी ओर देख उनका धनुष की ओर देखना। इनकी विकलता में छिपी प्रीति को लक्ष्य कर वे पुलकित (१।२५८।८ - १।२५९।८, १।२६० - १।२६१।४)।

धनुष-भंग होने पर इन्हें ऐसा सुख जैसे चातकी को स्वाति-जल मिल गया हो (१।२६३।६)। शतानन्द की आज्ञा से इनका राम की ओर चलना। सखियों के मध्य बालमराल-सी चाल, हाथों में विश्व-विजय की शोभा से सम्पन्न जयमाला। शरीर संकुचित, मन में गूढ़ प्रेम और उछाह। राम के निकट आकर उनकी छवि देख ये स्तब्ध। सखियों के समझाने पर इनका राम के गले में जयमाल डालना (१।२६३।८ - १।२६४।८)। इनको वरण करने का राम का यश त्रिलोक में व्याप्त (१।२६५।५)। इनकी और राम की जोड़ी ऐसी जैसे छवि और शृंगार एकत्र हो गये हों (१।२६५।७)। सखियों का इन्हें प्रभु के चरण-स्पर्श करने के लिए कहना, किन्तु अहल्या की गति का स्मरण कर इनका चरण न छूना। इनकी अलौकिक प्रीति देख राम का मन-ही-मन विहँसना (१।२६५।८, १।२६५)। इनको पाने के लोभ से मूढ़ राजाओं का गाल बजाना। कोलाहल सुन ये शंकित। सखियों का इन्हें रानी के पास ले जाना। मन में इनके प्रेम का बखान करते हुए राम का गुरु-समीप गमन (१।२६६।१, ३, १।२६७।५, ६, ७)। परशुराम के आने पर जनक का इनसे प्रणाम करवाना। इन्हें आशीर्वाद-प्राप्ति। मुनि का स्वभाव सुन ये विकल। इन्हें और लोगों को भीत देख रघुवीर की मुनि से विनय (१।२६९।४-५, १।२७०।८, १।२७०)। परशुराम के चले जाने पर ये त्रास-मुक्त (१।२८६।४)।

बरात के जनकपुर में आने पर इनके द्वारा अपनी महिमा का प्राकट्य। सिद्धियों का स्मरण कर उन्हें राजा दशरथ (और बरातियों) के आतिथ्य के लिए भेजना। वैभव देखकर बरातियों द्वारा राजा जनक की प्रशंसा। किन्तु इनकी महिमा का ज्ञान केवल राम को (१।३०६।७ - १।३०७।३)। 'रामु सीय सोभा अवधि…'। 'जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही।।' इन दोनों की छवि के दर्शन करनेवालों का स्वयं को पुण्यात्मा मानना (१।३०९, १।३१०।१, ५)। इनका विवाह देखने के लिए ब्रह्मादि देवताओं का भी आगमन। जनकपुर के वैभव-दर्शन से उनके विस्मित होने पर शिव का समझाना — यह उन्हीं सिय-राम का विवाह जिनके नाम-स्मरणमात्र से अमंगल-मूल-नाश, चारों पुरुषार्थों की सिद्धि (१।३१४।२ - १।३१५।३)। वसिष्ठ के बुलवाने पर इन्हें अलंकृत कर कलगान करती हुई सखियों का सादर मण्डप की ओर ले जाना। इनकी पुनीत सुन्दरता अवर्णनीय। देखकर

बरातियों का मन-ही-मन प्रणाम करना। राम पूर्णकाम। दशरथ पुत्रोंसहित हर्षित। देवताओं का प्रणाम कर पुष्पवर्षा करना। मुनियों द्वारा आशीर्वाद, शान्ति-पाठ। इनका मण्डप में आना (१।३२२।१-४, १।३२२।८ - १।३२३।७)। (वसिष्ठ, शतानन्द आदि का पूजा कराना।) इनके और राम के द्वारा गौरी-गणेश का, फिर देवताओं का पूजन। देवताओं का प्रकट होकर इन दोनों के हाथों से पूजा ग्रहण कर आशीर्वाद देना। इनका सिंहासन पर बैठना। इन दोनों का एक-दूसरे को अलक्षित रूप से देखना। इनका परस्पर प्रेम मन-बुद्धि-वाणी से परे। अग्निदेव का प्रकट होकर दोनों की दी हुईं आहुतियाँ ग्रहण करना। (१।३२३।८ - १।३२३)। (जनक-सुनयना द्वारा राम के पद-प्रक्षालन के बाद) राम की हथेली पर इनकी हथेली रखकर जनक का दोनों को अपने हाथ से जोड़े रहना। दोनों कुलगुरुओं द्वारा शाखोच्चार। इस प्रकार पाणिग्रहण। वेदविधान और लोकविधान के बाद कन्यादान। ये जनक द्वारा राम को समर्पित। विधिवत् हवन, गँठबंधन। प्रमुदित मुनियों का वर-वधू से भाँवर (अग्नि की परिक्रमा) फिराना। नेगसहित सब रीतियाँ पूर्ण। राम का इनके सिर में सिन्दूर देना। फिर वसिष्ठ की आज्ञा से वर-वधू का एक ही आसन पर बैठना। सब कार्य आनन्दोत्साह से सम्पन्न (१।३२४।छं० ३ - १।३२५।छं० १)। (माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति का क्रमशः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न से विवाह।) एक ही मण्डप में चारों वधुएँ अपने-अपने वर के साथ ऐसी शोभित जैसे जीव की चारों अवस्थाएँ अपने-अपने विभु के साथ हों। [चार अवस्थाएँ — जाग्रत (उर्मिला), स्वप्न (श्रुतकीर्ति), सुषुप्ति (माण्डवी), तुरीय (सीता)। इनके विभु क्रमशः विश्व (लक्ष्मण), तैजस (शत्रुघ्न), प्राज्ञ (भरत), ब्रह्म (राम)। रा० उ० ता० पृ० ५४३।] वधुओंसहित पुत्रों को देखकर दशरथ को ऐसा सुख जैसे क्रियाओंसहित चारों फलों की प्राप्ति हुई हो (१।३२५। छं० ४ - १।३२५)। [वि० ३२५ व्या० के अनुसार चारों फलों में साधनरूप अर्थ (शत्रुघ्न) और धर्म (लक्ष्मण), फलरूप काम (भरत) और मोक्ष (राम)। इनकी क्रियाएँ क्रमशः व्यापृति अर्थात् उद्योग (श्रुतकीर्ति), सुकृति (उर्मिला), रति (माण्डवी) और भक्ति (सीता)। मा० पी० में चारों क्रियाओं के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत।]

लौकिक रीति पूरी करने के लिए वर-वधुओं को लेकर सुहागिन सुन्दरियों का कोहबर की ओर चलना। इनका बार-बार राम को देखना ओर सकुचाना। [चारों जोड़ियों के लिए कोहबर अलग-अलग। मा० पी० १।३२७।छं० २ टिप्पणी २ (क)।] कोहबर में राम को गौरी का और इन्हें शारदा का लहकौरि सिखाना — वर के हाथ से वधू के मुख में और वधू के हाथ से वर के मुख में दही और मिष्टान्न का प्राशन कराना। अपने हाथ की मणि में राम का रूप देख इनका हाथ न हिलाना, वहाँ से दृष्टि न फेरना। कोहबर का कौतुक, विनोद, प्रमोद, प्रेम अवर्णनीय। फिर सखियों का वर-वधुओं को साथ ले जनवासे की ओर जाना। चारों ओर से आशीर्वाद। नगर और नभ में महा आनन्द। वधुओंसहित चारों भाइयों के आने पर जनवासे में मंगल-मोद की उमंग (१।३२६।छं० ४ - १।३२६, १।३२७।छं० २ - १।३२७)। बरात के चलने का समाचार सुन व्याकुल रानियों का इन्हें बार-बार गोद में लेना, आशिष और शिक्षा देना। सयानी सखियों का नारिधर्म समझाना (१।३३४।२-६)। विदा कराने के लिए भ्राताओंसहित राम का महल में आना। तीनों कन्याएँ तीनों भाइयों को सौंपकर विकल माताओं का इन्हें राम को समर्पित करना। चलने पर कन्याओं को पुनः बुलाना, बार-बार मिलना। सखियों का उन्हें अलग करना (१।३३४, १।३३६।५ - १।३३६।छं०, १।३३७।६-८)। नर-नारी, रनवास सब विरह-विकल। इनके द्वारा पाले गये शुक सारिका भी व्याकुल (१।३३७ - १।३३८।३)। इसी समय भ्रातासहित जनक का आगमन। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु। इन्हें देख धैर्य छूटना। इन्हें हृदय से लगाना। उनके ज्ञान-वैराग्य की मर्यादा का लोप। सचिवों के समझाने पर, धीरज धर, पालकियाँ मँगवाना। सब कन्याओं को उन पर चढ़ाकर नारिधर्म और कुलरीति की शिक्षा देना, अनेक प्रकार से समझाना। उनके प्रिय सेवकों को साथ भेजना। ब्राह्मणों, मन्त्रियों के साथ पहुँचाने जाना (१।३३८।४ - १।३३९।४)।

अवध में प्रवेश करने से पहले ही रामसहित इनके दर्शन के लिए पुरवासी लालायित (१।३४५।४)। अयोध्या में पालकियों के परदे हटा-हटाकर इन वधुओं को देख पुर-नारियाँ सुखी (१।३४८।८)। राजद्वार पर माताओं द्वारा वधुओंसहित कुमारों का परछन — आरती। निछावर। वेदविधि और कुलरीति सम्पन्न कर अर्घ्य पाँवड़े देते हुए घर लाना। धूप-दीप-नैवेद्य से पूजन। पुनः आरती, निछावर। इस समय माताओं को जो सुख, वह अन्यत्र अलभ्य (१।३४८ - १।३५० क)। उनका लोकरीति करना। वर-वधुओं का सकुचाना। माताओं द्वारा देव-पितर-पूजन। चारों भाइयों का वधुओंसहित आँचल पसारकर अन्तर्हित देवताओं का आशीर्वाद लेना (१।३५० ख - १।३५१।३)।

वसिष्ठ की चरण-वन्दना कर आशीर्वाद पाना। इन्हें और राम को हृदय में धारण कर गुरु का गृहगमन (१।३५२-१।३५३।३)। दशरथ द्वारा पुत्रों और बहुओं का दुलार (१।३५४।२-४)। बहुओं को अतिशय लाड़-प्यार से रखने का उनका रानियों से कथन (१।३५५।७-८)। रानियों का वधुओं को अपने साथ सुलाना (१।३५८।४)। 'राम सीय जसु मंगल खानी'। यह कवियों का जीवन। अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कवि द्वारा इसका कथन। यज्ञोपवीत और ब्याह-उछाह श्रवण-गान का माहात्म्य— 'बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं।।' विवाह-प्रकरण की फलश्रुति— ' सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु।।' (१।३६१।७ - १।३६१)।

राम के वन-गमन का समाचार सुन व्याकुल हो इनका कौसल्या के पास आकर उनकी चरण-वन्दना करना। (राम यहीं उपस्थित)। सोचवश सिर झुकाकर पैर के नख से धरती कुरेदना। इनके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह। राम के साथ जाने की इनकी आकुलता समझ माता का समझाना — ये अत्यन्त सुकुमारी। बड़े प्यार-दुलार से पोषित, रक्षित। इनके फूलने-फलने के समय वनवास का प्रकरण उपस्थित। ये वनयोग्य नहीं। घर पर ही रहें, तो उन्हें सहारा मिलेगा। अब राम जैसा कहें, वैसी सीख वे इन्हें दें (२।५७ - २।६०।७)। राम का माता को परितुष्ट करना। माँ के सामने इनसे कुछ कहने में उन्हें संकोच, किन्तु आपद्धर्म समझकर उनकी शिक्षा — ये घर पर रहकर सास-ससुर की सेवा करें। इसमें इनका और उनका दोनों का हित। 'कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही।।' किन्तु प्रेमवश साथ जाने का हठ करने पर इन्हें दुःख भोगना होगा। उनके द्वारा वन की भयानकता तथा कष्टों का वर्णन और प्रबोधन (२।६०।८ - २।६३)। उनके कोमल वचन इनके लिए दाहक। अविनय के लिए कौसल्या से क्षमा-याचना करते हुए इनका निवेदन — 'पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं।।' 'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।' वन के सारे कष्ट उनके वियोग-दुख के आगे तुच्छ। यह समझकर वे इन्हें साथ ले चलें। [उनके द्वारा अनेक ब्राह्मणों के मुख से अनेक रामायणों का श्रवण। किसी में भी क्या यह उल्लेख कि इनके बिना ही उन्होंने वन-गमन किया? अ० रा० २।४।७७-७८।] वन में ये उनकी सेवा करेंगी। उनके दर्शन करते हुए इन्हें दुःख के लिए अवकाश ही कहाँ मिलेगा! किन्तु इन्हें अवधिभर अयोध्या में छोड़ने पर इनके प्राण नहीं बचेंगे। वे वनवास-तप के योग्य और ये भोग के! ऐसे कठोर विरहसूचक वचन सुनकर भी इनका हृदय नहीं फटा! इनकी दशा देख उनका समझ जाना कि हठ करने पर प्राण धारण नहीं करेंगी। अतः इन्हें साथ चलने के लिए तैयारी करने की आज्ञा देना, समझाना (२।६४।१ - २।६८।५)। सास के चरण छूकर इनकी विनय — ये परम अभागिनी — उनकी सेवा से वंचित। किन्तु दोष इनका नहीं। कठिन कर्मगति ही ऐसी। वे क्षोभ त्यागकर इन पर कृपा बनायें रखें। सुनकर वे आकुल। इन्हें बार-बार हृदय से लगाकर उनका अनेक प्रकार से आशिष और शिक्षा देना। उनके चरणों में बार-बार नमन कर इनका प्रस्थान (२।६९।३ - २।६९)।

वन-गमन की आज्ञा लेने लक्ष्मण का सुमित्रा के पास जाना, किन्तु उनका मन इनके और राम के साथ। उनसे सब प्रसंग सुन, इन दोनों के रूप-शील-स्वभाव का स्मरण कर सुमित्रा का सिर पीट लेना। उनका लक्ष्मण को समझाना — ये उनकी माता और राम पिता। इनके वन जाने पर उनका अवध में कोई काम नहीं। 'सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।' इन दोनों को हर प्रकार से सुखी रखने का उपदेश देकर माँ का लक्ष्मण को आशीर्वाद कि इन दोनों के चरणों में उनका नित नवीन अविरल प्रेम हो (२।७३।४, २।७३, २।७४।२, ४, २।७५।४, ७, २।७५।छं०)।

राम-लक्ष्मण के साथ इनका दशरथ के महल में जाना। तीनों को देख-देखकर राजा व्याकुल। (राम को वन जाने से रोकने का कोई उपाय न देख) उनका इन्हें हृदय से लगाकर अनेक प्रकार से शिक्षा देना, रोकने की चेष्टा करना। औरों का भी समझाना, किन्तु वे सब बातें इन्हें रुचिकर नहीं। इनका मन राम-चरणों में अनुरक्त। संकोचवश इनका उत्तर न देना (२।७६।२, ८, २।७६, २।७८।३ - २।७९।१)। [कैकेयी का मुनिपट-भूषण-भाजन लाकर रखना। वा० रा० २।३७।१३-१४ एवं अ० रा० २।५।३६-३७ के अनुसार चीर धारण करने की विधि इन्हें ज्ञात नहीं, अतः राम का इनके कौशेय के ऊपर चीर बाँधना।] राम-लक्ष्मण के साथ इनका प्रस्थान (२।७९)।

सुमन्त्र से दशरथ-कथन — वे रथ लेकर जायें और इन तीनों को वन दिखाकर कुछ दिनों में लौटा लायें। दोनों भाई न लौटें, तो केवल इन्हीं को लौटाने की विनती करें। इनके आने से उनके प्राणों को अवलम्ब मिल

जायेगा। 'रामु लखनु सिय आनि देखाऊ' कहकर उनका पुनः मूर्च्छित होना (२।८१।५, ८, २।८१-२।८२।८)। इन तीनों का रथ पर चढ़ अयोध्या को नमन कर प्रस्थान। 'राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं।।' यह निश्चय कर अवधवासी इनके अनुगामी। तमसा-तट पर उन सबको निद्रामग्न छोड़ तीनों का शृंगवेरपुर पहुँचना (२।८२ - २।८३।२, २।८४।५, ७, २।८४, २।८५।६, २।८५, २।८७।१)। इनका गंगा को प्रणाम करना। राम से गंगा के कथा-प्रसंग और महिमा का श्रवण (२।८७।३-६)। तीनों का रूप निहार ग्राम के नर-नारियों को नेत्र-फल-प्राप्ति (२।८९।१-३)। कंद-मूल-फल का आहार ग्रहण कर इनका राम के साथ (शिंशुपा वृक्ष के नीचे साँथरी पर) शयन (२।८९)। इन्हें जमीन पर सोते देख गुह को विषाद (२।९१।२-३, २।९१।६ - २।९२।२)। इनके चरणों में अनुरक्त होने का उन्हें लक्ष्मण का उपदेश (२।९४।१)। इनको लौटाने के सम्बन्ध में दशरथ का कथन सुमन्त्र द्वारा निवेदित। राम का इन्हें समझाना (२।९६।६ - २।९७।३)। उनसे इनकी प्रेमपूर्ण विनती। फिर सुमंत्र से विनय — पति के साथ इनके लिए वन की विपदाएँ भी सुखप्रद। उस पर लक्ष्मण भी साथ। इनके लिए वे चिन्ता न करें। सुनकर सुमंत्र विकल (२।९७।४ - २।९९।३)। इन तीनों के चरणों में नमन कर उनका लौटना (२।९९।८)।

'पिय हिय की सिय जाननिहारी'। गंगा पार उतरकर केवट को उतराई के रूप में कुछ न दे पाने का राम का संकोच देख इनका मुद्रिका उतारकर देना। इन तीनों के आग्रह करने पर भी केवट का कुछ न लेना (२।१०२।१-३, २।१०२)। सुरसरि से इनकी करबद्ध विनती — इनका मनोरथ पूर्ण हो, पति और देवर के साथ लौटकर ये पुनः उनकी पूजा करें। गंगा में से वाणी निःसृत — इनका प्रभाव जगविदित। इनकी उनसे विनती उन्हें बड़ाई देने के लिए। यह इनका अनुग्रह। फिर भी अपनी वाणी को सफल करने के लिए उनका आशीर्वाद कि ये पति और देवर के साथ सकुशल अयोध्या लौटेंगी। इनकी मनःकामना पूर्ण होगी। इनका यश जगत् में व्याप्त होगा। गंगा को अनुकूल देख ये मुदित (२।१०३।२- २।१०४।१)। राम, लक्ष्मण और गुह के साथ इनका वन-गमन (२।१०४)। राम से तीर्थराज की महिमा का श्रवण (२।१०६।३)। भरद्वाज का आतिथ्य-ग्रहण (२।१०७।३)। प्रातःकाल वहाँ से प्रस्थान (२।१०८)। (यमुना पार करना।) इन तीनों का रूप देख यमुना-तटवासियों का अपने भाग्य को सराहना, स्नेह-विकल होना (२।११०।२, २।१११।८)। तेजपुंज तापस का इनकी चरण-धूलि को मस्तक पर धारण करना। इनका आशीर्वाद पाना (२।१११।४)। (गुह का लौटना)।

यमुना को प्रणाम कर, उसकी महिमा कहते हुए राम-लक्ष्मण के साथ इनका चलना (२।११२।१-२)। आँख भर इन तीनों के दर्शन करनेवाले मगवासियों की सुरपुरवासियों द्वारा प्रशंसा (२।११३।४-५)। गाँव के निकट इनके निकलने पर आबालवृद्ध नर-नारी सब कार्य छोड़ इन्हें देखने में मग्न। उन्हें नेत्र-फल-प्राप्ति (२।११४।१-३)। इन्हें श्रमित जान, उनके आग्रह करने पर, राम का वटवृक्ष की छाया में घड़ीभर विश्राम करना। इन तीनों की सुन्दरता को मन-बुद्धि-चित्त लगाकर सबका देखना (२।११५।३-४, २।११६।२-३)। इनके समीप आकर ग्राम की स्त्रियों का इनके पाँव पड़ना। अत्यन्त स्नेह और संकोच से उनकी जिज्ञासा — दोनों राजकुमार इनके कौन हैं? सुनकर ये संकुचित। इनका मन-ही-मन मुसकराना। लक्ष्मण का परिचय देकर राम को संकेत से अपना पति बताना। सुनकर वे मुदित। अनेक प्रकार से इन्हें आशीर्वाद देकर उनकी विनती कि यदि ये उसी मार्ग से लौटें, तो उन्हें दासी समझकर दर्शन अवश्य दें। उन्हें प्रेम-तृषित जानकर इनके द्वारा उनका परितोष (२।११६।४ - २।११८।४)। प्रस्थान (२।११८)। इन जैसों को वनवास देने के लिए सबका विधाता को दोष देना। प्रेमाधिक्य से दुखी होना। जहाँ-जहाँ इन तीनों का गमन, वहाँ-वहाँ लोगों की यही दशा (२।११९।१ - २।१२१)। इस तरह राम-लक्ष्मण के साथ मगवासियों को सुख देते हुए, वन देखते हुए, इनका चलना (२।१२२)।

आगे-आगे राम, उनके पीछे ये, इनके बाद लक्ष्मण। ये तीनों ऐसे शोभित जैसे ब्रह्म, माया और जीव, या कामदेव, रति और वसन्त अथवा चन्द्रमा, रोहिणी और बुध हों। पति के चरण-चिह्नों को बचाते हुए उनके बीच-बीच में इनका चरण रखना। इन दोनों के चरण-चिह्नों को बचाते हुए लक्ष्मण का दाहिनी ओर हटकर चलना। तीनों की पवित्र प्रीति वाणी का विषय नहीं। शोभा अद्भुत। इस प्रसंग को फलश्रुति — पथिकरूप में इन तीनों के दर्शन करनेवालों का भव-सागर-तरण। आज भी इन तीनों का पथिकरूप जिनके हृदय में स्वप्न में भी विराजमान, उन्हें रामधाम की प्राप्ति (२।१२३।१ - २।१२४।२)।

इन्हें श्रमित जान प्रभु का वट-वृक्ष-तले रात्रि-निवास। दूसरे दिन वन-सर-शैल के दर्शन करते हुए वाल्मीकि

के आश्रम में पहुँचना (२।१२४।३-५)। यहाँ कन्द-मूल-फल का आहार (२।१२५।३-५)। तृण-पर्णशाला बनाकर कुछ काल तक इनके और अनुज के साथ रहने के लिए प्रभु का मुनि से स्थान पूछना (२।१२६।५-६)। मुनि द्वारा उनके लीलारूप, ऐश्वर्य और माधुर्य का कथन — वे जगदीश और ये उनकी माया, लक्ष्मण शेष। देवकार्य करने के लिए ही इन तीनों का मनुष्यरूप में अवतार (२।१२६।छं०)। (प्रभु के परात्पर रूप और लीलातन के सम्बन्ध में कहकर) मुनि का प्रभु को इनके और लक्ष्मण के साथ निवास करने के लिए चौदह स्थान बताना (२।१२८।२ - २।१३२।१)। [ये प्रभु की प्राप्ति के चौदह साधन जिनके ब्याज से चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन। दे० 'बालमीकि'।] मुनि-कथन — (उपर्युक्त स्थान प्रभु के अन्तर्यामी रूप के योग्य।) इस समय के (लीलाविग्रह के) लिए सुखदायक स्थान चित्रकूट (२।१३२।२-३)।

चित्रकूट आकर इनके साथ दोनों भाइयों का मन्दाकिनी में स्नान (२।१३२)। पर्णकुटी में इनके और अनुज के साथ प्रभु की शोभा ऐसी जैसे रति और वसन्त के साथ मुनिवेश में कामदेव हों (२।१३३)। इन तीनों की छवि देख मुनियों का अपने सब साधनों को सफल मानना (२।१३४।८)। क्षीरसागर और अयोध्या को त्यागकर प्रभु का इनके और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में वास (२।१३७।४, २।१३९।५)। यहाँ लक्ष्मण द्वारा इनकी और राम की सेवा। इनका मन पति के चरणों में अनुरक्त। उनका नित्य बढ़ता प्रेम देख ये हर्षित। उनके साथ होने के कारण वन और वनवासी इनके लिए गृह-पुर-परिजन से अधिक सुखद। राम का इन दोनों को आँखों की पुतलियों की तरह रखना। उनके सब आचरण इनकी प्रसन्नता के लिए। इनके साथ पर्णकुटी में वे ऐसे शोभित जैसे शची और जयंत के साथ इन्द्र हों (२।१३९।८-२।१४२।३)।

अवध लौटते हुए सुमन्त्र का सोच — कौसल्या को क्या वे यही उत्तर देंगे कि इन तीनों को वे वन छोड़ आये? इनका सन्देश सुनते ही राजा प्राण त्याग देंगे (२।१४६।४,८)। इन तीनों का नाम ले-लेकर राजा विकल। इनके सम्बन्ध में सुमन्त्र से उनके प्रश्न। इनके निकट जाने, इन्हें देखने की उनकी लालसा (२।१४८।८, २।१४९।३, ५, २।१४९, २।१५०।२)। तीनों की यात्रा और इनके स्नेह-शिथिल होने के सम्बन्ध में सुमन्त्र का कथन (२।१५०, २।१५२)। कौसल्या का समझाना कि राजा धीरज रखें, तो ये पुनः मिलेंगे (२।१५४।७-८)। विलाप करते हुए राजा द्वारा तीनों का नामोच्चार (२।१५५।२, ८)। (देह-त्याग)

इन तीनों के सम्बन्ध में कैकेयी से, फिर कौसल्या से भरत की जिज्ञासा (२।१५९।८, २।१६४।३)। इनके वन-गमन का कौसल्या द्वारा कथन (२।१६६।२, ४, ५)। राम के प्रति इनके और लक्ष्मण के प्रेम का वर्णन कर वसिष्ठ का भरत को समझाना कि उनके राज्य ग्रहण करने से इन्हें और राम को सुख होगा (२।१७१।८, २।१७५।५)। भरत की ग्लानि — इन तीनों के चरण-दर्शन किये बिना उनके लिए सब व्यर्थ (२।१७७, २।१७८।३)। इनका और राम का वनवास उनके कारण! उनके कारण ये दुखी! उनके मन में इसका दाह (२।१७९।३, २।१८१।६, २।१८२।६)। इन दोनों को छोड़ कोई यह नहीं कहेगा कि (कैकेयी की करनी में) उनका मत नहीं (२।१८२।३)। इनके चरणों का स्मरण कर, (इन्हें वापिस लाने के लिए) शत्रुघ्न (और अवधवासियों) के साथ उनका वन के लिए प्रस्थान (२।१८७, २।१८८।२)। गंगा से 'सीय राम पद सहज सनेहू' की वर-याचना (२।१९७।८)। शृंगवेरपुर में शिंशुपा वृक्ष के नीचे इनके शयन-स्थल को उनका दण्डवत् प्रणाम करना, कुश-साँथरी की प्रदक्षिणा कर चरण-चिह्नों की रज को आँखों से लगाना। (इनके वस्त्र या भूषण से झड़े हुए) दो-चार कनक-कण देख, उन्हें इन्हीं के समान समझ, मस्तक पर धारण करना। ग्लानि-विगलित हो उनके द्वारा इनके पिता, श्वसुर, पति की महिमा और इनके गुणों का गुह से कथन (२।१९८।७-२।१९९)।

प्रेमोमंग में रामसहित इनका नामोच्चार करते हुए उनका प्रयाग-प्रवेश। तीर्थराज से वर-याचना। — 'सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें'। (२।२०३, २।२०५।२)। उनसे भरद्वाज-कथन — (आश्रम में विश्राम के समय) राम-लक्ष्मणसहित इनका सारी रात उन्हीं की सराहना करना (२।२०८।४)। सब साधनों का फल 'लखन राम सिय दरसनु पावा', और इन तीनों के दर्शन का फल भरत के दर्शन (२।२१०।४-५)। भरत को दुख-दाह इस बात का कि ये मुनिवेश में मुनिव्रत का पालन करते हुए, सब प्रकार के कष्ट सहते हुए, वन में विचरणशील (२।२११।८-२।२१२।१)। इनका स्मरण करते, गुह से इनकी पथ-कथा पूछते-सुनते हुए उनका चलना (२।२१६।६, २।२२१।७)। मार्ग में मिलनेवालों से उस वन का नाम पूछना जहाँ इनका वास। तीर्थ, मन्दिर आदि

में 'सीय राम पद पदुम सनेहू' की वर-याचना (२।२२४।३,५)।

रात्रि के अवशेष काल में इनका स्वप्न देखना — मानो विरह-सन्तप्त भरत समाजसहित आये हैं। सब दुःख-मलिन। सासुओं का स्वरूप भिन्न। इनका राम को स्वप्न सुनाना। सुनकर उन्हें सोच (२।२२६।३-६)। देववाणी से लक्ष्मण के संकुचित होने पर इनके और राम के द्वारा उनका सादर सम्मान (२।२३१।५)। पुनः देववाणी में भरत की प्रशंसा सुन राम-लक्ष्मणसहित इन्हें सुख (२।२३३।३)। उधर भरत को संकोच — ये तीनों उनका नाम सुन कहीं और न चले जायें (२।२३३।६, ८)। उनसे गुह का कथन — पर्णकुटी के पास तुलसी के पौधे इनके और लक्ष्मण के लगाये हुए। वट की छाया में इनके द्वारा अपने हाथों से वेदी निर्मित। वहाँ राम के साथ बैठकर इनके द्वारा नित्य वेद-पुराणादि का श्रवण (२।२३७।६-२।२३७)। इस समय भी ये वहाँ मुनि-साधु-समाज के बीच रामसहित विराजमान। दोनों ऐसे शोभित जैसे मुनिवेश में रति और काम हों, जैसे ज्ञानसभा में शरीरधारी भक्ति और सच्चिदानंद हों (२।२३९।६-२।२३९)। प्रेमोमंग से इनकी चरण-धूलि को सिर पर धारण कर भरत का सानुज बार-बार प्रणाम करना। अपने कर-कमल से उनके मस्तक का स्पर्श कर, उन्हें उठाकर इनका निकट बैठाना। ये स्नेह-मग्न, देह की सुधि नहीं। मन-ही-मन इनका उन्हें आशीर्वाद देना। इन्हें अनुकूल देख वे शोचमुक्त (२।२४२।३-६)। शत्रुघ्न को इनके पास छोड़ राम का गमन (२।२४३।१)। (गुरु, माता आदि को लेकर उनके आने पर) इनका मुनि वसिष्ठ के चरणों में नमन। फिर मुनि-स्त्रियोंसहित गुरुपत्नी अरुन्धती की चरण-वन्दना। सबसे आशीर्वाद-प्राप्ति। सासुओं को देख सहमकर इनका आँखें मूँदना। इन्हें (तापस वेश में) देख सासुओं को दुःख। उनके पाँव छू-छूकर सजल नेत्रों से इनका मिलना। सब स्नेह-विकल। करुण रस प्रवाहित। गुरु का सबको बैठने का आदेश (२।२४६।१ - २।२४७।१)। राजा का स्वर्ग-गमन सुन इनका विलाप करना (२।२४७।५)। जितनी सासुएँ, उतने वेश बनाकर इनका आदरपूर्वक, समान भाव से सबकी सेवा करना। इस मर्म को राम के अतिरिक्त किसी का न लखना। 'माया सब सिय माया माहूँ।।'— सासुएँ इनकी सेवा के वशीभूत। उनका इन्हें सीख और आशिष देना (२।२५२।२-४)। ये और दोनों भाई सरल-स्वभाव, यह देख कैकेयी का पछताना (२।२५२।५)।

कौसल्या की अनुमति ले सुनयना का इन्हें साथ लेकर आना। अपस्विनी वेश में इन्हें देख प्रिय परिजन दुखी (२।२८५ - २।२८६।२)। जनक को ये प्राण-सी प्रिय। इन्हें पाहुन (अतिथि) के रूप में आयी देख उनका हृदय से लगाना (२।२८६।३-४)। मार्कण्डेय-दृष्ट प्रलय और (इनके प्रति) उनके अनुराग का रूपक (२।२८६।५-७)। [दे० 'जनक'। उनका इनमें बेटी के अतिरिक्त उपास्य देवतावाला प्रेम भी। मा० पी० २।२८६।५-८ में वि० त्रि० का मत।] वस्तुतः उनकी मति मोह-मग्न नहीं। उनकी विस्वलता का कारण इनके और राम के प्रेम की महिमा (२।२८६।८)। ये भी स्नेह-विकल, किन्तु समय और सद्धर्म का विचार कर इनका धीरज धरना (२।२८६)। इनका तापसी वेश देख उन्हें परितोष। उनका कथन — इन्होंने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया। इनका सुयश सुरसरि से भी अधिक उज्ज्वल। सुनकर इन्हें संकोच। इन्हें पुनः हृदय से लगाकर उनका और सुनयना का शिक्षा और आशीर्वाद देना (२।२८७।१-६)। इनकी दृष्टि में इनका रात को वहाँ रहना उचित नहीं। इनका मनोभाव समझकर सुनयना का जनक को बताना। इनसे बार-बार मिलकर, सम्मान कर, इन्हें विदा करना (२।२८७।७-२।२८७)।

लौटते समय भरत-शत्रुघ्न का इनकी चरण-धूलि को मस्तक पर धारण करना (२।३१८)। इनका परिजन और माता-पिता से मिलना। फिर सासुओं को प्रणाम कर भेंटना। शिक्षा और आशीर्वाद-प्राप्ति। ये मैके और ससुराल, दोनों ओर की प्रीति में निमग्न (२।३२०।१-३)। राम-लक्ष्मण-सहित इनके द्वारा गुरु वसिष्ठ और गुरुपत्नी अरुन्धती की चरण-वन्दना। हर्ष-विषाद के साथ लौटना (२।३२०)। तीनों वट की छायातले बैठ प्रिय परिजन के वियोग में दुखी। इनके और लक्ष्मण के आगे भरत की प्रीति-प्रतीति आदि का राम द्वारा बखान (२।३२१।३-५)। पर्णकुटी में ये तीनों शरीरधारी भक्ति (ये), ज्ञान (राम), वैराग्य (लक्ष्मण) की भाँति शोभित (२।३२१)। भरत-चरित की फलश्रुति में — 'सिय राम प्रेम पियूष पूरंन होत जनमु न भरत को।...' नियमपूर्वक सादर उनके चरित-श्रवण से इनके और राम के चरणों में प्रेम और भव-रस-विरति अवश्यम्भावी (२।३२६।छं०-२।३२६)।

एक बार अपने हाथों से सुन्दर-सुन्दर फूल चुनकर, उनके गहने बनाकर, राम का इन्हें सादर पहनाना। [चित्रकूट में उनके द्वारा पुष्पाभूषणों से प्रायः इनका शृंगार — 'सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग, तिलक-करनि का कहौ कलानिधान की। माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास, बसति हृदय जोरी प्रिय परम

प्रान की।। गी० २।४४।] इनके साथ स्फटिक शिला पर बैठना। उसी समय, उनके बल की परीक्षा करने के लिए, जयन्त का काकवेश में इनके चरणों में चोंच मारकर भागना। चरणों से रुधिर-प्रवाह (३।१।३-८)। (प्रभु का उसे एकाक्ष करके छोड़ देना। दे० 'जयंत'।) चित्रकूट से विदा होते समय इनके और लक्ष्मण के साथ प्रभु का अत्रि के आश्रम में आना (३।३।३)। इनका अनसूया के चरण पकड़कर उनसे मिलना। इन्हें आशीर्वाद देकर उनका दिव्य वस्त्राभूषण पहनाना (३।५।१-३)। [अ० रा० २।४।८०, ८३ के अनुसार इनके वन चलने का निश्चय हो जाने पर राम के आदेश से इन्होंने मुख्य-मुख्य आभूषण अरुन्धती को दे दिये थे।] स्त्रीधर्म कहने के ब्याज से उनके द्वारा इनकी स्तुति और संसार को उपदेश। सुनकर इन्हें सुख (३।५।४ - ३।६।१)। (वहां ये प्रस्थान। वन की ओर गमन।) वनमार्ग में राम और लक्ष्मण के बीच ये ऐसी शोभित जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो (३।७।२-३)। (प्रभु द्वारा विराध-वध, शरभंग का योगाग्नि से शरीर-दाह, सुतीक्ष्ण एवं अगस्त्य से मिलन, जटायु से भेंट, पंचवटी में वास।) शूर्पणखा के प्रस्ताव पर राम का इनकी ओर देखना। (यह संकेत करने के लिए कि वे विवाहित।) उसका भयानक रूप देख ये भीत (३।१७।११, २०)। खर-दूषण के आक्रमण का आभास पा राम के आदेश से इन्हें लेकर लक्ष्मण का गिरि-कन्दरा में जाना (३।१८।११-१२)। खर-दूषण का सन्देश— इनको उन्हें सौंपकर राम अनुजसहित लौट जायें (३।१९।६)। शत्रुओं का वध हो जाने पर इन्हें लेकर लक्ष्मण का आना। इनका प्रेमभरी दृष्टि से पति को निहारना (३।२१।२-३)। एकान्त में इनसे राम का कथन— अब वे कुछ नर-लीला करेंगे। जब तक निशाचरों का नाश न हो, तब तक [अ० रा० ३।७।३ के अनुसार एक वर्ष तक।) ये अग्नि में निवास करें। उनका इन्हें सब बातें समझाना। अपना प्रतिबिम्ब (मायासीता) रखकर, उनके चरणों को हृदय में धारण कर, इनका अग्नि में प्रवेश। यह रहस्य लक्ष्मण को भी ज्ञात नहीं (३।२३ - ३।२४।५)।

(रावण के भय से मारीच का कनकमृग बनना।) सुन्दर हरिण देखकर इनका राम से आग्रह कि वे उसका वध कर उसका चर्म ला दें। इनकी रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंप राम का मृग के पीछे गमन (३।२७।३-५, ८-१०)। (मरते समय लक्ष्मण का नाम पुकारकर मारीच द्वारा मन-ही-मन राम का स्मरण)। मारीच की आर्त्त पुकार सुन इनका अनुमान कि वह राम की पुकार। इनका लक्ष्मण से कथन कि राम संकट में, वे शीघ्र उनकी सहायता के लिए जायें। लक्ष्मण द्वारा उनके ऐश्वर्य का वर्णन। किन्तु इनके मर्म-वचन सुन, प्रभु की प्रेरणा से, उनका मन भी अस्थिर। इन्हें वनदेव, दिशिदेव आदि को सौंपकर उनका प्रस्थान (३।२८।२-६)। एकान्त में अवसर देख रावण का संन्यासी के वेश में इनके निकट आना। अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाकर राजनीति, भय, प्रीति दिखाना। इनका उसके वचन को दुष्ट के-से वचन कहना। तब अपना रूप प्रकट करके उसका नाम बताना। नाम सुन ये भयभीत। धीरज धरकर इनका उसे धमकाना। वह क्रुद्ध, पर मन-ही-मन उसके द्वारा इनके चरणों की वन्दना। फिर क्रोध कर इन्हें रथ पर बैठाकर आकाशमार्ग से उसका गमन। राम का नाम ले-लेकर इनका विलाप। लक्ष्मण को निर्दोष और स्वयं को दोषी मानना। विलाप सुन चर-अचर सब दुखी (३।२८।७ - ३।२९।६)। इनकी आर्त्त वाणी सुन, पहचानकर, जटायु का आश्वासन कि ये डरें नहीं, वे राक्षस का नाश कर देंगे (३।२९।७-९)। इन्हें छोड़कर लौट जाने का रावण से उनका कथन। उसके न सुनने पर, उसे विरथ करके इन्हें रथ से उतारना (३।२९।१६-१९)। उनके पंख काट रावण का इन्हें पुनः रथ पर बैठाकर ले जाना। (ऋष्यमूक) पर्वत पर वानरों को बैठे देख राम का नाम लेकर इनका वहाँ वस्त्र डालना (३।२९।२२-२५)। [वा० रा० ३।५४।२-३ के अनुसार इनका वस्त्र में आभूषण लपेटकर गिराना जिससे वे वानर इनका समाचार राम को दे सकें।] रावण का इन्हें ले जाकर भय और प्रीति दिखाना, हारकर अशोक वृक्ष के नीचे रखना। कपट-मृग के पीछे दौड़ते हुए प्रभु की छवि को हृदय में धारण कर इनके द्वारा उनका नाम-जप (३।२९।२६ - ३।२९ ख)।

लक्ष्मण को आते देख राम का बाह्य रूप से इनके संबंध में चिन्ता व्यक्त करना। आश्रम में इन्हें न देख वे विकल। उन्हें लक्ष्मण का समझाना। खग-मृग आदि से इनके सम्बन्ध में पूछने के बहाने, खंजन शुक आदि के निर्लज्ज होने के कथन के ब्याज से, उनके द्वारा इनका नख-शिख-वर्णन। अत्यन्त कामी विरही की तरह इन्हें खोजते हुए विलाप (३।३०।१-१६)। इनको हरकर रावण के दक्षिण की ओर ले जाने और कुररी पक्षी की तरह इनके विलाप करने का उनसे जटायु का कथन। जटायु से उनका निवेदन — वे (रामधाम में) जाकर दशरथ से इनके अपहरण का संवाद न कहें (३।३१।२-३, ३।३१)। दोनों भाइयों का इन्हें सघन वनों में खोजना (३।३३।४)।

(मार्ग में कबन्ध-वध)। उनसे शबरी का कथन कि पम्पासर में सुग्रीव से उन्हें इनके सम्बन्ध में सब ज्ञात होगा (३।३६।१०-१२)। (शबरी का योगाग्नि से देह-त्याग।) इनके वियोग में राम का विरही की भाँति विषाद। कथन – वन की शोभा (शृंगार के उद्दीपन) देख उनके मन में क्षोभ। वहाँ के खग-मृग सब नारी के साथ, किन्तु वे नारीविहीन। वन-जीवों की निन्दा के पात्र। हाथियों का उन्हें शास्त्रानुमोदित उपदेश। प्रियाहीन होने के कारण उन पर कामदेव का आक्रमण, किन्तु उन्हें भ्रातासहित जानकर सेना को रोक डेरा डालना (३।३७।२ - ३।३७ ख)।

इनके अपहृत होने के सम्बन्ध में राम का हनुमान् से कथन (४।२।२-३)। सुग्रीव का उन्हें आश्वासन कि ये मिल जायेंगी। उनका निवेदन – एक बार इन्हें शत्रु के वशीभूत हो विलाप करते आकाशमार्ग से जाते हुए उनका कपियोंसहित देखना। वानरों को देख राम-नाम पुकारते हुए इनका वस्त्र फेंकना। उस वस्त्र को हृदय से लगा राम को सोच। सुग्रीव की विनय – वे ऐसा हर सम्भव उपाय करेंगे जिससे ये मिल जायें (४।४।४, ४।५।२ - ४।५)। किन्तु वर्षा की समाप्ति और शरद् ऋतु का आगमन होने पर भी इनका कोई समाचार प्राप्त नहीं। राम का लक्ष्मण से कथन– यदि एक बार इनकी सुधि मिल जाये, इनके जीवित होने का विश्वास हो जाये, तो वे काल को भी जीतकर इन्हें ले आयेंगे (४।१८।१-३)। (सुग्रीव को धमकी। उनकी विनय।) इनका पता लगाने की सुग्रीव को राम की आज्ञा। सुग्रीव का अनुचरों को आदेश कि वे एक माह के भीतर इनका समाचार लेकर लौटें, अन्यथा उनके हाथों वध्य होंगे (४।२१।८, ४।२२।७, ४।२३।२)। (वानर-यूथों का प्रस्थान।) राम का हनुमान् को बुलाकर अपने हाथ की अँगूठी देना। [उनका कथन – वह मुद्रिका उनके नाम से अंकित। अ० रा० ४।६।२६। उसके द्वारा इन्हें हनुमान् के राम-प्रेषित होने का विश्वास होगा। वा० रा० ४।४४।१३।] उनका आदेश – उनके बल-वर्णन से इन्हें आश्वस्त करके, उनके विरह-वर्णन से इन्हें सान्त्वना देकर, हनुमान् शीघ्र लौट आयें (४।२३।९ - ११)।

वानरों द्वारा गिरि-काननों में इनका अन्वेषण (४।२३)। उन्हें स्वयंप्रभा से इनके मिलने का आश्वासन प्राप्त (४।२५।५)। (सागर-तट पर) अंगद को सोच – अवधि समाप्त, पर अब तक इनकी सुधि नहीं। लौटने पर सुग्रीव द्वारा वध होगा। वानरों का उन्हें भरोसा देना कि इनकी सुधि लिये बिना वे नहीं लौटेंगे (४।२६।१ - ४, ६)। सम्पाति का कथन – उन्हें स्पष्ट दृष्टिगोचर कि त्रिकूट पर बसी लंका के अशोक उपवन में ये शोचमग्न। अब वे वृद्ध, नहीं तो वानरों की कुछ सहायता करते। इनका पता लगाना उसी के लिए सम्भव जो शत योजन समुद्र लाँघने में समर्थ हो। उनका वानरों को उत्साहित करना (४।२८।७ - ४।२९।१, ४।२९।४)। जाम्बवान् का हनुमान् को समझाना – वे केवल इन्हें देखकर इनका समाचार ले आयें। फिर राम अपने भुजबल से निशिचर-संहार कर स्वयं इन्हें लायेंगे (४।३०।११ - ४।३०।छं०)।

अति लघु रूप धारण कर हनुमान् का इन्हें लंका के प्रत्येक महल में खोजना (५।५।४-७)। विभीषण से इनका पता और इनसे मिलने की युक्ति जानकर, पुनः मशक-समान रूप धर, उनका अशोक वन में जाना। वहाँ इनके दर्शन। इन्हें मन-ही-मन मन प्रणति। (तरु-पल्लवों में छिपकर उनका देखना कि) इनका शरीर कृश। सिर के केश जटा की एक वेणी-से। इनके नेत्र इनके चरणों में लगे हुए, मन प्रभु के चरणों में लीन। उनके गुणसमूह का इनके द्वारा मानसिक जप। इनका बैठे-ही-बैठे रात्रि के प्रहर बिताना। इनकी दीनता देख हनुमान् दुखी (५।८।३ - ५।८)। इसी समय रानियों के साथ रावण का आना। साम-दाम-भय-भेद से काम लेकर उसका इन्हें समझाना, प्रलोभन देना – ये एक बार उसकी ओर देख भर लें, फिर वह मन्दोदरी आदि को इनकी अनुचरी बना देगा। तृण को ओट में रख इनके द्वारा उसका तिरस्कार। इनके शिरश्छेद की उसकी धमकी। इनका प्रण – या तो राम की भुजाएँ ही इनके कण्ठ में पड़ेंगी या उसकी तलवार। चन्द्रहास से विरह-जन्य परिताप हरने का इनका कथन। इन्हें मारने के लिए रावण के पुनः उद्यत होने पर मन्दोदरी का उसे समझाना। तब इन्हें त्रास देने के लिए उसका राक्षसियों को आदेश। एक मास के भीतर उसकी बात न मानने पर इनका वध करने का कथन। उसके चले जाने पर राक्षसियों का नाना रूप धर इन्हें भय दिखाना (५।९।२ - ५।१०)। त्रिजटा का स्वप्न सुन उनका इनके चरणों में गिरना (५।११।१-८)। एक माह बीतने पर नीच रावण द्वारा अपना वध निश्चित समझ इनकी त्रिजटा से करबद्ध विनय – राम का विरह अब असह्य। वह शीघ्र काठ लाकर चिता सजा दे जिससे ये अपनी प्रीति को सत्य करें। सुनकर त्रिजटा का इनके चरण पकड़कर समझाना, प्रभु का प्रताप-बल-सुयश सुनाना। रात्रि के समय अग्नि न मिलने का बहाना कर उसका गृह-गमन (५।११ - ५।१२।६)। इनके प्रेमोन्मादपूर्ण उद्गार (५।१२।७-११)।

इसी समय हनुमान् का अँगूठी गिराना। उसे अशोक-प्रदत्त वांछित अंगार समझ इनका हर्षित हो उठाना। राम-नामांकित मुद्रिका देख ये चकित। इनके मन में हर्ष और विषाद। (हर्ष अँगूठी पाने का, विषाद यह सोचकर कि वह यहाँ आयी कैसे)। प्रभु को जीते बिना वह मिल नहीं सकती और प्रभु अजेय। माया से वैसी अँगूठी बनाना असम्भव। इनके मन में नाना प्रकार के विचार (५।१२।१२ - ५।१३।४)। अवसर देख छिपे हुए हनुमान् द्वारा राम-गुण-वर्णन और रामायण-कथन। इनका मन लगाकर सुनना। इनके दुःख दूर। इनकी उक्ति — श्रवणामृतरूप कथा कहनेवाला प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान् का इनके निकट आना। इनका विस्मित हो मुँह फेर लेना। रामदूत के रूप में उनका परिचय पाकर इनकी शंका — नर और वानर का साथ कैसे हुआ? (५।१३।४-११)। उनसे सब कथा सुन इनके मन में विश्वास। उन्हें प्रभु का दास जानकर उनके प्रति प्रगाढ़ प्रीति। इनके नेत्र सजल, शरीर पुलकित। अनुजसहित प्रभु के सम्बन्ध में इनका कुशल प्रश्न। जिज्ञासा — कोमलचित्त प्रभु इनके प्रति इतने निष्ठुर क्यों? वे कभी इनकी याद करते हैं? इन्हें कभी उनके दर्शन होंगे? उन्होंने इन्हें बिल्कुल भुला दिया! इनका कण्ठ अवरुद्ध (५।१३ - ५।१४।७)। सानुज प्रभु का कुशल-समाचार कहकर हनुमान् द्वारा उनका सन्देश-निवेदन — इनके वियोग में उनके लिए सब सुख के साधन विपरीत। हृदय की बात वे किससे कहें! इनके और उनके प्रेम का मर्म केवल उनके मन को ही ज्ञात, और वह मन सदा इनके पास। (मानसिक वियोग नहीं।) इतने में ही ये प्रेमरस को समझ लें। सुनते ही ये प्रेममग्न। देह-सुधि का विस्मरण (५।१४।८ - ५।१५।८)। प्रभु-प्रातप का स्मरण कर धीरज धरने की इनसे हनुमान् की विनती। प्रभु को पहले इनकी सुधि मिली होती, तो वे विलम्ब न करते। कुछ ही दिनों में वे वानरोंसहित आकर, निशिचर-संहार कर, इन्हें ले जायेंगे (५।१५।९-५।१६।५)। अत्यन्त स्नेहपूर्वक इनका हनुमान् को 'सुत' कहकर सम्बोधित करना। उनके और अन्य वानरों के सामर्थ्य के सम्बन्ध में सन्देह व्यक्त करना। हनुमान् का विशाल रूप देखकर इन्हें भरोसा। पुनः लघुरूप हो उनका प्रभु-प्रताप को ही अपनी शक्ति का आधार कहना। उनकी वाणी सुन, उन्हें रामप्रिय जान, इनका आशीर्वाद देना। कृतकृत्य, प्रेममग्न होकर उनका बार-बार इनके चरणों में नमन (५।१६।६ - ५।१७।६)। क्षुधातुरता व्यक्त कर हनुमान् का इनसे फलाहार की अनुमति प्राप्त करना। प्रस्थान (५।१७।७ - ५।१८।१)। (लंका-दहन करने के बाद) लौटकर इनके आगे हाथ जोड़कर खड़े होना। पहचान के लिए उनके चिह्न माँगने पर इनका चूड़ामणि उतारकर देना। प्रभु के लिए प्रणामपूर्वक इनका आर्त्त निवेदन — 'दीनदयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।' इनका कथन — हनुमान् उन्हें जयन्त की कथा सुनाकर उनके बाण-प्रताप का स्मरण करा दें। एक मास के भीतर वे न आये, तो इन्हें जीवित न पायेंगे। हनुमान् को देखकर इनके मन को कुछ विश्राम मिला था, किन्तु अब वे भी जाने को उत्सुक। इनके लिए फिर वे ही तापभरे दिन और रात! इन्हें अनेक प्रकार से समझाकर, धीरज देकर, इनके चरणों में नमन कर, हनुमान् का गमन (५।२६ - ५।२७)।

लंका में इनके रहने और प्राणरक्षा करने की विधि के सम्बन्ध में प्रभु की हनुमान् से जिज्ञासा। हनुमान् का निवेदन — इनके द्वारा प्रभु के नाम का श्वास-निःश्वासात्मक जप। यह इनके प्राणों का पहरेदार, रक्षक। इनके मन में निरन्तर उनका ध्यान। यह कपाट। इनके नेत्र इनके चरणों में स्थिर (क्योंकि चरण में भगवान् का वास)। यह यंत्र। प्राण निकलें तो कैसे? उनसे इनका चूड़ामणि पाकर प्रभु का हृदय से लगाना (५।३०।८ - ५।३१।१)। हनुमान् द्वारा इनकी विरह-दशा का किंचित् वर्णन और निवेदन — इनकी विपत्ति को न कहना ही अच्छा। इनका एक-एक पल कल्प के समान व्यतीत। प्रभु शीघ्र ही खल-दल को जीत इन्हें ले आयें। सुनकर प्रभु के नेत्रों में जल (५।३१।२ - ५।३२।१)। उनका कथन — जो मन-वचन-कर्म से उनका आश्रित, उसको विपद कैसी? (५।३२।२)।

युद्ध में प्रभु के बाणों से बार-बार काटे जाने पर भी रावण के मस्तकों, भुजाओं का पुनः उग आना। — त्रिजटा से यह समाचार सुन इन्हें त्रास। ये चिन्तित। आखिर रावण मरेगा कैसे? अपने दुखों के लिए इनका विधाता को दोष देना। अनेक प्रकार से विलाप करना। त्रिजटा का कथन — रावण के हृदय में बाण लगने पर ही उसकी मृत्यु, फिर भी प्रभु का उसके हृदय को न भेदना, क्योंकि वहाँ इनकी मनोमय मूर्त्ति और इनके हृदय में प्रभु का वास। प्रभु के उदर में अनेक ब्रह्माण्डों की स्थिति। बाण लगने पर सबका नाश निश्चित। बार-बार सिरों के कटने से जब रावण के मन से इनका ध्यान छूट जायेगा, तब प्रभु उसका हृदय-भेदन करेंगे। इस प्रकार इन्हें समझाकर त्रिजटा का गृह-गमन। ये राम-स्वभाव का स्मरण कर विरह से व्याकुल। तभी इनके शुभांगों का फड़कना।

इन्हें प्रभु के मिलने का विश्वास (६।९९।१ - ६।१००।६)।

समर-विजय करने के बाद इनका समाचार लाने के लिए प्रभु का हनुमान् को लंका भेजना। उनसे सब सुनकर ये हर्ष-पुलकित। इनका उन्हें आशीर्वाद। शीघ्र राम से मिलने को ये लालायित (६।१०७।१ - ६।१०८।१)। लौटकर हनुमान् का प्रभु से इनका कुशल-निवेदन। उनकी आज्ञा से विभीषणादि के साथ इन्हें लेने जाना। विभीषण के आदेश से राक्षसियों का इन्हें मज्जन कराना, भूषण पहनाना। हर्षित हो ये पालकी पर आसीन। चारों ओर वेत्रपाणि रक्षक। इनके दर्शन के लिए वानर-भालुओं का पालकी के निकट आना। रक्षकों का उन्हें रोकना। तब राम का कथन — इन्हें पैदल ही लाया जाये, जिससे वानर इन्हें माता के रूप में देखें। सुनकर सब हर्षित (६।१०८।२ - १३)। अपहृत होने से पूर्व प्रभु की आज्ञा से इनका अग्नि में निवास। (रावण द्वारा इनके प्रतिबिम्ब अर्थात् मायासीता का हरण। इस समय वे ही उपस्थित। अतः प्रतिबिम्ब को बिम्ब में लय करके) बिम्बरूपा सीता को अग्नि से प्रकट करने के लिए (एवं लौकिक कलंक के प्रक्षालन के लिए) प्रभु का इन्हें कुछ दुर्वचन कहना। पातिव्रत की परीक्षा के देने के लिए, प्रभु का स्मरण कर, इनका लक्ष्मण द्वारा प्रज्वलित की गयी अग्नि में प्रवेश। प्रतिबिम्ब बिम्ब में लीन, लौकिक कलंक भस्म। मूर्त्त होकर अग्नि द्वारा प्रभु को ये उसी प्रकार समर्पित, जिस प्रकार क्षीरसागर द्वारा विष्णु को लक्ष्मी। ये प्रभु के वाम भाग में विराजमान। शोभा देख हर्षित रीछ-वानरों द्वारा जय-जयकार। आकाश में नृत्य-गीत, पुष्पवृष्टि (६।१०८।१४ - ६।१०९ ख)।

इनके साथ प्रभु पुष्पक में सिंहासन पर आसीन। उनका इन्हें रणभूमि के विभिन्न स्थल दिखाना। इनके साथ रामेश्वर को प्रणाम करना। इन्हें उन स्थानों के दर्शन कराना जहाँ उन्होंने विश्राम किया था (६।११९।४-५, ६।११९।९-६।११९ ख)। (दण्डकारण्य में मुनियों के आश्रमों में प्रभु का गमन। ये साथ।) (विमान पर से) यमुना, गंगा, प्रयाग, त्रिवेणी, अवधपुरी के दर्शन (६।१२०।५ - ६।१२० क)। गंगा-तट पर उतरकर इनके द्वारा गंगा की पूजा। आशिष-प्राप्ति। इनके साथ प्रभु को देखकर प्रेमाकुल गुह का धरती पर गिरना (६।१२१।८-११)।

राम-लक्ष्मण के साथ इनके अयोध्या लौटने पर भरत-शत्रुघ्न का इनके चरणों में नमन (७।६।२)। इनका सासुओं की चरण-वन्दना कर मिलना, आशीर्वाद पाना (७।७।१-२)। कौसल्या परमानन्द-मग्न (७।७)। सासुओं का इन्हें सादर स्नान कराना, दिव्य वस्त्राभूषणों से सजाना। राम के वाम भाग में इन्हें शोभित देख जन्म को सफल समझना (७।११ क, ख)। इनका प्रभु के साथ दिव्य सिंहाससन पर विराजना। (७।१२।१-३, ७।१२।छं० २)। ये सुशील और विनीत। सदा पति के अनुकूल, उनकी आज्ञानुवर्त्तिनी। उनकी प्रभुता का इन्हें ज्ञान। मान-मद त्यागकर इनके द्वारा कौसल्यादि की सेवा। अपने हाथों से गृहकार्य करने में सुख (७।२४।३ - ८)। ये ब्रह्मादि द्वारा वन्दित, जगज्जननी, सर्वलोकेश्वरी। देवता इनके कृपा-कटाक्ष के लिए लालायित, किन्तु उनकी ओर इनका दृष्टिपात न करना। ये प्रभु के चरणों में ही अनुरक्त (७।२४।९ - ७।२४)। इनके लव, कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न (७।२५।६)।

वाल्मीकि और हनुमान् इनके और राम के गुणग्राम में मग्न (१।१।श्लो०४)। 'सीय राममय सब जग जानी…' (१।८।२)। इनका और राम का यश ग्रामीण भाषा में होने पर भी बुद्धिमानों द्वारा उसका गान और श्रवण (१।१० ख)। राम के गुणसमूह 'जननि जनक सिय राम प्रेम के' (१।३२।४)। सती द्वारा इनका वेश धारण। इससे शिव को विषाद। सती का त्याग (१।५२, १।५६।७, १।९८।८, छं०)। 'कहहु जथा जानकी बिबाहीं' — शिव से उमा की विनती (१।११०।६)। जनकपुर की स्त्रियों का कथन — राम ही इनके योग्य वर (१।२२२।१, ६, १।२२३।७)। 'भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू।।' (१।२९६।३)। 'बिस्व बिजय जसु जानकि पाई' (१।३५७।५)।

रामाभिषेक का निश्चय होने पर इनके और राम के शुभांगों का फड़कना। (अभी इन्हें अभिषेक का ज्ञान नहीं।) दोनों का परस्पर कथन कि यह भरत के आगमन का सूचक, क्योंकि 'भरत सरिस प्रिय को जग माहीं' (२।७।३-७)। अवधवासियों की मनःकामना कि इनके साथ राम सिंहासन पर बैठें (२।११।५)। कैकेयी का मन्थरा से कथन — यदि विधाता पुनः जन्म दें, तो राम और ये उनके पुत्र-पुत्रवधू हों (२।१५।७)। बड़ी बूढ़ियों का कैकेयी को समझाना — राम के वन जाने पर 'सीय कि पिय संगु परिहरिहि' (२।४९)। लक्ष्मण 'सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे' (२।२००।२)। जनक की विह्वलता मोह नहीं, 'यह सिय राम सनेह बड़ाई' (२।२७७।२) अवध और मिथिला के

निवासियों के लिए इनके और राम के साथ वन में वास कोटि स्वर्ग-सा सुखद। इनके बिना लौटनेवाला हतभाग्य (२।२८०।२-४)। दोनों समाजों की रानियाँ सिय-राम-प्रेम की मूर्त्ति-सी (२।२८१।७)। भरत के सद्भाव के कथन-श्रवण से इनके और राम के चरणों में अनुराग (२।३०४।२)। 'लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।' (२।३२६।२)।

शत्रु-विजय कर इन्हें ले आने का हनुमान् का राम से निवेदन (५।३२।४)। वामांगों के फड़कने के कारण इन्हें किष्किन्धा से प्रभु के प्रयाण का ज्ञान। इनके लिए जो-जो शकुन, वे सब रावण के लिए अपशकुन (५।३५।६-७)। उसे मन्दोदरी का समझाना — रावण-कुल के लिए ये विनाशकारी। इन्हें लौटाये बिना ब्रह्मा और शिव भी उसका कल्याण करने में समर्थ नहीं (५।३६।९-१०)। विभीषण की विनय — ये राक्षस-कुल के लिए कालरात्रि-सदृश। रावण इन्हें राम को समर्पित कर दे (५।३९।६, ५।४०।८, ५।४०)। इन्हें लौटाने का रावण से कथन — हनुमान् का (५।२२।१०), लक्ष्मण की पत्रिका में (५।५२), शुक का (५।५७।७-८), मन्दोदरी का (६।६), प्रहस्त का (६।९।१०), माल्यवन्त का (६।४८।७, ६।४९।१)। रावण-सभा में अंगद की उक्ति — अभिमान अथवा मोहवश रावण द्वारा इनका अपहरण। अब वह आत्म-समर्पण करते हुए इन्हें सादर लौटा दे (६।२०।५,८)। उसे पटककर इन्हें ले जाने की उनकी गर्वोक्ति (६।३०।५, ६।३०)। चरण रोपकर उनकी घोषणा — रावण उसे हटा दे, तो वे इन्हें हार जायेंगे (६।३४।८-९)। इनके अपहरण के सम्बन्ध में रावण का कुम्भकर्ण से कहना और तिरस्कृत होना (६।६२।९, ६।६२)।

कथन — इनके निन्दक के सम्बन्ध में (१।१६।३), सती-प्रसंग में इनके अपहरण का (१।४९।५), जनकपुर में इनके महल की शोभा का (१।२१३), इनके और राम के प्रति निषादों के प्रेम का (२।२५१।छं०)। राम-लक्ष्मण के साथ इनका उल्लेख (१।५४।४, १।५४।५, १।५५।५, २।९४।८, २।१४२।७, २।१४३।७, २।१८०।३, २।२०३।३, २।२५६।३, २।२६२।४, २।२६२, २।२८२, २।३१७।२, २।३२०।७, ३।८, ३।१०।२०, ३।११।१८, ३।११, ३।१२।८, ३।१३।१०, ३।२६।छं०, ६।११२, ६।११३।तोमर ८, ६।११५।छं० ४)। राम के साथ उल्लेख १।५५।४, १।२९७।७, २।१७।५, २।२१०, २।२५६, २।२६१।८, २।२६९।१, २।२७३।६, २।२७५।४, २।२९५।७, २।२९७, २।३१६।८, २।३२६।१, ७।३०।८। अन्य उल्लेख — (१।२५।५, १।२४०।१, १।२६०।६, १।२८९।४, १।२९२।४, १।३०४।२, १।३१०, १।३१२।२, २।१।श्लो०३, २।९।४, २।१००, २।२२२।३, २।२२५।६, २।२८१।३, २।३१२।६, ३।१।श्लो० २, ३।४।छं० ६, ३।७।८, ३।११।७, ४।१।श्लो०१ , ५।१।३, ५।२।४, ५।२९।१, ५।४२।७, ६।३६।११, ६।६०।१, ६।८६।६, ६।१११।छं० ६, ६।११७।८, ७।१।श्लो० २, ७।१।दोहा ३, ७।२।५, ७।१३।छं० १, ७।१६।६)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इनसे सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख (७।६६।६, ७।६७।१, ७।६७।४, ७।६७।६, ७।६८।३)।

(जहाँ एकाधिक सीता का उल्लेख और जातिवाचक रूप की प्रतीति, वहाँ वस्तुतः जातिवाचक प्रयोग नहीं, क्योंकि इनमें और राम में, बहुभवन — एक से अनेक होने की — शक्ति, काय-व्यूह-रचना का सामर्थ्य। अतः इनके और राम के सन्दर्भ-संकेतों में जाति० का उल्लेख नहीं।)

मूल शब्द — १।१।श्लो० ४, १।१।श्लो०५, १।१।१८, १।१।५२, १।५५।४, १।५५।५, १।५६।७, १।१४८।४, १।२२८।२, १।२२८।८, १।२३२।१, १।२३४।१, १।२३४।५, १।२४६।२, १।२६३।८, १।२६५।८, १।२७०।८, १।२९७।७, १।३०४।२, १।३२२।छं०, १।३२३।२, १।३२३।छं० २, २।१।श्लो० ३, २।५८।२, २।६६, २।७८, २।८७।१, २।११३।५, २।११४।१, २।१२३।५, २।१४१।८, २।१४१, २।२०५।२, २।२०८।४, २।२४२।६, २।२८०।३, २।३२०।१, २।३२०, ३।१।श्लो० २, ३।१।४, ३।१।७, ३।३।३, ३।५।१, ३।५ ख, ३।८, ३।१०।२०, ३।११।७, ३।१७।११, ३।१७।२०, ३।२१।२, ३।२१।३, ३।२४।४, ३।२७।३, ३।२७।९, ३।२८।२, ३।२८।५, ३।२८।१२, ३।२८।१४, ३।२९।६, ३।२९।९, ३।२९।१९, ३।२९।२३, ३।२९।२४, ३।२९।२६, ३।२९ ख, ३।३०।३, ३।३०।७, ३।३०।९, ३।३१, ३।३३।४, ४।१।श्लो० १, ४।४।४, ४।१८।१, ४।२१।८, ४।२३।२, ४।२३।११, ४।२५।५, ४।२६।४, ४।२६।९, ४।२८।९, ४।२८।१२, ४।३०।११, ४।३०।छं०, ५।१।३, ५।२।४, ५।८।६, ५।९।३, ५।१०।१, ५।१०।६, ५।१०।८, ५।१०, ५।११।२, ५।११।६, ५।११, ५।१२।७, ५।१२।१२, ५।१३।४, ५।१३।५, ५।१४।८, ५।१५।१, ५।१६।९, ५।२९।१, ५।३१।९, ५।३२।१, ५।३६।९, ५।३६।१०,

५।४०।८, ५।४०, ५।५२, ६।९।१०, ६।२०।५, ६।३०।५, ६।३४।९, ६।४८।७, ६।६२।९, ६।९९।१, ६।९९।२, ६।९९।३, ६।१०८।५, ६।१०८।११, ६।१०८।१४, ६।१०९।१, ६।१०९।३, ६।११९।९, ६।११९ क, ६।१२०।६, ६।१२० क, ६।१२१।८, ७।२।५, ७।६।२, ७।७, ७।२४।३, ७।२५।६, ७।६६।६, ७।६७।१, ७।६७।४, ७।६८।३। सीय — १।८।२, १।२५।५, १।३७।३, १।४१।१, १।९८।८, १।२२३।७, १।२२९, १।२३०।५, १।२३४।३, १।२३७।१, १।२३७।८, १।२४०।१, १।२४५।३, १।२४५, १।२४६, १।२४७, १।२४८।७, १।२४८, १।२४९।४, १।२५८।८, १।२६०, १।२६३।६, १।२६५।७, १।२६६।३, १।२६७।५, १।२६९।४, १।२८६।४, १।२९२।४, १।३०९, १।३१०, १।३१२।२, १।३२२।८, १।३२२, १।३२३।७, १।३२५।३, १।३२५।८, १।३२७।छं०२, १।३३४।३, १।३३८।५, १।३३९।३, १।३४९।४, १।३४९।५, १।३५३।३, १।३६१।७, २।७।४, २।११।५, २।४९, २।५७, २।५८।६, २।६८।१, २।७४।४, २।७५।४, २।७६, २।७८।३, २।७८।६, २।७९।१, २।८२, २।८३।२, २।९२।२, २।१०२।१, २।१०४।१, २।१०७।३, २।११२।२, २।११५।३, २।११६।४, २।११८।३, २।१२३।६, २।१३०, २।१४१।१, २।१४२।२, २।१७९।३, २।१८२।३, २।१९७।८, २।१९९।३, २।१९९।५, २।१९९, २।२२१।७, २।२२२।३, २।२२४।३, २।२२५।६, २।२२६।३, २।२३१।५, २।२३९।६, २।२३९, २।२४२।५, २।२४६।१, २।२४६।४, २।२४७।१, २।२४७।५, २।२५२।२, २।२५२।४, २।२५६।३, २।२६९।१, २।२८७।५, २।२८७।७, २।२९७, २।३०४।२, २।३१२।६, २।३२०।३, २।३२१, २।३२६। सीया — १।२४२।६, १।२४७।४, १।२६७।७, २।९६।७। सिय — १।१० ख, १।१६।३, १।३१, १।३२।४, १।४२।७, १।५४।५, १।९८।छं०, १।२१३, १।२२८।७, १।२२९।३, १।२२९।७, १।२३०।३, १।२३०, १।२३१, १।२३२।८, १।२३४।७, १।२३६।६, १।२३६।७, १।२३६।छं०, १।२३६, १।२३७।७, १।२३७, १।२३८।४, १।२४५।७, १।२४७।१, १।२४७।३, १।२४८।४, १।२४९।१, १।२५४।२, १।२५९।८, १।२६०।६, १।२६४।१, १।२६४।८, १।२६५।५, १।२६६।१, १।२६७।६, १।३०६।७, १।३०६, १।३०७।३, १।३१४, १।३१५।२, १।३२३।१, १।३२३।छं०२, १।३२४।छं० ४, १।३२६, १।३३६।छं०, १।३३६।छं०, १।३३९।२, १।३६१, २।९।४, २।१५।७, २।१७।५, २।५८।८, २।५९।५, २।५९।७, २।६०।४, २।६०।७, २।६४।१, २।६९।६, २।७३, २।७५।७, २।७५।छं०, २।७५।छं०, २।७६।२, २।७६।८, २।७८।५, २।८२।३, २।८२।८, २।८४।५, २।८५, २।८७।३, २।८९।१, २।८६, २।९१।२, २।९१।३, २।९१।८, २।९४।१, २।९४।८, २।९६।६, २।९६, २।९७।२, २।९९।३, २।९९।८, २।१०२।३, २।१०२, २।१०३।२, २।१०३।४, २।१०४, २।१०६।३, २।१०८, २।११०।२, २।१११।४, २।१११।८, २।११२।१, २।११४।३, २।११६।२, २।११७।२, २।११७।७, २।११७, २।१२१।६, २।१२२, २।१२३।२, २।१२३।७, २।१२३, २।१२४।१, २।१२४।३, २।१२५।४, २।१२६।५, २।१२८।३, २।१२८।८, २।१२९, २।१३२, २।१३४।८, २।१३७।४, २।१३९।५, २।१३९, २।१४०।१, २।१४०।४, २।१४०, २।१४१।२, २।१४१।६, २।१४२।१, २।१४२।७, २।१४६।८, २।१४९।५, २।१४९, २।१५०।२, २।१५०, २।१५२, २।१५४।८, २।१५९।८, २।१६४।३, २।१६६।२, २।१६६।४, २।१६६।५, २।१७१।८, २।१७७, २।१७८।३, २।१८०।३, २।१८१।६, २।१८२।६, २।१८७, २।१८८।२, २।१९८।७, २।२००।२, २।२०३।३, २।२०३, २।२०३, २।२१०।४, २।२१०, २।२११।८, २।२१६।६, २।२२६।६, २।२३३।३, २।३३३।६, २।२३३।८, २।२३७।७, २।२३७।८, २।२३७, २।२४२।३, २।२४३।१, २।२४६।३, २।२४६।६, २।२४६।८, २।२४६, २।२५१।छं०, २।२५२।३, २।२५२।५, २।२५६, २।२६१।८, २।२६२।४, २।२६२, २।२७७।२, २।२८०।२, २।२८१।३, २।२८१।७, २।८२, २।२८५, २।२८५, २।२८६।३, २।२८६।६, २।२८६।८, २।२८६, २।२८७।१, २।२८७, २।२९५।७, २।३१६।८, २।३१७।२, २।३१८, २।३२०।७, २।३२१।१, २।३२६।१, २।३२६।२, २।३२६।छं०।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द —

(१) सम्बन्धबोधक —

(क) व्यक्तिसम्बन्धी —

जनककुमारी — ५।३१।२।

जनकतनया — १।२३१।१।

जनकसुता — १।१८।७, १।२९६।३, २।८१, २।२४६।७, ३।२३, ३।३०।२, ३।३१।२, ३।३६।१०,

४।२२।७, ५।८।३, ५।११।८, ५।२६, ५।२७, ५।४२।७, ५।५७।७, ६।२०।८, ६।३०, ६।१०७।४, ६।१०८।२, ६।१०८।४, ६।१०९ ख, ७।१२।३, ७।३०।८।

जानकी — १।१८।७, १।११०।६, १।१२२।१, १।१२२।६, १।२३५।२, १।२४९।६, १।२५२।७, १।२६१।४, १।२७०, १।३१०।५, १।३२७।छं०३, १।३३८।१, १।३३८।६, २।५९।२, २।६०।६, २।६०, २।६९।३, २।९१, २।१००, २।११८, २।१२६।छं०, २।१३३, २।१५५।८, २।२७३।६, २।२८६।२, २।२८६।४, ३।६।१, ३।७।८, ३।११, ३।१८।११, ३।२९।१६, ३।३०।६, ३।३०।७, ३।३०।१४, ४।५।८, ५।८।४, ५।८, ५।९।८, ५।१३।९, ५।१६।२, ५।१७, ५।२२।१०, ५।३०।८, ५।३२।४, ५।३५।७, ६।६, ६।३६।११, ६।६०।१, ६।९९।११, ६।९९।छं०, ६।९९।छं०, ६।१००।४, ६।१०७।२, ६।१०७।५, ६।११२, ६।११५।छं०४, ६।११९ ख, ६।१२०।५, ७।१।श्लो० २, ७।११ का जानकि — १।३२५।छं० १, १।३५७।५, २।७३।४।

बिदेहकुमारी — १।२३०।८।

बैदेही — १।४९।५, १।२३६।४, १।२३८।३, १।२४७।६, १।२५०।४, १।२५७।४, १।२६१।१, १।२८९।४, १।३१०।१, १।३३८।२, १।३४५।४, २।६४।३, २।७४।२, २।९१।७, २।९७।४, २।१०३।५, २।१३१।४, २।१४३।७, २।१४६।४, २।१४८।८, २।१४९।३, २।१५५।२, २।१७५।५, २।२२४।५, २।२७५।४, २।२८०।४, २।२८६।१, ३।१२।८, ३।२७।५, ३।२९।४, ४।२।३, ५।५।७, ५।९।६, ५।१५।८, ५।३५।६, ५।३९।६, ५।५७।८, ६।४९।१, ६।८६।६, ६।९९।१३, ६।१००।२, ६।१०८।८, ६।१०९।६, ६।१२१।११, ७।७।१, ७।१६।६, ७।६७।६। बैदेहि — १।२५२।४, १।३६१।छं०, ६।११३।तोमर ८। बयदेही — ३।५।६।

मिथिलेस किसोरी — २।८२।२।

मिथिलेस कुमारी — ४।५।२।

मैथिली — ६।१०९।छं०१।

रघुबीर प्रिया — २।१०३।५।

रामप्रिया — २।१४०।

रामवल्लभा — १।१।श्लो०५।

रमा (लक्ष्मी भी) — ६।१०७।छं०, ६।१११।छं० ६, ७।११ ख, ७।२४।९।

श्री (लक्ष्मी भी) — १।५४।४, ३।७।३, ३।११।१८, ३।१३।१०, ३।१८।१२, ३।२६।छं०, ६।१०९।छं० २, ६।११७।८, ६।११९।४, ७।१।दोहा ३, ७।१२।छं० २, ७।२४।७।

(ख) स्थान सम्बन्धी —

अवनिकुमारी — २।६४।४।

धरनिसुता — २।२८६।

जगजननि (सती, पार्वती भी) — १।१८।७, २।१४०।

जगतजननि (पार्वती भी) — १।२८४।२।

जगदंबा (पार्वती भी) — १।२४६।२, ६।२०।५, ६।६२, ७।२४।९।

जगदंबिका (पार्वती भी) — १।२४७।१।

जगमूला — १।१४८।२।

(२) स्वरूपबोधक —

अंतरजामी (राम एवं शिव भी) — २।२५६।

आदिसक्ति — १।१४८।२, १।१५२।४। **शक्ति** — ३।४।छं० ६। सक्ति — ७।१३।छं० १।

माया (पार्वती भी) — १।१५२।४, २।१२६।छं०।

सीलनिधि (शीलनिधि) — हरिमाया-रचित नगर के माया-निर्मित राजा। ये रूप-तेज-बल-नीति-सम्पन्न। इनका माया-नगर वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर। वहाँ के नर-नारी मानो काम

और रति के ही साकार रूप। शत-शत इन्द्रों के सदृश इनका वैभव-विलास। साक्षात् हरि-माया इनकी विश्वमोहिनी नामक स्वयंवरा कन्या (१।१२९ - १।१३०।४-६)। नारद का इनके महल में आना। उनका पूजन कर, कन्या को बुलाकर उसके गुण-दोष-विचार करने की उनसे इनकी प्रार्थना (१।१३०।८ - १।१३०)। अपनी ओर से बनाकर इन्हें कन्या के कुछ लक्षण बताकर नारद का प्रस्थान (१।१३१।३-६)।

मूल शब्द — १।१३०।२।

सुक^{1} **(शुकदेव)** — महर्षि व्यास के ब्रह्मज्ञानी पुत्र।

[भा० में — ये योगी, समदर्शी, सर्वशास्त्र-विशारद, ज्ञान-महाब्धि-चन्द्रमा, संसार-निद्रा से जाग्रत, आत्मलाभ से पूर्ण, एकमात्र परमात्मा में स्थित। मा० ६।३३, ७८, १।४।४। सदा षोडशवर्षीय। श्यामवर्ण, प्रलम्बबाहु, सुकुमारांगी, वर्णाश्रम-चिह्न-रहित। दिगम्बर अवधूत वेश, देवोपम तेज। १।१९।२५-२८। लौकिक-वैदिक संस्कार होने से पूर्व ही इनका संन्यास के लिए गमन। मा० १।२, १।२।२। (अगस्त्य-शिष्यों को भा० का एक श्लोक गाते सुनकर इनका पिता के पास आना। मा० पी० १।१८।५ नोट २।) भगवान् के गुणों से आकर्षित हो भा० पढ़ना। १।७।८, ११। इनके द्वारा भा० का विस्तार। १२।१२।६८। कलियुग में जीवों के त्रास का आत्यन्तिक नाश करने के लिए उसका प्रवचन। भा० मा० १।११। अतः भा० का एक नाम 'शुक-शास्त्र'। मा० ३।२। कहीं भी इनके उपस्थित होने पर देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि आदि का इनके सम्मान में आसन छोड़ खड़े होना। मा० ६।७६, १।१९।२८। उन सबकी उपस्थिति में (उनमें व्यास भी) इनका परीक्षित को भा० सुनाना। (भा० ९।२१।२५ पाद० के अनुसार वन जाते समय ये एक छाया-शुक रचकर छोड़ गये। उस छाया-शुक द्वारा गृहस्थोचित व्यवहार।)

महा० में — मेरु पर्वत पर घृताची अप्सरा को देख अरणि-काष्ठ पर स्खलित व्यास के तेज से ये उत्पन्न। जन्मते ही यज्ञाग्नि की तरह तेजोद्दीप्त। मूर्त्तिमती गंगा का आकर इन्हें तृप्त करना। इनके लिए आकाश से दण्ड एवं कृष्ण मृगचर्म का गिरना। शिव द्वारा इनका उपनयन संस्कार। इन्द्र द्वारा कमण्डलु एवं देवोपम वस्त्र प्रदान। ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले इनका वहीं वास। रहस्य एवं संग्रहसहित सम्पूर्ण वेद इनकी सेवा में उपस्थित। वृहस्पति को गुरु बना, उनसे वेद-इतिहास-राजशास्त्र का अध्ययन कर, गुरु-दक्षिणा दे, इनका गृहगमन। ब्रह्मचर्य-पालन करते हुए उग्र तप। शा० ३२४।

ये आत्माराम। मोक्षधर्म-विशारद और ब्रह्मतेज-सम्पन्न होने पर पिता की आज्ञा से इनका जनक के पास जाना। उनसे मोक्ष-धर्म का उपदेश-ग्रहण करना। शा० ३२५, ३२६। नारद से परम कल्याण का उपदेश सुन, सूर्यलोक में जाकर सूर्य-तेज में प्रविष्ट होने का संकल्प कर, कैलास-शिखर पर गमन। शा० ३३१।५८-६५। वहाँ परम तत्त्व का साक्षात्कार। वायुरूप होकर आकाशमार्ग से इनकी ऊर्ध्वगति। शा० ३३२। ये लिंगरहित ब्रह्मपद में स्थित, ब्रह्मीभूत। शिव-अनुग्रह से व्यास को सदा इनकी छाया के दर्शन। शा० ३३३।

सू० सा० १।२२६ में — पार्वती को अमरत्व प्रदान करने के लिए गोपन एकान्त में शिव का उन्हें सहस्रनाम सुनाना। वहाँ उपस्थित एक शुक का सुन लेना। शिव उसे मारने के लिए उद्यत। उसका उड़ते हुए पलायन। व्यास-भार्या के खुले मुँह में देह त्यागकर प्रवेश। प्रभु-माया के भय से बारह वर्षों तक उनके गर्भ में वास। वहीं व्यास-कथित भागवत-श्रवण। प्रभु से माया के न व्यापने का वर पाकर गर्भ से बाहर आना। शुकदेव के नाम से प्रसिद्ध होना।]

विज्ञान-विशारद भक्त मुनिवर नारद, सनकादि के साथ इन्हें प्रणति और कृपा-याचना (१।१८।५-६)। नाम-प्रसाद से सनकादि के साथ इनके ब्रह्मसुख-भोगी होने का कथन (१।२६।२)। [शुकसंहिता के अनुसार रामनाम से परे अन्य कोई पदार्थ न होने का, शुक-शरीर में शंकर-मुख से रामनाम का प्रभाव सुनने के कारण साक्षात् ईश्वरस्वरूप समस्त मुनीश्वरों से अपने पूज्य होने का, इनका कथन। मा० पी० १।२६।२ नोट ५।] ये उन ब्रह्मतत्त्व-विचार-प्रवीणों में एक जिनके मत से राम-चरण-प्रेम काम्य (७।१२२।१२-१३)। रामकथा 'सुक सनकादि संभु मन भावनि' (७।१२३।५)।

मूल शब्द — १।१८।५, १।२६।२, ७।१२२।१२, ७।१२३।५।

सुक^{2} **(शुक)** — एक राक्षस। अर्थवेत्ताओं में श्रेष्ठ। रावण-दूत। वा० रा० ६।२०।८।

[पूर्वजन्म में यह वेदज्ञ, ब्रह्मवेत्ता, ब्राह्मण। इसके द्वारा देवताओं की वृद्धि और दैत्यों के नाश के लिए अनेक

यज्ञों का अनुष्ठान। वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस इसके अपकार के लिए उद्यत। एक दिन अगस्त्य मुनि के आने पर इसका उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रण। स्नान के लिए मुनि के जाने पर वज्रदंष्ट्र का अगस्त्य-वेश में आना, छाग-मांस खाने की इच्छा प्रकट करना। फिर वास्तविक अगस्त्य के आने पर राक्षस का शुक-स्त्री को मूर्च्छित कर, उसका रूप धर, नाना प्रकार से बनाया गया नरमांस परोसना। अभक्ष्य नरमांस देख मुनि का शुक को मनुष्यभोजी राक्षस होने का शाप। शुक से पूर्व-प्रसंग सुन, ध्यानस्थ हो सब जानकर, मुनि का अनुग्रह — राक्षस बन यह रावण का सहायक हो। राम के लंका आने पर रावण-दूत के रूप में राम के दर्शन से शाप-मुक्ति हो। रावण को तत्वज्ञान का उपदेश करने पर परमपद प्राप्त करे। अ० रा० ६।५।५-२२।]

विभीषण के राम-शरण में जाने पर रावण का शुक तथा अन्य दूतों को भेजना। वानरवेश धारण कर राम-चरित्र देख शुक आदि द्वारा उनके गुणों की मन-ही-मन सराहना। प्रेमवश अपना कपट-वेश भूलकर प्रकटरूप से राम-स्वभाव की बड़ाई करना। शत्रु-दूतों को पहचानकर, सबको बाँधकर, वानरों का सुग्रीव के पास लाना (५।५१।८ - ५।५२।२)। सुग्रीव के आदेश से वानरों द्वारा पीड़ित दूतों का कथन — इनके नाक-कान काटनेवाले को राम की सौगन्ध (५।५२।३-६)। दयावश लक्ष्मण का इन्हें छुड़ाना। उनकी 'पाती' और मौखिक सन्देश लेकर, राम-गुण-गाथा कहते हुए सबका प्रस्थान (५।५२।७ - ५।५३।१)। [वा० रा० तथा अ० रा० में शुक का अकेले ही आना। अ० रा० में आकाश में रहकर, वा० रा० में तोते के रूप में आकाश-स्थित होकर सुग्रीव को रावण-सन्देश सुनाना और उनका उत्तर पाना। वानरों का इसे दो बार पकड़कर पीड़ित करना। अन्ततः राम-अनुग्रह से मुक्ति। वा० रा० ६।२०।१३-३४, अ० रा० ६।३।४६-५८, ६।४।१३।] लंका पहुँचकर सबका रावण को नमन। राम-पक्ष के सम्बन्ध में शुक से रावण के प्रश्न (५।५३।२ - ५।५३)। इसका रावण को क्रोध त्यागने का परामर्श। वानरों के हाथों दूतों की दुर्दशा और फिर मुक्ति का कथन (५।५४।१-४)। इसका निवेदन — राम-सेना अवर्णनीय, असंख्य, अतुलित बलशाली, त्रिलोक-विजय में समर्थ, हनुमान् दूसरों की तुलना में नगण्य (५।५४।५ - ५।५५।२)। केवल वानर-सेनापतियों की संख्या ही अठारह पद्म, और उनमें एक भी ऐसा नहीं जो रावण को जीत न सके। संग्राम में करोड़ों काल को विजित करने में वे समर्थ। किन्तु रामाज्ञा के बिना क्रोध से विवश (५।५५।३ - ५।५५)। राम का तेज-बुद्धि-बल-वर्णन लाखों शेष के लिए भी अशक्य। विभीषण के परामर्श से केवल कृपावश वे सागर से राह माँग रहे हैं (५।५६।१-३)। रावण का इसे मूर्ख और इसकी रामपक्ष की बड़ाई को मिथ्या कहना, उपहास करना (५।५६।४-७)। सुनकर इसे क्रोध। रावण को लक्ष्मण की पत्रिका देना। पत्रिका का कथ्य सुन रावण मन में भीत। प्रकट रूप से उसे बाल-विलास कहकर उपहास (५।५६।८ - ५।५७।२)। इसका रावण को समझाना। क्रोध और वैर त्यागकर सर्वलोकस्वामी राम को सीता लौटाने का परामर्श (५।५७।३-७)। सुनते ही रावण का इस पर चरण-प्रहार। उसे नमन कर इसका राम के निकट जाना। उनसे अपनी कथा कहकर उनकी कृपा से स्वगति (मुनि-स्वरूप) - प्राप्ति (५।५७।८-१०)। शिव-कथन पार्वती से — यह ज्ञानी मुनि था। अगस्त्य-शाप से राक्षस हुआ। बार-बार राम-चरण-वन्दना कर यह (मुनि) अपने आश्रम में गया (५।५७।११-१२)।

मूल शब्द — ५।५३।३, ५।५७।३।

सुकल पच्छ (शुक्ल पक्ष) — चान्द्र मास के दो पक्षों में एक जिसमें चन्द्र-कला की वृद्धि। सुदी।

राम-जन्म इसी पक्ष में (१।१९१।१)। [अ० रा० १।३।१४, भु० रा० पूर्व १०।२ में भी।]

सुक्र (शुक्र) — दैत्यों के गुरु; योगाचार्य। महा० आदि ६६।४३। (शिव के शिश्न-मार्ग से बाहर निकलने के कारण इनका यह नाम। महा० शा० २८९।३२, प० पु० सृ० १३।३००।)

ब्रह्मा > भृगु ~ ख्याति (देवहूति-कर्दम-कन्या) > कवि > उशना (शुक्राचार्य) ~ ऊर्जस्वती (प्रियव्रत-बर्हिष्मती-पुत्री) > देवयानी। भा० ३।१२।२१, २२, ३।२४।२१, २३, ४।१।४३, ४५, ५।१।२४, ३४।

['कवि' इनकी उपाधि। आ० को०। महर्षि कवि के पुत्र होने के कारण भा० और महा० में अनेक स्थानों पर इनकी संज्ञा 'काव्य'। ये भगवान् की विभूति। गीता० १०।३७। भा० ११।१६।२८। देवासुर-संग्राम के समय दैत्यों द्वारा इनका पुरोहित-पद पर वरण। महा० आदि० ७६।६, भा० ७।५।१। वृहस्पति से इनकी स्पर्धा। महा० आदि० ७६।७। युद्ध में दैत्यों का निधन होने पर इनके द्वारा दुर्धर्षेश्वर महादेव के कठिन व्रत का पालन। उनसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त। प० पु० उ० १५३।२-४। सं० शि० पु० पृ० २८८-२९० में वाराणसी में शिवलिंग की

स्थापना कर इनका घोर तप। शिव से मृतसंजीवनी विद्या एवं आकाश में दीप्तिमान् तारारूप में स्थित होने का वर प्राप्त।

अन्य कल्प में असुरों की विजय के लिए इनकी तपस्या। उसी समय इन्द्र का अपनी कन्या जयन्ती को इन्हें प्रसन्न करने के लिए भेजना। सहस्र वर्षों तक जयन्ती द्वारा इनकी सेवा। तभी इन्हें महादेव से 'प्रजेशत्व, धनेशत्व, अवध्यत्व' की वरप्राप्ति। जयन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर, उनकी कामना समझ, इनका उसे अपने घर लाना। सबसे अदृश्य रहकर शतवर्षों तक उसके साथ सहवास।

इसी बीच वृहस्पति का इनके वेश में असुरों के पास जाना। उन्हें मोहित कर उनका पौरोहित्य करना। अपने रूप में वृहस्पति को देख इनका उनसे विवाद। असुरों को 'श्रीहीन, प्राणहीन, विपद्ग्रस्त, दुखी' होने का शाप देकर वहाँ से इनका प्रस्थान। प० पु० सृ० १३।२११-२१३, २१८-२२४, २५४-३०६। धर्मभ्रष्ट दानवों को इनका प्रबोधन। प० पु० सृ० १३।४१२।

वटु वामन भगवान् को भूमि-दान न करने का इनका बलि को आदेश। सत्य की रक्षा के लिए बलि द्वारा इनकी आज्ञा का उल्लंघन। उन्हें शीघ्र ही श्रीहीन हो जाने का इनका शाप। भा० ८।१६।२८-८।२०।१५।

पुत्री देवयानी की प्रसन्नता के लिए इनका दानवों द्वारा निहत कच को बार-बार जीवित करना। अन्त में उसे संजीवनी विद्या सिखाना। महा० आदि० ७६। इनका ययाति को बूढ़े होने का शाप। फिर शापानुग्रह — वे किसी दूसरे से यौवन लेकर उसे बुढ़ापा दे सकते हैं। महा० आदि० ८३।३१, ३६। दे० 'जजाति'। इनकी पुत्री अरजा के साथ राजा दण्ड का बलात्कार। उसे सम्पूर्ण राज्यसहित नष्ट हो जाने का इनका शाप। वा० रा० ७।८०।८१। दे० 'दंडक बन'।]

बुद्धिमत्ता और राजा के हितचिन्तन की दृष्टि से ये धर्मरुचि के उपमान (१।१५४।१)।

सुग्रीव — प्रसिद्ध रामभक्त। वाली के अनुज। प्रा० च० के अनुसार ऋक्षराज की ग्रीवा से उत्पन्न होने के कारण यह नाम।

[ये सूर्य एवं कन्यारूप ऋक्षराज के पुत्र। दे० 'बाली'। वा० रा० में — ये सूर्य के अंश से उत्पन्न। १।१७।१०। इनका वर्ण हेम-पिंगल। ४।१४।१०। इनकी पत्नी का नाम रुमा। ४।१८।१६। तारा इनकी अभिप्रेत। एक बार वाली को मृत समझ लेने पर, दूसरी बार वाली-वध के पश्चात्, इनका उन्हें पत्नी बनाना। ४।२६।४, ४।४६।६। राम के महाप्रयाण के समय ये भी उनके साथ जाने को प्रस्तुत। राम की स्वीकृति। ७।१०८।२२-२५। इनका सूर्य-मण्डल में प्रवेश। ७।११०।२१।]

विभीषणादि-सहित इनकी चरण-वन्दना (१।१८।१)। 'राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ।।' (१।२५।१)। (भ्रातृ-वधू को कुदृष्टि से देखने के) जिस पाप के कारण प्रभु द्वारा वाली का वध, उसी पाप के ये भी अपराधी, किन्तु प्रभु का इनकी कुचाल पर विचार न करना (क्योंकि ये भक्त। मा० पी० नोट १) (१।२६।६-७)। पम्पा-सर पर जाने पर इनसे भेंट होने का शबरी-कथन राम से (३।३६।११)।

(वाली के भय से) ऋष्यमूक पर्वत पर सचिवोंसहित इनका वास। राम-लक्ष्मण को उस ओर आते देख इन्हें आशंका कि कहीं वाली ने उन्हें न भेजा हो। उनके वाली-प्रेरित होने पर पर्वत त्यागकर पलायन करने का इनका निश्चय। हनुमान् को वटुरूप में वास्तविकता का पता लगाने के लिए भेजना (४।१।१-५)। हनुमान् का राम से इनकी सब कथा (वाली-द्वेष-प्रसंग, इनके ऋष्यमूक पर आकर रहने का कारण आदि) कहना। सीतान्वेषण के लिए इनसे मित्रता करने का उनसे आग्रह। दोनों भाइयों को पीठ पर बैठाकर इनके निकट लाना। इनका अपने जन्म को धन्य मानना। राम के चरणों में सादर नमन करना। सानुज राम का इन्हें गले से लगाना। दोनों पक्षों की सब कथा कहकर हनुमान् का दोनों में अग्नि-साक्षिक मैत्री स्थापित कराना (४।४।२ - ४।४)। लक्ष्मण से सब रामचरित सुनकर इनका आश्वासन कि जानकी मिल जायेंगी। [रामचरित — राम का जन्म, कर्म, प्रताप। हनुमान् ने सीता-सम्बन्धी कथा संक्षेप में कही थी। मा० पी० ४।५।१ नोट १ (ख)।] विकल जानकी के आकाशमार्ग से जाने का समाचार कहकर इनका राम को उनके द्वारा फेंके गये वस्त्र देना। सब प्रकार से सेवा करने का वचन देकर पुनः आश्वस्त करना (४।५।१-८)। राम का इनसे वन में रहने का कारण पूछना। इनके द्वारा मायावी-प्रसंग और उसके कारण वाली की शत्रुता का कथन (४।६।१-१३)। (दे० 'बाली'।) इनका दुःख सुनकर राम की प्रतिज्ञा — सुनु

सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।' मित्र-धर्म और कुमित्र-लक्षण का निरूपण कर इनकी सहायता करने का उनका वचन (४।६ - ४।७।१-१०)। इनका निवेदन— 'बालि महाबल अति रनधीरा।' यह कहकर इनका दुन्दुभि की अस्थियाँ और ताल के (सात) वृक्ष दिखाना। राम का उन्हें आसानी से ढहा देना। उनका अचिन्त्य पराक्रम देख उनके द्वारा वाली-वध का इन्हें विश्वास। (४।७।११-१३)। [वा० रा० में वाली का पुरुषार्थ कहकर इनका दुन्दुभि-प्रसंग सुनाना। दे० 'बाली'। दुन्दुभि की अस्थियों को राम के दूर फेंकने पर भी इनके मन में राम के सामर्थ्य पर सन्देह। इनका कथन — इस समय अस्थियाँ मांसहीन होने के कारण तृण-सी हल्की। श्रान्त वाली ने उस दैत्य के रक्तमांसयुक्त भारी शरीर को फेंका था। साल-वृक्ष विदीर्ण करने पर ही राम के बल के सम्बन्ध में इनका संशय मिटेगा। वा० रा० ४।११।८७-९०। ताल-वृक्ष या साल-वृक्ष-प्रसंग के लिए दे० 'बाली'।] प्रभु के प्रति इनके मन में अतिशय प्रीति। उनके चरणों में बार-बार नमन। ईश्वर बुद्धि से उन्हें पहचानना। इनका शोकापनोदन। बुद्धि स्थिर। ज्ञान का उदय। 'सुख संपति परिवार बड़ाई' से चित्त का हटना। शत्रु-मित्र, दुख-सुख आदि को मायाकृत मानना। वाली से वैर स्वप्नवत् प्रतीत होना। उनको परम हितकारी मानना, क्योंकि उनकी कृपा से प्रभु के दर्शन। [तात्पर्य कि प्रभु वाली-वध का विचार छोड़ दें।] प्रभु की 'सेवकाई' करने को ये उत्सुक। इनका आग्रह कि अब प्रभु ऐसी कृपा करें जिससे दिन-रात ये उनका भजन कर सकें (४।७।१३-२१)। [अ० रा० में भक्ति की याचना करते हुए इनकी विनती — त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी। त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ म त्वदंगसंगं लभतां मदंगम्।। त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं श्रृणोतु कर्णः। त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि।। अंगानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो। शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमस्त्वजस्रम्।। अ० रा० ४।१।६१-६३।] इनकी विरागयुक्त वाणी सुन (चंचलता देख। वि०) प्रभु का हँसना। उनके लिए (वाली-वध के) अपने प्रण को मिथ्या करना असम्भव (४।७।२२-२३)। उनका इन्हें साथ लेकर जाना। उनकी प्रेरणा से, उनके बल के भरोसे, (किष्किन्धा में) जाकर इनका गर्जन। क्रोधातुर वाली का इन्हें तृणसमान समझना। उनके वज्रसम मुष्टिकाघात से विकल हो भागकर इनका प्रभु के पास आना। कथन — 'बंधु न होइ मोर यह काला' (४।७।२५-२७, ४।८।१-४)। इन्हें आश्वस्त करते हुए प्रभु का कथन — ये दोनों भाई एकरूप, अतः वाली को न पहचान पाने के कारण उनका न मारना। उनके कर-स्पर्श से ये पीड़ामुक्त, इनकी देह कुलिस-सम। इनके कण्ठ में (पहचान और रक्षा के लिए। वि०) सुमन-माल पहनाकर, विशाल बल देकर, प्रभु का पुनः भेजना। दोनों का युद्ध। अनेक प्रकार के छल-बल के बावजूद इनका भयभीत हो मन में हारना। उसी समय (विटप की ओट से) प्रभु का वाली के हृदय में बाण मारना (४।८।५-४।८)। उनके आदेश से इनके द्वारा वाली का मृतक-कर्म सम्पन्न (४।११।८)। प्रभु-आज्ञा से लक्ष्मण का विप्रसमाज और नगरवासियों को बुलाकर इन्हें (किष्किन्धा का) राज्य और अंगद को युवराज-पद देना (४।११।६ - ४।११)। राम का इन्हें बुलाकर राजनीति समझाना। अंगदसहित राज्य करने के लिए कहकर स्मरण कराना — 'संतत हृदयँ धरेहु मम काजू।' इनका महल में लौटना (४।१२।६-१०)।

वर्षा के बाद शरद् ऋतु आ जाने पर राम का लक्ष्मण से कथन — राज्यकोष-पुर-नारी पाकर इन्होंने उनकी सुधि भुला दी। ये मूढ़। जिस बाण से उन्होंने वाली को मारा, उसी से वे इनको भी मारेंगे। इन्हें भय दिखाकर लाने के लिए उनका अनुज से कहना (४।१८।४-५, ८, ४।१८)। इधर हनुमान् का इन्हें साम-दाम-भेद-दण्ड की नीति कहकर समझाना। इनका कथन— 'बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।' एक पक्ष के भीतर वानर-यूथों को बुला लाने के लिए सब जगह दूतों को भेजने का हनुमान् को आदेश (४।१९।१-५)। क्रुद्ध लक्ष्मण के आने का समाचार सुन ये भय से व्याकुल। तारा को साथ ले जाकर विनयपूर्वक लक्ष्मण को समझा-बुझाकर शान्त करने के लिए हनुमान् से कहना (४।२०।२-३)। लक्ष्मण के महल में आने पर उनके चरणों में नमन करना। उनका इन्हें कण्ठ से लगाना। इनकी विनय सुन इन्हें समझाना। उनके पीछे-पीछे अंगदादिसहित इनका राम के पास जाना (४।२०।६ - ४।२०)। उनके चरणों में नमन कर इनकी करबद्ध विनती — सुर-नर-मुनि भी दिषयासक्ति से मुक्त नहीं, ये तो नीच पशु। प्रभु की कृपा बिना उनकी प्रबल माया से छूटना असम्भव। राम का इन्हें भरत-सम प्रिय कहकर सीतान्वेषण का उपाय करने के लिए कहना। इसी समय वानर-यूथों का आ पहुँचना (४।२१।१ - ४।२१)। इनका सबको समझाना — इनके अनुरोध से, राम-कार्य के लिए, वे चारों दिशाओं में जाकर सीता की खोज करें। एक मास के भीतर लौट आयें। जानकी का पता लगाये बिना अवधि बिताकर लौटनेवाला इनके हाथों मारा जायेगा (४।२२।५-८)। (उत्तर,

पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में जानेवाले) वानरों का प्रस्थान। तब इनका अंगद-हनुमदादि को बुलाकर दक्षिण दिशा में जाने का आदेश। मन-कर्म-वचन से स्वामी का कार्य पूर्ण करने का आग्रह। राम-चरणानुराग और राम-भजन का महत्व-कथन। इनकी आज्ञा ले, चरणों में सिर नवाकर वानरों का गमन। सबके अन्त में नमन करनेवाले हनुमान् को राम का निकट बुलाना (४।२२ - ४।२३।९)।

सागर-तट पर अंगद को सोच— सीता की सुधि नहीं, लौटने पर इनके हाथों मरण निश्चित। वाली-वध के बाद ही ये उन्हें मार डालते, पर राम ने रक्षा की (४।२६।४-६)।

अंगद द्वारा मधुवन के उजाड़े जाने का समाचार सुन इन्हें हर्ष, क्योंकि सीता की सुधि पाये बिना मधुवन के फल खाना उनके लिए सम्भव नहीं। इसी समय वानरों का आगमन, इन्हें नमन। इनका सबसे प्रेम से मिलना, कुशल पूछना। हनुमान् द्वारा कार्य सम्पन्न, यह सुनकर उनसे पुनः मिलना। कपियोंसहित राम के पास जाना (५।२८ - ५।२९।६)। रामाज्ञा से प्रयाण के लिए इनका यूथपति-समूहों को बुलाना (५।३४।६-७, ५।३४)।

कपियों का इन्हें विभीषण के आने का समाचार देना। इनका राम से निवेदन करना। परामर्श — सम्भवतः वे भेदिया। उन्हें बाँधकर रखना चाहिए (५।४३।३-७)। प्रभु द्वारा अपनी शरणागत-वत्सलता का कथन। विभीषण भीत शरणागत हो या भेदिया, उन्हें लाने का आदेश (५।४३।८ - ५।४४)। प्रभु का इनसे और विभीषण से सागर पार करने का उपाय पूछना (५।५०।५)। रावण-प्रेरित (शुक आदि) दूतों को बाँधकर कपियों का इनके पास लाना। उन्हें अंग-भंग कर लौटाने का इनका आदेश (५।५२।२-४)। शिवलिंग स्थापना का राम का संकल्प सुन इनका मुनियों को बुलाने के लिए दूतों को भेजना (६।२।४-५)। सुवेल पर्वत पर राम का इनकी गोद में सिर रखकर विश्राम (६।११।५)। शशि में श्यामलता के सम्बन्ध में प्रभु की जिज्ञासा पर इनका उसे पृथ्वी की छाया कहना (६।१२।४-५)।

ये राम के सचिवों में एक। उनके आदेश से विभीषण और जाम्बवान्-सहित इनका लंका के चारों विकट द्वारों को घेरने का मन्त्र निश्चित करना। वानर-सेना के चार विभाग कर उनके यथायोग्य सेनापति नियुक्त करना। सब यूथपतियों को बुलाना। प्रभु-प्रताप कहकर समझाना (६।३९।१-६)। राम-लक्ष्मण के साथ इनकी भी जय-जयकार-करते हुए रिक्ष-वानर-सेना का गर्जन (६।३९)। दूसरे दिन के युद्ध में राम-लक्ष्मण-हनुमदादि-सहित इनका नाम लेकर मेघनाद का ललकारना (६।५०।१-३)। युद्ध के तीसरे दिन इन्हें मूर्च्छित कर काँख में दबाकर कुम्भकर्ण का प्रस्थान (६।६५)। हनुमान् का इन्हें खोजना। इनकी मूर्च्छा छूटने पर इनका बन्धन-मुक्त होना (अर्थात् नीचे गिर जाना)। कुम्भकर्ण का इन्हें मृत समझना। दाँतों से उनके नाक-कान काट, गर्जन कर, इनका आकाश में गमन। तब इनके जीवित होने का उसे भान। इनके पैर पकड़ उसका धरती पर पछाड़ना। इनका लाघव से उठकर उसे मारना। प्रभु के पास आकर उनकी जयजयकार करना (६।६६।४-८)। (इनके द्वारा) नाक-कान काटे जाने से कुम्भकर्ण को ग्लानि और क्रोध (६।६६।९)। उससे युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होते समय राम का लक्ष्मण-विभीषण के साथ इन्हें सेना की सँभाल करने का आदेश (६।६७)। चौथे दिन मायामय रथ पर चढ़े मेघनाद की बाण-वर्षा से लक्ष्मण-विभीषण-सहित ये जर्जर (६।७३।९)। उसके वध के लिए जाते हुए लक्ष्मण के साथ सेनासहित रहने का इन्हें और विभीषण-जाम्बवान् को राम का आदेश (६।७५।१०)। छठे दिन राम-शरों से कटे रावण-शिरों का आकाशमार्ग में यह पुकारते हुए दौड़ना कि राम-लक्ष्मण-सुग्रीव कहाँ (६।९३।७-८)। सातवें दिन रावण की माया से सब वीरों के साथ ये और लक्ष्मण भी अचेत। (यहाँ तात्पर्य किंकर्तव्यविमूढ़। मा० पी०, प० प० प्र०) (६।१०१।तोमर ५)।

प्रभु की आज्ञा से लक्ष्मण-हनुमदादि के साथ इनका भी (लंका में) जाना। विभीषण का राजतिलक कर लौटना (६।१०६।२-७)। अन्य वानर-भालुओं के विदा हो चले जाने पर विभीषण-हनुमदादि-सहित इनका सजल नेत्रों से निर्वाक् निर्निमेष प्रभु की ओर देखना। अतिशय प्रीति देखकर प्रभु का इन सबको विमान पर चढ़ाना (६।११८ ख - ६।११९।१)। इन्हें और अंगद-विभीषण को सम्बोधित करके प्रभु का (विमान पर से) अयोध्यानगरी दिखाना। उसकी महिमा बताना (७।४।२-७)। विभीषणादि-सहित ये भी अयोध्या में मनुष्यरूप में उपस्थित। रामाज्ञा से सबकी वसिष्ठ के चरणों में प्रणति। कौसल्या के चरणों में नमन। उनसे आशिष-प्राप्त (७।८।१ - ७।८ क)। राम के सेवकों का सुग्रीवादि को स्नान कराना (७।११।३)। विदा करते समय (वि० के मत से) राम का इन्हें वस्त्राभूषण

पहनाना (मा० पी० के अनुसार भरत का।) (७।१७।६)। इनके चलते समय हनुमान् की इनके चरण पकड़कर विनती। इनका उन्हें पुण्यपुंज कहना (७।१९।७-९)।

'तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ' — रावण-कथन अंगद से (६।२३।३)। (राम-पक्ष का बल-प्रदर्शन करने के लिए) अंगद का हनुमान् को इनका 'लघु धावन' बताना (६।२३।९, ६।२३ क)। प्रमुख वानर-वीरों का नामोल्लेख करके शुक का उन्हें इनके समान बलशाली कहना (५।५४ - ५।५५।१)। इनके सम्बन्ध में कथन या उल्लेख — शिव द्वारा (४।१२।३-४), तारा द्वारा (४।७।२८), वाली द्वारा (४।९।६), राम द्वारा (४।९।१०), भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में (७।६६ क, ७।६७।१)। अन्य उल्लेख (६।९८।३)।

मूल शब्द — ३।३६।११, ४।४।२, ४।४।६, ४।५।२, ४।५।७, ४।५, ४।६, ४।७।११, ४।७।२५, ४।७।२६, ४।८।१, ४।८।३, ४।८।६, ४।८, ४।९।६, ४।११।८, ४।११।९, ४।११, ४।१२।४, ४।१२।६, ४।१२।७, ४।१२।१०, ४।१८।४, ४।१८, ४।१९।१, ४।१९।३, ४।२०, ४।२२।५, ४।२२, ५।२८, ५।२९।६, ५।४३।४, ५।५२।३, ५।५२।४, ५।५५।१, ६।१२।५, ६।२३।३, ६।२३।९, ६।२३ क, ६।३९, ६।६५, ६।६६।४, ६।६६।५, ६।६७, ६।७३।९, ६।७५।१०, ६।९३।८, ७।११।३ (सुग्रीवादि), ७।१७।६, ७।१९।७, ७।६६ क। सुग्रीवा — ४।१।२, ४।७।२८, ६।५०।२।

पर्याय — **कपिपति** — ३।१८।१, ४।४।१, ५।३४।६, ५।३४, ६।११८ ख, ७।६७।१।

कपिराई (हनुमान् के लिए कपिराइ) — ४।२६।४।

कपिराऊ — ४।१२।४। कपिराज — ६।६५।

कपीस — ४।२०।२, ४।२०।६, ५।४३।३, ५।४३।५, ५।५०।५, ५।५२।२, ६।२।५, ६।११।५, ६।३९।३, ६।३९, ६।१०१।तोमर ५, ६।१०६।२, ७।४।२, ७।८।१। कपीसा (हनुमान् भी) — ७।४।१४, ५।२९।३, ५।४४।६, ६।९३।८।

बानरराज — ६।९८।३।

सुकंठ — १।२५।१, १।२९।६।

सुतीछन (सुतीक्ष्ण) — अगस्त्य ऋषि के शिष्य। (कामादि विकार तथा संसार से क्रूर, ज्ञान एवं भक्ति में सुन्दर तीक्ष्ण कुशाग्र बुद्धिवाले। मा० पी० ३।१०।१, टिप्पणी १।)

ये सुजान। मन, कर्म, वचन से राम के अनन्य सेवक (३।१०।१-२)। [शरभंग की तरह इनका भी ब्रह्मलोक न जाकर अब तक प्रभु-आगमन की प्रतीक्षा करना। वा० रा० ३।७।९-१०।] रामागमन सुन प्रेमविभोर हो इनका दौड़ना। मन में मनोरथ, विचार – प्रभु क्या दया करके अनुज-सहित इनसे 'निज सेवक' की भाँति मिलेंगे? अपनी दृष्टि में ये तो शठ। भक्ति-ज्ञान-वैराग्य, जप-यज्ञ-योग-सत्संग से रहित। प्रभु-पद-कमल में दृढ़ अनुराग भी नहीं। इन्हें भरोसा केवल राम के कारुणिक स्वभाव का। राम को अनन्यगतिक प्रिय और इनके लिए राम को छोड़ अन्य गति नहीं। अतः प्रभु-दर्शन से नेत्रों के सफल होने का विश्वास (३।१०।३-९)। ये ज्ञानी। [योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता। वि०।) फिर भी पूर्ण प्रेम में निमग्न। इनकी दशा अवर्णनीय। दिशा, विदिशा, पथ का ज्ञान लुप्त। आत्म-विस्मरण। कभी आगे, कभी पीछे जाना, कभी प्रभु-गुण-गान करते हुए नृत्य करना। इन्हें अविरल प्रेमभक्ति की प्राप्ति। [भा० में प्रेमभक्ति का लक्षण— वाग् गदगदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।। – कृष्ण-कथन उद्धव से। भा० ११।१४।२४।] छिपकर तरु की ओट से प्रभु का इनकी प्रेमदशा देखना (३।१०।१०-१३)। इनके हृदय में प्रकट होना (द्विभुज भूपरूप में; यह माधुर्य मूर्त्ति)। इनका मार्ग में अचल होकर बैठ जाना। शरीर में पुलक। इनकी यह दशा राम को प्रिय। इन्हें समाधि से जाग्रतावस्था में लाने की प्रभु की चेष्टा, किन्तु ये उनके ध्यान-सुख में मग्न। तब अपने द्विभुज भूपरूप को अन्तर्धान कर प्रभु का चतुर्भुज रूप (ऐश्वर्य रूप) प्रकट करना जिससे ये मणिहीन सर्प की भाँति विकल (३।१०।१४-१९)। समाधि-भंग। सामने सीता और अनुजसहित राम के दर्शन। प्रेममग्न हो लकुट की भाँति प्रभु-चरणों में गिरना। इन्हें भुजाओं से पकड़कर प्रभु का प्रेमपूर्वक हृदय से लगाना। 'कनक तरुहि जनु भेंट तमाला'। चित्रलिखित की भाँति इनका राम-मुख-दर्शन। धैर्य धारण कर, बार-बार चरण पकड़, प्रभु को अपने आश्रम में लाकर, उनका पूजन (३।१०।२० - ३।१०)। उनकी स्तुति और प्रार्थना – सीता-लक्ष्मण-सहित प्रभु

वनवासीरूप में, कोसलपति के रूप में, इनके हृदय में निवास करें। 'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।' (३।११।१-२१)। सुनकर हर्षित राम का इन्हें पुनः हृदय से लगाना। प्रभु के वर-याचना के लिए कहने पर कथन – इन्होंने कभी वर नहीं माँगा। झूठ-सच का इन्हें परिज्ञान नहीं। प्रभु को जो रुचे वही वर दें। प्रभु से अविरल भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, सकल गुण-निधानता, ज्ञान-निधानता प्राप्त कर इनकी अभीप्सित वर-याचना– धनुर्धररूप में प्रभु सिय-लक्ष्मण सहित इनके हृदय में स्थिररूप से निवास करें (३।११।२२-३।११)। राम को अगस्त्य मुनि के पास जाते देख इनका कथन – इन्हें इस आश्रम में आये और गुरु-दर्शन किये अनेक दिन व्यतीत। अतः प्रभु के साथ ही अब गुरु के पास जायेंगे। [अहमप्यागमिष्यामि चिराद् दृष्टो महामुनिः।। अ० रा० ३।२।४०।] इसे प्रभु अपने ऊपर इनका एहसान न समझें (३।१२।१-३)। इनकी चतुरता देख दोनों भाइयों का हँसना। (यह समझकर कि ये प्रभु को ही गुरु-दक्षिणारूप में देना चाहते हैं। मा० पी० ३।१२।३ टिप्पणी ३, वि०।) प्रभु के साथ अगस्त्याश्रम पर पहुँचकर गुरु को सिय-लक्ष्मण-सहित राम के आगमन की सूचना देना (३।१२।४-८)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इनका प्रभु-प्रीति-वर्णन (७।६५)। [अ० रा० ३।३।१-२ में अगस्त्य के छोटे भाई (अग्निजिह्व) के आश्रम में एक रात रुककर दूसरे दिन अगस्त्याश्रम की ओर जाना। वा० रा० में – राम के आने पर इनका उन्हें हृदय से लगाना। कुछ काल तक प्रभु का इनके आश्रम में रहना। उनके पूछने पर अगस्त्याश्रम का मार्ग बताना। मार्ग में अगस्त्य-भ्राता के आश्रम में एक दिन ठहरने का परामर्श (३।७।७, ३।११।२६, ३७, ४०, ४१।]

मूल शब्द – ३।१०।१, ३।१२।६, ७।६५।

सुधा – अजर-अमर बनानेवाला एक पेय, 'यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत्। भा० ८।६।२१।

[इसकी प्राप्ति के लिए क्षीरसागर-मन्थन। दे० 'छीरसागर'। देवताओं को पराजित करने के बाद इसकी रक्षा के लिए इन्द्र का इसे 'किरीटिन्' को सौंपना। महा० आदि० १६।३१। गरुड़ द्वारा स्वर्ग से इसका हरण। इन्द्र का इसे पुनः ले जाना। दे० 'गरुड़'।]

(यहाँ केवल समुद्र-मन्थन से निकले अमृत के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों का ग्रहण।)

'सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।' (१।५।६)। भवसागर से 'संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी' (१।१४ च)। राम के नाम-प्रभाव से 'कालकूट फलु दीन्ह अमी को' (१।१६।८)। 'जौं छबि सुधा पयोनिधि होई' (१।२४७।७)। 'पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरत पयोधि गँभीर' (२।२३८)। सन्तों द्वारा वेदसिन्धु का ज्ञान से मन्थन। रामकथा-रूप अमृत की प्राप्ति। भक्ति ही इस अमृत की मधुरता (७।१२० क)। 'ब्रह्माम्बोधिसमुद्भवं···श्रीरामनामामृतम्' (४।१।श्लो०२)। राम के कहने पर इन्द्र द्वारा लंका की युद्धभूमि पर इसका वर्षण। कपि-भालुओं का जी उठना। राक्षसों का जीवित न होना, क्योंकि (वैर-भाव से राम का स्मरण करने के कारण) उनका मन रामाकार, अतः उन्हें ब्रह्मपद-प्राप्ति। (मुक्त हुए को जिलाने की शक्ति इसमें नहीं।) केवल वानरों के जीवित होने का एक और कारण रामेच्छा (६।११४।१-२, ५-८)।

मूल शब्द – १।५।६, १।१४ च, १।२४७।७, ६।११४।५, ६।११४।६, ७।१२० क।

पर्याय – **अमृत** – ४।१।श्लो०२। अमिअ (अमिय = अमृत) – २।२३८। अमी– १।१६।८।

सुनयना – जनक की पट्टमहिषी। सीता की माता। [वा० रा०, अ० रा० एवं महा० में इनका उल्लेख नहीं। वि० १।२४२।४ व्या० के अनुसार कालिका पुराण में जनक की चार रानियाँ होने का कथन। उनमें ये प्रधान।]

ये जग-विख्यात। सब सुयश, सुकृत, सुख, सुन्दरता को समेटकर ब्रह्मा द्वारा इनकी रचना। इनका वर्णन कठिन (१।३२४।१-२)। (सीता-स्वयंवर में) राम को देख अन्य रानियोंसहित इनके मन में ऐसा प्रेम-भाव जैसा शिशु के प्रति (१।२४२।३)। राम को धनुष तोड़ने के लिए जाते देख प्रेमवश दुखी होकर इनका कथन – इनके हितेच्छु कहलानेवाले भी तमाशबीन। कोई विश्वामित्र को यह नहीं समझाता कि राम 'अभी बालक। सबका गर्व चूर्ण करने वाला शिवधनु उनके हाथ में देना उचित नहीं। 'बाल मराल कि मंदर लेहीं'। राजा (जनक) की बुद्धिमत्ता भी समाप्त (१।२५५ - १।२५६।५)। 'भजंब धनुषु राम सुनु रानी'– सखी के ये वचन सुन इनके मन में विश्वास। इनका विषाद लुप्त। प्रीति का बढ़ना (१।२५६।६ -१।२५७।३)। परशुराम कां क्रोध और जनक का संकट देख इनके मन में पछतावा। बनी हुई बात बिगड़ने की आशंका (१।२७०।७)।

सब रानियोंसहित इनका सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिए मंगल-साज सजाना (१।३१७।छं०)। राम का वरवेश देखकर इन्हें अवर्णनीय सुख। मंगल का अवसर जान, नयनाश्रु रोक, प्रसन्न मन से अन्य रानियों के साथ परछन करना। वेद और कुल-रीति के अनुसार व्यवहार करना। (मण्डप के पास राम के पहुँचने पर) आरती करके अर्घ्य देना (१।३१८ - १।३१९।४)। जनक के वामभाग में ये उसी तरह शोभित जिस तरह हिमालय के साथ मेना (१।३२४।३-४)। इनका राम के पद-प्रक्षालन के लिए उनके आगे मणि के कोपर (पात्र) रखना। वर को देख जनकसहित प्रेममग्न होकर उनके पद-प्रक्षालन करना। पाणि-ग्रहण होने पर सुख-मूल राम को देख इनके शरीर में पुलक, हृदय उल्लसित (१।३२४।५-१।३२४।छं० ३)। कोहबर के हास-विलास में सब रानियोंसहित ये आनन्दमग्न (१।३२७।छं०२)। (महल में विदा होने के लिए आये) चारों भाइयों को देख हर्षित। प्रसन्न मन से निछावर और आरती करना (१।३३५)। राम की छवि देख संकोच त्याग अत्यन्त अनुरक्त। प्रेम-विवश हो बार-बार चरणों में गिरना। भाइयोंसहित उन्हें उबटन-स्नान-भोजन कराना। उनके विदा होने की बात सुन ये रानियोंसहित उदास। पहले तीनों कन्याओं को हृदय से लगाकर विनयपूर्वक उनके पतियों को सौंपना। फिर राम को सीता समर्पित करके इनके द्वारा उनकी विनती। राम के चरण पकड़ना। 'प्रेम पंक जनु गिरा समानी'। राम का इन्हें अनेक प्रकार से समझाना। आशीर्वाद पाकर विदा होना (१।३३६।१ - १।३३७।४) राम की मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सब रानियोंसहित ये स्नेह-शिथिल। धैर्य धारण करके, कन्याओं को बुलाकर, उन्हें हृदय से लगाना। फिर उन्हें लौटाना। उनसे पुनः मिलना। सखियों का कन्याओं को माताओं से अलग करना (१।३३७।५-१।३३७)।

चित्रकूट में दासी से यह समाचार पाकर कि कौसल्यादि को अवकाश, इनका अन्य रानियों के साथ जाना (दशरथ की मृत्यु पर समवेदना-प्रकाश करने)। कौसल्या द्वारा इन सबका सम्मान (२।२८१।२-४)। दोनों पक्ष की रानियों में अत्यधिक शील-स्नेह। सब शोकमग्न (२।२८१।५-७)। इनका कथन – ब्रह्मा की बुद्धि वक्र। उनका दूध के फेन को वज्र की टांकी से फोड़ना (अर्थात् भरत के राज्य पाने की याचना राम-वनवास के साथ)। 'सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल…' (२।२८१।८-२।२८१)। विधि पर आक्षेप करके सुमित्रा द्वारा इनका अनुमोदन। कौसल्या की ज्ञानभरी उक्ति सुनकर इनका कथन कि उनकी वाणी सत्य (२।२८२।१-८)। भरत की सराहना करके कौसल्या द्वारा इनकी प्रशंसा – ये विवेकनिधि-वल्लभा। इन्हें (धैर्य धारण करने का) उपदेश कौन दे! इनसे उनका निवेदन – ये अवसर देखकर अपनी ओर से जनक को समझाकर कहें कि लक्ष्मण के स्थान पर भरत वन जायें (२।२८२-२।२८४।४)। उनकी सरल वाणी सुन सब रानियाँ करुण-रस-मग्न। सुमित्रा के संकेत करने पर कौसल्या का पुनः निवेदन – ये अब शीघ्र लौटें। उन्हें तो अब ईश्वर का भरोसा या मिथिलाधीश का। सुनकर इनका कौसल्या के चरण पकड़ना। कथन – ऐसी विनय उनके अनुरूप। उनके वास्तविक सहायक तो महेश-भवानी। महाराज (जनक) मनसा वाचा कर्मणा सेवक। (वि० के अनुसार रामतापनीयोपनिषद् में) याज्ञवल्क्य का यह कथन सत्य कि राम वन जाकर देवकार्य करके अयोध्या का अचल राज्य करेंगे। यह कहकर, कौसल्या के पैरों पड़कर सीता को साथ ले जाने के लिए इनकी विनती। अनुमति पाकर सीता के साथ लौटना (२।२८४।५ - २।२८५)।

जनक का और इनका सीता को हृदय से लगाना। शिक्षा और आशीर्वाद देना। सीता का मनोभाव समझकर इनके द्वारा मन-ही-मन उनके शील-स्वभाव की प्रशंसा। जनक को सूचित करना। बार-बार मिलकर सीता को विदा करना (२।२८७।६-२।२८७)। सुअवसर देखकर जनक से भरत-गति का निवेदन करना। प्रेमपूर्वक राम-भरत के गुणों का कथन करते हुए इन दोनों का रात्रि व्यतीत करना (२।२८८।१-२।२९०।१)। जनक-समाज की बिदाई के समय राम-लक्ष्मण का इनसे मिलना, उसके बाद सीता का (२।३१९।५, २।३२०।१)।

मूल शब्द – १।३२४।४।

पर्याय – **जनक पाटमहिषी** – १।३२४।१।

जनकप्रिया – २।२८५।१।

बिबेकनिधि बल्लभा – २।२८३।

मिथिलेसि – २।२८३।

सीता मातु – १।२५५। सियमातु – १।३१८, २।२८५। सीय मातु – १।३२४।१, २।२८१।२, २।२८१।८, २।२८२।८।

सीय महतारी – १।२७०।७।

सुन्दरकाण्ड – मानस का पंचम काण्ड। दोहा-संख्या ०। इस काण्ड में प्रधानतः त्रिकूट पर्वत के उस 'सुन्दर' नामक शिखर से सम्बन्धित कथा, जिस पर अशोक वाटिका स्थित। अतः यह नाम। मानस-सरोवर के रूपक में विविध काण्डों की तुलसीदास द्वारा सोपानों के रूप में कल्पना। तदनुकूल यह काण्ड 'ज्ञानसम्पादन' अथवा 'विमल ज्ञान सम्पादन' नामक पंचम सोपान। भक्तों की मान्यता – मानस के सप्तकाण्ड सात मोक्षदायिनी पुरियाँ जिनमें यह काण्ड कांचीपुरी (कांजिवरम्)। दे० 'रामचरितमानस' '(२) मानस-सर का स्वरूप (ख)'।

मंगलाचरण – राम-वन्दना, निर्भरा भक्ति की याचना। वातजात हनुमान् की वन्दना (५।१।श्लो०१ ५।१।श्लो०३)। जामवन्त के वचनों से हनुमान् की प्रसन्नता। सबको प्रणाम कर हनुमान् का कूदकर एक सुन्दर पर्वत पर चढ़ना। बार-बार राम-स्मरण कर छलाँग मारना। मैनाक का सम्मान। देव-प्रेरित सुरसा द्वारा हनुमान्-परीक्षा, आशीर्वाद। हनुमान् द्वारा छायाग्रासिनी सिंहिका का वध। सागर-पार जा वन-शोभा निहारना। एक पर्वत पर चढ़ लंका-दुर्ग-निरीक्षण। लंका-वर्णन (५।१।१ - ५।३)। रात को मशक-सदृश सूक्षक रूप धर लंका-प्रवेश। लंकिनी की बाधा। हनुमान् का मुष्टिका-प्रहार। लंकिनी का ब्रह्मा की भविष्यवाणी कहना। रावण के महल तथा अन्य भवनों में सीता की खोज। विप्रवेश में विभीषण से भेंट। हनुमान्-विभीषण-संवाद। विभीषण का सीता-दर्शन की युक्ति बताना। पुनः मशक समान हो हनुमान् का अशोक-वन-गमन। सीता-दर्शन, मानसिक प्रणाम। सीता की दशा देख दुःख। तरु-पल्लवों में छिपे रहना। नारियोंसहित रावण का आगमन। रावण-सीता-संवाद। रावण की धमकी, प्रस्थान। उसकी आज्ञा से पिशाचिनियों का सीता को त्रास देना। त्रिजटा का स्वप्न और फल सुन सबको भय। सबका जानकी के पैर पकड़ना। गमन। विरहाकुल सीता का चिता बनाने के लिए त्रिजटा से अनुरोध। समझाकर त्रिजटा का प्रस्थान। हनुमान् का रामनामांकित मुद्रिका डालना। मुद्रिका देख सीता का हर्ष-विषाद। हनुमान् द्वारा रामगुण-गान। उनका प्रकट होना। सीता का विस्मय। हनुमान् का नर-वानर-संग होने की कथा सुनाना। सीता-हनुमान्-संवाद। हनुमान् से राम का सन्देश सुन सीता की प्रेममग्नता। उनका सन्देह दूर करने के लिए हनुमान का कनक-भूधराकार-रूप प्रकट करना। विनय। सीता को सन्तोष। उनका आशीर्वाद। फल खाने की अनुमति (५।४।१ - ५।१७)।

बाग में प्रवेश कर हनुमान् का फल खाना, वाटिका उजाड़ना, रक्षकों को मारना। रावण के यहाँ पुकार। और भटों का आना, हनुमान् का मारना। अक्षयकुमार-वध। मेघनाद के साथ महाभटों का आगमन। युद्ध। हनुमान् के मुष्टिका-प्रहार से मेघनाद को मूर्च्छा। उसका माया रचना। ब्रह्मशर चलाना। मूर्च्छित हनुमान् को नागपाश से बाँध ले जाना (५।१८।१ - ५।२०।४)। हनुमान् को देखने के लिए राक्षसों का रावण की सभा में आना। रावण के प्रश्न और हनुमान् के उत्तर। हनुमान् का उपदेश। खिसियाकर रावण का उनके वध की आज्ञा देना। दूत अवध्य, अतः और कोई दण्ड देने की विभीषण की बिनती। पूँछ जलाने की आज्ञा। पूँछ में आग लगाया जाना। लघुरूप धर बन्धनमुक्त हो हनुमान् का लंका जलाना। सागर में कूद पूँछ बुझाकर विश्राम। सीता के पास जाना। चिह्नस्वरूप चूड़ामणि पाना। सीता का सन्देश, व्याकुलता। उन्हें धीरज बँधाकर हनुमान् का प्रस्थान (५।२०।५ - ५।२७)।

समुद्र लाँघकर इस पार आना। सब वानरों की प्रसन्नता। राम के पास जाते हुए मार्ग में मधुवन के फल खाना। वर्जन करनेवाले रक्षकों को मारना। सबका सुग्रीव के पास आना। सुग्रीव का हर्ष। सबका राम के पास आ चरणों पर गिरना। राम का कुशल-प्रश्न। जामवन्त का निवेदन – पवनतनय के चरित सुनाना। राम के पूछने पर हनुमान् का सीता की दशा और सन्देश कहना। हनुमान् के प्रति राम का कृतज्ञता-ज्ञापन, अनुग्रह। 'त्राहि त्राहि भगवंत' कह प्रेमाकुल हनुमान् का उनके चरणों पर गिरना। लंका-दहन की विधि पूछने पर उसे राम-प्रताप का प्रभाव बताकर हनुमान् का अनपायिनी भक्ति माँगना। राम का वरदान (५।२८।१ - ५।३४।२)। सुग्रीव को यात्रा की तैयारी करने की आज्ञा। सुग्रीव का सेनापतियों के समूह बुलाना। राम की कृपा-दृष्टि से वानरों का बली होना। प्रस्थान। शुभ शकुन। सीता को शकुन, रावण को अपशकुन। वानर-सेना वर्णन। सागर-तीर पहुँचना (५।३४।६ - ५।३५)।

लंका-दहन के बाद से निशाचरों को भय। यह समाचार सुन मन्दोदरी की व्याकुलता। एकान्त में उसका रावण को समझाना। रावण का हँसना, अभिमान प्रदर्शन। सभा में जाना। राम-सेना के सागर-तट पर पहुँचने का समाचार सुन मन्त्रियों से सलाह। उनकी चाटुकारितापूर्ण बातें। विभीषण का पुलस्त्य-सन्देश सुनाना। माल्यवान् का अनुमोदन।

दोनों को निकाल देने की रावणाज्ञा। माल्यवान् का प्रस्थान। विभीषण की पुनः विनती और रावण का चरण-प्रहार। विभीषण का पैर पकड़ना, विनय करना और अपने मन्त्रियोंसहित आकाश में जाकर चेतावनी देना। रघुवीर-शरण के लिए प्रस्थान। उनका मनोरथ (५।३६।१ - ५।४२)।

विभीषण का सिन्धु-पार आगमन। उन्हें रिपु-दूत समझ वहीं रोक वानरों का सुग्रीव के पास आना। विभीषण-राम-संवाद। राम की शरणागत-वत्सलता, प्रभाव – 'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।' शत्रु हो या मित्र, लाने का आदेश। 'त्राहि त्राहि आरति हरन' कह विभीषण का प्रभु को दण्डवत्। प्रभु का उन्हें हृदय से लगाना, पास बैठाना। राम-विभीषण-संवाद। राम का स्वभाव-कथन। विभीषण का शिवमनभावनी भक्ति माँगना और पाना। राम द्वारा उनका अभिषेक। राम का सुग्रीव-विभीषण से सागर पार करने का उपाय पूछना। विभीषण की सागर से विनय करने की सलाह। लक्ष्मण को यह अप्रिय। उन्हें समझाकर राम का सागर-तट पर कुश बिछाकर बैठना (५।४३।१ - ५।५१।७)। विभीषण के पीछे रावण का दूत (शुक सारण) भेजना। कपि-वेश धर सब चरित्र देख उनका मग्न होना। कपट भूल प्रकट वेश में राम-स्वभाव का बखान करना। उन्हें पहचान वानरों का सुग्रीव के पास लाना। अंगभंग करने की सुग्रीव की आज्ञा। दूतों का कोशलाधीश की शपथ दिलाना। दया कर लक्ष्मण का उन्हें छुड़ाना। रावण के लिए पत्र और मौखिक सन्देश देना। शुक सारण का रावण के पास जाना। रावण के प्रश्न और शुक के उत्तर। विभीषण की सलाह पर सागर से मार्ग माँगने की बात पर रावण का उपहास। दूत का पत्र देना। उसे पढ़वाकर रावण के मन में भय, पर बाह्य रूप से हँसी उड़ाना। शुक का विनीत प्रबोधन। रावण का पद-प्रहार। चरणों में सिर नवाकर शुक का राम-शरण में जाना। अपनी कथा सुनाकर स्व-गति पाना (५।५१।८ - ५।५७।१२)।

तीन दिन बीत जाने पर भी सागर का विनय न मानना। राम का क्रोध। लक्ष्मण से धनुष-बाण माँगकर उनका शर-संधान। उदधि के अन्तर में ज्वाला। जन्तुओं का जलना, व्याकुलता। विप्र-वेश में सागर की शरणागति। चरण पकड़ क्षमा-याचना। राम का कपि-कटक को पार उतारने का उपाय पूछना। नल-नील के वरदान का प्रसंग कहकर सागर का पार उतरने का उपाय बताना। सागर के उत्तर तटवासी दुष्टों को उस बाण से मारने की प्रार्थना। राम का वैसे ही करना। सागर का हर्ष। राम-चरण-वन्दना कर उनका गृह-गमन। फलश्रुति (५।५७ - ५।६०)।

सुबाहु – एक राक्षस। उपसुन्द का पुत्र। सुन्द-तनय मारीच का भाई। वा० रा० १।२०।२५-२६।

सिद्धाश्रम में यज्ञादि करते हुए विश्वामित्र इससे और मारीच से अति भयभीत। यज्ञ देखते ही इन दोनों का भयंकर उपद्रव। विश्वामित्र को चिन्ता कि हरि के अतिरिक्त अन्य कोई इनको मारने में समर्थ नहीं (१।२०६।३-५)। राम द्वारा इसका वध (१।२१०।५)। इसके वध का उल्लेख (१।२२१।५, १।३५६, ३।२५)।

मूल शब्द – १।२०६।३, १।२१०।५, १।३५६, ३।२५।

पर्याय – **सुभुज** – १।२२१।५।

सुबेल (सुवेल) – लंका का त्रिकूट पर्वत। आ० को०; बृ० को०। त्रिकूट पर्वत के तीन शिखरों में एक। मा० पी० १।१७८।५ शब्दार्थ।

[इसके सम्बन्ध में दो कथाएँ प्रचलित – (१) काल को बन्दी बनाने के बाद रावण का उसे इस शिखर पर नियुक्त करना – लंका की रक्षा के लिए। (२) इस पर्वत पर शिव द्वारा ब्रह्मा के एक सिर का छेदन। ब्रह्मा का शाप – जो इस पर्वत पर चरण रखेगा, उसका सिर फट जायेगा। ब्रह्मशाप और रावण-प्रेरित काल का व्यालरूप से इस पर्वत पर वास। यह त्रिकूट के उस शृंग से अधिक ऊँचा जिस पर लंका स्थित। सुन्दरकाण्ड में समुद्र पारकर हनुमान् ने जिस गिरि पर चढ़कर लंका देखी थी (मानस ५।३।८-१०), वह सुवेल ही था। मा० पी० ६।६।५ नोट १, ६।३६।१ नोट १। राम द्वारा लंका का निरीक्षण भी सुवेल के सर्वोच्च शिखर से। उसका विस्तार दो योजन। वा० रा० ६।४०।१-३।]

राम का सैन्यसहित इस पर्वत पर उतरना। इसका एक शिखर अति उच्च, परम रमणीय, समतल और शुभ्र। यहाँ किसलय, कुसुम सजाकर उस पर लक्ष्मण द्वारा बिछायी गयी मृगछाल पर राम विराजमान (६।११।१-४)। (यहाँ से उन्हें लंका दृष्टिगोचर। ६।१३।१-४।) राम मनुष्य नहीं, यह प्रमाणित करने के लिए, समुद्र को बाँधकर सैन्यसहित उनके इस पर्वत पर उतरने का कथन – प्रहस्त द्वारा (६।६।५), मन्दोदरी द्वारा (६।३७।१)।

मूल शब्द – ६।११।१। सुबेला – ६।९।५, ६।३७।१।

सुमंत्र – दशरथ के सचिव और सारथी।

[वा० रा० में ये सूतपुत्र। दशरथ-कुल के नित्य अनुगत। महामति, आत्मज्ञानी जितेन्द्रिय, रामभक्त। २।८४।१५, २।१०३।२२-२३। दशरथ के मन्त्रज्ञ, यशस्वी आठ सचिवों में एक। अर्थशास्त्रवेत्ता। वा० रा० १।७।१-३। वि० २।५।१ व्या० के अनुसार विभाग-विशेष के मन्त्री का नाम सुमन्त्र। दशरथ के राज्य में सुमन्त्र-पद पर अधिष्ठित होनेवाले ये दशरथ के सखा और सारथी भी। इन पर राजा की बड़ी आस्था। इनके लिए अन्तःपुर में भी रोक नहीं। मा० पी० २।५।१ टिप्पणी १ में ये प्रधान मंत्री। प० पु० पा० ११।१६ में इनका नाम सुमन्त। ये राम के राज्यकाल में भी सचिव। मा० पी० २।५४ नोट के अनुसार इनके पुत्र अभिनन्दन।]

राम की बरात में जाते समय इनका दो रथों को सजाकर, उनमें घोड़े जोतकर, दशरथ के पास लाना (१।३०१।६-७)। राजा का इन्हें तथा अन्य सचिवों-सेवकों को बुलाकर कथन कि यदि इन सबका मत हो तो राम का राज्याभिषेक करें। सबके हर्षपूर्वक अनुमोदन करने पर वसिष्ठ की आज्ञानुसार सब कार्य-सम्पादन करने का उनका आदेश (२।५।१ - २।५)। (वि० के मत से सात मन्त्रियों को सात कार्यों की आज्ञा देकर) वसिष्ठ की इन्हें अश्व-रथ-गजों को सजाने की आज्ञा (२।६)। सूर्योदय होने के बाद भी दशरथ के न जागने पर सबका इनसे कथन कि ये जाकर राजा को जगायें और उनकी आज्ञा प्राप्त कर सब कार्य करें (२।३८।२)। महल में जाकर वहाँ विपद्-विषाद का-सा गहरा सन्नाटा देख इन्हें भय। पूछने पर किसी का उत्तर न देना। इनका कोपभवन में जाना। 'जयजीव' (अर्थात् आपकी जय हो, आप चिरजीवी हों। वि०) कहकर राजा को नमन करना। उन्हें शोक-विकल और भूमि पर पड़े देख ये स्तब्ध। कुछ पूछने में भय (२।३८।३-८)। कैकेयी का कथन कि ये पहले राम को बुला लायें, तब समाचार पूछें। राजा का रुख पाकर इनका गमन। समझ जाना कि कैकेयी की कोई कुचाल (२।३८।८ - २।३९।२)। शोक-सन्तप्त इनका राम के निकट जाना। उनसे पितृवत् समादृत हो, राजा की आज्ञा सुनाकर, साथ ले चलना (२।३९।३-८)।

मूर्च्छा छूटने पर सचेत हो राजा का इन्हें बुलाकर कथन – ये रथ लेकर जायें। सिय-राम-लक्ष्मण को वन दिखाकर अल्पकाल में ही लौटा लायें। दोनों भाई न लौटें, और सीता वन देखकर डरें, तो विनय करके, दशरथ का सन्देश कहकर, किसी भी उपाय से केवल उन्हीं को ले आयें (२।८१।५ - २।८२।८)। आज्ञा पाकर वेगवान् रथ तैयार करके इनका नगर के बाहर सिय-राम-लक्ष्मण के निकट गमन। नृप-वचन सुनाकर, उन्हें रथ पर बैठाकर चलना (२।८२ - २।८३।२)। तमसा-तट पर साथ आये अवधवासियों के निद्रामग्न हो जाने पर राम के कथनानुसार इनका इस तरह रथ चलाना जिससे उसकी लीक का पता न चले (२।८५।६ - २।८५)। शृंगवेरपुर पहुँचना। गंगा को प्रणाम करना। माहात्म्य-श्रवण, मज्जन, पान (२।८७।१-७)। गुह द्वारा लाये गये कन्द-मूल-फल का सेवन। राम के शयन करने पर लक्ष्मण का इन्हें सोने के लिए कहना (२।८९, २।९०।१)। प्रातःकाल राम-लक्ष्मण के जटा बनाने पर इनके नेत्रों में जल, हृदय में दाह, मुख मलिन। हाथ जोड़कर इनका दीनतापूर्वक निवेदन – इन्हें दशरथ का आदेश कि ये सिय-राम-लक्ष्मण को वन दिखाकर, गंगा-स्नान कराके लौटा लायें। अब राम जो आज्ञा दें, उसका ये पालन करें। यह कहकर, प्रभु के चरणों में पड़कर, इनका बच्चों की तरह रुदन। ऐसी कृपा करने की विनती जिससे अयोध्या अनाथ न हो (२।९४।४ - २।९५।१)। इन्हें उठाकर, शिबि आदि धर्मात्माओं के उदाहरण देकर, राम का समझाना। कथन – ये धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ। पितासम पूज्य और हितकारी। इनकी बात का उत्तर देने में भी पाप। अब इन्हें वही करना चाहिए जिससे पिता सिय-लक्ष्मण और उनके सोच से दुखी न हों (२।९५।२ - २।९६।२)। इनके और राम के संवाद से गुह सपरिजन विकल। लक्ष्मण के कटु वचन कहने पर राम का इन्हें शपथ दिलाकर कथन कि ये लक्ष्मण की बातों को जाकर न कहें (२।९६।३-५)। केवल सीता को लौटाने के सम्बन्ध में इनका दशरथ-सन्देश सुनाना, राजा की आर्त्ति, प्रीति, विनती का संकेत करना (२।९६।६ - २।९७।१)। इन्हें पिता और श्वसुर-सम मानकर सीता का विनीत कथन – ये उनके सास-ससुर को उनकी ओर से निश्चिन्त रहने की विनय करें (२।९७।७ - २।९९।२)। उनकी शीतल वाणी सुनकर ये व्याकुल। इनकी स्थिति मणि-वंचित सर्प की-सी। इनकी विकल इन्द्रियाँ विषयों के ग्रहण में असमर्थ। राम के अनेक प्रकार से समझाने पर भी इनके हृदय का दाह पूर्ववत्। राम के साथ इनका स्वयं वन जाने का आग्रह। राम का उचित उत्तर देना। उनकी

आज्ञा का उल्लंघन असम्भव। कर्मगति कठिन। सिय-राम-लक्ष्मण के चरणों में नमन करके, जैसे सब कुछ खोकर, इनका लौटना (२।९९।३-८)। रथ हाँकने पर अश्व विकल। राम का इन्हें जबरदस्ती लौटाना (२।९९ - २।१००।२)।

[तीन दिनों तक इनका शृंगवेरपुर में ही रहना, इस आशा से कि घोर वन देखकर सीता डरेंगी, तो राम उन्हें लौटा देंगे। वि० २।१४२।५-६ व्या०। वा० रा० २।५९।३ में इनका इस आशा से ठहरना कि सम्भवतः राम इन्हें बुला लें।] इनकी विकलता देखकर गुह विषादग्रस्त। उन्हें अकेले आये देख, 'राम राम सिय लखन' पुकारते हुए व्याकुल होकर इनका धरती पर गिरना (२।१४२।४ - २।१४२)। गुह का इन्हें समझाना। विविध कथाएँ कहकर जबरदस्ती रथ पर बैठाना। राम-विरह-व्यथा से शिथिलांग होने के कारण ये रथ हाँकने में असमर्थ। घोड़े भी विवश। तब गुह का अपने उत्तम सेवकों को इनके साथ भेजना (२।१४३।१-२।१४४।२)। मार्ग में दुःख-दीन-विकल हो इनका अपने जीवन को धिक्कारना। राम-विरह के बाद भी प्राण न निकलने पर स्वयं को अपयश और पाप का भागी समझना। दारुण दाह और ग्लानि से भर जाना। ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल। मरण-दशा स्पष्ट। फिर भी 'जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी' (२।१४४।३-२।१४५।५)। (ज्यों-ज्यों अवध का निकट आना, इनकी विकलता का बढ़ना।) इनके लिए अवध यमपुर-सदृश। इन्हें सोच – पुरवासियों, फिर माताओं और दशरथ के पूछने पर ये क्या उत्तर देंगे! कहेंगे कि उन्हें सकुशल वन पहुँचा आये! महाराज सुनते ही प्राण त्याग देंगे। राम-विरह से इनका हृदय न फटा! इनका अनुमान कि विधाता से इन्हें यातना-शरीर ही प्राप्त (२।१४५।६-२।१४६)। [यातना-शरीर – यह लिंग-शरीर। इसकी प्राप्ति मृत्यु के बाद पापकर्म-फल-भोग के लिए। यह मोम का-सा – काटने पर टूक-टूक और फिर ज्यों-का-त्यों, पर कष्ट वैसा ही जैसा स्थूल शरीर के काटने-छेदने आदि से। मा० पी० २।१४६ टिप्पणी ४।] इस तरह पछताते हुए इनका तमसा-तट पर पहुँचना। निषादों को विनय करके विदा करना। नगर में प्रवेश करते हुए ऐसा संकोच जैसे गुरु-विप्र-गो-हत्या के अपराधी हों। (नगर से दूर तमसा-तट पर ही) वृक्ष-तले बैठकर दिन बिताना। अँधेरा होने पर नगर में प्रवेश। रथ को द्वार पर रख राजमहल में जाना। रानियों की जिज्ञासा का उत्तर देने में ये असमर्थ। राजा से मिलने की इनकी विकलता देख दासियों का कौसल्या-भवन में ले जाना (२।१४७।१-२।१४८।३)। राजा की शोचनीय दशा देख 'जयजीव' कहकर इनका साष्टांग प्रणाम करना। इन्हें हृदय से लगाकर, निकट बैठाकर, राजा की राम-लक्ष्मण-सीता के सम्बन्ध में जिज्ञासा और विलाप (२।१४८।४ - २।१५०।२)। धीरज धरकर इनका राजा को समझाना। कर्म-फल-विपाक का कथन। सबके हित के लिए धैर्य धारण करने का आग्रह (२।१५०।३-८)। राम के गंगा पार करने तक की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त निवेदन करके हानि-ग्लानि-सोचवश इनका मौन हो जाना। सुनकर राजा का धरती पर गिरकर तड़पना। कौसल्या के कोमल वचन सुन, उठकर राजा की इनसे पुनः जिज्ञासा— सिय-राम-लक्ष्मण कहाँ? (२।१५० - २।१५३।६, २।१५५।१)। [ये ऐसे हानि-ग्लानि-शोचवश कि चौदह वर्षों तक इनका किसी को मुँह न दिखाना। महाराज का देहावसान, भरत का आगमन, और्ध्वदैहिक क्रिया, भरत-सभा, चित्रकूट-गमन, जनक-आगमन, भरत का नन्दिग्रामवास – किसी प्रसंग में कहीं इनका नाम नहीं। प्रभु के लौटने पर ही इनका घर से निकलना। वि० २।९९।७-८ व्या०, ७।१० क व्या०। वा० रा० में यह बात नहीं। वहाँ इनका भरत को परामर्श कि वे गुह को मिलने का अवसर दें। चित्रकूट में राम को धैर्य बँधाकर हाथ का सहारा देकर मन्दाकिनी-तट पर ले जाना। वा० रा० २।८४।११-१३, २।१०३।२३।] राम के राज्याभिषेक के समय वसिष्ठ की आज्ञा से इनका रथ-घोड़े सजाना। हरकारों को भेजकर मंगल-द्रव्य मँगवाना। प्रसन्नता से लौटकर मुनि को नमन करना (७।१० क, ख)।

मूल शब्द – १।३०१।६, २।३८।२, २।३९।६, २।८३।१, २।८६, २।९४।४, २।१४२।४, २।१४३।१, २।१४४।३, २।१४८।४, २।१४८, २।१५५।१, ७।१० क। सुमंत्रु – २।५।१, २।३८।३, २।३९।२, २।८९।५, २।९९।६, २।९९।३, २।१००।२, २।१४९।१।

सुमित्रा – मगधराज-तनया। दशरथ की दूसरी रानी। लक्ष्मण-शत्रुघ्न की माता। प० पु० उ० २४२।३८, ९४।९६, वा० रा० २।७०।९। [वा० रा० ३।१६।३७ में दूसरी रानी कैकेयी।]

दशरथ और अन्य रानियों के साथ ये पुण्य-मंगल-मूर्त्ति। राम की माता होने के कारण महिमा की अवधि। इनकी रचना कर विधाता को भी बड़प्पन प्राप्त। इन्हें प्रणति। इनसे कृपा-याचना (१।१६।६-८)।

अन्य रानियोंसहित ये पुनीत-आचरणा। सदा पति के अनुकूल और उनकी प्रिय। प्रिय-चरणों में इनका दृढ़ प्रेम (१।१८८)। राजा का तीनों रानियों को बुलाना। अग्निदेव से प्राप्त चरु का आधा भाग कौसल्या को और चौथाई कैकेयी को देकर शेष चौथाई के दो अंश करना। एक अंश कौसल्या के, दूसरा कैकेयी के हाथ पर रखकर, दोनों अंश इन्हें देना। इस तरह तीनों रानियाँ गर्भवती, आनन्दमग्न। शोभा, शील, तेज से सम्पन्न (१।१९०।१-५, ७)। (राम-जन्म के बाद) कैकेयी का और इनका सुन्दर पुत्रों को जन्म देना (१।१९५।१)। [तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल मुद कल्यान।। गी० १।२।७। वा० रा० १।१८।१३-१४ में इनके पुत्रों की उत्पत्ति भरत-जन्म के बाद। अ० रा० १।३।३८ और रघु० १०।७१ में लक्ष्मण-शत्रुघ्न के यमज होने का स्पष्ट कथन।]

दशरथ से जनक का पत्र और (धनुष-भंजन, सीता-वरण आदि की) दूसरी बातें सुनकर ये अन्य माताओं-सहित आनन्दमग्न। माताओं का पत्र को हृदय से लगाना (१।२९५।४-६)। (विवाहोपरान्त वधुओंसहित चारों भाइयों के अयोध्या लौटने पर राजमहल में) 'कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं।'। (१।३४५।८)। [राम को सब माताएँ कौसल्या-सम प्रिय एवं सब माताओं को भी राम वैसे ही प्रिय जैसे कौसल्या को, इसलिए सब माताओं के लिए 'राम महतारी' शब्द का प्रयोग। यहाँ से १।३६०।८ तक के पूरे प्रसंग में इन्हें सक्रिय पात्र मानना चाहिए, यद्यपि इनका नामोल्लेख केवल १।३४६।३ में। इस प्रसंग के लिए दे० 'कौसल्या'] राम के युवराज होने का संवाद सुन इनका अनेक प्रकार के चौके पूरना (२।८।३)।

(राम के साथ वन जाने के लिए) लक्ष्मण का इनसे आज्ञा और विदा माँगने आना। उनसे कैकेयी के वरदान की कथा सुन इनका सहमना, व्याकुल होना। लक्ष्मण को आशंका – ये स्नेहवश उन्हें जाने की आज्ञा देंगी या नहीं? (२।७३।१, ३-८)। राम-जानकी के रूप-शील-स्वभाव का स्मरण कर, उनके प्रति राजा का प्रेम देख, इनका समझ जाना कि राजा राम-विरह में प्राण त्याग देंगे। अतः इनका सिर पीटना। उक्ति – 'पापिनि दीन्ह कुदाउ' (२।७३)। कुअवसर समझकर धीरज धरना। स्वभाव से ही सुहृद् होने के कारण इनका मृदु वाणी में लक्ष्मण को उपदेश – राम उनके पिता, वैदेही माता। जहाँ उनका वास, वहीं अयोध्या। यदि राम-जानकी का वन-गमन, तो लक्ष्मण के अवध में रहने का कोई प्रयोजन नहीं। [रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्।। वा० रा० २।४०।६।] 'पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।।' यह समझकर लक्ष्मण वन जायें और अपने जीवन को सफल करें। वे महाभाग्यवान् जो उनके मन में निश्छल रामानुराग। उनकी माता होने से ये भी महाभाग्यशालिनी। राम का वनगमन उन्हीं के भाग्य से। वे सब प्रकार के विकारों से दूर रहकर मन-वचन-कर्म से सेवा-धर्म का निर्वाह करें। वही करें जिससे राम और सीता को कोई क्लेश न हो। इस प्रकार पुत्र को शिक्षा और आज्ञा देकर इनका आशीर्वाद – उनकी राम के चरणों में दिन-दिन निर्मल अविरल प्रीति हो (२।७४।१ - २।७५।छं०)। इनके चरणों में नमन कर लक्ष्मण का गमन (२।७५)।

चित्रकूट में राम-लक्ष्मण का इनके पाँवों में पड़कर गोद में लिपटना (२।२४४।६, २।२४५।३)। इन्हें तथा अन्य सासों को देखकर सीता का सहमना। फिर पाँव पड़कर प्रेम से मिलना। इन सबका स्नेह-विकल हृदय से आशीर्वाद देना (२।२४६।४ - २।२४७।१)। ये सीता की सेवा के वशीभूत (२।२५२।२, ४)। (जो कुछ हुआ, उसके लिए) विधाता पर सुनयना के आक्षेप करने पर इनके द्वारा उनका अनुमोदन। विधि-गति को विपरीत और विचित्र कहना (२।२८१।८ - २।२८२।२)। रात अधिक होते देख इनका संकेत कि अब सुनयना के प्रस्थान करने का समय (२।२८४।७-८)। (चित्रकूट से विदाई के समय) सीता का अन्य सासों के साथ इनसे भी मिलना। राम का समझा-बुझाकर पालकी पर चढ़ना (२।३२०।२-५)।

चौदह वर्षों की अवधि के अन्तिम दिन शुभ शकुन। अन्य माताओंसहित इनके हृदय में स्वतः आनन्द का उद्रेक। ऐसा आभास कि अभी कोई सिय-राम-लक्ष्मण के आने की सूचना देगा (७।१।दो०३)। उनके अवध लौटने पर उनसे मिलने के लिए अन्य माताओं के साथ वात्सल्य-प्रेरित होकर इनका दौड़ना। राम का इन तीनों से मिलना। लक्ष्मण को राम-चरणों में अनुरक्त जानकर इनका उनसे मिलना। सीता द्वारा इनकी तथा अन्य सासों की चरण-वन्दना। अन्य माताओं के साथ इनका राम को निहारना। मंगल-समय जानकर नयनाश्रु रोकना। आरती उतारकर निछावर करना। ये सब परमानन्द-मग्न (७।६।१६-७।७।५)। राम का अभिषेक देखकर हर्षित माताओं का आरती उतारना (७।१२।६)। सीता द्वारा इन तीनों की सेवा (७।२४।८)।

इनके लक्ष्मण की माता होने का कथन जनकपुर की युवतियों द्वारा (१।२२१।८)। अवध लौटते हुए मार्ग में सुमन्त्र का सोच – इनके पूछने पर वे क्या सन्देश कहेंगे (२।१४६।२) राजसभा में वसिष्ठ का भरत से कथन कि उनके राज्य ग्रहण करने से अन्य माताओंसहित इन्हें भी सुख होगा (२।१७५।६)। चित्रकूट में स्वप्न में सीता को इनके तथा अन्य सासों के भिन्न (सौभाग्यहीन) रूप के दर्शन (२।२२६।५)।

मूल शब्द – १।१६०।४, १।१६५।१, १।२२१।८, १।३४६।३, २।८।३, २।७३, २।२४५।३, २।२८२।१, २।२८४।७, ७।६ क।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **राम महतारी** – १।३४५।८ (तीनों रानियाँ। इसके अतिरिक्त सर्वत्र कौसल्या।)

लखन महतारी – २।१४६।२।

सुरगुरु – देवताओं के गुरु बृहस्पति। भगवान् की विभूति। गीता० १०।२४।

(१) ब्रह्म > अंगिरा ~ श्रद्धा (कर्दम-देवहूति-कन्या) > सिनीवाली, कुहू, राका, अनुमति; उतथ्य, बृहस्पति। भा० ३।१२।२१-२२, ३।२४।२१-२२, ४।१।३४-३५।

(२) अंगिरा > उतथ्य, बृहस्पति, सवंर्त, एक ब्रह्मवादिनी कन्या। महा० आदि० ६६।५, २६।

[भा० में – ये इन्द्र एवं देवताओं के परम आचार्य। ब्रह्मज्ञानी। वाचस्पति। भा० ६।७।७, ८, २१। एक बार इन्द्र-सभा में देवराज द्वारा अपनी अवज्ञा देख इनका लौट जाना। योगबल से ये अन्तर्धान। इन्हें कहीं न पाकर इन्द्र विकल, निर्बल। फलतः असुरों के हाथों देवताओं की दुर्दशा। भा० ६।७।७-२२। पृथ्वी-दोहन के समय देवताओं का इन्हें वत्स बनाकर वेदरूप दुग्ध-दोहन। ४।१८।१४। वटु वामन भगवान् को इनके द्वारा यज्ञोपवीत-प्रदान। भा० ८।१८।१४।

इनकी पत्नी तारा का चन्द्रमा द्वारा हरण। अन्ततः वह इन्हें प्राप्त। दे० 'ससि'। भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी ममता से इनका समागम। गर्भस्थ बालक (दीर्घतमा) के मना करने पर उसे अन्धे होने का शाप। भरद्वाज का जन्म। भा० ६।२०।३६-३८, वि० पु० ४।१६।१६-१८।

महा० में – असुरों पर विजय पाने के लिए देवताओं द्वारा इनका पुरोहित-पद पर वरण। शुक्राचार्य से इनकी सदा स्पर्द्धा। आदि० ७६।६, ७। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम कच। शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिए वे देवताओं द्वारा प्रेरित। आदि० ७६।१२, १३। इनके अंश से द्रोण की उत्पत्ति। आदि० ६७।६६। इनकी चन्द्रमसी नाम की भार्या से शंयु आदि छः पुत्र एवं स्वाहा-नाम्नी एक कन्या उत्पन्न। वन० २१६।१, २, २२। नहुष से भीत इन्द्राणी (शची) को इनका शरण देना। नहुष के पतन के लिए समय की प्रतीक्षा करने का देवताओं को परामर्श। उद्यो० ११, १२। इन्द्र को श्रेय का ज्ञान देकर और अधिक महत्वपूर्ण ज्ञान के लिए शुक्र के पास भेजना। शा० १२४।२१-२४।

प० पु० में – शुक्र के तपोलीन रहने पर इनका शुक्र-रूप धारण कर असुरों के पास जाना। उन्हें मोहित कर उनका पौरोहित्य करना। शुक्र के लौटने पर उनसे इनका विवाद। उनके कुपित हो चले जाने पर दानवों की इनसे परमार्थोपदेश करने की प्रार्थना। मोक्षमार्ग के नाम पर इनके द्वारा उन्हें दिगम्बर और मुण्डित होने का, वेद-वहिष्कृत नास्तिक धर्म-पालन का उपदेश। उन्हें धर्मभ्रष्ट कर इनका स्वर्ग-गमन और इन्द्र से सब कथन। प० पु० सृ० १३।२८०-४०२।

वा० रा० में रामावतार के समय इनके अंश से वानर-यूथपति तार की उत्पत्ति। वा० रा० १।१७।११। कम्ब रामायण में इनकी एक कन्या का नाम सुलेखा। उसके साथ बलात्कार करने की रावण की चेष्टा देख इनका उसे राम-शरों से निहत होने का शाप। पी० ई०। स्क० पु० के अनुसार सौरमण्डल में ग्रहरूप में प्रतिष्ठित होने का इन्हें शिव का आशीर्वाद। प्रा० च०।]

वसिष्ठ के साथ दशरथ की शोभा, जैसे इनके साथ इन्द्र की (१।३०२।१)। भरत का राम-प्रेम देख इन्द्र की इनसे प्रार्थना – ये ऐसा कोई उपाय रचें जिससे भरत की राम से भेंट न हो। सुनकर इनका मुसकाना। सहस्राक्ष को नेत्रहीन मानना (२।२१७।७-८।२१८।१)। इनका समझाना – रामभक्त के साथ माया करने पर उसका इन्द्र के लिए प्रतिकूल परिणाम होगा। पिछली बार जो कुछ किया गया, वह राम की इच्छा के अनुकूल था (२।२१८।२-३)।

इनके द्वारा राम-स्वभाव का कथन। दुर्वासा की दुर्गति का उदाहरण देकर इन्द्रादि देवताओं को उपदेश। उन्हें आश्वस्त करके भरत-चरणों में प्रेम करने का आदेश। देवता हर्षित (२।२१८।४-२।२२०।३)। भरत-रघुवर-मिलन से शंकित देवताओं को इनके समझाने पर प्रबोध (२।२४१।७-८) भरत का स्मरण करने की उनकी सम्मति सुन इनके द्वारा उनके भाग्य की सराहना। उन्हें निर्भय करना (२।२६५-२।२६६।५)।

मूल शब्द — २।२१८।१, २।२४१।८। सुरगुर — १।३०२।१, २।२२०।३, २।२६५, २।२६६।५।

सुरतरु — दे० 'कल्पतरु'।

सुरथ पति प्रधाना — देवताओं के प्रधान स्थपति (वास्तुकार, रथकार आदि)। शिल्प-प्रजापति विश्वकर्मा।

(१) प्राचेतस दक्ष ~ असिक्नी > वसु ~ धर्म > वसु नामक सप्तम वसु ~ आंगिरसी > विश्वकर्मा ~ कृती > चाक्षुष मनु, कन्याएँ संज्ञा, छाया। भा० ६।६।१, २, ४, १०, ११, १५, ८।१३।८।

(२) अष्टम वसु प्रभास ~ वृहस्पति-भगिनी > विश्वकर्मा > अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, रुद्र, कन्या संज्ञा। वि० पु० १।१५।१०६-१०८, १११, ११८, ११६, १२२, ३।२।२।

[देवताओं के सम्पूर्ण विमान एवं सब प्रकार के आभूषणों के निर्माता। इनकी शिल्पविद्या का आश्रय ले मनुष्यों का जीवन-निर्वाह। वि० पु० १।१५।११६-१२१। सूर्य-तेज से पीड़ित संज्ञा के लिए इनका सूर्य को भ्रम-यन्त्र (सान) पर चढ़ाकर उनके तेज के अष्टमांश को क्षीण करना। इस क्रिया में पृथ्वी पर गिरे सूर्य-तेज से इनके द्वारा विष्णु-चक्र, शंकर-त्रिशूल, कुबेर-विमान, कार्तिकेय-शक्ति निर्मित। वि० पु० ३।२।८-१२।

इनके निर्माण — महा० में — तिलोत्तमा। आदि० २१०।१०-१८। इन्द्रप्रस्थ नगर। आदि० २०६।२८ के बाद दा० पा०, पृ० ५६३। यम-सभा। सभा० ८।३४। जल के भीतर वरुण-सभा। सभा० ६।२। पुष्पक विमान। वन० १६१।३७। वा० रा० में — चक्रवान् पर्वत पर चहस्रार चक्र। ४।४२।२७। लंका नगरी। ५।२।१६-२०। भा० में — सागर-गर्भ में दुर्गम द्वारकापुरी। १०।५०।५०-५१। आदि।

महा० में ये प्रजापति त्वष्टा से स्पष्टतः भिन्न, किन्तु कहीं-कहीं दोनों में एकरूपता। ये प्रभास एवं वृहस्पति-भगिनी के पुत्र, और त्वष्टा अदिति से उत्पन्न द्वादश आदित्यों में एक। आदि० ६५।१४, १६, ६६।२६-२८। इन्द्र-सभा में विराजनेवालों में इनका और त्वष्टा का अलग-अलग नाम। सभा० ७।१४। किन्तु वानर नल 'विश्वकर्मा त्वष्टा' के पुत्र। वन० २८३।४१। दधीचि की अस्थियों से वज्र-निर्माण त्वष्टा द्वारा। वन० १००।२३-२४। रघु० में सूर्य का तेज क्षीण करनेवाले त्वष्ट्रा। ६।३२। आ० को० में त्वष्टा का अर्थ कारीगर, वे ही विश्वकर्मा।]

चित्रकूट में राम के मन रमने का आभास पाकर इनके साथ देवताओं का कोल-भीलों के वेश में आना। एक छोटी और एक बड़ी, दो सुन्दर पर्णशालाएँ बनाना (२।१३३।६-८)।

मूल शब्द — २।१३३।६।

सुरधेनु — दे० 'कामधेनु'।

सुरबीथि (सुरवीथि, सुरवीथी) — नक्षत्रों का मार्ग। आकाशगंगा। मा० पी० शब्दार्थ।

[यह असंख्य तारों का समूह जो आकाश के बीच से जाते हुए अर्धचक्र के रूप में, झिलमिलाती हुई मेखला के समान दृष्टिगोचर। यह मेखला वस्तुतः एक पूर्ण चक्र का अंग जिसका क्षितिज के नीचे का भाग दिखायी नहीं देता।

इसकी चौड़ाई और चमक सर्वत्र समान नहीं। पृथ्वी से इसका केन्द्र धेनु (सैजिटेरियस) तारामण्डल की ओर। वहाँ यह सबसे अधिक चौड़ी और चमकीली, क्योंकि वहाँ तारे संख्या में अधिक घने, किनारे की ओर अपेक्षाकृत बिखरे हुए। सभी तारों द्वारा केन्द्र की परिक्रमा, हमारे सूर्य द्वारा भी। वह (सूर्य) आकाशगंगा के मध्य-तल में स्थित, इसीलिए आकाशगंगा हमें मेखलाकार दिखायी होती है।

तारों के बीच में सूक्ष्म धूलि और गैस। कहीं-कहीं धूलि के बादलों से काली नीहारिकाएँ, और निकटवर्ती तारों से उद्दीप्त गैस के बादलों से चमकती हुई नीहारिकाएँ बन गयी हैं।

यह मन्दाकिनी, स्वर्गंगा, स्वर्नदी, सुरनदी, आकाशनदी, नागवीथी, हरिताली आदि नामों से भी प्रसिद्ध। अंगरेजी में इसके नाम 'मिल्की वे' 'गैलेक्सी' आदि। हमारी इस वीथी की तरह विश्व में अनेक वीथियाँ। हि० वि० को०।

वि० के अनुसार आकाशमण्डल में वीथियों की संख्या नौ — नाग वीथी, गज वीथी, ऐरावत वीथी, आर्षभी वीथी, गो वीथी, जरद्गव वीथी, अज वीथी, मृग वीथी एवं वैश्वानरी वीथी। प्रत्येक वीथी में तीन नक्षत्र।]

भरत के निर्मल हृदयाकाश में स्वामि (राम) की सुरति सुरवीथी-सदृश शोभित (२।३२५।५)।

सुररिपु — देवान्तक नामक राक्षस। रावण के पुत्रों में से एक। इन्द्र-सा पराक्रमी। माया-विशारद। वा० रा० ६।६९।९-११।

नरान्तक आदि योद्धाओं के साथ इसके भी मरण का रावण-कथन कुम्भकर्ण से (६।६२।११-१२)। [हनुमान् द्वारा इसका वध। वा० रा० ६।७०।२३-२६।]

मूल शब्द — ६।६२।११।

सुरसरि — दे० 'गंगा'।

सुरसा — नागों की माता।

कश्यप ~ क्रोधवशा (दक्षकन्या) > सुरसा और कद्रू। वा० रा० ३।१४।२१-२२।

[महा० में कद्रू विनता की बहन और सपत्नी। दे० 'कद्रू'। मानस २।१९ में भी दोनों सपत्नियाँ। किन्तु वा० रा० में विनता शुकी की पौत्री और कद्रू सुरसा की बहन। सुरसा नागों की माता और कद्रू पन्नगों की। वा० रा० ३।१४।२०, २८, ३१।]

सागर पार करते हुए हनुमान् के बल-बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए देवताओं का इन्हें भेजना। इनका हनुमान् से कथन — वे इनके देव-प्रदत्त आहार (५।२।१-३)। हनुमान् का निवेदन — सीता की सुधि लेकर, राम को सुनाकर, वे इनके मुख में प्रवेश करेंगे (५।२।३-५)। इनका किसी तरह हनुमान् को न जाने देगा। [कथन कि विधाता का इन्हें वरदान कि कोई भी इनके मुँह में प्रवेश किये बिना आगे नहीं जा सकता। वा० रा० ५।१।१५८।] तब हनुमान् ग्रसित होने के लिए प्रस्तुत। ज्यों-ज्यों इनका मुख-विस्तार करना, त्यों-त्यों हनुमान् का इनसे द्विगुण रूप होना। इनके मुख का सौ योजन विस्तार देख उनका अति लघुरूप होकर, इनके मुख में प्रवेश कर बाहर आना। इन्हें नमन कर इनसे विदा माँगना (५।२।६-११)। हनुमान् के बुद्धि-बल का मर्म जानकर ये प्रसन्न। उन्हें रामकार्य पूरा करने का आशीर्वाद देकर गमन (५।२।१२-५।२)।

मूल शब्द — ५।२।२, ५।२।६।

सुषेन (सुषेण) — मानस के अनुसार लंका के वैद्य।

[हनुमन्नाटक १३।१७ में भी ये लंका में रहनेवाले चिकित्सक, रावण के अनुचर। मा० पी० ६।५४।७ नोट। वा० रा० में ये तारा के पिता। वानर यूथपति। वा० रा० ४।२२।१३, ६।९९।४-५। महा० में वाली के श्वसुर। सहस्र कोटि वानर-सेना के साथ राम की सेवा में उपस्थित। महा० वन० २८३।२।

वा० रा० में ये राम-पक्ष के वैद्य — (१) मेघनाद के नाग-बाणों से विद्ध राम-लक्ष्मण की चिकित्सा के सम्बन्ध में इनका सुग्रीव से कथन — पूर्वकाल में देवासुर-संग्राम में ये उपस्थित। उस समय अचेतन और प्राणशून्य हुए देवताओं की वृहस्पति द्वारा मन्त्रों और ओषधियों से चिकित्सा। उन ओषधियों का इन्हें ज्ञान। उनका पता बताकर इनका सुग्रीव को परामर्श कि उनको लाने के लिए वे सम्पाति, पनस, हनुमान् को भेजें। वा० रा० ६।५०।२६-३२। इसी समय गरुड़ के वहाँ आने पर दोनों भाई नागपाश-मुक्त और स्वस्थ। वा० रा० ३४-४०। (२) मेघनाद-वध के बाद राम के आदेश से इनका लक्ष्मण, विभीषण आदि की चिकित्सा करके बिंधे हुए बाणों को निकालना और घाव अच्छे करना। वा० रा० ६।९१।२०-२६। (३) लक्ष्मण को रावण की शक्ति से मूर्च्छित देख विलाप करते हुए राम को इनका समझाना कि लक्ष्मण अभी जीवित। हनुमान् से इनका कथन — जाम्बवान् द्वारा पहले बताये गये महोदय पर्वत के दक्षिणी शिखर पर जाकर वे चार प्रकार की प्रसिद्ध महौषधियाँ (विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी, सन्धानी) ले जायें। (अ० रा० ६।६।३२-३३, ६।७।३३ में पर्वत का नाम द्रोण। वह क्षीरसागर में स्थित। हनुमान् को महौषध लाने का आदेश राम का।) पूरे पर्वत-शिखर को लाये हनुमान् की इनके द्वारा प्रशंसा। उस शिखर से ओषधियाँ उखाड़कर, कूट-पीसकर, इनका लक्ष्मण की नाक में देना। लक्ष्मण का स्वस्थ होना। वा० रा० ६।१०१।२४-४५।]

जाम्बवान् का कथन — ये वैद्य। इनका लंका में वास। यह सुनकर हनुमान् का सूक्ष्म रूप धर जाना और

भवनसहित इन्हें ले आना। इनका राम के पदारविन्द में नमन। लक्ष्मण की चिकित्सा के लिए पर्वत और ओषधि का नाम बताकर हनुमान् को लाने के लिए कहना (६। ५५। ६-६। ५५)। [गी० ६।६ में हनुमान् का इन्हें सुप्तावस्था में भवनसहित लाना। इनका कथन — रात रहते-रहते संजीवनी बूटी मिल जाने पर लक्ष्मण जी उठेंगे।] हनुमान् के पर्वत ले आने पर इनके द्वारा शीघ्र चिकित्सा। लक्ष्मण स्वस्थ। हनुमान् का इन्हें उसी प्रकार लंका पहुँचाना जिस प्रकार लाये थे (६। ६२। २, ४)। [हनुमन्नाटक १३। २० में भी कार्य हो जाने पर इनको लंका पहुँचाना। मा० पीं० ६। ६१। ४ 'सुषेण'।]

मूल शब्द — ६। ५५। सुषेना — ६। ५५। ७।

सूकरखेत — शूकरक्षेत्र या वाराहक्षेत्र। यहाँ घाघरा-सरयू-संगम।

[अयोध्या से लगभग तीस मील दूर, गोंडा जिले में यह स्थित। यहाँ पौषभर कल्पवास का महत्व। वराह भगवान् और वाराही देवी का मन्दिर। उसके पास ही एक अति प्राचीन कुटी जो बाबा नरहरिदास (नरहर्यानन्द) की कही जाती है। मा० पी० १। ३० क शब्दार्थ, नोट ३।]

यहीं तुलसी द्वारा गुरु-मुख से रामचरित-कथा-श्रवण (१। ३० क)।

सूपनखा (शूर्पणखा) — जिसके नख सूप या छाज की तरह लम्बे-चौड़े हों। आ० को०। एक राक्षसी। रावण की बहन।

[वा० रा० में — यह विकृतानना, कामरूपिणी राक्षसी। ७। ६। ३५, ७। २४। २४। स्वच्छन्दबलगामिनी। ३। १७। २५। कालकेय दानवराज विद्युज्जिह्व से इसका विवाह। कालकेयों का संहार करते हुए रावण द्वारा इसके पति का वध। इसका विलाप। रावण का इसे सान्त्वना देना। खर के साथ दण्डकारण्य में भेजना। ७। १२। १-२, ७। २३। १७-१९, ७। २४। २४-४२।]

यह रावण की बहन। [मानस १। १७६। १-५ में रावण-विभीषण आदि का सम्बन्ध महा० के अनुरूप। इस दृष्टि से मानस में यह रावण की सौतेली बहन, खर की सहोदरा। मा० पी० ३। १७। ३ 'शूर्पणखा' के अन्तर्गत यही मत व्यक्त। वा० रा० में यह रावण की सगी बहन। दे० 'रावन' — वंशपरम्परा। वा० रा० ७। २४। ३७ में खर इसका मौसेरा भाई।] यह दुष्ट-हृदय, नागिन-सी भयानक। एक बार पंचवटी में राम-लक्ष्मण को देख इसका काम-विह्वल होना (३। १७। ३-४)। सुन्दर रूप धर राम के पास जाना। कथन — त्रिलोक में इसके अनुरूप पुरुष नहीं, अतः अब तक यह कुमारी। केवल राम ही इसके योग्य (३। १७। ७-१०)। प्रभु का सीता की ओर इंगित कर इसे अनुज के पास भेजना। लक्ष्मण का स्वयं को राम-दास कहकर इसे राम के पास प्रेरित करना। उनका इसे पुनः लक्ष्मण के निकट भेजना। लक्ष्मण से तिरस्कृत हो भयंकर रूप धारण कर इसका राम के पास गमन। सीता को भीत देख राम का अनुज को संकेत। लक्ष्मण का लाघव से इसके नाक-कान काटना (३। १७। ११-३। १७)। अपना रुधिरमय विकराल रूप लेकर इसका खर-दूषण के पास जाना। उनके पौरुष को धिक्कारना। सब वृत्तान्त कहना। अपने अशुभ वेश में राक्षस-सेना के आगे-आगे चलना (३। १८। १-३, ६)। खर-दूषण का नाश देख इसका रावण के पास जाकर उसे प्रेरित करना। क्रोधपूर्वक धर्मोपदेश देना। सभा में व्याकुल हो विलाप करना (३। २१। ५ - ३। २१ ख)। सभासदों का इसे समझाना। रावण के पूछने पर इसके द्वारा राम-लक्ष्मण के बल-पौरुष और सीता के सौन्दर्य का वर्णन। [वा० रा० ३। ३४। २३-२५ में सीता का रूप-वर्णन कर उन्हें भार्या बनाने के लिए रावण को प्रोत्साहित करना।] ससैन्य खर-दूषण-त्रिशिरा-संहार का कथन। रावण का इसे समझाना। अपने बल का बखान करना (३। २२। १-३। २२)। उल्लेख—- मन्दोदरी के प्रबोधन में इसकी गति का (६। ३६। १३), भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इसे कुरूप किये जाने का (७। ६६। ३)। इसके जैसी स्त्रियों का स्वभाव-कथन (३। १७। ५-६)।

मूल शब्द — ३। १७। ३, ३। १८। ६, ३। २२, ६। ३६। १३, ७। ६६। ३। सुपनखा — ३। २१। ५।

सृंगी रिषि — ऋष्यशृंग। कश्यप-नन्दन विभाण्डक के पुत्र। महा० वन० ११०। २३। इनके सिर पर एक सींग, अतः यह नाम। महा० वन० ११०। ३६।

[एक समय विभाण्डक एक कुण्ड में प्रविष्ट हो तप में निरत। उर्वशी को देख उनका रेतःस्खलन। उसी समय एक तृषाकुल मृगी द्वारा जल के साथ उस शुक्र का पान। उसके गर्भ से ऋष्यशृंग का जन्म। महा० वन० ११०। ३२-३८।

ये वेदों के पारंगत विद्वान्। अग्नि और पिता के सेवक। तप-स्वाध्याय में निरत। सदा वन में रहने के कारण पिता के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष या स्त्री से अपरिचित।

एक बार अंगराज रोमपाद द्वारा धर्म का उल्लंघन होने पर उनके राज्य में अनावृष्टि। श्रेष्ठ विप्रों का परामर्श – प्रायश्चित्त के लिए वे किसी प्रकार इन्हें अपने यहाँ बुलाकर अपनी कन्या शान्ता का इनसे विवाह करें। इन्हें लुभाकर लाने के लिए राजा का गणिकाओं को भेजना। उनका अदृष्टपूर्व कमनीय रूप देख इनके मन में स्नेहोदय। उन्हें अपने आश्रम में लाकर इनके द्वारा उनका सत्कार। (उस समय विभाण्डक अनुपस्थित।) गणिकाओं का फल कहकर इन्हें सुस्वादु मोदक खिलाना, इनका आलिंगन करना। उनके चले जाने पर ये व्याकुल। दूसरे दिन इनका पुनः उसी स्थान पर जाना जहाँ वे पहले मिली थीं। गणिकाओं का प्रस्ताव कि ये उनके आश्रम में चलें। इनके स्वीकार करने पर उनका इन्हें अंगदेश ले जाना। इनके वहाँ पहुँचते ही इन्द्र द्वारा वर्षा। राजा द्वारा इनका पूजन। इनका और इनके पिता का कृपा-प्रसाद पाने की वर-याचना। शान्ता का इनसे विधिपूर्वक विवाह। वहीं इनका सपत्नीक वास। वा० रा० १।९-१०।

महा० में वन० ११०।२३ से वन० ११३ तक वर्णित यह कथा अधिक रोचक। वहाँ अंगराज लोमपाद। विभाण्डक का इन्हें खोजते हुए क्रोधावेश में अंगदेश पहुँचना। इनका वैभव और अपनी पुत्रवधू को देख उनका कोप शान्त। इन्हें उनका आदेश– पुत्रोत्पन्न हो जाने पर अंगराज के सब प्रिय कार्य सिद्ध कर ये पुनः लौट जायें।

पुत्रप्राप्ति की कामना से इनसे यज्ञ कराने के लिए दशरथ का स्वयं अंगदेश जाकर पत्नीसहित इन्हें अयोध्या में लाना। वा० रा० १।११। अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर राजा को चार पुत्रों की प्राप्ति का इनका वरदान। फिर पुत्रेष्टि-यज्ञ का अनुष्ठान। अग्निकुण्ड से दिव्य पायस लिये रक्ताम्बरधारी कृष्ण-वर्ण तेजोमय पुरुष का प्राकट्य। वा० रा० १।१२।३-४, १।१४।२, ५८-६०, १।१५।१-३, १।१६।११-१५।]

वसिष्ठ का इन्हें बुलाना। इनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराना। इनके पूर्णाहुति देने पर दिव्य चरु लिए साक्षात् अग्निदेव प्रकट (१।१८९।५-६)।

मूल शब्द – १।१८९।५।

सेतुबंध – रामेश्वर एवं लंका के बीच का कल्पित पुल जिसे राम ने वानरों की सहायता से निर्मित कराया। इसे 'आदम का ब्रिज' (पुल) भी कहा जाता है। ध० इ० तृ० पृ० १५०१ 'सेतु'। वि० को० के अनुसार 'आदम ब्रिज' 'नलसेतु' नहीं। जिन स्थानों को लोग सेतु कहते हैं, वे समुद्र से फेंके गये रेतीले पत्थर, अत्यन्त आधुनिक। वि० को० 'लंका'।

[वा० रा० में नल द्वारा सेतु-निर्माण-कार्य आरम्भ। इस प्रसंग में नील का उल्लेख नहीं। दे० 'नल'। पहले दिन चौदह, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल की संरचना। इस तरह नल द्वारा पाँच दिनों में (रामेश्वर से) सुवेल पर्वत के निकट तक सौ योजन लम्बे और दस योजन चौड़े सेतु का निर्माण। देव-गन्धर्व-सिद्ध-महर्षि आदि द्वारा इसके दर्शन। यह सुन्दर, समतल, सुसम्बद्ध। अचिन्त्य, अद्भुत, रोमांचकारी। सागर में सीमन्त की तरह, आकाश में स्वाति-पथ के सदृश शोभित। शत्रुओं से इसकी रक्षा के लिए गदापाणि विभीषण का सचिवों-सहित सागर-पार के तट पर खड़े हो जाना। वा० रा० ६।२२।६८-८१। महा० में राम का एक महीने में इसे पार करना। यह 'नल-सेतु' के नाम से विख्यात। महा० वन० २८३।४५, ५०।]

राम से नाम को बड़ा प्रतिपादित करने के प्रसंग में इसकी संरचना का कथन (१।२५।३)। सिन्धु के वचन सुन राम का सचिवों को आदेश – वे शीघ्र सेतु तैयार करें (६।१।सो०१)। जाम्बवान् का नल-नील को सेतु-निर्माण के लिए और वानर-भालुओं को वृक्ष-पर्वत लाने के लिए कहना (६।१।५-९)। सबका तद्रूप आचरण (६।१।१०-६।२।१)। नल-नील द्वारा अत्यन्त सुदृढ़ सेतु का निर्माण (६।३।७, ६।४।१)। इसकी अति सुन्दर रचना देखकर राम का हँसकर कथन – यहाँ की भूमि परम रमणीय, अति उत्तम। इसकी महिमा अमित। उनके द्वारा यहाँ शिवलिंग की स्थापना। रामेश्वर-माहात्म्य-कथन (६।२।२ - ६।३।३)। सेतु-महिमा-कथन – इसके दर्शन से भव-सागर-मुक्ति। राम के वचन सबको प्रिय (६।३।४-५)। [स्क० पु० ब्रह्म० १।८-५२ में इसका विस्तृत माहात्म्य।] इसके किनारे चढ़कर राम द्वारा सागर के विस्तार का दर्शन (६।४।३)। उनकी आज्ञा से सेना का प्रयाण। सेतु पर

अत्यधिक भीड़। सबका समुद्र पार करना (६।४।२, ६-६।५।२)। लौटते समय पुष्पक से इसे देखकर इसके निर्माण और लिंग-स्थापन का राम-कथन सीता से (६।११९ क)। भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में इसके सम्बन्ध में कथन (७।६७ ख)।

मूल शब्द – ६।४।३, ६।४।

पर्याय – **सेतु** – १।२५।३, ६।१।सो० १, ६।१।६, ६।१, ६।२।२, ६।३।४, ६।३।७, ६।४।१, ६।११९ क, ७।६७ क।

सेष (शेष) – पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग।

[(१) सृष्टि के आरम्भ में भगवान् की माया से काल के बाद ये उत्पन्न। जल में इनका शयन। वा० रा० ७।१०४।४-५, अ० रा० ७।८।२४-२५।

(२) कद्रू के नाग-पुत्रों में ये सबसे पहले प्रकट। महा० आदि० ३५।५, ६५।४१। इनके द्वारा कद्रू का त्याग। कठोर तप। ब्रह्मा का इन्हें धर्मनिष्ठ बने रहने का वरदान। उनका आदेश – हिलनेवाली पृथ्वी को धारण कर ये इस रूप में स्थित रहें कि वह अचल हो जाये। तब से पृथ्वी इनके मस्तक पर। ब्रह्मा का गरुड़ को इनका सहायक बनाना। इनके बाद अनुज वासुकि नागराज। महा० आदि० ३६।

(३) सप्तपातालों के नीचे अनन्त नाम से विख्यात भगवान् की तामसी नित्य कला (भा०), उनका शेष नामक तमोमय विग्रह (वि० पु०)। ये अहंकाररूप; द्रष्टा और दृश्य को खींचकर एक कर देते हैं, इसलिए संकर्षण (भा०)। इनके गुणों का अन्त नहीं, अतः अनन्त नाम से विख्यात (वि० पु०)। ये आदिदेव। इनके मणिमण्डित एक हजार मस्तक। एक मस्तक पर सरसों के दाने के समान रखा हुआ भूमण्डल। ये नीलाम्बर। कानों में केवल एक कुण्डल। गले में वैजयन्ती माला। हाथ हल की मूठ पर (भा०)। (वि० पु० में हाथों में हल और मूसल।) स्वस्तिक चिह्नों से विभूषित। अग्नियुक्त श्वेत पर्वत सदृश शोभाशाली। कल्पान्त में इनके मुखों से विषाग्नि-शिखा-सदृश देदीप्यमान् संकर्षण नामक रुद्र प्रकट। उनके द्वारा तीनों लोकों (भूः भुवः स्वः) का विनाश (वि० पु०)। इस तरह इनके द्वारा विश्व का उपसंहार (भा०)। भा० ५।२५।१-७, वि० पु० २।५।१३-२७।

इनके द्वारा सहस्र मुखों से भगवद्गुणों का निरन्तर गान, लेकिन उसका पार पाने में असमर्थ। भा० २।७।४१।]

खल-वन्दना में (प्रलयकालीन) रोषयुक्त शेष खलों के उपमान (१।४।८)। शारदादि-सहित इनके द्वारा भी 'नेति-नेति' कहकर भगवान् का गुणगान (१।१२)। लक्ष्मण-रूप में इनका अवतार-ग्रहण (१।१७।७, २।१२६।छं०)। राम-नाम के दो अक्षर 'कमठ सेष सम धर बसुधा के' (१।२०।७)। शेषनाग की शय्या पर भगवान् विष्णु का शयन (१।६६।५)। सब देवतादि के साथ ये रामाज्ञा के पालक (२।२५४।७)। राम के सेवक (५।१।श्लो०१)। उनके बल से धरणी को धारण करने में समर्थ (५।२१।६)। 'तपबल सेषु धरइ महिभारा' – पार्वती-कथन (१।७३।४)। ये शंकर के वक्षःस्थल पर सुशोभित (२।१।श्लो०१)। राम के धनुष-भंजन के समय कच्छप और वराहसहित इन्हें सावधान होकर पृथ्वी को धारण करने का लक्ष्मण का आदेश (१।२६०।१-२)। राम के धनु-भंजन की ध्वनि से कच्छप-वराह-सहित इनका कलमलाना (१।२६१।छं०)। राम-सैन्य का भार इनके लिए असह्य। बार-बार मोहित हो, कच्छप की पीठ को इनका दाँतों से पकड़ना, मानो राम की प्रस्थान-यात्रा की कथा लिख रहे हों (५।३५।छं०२)। राम के धनुष-बाण फेरते ही दिग्गज, महि, कमठ आदि के साथ इनका डोलना (६।८६।छं०)। 'सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस' – ग्रामवधुओं का सीता को आशीर्वाद (२।११७)। भरत का चरित्र आदि इनके लिए भी सुखद (२।२८८।६)। 'बैनतेय खग अहि सहसानन!' – सरोष अंगद-कथन रावण से (६।२६।७)। प्रभु 'भार धरन सत कोटि अहीसा' (७।९२।८)।

(ये पाताललोक के सर्वश्रेष्ठ वक्ता, शारदा स्वर्गलोक एवं ब्रह्मलोक की। मा० पी० १।१००।छं०, टिप्पणी २क।) शारदा आदि सहित इनके द्वारा गान– राम के गुणों का (१।१०८।६), उनके बालचरित का (शेषरामायण में। मा० पी०।) (१।२०४।१), अवधपुरी की शोभा का (७।९।८), राम-राज्याभिषेक के समय के समाज-सुख का (७।१२ क)। जनक-भाग्य और राम-गुण, चित्रकूट-वन-शोभा, भरत-प्रेम, भरत की रहनी आदि, सन्त-गुण, राम-रावण-समर-चरित्र आदि के वर्णन में इनकी असमर्थता का कथन – बहुलतः केवल शारदा अथवा श्रुति-शारदा के साथ। ऐसे कई स्थलों पर जातिवाचक रूप में प्रयोग।

मूल शब्द (लक्ष्मण के लिए भी प्रयुक्त) — १।४।८, १।१७।७, १।२०।७, १।१००।छं०, १।२०४।१, १।२३५ (जाति०), ३।४६।छं०, ५।५६।१ (जाति०), ६।७१।छं०, ६।१०१।छं० २ (जाति०), ६।१०४।६, ७।६।८, ७।११।६ (जाति०), ७।१२ क, ७।२६ (जाति०), ७।६९।४। सेषा (लक्ष्मण भी) — १।१८६।छं० ४, १।१६६।१२, १।३४२।२ (जाति०), २।२००।८ (जाति०) सेषु — १।७३।४, १।२८६, १।३१८ (जाति०), २।२२५। सेस — १।१२, १।१०८।६, २।३२५।८। सेसू — १।३५५।५ (जाति०), २।३०६।२।

पर्याय — **अहि** — १।६६।५, १।२६०।१, १।२६१।छं०, २।११७, ६।८६।छं०।

अहिनाहू — १।३६१।६।

अहिप — २।२५४।७।

अहिपति — २।२८८।६, ५।३५।छं० २।

अहिराजा — १।१६५।२, ३।१४।४।

अहीसा (लक्ष्मण भी) — १।१०५।३ (जाति०), ७।६२।८ (जाति०)। अहीसु — २।१२६।छं०।

फणीन्द्र — ५।१।श्लो०१।

फनीस — ७।२२।६।

महिधरु — २।१२६।छं०।

व्यालराट् — २।१।श्लो०१।

सर्पराज — ५।३५।छं०२।

सहसमुख — १।३३१।८।

सहससीसु — २।१२६।छं०। सहस्रसीस — १।१७।७।

सहसानन — २।१३६।६ (जाति०), ५।२१।६, ६।२६।७।

धरनीधर — २।३०६।२।

सोन — उत्तरी भारत की एक नदी। शोण।

[मध्यप्रदेश के अमरकण्टक पर्वत की अधित्यका में इसका उद्गम। यह पूर्व की ओर प्रवाहित। बिहार में दानापुर के पास गंगा से संगम। इसमें कई शाखा नदियाँ मिलती हैं। ग्रीष्म ऋतु में इसमें अत्यल्प जल, वर्षाऋतु में आप्लावन। मा० पी० १।४०।२ नोट ४।]

मानस-सर के रूपक में राम-लक्ष्मण का पावन समर-यश इस महानद के सदृश। दक्षिण से आकर इसका गंगा से मिलना (१।४०।२)।

सोरठा — एक मात्रिक छन्द।

[इसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में ग्यारह-ग्यारह तथा सम (दूसरे और चौथे) चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ, अर्थात् प्रत्येक दल (पंक्ति) में चौबीस मात्राएँ। पहले और तीसरे चरण में तुक मिलना चाहिये। इसके चरणों को उलटकर पढ़ने से दोहा। काव्य०।]

छन्द, सोरठा, दोहा मानस-सर के बहुरंगी कमल-समूह (१।३७।५)।

स्वपच (श्वपच) — श्वपच (चाण्डाल) जाति के 'बाल्मीकि' (वाल्मीकि) नामक भगवद्भक्त। ये 'गुप्त' भक्त, प्रभु-प्रिय। आदिकवि से भिन्न।

[राजा होने के बाद युधिष्ठिर द्वारा इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ। वहाँ एक अभिमन्त्रित शंख स्थापित। यज्ञ की पूर्णता तब जब शंख स्वतः बज उठे। शंख का न बजना। युधिष्ठिर को चिन्ता। कृष्ण द्वारा शंख न बजने का रहस्य-कथन — इतने श्रेष्ठ ऋषियों के बावजूद किसी सच्चे भक्तिरस-रसिक का यज्ञ में भोजन न करना। ऐसे भक्त का लक्षण-निरूपण (भक्ति विरति विज्ञान निधाना। बास बिहीन गलित अभिमाना।। रहहिं अपनपौ सदा दुराए। सब बिधि कुशल कुबेष बनाए।। तेहिते कहहिं सन्त श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।।)। ऐसा भक्त कौन? सब की व्याकुलता। अन्ततः यज्ञ-पूर्ति के लिए कृष्ण का संकोचपूर्वक ऐसे 'गुप्त' भक्त का नाम प्रकट करना। वे वाल्मीकि। अर्जुन, भीम का जाकर विनयपूर्वक इनको लाना। युधिष्ठिर द्वारा सत्कार। इनके मुँह में पहला ग्रास रखते ही शंख का बजना, पर भली भाँति नहीं। कृष्ण के कारण पूछने पर शंख का द्रौपदी से पूछने के लिए कथन। द्रौपदी

की स्वीकारोक्ति – उनमें जाति-बुद्धि का प्रवेश, क्योंकि वाल्मीकि ने सब वस्तुएँ एक में मिलाकर उनकी पाक-कुशलता की अवज्ञा की। वाल्मीकि ने ऐसा क्यों किया, कृष्ण की इस जिज्ञासा पर वाल्मीकि-कथन– सब वस्तुएँ पहले कृष्ण को ही प्राप्त, अतः सब उन्हीं का प्रसाद। अब उस प्रसाद के पृथक्-पृथक् स्वाद की इच्छा नहीं। स्वाद से प्रसाद का भाव जाता रहता है। तब द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि का इनके प्रति अधिक श्रद्धा-भाव और शंख का बज उठना। भक्त पृ० १५६-१६३।]

यवन, किरात आदि उन व्यक्तियों के साथ इनका उल्लेख जो जाति से पतित होने पर भी रामनाम के प्रताप से परम पवित्र और लोक-प्रसिद्ध (२।१६४, ७।१३०।छं०१)।

मूल शब्द – २।१६४, ७।१३०।छं० १ (स्वपचादि)।

स्वर्ग – देवलोक।

[स्वर्ग-सम्बन्धी धारणाओं का आधार वैदिक साहित्य। ऋगवेद की कुछ ऋचाओं में तीन स्वर्गों का उल्लेख। ऋ० १।३५।६, ८।५।८, ८।४१।६, ६।११३।६। दयालु दाता या पूजक स्वर्ग जाने और देवों से मिलने का अधिकारी। मित्र एवं वरुण जैसे देवता अमरता देने के लिए प्रार्थित। ऋ० १।१२५।५, ५।६३।२, १०।१०७।२। यहाँ का जीवन आनन्द-प्रकाशमय। सब कामनाएँ पूर्ण। ऋ० ६।११३।१०-११। पवित्र होकर मृतकों का यहाँ अपने इष्टापूर्त्त (यज्ञों एवं दानपुण्य-कर्मों से उत्पन्न धर्म या गुण) एवं पूर्वजों से मिलन। देदीप्यमान देह की प्राप्ति। ऋ० १०।१४।८। यहाँ यम का वास। बाँसुरियों-गीतों का नाद। ऋ० १०।१३५।७। अथर्ववेद ३।३४।२, ५-६ में यहाँ के नानाविध भोगों के सम्बन्ध में सूचना। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२।५-६ के अनुसार यज्ञकर्त्ता आकाश में दीप्त नक्षत्ररूप में प्रतिष्ठित। ध० इ० तृ० पृ० १०६७-१०६८।

भूः, भुवः (अन्तरिक्ष), स्वः, इन तीन लोकों में स्वर्लोक ही स्वर्ग। अमर० १।६। इसका विस्तार सूर्यलोक से ध्रुवलोक तक। वि० पु० २।७।१८। सकाम वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से अर्जित पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति। गीता० ६।२०। इसके सात प्रवेश-द्वार – तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता, एवं समस्त प्राणियों के प्रति दया। महा० आदि० ६०।२२। यहाँ सुवर्णमय पर्वतराज मेरु जिसमें नन्दन आदि उद्यान, पुण्यात्माओं के विहारस्थल। सब ओर मनोहर दृश्य, मोहक सुरभि, मधुर शब्द, सुखद स्पर्श। क्षुत्पिपासा, हिम-आतप, मोह-मात्सर्य, ईर्ष्या-भय-ग्लानि, जरा-रोग-शोक आदि का सर्वथा अभाव। (स्वर्गे लोके न भयं किंचिनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।। कठोपनिषद् १।१२। ध० इ० तृ० पृ० १०६६ पाद०।) यहाँ के निवासियों के शरीर में तैजस् तत्व की प्रधानता। कभी न कुम्हलानेवाले दिव्य सुगन्धि-पुष्पों की माला से ये विभूषित। महा० वन० २६१।८-१६। देव, गन्धर्व, दिव्य अपसराएँ इनकी सेवा में नियोजित। महा० स्वर्ग० ३।२४।

तैंतीस देवताओं के अलग-अलग लोक। महा० वन० २६१।२५। ऊपर की ओर क्रमशः एक के बाद दूसरे लोक की स्थिति। पुण्यात्मा का अर्जित पुण्य जितना अधिक, उतने ही ऊर्ध्व लोकों की प्राप्ति। हरिश्चन्द्र की भाँति युधिष्ठिर को भी अन्य राजाओं से ऊपर भगीरथ, दुष्यन्तकुमार, भरत आदि के समकक्ष लोक प्राप्त। महा० स्वर्ग० ३।२६-२७।

स्वर्ग-गमन ऐहिक शरीर का अन्त होने पर ही। यहाँ सशरीर प्रवेश निषिद्ध। त्रिशंकु के सशरीर स्वर्ग जाने की हठपूर्ण चेष्टा के कारण उनकी दुर्गति। दे० 'त्रिसंकू'। किन्तु अपवाद सम्भव। अर्जुन का स्वर्ग जाकर इन्द्र से समस्त दिव्यास्त्र प्राप्त करना। महा० वन० ३७।१४-२३, वन० ४१-४४, ४७। युधिष्ठिर का स्वर्ग-गमन और अक्षय लोकों की प्राप्ति राग-द्वेषमय मानव-देह से ही। देवनदी आकाशगंगा में स्नान करने पर मानव-स्वभाव और मानुषी देह का अन्त, दिव्य देह की प्राप्ति। महा० महाप्र० ३।६, २२, स्वर्ग० ३।४१, ४२। तपोनिष्ठ महर्षियों का अन्य ऊर्ध्वलोकों की भाँति यहाँ भी निर्बाध प्रवेश।

पृथ्वी कर्मभूमि, स्वर्ग भोगभूमि। सत्कर्मों से अर्जित पुण्यों का व्यय करने पर ही यहाँ के भोग उपलब्ध। पुण्य शेष होने पर भोग समाप्त और स्वर्ग से पतन। कर्म करने के लिए पुनः मनुष्य योनि में जन्म। महा० वन० २६१।२८-२६, ३३-३५। स्वर्ग का इसी प्रकार का वर्णन प० पु० भू० ६५ में। न० पु० में मेरु-शिखर पर आनन्द, प्रमोद, सौख्य आदि इक्कीस स्वर्गों की स्थिति। इस लोक के एक के ऊपर एक दस मार्ग जिनमें क्रमशः कार्त्तिकेय, मातृकाएँ आदि स्थित। न० पु० ३०। स्वर्ग के राजा की उपाधि 'इन्द्र', राजधानी अमरावती। दे० 'अमरावती'।

इसके नौ नाम — स्वः, स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक, द्यो, दिव् एवं त्रिपिष्टप। अमर० १।६।

जगत् के आस्तिकमात्र का स्वर्ग पर विश्वास। नास्तिक चार्वाक्-मत में यह कपोल-कल्पना। उसके अनुसार भोगायतन देह के पतन के बाद दुःख-सुख की आत्यन्तिक निवृत्ति, अतः कल्पित स्वर्ग-प्राप्ति के साधन यज्ञ-तप आदि व्यर्थ। ऐहिक सुखों की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य। भा० द० पृ० १३३-१३५।]

नरक के विपरीत अर्थ में इसका उल्लेख (१।६।९, २।४५।१, २।९२।७)। यह सत्समाज का उपमान (१।११३)। इन्द्रजित् के कारण यहाँ नित्य पलायन (१।१८०।८)। राम-शर से निहत मृगों को इस लोक की प्राप्ति (१।२०५।३)। महि-पाताल के साथ यहाँ भी रामयश व्याप्त (१।२६५।५)। 'सुरपुर सरिस संपदा छाए' (१।३०४।६)। सीता-आज्ञा से सब सुख-सम्पदा और यहाँ के भोग-विलास लेकर सिद्धियों का जनवासे में जाना (१।३०६)। राम-बरात के समय यहाँ की अप्सराओं का (आकाश में) नृत्य-गीत (१।३०९।४)। 'तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान' — सीता-कथन राम से (२।६४)। राम के साथ होने पर सीता के लिए पर्णकुटी भी इस लोक के समान सुखद (२।६५)। राम-वन-गमन के समय यहाँ हर्ष और विषाद दोनों (२।८१।४)। राम के वन-मार्ग के निकट रहनेवालों की देवताओं द्वारा सराहना (२।११३।४)। नरक और अपवर्ग के साथ उल्लेख (२।१३१।७)। राम-वियोग में दशरथ की स्थिति — 'सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती' (२।१४८।६)। 'राम गयउ सुरधाम (२।१५५)। दशरथ के इस लोक में जाने का कथन या उल्लेख (२।१६०।२, २।१६१।३, २।१६४।७, २।१७७, २।१७९।४, २।१८०।३, २।२४७।३)। सरयू-तीर पर दशरथ के लिए रची गयी चिता मानो इस लोक का सोपान (२।१७०।४)। भरत से वसिष्ठ-कथन — पितृ-वचन-पालक का अन्त में इस लोक में वास। भरत पिता के वचन पालें, तो दशरथ को इस लोक में सन्तोष होगा। (२।१७४, २।१७५।२)। भरत-आतिथ्य के लिए सिद्धियों द्वारा आयोजित वस्तुएँ इस लोक में भी दुर्लभ (२।२१४।७)। अवध और जनकपुरी के समाज के लिए सीता-राम के साथ वन में वास 'कोटि अमरपुर सरिस सुपासू' (२।२८०।३ जाति०)। स्वर्ग-अपवर्ग के सब सुख मिलकर क्षणभर के सत्संग-सुख के बराबर नहीं (५।४)। लंका-युद्ध के बाद आये दशरथ का राम को प्रणाम और सुरधाम-गमन (६।११२।८)। राम-कथन पुरवासियों से — 'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई', 'तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा' (७।४४।१, ७।४६।७)। मानुषी देह 'नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी' — भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (७।१२१।१०)।

मूल शब्द — ५।४, ७।४४।१, ७।४६।७, ७।१२१।१०। सरग — १।६।९। सरगु — २।९२।७, २।१३१।७।

पर्याय — **अमरपति ऐन** — २।१७४।

अमरपति सदन — २।१६१।३।

अमरपुर (अमरावती भी) — २।१७९।४, २।१८०।३, २।२८०।३ (जाति०)।

नाक — १।२६५।५, १।३०९।४।

सुरधाम — २।१५५। सुरधामा — ६।११२।८।

सुरपति पुर — २।१६०।२।

सुरपुर — १।१८०।८, १।३०४।६, १।३०६, २।६४, २।११३।४, २।१४८।६, २।१६४।७, २।१७०।४, २।१७५।२, २।१७७, २।२१४।७, २।२४७।३। सुरपुरु — २।४५।१।

सुरलोक — १।११३, १।२०५।३। सुरलोकू — २।८१।४।

सुरसदन — २।६५।

स्वाति — सत्ताईस नक्षत्रों में पन्द्रहवाँ जो शुभ माना गया है। बृ० को०।

[वर्षा के दस नक्षत्रों में अन्तिम। मा० पी० ६।७२।३ नोट १ के बाद पं० वि० त्रि०। यह कवि-प्रसिद्धि कि इसमें होनेवाली वर्षा का जल भिन्न-भिन्न चीजों में पड़कर भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करता है — 'सीप गए मोती भयो, कदली भयो कपूर। अहिगण के मुख विष भयो, संगति को फल सूर।।' इसी तरह हाथी के कान में पड़ने से मुक्ता, गाय में पड़ने से गोरोचन और बाँस में पड़ने से बंसलोचन। मा० पी० १।११।८ नोट। चातक इसके जल के अतिरिक्त अन्य कोई जल नहीं ग्रहण करता — 'जाचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल'। दो० ३०७।]

सरस्वतीरूपी स्वाति बुद्धिरूपी सीप में विचाररूपी जल की वर्षा करे, तो कवितारूपी मुक्तामणि का सृजन (१।११।८)। धनुर्भंग से सीता को सुख, 'जनु चातकी पाइ जल स्वाती' (१।२६३।६)। सबके लिए राम-

राज्याभिषेक-मुहूर्त्त, 'जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति' (२।५२)।

मूल शब्द — १।११।८, २।५२। स्वाती — १।२६३।६।

स्वायंभू मनु (स्वायम्भुव मनु) — मानव-सृष्टि के प्रवर्त्तक। सार्वभौम सम्राट्।

ब्रह्मा > स्वायम्भुव मनु-शतरूपा > (१) प्रियव्रत ~ बर्हिष्मती, एक दूसरी भार्या, (२) उत्तानपाद ~ सुनीति, सुरुचि, (३) आकूति ~ रुचि प्रजापति, (४) देवहूति ~ कर्दम, (५) प्रसूति ~ दक्ष प्रजापति।

भा० ३।१२।५२-५६, ४।८।७-८, ५।१।२४, २८।

[इनसे पहले मानसिक सृष्टि, अतः ब्रह्मा के निरन्तर प्रयत्न करने पर भी प्रजा-वृद्धि नहीं। तब वे द्विधा विभक्त। एक भाग से पुरुष प्रकट। ये मनु। स्वयम्भू (ब्रह्मा) से उत्पन्न होने के कारण 'स्वायम्भुव'। दूसरे भाग से उत्पन्न स्त्री शतरूपा। दोनों पति-पत्नी। ब्रह्मा द्वारा इनके कर्तव्य का निर्देश — अपनी भार्या से सन्तानोत्पत्ति, धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन, यज्ञों द्वारा हरि की आराधना। इनके समय से मिथुन-धर्म द्वारा प्रजा-वृद्धि की परम्परा आरम्भ। इनके दो पुत्रों और तीन कन्याओं की सन्तति से ही सारा संसार आपूर्ण। भा० ३।१२।४६ - ३।१३।१३। इनकी राजधानी बर्हिष्मती पुरी। भार्या और सन्ततिसहित धर्मसम्मत भोगों का इनके द्वारा अनासक्त भाव से भोग। हरि-कथा का श्रवण, ध्यान, रचना, निरूपण। मुनियों के पूछने पर समस्त वर्णों आश्रमों के मंगलमय धर्मों का निरूपण (मनुसंहिता)। इस प्रकार इकहत्तर चतुर्युग व्यतीत कर राज्य छोड़ पत्नीसहित वन-गमन और सुनन्दा नदी के किनारे कठोर तप। भा० ३।२२।२८-३९, ८।१।७-१८।

इनके मन्वन्तर में अवतार — यज्ञपुरुष एवं कपिल का। भा० ३।२५।१, ४।१।४, ८।१।५। सप्तर्षि — मरीचिरत्रिर्भगवानंगिराः पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः।। ह० पु० ७।८।

महा० में इनकी पत्नी सरस्वती। उद्यो० ११७।१४। ब्रह्मा की इन्हें राजा होने की आज्ञा, किन्तु मिथ्याचारी मनुष्यों पर शासन दुष्कर कहकर इनके द्वारा अस्वीकार। फिर प्रजा का विशेष आग्रह मानकर उनकी रक्षा का भार-ग्रहण। इनके तेज और महत्व से आतंकित हो पापाचारियों द्वारा भी धर्माचरण। शा० ६७।२२-३३। ये प्रजापति। शा० २०१।२। सिद्धों की जिज्ञासा पर इनके द्वारा धर्म का स्वरूप-निरूपण, दान के अधिकारी-अनधिकारी का विवेचन, आदि। शा० ३६। वृहस्पति के प्रश्न पर बुद्धि आदि प्राकृतिक तत्व, आत्मतत्व और परमात्म-तत्व का निरूपण। शा० २०१-२०६। इनका धर्मशास्त्र पांचरात्र आगम के अनुसार। शा० ३३५।४४-४५।

इनके द्वारा रचित 'मनुस्मृति' प्रामाणिक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में मान्य। इनके नाम से 'मनुसंहिता' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त। प्रा० च०।

'मनु' शब्द क्रमशः चौदह प्रजापति या भूलोक-प्रभु के लिए प्रयुक्त। आ० को०। स्वायम्भुव मनु के बाद तेरह मनु और। प्रत्येक का शासन-काल मन्वन्तर। मन्वन्तर का नाम मनु के नाम पर। प्रत्येक मन्वन्तर में इन्द्र, सप्तर्षि आदि भिन्न-भिन्न। एक कल्प (ब्रह्मा का एक दिन या एक हजार चतुर्युगी) में चौदह मनु, अर्थात् चौदह मन्वन्तर। प्रत्येक मनु या मन्वन्तर की अवधि इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक। वर्तमान् काल में सातवाँ मन्वन्तर। इसमें मनु विवस्वान्-पुत्र वैवस्वत। इस मन्वन्तर का नाम वैवस्वत् मन्वन्तर। भा० ३।११, ८।१३।१।]

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से अनुपम मानव-सृष्टि। इनके द्वारा उत्तम धर्माचरण। इनके धर्म की लीक का अब भी वेदों द्वारा गान (१।१४२।१-२)। इनके बड़े पुत्र उत्तानपाद, छोटे पुत्र प्रियव्रत। भगवान् कपिल को गर्भ में धारण करनेवाली कर्दम-प्रिया देवहूति इनकी कन्या (१।१४२।३-७)। प्रभु-आज्ञा का पालन करते हुए इनके द्वारा दीर्घकाल तक राज्य-संचालन। इनका चिन्तन — घर में रहते हुए वृद्धावस्था का आगमन, पर विषयों से विराग नहीं। इन्हें दुःख — हरिभक्ति बिना यों ही जन्म नष्ट! (१।१४२।८ - १।१४२)। पुत्र को राज्य सौंपकर पत्नी के साथ इनका नैमिषारण्य-गमन। मार्ग में जाते हुए दोनों ऐसे शोभित जैसे शरीरधारी ज्ञान और भक्ति। गोमती के किनारे पहुँच, हर्षित हो, निर्मल जल में स्नान (१।१४३।१-५)। इन्हें धर्मधुरन्धर राजर्षि जानकर ज्ञानी और सिद्ध मुनियों का इनसे मिलने के लिए आना (१।१४३।६)। इन्हें वहाँ के सब तीर्थ करवाना। कृशगात, मुनि-वस्त्र (वल्कल) पहने इनके द्वारा सन्त-समाज में नित्य पुराण-श्रवण। द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जप। वासुदेव के पदकंज में मन लीन (१।१४३।७-१।१४३)। दे० 'द्वादस अच्छर मंत्र'। साग, फल, कन्द का आहार। सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण। फिर हरि के लिए तप। फल-मूल का त्याग, केवल जल का आधार। हृदय

में निर्गुण ब्रह्म के दर्शन की अभिलाषा। मन में विश्वास – यदि प्रभु भक्त के वश में, यदि वे भक्त के लिए लीला-विग्रह धारण करते हैं, तो इनकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी (१।१४४।१-८)। इस तरह जल के आधार पर छः हजार वर्ष व्यतीत। फिर सात हजार वर्षों तक केवल वायु का आधार। उस आधार का भी दस हजार वर्षों तक त्याग। एक पाँव पर स्थित। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का अनेक बार इनके पास आना, वर माँगने के लिए कहना, पर ये अडिग। इनका शरीर अस्थिशेष, किन्तु मन पीड़ा-मुक्त (१।१४४-१।१४५।४)। इनकी अनन्य गति देख सर्वज्ञ प्रभु का इन्हें 'निज दास' मानना। आकाशवाणी – ये वर माँगें। सुनकर ये पुलकित, प्रेम-विभोर। दण्डवत् कर इनकी याचना–जो स्वरूप शिव और काकभुशुण्डि के मन में, जिसकी प्राप्ति के लिए मुनि यत्नशील, वेदों द्वारा जो सगुण-निर्गुण कहकर प्रशंसित, उसी स्वरूप को ये आँखें भरकर देखें (१।१४५।५ - १।१४६।६)। भगवान् का प्राकट्य। उनके (राम-सीता के) अनुपम रूप को निर्निमेष निहारते हुए भी इन्हें तृप्ति नहीं। ये आनन्दविभोर। देह-सुधि विस्मृत। प्रभु-चरणों में दण्ड की भाँति गिरना। प्रभु का अपने हाथों से इनका मस्तक स्पर्श करना, उठाना। वर माँगने के लिए कहना (१।१४६।७-१।१४८)। राजा की लालसा प्रभु के समान पुत्र-प्राप्ति की। इस पर प्रभु-कथन – 'आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई।।' (१।१४९।१ - १।१५०।२)। [एक कल्प में यह रामावतार का कारण!] इनकी विनती – प्रभु के प्रति इनकी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्र के प्रति पिता की। इनका जीवन प्रभु के अधीन हो। इन्हें प्रभु का आदेश – ये अब अमरावती में जाकर रहें। कुछ काल पश्चात् ये अवध-नरेश (दशरथ) होंगे और प्रभु इनके पुत्र। आदिशक्ति भी अवतार लेंगी। कहकर प्रभु अन्तर्धान (१।१५१।४ - १।१५२।६)। कुछ काल तक आश्रम में रहकर, पत्नीसहित देह त्याग इनका अमरावती-गमन (१।१५२।७-८)। इनके पवित्र इतिहास का शिव द्वारा पार्वती से कथन (१।१५२)। राम के उदर में भुशुण्डि को भिन्न-भिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न मनुओं के दर्शन (७।८१।१)।

मूल शब्द – १।१४२।१। मनु – १।१४२।८, १।१४३।३, १।१४५।२, १।१४५, १।१४८।६, १।१५१।४, ७।८१।१ (जाति०)।

इनके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द – **धरम धुरंधर** (राम, दशरथ, भरत, सत्यकेतु भी) – १।१४३।६।

हनुमान – पवन के पुत्र। अनन्य रामभक्त। वा० रा० ७।३६।११ के अनुसार इन्द्र के वज्र से इनका हनु-भंजन होने के कारण उनके द्वारा यह (हनुमान्) नामकरण।

[ये वाली और रावण से अधिक बली। वा० रा० ७।३५।२। पराक्रम और गति में गरुड़-तुल्य। वा० रा० ४।६६।४-६। प्रलयकालीन महासमुद्र, लोकनाशक अग्नि, लोकसंहारक काल के समान प्रभावशाली। वा० रा० ७।३६।४८। 'पराक्रमोत्साह –मति – प्रताप – सौशील्य – माधुर्य – नयानयैश्च। गाम्भीर्य – चातुर्य – सुवीर्य – धैर्यर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके।।' वा० रा० ७।३६।४४।

(१) जन्म – (क) वानरराज कुंजर की पुत्री और सुमेरु के राजा केसरी की पत्नी अंजना को एक बार रूप-यौवन-सम्पन्ना मानवी के रूप में देखकर पवनदेव काम-मोहित। उनके द्वारा अंजना का वस्त्र-हरण। मानसिक संकल्प से भोग। फलतः हनुमान् का जन्म। वायु का इन्हें वरदान – 'महासत्वो महातेजा महाबलपराक्रमः। लंघने प्लवने चैव भविष्यति मया समः।।' वा० रा० ४।६६।८-२०।

(ख) पुत्रकामेष्टि यज्ञ में दशरथ को अग्नि से पायस प्राप्त। उसका रानियों में वण्टन। पायस का कुछ अंश लेकर एक चील का उड़ जाना। उसकी चोंच से पायस का तपोमग्न अंजनी की अंजलि में गिरना। पायस के प्रसाद से हनुमान्-जन्म। प्रा० च० के अनुसार आनन्दरामायण।

(ग) भगवान् के मोहिनीरूप-दर्शन से कामोत्सुक हो, राम-कार्य-सिद्धि के लिए, शंकर का वीर्यपात। उनकी प्रेरणा से सप्तर्षि का उस तेज को पत्र-पुटक में रखना, फिर गौतम-कन्या अंजनी में श्रुतिमार्ग से स्थापित करना। इस तरह शिवावतार हनुमान् का जन्म। सं० शि० पु० शत० पृ० ३१५।

(घ) एक बार रौद्रतेज के रूप में शिव का केसरी के मुख में प्रवेश और अंजनी से समागम। पश्चात् वायु का भी केसरी-शरीर में प्रविष्ट हो अंजनी के साथ रमण। वानरमुख हनुमान् का जन्म। इनका विरूप मुख देख इन्हें पर्वत के नीचे फेंकने की अंजनी की चेष्टा, किन्तु पवन की कृपा से ये जीवित। प्रा० च० के अनुसार भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व।

(ङ) गणेश-जन्म के बाद शिव-पार्वती का वानररूप में वन में रमण। गर्भवती पार्वती को वानर-पुत्र की प्राप्ति अरुचिकर। अतः शिव द्वारा वह गर्भ पवन को अर्पित। पवन द्वारा वह अंजना में स्थापित। अंजना के गर्भ में शिव-पुत्र होने की बात नारद से सुनकर वाली को वानरों पर अपने स्वामित्व की चिन्ता। नारद के परामर्श से गर्भनाश के लिए पाँच धातुओं को घोलकर उनका अंजना को पिलाना। हनुमान् उन धातुओं से विनष्ट होने के बदले उन्हीं के कर्णाभूषणसहित उत्पन्न। पी० ई० के अनुसार कम्ब रामायण, पूर्वकाण्ड।

तुलसीदास के मत से भी ये शिवावतार — 'जयति मर्कटाधीस, मृगराज बिक्रम, महादेव मुदमंगलालय कपाली।' 'जयति मंगलागार संसारभारापहर, वानराकार बिग्रह-पुरारी।' वि० प० २६, २७।

(२) शैशव और वरप्राप्ति—- एक दिन माता की अनुपस्थिति में ये क्षुधा-व्याकुल। उदित होते हुए सूर्य को लाल रंग का फल समझ उसकी प्राप्ति के लिए इनका उड़ना। सूर्य-ताप से इनकी रक्षा के लिए वायु का हिमशीतल-होकर इनके पीछे-पीछे जाना। सूर्य की इनके प्रति प्रसाद-दृष्टि। उन्हें ग्रस्त करने के लिए उद्यत राहु का इनके द्वारा स्पर्श। भय से भागता हुआ वह इन्द्र का शरणागत। उन्हें इस दूसरे राहु (हनुमान्) को दिखाकर उसका पलायन। तब सूर्य को छोड़ उसी को फल समझ इनका उसके पीछे दौड़ना। इसी बीच ऐरावत को देख ये उसे पकड़ने को उद्यत। इन्द्र द्वारा इन पर वज्रप्रहार। इनका एक पर्वत पर गिरना। इनकी बायीं हनु का टूटना। इससे वायुदेव इन्द्र पर कुपित। सब ओर से स्वयं को समेटकर वे इन्हें ले पर्वत-गुहा में प्रविष्ट। त्रिलोक त्रस्त। देवताओंसहित ब्रह्मा का गुहा में आना। उनके कर-स्पर्श से ये पुनः जीवित। देवताओं का इन्हें वरदान — (क) इन्द्र — उनके वज्र से अवध्यता का। (वा० रा० ४।६६।२९ में स्वच्छन्द-मरण का।) (ख) सूर्य — अपने तेज के शतांश का दान। इन्हें शास्त्रज्ञान प्रदान करने का वचन। शास्त्रज्ञों में इनके अद्वितीय होने का कथन। (ग) वरुण—उनके पाश और जल से अवध्य होने का। (घ) यम — उनके दण्ड से अवध्यता, नीरोगता का। (ङ) कुबेर — उनकी गदा से अवध्यता और युद्ध में कभी विषाद न होने का। (च) शंकर — उनके आयुधों द्वारा और स्वयं उनके द्वारा अवध्य होने का। (छ) विश्वकर्मा— उनके बनाये दिव्यास्त्रों से अवध्य रहकर चिरजीवी होने का। (ज) ब्रह्मा — दीर्घायु, महात्मा और सब प्रकार के ब्रह्मदण्डों से अवध्य होने का। उनका अन्य वर — 'कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः। भवति अव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति।।' वा० रा० ७।३५।१६ - ७।३६।२७, ४।६६।२१ - ४।६६।२६। सं० शि० पु० शत० पृ० ३१५ में इनका सूर्य-बिम्ब को निगल जाना। देवताओं की प्रार्थना पर उन्हें महाबली सूर्य जानकर उगल देना। इन्हें शिव का अवतार मान देवताओं का वरदान।

(३) शाप— वर-जनित शक्ति से सम्पन्न हो इनका ऋषियों के आश्रमों में उत्पात, मर्यादा का उल्लंघन। अंजना और वायु के मना करने का कोई प्रभाव नहीं। ब्रह्मदण्डों से इनकी अवध्यता के कारण ऋषि इनका उपद्रव सहने को विवश। अन्त में भृगु और अंगिरावंशी ऋषियों का शाप — इन्हें अपने बल का विस्मरण हो। किसी के द्वारा स्मरण कराये जाने पर अपने बल का ज्ञान हो सके। फलतः इनके तेज-ओज का ह्रास। मृदुल प्रकृति हो इनका आश्रमों में विचरण। वा० रा० ७।३६।२८-३६।

(४) विद्यार्जन— विद्या प्राप्त करने के लिए इनका सूर्य के पास जाना। महान् ग्रन्थ धारण कर, सूर्य की ओर मुँह करके अध्ययन करते हुए उनके आगे-आगे इनका उदयाचल से अस्ताचल तक गमन। इस प्रकार सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य, संग्रह, छन्दशास्त्र, नव व्याकरण तथा अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन। सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञान और तप-अनुष्ठान में ये वृहस्पति के समान। वा० रा० ७।३६।४५-४७।

सूर्य की आज्ञा और माता की अनुज्ञा से इनका सुग्रीव के निकट गमन। सं० शि० पु० शत० पृ० ३१६। उनके साथ किष्किन्धा में वास।

(५) जड़-निरपेक्ष रामनाममयता— विभीषण द्वारा राम को अमूल्य रत्नों की माला भेंट। प्रभु का उसे इनके गले में डालना। उसमें कहीं राम-नाम न देख इनका एक-एक मणि को तोड़कर देखना। कहीं प्रभु का नाम न पाकर उसे फेंक देना। विभीषण के पूछने पर माला के तिरस्कार का कारण बताना। इस पर विभीषण-कथन — इनके शरीर में भी तो कहीं राम-नाम नहीं, फिर उसे धारण करने का कारण? यह सुन इनका अपने नखों से अपने शरीर की त्वचा को खोलना। इनके सर्वांग में सबको राम-नाम के दर्शन। भक्त पृ० ८२-८३।

(६) राम का वरदान— राम के परमधाम-गमन के समय उनसे उनकी अनन्य भक्ति के अतिरिक्त इन्हें यह

वर प्राप्त कि जब तक लोक की स्थिति और रामकथा प्रचलित, तब तक इनकी कीर्त्ति और ये जीवित रहें। अप्सराएँ इन्हें रामचरित सुनाया करें। वा० रा० ७।४०।१६ - २२, ७।१०८।३२-३६, महा० वन० १४८।१६-१७। वैदूर्यमणि-मण्डित हार अपने कण्ठ से उतारकर प्रभु का इनके कण्ठ में बाँधना। वा० रा० ७।४०।२५-२६। अ० रा० ७।६।३५ में प्रभु-कथन — 'मारुते त्वं चिरंजीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः।।'

(७) कृष्णावतार में— गन्धमादन पर्वत के कदली-वन में इनका निवास। वहाँ गन्धर्व-अप्सराओं से राम-चरित्र-गान सुनकर ये आनन्दमग्न। महा० वन० १४६।५०, ५१, ६५, १४८।२०। इनका भीमसेन को आत्मपरिचय देकर संक्षेप में रामचरित सुनाना। महा० वन० १४७।२७-१४८।१६। उन्हें चारों युगों और चारों वर्णों का धर्म समझाना। महा० वन० १४९, १५०। युद्ध में अर्जुन की ध्वजा पर बैठकर गर्जना करने तथा भीम के सिंहनाद को अपने गर्जन से और बढ़ाने का इनका भीमसेन को वरदान। महा० वन० १५१।१६-१८।

(८) मारुति-पूजा— तुलसीदास द्वारा इनकी पूजा का नये सिरे से नये रूप में प्रसार। उनके द्वारा काशी में बारह स्थानों पर इनके मन्दिरों का निर्माण। उनके साथ अखाड़ों की योजना। उनके सम्मुख राम-मन्दिर बनाने की विधि का निश्चय। तुलसी द्वारा उत्तरापथ में प्रसारित इनकी पूजा के आदर्श पर समर्थ गुरु रामदास द्वारा दक्षिण में इनके पूजन का प्रचार। हि० अ० पृ० २३३-२३४, २४६। अ० पु० ५१ पृ० ६१ में इनकी मूर्त्ति का लक्षण — इनके हाथ में वज्र। दोनों पैरों के नीचे एक असुर दबा हुआ। ध० इ० च० पृ० २३५ के अनुसार चैत्र शुक्ल १५ को इनकी जयन्ती।

(९) हि० ध० पृ० ६६७ के अनुसार वास्तव में वानर एक विशेष मानव-जाति जिसका धार्मिक लांछन (चिह्न) वानर अथवा उसकी लांगूल। पुराण कथाओं में यही वानर पशु रूप में वर्णित।]

ये और वाल्मीकि सीताराम के गुणगणरूपी पुण्यवन में विहार करनेवाले। विशुद्ध विज्ञान-सम्पन्न। इनकी वन्दना (१।१।श्लो०४)। 'महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना।। प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।' (१।१७।१०, १।१७)। 'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।' (१।२६।६)।

राम-लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत की ओर आते देख भयभीत सुग्रीव के आदेश से इनका विप्र-वेश में दोनों भाइयों के पास जाना। नमन। स्वामी कहकर सम्बोधन। वन में उनके घूमने का कारण पूछना। जिज्ञासा — वे त्रिदेव में कोई दो? अथवा नर-नारायण? अथवा महिभार उतारने के लिए मनुष्यरूप में अवतरित अखिल भुवनपति के ही दो रूप? (४।१।३-४।१)। राम का परिचय पाकर प्रभुरूप में उन्हें पहचानकर, इनका साष्टांग दण्डवत् करना। [प्रभु का परिचय १।१८६-१।१८७।८ की आकाशवाणी के अनुरूप होने के कारण इनका उन्हें पहचानना। वि० ४।२।५ व्या०, मा० पी० ४।२।५ मा० त० भ०। आकाशवाणी में नारद-वचन के १।१३७।६-८ की ओर संकेत।] सुखातिरेक से इनके शरीर में पुलक। वाणी मूक। फिर धीरज धरकर स्तुति। कथन — प्रभु-मायावश ये उन्हें पहचानने में असमर्थ। स्वयं को मन्द, मोहवश, कुटिल-हृदय आदि कहकर, शरणागत हो, इनका प्रभु-चरणों में गिरना। अपना वानर-रूप प्रकट करना (४।२।१ - ४।३।५)। प्रभु का इन्हें उठाकर हृदय से लगाना। नेत्र-जल से सिंचित करना। अतिप्रिय कहना। उनसे अनन्य भक्तों के लक्षण सुन, उन्हें अनुकूल देख, (उनके द्वारा भुला दिये जाने का) इनका दुःख दूर (४।३।६ - ४।४।१)। उन्हें सुग्रीव-सम्बन्धी सब बातें समझाकर सुग्रीव से मित्रता करने की इनकी विनती। सानुज' उन्हें पीठ पर चढ़ाना (और सुग्रीव के निकट ले जाना) (४।४।२-५)। दोनों की अग्नि-साक्षिक मैत्री करवाना (४।४)।

वर्षा के बाद शरद् ऋतु आ जाने पर (विजयादशमी की यात्रा का मुहूर्त्त बीत जाने पर। वि० ४।१६।१ व्या०।) इनके मन में विचार — सुग्रीव ने रामकार्य को भुला दिया। इनका उन्हें साम-दाम-भेद-दण्ड की नीति से समझाना। उनके आदेश से वानर-समूहों को बुलाने के लिए दूतों को भेजना (४।१६।१-७)। तारा के साथ जाकर क्रुद्ध लक्ष्मण की चरण-वन्दना करना। उन्हें महल में लाकर पद-प्रक्षालन कर पलंग पर बैठाना। दूत-प्रेषण का संवाद कहना (४।२०।२-५, ६)। सीता की खोज के लिए अन्य वानरों को (तीनों दिशाओं में) भेजकर सुग्रीव का इन्हें अंगदादि-सहित दक्षिण दिशा में जाने का आदेश। सब वानरों के प्रस्थान करने के बाद, अन्त में, इनका सुग्रीव को नमन (क्योंकि ये परम अमानी। वि०।) (४।२२-४।२३।६)। यह जानकर कि इन्हीं के द्वारा कार्य सिद्ध होगा, प्रभु

का इन्हें अपने निकट बुलाना। [अ० रा० ४।६।२९ में इनसे प्रभु-कथन — अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम। जानामि सत्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव।।] इनके सिर पर हाथ फेरना। इन्हें भक्त जानकर हाथ की अँगूठी देना। [उनका कथन — वह मुद्रिका उनके नाम से अंकित। अ० रा० ४।६।२६। उसके द्वारा सीता को इनके राम-प्रेषित होने का विश्वास होगा। वा० रा० ४।४४।१३।] उनका आदेश — उनके बल-वर्णन से सीता को आश्वस्त करके, विरह-वर्णन से सान्त्वना देकर, ये शीघ्र लौट आयें। इनका अपने जन्म को सफल मानना। प्रभु की मनोमय मूर्त्ति हृदय में धारण कर प्रस्थान (४।२३।९-१२)।

गिरि-काननों में सीता का अन्वेषण। वानरों को तृषा-व्याकुल देख, गिरि-शिखर पर चढ़ जल की खोज। सबके आगे-आगे इनका गिरि-गुहा में प्रवेश। स्वयंप्रभा (दे० 'नारि तपपुंज') के दर्शन। मज्जन, फलाहार से सब तृप्त। स्वयंप्रभा से सीता के मिलने का आश्वासन प्राप्त। उनके आदेश से आँखें मूँदना। खोलने पर स्वयं को सागर-तट पर पाना (४।२३ - ४।२५।६)। सागर लाँघने के सम्बन्ध में सबके द्वारा अपने-अपने सामर्थ्य का कथन, किन्तु ये मौन [(१) क्योंकि शाप के कारण इन्हें अपने बल का विस्मरण। वा० रा० ७।३६।३४-३६। (२) क्योंकि ये साधु; किसी को रामदूत-पद-प्राप्ति की अभिलाषा हो, तो ये बाधक क्यों बनें। वि० ४।३०।१-२ व्या०।] जाम्बवान् का इन्हें प्रेरित करना। बुद्धि-विवेक-विज्ञान-निधान-कहकर इनके बल का स्मरण कराना। कथन — 'रामकाज लगि तव अवतारा।' [रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना। अ० रा० ४।९।१८।] यह सुनते ही इनका पर्वताकार विशालकाय हो जाना (४।३०।३-६)। इनका कनकाभ शरीर तेजोद्दीप्त। बार-बार सिंहनाद कर इनका कथन — खेल में ही लवण-समुद्र को लाँघकर, सहायकोंसहित रावण को मारकर, ये त्रिकूट को उखाड़ लायेंगे। उचित सीख देने के लिए इनका जामवन्त से अनुरोध (४।३०।७-१०)। केवल सीता को देखकर लौट आने और समाचार-निवेदन करने का जाम्बवान् का परामर्श (४।३०।११-४।३० छं०)। हृदय में विशेष हर्षोत्साह होने के कारण इन्हें कार्य-सिद्धि का विश्वास। लौटने तक सबसे प्रतीक्षा करने के लिए कहकर प्रस्थान (५।१।१-४)।

बार-बार राम का स्मरण करते हुए सागर-तट के एक सुन्दर पर्वत पर उछलकर चढ़ना। [वा० रा० ४।६७।३७-३९ एवं अ० रा० ४।९।२८ में उस पर्वत का नाम महेन्द्र।] पर्वत का पाताल में धँसना। अमोघ रघुपति-बाण की तरह इनका गमन। इनके श्रमापहार के लिए उपस्थित मैनाक पर्वत को स्पर्श-प्रणाम कर इनका आगे बढ़ना, क्योंकि रामकार्य पूरा किये बिना इन्हें विश्राम नहीं (५।१।५ - ५।१)। इनकी बल-बुद्धि-परीक्षा के लिए देवताओं का सुरसा को भेजना। सन्तुष्ट होकर उनका इन्हें रामकार्य पूरा करने का आशीर्वाद देना। (दे० 'सुरसा'।) (५।२।१ - ५।२)। छायाग्राहिणी सिंहिका का वध कर इनका सागर पार करना। (दे० 'निसिचरि एक'।) (५।३।१-५)। एक विशाल पर्वत पर चढ़कर लंकादुर्ग का निरीक्षण करना (५।३।६ - ५।३।छं०३)। रात्रि के समय मशक-समान रूप धारण कर लंका की ओर गमन। [रूप वानर का ही, किन्तु अत्यन्त लघु। मुख में रखी मुद्रिका का भी उसी तारतम्य से लघु होना। वि० ५।४।१ व्या०। वा० रा० ५।२।४९ में इनका बिल्ली के बराबर हो जाना।] लंकिनी का इन्हें रोकना। इनके मुष्टिका-प्रहार से व्याकुल हो उसके द्वारा अपने वरदान का कथन। नगर में प्रवेश कर कार्यसिद्धि करने का अनुरोध। (दे० 'लंकिनी'।) (५।३ - ५।५।१)। अति लघु रूप में लंका के प्रत्येक महल में जाकर इनका सीता को खोजना। विभीषण का रामायुध-अंकित भवन देख इन्हें विस्मय। राम-नाम सुन हर्ष। रामभक्त (विभीषण) से परिचय करने के लिए विप्ररूप धारण करना। वचन सुनाना। [किसी के अनुसार वेदमन्त्र सुनाना, किसी के मत से रामनाम। मा० पी० ५।६।५ टिप्पणी ३।] सुनते ही विभीषण का उठकर इनके निकट आना। इनका राम-सम्बन्धी कथा कहना। अपना नाम बताना (५।५।४-५।६)। अपनी-अपनी हीनता और राम की कृपा एवं गुणों का स्मरण-कथन कर दोनों को सुख-शांति का अनुभव (५।७।१ - ५।८।२)। विभीषण से सब कथा सुनकर, सीता का पता और उनसे मिलने की युक्ति जानकर, इनका विदा होना (५।८।३-५)। पुनः मशक-समान रूप धर अशोक-वन में जाना। वहाँ सीता के दर्शन। उन्हें मन-ही-मन प्रणति। उनकी दीनता देख ये दुखी। तरुपल्लवों में छिपकर इनके द्वारा विचार कि अब क्या किया जाये (५।८।६ - ५।९।१)! छिपे-छिपे ही रावण की धमकी, राक्षसियों के त्रास, त्रिजटा के स्वप्न-कथन, सीता की आत्मदाह के लिए व्यग्रता और परम विरहाकुलता देख-सुनकर ये अत्यन्त दुखी। 'सो छन कपिहि कलप सम बीता।' शीघ्र ही अपने कर्तव्य का निश्चय कर इनका सीता के आगे अँगूठी फेंकना। उसे अशोक-प्रदत्त अंगार समझ हर्षित हो सीता का उठाना (५।९।२ - ५।१२)।

रामांकित मुद्रिका पहचानकर उनको विस्मय-हर्ष-विषाद-व्याकुलतायुक्त देख इनका राम-गुण-वर्णन करना। आरम्भ से अब तक की रामकथा सुनाना। सीता के कहने पर वानर-रूप में उनके निकट जाना। उनके विस्मित होकर मुख फेर लेने पर रामदूत के रूप में अपना परिचय देना। उनके पूछने पर प्रभु से अपने (वानर के) मिलने और प्रभु का साथ होने की सब कथा (वाली-सुग्रीव-कथा आदि) कहना। इनके प्रेमपूर्ण वचन सुन सीता के मन में विश्वास उत्पन्न। इन्हें मन-वचन-कर्म से राम का दास समझ इनके प्रति उनके मन में गाढ़ी प्रीति (५।१३।१-५।१४।१)। उनके पूछने पर सानुज राम का कुशल सुनाना। राम-सन्देश के रूप में उनके प्रति प्रभु के प्रेम और विरह का वर्णन करना। राम की प्रभुता का बखान कर उन्हें आश्वासन देना। इनका कथन — प्रभु की आज्ञा नहीं, अन्यथा ये अभी उन्हें ले जाते। वे कुछ दिन और धीरज धरें। वानरोंसहित आकर, निशिचर-संहार कर, प्रभु उन्हें ले जायेंगे (५।१४।२ - ५।१६।५)। अत्यन्त स्नेहपूर्वक सीता का इन्हें 'सुत' कहकर सम्बोधन। इनके और अन्य वानरों के सामर्थ्य के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह। तब इनका विशाल रूप प्रकट करना। सीता के मन में भरोसा उत्पन्न होने पर पुनः लघु रूप हो जाना। प्रभु-प्रताप को ही अपनी शक्ति का आधार कहना। इनकी भक्ति-प्रताप-तेज-बल-युक्त वाणी से सन्तुष्ट हो, इन्हें रामप्रिय जान, सीता का आशीर्वाद — ये बल-शील-निधान, अजर-अमर और गुणनिधि हों, रघुनाथ इन पर अतिशय कृपा करें (५।१६।६ - ५।१७।३)। उनके अमोघ आशीर्वाद से ये कृतकृत्य, पूर्णतः प्रेममग्न। इनका बार-बार उनके चरणों में नमन। (लघु बालक की तरह माता के आगे) क्षुधातुरता व्यक्त कर फलाहार की अनुमति प्राप्त करना (५।१७।४ - ५।१७)। अशोक-वाटिका के फल खाना। वृक्षों को उजाड़ना। रक्षकों को मारना। रावण-प्रेरित योद्धाओं का नाश करना। अक्षकुमार का संहार (५।१८।१ - ५।१८)। रावण का मेघनाद को इन्हें बाँधकर लाने का आदेश। इनका कटकटाकर गरजना। वृक्ष-प्रहार कर इन्द्रजित् को विरथ करना। उसके साथ आये महाभटों को मारकर उससे मल्लयुद्ध करना। इनके मुष्टिकाघात से उसे क्षणभर के लिए मूर्च्छा। माया रचकर भी वह इन्हें जीतने में असमर्थ। तब उसका ब्रह्मास्त्र-सन्धान करना। इनके मन में विचार — उसे व्यर्थ कर देने में उसकी अमोघ होने की महिमा मिट जायेगी। अतः ब्रह्मबाण लगने पर इनका वृक्ष पर से नीचे गिरना। इन्हें मूर्च्छित समझ मेघनाद का नागपाश से बाँधकर ले जाना (५।१९।१ - ५।२०।२)। [वा० रा० ५।४८।४२-४४ में ब्रह्मास्त्र की शक्ति, उसके बन्धन से छूट जाने की अपनी सामर्थ्य और अपने ऊपर ब्रह्मा की कृपा पर विचार करके इनका उस अस्त्र की मानरक्षा का निश्चय। ब्रह्मा, इन्द्र और पवनदेव इनके रक्षक, अतः ब्रह्मास्त्र से बँधने पर भी इन्हें भय नहीं, वरन् यह लाभ कि रावण से सम्भाषण का अवसर मिलेगा।] 'प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा' — शिव-कथन (५।२०।४)।

रावण की सभा और उसका प्रताप देखकर भी ये निःशंक। उसके पूछने पर इनका भगवदावतार राम के दूतरूप में अपना परिचय देना। उसे सहस्रबाहु और वाली का स्मरण कराना। राक्षस-वध का कारण बताना। कथन — 'मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।' (५।२०।५ - ५।२२।६)। अभिमान त्यागकर सीता को लौटाने और राम-शरण में जाने का, राम को भजने का उसे इनका परामर्श। रामनाम की महिमा और रामद्रोह के दुष्परिणाम का कथन (५।२२।७ - ५।२३)। इनके तिरस्कार से लज्जित और क्रुद्ध रावण का इनके प्राण-हरण का राक्षसों को आदेश। विभीषण के समझाने पर वध से विरत हो इन्हें पुच्छविहीन करने के लिए पूँछ में आग लगाने की उसकी आज्ञा (५।२४।१ - ५।२५।२)। बड़े उत्साह से राक्षसों का इनकी पूँछ में तैलसिक्त वस्त्र लपेटना। इनका (धीरे-धीरे) लांगूल-विस्तार करना। [वा० रा० ५।५३।७ में — संवेष्ट्यमाने लांगूले व्यवर्धत महाकपिः।] पूँछ बाँधने में लंका का वस्त्र, तेल, घी, सब समाप्त। इन्हें नगर में घुमाकर इनकी पूँछ में आग लगाया जाना। अग्नि को प्रज्वलित देख, अति लघुरूप हो (पूँछ को छोड़ अन्य अंगों को छोटा कर), बन्धन से निकल, इनका कनक-अटारी पर चढ़ना। यह देख राक्षसियाँ भयभीत (५।२५।३-६)। उस समय हरि-प्रेरणा से उनचासों पवनों का चलना। [यह प्रलयकाल में होता है। वि० ५।२५ व्या०।] इनका अट्टहास। विशालरूप धारण करना। एक महल से दूसरे महल पर चढ़ना। विभीषण के महल को छोड़ सारी लंका को क्षणभर में दग्ध करना। स्वयं इनका न जलना, क्योंकि अग्नि के सर्जक राम के ये दूत (५।२५ - ५।२६।७)। [वा० रा० ५।५३।२६-३७ में इनके लिए शीतल होने की अग्नि से सीता की प्रार्थना। इनके पिता वायुदेव का भी शीतल होकर इनकी पूँछ से संयुक्त होना। इन्हें इसका अनुभव। सीता की दया, राम के तेज और अग्नि से अपने पिता की मैत्री का स्मरण।]

लंका-दहन कर इनका समुद्र में कूदना। पूँछ बुझाकर, लघुरूप हो, सीता के आगे हाथ जोड़ उपस्थित होना। उनसे पहचान के लिए चिह्न माँगना। उनका चूड़ामणि उतारकर इन्हें देना। राम के लिए अपना आर्तिपूर्ण सन्देश कहना। उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर, धीरज देकर, उनके चरणों में नमन कर, इनका प्रस्थान (५।२६।८ - ५।२७)। चलते समय महाध्वनि से गर्जन जिससे राक्षसियों का गर्भस्राव (५।२८।१)।

समुद्र लाँघकर इस पार आना। इनका किलकिल शब्द सुन, तेजोमय प्रसन्न रूप देख, हर्षित वानरों को विश्वास कि 'कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा'। सब वृत्तान्त पूछते-कहते हुए सबका गमन (५।२८।२-६)। सुग्रीव को नमन। रामकार्य इनके द्वारा सम्पन्न, यह सुन सुग्रीव का इन्हें पुनः भेंटना। राम के पास जाकर सब वानरों का उनके चरणों में गिरना। उनका सबको गले लगाना (५।२६।३ - ५।२६)। जाम्बवान् का निवेदन — 'नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।' प्रभु को इनके चरित सुनाना। प्रभु का हर्षित हो इन्हें हृदय से लगाना। इनका प्रभु को चूड़ामणि देना। सीता का सन्देश और उनकी विपद्दशा कहकर शीघ्र उनका उद्धार करने की प्रार्थना करना (५।३०।५ - ५।३२।४)। प्रभु का इनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञता-ज्ञापन। कथन — 'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।' [वा० रा० ७।४०।२३-२४ में महाप्रयाण के अवसर पर इन्हें विदा करते समय प्रभु-कथन — इनके किये एक-एक उपकार के लिए वे प्राण न्यौछावर कर सकते हैं। पर शेष उपकारों के लिए ऋणी ही रहेंगे। उपकार का बदला चुकाने का कभी अवसर न आये, क्योंकि प्रत्युपकार पाने की योग्यता विपत्तिकाल में ही आती है।] इनकी ओर देखते हुए प्रभु के नेत्रों में जल, शरीर में पुलक। यह सब देख-सुनकर ये हर्षित और प्रेमाकुल। 'त्राहि त्राहि भगवंत' कहते हुए इनका प्रभु-चरणों में गिरना (इसलिए कि कहीं अपनी प्रशंसा सुन अहंकार उत्पन्न न हो जाये)। प्रभु के बार-बार उठाने पर भी इनका न उठना। ये प्रेम में निमग्न। प्रभु का कर-कमल इनके मस्तक पर। इस दशा का स्मरण कर शिव प्रेम-मग्न (५।३२।५ - ५।३३।२)। इन्हें उठाकर प्रभु का हृदय से लगाना। हाथ पकड़कर निकट बैठाना। [अ० रा० में प्रभु की उक्तिं — वे इनका क्या उपकार करें! गाढ़ आलिंगन के रूप में इन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर उनका कथन — उनका आलिंगन लोक में दुर्लभ। अतः ये उनके परम भक्त और प्रिय। अ० रा० ५।५।६०-६३।] प्रभु के पूछने पर निरभिमान रहकर, प्रसन्नचित्त हो, इनका लंकादहन आदि को प्रभु-प्रताप का प्रभाव कहना। अनपायिनी (अनश्वर) भक्ति की याचना करना। इनकी परम सरल वाणी सुन प्रभु प्रसन्न। शिव द्वारा इस प्रसंग का फलश्रुति-कथन — स्वामी-सेवक के इस संवाद को समझने और हृदय में धारण करनेवाले को भी रामभक्ति की प्राप्ति (५।३३।४ - ५।३४।४)।

राम द्वारा सेतु-निर्माण का आदेश होने पर इनका निवेदन — प्रभु का प्रताप बड़वानल। उसके द्वारा शोषित समुद्र रिपु-नारियों के अश्रुजल से पुनः पूर्ण। यह अत्युक्ति सुन वानरों को हर्ष (६।१।१-४)। इन्हें और अंगद को सुवेल पर्वत पर आसीन राम के चरण दबाने का सौभाग्य प्राप्त, अतः ये बड़भागी (६।११।७)। चन्द्रमा की श्यामलता के सम्बन्ध में राम के प्रश्न के उत्तर में इनका कथन — शशि उनके दास। उनकी मूर्ति का शशि के हृदय में वास होने के कारण ही वहाँ श्यामलता (६।१२।६, ६।१२ क, ख)। रावण के प्रति अंगद की सरोष उक्ति — उसका सेनासहित मान-मर्दन करनेवाले ये साधारण कपि! (६।२६)। रावण के अंगद-प्रेरित मुकुटों को पकड़कर इनका राम के पास रखना (६।३२ क)।

लंका-युद्ध में व्याकुल वानरों का अंगदादि-सहित इन्हें पुकारना। उस समय ये लंका के पश्चिमी द्वार पर युद्धरत। मेघनाद-रक्षित उस द्वार को किसी तरह टूटते न देख क्रुद्ध हो इनका गर्जन। कूदकर लंकागढ़ के ऊपर आना। गिरि-प्रहार कर मेघनाद के रथ को तोड़ सारथी को मारना। मेघनाद के वक्ष पर पदाघात कर उसे विकल करना। दुर्ग पर इन्हें अकेला जान अंगद का आ पहुँचना। दोनों का मिलकर रावण-महल को गिराना। कपि-लीला कर नारि-वृन्द को डराना। राम-सुयश सुनाना। निशाचर-संहार करना। उनके सिर तोड़ रावण के आगे फेंकना। प्रधान सेनापतियों के पैर पकड़ प्रभु के पास उछाल देना (६।४३।२ - ६।४५।१)। प्रभु के शब्दों में उस समय अंगदसहित इनकी शोभा — 'मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें'। दिनान्त होने पर प्रभु के पास लौटना। प्रदोष-बल पाकर राक्षसों के पुनः आक्रमण करने पर प्रभु का अंगदसहित इन्हें बुलाना और युद्ध के लिए भेजना। इनकी हुंकार से राक्षसों का पलायन (६।४५।७ - ६।४६।४, ६।४७।१-६)।

दूसरे दिन के युद्ध में मेघनाद का अन्य वानर-सुभटों के साथ इन्हें ललकारना (६।५०।२)। अपनी सेना को

व्याकुल देख एक महाशैल उखाड़ इनका मेघनाद पर प्रहार। उसके रथ-सारथी-घोड़े सब नष्ट। उसका आकाश में गमन। इनके बार-बार ललकारने पर भी न आना, क्योंकि इनके मर्म (स्वरूप, बल आदि) से वह अवगत (६।५१।१-४)। मूर्च्छित लक्ष्मण को इनका युद्धभूमि से प्रभु के पास लाना। सुषेण को गृहसहित लंका से उठा ले आना। उनका इन्हें पर्वत और ओषधि का नाम बताना। ओषधि लाने के लिए कहना। राम-चरणों को हृदय में रख, अपने बल का बखान कर, इनका प्रस्थान (६।५५।६ - ६।५६।१)। [गी० ६।८ में इनके द्वारा आत्म-बल का विशद वर्णन।]

'देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा।।' — कालनेमि-कथन रावण से। रावण द्वारा मारे जाने की अपेक्षा इनके हाथों मरना उसकी दृष्टि में श्रेयस्कर (६।५६।४, ६।५६)। इनका उस कपट-मुनि (कालनेमि) के आश्रम में जाना। मज्जन और जलपान के लिए इनके सरोवर में प्रवेश करते ही एक मकरी का इनके पैर पकड़ना। इनके द्वारा उसका वध और उद्धार। (दे० 'मकरी'।) उसका इन्हें कपट-मुनि की वास्तविकता बताना। इनका कालनेमि के पास आकर, उसके मस्तक को पूँछ में लपेट, पछाड़ना। मरते समय उसके मुख से राम-नाम सुन हर्षित होना (६।५७।२ - ६।५८।६)। (यहाँ से शीघ्र प्रस्थान।) ओषधि-पर्वत के दर्शन। ओषध न पहचान पाने के कारण उस पर्वत को उखाड़कर आकाशमार्ग से लाना। अवधपुरी के ऊपर इन्हें उड़ते देख, निशाचर समझ, भरत का इन पर बिना फल का बाण चलाना। इनका राम-नामोच्चार करते हुए मूर्च्छित हो गिरना। [पवनदेव का पर्वत को रोक लेना, अतः उसका न गिरना। गी० ६।१०। मा० पी० ६।५८।१ नोट १ (क) के अनुसार हनुमन्नाटक १३।२५ में मूर्च्छित होने पर भी इनका लांगूल के अग्रभाग में पर्वत को धारण करना। हनु० १३।११, २१ में इनके अवधपुरी की ओर से लौटने का कारण था लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम के उद्गार— यदि भरत वहाँ उपस्थित होते, तो अवश्य उनकी रक्षा करते। यह सुन इनके मन में गर्व, भरत-बाहुबल की परीक्षा की भावना। अतएव अन्तर्यामी प्रभु का इन्हें आदेश कि ये कोसलपुर का समाचार भी लेते आयें। मा० पी० ६।५७।८ नोट २। क० ६।५५ में भी प्रभु-कथन — 'भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।'] भरत का इन्हें हृदय से लगाना। उनकी चेष्टाओं के बावजूद इनके न जागने पर उनका कथन — यदि वे पूर्णतः राम-पदानुरक्त, यदि राम उन पर प्रसन्न, तो ये कष्ट-मुक्त हों। सुनते ही राम की जयजयकार करते हुए इनका उठ बैठना (६।५८।७ - ६।५९।८)। इनका आलिंगन कर भरत पुलकित। उनकी जिज्ञासा पर इनका संक्षेप में सब रामचरित सुनाना। उनका कथन — ये उनके बाण पर आसीन हों। वे बाणसहित इन्हें राम के पास भेज देंगे। सुनकर इनके मन में अभिमान कि इनके भार से बाण चलेगा कैसे! पुनः राम-प्रभाव का विचार कर इनके द्वारा भरत के चरणों की वन्दना। [गी० ६।११ में इनके तीर पर चढ़ने, फिर भरत-प्रताप को समझ उस पर से उतरने का उल्लेख।] उनके प्रताप को हृदय में धारण कर इनका गमन। मार्ग में उनके बल-शील-गुण-प्रभुप्रेम की मन-ही-मन सराहना (६।५९ - ६।६० ख)। पर्वतसहित इनके आने पर राम का अतिकृतज्ञ हो इन्हें गले से लगाना (६।६१ - ६।६२।१)। लक्ष्मण के उपचार के बाद सुषेण को इनका पुनः उसी प्रकार लंका पहुँचाना (६।६२।४)। (दे० 'सुषेन'।)

तीसरे दिन के युद्ध में इनके मुष्टिकाघात से कुम्भकर्ण का व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिरना। उसके प्रहार से इनका चक्कर खाकर गिरना (और मूर्च्छित होना)। मूर्च्छा छूटने पर सुग्रीव को खोजना (६।६५।७-८, ६।६६।४)। युद्ध के चौथे दिन मेघनाद की माया से अंगदादिसहित इनका व्याकुल होना (६।७३।८)। मेघनाद-वध के लिए जाते हुए लक्ष्मण के साथ इनका भी मेघनाद के यज्ञ-विध्वंस के लिए गमन (६।७५)। उसके त्रिशूल-प्रहार से इनका और अंगद का धरती पर गिरना। दोनों का उठकर क्रोधपूर्वक उसे मारना, पर वह अविचल (६।७६।६, ८)। राम-लक्ष्मण का नाम लेकर उसे प्राण-त्याग करते देख इन दोनों का उसकी माता को धन्य कहना। उसे उठाकर इनका लंका-द्वार पर रख आना (६।७६, ६।७७।१)।

पाँचवे दिन रावण की ललकार के उत्तर में इनका और अंगद का ललकारना (६।८० ग)। त्रस्त वानर-भालुओं का इन दोनों को रक्षा के लिए पुकारना (६।८२।६)। मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाने की रावण की चेष्टा देख कठोर वचन कहते हुए इनका दौड़कर वहाँ उपस्थित होना। रावण का इन पर मुष्टिका-प्रहार। इनका घुटने टेककर रह जाना, धरती पर न गिरना। उठकर रावण पर मुष्टिकाघात करना। उसका गिरकर मूर्च्छित होना। जागने

पर इनके बल को सराहना। इनका अपने पौरुष को धिक्कारना, क्योंकि इनके आघात के बाद भी वह जीवित (६।८३ - ६।८४।४)। लक्ष्मण को उठाकर इनका राम के पास लाना। यह देख रावण को विस्मय (६।८४।५)।

छठे दिन प्रातःकाल राम के आदेश से (रावण-यज्ञ-ध्वंस के लिए) अंगदादि के साथ इनका रावण के महल में प्रवेश (६।८५।४-५)। (यज्ञ-ध्वंस। ६।८५)। रावण से मल्लयुद्ध करते विभीषण को श्रमित देख इनका पर्वत लिये दौड़ना। रावण के रथ-घोड़े-सारथी का संहार कर उसकी छाती पर लात मारना। उसका काँपते हुए खड़े रहना। फिर इन्हें ललकारकर मारना। इनका पूँछ फैलाकर आकाश में जाना। (अर्थात् उसके आघात से इन्हें कुछ न होना। मा० पी० ६।९४।४ अर्थ।) उसका इनकी पूँछ पकड़ना। उसे साथ लिए इनका ऊपर उड़ना। आकाश में दोनों का युद्ध। बल-बुद्धि से उसे गिराने में असमर्थ हो इनके द्वारा प्रभु का स्मरण और उस पर प्रहार। दोनों का पृथ्वी पर गिरना। उठकर पुनः लड़ना। देवताओं द्वारा दोनों की जयजयकार (६।९५।१ - ६।९५।छं०)। अंगद-नल-नील-सहित इनका माया-रावणों से युद्ध। उन्हें मसलना (६।९६।छं०)। [माया-रचित रूपों में सभी गुण-कर्म नकली, असली का पराक्रम नहीं। मा० पी० ६।१००। तोमर ७, गौड़जी।] रावण के भुज-मस्तकों की वृद्धि देख सुग्रीवादि-सहित क्रोधित हो इनके द्वारा उस पर तरु-पर्वत-प्रहार (६।९८।२-४)। रावण-शरों से हनुमदादि मूर्च्छित (६।९८।११)। सातवें दिन के युद्ध में रावण की माया से अनेक हनुमान् प्रकट। उनका पत्थर ले-लेकर दौड़ना। सेना बनाकर राम को घेरना। राम-शर से माया-हनुमानों का लोप (६।१०१।तोमर ७-छं० १)। (उसी दिन राम द्वारा रावण-वध)।

राम के आदेश से विभीषण के राजतिलक के लिए इनका भी जाना (६।१०६।२-३)। लंका में जाकर सीता को सब समाचार सुनाना। उनका इन्हें आशीर्वाद — इनके हृदय में सकल सद्गुणों का वास हो, लक्ष्मणसहित राम इन पर सदा प्रसन्न रहें। लौटकर इनका राम को सीता का कुशल-संवाद देना। जानकी को लाने के लिए राम का अंगद और विभीषण को इनके साथ भेजना (६।१०७।१-६।१०८।४)। अन्य वानर-भालुओं के विदा हो चले जाने पर अंगदादि-सहित इनका सजल नेत्रों से निर्वाक् निर्निमेष प्रभु की ओर देखना। अतिशय प्रीति देखकर राम का इन सबको विमान पर चढ़ाना (६।११८ ख - ६।११९।१)। भरत को कुशल-समाचार सुनाने और उनका समाचार लाने के लिए (त्रिवेणी-मज्जन के पश्चात्) राम का इन्हें वटुरूप धर अवधपुर जाने का आदेश। इनका प्रस्थान (६।१२१।१-३)। भरत को राम-नाम जपते देख ये पुलकित। उन्हें सीता और अनुजसहित राम के आने का समाचार देना। उनके पूछने पर अपना परिचय बताना। इन्हें राम-किंकर जान उनका सादर भेंटना। उनकी जिज्ञासा पर इनका रामचरित सुनाना। उन्हें राम का प्राणप्रिय कहना। हर्षित भरत का इनसे बार-बार मिलना। उनके चरणों में नमन कर इनका राम के पास लौटकर सब कुशल-निवेदन करना (७।१ क - ७।२ ख)।

अंगदादि के साथ ये भी अयोध्या में मनुष्यरूप में उपस्थित। राम के आदेश से सबकी वसिष्ठ के चरणों में प्रणति। कौसल्या के चरणों में नमन। उनसे आशिष प्राप्ति (७।८।१ - ७।८ क)। राम-राज्याभिषेक के समय इनका राम की शक्ति (एक रामायुध) धारण करना (७।१२।छं० १)। सुग्रीव के विदा होते समय उनके चरण पकड़ इनके द्वारा विनय। उनका इन्हें पुण्य-पुंज मानना। अंगद का इनसे कथन कि ये राम को उनकी याद दिलाते रहें। लौटकर उनकी प्रीति के सम्बन्ध में इनका राम से निवेदन (७।१९।७ - ७।१९ ख)।

अपराह्न के समय भरत-शत्रुघ्न का इनके साथ उपवन में जाना। इनसे विनयपूर्वक बार-बार रामचरित (किष्किन्धाकाण्ड से लंकाकाण्ड तक। वि०।) सुनना (७।२६।४-६)। एक बार भ्राताओं और इनके साथ राम का उपवन देखने के लिए गमन। वहाँ आये सनकादि को राम के दण्डवत् करने के बाद तीनों भाइयोंसहित इनका दण्डवत् करना (७।३२।१-२, ७।३३।१)। भ्राताओं को राम से प्रश्न करने में संकोच, अतः उनका इनकी ओर देखना। सर्वज्ञ राम के पूछने पर इनका निवेदन कि भरत कुछ पूछना चाहते हैं (७।३६।२-७)। प्रभु के मुख से सन्त-असन्त लक्षण सुन इन्हें अपार हर्ष (७।४२।२)। (महाप्रयाण के समय) भरतादि भ्राताओं और इनके साथ प्रभु का नगर के बाहर आना (७।५०।२-३)। अमराई में इनका प्रभु को हवा करना। इनके नेत्रों में अश्रु, शरीर में पुलक। शिव-कथन — 'हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी।। गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।।' (७।५०।७-९)।

इनका रूप-गुण-बल-कथन और इन्हें नमन (५।१।श्लो०३)। [इस श्लोक में हनुमत्-चरित का बीज। वि०।] प्रभु की शरणागत-वत्सलता देख इन्हें हर्ष। अंगदादि के साथ इनका विभीषण को लाने के लिए जाना (५।४३।९,

५।४४)। (राम-पक्ष की प्रबलता दिखाने के लिए) शुक का इनको सब कपियों से अल्पबल कहना (५।५४।७)। '…जाके हनूमान से पायक' — कुम्भकर्ण-कथन रावण से (६।६३।३)। कुवेश होने पर भी साधु का सम्मान, इसके उदाहरणरूप में जाम्बवान्सहित इनका उल्लेख (१।७।७)। ये रामनाम के उपमान (१।२७।८)। इनके सम्बन्ध में उल्लेख — अंगद द्वारा (६।२४।५), मन्दोदरी द्वारा (६।३७।४), राम द्वारा (६।११९।१०), भुशुण्डि-कथित मूल रामायण में (७।६६ क, ७।६७।३)।

मूल शब्द — ४।२४।४, ५।२, ५।३०।७, ६।२६, ६।६१, ६।७६, ६।७७।१, ६।८० ग, ६।१०१।तोमर ७ (जाति०), ६।१०८।२, ६।११८ ख, ७।२६।५। हनुमाना — १।१७।१०, ४।१।३, ४।२०।४, ४।२३।१, ४।३०।३, ५।१।८, ५।२।६, ५।५।४, ५।१३।४, ५।१४।२, ५।१७।४, ५।१८।५, ५।२४।४, ५।२८।३, ५।२९।५, ५।३३।६, ५।४३।६, ६।११।७, ६।४३।३, ६।४६।३, ६।४७।१, ६।५१।४, ६।५५।६, ६।५८।६, ६।६२।१, ६।८२।६, ६।९५।५, ६।१०७।१, ७।२।८, ७।१९।७, ७।३६।४। हनुमानू — १।७।७, १।२७।८। हनू — ५।४४। हनूमान — ५।१, ५।३।४, ६।४७।६, ६।६३।३, ६।९५।१, ६।११९।१०, ७।२।१, ७।४२।२, ७।५०।२, ७।५०।८। हनुमत् — ६।८५।४ (हनुमदादि), ६।९८।११ (हनुमदादि), ७।८।२ (हनुमदादि), ७।१२।छं० १ (हनुमदादि)। हनुमत — ४।२३।१२, ६।३७।४। हनुमंत — ४।३, ४।४, ४।१९।६, ४।२०।३, ४।२२, ४।२४।८, ५।१।१, ५।६, ५।८।४, ५।१३।८, ५।३२।३, ५।३२, ६।१२ क, ६।४५।७, ६।६० क, ६।७५, ६।९५।छं०, ६।९६।छं०, ६।१०७।३, ६।१०७, ६।१२१।१, ७।२।१५, ७।१९ ख। हनुमंता — ५।१।७, ५।७।४, ५।२५।८, ६।४३।२, ६।५५।८, ६।६५।८, ७।१९।१०, ७।३६।५। हनूमंत — ६।५०।२।

पर्याय —

(१) सम्बन्धसूचक —

(क) **कपिराइ** (सुग्रीव के लिए 'कपिराई') — ५।५।

कपीश्वर — १।१।श्लो०४।

कपीसा (सुग्रीव भी) — ६।५९।८।

(ख) **पवनकुमार**— १।१७, ६।६० ख। पवनकुमारा — ५।२।३, ६।१।१, ७।१९।९, ७।३२।१।

पवनतनय — ४।२०।९, ४।२३।९, ४।३०।४, ५।१।६, ५।३०।६, ६।१२ ख, ६।४३।५।

पवनसुत — १।२६।६, ४।४।१, ४।१९।१, ४।२४।७, ५।२।१, ५।२।८, ५।२।१०, ५।७।१, ५।८।५, ५।८, ५।१६।९, ५।२७।२, ५।३०।५, ६।१।४, ६।२४।५, ६।३२ क, ६।४३, ६।५१।१, ६।५५, ६।५७।४, ६।८३, ६।१२१।३, ७।१ क, ७।२६।४, ७।३३।१।

प्रभंजनजाया — ५।१९।९।

प्रभंजनसुत — ६।५६।१।

मारुतसुत — ४।१९।४, ५।३।५, ६।५७।२, ६।६५।७, ६।६६।४, ६।७३।८, ६।७६।६, ६।९५।८, ६।१०८।४, ७।२।८, ७।३६।२, ७।५०।७।

मारुति — ६।७६।८, ६।९८।३, ६।१०६।२, ७।६६ क।

वातजात — ५।१।श्लो०३।

समीरकुमारा — ७।६७।३।

(ग) **मायापति दूत** — ६।५७।३।

रघुपति दूत — ५।१।९।

रामदूत — ६।५६।

(२) गुणवाचक— **महाबीर** — १।१७।१०।

(३) चरित्रबोधक— **दनुजवनकृशानु** — ५।१।श्लो०३।

हर — दे० 'सिव'।

हरि — हरति पापानीति (पापहर्त्ता)। ह० को०। महा० में भगवान्-कथन — यज्ञ में मन्त्रों से आवाहन किये जाने

पर उनके द्वारा अपना भाग-हरण (स्वीकार), उनके शरीर का रंग भी हरि (हरित = श्याम), अतः उनका नाम हरि। शा० ३४२।६८।

मानस में इस शब्द का प्रयोग राम, बिष्नु (विष्णु), कृष्न (कृष्ण) एवं ब्रह्म के लिए। वहीं देखें।

हरिचंद (हरिश्चन्द्र) — चक्रवर्ती सम्राट्। सत्यव्रती राजर्षि। सूर्यवंशी।

इक्ष्वाकु-कुल में त्रिबन्धन > सत्यव्रत (त्रिशंकु) > हरिश्चन्द्र > रोहित। भा० ६।७।५, ७, ६। इनकी माता सत्यवती। महा० सभा० १२।१० के बाद दाक्षिणात्य पाठ।

[(१) ये निःसन्तान। नारद के उपदेश से वरुण के शरणागत। उनसे प्रार्थना — पुत्र होने पर उससे उनका यजन करेंगे। फलतः रोहित नामक पुत्र की प्राप्ति। इनके वचन के अनुसार वह पुत्र यज्ञपशु। उससे वरुण का यज्ञ होना चाहिए। लेकिन वरुण के बार-बार स्मरण कराने पर भी पुत्र-मोहवश इनका बार-बार टालना। वरुण प्रतीक्षारत। जब रोहित को ज्ञात कि ये उसकी बलि देने के लिए वचनबद्ध, तो उसका वन-गमन। रुष्ट वरुण का इन पर आक्रमण जिसके कारण ये महोदर रोग से पीड़ित। यह जानकर कई बार अपने नगर की ओर लौटने की रोहित की चेष्टा और हर बार छद्मवेशधारी इन्द्र का रोकना। सातवें वर्ष अजीगर्त से उनके मझले पुत्र शुनःशेप (विश्वामित्र के भानजे) को खरीदकर रोहित का नगर आना। शुनःशेप को यज्ञपशु बनाने के लिए पिता को सौंपना। हरिश्चन्द्र महोदर रोग से मुक्त। पुरुषमेध यज्ञ द्वारा वरुण आदि देवताओं का यजन। उस यज्ञ में विश्वामित्र होता और वसिष्ठ ब्रह्मा। प्रसन्न होकर इन्द्र द्वारा इन्हें सुवर्ण का रथ प्रदान। पत्नीसहित इनकी सत्यनिष्ठा देख विश्वामित्र द्वारा इन्हें अविनाशी ज्ञान का उपदेश। भा० ६।७। (वरुण आदि की स्तुति करके शुनःशेप को विश्वामित्र का पाश-बन्धन से मुक्त करना। भा० ६।१६।३१)

(२) विश्वामित्र द्वारा कठोर तप से भवादि विद्याओं का साधन। स्त्री-रूपधारिणी विद्याओं का रक्षा के लिए आर्त्त क्रन्दन। उस समय ये वन में शिकार खेलने में व्यस्त। क्रन्दन सुन अभय-उच्चार करते हुए उस ओर गमन। रुद्रकुमार विघ्नराज का इनके शरीर में प्रवेश। इनके वहाँ पहुँचते ही विद्याएँ अन्तर्धान, क्रुद्ध विश्वामित्र प्रकट। इनका आचरण राजधर्म की रक्षा के लिए, यह सुनकर उनके द्वारा इनके राजधर्म की परीक्षा। केवल इनकी पत्नी, पुत्र, शरीर और स्वधर्म छोड़ इनका सारा राज्य, सर्वस्व माँग लेना। इस राजसूय यज्ञ की द्रव्यरूप दक्षिणा के प्रबन्ध के लिए एक मास का समय देना। केवल वल्कल धारण कर पत्नी शैव्या और पुत्र रोहिताश्वसहित इनका राज्य-त्याग कर काशी में प्रवेश करना, क्योंकि उस नगरी पर मनुष्य का नहीं, केवल शिव का अधिकार। मास के अन्तिम दिन पत्नी-पुत्र को एक वृद्ध ब्राह्मण के हाथ बेच स्वयं प्रवीर नामक भयंकर चाण्डाल (धर्म का छद्मवेश) के हाथ बिकना। विश्वामित्र की दक्षिणा चुका, सत्य और धर्म की रक्षा कर, भयानक श्मशान में दण्ड लिये शवों के कफन संग्रह करने का घृणित कार्य करना। बारह मास बाद सर्प-दंश से मृत रोहिताश्व को लेकर शैव्या का वहाँ आगमन। कठिनाई से एक-दूसरे को पहचानने पर दोनों दुःख-विह्वल। चिता की आग में आत्मदाह करने का इनका निश्चय। रोहित का शव चिता पर रखकर परमात्मा का चिन्तन। उसी समय धर्मसहित देवताओं का प्राकट्य। अमृत-वृष्टि। रोहिताश्व जीवित। तीनों की पूर्ववत् कान्ति। धर्म का आत्म-परिचय। इन्द्र के कहने पर भी ये अयोध्या के प्रजाजन को छोड़ स्वर्ग जाने को प्रस्तुत नहीं (यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर। ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह। ८।२५५।) विश्वामित्र द्वारा रोहित का राज्याभिषेक। फिर सबका स्वर्ग-गमन। —धर्म-पक्षियों द्वारा जैमिनी ऋषि को सुनायी गयी कथा। सं० मा० पु० पृ० ५१-६४। कुछ परिवर्तन के साथ सं० दे० भा० पृ० ३७५-३६४ में।

इन्द्र-सभा में इनकी अत्यधिक प्रतिष्ठा देख पाण्डु द्वारा नारद के माध्यम से युधिष्ठिर को परामर्श कि वे भी राजसूय यज्ञ करें। महा० सभा० १२।२३-२६।]

सत्य-पालन के उदाहरण-स्वरूप शिबि, दधीचि के साथ इनका उल्लेख, दशरथ के सन्दर्भ में (२।४८।५, २।६५।३)।

हरिचक्र — विष्णु का एक आयुध।

[भा० १२।११।१४ में यह तेजतत्व-रूप, वि० पु० १।२२।७१ में सात्विक अहंकाररूप मन।]

'जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा' (३।२।३)। इसका उल्लेख (७।१०६।१२)।

मूल शब्द — ७।१०६।१३। चक्र — ३।२।३।

हलधर — हल धारण करनेवाले बलराम। हल और मूसल इनके आयुध। भा० १०।७६।४।

बसुदेव ~ रोहिणी > बलराम ~ रेवती > निशठ, उल्मुक। भा० ६।२४।४६, १०।५२।१५, वि० पु० ५।२५।१६।

[देवकी के छः पुत्रों का कंस द्वारा वध। उनके सातवें गर्भ में भगवदंश अनन्त (शेष) अवतीर्ण। भगवान् के आदेश से उनकी योगमाया द्वारा देवकी का यह गर्भ गोकुल में (नन्द-गृह में) रहनेवाली वसुदेव की पत्नी रोहिणी के उदर में सन्निविष्ट। वहीं बलराम का जन्म। इनके नाम — देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण 'संकर्षण', लोकरंजन करने के कारण 'राम', बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण 'बल' या 'बलभद्र', रोहिणी-पुत्र होने के कारण 'रौहिणेय'। भा० १०।२।४-८, १३-१५, १०।८।१२। ये कृष्ण के अग्रज, उनकी बाल-लीलाओं में संगी, उनके साथ ही इनका मथुरा-गमन।]

भक्तों की जिह्वा को राम-नाम के दो अक्षर उसी प्रकार प्रिय जिस प्रकार यशोदा को कृष्ण और बलराम (१।२०।८)।

हास रस (हास्य रस) — काव्य के नौ रसों में एक।

[जहाँ विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंगभंगी आदि के देखने-सुनने से स्थायी भाव हास की परिपुष्टि हो, वहाँ हास्य रस। इसके आलम्बन — विकृत या विचित्र वेशभूषा, व्यंग्य-वचन, उपहासास्पद व्यक्ति की मूर्खताभरी चेष्टा का दर्शन-श्रवण आदि। उद्दीपन — हास्यवर्द्धक चेष्टाएँ। अनुभाव — कपोल और ओठों का स्फुरित होना, मुख का विकसित होना आदि। संचारी भाव — अश्रु, कम्प, हर्ष, रोमांच, स्वेद आदि। स्थायी भाव— हास। इसके दो प्रकार — आत्मस्थ (स्वयं हँसने पर) और परस्थ (दूसरे को हँसाने पर)। प्रकारान्तर से इसके छः भेद — स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित एवं अतिहसित। का० द०।

'नाट्यशास्त्र' के अनुसार यह चार उपरसों की कोटि में। इसके देवता प्रमथ (शिव के गण), वर्ण सित। सा० को० १।]

काव्यरस से अनभिज्ञ, रामपदप्रेम से रहित व्यक्ति के लिए भी 'मानस' सुखद हास्यरस से पूर्ण (१।६।३)।

हिमरितु (हेमन्त) — भारत की छः ऋतुओं में एक। इसके दो मास — मार्गशीर्ष (अगहन) और पौष।

रामकथा में शिव-पार्वती-विवाह हेमन्त (१।४२।२)। इस ऋतु के अगहन मास में राम-विवाह का लग्न (१।३१२।५)। देव-विनय से कमल-वन (अवधवासी) के लिए हेमन्त-रात्रि (राम-राज्याभिषेक-भंग एवं राम-वन-गमन की साधिका) बनने की भावना से सरस्वती को पश्चात्ताप (२।१२।१)। हेमन्तरूप में स्त्री द्वारा कमल-समूह-रूपी सब धर्मों का नाश (३।४४।५)।

मूल शब्द — हिमरितु — १।३१२।५। हिम — १।४२।२, २।१२।१, ३।४४।५।

हिमाचल — भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित हिमालय पर्वत। इसकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ सदा हिमाच्छादित। इन्हीं में एक विश्व का सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट। बृ० को०। इसके दो रूप — (१) स्थावर और (२) जंगम (देवता)। सं० शि० पु० रु० पा० पृ० १६७।

हिमालय ~ मेना (अग्निष्वात्त पितरों की कन्या) > पुत्र-मैनाक, क्रौंच आदि; एक सौ कन्याएँ—पार्वती, गंगा आदि। शि० पु० रु० पा० २।२८, ५।३४, ३६, ४६, शि० पु० वा० पू० १७।४८-५०।

[(१) स्थावर-रूप— यह जम्बूद्वीप के आठ वर्ष-पर्वतों में एक। भारतवर्ष का सीमा-पर्वत। भा० ५।१६।६, ६। यह वर्ष-पर्वत। शेष सात कुल-पर्वत। ध० इ० तृ० पृ० १५०४, न० पु० ३०।६, १२। यह पद्मतारक। महा० शा० १६६।३२। देवतात्मा। कुमार० १।१। भगवान् की विभूति (स्थावराणां हिमालयः)। गीता० १०।२५। नाना प्रकार के शृंगों से अलंकृत, मेघों से अभिषिक्त, विविध धातुओं से सम्पन्न, रत्नों से व्याप्त। यहाँ अनेक पुष्पित द्रुम-कानन, सिंह-व्याघ्र-संकुल गुहा-कन्दराएँ, नदी-निकुंज-घाटी-मन्दिर। पक्षियों का कल-कूजन। यह किन्नर-अप्सरा-विद्याधर-सेवित। कहीं सुवर्ण-सा उद्भासित, कहीं रजताभ, कहीं कज्जलराशि-सदृश। महा० वन० १०८।४-१२। यह तपस्वियों का आश्रय। वा० रा० ४।११।१७। यहाँ ब्रह्मा द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान। महा० शा० १६६।३२-३७। इसके गंगावतरण नामक शिखर पर शिव का कठोर तप और काम-दहन। गौरी-शिखर पर पार्वती की कठिन तपस्या। सं०

शि० पु० रु० पा० पृ० १९०। यहाँ गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु आदि नद-नदियों का उद्‌गम। इस पर बदरी, केदार, अमरनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि अनेक तीर्थ।

ऋग्वेद १०।१२१।४ एवं अथर्ववेद ४।२।५ में इसके लिए बहुवचन का प्रयोग (विश्वे हिमवन्तः), किन्तु अथर्ववेद ५।४।२, ८ एवं ४।२४।१ में एकवचन का। ध० इ० तृ० पृ० १५०४।

(२) जंगम देवता-रूप — हिमालय दिव्य शरीर धारण कर सर्वांगसुन्दर देवता के रूप में स्थित। भगवान् के अविकृत अंश। सं० शि० पु० रु० पा० पृ० १६७। वाक्यविशारद, सौम्य। वा० रा० ४।११।१६, २०। ब्रह्मा से इन्हें यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी पर्वतों का आधिपत्य प्राप्त। कुमार० १।१७। इनकी राजधानी ओषधिप्रस्थ। कुमार० ६।३३, आ० को०। विवाह के बाद देवताओं के आदेश से उमा को पुत्रीरूप में पाने के लिए इनका पत्नीसहित कठोर तप। शिव-शिवा का चिन्तन-आराधन। अपने सम्पूर्ण अंश से उमा का इनके चित्त में प्रवेश। पुत्रीरूप में आविर्भाव। सं० शि० पु० रु० पा० पृ० १६७-१६९, १७१, १७३।

वि० को० में हिमालय के नाम — उदगद्रि, हिमाद्रि, हिमप्रस्थ, अद्रिराज, मेनाधव, उमागुरु आदि।]

स्थावररूप — यहाँ सुहावनी सुरसरि का प्रवाह। मनोरम निर्झर और विपिन। रमणीय पावन प्रकृति। इसके एक पुनीत आश्रम में नारद की तपस्या (१।१२५।१-३)। राम के चित्रकूट में आने पर अन्य देवावासित पर्वतों के साथ इसके द्वारा भी चित्रकूट का यशोगान (२।१३८।७)। लक्ष्मण का शरीर इसकी तरह गौरवर्ण (६।५३।१)। 'हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा' (७।९२।३)। (इसका कुछ वर्णन जंगम हिमालय के गृह और पुरी के वर्णन के रूप में भी।)

जंगमरूप — सती का पार्वती के रूप में इनके यहाँ जन्म। उनके उत्पन्न होते ही इनका गृह (पर्वत) सकल सिद्धि-सम्पत्ति से परिपूर्ण। जहाँ-तहाँ ऋषियों द्वारा आश्रम-निर्माण। मणियों की खानें प्रकट। सब वृक्ष फल-फूल-सम्पन्न। नदियों में पवित्र जल प्रवहमान। परस्पर वैर त्यागकर पशु-पक्षी आदि का सुखपूर्वक वास। इनके यहाँ नित्य नये उत्सव। ये कृतार्थ। ब्रह्मा द्वारा इनका यशोगान (१।६५।६-१।६६।४)। कौतुकवश नारद का इनके यहाँ आगमन। इनके द्वारा उनका सत्कार। कन्या (पार्वती) के गुण-दोष बताने की उनसे प्रार्थना (१।६६।५ - १।६६)। नारद से कन्या के वर के लक्षण सुनकर ये मेनासहित दुखी (१।६७।१ - १।६८।१,३)। कुछ उपाय बताने का उनसे अनुरोध। नारद-कथन — वर के सब लक्षण शिव में। उनकी प्राप्ति के लिए उमा कठोर तप करें, तो कल्याण। उनका इन्हें आश्वस्त करना (१।६८।८ - १।७०)। एकान्त में मेना की इनसे विनती — ये उमा का विवाह करें तो योग्य वर से ही, अन्यथा नहीं (१।७१।२-६)। इनका उन्हें आश्वासन और कथन — वे उमा को महेश की प्राप्ति के लिए तप करने को कहें (१।७१।७ - १।७२।४)। मेना का इन्हें पार्वती के स्वप्न की बात सुनाना। तप करने के लिए पार्वती के जाने पर परिवारसहित ये व्याकुल। वेदशिरा द्वारा सबका प्रबोधन (१।७३।६ - १।७३)। सप्तर्षि के कहने पर इनका उमा को घर लाना (१।७७, १।८२।१)। सप्तर्षि का इनके यहाँ आगमन। काम-दहन के बाद शिव से रति की वर-प्राप्ति आदि का समाचार सप्तर्षि से सुनकर ये प्रसन्न। मुनियों से विवाह का शुभ मुहूर्त्त निकलवाना। सप्तर्षि को लग्न-पत्रिका देकर उनकी विनती करना (१।८९।७, १।९० - १।९१।५)। विवाह के लिए मण्डप-निर्माण, गृह-सज्जा। इनके पुर की शोभा के आगे ब्रह्मा का रचना-कौशल भी फीका। इनके निमन्त्रण पर जगत् के समग्र वन-शैल-सागर उपस्थित। सबके लिए यथायोग्य आवास-व्यवस्था (१।९४।२-१।९४)। शिव-रूप-दर्शन से मेना की व्याकुलता का समाचार सुनकर इनका नारद और सप्तर्षि के साथ अपने घर आना (१।९७)। नारद से पार्वती के स्वरूप का परिचय पाकर, उनके पूर्वजन्म की कथा सुनकर, ये मेनासहित आनन्दित (१।९८।१ - १।९९।१)। मुनियों का इन्हें विवाह-लग्न सुनाना (१।९९)। अपने हाथों में कुश, जल और कन्या का हाथ लेकर, उन्हें भवानी मानकर, इनका भव को समर्पित करना (१।१०१।२)। [नारद से इन्हें ज्ञात कि 'गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया' (१।९८।छं०), 'सदा संभु अरधंग निवासिनि' (१।९८।३), अतः 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' की बुद्धि से, 'भवानी' 'भवाय' का संकल्प करके, दान। [वि० १।१०१।२ व्या०, मा० पी० १।१०१।२, टिप्पणी २।] प्रेमपूर्वक विवाह हो जाने पर विनयपूर्वक इनका शिव के चरण पकड़ना। शिव द्वारा इनका सम्मान (१।१०१।छं०)। प्रेमपूर्वक शिव को पहुँचाने के लिए इनका चलना। इनका परितोष कर शिव का इन्हें विदा करना। घर आकर इनका शैल-सर आदि को बुलाना। दान-मान-विनय के साथ सबकी बिदाई (१।१०२ - १।१०३।२)।

इनके यहाँ पार्वतीरूप में सती के जन्म लेने का कथन (१।८३।२)। जनक के साथ सुनयना, जैसे इनके साथ मेना (१।३२४।४)। इनके द्वारा जिस तरह महेश को गिरिजा समर्पित, उसी तरह जनक द्वारा राम को सीता (१।३२४।छं० ४)।

(१) स्थावर रूप के लिए
मूल शब्द — २।१३८।७।
पर्याय — **हिमगिरि** — १।१२५।१, ६।५३।१, ७।९२।३ (जाति०)।
(२) जंगमरूप के लिए
मूल शब्द — १।८३।२, १।९०, १।९१।५, १।९४।२।
पर्याय — **गिरि** — १।६५।५, १।६६।८, १।६८।३, १।७३।६, १।७७, १।८६।७, १।९४।७।
गिरिपति — १।९१।१।
गिरिराई — १।१०३।१। गिरिराऊ — १।६८।८।
गिरीस — १।७०, १।१०१।२। गिरीसा (शिव भी) — १।७१।७।
तुहिनगिरि — १।९७।
तुहिनाचल — १।९४।६।
सैल (शैल) — १।६५।७, १।६६।३, १।६७।७।
सैलराज — १।६६।६।
हिमगिरि — १।६५।६, १।९४।४, १।३२४।४।
हिम भूधर — १।६५।८, १।१०१।छं०।
हिमवंत (हिमवत्, हिमवान्) — १।६८, १।९१।२, १।९९, १।१०२, १।३२४।छं० ४। हिमवंतु — १।८२।१, १।९६।१। हिमवाना — १।१०३।२।

हिरन्याच्छ (हिरण्याक्ष) — एक महाप्रतापी मायावी दैत्य।

कश्यप ~ दिति > हिरण्याक्ष ~ (१) उपदानवी (कश्यप-दनु की पौत्री), (२) रुषाभानु > शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु, उत्कच। भा० ६।१८।१०-११, ६।६।३३-३४, ७।२।१७-१९।

[यह रिहण्यकशिपु का यमज भ्राता। भा० ३।१७।१८। लक्ष्मी एवं सनकादि के शाप से विष्णु-पार्षद जय-विजय का वैकुण्ठ से पतन और दिति के गर्भ में प्रवेश। भा० ३।१५।३४, ३।१६।२६, ३०, ३४-३५। उस गर्भ से उत्पन्न पुत्र अमंगलकारी होगा, यह जान दिति का गर्भ को सौ वर्षों तक धारण करना। उसके तेज से ही सूर्यादि का प्रकाश क्षीण, इन्द्रादि लोकपाल तेजोहीन, सब दिशाओं में अन्धकार और अव्यवस्था। भा० ३।१५।१-२। इनके जन्म के समय त्रिलोक में उत्पात, अनिष्ट-सूचनाएँ। जन्म के बाद दोनों का शरीर पर्वताकार। दोनों में अतिशय प्रेम।

एक दिन ब्रह्मा के वरदान और अपने बल से उन्मत्त हो, युद्ध का अवसर ढूँढ़ते हुए, कन्धे पर विशाल गदा रखे हिरण्याक्ष का स्वर्ग-गमन। इन्द्रादि देवताओं का भय से छिपना। लौटकर इसका समुद्र में प्रवेश। कोई प्रतिपक्षी न देख वरुण की राजधानी विभावरीपुरी में जा वरुण से युद्ध-याचना। वरुण की अस्वीकृति और कथन — इसको सन्तुष्ट करने योग्य वीर एकमात्र विष्णु। नारद से विष्णु का पता लगाकर इसका रसातल पहुँचना। वहाँ वराह भगवान् को अपनी दाढ़ों की नोक पर पृथ्वी को ऊपर की ओर ले जाते देख दुर्वचनों से तिरस्कार करना, उन्हें चुनौती देना। इसका कथन — पृथ्वी को वे उसके रहते नहीं ले जा सकते। किन्तु बिना उत्तर दिये भगवान् का पृथ्वी को जल के ऊपर ले जाना। उपयुक्त स्थान में उसे स्थित कर उसमें अपनी आधारशक्ति का संचार करना। पीछा करते हुए इसका भी पहुँचना। तब रोषपूर्वक भगवान् द्वारा इसका उपहास। इसके द्वारा गदा-प्रहार और दोनों में गदा-युद्ध। प्रभु के हाथ में सुदर्शन चक्र देख इसे क्रोध और इसका माया-युद्ध। अन्ततः मंगलमय अभिजित् मुहूर्त में, कनपटी पर प्रभु के तमाचे के आघात से, इसका प्राणान्त। भा० ३।१७-१९। शि० पु०.में यह निःसन्तान। पुत्रेच्छा से इसकी तपस्या। प्रसन्न होकर शिव द्वारा इसे अपना पुत्र अन्धक प्रदत्त। इसके बाद इसकी देवताओं पर विजय। पृथ्वी को अपने राज्य रसातल में ले जाना। विष्णु द्वारा इसका वध और पृथ्वी का उद्धार। शि० पु० रु० कु० ४२।]

विप्रशाप से जय-विजय के तामसी असुर-देह पाने का और इन्द्र-मद-मोचन के लिए इन दोनों भाइयों की प्रसिद्धि का कथन (१।१२२।४-६)। 'सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुनगन जगजोनी।।' (२।२९७।३)। प्रभु के हाथों भ्रातासहित इसके वध का कथन (६।४८ क)।

मूल शब्द — ६।४८ क।

पर्याय — **कनकलोचन** — २।२९७।३।

हाटकलोचन — १।१२२।६।

हुलसी — कुछ विद्वानों के मत से तुलसीदास की माता का नाम।

[तुलसीदास मूल नक्षत्र में उत्पन्न, अतः माता-पिता के लिए घातक। पिता कहीं बालक को फेंकवा न दें, यह सोचकर माता हुलसी का बालक को दासी को सौंपना और अपने भूषण देकर रातों-रात अन्यत्र भेज देना। बालक के कल्याण के लिए देवताओं से प्रार्थना करना। मा० पी० १।३१।१२ नोट २ के अनुसार बेनी-माधव-कृत 'मूल गुसाईचरित'। किन्तु इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध।]

रामकथा 'तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी' (१।३१।१२)।

परिशिष्ट १

मानस में उल्लिखित या वर्णित संस्कार और यज्ञ

अर्धजल (६।८८।४) – श्मशान में शव को स्नान कराके आधा जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया। हि० स० सा०।

उपबीत (१।३६१।छं० आदि) उपवीत = उपनयन = जनेऊ – हिन्दुओं के स्मार्त संस्कारों में एक। इसका अर्थ–विद्याभ्यास और नैतिक विनय के लिए पिता का बालक को 'आचार्य के समीप ले जाना'। माता-पिता से बालक का भौतिक जन्म, आचार्य से बौद्धिक तथा नैतिक। उपनयन से संस्कृत बालक की संज्ञा द्विज। इसके लिए बालक की अवस्था वर्णक्रम से ब्राह्मण के लिए पाँच वर्ष, क्षत्रिय के लिए छः, वैश्य के लिए आठ। इसी प्रकार अन्तिम अवस्था क्रमशः सोलह, बाईस, चौबीस। इस बीच उपनयन न होने पर बालक 'व्रात्य' (समाज से पतित और वहिष्कृत)। भिन्न-भिन्न वर्गों के उपनयन के लिए भिन्न-भिन्न श्रेष्ठ ऋतुओं का भी निर्देश।

इसके आनुषंगिक और आवश्यक अंग – एक दिन पहले घर में श्री, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा और सरस्वती का पूजन। दूसरे दिन स्नानोपरान्त बालक के पवित्र होने पर उसे ब्रह्मचारी जीवन के उपकरण प्रदत्त – कौपीन, उस पर बाँधने के लिए नैतिक प्रतीक मेखला, यज्ञ का प्रतीक ब्रह्मसूत्र (जनेऊ), बिस्तर के लिए अजिन (मृगचर्म), भय-निवारण और संयम का प्रतीक दण्ड। तत्पश्चात् कतिपय प्रतीकात्मक कृत्य। ब्रह्मचारी का हृदय स्पर्श करते हुए गुरु-कथन – 'मैं अपनी इच्छा-शक्ति से तुम्हारा हृदय धारण करता हूँ।' फिर अश्मारोहण जो आचार में दृढ़ता का द्योतक। दृढ़ता का आश्वासन पाकर आचार्य का ब्रह्मचारी को अपने संरक्षण में लेना। आचार्य का उससे प्रश्न – 'तुम्हारा नाम'? ब्रह्मचारी उत्तर – 'मैं अमुक हूँ।' आचार्य का प्रश्न – 'तुम किसके छात्र?' ब्रह्मचारी का कथन – 'आपका'। आचार्य द्वारा समाधान – 'तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारा गुरु है। मैं तुम्हारा आचार्य हूँ।' तदनन्तर आचार्य का ब्रह्मचारी को आचार-सम्बन्धी आदेश, सावित्री (गायत्री) मन्त्र का उपदेश। फिर ज्ञान और तप के प्रतीक पवित्र अग्नि को हवन के लिए प्रदीप्त करना। उपनीत ब्रह्मचारी द्वारा भिक्षाचरण से अपना पोषण। विद्याध्ययन। संस्कार के अन्त में त्रिरात्र व्रत का अनुष्ठान। हि० वि० को०, 'उपनयन'।

करनबेध (२।१०।६) – कर्णवेध – बौधायन गृह्यसूत्र में सातवें या आठवें मास में, वृहस्पति के अनुसार जन्म से दसवें, बारहवें या सोलहवें दिन अथवा सातवें या दसवें महीने में यह संस्कार करने का विधान। प्राचीन काल में यह कार्य गुरु द्वारा सम्पन्न, आधुनिक काल में प्रायः सोनार द्वारा। बालक के कान में पतले तार से छेद करके उसे गोलाकार बाँध दिया जाता है। बालिका के कर्णवेध में पहले बायें कान का छेदन। ध० इ०, प्र०, पृ० २०१।

कोहबर (१।३२६।छं० ४ आदि) – वह घर या कमरा जहाँ विवाह के समय कुलदेवता की स्थापना और कई प्रकार की लौकिक रीतियों का पालन। हि० श० सा०।

चूड़ाकरन (१।२०३।३) – चूड़ाकरण – चूड़ा का तात्पर्य केश-गुच्छ जो मुण्डित सिर पर रखा जाता है। यही शिखा। जन्म के बाद पहली बार केश-गुच्छ या शिखा रखने का कृत्य चूड़ाकरण या चूड़ाकर्म। 'चौल' चूड़ा का ही अपभ्रंश। इसके समय के सम्बन्ध में शास्त्रकारों के भिन्न-भिन्न मत। पहले, दूसरे, तीसरे या पाँचवें वर्ष, अथवा कुटुम्ब की परम्परा के अनुसार; यह कृत्य करने की व्यवस्था। इसमें प्रमुख कार्य शुभ मुहूर्त्त निकलवाकर बच्चे के केश काटना। इसके साथ हवन, ब्राह्मण-भोजन, आशीर्वचन-ग्रहण, दक्षिणा-दान आदि। कटे हुए केशों को गुप्तरूप से इस प्रकार हटाना उचित कि कोई उन्हें पा न सके।

शिखा हिन्दुओं का एक लक्षण। देवल ऋषि के मत से यज्ञोपवीत एवं शिखा बिना किया हुआ कोई भी धार्मिक कृत्य न किये हुए के समान। ध० इ०, प्र० पृ० २०४-२०५।

जातकरम (१।१९३) – जातकर्म – इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता का मना कर देना कि अभी बालके की नाल न काटी जाये। फिर पहने हुए वस्त्रसहित स्नान करके पिता द्वारा कुछ विशेष

पूजन और वृद्धिश्राद्ध आदि का अनुष्ठान। तदुपरान्त ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा धोयी हुई सिल पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को अँगूठे और अनामिका से लेकर, मंत्र पढ़ते हुए, बालक की जीभ पर मलना। फिर मधु और घृत मिलाकर, पिता का उसे चार बार सोने के पात्र से बालक की जीभ पर लगाना। कुश और जल से बालक का प्रोक्षण करके आचार्य का उसके दाहिने कान में आठों कण्डिकाएँ सुनाना। अपना दाहिना स्तन धोकर माता का, नाल और बालक पर डालना। गणेशादि का पूजन। वेदी बनाकर सरसों, पीपल और घी की आहुति। शिवमंत्र से सूत बाँधा जाना। फिर छुरे का पूजन कर नाल काटा जाना।

उपर्युक्त दोनों कर्मों के सूतिकागार में होने का विधान, किन्तु अब इनका विशेष प्रचलन नहीं। मा० पी०।

तिलांजलि (४।२७ आदि), तिलांजुलि (२।१७०।५) — शव के जल चुकने पर स्नान करके की जानेवाली मृतक संस्कार सम्बन्धी एक क्रिया। इसमें हाथ की अंजलि में जल भरकर और उसमें तिल डालकर मृतक के नाम से छोड़ना। हि० श० सा०।

दसगात (२।१७०।६) — दशगात्र — मृतकसम्बन्धी एक कर्म जो मनुष्य के मरने के पीछे दस दिन तक अनुष्ठित। इसमें प्रतिदिन पिण्डदान। पुराणों के अनुसार उसी पिण्ड के द्वारा क्रम-क्रम से प्रेत के शरीर का निर्माण, जैसे, पहले पिण्ड से सर, दूसरे से आँख, कान, नाक आदि, और दसवें दिन निर्माण-क्रिया पूर्ण। हि० श० सा०।

दाहक्रिया (२।१७०।५), मृतक कर्म (४।११।८), क्रिया (६।१०५।८) — शुद्धितत्व के मत से पुत्रादि का शव को श्मशान में ले जाकर रखना और स्नान करके पिण्डदान के लिए अन्न पकाना। फिर मृतक के शरीर में घी मलकर उसे मंत्रपाठपूर्वक स्नान कराना, दूसरे नये वस्त्र में लपेटकर आँख, कान, नाक, मुँह, इन सात छेदों में थोड़ा-थोड़ा सोना डालना। इतना हो चुकने पर चिता में अग्नि देनेवाले का प्राचीनावीत होकर (जनेऊ को दाहिने कन्धे पर डालकर) बायाँ घुटना टेककर बैठना और मंत्र पढ़कर कुश से एक रेखा खींचना। उस रेखा पर कुश बिछाना। दाहिने हाथ में तिलसहित जलपात्र लेकर मृतक का नाम, गोत्र आदि उच्चारण करते हुए जल को कुश पर गिरा देना। तिलसहित पिण्ड लेकर कुश पर विसर्जित करना। तब पुत्रादि का चिता तैयार करना और शव को उस पर दक्षिण की ओर सिर करके लिटा देना। सामवेदी का शव के मस्तक को उत्तर की ओर रखना। अग्नि हाथ में लेकर आग देनेवाले का शव की तीन प्रदक्षिणाएँ करना और दक्षिण की ओर अपना मुँह करके शव के मस्तक की ओर आग लगा देना। फिर सात लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात प्रदक्षिणाएँ करना और प्रत्येक प्रदक्षिणा में एक-एक करके लकड़ी चिता में डालते जाना। जब शव जल जाये, तब एक बाँस लेकर चिता पर सात बार प्रहार करना जिससे कपाल फूट जाये। इतना करके फिर चिता की ओर देखे बिना उसका जाकर स्नान करना। हि० श० सा० 'दाहकर्म'।

नंदीमुख सराध (१।१९३) — नान्दीमुख श्राद्ध — जन्म, उपनयन, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर किया जानेवाला एक आभ्युदयिक श्राद्ध। बृ० को०। पुत्र-जन्म होने पर पिता को पूर्वमुख बैठाकर, वेदिका पर दूब बिछाकर, चौरेठा, हलदी, तिल, दही तथा बेरी के फल मिलाकर, इनके नौ पिण्ड बनाकर, पिण्डदान कराया जाना। फिर दक्षिणा-दान। पितरों के उद्देश्य से किया जाने के कारण यह 'श्राद्ध', पितर इस पिण्ड को पाने के लिए नाँद की भाँति मुँह फैलाये रहते हैं, इसलिए 'नान्दीमुख'। मा० पी०।

नामकरन (१।१९७।२) — नामकरण — स्मृति के अनुसार जात बालक का ग्यारहवें दिन नामकरण करना उचित। यह न हो सके तो बारहवें दिन। क्षत्रिय के लिए तेरहवाँ, वैश्य के लिए सोलहवाँ, शूद्र के लिए बीसवाँ दिन उत्तम। नामकरण पिता का कर्तव्य। उसके न रहने पर अन्य कोई कुलवृद्ध करे।

गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार कुमार को शुभ्रवसन पहनाकर माता का पति के वाम भाग में बैठना। कुमार को पति के हाथ में देना। फिर पति की पीछे से परिक्रमा कर उसके सामने खड़ी होना। पति का यथाविध वेदमंत्र पाठकर कुमार को पत्नी के हाथ में सौंपना। इसके बाद होम आदि का अनुष्ठान और नामकरण।

नामकरण पद्धति के मत से नामकरण के दिन पिता द्वारा विवाह-विधि के अनुसार गीर्यादि षोडश मातृका का पूजन और वृद्धिश्राद्ध। फिर पत्नी को वामभाग में बैठाकर शिला-फलक में दो रेखाएँ अंकित करना, उनमें दीप जलाकर कुमार के दाहिने कान में 'श्री अमुक देवशर्मासि' तथा कन्या होने पर वामकर्ण में 'श्री अमुकी देव्यसि' कहकर नाम रखना। तदनन्तर शान्तिजल द्वारा कुमार का अभिषेक करके अछिद्राव धारण करना।

प्रतिष्ठाकामी व्यक्ति के लिए दो अक्षरों के और ब्रह्मज्ञानकामी के लिए चार अक्षरों के नाम का विधान। ब्राह्मण की वांछित नामोपाधि शर्मन् और देव, क्षत्रिय की वर्मन् और त्रात, वैश्य की भूति और शूद्र की दास। सबके पहले श्री शब्द लग सकता है। आजकल इस संस्कार में दिन, विधि आदि का उतना महत्व नहीं। वि० को०।

परिछन (१।६६।३ आदि), परिछनि (१।३१७।छं०) — परछन — विवाह की एक रीति जिसमें द्वार पर बरात आने पर कन्यापक्ष की स्त्रियों का वर के पास जाकर उसे दही-अक्षत का टीका लगाना, उसकी आरती करना तथा उसके ऊपर से मूसल, बट्टा आदि घुमाना। हि० श० सा०। वर के घर पर भी वरपक्ष की स्त्रियों का परछन करना।

बिआह (१।२२३।१ आदि), बिआहा (२।१०।६ आदि), बिबाह (१।३२३ आदि), बिबाहु (१।२८६।७ आदि) — विवाह — इस संस्कार को सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदत्त। विवाह-सम्बन्धी बहुत-से शब्दों द्वारा इस संस्कार के तत्वों की ओर संकेत, यथा, 'उद्धाह' (कन्या को उसके पितृगृह से उच्चता के साथ ले जाना), 'विवाह' (विशिष्ट ढंग से कन्या को ले जाना या अपनी स्त्री बनाने के लिए ले जाना), 'परिणय' या 'परिणयन' (अग्नि की प्रदक्षिणा करना), 'उपयम' (सन्निकट ले जाना और अपना बनाना) 'पाणिग्रहण' (कन्या का हाथ पकड़ना)।

मनु के अनुसार विवाह के प्रमुख उद्देश्य पुत्रोत्पत्ति, धार्मिक कृत्य, सेवा, सर्वोत्तम आनन्द एवं अपने तथा पूर्वजों के लिए स्वर्ग की प्राप्ति। ध० इ०, प्र० पृ० २६८-२६६।

मनु द्वारा कथित विवाह के आठ प्रकार — (१) ब्राह्म — इसमें अलंकार - परिधान-सज्जिता कन्या वेद-पण्डित एवं सुचरित्र व्यक्ति को आमन्त्रित करके पिता द्वारा प्रदत्त। (२) दैव — यज्ञ करते समय पुरोहित को सज्जित कन्या देना। (३) आर्ष — एक या दो जोड़ा पशु लेकर कन्या दी जाये। (४) प्राजापत्य — जब पिता वर और कन्या से कहे — 'तुम दोनों धार्मिक कृत्य करना', फिर वर को मधुपर्क आदि से सम्मानित कर कन्यादान करे। (५) आसुर — जब वर कन्या तथा कन्यापक्ष को धन दे और पिता स्वेच्छा से कन्या दे। (६) गान्धर्व — प्रेम-भावना के फलस्वरूप वर-कन्या की सम्मति से विवाह। (७) राक्षस — सम्बन्धियों को मारकर कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका अपहरण करके उससे सम्बन्ध करना। (८) पैशाच— चुपके से अचेत या उन्मत्त कन्या से सम्भोग। सभी विवाह-प्रकारों में होम एवं सप्तपदी कृत्य आवश्यक। अन्तिम दो वस्तुतः अपहरण के दो प्रकार। ध० इ०, प्र० पृ० २६८।

विवाह-संस्कार में (प्राप्त सूत्रों पर आधारित) निम्नलिखित बातें प्रचलित — (१) वर का वधू-गृह-गमन। (२) मधुपर्क (वधू के घर वर का स्वागत)। (३) स्थापन, परिधापन, सन्नहन (वधू को स्नान कराना, नया वस्त्र देना, उसकी कटि में धागा या कुश की रस्सी बाँधना)। (४) समंजन (वर और वधू को उबटन का सुगन्ध लगाना)। (५) प्रतिसरबन्ध (वधू का हाथ में कंगन बाँधना)। (६) वधू-वर-निष्क्रमण (घर के अन्तःकक्ष में वर-वधू का मण्डप में आना)। (७) परस्पर समीक्षण (वर-वधू का एक-दूसरे की ओर देखना)। (८) कन्यादान। (९) अग्नि-स्थापन एवं होम। (१०) पाणिग्रहण। (११) लाजहोम (कन्या द्वारा अग्नि में लावे की आहुति)। (१२) अग्नि-परिणयन (वधू को लेकर वर द्वारा अग्नि की प्रदक्षिणा)। (१३) अश्मारोहण (वधू को पत्थर पर चढ़ाना)। लाजहोम अग्नि-परिणयन एवं अश्मारोहण एक के बाद दूसरा, इस तरह तीन बार। (१४) सप्तपदी (वर एवं वधू का साथ-साथ सात पग चलना) —यह अग्नि के उत्तर की ओर। चावल की सात राशियाँ रखकर वर वधू को प्रत्येक पर चलाता है। पश्चिम दिशा से पहले दाहिने पैर से चलना आरम्भ। (१५) मूर्धाभिषेक (वर-वधू के सिर पर, कुछ के मत से केवल वधू के सिर पर, जल छिड़कना)। (१६) सूर्योदीक्षण (वधू को सूर्य की ओर देखने को कहना)। (१७) हृदय-स्पर्श (मन्त्र के साथ वधू के हृदय का स्पर्श)। (१८) प्रेक्षकानुमन्त्रण (नवविवाहित दम्पति की ओर संकेत करके दर्शकों को सम्बोधन)। (१९) आचार्य को दक्षिणा-दान। (२०) गृह-प्रवेश (वर के घर में प्रवेश)। (२१) प्रवेश करते समय होम। (२२) वधू को ध्रुव एवं अरुन्धती के दर्शन कराना। (२३) अग्नि में पक्वान्न की आहुति देना। (२४)। त्रिरात्र-व्रत (दम्पति द्वारा तीन रात्रियों तक कुछ नियम-पालन)। विवाह के सम्बन्ध में और भी कई रीतियों की चर्चा। इस संस्कार का सार-तत्व पाणिग्रहण, होम, अग्नि-प्रदक्षिणा एवं सप्तपदी। ध० इ०, प्र० पृ० ३०२-३०५।

लहकौरि (१।३२७।छं०२) — विवाह की एक रीति जिसमें वर और वधू का कोहबर में एक-दूसरे के मुँह में कौर (ग्रास) डालना। हि० श० सा०।

पुत्रकाम जग्य (१।१८६।५) — पुत्रकामेष्टि — एक यज्ञ जो पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से सम्पादित। वि० को०। आश्वलायन श्रौतसूत्र (२।१०।८) में इसका विधान। वि० को० 'पुत्रेष्टि'। (वा० रा० में पुत्रप्राप्ति के निमित्त राजा दशरथ का शृंगीऋषि से अश्वमेध यज्ञ कराना। उस यज्ञ के उत्तरकाल में ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र (दो), अभिजित्, विश्वजित् तथा आप्तोर्योम (दो) महाक्रतु भी सम्पादित। यज्ञ पूर्ण। तब राजा की प्रार्थना पर, उन्हें पुत्र प्राप्त कराने के लिए, शृंगीऋषि द्वारा अथर्ववेद के मंत्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान। वा० रा० १।८, १।१२, १।१३।३५-४१, १।१४, १।१५।१-४१)

बाजिमेध (७।२४।१) — अश्वमेध यज्ञ — यह भारतवर्ष का एक प्रख्यात यज्ञ। सार्वभौम राजा अर्थात् चक्रवर्ती नरेश ही अश्वमेध का अधिकारी, किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण (८ पंचिका) के अनुसार अन्य महत्वशाली राजन्यों का भी इसके विधान में अधिकार। आश्वलायन श्रौतसूत्र (१०।६।१) का कथन कि जो सब पदार्थों को प्राप्त करने का, सब विजयों का इच्छुक, समस्त समृद्धि पाने की जिसे कामना, वह इस यज्ञ का अधिकारी। ऋग्वेद के दो सूक्तों में (१।१६२, १।१६३) इस यज्ञ के अश्व तथा हवन का विशेष विवरण। शतपथ (१३।१-५) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मणों (३।८-९) में इसका बड़ा ही विशद वर्णन उपलब्ध जिसका अनुकरण श्रौतसूत्रों, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत के आश्वमेधिक पर्व तथा जैमिनीय अश्वमेध में।

इस यज्ञ में मूर्धाभिषिक्त राजा का यजमान के रूप में मण्डप में प्रवेश। उसके पीछे उसकी चारों पत्नियों का सुसज्जित वेश में, गले में सुनहला निष्क पहनकर, अनेक दासियों और राजपुत्रियों के साथ आना। इनके पदनाम — (क) महिषी (राजा के साथ अभिषिक्त पटरानी), (ख) वावाता (राजा की प्रियतमा), (ग) परिवृक्त्री (परित्यक्ता भार्या) तथा (घ) पालागली (हीन जाति की स्त्री)। अश्वमेध का अश्व अत्यन्त सुन्दर, सुडौल। उसके शरीर पर श्याम रंग की चौरी। पास के तालाब में उसे विधिवत् स्नान कराकर इस पावन कर्म के लिए अभिषिक्त किया जाना। तब सौ राजकुमारों के संरक्षण में उसे वर्षभर स्वच्छन्द घूमने के लिए छोड़ दिया जाना। उसकी अनुपस्थिति में प्रतिदिन सवितृदेव के निमित्त तीन इष्टियाँ। ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के वीणावादकों का प्रतिदिन राजा की स्तुति में स्वरचित पद्य वीणा पर सुनाना। प्रतिदिन पारिप्लव (विशिष्ट आख्यान) का पारायण। एक वर्ष तक निर्विघ्न घूमने के बाद अश्व के सकुशल लौटने पर राजा द्वारा दीक्षा ग्रहण। अश्वमेध तीन सुत्या दिवसों का अहीन याग। 'सुत्या' से अभिप्राय सोमलता को कूटकर सोमरस चुलाने से (सवन, अभिषव)। इसमें बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और तीन सुत्याएँ। इक्कीस अरत्नि ऊँचे इक्कीस यूप प्रस्तुत।

दूसरा सुत्यादिवस प्रधान और विशेष महत्वशाली। उस दिन अश्वमेधीय अश्व को अन्य तीन घोड़ों के साथ रथ में जोतकर तालाब में स्नान कराया जाना। रानियों का उसके शरीर में घी मलना। तब उस अश्व का विषप्रयोग द्वारा हनन। रानियों का बाईं से दाहिनी और दाहिनी से बाईं ओर उसकी प्रदक्षिणा करना। अभिषिक्त रानी का शव के पास लेटना। अध्वर्यु का दोनों को कपड़े से ढकना। इस अवसर पर चारों ऋत्विज् रानियों के साथ अश्लील कथोपकथन में प्रवृत्त। अश्व की वसा निकालकर अग्नि में हवन और ब्रह्मोद्य की चर्चा। ब्रह्मोद्य से तात्पर्य गूढ़ पहेलियों का पूछना-बूझना। तब राजा का व्याघ्रचर्म या सिंहचर्म पर बैठना। तीसरे दिन उपांग याग और ऋत्विजों को भूरि दक्षिणा दान। होता, ब्रह्मा, अध्वर्यु और उद्गाता को क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में विजित देशों की सम्पत्ति दक्षिणा में प्रदत्त और अश्वमेध समाप्त। — हि० वि० को०, 'अश्वमेध'।

परिशिष्ट २

मानस में सामान्य रूप से आये देवता और देवजातियाँ

विद्याधरोऽप्सरसो यक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।। — अमर० १।११।

[उपर्युक्त श्लोक में प्रेत, वेताल, पितर, नाग का उल्लेख न होने पर भी उनका यहाँ समावेश, कारण, अवस्थाविशेष में प्रेत का ही नामान्तर भूत, वेताल भूत की ही एक योनि, पितर (१) प्रेत के स्पष्टीकरण के लिए, पितर (२) और नाग कोशों (एवं मा० पी० ७ घ शब्दार्थ) के अनुसार देवयोनि में गण्य।]

अपछरा (१।८६।छं० आदि), देवबधू (१।२६२।४), सुरनारि (१।१२६।४)। — अप्सरा — प्रत्येक धर्म का यह विश्वास कि स्वर्ग में पुण्यवान् व्यक्तियों को दिव्य सुख, समृद्धि, भोग-विलास प्राप्त और उनके साधनों में अन्यतम अप्सरा जो काल्पनिक, किन्तु नितान्त रूपवती स्त्री के रूप में चित्रित। यूनानी ग्रन्थों में सामान्यतः इनका नाम 'निंफ'। ये तरुणी, सुन्दर, अविवाहित, कमर तक वस्त्र से आच्छादित, और हाथ में पानी से भरा पात्र लिए हुए स्त्री के रूप में वर्णित। इनका नग्न रूप देखनेवाले को पागल बना डालने में समर्थ, इसलिए नितान्त अनिष्टकारी। जल तथा स्थल पर निवास के कारण इनके दो वर्ग।

भारतवर्ष में अप्सरा और गन्धर्व का साहचर्य घनिष्ट। अपनी व्युत्पत्ति के अनुसार (अप्सु सरत्ति गच्छतीति अप्सराः) ये जल में रहनेवाली मानी जाती हैं। शतपथ ब्राह्मण (११।५।१।४) में ये तालाबों में पक्षियों के रूप में तैरनेवाली चित्रित। पिछले साहित्य में यह मान्यता कि इनका निवास जंगली जलाशयों में, नदियों में, समुद्र के भीतर वरुण के महलों में भी। अथर्ववेद (४।३७।४) के अनुसार अश्वत्थ तथा न्यग्रोध वृक्षों पर रहते हुए इनका वहाँ झूले में झूलना। नाचगान तथा खेलकूद में निरत रहकर इनके द्वारा अपना मनोविनोद। ऋग्वेद (१०।९५) में उर्वशी प्रसिद्ध अप्सरा। हि० वि० को०।

वा० रा० में सागर-मन्थन से साठ करोड़ सुन्दरियाँ प्रकट। 'अप' (जल) में उसके रस से उत्पन्न होने के कारण ये अप्सरा। कोई देवता या दानव इन्हें अपनी 'पत्नी' के रूप में ग्रहण न कर सके, इसलिए ये साधारणा या सामान्या। वा० रा० १।४५।३२-३५। महा० में अर्जुन से उर्वशी का कथन — सब अप्सराएँ अनावृता, इनका किसी से कोई पर्दा नहीं। पृथ्वी पर तपस्या करके स्वर्ग जानेवालों का अप्सराओं के साथ अबाध रमण। महा० वन० ४६।४२-४३

पुराणों के अनुसार तपस्या में लगे हुए मुनियों की समाधि भंग करने के लिए इन्द्र का अप्सरा को अपना मोहक प्रहरण बनाना। इन्द्र-सभा में इनका नृत्य और गायन सतत आह्लाद का साधन। घृताची, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराएँ अपने सौन्दर्य और प्रभाव के लिए प्रसिद्ध। हि० वि० को०।

किंनर (१।७ घ आदि) — किन्नर — ये एक प्रकार के देव। इनका मुख अश्व की भाँति, किन्तु शरीर के अन्य अवयव मनुष्य जैसे। इस शब्द का पर्याय किम्पुरुष, अश्वमुख आदि। ये अतिशय संगीतपटु। वि० को०। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो विश्वास — एक तो यह कि ये ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अँगूठे से उत्पन्न, दूसरा यह कि अरिष्टा और कश्यप इनके आदिजनक। हिमालय-शिखर कैलास इनका प्रधान निवास-स्थान जहाँ ये शंकर की सेवा में संलग्न। यह मान्यता कि ये देवताओं के गायक और भक्त, यक्षों-गन्धर्वों की तरह नृत्य-गीत में प्रवीण। विराट् पुरुष, इन्द्र और हरि इनके पूज्य। इनके सैकड़ों गण और चित्ररथ इनका प्रधान अधिपति। हि० वि० को०।

गंधर्ब (१।७ घ आदि), गंधर्बा (१।६१।१ आदि) — गन्धर्व— देवयोनिविशेष। शतपथ ब्राह्मण (६।४।१।२ और ४) के मत से गन्धर्व और अप्सराएँ मिथुन रूप में प्रजापति से उत्पन्न। हि० सा० भू० पृ० २०६। पुराणानुसार गान करते हुए ब्रह्मा से इनका जन्म, ये वाणी का उच्चारण करते हुए उत्पन्न, इसलिए गन्धर्व। वि० पु० १।५।४६-४७।

पूर्ववैदिक युग में गन्धर्व और अप्सराएँ एकदम अपरिचित। उत्तरवैदिक काल में इनकी ओर दृष्टि। उस समय सोम गन्धर्वों के हाथ में। यज्ञ में इन्द्र के प्रतिनिधि द्वारा इनसे उसका क्रय। वस्तुतः गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और यक्षिणी एकार्थवाचक देवता। शुरू में ये कुबेर के अनुचर, पर जब हिन्दू धर्म में इस प्रकार की प्रवृत्ति का समावेश कि आर्येतर देवताओं में जो उत्तम, वह इन्द्र के पास होना उचित, तो गन्धर्व और अप्सरा इन्द्र के अनुचर हो गये और यक्ष-यक्षिणी कुबेर के। हि० सा० भू०, पृ० २०९।

देवताओं की सभा में इनके द्वारा गान-वाद्य-नृत्याभिनय। स्वर्ग में इनके समान रूपवती कोई दूसरी जाति नहीं। वि० को०। ये कामातुर — स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः। ध० इ०, प्र०, पृ० २६८। शब्दार्थ चिन्तामणि के मत से इनके दो भाग— दिव्य और मर्त्य। जो इस कल्प के मध्य पुण्यबल से गन्धर्वत्व प्राप्त कर इनके समाज में सम्मिलित, वे मर्त्य, और जो इस कल्प के आदि से गन्धर्व, वे दिव्य।

वह्निपुराण के अनुसार दिव्य गन्धर्व भी ग्यारह भागों में विभक्त। जटाधर द्वारा आठ प्रधान गन्धर्वों का नामोल्लेख — हाहा, हूहू, चित्ररथ, हंस, विश्वावसु, गोमायु, तुम्बुरु और नन्दि। इन्हीं के नाम पर एक-एक वंश प्रतिष्ठित। अथर्ववेद में ६३३३ गन्धर्वों का उल्लेख। वि० को०। देवताओं की तरह इनका काल भी एक मन्वन्तर। भा० ३।११।२४।

जच्छ (१।१७६।४ आदि)— यक्ष— ये कुबेर के रक्षक। देवयोनिविशेष। इन्हीं का नाम गुह्यक। इनकी आकृति विकराल, पेट फूला हुआ, कन्धे भारी। हाय-पैर घोर काले रंग के। ये प्रचेता की सन्तान। वि० को०। दे० 'कुबेर'।

जगत् की सृष्टि करके ब्रह्मा द्वारा दूसरी रजोमात्रात्मिका देह धारण। उनमें क्षुधा और काम उत्पन्न। उस स्थिति में उनके द्वारा क्षुत्क्षामों की रचना। वे सब अत्यन्त कुरूप और दाढ़ीमूछवाले। ब्रह्मा को खाने के लिए उनका दौड़ना। तब जिनका कथन कि 'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करो' वे राक्षस और जिनका कथन कि 'हम खायेंगे', वे यक्ष नाम से अभिहित। वि० पु० १।५।४१-४३। (वा० रा० ७।४।९-१३ में भिन्न मत। दे० 'राक्षस'।)

यक्ष और यक्षिणी मूल रूप में उर्वरता के देवता। महा० में ऐसी अनेक कथाएँ जिनमें सन्तानार्थिनी स्त्रियों का वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास सन्तान-कामना से गमन और वर-याचना। भरहुत, साँची, मथुरा आदि में इस उद्देश्य की अनेक मूर्त्तियाँ उपलब्ध। हि० सा० भू०, पृ० २०७।

देवता (२।२१३।७ आदि), देव (१।७ घ आदि), अमर (१।१०२।छं० आदि), सुर (१।२५।६ आदि)— देवता कहने से स्वर्गवासी अमर प्राणी का बोध, किन्तु ऋग्वेद के ऋषि को इसमें सन्देह। ऋक्संहिता की अनुक्रमणिका में कात्यायन का मत कि जिनका वाक्य है, वे ऋषि, ऋषि-वाक्य की प्रतिपाद्य जो वस्तु, वह देवता। ऋषि, छन्द और देवता, इन्हीं तीन को लेकर वेद निर्मित। जो चराचर वस्तु दृश्यमान, जिनके द्वारा वैदिक ऋषि उपकृत — यथा सूर्य, चन्द्र, ग्रहादि, गिरि, नदी, वनस्पति आदि — ये ऋक्संहिता में देवता नाम से आख्यात।

निरुक्तकार यास्क के मत से दान और दीपन के लिए जो द्युस्थानगत, वे ही देव-देवता। योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार जो दीप्तिमान्, क्रीड़ारत, स्वर्ग में शोभित और द्युतिविशिष्ट, वे ही देवता, तथा वे ही देवताओं से प्रशंसित। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि के स्थायित्व से प्रभावित हो, इन सब प्रकृतिपुंजों से संसार का नित्य उपकार होता देख, मुग्ध ऋषियों द्वारा इनके प्रति विशेष देवत्व आरोपित। देवतत्व का यही मूल बीज।

देवतत्व सर्ववाद सम्मत नहीं। इनकी संख्या के विषय में और भी मतभेद। यास्क के अनुसार देवता तीन — पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में इन्द्र वा वायु और आकाश में सूर्य। शेष देवता इन्हीं तीनों के अन्तर्भूत अथवा इन्हीं के अलग-अलग नाम। ऋक्संहिता के प्रथम, अष्टम, नवम मण्डल के अनेक सूक्तों में तैंतीस देवताओं का उल्लेख — स्वर्ग में ११, पृथ्वी में ११, अन्तरिक्ष में ११ — पर नाम नहीं (ऋक् १।१३९।११, ८।२८।९)। शतपथ ब्राह्मण (११।६।३।५) के अनुसार ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, तथा इन्द्र और प्रजापति मिलकर कुल ३३ देवता। ऋग्वेद में एक स्थान पर (३।९।९) देवताओं की संख्या ३३३९। शतपथ ब्राह्मण (११।६।३।४) और शांखायन श्रौतसूत्र (८।२१।१४) आदि में भी ३३३९ देवताओं का उल्लेख। सम्भवतः इस संख्या के सम्बन्ध में मतभेद देखकर ही कुछ ऋषियों द्वारा देवताओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह व्यक्त, किन्तु वह अल्पस्थायी।

ऋक्संहिता में सर्वोच्च भाव भी प्रकाशित। ऋक् १।१६४।४६ एवं १३।१४४।५ के अनुसार भिन्न-भिन्न देवता

एक परमात्मा के ही नामान्तर। पुराणों के असंख्य देवता उसी के महिमाव्यंजक रूप। देव-देवियों का उपासनामूलक वर्त्तमान हिन्दू धर्म ऋक्‌संहिता के उपर्युक्त दो मन्त्रों में प्रतिष्ठित। वि० को०।

मीमांसा दर्शन के मत से देवताओं के वास्तविक रूप या विग्रह नहीं, वे मन्त्रात्मक। वि० को०। यह मान्यता कि मन्त्रविशेष या यथाविध जप करने पर उच्चारण से उत्पन्न स्वर-लहरियों का शक्ति के अनन्त सागर को विशेष प्रकार से क्षुब्ध करना। फलतः साधक में विशेष प्रकार की शक्ति का उदय। यदि यह कहा जाये कि अमुक मन्त्र के देवता रुद्र, तो तात्पर्य यह कि उस मन्त्र के विधिपूर्वक जप से साधक में रौद्री शक्ति – संहारक शक्ति – का उद्‌बोध। यह साधक की निष्ठा और तप की उग्रता पर निर्भर कि वह शक्तिसागर को कहाँ तक विलोड़ित करने में समर्थ। इसी प्रकार विष्णु, प्रजापति, इन्द्र आदि नाम वैष्णवी, ब्राह्मी, ऐन्द्री शक्तियों के प्रतीक के रूप में मन्त्रों के साथ प्रयुक्त। हि० वि० को०।

मनु के वचनानुसार (मनु० ३।२०१) देवताओं की मानो एक स्वतंत्र श्रेणी। सभी पुराणों के मत से इनकी उत्पत्ति कश्यप ऋषि और अदिति से। वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में देवासुर-संग्राम का भी परिचय प्राप्त। वि० को०। (इसके लिए 'असुर' शब्द पर विचार करना समीचीन।) 'असुर' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्राणवन्त (निरुक्त ३।८)। यह शब्द वैदिक देवों के एक सामान्य विशेषण के रूप में व्यवहृत, विशेषतः इन्द्र, मित्र, वरुण के साथ प्रयुक्त होकर उनकी विशिष्ट शक्ति का द्योतक। इसी उदात्त अर्थ में इसका पारसियों के प्रधान देवता 'अहरमज्द' ('असुरः मेधावी') के नाम से प्रयोग। उस समय वैदिक आर्यों तथा ईरानियों (पारसीकों) का एक ही स्थान पर निवास, वे एक ही देवता की उपासना में निरत। अनन्तर आर्यों की इन दोनों शाखाओं में किसी अज्ञात विरोध के कारण फूट। फलतः 'न सुरः असुरः', यह नवीन व्युत्पत्ति मानकर वैदिक आर्यों द्वारा दैत्यों के लिए 'असुर' शब्द का प्रयोग आरम्भ। उधर ईरानियों द्वारा भी 'देव' शब्द ('द एव' के रूप में) अपने धर्म के दानवों के लिए प्रयुक्त। अतः वैदिक 'वृत्रघ्न' (इन्द्र) अवस्ता में 'वेरेत्रघ्न' के रूप में एक विशिष्ट दैत्य का वाचक तथा ईरानियों का 'असुर' शब्द पिप्रु आदि उन देवविरोधी दानवों के लिए ऋग्वेद में प्रयुक्त जिनका इन्द्र द्वारा वज्र से वध (ऋक्० १०।१३८।३-४)। शपतथ ब्राह्मण (१३।८।२।१) में देव और असुर भ्रातृव्य और शत्रु। पुराणों तथा अवान्तर साहित्य में 'असुर' एक स्वर से दैत्यों का ही वाचक। हि० वि० को०।

पुराणों में देवताओं का मानवीकरण भी। इनकी मूर्तियों का निर्माण। इनके सम्प्रदाय प्रतिष्ठित। पहले सब देवता त्रिमूर्त्ति – ब्रह्मा, विष्णु, शिव – में परिणत, फिर देवमण्डल और पूजापद्धति का विस्तार। हि० ध०। वेद में जिन ३३ देवताओं का उल्लेख, उन्हीं से पद्‌मपुराण (उत्तरखण्ड) में ३३ कोटि देवताओं की कल्पना। महाभारत (शान्तिपर्व) के अनुसार देवताओं में भी वर्णभेद— द्वादश आदित्य क्षत्रिय, मरुद्‌गण वैश्य, अश्विद्वय शूद्र और आंगिरस देवगण ब्राह्मण। मन्त्र महोदधि के मत से मासविशेष में देवताविशेष का पूजन अभीप्सित। हिन्दुओं में कुलदेवता, इष्टदेवता, गृहदेवता, ग्रामदेवता आदि की भी पूजा। वि० को०।

श्री सम्पूर्णानन्द के अनुसार देवों के दो भेद – कर्मदेव और आजानदेव। जिन मनुष्यों को पुण्यकर्मों के प्रभाव से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति और पुण्य-क्षय तक जिनका वहाँ वास, वे कर्मदेव। वे तत्तत् लोकों के सुखों के भागी, किन्तु उनके अधिष्ठाताओं के अधिकारों के नहीं। उग्र तपस्या करनेवाले व्यक्ति अगले कल्प में दिव्य लोकों में उच्च कोटि के अधिकार और वैभव के उपभोक्ता। वे जगत् में ऋत के पालक और ऊर्ध्वलोकों के अधिष्ठाता। उनकी संज्ञा आजानदेव। उनका ज्ञान और बल विशाल। – भारतीय सृष्टिक्रम-विचार, श्री सम्पूर्णानन्द, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथमावृत्ति १९९६।

इनके राजा इन्द्र। इनका काल एक मन्वन्तर। (यह इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक। १ चतुर्युगी = १२००० दिव्य वर्ष, १ दिव्य दिन = मनुष्यों का एक वर्ष।) भा० ३।११।२४, वि० पु० १।३।१७-१८।

नाग (१।७ घ आदि) – ये कद्रू से उत्पन्न कश्यप की सन्तान जिनका स्थान पाताल में। वराहपुराण के अनुसार कश्यप और कद्रू से अनन्त, वासुकि, कम्बल, कर्कोटक, पद्‌म, महापद्‌म, शंख, कुलिक और अपराजित का जन्म। ये सब नाग कहलाये। इनके पुत्र-पौत्र अत्यन्त क्रूर और विषधर जिससे प्रजा क्रमशः क्षीण। प्रजा की ब्रह्मा के यहाँ पुकार। ब्रह्मा का नागों को डाँटना। इनकी विनय – ये निरपराध। ब्रह्मा ने ही इन्हें विषधर बनाया। तब ब्रह्मा का इनके निवास के लिए पाताल, वितल, सुतल लोक निश्चित करना।

कद्रू और विनता के विवाद में (दे० 'कद्रू') जिन नागों को कद्रू के षड्यन्त्र में सम्मिलित होना अस्वीकार, उन्हें नष्ट होने का कद्रू का शाप। जनमेजय के सर्पयज्ञ में उनका विनाश।

पुराणों में अनेक नागों के नाम जिनमें मुख्य आठ – अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोटक, शंख। इनका कुल अष्टकुल नाम से विख्यात। हि० श० सा०। ये मनुष्य के आकार के जिनकी गणना देवयोनि में। बृ० को०।

पितर (१।७ घ आदि) – (१) षोडश श्राद्ध और सपिण्डीकरण के बाद मृत व्यक्ति प्रेत-शरीर से मुक्त। नया भोग-शरीर प्राप्त कर अपने पिता-पितामह-प्रपितामह आदि के साथ उसका पितृलोक में वास, अथवा कर्म-संस्कारानुसार स्वर्ग-नरक आदि में सुख-दुख आदि भोग। इसी अवस्था में वह पितृ अथवा पितर नाम से अभिहित। जब तक प्रेतभाव, तब तक वह पितृ कहलाने का अधिकारी नहीं। सपिण्डीकरण से पहले जहाँ प्रयोजन, वहाँ प्रेत नाम से उसे सम्बोधन। प्रेतत्व से छूटे हुए पूर्वजों की तृप्ति के लिए श्राद्ध, तर्पण आदि करना पुत्रादि का कर्तव्य। वि० को०।

(२) पितृ एक प्रकार के देवता। ये सब जीवों के आदिपुरुष। मनु के अनुसार ऋषियों से पितर, पितरों से देवता और देवताओं से स्थावर-जंगम जगत् की उत्पत्ति। द्विजों के लिए देवकार्य से पितृकार्य का अधिक महत्व। पितरों के निमित्त जलदानमात्र करने से अक्षय सुख प्राप्त। इनका लोक पितृलोक। वि० को०।

प्रेत (१।७ घ आदि), भूत (१।८५।६ आदि), पिसाच (१।८५।६ आदि), बेताल (३।२०।छं० १ आदि), बेताला (१।८५।६ आदि)–

प्रेत – इसकी कल्पना संसार के सभी देशों और संस्कृतियों में प्राप्त। यह विश्वास कि शरीरधारियों के देहान्त के बाद उनकी आत्मा का इधर-उधर भटकना। ऐसी आत्माओं की ही संज्ञा 'प्रेत'। पुराणों के अनुसार प्रेत का रंग काला, स्वरूप विकराल, और पैर की उँगलियाँ पीछे की ओर। इनका नकियाकर बोलना। इनकी छाया नहीं पड़ती।

मृत्यु के बाद मनुष्य का केवल लिंगशरीर (अतिवाहिक देह) शेष। उसे पिण्ड आदि दिये जाने पर प्रेतशरीर प्राप्त। यही भोगशरीर। प्रथम पिण्ड के द्वारा प्रेत के सिर का, दूसरे के द्वारा कान, आँख, नाक का, तीसरे के द्वारा गर्दन, कन्धे, छाती का निर्माण और इस तरह प्रतिदिन पिण्ड देने पर दसवें दिन के पिण्ड से उसके सभी अंगों की पूर्ति। मृत्यु के एक वर्ष बाद सपिण्डीकरण संस्कार जिसके द्वारा मृत व्यक्ति प्रेतदेह का परित्याग कर प्रेतयोनि से मुक्त। हि० वि० को०।

भूत – (श्राद्ध आदि ऊर्ध्वदैहिक क्रिया न होने पर तथा) अपने जीवनकाल में निषिद्ध कर्म– यथा ब्राह्मण-निन्दा, माता-पिता का निरादर, कन्या-विक्रय, गोवध, चोरी आदि – करनेवालों का सपिण्डीकरण के बाद भी प्रेतावस्था से छुटकारा नहीं। ऐसे प्रेतों की संज्ञा 'भूत'। यह विश्वास कि इनका अपवित्र वस्तुओं का सेवन करना, अपवित्र स्थानों में रहना। हि० वि० को०। इनका मुँह नीचे की ओर लटका हुआ या ऊपर की ओर उठा हुआ। ये रुद्र के गण। बालकों के उत्पीड़क। वि० को०। यह भी मान्यता कि चारों ओर घूमते हुए इनका समय-समय पर उपद्रव करके लोगों को कष्ट पहुँचाना। किसी के सिर पर, विशेषतः स्त्रियों के सिर पर चढ़कर उनसे उपद्रव तथा बकवास कराना। हि० श० सा०।

पिशाच – मद्यप, पागल, अपराधी की मृत्यु होने पर उसके प्रेत की संज्ञा पिशाच। हि० वि० को०। ये एक प्रकार के भूत ही। मान्यता कि इनका स्थान मरुस्थल। युद्धक्षेत्र आदि में इनके वीभत्स काण्डों का – जैसे खोपड़ी में रक्त आदि पीने का – कवियों द्वारा वर्णन। हि० श० सा०।

वेताल – भूतों की ही एक योनि वेताल। ये प्रायः भूतों के प्रधान। श्मशानवासी। हि० श० सा०।

राच्छस (६।५४।५ आदि), असुर (१।१८।३ आदि), निसिचर (१।२४।८ आदि), निसाचर (१।४२।५ आदि), जातुधान (१।१७१।२ आदि), दानव (१।६।६ आदि), दनुज (१।७ घ आदि)– (इनमें सूक्ष्म भेद होने पर भी मानस में ये पर्याय।) राक्षस – वैदिक काल में राक्षसों की कल्पना का आधार मानव के रहस्यात्मक अनुभव। शीत, अन्धकार, अनावृष्टि, भय, रोग, कष्ट आदि की उत्पत्ति में किसी-न-किसी यातु (जादू, माया, छल-छद्म) अथवा राक्षसी शक्ति की कल्पना। मानव के दुःख और विपत्तियाँ अनन्त, अतः राक्षस भी असंख्य।

ये कच्चा मांस, मनुष्य, पशु का भक्षण करनेवाले। धूर्त्त, मिथ्याचारी, अनिष्टकारी। यज्ञों को भ्रष्ट करने में इन्हें आनन्द। ये अन्धकार में अधिक प्रबल। इसीलिए निशाचर। ये मायावी। नाना रूप ग्रहण करने में समर्थ। अनेक रात्रि-पक्षियों के रूप में इनका दिखायी देना, रहस्यात्मक बोलियाँ बोलना। हि० ध०, दे० 'राक्षस', 'यातुधान'।

वा० रा० में इनकी उत्पत्ति और प्रसार — पूर्वकाल में ब्रह्मा द्वारा जल और जल-जन्तुओं की सृष्टि। उनमें जो जल की रक्षा करने के आग्रही, वे ब्रह्मा द्वारा राक्षस नाम से और जो उसके यक्षण (पूजन) को उत्सुक, वे यक्ष नाम से अभिहित। वा० रा० ७।४।९-१३। (वि० पु० में भिन्न मत। दे० 'यक्ष'।)

शक्तिशाली हेति और प्रहेति नामक भाई राक्षसों के अधिपति। धर्मात्मा प्रहेति का तपोवन में जाकर तप। हेति के काल-भगिनी से उत्पन्न पुत्र विद्युत्केश द्वारा सन्ध्या-पुत्री का वरण। वा० रा० ७।४।१४-२१। उससे सुकेश का जन्म। उसे शिव का अमर होने का वर। (पार्वती का वरदान — राक्षसियाँ शीघ्र गर्भधारण और प्रसव करें। उनका नवप्रसूत पुत्र तत्काल बढ़कर माता की अवस्था का हो जाये।) वा० रा० ७।४।२८-३२। गन्धर्व-कन्या देववती से सुकेश का विवाह। तीन पुत्र उत्पन्न — माल्यवान्, सुमाली, माली। तीनों प्रबल, भयंकर, तेजस्वी। उनकी तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा का उन्हें वर — वे शत्रुहन्ता, अजेय, चिरजीवी हों। उनमें परस्पर प्रेम बना रहे। वा० रा० ७।५।१-१६। निर्भय हो उनका देवताओं, ऋषियों और असुरों को भी कष्ट देना। विश्वकर्मा के परामर्श से लंका में जाकर वास। वा० रा० ७।५।१७-३०। तीनों का तीन गन्धर्व-कन्याओं से विवाह। पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न। वा० रा० ७।५।३१-४७। उत्पीड़ित ऋषि और देवता शिव के, फिर विष्णु के शरणागत। इन राक्षसों के विनाश का विष्णु का आश्वासन। वा० रा० ७।६।१-२२। राक्षसों का देवलोक पर आक्रमण। विष्णु प्रस्तुत। वा० रा० ७।६।४६-७०। युद्ध। माल्यवान्, माली, सुमाली तथा उनके योद्धा रावण आदि से अधिक बलवान्, किन्तु विष्णु के आगे विवश। विष्णु द्वारा माली का शिरश्च्छेद। राक्षसों का लंका की ओर पलायन। विष्णु से अनेक बार युद्ध करके सदा पराजित हो ये भीत। इनका लंका त्यागकर पाताल में वास। लंका कुबेर की निवास-भूमि। वा० रा० ७।७, ७।८। (पुलस्त्य के पुत्र, ब्रह्मा के पौत्र) विश्रवा से सुमाली-पुत्री कैकसी के तीन पुत्र उत्पन्न — रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण। उनका तप और वरप्राप्ति। कुबेर का लंका-त्याग। लंका में रावण का राज्याभिषेक। ७।९ - ७।११। तीनों भाइयों का विवाह। मेघनाद का जन्म। वा० रा० ७।१२। ('असुर' शब्द पर विचार के लिए दे० 'देवता', अनुच्छेद ६।)

सिद्ध (१।६१।१ आदि) — एक देवयोनि। यह मान्यता कि इनका निवास-स्थान भुवर्लोक। वायुपुराण के अनुसार इनकी संख्या अठासी हजार। कहीं-कहीं इनका निवास किन्नर आदि के समान हिमालय भी कहा गया है। वि० को०।

परिशिष्ट ३

'रामचरित सतकोटि अपारा' (७।५२।२)

रामचरित्र अपार, रामायणें अनन्त। यह मान्यता कि सबसे प्राचीन रामायण वाल्मीकि की। महा० द्रोण० (१४३।६७-६८) से स्पष्ट कि महाभारत की घटनाओं से सैकड़ों-हजारों वर्ष पहले वाल्मीकीय रामायण रचित। यह प्रवाद कि उसमें सौ करोड़ श्लोक। रामायण के टीकाकार नागेश भट्ट के अनुसार उन सबका ब्रह्मलोक-गमन। लव-कुश द्वारा उपदिष्ट मात्र चौबीस हजार श्लोक पृथ्वी पर शेष। पण्डित धनराज शास्त्री की सूची में कुछ रामायणों की चर्चा, यथा –

(१) महारामायण – यह प्रवाद कि आदि रामायण वाल्मीकि रामायण नहीं, बल्कि भगवान् शंकर रचित महारामायण। यह साढ़े तीन लाख श्लोकों का एक वृहत् ग्रन्थ जो उपलब्ध नहीं। सात काण्डों में विभक्त। इसमें साथ ही साथ वेदान्त-वर्णन और नवरसों में उसका विकास। विशेष बात यह कि इसमें निन्यानबे रास कनक-भवन-बिहारी के वर्णित।

(२) संवृत रामायण – चौबीस हजार श्लोक। कर्त्ता नारद। सप्त सोपान। मनु-शतरूपा का तप और भगवान्-सदृश पुत्र की याचना। दशरथ-कौसल्या-रूप में उनका जन्म। रामचरित्र का विस्तृत वर्णन।

(३) अगस्त्य रामायण – श्लोक सोलह हजार। रचयिता अगस्त्य मुनि। सप्त सोपान। राजा कुन्तल और सिन्धुमती दशरथ-कौसल्या। इसमें शिव के अगस्त्याश्रम पर जाने की कथा। भानुप्रताप-अरिमर्दन-कल्प का रामजन्म-हेतु। जानकी-जन्म वार्ष्णेय यज्ञभूमि-शोधन में।

(४) लोमश रामायण – श्लोक बत्तीस हजार। कर्त्ता लोमश ऋषि। सप्त सोपान। इसमें जलन्धर के कारण रामावतार। राजा कुमुद और वीरमती दशरथ-कौसल्या। यहाँ जानकी-जन्म मिथिलेश के शिकार में वन में प्राप्त योगमाया-दर्शन है। इसमें सती-व्यामोह, उनका त्याग, पार्वती-विवाह विशेष रूप से।

(५) रामरहस्य – श्लोक बाईस हजार।

(६) मंजुल रामायण – श्लोक एक लाख बीस हजार। रचयिता सुतीक्ष्ण ऋषि। सप्त सोपान। भानुप्रताप-अरिमर्दन की कथा विशेष। सीता-पवनसुत का अशोक-वाटिका-संवाद आदि, शबरी के प्रति नवधा भक्ति-वर्णन आदि।

(७) सौपद्य रामायण – श्लोक बासठ हजार। रचयिता अत्रि। सप्त सोपान। माली-राम-संवाद , जनकवाटिका-प्रसंग, विवाह-तरंग, हास-विलास आदि। वन में ग्रामवधूटी-स्नेहकथन, विलाप, सुग्रीव-मैत्री आदि।

(८) रामायण महामाला – श्लोक छप्पन हजार। सप्त सोपान। इसमें शिव-पार्वती-संवाद। शिव का नीलगिरि पर मराल-वेश में वास, गरुड़-व्यामोह, गरुड़-भुशुण्डि प्रसंग आदि। राम के रामेश्वर-आलम्ब का प्रयोजन आदि।

(९) सौहार्द्र रामायण – श्लोक चालीस हजार। कर्त्ता शरभंग। इसमें दण्डकारण्य-सम्बन्धी कथा, नारद-व्यामोह, शीलनिधि और उनकी कन्या सम्बन्धी प्रसंग, रुद्रगण का परिहास, नारद का क्रोध और शाप आदि। शूर्पणखा-कर्ण-नासिका-छेदन-प्रसंग, रावण-मारीच-प्रसंग, लक्ष्मण द्वारा धनुषरेखाकरण, उसकी शक्ति का वर्णन। सीता-हरण, जटायु-मोक्ष, राम की विकलता। विरह अथवा आनन्द से मनुष्य एक ऐसे स्वरूप में स्थिर जिसमें पशु-पक्षी-जंगल आदि से संभाषण करने में समर्थ – यह अवस्था विशेष रूप से वर्णित। राम-लक्ष्मण का वानरी भाषा समझना और बोलना। राक्षसों की पैश्य भाषा, पशु-भाषा आदि की भी विशेष शृंखला।

(१०) रामायण मणिरत्न – छत्तीय हजार श्लोक। यह वसिष्ठ-अरुन्धती-संवाद। रामायणमात्र सप्तसोपानबद्ध – इसकी सहेतु व्याख्या। पंचवटी-उत्पत्ति, चित्रकूट-निवास का कारण और महत्व आदि।

चित्रकूट-रासस्थान। अनसूया-नारीधर्म-शिक्षा विशेष। अयोध्या रासस्थान, चन्द्रोदय, प्रमोदवन-विहार, वसन्तोत्सव, फाल्गुन-उत्सव, (मिथिलोत्सव और अयोध्या-उत्सव), सखियों के साथ रंगस्पर्धा, सखाओं को व्यामोह, रंगपंचमी आदि विशेष। लंका में सीता-राम-मिलन। वेद आदि की स्तुतियाँ। गुरुगीता, ज्ञानगीता आदि (सात गीता)।

(११) सौर्य रामायण — बासठ हजार श्लोक। यह हनुमान्-सूर्य-संवाद। हनुमान्-जन्म। शुक के रजक होने का कारण और उसके द्वारा जानकी-निस्सारण दण्ड विशेष। लौटते समय अंजनी-हनुमान्-संवाद, अंजनी का मातृ-धिक्कार, पश्चात् प्रसन्नता एवं सीता-मिलन और उन पर भी बौछार आदि, जाम्बवान्-बल-पराक्रम-वर्णन, प्रयाग-आगमन आदि।

(१२) चान्द्र रामायण — पचहत्तर हजार श्लोक। यह हनुमत्-चन्द्रमा-संवाद। इसमें नारद का तप और मोह, भरत-चित्रकूट-यात्रा, केवट-संवाद, केवट का पूर्वजन्म-संस्कार आदि विशेष। जानकी की खोज में विवर-प्रवेश और एक स्त्री का सम्मिलन, सम्पाति-चरित्र विशेष। चन्द्रमा ऋषि-प्रसंग, सम्पाति का वानरों से मिलन आदि।

(१३) मैन्द रामायण — बावन हजार श्लोक। यह मैन्द-कौरव-संवाद। इसमें जनकनगर-वाटिका-प्रसंग, माली-संवाद, अहल्योद्धार, गंगावर्णन आदि विशेष। रामेश्वर-माहात्म्य, रावण-मंत्र, विभीषण-मंत्र, हनुमान् का लंकादहन आदि विशेष।

(१४) स्वायंभुव रामायण — अठारह हजार श्लोक। यह ब्रह्मा-नारद-संवाद। इसमें गिरिजा-पूजन, विवाह-अंग, वन-अटन, सीता-हरण आदि विशेष। अद्भुत यह कि इसमें रावण को मुनिदण्ड, मन्दोदरी-गर्भ से सीता-उत्पत्ति, कौसल्या-हरण, दीर्घबाहु, दिलीप, रघु, अज, दशरथ की परीक्षा विशेष रूप से वर्णित।

(१५) सुब्रह्म रामायण — बत्तीस हजार श्लोक। इसमें प्रयाग-माहात्म्य, भरद्वाज की पहुनाई, तापस-मिलन, अनसूया-रहस्य आदि विशेष।

(१६) सुवर्चस रामायण — पन्द्रह हजार श्लोक। यह सुग्रीव-तारा-संवाद। इसमें किष्किन्धा के प्रति लक्ष्मण-कोप, सुग्रीव-मिलन, सीता-दर्शन की तारा को उत्कण्ठा और लौटते समय दर्शन, रावण-सभा-प्रसंग, मन्दोदरी का समझाना, सुलोचना-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, संजीवनी-आनन्दपर्वत-वर्णन, सपर्वत हनुमान् का अयोध्या-आगमन, भरत-हनुमान्-संवाद, धोबी-धोबिन-संवाद, रावण-चित्रोल्लेखन पर शान्ता की चुगली, शान्ताप्रति सीता का शाप, उनको पक्षीयोनि की प्राप्ति, सीता-निस्सारण, लवकुश-जन्म, अश्व बाँधना, लवकुश-युद्ध, अयोध्यावासियों की पराजय, महारावण-युद्ध और उसका वध, लवणासुर-युद्ध और उसका वध, राज्यविभाग, वैकुण्ठगमन आदि।

(१७) देव रामायण — एक लाख श्लोक। यह इन्द्र-जयन्त-संवाद। इसमें जयन्त द्वारा राम-परीक्षा, अशरण्यता, राम-शरणागति और रामविजय, भरतविजय, शत्रुघ्नविजय, हनुमान्विजय, वानरविदाई, अंगद-व्यामोह, विभीषण-पुत्र की अयोध्या कोतवाली, जानकी-विनय, जानकीनाटक, नाम, रूप, लीला, धाम, चतुर्व्यूह-भक्ति, हनुमत्-राज्याभिषेक, हनुमत्-कार्य, उपासना विधि आदि, भाषा-परिवर्तन-विधि आदि।

(१८) श्रवण रामायण — श्लोक एक लाख पच्चीस हजार। इसमें इन्द्र-जनक-संवाद। दशरथ का अहेर-वर्णन, श्रवण-वध, उनके पिता का दशरथ को शाप, मन्थरा-उत्पत्ति, मृगीशाप, भरत की मातामही का सख्य, दशरथ-प्राणघात-कारण, राज्यांग विशेष। चित्रकूट में अवधसमाज, मिथिलासमाज, एकत्र स्थिति, सभा, पादुका-याचना, पादुका-राज्य-प्रसंग, नन्दिग्राम-वास, राजभारानुवर्तन पादुका द्वारा विशेष।

(१९) दुरन्त रामायण — इकसठ हजार श्लोक। वसिष्ठ-जनक-संवाद। इसमें भरत-महिमा, भरत-विलाप, लक्ष्मण-रोष, निषाद-भरत-संवाद, निषाद-रोष, चूड़ामणि की कथा, मुद्रिका चूड़ामणि का परिवर्तन-हेतु, सीतासन्देश-प्राप्ति, प्रवर्षण-शैल-निवास, देवताओं के वानर होने का कारण, राम का वालिवध-प्रण,

समुद्र-तीर अंगद-प्रलाप, वानरों का बल-भाषण, हनुमत्-मौन-कारण, लंकादहन, विभीषण-गृह के बचने और हनुमान् के न जलने का हेतु, विभीषण-राज्याभिषेक आदि।

(२०) रामायण चम्पू — पन्द्रह हजार श्लोक। यह शिव-नारद-संवाद। सप्त सोपान संक्षेपतः। रामायण-चित्रवर्णन इसका कार्य। शीलनिधि राजा के वहाँ रुद्रगण को नारद-शाप, सती-देह-त्याग, दक्ष-यज्ञ-ध्वंस, शिव-समाधि, त्रिपुर-उत्पत्ति, पार्वती-जन्म और तप, कामदहन, पार्वती-विवाह, गणेश-उत्पत्ति, कैलासस्थिति, रामभक्ति-प्रकार, रामध्यान, राम-वन्य-स्वरूप, वीर-स्वरूप, इन्द्र-रथ-प्रेषण, अरुण-गरुड़-संवाद, कालनेमि-छल, संजीवनी महिमा आदि।

उपर्युक्त रामायणें स्वतंत्र रूप से रामकथा के सम्बन्ध में लिखित, किन्तु उनकी संख्या इतनी ही नहीं। महाभारत वनपर्व में भी रामोपाख्यान वर्णित। अठारहों पुराणों में रामायण की कथा का गायन। ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत रामायण-कथा अलग से अध्यात्म रामायण के नाम से प्रकाशित। यह शिव-पार्वती-संवाद के रूप में। — उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण हि० के अन्तर्गत, 'रामायण' का संक्षिप्त रूप; विवरण की भाषा उसी पर आधृत।

इनके अतिरिक्त आनन्द रामायण, अद्‌भुत रामायण, भुशुण्डि रामायण भी। मा० पी० ७।५२।२-४ नोट २ के अनुसार अ० रा० में निम्नलिखित रामायणों के नाम — वाल्मीकिकृत, शेषकृत, योगवाशिष्ठ, अध्यात्म, हनुमान्कृत, नारदकृत, लघु रामायण, बृहद्रामायण, अगस्त्यकृत, साररामायण, देह रामायण, वृत्त-रामायण, ब्रह्माकृत, भरद्वाजकृत, शिवकृत, भरतरचित, जैमिनीकृत, आत्मधर्म रामायण, श्वेतकेतुकृत, जटायुकृत, रविकृत, पुलस्त्यकृत, विश्वामित्ररचित, सुतीक्ष्णकृत, विभीषणकृत, सुग्रीवकृत रामायण। 'एवं सहस्रशः सन्ति श्रीरामचरितानि हि। कः समर्थोऽस्ति तेषां हि संख्यां वक्तुं सविस्तरात्।।'

परिशिष्ट ४

मूल नामों की सूची

(* मूल नाम नहीं)

अंकुस
अंगद
अंबरीष
अकंपन
अखयबटु
अगस्ति१
अगस्ति२
अगहनु
अच्छ
अजामिल
अतिकाय
अत्रि
अदिति
अनिमादिक
अनुसुइया
अभिजित
अमरावति
अयोध्याकाण्ड
अरण्यकाण्ड
अरिमर्दन
अरुंधती
अलंकृति
अलच्छि
अवध
अवरेब
असुरसेन
असुरापिक नारी (वृन्दा)
असोक
अस्तगिरि
अस्विनीकुमार
अहल्या
('इंद्र' शब्द का मानस में केवल सामासिक प्रयोग। सुरपति के लिए दे० 'सक्र')
इंद्र कुलिस
इंद्र धनुष
ईश
उजेनी
उत्तरकाण्ड
उत्तानपाद
उदयगिरि
उपमा
उरमिला
एकतनु
कंज
कच्छपु
कद्रू
कनककसिपु
कपिल
कबन्ध
करमनास
करुन रस
कर्दम
कलपबेलि
कलिजुग
कल्पतरु
कस्यप
काकभुसुंडि
काम
कामधेनु
काल
कालकूट
कालकेतु
कालदंड
कालनेमि
कालिका १
कालिका २
कासी
किष्किन्धाकाण्ड
कुंडल मकर
कुंभकरन
कुबेर
कुलिस
कुलिसरद
कुस
कुसकेतु
कृतजुग
कृष्न
कृष्नतनय
केतु
केवट १
*केवट २
केहरि
कैकय
कैकेई
कैटभ
कैलास
कौसल्या
खर
गंगा
गगन
गजु
गद
गनिका
गनेस
गया
गरुड़
गालव
गिरिबर कंदरा
गुन
गुह
गोदावरी
गोमती
गौतम
ग्रीषम
घुनाच्छर न्याय
*चंद्रमा १
चंद्रमा २
चंद्रहास
चिंतामनि
चित्रकूट
चित्रकेतु
चिरजीवी मुनि
चौपाई
छंद
छीरसागर
जजाति
जटायू
जदुबंस
जनक
जम
जमन
जमपुर
जमुना
जयंत
जय
जलंधर
जल
जसोमति
जागबलिक
जाती
जाबालि
जामवंत
तमसा
ताड़का

तापस अंध
(श्रवणकुमार के पिता)
तामस
तारकु
तारा
तिसिरा
तुरीय
*तुलसी १
तुलसी २
तुलसीदास
तेरहुति
त्रिकूट
त्रिजटा
त्रिबेनी
त्रिसंकू
त्रेताजुग
दंडक बन
दच्छ
दधिमुख
दधीचि
दनुज
दसरथ
दिति
दिनकर कुल
दुंदुभि
दुघरी
दुरबासा
दुर्गा
दुर्मुख
दूषन
देवहूति
दोहा
द्वादस अच्छर मंत्र
द्वापर
द्विबिद
धर्मरुचि
धुनि
धूमकेतु १
धूमकेतु २
ध्रुव १
ध्रुव २
ध्वज
नंदिगाँव
नर
नरक
नरहरि
नल
नवनिधि
नहुष
नागपास
नारद
नारायन
नारि तपपुंज (स्वयंप्रभा)
निमि
निषाद
निसठ
निसिचरि एक (सिंहिका)
नील
नील सैल
नैमिष
नौमी तिथि
पंचबटी
पंपासर
परसुराम
पवन
पाताल
पारस
पावक
पिनाक
पुलस्ति
पुलस्त्य कुल
पुष्पक
पृथु
प्रतापभानु
प्रबरषन गिरि
प्रयाग
प्रहलाद
प्रहस्त
प्राची
प्रियब्रत
बड़वानल
बदरीबन
बनमाला
बरषा रितु
बराह
बरुन
बरुन पास
बलि
बसंत
बसिष्ठ
बान
बामदेव
बामन
बारुनी
बालकाण्ड
बालमीकि
बाली
बासुदेव
बिंध्याचल
बिकटासि
बिजय
बिधि
बिनता
बिप्रचरन
बिभीषन
बिराध
बिष्नु
बिस्वमोहनी
बिस्वामित्र
बीरभद्र
बीररस
बुध
बेद
बेदसिरा
बेन
बैकुंठ
बैतरनी
ब्याध
ब्यास
ब्रह्म
ब्रह्म अस्त्र
ब्रह्म लोक
ब्रह्मांड
ब्रह्मानी
भगति रस
भगवान
भगीरथ
भरत
भरतकूप
भरद्वाज
भवानी
भादव
भूमि
भृंगी
भृगु
भोगावति
भौमबार
मंथरा
मंदर
मंदाकिनी
मंदोदरी
मकर
मकरी (धान्यमाली अप्सरा)
मगह
मघा
मधु
मधुबन
मधुमास
मनि
मनुज अहारी
मयंद
मय
मरु (मारवाड़)
मलय
महान
महिसेषा
महोदर
मांडवी
माघ
मातलि
माधव
मानस
माया

मायावी
मारव (मालव)
मारीच
माल्यवंत
मीन
मेकल सुता (नर्मदा)
मेघनाद
मेरु
मैना
मैनाक
रंतिदेव
रंभा
रघुबंसी
रजोगुन
रति
रबि
रस
रसातल
राम
रामचरितमानस
रामघाट
रामधाम
रामबन
रामायण (शम्भुकृत)
रामायन
(वाल्मीकिरचित)
रामायुध
रावन
राहु
रिद्धि
रिष्यमूक
रेखा (लक्ष्मण-रेखा)
रोहिनि
रौरव नरक
लंका १
*लंका २
लंकाकाण्ड
लंकिनी
लखन
लच्छि
लव
लोमस
शृंगबेरपुर
श्रीवत्स
श्रुतकीरति
षटबदन
संपाति
संवत
सईं
सक्र (इन्द्र)
सची
सजीवनि मूरि
सठ
सतरूपा
सतानंद
सत्यकेतु
सत्रुहन
सत्व
सनकादि
सप्तरिषि
सबर
सबरी
सरजू
सरद
सरभंग
ससि
सहसबाहु
सांख्य सास्त्र
सांत रस
सागर
साजुज्य मुक्ति
साबर मंत्र
सारंग
सारदा
सावन
सिंगार
सिंघल
सिद्धि
सिबि
सिव
सिसिर
सीता
सीलनिधि
सुक १
सुक २
सुकल पच्छ
सुक्र
सुग्रीव
सुतीछन
सुधा
सुनयना
सुन्दरकाण्ड
सुबाहु
सुबेल
सुमंत्र
सुमित्रा
सुरगुरु
सुरथपति प्रधाना
(विश्वकर्मा)
सुरबीथि
सुररिपु
सुरसा
सुषेन
सूकर खेत
सूपनखा
सृंगी रिषि
सेतुबंध
सेष
सोन
सोरठा
स्वपच
स्वर्ग
स्वाति
स्वायंभू मनु
हनुमान
हरि
हरिचन्द
हरिचक्र
हलधर
हासरस
हिमरितु
हिमाचल
हिरन्याच्छ
हुलसी

19195
पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल [illegible] विश्वविद्यालय

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Accession		16158
Class		
	R-e	8-5-97
Tag etc		19/2/97
Filing	302	26/6/97
E.A.R		4.7.97
Any other	R-e	8-5-97
Checked		

Recommended By— Dr. G. Kaul

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

COMPILED

कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

संपूर्ण अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश	*भोलानाथ तिवारी, ए०एन० कपूर, विश्वप्रकाश गुप्त*
बेदी वनस्पति कोश	*रामेश बेदी*
मेरे साक्षात्कार सीरीज़	*नागार्जुन, रामविलास शर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृता प्रीतम, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह*
द्विवेदीयुगीन हिन्दी नवरत्न (आलोचना)	*विजयेन्द्र स्नातक*
हमारे पथ-प्रदर्शक (जीवन-चरित)	*डॉ० शंकर दयाल शर्मा*
प्रगति के परिदृश्य (निबंध)	*डॉ० शंकर दयाल शर्मा*
एकत्व के मूल (निबंध)	*डॉ० शंकर दयाल शर्मा*
यात्रा के पन्ने (यात्रा-वृत्तांत)	*राहुल सांकृत्यायन*
एशिया के दुर्गम भूखंडों में (यात्रा-वृत्तांत)	*राहुल सांकृत्यायन*
सामाजिक विज्ञान हिन्दी विश्वकोश (दो खंड : अ, आ)	*सं० : श्यामसिंह शशि*
कर्मवीर पं० सुन्दरलाल : कुछ संस्मरण	*सं० : सुधीर विद्यार्थी*
गांधी और अहिंसक आंदोलन	*शंकर दयाल सिंह*
हिन्दी : राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा	*शंकर दयाल सिंह*
गांधी विचार-यात्रा	*सं० : पं० रामनारायण उपाध्याय*
भारतीय राजनीति का संकट	*मधु लिमये*
विश्व साहित्यशास्त्र (आलोचना)	*सं० : डॉ० नगेन्द्र*
पृथ्वी का कृष्णपक्ष (कविताएँ)	*कैलाश वाजपेयी*
पृथ्वीकल्प (कविताएँ)	*गिरिजाकुमार माथुर*
काल चेतना (संस्मरण)	*अमृता प्रीतम*
आलोचना भी रचना है (आलोचना)	*काशीनाथ सिंह*
जाना-अनजाना चीन (यात्रा-वृत्तांत)	*शुभ्रा मुखोपध्याय*
स्वधर्म और कालगति (निबंध)	*रमेशचन्द्र शाह*
साब्जा पत्र कथा कहे (यात्रा-वृत्तांत)	*शिवप्रसाद सिंह*
आशारानी व्होरा : एक सार्थक रचना-यात्रा	*सं० : विष्णु प्रभाकर*
राहुल का कथा-कर्म (आलोचना)	*मधुरेश*
हिंदी : दशा और दिशा	*प्रभाकर श्रोत्रिय*
राष्ट्रीयता (निबंध)	*बाबू गुलाबराय*

भारतीय प्रकाशन संस्थान
24 अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002